2/06/23

श्रीकृष्णप्रसन् ।

राव बहादुर चिन्तामाण विनायक वैद्य, एम. ए. एल-एल. बी.,

(१) संचिप्त महाभारत (२) एपिक इिएडया (३) महाभारत ए किटिसिजम और (४) श्रीकृष्णचरित्र आदि यन्थोंके लेखक द्वारा प्रगीत

श्रीमन्महाभारतके "उपसंहार" नामक मराठी प्रनथका सरल हिन्दी श्रनुवाद—

महाभारत-मीमांसा ।

श्रनुवादक—

891.263 K 98 K

परिंडत माधवराव सप्रे।
Madhorav Sapria

प्रकाशक---

बालकृष्ण पांडुरंग ठकार, ग० वि० चिपल्णकर मंडलीके स्वामी, बुधवार पेठ, नं० १७३ पूना ।

Balkrishem pandyrang. pung

गगापति कृष्ण गुर्जर, श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, जतनबड़, बनारस सिटी।

संवत् १९७७—सन् १९२०

ace: no: 13621

Rs 4-0-0+20%

किएक हिएक समिति अस्ति के किएक विकास

इस प्रन्थ-सम्बन्धी सब हक्त, १८६७ ई० के २५ वें ऐक्टके अनुसार रजिस्टर्ड होकर प्रकाशकके श्रधीन रचित हैं।

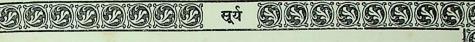
प्राचित्र वाष्ट्रमान सब्दे ।

No recommend of the party of

मार्थ, यह विश् विश्वविद्य में जात

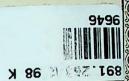
13621

of the soft hats



श्रीकृष्णप्रसन्न ।

30



अपंगा-पानिका

नमोस्त्वनंताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाच्रिरारेखाहवे। सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिएो नमः॥

जो षड्गुणैखर्य सम्पन्न भगवान् श्रपने श्रव्यक्त रूपसे समस्त चराचरमें व्याप्त हो रहा है, जिसमें सर्वभूत निवास कर रहे हैं, परन्तु जो मृगजलपाय भूतमात्रमें नहीं है, जिसमें भूतमात्र नहीं भी हैं परन्तु जिसमें वास कर भी वह ऐखर योगरूप है, ऐसे जगदाधार भगवान्की प्रेरणासे पूर्ण होनेवाला

यह

महाभारत-मीमांसा

नामक ग्रन्थ

(श्रोमन्महाभारतका समालोचनात्मक बुद्धिसे किया हुन्रा तुलनात्मक भक्त्युन्मेष करनेवाला श्रीर सर्वागीण विवरण) श्रीभगवदंश सकल महनीय गुण्निकेतन

राजगढ़ाधीश

श्रीमन्महाराजका

उन्होंकी उदारता द्वारा प्रकाशित है। सकने के कारण उनकी आजासे श्रमन्य प्रेम तथा कृतज्ञतापूर्वक समर्पित किया जाता है।

श्रमं भूयात्।

प्रकाशक

श्रीकृष्य प्रसन्न।

प्रकाशकका निवेदन

一米米米米

यत्कृतं यत्करिष्यामि तत्सर्वं न मया कृतम्। त्वया कृतं तु फलअक्तवमेव मधुसूद्रन्।। १।।

प्रिय पाठक महाशयो ! इस विराट विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति श्रीर लय करके श्चात्म स्वरूपमें रममाण हे।नेवाले, गुद्ध सत्स्वरूप, षड्गुणैश्वर्य-सम्पन्न, मायातीत, सर्वव्यापी, सर्वेसाची, सर्वातर्यामी, श्रघटितघटनापटु, बहुरूपी, बहुगुणी, श्रनाद्यनन्त, यदुकुलावतंस, भगवतिरुक्मिग्यादि-शक्तिं संघसेवित, पादपद्मपूजानिरतयोगिवृन्दह-द्गुहागृहशायी श्रीकृष्णचन्द्रके चरण कमलोंमें श्रनेक साष्टांग प्रणाम करके उस सिंबदा-नन्दके अतुळनीय कृपाप्रसादसे हिन्दी भाषामें तैयार होनेवाले इस "महाभारत-सीलांशा" नामक ग्रन्थको हम सभी ग्रवस्थाके ग्राने हिन्दी प्रेमी भाई वहनेांको शुद्ध सात्विक प्रेमसे बादरपूर्वक ब्रर्पण कर उनकी प्रेम प्राप्तिकी ब्राशा करते हैं। प्रार्थना है कि हिन्दीभाषा-भाषी हमारे बन्धुगण हमारी इस धृष्टताकी त्रमा कर हमारे स्वीकृत कार्यमें सहायता देनेकी कृपा करेंगे श्रीर हमसे श्रपनी यथाशक्ति सेवा करा छेंगे। हमें विश्वास है कि हमारी सब बातोंके। ध्यानमें रखने पर पाठकगण तन मन धनसे हमें पूर्णतया उत्तेजित करनेके लिए सहर्ष तैयार हो जायँगे। सनातनधर्म की रीति है कि—"रिक्तपाणिर्न पश्येच राजानं देवतां गुरुं।" इसी उक्तिके श्रनुसार हम भी हिन्दी-जनताक्रपी परमेश्वरके सन्मुख श्रपने सद्ग्रंथ रूपी इस विनम्र भेंटके। लेकर श्रग्रसर हेाते हैं श्रीर श्राशा करते हैं कि हमारे विनीत परिचय तथा भेंटके। प्रेमपूर्वक ग्रहण कर वे हमें श्रपने दयामय हृदयमें स्थान देंगे।

सुविख्यात ऐतिहासिक पूना शहर में एक कम्पनी है। उसका नाम "मेससी गणेश विष्णु चिपलू एकर श्राणि कम्पनी" है। इस संस्थाने सन् १६०२-०३से श्राजनक श्रोमद्भागवत, श्रीवालमीकि-रामायण, श्रीमन्महाभारत श्रीर श्रीवालमीकि-प्रणीत वृह्योगवासिष्ट इन चार श्रन्थोंका भाषान्तर मराठोमें प्रकाशित कर श्रपनी मातृभाषा तथा श्रपने महाराष्ट्रीय समाजकी सेवा की है श्रीर मराठी श्रन्थभांडारकी पुष्ट किया है। यह व्यवसाय लगभग १८ वर्षों से जारी है। संस्थाका विचार है कि भविष्यमें भी कोई ऐसा श्रन्थ प्रकाशित किया जाय जो महाराष्ट्री जनताकी रुचिकर हो।

उपयुक्त चारों ग्रन्थ हमारे भारतवर्षकी राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं। उन पर समस्त सनातनधर्मियोंका यथार्थमें कानूनकी दृष्टिसे पूरा पूरा श्रिधकार है। परन्तु काल- गितसे संस्कृत भाषाका प्रचार कम हो जानेके कारण उनका उपयोगमें श्राना भी श्रसम्भव हो रहा था। परन्तु पूर्वकालीन महर्षियों की तरह वर्तमान समयके भारत-वासी विद्वानोंने इनको सर्वसाधारणके लिए खुलभ बनानेके उद्देश्यसे श्रपनी श्रपनी भाषामें उनका श्रनुवाद करना प्रारम्भ कर दिया है जिससे वे उत्तरीत्तर लेकि।द्रपात्र भी हो रहे हैं।

यह प्रश्न हो सकता है कि मराठी भाषामें ग्रन्थ प्रकाशनका काम करनेवाली यह संस्था हिन्दीकी श्रोर कैसे श्रीर क्यों सुक रही है। इसिछिये इस प्रश्नका निराकरण पहले कर देना चाहिए कि हिन्दीकी श्रोर हमारी प्रवृत्ति कब श्रीर क्यों हुई।

सन् १६१२ में समस्त 'महामारत' का मराठी आषान्तर हरिवंशपर्व-सहित नौ भागोंमें प्रकाशित हो चुका था। अनन्तर दसवें भाग—उपसंहार—के प्रकाशनका समय आया। इस कार्यमें सहायता प्राप्त करनेके उद्देशसे हम हो त्कर सरकारकी राजधानी इन्दौरमें गये। उस समय इन्दौर दरवारमें मेहरवान मेजर ल्यु अर्ड पम० ए० आर० ए० प्राइवेट सेकेटरीके पद पर थे। हमने हिज़ हाइनेस श्रीमन्त सवाई तुकाजीराव महाराजसे मेंट कर अपना उद्दिष्ट हेतु प्रकट किया। परन्तु चाहे हमारे दुर्दैवसे हो, चाहे ईश्वरका कुछ विशेष विधान होने के कारण हो, हमें महाराज साहवने जैसा पूर्ण आश्वासन दिया था वैसी सहायता उनसे आजतक नहीं मिली। तब हमने दैवयोगसे इन्दौर दरवार के रेविन्यू मेम्बर राय बहावुर मेजर रामप्रसादजी दुवे साहवसे प्रार्थना की। उनकी रुपासे सेन्ट्र इिग्डयाके ए० जी० जी० मेहर्वान टकर साहवसे मेंट करनेका अवसर मिला। हमारी प्रार्थनाको खुनकर उन्होंने कहा कि—"यदि तुम्हारा अन्थ हिन्दी भाषामें होता तो में इधरके हिन्दी भाषामिमानी राजा महाराजाओंसे यथाशक्ति सहायता दिलवाता। यह अन्थ मराठीमें है इसलिये सहायताका कोई उपाय नहीं है। इधरके जिन मराठी भाषावाले दरवारों से मेरा सम्बन्ध है उनसे तो तुमने पहले ही सहायता प्राप्त कर ली है।"

पाठको ! टक्कर साहबके आठ वर्ष पूर्वके उक्त भाषण्का दृश्य फल आज आप लोगों के करकमलोंमें प्रस्तुत हैं । इससे आप लोगोंको विदित हो जायगा कि ईश्व-रीय संयोग और घटना कैसे होती है, भविष्यकालमें होनेवाले कार्यका बीजारीपण् किससे और कैसे हो जाता है और बीजारीपण् हो जाने पर भी अंकुर फूटकर फल-फूलसे पूर्ण बृज्ञ तैयार होने में कितनी। अविध लगती हैं । टक्कर साहबके कथनका परिणाम यह हुआ कि हमारे मनमें हिन्दी भाषाके सम्बन्धमें लकीरसी खिंच गई; तिस पर भी अनेक अपरिहार्य अङ्चनोंमें व्यय होनेके कारण सन् १६१८ के जून तक—हिन्दी सेवाका दृढ़ निश्चय होने पर भी—हम कुछ भी न कर सके।

धार दरबारके आश्रयसे ता० २०६१८ की मराठी महाभारतका दसवाँ भाग — उपसंहार—प्रकाशित हो गया श्रीर हम अपने कामोंसे निश्चिन्त हो गये। इसी समय, सन् १६१२ में हमारे मनमें हिन्दीसेवाका जो बीजारीपण हो चुका था उसके श्रंकुरित होनेके स्पष्ट चिह्न दिखाई पड़ने छगे। उसी बेधिपद इतिहासकी अपने परिचयके नाम पर हम आज आप छोगोंके सन्मुख रखते हैं।

मराठी भाषामें सम्पूर्ण महाभारतके प्रकाशित हो जाने पर हिन्दी सेवाकी सुप्त भावना जोरदार रीतिसे जागृत होने छगी। दसवें भागकी अपने परम शुभ-

चिन्तक तथा मित्र श्रीयुत दीवान बहादुर टी छाजूरामजी साहव सी॰ श्राई० ई० (धार-दरवारके सन् १६१२।१३ से दीवानका काम करनेवाले सज्जन) को समर्पण कर हम उनसे जाधपुरमें इस श्रमिपायसे मिलने गये कि हमारे हिन्दीसेवाके निश्चयके सम्बन्धमें उनकी क्या राय है। उस समय वे जाधपुरके दीवान थे। कुशल-प्रश्न होने तथा पुस्तक श्रपण करने पर हमने श्रपने दिलकी बात उनके सामने प्रकट की। उन्हें बड़ा सन्तोष हुश्रा। वे कहने लगे कि हमने समस्त महाभारतका जिस तरहसे मराठीमें प्रकाशन किया है उसी तरहसे हिन्दीमें भी श्रवश्य कर डालें श्रीर इस कार्यके श्रारमके भागके लिए वे हमें जोधपुर दरबारसे उत्तम रीतिसे सहायता दिला देंगे। उन्होंने यह भी सूचना दी कि हम श्रपनी कम्पनीकी एक हिन्दी-शाखा इन्दौरमें स्थापित करें।

इस तरहसे हमारे हृद्यमें कोई ६ वर्षों से जमे हुए विचारको छाजूरामजी सरीखे अधिकार-सम्पन्न महाशयके द्वारा प्रारम्भसे ही अच्छी सहायता मिली। उनको आजाको शिरोधार्य करके हमने शोष्ठता तथा उत्साहसे कार्यारम्भ किया। अपने ही छत्योंके वल पर सेन्ट्रल इिएडयामें जो थे। डेसे सत्पुरुष उन्नतिकी उच्च सीढ़ी पर बैठे हैं उनमेंसे छाजूरामजी साहब भी एक प्रधान व्यक्ति हैं। भला उनकी स्चनाको अस्वीकृत कौन करता?

परन्तु मानवी इच्छा और ईश्वरीय घटनामें बड़ा अन्तर रहता है—यह अज्ञानी जीवोंके लिए अगम है। अनुभवी जनोंका कथन है कि हिनम्धजनसंचि भक्तं हि दुःखं सहावेदनं भवति"; इसी न्यायके अनुसार हम अपनी स्थितिका वर्णन एक महाकविके निस्न श्लोकमें करेंगे:—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं भास्त्रानुदेष्यति हसिष्यति पंकजश्रीः।
इत्थं विचित्रयति केाशगते द्विरेफे हा हन्त हन्त निलर्गी गज उज्जहार॥

(अर्थात् - कमलके केषिमें बन्द होकर भ्रमर अपने मनमें यह विचार कर रहा है कि जब रात्रि व्यतीत होगी और सबेरा होगा तब में दुर्भाग्यवश फँसे हुए इस कारागारसे मुक्त होकर स्वेच्छापूर्वक विहार करूँगा और अपनी मकरन्द पानकी इच्छाको पुनः तृप्त करूँगा; वह इस तरहसे विचार कर ही रहा था कि सबेरा होने के पहले एक उन्मत्त हाथी आया और उसने कमलको नामि समेत तोड़कर फैंक दिया, जिससे भ्रमर केषिमें ही निराशापूर्वक बन्द रह गया।) इसी तरह हमारी अवस्था भी हो गई। जिस जोधपुर दरबारके भरोसे पर हमने अपना उद्योग आरम्भ किया था उन्हें उन्मत्त तथा अविचारी कालने अल्पवयमें ही संसारसे अलग कर दिया और 'प्रथमश्रासे मित्रकापातः" की तरह हमारे प्रारम्भ किये हुए महत्कार्यमें, आधारमूत आश्रयदाता सज्जनके अभावमें, पूर्ण निराशाका साम्राज्य फैल गया।

देखिये, इस दुर्घटनाके कारण हमारी अवस्था कैसी दुःखपूर्ण श्रीर आश्चर्य-जनक हो गई। कहाँ तो पूनाकी चिपलूणकर-मएडली श्रीर कहाँ जोधपुर राज-पूतानाके अधिपति महाराज! देनिंमें कितना अन्तर होने पर भी हमारा उनका संयोग होना असम्भव था। परन्तु दैवयोगसे यह असम्भव बात जितनी आकिस्मक रीतिसे हो पड़ी उतनी ही आकिस्मक रीतिसे नष्ट भी हो गई। यह चिर-वियोग तथा श्रनुपम संयोग स्वप्नके दृश्यकी तरह लुप्त है। गया श्रीर हमारे मनमें एक स्थायी शोक उत्पन्न करनेका कारण है। गया। श्रस्तु।

इस घटनाके होने पर भी हमारे मनकी इच्छाने हमें इस बात पर बेचैन कर दिया कि चाहे सारा महाभारत न हो सके परन्तु तीन भागोंकी—हरिवंशपर्व, पूर्वी-तर भाग श्रीर उपसंहारको—तो हिन्दोमें श्रवश्य ही प्रकाशित करना चाहिए, श्रीर दूधके बदलेमें महीसे ही काम निकालना चाहिए। श्रतपव हमने पहले १० वें भाग - उपसंहार—का हिन्दी-श्रनुवाद प्रकाशित करना निश्चित किया। परन्तु हमारे लिए श्रनुकूल बात एक भी नहीं दिखाई देती थी। एक श्रोर तो ये बातें, दूसरी श्रीर इन्फ्लुएञ्जा तथा योरोपीय महायुद्धके कारण निस्सीम महर्घता। इस त्रयतापसे पीड़ित होने पर हमने भोपाल एजेन्सीके पोलिटिकल एजेन्ट मेहरबान कर्नल ल्युश्रई साहबसे भेंट की श्रीर उन पर श्रपना मनेगित भाव प्रकट किया। (सन् १६१२ में यही सज्जन होल्कर महाराजके प्राइवेट सेकेंटरी थे; उसी समय हमसे इनसे परिचय हो चुका था।)

यद्यपि जाति श्रीर धर्मसे कर्नल ल्युश्चर्ड साहब भिन्न हैं, तथापि उनके कार्योंकी देखकर कहना पड़ता है कि वे हिन्दू हैं। सेन्ट्रल इिएडयामें उनका बहुत सा
समय व्यतीत हुश्चा है। हिन्दी, संस्कृत श्रीर मराठोका ग्रन्थ-लेखने।पये।गी श्रभ्यास
करके उन्होंने सेन्ट्रल इिएडयाके गजैटियर श्रादि श्रन्थ प्रकाशित किये हैं। श्रब ते।
वे होल्कर दरबारके पुराने कागजपत्रों के श्राधार पर होल्करशाहीकी सुविख्यात
श्रहिल्याबाईका विश्वसनीय तथा विस्तृत चित्र प्रकाशित कर रहे हैं। ऐसे श्रन्थप्रेमी पुरुषसे भेंट होने पर हमारा बड़ा लाभ हुश्चा। उनकी सिफारिशसे हम मध्यभारतके राजगढ़ दरबार श्रीर वहाँके कर्मचारियों से मिल सके श्रीर हमें इस "महाभारत-मीमांसा" के प्रकाशित करनेके लिए तीन हजार रुपयोंकी सहायता मिली।
इसी कारण श्रपने ध्येयके श्रनुसार इस समयकी कठिन परिस्थितिमें भी हम इस
ग्रन्थकी श्रल्प मृत्यमें दे सके हैं।

यह "महाभारत-मीमांसा" मूल पुस्तक 'उपसंहार' के नामसे मराठीमें प्रकाशित हुई है, जिसके लेखक ग्वालियरके रिटायर्ड बीफ जिस्टस तथा बम्बई विश्वविद्यालयके आनरेरी फेलो राव बहादुर सी॰ वही॰ बैद्या एम॰ ए॰ एल एल बी॰ हैं। इसके हिन्दी अनुवादक पण्डित माधवरावजी समें बी॰ ए॰ हिन्दी संसारके एक लब्धप्रतिष्ठ लेखक हैं। "छत्तीसगढ़-मित्र," "हिन्दी ग्रन्थमाला," "हिन्दो केसरी," "हिन्दी दासबोध," स्वर्गीय लेकमान्य तिलकके "गीतारहस्य" के हिन्दी-अनुवाद, "श्रात्म-विद्या," "कमेवीर" के वर्तमान संचालन श्रादि हिन्दी-सेवाके महान् कृत्योंके कारण उनसे हिन्दी-जनता भली भाँति परिचित है। इसलिए अनुवादकी प्रशंसा करनेकी आवश्यकता कुछ भी नहीं है। आशा है कि हिन्दी-प्रेमी सज्जन इस ग्रन्थकी अपनाकर हमारे उत्साहको बढ़ावेंगे।

ग्रन्थके श्रन्तमें महाभारत-कालीन भारतवर्षका नकशा परिश्रमपूर्वक तैयार करके जानवृक्षकर दिया गया है। श्राशा है कि इससे हमारे पाठकेंकी, मनेारञ्जनके साथ ही, ज्ञानवृद्धि भी होगी। यहाँतक हमने अपनी आकां चा और उसके कारण आदिका वर्णन करके "महाभारत-मीमांसा" को अपने हिन्दीप्रेमी भाइयों को अप्रेण किया है और सब इतिहास
कह सुनाया है। इस एक ही प्रन्थक प्रकाशित करने में हमें आशा और निराशाके
अने क अवसरों का सामना करना पड़ा; तथापि हमारा यह पूर्वनिश्चय ज्यों का त्यों ही
अने अवसरों का सामना करना पड़ा; तथापि हमारा यह पूर्वनिश्चय ज्यों का त्यों ही
बना हुआ है कि समस्त महाभारतका हिन्दी संस्करण अवश्य ही प्रकाशित किया
जाय। इस निश्चयमें विघान कारण तो और भी प्रवल उत्साह आ गया है। कोई विघ्र
जाय। इस निश्चयमें विघान कारण तो और भी प्रवल उत्साह आ गया है। कोई विघ्र
न आवे इसी हेतुसे भगवान श्रीकृष्णवन्द्रकी अनुपम लीलाओं से भरे हुए हरिवंशपर्वके अनुवादसे ही हमने महाभारतका प्रकाशन आरम्भ किया है। हमें भरोसा है
कि श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपासे सब विघान परिहार हो कर सब लोगों के आशीर्वाद तथा
सहायतासे अभिलिषत कार्य शोध ही सफल होगा।

वाधाश्रोंके रहने पर तथा वर्तमान संकटपूर्ण परिखितिमें भी हम जिन राजगढ़ दरवार तथा वहाँके दीवान प्रभृति सज्जनोंकी उत्तम सहायतासे इस प्रन्थका प्रकाशन कर सके हैं, उनका श्राभनन्दन करना हमारा पहला नैतिक कर्त्तव्य हैं। इसी लिए हम महाराज साहवका यहाँ थोड़ा सचित्र चित्र-वर्णन प्रकाशित करते हैं। इस भागके प्रकाशनमें पूर्ण श्राश्रय देकर उन्होंने हमें कृतकृत्य किया है, श्रतप्व यह भाग हम उन्होंकी सेवामें समर्पित करते हैं। ग्रन्थकी छपाईका काम श्रव्य समयमें उत्कृष्ट रीतिसे कर देनेके लिए बनारसके श्रीलद्मीनारायण प्रेसके मैनेजर श्री० ग० कृष्ट रीतिसे कर देनेके लिए बनारसके श्रीलद्मीनारायण प्रेसके मैनेजर श्री० ग० कृष्ट गुर्जर भी हमारी हार्दिक कृतज्ञताके पात्र हैं। इनके श्रितिरक्त हमें इन महाश्योंसे भी किसी न किसी प्रकारकी उच्च सहायता मिली हैं:—(१) दीवान यहादुर श्रीमान दुर्गासहाय, दीवान राजगढ़ स्टेट, सी० श्राई, (२) डाकृर लीलाधरजी मिश्र, प्राइवेट सेकेटरी, राजगढ़ दरवार (३) रा० रा० गणेश रामचन्द्र पटवर्धन बी० ए० हेड मास्टर, राजगढ़ हाई स्कृल। इन सज्जनोंका उपकार मानकर हम श्रपने निवेदनको समाप्त करते हैं।

पूना। विजयाद्शमी, वि॰ सं॰ १९७७ बालकृष्ण पांडुरङ्ग ठकार, प्रकाशक। from the floor from the

THE PARTY OF THE P

the configurations belong the configuration of the

वाजाकों रहते पर श्रम वर्तमान संस्था के प्रतिविधि के स्थापन सम्मान स्थापन के प्रतिविधि के स्थापन स्थापन स्थापन तथा सम्भापन के स्थापन स्यापन स्थापन स्

THE STATE OF THE PERSON OF THE

AND AND THE PROPERTY OF THE PARTY OF THE PAR

रियासत राजगढ़का संक्षिप्त वृत्तान्त

और उसके

वर्तमान नरेशका परिचय।

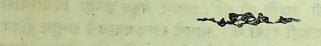
राजगढ़की रियासत उस प्रमार चत्रियवंशके अधीन है जिसके पूर्वज उज्ज-यिनीके राजा वीर विक्रमादित्य थे जिनका सम्वत श्राज दो सहस्र वर्षोंसे चला श्राता है। इसी वंशमें ऊमरजी भी बड़े प्रसिद्ध नरेश हुए हैं। उन्होंने सिन्धके उमर-कोटमें एक दढ़ दुर्ग स्थापित किया थाः इन्हीं प्रसिद्ध वीरने उज्जैन नगरसे पचास कोसकी दूरी पर ऊमरवाड़ीमें अपना राज्य स्थापित किया। सन १८८१ ई० में जब इस प्रान्तके राजा मोहनसिंहजी थे उस समय दीवान परशुरामजीने इस राज्यको दो भागों में विभाजित कराया—एककी राजधानी राजगढ़ हुई श्रीर दूसरेकी नर-सिंहगढ़। राजगढ़की गद्दी पर रावत मोतीसिंहजी साहब सातवें राजा हुए। सन् १८५ अके बलवेमें श्रापने श्रंश्रेजोंकी वड़ी सहायता की; इससे प्रसन्न होकर सरकारने श्रापको वंशपरंपराके लिए ग्यारह तोपोंकी सलामीका सन्मान प्रदान किया। सन १८६० ई० में इनके पुत्र रावत बलावरसिंहजी साहब गद्दी पर बैठे। आपकी योग्यता श्रीर न्यायप्रियता उच्च कोटिकी थी। श्रापने केवल दो वर्ष राज्य किया। सन् १८६२ ई॰ में आपके पुत्र रावत बलभद्रसिंहजी साहब गद्दी पर बिराजे। सन् १==५में जब मारिकस आफ डफरिन भारतके गवर्नर-जनरल थे, उस समय आपको सरकारने राजाको पदवी वंशगरंपराके लिए दी। सन् १६०२में श्रापके पितृव्य राजा रावत सर विनयसिंह जी साहब गद्दी पर वैठे। श्रापने राज्यकी श्रसाधारण उन्नति की। श्रापके शासनकालमें बहुतसे नये नये मकान, कोठियाँ, महल, सड़कें श्रादि बनीं श्रीर शिक्षाका प्रचार कर राजधानीकी उन्नति की गई। श्रापने बहुत श्रच्छा विद्याभ्यास किया था; त्रपने समयके त्राप एकही दानी थे। त्रापके राज्य-प्रवन्धसे सन्तुष्ट होकर सरकारने सन् १६०=में श्रापको के० सी० श्राई० ई० के पदसे विभूषित किया। श्राप सन् १६०३ के दिल्ली दरवारमें समिमिलित थे और आपको एक सुवर्णपदक भी मिला था। सन् १६०५ में त्राप प्रिन्स और प्रिन्सेस श्राफ वेल्ससे और सन् १६११में सम्राट पंचम जार्जसे मिले। तेरह वर्ष चार महीने राज्य करने पर सन् १६१६में आपका खर्गघास हो गया।

श्रापके खर्गवासके पश्चात् श्रापके सुयोग्य पुत्र राजा रावत सर वीरेन्द्रसिंह जी साहब बहातुर गद्दी पर वैठे। ता० ११ मार्च सन् १६१६ को राज्याभिषेक हुआ। श्रापकी शिक्ता इन्त्रीरके राजकुमार कालेजमें हुई। परीक्तोत्तीर्ण होनेमें श्रापको कई प्रशंसास्चक पदक मिले। श्रंगरेजी, उर्दू श्रोर हिन्दीके श्राप श्रव्छे ज्ञाता हैं। श्रंगरेजी खेलकृत, श्रंगरेजी भाष्य श्रीर श्रश्वारोहणमें श्रापकी बड़ी प्रसिद्धि है। श्राकेट-की श्रोर श्रापकी श्रद्यापिक रुचि है। केवल ३६ वर्षकी श्रवस्थामें श्रापने श्रभीतक

१२ सिहाँ, अगणित तेंदुओं और बाराहोंको मार गिराया है। आप भूमिख होकर भी आखेट करते हैं। गोली चलाने, चित्रकला, पेन्टिंग आदिमें भी आप दत्त हैं। विद्याप्ति और आपकी विशेष रुचि है। विद्यार्थियोंको उत्साहित करनेके लिए आप समय समय पर पारितोषिक भी दिया करते हैं। आपने अनाथ बचोंके लिए एक अनाथालय खोल रखा है। उनके पालन-पोषणका प्रबन्ध तो अच्छा है ही, पर उनकी शिल्लाकी भी समुचित व्यवस्था की गई है। राज्यप्रवन्धके उत्तरोत्तर सन्तोष-जनक सुधारसे प्रसन्न होकर अंगरेज सरकारने आपको सन् १६१६ में राज्यके पूर्ण अधिकार, सन् १६१६ में के. सी. आई. ई. का पद और सन् १६२० में स्टेशनके मुकदमोंका भी पूर्णिधकार दे दिया है। गत योरोपीय महायुद्ध में आपने वृटिश सरकारको धन तथा जनसे बड़ो सहायता दो। आप बड़े उदार हैं—आपके यहाँसे कोई विमुख नहीं लौटता। एक सुयोग्य नरेन्द्र में जिन अनेक बड़े बड़े गुणोंकी आवश्यता है वे सब आपमें पाये जाते हैं।

ईश्वर ऐसे सद्गुणी राजाको चिरकालतक सिंहासनारूढ़ रखे, यही हमारी प्रार्थना है। यह प्रन्थ भी आपकी ही उदारतासे प्रकाशित हुआ है।

रियासत राजगढ़ मध्यभारतमें भूपाल एजेन्सिके श्रधीन है। इसका चेत्रफल १६२ वर्ग मील, जन-संख्या १६११ के गणनानुसार १२७२६३ श्रीर जागीरी सहित वार्षिक श्राय सात लाख रुपये है। राजधानी राजगढ़का श्रचांश २३"—३७ श्रीर २४"—११ उत्तर तथा ७६०—३७ श्रीर ७८०—१४ पूर्व देशान्तर पर स्थित है। श्रधिकांश प्रजाका निर्वाह रुपि पर होता है; एक पंचमाश प्रजाका पेशा मजदूरी है। राज्यके तृतीयांशमें पर्वत श्रीर जंगल फैले हुए हैं। नेवज श्रीर पार्वती वड़ी निदयाँ हैं जो श्रन्तमें चंबलमें मिल जाती हैं। मृगयाके लिए श्रनेक स्थान हैं जहाँ कई प्रकारके हिस्त पश्र पाये जाते हैं। कोटरेके जंगलके निकट महाराज श्रशोक निर्मित बौद्धोंका मग्नाविशिष्ट ऐतिहासिक स्तूप है। मुख्य उपज नेहूँ, चना, जुश्रार, मक्का श्रीर अफ़ीम है। राज्य भरमें छात्रालय तथा पुस्तकालय सहित एक हाई स्कूल, सत्तह प्रामीण पाठशालाएँ, एक मिडिल स्कूल श्रीर चार भ्रीषधालय भी हैं।



निया के देश कर के हैं कर तो निया होता है के हैं के से मान है के लिए हैं के हैं के मान

त्यांनासून्य करण मिन्न संबद्धित स्थार है। श्री श्री स्थार करण करण करण है। अंदर्भ है है से संबद्धित स्थार संस्थान कर्षण में स्थार संस्थान स्थार स्थार है। से स्थार है है से स्थार से स्थार है है

entire (\$1) a material of the first of the facility of the fac

श्रीमन्महाभारत-मीमांसा

अनुक्रमणिकाः (विषयवार और विस्तृत)

प्रस्ताच-ए० १-४

ग्रन्थप्रशंसा १, प्राच्य श्रीर पाश्चात्य विद्वानोंका श्रध्ययन श्रीर मत २, विषय-का पूर्व-सम्बन्ध वैदिक साहित्यसे श्रीर उत्तर-सम्बन्ध श्रीक तथा बौद्ध साहित्य-से २, भारती-काल, महाभारत-काल श्रीर भारती युद्धकाल ३, महाभारतके विस्तार-का कोष्ठक ३, वस्वई, बङ्गाल श्रीर मद्रासके पाठ ३।

पहला प्रकरण-महाभारतके कर्त्ता पृ० ५ - ४२

तीन प्रन्थ स्रोर प्रन्थमें बतलाये हुए तीन कर्त्ता प्, जय, भारत, महाभारत, व्यास, वैशम्पायन, सौति, तीन श्रारस्भ ६, तीन ग्रन्थ-संख्या ७, श्रठारह पर्व सौतिक हैं ६, कर्त्ता काल्पनिक नहीं हैं ६, जन्मेजयकी पापकृत्या १०-११, यदाश्रीषम् इत्यादि स्ठोक सौतिके हैं १२, सौतिका बहुश्रुतत्व और कवित्व १२, सौतिने भारत क्यों बढ़ाया १३, सनातन-धर्म पर बौद्ध और जैन धर्मीका आक्रमण १४-१६, सनातन-धर्मकी प्रतिपादक कथाओं और मतोंका संग्रह १६-१७, बढ़ाई हुई मुख्य बातें (१) धर्मकी एकता, शिव श्रौर विष्णुका विरोध दूर कर दिया गया १७-१८, सांख्य, योग, पाशुपत, पांचरात्र श्रादि मतोंका विरोध भी दूर कर दिया गया १६-२१, (२) कथा-संग्रह २१-२४, (३) ज्ञान-संग्रह २५, (४) धर्म श्रीर नीतिकी शिला २५-२६, (५) कवित्व श्रीर स्त्रीपर्वका विलाप सौतिका है २६, कूट श्रोकोंके उदाहरण २७, ये श्रोक सौतिके हैं, इनकी संख्या २८, (६) पुनकृक्ति, (७) श्रनुकरण २६, (८) भविष्य-कथन ३०, (१) कारणोंका दिग्दर्शन ३१-३२, महाकाव्यकी दृष्टिसे भारतकी श्रेष्टता ३२, भारती-युद्धका मुख्य सविधानक महत्वका, राष्ट्रीय श्रीर विस्तृत है ३३-३६, भारतके व्यक्ति उदात्त हैं ३६, स्त्रियाँ श्रीर देवता भी उदार हैं ३७, "धर्मेवो धीयतां बुद्धिर्मनो वो महदस्तु" ही भारतका सर्वस्व है-भाषण श्रौर वर्णन ३६-३८, वृत्त-गांभीर्य श्रीर भाषामाधुर्य ३६, भारतका मुख्य जीव, धर्माचरण ४०

दूसरा प्रकरण-महाभारत ग्रन्थका काल-पृ॰ ४३- ८०

उच्चकत्प शिलालेख (ईसवी सन् ४४५) में एक लाखकी संहिताका हवाला ४३, डायोन क्रायसीस्टोमके लेख (ई॰ सन् ५०) में एक लाखके ईलियडका हवाला ४२-४४,

यवनों अथवा श्रीकोंका उल्लेख (ई० पूर्व ३२०) ४५, श्रादि पर्वमें श्रीक शब्द सुरंग है ध्य, (फुटनोट) महाभारत ईसासे पूर्व ३२० से ई० सन् ५० तकका है ४५, महाभारत-में राशियोंका उल्लेख नहीं है ४५, राशियाँ यूनानियोंसे ली गई हैं ४६, श्रीकों और भारतवासियोंका प्राना परिचय ईसासे पूर्व ६०० वर्षतक ४६-४७, वैक्ट्रियन यूना-नियोंने ईसासे पूर्व सन् २०० में हिन्दुस्तानमें राज्य स्थापित किये ४७, शक-यवन, मालवा उज्जयिनीमें शकोंका राज्य ४७, उज्जयिनीमें युनानियोंकी सहायतासे ज्योतिष-का अभ्यास और सिद्धान्त-रचना ४=, राशियाँ ईसासे पूर्व सन् २०० में भारतवर्षमें श्राई श्रौर महाभारत उससे पहलेका है श्रतः उसका समय ईसासे पूर्व सन् २५० उहरता है ४=, दी जितका मत अमपूर्ण है ४६-४१, बीद्ध अन्थों में राशियाँ नहीं हैं श्रीर न गर्गके ग्रन्थमें ही हैं ५१-५२, सरसरी तौर पर महाभारतका समय ईसासे पूर्व सन् २५० ठहरता है, तिलकने गीता-रहस्यमें भी इसी सिद्धान्तको स्वीकार किया है ५२-५३, श्रन्तःप्रमाण-महाभारतमें दूसरे ग्रन्थोंका उल्लेख ५४, नाटकोंका उल्लेख है पर कत्तांश्रोंका नहीं ५४, "ब्रह्मसूत्र पर्देश्चैव" में बादरायणके वेदान्त-सूत्रका उल्लेख नहीं है ५४, वादरायण सूत्रका समय ईसासे पूर्व सन् १५० है ५४, "ऋषिभिर्वहुधा-गीतं" श्रादि स्ठोकका मैक्समृलर श्रीर श्रमलनेरकरने जो भाषान्तर किया है वह भ्रमपूर्ण है ५५, सूत्र शब्दका अर्थ वौद्ध सुत्त शब्दके समान ही है ५६, बादरायण व्यास और द्वेपायन व्यास दोनों अलग अलग हैं, एक बुद्धके बादका और दूसरा पहलेका है ५६, भगवद्गीता और वेदान्त सूत्र एक ही कत्त्रांके नहीं हैं, पहलेमें सांख्य योगका मएडन श्रीर दूसरेमें खएडन है ५७, श्राश्वलायन सूत्र महाभारतके वादका है ५७-५=, श्रन्य सूत्र श्रोर मनुस्मृति वर्त्तमान महाभारतके बादकी है ५=-५६, वर्त्त-मान पुराण भी बादके हैं ५६, गाथा, इतिहास श्रीर श्राख्यान श्रादि पहले छोटे छोटे थे; ये सब महाभारतमें मिला लिये गये: श्रव महाभारत ही इतिहास है ६०, वेद पहलेके हैं ६०, मुख्य उपनिषद् भी पहलेके हैं ६१-६२, उपवेद श्रौर वेदांग पहलेके हैं, यास्कका उल्लेख ६२-६३, दर्शन, न्याय आदि पहलेके हों, परन्तु सूत्र पहलेके नहीं हैं ६४-६५, नास्तिक मत पहलेका है परन्तु वृहस्पति सूत्र नहीं मिलता ६६, "असत्यमप्रतिष्ठन्ते" आदि स्रोकमें नास्तिकोंका उल्लेख है, बौद्धोंका नहीं ६७-६=, अहिंसा मत पहलेका है ६८-६६, पाञ्चरात्र मत पहलेका है ६६-७०, परन्तु पुराना प्रन्थ नहीं मिलता ७०, प्राशुपत मतकी भी यही वात है ७०, दूसरे अन्तःप्रमाण-गद्य श्रीर पद्य, गद्य उपनिषदोंसे हीन है ७१, महाभारतके श्रनुष्टुम् श्रीर त्रिष्टुम् श्रादि वृत्त और उनके प्रमाण ५१, दीर्घवृत्त पुराने हैं, आर्या छन्द बौद्धों और जैनोंके प्रन्थी-से लिया गया है ७२, अनुष्टुभ् और त्रिष्टुभ् वैदिक वृत्त हैं ७२, व्यासकी वृत्त-रचना नियमके श्रमुसार ठीक नहीं है ७२, यह मत भ्रमपूर्ण है कि दीर्घवृत्त ईसवी सन्के बाद उत्पन्न हुए ७४, महाभारतमें वौद्ध और जैन मतका निर्देश ७५, ज्योतिषका प्रमाण-राशियोंका उल्लेख नहीं है ७५, हाव्किन्सने जो महाभारतका समय ई० सन् ४०० निश्चित किया है वह भ्रमपूर्ण है ७६, दीनारका उल्लेख केवल हरिवंशमें है, हरिवंश सीतिका बनाया नहीं है, वादका है ७६, ताम्रपटका उल्लेख नहीं है ७६, श्राश्वल पन पत्रज्ञलिक बादके हैं ७७, पड्डकोंकी निन्दा ७=, सिकन्दरका आक्रमण देखकर पह भविष्यद्वाणी की गई थी कि कलियुगर्मे शक यवनोंका राज्य होगा, उनका प्रत्यंच

राज्य देखकर नहीं की गई थी ७८, शक यवनोंकी जानकारी पहलेसे ही थी ७८, रोमक शब्दसे रोमका तात्पर्य नहीं है बिल्क बालवाले लोगोंका है ७६, साम्राज्यकी कल्पना यदि श्रशोकके राज्यसे नहीं तो चन्द्रगुप्त या नन्दके राज्यसे हुई होगी ७६, हाष्किन्सके मतका ब्योरा—महाभारतकी चार श्रलग श्रलग सीढ़ियाँ, श्रन्तिम वृद्धि ई० सन् ४०० की है ८०, जब कि डायोन कायसोस्टोमके प्रमाण पर कोई यूरोपियन विद्वान कुछ नहीं कहता तब महाभारतका समय सन ५० से इधर नहीं लाया जा सकता ८०।

तीसरा प्रकरण-क्या भारतीय युद्ध काल्पनिक है-पृ॰ ८१-८८

भारत इतिहास है श्रोर उसीका प्रमाण यथेष्ट है दृ , उझेखके श्रभावका प्रमाण लँगड़ा है दृ , पाएडव सद्गुणोंके उत्कर्षकी कल्पना मात्र नहीं हैं, पाँचों भाइयोंने मिलकर एक ही स्त्रीके साथ विवाह किया, यह कोई सद्गुणकी बात नहीं है दर-दर् , वेबरका यह सिद्धान्त भ्रमपूर्ण है कि युद्ध तो हुश्रा परन्तु पाएडव नहीं हुए दर् , "कपारिचिताः श्रभवन्" का सम्बन्ध युद्धसे नहीं है दर-दर् , जन्मेजयकी ब्रह्महत्याका सम्बन्ध युद्धसे नहीं लगता दर , श्रीकृष्ण पीछेसे नहीं बढ़ाये गये दर-द् , हाप्किन्सका यह मत भ्रमपूर्ण है कि महाभारतका युद्ध भारत-कोरवोंका युद्ध है द् प्-द , "तवैव ता भारत पञ्चनद्यः" वाले स्रोकका श्रर्थ द६ , पाएडवोंकी कथा पीछेसे नहीं बढ़ाई जा सकती, पाएडवोंका कहीं इधर होना दिखाई नहीं पड़ता दर्-द ,

चौथा प्रकरण-भारतीय युद्धका समय-पृ० ८६-१४०

समयके सम्बन्धमें पाँच मत, इनमेंसे सदासे पश्चाङ्गोमें दिया जानेवाला ईसा-से पूर्व सन ३१०१ का समय ही ब्राह्य है ८६, महाभारतमें यह वर्णन है कि भारतीय युद्ध कलियुगके आरम्भमें हुआ ६०, कलियुगका आरम्भ और श्रीकृष्णका समय एक ही है, मेगास्थिनीज़ने श्रीकृष्ण श्रथवा हिराक्लीज़के सम्बन्धमें जो पीढ़ियाँ दी हैं उनके श्राधार पर निश्चित समय ६०-६१, ज्योतिषियोंके द्वारा निश्चित किया हुआ और पीढ़ियों तथा दन्तकथाश्रोंकी सहायतासे निश्चित किया हुत्रा कित्युगके श्रारम्भका समय ६२, यह मत भ्रमपूर्ण है कि आर्यभट्टने ई० सन् पूर्व ४०० गणित करके किल-युगके त्रारम्भका समय दिया है ६२-६३, गणितका ज्ञान होनेसे पहलेका मेगास्थिनीज-का प्रमाण है ६४, प्राचीन कालमें राजाओं की वंशावली लिखी जाती थी ६४, वराह-मिहिरका यह मत भ्रमपूर्ण है कि कलियुग वर्ष ६५३ श्रर्थात् शकपूर्व २५२६ इस युद्धका समय है ६४-६५, वराहमिहिरने गर्गके वचनका गलत श्रर्थ किया ६५, यह मत भ्रमपूर्ण है कि गर्गने २५२६ की संख्या गणित करके सप्तर्षिचारसे निकाली ६५, ऐसा ठीक ठीक श्रङ्क निकालनेके लिए गणितमें कोई साधन नहीं है ६६, यह श्रङ्क उसने वंशावलीसे ही दिया है ८७, पुराणींका यत काल्पनिक है ८६, पुराणोंकी बातें ज्योतिषके विरुद्ध हैं १००, मेगास्थिनीज़ने चन्द्रगुप्ततक १३५ पीढ़ियाँ बतलाई हैं और पुराण केवल ४६ बतलाते हैं, मेगास्थिनीज़ अधिक विश्वसनीय है १००-१०१, महा-भारतमें श्रीकृष्णकी वंशावली १०२, मेगास्थिनीज पर होनेवाला श्राचेप निर्मुल है

१०३, पुरालोंकी सूचनाएँ और पीढ़ियाँ असम्भवनीय हैं १०४, महाभारतसे विरोध १०५-१०६, वैदिक साहित्यका प्रमाण १०६, ऋग्वेदमें देवापीका सुक्त १०७, भारतीय युद्ध ऋग्वेदके लगभग १०० वर्ष बाद हुआ है १०७, ऋग्वेदमेंका "सोमकः साहदेव्य" पाञ्चाल द्वपदका पूर्वज था; इससे भी वहीं समय निश्चित होता है १०७, मेकडानल्ड श्रादिका यह मत है कि भारती युद्ध यजुर्वेदसे पहलेका है; शतपथ ब्राह्मणमें जन्मेजय परीचितका उल्लेख है, इससे भी भारती युद्ध शतपथसे पहलेका निश्चित होता है १०८, भारतमें भी शतपथ ब्राह्मणके भारती-युद्धके बाद रचे जानेका उल्लेख है १०६, "कृत्तिका ठीक पूर्वमें उदय होती है" इस वाकाके आधार पर दी चितने शतपथका समय निश्चित किया है; इससे भी गणितके द्वारा ईसासे पूर्व ३००० का समय हो निश्चित होता है १०६-११२, यह उल्लेख प्रत्यच स्थिति देखकर किया गया है, केवल सारणके आधार पर नहीं है ११२, दूसरे प्राचीन देशोंकी अवस्था देखते हुए यह समय ठीक हो सकता है ११३, पाश्चात्य विद्वानोंने डरते हुए वैदिक साहित्यका जो समय निश्चित किया है वह श्रौर हमने विशेष युक्तिपूर्वक जो समय निश्चित किया है उसका अन्तर हजारोंकी संख्यातक पहुँचता है ११४-११५, वेदाङ्ग ज्योतिषका प्रमाण ११५, जरासन्धका यज्ञ ठीक शतपथमें वतलाया हुआ पुरुषमेध ही था ११६, तीसरा वैदिक प्रमाण— इतके प्रकरणसे सिद्ध होता है कि भारतवर्षमें युद्धके समय चान्द्रवर्ष गणना प्रचलित थी ११७, भीष्मका यह निर्णय ठीक था कि पाएडवोंने चान्द्रवर्षके अनुसार वनवासका समय पूरा किया ११८, हिन्दुस्थानमें चान्द्रवर्ष कब प्रचलित था ११६, दूसरे देशोंके वर्ष ११६, तैतिरीय संहिताके समय चान्द्रवर्ष चलता था श्रौर वेदाङ्ग ज्योतिषके समय वह बन्द हुआ १२०, चान्द्रमासोंके भिन्न भिन्न नाम १२१-१२२, मार्ग शीर्ष आदि महीनीं-के नाम वेदाङ्गमें नहीं हैं; उनका प्रचार ईसासे लगभग दो हजार वर्ष पहले हुआ और उनके प्रचारके उपरान्त चान्द्रवर्ष श्रापसे श्राप बन्द हो गये १२२, टीकाकारने चान्द्र-वर्षकी "वर्धापनादौ" जो व्यवस्था की है वह भ्रमपूर्ण है १२२, पागडवोंने चान्द्रमानसे वनवासकी शर्त्त पूरी की १२२-१२४, त्राश्विनमें जूत्रा हुत्रा श्रीर ज्येष्टमें पाएडव प्रकट हुए, इसी कारण सौर वर्षके मानसे दुर्योधनको शंका हुई, पागडव चान्द्रवर्ष ही मानते थे १२५-१२६, भारतमें बतलाई हुई ग्रहस्थितिके श्राधार पर युद्धका समय निकालनेका प्रयत्न व्यर्थ है १२६, भिन्न भिन्न विरोधी वचन १२७, कूट और विरोधमें-से किसको ठीक माना जाय १२८, युद्धके पहले कार्त्तिककी श्रमावस्याको सूर्य्यब्रहण हुआ था १२८, जयद्रथके वधके दिन सूर्य्यवहण नहीं था १२६, उक्त तीनों समयोंकी कार्त्तिकी श्रमावस्याके स्पष्ट ग्रह १२६-१३०, ईसासे पूर्व सन् ३१०१ की जनवरीमें सूर्य-ब्रह्ण हुआ था १३०, भिन्न भिन्न ब्रहोंके बतलाये हुए दो दो नत्तत्र १३१, गिणतसे निकलनेवाले नज्ञोंके साथ इस ग्रहिश्यतिका मेल नहीं मिलता १३२, प्रायः यह दुश्चिह्न काल्पनिक हैं श्रौर गर्गसंहितासे लिये गये हैं १३२, दो दो नत्तत्र श्रलग श्रलग दृष्टिसे ठीक हो सकते हैं १३२, मोड़कने जो सायन श्रौर निरयण नत्तत्र मानकर युद्धका समय ईसासे पूर्व सन् ५००० दिया है वह भ्रमपूर्ण है १३२-१३३, पहले लोग सायन श्रौर निरयणका भेद ही नहीं जानते थे, पहले नत्तत्र कृत्तिकादि थे, बिना भेदचिह दिखलाये दो दो नदात्रोंका उल्लेख नहीं हो सकता १३३-१३४, वेधोंके द्वारा भिन्न

ब्रहस्थितिकी उपपत्ति श्रीर सर्वतीभद्र चक्र १३४-१३६, महाभारतमें दूसरी ब्रह-स्थितियोंका उल्लेख १३७-१३=, महाभारतके प्रायः संख्या-विषयक श्लोक गृढ़ या क्ट हैं १३६, सारांश यह कि भारती युद्धका समय ईसासे पूर्व सन् ३१०१ हैं १४०,

पाँचवाँ प्रकरण - इतिहास किन लोगोंका है-पृ० १४१-१६७

अग्वेदके भरत भारतके भरतसे भिन्न हैं, दुष्यन्त-पुत्र भरतका नाम भारत-वर्षमें नहीं है, हिन्दुस्तानको भारतवर्ष नाम देनेवाला खायंभुव मनुका वंशज भरत दूसरा है १४१, ऋग्वेदके भरत सूर्य्यवंशी चत्रिय हैं, उनके ऋषि वशिष्ठ, विश्वामित्र श्रीर भरद्वाज हैं १४१-१४२, महाभारतमें भी यह उल्लेख है १४२, ऋग्वेदमें ययाति-पुत्र यदु, तुर्वश, श्रनु, दुह्य श्रौर कुरुका उल्लेख है १४३, ऋग्वेदका दाशराज्ञ युद्ध भारती युद्ध नहीं है १४३, चन्द्रवंशी श्रार्य श्रार्योंकी दूसरी टोलीके थे, सेन्सस रिपोर्ट-का श्रवतरण श्रीर भाषाभेद १४४, ऋग्वेदमें पुरुका उल्लेख १४५, ऋग्वेद श्रीर महा-भारतमें यदु १४५-१४६, ऋग्वेद श्रीर महाभारतमें पाञ्चाल, सोमक श्रीर सहदेव १४६, अनु श्रीर दुह्य १४७, ययातिके चार पुत्रोंको श्राप १४८, सूर्यवंश श्रीर चन्द्रवंश १४=, ब्राह्मणुकाल ब्रोर महाभारतकालमें चन्द्रवंशियोंका उत्कर्ष १४=-१४६, उनके राज्य १४६, पाग्डव अन्तिम चन्द्रवंशी शाखाके हैं १४६-१५०, नागलोग भारतवर्षके मुलनिवासी थे १५१, उनका सक्रप प्रत्यद्य नागोंका सा नहीं था १५२, नाग श्रीर सर्प दो भिन्न जातियाँ १५२, युद्धमें विरोधी दलके लोग १५३-१५४, हिन्दुस्तानमें श्रार्य हैं, वेद महाभारत श्रौर मनुस्मृतिका प्रमाण १५४-१५६, शीर्षमापन शास्त्रका प्रमाण १५६-१५६, युक्तप्रदेशके वर्तमान मिश्र आर्य, १५६-१६१, मराठे मिश्र आर्य हैं, शक नहीं १६१, राच्तस १६२, पाएड्य १६३, संसप्तक १६४, गए श्रादि पहाड़ी जातियाँ १६४-१६५, भारतीय त्रायौंका शारीरिक स्वरूप १६५-१६६, वर्ण १६६-१६७, त्रायु १६८,

छठा प्रकरण - वर्णव्यवस्था, आश्रमव्यवस्था और शिचा।

(१) वर्णव्यवस्था-पृ० १६९-१९९

वर्णका लक्षण १६६, वर्णव्यवस्था पुरानी है १७०, ब्राह्मण श्रीर चित्रय १७१-१७२, वैश्य श्रीर शद्ध १७३, शद्धोंके कारण वर्णोंकी उत्पत्ति १७४-१७७, वर्णसंकरताका डर १७७, वर्णके सम्बन्धमें युधिष्ठिर नहुषसंवाद १७८-१७६, भारती श्रायोंकी नीति-मत्ता १८०-१८१ ब्राह्मणोंकी श्रेष्ठता १८१-१८२, चातुर्वर्णकी ऐतिहासिक उत्पत्ति १८२-१८४, महा-भारतका सिद्धान्त १८४-१८५, विवाहवन्धन १८५-१८७, पेशेका वन्धन १८०, ब्राह्मणोंके व्यवसाय १८०-१६०, च्रित्रोंके काम १६२, श्रद्धोंके काम १६३, संकर जातिके व्यवसाय १८३-१६६, चातुर्वर्ण्य श्रीर म्लेच्छ १६६, वाह्मीक देश-की गड़बड़ी १६६, सारांश १६७-१६८

(२) आश्रय-व्यवस्था—१९९-२०७

आश्रमकी उत्पत्ति, वर्णन और अस्तित्व १६६-२०२, संन्यास किसके लिए विद्यित है २०२-२०४, संन्यास धर्म २०४-२०६, गृहस्थाश्रमका गौरव २०६-२०७

(३) शिक्षापद्धति—पृ० २०७-२१७

ब्राह्मणोंने शिक्ताका काम श्रपने जिम्मे लिया २०७, गुरुके घरमें शिक्ता २०=-२१०, बड़े बड़े विश्वविद्यालय नहीं थे २११, शिक्ताका क्रम २११-२१२, घर पर रखे जानेवाले शिक्तक श्रान्वार्य २१२, व्यवसायकी शिक्ता २१३, स्त्रीशिक्ता २१५-२१७

सातवाँ प्रकरण-विवाह-संस्था-ए० २१८-२४५

श्रानियंत्रित स्थितिमें विवाह मर्यादाकी स्थापना २१६, नियोग २१८–२१६, पातिवत्यकी उदात्त कल्पना २१६–२२०, पुर्नविवाहकी रोक २२०–२२१, प्रौढ़-विवाह २२२–
२२३, मनुस्मृतिके विरोधी-वचन २२३–२२४, पति-पत्नि समागम २२५–२२६, कन्यात्वतूषण २२६–२२७, स्त्रियोंके लिए विवाहकी श्रावश्यकता २२७, श्रानेक पत्नीविवाह
२२७–२२८, श्रीकृष्णकी श्रानेक स्त्रियाँ २२६, पाएडवोंकी श्रान्य स्त्रियाँ २२६–२२६, एक
स्त्रीका श्रानेक पति करना २२६–२३०, विवाहके भेद २३०, ब्राह्मण, त्तात्र श्रीर गन्धर्व
२३१–२३२, श्राह्मर २३२–२३३, रात्तस २३३–२३४, ब्राह्ममें परिवर्तन २३४, सप्तपदी,
पाणित्रहण श्रीर होम २३४–२३५, विवाहके श्रान्य वन्धन २३५, श्र्रद्रास्त्री २३५–२३६,
सिहावलोकन २३६–२३७, पतिपत्नीका सम्बन्ध २३७–२३६ पतिव्रता धर्म २३६–२३६,
पतिपत्नीका श्रभेद सम्बन्ध २३६, द्रौपदीके वस्त्रहरणके समय भीष्मका चुप रहना
२३६–२४०, पातिव्रत्यके सम्बन्धमें श्रीक लोगोंके प्रतिकृत्न मत २४१–२४२, सतीकी
प्रथा २४२, परदेका रवाज २४३–२४४, दूसरे बन्धन प्रवर २४४, मामाकी वेटीके साथ
विवाह २४४, परिवेदन २४५

अाठवाँ प्रकरण सामाजिक परिस्थिति - पृ० २४६ - २६३

(१) अन्न-पृ० २४६-२६२

प्राचीन कालमें मांसान्न-भन्नण २४६, मांसान्नत्याग २४७, नकुलका श्राख्यान २४८, गोहत्याका पातक २४६, नहुष-संवाद २५१, गोहत्या निषेध जैनोंसे पहलेका, श्रीकृष्ण-की भक्तिके कारण है २५१, यन श्रौर मृगयाकी हिंसा २५१, वर्जावर्ज मांस २५२, मांस-भन्नणकी निन्दा २५३, मद्यपान निषेध २५५, विश्वामित्र-चाएडाल संवाद २५६, मद्यपानत्याग २५७, सारखतोंका मतस्य-भन्नण २५८, धान्य चावल, गेहूँ श्रादि २५८, गोरसका महत्त्व २५६, भोजनके समय मौन २६०, भोजनके पदार्थ २६०, भोजनके नियम २६१

(२) वस्त्र-भूषण--पृ० २६२-२७७

पुरुषोंका पहनावा २६३, अन्तरीय, उत्तरीय, उष्णीष २६३-२६४, सिलाईके कामका अभाव २६४, स्त्रियोंका पहनावा २६४, स्त्रियोंकी वेणी २६६-२६८, पुरुषोंकी पगड़ी २६८, स्त्री, रेशमी और ऊंनी वस्त्र २६८, वहकल २६८, पादत्राण २७१, पुरुषोंकी शिखा २७१, पोशाककी सादगी २७३, अलंकार २७४, आसन २७६

(३) रोति रवाज - पृ० २७७-२९३

वेशस्त्रियाँ २७७-२ १८, दूत २७८, बिलकुल शुद्ध श्राचरण २७६, स्पष्टोक्ति २८६, बड़ोंका श्रादर २७६, भीष्मकी पितृभक्ति २८०, श्राविभाव २८१, उद्योगशीलता २६२,

चोरीका श्रभाव २८३, शीलका महत्त्व २८४, रण श्रथवा वनमें देह-त्याग २८५, शव-संस्कार २८६, वाहन २८७, शिकार २८८, गाथा २८६, परदा २८६, वाग-वगीचे २६०, विशेष रीतियाँ २६१, वन्दन श्रौर कर-स्पर्श २८१, उत्तम श्राचरण २८१-२६३

नवाँ प्रकरण--राजकीय परिस्थिति-पृ० २६४-३४४

भारतीय श्रीर पाश्चात्य स्थितिका बहुत बड़ा श्रन्तर २६४, छोटे छोटे राज्य २६४, राजसत्ता २६६, प्राचीन साम्राज्य कल्पना २६६, महाभारतकालीन साम्राज्य श्रीर राजसत्ता ३०१, राजसत्ताका नियमों से नियन्त्रण ३०२, राजा श्रीर प्रजामें करारकी कल्पना ३०३, श्रराजकताके दुष्परिणाम ३०४, राजाका देवता-स्वरूप २०५, द्रगड स्वरूप ३०६, वृहस्पित नीतिका विषय ३०६–३०८, राज-दरवार ३०८, राजाका व्यवहार ३०८–३१०, नोकरोंका व्यवहार ३११, श्रिष्टिकारी ३१२, श्रन्तःपुर ३१४, राजाकी दिनचर्या ३१६, मुल्की काम-काज ३१७, कर ३१८–३२०, जमीनका स्वामित्व श्रीर पैमाइश ३२१, वेगार ३२२, जंगल श्रीर श्रावकारी ३२३, स्वर्चके मद ३२३, ग्राम-संस्था, पंगुश्रोंका भरण, श्रग्रहार ३२५, जमा सर्च विभाग श्रीर सिक्के ३२६, न्याय-विभाग ३२७–३३३, परराज्य सम्बन्ध ३३३–३३६, कुटिल राजनीति ३३१–३३६, प्राचीन स्वराज्यप्रेम ३३६–३४०, भीष्मका राजकीय श्राचार ३४०–३४२, उद्धर्षण-विदुला-संवाद ३४२–३४४,

दसवाँ प्रकरण - सेना और युद्ध-ए० ३४५-३६७

धार्मिक युद्ध ३४५, चतुरिक्षणी सेना ३४५, वेतन, ट्रान्सपोर्ट और स्काउट ३४६, पेदल और घोड़सवार ३४७, हाथी ३४८-३४६, रथी और धनुष्य-वाण ३४६, धनुष्यका व्यसङ्ग ३५०, शस्त्र ३५१, सिकन्दरके समयका रथयुद्ध ३५२-३५५, रथ वर्णन ३५४-३५४, रथवर्णन ३५४-३५६, रथके दो पहिए ३५६, रथियोंका द्वन्द्व युद्ध ३६०-३६२, विमानोंसे आक्रमण ३६२, व्युह्द ३६३-३६६, युद्धकी दूसरी वार्ते ३६६, अन्तौहिणी-संख्या ३६६,

ग्यारहवाँ प्रकरण-व्यवहार और वद्योगधन्धे - पृ॰ ३६८-३८१

वार्त्ताशास्त्र ३६८, खेती और बागीचे ३६८, 'गोरत्ता ३६८, रेशमी, स्ती और अनी कपड़े ३७०, कारीगरोंको सहायता ३७२, रंग ३७२, सब धातुश्रोंका ज्ञान ३७३, रत्न ३७५, वास्तुविद्या ३७५, गुधिष्ठिर-सभा ३७६, व्यापार ३७७, गुलामोंका श्रभाव ३७८, दास-शूद्र ३८०, संघ ३८१, तौल और नाप ३८१।

बारहवाँ प्रकरण - भौगोलिक ज्ञान-पृ० ३८२-४१२

जम्बूद्धीपके वर्ष ३=२, जम्बूवृत्त और मेरु ३=३, अन्य द्वीप ३=४, जम्बूद्धीपके देश ३=७, चीन आर हुण ३=७, सम्पूर्ण हिन्दुस्थानका ज्ञान ३==, सात कुलपर्वत ३६०, हिन्दुस्थानके लोग ३६१, पूर्व ओरके देश ३६१, दित्तिण ओरके देश ३६३, महाराष्ट्र ३६५, गुजरात ३६५, अपरान्त-परशुराम-चेत्र ३६६, दिवड़ ३६७, पश्चिम ओरके लोग ३६६, निदयाँ ४०१, महाभारतकालीन तीर्थ ४०३, पुष्कर और कुरुचेत्र ४०७, सरस्वती ४००,

नगर ४०६, श्रायांवर्त्तके लोगोंकी सूची ४१०, दक्षिण देशके लोगोंकी सूची ४११, उत्तर श्रोरके म्लेच्छ ४११, निदयोंकी सूची ४१२।

तेरहवाँ प्रकरण - ज्योतिर्विषयक ज्ञान-ए० ४१४-४३१

२० नत्तत्र ४६४, कृत्तिकादि गणना ४१५, चन्द्रसूर्यकी नत्त्रत्रीमंसे गित ४१६, श्रिधिक मास ४१६, कालविभाग ४१७, पृष्टय और अठवाड़ेका अभाव ४१८, दिनोंके नत्त्रत्र ४१८, तिथि ४१६, अमान्त और पौर्णिमान्त मास ४१६, त्त्रयतिथि और मास ४२०, ऋतु ४२२, उत्तरायण ४२३, चतुर्युग ४२४, युगमान ४२५, कल्प ४२७, मन्वन्तर ४२०, ग्रह ४२८, राहु ४२६, आकाशका निरीक्षण ४३०, ज्योतियेत्र ४३१, जातक ४३१।

चौदहवाँ प्रकरण-साहित्य और शास्त्र - ए० ४३२-४४५

बोलनेकी भाषा ४३२, संस्कृत भाषा अच्छे लोगोंकी थी ४३२, प्राकृतका उल्लेख नहीं है ४३३, वैदिक साहित्य ४३४, शतपथ रचना कथा ४३५, वेदशाखा ४३६, पाणिनि-शाकल्य ४३६, गर्गवराह ४३०, निरुक्त ४३८, इतिहासपुराण ४३६, वायुपुराण ४४०, न्यायशास्त्र ४४०, वक्तृत्वशास्त्र ४४१, धर्मशास्त्र ४४१, राजनीति ४४२, गणित आदि दूसरे विषय ४४३, जंभक ४४५, ललित साहित्य ४४५।

पन्द्रहवाँ प्रकरण - धर्म-- पृ० ४४६-४७४

वैदिक धर्म ४४६, वैदिक आहिक, संध्या, होम ४४७, मूर्तिपूजा ४४५, तेतिस देवता ४५० शिव और विष्णु ४५१, शिवविष्णु-भक्ति-विरोधपरिहार ४५२, दत्तात्रेय ४५३, स्कन्द ४५३, दुर्गा ४५४, आद्ध ४५५, आलोकदान और विलदान ४५६, दान ४५०, उपवासतिथि ४५६, जप ४६०, अहिंसा ४६०, आश्रमधर्म ४६२, शतिथिपूजन ४६२, साधारण-धर्म ४६३, आचार ४६३, स्वर्गनरक कल्पना ४६६, अन्य लोक ४६७, स्वर्गके गुण्दोष ४६६, प्रायश्चित्त ४७०, प्रायश्चित्तके प्रकार ४७१, पापके अपवाद ४७२, संस्कार ४७२, अशौच ४७३।

सोलहवाँ प्रकरण-तत्त्वज्ञान-पृ० ४७५-५१६

महाभारतका तत्वज्ञान विषयक महत्व ४५५, पंचमहाभूत ४५६, पंचेन्द्रियाँ ४९५, जीवकल्पना ४५६, जीव अथवा आत्मा अमर है ४६०, आत्मा एक है अथवा अनेक ४६१, प्रमाण्यक्ष ४६२, परमेश्वर ४६२, सृष्टि ४८६, सांख्यके २४ तत्व ४६५, समह तत्व ४८७, पुरुषोत्तम ४६६, सृष्टि क्यों उत्पन्न हुई ४८६, त्रिगुण ४६१, प्राण ४६३, इन्द्रियज्ञान ४६४, आत्माका खक्ष्प ४६६, जीवका दुःखित्व ४६७, वासनानिरोध और योगसाधन ४६६, ध्यान और साज्ञात्कार ४६६, कर्मसिद्धान्त ५००, आत्माकी आयाति और निर्याति ५००, पुनर्जन्म ५०२, लिङ्गदेह ५०३, देवयान और पितृयाण ५०५, अधोगति ५०६, संस्तिसे मुक्ति ५०६, परव्रह्मस्क्ष्प ५०७, मोज्ञ ५१०, वैराग्य और संसारत्याग ५१०, कर्मयोग ५११, धर्मके दो मार्ग ५१३, धर्माचरण मोज्ञपद है ५१३, धर्माधर्म निर्णय ५१४, धर्मके अप ११६, नीति तर्कसे भी ठीक है ५१५।

सत्रहवाँ प्रकरण-भिन्न मतोंका इतिहास-५१७-५५८

भिन्न मतोंके पाँच मार्ग ५१७, (१) सांख्य सांख्य मत ५१७, कपिल ५१७, सांख्यके मूल भूत मत ५१८, भगवद्गीतामें सांख्यके तत्व ५२०, सांख्यके मूल १७ तत्व ५२१, सांख्यके आचार्य ५२१,३१ गुण ५२२, भगवद्गीताकी प्रकृति और पुरुष ५२२, सांख्यके मत ५२२, सांख्य और संन्यास ५२३,

(२) योग—मृल तत्त्व ५२४, मुख्य लक्षण ५२५, योग सिद्धि और धारणा ५२६, योगका २६वाँ तत्त्व परमात्मा है ५२७, योग स्त्रियों और ग्रदों के लिए साध्य है ५२८, योगका मोच कैवल्य है ५२८, बुद्ध और बुद्ध्यमान आत्मा ५२६, योगियोंका

ग्रन्न ५३०,

(३) वेदान्त—ग्रर्थ ५३०, मूल ग्राचार्य ग्रपान्तरतमा ५३१, ग्रधिदेव, ग्रध्यातम ग्रादि भगवद्गीताकी व्याख्या ५३१, भगवद्गीतामें विस्तार, चेत्रचेत्रज्ञ-विभाग, भक्ति, त्रिगुण ५३२, कर्मयोग ५३५, भीष्मस्तवका स्वरूप ५३५, सनत्सुजातीयका मौन ५३६, शान्ति पर्वमें भिन्न भिन्न वेदान्तके श्राख्यान ५३०, संन्यासकी श्रावश्यकता ५३६, श्रातमाके भिन्न भिन्न वर्ण ५४०, भिन्न भिन्न लोक ५४१, ब्रह्मलोक श्रीर ब्रह्मभाव ५४१,

(४) पांचरात्र—भागवत धर्मसे भिन्न है ५४२, नारायणीय आख्यानमें प्रतिपादन-चितशिखणडीका एक लाखवाला पांचरात्र प्रन्थ लुप्त हो गया ५४३, श्वेतद्वीप और नारायणके दर्शन ५४४, चतुर्व्यूह गीताके वादके हैं ५४५, सात्वत लोगोंमें उत्पन्न ५४५, पहलेके दशावतार और थे ५४६, महोपनिषत् और आचार्यपरम्परा ५४७, विष्णुके नामकी व्युत्पत्ति ५४७, हयशिरा अवतार ५४=, आत्मगति ५४६, ब्रह्मदेवका स्रातवाँ जन्म ५५०, योग और वेदान्तमें अभेद ५५२,

(५) पाशुपत मत-रुद्रकी ब्रह्मसे एकता ५५३, दल्ञस्तव त्राख्यान ५५४, पशुका त्रर्थ सृष्टि ५५४, शंकरका स्वरूप ५५५, कैलास ५५५, तप ५५६, उपदेश परम्परा ५५६, वर्णाश्रमको छोड़कर ५५६, सब मतोंका सामान्य त्राचार, गुरु, ब्रह्मचर्य, श्रहिंसा

५५७, नीतिका श्राचरण ५५६,

अठारहवाँ प्रकरण-भगवद्गीता विचार-५५६-६०३

भगवद्गीता सौतिकी नहीं है ५५६, गीतामें प्रतिप्त नहीं है ५६१, वह मूल भारतकी है ५६४, श्रप्रासंगिक नहीं है ५६५, गीतामें श्रीकृष्णके मतका प्रतिपादन है ५६७, श्रीकृष्ण एक है, तीन नहीं ५६८, गीता दशोपनिषदोंके बादकी श्रोर वेदांगके पहलेकी है ५७१, सहस्रयुग करण ५७१, चत्वारों मन्वः वैदिक ५७२, मूल वैदिक सप्तर्षि ५७५, मासानां मार्गशीषोंहंका काल ५७६, वसन्तादि गणना ५७७, व्याकरण विषयक उल्लेख ५८०, गीताकी भाषा ५८१, पाणिनिसे पहलेकी ५८३, भाषाका बदलना ५८३, गीताके समयकी परिस्थिति ५८५, राष्ट्रकी उच्च नीच गित ५८४, प्रवृत्तिनिवृत्तिका उचित उथयोग ५८५, भारती युद्धके समयकी सामाजिक स्थिति ५८६, निवृत्तिका निरोध ५८६, वैदिक श्रायोंका स्थाव ५८७, संसारमें प्रवृत्ति श्रोर निवृत्तिका श्रार ग्रीक श्रोर ईसाई प्रवृत्ति श्रोर निवृत्ति ५८८, मारतवर्षकी प्रवृत्ति श्रोर निवृत्तिका इतिहास-यह श्रोर तप ५८६, संन्यास श्रोर कर्मयोग प्रवृत्ति श्रोर निवृत्तिका इतिहास-यह श्रोर तप ५८६, संन्यास श्रोर कर्मयोग

48१, भक्ति नवीन मोत्त मार्ग ४६२, कर्म योगका सिद्धान्त ४४४, फलासक्तिका त्याग ४६५ ईश्वरार्पण बुद्धि ४६६, श्रिहिंसा मत ५६७, श्रीहण्णका आचरण ५६७, गोपियोंकी केवल भक्ति ५६=, श्रीकृष्णके आचरणको कपटी समभना भ्रमपूर्ण है ५६६, सामान्य नीतिके अपवादक प्रसंग ५६६, ऐतिहासिक उदाहरण जनरल बुल्फ ६००, द्रोणवधके समय भूठ बोलना त्तम्य है ६०१, सद्गुणों का अतिरेक सदोष ६०१, भीष्मवध प्रसंग ६०१, श्रीकृष्णका दिव्य उपदेश ६०२, विषय-सूची ६०५-६१४।



का आल्होबर पट, होता और देखाई वर्षाय और तिवरित पट

THE ARCHORD SHE WITH



महाभारतमीमांसा



नारायणं नमस्कृत्य नरंचैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

श्रर्थ—नारायणको अर्थात् श्रीकृष्णको तथा नरामें श्रेष्ठ जो नर, श्रर्थात् श्रर्जुन, उसको नमस्कार करके श्रीर सरस्वती देवीको भी नमस्कार करके श्रनन्तर जय नामक ग्रन्थको श्रर्थात् महाभारतको पढ़ना चाहिये।

प्रस्ताव।

भारतवर्षके प्राचीन प्रन्थोंमें वेदोंके उपरान्त ऐतिहासिक दृष्टिसे महाभारत-का महत्त्व बहुत श्रिधक है। बिल्क वेद तो प्राचीन श्रार्थ भाषामें हैं श्रीर उनका बहुतसा श्रंश यहांके श्रनेक वर्णनों श्रीर वैदिक देवताश्रोंकी स्तृतियोंसे भरा हुश्रा है, इसिलये वैदिक साहित्यमेंसे ऐतिहासिक श्रुमान श्रस्पष्ट श्रीर कम ही निकल सकते हैं; परन्तु महाभारत श्रन्थ लोकिक

संस्कृत भाषामें और बहुत कुछ सुगम है। उसमें प्राचीन कालकी अनेक ऐतिहासिक कथाएँ एक ही स्थानमें प्रथित की गई हैं।प्राचीन कालमें अध्यमेध श्रादि जो दोर्घ-सत्र श्रथवा बहुत दिनोतक चलनेवाले यज्ञ हुआ करते थे उन यज्ञोंमें अवकाशके समय बहुतसी ऐतिहासिक गाथाएँ अथवा श्राख्यान कहने श्रथवा पढ़नेकी प्रथा थी। ऐसे अवसरों पर पढ़े जानेवाले अनेक पेतिहासिक श्राख्यान महाभारतमें एकत्र किये गये हैं। इसके अतिरिक्त महाभारत-में खान खान पर धर्मा, तत्त्वज्ञान, व्यव-हार, राजनीति श्रादि बातोंके सम्बन्धमें इतना विस्तृत विवेचन किया गया है कि वह धर्म-ग्रन्थ प्रथवा राजनीति-ग्रन्थ ही वन गया है। तात्पर्यं, महाभारतकी प्रशंसामें श्रारम्भमें जो यह कहा गया है-

धर्मी चार्थे च कामे च मोदो च पुरुवर्षम। यदिहास्ति तद्न्यत्र यम्नेहास्ति न तत्कचित्॥ यह बिलकुल ठीक है। प्राचीन कालका सारा संस्कृत साहित्य बहुत कुछ महा-भारतके ही श्राधारपर है। सारांश यह कि इस ग्रन्थसे हमें प्राचीन कालके भारत-की परिस्थितिके सम्बन्धमें विश्वसनीय श्रीर विस्तृत प्रमाणोंके श्राधारपर अनेक पेतिहासिक बातोंका पता चलता है। प्राच्य श्रीर पाश्चात्य दोनों विद्वानोंने इसी दृष्टिसे महाभारतका श्रध्ययन करके श्रपने श्रपने ग्रन्थोंमें उसके सम्बन्धमें श्रपने अपने मत अथवा सिद्धान्त प्रकट किये हैं । वेबर, मेकडानल्ड, हाफमैन आदि अनेक पाश्चात्य विद्वानोंने ऐतिहासिक दृष्टि-से इस प्रनथका बहुत श्रच्छा परिशीलन किया है। इसी प्रकार लोकमान्य तिलक. दीतित, ऐय्यर श्रादि अनेक प्राच्य विद्वानीं-ने भी ऐतिहासिक दृष्टिसे इस प्रनथका श्रध्ययन किया है। प्रत्येक भारतीय श्रार्थ्य इस प्रनथपर बहुत अधिक श्रद्धा रखता है। श्रतः लोगोंके मनमें यह जिज्ञासा उत्पन्न होना बहुत ही सहज और खाभाविक है कि इस प्रनथसे कौन कौनसे ऐतिहासिक श्रनुमान किये जा सकते हैं। प्राच्य श्रीर पाश्चात्य परीचाकी दृष्टिमें अन्तर पडना स्वाभाविक ही है। तथापि जैसा कि इस प्रनथके मराठी भाषान्तरके श्रारम्भमें उपो-दातमें उन सबका विचार करके दिखलाया गया है, हमें इस अन्थमें महाभारतका ऐति-हासिक दृष्टिसे सांगोपांग विचार करना है। भारतवर्षकी प्राचीन परिखितिके जिस सक्पका यहाँ विचार किया जानेको है उस खरूपका स्पष्टीकरण उस उपोद्धातमें किया जा चुका है। इस महाभारत-मीमांसा प्रनथमें पाठकोंके सामने जो वातें रक्जी जायँगी वे संदोपमं इस प्रकार हैं। (१) महाभारत ग्रन्थ किसने लिखा और

उसमें किस प्रकार वृद्धि हुई। (२) इस प्रन्थमें दिये हुए तथा बाहरी प्रमाणींसे इसका कौनसा समय निश्चित होता है। (३) इस प्रन्थमें जिस भारतीय युद्धका वर्णन है वह काल्पनिक है या ऐतिहासिक श्रीर (४) यदि वह युद्ध ऐतिहासिक है तो वह किस समय और किसमें किसमें हुआ। इस प्रकार इस प्रनथके सम्बन्धसे श्रीर इस प्रन्थमें वर्णित प्राचीन भारती युद्धके सम्बन्धसे मुख्यतः ये चार वाते श्रापके सामने रक्खी जाती हैं। प्राच्य ग्रीर पाश्चात्य विद्वानोंने विस्तृत रीतिसे इन सव वातोंका विचार किया है। श्रतः श्राप लोगोंको यह भी देखना चाहिए कि वे पाश्चात्य विचार ब्राह्य हैं अथवा अब्राह्य। इसके श्रतिरिक्त इस श्रन्थसे प्राचीन काल-की स्थितिके सम्बन्धमें और जो अनेक प्रकारकी सूचनाएँ श्राप लोगोंको मिल सकती हैं उनसे भी श्राप लोग श्रीर बहुत-सी बातें निकाल सकते हैं। भूगोल, ज्योतिष, सेना और युद्ध, वर्णाश्रमविभाग, रीति-रवाज और आचार, शिक्षा, श्रम्न, वस्य, भूषण श्रादिके सम्बन्धकी बहुतसी बातें यहाँ बतलाई जायँगी। इनके अति-रिक्त राजधर्म, व्यवहार, नीति और मोत्त-धर्माके सम्बन्धमें प्राचीन भारतीय आयोंने जो सदाठीक उतरनेवाले श्रर्थात त्रिकाला-बाधित अप्रतिम सिद्धान्त स्थिर किये थे वे सब इस लोकोत्तर ग्रन्थमं ग्रथित किये गये हैं: आप लोगोंको इन सब भिन्न भिन्न विषयोंका भी परिचय कराया जायगा। तात्पर्थ्य यह कि उस मराठी उपोद्धातमें जिन श्रनेक मुख्य मुख्य वातोंका वर्णन है उन सब-का विवेचन इस महाभारत-मीमांसा ग्रन्थमें पाठकोंके सामने उपस्थित किया जायगा।

महाभारतमें जिन परिस्थितियोंका वर्णन है उनके अनुसार एक और तो महाभारत अन्य वैदिक साहित्यतक जा पहुँचता है

इंड्रेजिस

श्रीर दूसरी श्रोर श्रवीचीन कालके बौद्ध श्रीर जैन सन्धों तथा सीक लोगोंके पाचीन इतिहास-ग्रन्थोंसे त्रा मिलता है। अतः उक्त विवेचन करते समय हमें जिस प्रकार वैदिक साहित्यका आधार लेना पड़ेगा उसी प्रकार वोद्ध ह्योर जैन प्रन्थोंकी श्रीर विशेषतः श्रीक लोगोंके श्रन्थोंकी बातोंके साथ उसका मेल मिलाना पड़ेगा। आगेके विवेचनमें हमने ऐसा ही प्रयत्न किया है। वास्तवमें महाभारत ग्रन्थका काल बहुत विस्तृत है; इसलिये भिन्न भिन्न समयकी परिस्थितिका वर्णन करते हुए हमें "महाभारत-काल" के अर्थमें कुछ भेद करना पड़ा है। "महा-भारत-काल" से हमने महाभारतके अन्तिम खरूपके समयका अर्थात साधारणतः सिकन्दरके समकालीन श्रीक लोगोंके समयका अर्थ लिया है। श्रीर "महाभारत युद्ध-कालु" शब्दका प्रयोग हमने महाभारती कालके प्रारम्भके समयके सम्बन्धमें किया है। श्रीर समस्त महाभारत-कालके सम्बन्ध में सामान्यतः "भारती-काल" शब्दका प्रयोग किया है। श्रस्तु, मुख्य विषयपर विचार करने से पहले महाभारतके विस्तारः के सम्बन्धमें एक कोष्ठक दे देना बहुत त्रावश्यक है। वह कोष्ठक इस प्रकार है:--

श्रनुक्रमणिकाध्यायमें कहे श्रनुसार		गोपाल नारा० प्र० के अनु०		गगापत कृष्ण० प्र० के अनु०		कुंभकीएम् प्र० के अनु०		
पर्व.	अ०	श्रोक,	ग्र०	स्रोक.	双。	श्लोक.	刻の	स्रोक.
१ त्रादिपर्व	२२७	2228	२३४	3832	२३४	=४६६	२६०	23308
२ सभापर्व	उट	२५११	द१	२७१२	E ?	२७०८	१०३	8300
३ वनपर्व	३६६	११६६४	३१५	83803	३१५	११⊏५४	३१५	१४०८१
४ विरादपर्व	६७	२०५०	७२	२२७२	७३	२३२७	30	उपजप
पू उद्योगपर्व	१=६	६६६=	१६६	हप्रपृष्ट	१८६	६६१⊏	१६६	६७५२
६ भोष्मपर्व	११७	तट्ट	१२२	3332	१२२	प्रदश्ज	१२२	480=
७ द्रोगपर्व	230	303=	२०२	हपूज्य	२०२	इत्र हड	२०३	१०१२७
= कर्णपर्व	इह	8528	33	85.58	६६	85=0	१०१	85=६
६ शल्यपर्व	3.4	३२२०	६५	३६१⊏	ह्यू	३६०८	६६	. इतदृष्ठ
१० सौक्तिकपर्व	१⊏	E30	१=	⊏ 03	१=	E \$0	-१⊑	=१५
११ स्त्रीपर्व	२७	yee	२७	= २५	२७	=२६	२७	200
१२ शांतिपर्व	३२६	१४७३२	३६५	१४६३८	३६६	१३७३२	इंड्य	रपूर्पइ
१३ श्रनुशासनपर्व	१४६	2000	१६=	3,६३७	१६६	७⊏३६	२७४	१०६=३
१४ आश्वमेधिपर्व	१०३	३३२०	83	२७३६	83	२८५२	११८	अग्र 83
१५ आश्रमवासिपर्व	82	११११	3,5	१०८८	38	१०८५	. 88	308=
१६ मौसलपर्व	=	३२०	E	२८७	=	२⊏७	3	300
१७ महाप्रस्थानपर्व	. 3	१२३	3	११०	3	308	3	888
१८ स्वर्गारोहणपर्व	l ų	२०६	६	320	६	300	६	३३७
कुल १६ हरिनंश	१६२३	₹ ₹₹	२१० <u>६</u> २६३	=३५२५ १५४≡५	२१११	⊏३⊏२६ १२०००	२३१५	इंट्रेड्ड

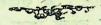
हत इंड

हमने महाभारतके अनुक्रमणिका-अध्याय (श्रादिपर्व अध्याय २) में जो श्रध्याय-संख्या श्रीर क्षोक-संख्या पर्वक्रम-से दी है वही इस कोष्ठकमें पहले दी गई है। इसके उपरान्त जिस प्रतिका मराठी-भाषान्तर पाठकोंके सामने रखा गया है उसमेंके प्रत्यत्त अध्यायों श्रीर श्लोकोंकी संख्या पर्वक्रमसे दी गई है। इसके उप-रान्त श्रागेके खानों में गणपत कृष्णजीके पुराने छापेखानेमें छपी हुई प्रतिकी स्रोक-संख्या जो हमें एक जगह मिल गई है, दी गई है। इसके अतिरिक्त अभी हालमें मदरासकी श्रोर क्रम्भकोणमूमें एक प्रति छपकर प्रकाशित हुई है। पर्वक्रमसे उसके अध्यायों और स्होकोंकी संख्या भी हमने पाठकोंकी जानकारीके लिये ठीक करके दे दी है। इन सबसे पाठकोंको भिन्न भिन्न प्रतियोंकी तुलना करनेमें सुगमता होगी। इस कोष्ठकसे पाठक लोग सहजमें समभ लेंगे कि महा-भारतमें दी हुई श्लोक-संख्याकी श्रपेद्या मद्रासवाली प्रतिमें बहुत अधिक स्रोक हैं। परन्तु बम्बईवाली दोनों प्रतियोंमें वह बात नहीं है। उनकी श्लोक-संख्या प्रायः समान ही है और महाभारतमें दी हुई श्लोक-संख्यासे मिलती है। कुम्भकोणम्की प्रतिमें जो अध्याय सन्दिग्ध मानकर छोटे टाइपोंमें दिये गये हैं, उन्हें हमने उक्त कोष्ठककी गिनतीमें नहीं लिया है। तौ भी प्रत्येक पर्वमें प्रायः हज़ार दो हज़ार श्लोक बढ़ गये हैं; श्रीरयदि महाभारतमें कहे श्रनु-सार हरिवंशके १२००० स्रोक उसमें ग्रौर भी मिला दिये जायँ तो इस प्रतिकी श्लोक-संख्या एक लाख दस हज़ार तक

पहुँच जाती है। अर्थात् महाभारतमें कहीं हुई एक लाखकी संख्यासे यह संख्या बहुत बढ़ जाती है। इस दृष्टिसे देखते हुए हमें यह कहनेमें कोई अड़चन नहीं जान पड़ती कि महाभारतकी कुम्भकोणम्वाली प्रति ऐतिहासिक विचारमें लेने योग्य नहीं है; और इसी लिये हमने उसे अपने विचारमें लिया भी नहीं है।

यदि हरिवंशको छोड़ दिया जाय तो वम्बईवाली दोनों प्रतियाँ महाभारतमें दी हुई स्रोक-संख्याके अनुसार ही हैं। यद्यपि श्रध्यायोंकी संख्या बढ़ी हुई मिलती है तो भी कल मिलाकर स्रोक-संख्या कम ही है। इस कारण यह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक विचार करनेके लिये इन प्रतियोंका उपयोग बहुत कुछ बल्कि अच्छा होगा । इसके अतिरिक्त चतुर्धर नीलकएठ टीकाकार बहुत ही श्रनुसन्धान से जहाँ जहाँ गौड़ोंका पाठ-भेद होता है वहाँ वहाँ वह पाठ-भेद देते जाते हैं और यदि कहीं कोई श्लोक गौडोंके पाठमें न श्राता हो तो वह भी टीकामें दिखला देते हैं। इसलिये नीलकएठकी टीका-वाली वम्बईकी प्रति महाराष्ट्र और गौड दोनों प्रान्तोंमं सर्वसमात है श्रोर ऐति-हासिक विचारमें लेने योग्य है। श्रीर श्रागेकी मीमांसामें हमने उसीका उप-योग किया है। वस्वईकी दोनों प्रतियों में बहुत ही थोड़ा भेद है: श्रौर केवल एक ही अवसर पर हमें उस भेद पर ध्यान देना पड़ा है। इस प्रस्तावमें केवल इतना ही कहकर श्रव हम मीमांसाके भिन्न भिन्न विषयों में से पहले महाभारतके कत्तात्रोंके सम्बन्धमें विचार करते हैं।

पहला मकरण



महाभारतके कत्ती।

क्काह बात सर्वत्र मानी गई है कि महा-भारत ग्रन्थमें एक लाख अनुष्टप स्रोक हैं स्रोर उसके कत्ता कृष्णहेंपायन ब्यास हैं। वास्तविक स्रोक-संख्या, जैसा कि महाभारतमें कहा गया है, खिल पर्व-सहित ६६२४४ है; श्रौर यदि खिल पर्वको छोड दें तो वह संख्या =४२४४ होती है। पाठकोंको यह बात पहले दिये हुए कोष्ठक-से मालुम हो गई है, कि वर्तमान समयमें उपलब्ध वस्वईके संस्करगों में, खिल पर्वको होड देने पर, क्रोक-संख्या = ४५२५ अथवा **८३८२६ है**; श्रीर हरिवंश सहित श्लोकोंकी संख्या कमसे कम ६५ ८२६ तथा श्रधिकसे ग्रधिक १०००१० है। सारांश, इस कथन-का वस्तुस्थितिसे मेल है कि महाभारत-ग्रन्थमें करीव एक लाख स्रोक हैं। यह त्रसम्भव जान पड़ता है कि इतने बड़े यन्थकी रचना एक ही मचुप्यने की हो। इससे यही अनुमान होता है कि महा-भारतके रचयिता एकसे अधिक होंगे। महाभारतके ही वर्णनानुसार ये रचयिता तीन थे-व्यास, वैशम्पायन श्रीर सौति। भारतीय-युद्धके वाद व्यासने 'जय' नामक इतिहासकी रचना की। यह इतिहास व्यास-जीके शिष्य वैशम्पायनने पाएडवोंके पोते जन्मेजयको उस समय सुनाया था जब कि उसने सर्पसत्र किया था; श्रौर वहाँ उस कथाको सुनकर सूत लोमहर्षणके पुत्र सौति उग्रश्रवाने उन ऋषियोंको सुनाया जो नैमिषारएयमें सत्र कर रहे थे। इस

ः * तीसरे पृष्ठ का कोष्ठक देखी।

कथाका उल्लेख भारतमें ही है। इसमें सन्देह नहीं कि जो प्रश्नोत्तर वैशम्पायन श्रीर जन्मेजयके बीचे हुए होंगे वे व्यास-जीके मुल ग्रन्थसे कुछ अधिक अवश्य होंगे। इसी प्रकार सौति तथा शौनक ऋषियोंके वीच जो प्रश्लोत्तर हुए होंगे वे वैशम्पायनके ग्रन्थसे कुछ श्रधिक श्रवश्य होंगे। सारांश, ज्यासजीके ग्रन्थको वैशं-पायनने बढ़ाया श्रीर वैशंपायनके श्रन्थको सौतिने वढ़ाकर एक लाख स्रोकोंका कर दिया। इसके प्रमाणमें सौतिका यह स्पष्ट वचन है कि "एकम् शतसहस्रं च मयोक्तम् वैनिवोधतः (त्राव्त्रवर,१०६) श्रर्थात्, इस लोकमें "एक लाख श्लोकोंका महाभारत मैंने कहा है" यह इससे स्पष्ट है। यद्यपि सब लोग यही समभते हैं कि समस्त महाभारतकी रचना अकेले व्यासजीकी ही है, तथापि लच्चासे ही इसका अर्थ लिया जाना चाहिये। यदि यह मान लिया जाय कि वैशंपायन त्रथवा सौतिने जो वर्णन किया है ऋथवा उन लोगोंने जो श्रंश बढ़ाया है, वह सब व्यासजीकी प्रेरणाका ही फल है श्रीर वह सव उन्हींके मतोंके अधारपर रचा गया है, तो व्यासजीको एक लाख श्लोकोंका कर्तृत्व देनेमें कोई हर्ज नहीं। वस्तुतः यही मानना पड़ता है कि महा-भारतके कत्ती तीन हैं—श्रर्थात् व्यास, वैशंपायन श्रीर सौति। वहतेरे विद्वानीका कथन है कि महाभारतके रचयिता तीनसे भी श्रधिक थे। परन्तु यह तर्क निराधार है ग्रोर इस एक ग्रन्थके लिये तीन कवियों-से अधिककी आवश्यकता भी नहीं देख पडती।

इस कथनके लिये श्रीर भी कुछ श्रनु-कूल प्रमाण या बातें हैं कि तीन कर्ताश्रोंने महाभारतको वर्तमान खरूप दिया है। पहिली बात तो यह है, कि इस श्रन्थके

तीन नाम हैं श्रोर यह बात इस श्रन्थसे ही स्पष्ट प्रकट होती है। श्रादि पर्वमें तथा अन्तिस पर्वमें कहा है कि "जधो नामेतिहासोऽयम्" अर्थात् मूल प्रन्थ ऐतिहासिक है श्रीर उसका नाम 'जय' था। इसी ग्रन्थको श्रागे चलकर 'भारत' नाम प्राप्त हो गया श्रीर जब उसका विस्तार बहुत बढ़ गया तो उसे 'महा-भारत कहने लगे। ये तीन नाम भिन्न भिन्न तीन कत्तांश्रोंकी कृतिके लिये भली भाँति उपयक्त हैं: अर्थात व्यासजीके ग्रन्थको जय, वैशम्पायनके ग्रन्थको भारत श्रीर सौतिके प्रनथको महाभारत कह सकते हैं। यह मान लेना युक्ति-सङ्गत जान पडता है कि जयसे पाएडवां-की विजयका अर्थ सचित होता है और इसी नामका मूल इतिहास-ग्रन्थ होगा। इसी ग्रन्थका श्रादि नमन प्रसिद्ध 'नारायणं नमस्कत्य' श्लोकमें उल्लेख है। निस्सन्देह यह श्लोक व्यासजी-का ही है और इसी लिये हमारी राय है कि इसमें पहलेपहल व्यासजीका नाम न होगा। कुछ लोग इस श्लोकका यह पाठान्तर मानते हैं—'देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्" परन्तु यह पाठ पीछेसे बना हुआ जान पड़ता है। "देवीं सरस्वतीं चैव" यही पाठ उचित जान पड़ता है श्रीर व्याकरणकी दृष्टिसे भी 'चैव' पदकी ही आवश्यकता है। इसके सिवा, इस नमनके श्लोकमें महाकविकी कुशलता भी देख पड़ती है श्रोर इसी लिये कहना पड़ता है कि यह श्लोक व्यासजीका ही है और इसमें उन्होंने श्रपना नाम नमनके लिये न लिखा होगा । श्रीक कविशिरोमिण होमरने श्रपने इलियड नामक महाकाव्यके श्रारम्भ में कहा है-"हे वाक्देशी, एकीलीजक

कोधका तू वर्णन कर" (cf. Achilles' wrath to Greece oh! heavenly goddess sing.) इस वाक्यमें कविने तीन बातोंका उल्लेख किया है—श्रर्थात काव्य-नायक एकीलीज, काव्य-विषय उसका कोथ, और वाक्देवीका स्मरण। इसी प्रकार हमारे प्राचीन महाकवि व्यासजीने भी अपने नमन-विषयक अरोकमें इन तीन वातोंका ही समावेश किया है-श्रर्थात् काव्य-नायक नर-नारायण (श्रर्जन श्रीर श्रीकृष्ण), काव्य-विषय उनकी जय, और वाकदेवीका स्मरण। इससे प्रतीत होता है कि नमनका यह श्लोक व्यास-जीका ही है और उनके यन्थका नाम "जय" था। अब यह देखना चाहिये कि वैशं-पायनके प्रनथको "भारत" नाम कैसे प्राप्त हुआ। इस यन्थमें यह उल्लेख पाया जाता है कि व्यासजीने वैशंपायन श्रादि पाँच शिष्योंको श्रपना ग्रन्थ पढ़ाया और उन लोगोंने भारत-संहिताका पठन किया: यहाँ तक कि प्रत्येक शिष्यने ऋपनी ऋपनी निराली संहिता वनाई। ऐसी श्रवस्थामें वैशंपायनके प्रन्थको "भारत" नाम स्व-भावतः प्राप्त होता है। अब यह बात भी स्वाभाविक और युक्ति-संगत जान पड़ती है कि सौतिके एक लाख श्लोकवाले बृहत् प्रनथको महाभारत नाम प्राप्त हुआ होगा। जान पड़ता है कि भारत श्रौर महाभारत नामक भिन्न भिन्न ग्रन्थ एक ही समयमें प्रचलित थे। सुमंतु, वैशं-पायन, पैल श्रादिका उल्लेख करते समय श्राश्वलायनके एक सूत्र (श्रा. गृ. ३. ४. ध) में भिन्न भिन्न नाम लेकर "भारत महाभारताचार्याः" कहा है। इससे अनु-मान होता है कि वैशंपायन श्रादि ऋषियों-के लिये भारताचार्यकी उपाधि प्रचलित थी औरभारत तथा महाभारत नामक भिन्न भिन्न अन्य एकही समयमें अखितत थे।

महाभारतके तीन रचयिता होनेके सम्बन्धमें दूसरा प्रमाण यह है कि महा-भारतका श्रारम्भ तीन स्थानींसे होता है। इस बातका उल्लेख प्रन्थमें ही पाया जाता है। "मन्वादि भारतं केचित्" श्रादि क्लोकोंमें कहा है कि मनु, श्रास्तिक श्रीर उपरिचर ये तीन स्थान इस प्रनथके श्रारम्भ माने जाते हैं। राजा उपरिचरके श्राख्यानसे (श्रादि पर्व अ० (६३) व्यासके ग्रन्थका श्रारम्भ है। श्रास्तिकके श्राख्यान (श्रादि० श्र० १३)से वैशंपायन-के प्रन्थका आरम्भ हैं: क्योंकि वैशंपायन-का प्रन्थ सर्प-सत्रके समय पढ़ा गया था। इसी लिये श्रास्तिककी कथाका श्रारम्भ-में कहा जाना आवश्यक था। यह समसना रवाभाविक है कि सौतिके वृहत् महा-भारत-ग्रन्थका श्रारम्भ मनु शब्दसे श्रर्थात् प्रारम्भिक शब्द " वैवस्वत" से होता है।

श्रव इस वातका विचार करना चाहिये कि इन तीनों अन्थोंका विस्तार कितना था। यह ठीक ठीक नहीं बतलाया जा सकता कि व्यासजीके मूल प्रन्थ "जय" में कितने क्षोक थे। मैकडोनएड, वेबर श्रादि पाश्चात्य विद्वानीका कथन है कि उन क्षोकोंकी संख्या ==०० थी। परन्तु यह मत हमें ग्राह्य नहीं है, क्योंकि इसका समर्थन केवल तर्कके आधार पर किया गया है। सच वात तो यह है कि महाभारतमें ==00 संख्याका उल्लेख व्यासजीके कृट श्लोकोंके सम्बन्धमें हुआ है। यह उल्लेख, सिर्फ खींचातानीसे ही, इस बातका प्रमाणकहा जा सकता है कि मूल अन्थमें श्लोकोंकी संख्या इतनी ही (अर्थात् ==00) होंगी। इस उल्लेखके आधार पर सरल रीतिसे ऐसा श्रुनुमान नहीं किया

जा सकता। हाँ, यह बात भी निश्चय-पूर्वक नहीं कही जा सकती कि वर्तमान महाभारत में ==०० क्रष्ट श्लोक हैं; परन्तु जब इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि कभी कभी परा क्योंक तो कट नहीं होता, किन्तु एकाध पदमें ही ऐसा गृढार्थ होता है कि पूरे श्लोकका श्रर्थ समभमें नहीं श्राता, तव कहना पडता है कि कूट श्लोकोंकी उक्त संख्या कुछ बहुत अधिक नहीं है। हम अपने भावको स्पष्ट रूपसे प्रकट करनेके लिये यहाँ एक दो उदाहरण देते । विराट पर्व में "जित्वा वयम् नेष्पाति चाच गावः यह वाक्य कुट श्लोकका प्रसिद्ध उदाहरण है। यदि इसके भिन्न भिन्न पद इस प्रकार किये जायँ-जित्वा, श्रव, यं, नेष्यति, च, गाः, वः—तभी इसका कुछ अर्थ लग सकता है। ऐसे श्लोक आरम्भके पर्वीमें बहुत हैं, फिर श्रागे चलकर कुछ कम देख पडते हैं। तो भी इसमें सन्देह नहीं कि महाभारतमें गृढ़ार्थके श्लोक बहुत हैं। ऐसे श्लोकोंमें एकाध शब्द अप्रसिद्ध श्चर्यमें व्यवहृत किया गया है, जैसे "नागैरिव सरस्वती" यहाँ सरस्वती = सरस् + वती = सरोयुक्त इस अर्थमें है। महाभारतमें ऐसे अनेक श्लोक हैं जिनके शब्द तो सरल हैं परन्तु जो उक्त प्रकारसे भिन्न और गृढ़ अर्थके द्योतक हैं। ऐसी श्रवस्थामें यद्यपि कृट श्लोकोंकी संस्या ठीक ४६०० न हो, तथापि कहा जा सकता है कि इस संख्यामें थोड़ी अतिशयोक्ति है। कुछ भी हो, इस श्लोकसे यह अनु-मान नहीं किया जा सकता कि उक्त संख्या व्यासजीके मूल ग्रन्थकी ही है। इसके अतिरिक्त एक बात और है। महा-भारतमें स्पष्ट उल्लेख है कि न्यासजीने रात-दिन परिश्रम करके तीन वर्षमें श्रपने अन्थको पूरा किया। इससे यही माना

^{*} अष्टी श्लोकसहस्राणि अष्टी श्लोकशतानि च । अहं वेक्षि शुको वेत्ति संजयो वेत्ति वा न वा ।

जा सकता है कि व्यासजीके समान प्रतिभा-सम्पन्न संस्कृत कविके लिये प्रति-दिन आठसे अधिक अनुष्ट्रप श्लोकोंकी रचना कर सकना बहुत सहज था। सारांश, यह वात निश्चित रूपसे नहीं बतलाई जा सकती कि व्यासजीके मूल ग्रन्थका विस्तार कितना था। वैशम्पायन के 'भारत' में श्लोकोंकी संख्या २४००० होगी। महाभारत में ही स्पष्ट कहा गया है कि "भारत-संहिता २४००० श्लोकोंकी है, और शेष ७६००० श्लोकों में गत कालीन लोगोंकी मनोरंजक कथाश्रोंका वर्णन है।" इससे अनुमान होता है कि उपाख्यानोंको छोडकर शेष २४००० श्लोकोंमें भारत-संहिताकी रचना की गई है। संहिता शब्द 'अथसे लेकर इति तक एक सूत्रसे लिखा हुआ प्रन्थं इस अर्थका द्योतक है। यह वात भी प्रसिद्ध है कि ज्यासजीके पाँच शिष्योंने अपनी अपनी भारत-संहिताकी रचना भिन्न भिन्न की है। इससे भी संहिता शब्दका वही अर्थ प्रकट होता है जो ऊपर दिया गया है। तब, भारत-संहिताका विस्तार २४००० श्लोक-संख्या-का है इस वाक्यसे यही प्रकट होता है कि वैशंपायन द्वारा रचे गये अन्थमें २४००० स्होक थे। सौतिके प्रनथके विषयं-में यह वतलानेकी आवश्यकता नहीं कि उसका विस्तार कितना है। सब लोग जानते हैं कि वैशम्पायनके 'भारत'में उपाख्यान श्रादि जोड़कर उसने एक लाख श्लोकोका महाभारत बना डाला।

यह बात खामाविक है कि वैशम्पायन के प्रनथके आरम्भमें आस्तिककी कथा कही गई हो। अर्थात् इसमें सन्देह नहीं कि उस कथाके पहिलेके अध्याय सिर्फ़ सौतिके हैं: अर्थात् अनुक्रमणिका पर्व, पर्वसंग्रह पर्व, पौष्य पर्व, पौलोम पर्व मिलाकर १२ अध्याय सौतिके हैं। इन प्रार-

म्मिक अध्यायोंमें, आधुनिक प्रन्थ-रचनाकी पद्धतिके ही अनुसार, सौतिने प्रस्तावना उपोद्धात श्रीर श्रनुक्रमणिकाका समावेश किया है; और इस वातकी गिनती कर दी है कि प्रत्येक पर्वमें कितने स्रोक श्रीर कितने श्रध्याय हैं। इससे सीतिके अन्थको प्रायः खायी सक्तप प्राप्त हो गया है। वर्तमान प्रचलित महाभारतमें श्लोकीं-की जो संख्या पाई जातो है वह सौतिकी वतलाई हुई संख्यासे लगभग १००० कम है। कुछ पर्वोमें श्लोकोंकी संख्या कम है ग्रीर कुछ पर्वोंमें अधिक है; परन्तु इस न्यूनाधिकताका परिमाण अत्यन्त श्रल्प है। भारतके टीकाकारने भी प्रत्येक पर्वके श्रन्तमें इस न्यूनाधिकताका उल्लेख किया । उसकी रायमें यह न्यूनाधिकता लेखकोंको भूलसे हुई होगी। परन्त प्रश्न यह है कि सौतिकी बतलाई हुई संख्यासे. पचलित संस्करणोंमें. रलोकोंकी संख्या कुछ अधिक है वहाँ लेखकोंकी मूल कैसे मानी जाय ? श्रर्थात् प्रकट है कि लेखकोंने जान व्रुक्तकर पीछेसे श्लोकोंकी संख्या वड़ा दी है। ऐसे वड़ाये हुए श्लोक मुख्यतः वन पर्व और द्रोण पर्व-में ही पाये जाते हैं। ग्रादि पर्वमें सौतिने २२७ अध्याय वतलाये हैं और टीकाकार-का कथन है कि उसमें २३७ ग्रध्याय हैं। इन सब अध्यायोंकी श्लोक-संख्या कम है, इसलिये माना जा सकता है कि श्रध्यायों-की श्रधिक संख्या लेखकोंकी भूलसे लिखी गई होगी। परन्तु वन पर्व श्रौर द्रोण पर्वमें अध्याय भी अधिक हैं और श्लोक भी अधिक हैं। यह बढ़ी हुई श्लोक-संख्या ज्यादा नहीं है; अर्थात् वन पर्वमें लगभग २०० श्लोक श्रीर द्रोणपर्वमें लगभग ६०० श्लोक बढ़े हैं। इस प्रकार दोनों पर्वोंको मिलाकर सिर्फ़ =०० श्लोक, दोनों पर्चोंके कुल २१००० श्लोकोंमें वढ़ गये हैं। समस्त महाभारतमें सौतिने

श्लोकोंकी जो संख्या गिनाई है उससे वर्तमान प्रचलित संस्करणोंमें १००० श्लोकोंकी कमी है और न्यूनाधिकताका परिमाण भी बहुत थोड़ा है। इन सब् बातोंसे कहना पड़ता है कि आज २००० वर्ष बीत जाने पर भी (इस कालका निश्चय आगे चलकर किया जायगा)सौतिके अन्थमें बहुत ही थोड़ा अन्तर पड़ा है।

सौतिने श्रपने अन्थके श्रठारह पर्व बनाये हैं। यह पर्व-विभाग नया है और उसीका किया हुआ है। वैशम्पायनने श्रपने 'भारत' में जो पर्व बनाये थे वे भिन्न हैं, छोटे हैं और उनकी संख्या १०० है। यह बात महाभारतमें सौतिकी दी हुई अनुक्रमणिकासे ही प्रकट है। कोई प्रन्थ-कार, अपने एक ही अन्थमें, एक ही नाम के छोटे और बड़े विभाग कभी नहीं करेगा। वह अपने अन्थके छोटे और बड़े विभागोंको भिन्न भिन्न नाम देगाः जैसे काराङ श्रीर उसके श्रन्तर्गत श्रध्याय श्रथवा सर्ग । इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि उक्त दो प्रकारके विभाग भिन्न भिन्न यन्थकारोंके किये हुए हैं। य्रथीत्, वैशं-पायनके भारत-ग्रन्थमें पर्व नामक विभाग थे जो बहुत छोटे छोटे थे; सौतिने इन छोटे पर्वोंको एकत्र करके अपने बृहत् ग्रन्थके १८ पर्व किये और इन विभागोंका नाम भी उसने पर्व ही रखा। इसका परिणाम यह हुआ है कि एक बड़े पर्वमें उसी नामके छोटे उपपर्व भी शामिल हो गये हैं। उदाहरणार्थ, सौप्तिकपर्घमें सौप्तिकपर्व है, सभापर्वमें सभापर्व है श्रीर श्रश्वमेधिकपूर्वमें श्रश्वमेधिकपूर्व है। यह श्रनुमान भी हो सकता है कि वैशम्पा-यनके मूल भारतमें ठीक ठीक १०० पर्व न होंगे। कहीं कहीं सौतिने नये पर्वोंकी भी रचना की है। क्योंकि इसमें सन्देह नहीं कि अनुक्रमिणकापर्व, पर्वसंग्रहपर्व, पौ-

लोमपर्व श्रोर पौष्यपर्व सौतिक बनाये हुए हैं। हरिवंश खिलपर्व समक्ता जाता है। 'खिल' का अर्थ है पोछेसे जोड़ा हुआ। इसकी पर्व-संख्या १८ श्रौर १०० से भिन्न है। इसे सौतिने ग्रन्थके विषय-की पूर्तिके लिये जोड़ा है और इसी लिये उसको "खिलपर्व" नाम देकर उन्नीसवाँ पर्व वनाया है। उसमें छोटे छोटे तीन पर्व हैं। मालूम होता है कि इन पर्वोका कर्त्ता सौति नहीं है। खैर, महा-भारतमें यह स्पष्ट बचन है कि "पहले व्यासजीने १०० पर्वोंकी रचना की; तद-नन्तर स्त-पुत्र लोमहर्षिणिने नैमिपारण्यमें सिर्फ १८ पर्वोंका ही पठन किया":— एतत्पर्वशतं पूर्णं व्यासेनोक्तं महात्मना। यथावत्सृतपुत्रेण लोमहर्षणिना ततः॥ उक्तानि नैमिषारएये पर्वाएयद्यादशैव तु ॥ (স্থা০ স্থা০ ২-১৪)

इससे निर्विवाद सिद्ध है कि १८ पर्वोंके विभाग सौति-कृत हैं।

वर्तमान महाभारतके रचयिता व्यास, वैश्वम्पायन और सौतितीनों व्यक्ति काल्प-निक नहीं हैं किन्तु सत्य और ऐतिहासिक हैं। कृष्ण यजुर्वेदकाठकमें पाराशर्य व्यास ऋषिका नाम त्राया है। व्यास भारती-युद्धके समकालीन थे। महाभारतके अनेक वर्णन प्रत्यत्त देखे हुए जान पड़ते हैं श्रोर उनमें कई बातें ऐसी हैं जिनकी कल्पना पीछिसे कोई कवि नहीं कर सकता। कहा गया है कि वैशम्पायन व्यासजीके एक शिष्य थे। (सम्भव है कि वे प्रत्यज्ञ शिष्य न होकर केवल शिष्य-परम्परामें ही हों।) इनका नाम आश्वलायन गृह्य-सूत्रमें पाया जाता है। ये श्रर्जुनके पोते जन्मेजयके समकालीन थे। समस्त महा-भारतकी भाषा ऐसी है जो प्राचीन भाषा श्रीर श्राधुनिक संस्कृत भाषासे भिन्न है और जो प्रत्यक्ष बोलचालमें आनेवाली

भाषाके समान देख पडती है। इसमें सन्देह नहीं कि महाभारतके कुछ भागों-की भाषा बहुत प्राचीन श्रीर बड़ी जोर-दार है। इस बातकी सत्यता भगवद्गीता-के समान कुछ भागोंकी भाषासे प्रकट हो सकती है। सौतिके सम्बन्धमें विचार करते समय इस बात पर ध्यान रहे कि यद्यपि सुत प्रायः कथा बाँचनेका धन्धा किया करते थे, तथापि लोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवाको सौति कहनेका कोई कारण नहीं देख पड़ता; क्योंकि "सूत" जाति-वाचक नाम है श्रीर प्राणोंमें उल्लेख है कि स्तने शौनकको अनेक कथायें सुनाई थीं। परन्तु सूत श्रीर सीतिके ऐतिहासिक व्यक्ति होनेमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है। इस वातका विचार श्रागे चलकर किया जायगा कि सौतिने वैशम्पायनके भारतको बढ़ाकर महाभारतका क्यों और कैसे दिया । परन्तु अन्थके काल-निर्णयसे इस बातमें बिलकुल सन्देह नहीं रह जाता कि यह सौति वैशम्पायन-का समकालीन नहीं था। ऐसी श्रवस्थामें 'भारत' के आरम्भमें जो यह लिखा गया है कि "सर्पसत्रके समय वैशम्पायनके मुखसे मैंने भारती कथा सुनी," लाचिएक अथवा अतिशयोक्तिका कथन समभना चाहिये। सौति श्रौर वैश्रम्पायन-में हज़ारों वर्षोंका नहीं तो कमसे कम कई सौ वर्षोका अन्तर अवश्य है। व्यासजीके मूल यन्थ और वैशम्पायनके भारतमं, परिमाण तथा भाषाके सम्बन्धमें, विशेष श्रन्तर नहीं है। परन्तु जिस समय सौति-ने २४००० स्होकोको बढ़ाकर एक लाखका ब्रन्थ बना दिया, उस समय काल-भेदक श्रनुसार भाषाके सम्बन्धमें श्रन्तर हो जाना खामाविक बात है। यद्यपि सौतिने श्रपने विलत्त्रण वुद्धि चातुर्यसे सारे प्रन्थ-में एकता लाकर उसे पूर्व-अपर-सम्बद्ध

कर दिया है, तथापि दो तीन स्थानोंमें चमत्कारिक श्रसम्बद्धता उत्पन्न हो गई है। देखिये, (१) यन्थके आरम्भमें ही यह कथा है कि जब द्वादश वार्षिक सत्र के समय सौति उत्रथ्रवा कुलपति शौनक के पास आया और उससे पूछा गया कि "तू कहाँसे श्राया है ?" तब उसने उत्तर दिया कि "में जनमेजयके सर्पसत्रसे श्राया हूँ श्रौर वहाँ वैशम्पायन-पठित व्यास-कृत महाभारत मैंने सुना है।" परन्तु आदि-पर्वके चौथे श्रध्यायके श्रारम्भमें फिर वहीं बात गद्यमें इस प्रकार कही गई है कि सौतिने शौनकके पास जाकर पूछा-"कौनसी कथा सुननेकी तुम्हारी इच्छा है ?" तब शौनकने कहा कि भृगु-वंशका वर्णन करो। इसके बाद 'सौतिरुवाच के वदले 'स्तउवाच' कहा गया है। इस पर-स्पर-विरोधी वचनका कारण क्या है? दीकाकारने अपनी प्राचीन पद्धतिके अन-सार इस विरोधका परिमार्जन यह कहकर कर दिया है कि महाभारतके ये भिन्न भिन्न त्रारम्भ भिन्न भिन्न कत्पोंसे सम्बन्ध रखते हैं। परन्तु यह कारण सन्तोष-दायक नहीं जान पड़ता । सम्भव है कि वैशम्पायनके भारतको बृहत् स्वरूप देनेका प्रयत्न पिता और पुत्र दोनोंने किया हो। ये दोनों श्रारम्भ काल्पनिक हैं श्रीर सम्भव है कि पिता एवं पुत्रने परस्पर श्रादरके कारण उन दोनोंको ब्रन्थमें स्थान दे दिया हो। सौति कथा बाँचनेका व्यव-साय किया करते थे। उन्हें जो पौराणिक बातें मालूम थीं उनका उपयोग उन्होंने भारतको सर्वमान्य श्रोर धार्मिक स्वरूप देनेमें क्यों और कैसे किया, इस बातका विचार श्रागे किया जायगा। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार उपयोग करते समय एक और असम्बद्धता उत्पन्न हो गई है। वह यह है:-(२) तीसरे ऋध्यायमें

किसी गद्य ग्रन्थका श्रवलम्य किया गया है। उस कथाका सारांश यह है- "जब राजा जनमेजय कुरुद्धेत्रमें दीर्घ सत्र कर रहा था उस समय यज्ञ-मग्डपमें एक कुत्ता श्राया। उसे जनमेजयके भाइयोंने मार कर बाहर भगा दिया। तब वह रोता हुआ अपनी माता देवशुनीके पास गया। उसने यज्ञ-मग्डपमें जाकर जनमेजयको शाप दिया कि तेरे कार्यमें श्रकल्पित विघ उत्पन्न होगा। जनमेजयने श्रपना सत्र पूरा किया और हस्तिनापुरमें श्राकर वह इस वातका विचार करने लगा कि उस पाप-कृत्याका परिहार कौन करेगा। इसके वाद उसने श्रुतश्रवा नामक ऋषिके पुत्र सोम-श्रवाको अपना पुरोहित वनाया। परन्तु श्रुतश्रवाने अपने पुत्रके कठिन नियमके विषयमें जनमेजयको साफ साफ यह बतला दिया था कि, यदि कोई ब्राह्मण याचना करनेके लिये आवेगा और कुछ माँगेगा तो मेरा पुत्र उस याचकको मुँहमाँगी वस्तु दे देगा; यदि यह नियम तुभे मान्य हो तों तू इसे ले जा। जनमेजय ने स्वीकार कर लिया और सोमश्रवाको अपनी राज-धानीमें लाकर भाइयोंसे कहा कि इस पुरोहितकी जो आशा हो उसे पूरा करना चाहिये। इसके बाद जनमेजय तत्त्रिला देश पर विजय प्राप्त करने गया। उस देशको हस्तगत करके वह श्रपनी राज-धानीमें लौट आया।" यह कथा गद्यमें ही दी गई है। जान पड़ता है कि सौतिने इसे किसी दूसरे ग्रन्थसे लिया है, परन्तु उसने इस कथाका सम्बन्ध भारतीय-कथा-से मिला नहीं दिया। इसके बाद श्रहिए की गुरुनिष्ठाकी लम्बी चौड़ी कथा बतला कर इस अध्यायको ऐसा ही असम्बद्ध छोड़ दिया है। सोमश्रवा पुरोहितने जन-मेजयकी पापकृत्याका परिहार किया या नहीं, सोमश्रवासे किस ब्राह्मणने क्या

माँगा, उसने दिया या नहीं, श्रौर उसका परिणाम क्या हुआ, इत्यादि वाताका कुछ भी पता नहीं चलता। श्रागे चौथे श्रध्याय में फिर भी सृत श्रीर शीनक की भेंटके प्रसङ्गका वर्णन किया गया है और भृगु-वंश-वर्णन आदि कथायें दी गई हैं। इसके बाद कई अध्यायोंमें आस्तीक पर्व और सर्प-सत्रकी कथा है। इस सर्प-सत्रकी कथाके साथ देवशुनीके शाप और सोमश्रवाके नियमका कुछ भी सम्बन्ध नहीं देख पडता। यहाँतक कि इस सर्प-सत्रकी कथामें सोमश्रवाका नाम भी नहीं है। श्रास्तीकने जनमेजयसे प्रार्थना की कि सर्प-सत्र बन्द कर दिया जाय श्रीर तत्तकको प्राणदान दिया जाय। सब ऋषियोंके कहनेसे जनमेजयने इस प्रार्थना का स्वीकार किया। ऐसी अवस्थामें यह कहना भी उचित नहीं है कि सोसश्रवा ने आस्तीककी प्रार्थनाका स्वीकार करके जनमेजयदे मतके विरुद्ध उसके सर्प-सत्र-में विघ्न उपस्थित किया। सारांश, देवशुनीके शापका जो वर्णन श्रीर सोमश्रवा पुरोहित की जो कथा गद्यमें दी गई है वह ज्योंकी त्या अधरमें पड़ी रही और अन्थमें असम्ब-इता उत्पन्न हो गई। ऐसी असम्बद्धता महाभारतमें श्रौर कहीं देख नहीं पड़ती। हाँ, किसी किसी स्थानमें जहाँ सौतिने उपाख्यान जोड़ दिये हैं वहाँ किसी श्रंशमें ग्रसम्भाव्यता अवश्य देख पड़ती है: परन्तु असम्बद्धता अर्थात् पूर्व-अपर-विरोध बहुत कम पाया जाता है। किसी किसी स्थानमें, प्राचीन पद्धतिके अनुरूप श्लोक बनानेका प्रयत्न किया गया है। उदा-हरणार्थ, वैशम्पायनके भारतमें भारतका सारांश एक अध्यायमें है, इसलिये सौति-ने पहिले अध्यायमें 'यदाश्रीषम् ' से श्रारम्भ करके बड़े वृत्तके ६६ श्लोक दिये हैं श्रीर इनमें धृतराष्ट्रके मुखसे महाभारत का सारांश कहलानेका प्रयत किया है। ये श्लोक प्राचीन भाषाके समान बड़े वृत्तीं-में हें श्रोर उनपर वैदिक रचनाकी छाया वेख पड़ती है। परन्तु यह छाया बहुत ही कत्रिम है और श्लोकोंमें किये हुए वर्णनसे यह भी स्पष्ट है कि वे पीछेसे जोड दिये गये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इन श्होकोंकी रचना सौतिने ही की है, क्योंकि ये सब पहिले अध्यायमें ही हैं और यह परा श्रध्याय सौतिका ही जोडा हुआ है। यदि कोई 'यदाश्रीषम्' श्रादि ६६ श्रोकोंको ध्यानपूर्वक पढेगा तो उसको विश्वास हो जायगा कि ये सब सौतिके ही हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ग्रन्थ के एक प्रधान पात्रके मुखसे ब्रन्थका सारांश कहलानेकी यह एक श्रच्छी युक्ति है; परन्तु यह वात श्रसम्भव सी जान पड़ती है कि समस्त भारतके सारांशका वर्णन करते हुए इस प्रकार शोक किया गया हो। इसकी सृष्टि व्यासके समान महाकविकी वुद्धिसे कभी हो ही नहीं सकती । इस शोक-वर्णनमें सौप्तिक पर्वके भी बादके ऐषीक पर्वका भाग थ्रा गया है। सच पूछा जाय तो जब उत्तराके पेटमें खित गर्भ पर अश्वत्थामाने श्रख-प्रहार किया, तब धृतराष्ट्रको श्रपने स्वभावके अनुसार प्रसन्न हो जाना चाहिये था, परन्तु ऐसा वर्णन उक्त श्लोकोंमें नहीं पाया जाता। इसके सिवा, महाभारतके जिन भागोंके सम्बन्धमें यह निश्चय हो चुका है कि वे सौतिके जोड़े इप हैं, उनका भी उल्लेख उक्त श्लोकोंमें पाया जाता है। यह बात आगे चलकर सिद्ध की जायगी कि यत्तप्रश्नका श्राख्यान सौतिका जोड़ा हुआ है। इस आख्यानकी वातोंका भी उल्लेख उक्त श्लोकोंमें पाया जाता है। इसी प्रकार उद्योग-पर्वभें श्रीकृष्णके मध्यस्थ होनेके समय विश्वरूप-दर्शनका जो भाग है, और जिसे हम

पीछेसे जोड़ा हुआ सिद्ध कर दिखावेंगे. उसका भी वर्णन उक्त श्लोकोंमें पाया जाता है। यह वर्णन भी इन श्लोकोंमें पाया जाता है कि भीष्म पितामहने पांडवोंको अपनी मृत्युका उपाय बतला दियाः परन्त यह वर्णन पछिसे जोडा हुआ है। सारांश. 'यदाश्रीषम्' चाले श्लोक ग्रन्थके आरम्भमें पीछेसे जोड़े गये हैं; श्रीर यद्यपि वे कथाके सारांशकी दृष्टिसे बहुत ठीक मालूम होते हैं. तथापि उनमें शोकका वर्णन किया गया है इसलिये उनका उचित स्थान युद्धके अनन्तर ही हो सकता है। यह भाग व्यास-रचित नहीं है। सौतिने इसकी रचना करके इसे अपने उपोद्धातमें पीछेसे जोड दिया है। इस प्रकार किसी किसी स्थानमें सौतिके कुछ दोष देख पडते हैं: तो भी महाभारतको वर्त्तमान बृहत स्वरूप देनेमें उसकी विलक्तण वृद्धिमत्ता श्रौर कुशलता देख पड़ती है। सौति कुछ साधारण कथा बाँचनेवाला पुरोहित नहीं था। श्राजकल जिस प्रकार कथा कहने-वाला कोई प्रसिद्ध परिइत, रामायराके किसी एक श्लोकपर, तीन तीन चार चार घरटोंतक, अपने श्रोताश्रोंको श्रच्छी वक्तता-सहित श्रोर मक्ति-रस-प्रधान कथा सुना सकता है, उसी प्रकार सौतिमें भी कथा कहनेकी ऋद्भत शक्ति थी। निस्सन्देह वह बहुत ऊँचे दर्जेका परिडत था श्रीर उसे कुल पौराणिक वातों की जानकारी भी बहुत थी। व्यवहार, राजधर्म श्रीर तत्त्व-ज्ञानके सम्बन्धमें महाभारतकी कथाका जो उदात्त स्वरूप महर्षि व्यास द्वारा प्रकट हुआ है, वह सौतिके अत्यन्त विस्तृत अन्थमें भी ज्योंका त्यों बना है। इसी लिये सौतिने इस प्रन्थकी जो प्रशंसा की है वह यथार्थमें सच है। यह भारत-कविजनोंके समस्त लिये श्राधार-स्तम्भ है। इसं दिव्य वृज्ञकी सद्धा-

यतासे मृतलके रिलक और ज्ञानसम्पन्न लोगोंका अखिएडत निर्वाह होता चला जायगा और इस अलोकिक वृद्धपर धर्म-रूप तथा मोद्यूष्ट्य मधुर फल-पुष्पोंकी बहार सदैव बनी रहेगी। सारांश, अनेक कवि-कल्पना-तरङ्गोंके और नीति-शास्त्रकी उत्तम शिद्धा देनेवाले चित्ताकर्षक प्रसङ्ग, तथा असंस्य आत्माओंको शान्ति और सुख देनेवाले तत्त्वज्ञानके उदात्त विचार इस प्रन्थमें अधित हैं। इसलिये सौतिकी इस गर्वोक्तिको यथार्थ हो कहना पड़ता है कि "महाभारतमें सब कुछ हैं; जो इस प्रन्थमें नहीं है, वह अन्य खानमें भी प्राप्त न होगा।"

ऐसे ग्रन्थका विचार विवेचक दृष्टिसे करना कहाँतक उचित होगा, इस विषय-की कुछ चर्चा करना यहाँ आवश्यक जान पड़ता है। इसमें कुछ शक नहीं कि जब यह प्रतिपादन किया जाता है कि महाभारतमें श्रमुक भाग सौतिका बढ़ाया हुआ है, तब श्रद्धाल पाठकोंके मनकी प्रवृत्तिमें रसभङ्ग हो जानेका भय होता है। परन्तु यदि यथार्थतः देखा जाय तो ऐसी प्रवृत्ति होनेके लिये कोई कारण नहीं है। पहले तो ग्रन्थके वास्तविक खरूपको जान लेनेसे पाठकोंको आनन्द हुए बिना कभी न रहेगा। दूसरी बात, प्रत्येक मनुष्यकी यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि श्रसम्भाव्य कथात्रोंका यथार्थ और मुल स्वरूप मालूम हो जाय। इस जिहा-धाकी पूर्त्ति करना ही विवेचक ग्रन्थ-कारका प्रधान कर्त्तव्य है। तीसरी वात, महाभारत-ग्रन्थ और महाभारत-कथा-की विवेचक दृष्टिसे जाँच करनेपर भी, उस ग्रन्थ ग्रीर उस कथाका जो खरूप शेष रह जाता है, वह इतना मनोहर श्रीर उदास है कि ज्यासजी तथा महाभारत के सम्बन्धमें पाठकोंके इदयमें रहने-

वाला पूज्य भाव रत्ती भर भी घट नहीं सकता। श्रतएव हमारा इट्ट विश्वास है कि विवेचक हिएसे विचार करनेमें कोई हानि नहीं है। यही समभकर श्रव हम विस्तृत रूपसे इस बातकी चर्चा करेंगे कि सौतिने महाभारतका विस्तार क्यों श्रीर कैसे किया।

भारत क्यों बढ़ाया गया ?

हम पहले कह आये हैं कि जबसे सौतिने महाभारतको वर्तमान खरूप विया है. तबसे अबतक उसमें बहुत ही कम श्रन्तर पड़ा है। किंवहना यह कहा जा सकता है कि सौतिका बनाया हुआ महाभारत इस समय ज्योंका त्यों हम लोगोंके सामने मौजद है। श्रव यदि यह मालम हो जाय कि उसने अपने बृहत् महाभारतकी रचना कव की, तो इस विषयमें अनुमान करनेके लिये सुमीता हो जायगा कि उसने वैशम्पायनके भारत को महाभारतका बृहत् खरूप क्यों दिया। हमारा यह सिद्धान्त है कि शक्के पहले तीसरी शताचीमें महाभारतको वर्तमान स्वरूप प्राप्त हुआ है। हमारा सिद्धान्त सर्वमान्य भी हो गया है। इसका विस्तृत विवेचन आगे किया जायगा। उस समय-की परिखिति पर यदि ध्यान दिया जाय तो मालुम हो जायगा कि महाभारतका निर्माण क्यों किया गया। उस समय हिन्दुस्तानमें दो नये धर्म उत्पन्न हुए थे श्रीर उनका प्रचार भी खुब हो रहा था। शकके लगभग ६०० वर्ष पहले तीर्थं इर महावीरने पहले बिहार प्रान्तमें जैन-धर्मका उपदेश किया और लगभग उसी समयके अनन्तर गौतम बुद्धने अपने वौद्धधर्मका प्रचार किया। इन दोनीं भ्रमोंकी वृद्धि उस समय हो रही थी। विशेषतः बौद्ध-धर्मकी विजय-पताका चारों

श्रोर फहरा रही थी श्रौर सम्राट् श्रशोकने उस धर्मको अपनी राजसत्ताका आश्रय दे दिया था। इससे लोगोंमें अनेक प्रकारके पाखराड-मतोंका प्रसार हो रहा था श्रोर वेदोंके सम्बन्धमें पूज्य भाव नष्ट हो रहा था। इन दोनों धर्मोंने खुल्लमखुला वेदोंकी प्रामाणिकताका अस्वीकार किया थाः श्रीर प्रायः सब लोग कहने लगे थे कि जो श्रपनी बुद्धिमें उचित जान पडे, वहीं धर्म है। ब्राह्मणोंके विषयमें जो थद्धा पहिले थी वह भी उस समय घटने लग गई थी। प्राचीन श्रार्थ-धर्मके वडे वडे सुप्रसिद्ध पुरुषोंको इन दोनों नये धर्मोंके श्रनुयांयी अपनी श्रपनी श्चोर खींच ले जानेका प्रयत्न कर रहे थे । श्रपने श्रपने धर्मकी प्राचीनता सिद्ध करनेके लिये ही इस प्रकार प्रयत किया जा रहा था। जन-समूहमें जिन प्राचीन व्यक्तियोंके सम्बन्धमें बहुत श्रादर था, उन व्यक्तियोंको श्रपने ही धर्मके श्रव्यायी वतलाकर, जन-समृहकी श्रवु-कुलता प्राप्त कर लेनेके लिये, यह सब उद्योग किया जा रहा था। उदाहरणार्थ, जैनोंका कथन है कि वेदोंमें वर्णित प्रथम राजिष ऋषम हमारा पहिला तीर्थे इर है। इसी प्रकार बौद्धोंका कथन है कि दशरथ-पुत्र राम बुद्धके पूर्व-जन्मका एक अवतार है। श्रीकृष्णके विषयमें तो उन लोगोंने बहुत ही तिरस्कार प्रकट किया था। जैन धर्मके एक ग्रन्थमें यह वर्णन पाया जाता है कि श्ररिष्टनेमिके उपदेश-से यादव लोग जैन मतानुयायी हो गये, परन्तु श्रीकृष्ण नहीं हुए। उसी ग्रन्थमें यह भी लिखा है कि श्ररिष्टनेमिने थी-रुणासे कहा-"तू कई युगीतक नरकमें रहेगाः फिर तेरा जनम मनुष्य-योनिमें होगाः श्रीर जब तुभे जैन धर्मका उपदेश प्राप्त होगा, तब तेरा उद्धार होगा।" इस

कथासे भली भाँति प्रकट होता है कि श्रीकृष्णके विषयमें जैन धर्म कैसे विल-त्तण श्रनादर-भावका प्रचार कर रहा था। इसी प्रकार इन दोनों धर्मोंने वेदोंके देवताओं की भी वडी दुईशा कर डाली थी। इन धर्मोंमें यह प्रतिपादन किया जाने लगा कि इन्द्रादि देवता जैन श्रथवा बुद्धके सामने हाथ जोडकर खड़े रहते हैं: यहाँतक कि चे उनके पैरोंके तले पड़े रहते हैं। इन धर्मोंने वेदोंके यज्ञ-याग आदि कर्मोंकी मनमानी निन्दा करना आरंभ कर दिया था। वैदिक यहाँमें पशकी हिंसा हुआ करती थी और ये नये धर्म "श्रहिंसा परमोधर्मः" के कट्टर श्रभिमानी थे, इसलिये उन्हें ये सब वैदिक यज्ञ-याग श्रादि कर्म नापसन्द थे। सनातन धर्ममें भी अहिंसाके तत्त्वका उचित उपदेश था ही: इसलिये लोगोंको हिंसायकत यज्ञोंमें धीरे धीरे वहुत कठिनाई होने लग गई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि इन दोनों नये धर्मों का प्रचार बहुत ज़ोरसे होने लगा। इन ध्रमौंने प्राचीन तीर्थ-स्थानों, श्रौर बतों श्रादिके विषयमें भी श्रपना श्रनादर-भाव प्रकट किया था। वुद्धने एक समय कहा था कि यदि तीथौं में डुबकी लगानेसे पुर्य अथवा मोच की प्राप्ति होती होगी, तो मेंढ़ क भी पूर्य-वान और मुक्त हो जायँगे। और ऐसा कहकर उसने काश्यप नामके एक ब्राह्मणको तीर्थ-स्नानसे परावृत्त किया था। इस प्रकार सनातनधर्मके मतीं श्रीर पूज्य माने हुए व्यक्तियोंके सम्बन्धमें श्रनादर-भावका प्रचार करके ये नये धर्म स्वयम् अपनी वृद्धि कर रहे थे। स्मरण रहे कि सनातनधर्म पर जो यह हमला किया गया था, वह भारतवासियोंके इतिहासमें पहला ही था।

बौड़ों और जैनोंके धर्म-प्रसारके

कारण, सनातन धर्मके एक विशिष्ट भाग पर तो बहुत ही ज़ोरका हमला हुआ था। चातर्वएर्यकी संस्था सनातन धर्मका एक प्रधान अङ्ग है। वौद्ध धर्मने, श्रोर जैन-धर्मने भी, इस व्यवस्थाका त्यांग कर दिया। सव जातियोंमें बौद्ध संन्यासी होने लगे ह्योर सब लोग एकत्र भोजन करने लगे। काश्यप ब्राह्मण श्रीर उप्पली नाई दोनों बौद्ध भिन्नु होकर सर्व साधारएके श्रादर-पात्र समभे जाने लगे। चातुर्वएर्य-की प्राचीन संस्थाको बनाये रखकर, मोच-धर्ममें सव लोगोंको समान अधि-कार देनेकी, श्रीकृष्णको प्रचलित की हुई, व्यवस्था विगड गई और वौद्ध और जैन उपासकोंने चातुर्वर्ग्य-धर्मका त्याग सब वातोंसे कर दिया। इसी प्रकार श्राश्रम-व्यवस्था भी विगड़ गई श्रोर समाज-में गड़बड़ी होने लगी। पहले चतुर्थाश्रम-का अधिकार केवल ब्राह्मणों और अन्य श्रार्य-वर्णोंको ही थाः परन्तु बौद्ध भिचुश्रोंने इस आश्रमका श्रधिकार सब लोगोंको दे दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि अशिचित श्रौर केवल पेट पालनेवाले, नीच जातिके, सैंकड़ों बौद्ध भिन्नु भीख माँगते हुए इधर उधर घूमने लगे। इन नये धर्मोंके अनुयायी यह मान वैठे थे कि धर्मका आचरण केवल नीतिके आचरणके सिवा श्रौर कुछ नहीं है। तत्त्व-विचारके सम्बन्धमें भी इन धर्मोंने श्रपना कदम इतना आगे वढ़ा दिया था कि लोगोंके मतोंमें एक तूफान सा उत्पन्न हो गया। इन धर्मोंमें प्रकट रूपसे यह प्रतिपादन किया जाने लगा कि परमेश्वर है ही नहीं: श्रीर कुछ नहीं तो, मनुष्यको इस बातका विचार ही नहीं करना चाहिये कि पर-मेश्वर है या नहीं। उनकी प्रवृत्ति इस सिद्धान्तको स्थापित करनेकी श्रोर हो गई थी कि मनुष्यमें ब्रात्मा भी नहीं है।

सारांश, ये दोनों नये धर्म सब प्रकारसे सनातन-धर्मके मतींके विरुद्ध थे श्रीर उन्होंने उस समयके लोगोंमें निरीश्वरवाद तथा निरात्मवाद प्रचलित कर दिया था।

शकके पहले तीसरी शताब्दीमें हिन्द-स्थानकी जो धार्मिक अवस्था थी उसका वर्णन ऊपर किया गया है। उससे यह वात मालम हो जायगी कि सनातन-धर्म पर बौद्ध श्रीर जैन-धर्मोंके कैसे जोरदार हमले हो रहे थे। उस समय अशोककी राज-सत्ताके कारण वौद्ध-धर्मकी श्रभी पूरी पूरी विजय नहीं हुई थी। श्रीर यदि हुई भी हो तो उसका केवल श्रारम्भ ही हुत्रा था। परन्तु सनातन-धर्मकी अन्तः-स्थिति उन हमलोंको सहनेके लिये उस समय समर्थ न थी। हमारे प्राचीन सना-तन-धर्ममें भी उस समय अनेक मत-मता-न्तर प्रचलित हो गये थे श्रोर उनमें श्रापस में कलह हो रहा था। शत्रुश्रॉके हमलोंका प्रतिकार करनेके लिये जिस एकता और मेलकी आवश्यकता हुआ करती है, वह उस समय सनातन-धर्ममें विलकुल नहीं थी। कुछ लोग तो विष्णुको प्रधान देवता मानकर पाञ्च-रात्र मतके त्रमुयायी हो गये थे: कुछ लोग शिवको प्रधान देवता मानकर पाग्रपत-मतका श्रवलम्बन करने लग गये थे: श्रीर कुछ लोग देवीको प्रधान शक्ति मानकर शाक्त मतके अनुयायी हो गये थे। कोई सूर्यके उपासक थे, तो कोई गणपतिके श्रोर कोई स्कन्दके। इन सब उपासकोंमें पूरा पूरा शत्रु-भाव था। इनमें न केवल देवता-सम्बन्धी, किन्तु तत्त्व-विचारी के सम्बन्धमें भी, बहुत बड़ा विरोध था। यज्ञयागके विषयमें भी लोगोंके विचार डग-मगाने लग गये थे। तत्त्वज्ञानके विषयमें वेदान्त श्रीर सांख्यका भगड़ा हो रहा था। सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि सनातन-धर्मके आद्य यन्थ वेद सर्थ- साधारणके लिये दुर्बोध हो गये थे। उनकी समसमें आने योग्य कोई एक धर्म-यस्थ उस समय न था। प्राचीन समयके बड़े बड़े पूर्वजों श्रोर अवतारी पुरुषोंके वर्णन इधर उधर विखरे हुए पड़े थे श्रीर वे गाथा रूपी छोटे छोटे ऋाख्यानोंमें प्रायः लुप्त से हो गये थे। उस समय ऐसे प्रन्थीं का बहुत बड़ा श्रभाव था जो नीति श्रौर धर्मकी शिज्ञा देकर समाजमें धार्मिक तथा नीतिमान् होनेकी स्फूर्ति उत्पन्न कर सकते। ऋषियों श्रीर राजाश्रोंकी बिखरी हुई वंशावली सुतों श्रथवा भाटोंकी जीर्ण पोथियोंमें प्रायः नष्ट सी हो गई थी श्रीर पराक्रमी पूर्वजोंका प्रायः विसारण ही हो गया था। ऐसी अवस्थामें उक्त दो नास्तिक धर्मीका सामना करना, सनातन-धर्मके लिये, श्रीर भी श्रधिक कठिन हो गया। सनातन-धर्माभिमानी विद्वान् परिडतींको यह भय होने लगा कि बौद्ध श्रीर जैन धर्मोंकी ही विजय होगी।

श्रब यहाँ प्रश्न उठता है कि हमारे धर्मके प्रतिपादक जो अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थ है, क्या उनका उस समय अस्तित्व न था? क्या उस समय रामायण श्रीर मन्स्मृति का पता नहीं था ? वेदान्त, न्याय, सांख्य श्रौर मीमांसाके सुत्र उस समय कहाँ चले गये थे ? क्या उस समय पुराण श्रीर इति-हास थे ही नहीं ? इन सब प्रश्नोंका 'नहीं थें यही उत्तर है। ये प्रन्थ इस समय जिस सक्पमें देख पड़ते हैं, उस सक्पमें वे महाभारतके बाद बने हैं। इस काल-निर्णयका विचार प्रसंगानुसार श्रागे किया जायगा। यहाँ सिर्फ़ इतना कह देना काफी होगा कि वर्तमान समयकी रामायण शक-के पूर्व पहिली सदीकी है और वर्तमान मनुस्मृतिका भी समय वही है। वेदान्त-सूत्र श्रीर योग-सूत्र शकके पूर्व दसरी सदीके हैं। उस समय सांख्य स्त्रोंका तों

पता भी न था। वत्साम स्वस्त्पके
पुराण उस समय न थे। ये सव प्रम्थ उस
समय बीज-रूपसे होंगे; और उनका जो
विस्तार इस समय देख पड़ता है वह निस्स-देह महाभारतके अनन्तर हुआ है। किंबहुना
इसमें सन्देह नहीं कि महाभारतके प्रत्यच्च
उदाहरणसे ही इन सब धार्मिक-प्रन्थोंको
पूर्ण खरूप देनेकी स्फूर्ति सनातन-धर्मीय
आचार्योंको हुई। अर्थात्, ऐतिह्यसिक
दिष्टिसे, इन सब प्रन्थोंके पूर्व-खरूपका
निश्चय करनेके लिये इस समय महाभारत
ही एक मात्र साधन उपलब्ध है।

इस प्रकार अशोकके समय, अथवा उस समयके लगभग, बौद्ध और जैन-धर्मोंने सनातन धर्मपर जो हमला किया था, उसका प्रतिकार करनेके लिये सना-तनधर्मावलिम्बयोंके पास कुछ भी साधन या उपाय न था और उनके धर्ममें भिन्न भिन्न मतोंकी खींचातानी हो रही थी। ऐसी अवस्थामें सौतिने भारतको महा-भारतका बृहत् स्वरूप दिया, सनातन-धर्मके अन्तस्य विरोधोंको दूर किया, सब मतोंको एकत्र कर उनमें मेल करनेका यत किया, सब कथाश्रोंका एक स्थानमें संप्रह करके उन कथात्रोंको उचित स्थान देकर भारत यन्थ की शोभा बढाई श्रीर सनातन धर्मके उदात्त खरूपको लोगोंके मतपर प्रतिविम्त्रित करके सनातनधर्मा-वलम्बियोंमें एक नृतन शक्ति उत्पन्न कर देनेका महत्त्वपूर्ण कार्य किया। कुछ लोग यह समभते हैं कि महाभारत-प्रन्थमें श्रनन्त कथाश्रोंका श्राडम्बर मात्र है, परन्तु यह समभना गुलत है। निस्सन्देह महाभारत हाथीके शरीरके समान बहुत बड़ा है; परन्तु वह हाथी वैसा ही सुन्दर, सुश्रिष्ट श्रीर सुबद्ध भी है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ एक सूत्रसे बना हुआ देख पड़ता है। सनातन-धर्मका विरोधरहित उपदेश

करना ही इस सूत्रका प्रधान उद्देश्य है। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये शानुपंगिक रीतिसे तत्त्वज्ञान, इतिहास, राजधर्म, नीति श्रादि श्रनेक विषयोंका समावेश उसमें किया गया है। परिणाम यह हुआ है कि महाभारत-प्रम्थ वर्तमान हिन्दू-धर्म-की सब शाखाओं के लिये, अर्थात् शैव, वैष्ण्व, वेदान्ती, योगी श्रादि सभी लोगों-के लिये, समान भावसे पूज्य हो गया है। इस महाभारतकी रचना व्यासजीकी श्रप्रतिम मूल जयरूपी नींव पर की गई है, इसलिये व्यासजीके अप्रतिम कवित्व, तत्वज्ञान श्रीर व्यवहार-निपुणताकी स्फूर्ति भी सौतिके लिये उत्साहजनक हो गई है। उक्त विवेचनके श्राधार पर अव हम इस वातका विचार करेंगे कि सौतिने श्रपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये भारतसे महाभारत कैसे बनाया।

श्रारंभमें यह कह देना चाहिये कि इस प्रकार विवेचन करना बहुत कठिन कार्य है। हम पहले कह श्राये हैं कि व्यासजीके मुल ग्रंथ श्रीर वैशम्पायनके भारतमें बहुत श्रंतर न होगा । परन्तु भारतमें सिर्फ २४००० श्लोक थे श्रीर महाभारतमें उनके स्थान पर एक लाख स्ठोक हो गये हैं। तब हमें मानना पडता है कि यह अधिक संख्या सौतिकी जोडी हुई है। परन्तु ऐसा मानते हुए भी, जिन ऐतिहासिक प्रमाणोंका उल्लेख ऊपर किये हुए विवेचन-में है, उनके श्रतिरिक्त श्रीर कोई दढ़ प्रमाण नहीं दिये जा सकते: इस विषय-का विचार साधारण श्रनुमानसे ही किया जा सकता है। सोतिने जिन भागोंको अपने समयकी प्रचलित बातों और अनेक गाथात्रोंके श्राधार पर ग्रन्थमें सम्मिलित कर दिया है, उनके संबंधमें यही मानना चाहिये कि वे भाग व्यासजीके उदात्त मूल प्रन्थकी स्फ्रिति से ही जोड़े गये हैं।

पेसी अवस्थामें, एक इष्टिसे, उन मागीका कर्तृत्व भी व्यासजी को ही दिया जा सकता है। जिस प्रकार कुछ लोग अपने विशिष्ट मतोंको सिद्ध करनेके लिये एकाध प्रचित्त भाग बीचमें ही असम्बद्ध रीतिसे जोड़ देते हैं, उस प्रकारका सौतिका यह कार्य नहीं है। संचेपमें कहा जा सकता है कि सौतिके महाभारत-अंथमें प्राचीन-सनातन-धर्मके उदात्त सक्ष्पका ही विशेष-रूपसे आविष्करण किया गया है; और जो नये भाग जोड़े गये हैं वे मूल अन्थ और गाथाओंके ही आधार पर हैं।

(१) धर्मकी एकता।

भारतको महाभारत बनानेम सौतिका प्रथम उद्देश्य यह था कि धर्मकी एकता सिद्ध की जाय। यह अनुमान स्पष्ट है कि मूल भारत-ग्रन्थमें श्रीकृष्णकी प्रशंसा श्रर्थात् विष्णुकी स्तुति श्रधिक है: परंतु हिन्दू धर्ममें विष्णुके सिवा श्रीर भी श्रन्य देवता उपास्य माने जाते हैं। समस्त महा-भारतको सनातनधर्म-ग्रन्थका सर्वमान्य स्वरूप प्राप्त करा देनेके लिये इस बातकी श्रत्यन्त त्रावश्यकता थी कि उसमें श्रन्य देवताश्रोंकी भी स्तुति हो, श्रोर वह भी ऐसी हो कि भिन्न भिन्न उपासनाओं में विरोध न बढ़ने पाये। इसी प्रधान दृष्टिसे सौतिने महाभारतको वर्तमान सक्रप दिया है। विशेषतः वैष्णव श्रौर शैव मतौंका एकी-करण उसने बहुत श्रच्छी तरह किया है। प्रायः लोग प्रश्न किया करते हैं कि शान्ति पर्व और अनुशासन पर्व मृल भारत-में थे या नहीं। हम पहले ही कह आये हैं कि जो पर्व बहुत बड़े हैं वे मूल भारतके नहीं हैं, इसलिये सिद्ध है किये पर्व सौतिके हैं। परन्तु इन पर्वोमेंके विषय मूल भारतके ही हैं। हाँ वार्मिक दृष्टिसे सब मताका समावेश करनेके लिये सौतिने इन पर्वोका

उस समय वेदान्त, सांख्य और योग यही तीम तत्त्वज्ञान प्रचलित थे और इन्हींके एकीकरणका प्रयत्न भगवद्गीताने किया है। उसी प्रयत्नको सौतिने अपने समयमें जारी रक्खा श्रौर उक्त दो नये मतोंके विचार भी उसने श्रपने प्रयत्नमें शामिल कर लिये। इसके लिये सौतिने महाभा-रतमें श्रनेक उपाख्यान श्रीर प्रकरण जोड दिये हैं। पूर्वप्रचलित वेदान्त, सांख्य श्रीर योग इन तीनों मतोंका भी आविष्करण, उनकी उन्नतिके अनुसार, उसने अपने प्रनथमें किया है। ऐसे प्रयत्नका नमृना "अनुगीता" है। यह सौतिका बनाया हुआ नया प्रकरण है। इसके सिवा, सांख्य, श्रीर वेदान्त-सम्बन्धी मतोंका विस्तार-सहित प्रतिपादन करनेवाले अनेक अध्याय स्थान स्थान पर, विशेषतः शान्ति-पर्वमें, पाये जाते हैं। पूर्व कथनके अनुसार पाञ्चरात्र-मतका आविष्करण नारायणीय उपाख्यान जोड़कर किया गया है। श्राश्चर्यको बात है कि महा-भारतमें पाशुपत-मतका उद्घाटन सौतिने विस्तार-सहित नहीं किया । इसमें सन्देह नहीं कि यह मत उस समय प्रचलित था श्रौर सौतिने उसका स्पष्ट रीतिसे उल्लेख भी किया है। सौतिके महाभारतके समय जो मत प्रचलित थे उनका उल्लेख इस प्रकार किया गया है:-

सांख्यं योगः पाञ्चरात्रं वेदाः पाश्चपतं तथा।
ज्ञानान्येतानि राजपं विद्धि नानामतानि वै॥
उमापतिर्भृतपतिः श्रीकराठो ब्रह्मणः सुतः।
उक्तवानिद्मव्ययो ज्ञानं पाश्चपतं शिवः।
पाञ्चरात्रस्य कृत्स्मस्य वेत्ता तु भगवान् स्वयं॥
(शां० श्र० ३४६, ६४-६६)

इस प्रकार पाशुपत श्रीर पाश्चरात्र दो भिन्न मतींका स्पष्ट उल्लेख महाभारतमें किया गया है। परन्तु सौतिने श्रागे चल- कर कहा है कि ये सब एक ही नारायम् के उपासना-मार्ग हैं:—

सर्वेषु च नृपश्रेष्ठ ज्ञानेष्वेतेषु दश्यते।
यथागमं यथाज्ञानं निष्ठा नारायणः प्रभुः॥
अर्थात्—"हे श्रेष्ठ नृप, यद्यपि इतने
भिन्न भिन्न पन्थ हैं, तथापि इन सबमें एक
बात समान देख पड़ती है। वह यह है
कि इन सब मतोंमें आगम और ज्ञानके
अनुसार जो परम-गति निश्चित है वह
प्रभु नारायण ही है।"

सांख्य, योग श्रादि भिन्न भिन्न तत्त्व-ज्ञानोंमें जो विरोध था उसको हटाकर इन सब मतोमें सौतिके महाभारतने एकता कैसे स्थापित की, इस बातकी विस्तार-सहित चर्चा करनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं है। आगे चलकर इस विषयका विस्तारपूर्वक वर्णन किया जायगा। सना-तन धर्मके अन्य और आवश्यक अङ्ग भी हैं; जैसे यज्ञ, याग, तीर्थ, उपवास, वत, दान इत्यादि । इनका भी विस्तृत वर्णन महाभारतमें स्थान स्थानपर सौतिने किया है। यह वर्णन विशेषतः श्रनुशासन पर्वमें पाया जाता है। हिंसाका विषय यश्चके सम्बन्धमें बहुत महत्त्वका है। सनातन-धर्मावलिम्बयोंमें बौद्धोंके पूर्वसे ही यह वाद्विवाद हो रहा था कि यज्ञमें पशुका वध किया जाय या नहीं। वैदिक मतक श्रभिमानी लोग पशुवधको आवश्यक मानते थे। सौतिने दोनोंके मतोंको मान्य समभकर महाभारतमें उनको स्थान दे दिया है। इस सम्बन्धमें उसने एक पूरा श्रध्याय ही लगा दिया है। जब युधिष्ठिर-के अश्वमेध यक्षका पूरा पूरा वर्णन हो चुका, तब सम्भव है कि उसमें की हुई हिंसाका वर्णन सर्वसाधारणको कुछ खटकने लगा हो। "अनेक देवताओंके उद्देशसे अनेक पशु-पत्ती खम्भेसे बाँधे गये; उत्कृष्ट मुख्य अध्वरत्नके

रिक्त तीन सौ पशु यज्ञस्तम्भ से बाँधे गये थे" इत्यादि वर्णन सुनकर श्रहिंसा-मत-वादी लोगोंको बहुत बुरा लगता होगा। यह प्रवृत्ति बौद्ध श्रीर जैन धर्मीके उदय-के अनन्तर और भी अधिक वढ़ गई होगी। यहाँ जो नकलकी कथा दी गई है उसका उद्देश हिंसायुक्त अश्वमेधकी निन्दा करना ही है। एक ऋषिने अनाजके कुछ दाने भोजनके लिये चुन लिये थे। उसी-का दान उसने एक विप्र अतिथिको कर दिया और स्वयं प्राण्त्याग किया। नकुल-ने कहा-"उस सक्थु यज्ञमें मेरा मस्तक सुवर्णमय हो गया है श्रीर श्रव यह जानने-के लिये कि मेरा शेष अङ्ग युधिष्ठिरके यशमें सुवर्णमय होता है या नहीं, मैंने यहाँ भी लोट-पोट की।" परन्तु उसका शरीर सोनेका नहीं हुआ, इसलिये अन्तमें यज्ञ-समाप्तिके समय उसने यक्षकी निन्दा की। इस कथामें प्रत्यच रीतिसे यह प्रश्न उठाया गया है कि यह हिंसायुक्त होना चाहिये या नहीं। आगे यह वर्णन है कि वैशस्पायनने वसुके शापकी कथा सुनाई और ऋषियोंने अहिंसायुक्त यशके ही पत्तका स्वीकार किया। (अ० ६०) इसके बादके अध्यायमें अगस्त्यके यज्ञकी कथा है। इसमें कहा गया है कि बीजसे ही यज्ञ हुआ करता था; श्रीर जब इन्द्रने क्रोधसे वर्षा बन्द कर दी तब अगस्त्यने प्रतिक्षा की कि मैं अपने सामर्थ्यसे बीज उत्पन्न कहुँगा। इससे स्पष्ट है कि उक्त नकुल-श्राख्यान श्रीर अध्याय दोनों मूल भारतके अनन्तरके होंगे। भारत-कालमें श्रहिंसा-पच कुछ इतना पबल न था। आगे चलकर जब यह पत्त प्रवल होने लगा तब ये कथाएँ बनी होंगी श्रीर सौतिने उन्हें श्रपने महाभारतमें शामिल कर दिया होगा। यह पत्त बहुधा विज्ञा होगा क्योंकि अगस्त्य दिवालके ऋषि हैं। परन्त इन कथाओंसे बैदिक

हिंसाभिमानी पत्तको कोध आया। तब सौतिने अन्तिम अध्यायमें यह जोड़ दिया कि नकुलने जो निन्दा की है वह कोधको शाप होनेके कारण उस स्कूपमें कोधके द्वारा की गई है। सारांश, यद्यपि यहाँ दोनों पत्तोंका वर्णन किया गया है, तथापि निर्णय कुछ भी देख नहीं पड़ता। मालूम होता है कि सौतिने दोनों पत्तोंको राज़ी रखनेके लिये यह यल किया है।

(२) कथा-संग्रह ।

महाभारतका विस्तार करनेमें सौति-का दूसरा उद्देश कथात्रींका संग्रह करना देख पड़ता है। अनेक राजाओं और ऋषियोंकी जो कथाएँ लोगोंमें अथवा छोटी छोटी गाथाओंमें इधर उधर विखरी हुई थीं, उन सवका किसी एक स्थानमें संग्रह किया जाना श्रत्यन्त श्राव-श्यक था। इन कथाश्रोंसे सनातन-धर्मको एक प्रकारका उत्तेजन मिल सकता था। इसके अतिरिक्त, यह भी आवश्यक था कि प्राचीन ऐतिहासिक बातोंको एकत्र करके सनातनधर्मियोंके पूर्वजोंके सम्बन्धमें श्रमिमान जायत कराया जाय। सम्भव है कि भारतीय-कथाके सम्बन्धमें भी श्रनेक भिन्न भिन्न बातें पीछेसे प्रचलित हुई हों। इन सब बातोंको एकत्र कर सौतिने महाभारतको समस्त कथाश्रोंका एक बृहत भाएडागार बना देनेका प्रयत्न किया है। बौद्ध और जैन लोग हिन्दुस्थानके प्राचीन प्रसिद्ध पुरुषी-की कथात्रोंको अपने अपने धर्मके खरूप में मिला देनेका जो प्रयत्न कर रहे थे, उसमें रुकावट डालनेका काम सौतिने श्रपने महाभारतकी कथाओं द्वारा श्रच्छी तरहसे किया। इस प्रकार जिन श्राख्यानी श्रीर उपाख्यानीको सौतिने महाभारतमें शामिल किया है, उन सबको अलग अलग करके यहाँ बतला देना कठिन है। यह नहीं कहा जा सकता कि उन सवकी रचना बिलकुल नये सिरसे की गई हो। ये सब कथाएँ प्राचीन हैं, उस समयके लोगोंकी समभमें वे पहलेसे ही प्रचलित थीं ब्रोर राष्ट्रीय भावोंके साथ उनका घनिष्ट सम्बन्ध हो गया था, इसी लिये महाभारत जैसे राष्ट्रीय प्रन्थमें उनका संग्रह किया जाना बहुत श्रावश्यक था। ऐसी कथाश्रोंके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

(१) षोड़श राजीय उपाध्यान द्रोण-पर्वमें है। यह एक प्राचीन श्राध्यान है। इसका मूल खरूप शतपथ ब्राह्मणमें देख पड़ता है। श्रार्यावर्त्तमें श्रश्वमेध करनेवाले जो प्रसिद्ध राजाहों गये हैं, उनकी फेहरिस्त इसमें दी गई है श्रोर उनका उत्साहजनक वर्णन भी इसमें किया गया है। सम्भव है कि यह श्राध्यान मूल भारतमें भी हो। परन्तु इस बातकी श्रधिक सम्भावना है कि यह पीछेसे सौति द्वारा शतपथसे लेकर जोड़ा गया हो।

(२) रामायणकी पूरी कथा वन पर्वके रामोपाख्यानमें है। निस्सन्देह यह पर्व सौति द्वारा जोड़ा गया है, क्योंकि इतने बड़े उपाख्यानका मूल भारतमें होना सम्भव नहीं। इस पूरे उपाख्यानको पढ़ते समय यह स्पष्ट जान पड़ता है कि इसमें किसी अन्य प्रसिद्ध प्रन्थका संदिप्त स्वरूप दिया गया है। महाभारतमें वाल्मीकिका स्पष्ट उल्लेख अन्य स्थानीमें पाया जाता है: परन्तु जिस प्रनथका यह संविप्त स्वरूप है वह प्रन्थ वर्तमान वाल्मीकि-रामायण नहीं है, बल्कि निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उसका पहलेका मूल खरूप होगा। इसके कुछ कारण यहाँ बतलाये जा सकते हैं। हम पहिले कह चुके हैं कि वर्तमान वास्मीकि रामायणका समय है

शकके पूर्व पहिली सदी और महाभारत का समय शकके पूर्व तीसरी सदी है। इस कारणके सिवा इस उपाख्यानके श्रान्तरिक प्रमाणोंसे भी यही बात सिक् होती है। यह बात सब लोगोंकी समभमें श्रा सकती है, कि ज्यों ज्यों समय श्रधिक बीतता जाता है, त्यों त्यों किसी कथा-भागमें श्रधिकाधिक श्रसम्भव दन्तकथाश्री-की भर्ती होने लगती है। इसलिये यह साधारण प्रमाण माना जा सकता है, कि जिस कथाभागमें अलौकिक चमत्कारोंकी कमी है वह पाचीन है। इस दृष्टिसे देखा जाय तो मालूम होगा कि रामोपाख्यानके कथाभागमें वर्तमान रामायणके कथा-भागसे कम अलौकिक चमत्कार हैं। उदा-हरणार्थ:-(१) पहिली बात यह है कि श्री-रामचन्द्रके जन्मके लिये ऋष्यश्रङ्ग द्वारा की हुई पुत्रेष्टिका वर्णन इस आख्यानमें नहीं है। (२) रावण और कुवेरका सम्बन्ध भिन्न रीतिसे बतलाया गया है। इस श्राख्यानमें कहा गया है कि दुन्दुभि नामक गन्धर्व-स्त्री मन्धरा हो गई: परम्त श्राश्चर्य है कि रामायणमें यह बात नहीं है। जटायुकी भेंटका वर्णन सरल और भित्र रीतिसे दिया गया है। (३) जब थी-रामचन्द्रजीने समुद्रके किनारे दर्भासन पर वैठकर समुद्रका चिन्तन किया, उस समय समुद्रकी भेंट खप्नमें हुई, साजात नहीं। (४) लदम शको शक्ति लगने और हनुमान द्वारा द्रोणागिरिके लाये जानेकी कथा इस आख्यानमें नहीं है। (4) क्रम्भ-कर्णको लच्मणने मारा है। (६) इन्द्रजित्को भी उन्होंने मारा है: परन्त इन्द्रजितके श्रदश्य होनेवाले रथकी कथा, श्रर्थात् रथ-की प्राप्तिके लियें कुम्भिलाका यह करने जानेकी कथा, इस श्रख्यानमें नहीं है। यहाँ सबसे श्रधिक महत्त्वकी बात यह है कि रामने रावणको ब्रह्मास्त्रसे माराः यहाँ यह

वर्णन नहीं है कि रावणके मस्तक कटकर बार वार उत्पन्न हो जाया करते थे श्रीर रावणके गलेमें श्रमृतका कुएड था। श्रस्तु। यहाँ थोड़ा सा विषयान्तर हो गया है; परन्तु कहनेका तात्पर्य यही है कि वन पर्वका रामोपाल्यान मूल भारतका नहीं है, उसे सौतिने मूल वाल्मीकि रामायण-से लिया है।

(३) शल्यपर्धमें जो सरस्वती-श्राख्यान है वह तो स्पष्ट रूपसे सौतिका मिलाया इस्रा है। श्राख्यानका वर्णन इस प्रकार है। भीम श्रीर दुर्योधन दोनों गदा-युद्धके लिये तैयार हो गये हैं और भारती युद्ध-का अत्यन्त महत्त्वका अन्तिम दश्य आरम्भ हो रहा है। इतनेमें सरस्वती-यात्रासे लौट कर बलराम वहाँ श्रा पहुँचे। बस, गदा-युद्धका वर्णन एक श्रोर पड़ा रहा श्रीर जनमेजयके प्रश्न करने पर वैशम्पायन सरस्वती नदीके महत्त्व और यात्राका वर्णन करने लगे। इसके लिये स्थान भी कुछ थोड़ा नहीं दिया गया है। युद्ध-वर्णन-के समय किये हुए इस विषयान्तरमें लगभग १६ श्रध्याय (३५ से ५४ तक) लगा दिये गये हैं श्रोर इसीमें दो तीन उपकथाएँ भी आ गई हैं। यहाँ स्कन्दके अभिषेक और तारकासुरके युद्धका वर्णन है। सम्भव है कि यहाँ सौतिको इस सरस्वती-उपाख्यानकी आवश्यकता हुई हो; क्योंकि जिस सरस्वतीकी महिमा प्राचीन समयसे हिन्दुस्थानमें बहुत मानी गयी है उसका वर्णन महाभारतमें कहीं न कहीं श्रवश्य होना चाहिये था। परन्तु स्थान श्रीर प्रसङ्गकी दृष्टिसे देखा जाय तो कहना पड़ता है कि इस उपाख्यानको यहाँ जोड़नेंमें सौतिको सफलता प्राप्त नहीं हुई।

(४) विश्वामित्रके ब्राह्मण होनेका

शाख्यान।

- (५) पौष्य श्रीर पौलोमी उपाख्यान भी, जिन्हें सौतिने श्रारम्भमें जोड़ा है, इसी प्रकारके हैं। ये वहुत प्राचीन दन्त-कथाश्रोंकी वातें हैं श्रीर इन्हें संप्रह-की दृष्टिसे सौतिने श्रपने ग्रन्थमें स्थान दिया है।
- (६) नल और दमयन्तीका आख्यान। श्रायोंकी राष्ट्रीय दन्त-कथाश्रोमें यह एक श्रत्यन्त मनोहर श्राख्यान है। इस बात-का निश्चय नहीं किया जा सकता कि यह श्राख्यान मूल महाभारतका है श्रथवा नहीं: परन्तु जब इसकी लम्बाई पर ध्यान दिया जाता है, तब प्रतीत होता है कि यह मुल भारतका न होगा। इस आख्यानमें वर्णित कथा इतनी सुन्दर, सनोहर श्रीर सुरस है कि उसे महाकवि व्यास-कृत ही कहनेको जी चाहता है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह कथा पहले छोटी होगी। इसमें ऐसा कोई वर्णन नहीं पाया जाता जो मर्यादा, शक्यता और सम्बन्धके परे हो। इस दृष्टिसे तो यही मालूम होता है कि यह कथा मूल भारतकी होगी। यही हाल सावित्री आख्यानका है। यह श्रत्यन्त प्राचीन श्राख्यान मूलभारतमें होगा। इसका विस्तार भी बहुत कम है। नल श्रीर दमयन्तीकी कथाके समान यह कथा भी अत्यन्त मोहक और उदात्त नीतिकी पोषक है। इन दोनों श्राख्यानोंके सम्बन्धमें निर्णयात्मक दृष्टिसे कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इसमें सन्देह नहीं कि ये दोनों श्राख्यान राष्ट्रीय हैं।

उक्त विवेचनसे प्रकट होगा कि भारत-इतिहाससे विभिन्नजो दन्तकथाएँ प्रचलित थीं उनको महाभारतमें शामिल कर देनेका यत्न सौतिने किया है। इसी प्रकार व्यास श्रीर वैशम्पायनके समयसे लेकर सौतिके समय तक, भारती इति-हासके ही सम्बन्धमें जो श्रनेक दन्तकथाएँ

प्रचलित हो गई थीं, उन्हें भी इस प्रन्थमें स्थान देना आवश्यकथा। इन सब कथाओं का वर्णन सौतिने स्थान स्थान पर किया है श्रीर इन्हींके श्राधार पर उसने श्रपने ग्रन्थमें भारती कथाकी रचना की है। श्रब इसका विचार किया जायगा कि ऐसी कथाएँ कौन सी हैं। (१) श्रास्तिककी कथा इसी प्रकारकी है। यह बात हर एक विवेचकके ध्यानमें आ सकती है कि यथार्थमें नाग मजुष्य जातिके ही होंगे: परन्त समयके हेर फेरसे लोगोंकी कल्पनामें यह अर्थ हो गया कि वे प्रत्यच नाग यानी सर्प थे। परीचितकी हत्या करनेवाला तत्तक कोई मनुष्य रहा होगा श्रीर जनमेजयने जो सर्पसत्र किया वह कुछ सचमुच सपौंका सत्र नहीं था, किन्त नाग जातिके मनुष्योका संहार करनेका प्रयत्न था। परन्त जब एक बार सर्प-सम्बन्धी कल्पना प्रचलित हो गई, तब उसका त्याग कर देना संभव नहीं थाः इसी लिये वर्त्तमान उपाख्यानसे यह बात देख पडती है कि तत्तक तथा अन्य बचे हुए नागोंकी रचा श्रास्तिक ने किस प्रकार की। (२) श्रंशावतार-वर्णन की कथा भी इसी प्रकारकी है। इतिहाससे पता लगता है कि प्रायः सब प्राचीन लोगों-में यह कल्पना प्रचलित हो गई थी कि प्रत्येक ऐतिहासिक व्यक्ति किसी न किसी देवताका अवतार या पुत्र है। इसी कल्पनाके अनुसार महाभारतमें भी भारती वीर पुरुषोंकी उत्पत्ति बतलाई गई है। आदिपर्वके अध्याय ५१और ६६ में सौतिने पचलित विचारके अनुसार श्रंशावतारका वर्णन किया है। मूलग्रन्थ-में कहीं कहीं इसके विरुद्ध भी कुछ विधान पाये जाते हैं। इससे जान पड़ता है कि श्रंशावतारकी यह कल्पना नृतन है। (३) पाँच पतिके साथ द्रौपदी के

विवाहकी कथा भी ऐसी ही है। उसका समर्थन करनेके लिये प्राचीन समयमें भिन्न भिन्न कथाएँ प्रचलित हो गई होंगी श्रोर इन सब कथाश्रोंको श्रपने यन्थमें शामिल करना सौतिको श्रावश्यक प्रतीत हुआ होगा । इन सब दन्तकथाओं के लिये यह कल्पना मूल श्राधार है कि द्वीपदी स्वर्गलच्मीका अंशावतार है। (४) दुर्योधनके विषयमें कुछ चमत्कारिक कथात्रोंका प्रचलित हो जाना श्रसम्भव न था । चित्ररथ दुर्योधनको पकड़कर ले गया, यह कथा इसी प्रकारकी है। यह कल्पना कुछ विलद्मण सी आन पड़ती है कि जब दुर्योधन छटकर श्राया तब वह प्रायोपवेशन करने लगा श्रीर कृत्या उसको पाताल लोकमें ले गई (वन पर्व, अध्याय २४१ और २५०)। (५) दुर्वासा ऋषि द्वारा पांडवोंके सताये जानेकी कथा भी पीछेसे बनी है और उसे सौतिने महाभारतमें स्थान दे दिया है (अध्याय २६१)। (६) युद्ध के समय सेनापतिका पहिलेसे ही यह कह देना आश्चर्यकारक प्रतीत होता है कि-"मैं श्रमुक श्रमुक काम करूँगा" और "में अमुक रीति से मरूँगा"। इसी प्रकार युद्ध-सम्बन्धी पराक्रमका वर्णन श्रतिशयोक्तिसे किया गया है। उदाहरणार्थ, यह कल्पना पीछेसे की हुई जान पड़ती है कि भीमने द्वोणके रथको सात बार उठाकर फेंक दिया। श्रर्जनके रथके सम्बन्धमें जो कल्पना है वह भी इसी प्रकार पीछेसे की गई होगी। यह दन्त-कथा सचमुच चमत्कारिक है कि ज्योंही श्रीकृष्ण अर्जुनके दिव्य रथसे नीचे उतरे त्योंही वह जलकर भस्म हो गया: क्योंकि श्रीकृष्ण तो प्रति दिन रथसे नीचे उतरा ही करते थे। चमत्कारयुक्त ऐसी कथाएँ महाभारतमें बहुत हैं। इस बातका निर्णय करना कठिन है कि इन सब कथाओं में

से मूल कीनसी है और सौतिक समय कौनसी नयी कथाएँ प्रचलित हुई थीं।

(३) ज्ञान-संग्रह।

महाभारत में दन्तंकथाश्रोंके संग्रहका सौतिका उदेश जैसे स्पष्ट देख पड़ता है, वैसेही उसने सव प्रकारके ज्ञानका भी संब्रह इस ब्रन्थमें किया है। इसमें भी संदेह नहीं कि राजनीति, धर्मशास्त्र, तत्वज्ञान, भूगोल, ज्योतिष श्रादि शास्त्र-विषयोंकी वातें एकत्र प्रथित करनेका उसका उद्देश था। उदाहरणार्थ, भूगोल-सम्बन्धी जानकारी और भारतवर्षके भिन्न भिन्न देशों तथा नदियोंकी जानकारी भीष्म पर्वके आरम्भमें दी गई है। धृतराष्ट्र ने सञ्जयसे पूछा कि जब कि कौरव और पांडव भूमिके लिये युद्ध करनेवाले हैं, तब में जानना चाहता हूँ कि यह भूमि कितनी बड़ी है श्रीर समस्त भूलोक किस तरहका है। सचमुच यह प्रश्न ही चमत्का-रिक है। क्या यह आश्चर्य नहीं है कि युद्ध सम्बन्धी बातोंकी चर्चा न कर धृतराष्ट्र कुछ श्रीर ही बातें जानना चाहते हैं ? भूगोल सम्बन्धी जानकारीका कहीं न कहीं दिया जाना आवश्यक था, इसलिये सौतिने उसको यहीं शामिल कर दिया है। यहाँ पूर्वापार-सम्बन्धका विच्छेद भी हो गया है। बारहवें श्रध्यायके अन्तमें धृतराष्ट्र श्रौर सञ्जय परस्पर सम्भाषण कर रहे हैं: परन्तु अगले अध्यायके आरम्भमें ही सञ्जय युद्ध-भूमिसे घवराता हुआ लौट श्राता है श्रीर भीष्मके मारे जानेका हाल सुनाता है। परन्तु इस बातका पता भी नहीं कि सञ्जय युद्ध भूमिपर कब गया था। दूसरा उदाहरण सभापर्वके "कचित्" अध्यायका है। युधिष्ठिर सभामें वैठे हैं; वहाँ नारद ऋषि श्राये श्रीर उन्होंने राज्य-मबन्धके सम्बन्धमें युधिष्ठिरसे कई प्रश

किये; जैसे—"तुम अपने सैनिकोंको समय पर वेतन देते हों न ? प्रतिदिन सबेरे उठकर राज्यके आय-व्ययकी जाँच करते हो या नहीं ?" इन सब प्रश्नोंसे जान पड़ता है कि मानों नारद युधिष्ठिरकी परीचा ही ले रहे हैं। इस अध्यायमें उत्तम राज्य-प्रवन्धके संव नियम वड़ी मार्मि-कताके साथ एक स्थानमें प्रथित किये गये हैं। इसी प्रकार ज्योतिष-सम्बन्धी बातें वनपर्व श्रौर शान्तिपर्वमें दी गई हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि वहाँ इन सब वातोंकी कोई विशेष आवश्यकता थी। जब भीम और हनुमानकी भेंट हुई तब भीमने चतुर्युग सम्बन्धी वाते पूछी और हनुमानने उनका वर्णन किया। सांख्य श्रीर योग तत्वज्ञानोंके मतोंका वर्णन स्थान स्थान पर, विशेषतः शान्ति पर्वमें, विस्तार-सहित और वार बार दिया गया है। वक्तृत्वशास्त्र (Rhetoric) सम्बन्धी कुछ तत्त्व सुलभा और जनकके सम्वादमें बत-लाये गये हैं। वे सचमुच मनोरञ्जक हैं। न्यायशास्त्रके भी कुछ नियम इसी सम्वादसे निष्पन्न होते हैं। सारांश, सौतिने अपने ग्रन्थमें श्रनेकशास्त्र-विषयक वातोंको एकत्र करनेका प्रयत्न किया है।

(४) धर्म और नीतिकी शिक्षा।

सौतिने महाभारतमें सनातन-धर्मका
पूर्ण रीतिसे उद्घाटन करनेका यत्न किया
है। जैसा कि हमने पूर्वमें कहा है, इसी
सबबसे, यही माना जाता है कि महाभारत
एक धर्मशास्त्र अथवा स्मृति है। इसमें
स्थान स्थानपर सनातन-धर्मके मुख्य तत्त्व
बतलाये गये हैं। इन तत्त्वोंका विस्तार
मुख्यतः अनुशासन और शान्तिपर्वमें पाया
जाता है। अन्य स्थानोंमें भी इसी विषयकी
चर्चाकी गई है। उदाहरणार्थ, आदि पर्वमें
जो उत्तर-ययाति आख्यान है (अध्याय

८६-६३), वह पीछेसे सौतिने जोड़ा है। इसमें जो स्रोक हैं वे बड़े वृत्तके हैं और समस्त श्राख्यान भी मुख्य कथासे सम्बद्ध नहीं है। परन्त इसमें सनातन-धर्मके तत्वोंका वर्णन संचेपमें श्रीरमार्मिक रीतिसे किया गया है: इसलिये यह आख्यान अभ्यास करने योग्य है। नीतिके तत्त्व भी धान स्थानपर समका दिये गये हैं। इस बातका उदाहरण विदुरनीति है। उद्योग पर्व (श्रध्याय ३२-३६) में विदुरका जो सम्भाषण है वह पूर्वापर कथासे विशेष सम्बद्ध नहीं है, तथापि विदुर-नीतिके श्रध्याय बहुत ही मार्सिक हैं श्रीर व्यव हार-चातुर्यसे भरे हैं। सारांश, धर्म और नीतिका उपदेश इस अन्थमें बार वार अनेक श्यानोंमें किया गया है: इसलिये इस प्रन्थ-को अपूर्व महत्त्व प्राप्त हो गया है।

(५) कवित्व।

महाभारत न केवल इतिहास और धर्मका ही प्रन्थ है, किन्तु वह एक उत्तम महाकाव्य भी है। यह बात प्रसिद्ध है कि सब संस्कृत कवियोंने व्यास महर्षिको श्राद्य कवि वाल्मीकिकी बराबरीका स्थान दिया है। इसमें कुछ श्राश्चर्य नहीं कि व्यासजीके मुल भारतके रसमय कवित्वकी स्फूर्तिसे मेरित होकर सौतिने भी अपनी काव्य-शक्तिको प्रकट करनेके लिये अनेक अच्छे अञ्छे प्रसङ्ग साध लिये हैं। सृष्टि-वर्णन, युद्ध-वर्णन श्रौर शोक-प्रसङ्गही कविकी स्फूर्तिका प्रदर्शन करनेके लिये प्रधान विषय हुआ करते हैं। सौतिने महाभारतमें युद्धके वर्णनोंको बहुत ही अधिक बढ़ा दिया है, यहाँतक कि कभी कभी इन वर्णनोंसे पाठकोंका जी ऊब जाता है। सृष्टि-सौन्दर्यके वर्णनको भी सौतिने स्थान स्थान पर बहुत बढ़ा दिया है। विशेषतः वन पर्वमें दिये हुए हिमालय पर्वतके दृश्योंके

वर्णन और गन्धमादन पर्वतके वर्णन ध्यान देने योग्य हैं। शोक-वर्णनमें स्त्रीपर्व प्रायः सबका सब सौतिका होना चाहिये। इसके कविने यह वर्णन किया है कि दिव्य-इष्टिकी प्राप्तिसे गान्धारी भारती युद्धकी समस्त भूमिको देख सकी श्रौर समर-भूमिमें मरे इप वीरोंकी स्त्रियाँ अपने अपने पतिके शवको गोदमें उठाकर शोक कर रही हैं। यह चमत्कारिक वर्णन महाकविके लिये शोभादायक नहीं है। गान्धारीके मुखसे इस प्रकार शोक-वर्णन कराना श्रयोग्य जान पड़ता है। यह भी सम्भव नहीं कि अठारह दिनतक युद्धके जारी रहनेपर, जिन वीरोंके शव इधर उधर पड़े थे वे पहचाने जा सकें। जब इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि भारती-युद्ध-भूमि किसी साधारण युद्ध-भूमिके समान मर्यादित न होकर कई कोसोंकी दुरीतक फैली हुई थी, तब कहना पड़ता है कि यह सारा दश्य असम्भव है। युद्ध-भूमिमें स्त्रियोका जाना भी अनुचित जान पडता है। काव्यालंकार-प्रनथमें उदाहर एके तौर पर दिया हुआ "अयं स रशनोत्कर्षी" वाला प्रसिद्ध श्लोक भी इसी स्त्री-पर्वमें पाया जाता है और श्राधुनिक कवियोंके श्रशील वर्णनके नमुनेका है। स्पष्ट रूपसे जान पड़ता है कि यह स्रोक सौतिका ही होगा, वह महाकवि व्यासका नहीं हो सकता। युद्ध-भूमिमें पड़े हुए वीरोंके जिन मृत शरीरोंको हिंस्र पशुस्रों श्रीर पित्तयोंने गोचकर छिन्न भिन्न कर डाला है, वे सुन्दर श्रौर वर्णनीय कैसे हो सकते हैं ? युद्धमें बालवीर अभिमन्युके काम आनेपर, चार पाँच दिनके बाद, उसका मुख मनोहर श्रीर प्रफ़ित कैसे दिखाई दे सकता है? श्रीर उसकी वाल-स्त्री उस मुखका चुम्बन कैसे कर सकती है ? सारांश, यह समूचा स्वी पर्व सौतिने नये सिरसे रचा है और

बह अनेक अपयोजक दश्यों तथा कल्प-नाश्रोंसे भरा है। इतना होनेपर भी. कवित्वकी दृष्टिसे, वह कुछ छोटे दर्जेका नहीं है। सौतिकी कवित्व-शक्ति यद्यपि ब्यासजीकी शक्तिके समान न हो, तो भी वह बहुत ऊँचे दर्जेकी है। यह वात विराट पर्वमें पाये जानेवाले अनेक मनो-हर वर्णनोंसे सिद्ध है। परन्तु स्त्री-पर्वके समान ही, मनुष्य-स्वभावकी दृष्टिसे वहाँके दृश्य भी असम्भव प्रतीत होते हैं। उदा-हरणार्थ, उत्तर एक डरपोक वालक थाः जब वह भागा चला जाता था, तब श्रर्जुनने उसके केश पकडकर उसे पीछे लौटायाः परन्त श्राश्चर्यकी बात है कि वही बालक श्रागे चलकर एक वडा भारी कवि वन जाता है श्रीर पाँच पांडवोंके पाँच धनुष्योका वर्णन श्रत्यन्त चित्ताकर्षक रीतिसे करता है ! श्रीर जब इस वातपर ध्यान दिया जाय कि इस वर्णनमें कुछ कूट श्लोक भी हैं, तो स्पष्ट कहना पड़ेगा कि यह सब रचना सौतिकी ही है। यहाँ यह प्रश्न विचार करने योग्य है कि कूट श्लोकोंकी रचना सचमुच किसने की होगी। जब हम इस बातपर ध्यान देते हैं कि केवल शब्दालंकारोंसे श्रपने काव्यको विभूषित करनेकी प्रवृत्ति प्रायः श्रत्युत्तम कविमे नहीं होती, तब कहना पड़ता है कि ये कुट श्लोक सौतिके ही होंगे। व्यासजीके मूल-भारतमें कहीं कहीं शब्द-चमत्कृतिका पाया जाना कुछ ग्रसम्भव नहीं है: परन्तु इसका परिमाण कुछ श्रधिक न होगा। कर्णपर्वके ६० वे श्रध्यायके श्रन्तमें शार्द् लविकीडित वृत्तका एक ऋोक है। उसमें 'गो' शब्दका मिन्न भिन्न अथौंमें बार बार उपयोग करके उसे कूट स्ठोक बना दिया है। यह तो सौतिका भी न होगा। जान पड़ता है कि शब्द-चित्र-काव्यकी रचना करनेयाले किसी दूसरे कविने इस ऋोकको पीछेसे यहाँ

युसेड़ दिया है। यद्यपि कृट क्लोकोंकी मन्द्र संख्या गर्नोक्ति और अतिशयोकिसे भरी देख पड़ती है, तथापि महाभारतमें ऐसे क्लोकोंकी कुछ कमी नहीं है। इसका कुछ अन्दाज़ नीचेके विवेचनसे किया जा सकता है।

महाभारतमें कहीं कहीं एकाध शब्दका प्रयोग ऐसा हुआ है कि उसका अर्थ बहुत गृढ़ है, अथवा उसका अर्थ सरल रीतिसे समभमें नहीं त्राता और मनमें कुछ दूसरा ही भ्रामक अर्थ उत्पन्न कर देता है। इससे यथार्थ ज्ञानमें रुकावट होती है। शान्ति पर्वका अवलोकन करते समय थोड़े ही अध्यायोंमें ऐसे स्ठोक हमें देख पड़े। वे नीचे दिये जाते हैं। आशा है कि ध्यानपूर्वक पढ़नेवालोंको इनसे कुछ लाम होगा।

१-चतुर्थोपनिषद्धमः साधारण इति
स्मृतिः। संसिद्धैः साध्यते नित्यं ब्राह्मणैनियतात्मभिः॥ (शान्ति० श्र० १७०, ३०)
२-श्वेतानां यतिनां चाह एकान्तगतिमव्ययाम्॥ (शान्ति० श्र० ३४६)
३-सेचाश्रितेन मनसा वृत्तिहीनस्य
शस्यते। द्विजातिहस्तान्निर्वृत्ता न तु तुल्यात्परस्परात्॥ (शान्ति० श्र० २६१)
४-यः सदस्याणयनेकानि पुंसामा-

४-यः सहस्राएयनेकानि पुंसामा-वृत्य दुईशः। तिष्ठत्येकः समुद्रान्ते स मे गोप्तास्तु नित्यशः॥ (शान्ति० अ० २६४)

५-गृहस्थानां तु सर्वेषां विनाशमिन कांचिताम्। निधनं शोभनं तात पुलिनेषु कियावताम्॥ (शान्ति० अ० २६७)

६-माता पुत्रः पिता भ्राता भार्या मित्रं जनस्तथा । श्रष्टापदपदस्थाने द्चमुद्रेव लद्यते ॥ (शान्ति० श्र० २०८)

इस प्रकार और भिन्न भिन्न स्थानोंके अनेक श्रोक बतलाये जा सकते हैं। इनके सिया, कई श्राख्यानोंमें पूरे श्रोक ही कृट हैं। उदाहरणार्थ, सनत्सुजात श्राख्यान देखने योग्य है। कहीं कहीं तो पाठकोंको चकरमें डाल देनेवाला एकाध विलच्छा नाम ही मिल जाता है, जैसे श्राश्रमवासिक पर्वमें "इयं खसा राजचमुपतेश्च" वाला श्लोक है। कई स्थानोंमें ज्योतिष-सम्बन्धी श्रौर श्रङ्कोंके विषयमें जो उल्लेख हैं, उनमें कुछ न कुछ कूट अवश्य रहता है। उसकी समभ लेनेका प्रयत्न करना कभी कभी व्यर्थ हो जाता है। हमारा यह अन्दाज़ है कि महाभारतमें कृट श्रथवा गूढ़ार्थ श्लोकों-की संख्या बहुत है। प्रायः प्रत्येक अध्याय-में इस प्रकारके स्थान पाये जाते हैं और कहीं कहीं तो ऐसे स्थानोंकी संख्या बहुत ही अधिक है। महाभारतमें कुल अध्यायों-की संख्या लगभग २००० है: ऐसी अवस्था-में कूट श्लोकोंकी संख्या कई हज़ार हो सकतो है *। श्रस्तु ; सम्भव है कि यह

🔹 कूट श्लोकों श्लीर कूट शब्दोंके कुछ श्लीर भी उदाहरण दिये जा सकते हैं, जैसे:--

(१) यत्र सा बदरी रम्या हृदो वैहायस स्तथा ॥ (शान्ति० १२७,३)

व हायसः (मन्दाकिन्याः) हदः।

(रं) न श्रह्मलिखितां वृत्ति शवयमास्थाय जीवितुम्।। (शान्ति० १३०-२६)

शङ्खे ललाटास्थिन ।

(३) नासतो वियते राजनसद्यारएयेषु गोपतिः ॥ es or or Office

(शान्ति० १३५—२६)

(४) मासाः पन्नाः षडऋतवः करूपः सम्बत्सरास्तथा ॥ (शान्ति० १३७--२१)

(४) पृष्ठतः शकटानीकं कलत्रं मध्यस्तथा ।।

(शान्ति० १००-४३)

(६) सकंध दर्शन मात्रात्तु तिष्ठेयुर्वा समीपतः ॥

(शान्ति० १००-४६) (७) पारावत कुलिंगाचाः सर्वे ग्रहाः प्रमाथिनः ॥

(शान्ति० १०१—७)

'कुर्लिगो भूमिकूश्मांडे मतंगजभुजंगयोः।' कृतिगः सर्गः

काव्य-चमत्कृति मूलमें व्यासजीकी ही हो श्रीर उसे सौतिने श्रपने चातुर्यसे बहुत श्रिधिक बढ़ा दिया हो । इससे यही कहना पड़ता है कि सौति कोई छोटे दर्जेका कविन था।

(=) विरमेच्छुष्कवैरेभ्यः कंठायासं च वर्जयेत्॥ (शान्ति० १०३--१०)

कएठायासं मुखरत्वं

(६) स्वार्थमत्यन्तसन्तुष्टः कृरः काल स्वान्तकः॥ (शान्ति० ११६-११)

(१०) कुलजः प्राकृतो राज्ञा स्वकुलीनतया सदा॥ (शान्ति० ११८-४)

(११) अ्रकुलीनस्तु पुरुषः प्राकृतः साधुसंश्रयात् ॥ (शान्ति० ११६-५)

(१२) ते इएयं जिह्नात्वमादाल्भ्यं सत्यमार्जवमेव च ॥ (शान्ति० १२०-५)

श्रादालभ्यं श्रभयं

(१३) श्रुच्णाच्चरत्नुः श्रीमान्भवेच्छास्त्रविशारदः॥ (शान्ति० १२०—७)

(१४) लोके चायन्ययो दृष्ट्वा वृह द्वृत्त् मिवासवत् ॥ (शान्ति० १२०-६)

(१५) शान्ति पर्वका समस्त १२०वां अध्याय कूट श्लोकोंसे मरा हुआ है।

(१६) काट्यानि वदतां तेषां संयच्छ।मि वदामि च ॥ (शान्ति० १२४—३४)

काव्यानि शुक्रप्रोक्तानि नीतिशास्त्राणि।

(१७) स तस्य सहजातस्य सप्तमी नवमी दशाम् । प्राप्तुवन्ति ततः पच न भवन्ति गतायुषः ॥ (शान्ति० ३३१—२८)

(१८) त्यज धर्ममधर्म च उमे सत्यानृते त्यज । उमे सत्यानृते त्यत्तवा येन त्यजसि तं त्यजा। (शान्ति० ३२६—४०)

(१६) विचार्य खलु पश्यामि तत्सुखं यत्र निर्वृतिः॥ (शान्ति० १११—३२)

मुखं स्वर्गः

(२०) मनुष्यशालावृकमप्रशान्तं जनापवादे सततं निविष्टम् ॥ (शान्ति० ११४—१७) मनुष्य शाला वृकं मनुष्येषु श्वा।

(२१) श्रध्वानं सोऽति चक्राम खचरः खेचरन्निव ॥ (शान्ति० ३२५—१६)

इसमें सन्देह नहीं कि कवित्व-प्रद-र्णनके भिन्न भिन्न प्रसङ्गोंका समावेश कर-के सौतिने स्थान स्थान पर महाभारतका विस्तार कर दिया है। स्त्रीपर्व श्रीर विराट पर्वमें तो यह बात स्पष्ट रूपसे दिखाई देती है। अन्य पर्वोमें भी, विशेषतः युद्ध पर्व-मंं, इस प्रकार जो प्रसङ्ग समिलित किये गये हैं वे कुछ कम नहीं हैं। साराँश यह है कि, (१) धर्ममतोंकी एकता, (२) कथा-संग्रह, (३) ज्ञान-संग्रह, श्रौर (४) धर्म तथा नीतिके उद्देशसे सौतिने भारतमें अनेक नये प्रसङ्घोंको सम्मिलित करके उसे बहुत अच्छा स्वरूप दे दिया है और सनातनधर्मकी एचा तथा दढ़ताके लिये इत्यन्त प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। कवित्व-प्रसङ्ग साधकर सौतिने इस प्रनथको सर्वोत्तम काव्य बनाया है। परन्तु इसीके साथ साथ यह भी स्वीकार करना पडता है कि सौतिने जो ऐसे उपाख्यान जोड़ कर प्रनथका विस्तार किया है उससे महाभारतको कुछ वातोंमें रमणीय स्वरूप प्राप्त नहीं हुआ, बल्कि कुछ अंशोंमें उसे गौगता प्राप्त हो गई है। इसलिये उन वातोंका भी विचार त्रावश्यक है जो गौणता उत्पन्न करनेवाली हैं।

(६) पुनरुक्ति।

श्रनेक प्रसङ्गोंकी पुनरुक्तिसे प्रन्थका विस्तार वढ़ गया है। किसी विषयकी पाठकोंको वार बार समभानेके लिये जब उसकी पुनरुक्ति की जाती है, तब तो वह प्रशंसनीय हुश्रा करती है; परन्तु जब ऐसा नहीं होता, तब पुनरुक्तिका दोष पाठकोंके मनमें खटकने लगता है। ऐसी पुनरुक्ति इस प्रन्थमें प्रायः सर्वत्र पाई जाती है। कहीं कहीं तो यह पुनरुक्ति, प्रन्थका श्रिथकांश भाग हो जाने पर, बीचमें ही देख पड़ती है। इसके श्रनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। श्रादिपर्वमें श्रास्तिककी कथा दो बार श्राई है: श्रीर जब दूसरी बार इस कथाका वर्णन किया गया है तो वह पहिलीकी अपेचा बहुत अधिक बढ़ गई है। काश्यप श्रीर तत्तककी कथा भी दुबारा दी गई है। वनपर्वमें तीथोंका वर्णन दो बार किया गया है। सम्भव है कि वैशम्पायनके समय जिन तीथोंकी जानकारी थी, उनकी अपेदा कुछ अधिक तीर्थ-स्थान सौतिके समय प्रसिद्ध हो गये होंगे, क्योंकि उसके समयमें त्रायोंकी व्याप्ति दक्षिणकी श्रोर बहुत अधिक हो गई थी। इस पुनहक्ति-का स्वरूप प्रायः यह है-पूर्व कथाओं को कुछ अधिक विस्तारसे कहनेके लिये जन-मेजय प्रार्थना करते हैं और उसके अनु-सार वहीं कथा वैशम्पायन फिर सुनाते हैं। परन्तु कहीं कहीं तो यह खरूप भी नहीं देख पड़ता। उदाहरणार्थ, श्रभिमन्य-के वध-प्रसङ्गमें शोक-सान्त्वनके लिये व्यासजीने युधिष्टिरको षोड्शराजीय श्राख्यान सुनाया है श्रौर उसी श्राख्यान का वर्णन कृष्णने युधिष्ठिरसे शान्ति-पर्वमें फिर कराया है। ऐसी दशामें यह पुनरुक्ति श्रद्मय है।

(७) अनुकरण।

दूसरे प्रकारका दोष अनुकरण है। किसी मनोहर प्रसङ्गको देखकर दूसरे किसी मनोहर प्रसङ्गको देखकर दूसरे किसी प्रवृत्ति हुआ करती है कि में भी उसी प्रकार किसी अन्य प्रसङ्गका वर्णन करूँ। उदाहरणार्थ, यह बात प्रसिद्ध है कि कालिदासके सुन्दर मेघदूत काव्यके अनन्तर अन्य कियोंने हंसदूत आदि कुछकाव्योंकी रचना की थी। इसी प्रकारके अनुकरणकी इच्छासे व्यास-वर्णित मारतके कई प्रसङ्गोंका अनुकरण सौतिने किया है। इसका मुख्य उदाहरण वन-

पर्वके अन्तमं जोड़ा हुआ यत्त-प्रश्न नामक श्राख्यान है। सौतिने इस श्राख्यानकी रचना नहुष-प्रश्न (वनपर्व अध्याय १६५) के ढंग पर की है। इसमें भी युधिष्ठिर द्वारा उसके भाईके मुक्त किये जानेकी कथा है। ऐसा श्रनमान करनेके लिये कि इस यत्त-प्रश्न-उपाख्यानको सौतिने पीछेसे जोडा है, कई कारण दिये जा सकते हैं। पहला कारण-जब कि सह-देव, श्रर्जुन श्रौर भीमने प्रत्यत्त देख लिया था कि उनके पूर्वके मनुष्यकी कैसी दशा हुई, और जब कि यत्त उन लोगोंको स्पष्ट रूपसे सावधान कर रहा था, तब क्या यह सचम्च श्राश्चर्यकी बात नहीं है कि वे भी सरोवरका पानी पीकर मर जायँ ? दुसरा कारण-यत्तं के प्रश्न भी पहेलियों के समान देख पड़ते हैं। वे किसी महा-कविके लिये शोभादायक नहीं हैं। तीसरा कारण-प्रश्नोत्तरके श्रन्तमें यत्तने युधिष्टिर से कहा है कि तुम अपने अज्ञातवासके दिन विराट-नगरमें बिताओं: इतना हो जानेपर भी अगले पर्वके आरम्भमें कहा गया है कि अज्ञातवासके दिन बितानेके सम्बन्धमें युधिष्ठिरको बड़ी चिन्ता हुई। चौथा कारण-कथामें कहा गया है कि युधिष्ठिरने सब ब्राह्मणींको विदा करके केवल धौम्यको अपने पास रख लिया। पेसा होनेपर भी, विराटपर्वके आरम्भ-में, हम देखते हैं कि युधिष्ठिरके पास सब ब्राह्मण मौजूद हैं। सारांश, यही जान पड़ता है कि यत्त-प्रश्न-उपाख्यान मृल भारतमें न था; वह पीछेसे सौति द्वारा जोड़ दिया गया है। श्रमुकरणका दूसरा उदाहरण उद्योगपर्वमें वर्णित विश्वरूप-दर्शन है। भगवद्गीतामें जो विश्वरूप-दर्शन है वह वहाँ उचित स्थानमें दिया गया है और वह व्यासजीके मूल भारतका श्रंश है। परन्तु उसीके श्रानुकरणपर

सौतिने उद्योगपर्वमें जिस विश्वक्रपद्र्शन को स्थान दिया है वह अप्रासिक्षक देख पड़ता है और उसका परिणाम भी दुर्योधन तथा धृतराष्ट्रके मनपर कुछ नहीं हुआ।

(८) भविष्य-कथन।

प्रनथकारोंकी यह एक साधारण युक्ति है कि वे श्रागे होनेवाली वातोंको पहिले ही भविष्यरूपसे बतला देते हैं श्रथवा उनके सम्बन्धमें पहिले ही कुछ विचार सुभा देते हैं। इस प्रकारके कुछ भविष्य-कथन पीछेसे सौतिके जोड़े हुए मालूम होते हैं। उदाहरणार्थ, स्त्रीपर्वमें गान्धारी-ने श्रीकृष्णको यह शाप दिया है कि तुम सब यादव लोग श्रापसमें लडकर मर जाश्रोगे। ऐसे शाप प्रायः सब स्थानीमें पाये जाते हैं। कर्णको यह शाप था कि उसके रथका पहिया युद्धके समय गहेमें गिर पड़ेगा। यह कहा जा सकता है कि ये सब शाप प्रायः पछिसे कल्पित किये गये हैं। उद्योगपर्वके आठवें अध्यायमें शल्य श्रौर युधिष्टिरका जो संवाद है, वह इस बातका दूसरा उदाहरण है कि इन शापोंके बिना ही आगे होनेवाली वातोंकी पूर्व-कल्पना चमत्कारिक रीतिसे की गई थी। शल्यको दुर्योधनने सन्तुष्ट करके श्रपने पत्तमें कर लिया था। जब यह समाचार शल्यसे माल्म हुआ, युधिष्टिरने विनती की कि—"जब श्राप कर्ण श्रीर श्रर्जनके युद्धके समय कर्णके सारथी हो, उस समय कर्णका तेजोभङ्गकर दीजिएगा।" शल्यने उत्तर दिया,—"जब मुभे कर्णका सारथ्य करना पड़ेगा तब मैं उसका उत्साह भङ्ग कहँगा श्रीर उस समय तुम उसे मार सकोगे।" इन बातों-की कल्पना पहिले ही कैसे की जा सकती है कि भीष्म श्रीर द्रोण दोनों मर जायँगे,

कर्ण और श्रर्जुनका भीषण संग्राम होगा श्रीर उस समय कर्ण शल्यको ही अपना सारथी बनावेगा? इसके सिवा, इस प्रकार विश्वासघात श्रथवा मित्रघातका उपदेश युधिष्टिर द्वारा किया जाना स्वयं उसके-लिये, श्रौर शल्यके लिये भी, लज्जास्पद है। सारांश, इस प्रकार आगे होनेवाली बातोंका भविष्य-कथन करनेका सौतिका यह प्रयत्न श्रनुचित है। इसके सिवा एक श्रीर बात है। दुर्योधनके पत्तमें शल्यके मिल जानेका कारण यह था कि वह 'श्रर्थस्य पुरुषो दासः' की नीतिके अनु-सार दुर्योधनका आश्रित हो गया था। उसके विषयमें जो यह वर्णन किया गया है, कि युधिष्ठिरकी श्रोर जाते हुए वीच-में ही उसे सन्तुष्ट करके दुर्योधनने अपने पत्तमें मिला लिया, वह असम्बद्ध है। श्रागे यह बात भी नहीं पाई जाती कि कर्णका तेजोभङ्ग हुआ और इसी कारण वह मारा जा सका। यन्थमें यह वर्णन ही नहीं है कि इस तेजोभङ्गके कारण कर्णने श्रपनी ग्ररतामें कुछ कमी की। इसके बदले शल्यने उचित समय पर कर्णको यह सुभा दिया कि निशाना ठीक न होने-के कारण तेरा बाण नहीं लगेगा इसलिये तू ठीक ठीक शरसन्धान कर। अर्थात्, यही वर्णन पाया जाता है कि शल्यने मित्रघात नहीं किया। यथार्थमें भविष्य-कथनके इस भागको सौतिने व्यर्थ बढ़ा दिया है। इसके श्रौर भी उदाहरण श्रागे चलकर दिये जायँगे । सारांश, अनेक अप्रबुद्ध परन्तु प्रचलित कथाओंको सौतिने महाभारतमें पीछेसे शामिल कर दिया है।

(९) कारणों का दिग्दर्शन।

श्रन्तिम दोष-स्थान कारणोका दिग्द-र्शन करना है। पूर्व कालके प्रसिद्ध पुरुषों- ने सदोष आचरण क्यों और कैसे किया, इसके सम्बन्धमें कुछ कारणोंका वताना श्रावश्यक होता है। जैसे, पाँच पाएडवॉने एक द्रौपदीके साथ विवाह कैसे किया, भीमने दुःशासनका रक्त कैसे पिया, इत्यादि कुछ कार्य ऐसे हैं जो दोष देने योग्य देख पडते हैं श्रीर जिनके सम्बन्धमें कुछ कारणोंका बताया जाना श्रत्यन्त श्रावश्यक हो जाता है। सौतिने महाभारतमें ऐसी दन्तकथायें शामिल कर दी हैं जिनमें इन घटनात्रोंके कुछ कारण प्रथित किये गये हैं। किसी किसी कथा-भागके प्रसङ्गमें यह भी देखा जाता है कि स्वयं व्यासजी वहाँ आकर भिन्न भिन्न व्यक्तियोंको उपदेश देते हैं अथवा उन्हें श्रागे होनेवाली कुछ वातोंकी सूचना करते हैं। जिन जिन स्थानोंमें ऐसे वर्णन पाये जाते हैं वे व्यासजीके मूल भारतमें न होकर सौति द्वारा पछिसे शामिल किये गये हैं। जैसा कि एक प्रसङ्गमें व्यासजी श्राकर धृतराष्ट्रसे कहते हैं कि ज्यों ही दुर्योधन पैदा हो त्यों ही उसे गङ्गाजीमें डाल देना। यह प्रसङ्ग भी पीछेसे रचा हुआ मालम होता है। अस्तः इस प्रकार तीन चार कारणोंसे सौतिने महाभारतका जो विस्तार किया है वह विशेष रमणीय नहीं देख पड़ता। हम स्वीकार करते हैं कि इस बातका निर्णय करना बहुत कठिन है कि महाभारतमें वे सब स्थान कौन कौन-से हैं जो इस प्रकार पीछेसे जोड़े गये हैं। तथापि जब इस बातपर ध्यान दिया जाता है कि भारतके २४००० स्रोकोंके स्थानपर महाभारतमें एक लाख क्रोक हो गये हैं, तब इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार नया जोड़ा श्रोर बढ़ाया हुआ भाग बहुत अधिक होना चाहिये। यह बतला देना आवश्यक था कि सौतिने इस भागको क्यों बढ़ाया है अर्थात् महा-

भारतका विस्तार कैसे किया है इसलिये हमने यहाँ इस विषयका प्रतिपादन विस्तार-पूर्वक किया है। परन्तु स्परण रहे कि सौति-कृत कुल ग्रन्थके उदात्त-स्वरूपमें इस विस्तारसे कुछ भी न्यूनता नहीं त्राने पाई है त्रौर इसी लिये कहना चाहिये कि इस समस्त ग्रन्थको व्यास-कृत मानना किसी प्रकार अनुचित न होगा। यद्यपि २४००० क्लोकोंके भारतका रूपान्तर एक लाख श्लोकोंके महाभारतमें हो गया है, तथापि उसमें असम्बद्धता श्रथवा परस्पर-विरोध प्रायः नहीं होने पाया है। इस काममें सौतिका चात्र्य निःसन्देह वर्णनीय है। सौतिका कवित्व भी किसी प्रकार छोटे दर्जेका नहीं है। व्यासजीकी कवित्व-शक्तिका प्रतिबिम्ब होनेके कारण समस्त ग्रन्थ श्रत्यन्त रमणीय हो गया है। संनेपमें यह कहना चाहिये कि सौतिके महाभारतमें दोष देने योग्य बहुत स्थान नहीं है। अल-बत्ता दो स्थानोंमें उसकी भूल प्रकट रूपसे देख पड़ती है। यह सचमुच वड़े श्राश्चर्य की बात है कि युधिष्टिर भीष्मपर्वमें शल्यसे कर्णका उत्साह-भङ्ग करनेकी प्रार्थना करनेके समय कहता है कि 'उद्योग' में तुमने जो वचन दिया है उसे श्रव पूरा करो। जिस समय युधिष्टिरने र सम्य न तो व्यासजीका भारत था श्रोर न सौति-का महाभारत। ऐसी अवस्थामें युधिष्ठिर कैसे कह सकता है कि 'उद्योग' में अर्थात उद्योगपर्वमें तुमने वचन दिया था ? इसी प्रकार अश्वमेधपर्वमें कुन्ती श्रीकृष्णसे कहती है-"ऐषीकमें तुमने वचन दिया था कि यदि उत्तराके गर्भसे मृत पुत्रका ही जन्म होगा तो तुम उसे ज़िन्दा कर दोगे, इसलिये अब उस वचनको पूरा करो।" यहाँ भी पेषीकपर्वका जो प्रमाण कुन्तीके

मुखसे दिलाया गया है वह चमत्कारिक है। "हे यदुनन्दन, ऐषीक प्रकरणमें तुमने ऐसी प्रतिज्ञा की ही थी" यह कहकर कुन्तीने महाभारतके ऐषीकपर्वका जो प्रमाण दिया है वह सचमुच अतक्यं है। परन्तु जब प्रन्थका विस्तार बहुत अधिक हो गया, तब उसके प्रकरणोंका प्रमाण कथाके पात्रोंके द्वारा दिया जाना अपरि-हार्य हो गया। अर्थात् यही कहना चाहिये कि यहाँ सौतिका पीछेका कर्तृत्व व्यक्त होता है। अन्तमें हमें महाभारतकी काव्यो-त्कृष्टताका विचार करना है।

महाकाव्यकी दृष्टिसे भारतकी श्रेष्ठता ।

जो भाग इस प्रकार बढ़ाया गया है उसे यदि अलग कर दें, अथवा उसकी श्रोर ध्यान न दें, तो व्यासजीकी मूल कृति किसी अत्यन्त मनोहर मूर्तिके समान हमारी आँखोंके सामने खड़ी हो जाती है। यहाँ इस सुन्दरता श्रोर मनोहरताका कुछ विचार करना श्रमुचित न होगा।इस जगतमें जो चार या पाँच अत्यन्त उदात्त श्रीर रमणीय महाकाव्य हैं, उनमें व्यास-जीका यह आर्ष महाकाव्य सबसे अधिक श्रेष्ठ कोटिका है। यूनानी तत्त्वज्ञ अरिस्टा-टलने होमरके इलियडके आधारपर महा-काव्यका यह लच्चण वतलाया है:--"महा-काव्यका विषय एक होना चाहिये। वह विषय कोई बहुत बड़ा, श्रत्यन्त विस्तृत श्रीर महत्त्वका प्रसङ्ग हो। उसके प्रधान-पात्र उच वर्णके हों श्रीर उनका चरित्र उदात्त हो । प्रन्थकी भाषा श्रौर वृत्त गम्भीर हो श्रौर काव्यमें विविध सम्भा-षण तथा वर्णन हों।" पश्चिमी विद्वानोंका वतलाया हुआ महाकाव्यका यह लद्मण, हमारे यहाँके साहित्य शास्त्रकारोंके बत-लाये हुए लक्ष्यासे कुछ अधिक भिन्नः

नहीं है। अब इन्हीं चार वातोंके सम्बन्ध-में यहाँ क्रमशः विचार किया जायगा।

हमारे महाकाव्यका प्रधान विषय भारती-युद्ध है। हिन्दुस्थानके प्राचीन इति-हासमें भारती-युद्धसे बढ़कर श्रधिक महत्त्वकी कोई दूसरी बात नहीं है। उस समय हिन्दुस्थानकी प्राचीन संस्कृति शिखरतक पहुँच गई थी। उस समयके वाद ही हिन्दुस्थानकी अवनतिका आरम्भ होता है। यह अवनित अवतक धीरे धीरे बढ़ती ही चली जाती है। इसलिये हम लोगोंमें भारती-युद्ध ठीक कलियुगका श्रारम्भ समभा जाता है। सारांश, भारती-युद्धसे श्रधिक महत्त्वके किसी श्रन्य प्रसङ्की कल्पना कर सकना श्रसम्भव है। भारती युद्धके प्रसङ्गसे बढ़कर श्रधिक विस्तृत और श्रधिक उलझनके किसी अन्य विषयका पाया जाना बहुत कठिन है। इस प्रसङ्गके एक एक छोटेसे भाग पर, संस्कृत भाषाके पश्च महाकाव्यों में से, दो महाकाव्योंकी रचना की गई है। श्रर्जुनके पाशुपतास्त्र पानेकी कथा पर भारवीके किरातार्ज्जनीयकी रचना हुई है श्रीर माघकाव्य शिशुपाल-वधकी कथा पर रचा गया है। न्याध्य काच्य भी महा-भारतके अन्तर्गत नल-दमयन्ती-श्राख्यान पर रचा गया है। सारांश, भारती-युद्धः प्रसङ्ग इतना विस्तृत है कि इसकी एक एक शाखा पर एक एक संस्कृत महाकाव्य रचा जा सकता है। कुछ लोग कहेंगे कि, महाभारतमें केवल भारती-युद्ध-कथा ही नहीं किन्तु पांडवींका पूरा चरित्र भी है। परन्तु, यद्यपि महाभारतका प्रधान विषय भारती-युद्ध ही है, तथापि यह श्राकांचा सहज ही उत्पन्न होती है कि उसमें इस युद्ध-के कारणों श्रीर परिणामोंका भी वर्णन हो। इसी लिये उसमें पांडवींका पूर्व-चरित्र श्रीर उत्तर-चरित्र दिया गया है। सारण

रहे कि ये दोनों चिरत्र बहुत संक्षेपमें दिये
गये हैं: अर्थात् श्रारम्भके श्रादि पर्व, सभापर्व श्रौर श्रन्तके श्राश्रमवासी श्रादि पर्व
छोटे हों हें श्रौर बीचके उद्योगपर्वसे श्रागे
युद्ध-सम्बन्धी जो पर्व हैं वे बहुत विस्तारपूर्वक लिखे गये हैं। तात्पर्य यह है कि
भारती-युद्धको ही महाभारतका प्रधान
विषय मानना चाहिये। यदि व्यासजीके
शब्दोंमें कहना हो कि उनके महाकाव्यका
विपय क्या है, तो कहना चाहिये कि वह
नर-नारायणकी जय श्रर्थात् श्रीकृष्ण श्रीर
श्रज्जनकी विजय ही है। यह बात नमनके
श्रोकसे भली भाँति व्यक्त हो जाती है।

यदापि महाभारतकी कथाका स्वरूप इतना विस्तृत है, तथापि उसमें एकता श्रीर पूर्णता है श्रीर श्रसम्बद्धता विल्कुल नहीं होने पाई है। उसमें इतने श्रधिक श्रीर भिन्न संभावके व्यक्ति हैं कि शेक्सपियर-के अनेक नाटकोंमें वर्णित सब व्यक्ति श्रकेले महाभारत हीमें श्रथित कर दिये गये हैं। महाभारतकी कथा यद्यपि इतनी विस्तृत है, तो भी इसका विस्तार इससे श्रीर श्रधिक होने योग्य है। सच वात तो यह है कि प्रन्थकारने श्रपना ध्यान श्रपने प्रधान विषय श्रर्थात् युद्धकी श्रोर ही रखा था और इसी लिये प्रसङ्गानुसार विषयान्तर करनेकी स्रोर उन्होंने श्रपने ध्यानको श्रधिक श्राकर्षित नहीं दिया । उदाहरणार्थ, दुर्योधनके विवाहका वर्णन महाभारतमें कहीं पाया नहीं जाता: यहाँतक कि उसकी स्त्रीका नाम समुचे महाभारतमें कहीं नहीं है। ऐसी दशा-में उसके सम्बन्धमें श्रधिक उत्तेख थी. उसके भाषण और कार्यका पता कैसे लग सकता है ? यह देखकर पांठकोंको कुछ श्रचरज होगा। श्राधुनिक कवियोंने दुर्योधनकी स्त्रीका नाम 'भानुमती' रखा है और उसके सम्बन्धमें मुर्खतासे भरी

हुई कुछ कथाश्रोंकी रचना भी की है। परन्तु ये सब बातें भूठ हैं, क्योंकि महाभारतमें दुर्योधनकी स्त्रीका नामतक नहीं है। इलियडके प्रतिनायक हेक्रकी स्त्रीका नाम एन्ड्रोमकी है। जिस सभय हेक्टर लडाईके लिये बाहर जाता है, उस समय उसका स्त्रीके साथ जो करणायुक्त सम्भा-षण हुआ है, उसका वर्णन इलियडमें दिया गया है। परन्त भारतके प्रतिनायक दुर्योधनकी पत्नीका एक भी सम्बाद भारतकारने नहीं दिया। हम समस्रते हैं कि इसमें प्रन्थकारकी विशेष कुशलता देख पड़ती है। इसका कारण यह है कि व्यासजीने दुर्योधन-पात्र बहुत हठीला और मानी बतलाया है। यदि दुर्योधनके लड़ाई पर जाते समय और अपनी प्रिय-पत्नीसे बिदा होते समय, उसके नेत्रों-से श्राँसुकी एक भी बूँदके टपकनेका वर्णन कविने किया होता, तो उससे वह मानी पात्र कलङ्कित हो जाता। सारांश, यहाँ कविका चातुर्य ही विशेष रूपसे दृष्टि-गोचर होता है। परन्तु इससे यह अनुमान करना उचित न होगा कि दुर्योधन बड़ा कर या निर्दय था और अपनी स्त्रीको प्यार नहीं करता था। जिस समय गदा-युद्धमें जाँघके फट जानेसे दुर्योधन समर-भूमिमें विह्नल हो रहा था, उस समय महाकवि व्यासजीने उसके विलाएमें माता-पिताके स्मरणके साथ स्त्रीकी बात भी वड़ी चतुराईसे शामिल कर दी है श्रौर उसके मुखसे कहलाया है कि-"हे लद्मण-मातः मेरे बिना तेरी कैसी गति होगी !" एस विवेचनसे पाठक समभ जायँगे कि महाभारतका विषय यद्यपि बहुत बड़ा है तो भी वह श्रोर श्रधिक विस्तृत होने योग्य है।

इस बातका एक श्रौर उदाहरण दिया जा सकता है कि यद्यपि महाभारतकी

कथा अत्यन्त विस्तृत है, तथापि महाकि व्यासजीने उसे सङ्खलित करके दूसरी श्रोर अपना ध्यान आकर्षित होने नहीं दिया। महाभारतका मुख्य विषय भारती-युद्ध है: इसलिये भारती-युद्धके अतिरिक्त अन्य वातोंका वर्णन खूब बढ़ाकर नहीं किया गया है। उदाहरणार्थ, श्रीकृष्णका चरित्र देखिये। श्रीकृषाके चरित्रका जितना भाग भारती-युद्धके साथ संलग्न है, उतना ही महाभारतमें दिया गया है। इसमें उनके बाल-चरित्रका वर्णन कहीं देख नहीं पडता। रुक्मिणीके विवाहकी सुरस कथा श्रीर श्रीकृष्णके श्रन्य विवाह-सम्बन्धी वर्णन भी इसमें नहीं हैं। उनका श्रप्रत्यक्ष उल्लेख कहीं कहीं सम्भाषणमें पाया जाता है, परन्तु पूरा पूरा वर्णन इसमें कहीं नहीं है। सामान्य पाठकोंको मालुम होता है कि यह इस प्रन्थकी त्रुटि है। परन्तु यह बात ऐसी नहीं है। इसमें सचमुच कविको कुशलता है। प्रधान विषयको छोड़ कर किसी अन्य विषयके वर्णनमें लग जाना दोष है: इसलिये व्यासजीने अपने भारतमें श्रीकृष्के चरित्रको स्थान नहीं दिया। बाहरसे देख पड़नेवाली इस बुटि-की पूर्ति सौतिने हरिवंश नामक खिलपर्व जोडकर कर दी हैंगा इस रीतिसे पाठकों-की जिज्ञासा भी तृप्त हो गई है। अस्तु; महाभारतका विषय श्रति विस्तृत श्रीर महत्त्वका है। इसमें सन्देह नहीं कि जिस युद्धमें १= श्रचौहिणी श्रर्थात ५२ लाख वीर श्रापसमें इतनी तीवता श्रीर निश्चयसे लड़े थे कि, एक पत्तमें सात श्रीर दूसरे पत्तमें तीन कुल मिलाकर सिर्फ दस वीर ज़िंदा बचे, वह यद्ध होमरके इलिडयके युद्धसे बहुत ही बड़ा था।

पर भारती-युद्धका महत्त्व इससे भी श्रीर श्रधिक है। हिन्दुस्थानके प्रायः सब राजा लोग इस युद्धमें शामिल थे। इतना

ही नहीं, किन्तु हिन्दुस्थानके वर्तमान प्रसिद्ध राज-वंश अपने अपने वंशोंकी उत्पत्ति भारती-युद्धके वीरोंसे हो वतलाया करते हैं। इससे इस युद्धको राष्ट्रीय महत्त्व प्राप्त हो गया है; अथवा कहना चाहिये कि यह महत्त्व उसे पहलेसे ही प्राप्त है। कौरवीं-की संस्कृति बहुत ऊँचे दर्जेकी थी। कुरु-का नाम ब्राह्मण-प्रन्थोंके समयसे वैदिक साहित्यमें वार वार श्राया है। यह नहीं कहा जा सकता कि इस संस्कृतिको सौति-ने बढ़ा दिया होगा। इस युद्धके साथ श्रीकृष्णका घनिष्ट सम्बन्ध है, इस कारण भी इस युद्धको राष्ट्रीय महत्त्व प्राप्त हुआ है; क्योंकि धर्म, नीति श्रोर तत्त्वज्ञान-के सम्बन्धमें श्रीकृष्ण राष्ट्रीय महत्त्वके पुरुष थे। इनके सम्बन्धमें श्रागे विस्तार-सहित विचार किया जायगा। जिस प्रकार ट्रोजन-युद्ध यूनानियोंको राष्ट्रीय युद्ध मालूम होता है, उसी प्रकार भारती-युद्ध भारतवासियोंको राष्ट्रीय महत्त्वका माल्म होता है। सारांश, इस महाकाव्यका विषय श्रत्यन्त महत्त्वका, विस्तृत श्रोर राष्ट्रीय-स्वरूपका है। श्रव हम महाकाव्यके दूसरे श्रावश्यक श्रङ्गका विचार करते हैं।

यह विस्तार-सहित कहनेकी आवश्य-कता नहीं है कि महाभारतमें वर्णित व्यक्ति-योंके चरित्र अत्यन्त उदात्त हैं। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, कर्ण, द्रोण और सर्व-श्रेष्ठ भीष्मके चरित्रोंसे, धर्म और नीतिके आच-रणके सम्बन्धमें यह शिचा मिलती है कि नीतिके आचरणके सामने जीवनकी भी कुछ परवा न होनी चाहिये। और इस शिचा-को हिन्दुस्थान-निवासी आर्थों के हृद्यों पर प्रतिविम्वित करा देनेमें, ये चरित्र आज हजारों वर्षों से समर्थ हो रहे हैं। श्रीकृष्ण-का चरित्र तो वस अद्वितीय ही है। उसके रहस्य और महत्त्वका विस्तार-सहित वर्णन आगे किया जायगा। दुर्यो- धनका पात्र भी उदाहरण-स्वरूप है। यद्यपि उसके चरित्रका सुकाव बुरे मार्गकी त्रोर है, तथापि उसका अटल निश्चय, उसका मानी खभाव-जिसने सार्वभौमत्त्व श्रौर मृत्युके वीचकी किसी श्रेणीको स्पर्श तक नहीं किया-उसका मित्र-प्रेम श्रीर उसकी राजनीति इत्यादि सब बातें यथार्थ-में वर्णन करने योग्य हैं। इस सम्बन्धमें व्यास कविने होमर श्रथवा मिल्टनको भी मात कर दिया है। होमरका प्रति-नायक हेकूर अनुकम्पनीय दशामें है। यद्यपि वह अपने देशकी सेवा करनेके लिये तत्पर है, तथापि जब वह अपनी प्रिय-पत्नीसे विदा होता है और अपने वालकका चुम्बन करता है, उस समय उसके मनका धीरज ट्रटा हुआ देख पड़ता है। मिल्टनका प्रतिनायक इतना दुष्ट श्रीर शक्तिशाली दिखाया गया है कि वह नायकसे भी श्रधिक तेजस्वी मालूम होता है और कभी कभी तो जान पड़ता है कि वहीं काव्यका नायक है। अस्तः महा-भारतमें वर्णित स्त्रियाँ, इलियडमें वर्णित स्त्रियोंकी श्रपेचा, बहुत ही ऊँचे दर्जेकी हैं। हेलन, द्रीपदीके नखाग्रकी भी समता नहीं कर सकती। एन्ड्रोमकी भी द्रौपदी-की समकत्त नहीं हो सकती। कविश्रेष्ठ व्यासजीने द्रौपदीके पात्रको सचमुच श्रद्धितीय बना दिया है। उसका धैर्य-सम्पन्न और गम्भीर स्वभाव, उसका पातिव्रत्य, उसकी गृह-दत्तता श्रादि सब गुण श्रनुपम हैं। इतना होने पर भी वह मनुष्य-स्वभावके परे नहीं है। वह श्रपने पति पर ऐसा क्रोध करती है जो स्त्री-जातिके लिये उचित और शोभादायक है। वह ऋपने पतिके साथ विवाद करती है श्रोर कभी कभी ऐसा हठ करती है जो पतिव्रता स्त्रियोंके लिये उचित है। वह यथार्थमें चत्रिय स्त्री है। हेक्टरकी पत्नीके

समान वह सूत कातने नहीं बैठती, किन्तु ऐसे धैर्यके काम करती है जो राजपूत स्त्रियोंके योग्य हैं। कौरवोंकी सभामें द्यतके प्रसङ्गमें जब उस पर सङ्कट श्रा पड़ा था, उस समय उसके मनका धैर्य विकक्कल नहीं डिगा । उसने सभासे ऐसा प्रश्न किया कि सब सभा-सदींको चुप हो जाना पड़ा। अन्तमें अपने पतियोंको दासत्वसे मुक्त करके वह उनके साथ श्रानन्दसे अरएयवासके लिये चली गई। कुन्तीका पात्र भी ऐसा ही उदात्त है। पाएडवीका अरएयवास पूरा हो जाने पर, जब श्रीकृष्ण विदुरके घर कुन्तीसे मिलने श्राये, उस समय उसने उनके हाथ अपने पुत्रोंको जो सँदेसा भिजवाया था वह चत्रिय-स्त्रियोंके लिये उचित ही था। विदुला-संवाद-रूप यह सँदेसा अत्यन्त उद्दीपक है। इस सँदेसे-में उसने पाराडवींकी यह तीखा उपदेश दिया है कि ज्ञिय-पुत्र या तो जीतकर आवें या मर जायँ, पर भिन्ना कभी न माँगे। यह उपदेश उसने स्वयं श्रपने लाभके लिये नहीं दिया थाः च्योंकि पारडवोंके राज्य पाने पर वह उनके यहाँ बहुत दिनोंतक नहीं रही, किन्तु धृत-राष्ट्रके साथ तपश्चर्या करनेके हेतु वनमें चली गई। जब भीमने कुन्तीसे पूछा कि-"तूने ही तो हमें लड़ाईके लिये उद्युक्त किया था; श्रौर श्रव तू हमारे ऐश्वर्यका उपभोग न कर वनमें क्यों जाती है ?" तब उसने उत्तर दिया कि,—"मैंने श्रपने पतिके समय राज्यके ऐश्वर्यका बहुत उप-भोग किया है। मैंने तुम्हें जो सँदेसा भेजा था वह कुछ अपने लामके लिये नहीं, किन्तु तुम्हारे ही हितके लिये।" पाएडवोंके प्रति उसका अन्तिम उपदेश तों सोनेके श्रज्ञरोंसे लिख रखने योग्य है-धर्में वो धीयतां बुद्धिर्मनो वो महद्स्त च।

श्रर्थात् "तुम्हारी बुद्धि धर्माचर्ण पर स्थिर रहे; श्रीर तुम्हारे मन सङ्कुचित न होकर विशाल हो।" यदि समस्त महा-भारतका तात्पर्य किसी एक श्रोकार्धमें कहा जाय तो वह यही है।

द्रौपदी, कुन्ती, गान्धारी, सुभद्रा, रुक्मिणी श्रादि महाभारतमें वर्णित स्त्रियाँ उदात्त चरित्रकी हैं श्रौर उनमें मनुष्य-स्वभावकी सलक भी महाकवि व्यासने दिखा दी है। उदाहरणार्थ, सुभद्राके विवाहके समय द्रौपदीने श्रपना मत्सरभाव एक सुन्दर वाक्यसे श्रर्जुन पर प्रकट कर दिया—

तत्रव गच्छ कौन्तेय यत्र सा सात्वतात्मजा। सुबद्धस्यापि भारस्य पूर्वबंधः ऋथायते॥ (स्राद्धि० अ० २२१। ७)

श्रर्थात्—"किसी गट्टेका पहला बंधन कितना ही मज़वृत क्यों न हो, पर जब वह दूसरी बार बाँधा जाता है तब उसका पहला बन्धन कुछ न कुछ ढीला हो ही जाता है।" कर्णके सम्बन्धमें कुन्तीका पुत्र-प्रेम युद्धके बाद भी प्रकट हुआ है। उत्तराने वृहन्नड़ासे कहा है कि रणभूमि-से अच्छे अच्छे वस्त्र मेरी गुड़ियोंके लिये अवश्य ले आश्रो। ऐसे और भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

महाभारतमें वर्णित समस्त व्यक्ति उदात्त स्कपके हैं। इतना ही नहीं, किन्तु उसमें कहीं कहीं जिन देवताओं का वर्णन किया गया है उनके चिरत्र भी उदात्त हैं। इस सम्बन्धमें होमरके इलियडकी अपेचा महाभारतकी कुशलता कहीं अधिक है। इलियडमें वर्णित यूनानी देवताओं का बर्ताव मगुष्योंसे भी बुरा है। वे परस्पर लड़ाई-अगड़ा मचाते और मारकाद भी करते हैं। उनका देवता-स्कप प्रायः नष्ट सा जान पड़ता है। महाभारतमें देव-ताओं का जो वर्णन है वह ऐसा नहीं है। वे मनुष्योंके ध्यवहारोंमें थोंही हस्तचेप नहीं करते; श्रीर जब हस्तचेप करनेकी आवश्यकता होती है, तो वे देवताओं-के हो समान बर्ताव करते हैं। एक उदा-हर्ग लीजिये । कर्णके सहजकवचको अर्जुनके लिये प्राप्त कर लेनेकी इच्छासे इन्द्रने एक उपाय रचा। इन्द्रको कर्णका यह वत मालूम था कि यदि कोई ब्राह्मण उससे कुछ माँगे तो वह कभी नाँहीं नहीं करता था। इसलिये इन्द्रने ब्राह्मणका कप धारण किया और कर्णके पास जा-कर उसके कवच-कुएडल माँगे। दानशूर कर्णने तुरन्त ही अपने कवच-कुएडल उसे दे दिये। परन्तु इन्द्र किसी साधा-रण मन्य्यकी नाई कवच-क्रएडलींको बगुलमें द्वाकर चुपचाप वहाँसे चला नहीं गया; उसने देव-सभावके अनुसार बर्ताव किया। सन्तुष्ट होकर उसने कर्ण-से कहा,—"त श्रपनी इच्छाके श्रनुसार वर माँग।" कर्णने उससे श्रमोघशक्ति माँगी। यद्यपि इन्द्र जानता था कि कर्ण उस श्रमोधशक्तिका प्रयोग श्रर्जुन पर भी करेगा, तो भी उसने कर्णको वह शक्ति दे दी। सारांश, महाभारतमें वर्णित देव-चरित्र देवतात्रोंके ही समान उदात्त है। इलियडकी अपेचा महाभारतमें यह विशेष ग्रण है।

श्रव इस वातका विचार किया जायगा कि कविने श्रपने पात्रोंके स्थभावका वर्णन श्रौर श्रपनी कथाकी रचना कैसे की है। स्थभावका उद्घाटन भिन्न भिन्न वर्णनोंसे श्रौर विशेषतः सम्भाषणोंसे हुत्रा करता है। इस सम्बन्धमें भी महाभारतका दर्जा सबसे श्रेष्ठ है। महाभारतकी रमणीयता उसके सम्भाषणोंमें ही है। उसमें दिये हुए सम्भाषणोंके समान प्रभावशाली भाषण श्रन्य स्थानोंमें बहुत ही कम देख पड़ेंगे। उन भाषणोंके द्वारा भिन्न भिन्न

पात्र उत्तम रीतिसे व्यक्त हो जाते हैं। ऐसे भाषगोंके कुछ उदाहरण ये हैं:-श्रादि पर्वमें रङ्गके समय दुर्योधन, कर्ण, श्रर्जुन श्रौर भीमके सम्भाषणः वन पर्वके श्रारम्भ में शिशुपाल और भीष्मके सम्भाषणः वन पर्वके आरम्भमं युधिष्ठिर, भीम और द्रौपदीके सम्भाषणः श्रौर द्रोण पर्वमें धृष्ट-द्यसने द्रोणको जब मारा उस समय, धृष्युम, सात्यकी, अर्जुन और युधिष्ठिरके सम्भाषण । कौरव-सभामें श्रीकृष्णका जो सम्भाषण हुआ वह तो सवमें शिरोमणि है। कर्ण पर्वमें कर्णके रथ पर हमला करने-के समय श्रर्जुनके साथ श्रीकृष्णने जो उत्साहजनक भाषण किया है वह भी ऐसा ही है। ये तथा अन्य भाषण भारतकारके उत्तम कवित्वके साची हैं। भारतमें वर्णित व्यक्तियोंके भाषणमें विशेषता यह है कि वे जोरदार और निर्भय हैं। उदाहरणार्थ, दुर्योधनको उपदेश देते समय विदुर उसकी तीखी निर्भर्त्सना करनेमें कुछ भी श्रागा-पीछा नहीं करता। कहा जा सकता है कि विदुरके लिये उसके जेठेपनकी स्थिति श्रनु-कूल थी। परन्तु शंकुन्तलाको तो यह भी श्राधार न था। इतना होने पर भी उसका दुष्यन्तसे राजसभामें भाषण निर्भय है और एक सदाचार-सम्पन्न, सद्गुणी, श्राश्रम-वासी कन्याके लिये शोभादायक है। कालि-दासकी शकन्तलामें श्रीर व्यासकी शकु-न्तलामें जमीन आसमानका अन्तर है। जब दुष्यन्तने शकुन्तलाको भरी राजसभा-में यह कहा कि — "मैंने तो तुभे पहले कभी देखा ही नहीं; फिर तेरे साथ विवाह करनेकी बात कैसे हो सकती है ?" उस समय कालिदासकी शकुन्तलाके समान वह मूर्ज्ञित नहीं होती, किन्तु यह कहती हुई सभाखलसे बाहर जाने लगती है कि - "जबिक तुम सत्यका ही श्रादर नहीं करते, तब मैं तुम्हारा सहबास

भी नहीं चाहती। सत्य, पति श्रौर पुत्रसे भी श्रधिक मृत्यवान है।"

कर्णपर्वमें शत्य श्रीर कर्णका जो सम्भाषण है वह भी इसी प्रकार तेज़ और जोरदार है। इसीमें हंसकाकीय नामक एक कथा है जो बहुत ही चित्ताकर्षक है। नीतिके तत्त्वोंको हृदयङ्गम करा देनेके लिये बतलाई हुई पशु-पित्तयोंकी कथात्रोंका यह सबसे प्राचीन और सुन्दर उदाहरण है। अर्थात् यह नहीं समभना चाहिये कि इस पद्धतिको ईसापने ही जारी किया है: किन्तु यह ईसापसे भी अधिक प्राचीन है श्रीर व्यासजीके काव्यमें इस प्रकारकी जो दो तीन कथायें हैं वे उदाहर ए-स्वरूप मानी जा सकती हैं। ज्यासजीने अपने काव्यमें जो अनेक सम्भाषण दिये हैं उनसे पाठकोंके मन पर नीति-तत्त्वका उपदेश भली भाँति प्रतिविम्बित हो जाता है: और सत्यवादित्व, ऋजुता, खकार्य-दत्तता. श्रात्मनियह, उचित श्रिमान, श्रीदार्य, इत्यादि सद्गुणोंका पोषण होता है। महा-भारतमें श्रात्मगत भाषण नहीं है।पश्चिमी प्रन्थोंमें आत्मगत भावण एक महत्त्वका भाग होता है और उसे वक्तृत्वपूर्ण बनाने-के लिये उन प्रत्थकारोंका प्रयत्न भी हुआ करता है। हमारे यहाँके यन्थोंमें प्रायः ऐसे भाषण नहीं होते। कमसे कम महाभारत-में तो ऐसे भाषण नहीं हैं। यदि वास्तविक स्थितिका विचार किया जाय तो मानना पड़ेगा कि आत्मगत भाषण कभी कोई नहीं करता, सिर्फ़ चिन्तन किया करता है; श्रीर इस चिन्तनमें शब्दों अथवा अन्य वातोंका विशेष विचार नहीं किया जाता। श्रस्तः यह प्रश्न ही निराला है।

महाभारतकी वर्णन-शैली ऊँचे दर्जेकी है। उसमें दिये हुए वर्णन होमर अथवा मिल्टनसे किसी प्रकार शक्तिमें कम नहीं हैं। वर्णन करते समय किसी प्रकारकी

गडबड़ी नहीं देख पड़ती: शब्द सरल और ज़ोरदार होते हैं: तथा दश्योंके वर्णन श्रीर स्त्री-पुरुषोंके खरूप, खभाव एवं पह-नावेके वर्णन हवह और मनोहर होते हैं। प्रत्यच युद्धका जो वर्णन व्यासजीने किया है वह तो बहुत ही सरस है, यहाँतक कि वह श्रद्धितीय भी कहा जा सकता है। हाँ यह बात सच है कि कहीं कहीं किसी एक ही प्रसङ्गके वार बार श्रा जानेसे पाठकोंका मन ऊब जाता है; परन्तु स्मरण रहे कि ये प्रसङ्ग सौतिके जोड़े हुए हैं। इसके सिवा एक और बात है। जिस समय लड़ाईके प्रधान शस्त्र धनुष-वाण ही थे श्रीर जिस समय रथियोमें प्रायः द्वन्द्व युद्ध हुआ करते थे, उस समयके युद्ध-प्रसङ्ग-की कल्पना हम लोगोंको श्रव इस समय श्रपने मनमें करनी चाहिये। इधर सैंकड़ों वर्षोंसे रथ-युद्ध श्रौर गज-युद्धका श्रस्तित्व नए हो गया है, इसलिये श्राज हम लोग इस बातको ठीक ठीक कल्पना नहीं कर सकते कि उन युद्धोंमें कैसी निष्णता और श्र्रता श्रावश्यक थी। परिणाम यह होता है कि व्यास-कृत युद्ध-वर्णन कभी कभी काल्पनिक मालूम होता है। ऐसे युद्धोंमें भी जो सैंकड़ों भिन्न भिन्न प्रसङ्ग उपस्थित हुआ करते हैं, उन सबका वर्णन सुच्मता-से और वक्तृत्वके साथ किया गया है। महाभारतके युद्ध-प्रसङ्गोकी कथात्रोंको सुनकर वीररस उत्पन्न हुए विना नहीं रहता। यह बात प्रसिद्ध है कि महाभारत-के श्रवणसे ही शिवाजीके समान वीरोंके हृदयमें शूरताकी स्फूर्ति हुई थी।

सृष्टि-सौन्दर्यके वर्णन महाभारतमें बहुत नहीं हैं: श्रीर जो हैं वे भी रामायण- के वर्णनके समान सरस नहीं हैं। इतना होने पर भी महाभारतका दर्जा श्रन्य काव्योंसे श्रेष्ठ ही है, क्योंकि इसमें दिये हुए वर्णन प्रत्यन्त देखनेवालोंके हैं। बनपर्धमें

हिमालयका जो वर्णन है वह उसीके मुख-से हो सकता है जो उस हिमाच्छादित जँचे प्रदेशमें परयच रहता हो। जिस प्रकारके ववन्डरमें द्रौपदी और पाएडव फँस गये थे वैसे ववन्डर हिमालयमें ही श्राया करते हैं। उस ववन्डरका वर्णन वैसा ही सरस और वास्तविक है जैसा कि उस प्रदेशमें रहनेवाला कोई कवि कर सकता है। गन्धमादन-पर्वतका वर्णन श्रतिशयोक्ति-पूर्ण होनेके कारण कुछ काल्पनिक माल्म होगाः परन्तु सच वात तो यह है कि गन्धमादन-पर्वत भी मेरु-पर्वतके समान कुछ कुछ काल्पनिक ही है।

महाभारतमें स्त्रियों और पुरुषोंका जो वर्णन है वह अत्यन्त मनोहर और मर्यादा-युक्त है। श्राधुनिक संस्कृत कवियोंकी नाई इस प्रन्थमें स्त्रियोंकी सुन्द्रताका वर्णन ग्राम्य रीतिसे नहीं किया गया है। युधि-ष्टिरने द्रौपदीका जो वर्णन किया है वह देखने योग्य है। "जो न तो बहुत ऊँची है और न ठिंगनी, जो न मोटी है न पतली, जिसके नेत्र और भ्वास शरद ऋतुके कमलपत्रके समान बड़े और सुगन्धयुक्त हैं; जिस प्रकार किसी मनुष्यकी इच्छा होती है कि मेरी स्त्री इतनी सुन्दर हो उतनी ही जो सुन्दर है: श्रीर जो मेरे बाद सोती तथा पहले उठती है: ऐसी अपनी स्त्री द्रौपदीको में दाँवपर लगाता हूँ ।" श्ररतु; वृहन्नड़ाके भेषमें श्रर्जुनका जो वर्णन है वह बड़े मज़ेका और हबहू है। जिस समय भीष्म और द्रोण लड़ाई पर जाते हैं, उस समयका वर्णन श्रथवा श्रादि-पर्वमें रंगभूमि पर बिना बुलाये जानेवाले कर्णका वर्णन अत्यन्त चित्ताकर्षक है। श्राशा है कि इन उदाहरणोंसे यह विषय समभमें श्रा जायगा। अब हम इस काव्य के चौथे श्रङ्ग अर्थात् वृत्त और भाषाका विचार करते हैं।

महामारतकी रचना मुख्यतः श्रनुष्टुप-वृत्तमें की गई है: श्रौर श्रनेक स्थानोंमें उपजाति-वृत्तका भी उपयोग किया गया है। गम्भीर कथा-वर्णन श्रीर महाकाव्यके लिये ये इत्त सब प्रकारसे योग्य हैं। अवाचीन संस्कृत महाकाव्यों में इन्हीं वृत्तीं-का उपयोग किया गया है। पुराणोंमें, उपपुराणोंमें तथा अन्य साधारण अन्थोंमें भी अनुपृप-छन्दका ही उपयोग किया जाता है, इसलिये यह वृत्त साधारण सा हो गया है। परन्तु प्राचीन सहाकवियोंके अनुष्प-छन्दके श्लोक बड़े प्रौढ श्रीर गम्भीर होते हैं। यह बात रघुवंशके पहले श्रीर चौथे सर्गके श्लोकांसे हर एकके ध्यानमें श्रा सकती है। महाभारतकी भाषा गम्भीर और प्रौढ़ है। इसी प्रकार वह सरल और गुद्ध भी है। सरलता और प्रौढताका मेल प्रायः एक स्थानमें बहुत कम देखा जाता है। श्राधुनिक महाकाव्योंकी भाषा प्रौढ तो अवश्य है, पर इस गुणकी सिद्धिके लिये उनमें सरलताका त्याग करना पड़ा है। शब्दोंकी रमणीय ध्वनि पाठकोंको अच्छी लगती है सही, परन्तु शब्दोंका ऋर्थ समभानेमें उन्हें उहरना पडता है श्रौर विचार भी करना पड़ता है। श्राधु-निक पुराग-ग्रन्थोंकी दशा उलटी है। उनकी भाषा तो सरल है, परन्तु वह बहुत अशुद्ध है और उसमें पीढ़ताका नामतक नहीं है। महाभारतमें दोनों गुण-प्रौढ़ता श्रीर सरलता—पाये जाते हैं। बोलचाल-को भाषाका कोई अधिपति और प्रतिभा-शाली कवि देशी भाषाका उपयोग करेगा, वैसी ही भाषा महाभारतकी है। आर्नल्ड-का कथन है कि प्रौढ़ताके सम्बन्धमें मिल्टनके कांव्यकी भाषा वैसी ही है जैसी गम्भीरताके लिये होनी चाहिये। परन्तु वह शुद्ध श्रीर श्रमिश्रित श्रॅगरेज़ी भाषा नहीं है। उसमें लैटिन और प्रीक शब्दों तथा शब्द-रचनाश्रांकी भी भरमार है। सारांश, भाषाकी दृष्टिसे भी महाभारत-का दर्जा मिल्टनके काव्यसे ऊँचा है। महाभारतके कुछ प्रधान भागोंमें जिस भाषाका उपयोग किया गया है उससे प्रकट होता है कि जब संस्कृत भाषा हजारों लोगोंकी बोलचालकी भाषा थी, उस समय की शुद्ध श्रौर सरल संस्कृत भाषामें प्रौढ़ शब्द-रचनाका होना कहाँतक सम्भव है।

महाभारतमें व्यासकृत जो मूल भाग है उसकी भाषा श्रन्य भागोंकी भाषासे विशेष सरस, सरल श्रीर गम्भीर देख पड़ती है। सौति भी कुछ कम प्रतिभावान कवि न था। परन्तु उसके समयमें साधा-रण जनताकी बोलचालमें संस्कृत भाषा प्रचलित न थी, इसलिये उसके द्वारा रचे हुए भागकी भाषामें कुछ थोड़ा सा अन्तर हो जाना खाभाविक है। जो यह जानना चाहते हैं कि व्यासकृत मूल भारतकी भाषा कितनी प्रौढ़, शुद्ध, सरस और सरल है, वे भगवद्गीताकी भाषाको एक बार अवश्य देखें। जिस प्रकार यह ग्रन्थ-भाग समस्त भारतसे मन्थन करके निकाला हुआ श्रमृत है, उसी प्रकार उसकी भाषा भी श्रमृत-तुल्य है। जिस प्रकार उसमें महा-भारतका सबसे श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान भरा हुआ है, उसी प्रकार संस्कृत भाषा पर ज्यास जीको प्रभुता भी शिखरतक पहुँची हुई उसी प्रन्थमें देख पड़ती है । संस्कृत भाषाके सम्पूर्ण साहित्यमें प्रताकी दृष्टि-से भी भगवद्गीताकी समानता करनेवाला कोई दूसरा श्रन्थ नहीं है। सरलता, शब्द-रचनाकी गुद्धता, वाक्योंकी श्रुतिमनोहर श्रीर गम्भीर ध्वनि श्रादि भगवद्गीताकी भाषाके श्रद्धितीय गुग हैं। इस सर्वोत्तम गीता-ग्रन्थका प्रत्येक शब्द और प्रत्येक वाक्य सुवर्णमय है: क्योंकि वे सचमुच

सुवर्णके समान ही छोटे, वजनदार और

ऊपर बतलाये हुए गुगोंके अतिरिक्त एक और गुणके कारण भी, संसारके सब श्रार्ष महाकाव्योंमें, महाभारतकी श्रेष्ठता प्रस्थापित होती है। यह नहीं बतलाया जा सकता कि किसी महाकाव्यका प्राण या जीवातमा श्रमुक ही है। कवि विविध भाँतिसे अपने पाठकोंका मनोरंजन करता है श्रीर भिन्न भिन्न प्रसङ्गों तथा दश्योंका वर्णन करता है: परन्तु मनोरंजनके सिवा उसका और कुछ हेतु देख नहीं पड़ता। महाभारतका हाल ऐसा नहीं है। उसमें एक प्रधान हेत है जो समस्त ग्रन्थमें एक सामान्य सूत्रके समान प्रथित है और जिसके कारण इस काव्यके प्राण या जीवात्माका परिचय स्पष्ट रीतिसे हो सकता है। किसी प्रसङ्गका वर्णन करते समय व्यासजीके नेत्रोंके सामने सदैव धर्म ही एक ज्यापक हेतु उपस्थित रहा करता था। उनका उपदेश है कि "मनुष्यको धर्मका श्राचरण चाहिये; ईश्वर सम्बन्धी तथा मनुष्य-सम्बन्धी श्रपने कर्तव्योका पालन करना चाहिये तथा धर्माचरणसे हो उसके सब उदिए हेतु सिद्ध होते हैं। उस धर्माचरण से पराङ्मुख होनेके कारण ही उसके सब उद्दिष्ट हेतु नष्ट हो जाते हैं। चाहे कितना बड़ा सङ्कट क्यों न श्रा जाय, दशा कितनी ही बुरी क्यों न हो जाय, पर मनु-प्यको धर्मका त्याग कभी नहीं करना चाहिये।" इसी उपदेशके अनुसार सौतिने भी खान खान पर उपदेश किया है। समस्त महाभारत-ग्रन्थमें धर्मकी महिमा क्ट क्टकर भरी गई है। किसी श्राख्यान अथवा पर्वको लीजिये, उसका तात्पर्य यही देख पड़ेगा, इसी तत्वकी जयध्वनि सुन पड़ेगो कि"यतो धर्मस्ततो जयः।"

इस प्रकार धर्म और नीतिको प्रधान हेतु रखनेका प्रयत्न, पूर्व अथवा पश्चिमके और किसी महाकाव्यमें नहीं किया गया है। ख्यं व्यासजीने अपने शब्दोंसे भी अपने ग्रन्थका यही तात्पर्य वतलाया है। महाभारतके अन्तमें भारत-सावित्री नामक जो चार श्लोक हैं उनमें व्यासजी-ने अपने ग्रन्थके इस रहस्यको प्रकट कर दिया है। उनमेंसे एक श्लोक यह है:— उर्ध्वबाहु विरोम्येष न च कश्चिच्छुणोति मे। धर्माद्र्यश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते॥

श्रर्थात् "भुजा उठाकर श्रोर ज़ोरसे चिह्नाकर में तुम सब लोगोंसे कह रहा हूँ, पर मेरी बात कोई नहीं सुनता। धर्मसे ही श्रर्थ श्रोर कामकी सिद्धि होती है। फिर ऐसे धर्मका पालन तुम लोग क्यों नहीं करते?" ब्यासजीका यही हार्दिक उपदेश इस श्रन्थका परम तात्पर्य है श्रोर इसीसे सारे संसारमें इस श्रन्थकी श्रेष्ठता प्रस्थापित होती है।

यहाँतक "महाभारतके कर्त्ता" के विषय में विचार करते हुए, इन सब वातोंका विस्तारसहित विवेचन किया गया है कि महाभारत-ग्रन्थ कितना बड़ा है, उसका मूल भाग कौन सा श्रौर कितना है, मूल भागको वर्तमान खरूप कैसे पाप्त हुआ और इस अन्थके कर्त्ता कीन कौन हैं। अब इसी विषयका संद्रोपमें सिंहावलोकन किया जायगा। महाभारत-में लगभग इस प्रश्नक हैं। सम्भव नहीं कि इतना पिक श्रवल की हो। इससे यह श्रवल जाता है कि इस प्रनथकी रचना एकसे अधिक कवियों-ने की होगी । दो कर्त्ता तो ग्रन्थसे ही स्पष्ट प्रकट होते हैं। वे व्यास श्रीर सौति है। व्यासकृत मूल भारतको पहले पहल वैशम्पायनने प्रसिद्ध किया है, इसलिये तीन कत्तात्रोंका होना माननेमें कोई हर्ज

नहीं। ब्यास श्रीर वैशम्पायनके ग्रन्थोंमें कुछ बहुत न्युनाधिकता न होगी जान पड़ता है कि वैशम्पायनके ग्रन्थमें २४००० क्योंक थे। मृल प्रन्थका नाम 'जय' था । वैशम्पायनने उसका नाम भारत रखा। उसीने पहलेपहल भारत-संहिताका पठन किया था। आश्वलायन सूत्रमें उसे भारताचार्य कहा गया है। कहते हैं कि भारतमें ==00 क्रट स्रोक हैं। इससे कुछ लोगोंका अनुमान है कि व्यास-कृत भारतके स्रोकोंकी यही संख्या होगी; पर यह अनुमान ठीक नहीं है। व्यास-कृत भारतके श्लोकोंकी संख्या इससे वहुत श्रधिक होनी चाहिये। व्यासजीने लंगातार तीन वर्षतक उद्योग युद्ध की समाप्तिके अनन्तर, अपने अन्धकी रचना की। वैशम्पायनने उसे कुछ थोड़ा सा वढा दिया और २४००० श्लोकोंका ग्रन्थ बना दिया। ग्रीर ग्रन्तमें सौतिने उसीको एक लाख श्लोकोंका ग्रन्थ कर दिया। इतने बड़े ग्रन्थकी रचना करनेके लिये सौतिके समयकी सनातन धर्मकी दशा ही प्रधान कारण है। सौतिके समय सना-तन धर्म पर बौद्ध श्रौर जैन धर्मोंके हमले हो रहे थे। सनातन धर्ममें भी उस समय अनेक मतमतान्तर प्रचलित थे और उनका परस्पर विरोध हो रहा था। अतएव उस समय इस बातकी बहुत श्रावश्यकता थी कि छोटी छोटी सब गाथाओंको एकत्र करके और सब मतमतान्तरोंके विरोधको हटाकर किसी एक ही ग्रन्थमें सनातन धर्मका उज्ज्वल खरूप प्रकट किया जाय। इस राष्ट्रीय कार्यको सौतिने पूरा किया। ऐसा करते समय उसने सब प्रचलित दन्त-कथाश्रोंको किया और अन्य रीतिसे भी महाभारतमें श्रनेक उपयोगी वातोंका संग्रह कर दिया । सारांश. धर्म, नीति, तत्त्वज्ञान श्रीर इतिहासका एक वृहत् श्रन्थ ही उसने बना डाला। यद्यपि यह ठीक ठीक नहीं बतलाया जा सकता कि उसने किन किन भागोंको बढ़ाया है, तथापि इस विषयमें स्पष्ट रीतिसे कुछ श्रनुमान किया जा सकता है। सौतिने किन किन बातों-का विस्तार किया है, इसका भी विचार हो चुका। श्रन्तमें इस बातका भी विचार किया गया है कि कवित्वकी दृष्टिसे व्यासकत भारतकी श्रेष्टता कितनी श्रिधक है। इस भारतमें सौतिने बहुत सी नई भर्ती कर दी है। परन्तु इससे श्रन्थकी

राष्ट्री प्रदेश हैं। विशेष के अधिक कि

त्वातार तीन प्रयोद प्रयोद्ध कुर्दे पुर, से सामाधिक स्थाप, इसरे में बच्चे

र नवा की 1 वेपस्पायको इन्न कर बोड़ा सामग्रा दिया और अन्तरो सोजिने स्ट्य बना दिया। योर अन्तरो सोजिने प्रसाना ग्रह साम सोजिन कर्म और

to a mar come to the parties of the

विशेष व स्वतान्त्र मधात्व व सार प्रकार परेन्य निरोध हो। पत्त या मुख्या वृत्त रामय इस क्रावर्त्त सहस्र प्राय वृद्धा वीच क्रिक्ष होडी दृद्धी स्वय सम्बद्धांकी

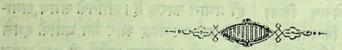
विश्वास के हुंग है जिसे किया है। सहवेते प्राचीया वसकी व्यवस्था कार्य के स्थित विश्वास किया है की वसके समय वसके

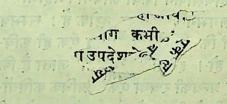
RED VINESCOND DINE

THE REAL TO SERVICE

the rate 1 four les arens

श्रेष्ठतामें कुछ न्यूनता नहीं हुई, प्रत्युतधर्म, नीति श्रोर कथाका उचित संग्रह इस ग्रन्थमें हो जानेके कारण इसे राष्ट्रीय खरूप प्राप्त हो गया है। इससे यह भी हुश्रा है कि मूल ग्रन्थके समयकी परिक्षितिके सिवा सौतिके इसे बढ़ानेके समयकी परिस्थिति भी इसमें प्रतिबिग्नित हो गई है। वह सौतिका काल कौन साथा, इस बातका विचार करना जरूरी है। यह समय, जैसा कि हमने पूर्वमें कहा है, श्रशोकका ही समय है या श्रीर कोई, श्रव यही देखना है।





हुसरा प्रकरण।

-officer

महाभारत प्रन्थका काल।

क्किहाभारतके काल-सम्बन्धी विषयमें दो प्रश्न श्रन्तर्भाव हैं। पहला प्रश्न यह कि, जिस रूपमें श्रभी हम महाभारतको देखते हैं वह रूप उसे कव प्राप्त हुआ ? श्रीर दूसरा प्रश्न, मृल महाभारत कवका है ? सौतिने महाभारतमें अनुक्रमणिकाको जोडकर प्रत्येक पर्वकी श्रध्याय-संख्या श्रीर श्रोक-संख्या दी है। इस श्रनुक्रम-शिकाके श्रवसार जाँच करने पर मालूम होता है (श्रीर यह हम पहले देख भी चुके हैं) कि, प्रचलित महाभारतमें सौतिके समयसे कुछ भी नई भरती नहीं हुई है। इसलिये हम निश्चयपूर्वक मान सकते हैं कि प्रचलित महाभारत श्रीर सौतिका महाभारत एक ही है। इस ग्रन्थका काल-निर्णय अन्तस्य तथा बाह्य प्रमाणीके श्राधारपर निश्चयात्मक रीतिसे किया जा सकता है। पहले तो महाभारत व्यासजी-का वनाया हुआ है और फिर इसके बाद वैशम्पायनकी रचना हुई। तब प्रश्न होता है कि ये प्रनथ कब बने ? यथार्थमें यह प्रश्न विकट है। इसका निर्णय करनेके लिये महाभारतके कुछ विशिष्ट भागोंका ही उपयोग हो सकता है। श्रीर उन भागोंका सम्बन्ध भारती-युद्धके साथ जा पहुँचता है। इस प्रश्नका विचार करनेमें अनुमानपरं ही अधिक अवलस्वित होना पड़ता है श्रीर विद्वान् लोग भी इस विषयमें भिन्न भिन्न अनुमान करते हैं। अतएव इस पश्चको अभी अलग छोड़कर, इस भागमें पहले प्रश्नका ही विचार किया जायगा। महाभारतमें ही कहा है कि, प्रचलित महाभारतमें एक लाख क्रोंक हैं। यदापि

प्रत्यत्त जोड दो चार हजारसे कम हो. तथापि लोगोंकी यह समभ महाभारतके समयसे ही चली श्राती है कि महाभारत एक लाख क्षोकोंका ग्रन्थ है। ऐसी दशा-में महाभारत ब्रन्थ एक लद्दात्मक कब हुआ, यह निश्चित करनेके लिये देखना चाहिये कि बाह्य प्रमाणोंमें एक लुद्धात्मक प्रनथका उल्लेख कहाँ कहाँ मिलता है। इस तरहका उल्लेख दो खानोंमें पाया जाता है। गुप्तकालीन एक लेखमें "शत साहस्यां संहितायां" कहा है। इस लेखका काल ईसवी सन ४४५ है। इससे प्रकट होता है कि महाभारतको उसका वर्तमान रूप ईसवी सन् ४०० के पहिले प्राप्त हुआ था। इससे कुछ लोग समभते हैं कि महाभारतको वर्तमान खरूप गुप्तीके जमानेमें प्राप्त हुआ है। परन्त यह भूल है, क्योंकि एक लज्ञात्मक ग्रन्थका उल्लेख इसके भी पहले पाया जाता है और वह युनानियोंके लेखमें है। यह श्रीक लेखक या वक्ता डायोन कायसोस्टोम है। यह ईसवी सन्की पहिली शताब्दीमें दित्तण हिन्दुस्थानके पाएड्य, केरल इत्यादि भागींमें श्राया था। इसने लिखा है कि हिन्दुस्थान-में एक लाख क्योंकोंका 'इलियड' है। जिस प्रकार इलियड प्रीक लोगोंका राष्ट्रीय महाकाव्य है, उसी प्रकार महा-भारत हिन्दुस्थानका राष्ट्रीय महाकाव्य है। इस यूनानी लेखकने यद्यपि महा-भारतका नाम नहीं दिया है, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि उक्त उन्नेखका सम्बन्ध महाभारतसे ही है। ऐसी शङ्का नहीं की जा सकती कि यह उल्लेख रामा-यणके सम्बन्धमें होगाः क्योंकि यद्यपि

^{*} उच्चकल्पके महाराज सर्वनाथके, सम्बत १६७ के, लेख (गुप्त इन्स्किपशन्स, भाग ३, पृष्ठ १३४) में कलचूरी सम्बत है। श्रर्थाल् यह लेख १६७ + १७० = ३६७ शकका, यानी सन् ४४५ का है।

वर्तमान रामायण-प्रनथ उस प्रवासीके समयमें था, तथापि वह कुछ एक लच्मा-त्मक नहीं है। वह बहुत ही छोटा यानी इसके चत्रथीशके लगभग है। तात्पर्य, यह उल्लेख महाभारतको ही लागू होता है। डायोन कायसोस्टोमका समय यदि ईसवी सन् ५० के लगभग माना जाय, तो यह स्पष्ट है कि उस समय दक्तिएके पांड्य देशमें महाभारत प्रचलित था श्रोर इसी लिये सौतिका महाभारत उसके अनेक वर्ष पहले बन चुका होगा। इस ग्रीक वका-का उल्लेख सबसे पहले वेबरने किया है श्रौर उसकी समभके श्रनुसार 'इलियड' शब्दसे महाभारतका ही बोध होता है। वह कहता है-"जिसकी श्लोक-संख्या इतनी वड़ी हो कि जितनी महाभारतकी है, ऐसे महाकाव्यके हिन्दुस्थानमें होनेका सबसे पहला प्रमाण डायोन कायसोस्टोम-के लेखमें पाया जाता है।" श्रागे चलकर वेषर कहता है—"जब कि मेगास्थिनीजके यन्थमें महाभारतका कोई उल्लेख नहीं है, महाभारतका श्रारम्भ भेगास्थिनीजके बाद हुआ होगा।" परन्तु यहाँ पर वेबरकी अल है। यह बात प्रसिद्ध है कि मेगास्थिनीज नाम-का ग्रीक राजदृत हिन्दुस्थान देशमें चन्द्रगुप्त सम्राट्के दरवारमें था। श्रर्थात् उसका समय ईसवी सन् ३०० है। उस समय हिन्हुस्थानके सम्बन्धमें जो जो बातें उसे माल्म हुई उन सबको उसने इंडिका नामक प्रत्थमें लिखा था । यद्यपि वह ग्रन्थ नष्ट हो गया है, तथापि श्रन्य ग्रन्थकारों द्वारा दिये हुए उसके बहुतेरे श्रवतरण पाये जाते हैं। यह बात सच है कि श्रवतरणोंमें भारत जैसे ग्रन्थका उत्तेख नहीं है ; परन्तु जब कि मेगास्थिनीजका समस्त ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं है, तो निश्चयपूर्वक यह भी नहीं कहा जा सकता कि उस प्रन्थमें भारतका उन्नेख

है ही नहीं। बहुत हो तो इतनाही कहा जा सकता है, कि उसके समयमें एक लचात्मक महाभारत नहीं था और यथार्थ. में वह था भी नहीं। परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि उस समय भारतका श्रस्तित्व ही नहीं था। इसी लिये तो हमने महासारतके समयका अशोकका सम-कालीन माना है। चन्द्रगुप्तके समयमें एक लाख श्होकांका महाभारत नहीं होगा। चन्द्रगुप्तके नाती श्रशोकके समयमें वह तैयार किया गया होगा; अथात् ईसवी सन्के लगभग २५० वर्ष पहले वह उत्तर हिन्दुस्थानमें तैयार होकर करीब ३०० वर्षमें द्विएकी श्रोर कन्याकुमारी तक प्रचलित हो गया होगा; और वहाँ सन् ५० ई० के करीब डायोन कायसोस्टोमको दृष्टिगोचर इया होगा।

इस प्रकार महाभारतके कालकी सबसे नीचेकी मर्यादा सन् ५० ई० है। डायोन कायसोस्टोमकी साली श्रत्यन्त महत्व-की और बहुत दढ़ है। उसमें एक लच्चा-त्मक अन्थका उल्लेख स्पष्ट रीतिसे पाया जाता है। ऐसी दशामें यह बड़ी भारी भूल है कि बहुतेरे लोग इस साची अथवा प्रमाणकी श्रोर पूरा पूरा ध्यान नहीं देते श्रौर महामारतके समयको सन् ५० ईसवी-के इस पार घसीट लानेका प्रयत्न करते हैं। जान पड़ता है कि मानो ऐसे विद्वानोंको इस साची अथवा प्रमाणका कुछ पता ही मालूम न हो। हम ऊपर कह आये हैं कि प्रसिद्ध जर्मन विद्वान प्रोफेसर वेबरको यह प्रमाण मालूम था। इसलिये जबतक यह प्रमाणकाटकर रद न कर दिया जाय, तवतक महाभारतका समय सन् ५० ईसवीके इस पार किसी तरह घसीटा नहीं जा सकता। अब इस सम्बन्धमें अधिक विचार न करके हम इस बातको सोचेंगे कि महामारतके कालकी ऊँची मर्यादा

कौन सी है। प्रथम महत्त्वकी वात यह है
कि महाभारतमें यवनोंका उन्नेख बार वार
किया गया है। उनकी कुशलताके वर्णनक्ष
में यह भी कहा गया है कि वे बड़े योद्धा
है। ग्रादि पर्वमें वर्णन है कि—"जिस यवन
राजाको वीर्यवान पांडु भी न जीत सका
उसे श्रर्जुनने जीत लिया।" यह वात
प्रसिद्ध है कि यवनोंका श्रीर हमारा वहुत
समीपका परिचय श्रलेक्ज़ेन्डर (सिकन्दर)
के समय हुशा। इसके पहले यवनोंका
श्रीर हमारा जो परिचय हुशा था वह
समीपका न था। हम लोगोंको उनके
बुद्धि-कौशल्यका परिचय या श्रनुभव कुछ

* हापिकन्सका कथन है कि महाभारतमें श्रीक (यनानी) राब्दोंका भी प्रवेश हो गया है। जतुदाह पर्वमें जहाँ यह वर्णन है कि जमीनके अन्दर खोदकर रास्ता वनाया गया था, वहाँ सुरङ्ग शब्दका प्रयोग किया गया हैं: जैसे "सुरंगां विविशुस्तूर्णं मात्रासार्धमरिंदमाः ।" (भा० श्रादि० श्र० १४८--१२)। हाप्किन्सका कथन है कि यह सरङ्ग शब्द श्रीक 'सिरिंजस' शब्दसे वना है। इम भी समकते हैं कि यह शब्द यीक होगा। यह भी जान पड़ता है कि पुरोचन यवन था। सुरङ्ग लगानेकी युक्ति युनानियोंके युद्धकलामें होगी । इस ज्युदाह पर्वमें यह वर्णन है कि म्लेच्छ भाषामें बातचीत करके विदुरने युधि-ष्टिरको लावागृहमें जलाये जानेके प्रयत्नकी सूचना इस प्रकार दे दी कि जो और लोगोंकी समममें न आ सकी। परन्तु आगे चलकर विदुरका जो भाषण दिया गया है वह संस्कृतमें और कूट श्लोकोंके समान है। यह एक महत्त्वका प्रश्न है कि विदुरने किस म्लेच्छ भाषामें बातचीत की। टीकाकारने सुकाया है कि वह प्राकृत भाषामें बोला। परन्तु सच बात तो यह है कि प्राकृत कुछ म्लेच्छ भाषा नहीं है। श्रीर यदि वह वैसी हो तो भी इस देशके साधारण लोग उसी भाषामें बातचीत करते थे, इसलिये यह नहीं माना जा सकता कि वह लोगोंकी समभमें आई न हो। हम्भरा खयाल है कि वह भाषा यूनानी ही होगी। सिक-न्दरके जमानेमें कुछ समयतक, पंजाबमें राजभाषा समभ कर, कुछ लोग यूनानी भाषा बोलना सीख गये होंगे; और वर्तमान समयमें जिस प्रकार इम लोग दूसरोंकी समक्तमें न आने देनेके लिये ऋँगरेजी भाषामें बोलते हैं, उसी प्रकार ग्रप्त कार्रवाइयोंके लिये यूनानी भाषाका उपयोग किया जाता होगा। सारांश, जब इस प्रकार यूनानी भाषाका कुछ प्रचार हो चुका होगा तब महामारत बना होगा। भी न था। ऐसी श्रवस्थामें सिकन्द्रकी चढ़ाईको, श्रथीत् ईसची सनके पहले लग-भग ३२० वर्षको, साधारण तौर पर, महा-भारतके कालकी पूर्वमर्यादा कह सकते हैं। श्रौर यह बात सिद्ध मानी जा सकती है, कि ईसची सनके पहले ३२० वर्षसे लेकर सन् ५० ईसचीतक एक लाख श्रोकों-का वर्तमान महाभारत तैयार हुशा है।

ज्योतिष-शास्त्रके आधार पर दूसरा प्रमाण दिया जा सकता है। ज्योतिष-शास्त्र-की दो वार्ते—अर्थात राशि और नज्ञन— इस काल-निर्णयके काममें बहुत उपयोगी हुआ करती हैं। हमारे मूल आर्य-ज्योतिष-की रचना नचत्रों पर है और युनानी ज्योतिषकी रचना राशियों पर है। बहुत कुछ निश्चयात्मक रोतिसे यह वतलाया जा सकता है कि हिन्दुस्थानमें राशियोंका प्रवेश कवसे हुआ। प्रमाणकी दृष्टिसे यह एक महत्त्वकी बात है कि महाभारतमें मेष, व्रषम आदि राशियोंका उल्लेख कहीं नहीं है। महाभारतमें जहाँ जहाँ काल-निर्देश किया गया है, वहाँ वहाँ यही कहा गया है कि श्रमुक बात श्रमुक नत्तत्र पर हुई। रामायण्में जहाँ रामजन्मका वर्णन है. वहाँ यही कहा गया है कि उस समय कर्क लग्न पर पाँच ग्रह उच्च स्थानमें थे। इससे निश्चय होता है कि हिन्दुस्थानमें राशियोंके प्रचलित हो जाने पर रामायण-को वर्तमान स्वरूप प्राप्त हुआ है। महा-भारतमें युधिष्ठिरका जो जन्म-काल बत-लाया गया है वह राशि-व्यतिरिक्त है। उसके सम्बन्धमें यह वर्णन है कि जब चन्द्र ज्येष्टा नत्तत्र पर था, तब श्रभिजित् मुहूर्त्त में यधिष्टिरका जन्म हुआ। सारांश,

महाभारतके श्रादि पर्वमें युधिष्ठरके जन्मकालके सम्बन्धमें यह वाक्य हैं:—''ऐन्द्रे चन्द्रसमारोहे मुहूर्नेऽ भिजितेऽष्टमे । दिवामध्यगते सूर्ये तिथी पूर्णेऽतिप्जिते ।'' इस भ्रोकमें राशिका जल्लेख कहीं नहीं है । इस पर

महाभारतमें जहाँ तहाँ नच्नत्रोंका ही उल्लेख है, राशियोंका उल्लेख नहीं है। इससे निर्णयात्मक रीतिसे माल्म हो जाता है कि हिन्दुस्थानमें राशियोंका प्रचार महाभारतके बाद हुआ है। प्राचीन समयके अपने किसी अन्थके विषयमें यदि निश्चयात्मक रीतिसे जानना हो कि वह अन्थ सचसुच प्राचीन है या नया, तो राशियोंका उल्लेख एक अत्यन्त महत्त्वका ज्ञापक प्रमाण है। इस उल्लेखके आधार पर प्राचीन अन्थोंके दो भाग—अर्थात् पूर्वकालीन और आधुनिक—हो जाते हैं। अब हमें इस वातका विचार करना चाहिये कि हिन्दुस्थानमें राशियाँ कबसे प्रचलित हुई।

यह वात निश्चयात्मक रीतिसे सिद्ध है कि राशियाँ हम लोगोंने यूनानियोंसे ली हैं। शक्कर वालकृष्ण दीन्नित कृत 'भार-तीय ज्योतिष शास्त्र' के १३६ वें पृष्ठमें यह निश्चय किया गया है कि ईसवी सनके लगभग ४५० वर्ष पूर्व हमारे यहाँ राशियाँ ली गईं। महाभारतमें श्रवणादि गणना है, उसका समय शक ४५० हैं: श्रीर भारतमें राशियाँ नहीं हैं, इससे प्रकट होता है कि शकके पहले लगभग ५०० वर्षतक मेषादि नाम हमारे देशमें नहीं थे।" दीन्नितका मत है कि शकके पहले ५०० के लगभग हमारे देशमें मेषादिका प्रचार हुआ: परन्तु इस मतमें बहुत कुछ रद-बदल करना पड़ेगा। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे देशमें

चतुर्धरको यह टीका है:— 'ऐन्द्रे ज्येष्ठानचन्ने अष्टमे सम्व-स्तरारम्भात् श्रमिजितेऽभिजिति निंशन् मुहूर्त स्यान्होऽष्टमे मुहूर्ते दिवा शुक्रपचे मध्यगते तुलागते तिथौ पूर्णे पूर्णायां पंचम्यां श्रयं योगः।" इसमें 'मध्यगते' का श्रर्थ 'तुलायन-गते' नहीं किया जा सकता। यह एक कूटार्थका ही प्रकार है। कदाचित् टीकाकारको 'दिवा मध्यगते सूर्वे' श्रिधिक जान पढ़ा होगा (क्योंकि श्रमिजित् गुहूर्त से उसका बोध हो जाता है) इसलिये यह श्रर्थ किया गया हो। परन्तु इसका कुछ दूसरा श्रर्थ हो ही नहीं सकता। कुछ भी हो, यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि मूलमें राशिका नाम नहीं है। मेषादि राशियों के नाम उसी समय प्रच लित हुए हैं जब कि यूनानियों के साथ हमारा दढ़ परिचय हो गया था। इसलिये प्रस्तुत विवेचनमें इस बातका ऐतिहासिक विचार भी किया जाना चाहिये कि यूना-नियों के साथ हमारा दढ़ परिचय कब हुआ।

ईसवी सन्के पहिले ३२३ वें वर्षमें सिकन्दरने हिन्दुस्थान पर चढ़ाई की थी। उसी समय श्रीक लोगोंके साथ हमारा निकटका परिचय हुआ और हमें उनकी श्रताकी पहचान हुई। परन्तु उस समय उनके ज्योतिष-शास्त्रका कुछ दढ़ परिचय हम लोगोंको नहीं हुआ, च्योंकि सिकन्दरके लौट जाने पर पञ्जावसे श्रीक-सत्ताका उचाटन चन्द्रगुप्तने कर डाला। इसके बाद चन्द्रगुप्तके दरवारमें मेगास्थिनीज नाम-का एक यूनानी राजदूत रहता था और श्रागे भी कुछ दिनोंतक युनानियोंके राजदूत यहाँ रहा करते थे। परन्तु यह सम्बन्ध पर-राष्ट्रीय सम्बन्धके ढंगका था, इस-लिये इसमें विशेष हढ़ परिचय होनेकी कोई सम्भावना न थी। यह भी नहीं कहा जा सकता कि सिकन्द्रके पहले युना-नियोंके साथ हमारा कुछ भी परिचय न था। पारसीक (Persian) लोगोंके बाद-शाह दाराउस और खुसरोने पूर्वकी श्रोर सिन्धतकका मुल्क जीत लिया था श्रीर पश्चिमकी श्रोर एशिया माइनरके किनारे परकी ग्रीक रियासतोंको जीत लिया था। श्रीक लोगोंके इतिहाससे पता चलता है इस बादशाहकी फौजमें भिन्न भिन्न देशोंकी सेनाएँ, श्रीक लोगोंकी तथा हिन्दुस्थान-के निवासियोंकी भी सेनाएँ, थीं; और हमारे हिन्दुस्थानी भाई उस बादशाहके साथ यूनान देशतक गये भी। सारांश, ईसवी सनके पहिले ५०० वर्ष तक युना-नियोंके साथ हमारे सहवासका प्रमाण मिलता है। इसके पहिले भी कई सी वर्ष

तक व्यापारके सम्बन्धसे उन लोगोंकी जानकारी हमको श्रवश्य होगी। इसके मिवा सिकन्दरके समय उसके साथ रहनेवाले श्रीक लोगोंको मालूम हुआ कि श्रफगानिस्तानमें यूनानियोंकी एक प्राचीन बस्ती है। इसी यवन जातिके लोगोंका नाम कांबोज श्रादि म्लेच्छोंके साथ साथ महाभारतमें बार बार पाया जाता है।इन लोगोंके श्राचार-विचार बहुत कुछ बदल गये थे। इन सब बातोंसे जान पडता है कि ईसवी सन्के पहिले =00-800 वर्षसे लेकर सिकन्दरके समयतक अर्थात सन ३०० ईसवीतक हम लोगोंको युनानियाँ-का परिचय था। ये लोग मुख्यतः ऋयोनि-यन जातिके थे । इसीसे हमारे प्राचीन ब्रन्थोंमें यूनानियोंके लिये 'यवन' शब्दका प्रयोग किया गया है। इतने विस्तारके साथ विवेचन करनेका कारण यह है कि पाणिनिके सूत्रोंमें यवन-लिपिका उल्लेख पाया जाता है। पाणिनिका समय सिकन्दर-के पहलेका होना चाहिये। तब प्रश्न है कि उसके सूत्रोंमें यवन शब्द कैसे आया? यदि सिकन्दरके पहले यवनीका कुछ परिचयन हो, तो पाणिनिक सत्रोंको सिक-न्द्रके बादका ही समय देना चाहिये। परन्तु हम देख चुके हैं कि हमारा यह परिचय ईसवी सनके पहले =००-६०० वर्ष तकका प्राचीन है। ऐसी श्रवस्थामें पाणिनि-का समय वहाँतक जा सकता है: परन्त इतने अलप परिचयसे ही हिन्दुस्थानमें मेपादि राशियोंका प्रचलित हो जाना सम्भव नहीं है। कारण यह है कि हमारे यहाँ मेषादि राशियोंके श्रा जानेसे ज्योतिष शास्त्रके गणितमें बड़ा भारी परिवर्तन हो गया है। इसके पहलेका वेदांग-ज्योतिष निज्ञादि सत्ताईस विभागों पर बना है और उसके इस पारका सब ज्योतिष-गिएत १२ राशियों तथा ३० अंशोंके आधार

पर रचा गया है। इतने बड़े परिवर्तनके लिये श्रीक लोगोंका श्रीर हमारा एकत्र सहवास तथा हढ़ परिचय अत्यन्त श्राव-श्यक है। अब देखना चाहिये कि यह सह-वास श्रीर परिचय कब हुआ।

जब सेल्यूकसकी अमलदारी हिन्दु-स्थानसे उठ गई, तव ईसवी सन्के पहिले २०० के लगभग, वैक्ट्रियन देशमें स्थित यूनानियोंने हिन्दुस्थान पर चढ़ाई करके पंजाबमें फिर अपना राज्य स्थापित किया। उनका यह राज्य १०० वर्षतक हिन्दुस्थान-में रहा। श्रीक लोगोंका और शक लोगों-का साहचर्य प्रसिद्ध है। इसीसे 'शक-यवनम्' शब्द प्रचलित हुन्ना । उनका मशहूर राजा मिनन्डर बौद्ध इतिहासमें 'मिलिन्द' नामसे प्रसिद्ध है। उसीके प्रश्नोंके सम्बन्धमें 'मिलिन्द-प्रश्न' नामक बौद्ध प्रनथ बना है। इन प्रीक लोगोंके श्रनन्तर श्रथवा लगभग उसी समय शक लोगोंने हिन्दुस्थान पर चढ़ाइयाँ कीं। उनके दो भाग होते हैं। एक भाग वह है जो पंजाबमेंसे होता हुआ मथुरातक फैल गया था; श्रौर दूसरा वह है जो सिंध-काठियावाड्से होता हुआ उज्जैन-की श्रोर मालवेतक चला गया था। इन शकोंके साथ यूनानी भी थे, क्योंकि उनके राज्य बैक्ट्रियामें ही थे। वे लोग यूनानियोंके सब शास्त्र और कला-कुश-लता जानते थे। ऊपर लिखे हुए दूसरे भागके शक लोगोंने उज्जैनको जीतकर वहाँ श्रपना राज्य स्थापित किया श्रीर विक्रमके वंशजोंके बाद वहीं शक लोगोंकी राज-धानी हो गई। उन्होंने यहाँ शककाल श्रारम्भ किया इसी लिये उस कालको 'शक' कहते हैं। शक लोगोंका राज्य उज्जैन, मालवा और काठियावाडमें लगभग ३०० वर्षीतक रहा । इन्हींकी अमलदारीमें यवन-ज्योतिष और भारतीय ज्योतिषके

शास्त्रवेत्तात्रोंने अपनी विद्या एकत्र की श्रीर राश्यंशादि-घटित यह-गणितका आरम्भ किया। प्राचीन पंचसिद्धान्त यहीं वनाये गये होंगे। वे सब राश्यंश-घटित गणितके श्राधार पर रचे गये हैं। इसके बादके ब्रह्मसिद्धान्त. श्रार्यसिद्धान्त श्रोर सूर्य-सिद्धान्त भी इन्हींके आधार पर बनाये गये हैं। सारांश, यूनानी ज्योतिषकी सहा-यतासे उज्जैनमें श्राधनिक श्रार्य ज्योतिषकी रचना की गई है; इसी लिये सवं भारतीय ज्योतिषकार उज्जैनके रेखांशको शून्य रेखांश मानते हैं। जिस प्रकार श्रंश्रेज ज्योतिषी श्रीनिचके रेखांशको शुन्य मानते हैं उसी प्रकार आर्थ ज्योतिषी उज्जैनके रेखांशको शून्य मानते हैं। वहाँ राजा-अयके अधीन एक प्राचीन वेधशाला भी थी और वहीं वर्तमान आर्य ज्योतिपकी नींव डाली गई। ज्योतिष शास्त्रका यह अभ्यास कुछ एक दो वर्षका ही न होगा. क्योंकि उसे जो नया स्वरूप प्राप्त हुआ है वह केवल प्रीक लोगोंके अनुकरणसे ही प्राप्त नहीं हुआ है। उसका विकास स्तन्त्र रीति श्रीर स्तन्त्र पद्धतिसे हुश्रा है। उसमें ग्रहगणित एक प्रधान श्रंग अवश्य है; परन्तु युगादिकी कल्पना और गणित प्रीक लोगोंसे विलकुल भिन्न है। उसमें कल्पके आरम्भका निश्चय करते समय अनेक प्रकारका गिएत तैयार करना पड़ा है। सारांश यह है कि हिन्दुस्थानमें पञ्जाबसे लेकर मालवेतक सौ दो सौ वर्ष ज्योतिषशास्त्रका अभ्यास होता रहा होगा और उज्जैनमें राजाश्रयसे उसका श्रन्तिम खरूप निश्चित तथा स्थिर हो गया होगा।

इस प्रकार इतिहासकी दृष्टिसे मालूम होता है कि हिन्दुस्थानमें राश्यंशादि गणितका प्रचार ईसवी सन्के लगभग २०० वर्ष पहले हुआ है। यह बात सच

है कि शङ्कर वालकृष्ण दीचितका वतलाया हुआ ४५० वर्षका समय इससे भी दूरका है: परन्तु उसे घटाकर ईसवी सन्के पहले २०० वर्ष माननेमें कोई हर्ज नहीं, क्योंकि वह पूर्व-मर्यादा है। श्रतएव सिद्ध है कि उसके इस पार यह समय हो सकता है श्रीर उस पार किसी दशामें नहीं जा सकता। पितिहासिक प्रमाणीके आधार पर राशि, श्रंश श्रादिके प्रचलित होनेके इस श्रोरके इस निश्चित समय पर यदि ध्यान दिया जाय, तो मालूम होगा कि महाभारत इस समयके पहलेका है, क्योंकि उसमें राशियोंका उल्लेख नहीं है। इस दृष्टिसे विचार करने पर पहले बत-लाया हुआ हमारा समय अर्थात ईसवी सन्के पहले २५० वर्ष ही प्रायः निश्चित सा हो जाता है। जब कि मेगास्थिनीजके यन्थमें महाभारतका उल्लेख नहीं है, तब पहला श्रनुमान यह है कि वह ग्रन्थ ईसवी सन्के पहले ३०० वर्षके इस श्रोर-का होगा। दूसरी बात यह है कि श्रीक लोगोंकी शूरताका वर्णन महाभारतमें पाया जाता है। इससे भी यही निश्चय होता है कि उसका समय सिकन्दरकी चढ़ाईके बादका होना चाहिये, अर्थात् ईसवी सनके पहले ३०० वर्षके इधरका होना चाहिये। श्रव तीसरा प्रमाण लीजिये: राशि आदिके प्रचलित होनेका जो समय ईसवी सन्के पहले दो सौ वर्ष है, वह इससे भी अधिक समीपका अर्थात् इस श्रोरका हो सकता है सही: परन्त वह समय सौ वर्षसे श्रधिक इस श्रोर घसीटा नहीं जा सकता। स्वयं शङ्कर बालकृष्ण दीचितका कथन है कि वे प्राचीन सिद्धान्त-ग्रन्थ, जिनमें राशि त्रादिका गणित है, ईसवी सनसे पहले सी वर्षसे श्रधिक इस श्रोरके नहीं हो सकते। ऐसी दशामें बहुत हो तो, महाभारतके कालकी

इस श्रोरकी मर्यादा ईसवी सन्के पहले सौ वर्षकी मानी जा सकेगी।

यह विषय अत्यन्त महत्त्वका है। वह मव साधारण पढ़नेवालोंकी समभमें भली भाँति श्रा जाय, इसलिये कुछ श्रधिक विस्तारपूर्वक लिखना श्रावश्यक है। हमारा कथन है कि जिन यन्योंमें राशियों-का उल्लेख नहीं है, अर्थात् ऐसे उल्लेखकी त्रावश्यकता होने पर भी जिनमें केवल नज्ञोंका ही उल्लेख है, वे ग्रन्थ ईसवी सनके लगभग दो सौ वर्ष पूर्वके उस पार-के होंगे। कारण यह है कि आरम्भमें मेषादि राशियोंका प्रचार हमारे यहाँ न था और इनका स्वीकार लगभग इसी समय (ईसवी सन्के पहले २०० वर्ष) ग्रीक लोगोंसे हमने किया। इस विषयमें शङ्कर बालकृष्ण दीचितका श्रीर हमारा कुछ मतभेद है। उनका कथन है कि हम लोगोंने युनानियोंसे राशियोंका स्वीकार नहीं किया, किन्तु ईसवी सन्के लगभग ४४६ वर्ष पहले हम लोगोंने इन राशियाँ-की कल्पना स्वतन्त्र रीतिसे की है। इस बातको वे भी मानते हैं कि इस समयके पहिले हम लोगोंमें राशियोंका प्रचार न था। श्रब इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि मेष, वृषभ इत्यादि राशियोंके नाम श्रीर श्रीक लोगोंमें प्रचलित राशियोंके नाम समान हैं: श्रीर उनकी श्राकृतियाँ भी समान काल्पनिक हैं। ऐसी दशामें, एकही समान श्राकृतियोंकी कल्पनाका दो भिन्न भिन्न स्थानोंमें उत्पन्न होना श्रस-म्भव जान पड़ता है। इससे तो यही विशेष सम्भवनीय देख पडता है कि हमारे यहाँ राशियाँ त्रीक लोगोंसे ली गई हैं। यदि यह मान लिया जाय कि हम लोगोंने युनानियोंसे राशियाँ ली हैं, तो यहाँ प्रश्न उठता है कि दीचितने गणितसे कैसे सिद्ध कर दिया कि राशियोंके प्रचार-

का समय श्रीक लोगोंके पहलेका है? अतएव यहाँ इस प्रश्नका कुछ विचार होना चाहिये। राशियोंका श्रारम्भ मेवसे होता है श्रीर नचत्रोंके साथ उनका जो मेल मिलाया गया है वह अध्विनीसे है। इसलिये यह अनुमान होता है कि जब वसन्त-सम्पात मेपके श्रारम्भमें श्रश्विनी-नक्तत्रमें था तब यह मेल हिन्दुस्थानमें मिलाया गया होगा। वसन्त-सम्पातकी गति पीछेकी ओर होती है: अर्थात् पहले जब मेष, वृषभ इत्यादि राशियोंका श्रारम्भ किसी एक विन्दुसे माना गया था, तो श्रव यह बिन्दु श्रश्विनी-नज्ञसे पीछेकी श्रोर हटता चला श्राया है। इस समय मेपारम्भका यह बिन्दु रेवती नत्तत्रसे भी पीछे चला गया है। यह गति लगभग ७२ वर्षोमं एक श्रंशके परिमाणसे होती है। इसके अनुसार वर्तमान स्थितिके श्राधार पर इस बातका निश्चय किया जा सकता है कि अध्विनी नचत्रसे मेपारमभ कब था। इस प्रकार हिसाब करके दीचितने ईसवी सन्के पहले ४४६वाँ वर्ष निश्चित किया है। पर श्रव हमें यहाँ नत्तत्रोंके सम्बन्धमं कुछ श्रधिक विचार करना चाहिये।

वेदोंमं नत्तत्रोंकी गणना कृतिकासे की गई है। जहाँ कहीं नत्त्रत्रोंका नाम श्राया है वहाँ कृत्तिका, रोहिणी, मृग श्रादि नत्त्रत्र-गणना पाई जाती है। इसके श्रनन्तर किसी समय, जान पड़ता है कि भरणी, कृत्तिका श्रादि गणना प्रचलित हुई होगी। ये दोनों गणनाएँ महाभारतमें बतलाई गई हैं। श्रनुशासन पर्वके ६४वें श्रोर ८६वें श्रध्याश्रोंमें कृत्तिकादि सब नत्त्र बतलाये गये हैं; परन्तु एक और स्थानमें कहा गया है कि श्रवण सब नत्त्र जांके श्रारम्भमें है। श्रश्वमेध पर्वके ४४वें श्रारम्भमें है। श्रश्वमेध पर्वके ४४वें श्रारम्भमें है। श्रश्वमेध पर्वके ४४वें श्रारम्भमें है। श्रश्वमोध पर्वके ४४वें श्रारम्भमें है। श्रश्वमोध पर्वके ४४वें श्रारम्भमें है।

इससे प्रकट होता है नज्जीका श्रारमभ श्रवणसे हैं: श्रर्थात जब श्रवण नचत्र पर उद्गयन हो तब नचत्रोंका श्रारम्भ भरणी-से माननेमें कोई हर्ज नहीं है। कारण यह है कि वेदांग-ज्योतियमें धनिष्ठा नज्जत्र पर उद्गयन बतलाया गया है। इसका अर्थ यही होता है कि कृत्तिकाके पहले सातवें नचत्र पर उदगयन है। जब वह एक नदात्रके पहले आ जाय तब नत्तत्र-प्रारम्भ कृत्तिकाके पीछे हट जाता है: श्रधात उस समय भरणीसे नजत्र-प्रारम्भ माना जाने लगा। इसके बाद अश्विनीसे नत्तत्रका आरम्भ हुआ और वही पद्धति अवतक चली आती है। अर्थात्, नत्त्रजोके सम्बन्धमें श्रश्विनी, भरणी इत्यादि कम ही हम लोगोंमें प्रच लित है। महाभारतमें इस क्रमका कोई प्रमाण नहीं पाया जाता। इससे प्रकट होता है कि महाभारत इसके पहलेका है। यह क्रम उस समयका है जब कि ज्योतिषशास्त्रको नया सक्तप प्राप्त हुआ श्रीर राशि, श्रंश श्रादिके अवसार गणित किया जाने लगा। यहीं क्रम सिद्धान्त-ग्रन्थोंसे लेकर आधुनिक सब ज्योतिष-ग्रन्थों में भी पाया जाता है। सारांश, जब मेषादि राशिका आरम्भ अध्विनी-नज्ञमें था तब यह पद्धति जारी हुई है।

हम पहले कह श्राये हैं कि मेषादि राशियों और अश्विन श्रादि नद्यत्रोंकी गणनाके श्रारम्भका हिसाब करते समय दीचितने मेष राशिश्रौर अश्विनीके प्रत्यद्य ताराका मेल करके गणित किया है। परन्तु यह माननेकी कोई श्रावश्यकता नहीं कि इस गणनाका श्रारम्भ उसी समयसे हुश्रा है, जब कि मेषका श्रारम्भ ठीक श्रश्विनी-नद्यत्रसे ही था। सम्भव है कि जूतन गणित-पद्धतिके जारी होनेमें बहुत सा समय लग गया हो। यह समय कुछ एक

या दो वर्षोंका ही नहीं किन्तु बहुत वर्षोंका होना चाहिये। इसके सिवा यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि श्रश्विनी-नद्मत्र १३ श्रंशोंका है, क्योंकि ३६० श्रंशोंके एक परे चक्रको २७ नच्चत्रीमें विभाजित करनेपर एक नत्तत्र १३ श्रंशका होता है। इसी कल्पनाके अनुसार नदात्रोंके पाद-विभाग भी किये गये हैं। एक मेष राशि सवा हो नज्ञोंकी होती है। २७ नज्ञोंको १२ राशियोंमें विभाजित करने पर एक राशि सवा दो नज्जांके बराबर होती है। इसी लिये नत्तत्रोंके पाद यानी एक चतुर्थाश-विभाग किये गये हैं। नत्तत्र-चक्र अथवा राशिचकका श्रारम्भ किसी एक बिन्द्से किएत किया जाता है। इस विषयमें भी बहुत मत-भेद है कि आर्य-ज्योतिषमें यह श्रारम्भ किस स्थानसे माना गया है। सारांश, यद्यपि मेषारम्भ ठीक अश्विनी नत्तत्रमें न होकर उसके पीछे कुछ श्रंशों पर हुआ हो, तो भी अध्विनीसे ही नजन-गणनाका श्रारम्भ माना जा सकता है। इस प्रकार यह माननेमें कोई हर्ज नहीं कि जिस समय इस देशमें राश्यंशादि ज्योतिष-पद्धति जारी हुई, उस समय मेषादि-राशिका श्रारम्भ श्रश्विनी नज्जके कुछ अंश पीछे हुआ था। यदि यह नियम माना जाय कि सम्पात-विन्दुको एक श्रंश पीछे हटनेके लिये ७२ वर्ष लग जाते हैं, तो २०० वर्षमें लगभग ४ श्रंश होंगे। श्रर्थात्, यह भली भाँति माना जा सकता है कि जब मेपारम्भ श्रश्विनी-नत्तत्रके पीछे ४ श्रंश पर था, उस समय मेवादि गणना हमारे श्रार्य लागोंमें जारी हुई। अपर दिये हुए ऐतिहासिक प्रमाणसे यदि यह मान लिया जाय कि ईसवी सन् के लगभग २०० वर्ष पहले राश्यंशादि पद्धतिका स्वीकार हमारे यहाँ किया गया, तो भी मेषादि राशिका अध्वनी

श्रादि नत्तर्त्रोंके ही साथ मेल मिलाना सम्भव था। इसलिये हमारे यहाँ राशि-योंके प्रचारका यही समय मानना उचित होगा।

कुछ लोगोंका आग्रहपूर्वक कथन है कि हम लोगोंने श्रीक अथवा यवन लोगों-से कुछ भी नहीं लिया। परन्तु इस बात-को शङ्कर बालकृष्ण दीचित भी मानते हैं कि प्रहोंके गणितकी प्रधान कुंजी हमने ग्रीक लोगोंसे ही पाई है। गणितकी सहा-यतासे इस बातको जान लेनेकी पद्धति, कि श्रमुक समय श्रमुक ग्रह श्राकाशमें किस स्थानमें प्रत्यच है, पहले हमारे यहाँ न थी। भारतीय ज्योतिष-शास्त्रमें ब्रहोंकी मध्यम स्थिति जाननेकी कला जात थी। परनत ग्रहोंकी प्रत्यचा स्थिति मध्यम स्थिति-से कुछ श्रागे पीछे हो जाया करती है, इसलिये मध्यम स्थितिसे स्पष्ट स्थितिके निकालनेमें कुछ संस्कार करना पड़ता है। दीचित इस बातको मानते हैं कि हमारे यहाँ यह केन्द्राजुसारी फल-संस्कार श्रीक लोगोंसे लिया गया है। (भा० ज्यो० पृष्ठ ५१६) जिस समय हिन्दुस्थानमें ग्रीक लोगोंका प्रवेश होकर बहुत कुछ प्रसार हो गया था श्रीर जिस समयका निश्चय करनेके लिये हमने ऊपर ऐतिहासिक प्रमाण भी दिये हैं, उसी समय हमारे यहाँ यह तत्त्व लिया गया होगा। इस बातको दीचित भी मानते हैं। उन्होंने अपने अन्थके प्रदेवें पृष्ठमें कहा है कि-"हिपार्कस्के पहले, यानी ईसवी सन्के पहले तीसरी अथवा दूसरी शताब्दीमें, जब इस देशमें श्रीक लोगोंका बहुत कुछ प्रसार हो चुका था, तब इस तत्त्वका यहाँ भवेश हुआ होगा।" सारांश, यही मानना युक्ति-संगत जान पड़ता है, कि जब ईसवी सन्के लगभग २०० वर्ष पहले भारतीय ज्योतिषने युनानी ज्योतिषकी सहायता

पाई और हमारे यहाँ स्पष्ट ग्रह निकालनेकी न्तन पद्धति जारी हुई, उसी समय हम लोगोंने यूनानियोंसे राशि-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त किया है। इस बातके मानने-की कोई आवश्यकता नहीं कि इससे भी लगभग २०० वर्ष पहले हम लोगोंने श्रपनी स्वतन्त्र कल्पनासे राशियोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया था। राशियोंके प्रचारका समय यद्यपि ईसवी सन्के लगभग २०० वर्ष पहले माना जाय, तथापि मेषारमभ श्रश्विनी तारेके पीछे लगभग ४ श्रंश ही था, इसलिये अध्विनी-नत्त्रके ही साथ मेपारम्भका मेल मिलाया जा सकता था। दीचितने ईसवी सन्के पहिले १४६वें वर्ष-को श्रश्यिनी-ताराके श्रीर मेषारम्भके मेल-का समय वतलाया है। उस समयसे यह समय अर्थात् ईसवी सन्के लगभग २०० वर्षके पहलेका समय, २४६ वर्ष इस पारका है। इतने समयमें मेषारम्भ ३% श्रंश (७२ वर्षमें एक श्रंशके परिमाणसे) इस स्रोर चला स्राता है; परन्तु इस थोड़े-से अन्तरसे ही मेषादि राशियों श्रीर श्रश्विनी श्रादि नक्तत्रोंका वियोग नहीं हो सकता। इसके सिवा यह भी है कि हिन्द-स्थानमें राशियोंके प्रचलित होनेका जो समय श्रर्थात् ईसवी सन्के पहले २०० वर्ष हमने निश्चित किया है, वह दीचितके मतसे कुछ विशेष विभिन्न नहीं है। इसका कारण यह है कि उनके मतानुसार भी इसी समय यूनानी ज्योतिषयोंके प्रधान तत्त्व (केन्द्रानुसारी फल-संस्कार) का हिन्दुस्थानके ज्योतिषियोंने स्वीकार किया है।

दीचितका यह मत, कि हिन्दुस्थानमें ईसवी सनके पहले ४४५ वर्षके लगभग राशियोंका प्रचार हुआ। अन्य प्रमाणोंसे भी ठीक नहीं जँचता । वौद्ध धर्म-प्रम्थ त्रिपिटकमें भी राशियोंका उल्लेख नहीं है। किसी कालका निर्देश करनेके लिये उसमें नज्ञोंका ही उपयोग किया है। श्रमुक नज्ञत्र पर श्रमुक काम किया जाय; में श्रमुक नज्ञत्र पर गया; में श्रमुक नज्ञत्र पर लौट श्राया; इत्यादि वर्णन जैसे महा-भारतमें हैं वैसे ही त्रिपिटकमें भी देख पड़ते हैं।

पुष्येण संप्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः। अर्थात् "में पुष्य नत्तत्र पर गया श्रीर श्रवण पर लौट श्राया" वलरामके इस वाक्यके समान ही नत्तत्रोंके उल्लेख त्रिपि-टकमें भी पाये जाते हैं। इस बात पर भी ध्यान देना चाहिये कि वर्तमान समयमें राशियोंका उपयोग लग्न श्रौर संक्रान्तिके समय बार बार किया जाता है। लग्न श्रौर संक्रान्ति राशियों पर ही श्रवलम्बित हैं। इन लग्नों श्रोर संक्रान्तियोंका उल्लेख त्रिपि-टकमें नहीं है। त्रिपिटकोंका समय निश्चित है। ईसवी सन्के पहले ४५५ वें वर्षमें बुद्ध-की मृत्यु हुई श्रीर उसके श्रनन्तर श्रशोक-के समयतक बौद्ध प्रन्थ बने हैं। तब यह माननेके लिये स्थान है कि राशियोंका प्रचार श्रशोकके बाद हुआ होगा। दूसरी बात यह है कि सरस्वती-श्राख्यान (श्रध्याय ३७, शल्य पर्व) में गर्ग ऋषिका उल्लेख इस प्रकार है:-तपश्चर्याके योगसे वृद्ध गर्ग मुनि-ने सरखतीके पवित्र तट पर काल ज्ञान-गति, ताराश्रोंकी स्थिति श्रौर दारुण तथा शुभकारक उत्पातका ज्ञान प्राप्त किया।" यह गर्ग कोई दूसरा व्यक्ति होगा। गर्ग पाराशर नामके एक ज्योतिषीका उल्लेख पाणिनिके सूत्रोंमें पाया जाता है। इस गर्गसे यह गर्गभित्र होगा, इसी लिये जान पड़ता है कि इसे 'वृद्ध गर्ग' कहा है। इस समय गर्भसंहिता नामका जो प्रन्थ उप-लब्ध है वह इसीका बढ़ाया हुन्ना होगाः श्रथवा ऐसा न हो । इसमें यवनोंके इतरा साकेत (श्रयोध्या) के बेरे जानेका

प्रमाण है, इसलिये इस प्रन्थके श्राल्म निर्माण-कालके सम्बन्धमें निश्चय होता है कि वह प्रीक राजा मिनएडर (मिलिन्द) के समयका श्रर्थात् ईसवी सन्के १४५ वर्ष पहलेका होगा। इस संहितामें भी राशियों का नाम नहीं है। इसलिये यह मानना पड़ेगा कि ईसवी सनके पहले १४५ वर्षके श्रान्तर राशियोंका प्रचार हुआ है। सारांश, ईसवी सनके पहले ४४५ वर्षको राशियोंके प्रचलित होनेका समय किसी प्रकार नहीं मान सकते।

उक्त विवेचनसे माल्म होगा कि सौतिके महाभारतकी श्रर्थात् एक लाख श्लोकोंके वर्तमान महाभारतकी दोनों श्लोर-की (अर्थात् उस ओरकी, यानी दूरसे दूरकी, और इस श्रोरकी, यानी समीपसे समीपकी) काल-मर्यादा इस प्रकार निश्चित हुई है। (१) बाह्य प्रमाण-सन् ४४५ ईसवीके महाराज "सर्वनाथ" के, शिलालेखमें "शत साहस्त्र्यां भारती संहितायां" यह उल्लेख पाया जाता है। यह इस श्रोरकी श्रर्थात समीपसे समीपकी श्रन्तिम मर्यादा है। (२) इसके भी पहले हिन्दुस्थानमें आये हुए ब्रीक वक्ता डायोन कायसोस्टोमके लेखमें एक लाख स्रोकोंके इलियडका जो उल्लेख है वह दूसरी मर्यादा है। इस दूसरे बाह्य प्रमाणसे महाभारतका निर्माण-काल सन् ५० ईसवीके इस श्रोर श्रा ही नहीं सकता। (३) राशियोंके उल्लेखका अभाव भी एक प्रमाण है। दीन्तितके मतानुसार ईसवी सन्के पहले ४४५ के लगभग राशियोंका प्रचार हुआ है: परन्तु हमारी राय है कि यह प्रचार ईसवी सनके पहले २०० के लगभग अथवा १५० के लगभग हुआ है। यह तीसरी मर्यादा है, अर्थात इसके पहले महाभारतका निर्माण-काल होना चाहिये। उल्लेखका अभाव कुछ कमजोर प्रमाण है

सही, परन्तु राशियोंका उन्नेख होना श्रत्यन्त श्रावश्यक थाः श्रतएव इस प्रमाण-का यहाँ विचार भी किया गया है। सारांश, सन् ४४५ ईसवीसे सन् ५० ईसवी तक, श्रोर फिर ईसवी सन्के पहिले २०० तक, इस श्रोरकी श्रर्थात् समीपसे समीप की काल-मर्यादाको, हम संक्रचित करते चले श्राये हैं। श्रव हम उस श्रोरकी श्रर्थात दरसे दूरकी काल-मर्यादाका विचार करेंगे। महाभारतमें श्रीक लोगोंकी शूरता श्रीर वृद्धिमत्ताकी प्रशंसा स्पष्ट रीतिसे की गई है। ऐसी प्रशंसा सिकन्द्रकी चढ़ाईके वाद ही की जा सकती है। सिक-न्द्रकी चढ़ाई ईसवी सन्के पहले ३२१ में हुई थी। अतएव महाभारत उसके अनन्तर-का होना चाहिये। (इस विचारको पूरा करनेके पहले जो श्रीर भी श्रन्तस्थ तथा वाह्य साधक प्रमाण हैं उनका उल्लेख श्रागे किया जायगा।)इन सब बातोंका निचोड़ यह है कि ईसवी सनके पहले ३२० से २०० तकके समयमें वर्तमान महाभारतका निर्माण हुआ है। लोकमान्य तिलकने भी श्रपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "गीता रहस्य" में इसी सिद्धान्तका स्वीकार किया है। यह निर्णाय श्रन्य कई श्रन्थकारोंको भी मान्य हैं: परन्तु कुछ नामांकित पश्चिमी ग्रन्थ-कार इस सिद्धान्तका विरोध करते हैं. श्रतएव यहाँ उनके मतका कुछ विचार श्रावश्यक है।

श्रवतक हमने जो प्रतिपादन किया है उसकी एक विशेषता हम श्रपंने पाठ-कोंको बतला देना चाहते हैं। हमारा यह सिद्धान्त है कि सौतिके कालके श्रनन्तर गहाभारतमें कुछ भी वृद्धि नहीं हुई। सम्भव है कि लाखमें दस-पाँच श्लोक पीछे-से भी शामिल कर दिये गये हों। हमने श्रपने सिद्धान्तकी रचना इस बात पर की है कि महाभारतकी वर्तमान श्लोक संख्या सौतिकी बतलाई हुई संख्यासे कम है। इस सिद्धान्तसे निश्चय होता है कि यदि महाभारतके किसी स्होकके आधार पर कोई श्रनुमान किया जाय, तो वह श्रनुमान पूरे प्रनथके सम्बन्धमें लगाया जा सकता है। हम यह नहीं मानते कि वह श्रनुमान सिर्फ उसी श्लोकके सम्बन्धमें है। हम यह भी नहीं मानते कि सिर्फ वही श्लोक पीछेसे शामिल किया गया अथवा प्रचिप्त है। किसी स्रोकको प्रचित्र समभकर कुछ लोग वाधक वाक्योंसे छुटकारा पानेका यल किया करते हैं। हम सहसा ऐसा नहीं करते ॥ महाभारतमें कुछ भाग प्राचीन हैं श्रीर कुछ सौतिके समयके हैं। श्रर्थात ईसवी सन्के पहले २०० वर्षसे भी बहत प्राचीन कुछ भाग महाभारतमें हैं: परन्त हमारा यह कथन है कि उसके इधरके

* सौतिके महाभारतके अनन्तर उसमें कुछ अधिक प्रचेप नहीं हुआ है इसलिये हम सहसा यह नहीं कहेंगे कि अमुक वाक्य प्रचिप्त है। यहाँ सहसा शब्दके अर्थ-को जुड़ खोल देना चाहिये। सौतिने हरिवंशकी संख्या १२००० बतलाई है, किन्तु वर्तमान हरिवंशकी संख्या १५४८५ है। श्रर्थात, इसमें ३४८५ श्लोक बढ़ गये हैं। ऐसी दशामें यदि हरिवंशका कोई श्लोक आगे प्रमाणमें लिया जाय तो उसके सम्बन्धसे राङ्का हो सकती है। यही बात वन पर्व श्रीर द्रोण पर्वके सम्बन्धमें भी किसी श्रंशमें कही जा सकती है। वन पर्वमें सौतिने ११६६४ श्लोक वतलाये हैं, परन्त इस समय उनकी संख्या ११६५४ हैं. अर्थात् लगभग २०० श्लोक अधिक हैं; द्रोण पर्वमें सौतिने ८६०६ श्लोक बतलाये हैं किन्तु इस समय उनकी संख्या ६५६३ है। सारांश, सवसे श्रधिक श्लोक-संख्या द्रोण पर्वमें बढ़ी है। ऐसी दशामें यदि द्रोग पर्वका कोई वाक्य आगे प्रमाणमें लिया जाय तो उसके सम्बन्धमें शङ्का करनेके लिये स्थान हो सकता है। अङ्गोंके आधार पर किया हुआ यह श्रनुमान विचार करने योग्य है। यहाँ यह कह देना चाहिये कि सभा पर्व श्रीर विराट पर्वमें भी कुछ श्रीक अधिक पाये जाते हैं। आरम्भमें तीसरे पृष्ठ पर दिया हुआ नक्शा देखिये। इतना होने पर भी हम सहसा यह कहना नहीं चांहते कि महाभारतमें अमुक श्लोक प्रक्रिप्त है। यही हमारा सिद्धान्त है और यही सब भी है।

समयकाका एक भी भाग महाभारतमें नहीं है। इतना कहकर श्रव हम श्रपने प्रधान विषयका विचार करेंगे।

महाभारतके निर्माण-कालका निश्चय करते समय श्रन्तः प्रमाणोंके सम्बन्धमें कहा गया है कि—"महाभारतमें जिन जिन प्राचीन प्रन्थोंके नाम श्राये हैं उन सवका विवर्ण किया जाय। यह जानना चाहिये कि वेद, उपवेद, श्रङ्ग, उपाङ्ग, ब्राह्मण, उपनिषद्, सूत्र, धर्मशास्त्र, पुराण, इति-हास, काव्य, नाटक श्रादिमेंसे किन किन-का उल्लेख महाभारतमें पाया जाता है: श्रीर फिर उनके नाम-निर्देशको श्रन्तः प्रमाण्में प्रथम स्थान देना चाहिये।" इस विषयकी चर्चा हाष्किन्सने की है। श्रब हम उसके अन्थके तात्पर्यकी श्रोर ध्यान देते हुए उक्त सब प्रमाणोंका यहाँ उलटे क्रमसे विचार करेंगे। महाभारतमें काव्य-नाटकोंका सामान्य उल्लेख होगाः परन्त नट, शैलूषी इत्यादिका उल्लेख होने पर भी किसी नाटक-ग्रन्थका नामतक नहीं है। इसके बाद श्रव हम यह देखेंगे कि सुत्रों, धर्मशास्त्रों और पुराणों मेंसे किन प्रन्थोंका उल्लेख महाभारतमें पाया जाता है।

"ब्रह्मसूत्रपदेश्चेव" (गी० श्र० १३-४)
गीताके श्रोक-पादमें ब्रह्मसूत्रका नाम
श्राया है। यह ब्रह्मसूत्र कौन सा है? सचमुच यह बड़े महत्त्वका प्रश्न है। यदि वह
बादरायण-कृत वर्तमान 'वेदान्त-सूत्र' ही
हो, तो उससे केवल महाभारतके ही समयका निश्चय नहीं हो जाता है, किन्तु उस
भगवद्गीताके भी समयका निश्चय हो जाता
है जिसे हमने महाभारतका श्रत्यन्त
प्राचीन भाग माना है। ऐसा हो जानेसे
भगवद्गीताके समयको यहुत इस श्लोक
समयको यहुत इस श्लोक
विस्तार-सहित विचार किया जाना
चाहिये। वादरायण-कृत वेदान्त-स्त्रोंका

समय प्रायः निश्चित सा है। इनका निर्माण ईसवी सन्के पहले १५० से १०० तकके समयमें हुआ है। इनमें बौद्ध और के मतोंका खुब खएडन किया गया है। पाग्रपत और पाञ्चरात्र मतोंका खएडन इन सूत्रोंमें है। ऐसी दशामें कहना चाहिये कि बौद्ध और जैन मतीके गिर जाने पर यह ग्रन्थ बना होगा। श्रर्थात्, जब मौर्य वंशका उच्छेद हो गया और पुष्पमित्र तथा श्रक्षिमित्र नामक राजाश्री-ने, ईसवी सन्के पहले १५० के लगभग. मगध राज्यको श्रपने श्रधीन कर लिया तब यह प्रनथ बना होगा। ये दोनों सम्राट पूरे सनातनधर्माभिमानी थे। इन्होंने बौद धर्मको गिराकर यशादि कर्मीका फिरसे श्रारम्भ किया था। इन्होंने श्रश्वमेध यह भी किया था। सारांश, इनके समयमें ब्रार्य धर्मकी पूरी पूरी विजय हो गई थी। इनके समयमें ही वेदान्त-तत्त्वशानकी प्रब-लता प्रस्थापित हुई है। यह आश्चर्यकी बात है कि इन राजाश्रोंके समयके (ईसवी सन्के पहले १०० वर्षके) इन प्रन्थोंका उल्लेख महाभारतान्तर्गत गीताके स्रोकमें पाया जाय! इस श्राश्चर्यका कारण यह है कि महाभारतमें भी बौद्ध श्रीर जैन मतोंका खरडन नहीं है: इसी प्रकार पाञ्च-रात्र और पाशुपत तथा सांख्य और योग मतोंका भी खएडन न होकर इन सबका मेल मिला गया है। ऐसी दशामें तो महा-भारत वेदान्त-सूत्रोंके पहलेका होना चाहिये। श्रौर भगवद्गीता तो उससे भी पहलेकी है। यदि भगवद्गीतामें वेदान्त-स्त्रोंका उल्लेख पाया जाय तो कहना पड़ेगा कि महाभारतका, श्रौर भगवद्गीता-का भी, समय ईसवी सन्के पहले १५० वर्षके इस और है। इस कठिन समस्या का हल करना ही यहाँ महत्त्वका विषय है। प्रोफ़ेसर मैक्समूलर और प्रोफ़ेसर

श्रमलनेरकर कहते हैं कि गीतामें वेदान्त-सूत्रोंका उल्लेख हैं। देखना चाहिये कि इस श्रोकके सम्बन्धमें ये लोग क्या कहते हैं। पूरा श्रोक इस प्रकार हैं:— श्रृषिभिर्वहुधा गीतं छंदोभिर्विविधेः पृथक्। ब्रह्मसूत्रपदेश्चेव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः॥

प्रोफेसर साहब कहते हैं-"इस श्लोकमें 'ब्रह्मसूत्रपदैः' शब्दका प्रयोग बेदान्त-सूत्रोंके लिये किया गया है; फिर इसके विरुद्ध शङ्कराचार्यादि टीकाकार कुछ भी कहें। यदि चेदान्त-सूत्रोंमें भग-वद्गीताके वचनींका आधार स्मृति कह कर लिया गया है, तो उनके सम्बन्धमें सिर्फ यही कहा जा सकता है कि इन वचनोंको भगवद्गीताने भी दूसरी जगहसे लिया है। बहुत हो तो यही माना जा सकता है कि दोनों, अर्थात् भगवद्गीता श्रीर वेदान्तसूत्र, एकही समयके श्रथवा एकही कत्तीके हैं। इस स्लोकका इतना ही शर्थ है कि यह विषय वेद श्रीर स्मृतिमें ऋषियों तथा आचार्यों द्वारा प्रति-पादित किया गया है।" उक्त कथनको गुलत सिद्ध कर देनेसे हमारी सब कठिनाई दूर हो जायगी । पहले यह देखना चाहिये कि 'ब्रह्मसूत्रपदैः' का शङ्क-राचार्यने क्या अर्थ किया है। "ब्रह्मणः सूचकानि वाक्यानि पद्यते गम्यते ज्ञायते ब्रह्मेति तानि ब्रह्मसूत्रपदेन स्च्यन्ते" श्रर्थात्, यहाँ श्राचार्यने ऐसे उपनिषद्-षाक्योंका समावेश किया है कि जिनमें ब्रह्मके विषयमें विचार किया गया हो। श्राचार्य शङ्करका किया हुआ यही अर्थ ठीक है। प्रोफेसर मैक्समूलरका कथन उन्हींके विरुद्ध इस प्रश्नसे लगाया जा सकता है, कि भगवद्गीतामें ब्रह्मसूत्र शब्द-का जो प्रयोग किया गया है, वह बाद-रायणके वेदान्तस्त्रको ही कैसे लगाया जा सकता है ? इस सूत्रको तो "ब्रह्मसूत्र"

कहीं नहीं कहा है। श्राचार्यने उसे वेदान्त-मीमांसा-शास्त्र कहा है। यदि प्रोफेसर मैक्समूलरका यह कथन हो कि बादरा-यए-सूत्रोमें भगवद्गीताके जो वाक्य समृति कहकर लिये गये हैं उन्हें भगवद्गीताने किसी दूसरी जगहसे लिया है, तो हम यह भी कह सकते हैं कि पहले "ब्रह्म-सूत्र" नामका भी कोई ग्रन्थ रहा होगा श्रीर वह वेदान्तसूत्रोंमें शामिल कर दिया गया होगा। यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि वेदान्तसूत्रके पहले अनेक सूत्र थे। पाणिनीने नतन और प्राचीन सूत्रोंका उल्लेख किया है। श्रस्तः यह बात भी नहीं मानी जा सकती कि दोनोंके कर्ता एक हैं। श्रीर यदि श्लोकका सरल श्रर्थ किया जाय तो माल्म हो जायगा कि प्रोफ़ेसर मैक्समूलर और श्रंमलनेरकर-का वतलाया हुआ अर्थ भी ठीक नहीं है। इस श्लोकमें चेद और स्मृति नामक न तो किसी दो प्रन्थोंका ही उल्लेख है श्रीर न ऋषि तथा आचार्य नामक किसी दो कत्तात्रोंका ही उल्लेख है। 'ऋषिभिः' शब्द कर्तरि हतीया है और इसका सम्बन्ध दोनों श्रोर किया जाना चाहिये: अर्थात् 'ऋषिभिः छुन्दोभिर्गीतं' श्रौर 'ऋषिभिः ब्रह्मस्त्रपदैः गीतं' इस प्रकार श्रन्वय करना चाहिये। 'ब्रह्मसूत्रपदैः' करणे तृतीया है। इस वाक्यमें कत्ती नहीं वतलाया गया है, इसलिये प्रोफ़ेसर साहब 'श्राचार्यैः' शब्दको स्रोक्के बाहर-से कत्तांके स्थान पर प्रयुक्त करते हैं: परन्तु ऐसा करनेका उन्हें कोई अधिकार नहीं है। 'ऋषिभिः' को ही पिछले वाक्यमें से कर्त्ताके स्थान पर लेना चाहिये। तात्पर्य यह है कि इस स्रोकमें ऋषि और आचार्य नामक कोई दो कर्ता नहीं बतलाये गये हैं। श्रतपव यहाँ वेदान्त-स्त्रीका बोध नहीं हो सकता। वेदान्त- स्त्रोंके कत्ता बादरायणको 'श्राचार्य' कहते हैं, न कि 'ऋषि'। जिस प्रकार यहाँ किसी कत्तीका भेद निष्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार यहाँ ग्रन्थका भी कोई भेद निष्पन्न नहीं होता। यहाँ वेद और स्मृति नामक किसी दो ग्रन्थोंका उल्लेख नहीं है। 'छन्दोभिः' शब्दसे समस्त वेदका श्रर्थ नहीं किया जा सकता। 'छन्दोभिः' शब्दसे कविता बद्ध वेद-मन्त्र अर्थात् वेद-संहिताका बोध होता है: श्रीर 'ब्रह्मसूत्र-पदेः' शब्दसे वेदोंके गद्य भागका अर्थात् केवल ब्राह्मणीका ही बोध होता है। सारांश, यहाँ ग्रन्थ-भेद कुछ भी नहीं है। प्रनथ केवल एक है, श्रीर वह वेट ही है। इस दृष्टिसे श्लोकका सरल श्रर्थ यही होता है कि-वेदके छन्दोबड मनत्र-भागमें 'विविधैः पृथक्' अर्थात् भिन्न भिन्न खानों-में विखरे हुए जो चचन हैं, उनमें और वेदके ब्राह्मण्-भागमें 'विनिश्चितैः हेतु-मद्भिः' यानी निश्चितार्थसे हेतु अथवा कारगोपपादन सहित समर्थन किये हुए ब्रह्मप्रतिपादक जो वचन हैं, उनमें ऋषि-योंने ब्रह्मका वर्णन किया है। इस अर्थसे यही निश्चय होता है कि यहाँ ब्रह्मस्त्रपद-से बादरायणाचार्यके वेदान्त-सूत्रका उल्लेख नहीं किया गया है।

सूत्र शब्दसे पाणिनि के स्त्रों के समान ऐसे प्रन्थोंका वोध होता है, जिनकी रचना बहुत छोटे छोटे श्रोर निश्चयार्थक वाक्यों में की गई हो। इसलिये पाठकों के मनमें यह संदेह हो सकता है कि उक्त श्लोकमें सूत्र शब्दसे वेदान्त स्त्रोंका ही श्रर्थ क्यों न लिया जाय। श्रर्थात् यह कहा जा सकता है कि सूत्र शब्दका उपयोग गद्य-उपनिषद्-भागके लिये नहीं किया जा सकता। परन्तु स्मरण रहे कि सूत्र शब्दका यह श्रर्थ श्राधुनिक है। यह बात निश्चित रूपसे बतलाई जा सकती है कि प्राचीन समयमें

सूत्र शब्दसे 'किसी एक विवक्तित विका पर प्रतिपादित प्रन्थ' का ही बोध हुआ करता था। बौद्ध श्रीर जैन लोगोंने सुन शब्दका उपयोग इसी अर्थमें किया है। उनके सूत्र अथवा सुत्त पाणिनिके सूत्रोंके समान न होकर उपनिषद्-भागके समान ही गद्यप्रत्थसय हैं। उनका स्वरूप यही है कि उनमें 'हेतुमद्भिः विनिश्चितः' श्रथांत निश्चित रूपसे कहे हुए हेतु अथवा उप पत्ति सहित सिद्धान्त वतलाये गये हैं। इस वातका कोई नियम न था कि उनमें छोटे छोटे वाक्य ही हों। सारांश, भगवर गीता पाणिनिसे भी पहले की है। उसमे जो सूत्र शब्द है वह उपनिषद्के उस गद्य भागका ही द्योतक है जो ब्रह्मजाल-सत्त श्रादि बौद्ध सुत्रोंके समान है। यह कल्पना भी ठीक नहीं है कि महाभारत वेदान्त सूत्रोंका कर्ता एक ही है। वेदान्त स्त्रोंके बनानेवाले व्यास बादरायण-व्यास हें और महाभारतके कत्ता हैपायन-व्यास है। महाभारतमें वाद्रायणका नाम कहीं नहीं पाया जाता। जैसे द्वैपायन-व्यास वेदोंके भी संग्रह-कत्तां श्रीर करनेवालें हो गये हैं, वैसे बादरायण व्यास नहीं है। इसके सिवा यह भी निश्चित हो गया है कि वादरायणके वेदान्त-सूत्र ईसवी सन्के पहले १५० से १०० वर्षीतकके हैं; कमसे कम वे बौद श्रीर जैन मतींके अनन्तरके हैं। परन्तु यह कभी नहीं कहा जा सकता कि भारतके श्रादि कर्ता श्रीर वेदोंकी व्यवस्था करने वाले भारती-युद्धकालीन व्यास (द्वैपायन) बौद्धके अनन्तर हुए हैं। ये व्यास, बौद्ध श्रौर जैन-धर्मोंके न जाने कितने वर्ष पहले हो गये हैं। भगवद्गीता, महाभारतका ही एक अत्यन्त प्राचीन भाग है। यदि कोई चाहे तो सौति-कृत महाभारतको वेदान्त-सूत्रोंके समयतक घसीट कर ला

सकता है: परन्तु हैपायन व्यासको अथवा भगवदुगीताको कोई उस समयतक बसीटकर नहीं ला सकता। यह कथन भी युक्ति-सङ्गत नहीं हो सकता कि गीता-का "ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव" सिर्फ यही स्ठोक पीछेके समयका अथवा वेदान्त-सूत्रोंके समयका है। संचेपमें यही कहना चाहिये कि ब्रह्म-स्त्रपदसे चेदान्त-स्त्रका निर्देश नहीं होता । वेदान्त सूत्रकार वादरायण-व्यास श्रीर मृल भारतकर्ता हैपायन-व्यास भिन्न भिन्न व्यक्ति हैं और उन दोनोंमें हजारी वर्षका श्रन्तर है। यदि वर्तमान समयमें कुछ लोगोंने उन दोनोंको एक व्यक्ति मान लिया हो, तो कहा जा सकता है कि बाद्रायण-ध्यास पूर्व समयके व्यासके श्रवतार हैं। परन्तु ऐतिहासिक दिएसे यह निर्विवाद सिद्ध है कि येदोनों व्यक्ति भिन्न हैं।

भगवद्गीता श्रीर ब्रह्मसूत्र श्रथवा वेदान्तसूत्रके कत्ती एक नहीं हो सकते। इसका एक श्रीर बहुत बड़ा कारण यह है कि वेदान्त-सूत्रकारने सांख्य और योग दोनोंका खएडन किया है। यहाँतक कि वेदान्त-सूत्रकारका प्रधान शत्रु सांख्य ही है जिसका खएडन उसने बहुत मार्मिक रीतिसे और विस्तार सहित किया है। सांख्य मतके खरडनको शङ्कराचार्यने 'प्रधान-मल्ल-निबर्हण' कहा है और इसी के साथ "एतेन योगः प्रत्युक्तः" इस प्रकार योगका भी खराडन वेदान्तसूत्रमें है। भग-वदुगीतामें यह बात नहीं है। उसमें सांख्य श्रीर योगका स्वीकार किया गया है। यहाँतक कि सांख्यको प्रथम समान दिया गया है। सारांश, भगवद्गीताने सांख्य श्रीर योगको अपनाया है, परन्तु बेदान्तसूत्रने इन दोनोंको लथेड़ा है। इससे सिद्ध होता है कि दोनोंके कर्ता एक नहीं हो सकते और न दोनोंका समय

ही एक हो सकता है। जैसे भगवद्गीता-में वैसे ही महाभारतमें भी सांख्य और योगका खगडन नहीं है, किन्तु स्वीकार है। स्थान स्थानमें उन दोनोंकी प्रशंसा है श्रीर वार बार उनके मतोंका विस्तार सहित विचार किया गया है। उसमें सांख्य-प्रवर्तक कपिलको विष्णुका अवतार कहा है। वदानतस्त्रके भाष्यकी नाई उसे विष्णुके अवतारसे भिन्न नहीं माना है। योगका भी प्रवर्तक, हिरएयगर्भ अथवा विष्णुका पुत्र ब्रह्मदेव माना गया है। इससे प्रकट होता है कि महाभारत और भगवद्गीताके समय दोनों मत मान्य थे। वेदान्तस्त्रोंका समय इसके अनन्तरका देख पड़ता है। वेदान्तसुत्रोंके समय ये दोनों मत त्याज्य माने गये थे। तात्पर्य यह है कि भगवद्गीता और वेदान्तसूत्र एक ही कत्तीके अथवा एक ही समयके नहीं हैं। यह बात सांख्य और योगके सम्बन्धमें उन दोनोंमें किये हुए विवेचन-से स्पष्ट देख पड़ती है। इसके सिवा भगवद्गीता श्रीर वेदान्तस्त्रोंके वेदान्त-विषयक मतोंमें भी अन्तर है; परन्तु इस विषयका विवेचन श्रागे चलकर किया जायगा ।

महाभारतमें और किसी दूसरे सूत्रका नामनिर्देश नहीं है। हाएकिन्सका कथन है कि उसमें आश्वलायन-गृह्यसूत्रके एक दो वचन हैं; परन्तु उसका कथन हमें ठीक नहीं जँचता। कारण यह है कि आश्वलायन गृह्यसूत्रमें भारत और महाभारत दोनों नाम पाये जाते हैं; अर्थात् आश्वलायन-सूत्र महाभारत के बादका है। हाएकिन्सने जो प्रमाण दिया है (भा० आदि० अ० ७४) उसमें आश्वलायन सूत्रका नाम नहीं है। "वेदेष्विप वदन्तीमं" सिर्फ इतना ही कहा है। हाएकिन्सने स्वीकार किया है कि—

श्रङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृद्याद्धिजायसे। श्रातमा व पुत्रनामासि स जीवशरदः श्तम्॥

यह मन्त्र कौषीतिक-ब्राह्मणमें है । उसका यह भी कथन है कि उसके आगे-का स्रोक—

जीवितं त्वद्धीनं मे सन्तानमपि चात्त्यम्। तस्मात् त्वं जीव मे पुत्र सुसुखी शरदां शतम्।

यह मन्त्र कौषीतिकमें न होकर श्राभ्व-लायनसूत्रमें ही पाया जाता है। परन्तु इससे यह प्रकट होता है कि वह आश्व-लायनका नहीं है। इन स्रोकोंको आरम्भ-में ही मन्त्र कहा गया है, जैसे "वेदे विप वदन्तीमं मन्त्रग्रामं द्विजातयः।" इससे प्रकट होता है कि यह श्लोक किसी अन्य स्थानमें, वेदके किसी भागमें, है। यदि यह कौषीतिकमें नहीं पाया जाता, तो वह श्रन्य किसी शाखामें होगा जो इस समय उप-लब्ध नहीं है। सारांश, यह कभी नहीं कहा जा सकता कि यह श्लोक आध्वलायनसे लिया गया है। आश्वलायनमें तो महा-भारतका नाम-प्रमाण प्रत्यच है। ऐसी श्रवस्थामें महाभारतमें श्राश्वलायनके स्रोकका पाया जाना कभी सम्भव नहीं।

जब किसी एक ग्रन्थमें किसी दूसरे ग्रन्थका प्रमाण हो और उससे रचना-कालका निर्णय करना हो, तो दो बातोंका सुवृत ग्रंथवा दो बातोंकी जानकारी श्रवश्य चाहिये। पहली बात—दूसरा ग्रन्थ उसी स्थितिमें इस समय है या नहीं; और दूसरी बात—उस दूसरे ग्रन्थका निश्चित समय कौन सा है। यदि उस दूसरे ग्रन्थ-का निश्चित समय मालूम न हो तो ऐसे प्रमाणसे कुछ भी निष्पत्त नहीं होती। यदि किसी एक ब्यक्तिका नाम उसमें हो, तो सिर्फ़ इतना ही निश्चय हो सकता है। कि उस व्यक्तिका समय पहलेका है। परन्तु इस बातका निश्चय नहीं हो सकता कि वह ग्रन्थ ज्योंका त्यों है। इसके सिया

उस व्यक्तिका भी समय निश्चित रूपसे माल्म हो जाना चाहिये; नहीं तो उससे कुछ भी अनुमान नहीं किया जा सकता। इस दृष्टिसे विचार करके अपर जिन हो सुशोंका उल्लेख हमने किया है उन्हींका विस्तार-सहित निर्देश करना हमारे लिये श्रावश्यक था। इन दोनों अन्थोंके कर्त्ता प्रसिद्ध हैं. इनके प्रन्थ भी प्रसिद्ध हैं और इन प्रन्थोंका समय भी मोटे हिसाबसे निश्चित सा है। श्राश्वलायनके गृह्यसूत्र श्रीर बादरायणके वेदान्तसूत्रका समय ईसवी सन्के पहिले १०० वर्षके लगभग है। इन दोनोंमें महाभारतका उल्लेख है; यानी आश्वलायनमें महाभारतका प्रत्यन नाम है और वेदान्तसूत्रमें महाभारतके वचन स्मृति कहकर उद्भृत किये गये हैं। अत्य निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ये दोनों प्रन्थ महाभारतके त्रमन्तरके हैं। अब महाभारतमें भी इन अन्थोंका उन्नेख देख पड़ता है; परन्तु विस्तारपूर्वक विवेचन करके सिद्ध कर दिया है कि यह उल्लेख उन ग्रन्थोंके सम्ब-न्धमें नहीं है। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि उक्त दोनों ग्रन्थकत्तात्रोंके नाम महाभारतमें विल्कुल हैं ही नहीं। (हाप्किन्सने कहा है कि अनुशासन पर्वके चौथे अध्यायमें आश्वलायनका निर्देश है। परन्तु स्मरण रहे कि यह आश्वलायन गोत्र-प्रवर्तक है, न कि सूत्रकार। विश्वा-मित्रके जो अनेक पुत्र हुए, उनमेंसे यह एक गोत्र-प्रवर्तक पुत्र था। अर्थात्, वेद-संहिता कालका ऋषि है, न कि सूत्रकार।)

श्रव हम उन सूत्रोंका कुछ विचार करेंगे जिनका उल्लेख सामान्य रीतिसे महाभारतमें पाया जाता है। हम ऊपर कह चुके हैं कि इससे महाभारतके समय-का निर्णय करनेमें कुछ भी सहायता नहीं

मिलती। तो भी जानने योग्य सब वातोंको पकत्र कर देना आवश्यक है। यदि भवि-प्यमें, समयका निर्णय करनेके लिये, कुछ नई यातें मालूम हो जायँ, तो इस विषय-का उपयोग किया जा सकेगा। महा-भारतमें श्रनेक सुत्रोंका निर्देश है। सभा-पर्वके 'कचित्' अध्यायमें युधिष्टिरसे प्रश्न किया गया है कि-"गजसूत्र, श्रश्वसूत्र, रथसूत्र श्रीर शतझीसूत्रका श्रभ्यास तुम करते हो न ?" ये सूत्र कौन से हें और किसके रचे हैं, इन बातोंका निर्देश नहीं है: परन्तु यह देख पड़ता है कि उस समय श्रानेक विषयों पर शास्त्र-सक्रपके सत्र थे श्रोर उनका श्रभ्यास किया जाता था। ये सूत्र केवल रटनेके लिये उपयोगी छोटे छोटे वाक्योंके समान न होकर विस्तृत खरूपके होंगे। सूत्रकर्ता और सूत्र-कार जैसे भिन्न भिन्न नाम भी अनुशासन पर्वमें पाये जाते हैं। एक स्थानमें सूत्रकार • श्रौर श्रन्थकर्ताका भी निर्देश है। इससे मालूम होता है कि सुत्र शब्दसे सर्वमान्य यन्थका विशिष्ट बोध होता होगा।

धर्मसूत्रोंके सम्बन्धमें श्रथवा धर्म-शास्त्रोंके सम्बन्धमें बहुत सा उल्लेख पाया जाता है: क्योंकि महाभारतको धर्मग्रन्थ-का स्वरूप प्राप्त करा देनेके काममें उनका बहुत कुछ उपयोग हुआ होगा। नीति-शास्त्रका नाम अनेक बार आया है। उसके कर्ता भी अनेक देख पड़ते हैं; जैसे शुक्र, बृहस्पति आदि। धर्मशास्त्रोंका भी उत्तेख बार बार किया गया है। एक स्थानमें मनुके धर्मशास्त्रका उल्लेख पाया जाता है। राजधर्म श्रादि सब विषयोंमें मनुके वच-नीका उपयोग किया गया है। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि वे वचन वर्त-मान समयमें उपलब्ध मनुस्मृतिके हैं। इस सम्बन्धमें किसी विस्तृत अवतरणकी आवश्यकता नहीं । वह हाष्किन्सके ग्रन्थ-

में दिया गया है। हम पहले कह आये हैं कि वर्तमान मनुस्मृति महाभारतके अन-न्तरकी है।

श्रव पुरालोंके सम्बन्धमें विचार किया जायगा। महाभारतमं पुराणींका उल्लेख वहुत है। इस विषयमें किसीको कुछ भी सन्देह नहीं कि वर्तमान पुराण-प्रन्थ महाभारतके समयके इस पारके हैं: परन्तु महाभारतमें पुराणका उल्लेख है। यह एक महत्त्वका प्रश्न है कि भारतके पहले प्राणोंकी संख्या एक थी या अठा-रह। स्वर्गारोहण पर्वमं यह उल्लेख पाया जाता है कि—"इस भारतमें श्रष्टादश प्राण, सब धर्मशास्त्र और श्रङ्गों सहित चारों वेद एकत्र हुए हैं। जो महात्मा व्यास ऋषि अधादश पुराणोंके कत्ता हैं श्रीर वेदोंके केवल महासागर हैं, उन्हींकी यह जीती जागती वाणी है। सब लोग इसका श्रवण श्रवश्य करें।" वर्तमान समयके लोगोंकी यह समस है कि प्राण श्रठारह हैं श्रीर उन सबके कर्ता श्रकेले व्यास ऋषि हैं। यही समक्ष उक्त अव-तरणमें प्रधित है। सम्भव है कि ये श्लोक महाभारतके भी अनन्तरके हों: क्योंकि इतने वडे और अनेक अन्थोंकी रचना एक ही व्यक्तिसे नहीं हो सकती। परन्तु यदि यह श्लोक असत्य न मानकर यह माना जाय कि महाभारतके पहले ये अठारह पुराण किसी छोटे खरूपमें होंगे, तो आश्चर्य नहीं। श्रीर यह भी सम्भव है कि वेदोंकी व्यवस्थाके समान द्वैपायन-व्यासने इन पुराणोंकी भी व्यवस्था कर दी हो। वायु-पुराणका उल्लेख वन पर्वके १८१वें श्रध्याय-के १६वें श्लोकमें पाया जाता है। ऐसी दशामें, यदि वायुप्राणको खतन्त्र श्रौर पहलेका मानें, तो यह भी मानना पड़ेगा कि अठारह भिन्न भिन्न पुराण पहलेसे थे। मार्कग्रहेय समस्या पर्वमें कलियुगके वर्णन- श्रङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयाद्धिजायसे। श्रातमा वै पुत्रनामासि स जीवशरदः शतम्॥

यह मन्त्र कोषीतिक-ब्राह्मणमें है । उसका यह भी कथन है कि उसके आगे-का स्थोक—

जीवितं त्वद्धीनं मे सन्तानमपि चाच्यम्। तस्मात् त्वं जीव मे पुत्र सुसुखी शरदां शतम्।

यह मन्त्र कौषीतिकमें न होकर श्राभ्व-लायनसूत्रमें ही पाया जाता है। परन्तु इससे यह प्रकट होता है कि वह आश्व-लायनका नहीं है। इन स्रोकोंको आरम्भ-में ही मन्त्र कहा गया है, जैसे "वेदे व्विप वदन्तीमं मन्त्रग्रामं द्विजातयः।" इससे प्रकट होता है कि यह एलोक किसी अन्य स्थानमें, वेदके किसी भागमें, है। यदि वह कौषीतिक में नहीं पाया जाता, तो वह श्रन्य किसी शाखामें होगा जो इस समय उप-लब्ध नहीं है।सारांश, यह कभी नहीं कहा जा सकता कि यह श्लोक आश्वलायनसे लिया गया है। आध्वलायनमें तो महा-भारतका नाम-प्रमाण प्रत्यच है। ऐसी श्रवस्थामे महाभारतमें श्राश्वलायनके स्रोकका पाया जाना कभी समभव नहीं।

जब किसी एक प्रत्थमें किसी दूसरे
प्रत्थका प्रमाण हो और उससे रचनाकालका निर्णय करना हो, तो दो बातोंका
सुब्त श्रथवा दो बातोंकी जानकारी श्रवश्य
चाहिये। पहली बात—दूसरा ग्रन्थ उसी
स्थितिमें इस समय है या नहीं; श्रीर
दूसरी बात—उस दूसरे ग्रन्थका निश्चित
समय कौन सा है। यदि उस दूसरे ग्रन्थका निश्चित समय मालूम न हो तो ऐसे
प्रमाणसे कुछ भी निष्पत्ति नहीं होती।
यदि किसी एक व्यक्तिका नाम उसमें हो,
तो सिर्फ़ इतना ही निश्चय हो सकता है।
वि उस व्यक्तिका समय पहलेका है।
परन्तु इस बातका निश्चय नहीं हो सकता
कि वह ग्रन्थ ज्योंका त्यों है। इसके सिया

उस व्यक्तिका भी समय निश्चित रूपसे माल्म हो जाना चाहिये; नहीं तो उससे कुछ भी अनुमान नहीं किया जा सकता। इस दृष्टिसे विचार करके अपर जिन हो सूजोंका उल्लेख हमने किया है उन्हींका विस्तार-सहित निर्देश करना हमारे लिये श्रावश्यक था। इन दोनों अन्थोंके कर्त्ता प्रसिद्ध हैं, इनके प्रन्थ भी प्रसिद्ध हैं और इन प्रन्थोंका समय भी मोटे हिसाबसे निश्चित सा है। श्राश्वलायनके गृह्यसूत्र श्रीर बादरायणके वेदान्तसूत्रका समय ईसवी सन्के पहिले १०० वर्षके लगभग है। इन दोनोंमें महाभारतका उल्लेख है: यानी आश्वलायनमें महाभारतका प्रत्यन नाम है और वेदान्तसूत्रमें महाभारतके वचन स्मृति कहकर उद्भृत किये गये हैं। अत्यव निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ये दोनों प्रन्थ महाभारतके प्रनन्तरके हैं। अब महाभारतमें भी इन अन्थोंका उल्लेख देख पड़ता है; परन्तु हमने विस्तारपूर्वक विवेचन करके सिद्ध कर दिया है कि यह उल्लेख उन ग्रन्थोंके सम्ब-न्धमें नहीं है। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि उक्त दोनों ग्रन्थकर्त्तात्रोंके नाम महाभारतमें बिल्कुल हैं ही नहीं। (हाप्किन्सने कहा है कि अनुशासन पर्वके चौथे अध्यायमें आश्वलायनका निर्देश है। परन्तु स्मरण रहे कि यह आश्वलायन गोत्र-प्रवर्तक है, न कि सूत्रकार । विश्वा-मित्रके जो अनेक पुत्र हुए, उनमेंसे यह एक गोत्र-प्रवर्तक पुत्र था। अर्थात्, वेद-संहिता कालका ऋषि है, न कि स्त्रकार।)

श्रव हम उन सूत्रोंका कुछ विचार करेंगे जिनका उल्लेख सामान्य रीतिसे महाभारतमें पाया जाता है। हम ऊपर कह चुके हैं कि इससे महाभारतके समय-का निर्णय करनेमें कुछ भी सहायता नहीं

मिलती। तो भी जानने योग्य सब वातोंको पक्त कर देना आवश्यक है। यदि भवि-प्यमं, समयका निर्णय करनेके लिये, कुछ नई वातें मालूम हो जायँ, तो इस विषय-का उपयोग किया जा सकेगा। महा-भारतमें श्रनेक सूत्रोंका निर्देश है। सभा-पर्वके 'कचित्' अध्यायमें युधिष्टिरसे प्रश्न किया गया है कि—"गजसूत्र, अध्वसूत्र, रथसूत्र श्रोर शतझीसूत्रका श्रभ्यास तुम करते हो न ?" ये सूत्र कौन से हैं और किसके रचे हैं, इन बातोंका निर्देश नहीं है: परन्तु यह देख पड़ता है कि उस समय श्रानेक विषयों पर शास्त्र-सक्रपके सूत्र थे श्रीर उनका श्रभ्यास किया जाता था। ये सूत्र केवल रटनेके लिये उपयोगी छोटे छोटे वाक्योंके समान न होकर विस्तृत खरूपके होंगे। सूत्रकर्ता श्रौर सुत्र-कार जैसे भिन्न भिन्न नाम भी अनुशासन पर्वमें पाये जाते हैं। एक स्थानमें सुत्रकार · श्रीर श्रन्थकर्ताका भी निर्देश है। इससे मालूम होता है कि सुत्र शब्दसे सर्वमान्य अन्थका विशिष्ट बोध होता होगा।

धर्मसूत्रोंके सम्बन्धमें अथवा धर्म-शास्त्रोंके सम्बन्धमें बहुत सा उल्लेख पाया जाता है: क्योंकि महाभारतको धर्मग्रन्थ-का खरूप प्राप्त करा देनेके काममें उनका बहुत कुछ उपयोग हुआ होगा। नीति-शास्त्रका नाम श्रनेक बार श्राया है। उसके कर्ता भी अनेक देख पडते हैं: जैसे शुक्र, बृहस्पति श्रादि । धर्मशास्त्रोंका भी उत्तेख बार बार किया गया है। एक स्थानमें मनुके धर्मशास्त्रका उल्लेख पाया जाता है। राजधर्म श्रादि सब विषयोंमें मनुके वच-नोंका उपयोग किया गया है। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि वे वचन वर्त-मान समयमें उपलब्ध मनुस्मृतिके हैं। इस सम्बन्धमें किसी विस्तृत श्रवतरणकी आवश्यकता नहीं । वह हार्षिकन्सके ग्रन्थ-

में दिया गया है। हम पहले कह आये हैं कि वर्तमान मनुस्मृति महाभारतके अन-न्तरकी है।

अब पुराणोंके सम्बन्धमें विचार किया जायगा। महाभारतमं पुराणींका उल्लेख वहुत है। इस विषयमें किसीको कुछ भी सन्देह नहीं कि वर्तमान प्राण-प्रनथ महाभारतके समयके इस पारके हैं: परन्तु महाभारतमें पुराणका उल्लेख है। यह एक महत्त्वका प्रश्न है कि भारतके पहले प्राणोंकी संख्या एक थी या अठा-रह। स्वर्गारोहण पर्वमें यह उल्लेख पाया जाता है कि-"इस भारतमें अष्टादश पुराण, सब धर्मशास्त्र और श्रङ्गों सहित चारों वेद एकत्र हुए हैं। जो महात्मा व्यास ऋषि श्रष्टादश प्राणोंके कर्ता हैं श्रीर वेदोंके केवल महासागर हैं, उन्हींकी यह जीती जागती वाणी है। सब लोग इसका श्रवण श्रवश्य करें।" वर्तमान समयके लोगोंकी यह समक है कि प्राण श्रठारह हैं श्रीर उन सबके कर्ता श्रकेले व्यास ऋषि हैं। यही समक्ष उक्त अव-तर्णमें प्रधित है। सम्भव है कि ये श्लोक महाभारतके भी श्रनन्तरके हों: क्योंकि इतने वडे और अनेक अन्थोंकी रचना एक ही व्यक्तिसे नहीं हो सकती। परन्तु यदि यह श्लोक असत्य न मानकर यह माना जाय कि महाभारतके पहले ये अठारह पुराण किसी छोटे खरूपमें होंगे, तो आश्चर्य नहीं। श्रीर यह भी सम्भव है कि वेदोंकी व्यवस्थाके समान हैपायन-व्यासने इन पुराणोंकी भी व्यवस्था कर दी हो। वायु-पुराणका उल्लेख वन पर्वके १८१वें श्रध्याय-के १६वें श्लोकमें पाया जाता है। ऐसी दशामें, यदि वायुष्राणको खतन्त्र श्रौर पहलेका मानें, तो यह भी मानना पड़ेगा कि अठारह भिन्न भिन्न पुराण पहलेसे थे। मार्कग्रहेय-समस्या-पर्वमें कलियुगके वर्णन- के समय उक्त उहलेख किया गया है।
मार्कगडेय कहते हैं—"वायुप्रोक्त पुराणका
स्मरण करके यह भूत और भविष्य मैंने
बतलाया है।" यथार्थमें मार्कगडेयको
स्वयं हजारों युगोंका अनुभव था, इसलिये
उन्हें वायु पुराणका स्मरण करनेकी कोई
आवश्यकता नहीं थी। अस्तु; इसमें
सन्देह नहीं कि यदि पहले अठारह
पुराण होंगे तो वे वर्तमान पुराणोंसे भिन्न

श्रव हम इतिहासका विचार करेंगे। इतिहास शब्द भी महाभारतमें श्रनेक वार पाया जाता है। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इतिहास शब्दसे कौन सा अर्थ प्रहण किया जाय। पुराण और इतिहासकी जोड़ी वहुधा एक ही स्थानमें पाई जाती है। उपनिषदों में भी 'इतिहास पुराणं' कहा गया है। यदि पुराण शब्दसे बहुत प्राचीन समयकी कथा और इतिहास शब्दसे समीपके समयकी कथाका अर्थ प्रहण किया जाय तो कोई हर्ज नहीं। पुराणों में कथाओं के श्रतिरिक्त और

* एक श्रीर ग्रन्थकारने भी यही करपना की है कि मूल पुराण एक था ऋीर व्यासजीने उसके अठारह पुराण किये। इसमें सन्देह नहीं कि इस मूल पुरास पर तीन चार संस्करण हो चुके होंगे और तब कहीं उसे वर्तमान स्वरूप प्राप्त हुआ होगा । बहुधा सौतिके समयमें १८ पुराण होंगे। कहते हैं कि व्यासजीने एक ही मूल पुराणके १८ पुराण बनाये श्रीर मूल श्रादि पुराणोंमें बारह वारह इजार श्लोक थे। विक्रमके समय इन पुराणोंका प्रथम संस्करण तय्यार हुन्ना ऋर श्रागे चलकर पौराणिकोंने लगभग चार लाख श्लोकोंका प्रन्थ बना डाला। हम पहले कड आये हैं कि सौतिके महाभारतके अनन्तर, उसीके श्रनुकरणपर, रामायण श्रीर पुराणोंके नये संस्करण तैयार किये गये होंगे। इसके बाद भी इन पुराखों में श्रीर कुछ भरती अवश्य हुई है। उसीमें भविष्यत् राज-वर्णन जोड़ा गया है। यह सन् ३०० ईसवीसे ६०० तकके समयमें जोड़ा गया है। यह बात उन राजाओं के वर्णनसे स्पष्ट देख पड़ती है जो सन् ५०० ईसवीके लगभग कैलिकल-यवन राजाके समयतक थे।

भी अन्य वातोंका वर्णन हुआ करता है। देवताओं और दैत्योंकी कथाएँ पुरागोंमें पाई जाती हैं। परन्तु इतिहासमें केवल राजाओं की ही कथाओं का समावेश हो सकता है। आख्यान शब्दसे एक विशिष कथाके प्रनथका बोध होता है। स्वयं महा-भारतके सम्बन्धमें इतिहास, पुराण और श्राख्यान तीनों शब्दोंका व्यवहार किया गया है। यह नहीं बतलाया जा सकता कि महाभारतके अतिरिक्त और दुसरे इतिहास-प्रनथ कौन से थे। द्रोणाचार्यका वर्णन करते समय कहा गया है कि वे वेद, वेदाङ्ग और इतिहासके ज्ञाता थे। इससे अनुमान होता है कि पहले और भी कई इतिहास रहे होंगे। परन्त वे सब महाभारतमें शामिल कर दिये गये हैं. इसलिये वे भिन्न श्वितिमें नहीं देख पडते: श्रौर वर्तमान समयमें इतिहास शब्दसे केवल महाभारतका ही बोध होता है। सारांश, इस विषयके जो भेद देख पडते हैं वे ये हैं - कथा और गाथा, आख्यान श्रीर उपाल्यान। इनमेंसे गाथा उस ऐति-हासिक श्लोक-वद्ध वर्णनको कहते हैं, जिसकी रचना वंशावलीकारोंने की है। श्राख्यान श्रीर उपाख्यानमें विशेष श्रन्तर नहीं है। उपाख्यानमें दन्तकथाका विशेष श्रन्तर्भाव हो सकता है। इन सब श्रन्थी मेंसे किसी प्रन्थका नाम-निर्देश, प्रन्थ कर्ताके नामके साथ, महाभारतमें नहीं किया गया है, इस लिये महाभारतके काल-का निर्णय करनेमें इनका कुछ भी उप-योग नहीं है।

यहाँतक इस बातका विचार किया गया है कि सूत्र, पुराण श्रौर इतिहासके नाम-निर्देशसे वर्तमान महाभारतके काल-का निर्णय करनेमें कैसी सहायता हो सकती है; श्रौर यह निश्चय किया गया है कि वर्तमान गृह्यस्त्र, वेदान्तस्त्र, पुराण श्रोर मनुस्मृति सव महाभारतके श्रनन्तरके हैं। श्रव वेद श्रीर उपनिषद्के सम्बन्धमें विचार किया जायगा । यथार्थमें यह निश्चित है कि ये प्रन्थ महाभारतके पह-लेके हैं। ऐसी अवस्थामें यदि इनका उल्लेख महाभारतमें पाया जाय तो कुछ आश्चर्य नहीं। यद्यपि इन अन्थोंका समय निश्चयात्मक रीतिसे स्थिर नहीं इत्रा है, तो भी कहा जा सकता है कि वह समय ईसवी सन्के पहले ३०० वर्षके इस पारका नहीं है। ऐसी दशामें यह विचार प्रायः विषयान्तरके समान ही है। परन्तु इस समालोचनात्मक प्रन्थकी पर्त्तिके लिये, इस विषयका भी कुछ उल्लेख किया जाना आवश्यक है। अत-एव हाप्किन्सके अन्थकी ही सहायतासे यहाँ संचेपमें कुछ विचार किया जायगा। यह प्रकट है कि श्रुतिके सब ग्रन्थ महा-भारतके पहले पूरे हो गये थे। अब यह देखना चाहिये कि इन ग्रन्थों मेंसे किन किनका नाम-निर्देश महाभारतमें है। चारों वेदोंका नाम-सहित उल्लेख किया गया है, परन्त कहीं कहीं अथर्व वेदका नाम छूट गया है। प्रायः ऋग्वेदसे ही गणनाका श्रारम्भ होता है। कहीं कहीं सामवेदको भी श्रयस्थान दिया गया है। इन चारोंको मिलाकर चतुर्मृत्ति-वेद होता है। कहीं कहीं चातुर्विद्य नाम भी पाया जाता है; परन्तु त्रैविद्य नामका उपयोग श्रधिकतासे किया गया है। वेदोंके नष्ट होनेकी श्रौर उनके विभाग किये जानेकी बात प्रसिद्ध है। श्रारम्भमें एक ही वेद था: परन्तु कृतयुग-के अनन्तर त्रिवेद, द्विवेद, एकवेद, अनुक्, श्रादि भेद हो गये। श्रपान्तरतमा ऋषिने वेदोंके भेद किये। कहा गया है कि वेद दृष्ट, कृत श्रथवा सृष्ट हैं। "मन्त्र-बाह्म एकत्तरः" इस प्रकार हरिवंशमें कहा गया है। वेदोंका कर्त्ता ईश्वर है।

श्रिग्न और सूर्य भी वेद-कर्ता हैं। पहले पहल ब्रह्माने चेदका पठन किया, यथा "स्तुत्यर्थमिह देवानां वेदः सृष्टः स्वयंभुवा" (शांति पर्व अध्याय ३२=)। पद और क्रम-का भी उल्लेख पाया जाता है। जैसे अनु-शासन पर्वके ८५ वें अध्यायमें कहा गया है,—"ऋग्वेदः पद्कमविभूषितः" । वाम-देवकी शिचासे वाभ्रव्य गोत्रोत्पन्न पाञ्चाल गालव वहुत अच्छा कमपाठी हो गया था। ऋग्वेदकी इक्कीस हज़ार, यजुर्वेदकी एक सौ एक और सामवेदकी एक हजार शाखायें हैं। संहिता, ब्राह्मण और श्रारएयकका भी उल्लेख पाया जाता है। संहिताध्यायी शब्दका उपयोग स्रादि पर्व-के १६७ वें अध्यायमें श्रोर श्रनुशासन पर्व-के १४३ वें अध्यायमें किया गया है। ब्राह्मणोंका उल्लेख शान्ति पर्वके २६८ वें अध्यायमें और वन पर्वके २१७ वें अध्याय-में पाया जाता है। वहाँ ब्राह्मणोंमें वर्णित भिन्न भिन्न श्रग्नियोंका उन्नेख है। याज्ञ-वल्काके शतपथ ब्राह्मणका उन्नेख सम्पूर्ण नाम-सहित किया गया है: अर्थात शान्ति-पर्वके ३२६ वे श्रध्यायमें सरहस्य, ससं-ग्रह, सपरिशेष उत्लेख है। श्रन्य ब्राह्मणीं-के उत्तेखमें साधारण तौर पर "गद्यानि" शब्दका उपयोग किया गया है। श्रार्एय का उत्लेख अनेक स्थानोंमें है; जैसे 'गायन्त्या-रगयके विपाः', 'श्रारगयक पदोद्भताः' इत्यादि । श्रारएयकको वेदोंका तत्व-भाग भी कहा है। यह भी उल्लेख है कि 'वेद-वादानतिक्रम्य शास्त्राएयारएयकानि च। उपनिषदोंका उल्लेख एक वचनमें, बहु-वचनमें श्रीर समूहार्थमें किया गया है। जैसे श्रारएयकका उल्लेख चेदसे भिन्न किया गया है, वैसे ही उपनिषदींका उल्लेख भी वेदसे भिन्न किया गया है। उपनिषद्का अर्थ साधारण रीतिसे रहस्य अथवा गुद्य भी किया गया है। महोपनिषद्का श्रर्थ संदिग्ध देख पड़ता है: क्योंकि द्रोण पर्वमें भूरिश्रवाके सम्बन्धमें कहा गया है कि-'ध्यायनमहो-पनिषद् योगयुक्तोऽभवन्मुनिः श्रीर वहाँ यह नहीं जान पडता कि किसी अन्धका उल्लेख होगा, किन्तु साधारण तौर पर उपनिषद शब्दसे ग्रन्थका उल्लेख होकर उसमें तत्वज्ञानका बोध होता है। यह बड़ी निराशाजनक वात है कि महाभारत-में किसी उपनिषद्का नाम नहीं दिया गया है। महाभारतके पहले अनेक उप-निषद् विद्यमान थे श्रीर उसके बाद भी कई उपनिषद् वने हैं। दशोपनिषदोंका भी उन्नेख महाभारतमें नहीं है। श्रन्य प्रमाणोंसे यद्यपि निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि दशोपनिषद् महाभारत-के पहलेके हैं, तथापि यही बात अन्य उपनिषदोंके सम्बन्धमें नहीं कही जा सकती। उदाहरणार्थ, श्वेताश्वतर दसके बाहरका उपनिषद् है। उसके समयका निर्ण्य करनेके लिये साधन प्राप्त हो गया होता। इस उपनिषद्के कुछ वचन महा-भारतमें पाये जाते हैं; परन्तु इस उपनिषद में ही ये वचन किसी अन्य स्थानसे लिये हुए जान पड़ते हैं।

श्रव हम उपवेदों श्रोर वेदांगों के विषयमें कुछ विचार करेंगे। उपवेद तीन हैं—श्रायुर्वेद, धनुर्वेद श्रोर गान्ध्रवंवेद। इनका उल्लेख महाभारतमें पाया जाता है। चौथा उपवेद खापत्यके नामसे प्रसिद्ध है। इसका भिन्न उल्लेख श्रादि पर्वमें-वास्तु-विद्याके नामसे किया गया है। इन उपवेदों में से श्रायुर्वेदके कर्ता कृष्णात्रेय, धनुर्वेदके कर्ता भरद्वाज श्रीर गान्ध्रवंवेदके कर्ता नारद बतलाये गये हैं (शांति० श्र० ३२०)। इन्हीं से साथ श्रीर भी कुछ कर्ताश्रीका उल्लेख है; जैसे कहा गया है कि बृहस्पतिको वेदांगका ज्ञान हुआ,

शुकने नीति-शास्त्रका कथन किया, गार्थको देवर्षिका चरित्र माल्म हुआ, इत्यादि यद्यपि आयुर्वेदके सम्बन्धमें विशेष उत्तेष नहीं है तथापि पित्त, श्लेष्मा और वायुका स्पष्ट उल्लेख है। भारतीय श्रायुर्वेदका यह मुख्य सिद्धान्त बहुत प्राचीन है (शांति० अ० ३४३)। सभापर्वके ५ वें और ११ वें अध्यायमें कहा गया है कि आयुर्वेदः के श्राठ भाग हैं। वन पर्व श्रीर विराट पर्वमें शालिहोत्रका भी उल्लेख है। प्रकट है कि यह अश्व-चिकित्सका शास्त्र है। इसके कत्तांका उल्लेख कहीं नहीं है। धनुर्वेदका उल्लेख बहुत है। कहा गया है कि यह चार प्रकारका है श्रीर इसके दस भाग हैं। कचिदाख्यानसे प्रकट है कि इस विषय पर सूत्र भी थे। इतियोंका वर्णन करते समय 'धनुर्वेदे च वेदे च निष्णातः' बार बार कहा जाता है; इससे मालुम होता है कि ज्ञिय इन दोनों विषयोंका अभ्यास किया करते थे। ऋदि पर्वके १३६ वें ऋध्याय-में वर्णन है कि चत्रिय वेदोंसे भी धनुवेंदमें अधिक प्रवीण होते हैं। इस समय धनुर्वेदका एक भी प्रन्थ उपलब्ध नहीं है। परन्तु उक्त सव वर्णन काल्पनिक भी नहीं है। महाभारतकालमें दस-शखात्रों का धनुर्वेद नामक प्रन्थ अवश्य होगा श्रीर सम्भव है कि उसमें श्रह्मोंका भी वर्णन हो। गान्धर्व वेदका वर्णन वन पर्वके ६१वें अध्यायमें है। उसमें गीत, नृत्य, यादित्र (गाना, नाचना और बजाना) श्रौर सात भेद मुख्य विषय हैं। नटसूत्रका जो उल्लेख पिण्निमें है वह इसमें नहीं है। गान्धर्व वेद्में नाटकोंका श्रमिनय नहीं होगा। गानके सप्त भेदोंका उल्लेख सभा पर्वके ११ वें अध्यायमें है। मृदंगके तीन शब्दों श्रौर गायनके सात सुरोंका भी उल्लेख है।

यह बात मिसद है कि वेदाइ ६ हैं।

उनके नामका उल्लेख स्पष्ट है - छन्द, व्याक-रगा, ज्योतिष, निरुक्त, शिचा श्रौर कल्प। परन्त यास्कको छोड़कर इन वेदांगोंमें से किसीके भी कर्ताका कुछ उल्लेख नहीं है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि जो वेदाङ्ग वर्त्तमान समयमें पढ़े जाते हैं, वहीं महाभारत-कालमें भी प्रसिद्ध थे श्रीर पढ़े जाते थे या नहीं। इससे जान पड़ता है कि यह उल्लेखाभाव होगा । परन्त इसमें सन्देह नहीं कि वर्त्तमान वेदाङ्गीके कर्ता और उनके ग्रन्थ महाभारतके पूर्व कालके हैं। इन श्रंगोंके उपांग भी थे, क्योंकि वन पर्वके ६४ वें श्रध्यायमें लिखा है 'वेदाः सांगोपांगा सविष्टारः ।' इस वात-का पता नहीं लगता कि ये उपाझ कौन से थे और न टीकाकारने इसका कुछ हाल लिखा है। शान्ति पर्वके ३३५ वें श्रध्यायके २५ वें ऋोकमें यह उत्तेख है कि "वेदेव सपुराणेषु सांगोपांगेषु गीयसे।" श्रङ्गी-मेंसे ज्योतिष श्रीर निरुक्तका उल्लेख श्रिधिक पाया जाता है। यास्कके निरुक्त श्रीर निघन्टुका महत्त्व शान्ति पर्वके ३४३ वें अध्यायके ७३ वें श्लोकमें वर्णित है श्रौर यहीं कोशका भी उल्लेख है। ज्योतिषका उल्लेख उपनिषदोंमें भी नज्ञ-विद्याके नामसे किया गया है। यह बात समक्षमें नहीं त्राती कि नज्ञ-जीवी श्रोर श्रायुर्वेदजीवी मनुष्य श्रादके निमन्त्रणके लिये अयोग्य क्यों माने गये थे । नज्ञ-विद्या श्रौर ज्योतिषमें कुछ भेद होगा। फल-ज्योतिषकी कुछ निन्दा की हुई जान पड़ती है। वन पर्वके २०६वें अध्यायमें कहा है जि-"दो व्यक्तियोंका जन्म एक ही नज्ज पर होता हैं; पर वे दोनों एक हीसे भाग्यवान नहीं होते, किन्तु उनके भाग्यमें बहुत अन्तर हुआ करता है।" किसी ज्योतिष-ग्रन्थ अथवा ग्रन्थकर्ताका उल्लेख कहीं नहीं

है, परन्तु गर्गका नाम सारस्रत उपा-ख्यानमें पाया जाता है । शान्ति पर्वके ३४०वें श्रध्यायके ६५वें स्ठोकमें गर्गका सम्बन्ध कालयवनके साथ लगाया गया है। यह गर्ग कालज्ञानी था श्रौर ज्योतिषों अर्थात् प्रहोंकी वक्र-गतिको था। जेकोवीने यह सिद्ध कर दिया है कि महाभारतके समयकी ग्रहमाला आगे सन् ३०० ईसवीमें ज्ञात ग्रहमालासे भिन्न थी (अर्थात् यह माना गया है कि सूर्य नीचे था और चन्द्र ऊपर था)। महा-भारतके समय कल्पसूत्र कौन कौन से थे इस बातका पता नहीं। सिर्फ कल्पवेदाङ्ग-का उल्लेख है। परन्तु यह बात निर्विचात सिद्ध है कि महाभारतके पूर्व कालमें वेद-भेद सहित और शाखा-भेद सहित श्रीत-सुत्र भिन्न भिन्न होंगे।

महाभारतमें यद्यपि चार वेदों, ब्राह्मणों, याज्ञवल्क्य शतपथ ब्राह्मण, **आर**ग्यक, उपनिषदों, छः वेदाङ्गों श्र<mark>ोर</mark> तीन उपवेदोंका उल्लेख किया गया है, तथापि इससे महाभारतके कालका निर्णय करनेके सम्बन्धमें कुछ भी अन-मान नहीं किया जा सकता। कारण यह है कि पहले तो इन यत्थोंके कर्तात्रोंके नाम नहीं दिये गये हैं; श्रीर फिर इन ग्रन्थों तथा इनके कर्तात्रोंका समय भी निश्चित नहीं है, यहाँतक कि वह समय मालुम ही नहीं है। प्रायः इन ग्रन्थोंका समय बहुत प्राचीन होगा, इसलिये यदि वह माल्म भी हो तो उसका कुछ विशेष उपयोग नहीं किया जा सकता। उदा-हरणार्थ, यदि यह मालूम हो गया कि महाभारत चेदान्त ज्योतिषके बना, तो इस जानेकारीसे कुछ भी लाभ नहीं है, क्योंकि इस ज्योतिषका समय ईसवी सन्के पहिले १४०० या १२०० माना जाता है। यदि कहा जाय कि इस समयके अनन्तर महाभारत हुआ, तो इससे महाभारतके समयका ठीक ठीक निर्णय करनेमें क्या लाभ हो सकता है? यदि कुछ लाभ हो तो वह उन प्रन्थोंके कालके सम्बन्धमें ही हो सकता है, जिनका उल्लेख महाभारतमें किया गया है। जैसे, श्रारएयक शब्द महाभारतमें पाया जाता है: श्रोर पाणिनिके समय श्रारण्यक शब्द का श्रर्थ 'वेदका विशिष्ट भाग' नहीं था, किन्त 'त्ररएयमें रहनेवाला मनुष्य' था: इससे यही मालम होता है कि वेदके श्चारएयक भाग पाणिनिके बाद श्रीर महाभारतके पहले बने होंगे या उन्हें यह नाम दिया गया होगा । अस्त : यदि कहा जाय कि महाभारतमें वेदके अभुक भागका श्रथवा उपनिष्दोंका उल्लेख नहीं है, इस-लिये वे भाग उस समय थे ही नहीं, तो यह अनुमान भी नहीं किया जा सकता। जबतक इस बातकी आवश्यकता न हो कि उल्लेख किया ही जाना चाहिये, तब तक उल्लेखके अभावसे कुछ भी अनुमान नहीं किया जा सकता । ऐसी दशामें निश्चयात्मक रीतिसे यह नहीं वतलाया जा सकता कि महाभारतके पहले कौन कीन से ग्रन्थ थे।

इस दृष्टिसे देखने पर यहाँ इस बात-का विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं कि यदि वेदों अथवा उपनिषदों के कुछ अवतरण महाभारतमें पाये जाते हों तो वे कौन से हैं। कारण यह है कि इस बातके मालूम हो जाने पर भी कोई अनु-मान नहीं किया जा सकता। वेदों के जो वचन महाभारतमें ज्यों के त्यों पाये जाये हैं, उन्हें दूँ दुकर हाष्किन्सने अपने अन्थमें ऐसे उदाहरणों की एक माला ही दे दी है। इन उदाहरणों से यह स्थूल अनुमान हो सकता है कि वेद, ब्राह्मण आदि सब अस्थ महाभारतके पहले के हैं। परन्तु इस

स्थूल अनुमानसे विशेष लाभ क्या हुआ? ऐसे भी उदाहरण दिये गये हैं जिनसे माल्म होता है कि कडोपनिषद्के अव तर्ण महाभारतमें पाये जाते हैं; परन्त इससे भी कोई विशेष लाभदायक अनु-मान नहीं किया जा सकता। श्वेताश्वता उपनिषद् और मैत्रायण उपनिषद्के जो अवतरण महाभारतमें लिये गये हैं, उनके भी उदाहरण हाप्किन्सने दिये हैं। सारण रहे कि ये दोनों उपनिषद् दशोप निषदोंके बाहरके हैं और इनका समय भी कुछ माल्म नहीं। ऐसी दशामें यदि कहा जाय कि उपनिषदोंके अनन्तर महा-भारतकी रचना हुई, तो इस कथनसे कुछ भी निष्पन्न नहीं होता । मैत्रायण उप-निषद्से महाभारतमें कुछ वेदान्त तत्त्व लिये गये हैं जिनका विचार वेदाल विषयके साथ खतन्त्र रीतिसे श्रागे चल-कर किया जायगा। तात्पर्य यह है कि हमें यहाँ यह वतलानेकी आवश्यकता नहीं कि वैदिक प्रन्थोंके कौन से प्रवतरण महाभारतमें लिये गये हैं। गृह्यसूत्रों, धर्मशास्त्रों और पुराणोंका त्रावश्यक उल्लेख पहले किया जा चुका है। श्रव दर्शन, अनुशासन, पन्थ अथवा मतके उल्लेखके सम्बन्धमें कुछ विचार किया जाना चाहिये।

न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व श्रीर उत्तर मीमांसा मिलाकर जो छः दर्शन होते हैं, उनका एकत्र उल्लेख महा-भारतमें कहीं नहीं है। श्रकेले किपलकी छोड़ इन दर्शनोंके प्रसिद्ध कर्त्ताश्रोंका भी उल्लेख महाभारतमें नहीं है। न्यायके सूत्रकर्त्ता गौतम, वैशेषिकके कणाद, योग-के पतञ्जलि श्रीर उत्तर मीमांसाके बाद-रायणका भी नाम महाभारतमें नहीं है। हम पहले कह चुके हैं कि बादरायणके सूत्र महाभारतके श्रवन्तरके हैं। उसका समय ईसवी सन्के पहले १०० माना जाय तो महाभारत उसके पहलेका है। पतञ्जलिके योगस्त्रका समय भी इसीके लगभग है। पतअलिने श्रपने महाभाष्यमें, पुष्पमित्रके अश्वमेधका और साकेत (श्रयोध्या) पर यवन-राजा मिनंडर (मिलिन्द) की चढ़ाईका उल्लेख किया है: श्रीर यह उल्लेख इस प्रकार किया गया है कि मानों ये दोनों बातें पतञ्जलिके समयमें हुई हों। इससे पतञ्जलिका समय ईसवी सनके पहले १५० से १०० के बीच-में प्रायः निश्चित हो जाता है। श्रर्थात् यह सिद्ध हो जाता है कि वर्तमान महाभारत ईसवी सन्के १५० वर्षके पहलेका है। यदि कोई कहे कि महाभारतमें पतअलिके उल्लेखका न होना विशेष महत्त्वका प्रमाण नहीं है, तो ऐसा नहीं कहा जा सकता । पतञ्जलिके नामका उल्लेख अवश्य होना चाहिये था: क्योंकि योग-शास्त्र श्रथवा योग मतका उत्तेख महा-भारतमें हजारों स्थानोंमें पाया जाता है; श्रीर एक स्थानमें तो स्पष्ट कहा गया है कि योगज्ञानका प्रवर्तक हिरएय-गर्भ (ब्रह्मा) है। यदि उस समय पतञ्जलि-के योगसूत्रोंकी रचना हुई होती, तो उनका उल्लेख अवश्य किया गया होता। बाद-रायणके सूत्रोंका भी यही हाल है। वर्त-मान समयमें बादरायणके सूत्र सर्वमान्य श्रीर वेदत्त्य समभे जाते हैं। यदि वे महाभारतके समय होते तो उनका उल्लेख अवश्य किया जाता। ऐसा उल्लेख न करके यह कहा गया है कि वेदान्तका भवर्त्तक श्रपान्तरतमा श्रथवा प्राचीनगर्भ है। सारांश, महाभारतका समय योग श्रीर वेदान्तके सूत्रकर्ताश्रोंके पहलेका है और इन दोनोंकी स्थिति समान है: अर्थात दोनोंके कत्ता भिन्न बतलाये गये हैं। इनका समय निश्चित है: श्रीर यह प्रमाण विशेष

महत्त्वका है कि महाभारत इनके समयके पहलेका है । पूर्वमीमांसाके सूत्रकर्ता जैमिनि श्रौर न्याय-सूत्रकर्त्ता गौतमके नाम महाभारतमें पाये जाते हैं। परन्तु ये नाम स्त्रकर्त्ताकी हैसियतसे नहीं, किन्तु साधा-रण ऋषियोंके तौर पर दिये गये हैं। तात्पर्य यह है कि गौतमके सुत्र श्रौर जैमिनिके सूत्र महाभारतके स्रनन्तरके हैं। जान पड़ता है कि न्याय श्रोर मीमांसा-शास्त्र महाभारतके पहलेके हैं; क्योंकि यद्यपि न्याय शब्दका प्रत्यस उपयोग नहीं किया गया है, तथापि उस विषयका उल्लेख हेत्वाद शब्दसे किया गया है। नैयायिकोंको 'हैतुक' कहा गया है (अनु-शासन अ० ३७, १२-१४)। नैयायिकोंने वेदोंके प्रमाणको नहीं माना है, इसलिये यह मत वेदबाह्य समभा गया है। महा-भारतमें वैशेषिक और कणादका नाम नहीं है। उनका नाम सिर्फ एक बार हरि-वंशमें दिया गया है। वैशेषिक शब्दका उपयोग सिर्फ एक बार 'गुणोंका विशेषण श्रर्थात् उत्तमः इस अर्थमं किया गया है। पूर्वमीमांसाका नाम शान्ति पर्वके १= वें श्रध्यायमें दिया गया है। इसमें उन लोगोंकी प्रशंसा की गई है जो पाखरडी परिडतोंके विरुद्ध थे, जिन्हें पूर्वशास्त्रकी श्रच्छी जानकारी थी श्रौर जो कर्मीका श्राचरण किया करते थे। इससे मालम होता है कि महाभारत-कालमें पूर्वशास्त्र ही कर्मशास्त्र माना गया होगा और स्वभा-वतः उत्तरशास्त्र वेदान्तका शास्त्र माना गया होगा। परन्तु इस विषयमें सम्देहके लिये बहुत स्थान है। सांख्यशास्त्रके प्रव-र्तक कपिलका नाम बार बार पाया जाता है श्रीर उनके शिष्य भी श्रनेक बतलाये गये हैं। उन शिष्योंमें श्रासरी श्रीर पञ्च-शिखके नाम आये हैं। असितदेवलका भी नाम श्राया है। यह बात प्रसिद्ध है कि किपलके वर्तमानसूत्र बहुत अर्वाचीन हैं। कपिलका और कोई प्राचीन प्रन्थ इस समय प्रसिद्ध नहीं है। महाभारतमें कपिलको श्रक्षि, शिव, विष्णु श्रीर प्रजापतिका श्रव-तार माना गया है। इससे श्रवमान होता है कि वह बहुत प्राचीन समयमें हुआ होगा और उसके कालके सम्बन्धमें कुछ भी निश्चय नहीं किया जा सकता। वेदों-के निन्दकके तौर पर एक स्थान (शान्ति-पर्व. अ० २६९.६) में कपिलका वर्णन पाया जाता है। यह भी मालूम होता है कि कपिल ऋहिंसावादी था और यज्ञके विरुद्ध था। यदि कपिलका समय बौद्ध-कालके कुछ पूर्वका माना जाय, तो इस कपिलको अर्वाचीन कहना पड़ेगा। पञ्च-शिखका समय निश्चय-पूर्वक नहीं वत-लाया जा सकता। परन्त बौद्धमतवादियों-में पञ्चशिखका नाम पाया जाता है। इसका काल बुद्धके समयके लगभग माना जा सकता है। इससे यह बात पाई जाती है कि वुद्ध और पञ्चशिखके श्रनन्तर महाभारत हुआ है। इससे महाभारतके समयका निर्णय करनेमें अच्छी सहायता मिलती है।

श्रव हम नास्तिक मतोंके सम्बन्धमें कुछ विचार करेंगे। न्याय श्रीर सांख्य वेदोंको नहीं मानते,श्रतएव ये दोनों नास्तिक मत हैं। परन्तु उनके बहुतसे सिद्धान्तोंका खीकार इन दोनों मतोंमें सनातन धर्मसे किया गया है इसलिये ये घड्दर्शनोंमें शामिल किये गये हैं। सम्बे नास्तिक सिर्फ़ लोका-यत, बौद्ध श्रीर जैन ही हैं। देखना चाहिये कि महाभारतमें इनका कितना उल्लेख किया गया है। श्राश्चर्य है कि नामसे इनका उल्लेख कहीं नहीं है। सम्भव है कि इन मतोंके नास्तिक होनेके कारण इनके नामका उल्लेख किया जाना उचित न समका गया हो। लोकायत मतके

त्रगुत्रा चार्वाकका नाम महाभारतमें कही देख नहीं पड़ता। परन्तु युद्धके अनन्तर युधिष्ठिरने जब हस्तिनापुरमें प्रवेश किया उस समयके वर्णनमें, प्रकट रूपसे उसका धिकार करनेवाले चार्वाक नामक एक ब्राह्मण परिवादका नाम पाया जाता है जो दुर्योधनका मित्र था। इससे जान पडता है कि चार्वाक नाम बहुत निन्ध था। वृहरूपति नास्तिक मतका प्रवर्तक माना गया है। आश्चर्यकी बात है कि वृहस्पति आसुर मतका प्रवर्तक समभा जायः परन्त उपनिषदोंमें यह कथा पाई जाती है कि असुरोंको कुमार्गमें प्रवृत्त करानेके लिये वृहस्पतिने एक मिथ्या शास्त्रकी रचना की थी। यद्यपि यह कथा महाभारतमें नहीं है, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि इसकी रचना पीछेसे हुई होगी। लोकायतका नाम आदि पर्वके ७०वें त्रध्यायमें पाया जाता है, यथा-"लोकायतिक मुख्येश्च समन्तादन्रनादि-तम्।" ४६। यहाँ कहा गया है कि करवके श्राश्रममें लोकायत श्रथवा नास्तिक पन्थ-के मुखियोंके वादविवादकी आवाज गूँज रही थी। इससे प्रकट है कि लोकायत अथवा चार्वाक मत बहुत प्राचीन है। श्रव देखना चाहिये कि बौद्धोंका उल्लेख महाभारतमें है या नहीं। यद्यपि इनका उल्लेख नामसे न किया गया हो, तथापि इनके मतोंका उल्लेख कहीं कहीं पाया जाता है। श्राश्वमेधिक पर्वके ४६वें श्रध्याय (अनुगीता) में अनेक मत बतलाये गये हैं। वहाँ सबसे पहले चार्वाक मतका उल्लेख इस प्रकार किया गया है—"कोई कोई कहते हैं कि देहका नाश हो जाने पर श्रात्माका भी नाश हो जाता है।" इसके बाद कहा गया है कि कुछ लोग इस जगत्को चिएक मानते हैं। इस वर्णनमे बीस मतका उल्लेख देख पड़ता है।

किसी किसी स्थानमें निर्वाण शब्दका प्रयोग किया गया है, जैसे शान्ति पर्व अध्याय १६७ श्लोक ४६। यहाँ भी बौद्ध मतका ही बोध होता है। सारांश, महा-भारतके विस्तृत भागमें बौद्ध मतका वर्णन पाया जाता है। जैन मतका उल्लेख स्पष्ट है। श्रादि पर्वमें नय्न-चपण्कका उल्लेख है। इसी प्रकार अन्य स्थानोंमें नम्न, दिग-म्बर, पागलोंके समान घूमनेवाले, इत्यादि लोगाँका उल्लेख है। इतना होने पर भी स्पष्ट रीतिसे नामका उल्लेख नहीं किया गया है। यहाँ यह कह देना श्रावश्यक है कि जैन श्रीर बौद्ध मतोंके पहले उन्हींके मतोंके समान अन्य मत प्रचलित थे। थदि यह मान लिया जाय कि महाभारत-में बौद्ध श्रीर जैन मतींका उल्लेख है, तो कोई हर्ज नहीं। महाभारतके समयका निश्चय करनेके लिये यह एक शच्छा साधन है। इससे यह सिद्धान्त किया जा सकता है कि ईसवी सन्के पहले ४०० वर्षके इस पार महाभारतकी रचना हुई है। यह सिद्धान्त हमारे निश्चित किये हुए समयके विरुद्ध नहीं है। हमने तो यही प्रतिपादित किया है कि बौद्ध और जैन धर्मके प्रसारसे ही भारतको महाभारतका सक्प देनेकी श्रावश्यकता हुई थी।

यहाँ श्रव एक श्रत्यन्त महत्त्वके प्रश्न-का विचार किया जायगा। भगवद्गीता महाभारतका एक बहुत प्राचीन भाग है। कुछ लोगोंकी राय है कि इस भगवद्गीता-में बौद्ध मतका खएडन किया गया है। श्र्यात्, इससे यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया जाता है कि भगवद्गीता मूल भारत-में भी न होकर बौद्ध धर्मके बादकी यानी महाभारतके समयकी है। परन्तु यह राय गलत है। इन लोगोंका कथन है कि भगवद्गीतामें श्रासुर स्वभावका जो वर्णन है, वह बौद्ध लोगोंका ही है; श्र्थात्- श्रसत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् । श्रपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥

इस क्रोकमें वौद्ध मतका दिग्दर्शन किया गया है। परन्त सच बात यह है कि उक्त वर्णन बौद्धोंका नहीं, चार्वाकी श्रथवा बाईस्पत्योंका है। तैलङ्क प्रभृति विद्वानीकी यही राय है कि बौद्ध लोग 'श्रहंकारं वलं दर्पं कामं कोधं च संश्रिताः' के स्वभावके नहीं थे। 'श्राज इस शत्रको मार गिराया, कल उसकी मारूँगा' इत्यादि गर्वोक्ति बौद्धोंके सम्बन्धमें नहीं कही जा सकती। 'ईश्वरोऽहं श्रहं-भोगी सिद्धोऽहं वलवान् सुखीं ऐसे उद्गार उनके मुखले नहीं निकल सकते। उनका तो सबसे बड़ा पुरुवार्थ यही था कि संसारको छोड श्ररएयमें जाकर स्वस्थ श्रीर ध्यानस्थ बैठे रहें। 'भजनते नाम-यश्रस्ते दंभेनाविधिपूर्वकम्' यह वर्णन भी उनके विषयमें नहीं हो सकता, क्योंकि वे यज्ञके कट्टर शत्रु थे। यह वर्णन चार्वाकोंके सम्बन्धमें भली भाँति उपयुक्त होता है। जो चार्वाक और श्रासुर यह मानते थे कि शरीरके भस्म हो जाने पर आगे कुछ भी नहीं रह जाता, इस शरीरके रहते ही सुखका जो उपभाग हो सकता हो वह कर लेना चाहिये, उन्हींके सम्बन्धमें यह वर्णन शोभा दे सकता है। श्रव देखना चाहिये कि उक्त श्लोकमें बौद्ध मतोंका उल्लेख है या नहीं। 'जगत् अनीश्वर है' यह मत बौद्धोंका नहीं किन्त चार्वाकेंका है। बौद्ध लोग इस विषयका विचार ही नहीं करते कि ईश्वर है या नहीं । वे इस बातको भी नहीं मानते कि जगत् श्रसत्य है श्रथवा मिथ्या । वे लोग तो जगत्को सत्य, पर चािणक, मानते हैं। यह सच है कि चार्वाक् जगत्का असत्य नहीं मानते थे, परन्तु असत्य शब्दका अर्थ 'नास्ति सत्यं यस्मिन्' होना चाहिये.

यानी यह अर्थ होना चाहिये कि जगत्में सत्य नहीं हैं। 'श्रपरस्परसंभृतं' का अर्थ कुछ संदिग्ध सा माल्म होता है। इसका यह अर्थ हो सकता है कि जिन पदार्थोंसे यह जगत् बना है, श्रर्थात् पृथ्वी, श्राप्, तेज, वायु श्रीर श्राकाश, वे सब एक दूसरे-से उत्पन्न नहीं हुए हैं। 'कामहैतुकम्' यह श्रन्तिम विशेषण तो निश्चयपूर्वक चार्वाकौं-के ही लिये लगाया जा सकता है। उनका यही मत है कि जगत्का हेत् केवल काम है, श्रौर कुछ नहीं: इस जीवनकी इति-कर्तव्यता केवल सुखोपभोग ही है। यह प्रकट है कि इस मतका स्वीकार बौद्ध लोग नहीं करते। ऐसी दशामें स्पष्ट है कि उक्त श्लोकमें बौद्ध मतोंका दिग्दर्शन नहीं किया गया है। यद्यपि निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि चार्वाकोंका मत क्या था, तथापि माधवने सर्वदर्शन-संग्रह-में बृहस्पतिके श्लोक उद्धृत किये हैं उनसे कुछ प्रतीत होता है। परन्तु इस समय वृहस्पति-सूत्र उपलब्ध नहीं हैं। मैक्स-मुलरने हिन्दू तत्वज्ञान पर जो यन्थ लिखा है, उसमें इस सूत्रके सम्बन्धमें यह वर्णन पाया जाता है-"इस समय वृहस्पति-सूत्र नष्ट हो गये हैं। कहा जाता है कि इन सुत्रोंमें उन देहात्मवादी श्रथवा कामचारी लोकायतिक यानी चार्वाक लोगोंके मत ग्रथित थे, जो यह माना करते थे कि जो वस्तु प्रत्यत्त देख नहीं पड़ती वह है ही नहीं।" श्राश्चर्यकी वात है कि इस श्रनीश्वर-वादी मतका प्रवर्तक देवतात्रींका गुरु बृहस्पति हो। परन्तु ब्राह्मण श्रौर उपनिषद्-में कथा है कि वृहस्पतिने श्रसुरोंको उनके नाशके लिये मिथ्या श्रोर श्रनर्थ-कारक तस्वज्ञान वतलाया था । उदाहरणार्थ, मैत्रायण उपनिषद् ७६ में यह वर्णन है कि बृहस्पतिने शुक्रका रूप धारण करके, देवतात्र्योंके लाभ और श्रमुरोंके नाशके

लिये इस मिथ्या शानका प्रतिपादन किया। जान पड़ता है कि श्रसुर श्रथवा पारसी तत्त्व-ज्ञानमें भी देहको प्रधान मान-कर विचार किया गया है। कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे अनीश्वरवादी मत वैदिक कालसे प्रचलित थे। इनका उल्लेख ऋग्वेदके सूत्रोंमें भी पाया जाता है, श्रौर मैक्समृलरने इनका वर्णन श्रपने यन्थमें किया है। मैत्रायण उपनिषद्में कही हुई कथा वहुत प्राचीन समयसे प्रचलित होगी। इस उपनिषद्का समय निश्चित नहीं है: तथापि इसमें सन्देह नहीं कि यह श्रासुरी मत चेद-कालंसे ही श्रर्थात् बुद्धके पहले ही प्रचलित था। भगवद्गीतामें जिस-का उल्लेख किया गया है वह आसुरी मत ही है और वह बहुत प्राचीन भी है। यह वर्णन श्रौर यह मत बौद्धोंके विषयमें बिल-कुल उपयुक्त नहीं हो सकता। सारांश, यह कथन विलक्कल गलत है कि भगवद्गीतामें बौद्ध मतका उल्लेख है। गीता किसी प्रकार बुद्धके अनन्तरकी हो ही नहीं सकती।

कुछ लोगोंका कथन है कि भगवद्गीता-में अहिंसा सतका स्वीकार किया गया है श्रौर वौद्ध धर्ममें भी श्रहिंसा मत प्रति-पादित है। जिस प्रकार बौद्ध धर्ममें जाति निवंधका श्रनादर है और सब जातिके लोगोंको भिच्न होनेका समान श्रिधि कार दिया गया है, उसी प्रकार भगवद्गीता-में भी कहा गया है कि शुद्रोंको, यहाँतक कि श्वपचोंको भी, मोज्ञका अधिकार है। इससे वे लोग अनुमान करते हैं कि भग-वद्गीता बौद्ध धर्मके प्रचारके श्रनन्तरकी है। परन्तु यह श्रनुमान गलत है। श्रहिंसा-तत्व हिन्दुस्तानमें बहुत प्राचीन समयसे प्रचलित है। उपनिषदोंमें भी इस तत्वका उपदेश पाया जाता है। उदाहरणार्थ, छांदोग्य उपनिषद् (प्रपाठक इ,कांड १४) में कहा है:--

श्रहिसन्सर्वभूतानि अन्यत्र तीर्थभ्यः। अर्थात, भगवद्गीताका यह मत उप-निषद्से लिया गया है, न कि बौद्ध धर्मसे। दुसरी बात, श्रूड़ोंके सम्बन्धमें भी उप-निषदोंका यही अनुकूल मत है कि उन्हें ब्रह्म-विद्याका अधिकार है। उपनिषद कालमें विद्वानींकी कैसी समदृष्टि थी, यह बात छांदोग्य उपनिषद्में कही हुई रेक्व श्रोर जानश्रुतिकी कथासे स्पष्ट देख पड़ती है। यह तत्व उपनिषद्से गीतामें लाया गया है: यह कुछ बौद्ध कालके श्रनन्तरका नहीं है। इतना ही नहीं, किन्तु यह भी कहा जा सकता है कि बौद्ध काल-के श्रनन्तर सनातनधर्म मतका प्रवाह उलटी दिशामें जाने लगा और उस समय बौद्ध लोगोंके शुद्ध भिच्नश्रोंका निषेध करनेके लिये ही यह निश्चय किया गया कि श्रद्धोंको ब्रह्म विद्याका अधिकार नहीं है। यह मत बादरायणके वेदांत स्त्रमें पाया जाता है। वहाँ उपनिषद्की जान-श्रुति श्रीर रैक्वकी कथाका कुछ भिन्न सम्बन्ध मानकर शह शब्दका निराला ही अर्थ किया गया है । सारांश, भग-वद्गीता बौद्ध मतके पहलेकी श्रीर प्राचीन उपनिषदोंके समीपकी है। बादरायणके वेदान्त सूत्र बौद्ध मतके प्रचारके श्रनन्तर-के-बद्धत समयके बादके-हैं। हमने इस प्रनथके एक स्वतन्त्र भागमें यह सिद्ध करनेका विचार किया है कि भगवद्गीता-का समय वर्तमान महभारतके समयसे बहुत प्राचीन है। यहाँ तो सिर्फ महा-भारतके वर्तमान खरूपके समयका ही विचार करना है। इसमें बौद्ध मतका उल्लेख प्रत्यच नामसे प्रकट न हो, तो भी यह स्पष्ट देख पडता है: इसलिये सिद्ध है कि वर्तमान महाभारतका समय बौद्ध मतके अनन्तरका है, अर्थात् ईसवी सन्के पहले ४००के श्रनन्तरका है: श्रीर यह

सिद्धान्त हमारे पूर्वोक्त मतका विरोधी नहीं है।

श्रव इस वातका विचार किया जायगा कि सनातन-धर्मके मतमतान्तरोंमेंसे किन किन मतोंका उल्लेख महाभारतमें है श्रीर उनके कौनसे ग्रन्थ उल्लिखित हैं। नारा-यणीयमें पञ्चमहाकल्प विशेषण विष्णके लिये लाया गया है। टीकाकारका कथन है कि इसमें पाँच मतों श्रौर उनके श्रागमोंका समावेश होता है। अर्थात्, उसका कथन है कि उस शब्दमें शैव. वैष्णव, सीर, शाक और गाणेश, ये पाँच मत शामिल हैं। परन्त महाभारतमें प्रत्यच उल्लेख केवल प्रथम तीन मतोंका ही है: शाक श्रौर गागेश मतों अथवा श्रागमोंका उल्लेख नहीं है। शैव मतका उल्लेख पाशुपत ज्ञानके नामसे किया गया है श्रीर प्रत्यन्त शिवको उसका कर्त्ता कहा गया है। परन्तु इस मतके किसी ग्रन्थ-का नाम नहीं पाया जाता। यह भी नहीं बतलाया गया है कि पाशुपतोंके मत क्या थे। वैष्णवांके मतका उल्लेख भागवत नामसे किया गया है, परन्त यह नहीं बतलाया गया कि उनके प्रन्थ कौन कौन-से थे। पञ्चरात्र मतके प्रवर्तक खयं भग-वान हैं। इस शब्दका उपयोग विष्णु श्रथवा श्रीकृष्णके लिये किया जा सकता है। इसीसे इस मतके लोगोंको 'सात्वत' कहते हैं। यह कहीं नहीं बतलाया गया है कि पाञ्चरात्र सतके कौन कौनसे ग्रन्थ थे। शांति पर्वमें जो नारायणीय उपा-ख्यान है वह सब इसी मतका है। मुख्य पञ्चरात्र श्रथवा नारद-पञ्चरात्रके श्रति-रिक्त किसी दूसरे प्रनथका उल्लेख नहीं है, इसलिये काल-निर्णयके सम्बन्धमें कोई विशेष सहायता नहीं मिलती। शान्ति पर्वके ३३५ वें ब्रध्यायमें यह वर्णन है कि जो सात ऋषि 'चित्रशिखएडी' के नामसे विख्यात थे, उन्होंने मिलकर वेदोंके निचोडसे मेरु पर्वत पर एक उत्तम शास्त्र-की रचना की। वही यह पञ्चरात्र है। उस ग्रन्थमें श्रेष्ठ लोकधर्मका विवरण दिया गया था। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलत्स्य, पुलह, ऋतु और वसिष्ठ, यही उक्त चित्रशिखएडी हैं। कहा गया है कि उस प्रन्थमें एक लाख रहोक थे। यद्यपि वह ग्रन्थ काल्पनिक न हो, तथापि ऐति-हासिक रीतिसे यह निश्चय करना अस-म्भव है कि वर्तमान समयके प्रसिद्ध पञ्चरात्र-ग्रन्थ कष रचे गये थे: इसलिए महाभारतके कालका निर्णय करनेके लिये कुछ साधन उत्पन्न नहीं होता। महाभारत-में पाश्चपत-प्रनथ वर्णित न होकर पञ्चरात्र ग्रन्थ वर्णित है। इससे अनुमान होता है कि उस समय पाशुपत-प्रनथ न होगा। यदि होता तो जिस प्रकार सौतिने नारा-यणीय उपाख्यानका समावेश महाभारतमें किया है, उसी प्रकार पाश्रपत-प्रनथका भी समावेश किया होता। सौर उपासना-का उल्लेख द्रोण पर्वके =२ वें ऋध्यायमें है। इस बातका पता नहीं कि यह उपा-सना ठीक वैसी ही थी जैसी ब्राह्मण लोग हमेशा गायत्री-मन्त्रसे किया करते हैं, श्रथवा उससे भिन्न थी। यह भी समभमें नहीं श्राता कि सौर-उपासनाका मत कुछ भिन्न था या कैसा था। सौर मतके प्रन्थोंका कुछ भी उल्लेख नहीं है, श्रतएव इस विषय पर श्रधिक लिखनेकी गुआयश नहीं।

इस प्रकार यहाँतक इस बातका विवे-चन किया गया है कि पहले अन्तःप्रमाण-से क्या सिद्ध होता है श्रीर काल-निर्णयके लिये कैसी सहायता मिलती है। इस विवे-चनका सारांश यह है:—महाभारतमें वेद, उपवेद, श्रङ्ग, उपाङ्ग, ब्राह्मण श्रीर उप-निषदोंका उल्लेख है; परन्तु इनका काल

श्रानिश्चित है, उसका श्रन्दाज केवल स्थूल मानसे किया जाता है और वह भी ऋत्यन्त प्राचीन समयका है। इसलिये इन प्रन्थी-से काल-निर्णयके लिये विशेष सहायता नहीं सिलती और इसी लिये हमने उनके अवतरण नहीं दिये हैं। महाभारतमें सूत्रों श्रीर धर्मशास्त्रोंका उल्लेख पाया जाता है. परन्तु किसीका नाम नहीं दिया गया है। मनुका नाम प्रसिद्ध है और वह बार बार देख पडता है। उसके बहुतेरे वचन भी पाये जाते हैं। परन्तु यह निर्विचाद सिद्ध है कि मनुस्मृति महाभारतके श्रन-न्तरकी है। हमने आश्वलायन गृह्यसूत्रका एक वचन अपर उद्धृत किया है जो महा-भारतमें पाया जाता है; परन्त इससे यह नहीं कहा जा सकता कि वह वचन उस सूत्रसे ही लिया गया है। आश्वलायन स्त्रके पहले महाभारतकी रचना हुई, क्योंकि उसमें महाभारतका उल्लेख है। 'ब्रह्मस्त्रपदैः' शब्द से बादरायणके वेदान्त-सूत्रोंका बोध नहीं होता। बादरायणके स्त्रोंमें महाभारतके वचनोंका आधार लिया गया है, इसलिये वे महामारतके श्रनन्तरके हैं। महाभारतमें न तो न्याय श्रीर वैशेषिकका श्रीर न उनके सुत्रींका ही उल्लेख है। सांख्ययोग श्रीर कपिलका नाम बार बार देख पड़ता है, परन्त पत-ञ्जलिके योगसूत्रका उल्लेख नहीं है। योंग-शास्त्र का कर्ता कोई ग्रीर ही बत-लाया गया है। इससे पतञ्जलिका समय महाभारतके अनन्तरका होता है। पाशु-पत और पाञ्चरात्र मतोंका उल्लेख हैं, परन्तु उनके किसी अन्थका उल्लेख नहीं है। सप्तर्षि-कृत एक ल्हात्मक पञ्चरात्र-प्रनथ उल्लिखित है। यद्यपि वह काल्पनिक न हो तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह किस समयका है, इसलिये उससे विशेष लाभ नहीं होता। संदोपमें,

इस प्रथम अन्तःप्रमाणके आधार पर, निश्चयात्मक रीतिसे सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि आश्वलायनके गृह्यस्त्र, वादरायणके वेदान्त-स्त्र और पतअलिके योग-स्त्रके पहले महाभारत हुआ है। इन स्त्रोंका काल, विशेषतः पतञ्जलिका काल, ईसवी सनके पहले १५०-१०० हैं; अर्थात् महाभारत इस समयके पहलेका निश्चित होता है।

दसरा अन्तःप्रमाण महाभारतमें पाये जानेवाले गद्य श्रीर छन्दोंका है; इस-लिये श्रव सोचना चाहिये कि महाभारत-छन्द किस समयके हैं और जानना चाहिये कि उनसे महाभारतके कालका कुछ निर्णय हो सकता है या नहीं। इस दृष्टिसे पाश्चात्य प्रन्थकारोंने बहुत विस्तारपूर्वक विचार किया है। यद्यपि यह विचार निर्णयात्मक सिद्धान्तके लिये विशेष उप-योगी नहीं है, तथापि पाठकोंको इसकी कुछ जानकारी श्रवश्य होनी चाहिये। इसका विवेचन करनेके पहले हम यहाँ गद्यके विषयमें कुछ विचार करेंगे। महा-भारतमें अनेक स्थानों में गद्य पाया जाता है। विशेषतः आदि पर्व, वन पर्व और शान्ति पर्वमें यह अधिक है। इन गद्य-भागोंकी रचना सौतिने खयं की होगी। यह भी सम्भव है कि कहीं कहीं पहले जमानेके किसी इतिहास त्रादिके प्रनथमें-से कोई भाग ले लिया गया हो। पहले पर्वमें जनमेजय और देवशुनीकी कथाका भाग प्राचीन जान पडता है। परन्तु वन पर्व श्रीर शान्ति पर्वका गद्य-भाग नया एवं सौति-कृत देख पड़ता है। महाभारत-का गद्य-भाग वेदके ब्राह्मण-भाग श्रौर उपनिषद्-भागमं पाये जानेवाले गद्यसे विलकुल भिन्न है। ब्राह्मण-भागके गद्यमें प्राचीन वैदिक-कालीन शब्द और प्राचीन प्रयोग बहुत हैं। उसकी भाषा अत्यन्त

वक्तवपूर्ण है और एक हीसे प्रयोग तथा वाक्योंकी पुनरावृत्ति इसके पोषणके लिये की हुई देख पड़ती है। परन्तु महाभारत-का गद्य ऐसा नहीं है । इसमें प्राचीन शब्द श्रथवा प्राचीन प्रयोग नहीं हैं: श्रीर वक्तव-शक्ति भी वैसी नहीं है। स्पष्ट देख पडता है कि जिस समय संस्कृत भाषाका उपयोग साधारण लोगोंकी वातचीतमें नहीं किया जाता था. उस समय महाभारतके गद्य-भागकी रचना की गई थी। इस गद्य-भागसे इतना ही अनुमान किया जा सकता है कि ब्राह्मण श्रीर उपनिषद्-कालके श्रनन्तर बहुत वर्षोंके बाद, जब संस्कृत भाषाका उपयोग बोलचालमें नहीं किया जाता था. तब महाभारतकी रचना हुई होगी। श्रर्थात्, ईसवी सन्के पहले २०० के लग-भगका जो समय हमने निश्चित किया है. उसको स्थिर करनेके लिये इस गद्य-भागके विचारसे सहायता ही मिलती है।

श्रब हम पद्यके विषयमें विचार करेंगे। हाष्क्रिन्सने अपने प्रनथमें इस विषयका इतना श्रधिक श्रीर विस्तार-पूर्वक विचार किया है कि उसके १७५ पृष्ठ इसी विषयसे भरे हैं। उसका पूरा पूरा उल्लेख यहाँ नहीं किया जा सकता; ग्रीर उससे स्थूल श्रनुमानके सिवा कुन श्रिधिक मालम भी नहीं हो सकता। इस-लिये उसकी कुछ विशेष और प्रधान बातें यहाँ बतला देना काफी होगा। महाभारत-में मुख्यतः अनुष्टुभ् स्रोक हैं और इनसें कुछ कम उपजाति-वृत्तके अर्थात् त्रिष्टुभ्-वृत्तके स्रोक हैं। सौमें ६५ श्रवुष्टुभ्, ५से कुछ कम त्रिष्टुभ् श्रीर ६ श्रन्य वृत्तीके शेष सब श्लोक हैं। इस 🔓 में सब प्रकारके वृत्त शामिल हैं। श्रज्ञर-वृत्तोंमें रथोद्धतासे शार्दू लविकी ड़िततक ११ वृत्तों के नमूने हैं। मात्रा-वृत्तोंमें पुष्पिताया, अपरवक्त्रा,

मात्रासमका श्रीर श्रार्या, गीति श्रीर उप-गीति, ये सब वृत्त हैं। ये भिन्न भिन्न वृत्त कब श्रोर कैसे उत्पन्न हुए इसका निश्चित इतिहास नहीं बतलाया जा सकता। यह बात प्रसिद्ध है कि कालिदासके समयसे इन सब वृत्तोंका उपयोग होता चला श्राया है। ये वृत्त वैदिक नहीं हैं: परन्तु यह निर्विवाद सिद्ध है कि वैदिक वृत्तोंसे ही इन वृत्तोंकी उत्पत्ति कालिदासके पहले हुई थी। श्रार्या-वृत्तका उपयोग बौद्ध श्रोर जैन ग्रन्थोंमें बहुत प्राचीन समयसे देख पड़ता है। सारांश, इन वृत्तोंके उपयोगसे महाभारतके कालका निर्णय करनेके लिये कुछ भी साधन नहीं मिलता । और जो काल हमने निश्चित किया है उसके विरुद्ध भी कोई बात नहीं पाई जाती। अनुमान है कि सौतिने रुचि-वैचित्र्यके लिये. अथवा इस प्रतिशाकी पूर्तिके लिये कि-"जो महाभारतमें नहीं है, वह श्रन्यत्र कहीं नहीं है," इन भिन्न भिन्न वृत्तोंके स्रोकों-का उपयोग किया होगा। अब हम महाभारतके प्रधान छन्द अनुष्टुभ् और त्रिष्टुभ्का विचार करेंगे।

श्रनुष्टुभ् श्रोर त्रिष्टुभ् वैदिक वृत्त हैं।
श्रनुष्टुभ्-वृत्तके प्रत्येक पादमें श्राठ श्रन्तर
श्रोर त्रिष्टुभ्-वृत्तके पदमें ग्यारह श्रन्तर
होते हैं। इन श्रन्तरोंका हस्व-दीर्घ-कम
निश्चित नहीं है। श्रनुष्टुभ्-छन्दमें प्रथम
पादका पाँचवाँ श्रन्तर बहुधा दीर्घ होता
है। यह एक ऐसी विशेषता है जो वैदिक
श्रनुष्टुभ्की श्रपेन्ना व्यास श्रीर वादमीिकके
श्रनुष्टुभ्में नृतन देख पड़ती है। वैदिक
कालसे इस श्रोरके समयमें धीरे धीरे
त्रिष्टुभ्का उपयोग होने लगा; तब उसके
हस्व-दीर्घ-कम पूरी तरह निश्चित हो गये
श्रीर श्रन्तमें वे रामायणमें तथा रामायणके
श्रनन्तरके काव्योंमें इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा
श्रादि वृत्तोंके स्वरूपमें देख पड़ने लगे।

यद्यपि अनुष्टुभ्के हस्त-दीर्घ-कम विशेष रीतिसे निश्चित नहीं थे, तथापि हस्त दीर्घके कमानुसार उसके भिन्न भिन्न भेट हो जाते हैं और उसमें भिन्न भिन्न माधुर्य प्रकट होता है। इस विषयका विचार हाज्जिन्सने विस्तारपूर्वक किया है जिसका उल्लेख आगे चलकर किया जायगा। अनुष्टुभ्के चार चरण और त्रिष्ट्रभके भी चार चरण सामान्यतः माने जाते हैं परनत कभी कभी दो चरण और भी लगा दिये जाते हैं। अनुष्टुभको साधारण तौर पर श्लोक कहते हैं। जब किसी ग्रन्थ-की श्लोक-संख्याका विचार किया जाता है, तब ३२ अन्तरोंका एक अनुष्टुभ् मान कर ही गणना को जातो है। गद्य प्रन्थकी भी गणना इसी हिसाबसे, अर्थात ३२ श्रवरोंके एक श्लोकके हिसाबसे, जाती है। त्रिष्टुभ् वृत्तके श्लोकमें ११ अत्तर होते हैं: जैसे—

सन्ति लोका बहबस्ते नरेन्द्र।

इस वृत्तके और भी अनेक उदाहरण हैं। यह अनुमान किया जाता है कि जिन जिन स्थानोंमें इस नमुनेके श्लोक पाये जाते हैं वे बहुत प्राचीन भाग हैं। यह बतलाया जा चुका है कि भगवद्गीता अत्यन्त प्राचीन भाग है। सनत्सजातीय भी इसी प्रकारका श्राख्यान है। व्यासजी को ऐसे श्लोकोंकी रचना करनेकी बार बार स्फूर्ति होती थी। कहीं कहीं तो पूरा अध्याय ही ऐसे श्लोकोंका हो गया है, श्रोर कहीं कहीं श्रनुष्टुभ् श्लोकोंके बीच में ही एक दो श्लोक देख पड़ते हैं। सरल श्रीर ज़ोरदार भाषामें, सुगमतासे श्चर्यको प्रकट कर देनेवाले, ऐसे श्लोकी की रचना-शक्ति व्यासजीके भाषा-प्रभुत्व की साची है। रामायणकेसे श्लोक कुछ श्रधिक सुबद्ध हों तो भी वे इतने सरल श्रीर समाविक—मामुली बोल चालके समान—नहीं हैं। कालिदासके काव्यके समयसे तो ऐसे श्लोक प्रायः छित्रम और दुर्बीघ हुआ करते हैं। सौतिने भी ऐसे श्लोक बनाये थे और उसे इन श्लोकोंकी रचना करनेकी कला भी अच्छी तरह स्थ गई थी। इस बातका प्रमाण यह है कि "यदाओंषम्" इत्यादि ६८ श्लोक महाभारतके पहले अध्यायमें इसी वृत्तमें रचे गये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह पूरा अध्याय और ये सब श्लोक सौतिके ही हैं। तिष्टुम्-चृत्तके इन श्लोकोंके आधार पर महाभारतका काल कालिदास आदि-के पहलेका और रामायणके भी पहलेका निश्चत होता है; क्योंकि रामायणके तिष्टुम् श्लोक नियमबद्ध देख पड़ते हैं।

यह जानना चाहिये कि श्लोक श्रौर त्रिष्ट्रभुकी रचनाके विचारसे ग्रन्थ-काल-निर्णयमें कैसी सहायता मिलती है। इस बातका निश्चय पहले हो चुका है कि महा-भारत-ग्रन्थ वैदिक कालसे लेकर प्रर्वा-चीन संस्कृतके समयतक बना है; अर्थात् उसमें कुछ भाग अत्यन्त प्राचीन हैं और कुछ नये भी हैं। रामायण-कालमें हस्व-दीर्घके अनुक्रमका जो नियम निश्चित हो गया था, महाभारतके त्रिष्टुभ्की रचना उससे भिन्न देख पड़ती है। यह बात उसके श्रनेक श्लोकोंसे सिद्ध है। जैसे, "न चैत-ब्रियः कतरन्नो गरीयः"। इसमें हस्व-दीर्घ-का अनुक्रम निश्चित नियमके अनुसार नहीं है। ऐसे अनेक श्लोक महाभारतमें पाये जाते हैं। इससे महाभारतका काल रामायणके पहलेका निश्चित होता है। "पुञ्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः" यह चरण भी ध्यान देने योग्य है। इसमें 'मि' और 'सम्' ये दो अत्तर दीर्घ हैं। यदि वे इस होते तो यह चरण नियमानुसार हो जाता। अर्थात्, यदि 'पृच्छामि ते धर्म-विध्वस्तेतः ऐसा चरण होता, तो यह

आजकलके नियमके अनुसार ठीक कहा जाता।

यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि त्रिष्टुभ् श्लोक मूल वैदिक मन्त्रोंसे लिये गये हैं। यद्यपि वैदिक त्रिष्टुम्में हस्व-दीर्घका कोई नियम नहीं होता, तथापि उसमें चाहे जहाँ हस्य या दीर्घ नहीं रख दिया जाता। हस्य-दीर्घकी ऐसी योजना करनी पड़ती है कि जिससे वृत्तके माधुर्य-की हानि न होने पावे। उदाहर एके लिये इस वैदिक त्रिष्टुभ् क्रोकार्घ पर विचार कीजिये—'नमस्ते विष्णवास त्राकृणोमि। तन्मे जुषस्य शिपिविष्ट हव्यम्। इसके प्रत्येक चरणमें ग्यारह अत्तर अवश्य हैं, परन्तु इसका हस्र-दीर्घ-क्रम वर्तमान त्रिष्टुम्-वृत्तके समान नहीं है । इतना होने पर भी इसका हस्व-दीर्घ-क्रम माधुर्य-से खाली नहीं है। वैदिक त्रिष्ट्रभुका श्रनुकरण करनेके कारण महाभारतका त्रिष्टुम् अनियन्त्रित है; श्रीर इसीसे जान पड़ता है कि उसका समय बहुत प्राचीन है। अनुष्टुभ् छन्दके प्रथम और द्वितीय पादके हस्व-दीर्घका क्रम अवतक निश्चित नहीं है; तथापि माधुर्यकी दृष्टिसे उसके भी कुछ नियम हैं। इन नियमोंको दुँढ निकालनेका प्रयत्न विद्वान् लोगोंने अनेक श्लोकोंकी तुलनासे किया है। एक उदा-हरण लीजिये - यदि 'दमयन्त्या सह नलो विजहारामरोपमः के स्थानमें हार देवोपम' कर दिया जाय तो यह भूल होगी अर्थात् इसका माधुर्य नष्ट हो जायगा । इस प्रकार श्लोकोंकी तुलना करके हाप्किन्सने काल-सम्बन्धी यह श्रवमान निकाला है कि महाभारतमें तीन चार तरहके श्लोक देख पड़ते हैं। पहला प्रकार-बिलकुल अनियन्त्रित-उपनिषदौ-के क्योंकों के नमूनेपरः दूसरा प्रकार-महाभारतका प्राचीन भाग जो इससे कुछ

कम श्रनियन्त्रित है; तीसरा प्रकार— भारतके प्रधान श्रोर ज़ोरदार खोक; चौथा प्रकार—नया बढ़ाया हुत्रा भाग जो रामायणके खोकोंके समान है। हाप्-किन्सने एक श्रोर पाँचवाँ प्रकार भी बतलाया है जो महाभारतके श्रनन्तरका है। परन्तु उसका जो उदाहरण दिया गया है वह श्रनुष्टुप् छुंदका नहीं मालूम होता। जैसे,

पुरावृताऽभयंकरा मनुष्यदेहगोचराः।
श्रिभद्रवन्ति सर्वतो यतश्च पुर्यशीलने ॥
यह स्रोक श्रनुष्टुप् छन्दका नहीं है।
यह भिन्न श्रन्य-वृत्तका स्रोक है। सारांश,
हाप्किन्सके मतानुसार भी छन्दोंके
विचारसे महाभारतका समय उपनिषद्कालसे रामायण-कालतक जा पहुँचता है।

त्रिष्ट्रभूसे बड़े वृत्तके श्लोक साधा-रण तौर पर आदि पर्वके आरम्भमें, शान्ति पर्वमें, अनुशासन पर्वमें और हरिवंशमें पाये जाते हैं। वे अन्य पर्वोमें भी हैं, पर उनकी संख्या बहुत थोड़ी है। यह बतलाया जा चुका है कि उक्त भाग सौति द्वारा बढ़ाये गये हैं। कर्ण पर्वमें एक स्थानमें लगातार पचीस अर्धसमवत्त पाये जाते हैं; वहीं एक शाद्नीविकीडित श्रीर पाँच मालिनी वृत्तके श्लोक भी हैं। अनुशासन पर्वमें आर्या वृत्तके छः श्लोक हैं। कुछ लोगोंका कथन है कि ये श्लोक नृतन छन्दःशास्त्रके नियमानुसार शुद्ध हैं श्रौर ये नियम सन् ५०० ई० के लगभगके हैं। ऐसी दशामें यह प्रश्न उठता है कि ये श्लोक सौतिके कैसे माने जायँ ? इनका समय ईसवी सन् २०० वर्ष पहलेका कैसे हो संकता है ? परन्तु सारण रहे कि सन् ५०० ईसवीका जो समय ऊपर वतलाया गया है, वह आधुनिक छन्दोग्रन्थका है, न कि ख़यं छन्दोंका ही। इन छन्दोंका ग्रस्तित्व उस समयके सेंकड़ों चर्च पहले

था और इनका उपयोग भी हुआ करता था। रामायणमें भी इनका उपयोग किया गया है। ईसवी सन्के पहलेके अनेक काव्य-अन्थ नष्ट हो गये हैं। उनमें इत वृत्तींका उपयोग किया गया था। सारांश श्राधुनिक छन्दःशास्त्रके प्रन्थोंके रचे जाने के पहले ही भिन्न भिन्न छुन्दोंकी कल्पना उत्पन्न हो गई थी और उसीके अनुसार सीतिने श्लोक बनाये हैं। यही श्लोक वर्तमान प्रन्थकारोंके लिये प्रमाणभूत हो गये हैं। त्रिष्दुभ्-वृत्तके जो अनियमित श्लोक हैं, वे महाभारतके प्राचीन भागमें हैं। सम्भव है कि इन्हों के नमूनेपर सौति भी नये एलोक बनाये हों। यह बात प्रसिद्ध है कि कालिदासने शकुन्तलाके चौथे श्रङ्कमें वैदिक ऋचाश्रोंके नमूनेपर श्रक्षिकी स्तृतिमें ऋचा बनाई है। श्रत्पव यह कोई श्रसम्भव बात नहीं है कि ईसवी सन्के पहले २०० के लगभग सौतिन शार्दुलविक्रीड़ित आदि छन्दोंमें श्लोक बनाये हीं। अब यह प्रश्न भी किया जा सकता है कि जो आर्यावृत्त पहले पाकतमे उत्पन्न हुन्रा, वह संस्कृतमें कव लिया गया होगा ? रामायणमें अत्तर-छन्दोंका बहुत कम उपयोग किया गया है, परन्तु आय वृत्तके श्लोक नहीं हैं। इससे कुछ लोग यह कहेंगे कि महाभारतका कुछ भाग रामायणके अनन्तरका है। परन्तु यह कोई नियम नहीं हो सकता कि रामा यणमें श्रायांवृत्तका उपयोग किया जात श्रावश्यक ही था। यद्यपि यह वृत्त रामा यणमें न हो, तथापि यह नहीं कहा जी कि वह संस्कृत भाषामें उस समय पहले प्रचलित ही न था। महाभारत कालमें अनेक प्राकृत-प्रन्थोंका निर्माण ही चुका था। इनके द्वारा श्रायीवृत्तक उपयोग संस्कृतमें किया जाना सम्भव है। सारांश, महाभारतका जो सम

हमने निश्चित किया है, अर्थात् ईसवी सन्के पहले २५०—३०० वर्ष, उसके विरुद्ध इन वड़े छन्दोंके विचारसे भी कोई प्रमाण नहीं पाया जाता।

श्रव हम तीसरे अन्तः प्रमाणका विचार करेंगे। श्रार्यावर्तके धार्मिक श्रौर राज-कीय इतिहासकी घटनाओंमें, बुद्धके धर्म-मतका, श्रथवा श्रीक लोगोंके साथ युद्ध होनेका, श्रथवा उनके साथ कुछ व्यवहार होनेका समय निर्णीत है। श्रतएव यह देखना चाहिये कि उस वातका कहीं उल्लेख है या नहीं। यह प्रमाण श्रत्यन्त महत्त्वका है। इस प्रमाणके श्राधारपर हमने मुख्यतः महाभारतके पूर्व-कालकी मर्यादा निश्चित की है। गौतम वुद्धकी मृत्यका समय ईसवी सन्के पहले ४७४ है। श्रर्थात्, बौद्ध-धर्मका प्रसार ईसवी सनके ४५०-४०० वर्ष पहले हुआ था। महाभारतमें बुद्धका नामतक नहीं है, परन्त बौद्ध भिन्नश्रों श्रीर बौद्ध मतीं-का निर्देश है। यही हाल जैन धर्मका भी है। जैन-धर्म-प्रचारक महावीर बुद्धके संमय था। उसके धर्मका प्रचार भी बौद्ध-धर्मके साथ साथ हो रहा था। महाभारतमें जिनका नाम नहीं है, परन्तु 'चपणक' के नामसे जैनोंका उल्लेख किया गया है। इससे भी वही काल निश्चित होता है। ग्रीक लोगोंका श्रीर श्रायोंका युद्ध-प्रसङ्ग सिकन्दरके समय हुआ। अर्थात्, ईसवी सन्के लग-भग ३०० वर्ष पहले हमें श्रीक लोगोंकी युद्ध-कलाका परिचय था। यवनौकी युद्ध-कुशलताका वर्णन महाभारतमें दो तीन खानीपर पाया जाता है। यवनीका उल्लेख भी बार बार किया गया है। श्रतएव यह बात निश्चित है कि महाभारत ईसवी सन्के पहले ३०० वर्षके इस पार-का होना चाहिये।

श्रव श्रन्तमें हम चौथे श्रन्तः प्रमाणका विचार करेंगे। महाभारतमें ज्योतिष-सम्बन्धी जो वातें पाई जाती हैं, उनका उपयोग काल-निर्णयके लिये विशेष रीति-से नहीं हो सकता । इसका विस्तार-सहित विवेचन आगे चलकर किया जायगा । महाभारतमें आकाशस्य प्रहीं श्रोर नदात्रोंकी स्थितिका वर्णन किया गया है, जिसके आधारपर कुछ लोगोंने प्रन्थ-के कथानकके समयका निर्णय करनेका यल किया है, पर वह सफल नहीं हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि महाभारतमें नज्ज, मास, अयन, पन्न, इत्यादिके नाम पाये जाते हैं श्रीर इनसे प्राचीन समयका बोध होता है: तथा महाभारत ग्रन्थके काल-निर्णयमें कुछ थोड़ी सी सहायता भी मिलती है; परन्तु इस दृष्टिसे उस वर्णनका कुछ महत्त्व नहीं है। इस विषयका विचार श्रागे किया ही जानेको है, इसलिये यहाँ अधिक विस्तारकी आवश्यकता नहीं। ज्योतिष-सम्बन्धी सिर्फ एक ही बात काल-निर्णयके काममें उपयोगी हो सकती है श्रोर उसका उल्लेख हम श्रारम्भमें ही कर चुके हैं। यह निषेधात्मक बात अत्यन्त महत्त्वकी है कि महाभारतमें राशियोंका उल्लेख नहीं है। हम बतला चुके हैं कि ईसवी सन्के पूर्व लगभग २०० के अन-न्तर इस देशमें राशियोंका प्रचार हुआ है श्रीर महाभारत इसके पहलेका है।

श्रव बाह्य प्रमाणोंका विचार किया जायगा। यह प्रकट है कि जिन ग्रन्थों श्रथवा शिला-लेखोंमें महाभारतका उन्नेख पाया जाता है, वे श्रत्यन्त महत्वके प्रमाण हैं। ऐसा एक प्रमाण श्रारम्भमें ही दिया गया है। "गुप्त इन्स्क्रिपशन्स" के तीसरे भागमें सर्वनाथका जो शिलालेख है, उस-में ईसवी सन्के ४४५ वर्ष पहलेकी एक-लच्चात्मक भारतसंहिताका स्पष्ट उन्नेख है। इसके सिवा अन्य कोई प्रमाण अव तक नहीं मिला है। बाहरके लोगोंके प्रनथको देखनेसे बौद्ध अथवा जैन प्रनथीं-में महाभारत ग्रन्थका उल्लेख हमने नहीं पाया। परन्त श्रीक लोगोंके प्रन्थोंमेंसे डायन् कायसोस्टोम् नामक वक्ताके ग्रन्थ-में एक लाख स्ठोकोंके इलियडका उल्लेख है। यह वक्ता ईसवी सनके लगभग ५० वर्ष पहले हिन्दुस्थानमें श्राया था। इस बातका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। यह बात जर्मन पंडित वेबरकी खोजसे माल्म हुई है। इसके श्राधार पर विचार करनेसे महाभारतका समय ईसवी सनके पहले ५० वर्षके इस पार लाया ही नहीं जा सकता। उक्त दोनों प्रमाण अत्यन्त महत्वके हैं, इसलिये हमने उनका उल्लेख श्रारम्भमें ही कर दिया है।

इस प्रकार, अन्तःप्रमाणीं और वाह्य प्रमाणोंका विचार करने पर, यह सिद्ध होता है कि ईसवी सन्के पहले ३०० में सिकन्दरके समय हिन्दुस्थानमें श्रीक लोगोंके आने पर और ईसवी सन्के पहले ५० वर्षके लगभग डायन् कायसो-स्टोम्के हिन्दुस्थान आनेके पहले, विशेषतः इस देशमें राशियोंके प्रचलित होनेके पहले, और पतञ्जलिके समयके पहले अर्थात् ईसवी सन्के १५० वर्ष पहले महाभारत-का काल निश्चित है। सारांश, यही निर्णय होता है कि महाभारतका वर्तमान स्कर्प ईसवी सन्के लगभग २५०-२०० वर्ष पहलेके समयका है।

पश्चिमी विद्वानीका कथन है कि महा-भारतका काल बहुत ही इस पारका है। इस बातको सिद्ध करनेके लिये हाप्किन्स-ने कुछ कारण भी बतलाये हैं। श्रव हम संत्रेपमें उन्हींका विचार करेंगे। उसका कथन है कि महाभारतमें ६४ कलाएँ बतलाई गई हैं: दर्शनोंके मतोंका उल्लेख

है; त्रिमूर्तिका उल्लेख है; यजुर्वेदकी १०१ शाखाएँ वतलाई गई हैं; मीक शब्द और श्रीक लोगोंका उल्लेख है; अठारह पुराल बतलाये गये हैं; व्याकरण, धर्मशास्त्र, प्रन्थ पुस्तक, लिखे हुए वेद ग्रीर महाभारतकी लिखी हुई पोथीका वर्णन है; अतएव इन सब बातोंसे महाभारतका समय बहुत हो श्राधुनिक होना चाहिये। परन्तु सच वात तो यह है कि इन वातोंमेंसे किसी-का भी काल निश्चित नहीं है। ये सब वातें ईसवी सन्के २०० वर्ष पहलेकी भी हो सकती हैं। ऐसी दशामें इन कारणों-का कुछ भी उपयोग नहीं किया जा सकता । हापिकन्सका यह भी कथन है कि "श्रादि पर्वके प्रथम भाग श्रीर हरिवंशको छोड़ वाकी महाभारत ईसवी-सन् २०० के लगभग बना होगा। परन्तु ये भाग इसके भी श्रनन्तरके होंगे, क्योंकि 'दीनार' नामक रोमन सिक्केका उल्लेख हरिवंशमें है और हरिवंशका उल्लेख प्रथम भागमें हैं"। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि रोमन दीनार सिका हिन्दुस्थानमें कब आया ? यदि मान लिया जाय कि वह हिन्दुस्थानमें सन् १००-२०० ईसवी के लगभग आया, तो भी यह मान लेनेसे काम चल सकता है कि हरिवंशमें जिस स्थानमें उक्त उल्लेख है, उतना ही भाग पीछेका होगा। कारणं यह कि समस्त महाभारतमें -शान्तिपर्व श्रौर श्रुजशासन पर्वमें भी-दीनारोंका कहीं उल्लेख नहीं है। प्रत्येक स्थानमें सुवर्ण-निष्कोंका ही उल्लेख किया गया है। श्रर्थात, समस्त महाभारत श्रीर ये भाग २०० के पहलेके हैं। पीछेसे हरिवंशमें एकाध स्रोकका श्रा जाना सम्भव है। हम पहले कह श्राये हैं कि महाभारतका हरिवंश नामक भाग केवल संख्याके लिये और श्रीकृष्ण-कथाकी पूर्तिके लिये पीछेसे जोड़ दिया

गया है; परन्तु हरिवंश प्रन्थ सौतिका नहीं है, क्योंकि सीतिने उसकी जो संख्या वतलाई है वह सिर्फ श्रंदाजसे श्रोर स्थूल मानकी है। हरिवंशमें वारह हज़ार श्लोकोंकी संख्या अन्दाजसे और मोटे हिसाबसे बतलाई गई है। जैसे उद्योग पर्वकी ६६६= श्लोक-संख्या सुदम हिसाव-से बतलाई गई है वैसे और दूसरे पर्वी-के क्योंकोंकी संख्याके समान निश्चित तथा ठीक ठीक स्रोक-संख्या हरिवंशकी नहीं बतलाई गई है। इससे प्रकट है कि हरि-वंशके सम्बन्धमें सौतिने कोई जिम्मेदारी नहां ली थी। इस खिलपर्वमें १५४८५ श्लोक हैं; श्रतएव यह मानना होगा कि सौतिके अनन्तर भी इस पर्वमें शोकोंकी बहुत कुछ भरती हुई है। सारांश, हरि-वंशमें दीनारोंका जो उल्लेख पाया जाता है उसके श्राधार पर महाभारतके कालका निर्णय करना उचित न होगा।

हाष्किन्सने श्रीर भी श्रनेक कारण वतलाये हैं। देखना चाहिये कि उनसे कौनसी बात निश्चित होती है। (१) उसका कथन है कि—"श्रनुशासन पर्वमें भूदानकी प्रशंसाके क्लोकोंमें ताम्रपटका कहीं उल्लेख नहीं है। अग्रहार, परिग्रह श्रादिका उल्लेख तो है परन्तु ताम्रपटका नामतक नहीं है। मनुमें भी यह उल्लेख नहीं है; परन्तु नारद, विष्णु श्रीर याज्ञ-वल्कामें है । इससे महाभारतका काल ताम्रशासनके पहलेका जान पड़ता है।" परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि उक्त विवेचनसे इस बातका ठीक ठीक निश्चय नहीं होता कि महाभारतका काल ताम-शासनके कितने समय पहलेका माना जाय। (२) हाप्किन्सका कथन है कि-"श्राश्वलायन सूत्रमें सुमन्तु-जैमिनी-वैशंपायन-पेल-सूत्र-भाष्य-महाभारत-धर्मा-चार्याः इस प्रकार उल्लेख है। परन्तु

श्रन्य सूत्रोंमें भारत और महाभारतके वदले इतिहास श्रौर पुराण उपयोग किया गया है। सांख्यायन स्त्रमें कुछ भी उल्लेख नहीं है। जब कि महाभारतका उल्लेख प्राचीन सूत्रोंमें न होकर सिर्फ़ आधुनिक सूत्रोंमें ही है, तव यह प्रकट होता है कि सूत्र-कालमें महाभारत नहीं था।" परन्त सच वात तो यह है कि कौनसे सूत्र किस समय बने, इस वातका ठीक ठीक निर्णय ही अवतक नहीं हुआ है। ऐसी अव-स्थामें महाभारतके कालके सम्बन्धमें कुछ भी अनुमान नहीं किया जा सकता। हाँ, यह अनुमान अवश्य निकलता है कि कुछ सूत्र प्राचीन समयके हैं और कुछ उसके वादके। (३) हाप्किन्सका कथन कि-"पतञ्जलिके महाभाष्यमें-'श्रसि द्वितीयाऽनुससार पांडवम्' यह वाक्य है श्रीर श्रन्य खानोंमें भी महाभा-रतका दूरका उल्लेख है। इससे महा-भारत पतञ्जलिके पहलेका सिद्ध होता है श्रौर उसका समय ईसवी सन्की दूसरी सदीतक पहुँच जाता है।" परन्तु यह कैसे श्रीर किसने निर्णय किया कि महाभाष्यका काल दूसरी सदीका है? हम पहले कह आये हैं कि महाभारत पतञ्जलिक पहलेका है और पतञ्जलिका काल ईसवी सन्के पहले १५०-१०० के लगभग है। ऐसी दशामें उक्त प्रमाण हाप्किन्सके विरुद्ध और हमारे मतके श्रमुकूल ही देख पड़ता है। (४) हाप्किन्सके कथनुनासार—"जिस समय महाभारत लिखा गया, उस समय बौद्धों-का प्रभुत्त्व नष्ट हो गया होगा, क्योंकि पडूक अथवा बौद्धोंके देवस्थानोंका निन्दापूर्वक उल्लेख किया गया है। यह वर्णन वनपर्वके उस श्रध्यायमें है जिसमें यह बतलाया गया है कि कलियुगमें कौन कौनसी वातें होंगी।" परन्त स्मरण रहे कि-'पृथ्वी पर एडूक ही एडूक हो जायँगे और देवतात्रोंके मंदिरोंका नाश हो जायगा इस वर्णनसे यह सिद्ध नहीं होता कि बौद्ध-धर्मके हासके समय महाभारतकी रचना हुई है। इसके बदले यही कहना पड़ता है कि जिस समय बौद्ध-धर्मिका बोल-बाला था, उस समयका उक्त वर्णन होना चाहिये। बोद्ध-धर्मिके हासके समय तो मंदिरोंकी वृद्धि होकर एड्डकोंका नाश हो जाना चाहिये। (५) हाप्किन्स कहता है-"इससे भी विशेष महत्वकी बात यह है कि कलियुगके उक्त वर्णनमें यह बतलाया गया है कि शक, यवन, वाह्नीक श्रादि म्लेच्छ राजा हिन्दुस्थानमें राज्य करेंगे। प्रकट है कि यह बात तभी कही जा सकती है जब कि इन लोगोंके राज्य हिन्दस्थानमें स्थापित हो चुके सीथियन (शक), ग्रीक (यवन), वैक्ट्यन (वाह्नीक) लोगोंका राज्य हिन्द्रस्थानमें ईसवी सन्के पहले २०० के श्रनन्तर स्थापित हुआ और वह कई वर्षीतक रहा। अर्थात्, इससे यह स्वा-भाविक अनुमान हो सकता है कि ईसवी सनके पहले २०० वर्षके बहुत समयके बाद महाभारत तैयार हुआ। परन्त यह श्रवमान नहीं किया जा सकता। कमसे कम इस बातकी श्रावश्यकता नहीं कि ऐसा श्रतमान किया ही जाना चाहिये। कलियगके वर्णनमें कुछ वही वातें शामिल नहीं हैं जो पत्यच हुई हों, किन्त जिन भयानक बातीकी कल्पना की जा सकती थी उनका भी उल्लेख भविष्यरूप-से किया जा सकता है। इस दृष्टिसे शक-यवनींके राज्यके पहले भी महाभारत-का काल हो सकता है। इसका विचार करनेके लिये प्राचीन इतिहासकी श्रोर ध्यान देना चाहिये। इस बातका कहीं

उठलेख नहीं है कि पहले कभी हिन्द्रसान पर म्लेच्छ लोगोंकी चढाई हुई थी। सेमीरामीसकी चढाई काल्पनिक है। प्रथम पेतिहासिक चढ़ाई पर्शियन लोगोंकी है, पर वे सिन्धु नदीके इस पार नहीं श्राये । दुसरी चढाई सिकन्दरकी है जिसने पंजाबमें श्रनर्थ करके राज्य स्थापित किया। यह समय ईसवी सनके पहले ३२०-३०० वर्षका है। इसके बाद वैक्टियाके श्रीक लोगोंने ईसवी सनके पहले २०० के लगभग पंजाबमें राज्य स्थापित किया। हमारा कथन यह है कि इस समयके पहले, पचीस-पचास वर्षोंके अन्दर, महाभारतका निर्माण हुआ है। उस समय लोगोंको सिकन्दरकी चढाईका स्मरण द्यावश्य होगा । और इसीके आधार पर लोगोंने यह भविष्य-कथन किया होगा कि कलियगमें स्लेच्छीं-का राज्य होगा। यह बात निश्चित है कि म्लेच्छ लोगोंमें शक, वाह्नीक श्रादि शामिल किये जाते हैं । हिन्दुस्थानके वाहर रहनेवाले म्लेड्छ लोगोंका हाल इस देशके निवासियोंको बहुत प्राचीन समयसे मालुम था। यह नहीं कहा जा सकता कि शक लोगोंका हाल यहाँ उनके राज्यकी स्थापना होने पर ही मालूम हुआ। सारांश, "शक, यवन, वाह्नीक श्रादि म्लेच्छ राजा पृथ्वी पर राज्य करेंगे" इस कल्पनाकी सृध्टि सिकन्दरकी चढ़ाईसे हो सकती है। हिन्दुस्थानमें प्रीक लोगोंका दूसरा राज्य श्रपालोडोटसने ईसवी सन्के पहले १६० में स्थापित किया था। उस समयके पहले-का भी यह भविष्य-कथन हो सकता है। कुछ लोगोंका कथन है कि महाभारतमें वर्णित भगवत्तही यह त्रपालोडोरस है: परन्तु यह भूल है। यह भगदत्त प्राग्डयो तिपका राजा था। (६) हापकिन्सका

है कि—"महाभारतके एकही खानमें रोमकका नाम पाया जाता है। इससे कह सकते हैं कि रोमक अथवा रोमन लोगोंका नाम महाभारतकारका सिर्फ सुनकर मालूम हुआ था। जैसे प्रीक त्रथवा यवन लोगोंका हाल श्रच्छी तरहसे मालूम था, उसी प्रकार रोमन लोगोंका हाल विशेष रीतिसे माल्म न हो, तो भी उन्होंने रोमन लोगोंका नाम सुना था। इस बात पर विचार करनेसे महाभारत-का काल बहुतही श्राधुनिक सिद्ध होता है।" परन्तु यह भी सम्भव है कि सिक-न्दरके साथ आये हुए श्रीक लोगोंसे रोमन लोगींका नाम सुना गया हो, क्योंकि उस समय भी रोमन लोगोंका राज्य श्रौर दव-द्वा वहुत कुछथा। अपालोडोटसके समय वह स्रोर भी वढ़ा चढ़ा था सही, परन्तु सिर्फ नाम सुनकर जानकारी होनेके लिये श्रीक लोगोंकी पहली चढ़ाई काफ़ी है। इसके सिवा एक बात और है। हम नहीं समभतें कि 'रोमक' शब्दसे रोमन लोगोंका ही बोध होता है। सभापर्वके ५१ वें श्रध्यायमें कहा है-"द्यत्त, व्यत्त, ललाटात्त, श्रीष्णीक, श्रन्तर्वास, रोमक, पुरुषादक, पकपाद इत्यादि स्थानोंसे आये हुए राजा लोग द्वार पर हके रहनेके कारण बाहरसे दबे हुए मुक्ते देख पड़े।" इस वाकामें रोमक शब्दके आगे पीछे जो नाम दिये गये हैं, उनसे तो हमें यही मालूम होता है कि 'रोमक' शब्दका अर्थ 'बालवाले' करना चाहिये। इस शब्दका सम्बन्ध रोमन लोगोंके साथ कुछ भी नहीं है। (७) हाप्-किन्सका कथन है कि "महाभारतमें हिन्दुस्थानके साम्राज्यकी जो कल्पना है, वह वैदिक-कालीन न होकर आधुनिक है, अर्थात् बुद्ध-सम्राट् अशोकके साम्राज्यकी कल्पनासे इसकी सृष्टि हुई होगी और हिन्दुश्चानका साम्राज्य प्रकार

पाग्डवोंके मत्थे लाद दिया गया होगा। मनुस्मृतिमें भी साम्राज्यकी कल्पना नहीं है। उसमें वर्णित राजा लोग बहुत ही छोटे छोटे राज्योंके अधिपति हैं। इससे सिद्ध होता है कि अशोकके साम्राज्यके श्रनन्तर महाभारतकी रचना हुई होगी।" हम नहीं समभते कि वैदिक साहित्यमें साम्राज्यकी कल्पना नहीं है।इसमें सन्देह नहीं कि वैदिक कालसे लेकर बौद्ध काल-तक छोटे छोटे राज्य थे: परन्त हमारी समभमें उस समय ऐसा भी राजा हुआ करता था जो सबसे अधिक बलवान रहता था श्रौर जो सब लोगोंसे कर लिया करता था। इस विषयका विशेष विवरण श्रागे चलकर राजकीय परिश्वितिके प्रक-रगमें किया जायगा।यद्यपि हाप्किन्सका उक्त कथन चए भरके लिये मान लिया जाय, तथापि ऐतिहासिक दृष्टिसे यही मानना पड़ेगा कि पर्शियन बादशाहोंके साम्राज्यके नमूने ५र श्रथवा सिकन्द्रके साम्राज्यके नमृने पर उत्तर हिन्दुस्थानके प्रायः बहुतेरेभागोंमें चन्द्रगुप्तका साम्राज्य श्वापित हो गया था। इतना ही नहीं, किन्तु यह भी कहना चाहिये कि चन्द्र-ग्रप्तके पहले ही नन्दोंने हिन्दुस्थानमें मगध-का साम्राज्य स्थापित किया था। यह कथन गलत है कि अशोकके समय साम्राज्यकी कल्पना हिन्दुस्थानके निवा-सियोंमें जायत हुई श्रीर यह कल्पना श्रशोकके पहले यहाँ न थी। सारांश, इस कथनकी सत्यतामें कोई बाधा नहीं हो सकती कि अशोकके पहले अथवा अशोक-के समयके लगभग महाभारतका निर्माण हुन्ना है। ऊपर दिये हुए प्रमाणोंसे हाप्-किन्सके और हमारे मतमें जो अन्तर होता है वह यद्यपि बहुत बड़ा नहीं है तथापि महत्त्रका है। हाप्किन्स द्वारा बतलाये हुए उक्त प्रमाणों से यह देख एड़ता है कि ईसवी सन्के पहले १५० के अन-न्तर महाभारत तैयार हुआ; परन्तु हमारे मतके अनुसार महाभारत ईसवी सन्के पहले २५० के लगभग तैयार हुआ; और हमारे इस सिद्धान्तमें उक्त प्रमाणोंसे कुछ भी बाधा नहीं होती।

परन्त हाप्किन्सने अपने मतका जो निचोड़ दिया है वह सचमुच चमत्कारिक श्रीर श्रसम्भवनीय है। उसने श्रारम्भमें ही कहा है कि भारतकी मूल कथाका समय ईसवी सन्के पहले ७०० से लेकर १७०० तक हो सकता है। परन्तु महा-भारतकी बृद्धिका जो समय उसने बत-लाया है, वह इस प्रकार है-कुरु-भारतीं-की भिन्न भिन्न कथात्रोंके एकत्र होनेसे जो भारत बना, उसका समय ईसवी सन्के पहले ४०० वर्ष है। पाएडवोंकी कथा, प्राणोंकी कथा और श्रीकृष्णके देवत्वकी कथाके एकत्र होनेसे जो महा-भारत वनां, उसका समय ईसवी सन्के पहले ४००-२०० वर्ष है। इससे भी श्रागे चलकर जो वृद्धि हुई है, वह श्रीकृष्णके ईश्वरत्व, नीति श्रौर धर्मकी शिचा देने-वाले बड़े बड़े भागोंको, पुराणोंमें वर्णित नई श्रोर पुरानी कथाश्रोंको, तथा परा-कमोंकी अतिशयोक्तिके वर्णनोंको शामिल कर देनेसे हुई है; श्रोर इस वृद्धिका समय ईसवी सन्के पहले २०० से सन् २०० ईसवीतक है। श्रन्तिम वृद्धि श्रादि पर्वके प्रथम भागको श्रौर हरिवंश पर्वको जोड़ने-से तथा अनुशासन पर्वको शान्तिपर्वसे श्रलग करनेसे हुई है; श्रीर इसका समय सन २०० ईसवीसे ४०० ई० तक है।

यदि इस काल्पनिक वृद्धिकी भिन्न भिन्न सीढ़ियोंको हम छोड़ दें श्रीर केवल भारत

तथा महाभारतका ही विचार करें, तो हाप्किन्सका यह मत देख पड़ता है कि भारतका समय ईसवी सन्के पहले ४०० श्रीर महाभारतका समय सन् २००-४०० ईसवी है। इस मतके लिये मुख्य आधार पूर्वीक गुप्त-शिलालेखका लिया गया है। इसमें सन् ४४५ ईसवीके लेखमें एक लाख श्लोकोंके भारत-ग्रन्थका वर्णन है, इसलिये हाप्किन्स सहित बहुतेरे पश्चिमी परिडत कहते हैं कि सौति-कृत एक लाख स्ठोकों-का भारत सन् ४०० ईसवीतक बना है। परन्त हमें इस वातपर श्राश्चर्य होता है कि हाप्किन्सके ग्रन्थमें, जो अनेक आवि ध्कारों श्रोर नई नई बातोंसे परिपूर्ण है, डायोन कायसोस्टोम् नामक श्रीक वकाके उस लेखका कुछ भी पता नहीं है, जिसकी रचना सन् ५० ईसवीसे सन् ६० ईसवी तक हुई है और जिसमें हिन्दुस्थानके एक लाख श्लोकवाले इलियडका उल्लेख किया गया है। यह घटना कुछ नई नहीं है। कई वर्ष पहले वेबरने इसका पता लगाया था और तभीसे लोगोंका ध्यान इस श्रोर श्राकर्षित हुआ है। डायोन काय-सोस्टोम्को एक लाख श्लोकके ग्रन्थकी वात मलाबार प्रान्तमें मालूम हुई, श्रर्थात् उस समय महाभारत सारे हिन्द्स्थानमें प्रचलित हो गया था। इस घटनासे सिंद है कि महाभारतके समयको ईसवी सन्के इस श्रोर घसीट लाना श्रसम्भव है। हमें यह जाननेकी बड़ी श्रमिलाषा थी कि डायोन कायसोस्टोम्के प्रमाण पर पश्चिमी परिडत कैसा विचार करते हैं; परन्तु हमारी यह श्रमिलाषा कहीं तृप्त नहीं हुई। श्रधिक क्या कहें, हाप्किन्सके बड़े प्रन्थमें तो इस प्रमाणका नाम तक नहीं है !!!

किएए पकरण।

न्या भारतीय युद्ध काल्प-निक है ?

क्क हाभारतके कालका निर्णय हो जाने पर, श्रव हमारे मनमें यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि जिस मूल भारत-ग्रन्थके त्राधार पर महाभारतकी रचना हुई है, वह सूल भारत-यन्थ कब बना होगा। इसमें सन्देह नहीं, कि भारती-युद्धके अनन्तर इस अन्थका निर्माण हुआ है। तब स्वभावतः यह प्रश्न होता है, कि भारती-युद्ध कव हुआ ? इस प्रश्नका विचार करनेके पहले हमें एक श्रोर वात-का विचार करना चाहिये। कुछ लोगीं-का कथन है कि—"भारतीय युद्ध हुआ ही नहीं। यह तो केवल एक काल्पनिक कथा है। इसमें उपन्यासके तौर पर, सद्गुणों श्रीर दुर्गुणोंका उत्कर्ष दिखलाने-वाले, श्रनेक काल्पनिक पात्रोंका वर्णन है।" इस भ्रमोत्पादक कल्पनाको दूर कर देनेकी बहुत आवश्यकता है। यह कल्पना कुछ ऐसे-वैसोंकी नहीं, किन्तु अनेक विद्वानों और परिडतोंकी है। गुजराती परिडत गोवर्धनराम त्रिपाठीका माननीय प्रनथ 'सरस्वतीचन्द्र' हालमें ही प्रकाशित हुआ है। उसमें भारतीय-युद्धके सम्बन्धमें रूपककी कल्पना बहुत ही श्रच्छी तरहसे मकट की गई है। परन्तु स्मरण रहे कि वह कल्पना केवल कल्पना ही है। जर्मन परिडत वेबर और रमेशचन्द्र दत्तने भी पेतिहासिक तत्त्वोंसे इस मतको खीकार किया है और इसकी प्रमाण भी माना है। अतएव विचार करना चाहिये कि इन लोगोंके कथनमें सत्यका अंश कहाँ-

तक है। वेबरका कथन है कि-"वैदिक साहित्यमें भारती-युद्ध अथवा भारती-योद्धात्रोंका कुछ भी उल्लेख नहीं है। बाह्मणोंमें 'त्रर्जुन' इन्द्रका नाम है । त्रर्जुन-का नाती परीचित था श्रीर उसके पुत्र जनमेजयका उल्लेख 'पारी चित-जनमेजय' कहकर शतपथ ब्राह्मणमें किया गया है: परन्तु यह कहीं नहीं वतलाया गया है कि वह अर्जनका पोता था। भार-तीय-युद्ध ब्राह्मण्-कालमें श्रथवा ब्राह्मणोंके पहले होना चाहिये। यदि ऐसा ही हुआ हो, तो यह कितने आश्चर्यकी वात है कि जिस भारतीय युद्धमें हजारों श्रीर लाखों वीर मारे गये और अर्जुन तथा श्रीकृजाने वहुत पराक्रम दिखाया, उस युद्धका कहीं उल्लेख ही न हो ! सचमुच यह श्राश्चर्यकी बात है कि अर्जुनके पोतेका तो उल्लेख है, पर खयं अर्जुनका उल्लेख नहीं है ! इससे यही प्रकट होता है कि भारतीय युद्ध काल्पनिक है श्रीर भारतमें वर्णित व्यक्ति कवि-कल्पना द्वारा निर्मित सदुणोंकी मूर्तियां हैं।" श्रब यहाँ इसी विचार-मालापर विचार किया जाना चाहिये।

किसी व्यक्ति या घटनाके होने अथवा न होनेके सम्बन्धमें साधारण रीतिसे यह प्रमाण काफ़ी समका जाता है कि उसका उल्लेख ऐसे ग्रन्थमें हो जिसे लोग ऐति-हासिक मानते हों। रोम शहरका स्थापन-कर्त्ता रोम्युलस नामका कोई पुरुष हो गया है, इस बातको सिद्ध करनेके लिये रोमका कोई प्राचीन इतिहास काफ़ी हैं। फिर चाहे उस इतिहासमें उस पुरुषकी कथा दन्तकथाके तौर पर ही क्यों न दी गई हो। इसी प्रकार होमरके इलियडसे यह बात सिद्ध मानी जाती है कि एकि-लीज़ नामक कोई ऐतिहासिक व्यक्ति था। इसी न्यायके अनुसार जब भारतमें हो स्पष्ट कहा है कि यह इतिहास-प्रन्थ है, तब पेतिहासिक साली और प्रमाणके आधार पर इस बातको माननेमें कोई हर्ज नहीं कि पाएडव हो गये हैं और भारतीय युद्ध भी हो गया है। हाँ, यदि किसी उचित कारणसे यह प्रमाण छोड़ देने योग्य सिद्ध हो सकता हो, तो उसे श्रवश्य छोड़ देना चाहिये। परन्तु इस बातको सिद्ध करनेके लिये वेबरने उल्ले-साभावका जो कारण बतलाया है, वह काफी नहीं है।

उल्लेखाभावके प्रमाणको पेश करने-की इच्छा स्वांभाविक होती है, क्योंकि यह प्रमाण सचमुच बड़ा मोहक है। जब कि वैदिक साहित्यमें भारती युद्धका उल्लेख ही नहीं है, तब इस बातको मान लेनेकी श्रोर मनकी खाभाविक प्रवृत्ति होती है कि भारती युद्ध हुआ ही नहीं। परन्तु ऐसी दशामें हमेशा इस वातका विचार किया जाना चाहिये कि उल्लेखकी श्राव-श्यकता थी या नहीं। उदाहरणार्थ, किसी ब्रम्थमें नारायण्राव पेशवाका उल्लेख है. पर उस प्रन्थमें पानीपतकी लडाईका उल्लेख नहीं है जो नारायणराव पेशवाके पहले हो गई थी: तो क्या इस उल्लेखा-भावसे कोई यह अनुमान कर सकेगा कि पानीपतकी लड़ाई हुई ही नहीं, अथवा सदाशिवराव भाऊ या जनकोजी सेधिया नामके कोई बीर पुरुष हुए ही नहीं? पानीपतकी लड़ाईके बाद हजारों पुस्तकें लिखी गई है। परन्तु इस बातकी कोई आवश्यकता नहीं कि उन सब ग्रन्थोंमें पानीपतकी लड़ाईका उल्लेख किया ही जाय। हाँ, यदि उक्त ग्रन्थोंमें कोई ग्रन्थ मराडोंके इतिहासके सम्बन्धमें हो, तो यह प्रकट है कि उसमें पानीपतकी लड़ाईका नाम अवश्य श्राना चाहिये। इस विचार-इष्टिसे देखने पर यह नहीं कहा जा

सकता कि वैदिक साहित्यके समय जो श्रनेक घटनाएँ हुईं, उन सबका उल्लेख उस साहित्यमें किया ही जाना चाहिये था : क्योंकि ब्राह्मणादि प्रन्थ इतिहासके प्रन्थ नहीं हैं, बल्कि वे धार्मिक प्रन्थ हैं। उनमें देवताओं की स्तुति और यज्ञादिका वर्णन है। उनमें प्रसङ्गानुसार किसी राजा अथवा व्यक्तिका नाम देख पडता है सही: पर इस बातकी कोई आवश्य-कता नहीं कि यह उल्लेख किया ही जाय। ऐसी दशामें यदि उन प्रन्थोंमें भारती-युद्ध त्रथवा भारती-योद्धात्रोंका नाम नहीं पाया जाता, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। सारांश, यदि भारती-युद्ध त्रथवा योद्धात्रोंका नाम शतपथ ब्राह्मण अथवा अन्य वैदिक साहित्यमें नहीं है, तो इस उल्लेखाभावके आधार पर यह अनुमान करना बड़ी भारी भूल है कि उक्त घटनाएँ हुई ही नहीं।

एक स्थानमें रमेशचन्द्र दत्तने इतना कवूल किया है कि भारती-युद्धका होना तो सम्भव है: परन्तु पागडवोंका होना श्रसम्भव है: क्योंकि पाएडवोंकी कल्पना केवल सद्ग्णोंके उत्कर्षकी कल्पना मात्र है। परन्तु यह कथन भी गलत है। यह नहीं कहा जा सकता कि महाभारतमें पागडवींका जो इतिहास है वह केवल सह गोंके ही वर्णनसे भरा हुआ है। उदा-हरणार्थ, पाँच भाइयोंने मिलकर एक स्त्रीके साथ विवाह किया, यह वर्णन कुछ सद्गण-वर्णन नहीं कहा जा सकता। वैदिक साहित्यके समय श्रायोंमें ऐसा रिवाज न था। वैदिक ऋषियोंने स्पष्ट कहा है कि जिस प्रकार यज्ञ-स्तम्भके चारों श्लोर श्रनेक रशनाएँ बाँधी जा सकती हैं, उसी प्रकार एक पुरुषके लिये अनेक स्त्रियाँ हो सकती हैं; परन्तु जिस प्रकार एक ही रशता अनेक यूपोंसे नहीं बाँधी जा सकती,

उसी प्रकार एक स्त्रीके लिये श्रनेक पति नहीं हो सकते। कहनेका तात्पर्य यह है कि उस समय एक स्त्रीके श्रनेक पतियों-का रिवाज नहीं था। तो फिर इन काल्पनिक पाण्डवोंने ऐसा विवाह कैसे किया? सन्च बात तो यह है कि पाण्डव किसी प्रकार काल्पनिक नहीं हैं। भीमने रण्भूमिमें दुःशासनका लहू पिया था; यह शास्त्र-विरुद्ध भयानक कार्य उसने क्यों किया? सारांश,पाण्डव कुछ सहुणों-के श्रवतार नहीं वनाये गये हैं, वित्क वे साधारण मनुष्योंके समान ही चित्रित हैं। इस प्रकार यह बात सिद्ध है कि भारती-युद्ध श्रीर भारती-योद्धा काल्पनिक नहीं हैं।

यहाँ शङ्का हो सकती है कि यदि ब्राह्मण-त्रन्थोंमें भारती-युद्धके नाम श्रथवा उल्लेखका न पाया जाना प्रमाण न हो तो, कमसे कम श्राध्यर्थकारक अवश्य है। परन्तु यह भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जिस वृहत् स्वरूपमें भारती-कथा इस समय हमें देख पड़ती है, वह खरूप उस समय नहीं था। सौतिने महाभारतको जो वर्त-मान बृहत् स्वरूप दे दिया है, वह उस समय नहीं था। उस समय युधिष्टिरका श्रश्वमेध बहुत प्रसिद्ध न था। युधिष्टिरने एक ही अश्वमेध किया था, पर उसके पहले कितने ही राजाश्रीने श्रनेक अध्व-मेध किये थे । उस समय श्रीकृष्णकी भक्तिका भी बहुत कम प्रचार हुआ था। जो भागवत-पन्थ श्रीकृष्णकी भक्तिके श्राधार पर खापित है, उसका उस समय उदय भी न हुआ था; यदि उदय हुआ भी हो तो उसका प्रचार बहुत कम था। परीक्तिको पुत्र जनमेजय श्रोर उनके तीन भाइयोंने भिन्न भिन्न प्रकारके चार अध्व-मेध किये थे, इसी लिये उनका नाम उस अश्वमेध वर्णनके प्रसङ्में शतपथ ब्राह्मण्में

पाया जाता है। जब हम इन सब बातोंका विचार करते हैं श्रीर इस बात पर भी ध्यान देते हैं कि भारतका खरूप अत्यन्त श्रल्प था तथा श्रीकृष्ण-भक्तिका प्रायः उदय ही हुआ था, तब हमें आश्चर्य करने-की कोई आवश्यकता नहीं कि ब्राह्मण-प्रन्थोंमें भारती-युद्ध श्रथवा युधिष्टिर श्रादिका कुछ भी उल्लेख नहीं है । यहाँ यह बतला देना चाहिये कि ऐतरेय ब्राह्मण-में वैचित्रवीर्य धृतराष्ट्रका उल्लेख है। सारांश, भारती-युद्धका उल्लेख ब्राह्मणोंमें नहीं है, इससे कुछ भारती-युद्ध काल्प-निक सिद्ध नहीं होता और न भारती योद्धागण ही काल्पनिक हो सकते हैं। रमेशचन्द्रदत्त युद्धका होना तो मानते हैं, पर वे कहते हैं कि पागडव काल्प्निक सद्गुणोंकी मूर्ति हैं। स्मरण रहे कि दोनोंके सम्बन्धमें उल्लेखाभावके प्रमाणका समान उपयोग किया गया है। अतएव यह समभमें नहीं श्राता कि एक बात सच क्यों मानी जाय श्रीर दूसरी भूठ क्यों कही जाय।

कुछ लोग युद्धको सत्य मानकर यह कहते हैं कि भारती युद्धके जिस तरहसे होनेका वर्णन महाभारतमें किया गया है उस तरहसे वह युद्ध नहीं हुआ, किन्तु भिन्न प्रकारसे हुआ है। उस मतका भी उल्लेख यहाँ कर देना आवश्यक है। वेबरका मत है कि उस युद्धमें जनमेजय प्रधान था और उसका नाश उसी युद्धमें हुआ। उसकी यह कल्पना बृहदारण्यमें पाये जानेवाले इस उल्लेखके आधार पर हैं कि उसमें किसी ऋषिने याज्ञवल्क्यसे पृद्धा है- ''क पारिन्ताः' अभवन्। क पारिन्तिताः अभवन्। इस प्रकान का हुआ ? इस प्रकान का प्रवान का हुआ ? इस प्रकान का प्रवान के किये हैं— ''इससे कहना पडता है कि

उस समय पारिचितोंका नाश हो गया होगा। परन्तु उनके पेश्वर्य और जीवन-चरित्रकी बातें लोगोंके सारणमें ताजी श्रवश्य रही होंगी। इसमें सन्देह नहीं कि वंश सहित उनका नाश किसी विल-चरण रीतिसे हुआ है।" परन्तु उक्त प्रश्न-के आधार पर यह अनुमान नहीं किया जा सकता कि पारिचितोंका अन्त किसी भयानक रीतिसे हुआ है। वृहदारएय-में जब यह प्रश्न किया गया कि पारिचित कहाँ हैं, तब यह उत्तर भी दिया गया है "ते यत्रारवमेधायाजिनो घान्ति।"इस उत्तरसे उक्त प्रश्नका सचा तात्पर्य श्रोर रहस्य समक्षमं श्रा जाता है। पारिचित अर्थात जनमेजय और उसके तीन भाईयोंने हालमें ही जो अध्व-मेध किये थे वे लोगोंकी आँखोंके सामने थे। अतएव उक्त प्रश्नमें इस रहस्यको जाननेकी इच्छा प्रकट हुई है कि , अश्व-मेध करनेवालेकी कैसी गति होती है-क्या वह ब्रह्मज्ञानीकी ही गति पा सकता है ? श्रीर इस रहस्यकी श्रीर ध्यान देकर ही याज्ञवल्यने उत्तर दिया है कि श्रश्वमेघ करनेवाला वही गति पाता है जो श्रध्यात्म विद्यासे प्राप्त होती है। यहाँ न तो पारिचितोंकी ब्रह्महत्याका ही उल्लेख है और न वह प्रश्न-कर्ताके ही मनमें है। शतपथ ब्राह्मणके किसी दूसरे वचनमें जनमेजय पारिचित द्वारा-की हुई जिस ब्रह्महत्याका उल्लेख है, उसके सम्बन्धमें यह नहीं बतलाया गया कि वह ब्रह्महत्या कैसे हुई। ब्रह्महत्याका सम्बन्ध भारती-युद्धके साथ कुछ भी नहीं है, क्योंकि उस युद्धमें ब्रह्महत्या हुई ही नहीं। द्रोणाचार्य ब्राह्मण्थे,पर वे चत्रिय-का व्यवसाय स्वीकार कर रएभूमिमें खड़े हुए थे, इसलिये सिद्ध है कि ऐसे ब्राह्मण-को युद्धमें मारना ब्रह्महत्या नहीं है। महा-

मारतमं भी यह कहीं नहीं कहा गया है कि द्रोणाचार्यको मारनेसे ब्रह्महत्या हुई। ऐसा न हो तो भो, जब हम देखते हैं कि ब्रह्महत्याका विस्तारपूर्वक वर्णन शतपथ ब्राह्मणमं नहीं है, तब उस ब्रह्महत्याका सम्बन्ध भारती-युद्धके साथ नहीं लगाया जा सकता। सारांश, वेबरका यह कथन बिलकुल गलत है कि भारती-युद्धमें जन-मेजय प्रधान था और उस युद्धमें उसका नाश हुआ।

भारती-युद्धके सम्बन्धमें और भी लोगोंकी अनेक कल्पनाएँ हैं। एक जर्भन परिडत कहता है कि मूल भारत-संहिता छोटी सी कथा थीं; वह कथा बौद्ध-धर्मीय थी और उसका नायक कर्ण था; आगे जब ब्राह्मण धर्मकी प्रबलता हुई तब ब्राह्मण लोगोंने कृष्ण प्रभात्माके भक्त श्रर्जुन श्रीर उसके भाइयोंको प्रधानता दीः श्रौर इस प्रकार श्रीकृष्ण श्रथवा विष्णुकी महिमा बढाई गई। टालवाइस ह्वीलरका कथन है कि पाएडवोंके यद्धके समय श्रीकृप्ण नहीं थे: उनका नाम पीछे-से कथामें शामिल कर दिया गया है। शन्य कुछ लोग कहते हैं कि इस युद्धमें पाराडवोंकी विजय न होकर दुर्योधनकी हुई। सारण रहे कि ये सब कल्पनाएँ युद्धके न होनेके विषयमें नहीं हैं, तथापि इनका खएडन किया जाना चाहिये।

श्रीकृष्ण श्रौर पाग्डवींका पारस्परिक सम्बन्ध किसी प्रकार श्रलग नहीं किया जा सकता। यह नहीं माना जा सकता कि उनका सम्बन्ध मूल भारतमें न होकर महाभारतमें पीछेसे शामिल कर दिया गया है। इतना ही नहीं, किन्तु यह मत पेतिहासिक दृष्टिसे भी गलत है। श्रीकृष्ण श्रौर पाग्डवोंका परस्पर सम्बन्ध मेगास्थिन नीजके श्रन्थसे भी स्पष्ट देख पड़ता है। मेगास्थिनीजने हिन्दुस्थानके प्रसिद्ध देवताका वर्णन हिरॅक्कीज़के नामसे किया है। वहीं श्रीकृष्ण है। यह बात उसके इस वर्णनसे प्रकट हो जायगी—"हिरॅझीज़की पूजा शौरसेनी लोग करते हैं और इन लोगोंका मिथोरा नामका मुख्य शहर है।" श्रर्थात् 'हिरॅक्कीज़' श्रीर 'हरि' को एकज करके उसने श्रीकृष्णका उक्त वर्णन किया है। उसने यह भी कहा है कि हिरॅक्कीज़के पागिडया नामकी एक कन्या थी; परन्त यह वर्णन भ्रमसे किया गया है। कुछ भी हो, इससे यह प्रकट होता है कि श्रीकृष्ण श्रीर पाएडवोंके परस्पर सम्बन्ध-की कथा मेगास्थिनीजके समयमें भी प्रसिद्ध थी। इससे भी पहलेका प्रमाण पाणिनिके एक सूत्रमें पाया जाता है जो इस प्रकार है—"वासुद्वार्जुनाभ्याम् कन्। " इस स्त्रसे यह वात प्रकट होती है कि उस समय लोग वासुदेव श्रीर श्रर्जुनकी भक्ति किया करते थे। सारांश, श्रीरुष्ण श्रीर भारती-कथाका सम्बन्ध बहुत प्राचीन है, वह कुछ महाभारतकी रचनाके समय पीछेसे शामिल नहीं किया गया है।

श्रीकृष्ण श्राधुनिक व्यक्ति न होकर वहुत प्राचीन हैं। उनका उल्लेख छान्दोग्य उपनिषद्में इस प्रकार पाया जाता है— 'कृष्णाय देवकीपुत्राय ।'' जिस प्रकार जनमेजय पारिकितकी चर्चा वृह-दारएयमें है, उसी प्रकार समकालीन छान्दोग्यमें श्रीकृष्णका भी उल्लेख हैं। श्रथात, यह प्रकट है कि ये दोनों व्यक्ति श्राह्मण-कालीन हैं। सारांश, भारती-युद्ध-के साथ श्रीकृष्णका सम्बन्ध काल-दृष्टिसे भी श्रसम्भव नहीं हैं। जूतन पद्धतिसे विचार करनेवाले विवेचकोंकी यह मानने की श्रोर साधारण प्रवृत्ति हुआ करती है, कि पाचीन कथाएँ जैसी बतलाई गई हैं

यैसी वे नहीं हैं। परन्तु यथार्थमें यह
मानना ही सदैव उचित है कि जैसी कथा
सुनी गई वैसी ही वह हुई होगी। यदि
आवश्यकता हो तो उस कथाका वह
चमत्कारिक भाग छोड़ दिया जाय, जो
आधुनिक दिश्से बुद्धिवादकी कसौटी
पर सत्य प्रतीत न हो; परन्तु उस कथाके
सक्रपको ही उलटा-पलटा कर डालना
किसी प्रकार युक्ति-सङ्गत नहीं हो सकता।
इस दिश्से स्वीकार करना होगा कि
भारती-कथाके जो कपान्तर उपर बतलायें
गये हैं वे निस्सन्देह मानने योग्य नहीं हैं।

यूरोपियन परिडतोंकी राय हमेशा ऐसी ही देख पड़ती है। इस बातका एक श्रीर उदाहरण लीजिये। उनकी राय है कि महाभारतमें पहले पाएडवाँकी कथा ही नहीं थी। श्रारम्भमें कुर श्रीर भारत-की कथा थी। परनत बौद्ध धर्मके गिर जाने पर भारतोंके स्थानपर पाएडवांको रखकर ब्राह्मणींने श्रपने धर्मकी दढताके लिये उसमें श्रीकृष्णकी भक्ति शामिल कर दी और महाभारत बना दिया। उनका कथन है कि-"मृल भारत लोग पञ्जाबके ही निवासी थे: परन्त जब भारतीके स्थानमें पाएडच रखे गये, तब इन्द्रप्रस्थ उनकी नई राजधानी बनवाई गई।" इस मतका समर्थन करनेके लिये वे कहते हैं कि पागडवींका उल्लेख वैदिक साहित्यमें बिलकुल नहीं है। यह उल्लेख पहले-पहल बौद्ध जातकींमें देख पड़ता है। बौद्ध जातकके समय पाएडवांकी कथा श्रवश्य प्रचलित होगी। इसके बाद ही मुल भारतमें परिवर्तन करके पाएडवोंकी कथा शामिल की गई। इस बातका पता (उन परिडतोंके मतानुसार) एक प्राचीन श्लोकसे चलता है जो भूलसे महाभारतमें रह गया है। वन पर्वके ४३ वें अध्यायमें ध तका फिरसे वर्णन करते समय युधि- ष्टिरने यह श्लोक दुर्योधनके वचन या आधार पर कहा है:—

व्रयोमि सत्यं कुरुसंसदीह तवैव ता भारत पंचनदाः।

श्रर्थात् दुर्योधनने युधिष्ठिरसे कहा कि तुम्हारे बनवास और अज्ञातवासको पूरा कर खुकने पर-"इस कौरव सभामें में सत्य कहता हूँ कि, हे भारत, यह पश्च-नद-देश तुम्हारा ही होगा।" यहाँ यूरोपियन पिएडतोंका यह प्रश्न है--जब कि पाएडवॉं-का राज्य इन्द्रप्रथमें था, जो पञ्जावके बाहर यमुनाके तीर पर था, श्रौर जब कि उन्होंने यही राज्य चतमें खो दिया था, तब उनके वनवास और ग्रज्ञातवासकी प्रतिज्ञाको पूरा कर चुकनेपर उन्हें पञ्जाब-का राज्य लौटा देनेकी यह बात कैसे कही गई ? इन्द्रप्रस्थके राज्यके लौटा देने-को बातको छोड़कर यहाँ पञ्चनद देशकी बात क्यों कही गई ? यहाँ पश्चनद देशका च्या सम्बन्ध है ? इससे उन परिडतों-का यह अनुमान है कि-"आरम्भमें पञ्चनद देशके राजा भारत-लोगों श्रीर कर देशके राजाशोंमें युत होकर लड़ाई हुई होगी और पाएडव बादमें शामिल कर दिये गये होंगे" (हाप्किन्स पृष्ठ ३७४)। उनका यह भी प्रश्न है कि इस ग्रन्थको महाभारत नाम कैसे दिया गया ?. जान पड़ता है कि मूल युद्धमें भारत लोग ही थे, इसलिये इस प्रनथको भारत श्रीर महाभारत नाम दिये गये होंगे।

स्वीकार करना चाहिये कि यहाँ पश्चनद देशका जो उल्लेख है वह सौतिके
कूट श्लोकोंमेंसे एक उलभनकी बात है।
परन्तु इस एक ही श्लोकके आधार
पर समस्त भारतकी कथाको उलट
पलट देना उचित नहीं होगा। श्रौर
इस बातका स्पष्टीकरण भी हो सकता
है कि दुर्योधनके कथनमें पश्चनद देशका

नाम कैसे आया । प्राचीन समयमें हिन्द्रशानका कोई स्वतन्त्र नाम नहीं था। बाहरके लोगोंने उसे हालमें हिन्द-स्थान नाम दिया है। पुरागोंमें कहा है कि प्राचीन समयमें हिन्दुस्थानको भरत-खरड कहा करते थे, परन्तु महाभारतमें वह नाम नहीं है। यह वर्णन पाया जाता है कि पाएडवोंने सब देश जीत लिये थे। यद्यपि यह घटना पीछेकी मानी जाय. तथापि इसमें सन्देह नहीं कि पाएडवीने पञ्जाब देश भी जीत लिया था। भारती-कथाकी प्राचीनताको मान लेने पर कह सकते हैं कि उस समय पञ्जाव देश ही हिन्दुस्थानका अुख्य भाग था। पाएडव उस समय लार्वमीन राजा थे। ऐसी दशामें यदि उनकी प्रतिज्ञा सिद्ध न होती तो उनका सब साम्राज्य कौरवींको मिल जाता, श्रर्थात् सारा हिन्द्रस्थान कौरवीं-की अधीनतामें चला जाता। इसी दृष्टिसे यहाँ पञ्चनद देशका उल्लेख किया गया है: अर्थात् मुख्य भागके निर्देशसे यहाँ समस्त साम्राज्यका निर्देश किया गया है। इन्द्रप्रस्य राजधानी भी उसीमें शामिल हो गई। वर्तमान समयमें भी दिल्ली-राज-धानी पञ्जावमें ही शामिल है। पञ्जाबमें भिन्न भिन्न राज। थे, पर वे सब पाएडवाँ-के अद्भित थे। तात्पर्य यह है कि पञ्चनद देशसे यहाँ भरतखरडके साम्राज्यका बोध होता है। अथवा इस कृट श्लोकका अर्थ भिन्न रीतिसे भी किया जा सकता है। 'पश्चनद्यः' शब्दसे पञ्जावकी पाँच नदियाँ न समभकर हिन्दुस्थानकी मुख्य पाँच नदियाँ समभी जायँ। सिन्धु, सरस्ती, यमुना, गङ्गा श्रोर सरयू, इन पाँचों नदियों-को मिलाकर उस समयका हमारा भारत देश बना था। ऋस्तः यदि यह मान लिया जाय कि पहले भरत और कुरुके ही बीच भागड़ा थां, तो भी यह समभव नहीं कि

समस्त पश्चनद देश एक ही राजाके अधीन हो। प्राचीन समयमें हिन्दुस्थानमें बड़े बड़े राज्य नहीं थे। कुरु लोगों के हिस्तनापुरके राज्यके समान ही भरत लोगों का एक छोटासा राज्य पञ्जाबमें होगा, श्रतएव इस करुपनामें भी पञ्जाबके साम्राज्यका ही उल्लेख स्वीकृत करना पड़ता है। सारांश यह है कि पश्चनद शब्दके श्राधारपर यूरोपियन परिडतोंने जो शङ्काएँ की हैं श्रीर उस शब्दकी सहायतासे जो करुपनाएँ की हैं, वे युक्ति श्रीर प्रमाणकी दृष्टिसे स्थिर नहीं रह सकतीं।

इससे भी भिन्न उत्तर यह है कि भारतको महाभारतका सक्रप देते समय पाग्डवोंकी कल्पित अथवा प्रचलित कथा-को पीछेले शामिल कर देनेका कोई प्रयोजन नहीं देख पडता। जिस समय महाभारतकी रचना की गई उस समय. श्रर्थात ईसवी सन्के पहले ३०० के अन-न्तर (महाभारतकी यही काल-मर्यादा पश्चिमी श्रीर पूर्वी सब विद्वानीको मान्य है), पाएडवोंका कोई राज्य प्रसिद्ध नहीं था। उस समयके इतिहाससे किसी पाएडव-राज्यका ऋस्तित्व या प्रधानता नहीं देख पडती। ऐसी दशामें, जिस महाभारत-ग्रन्थकी रचना सनातन हिन्द धर्मकी रचाके लिये की गई है उसमें, किसी रीतिसे समाजके नेता न माने गये श्रीर श्रत्यन्त श्रप्रसिद्ध पाएडवोंको शामिल कर देनेकी बुद्धि किसी राष्ट्रीय कविको नहीं होगी। इसके सिवा यह भी है कि यदि प्राचीन भारत श्रीर कुरु लोगोंकी कथा होती, तो जो कथा सर्व-साधारणमें आदरणीय होकर राष्ट्रीय हो चुकी थी, उसीको कायम रखनेमें कौनसी श्रापत्ति थी ?हर एक मनुष्य स्वीकार करेगा कि उसी कथाका कायम रेखा जाना इष्ट था।इस प्रकार पाएडवोंकी कथाका पीछेसे शामिल कियां जाना सम्भव नहीं है। इसके सिवा यह भी प्रकट है कि एक स्त्रीके साथ पाँच पुरुषोंके विवाहके पत्तमें जो अनेक कारण महाभारतमें वतलाये गये हैं, वे किसी तरहसे इस वातका समर्थन करनेके लिये दिये गये हैं और यह प्रयत्न पीछेसे किया गया है। अतएव यही कहना चाहिये कि पाण्डवोंकी कथा मूल भारतकी है और उनके चमत्कारिक विवाहका समर्थन पीछेसे किया गया है। इस प्रकार विचार करनेपर यह कल्पना ठीक नहीं जँचती कि पाण्डवोंकी कथा पीछेसे शामिल की गई है।

यह कथन भी एक प्रकारसे बे-सिर-पैरका जान पड़ता है कि मूल युद्ध भारत और कुरु लोगोंमें हुआ था। इसका कारण यह है कि किसी वैदिक साहित्य-प्रन्थमें अथवा अन्य प्रन्थोंमें यह नहीं देख पड़ता कि भारत और कुर, ये दो नाम भिन्न भिन्न लोगोंके हैं। भरतके वंशजोंकी भारत कहते हैं और इस दृष्टिसे भारत शब्दका उपयोग कौरवोंके लिये भी किया जाता है। यह शब्द भरतके सभी वंशजोंके लिये उपयुक्त है: यहाँतक कि ब्राह्मणकालमें भारत शब्दका उपयाग समस्त आर्य वीरोंके लिये किया हुआ देख पड़ता है। उस समय यह नहीं देख पड़ता कि भरतके वंशज किसी भिन्न नामसे प्रर्थात् भारतके नामसें प्रसिद्ध थे। 'महाभारत' ऋथवा 'भारत' नाम युद्धका क्यों रखा गया, इसका एक कारण यह बतलाया जा सकता है कि कौरव श्रौर पांडव दोनों भारत-वंशके थे; इसलिये दोनोंको लद्य कर भारत नाम रखा गया है। यहाँ प्रधान सहायक तक कि पांडवके 'पांचाल' भी भारत-वंशके थे। कुरु-यांचालोंकी महत्ता ब्राह्मण-भागोंमें बार बार पाई जाती है। कुछ लोगोंका श्रतमान है कि कुरु-पांचालोंका युद्ध होकर अन्तमें दोनोंका एक राज्य हो गया। यह श्रनमान भी ठीक हो सकता है। परन्तु किसी वैदिक साहित्य-प्रन्थमें श्रार्य लोगोंके सम्बन्धमें कर-भारतकी जोडीका उल्लेख नहीं पाया जाता । महाभारतके किसी प्राचीन या नये भागमें कर-भारतोंका उल्लेख नहीं है। अर्थात् मूल प्रन्थमें कुर-भारतींके युद्धके होनेकी यह कल्पना निराधार है। दोनोंके युद्धका वर्णन करनेवाले प्रनथका नाम, दोनोंके नामकी दृष्टिसे, चरितार्थ होना चाहिये । (जैसे फांको-जर्मन वार वगैरह नाम हैं।) भारत शब्दमें युद्ध करनेवाले दोनों पत्तांका समावेश हो जाता है: श्रर्थात् कुरु-पांडव श्रथवा कुरु-पांचाल दोनोंका समावेश हो जाता है। श्रतएव भारत वा भहाभारत नाम ही इस प्रनथके लिये उचित जान पडता है।

यह बात उक्त कल्पना करनेवाले भी नहीं बतला सकते कि पांडवोंकी जो कथा

सारको है जिसे इति निवास सामा है। यह हासू बारको साती गढ़ा है है जिसेना कुस

THE ROLPHIC OF STREET

built has true and to never

कर है। किसर की गड़ा करते की है। किसर की किसर की की की कार की

बेकाम होतार होतार हारी तेर है एक

and chief of the greet star.

IN THIS OF PERSONS AND PARTY.

the factor of the size of the

THE TOTAL PROPERTY.

finite of mirries of plane

one dienerals representation

पीछेसे शामिल की गई वह क्यों और कैसे की गई। पांडवोंमेंसे युधिष्ठिरका नाम पाणिनिमें पाया जाता है। इससे मानना पड़ता है कि पाणिनिके समय पांड भारत थे। पाणिनिका समय ईसवी सन्के पहले =००के लगभग है। यह प्रकट है कि इस समयसे लेकर ईसवी सन्के पहले ३०० तक यह कथा नई उत्पन्न नहीं हुई। ऐसी दशामें उक्त कल्पना करनेवाले भी इस चकरमें पड़े हुए देख पडते हैं, कि उस समयके बाद यह कल्पना कैसे शामिल कर दी गई होगी। जब हम इस बात पर ध्यान देते हैं कि यह कल्पना ही निर्मूल तथा निराधार है, तब उसके चक्ररमें पड़े रहनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। इस प्रकार निश्चय हो गया कि पांडव काल्प-निक नहीं हैं, उनकी कथा पीछेसे शामिल नहीं की गई है और भारती युद्ध भी काल्पनिक नहीं है। श्रब इस प्रश्नपर विचार किया जाना चाहिये कि भारती-युद्ध कब हुआ।

ENDING THE THEFTHE ADDITION TO THE

and they had they will find

Ares O.So, pe sent deres softw

has a not found with four

APPROPRIES STATE OF STATE OF

नेत्र प्राप्ती क्षेत्र । क्षेत्र क्षेत्र क्षेत्र व्य

के हैं कि होते हैं। है जिस्सी है कि

from to the able to believe

HER HARDING WALLS IN SECTION

DE TOTAL TOTAL PROPERTY OF

W. Draws lain. masters 18

चौथा मकरण।

on Calledon

भारतीय युद्धका समय

प्रतीय युद्ध हिन्दुस्थानके प्राचीन इतिहासका निश्चित उद्गम-स्थान है। चाहे युद्ध किसी दो पत्तीमें हुआ हो, परन्तु प्रायः सभी पाश्चात्य विद्वान यह मानते हैं कि भारतीय युद्ध हुआ श्रवश्य है। राम श्रीर रावणका युद्ध श्रने-तिहासिक होगा; परन्तु भारतीय युद्धका होता निर्विवाद है। केवल इस विषय पर भिन्न भिन्न मत् प्रचलित हैं कि यह युद्ध किस समय हुआ। यह प्रश्न महत्वपूर्ण हैं पर इसका पका निर्णय अवतक नहीं हुआ है। हम यहाँ पर उन भिन्न भिन्न मतोंका दिग्दर्शन करेंगे जो इस विषयमें प्रचलित हैं श्रोर यह भी बतलावेंगे कि हमारी दृष्टिसे उनमेंसे कीनुसा मत श्राह्य है।

समयके कमानुसार ये मत किसके, कौनसे और किस तरहके हैं, इसका संचिप्त वर्णन यह है:—(१) परलोकवासी मोड़कका मत है कि यह युद्ध ईसवी सन्-के लगभग ५००० वर्ष पूर्व हुआ। उनका कथन है कि-"भारतीय-युद्धकालीन यहोंकी स्थिति महाभारतमें भिन्न भिन्न दो नत्त्रों पर बतलाई गई है। एक ही समय-में एक ग्रह दो नचत्रों पर नहीं रह सकता, इसिलिये एक नज्ञको सायन और दूसरे-को निरयण मानना चाहिये। इससे माल्म होता है कि उस समय वसन्त-सम्पात पुनर्वसु-नत्त्रत्रमें था। इस हिसाब-से गणित करके देखने पर भारतीय-युद्ध-का समय ईसवी सन्के पूर्व करीब ५००० वर्ष त्राता है।" (२) महाभारतसे यह साफ माल्म होता है कि भारतीय युद्ध

किलयुगके आरम्भमें हुआ। जब भीमने दुर्योधनको लातसे मारा था, तव उत्तका कारण वतलाते हुए (शल्यपर्वमें) श्रीकृष्णने कहा था कि-"प्राप्तं कलियुगं विद्धि" अर्थात्—"यह समभ लो कि कलियुग-का आरम्भ हो गया।" इससे यह बत-लाया जाना सिद्ध होता है, कि युद्धके समाप्त होने पर शीव्र ही यानी चैत्रमें किलयुगका आरम्भ हुआ। अर्थात् यह निश्चित है कि कलियुगके ग्रारम्भ कालमें युद्ध हुआ था। समस्त आर्य ज्योतिषियों-के मतानुसार कलियुग ईसवी सन्के पहले ३१०१ वर्षमें लगा। इससे भारतीय युद्धका समय ईसवी सन्के पहले ३१०१ वर्ष निश्चित हो जाता है। यही मत हमको याहा माल्म होता है। (३) त्रार्य-समाजके कुछ विद्वान, प्राचीन ज्योतिषी वराह-मिहिर, श्रीर काश्मीरके कुछ परिडत, विशेषतः राजतरङ्गिणी नामक इतिहासके कर्त्ता कल्हण यह मानते हैं कि कलियुगके शुरू हो जाने पर ६५३ वर्षोंके अनन्तर, अर्थात् ईसवी सन्के पूर्व २४४= वें वर्षमें, त्रथवा शक-सम्वत्के पहले २५२६ वें वर्ष-में भारतीय युद्ध हुआ। (४) रमेशचन्द्रद्त श्रादि प्राच्य विद्वान् श्रोर कुछ पाश्चात्य परिडत कहते हैं कि भारतीय युद्ध ईसवी सन्के लगभग १४०० वर्ष पूर्व हुआ। पुराणोंमें पाएडवोंके समकालीन वृहद्य-वंशीय मगध राजासे लेकर नन्द पर्यन्त-का समय दिया हुआ है। उक्त विद्वानोंका कथन है कि उसके आधार पर यह समय निश्चित होता है। (५) मदासी विद्वान् विलग्डी अय्यरने, अन्य प्रमाणोंसे, सन् ईसवी पूर्व ११६४वें वर्षके १४ अक्टूबरको युद्धका बिलकुल निश्चयात्मक समय माना है। इस तरहसे भारतीय युद्धके भिन्न भिन्न समय माने गये हैं श्रीर हमें यहाँ उनके सम्बन्धमें विस्तारपूर्वक विवेचन

करना है। पहले हम समस्त ज्योतिषियों के मतसे तथा साधारणतः समस्त श्रास्तिक हिन्दुओं के मतसे निश्चित माने हुए भारतीय युद्धके समयका श्रीर उस पर किये जानेवाले श्राद्येणोंका विचार करेंगे।

भारतीय युद्ध और कालियुगका आरम्भ।

हम बतला चुके हैं कि यह कल्पना महाभारतमें ही दी हुई है कि कलियुगका श्रारम्भ भारतीय युद्धसे हुआ। "प्राप्तं कलियुगं विद्धि" इस वचनके सिवा, महा-भारतमें, श्रीर भी दो तीन वचन हैं। वनपर्वमें भीममारुति-सम्बादमें कहा गया है कि—

पतत्कलियुगं नाम श्रचिराद्यत् प्रवर्तते । "शीघ्र ही जिसका प्रारम्भ होगा वह कलियुग है।"

श्रादिपर्वके श्रारम्भमें ही कहा गया है कि भारतीय युद्ध कलियुग श्रीर द्वापरकी सन्धिमें हुआ।

श्रन्तरे चैव सम्प्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत् । स्यमन्तपञ्चके युद्धं कुरुपागड्डवसेनयोः॥

तात्पर्य यह है कि कलियुगारम्भमें भारतीय-युद्धके होनेकी कल्पना महा-भारतकार सौतिके समयमें, अर्थात् ईसवी सन्के लगभग ३०० वर्ष पहले, पूरी पूरी प्रचलित थी; यानी यह कल्पना लगभग २२०० वर्षसे आजतक यहाँ प्रचलित है। माल्म होता है कि इस विचारकी उत्पत्ति इन कारणोंसे हुई होगी, कि भारतीय-युद्धमें नीतिधमरहित अनेक भयक्कर काम द्वाप्ति और साम्पत्तिक सुश्चितिमें दिनों-दिन चीणता आने लगी और श्रीकृष्ण परमात्माके पृथ्वीको छोड़कर चले जानेके समयसे हिन्दुस्थानकी दुर्दशा तथा अवनित होने लगी। सारांश यह है कि

श्रत्यन्त प्राचीन कालसे, लोकमतके अनु-सार, भारतीय युद्धके समयमें, कलियुगके श्रारम्भमें श्रीर श्रीकृत्णके समयमें इढ़ सम्बन्ध श्रीर एकता पाई जाती है। श्रर्थात्, कलियुगका श्रारम्भ-काल श्रीर श्रीकृष्णका समय बतला देना ही भार-तीय युद्धका समय बतलाना होगा। श्रामे दिये हुए विवेचनसे यह माल्म हो सकेगा कि इन तीनों बातोंका समय भिन्न भिन्न रीतिसे एक ही ठिकाने कैसे श्राता है।

श्रीकृष्णका समय।

श्रीकृष्णका समय निश्चित करनेके लिये हमें वाहा प्रमाणका एक महत्वपूर्ण साधन मिलता है। हिन्दुस्थानमें आये हुए मेगास्थिनीजने श्रीकृष्णके सम्बन्धमें श्रत्यन्त महत्वकी वातें लिख रखी हैं। यह राजदूत हिन्दुस्थानमें चन्द्रगुप्तके दरबारमें सेल्युकस नामक ग्रीक राजाकी श्रोरसे रहता था। उसने यह लिख रखा है कि-"संड्रकोटस् श्रोर डायानिसॉसके बीचमें १५३ पोढ़ियाँ श्रौर ६०४२ वर्ष हुए। हिरा-क्लीज़, डायानिसॉससे, १५ पीढ़ियोंके वाद हुआ।" उसे हिन्दुस्थानमें चन्द्रगुप्त-के समयमें जो बातें माल्म हुई उन्हींके श्राधार पर उसने यह बात लिखी है। श्रीक लोगोंने भविष्यके इतिहासकारों पर यह बडा उपकार किया है, कि वे जिस जिस स्थानमें गये वहाँ वहाँ उस समय-की प्रचलित ऐतिहासिक बातोंको एकत्र करके उन्होंने लिख रखा है। उन्होंने इसी तरहसे इजिप्ट देशमें भी ऐतिहासिक सामग्री हुँ इकर राजाश्रोकी पीढ़ियोका हाल लिख छोड़ा है। उन्होंने वैविलोनकी पीढ़ियोंका भी हाल लिख रखा है। पहले कुछ दिनोंतक ये वातें स्थल श्रीर श्रविश्वस नीय समभी जाती थीं; परन्तु मेसोपोटे मियाँमें शाजकल जो इधिका-लेख, श्रधीत सुखाई हुई ईंटों पर लिखे हुए लेख, मिल रहे हैं उनसे संसारको ये वातें सत्य मालूम होने लगी हैं। हमारे कहनेका तात्पर्य यही है, कि मेगास्थिनीज़के द्वारा सावधानीके साथ लिखी हुई बातें विश्व-सनीय हैं। इस बातमें कुछ भी सन्देह नहीं है, कि प्राचीन कालके अन्य देशोंके समान, हिन्दुस्थानमें राजात्रोंकी वंशावली च्चीर प्रत्येक राजाके राज्य करनेका समय दोनों सावधानता पूर्वक लिखकर सुरचित रखे जाते थे। प्राचीन समयमें कोई खास सम्बत् प्रचलित न था, श्रतएव राजाश्री-की वंशावली और उनके शासनकाल ही समय नापनेके साधन थे। इसी लिये वंशावलियाँ सुरिचत रखी जाती थीं। सारांश यह है कि मेगास्थिनीजकी वत-लाई हुई पीढ़ियोंकी संख्या इतिहासकी दृष्टिसे मानी जाने योग्य श्रौर विश्वस-नीय साधन हैं। मेगास्थिनीज़ने जिस संडा-कोटसका उल्लेख किया है वह ऐतिहासिक चन्द्रगुप्त है। हम निश्चयके साथ यह नहीं बतला सकते कि ये पीढियाँ जिस डाया-निसाससे गिनी गई हैं, वह कौन है। परन्तु हम पहले बतला चुके हैं कि हिरा-क्रीज़के मानी हरि श्रथवा श्रीकृष्ण ही हैं। मेगास्थिनीज़ने लिखा है कि शौरसेनी लोग हिराक्लीज़की भक्ति करते थे और उनका मुख्य शहर मथुरा था। इस वर्णनसे निश्चयके साथ यह सिद्ध होता है कि हिराक्लीज़ श्रीकृष्णका ही नाम था। डाया-निसास्से हिराक्लीज़तक १५ पीढ़ियाँ हुईं। उसको घटा देने पर, मेगास्थिनीज़के दिये हुए वर्णनसे हमें ज्ञात होता है कि हिराक्लीज़से चन्द्रगुप्ततक १५३-१५ = १३८ पीढ़ियाँ हुई । मेगास्थिनीज़ने यह नहीं यत्तलाया है कि इतनी पीढ़ियोंमें कितने वर्ष ज्यतीत हुए। तथापि संसारके इति-हासको देखनेसे यह बतलाया जा सकता

है कि मोटे हिसाबसे राजाओं की एक पीढ़ीमें कितने वर्ष लगते हैं। यह ऐतिहासिक
सिद्धान्त है कि प्रत्येक राजाकी पीढ़ीके
लिये श्रीसत २० वर्ष पड़ते हैं। इस
सिद्धान्तके श्रमुसार श्रीकृष्णसे चन्द्रगुप्त
तक मोटे हिसावसे १३८×२० = २७६०
वर्ष हुए। यह निश्चित हो चुका है कि
चन्द्रगुप्तका समय ईसवी सनके पूर्व ३१२
वर्ष था। इस हिसाबसे श्रीकृष्णका समय
सन् ईसवीके ३०३२ वर्ष पहले निश्चित
होता है। इस समयके ऐतिहासिक होनेके विषयमें हमें यह दृढ़ प्रमाण मिलता
है, कि यह समय कलियुगके श्रारम्भ-कालका निकटवर्ती समय है।

छान्दोग्य उपनिषदमें श्रीकृष्णका उल्लेख "कृष्णाय देवकोपुत्राय" किया गया है। भगवद्गीतामें "वेदानां सामवेदो-ऽस्मि" इस वाक्यसे श्रीकृष्णने सामवेदके साथ त्रपना तादातम्य प्रकट किया है। इससे यह पाया जाता कि सामवेदके छान्दोग्य उपनिषद्में श्रीकृष्णका उल्लेख स्वाभाविक है। श्रीकृष्णका समय छान्दोग्य उपनिषद्के बहुत पहले होगा। यद्यपि निश्चयके साथ नहीं वतलाया जा सकता कि छान्दोग्य उपनिषद् कब वना, तथापि भाषाके प्रमाणसे मालूम होता है कि वह दशोपनिषदोंमेंसे अत्यन्त प्राचीन उपनिषद् है। यह स्पष्ट है कि साधारणतः इन उपनिषदोंके समयको वेदांगोंके समयके पहले मानना चाहिये। वेदांगोमेंसे वेदांग ज्योतिषका निश्चयके साथ वतलाया जा सकता है। शंकर बालकृष्ण दीचितने अपने भारतीय ज्योतिषशास्त्रके इतिहासमें, वेदांग ज्यो-तिषका समय, सन् ईसवीसे पूर्व लगभग १४१० वर्ष ठहराया है। अर्थात्, छान्दो-ग्योपनिषद्के समयका इसके पूर्व और श्रीकृष्णके समयको उसके भी पूर्व मानना चाहिये। इस प्रमाणसे यह श्रमुमान होता है कि श्रीकृष्णका जो समय ऊपर बत-लाया गया है वह ठीक है; श्रीर यह कहा जा सकता है कि भारतीय थुद्ध उसी समय हुश्रा।

कालियुगका आरम्भ।

अब हम कलियुगके आरम्भकालका विचार करेंगे। हम पहले देख चुके हैं, कि भारतीय युद्ध श्रीर कलियुगारम्भका समय एक ही है। हम यह भी देख चुके, कि कलियुगका श्रारम्भ कब हुआ। हिन्दुस्थानके समस्त ज्योतिषियोंके मतानु-सार कलियुगका आरम्भ सन् ईसवीसे पूर्व ३१०१ वर्षमें हुआ । आजकलके हर एक पंचांगमें यही समय दिया हुआ है। शक १=३= के पंचांगमें यह लिखा हुआ मिलेगा कि कलियुगकी ५०१७ वर्ष हो गये। इससे स्पष्ट माल्म होता है कि पंचांगोंमें यह समय श्रार्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर इत्यादि ज्योति-षियोंके समयसे लिखा जाता है। इस बातमें सन्देह है कि इनके पहले यही समय लिखा जाता था या नहीं। यदि प्रति वर्ष लोगोंको यह मालूम हो जाता था कि कलियुगकी इतने वर्ष हो गये. तो इन ज्योतिषियोंके पहलेके किसी प्रनथमे इस समयका उल्लेख होना चाहिये । अभाग्यवश अभीतक ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिला है। तव प्रश्न है कि आर्य भट्ट आदि ज्योतिषियोंने किस श्राधार पर यह समय वतलाया है ? इस सम्बन्धमें दो मत हो सकते हैं। एक मत यह है कि यह समय लोगोंकी दन्तकथासे माल्म था; त्रर्थात् यह कहा जा सकता है कि उन्हें युधिष्ठिर संवत मोलूम था। हमारा मत यह है कि सन् ईसबीके पहले, अथवा सक-संवत्के

पहले युधिष्ठिर-संवत् च्या, कोई संवत प्रचलित न था। परन्तु हम पहले बतला चुके हैं कि उस समय हिन्द्रशानमें वंशावली रहती थीं; अर्थात् यह बात लिखकर रख ली जाती थी कि अमक वंशमें अमुक अमुक राजा अमुक वर्षतक राज्य करते थे। ऐसी दशामें कह सकते हैं कि युधिष्टिरके बादकी वंशावली, राजाओं-के शासन-काल समेत, श्रवश्य प्रचलित रही होगी। इस प्रकारकी वंशावलीके श्राधारपर सन् ईसवीके श्रारम्भमें, जब सिद्धान्तस्वरूप युगपद्धति स्थिर हो गई तब, आर्य ज्योतिषकारोंने यह निश्चित किया कि युधिष्ठिरको इतने वर्ष हो चुके। क्योंकि उस समयके पहले ३०० वर्षसे महाभारत स्पष्ट रीतिसे यह बतला रहा था, कि समस्त आस्तिक हिन्दुओं की यही समभ थी, कि कलियुगका त्रारम्भ, भार-तीय युद्ध और युधिष्टिरका राज्यारोहण एक ही समयमें हुआ। इस प्रकार पहले नृतन सिद्धान्तकार आर्यभट्टने, कलियुगके श्रारम्भका समय ईसवी सन्से पूर्व ३१०१ वर्ष (शक सम्वत्से पूर्व ३१७८ वर्ष) वतलाया।

कुछ लोगोंका मत है कि कलियुगका आरम्भ इस तरहसे दन्तकथा अथवा राजाओंकी वंशवालीके आधार पर नहीं बतलाया गया है—उसे आर्यभट्टने गिएतसे कायम किया है। परन्तु यह मत दिक नहीं सकता। शंकर बालकृष्ण दीचितका भी यही मत है; परन्तु उनका किया हुआ विवेचन उनके अन्य मतीके विरुद्ध हो जाता है। गिएतसे कलियुगका आरम्भ जाननेके लिये क्या साधन था? यह नहीं मालूम होता कि महाभारतके युद्ध-कालमें अमुक यह अमुक नच्चत्र पर थे, इस प्रकारके विधानको लेकर उसके आधार पर गिएतके द्वारा यह समय

स्थिर किया गया है; वयोंकि महाभारतमें जो स्थिति बतलाई गई है वह, कलियुग-के ब्रारम्भमें जो ग्रह थे उनसे, बिलकुल नहीं मिलती। इस ग्रह-स्थितिके विषयमें हम ब्रागे चलकर विस्तारपूर्वक विचार करेंगे। हम इसे भी सच मान सकते हैं, कि यदि महाभारतमें बतलाई हुई ग्रह-स्थितिके श्राधार पर गिएत करके यह समय श्रिर किया गया होता, तो वह निश्चयपूर्वक ठीक ही निकलता; परन्तु दुईवसे ऐसा विलकुल नहीं हुआ। पहले कहीं नहीं वतलाया गया है कि कलियुगके आरम्भ-में ग्रहोंकी स्थिति अमुक प्रकारकी थी। फिर गिएत करनेके लिये आधार कहाँसे श्राया ? दीचित तथा अन्य लोगोंका कथन है कि कलियुगके श्रारम्भमें समस्त ग्रह मध्यम मानसे अश्वनीमें थे। इस समभके आधारपर आर्यभट्टने गणितके द्वारा यह स्थिर किया कि मध्यम मानके ग्रह एकही स्थान पर कब थे, श्रीरं उसे उसने कलियुगका आरम्भ मान लिया। परन्तु यह किसने बतलाया कि कलियुग-के श्रारम्भमें इस तरहकी ग्रह-स्थिति थी? मध्यम ग्रह त्राकाशमें दिखाई नहीं देते, स्पष्ट ग्रह दिखाई पडते हैं। श्रर्थात्, यह सम्भव नहीं है कि ब्राँखोंसे देखकर किसीने इस प्रकारका विधान लिख रखा हो। तब यही मालूम होता है कि गणित-के इस साधनको ज्योतिषीने श्रपनी कल्पनाके आधार पर स्थिर किया है। श्रार्यभट्ट ऐसा पागल नहीं था कि उदा-हरण देते समय वह उदाहर एके उत्तरको श्रीर उदाहर एके श्राधारको भी काल्पनिक रखे। स्वयं दीचितका कथन है कि-"महाभारत, मनुस्मृति तथा पिछले विवे-चनमें आये हुए किसी ग्रन्थमें, ज्योतिष-यन्थोंका बतलाया हुआ सुगारम्भका यह लक्षण नहीं दिया है कि कलियुगके और

प्रत्येक युगके श्रारम्भमें सब ग्रह श्रश्विनी-के आरम्भमें एकत्र रहते हैं। बढिक महा-भारतमें एक जगह कहा गया है कि सुर्य, चन्द्र, वृहस्पति श्रौर तिब्यके एक राशिमें त्राने पर कृतयुग होता है।" उनका यह भी कथन है कि—"ऊपर दिया हुआ युग-का लच्चण पुराणोंमें भी कहीं बतलाया नहीं गया है।" तब तो उक्त ब्रावेप करने-वालोंका अन्तिम कथन यही देख पड़ता है, कि यह कल्पना स्वयं श्रार्यभट्टकी है और उसने उसीके आधार पर गणित किया है। परन्त, प्रत्यक्त देखने पर यह बात भी सिद्ध होती नहीं माल्म होती। सूर्य-सिद्धान्तके . श्रनुसार कलियुगका श्रारम्भ फाल्गुन कृष्ण पत्त अमावस्या वृहस्पति-वारकी मध्य रात्रिके समय होता है। इसके आधार पर यह निश्चित होता है कि सन् ईसवीके ३१०१ वर्ष पहले १७ फर-वरी वृहस्पतिवारकी मध्य रात्रिके समय कलियुगका आरम्भ हुआ। उस समयकी ग्रह-स्थिति प्रोफेसर ह्विटने ने निश्चित की है श्रौर दीित्ततने भी मध्यम तथा स्पष्ट ग्रह-स्थितिका निश्चय किया है। इसका उल्लेख दीन्नितने अपनी पुस्तकके १४२ वें पृष्ठमें किया है। उससे मालूम होता है कि कलियुगके त्रारम्भमें मध्यम और स्पष्ट सब ग्रह एकत्र नहीं थे। इसे दी चितने भी कवूल किया है। वे कहते हैं कि—"हमारे ग्रन्थके अनुसार कलियुगके आरम्भमें सब ग्रह एकत्र थे, परन्तु वस्तुस्थिति वैसी न थी। कदाचित् संब ग्रह श्रस्तं-गत रहे हों, परन्तु महाभारत श्रादि ग्रन्थोंमें ऐसा भी वर्णन नहीं है। किल्युग के त्रानन्तर, सूर्यसिद्धान्त त्रादि ग्रन्थोंके बननेतक, कमसे कम ३६०० वर्ष बीत गये; परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उस समय इस वातका निश्चय हो चुका था कि कलियुग अमुक समयमें आरम्भ हुआ।

इससे सन्देह करनेका स्थान रह जाता है कि कदाचित् कलियुगका आरम्भ-काल पीछेसे गणितके द्वारा निकाला गया हो।" परन्तु यदि दीचितको यह वात माल्म होती अथवा सारण रहती कि उस समय राजात्रोंको वंशवाली प्रचलित थी, तो उन्हें ऐसा सन्देह न हुआ होता। यह बात मेगास्थिनीज़के द्वारा दी हुई पीढ़ियों श्रीर वर्षेंकी संख्यासे सिद्ध होती है। मेगास्थिनीजुका प्रमाण श्रत्यन्त प्राचीन श्रर्थात् सन् ईसवीके लगभग ३१२ वर्ष पहलेका है। यानी, यह उस समयका है जब कि आर्य ज्योतिषोंको ग्रह-गिएत करनेका ज्ञान न था। इससे यह निश्चय-पूर्वक सिद्ध होता है कि ऐसी वंशावलियाँ पूर्व कालमें थीं। यह बात निर्विवाद है कि पूर्व कालमें इतिहास भी थे श्रीर हिन्दु-स्थानमें ऐतिहासिक बातें तथा वंशावलियाँ लिखकर रखी जाती थीं। चीनी यात्री हुएनसाङ्गने स्पष्ट लिख रखा है कि-"प्रत्येक राज्यमें इतिवृत्तकी पुस्तक साव-धानतासे लिखकर रखी जाती है।" काश्मीरमें इस प्रकारका हाल और वंशा-वली लिखी हुई थी; उसीके आधार पर कल्ह्या कविने राजतरंगिया नामक काश्मीरका इतिहास लिखा। श्राजतक भाद लोग राजपूतोंकी वंशावलियोंको सावधानीसे लिखते हैं। सारांश, यह निर्विवाद है कि मेगास्थिनीज़की लिखी हुई वंशवालीमें दिये हुए वर्णनसे पूर्व कालमें, वंशावलीका होना पाया जाता है। हमारा मत है कि ऐसी वंशावलियों के आधार पर युधिष्ठिरके अनन्तर वीत चुकनेवाले वर्ष लोगोंको मालूम रहे होंगे श्रीर उन्हींके श्राधार पर कलियुगका आरम्भ-काल निश्चित किया गया होगा। अपर बतलाया ही जा चुका है, कि कलियुगारम्भ-काल निश्चित करनेका जो

साधन दिया गया है वह काल्पनिक है श्रीर कलियुगके श्रारम्भ-कालमें वैसी प्रत्यच्च स्थिति भी न थी। तव फिर यह नहीं कहा जा सकता कि कलियुगका श्रारम्भ-काल पीछेसे गणित-द्वारा स्थिर किया गया है।

वराहमिहिरका अमपूर्ण मत।

कलियुग-कालके सम्बन्धमें कदाचित् राङ्का उपस्थित होगी; परन्तु मेगास्थिनीज़-की बतलाई हुई बातोंके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी राङ्का नहीं की जा सकती। इन दोनोंके सहारे भारतीय युद्धके समयको निश्चित करनेमें कठिनाई न होगी। अब हमें यहाँ वराहमिहिरके इस कथनका विचार करना चाहिये, कि भारतीय युद्ध कलियुगके आरम्भमें नहीं हुआ। वराह-मिहिरने यह मत गर्गके मतके आधार पर दिया है। गर्गके मतको उन्होंने इस प्रकार लिखां है:—

पड्दिकपश्चिद्वयुतः शककालस्तस्य राश्चश्चा श्चर्यात्, युधिष्टिरका समय बतलाने के लिये शक-सम्वत्में पड्दिक्पश्चिद्वि श्चर्यात् "श्चंकानां वामतो गितः' के हिसाब से २४२६ के मिलाने पर युधिष्टिरका समय निकलता है। हमने भारतीय युद्धका समय सन् ईसवीं के ३१०१ वर्ष पहले श्चथवा शक-सम्वत्के ३१०१ वर्ष पहले उहराया है। इस समयमें श्चौर वराह-मिहिरके समयमें ६५३ वर्षोंका श्चन्तर है। राजतरिक्षणींकार कल्हणने श्चपने काव्य-रूपी इतिहासमें इसी समयको लेकर रूपष्ट कहा है कि—

शतेषु पट्सु सार्धेसु व्यधिकेषु च भूतते। कलेर्गतेषु वर्षाणामभूवन्कुरुपाएडवाः॥

वहाँ उसने यह भी कहा है कि— "इस बातसे बिमोहित होकर कि पांडव किल्युगके आरम्भमें हुए, काश्मीरके कुछ इतिहासकार काश्मीरके पूर्व कालके राजाश्रोंकी गलत फेहरिस्त देते हैं; परन्तु कलियुगके उंक ६५३वें वर्षमें पाएडव थे; इस कालके अनुसार मैंने राजाश्रोंकी केहरिस्तको सुधार दिया है।" इससे स्पष्ट मालूम होता है कि कल्हणके समय-में यह मत प्रचलित था, कि पाएडव कलियुगके आरम्भमें हुए। इसको त्याग कर, वराहमिहिरका आधार लेकर, कल्ह्या ने कलियुगके आरम्भसे ६५३वें वर्षमें भारतीय युद्धका होना बतलाया है। परन्तु इसके कारण महाभारतके वचनोंसे स्पष्ट विरोध होता है। "प्राप्तं कालियुगं-विद्धि" इस श्रोकसं, और कलियुगके श्रनन्तर ६५३ वर्षीके बाद भारतीय युद्ध हुआ, इस कथनसे मेल नहीं हो सकता। "कलिद्वापरयोः अन्तरे" इस वचनसे भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि भारतीय युद्ध कलियुगके आरम्भ होनेके पहले हुआ। पेसी दशामें यह कथन गलत होगा कि किल्युगके ६५३ वर्षीके वाद युद्ध हुआ। कुछ लोगोंके (विशेषतः श्रार्य-समाजी लोगोंके) मतानुसार, इन ६५३ वर्षोंको कलियुगका सन्धिकाल समक्षकर, यह मान लेना चाहिये कि सचा कलियुग श्रमीतक नहीं हुआ है श्रीर महाभारतके वचनसे मेल मिला लेना चाहिये। परन्तु इस तरहसे भी मेल नहीं मिल सकता; क्योंकि यदि इस तरहसे कलियुगका सन्धिकाल मान लें, तो द्वापरका अन्तर नहीं श्रा सकता। ऐसा वर्णन है कि द्वापर श्रौर कलिके श्रन्तरमें श्रर्थात् ठीक सन्धि-में युद्ध हुआ। महाभारतके वर्णनके अनु-क्ल यह खिति ठीक मालूम होती है कि चैत्र शुक्क प्रतिपद्को कलियुग लगा श्रीर उसके पहलेके मार्गशीर्ष महीनेमें भारतीय युद्ध हुआ।

एक बड़े आश्चर्यकी बात यह है कि

सब ज्योतिषियोंके मतोंके विरुद्ध और प्रत्यस महाभारतके भी वचनोंके विरुद्ध, वराहमिहिरने भारतीय युद्धका यह समय कैसे वतलाया । श्रच्छा, यदि उन्होंने गर्गके वचनके श्राधार पर यह मत दिया है, तो प्रश्न है कि गर्गने ही यह समय कैसे बत-लाया ? गर्भका समय हमें मालूम नहीं। कुछ लोग मानते हैं कि गर्गका समय महाभारतके बाद श्रीर शक-सम्वतके पहले होगा। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि गर्ग महाभारतके पहले हुआ होगा। महाभारतमें गर्गका नाम श्राया है। चाहे हम किसी समयको माने, परन्तु यह निश्चित दिखाई पड़ता है कि गर्ग शक-सम्वत्के पहले हुआ। ऐसी दशामें गर्ग-के द्वारा यह नियम बना दिया जाना सम्भव ही नहीं है कि, शक-सम्वत्में अमुक वर्ष मिला देनेसे युधिष्ठिरका समय निकल त्राता है। यह बतलानेके लिये साधन नहीं है कि गर्मका मूल वचन क्या था। गर्ग-संहिता नामक जो एक ग्रन्थ प्रसिद्ध है, उसमें इस सम्बन्धका कुछ भी वर्णन नहीं है। २५२६ की संख्या गर्गने ही दी है, यह मानकर उसका स्पष्टी-करण करनेके लिये श्रीयुत अय्यरने एंक ऋद्भुत उपाय वतलाया है। वह यह है कि शक-कालका अर्थ शाक्य मुनिका काल समभना चाहिये। यदि यह मान लिया जाय कि बुद्ध के मृत्यु-कालसे कहीं कहीं बुद्धकाल-गणना शुरू हो गई थी, तो यह समय हमारे मतके अनुकूल हो जाता है। (ग्रय्यर त्रपना काल कैसे साधते हैं, यह त्रागे कहा जायगा) बौद्धोंमें त्राजकल जो निर्वाण-शक प्रचलित है, उसे सन् ईसवीके ५४३ वर्ष पूर्वका मान लेनेसे श्रीर उसे २५२६ में मिला देनेसे, २५२६ + पुछर प्रधात् सन् ईसवीके २०६८ वर्ष पूर्वका समय, श्रीकृष्णके और कलियुगके श्रारम्भके समयके निकट श्रा जाता है। तथापि हमारा मत है कि शक-काल शब्द-का श्रर्थ 'शाक्य मुनि श्रथवा बुद्धका समय' कभी नहीं समभा जा सकता । बुद्ध-का शक नाम कहीं नहीं लिखा गया है। शक श्रीर शाक्य शब्दोंको जबर्दस्ती एकार्थवाची समभ लेनेसे कुछ लाम नहीं। इसकी उपपत्ति भिन्न प्रकारसे बतलानी होगी।

श्रव यह निश्चय कर सकना असम्भव है कि गर्गने मूल समय किस प्रकारका बलताया था। यह बात प्रायः निर्विवाद सी है कि गर्ग महाभारतके पहले हो गया है। उसका उल्लेख शस्य पर्वके सरस्तती श्राख्यानमें और श्रनुशासन पर्वमें उप-मन्यके श्राख्यानमें हुश्रा है। उसमें उसके ६४ ब्राङ्गोंके ब्रन्थका भी उल्लेख है। ब्राज-कल "गर्गसंहिता" नामक जो ग्रन्थ प्रच-लित है, उसमें ४० उपाङ्ग हैं। अर्थात् यह ग्रन्थ बहुत करके वहीं ग्रन्थ न होगा। तथापि यह उसीकी दूसरी आवृत्ति होगी। इसमें राशियोंका उल्लेख नहीं है, इससे यह अन्ध भी शक सम्वत्के पहलेका माल्म होता है। सारांश, गर्ग शकके बहुत पहले हो गया है । उसके प्रन्थमें शक-कालका उल्लेख होना सम्भव नहीं है। इसलिये माल्म होता है कि गर्गका उक्त वचन किसी तत्कालीन राजाके सम्बन्धमें होगा। उसने यह लिखा होगा कि युधिष्ठिरको हुए अमुक राजातक २५६६ अथवा २५२६ वर्ष हुए और वह राजा गर्गका समकालीन होगा। गर्ग और वराहमिहिरके बीचमें हज़ार वर्षका श्रंतर दिखाई पड़ता है क्योंकि गर्भ सन् ईसवी-के ४०० वर्ष पूर्वका और वराहमिहिर सन् ईसवीके ५०० वर्षसे भी अधिक पीछेका है। ऐसी दशामें इसकी यह उपपत्ति वतलाई जा सकती है, कि गर्गके सम-

कालीन राजाका नाम एक हज़ार वर्षी अप्रसिद्ध हो जानेके कारण, वराहमिहिर. ने उस नामका उपयोग शक राजा श्रथवा शक-कालके लिये कर दिया। वराहमिहिर गर्ग-ज्योतिषके वचनको विशेष प्रमाण्भत मानता था । इस कारण उसने अन्य ज्योतिषियोंके मतके विषद्ध भारतीय युद्ध को कलियुगके ६५३वें वर्षमें माना है। कल्हणने अपने काश्मीरके इतिहासका मेल उसीके आधार पर मिलाया। काश्मीरमें यह धारणा थी कि भारतीय युद्धके समयमें काश्मीरका राजा पहला गोनई था और जब दुर्योधनके लिये कर्णने दिग्विजय किया तब वह लड़ाईमें मारा गया तथा उसका लड़का गद्दी पर बैठा। कल्हणने यह लिख रखा है कि काश्मीरमें ऐसी दन्तकथा प्रचलित थी कि छोटी श्रवस्थाके कारण वह लडका भारतीय युद्धमें नहीं शामिल हुआ। यदि यह मान लिया जाय कि भारतीय युद्ध कलियुगके श्रारम्भमें हुआ, तो शक पूर्व ३१७६ वर्षी-की व्यवस्था गोनर्दके अनन्तर होनेवाले राजात्रोंकी अवधितक लगनी चाहिये श्रीर वैसी व्यवस्था कल्हणके पहले लग भी चुकी थी । परन्तु भारतीय युद्धके समयको मनमाना मान लेनेके कार्ण कल्हणको गोनर्द आदि राजाओंकी भिन्न व्यवस्था करनी पड़ी। यह बात काश्मीरके इतिहासमें सहज ही लिखी हुई है कि गोनई पाएडवांके समयमें था । इसका कारंण यह है कि हिन्द्रस्थानका प्रत्येक राजवंश श्रपना सम्बन्ध पाएडव-सम कालीन योद्धात्रोंसे भिडा देनेमें भूषण समभता है। कल्हणने राजाश्रोंकी प्रच लित वंशावलीमें श्रपनी नई समभके अनुसार घटा बढ़ाकर एक और नह भूल कर डाली। गर्गने जो २५२६ की संख्या दी है

उससे एक बात तो अवश्य सिद्ध होती है। बह यह है कि उसने इस संख्याको किसी न किसी श्राधारसे निश्चित किया होगा। ऐसी संख्या निश्चित करनेके लिये दन्त-कथाका और मुख्यतः वंशावलीका साधन होना चाहिये। कल्हणके प्रनथसे यह मालूम होता है कि इस प्रकारकी बंशावली काश्मीरमें भारतीय युद्धके समयसे प्रचलित थी। अर्थात्, निश्चित है कि यह संख्या राजवंशावलीके आधार पर स्थिर की गई, श्रौर इस दिष्टसे इस संख्याका बडा भारी महत्व है। शक-पर्व ३१७६ की जो संख्या शककालके आर-म्ममें वंशावलीके श्राधार पर स्थिर की गई थी, वह भी इसी तरहकी वंशावलीके ब्राधार पर स्थिर की गई होगी। गर्गके वचनमें किसी मनमाने राजाका नाम समभकर वराहमिहिरने भूल की: परन्त सन् ईसवीके ३१०१ वर्ष पहलेका समय ही, वराहमिहिरको छोड अन्य सब ज्योति-पियोंके द्वारा ठहराया हुआ भारतीय युद्धका समय सर्वमान्य दिखलाई पडता है। हम पहले यह देख ही चुके हैं कि इसके सिवा मेगास्थिनीजने चन्द्रगुप्ततक मगधवंशकी जिन पीढ़ियोंका वर्णन किया है उस वर्णन-से भी इस निश्चित समयको सबल सहारा मिलता है। सारांश यह है कि सन् ईसवीके ३१०१ वर्षके पहलेका समय ही भारतीय युद्धका समय सर्वमान्य सिद्ध होता है।

यहाँ कुछ श्राचेपोंका भी उल्लेख कर देना चाहिये। कहा जाता है कि जैसे ईसवी सनके पहले ३१०१ वर्षके समयको श्रायंभटने केवल कल्पनासे निश्चित किया है, उसी प्रकार दीचितका कथन है कि शक-संवत्के पहले २५२६ वर्षके समयको गर्मने श्रपनी कल्पनासे निश्चित किया है। परन्तु इस ब्राह्मेपको भी कल्पनाके

सिवा दूसरा श्राधार नहीं हैं। दीन्तित (पृष्ठ ११= में) कहते हैं:—"वराहमिहिरने सप्तर्षिचारमें कहा है कि सप्तर्षियोंमें गति है; श्रीर वे एक एक नत्तत्रमें १०० वर्षो तक रहते हैं: इसी धारणाके श्राधार पर यह समय निकाला गया है।" युधिष्ठिर-के समयमें सप्तर्षि मधा-नचत्रमें थे: श्रौर श्राजकल भी वे मधामें ही हैं। सप्तिषं प्रत्येक नचत्र में १०० वर्षीतक रहते हैं, इससे यह निष्पन्न होता है कि आजतक युधिष्टिरको २७०० वर्ष हो चुके। परन्तु सप्तर्षियोंमें तो कोई गति ही नहीं है, इससे उक्त समयका कोई अर्थ नहीं हो सकता। इसी तरह गर्ग और वराहके बत-लाये हुए समयका भी कोई अर्थ नहीं है। दी चितका कथन है कि यह "गर्ग शक-कालके श्रारम्भ होनेके श्रनन्तर एक दो शताब्दियोंमें कभी हुन्ना होगाः उसे सप्तर्षि मधा-नत्तत्रके निकट दिखलाई पडे, इसलिये उसने यह स्थिर किया कि शक कालके आरम्भमें युधिष्टिरकी २५२६ वर्ष हो चुके।" परन्त यह मत मानने योग्य नहीं है । २५२६ की निश्चित संख्या कल्पना कैसे ठहराई जा सकती है ? यह गणिल्का विषय है, इसलिये इसमें अन्दा-ज़की बातोंका बिलकुल समावेश नहीं हो सकताः श्रोर कोई ज्योतिषगणितकार निराधार तथा काल्पनिक संख्याकी सृष्टि नहीं कर सकता। यदि सप्तर्षियोंका चकर २७०० वर्षोंका मान लिया जाय, ता प्रश्न है कि उनमें १७४ वर्ष क्यों घटा दिये गये ? दीचितने यह तो नहीं बतलाया है कि जब सप्तर्षि गर्गका मधा नजत्रमें दिखाई पड़े, तब वे उसे शक-संवत्के बाद १७४ वें वर्षमें दिखाई पड़े थे। श्रौर, यह भी नहीं माना जा सकता कि यह समय शकके १७४ वर्षो बाद निश्चित किया गया था। ऐसा कइनेका

कारण यह है, कि यदि हमें किसी दूसरी रीतिसे गर्गका समय मालूम होता, तो इस कथनका कुछ अर्थ भी हो सकता। परन्तु हमें गर्गका कुछ भी समय माल्म नहीं है, ऐसी अवस्थामें वह केवल कल्पनासे नहीं माना जा यह बात सम्भव नहीं है कि गर्ग और वराहमिहिरका सप्तर्षियोंकी गतिहीनता-का ज्ञान न था। अर्थात् स्पष्ट है कि यह गति कल्पनासे मान ली गई है, प्रत्यच नहीं है। अञ्छा, च्रण भरके लिये मान लिया जाय कि गर्ग और वराहमि-हिरका सप्तर्षियोंकी गति मालूम थी: गर्ग शक-संवत् १७४ में गिएत करने वैठा, श्रोर वह युधिष्ठिरका समय गणितके द्वारा निकालने लगा। परन्त, स्मरण

> श्रासन्मघासु मुनयः शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ ।

इस बातको श्राधार-खरूप माननेके लिये महाभारतमें कोई वचन नहीं है। फिर, गर्गने इसको कहाँसे लिया? अञ्छा यह त्राधार-खरूप बात कहींसे लाई गई हो, परन्तु जो सप्तर्षि प्रत्येक नत्त्रमें १०० वर्षतक रहते हैं वे कुछ एकही स्थानमें नहीं रहते। वे एक नज्ञसे दूसरे नज्ञ में उड़कर नहीं चले जाते। तब गणित करनेके लिये यह मालूम रहना चाहिये था, कि युधिष्टिरके समयमें सप्तर्षि मधा-नज्ञके किस बिंदुमें थे। फिर, यह भी मानना पड़ेगा कि शक सम्वत् १७४ में मघा-नत्त्रमें सप्तर्षिको ठीक उसी विद पर गर्गने देखा था। ऐसा माने विना यह सिद्ध करना असम्भव है, कि शक-सम्वत्के आरम्भमें युधिष्ठिरको हुए २५२६ वर्ष बीत चुके थे। सारांश यह है कि सभी काल्पनिक बातींको मानना पडता है और उन्हें माननेके लिये कोई आधार भी नहीं है। यह कहीं नहीं बतलाया गया युधिष्ठिरके राज्यारोहण-कालमें सन्तर्षि मघाके अमुक बिंदुमें थे। यह नहीं माना जा सकता कि यह गर्गकी कल्पित बात होगी । इसका भी कही प्रमाण नहीं मिलता कि गर्ग शक-सम्बत १७४ में हुआ (बल्कि निश्चयपूर्वक मालूम है कि वह शक सम्वत्के पहले हुआ होगा)। यह बात अपने सिद्धान्तसे मिलती है इसलिये इसे भी कल्पनाके श्राधार पर मान लें: श्रीर यह बात हमारे मतसे मिलती है कि युधिष्ठिरके समयक विंदुमें ही सप्तर्षि गर्गकालीन शक-सम्बत् १७४ में थे, इसलिये इसे भी कल्पनासे मान लें! तब तो सारा सिद्धान्त मान लेने पर ही रहा ! इस तरह बारीकीसे विचार करने पर यह नहीं कहा जा सकता, कि गर्गने युधिष्ठिरका शक पूर्व २५२६ वर्ष-का जो निश्चित समय वतलाया है, उसे उसने गणितके द्वारा निकाला । अस्त । दीनितका कथन है कि मघा, पूर्वा, उत्तरा, हस्त और चित्रामेंसे हर एक नद्यत्रमें सप्तर्षि दिखाई दे सकते हैं। तब, प्रश्न है कि गर्गको अपने समयमें यह कैसे दिखाई पडा कि सप्तर्षि मघामें ही थे ? दूसरी वात यह है कि शक-सम्बत् ४४४में वराह-मिहिरकों भी सप्तर्षि मघामें ही दिखाई पडे: इससे तो गर्गके समय अर्थात् शक सम्वत् १७४ में उनका मघाके पीछे होना पाया जाता है। इस दशामें यह कहना भी गलत मालूम होता है कि समयमें सप्तर्षिका मघामें होना मान-कर गर्गने गिणत किया । सारांश, यह कहना बिलकुल भूठ होगा कि गर्गने इस समयको कल्पनाके द्वारा जाना। अर्थात्, उसे वंशावलीका अथवा किसी दूसरे प्राचीन प्रन्थकारका पूर्व आधार अवश्य रहा होगा। अतएव, ऐसी दशामे

. CC-0. In Public Domain. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहले हमने जो कल्पना की है वहीं सम्भव दिखाई पड़ती है। गर्गने यह लिखा होगा कि उसके समयके (श्रयांत् शक पूर्व) किसी प्रसिद्ध राजातक युधिष्ठिरको हुए २५२६ वर्ष वीत चुके। श्रीर, हज़ार वर्षके वाद वराहमिहिरको, भूलसे, यह भ्रम हो गया कि वह शककाल ही है, जिसके कारण उसे गर्गका वचन समसकर उसने यह शककाल युधिष्ठिरका समय बतलाया होगा। चाहे बात जो हो, श्रन्य ज्योतिषियोंके मतके विरुद्ध और विशेषतः स्वयं महामारतके वचनके विरुद्ध श्रकेले वराहमिहिरके वचनको मान्यता नहीं दी जा सकती।

पुराणों में दी हुई पीढ़ियाँ अमपूर्ण हैं।

श्रब हम भारतीय-युद्धके समयके सम्बन्धमें बतलाये हुए तीसरे मत पर विचार करेंगे। महाभारतके वचनके श्रवु-कूल कलियुगके आरम्भमें भारतीय-युद्ध-का होना मानकर, राजात्रोंकी वंशावली अथवा प्राचीन प्रचलित परम्पराके आधार पर, सब ज्योतिषियोंने सन् ईसवीके पहले ३१०१ वर्षको भारतीय-युद्धका समय बतलाया है। इस समयकी पृष्टिमें मेगास्थि-नीज़ द्वारा बतलाई हुई पीढ़िओंसे और भी श्रिधिक दढ़ प्रमाण मिलता है। परन्तु वर्त-मान समयके बहुतेरे विद्वानोंने, उस समय-के विरुद्ध, भारतीय-युद्धका समय ईसवी सन्के लगभग १४०० वर्ष पहले बतलाया है। श्रव हम इसीका विचार करेंगे। कुछ पाश्चात्य विद्वान् उस समयको इससे भी अर्वाचीन कालकी श्रोर घसीटते हैं, परन्तु दोनोंका मूल श्राधार एक ही है। इस समयको निश्चित करनेके लिये मुख्यतः विष्णुपुरासके आधार पर प्रयत्न किया गया है। इस प्राणमें कहा गया है कि-

"महानंदिकी शृद्धा रानीसे उत्पन्न महा-पद्मनन्द नामक पुत्र परश्ररामकी नाई सय चित्रयांका नाश करेगा। उसके सुमाली आदि नामोंके ५ लड़के होंगे और वे महापद्मके बाद राज्य करेंगे। महापद्म और उसके आठ लड़के सौ वर्षोंतक राज्य करेंगे। इन नन्दोंको कौटित्य नामक ब्राह्मण राज्य-भ्रष्ट करेगा और चन्द्रगुप्त-को राज्यपर अभिषिक्त करेगा।" इसके आगे जो श्लोक है वह यह है:— यावत्परीचितो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम्। एतहर्षसहस्रं त न्नेयं पंचदशोत्तरम्॥

इसी प्रकारका श्लोक भागवतमें भी है। परन्त उसमें "शतं पंचदशोत्तरम्" पाठ है। इस श्लोकमें यह वर्णन है कि परी-चितके जन्मसे नन्दके श्रमिषेकतक १०१५ वर्ष हुए। भागवतमें कहा गया है कि १११५ वर्ष हुए। परीचितका जन्म भार-तीय-युद्धके अनन्तर ३-४ महीनोंमें ही हुआ थाः अर्थात् परीत्तितके जन्मका और भारतीय-युद्धका समय बहुत करके एक ही है। भारतीय-युद्धसे नन्दोंतक १०१५ वर्ष ग्रीर नौ नन्दोंके १०० वर्ष मिलांकर चन्द्रगुप्ततक १११५ वर्ष होते हैं। चन्द्र-गुप्तका समय सन् ईसवीके ३१२ वर्ष पहले निश्चित किया गया है। इससे भार-तीय-युद्धका समयसन् ईसवीके १११५ + ३१२ = १४२७ वर्ष पहले श्राता है। भाग-वतके मतानुसार इसमें १०० वर्ष श्रौर जोड़ना चाहिये; यानी भागवत्के मतातु-सार यह समय सन् ईसवीके १५२७ वर्ष पहले होता है। हमारा मत है कि विष्णु-पुराण्में वतलाया हुआ यह समय मानने योग्य नहीं है । ऊपर दिया हुआ वचन विष्णुपुराणके चौथे श्रंशके २४ वें श्रध्याय-का है। परन्तु वह २३ वें श्रध्यायमें बतलाई हुई बातके विरुद्ध है। मगधमें जरासंध पाएडवकालीन राजा था। जरासंधके वाप बहद्रथने इस वंशकी स्थापना की थी: इसलिये उसके वंशका "वाईद्रथ वंश" नाम पड़ा। इस वंशकी गणना जरासंध-के पुत्र सहदेवसे श्रारम्भ की जाती है। यह भारतीय युद्धमें पाग्डवोंकी श्रोरसे लड़ता था। विष्णुपुराणके चौथे अंशके २३ वें श्रध्यायमें कहा गया है कि ये बाई-द्रथ-वंशी राजा मगधमें एक हजार वर्षों तक राज्य करेंगे। इसके बाद कहा गया है कि "प्रद्योत वंश" १३= वर्षोतक राज्य करेगा। इसके बाद "शिशुनाग वंश" ३६२ वर्ष राज्य करेगा । अर्थात्, महापद्म-नन्द और उसके आठ पूत्रोंके पहले, सह-देवके समयसे, १००० + १३= + ३६२ = १५०० वर्ष होते हैं। तो फिर २४वें अध्याय-में जो यह कहा गया है कि भारतीय युद्ध-से १०१५ वर्ष होते हैं, उसका क्या अर्थ है? इसलिये विष्णुप्राणके २४ वें श्रध्यायका उक्त घचन बिलकल मानने योग्य नहीं है।

दूसरी बात यह है कि पुराणोंमें भविष्यरूपसे जो बातें बतलाई गई हैं, उनमें एक बड़ा दोष है। प्राणकारीने विस्तारपूर्वक इस प्रकारका लिखा है कि अमुक वंशका अमुक राजा इतने वर्षीतक राज्य करेगा । यह भविष्य उस वंशके हो जानेके बाद लिखा गया होगा। प्रायः सब पुरागों में इस प्रकारका भविष्य बतलाया गया है। पुराण बहुधा परीक्तित तथा जनमेजयको सुनाये गये थे। इसलिये परीचितके समयसे जिस समयतक पुराणींकी रचना हुई होगी, उस समयतककी वंशावली उनमें वहुधा भविष्यरूपसे वतलाई गई होगी। इस भविष्य-वर्णनमें राजाश्रोंको पीढियाँ, उनके नाम, उनके राज्य-कालकी वर्ष-संख्या श्रीर समग्र वंशकी वर्ष-संख्या दी गई है। इससे, कमसे कम, इतना तो निश्चयपूर्वक कि इ होता है, कि हमारे पूर्व-कथनान- सार प्रत्येक देशमें राजवंशावली साव-धानीसे लिखी जाती थी। पुराणींके हाल. के खरूपका समय सन् ईसवीके बाह तीन चार शतकोंसे आठवें शतकतक हैं। क्योंकि कुछ पुराणोंमें आन्ध्रभृत्य वंशतक. की बातें श्रोर कुछमें काकटीय यवनतक. की बातें दी हुई हैं। इन बंशोंके सम्बन्ध की बातें प्रायः सब पुराणोंमें एक समान हैं। जिस समय ये पुराण आजकलके खरूपमें त्राये, उस समय ये भविष्य सम्बन्धी अध्याय जोड़ दिये गये: परन यह स्पष्ट कहना पडता है कि इन वंशा-ध्याय जोडनेवालोंको इन वंशोंके सम्बन्ध की बातें श्रच्छी तरहसे मालूम न थी। मालूम होता है कि प्राणकारोंको प्रद्योत वंशसे मगधका इतिहास अच्छे विश्वस-नीय रूपसे मिल गया थाः परन्तु उसके पहलेका इतिहास तथा पहलेकी वंशावली विश्वसनीय रूपसे नहीं मिली। उन्होंने प्रद्योत वंशके पहले केवल एक बाईद्रथ वंशका उल्लेख किया है और उसकी वर्ष-संख्या १००० वर्ष रख दी है। इससे स्पष्ट माल्म होता है कि उत्तरकालीन पुराणकारोंको प्रद्योत वंशके पहलेकी वाते मालूम न हो सकीं। इसी कारणसे उनकी दी हुई बातोंमें श्रीर चन्द्रगुप्तके समयमें मेगास्थिनीज़के द्वारा बतलाई हुई श्राकाश-पातालका पड़ गया है। प्रद्योत-वंशसे उत्तरकालीन वंशोंके सम्बन्धकी बातें बौद्ध-ग्रन्थोंमें भी पाई जाती थीं। बल्कि, पार्गिटर साहब का कथन है कि, ये बातें पुराणोंमें बौद ग्रन्थोंसे ही ली गई हैं। चाहे ये बाते कहींसे ली गई हों, परन्तु प्रद्योत वंश के पहलेकी बातें विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि उनकी वर्ष-संख्या श्रन्दाज़से १००० रख दी गई है। हमारा अनुमान है कि इस समयके सम्बन्धकी बातें पुराण कारोंके समयमें नष्ट हो गई होंगी। पहले-के राजाश्रोंकी वंशावली, चन्द्रगुप्तके दर-बारमें रहनेवाले मेगास्थिनीज़के समयमें, थी। परन्तु सन् ४०० ईसवीके लगभग, जब पुराणकारोंने पुराणोंकी पुनः रचना ब्रारम्भ की, उस समय इन वंशाविलयों के सम्बन्धकी वातें नष्ट हो गई थीं। ऐसा क्यों हुआ ? इसका मुख्य कारण यही माल्म होता है कि चन्द्रगुप्तके समयके बाद श्रद्ध वंश राज्य करने लगा और सनातन धर्म चीए होकर अशोकके समय-से बौद्ध धर्मका भी प्रसार श्रौर विजय हो गया। श्रान्ध्रभृत्य भी गृद्ध राजा थे। गृद राजाश्रोंमें प्राचीन चत्रिय राजाश्रोंकी वंशावलीको हिफाजतसे रखनेकी इच्छा-का न होना स्वाभाविक बात है। बौद्ध राजाश्रोंकी दृष्टिमें तो सनातन-धर्मी चित्रिय राजाओंकी कुछ कीमत ही न रही होगी । बौद्ध श्रीर जैन लोगोंमें वर्ण-विभागका लोप हो जानेके कारण और वर्ण-विभागका हेष रहनेके कारण, चत्रियों की कथात्रोंको नष्टकर, भिन्न प्राचीन कथाश्रोंकी सृष्टि करनेका उन लोगोंने दृढ़ प्रयत्न किया था। इस कारणसे बुद्ध श्रीर जैन महावीरके पहलेके राजवंशींकी षंशावलियोंका महत्त्व नष्ट हो गया श्रौर उनकी श्रोर दुर्लच किया गया। श्रन्तमें ये वंशाविलयाँ प्रायः नष्ट हो गई स्रौर इसी कारण पुराणकारोंने बाईद्रथ वंशका समय अनुमानसे १००० वर्ष एख दिया है। ये पुराणकार प्रायः बुद्धिहीन थे, क्योंकि विष्णुपुराण्में भी कहा गया है कि-"परी-जितके जन्मके समय जब सप्तर्षि मघामें थे, उस समय कलियुगका आरम्भ हुआ। इसमें १२०० दिव्य वर्ष हैं।" इससे पुराणकारोंका यही विचार पाया जाता है कि, भारतीय युद्धके समयसे ही कलि-युगका आरम्भ हुआ है और कलियुगमें

१२०० दिव्य वर्ष होते हैं। फिर यह
आश्चर्यकी बात है कि, किलयुग लगे
कितने वर्ष हुए, इस विषयमें सव ज्योतिषियों के द्वारा निश्चित किया हुआ समय
उन्हें नहीं माल्म था। यह बात सिद्ध हो
सुकी है किये नये पुराणकार और भारतीय
ज्योतिषी एक ही समयमें, अर्थात् सन्
ईसवीके पहले ४०० से ५०० तक, हुए।
इससे माल्म होता है कि एक ही समयके
इन पुराणकारों को बहुत कम बातें माल्म
थीं। अस्तु। सब बातों को देखकर हमें
यहीं कहना पड़ता है कि विष्णुपुराण और
भागवतपुराणमें वतलाई हुई पीढ़ियों और
वर्षों का प्रमाण, मेगास्थिनी ज़के प्रमाणके
सामने, मानने योग्य नहीं है।

मेगास्थिनीज श्रीर पुराणकार।

इस विषयका अधिक विस्तारपूर्वक विचार करना आवश्यक है कि मेगासि-नीज़के द्वारा लिखी हुई वातें श्रिधिक विश्वसनीय हैं। पहले हम इस बातका विचार करेंगे कि मेगास्थिनीज़ने कौन कौन सी वातें लिख छोड़ी हैं श्रीर उनपर क्या क्या ब्राचेप किये जा सकते हैं। यह बात प्रसिद्ध है कि मेगास्वनीजका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ नष्ट हो गया है। यदि वह रहता तो हमें राजा लोगोंके नाम श्रीर वर्ष भी व्योरेवार लिखे मिलते। वैविलोनमें वेरोससके द्वारा श्रौर ईजिप्टमें मेनेथोके द्वारा तैयार की हुई वंशावली त्राजतक प्रसिद्ध रहनेके कारण, जिस तरहसे उन देशोंके इतिहासको सहायता पहुँचाती है, उसी तरहसे यदि मेगास्थिनीज़के द्वारा लिखी हुई वंशावली इस समय हमारे सामने रहती तो हमें कोई शङ्का न रह जाती। उसका प्रन्थ नष्ट हो जानेसे दो तीन इतिहास-लेखकोंने उसके ग्रन्थसे जो श्रवतरण लिये हैं, उन्हें हम यहाँ उद्धृत करते हैं।

िलनीके द्वारा लिया हुआ अवतरण।

"वॅकसके समयसे अलेक्ज़ेंडरतक १५८ राजाओंकी गणना है और उनके राज्यकालकी अवधि ६४५१ वर्ष और ३ महीने हैं।"

त्र्रायनके ग्रन्थमेंका अवतरण।

"हिन्दुस्थानके लोग डायानिसॉस (बकॅस) के समयसे संड्कोटस (चन्द्र-गुप्त)तक १५३ राजा और ६०४२ वर्षोंकी अवधिका होना मानते हैं; परन्तु इस अवधिमें तीन बार लोकसत्तात्मक राज्य स्थापित हुआ...दूसरी बार ३०० वर्षोंतक और एक बार १२० वर्षोंतक। हिन्दुस्थान-के लोग कहते हैं कि डायानिसॉस हिरा-क्कीज़से १५ पीढ़ियोंके पहले हुआ था।"

उपरके अवतरणोंसे स्पष्ट माल्म होता है कि ईजिण्ट और वैबिलोन देशोंमें श्रीक लोगोंको मिली हुई वातोंकी ही तरह ये वातें भी राजाओंके राज्यकालकी वर्ष-संख्या सहित व्योरेवार थीं। इनमें महीनोंतकका निश्चित श्रद्ध दिया हुआ है। अपरके दोनों अवतरणोंमें वर्षोंकी संख्यामें यद्यपि थोड़ा सा फरक है, तथापि वह महत्त्वका नहीं हैं श्रीर जो लोक-सत्ताक राज्य स्थापित होनेकी बात कहीं गई है, उसे बहुधा अराजक-काल सम-भना चाहिये।

महाभारतमें अथवा अन्य पूर्वकालीन अन्थोंमें प्राचीन राजाओंका राज्य वर्ष-संख्या-सहित उल्लेख कहीं नहीं है। इससे यह पाया जाता है कि चन्द्रगुप्तके समयमें प्राचीन राजाओंकी राज्य-वर्ष-संख्या-सहित अलग वंशावली रही होगी; और इन बातोंको मेगास्थिनीज़ने उसके आधारपर लिखा होगा। हम पहले बतला चुके हैं कि महाभारतको अन्तिम रूप

मेगास्थिनीज़ के बाद मिला। इससे यह बात ध्यानमें श्रा जायगी कि ये बातें कितनी पुरानी हैं। हम पहले बतला चुके हैं कि इस श्रवतरण में बतलाया हुआ हिराक्षीजका श्रीकृष्ण होना सर्वमान्य है; परन्तु यह निश्चयपूर्वक नहीं बतलाया जा सकता कि डायानिसांस कौन है। तथापि यह कहा जा सकता है कि उसे दान्नायण मनु मान लेने पर, उसके समयसे महाभारत और हरिवंशमें बतलाये हुए श्रीकृष्ण तक १५ पीढ़ियाँ होती हैं (श्रादि० श्र० ७५)। इसलिये कहा जा सकता है कि मेगास्थिनीज़की बतलाई हुई बातके लिये यह एक और नया सहायक प्रमाण मिलता है।

श्रीकृष्णकी वंशावली हरिवंशमें तो दी ही हुई है; परन्तु वह एक जगह महा-भारतमें भी दी हुई है, जिससे मालूम होता है कि दत्तसे श्रीकृष्ण १५वाँ पुरुष है। यह वंशावली अनुशासन पर्वके १४७ वें श्रध्यायमें दी गई है जो इस तरह है-१ दत्त-कन्या दान्तायणी । २ (विवस्वान्) श्रादित्य-३मनु-४ इला-५ पुरूरवा-६ त्रायु—७ नहुष—= ययाति—६ यदु— १० कोष्टा-११ वृजिनीवान्-१२उपंगु-१३ शूर-१४ वसुदेव-१५ श्रीकृषा इनमेंसे वृजिनीवान् श्रीर उषंग् ये नाम हरिवंशमें नहीं हैं। उनके बदले देवमी-दुष नाम है। आदि पर्वके ७६ वें अध्याय-के श्रारम्भमें ययाति प्रजापतिसे १०वाँ पुरुष वतलाया गया है। उसे स्वयं ब्रह्म-देवसे मानना चाहिये। ब्रह्मदेवसे प्रचेताः श्रौर उससे दत्त प्राचेतस हुए। दत्तका प्रजापति नाम होनेके कारण यहाँ ऐसा संशय उत्पन्न होता है। इसके आधार पर भी यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि मेगास्थिनीजको असली बातोंका ज्ञान महाभारतकालीन परिडतोंके द्वारा हुआ था। इस कारणसे उसकी बतलाई हुई

१५३ पीढ़ियाँ, पुराणोंकी श्रन्तिम श्रावृत्ति-में दी हुई पीढ़ियोंसे, श्रधिक विश्वस-नीय हैं।

मेगास्थिनीज़की वतलाई हुई वातोंके विरुद्ध यह त्राचेप हो सकता है कि पीढ़ियोंकी संख्याके परिणामसे वर्ष-संख्या बहुत अधिक है। हम पहले कह चुके हैं कि समस्त संसारके इतिहासके श्राधार पर यह हिसाव लगाया गया है कि राजाश्रोंकी प्रत्येक पीढ़ीके लिये २० वर्ष लगते हैं। तब प्रश्न है कि १५३ पीढियोंके लिये ३०६० वर्षके वदले ६०४२ वर्ष कैसे दिये गये हैं ? परन्तु हमें दूसरे देशोंकी राजवंशावलियोंके उदाहरलोंके आधार पर यह देखना चाहिये कि आर्य लोगोंके सम्बन्धमें मेगास्थिनी ज़की वातें कैसी विश्व-सनीय हैं। हमें मालूम होगा कि प्रत्येक देशमें मानवी राजात्रोंके होनेके पहले थोड़े बहुत देवांश राजा मान लिये जाया करते हैं; और ऐसे राजाओं की वर्ष-संख्या श्रिधिक हुआ करती थी। मेनेथोके द्वारा संशोधित ईजिप्ट देशकी राजवंशावलीमें मानवी राजा मेनिससे श्रारम्भ होते हैं। उसके पहले देवांश राजा थे। उसने लिखा है कि इसके बाद कोई देवांश राजा नहीं हुआ। हमारे यहाँ भी श्रीकृष्णके ईश्वरी अवतारके हो जानेके बाद कलि-युगका प्रारम्भ हुआ। अर्थात् , श्रीकृष्णके बाद कोई ईश्वरी अंशवाला राजा नहीं हुआ। हिराक्लीज अथवा श्रीकृष्णतक १५ पीढ़ियोंको घटाकर शेष १३८ पीढ़ियों-को मानवी राजात्रोंकी समभना चाहिये श्रीर इन राजाश्रोंके राज्य-वर्षोंका समय २० वर्ष ही लेकर हमने इनका समय २७६० वर्ष ठहराया है। ६०४२ वर्षोमें इस समयको घटा देने पर ३२८२ वर्ष बच जाते हैं। इन शेष वर्षीको १५ पीढ़ियोंका समय मान लेने पर प्रत्येक पीढ़ीके लिये

२०२ वर्ष पड़ते हैं। यह वर्ष कुछ अधिक नहीं है। महाभारतमें दिये हुए वर्णनसे मालूम हो सकता है कि वसुदेवकी उम्र कितनी थी। अन्य देशोंके इतिहासको देखनेसे भी यह वर्ष-संख्या वडी नहीं मालूम होती। यह वर्णन पाया जाता है कि ईजिप्ट श्रौर खाल्डिया देशोंके देवांश राजाश्रोंने बहुत वर्षीतक राज्य किया। ज्य लोगोंकी वंशावलीको लीजिये। यह श्रिधिक विश्वसनीय श्रीर सावधानता-पूर्वक सुरित्तत है। इसमें भी मोजिस नामक मानवी राजाके पहलेके प्रजापति-(पेट्रियार्क) की वर्ष-मर्यादा बहुत ही बड़ी है। पहले भागमें अर्थात् सृष्टिकी उत्पत्तिसे जलप्रलयतक अथवा आदमसे नोत्रातक ११ पुरुषोंके २२६२वर्ष बतलाये गये हैं, अर्थात् प्रत्येक पीढ़ीके लिये लग-भग दो सौ वर्ष पड़ते हैं। दूसरे भागमें अब्राहमतक ११ पुरुषोंके लिये १३१० वर्ष माने गये हैं, अर्थात् प्रत्येक पीढ़ीके लिये ११० वर्ष होते हैं। श्रीर तीसरे भागमें मोजिससे सालोमनतक १२ पीढ़ियोंके ४०८ वर्ष बतलाये गये हैं। ये मानवी प्रमाणके ब्रानुसार हैं। सारांश, श्रन्य देशोंको तुलनासे हम स्पष्ट कह सकते हैं कि मेगास्थिनीज़ने जो बात लिखी है वह बिलकुल सम्भव है। १५३ पीढ़ियोंका उल्लेख उसने तत्कालीन लेखोंके प्रमाण पर किया है स्रोर हिन्दुस्थानका ऐतिहा-सिक काल सन् ईसवीके पहले ३१०१ वर्ष निश्चित होता है। इसमें कोई ऋश्चर्य-की बात नहीं है। ईजिप्टमें पहला मानवी राजा सन् ईसवीके पहले ३३७० वें वर्षमें राज्य करने लगा था। ईजिप्टमें सबसे बड़ा पिरामिड स्तम्भ सन् ईसवीके पहले २५०० वें वर्षमें बनाया गया । चीनका पहला मानवी राजा सन् ईसवीके पहले २०८५ में वर्षमें गही पर बैडा। इन पाचीन देशोंके इतिहासके उदाहरणसे सिद्ध होता है कि यदि हिन्दुस्थानमें भार-तीय आयोंके पहले ऐतिहासिक राजा पागडव तथा श्रीकृष्ण सन् ईसवीके पहले ३१०१ वर्षमें राज्य करते थे, तो इसमें आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं है।

मेगास्थिनीजकी बातों पर दूसरा आचेप यह किया जाता है कि जिस अवधिमें श्रीकृष्णतक १५ पीढियाँ होती हैं, उसी श्रवधिमें मनुसे पाएडवीतक महाभारतमें ३५ पोढ़ियाँ दी हुई हैं। परन्तु इसमें भी श्राश्चर्य करने योग्य कोई बात नहीं है, क्योंकि ये पीढ़ियाँ कलियुगके पहलेके राजाओं की हैं, और उनकी वर्ष-संख्या भी बहुत बड़ी मानी गई है। ये राजा द्वापर-के और उसके भी पहलेके थे: अतएव उनकी भिन्न भिन्न शाखात्रोंमें १५ और ३५ पीढियोंका होना सम्भव है। अकेले भीष्म-के सामने विचित्रवीर्य, पाएड और युधि-ष्ठिरादि पाएडवकी तीन पीढ़ियाँ हो गई थीं। अर्थात्, बड़ी आयुर्मर्यादावालेकी शाखामें कम पीढ़ियोंका होना सम्भव है। मानवी पीढ़ियोंके शुरू होने पर हमने जो १३= पीढ़ियाँ ली हैं, उनकी भिन्न भिन्न शाखात्रोंमें दीर्घायुषी श्रौर श्रल्पायुषी राजाओंकी एकत्र वर्ष-संख्यामें सरसरी तौरसे प्रत्येकके लिये २० वर्ष रखना ही ठीक होगा। इन सव वातोंका विचार करने पर यही मानना चाहिये कि चन्द्र-गुप्तके समयमें मेगास्थिनीज्ञको हिन्दुस्थानमें जो बातें मालूम हुईं, वे ऋत्यन्त पुरानी श्रीर विश्वसनीय है।

पुराणोंमें वतलाई हुई पीढ़ियांकी दशा इससे उलटी है। पहले कहे अनु-सार पुराणोंकी वार्त अत्यन्त अर्वाचीन अर्थात् सन् ४०० ईसवीके लगभगकी हैं, यानी मेगास्थिनीज़के सात-आठ सौ वर्षोंके वादकी हैं। इस अविधिमें ग्रह,

बौद्ध श्रीर यवन राजाश्रोंके होनेके कारण प्राचीन चत्रियांकी वंशावलियाँ नष्ट हो गई होंगी। इन लोगोंका और इनके धर्मोका जाति-प्रथाके विरुद्ध, कटाच रहनेक कारण चत्रियोंकी वंशावलियोंको सुर्जित रखनेवाले स्त, पुराणिक श्रादिका, इस श्रविधमें नाश हो गया होगा । श्रर्थात पुराणोंमें बतलाई हुई पीढियों और वर्ष-संख्याकी वार्ते सब श्रंदाज़से दी गई होंगी बिंक बौद्ध श्रीर जैन लोगोंके मतीके श्राधार पर लिखी हुई होंगी। कारण यह है कि बुद्धके समयसे अथवा जिन महा-वीरके समयसे श्रीर इनके थे। इ समयके पहले जो राजा हो गये, उनके नाम और वर्ष-संख्याएं पुराणोंमें श्रधिकांशमें सम्भव एवं मिलती हुई दी गई हैं: श्रीर इससे पूर्वकालकी बातें केवल काल्पनिक मालुम होती हैं। इसी विषयका विस्तारपूर्वक विचार करना आवश्यक है।

पुराणोंमें ये सब वर्णन भविष्यरूपसे दिये गये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ये वर्णन उन राजाओं के हो जानेके बादके हैं। उनमें वर्ष-संख्यातक दी हुई मिलती है। इससे भी यह निर्विवाद है कि ये उन राजात्रोंके वादके हैं। इस रीतिसे विचार करने पर मालूम होता है कि प्रथम श्रांश्रांततक स्वकीय राज्य-संख्या दी हुई है। उसके बाद यवन आदि पर-राजाओंका एकत्र समय बतला देनेसे सब गडबडी हो गई है। तथापि हम बाईद्रथ वंशका श्रधिक विचार करेंगे, क्योंकि इसके बाद मगधमें होनेवाले वंशोंका हाल बौद्ध प्रन्थोंसे भी मिल सकता है। यह हाल वायु पुराणमें अधिक विस्तारपूर्वक इस तरह दिया गया है। प्रद्योत वंशके पाँच राचा हुए। विष्णुप्राणमें उनकी वर्ष-संख्या १३= है। परन्तु प्रत्येक राजाकी भी वर्ष-संख्या दी गई है जिनका

जोड़ १४८ होता है। इसी तरह इसके आगे शिश्चनाग वंशके दस राजाओं के ३६२ वर्षतक राज्य करनेकी बात कही गई है। परन्तु राजाओं के नाम और भिन्न वर्ष-संख्याएँ दी गई हैं जिनका जोड़ ३३४ होता है। इस ओर दुर्लज्ञ करके हम इसके पहले के बाई द्रथ वंशका विचार करेंगे। पुराणींका—प्रायः सब पुराणोंका—मत है कि यह वंश एक हजार वणींतक राज्य करेगा।

हात्रिशक नृपा होते भवितारा गृहद्रथात्। पूर्णं वर्षसहस्रं च तेषां राज्यं भविष्यति॥ इस वर्णनमें दिया हुन्ना एक हजार-

का स्थूल-श्रंक ही संशय उत्पन्न करता है। यह अनुमान होता है कि सचा हाल मालम न रहने पर स्थल श्रंक रख दिया गया है। दूसरी वात यह है कि एक ही वंश हजार वर्षोतक नहीं चल सकता। यह बात ऐतिहासिक श्रनुभवके विरुद्ध है। इस बातको भी ध्यानमें रखना चाहिये कि ये वर्ष कलियुगके मानवी वंशोंके हैं। बाईद्रथके बाद पांच सौ वर्षोंकी श्रवधिमें दो वंश हो गये। (दोनों वंशोंको मिलानेसे १३८ + ३६२ जोड ५०० ही होता है।) यह भी स्थूल अंक है। उसके बाद १०० वर्षों में नन्द हुए। यह अंक भी स्थूल है। श्रस्तु; हमं ज्योरेवार यह देखना चाहिये कि बाईद्रथ वंशका जो विस्तृत हाल दिया गया है, वह कैसा है। रहद्रथसे भारतीय-युद्ध-कालीन सहदेव नामक राजातक वायु पुराणमें ये दस राजा बतलाये गये हैं:—(१) बृहद्रथ (२) कुशात्र (३) ऋषभ (४) पुरायवान (५) विकान्त (६) सुधन्वा (७) ऊर्ज (८) नमस् (६) जरासंध (१०) सहदेव। यहाँ बृहद्रथसे जरासंध नवाँ है। परन्तु "प्रथमग्रासे मित्तका पातः" कीसी बात तो यह है, कि महाभारतमें जरासंघको बृहम्रथका प्रत्यच

पुत्र वतलाया गया है। (सभा० ग्र० १७) इससे यह कल्पना हो सकेगी कि इन पुराणोंकी वार्ते कितनी भूलसे भरी हैं। इससे यह कल्पना होते हैं। इनकी नाम काल्पनिक मालुम होते हैं। इनकी राज्य-वर्ष-संख्या नहीं दी गई है। प्रव हम वायुपुराणमें वतलाये हुए श्रागेके राजाश्रोंके नाम श्रीर वर्षसंख्या पर विचार करेंगे। वे इस तरह हैं:—

गर करगा व इस तरह है:—	
(११) सोमापि	पद वर्ष ।
(१२) श्रुतश्रवा	६४ व०
(१३) ऋगुतायु	२६ व०
(१४) निरामित्र	१०० व०
(१५) सुकृत	पृद्ध व०
(१६) बृहत्कर्मा	. २३ व०
(१७) सेनाजित्	२३ व
(१=) ध्रतंजय	४० व०
(१६) महाबाहु	३५ व०
(२०) ग्रुचि	पद वर
(२१) चेम	२८ व०
(२२) भुवत	६४ व०
(२३) धर्मनेत्र	. ५ व०
(२४) जुपति	. पूद्र वं
(२५) सुवत	३६ व०
(२६) इड्सेन	प्र व
(२७) सुमति	३३ व०
(२६) सुचल	२२ व०
(२६) सुनेत्र	् ४० व०
(३०) सत्यजित्	द्धे वं ०
(३१) बीरजित्	३५ व०
(३२) श्ररिजय	पूर्व वर
(२५) आर्णप	and the second

कुल ६६७ वर्ष ।

यह तफसीलवार फेहरिस्त जान-बूस-कर यहाँ दी गई है जिससे मालूम होगा कि भारती-युद्धके बादके ही २२ राजाश्रोंके समयका जोड़ १६७ वर्ष श्राता है। फिर ३२ राजाश्रोंका जोड़ एक हज़ार वर्ष कैसे श्रा सकता है ? इस फेहरिस्तमं कितने ही राजाश्रोंके नाम काल्पनिक श्रोर १०० श्रादि राज्य-वर्ष-संख्या भी काल्पनिक है। किंबहुना, "द्वितीयश्रासेऽपि मिलका-पातः" के न्यायसे देख पड़ेगा कि महा-भारतमं सहदेवके लड़केका नाम मेघसिंध है (श्रश्व० श्र० =२) सोमापि नहीं, जैसा कि अपर कहा गया है। कहनेका तात्पर्य यही है कि सब दृष्टियोंसे विचार करने पर प्रद्योत वंशके पहलेके वाईद्रथ-वंश सम्बन्धी पुराणोंकी बातें केवल काल्पनिक मालूम होती हैं।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि, यदि बाईद्रथ-वंश सम्बन्धी दी हुई कची वातों-को निराधार मान लें, तो

यावत्परीक्तितो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम्। एतद्वर्षसहस्रं तु न्नेयं पंचदशोत्तरम्॥

इस श्लोकमं समष्टि रूपसे दो हुई बातको क्यों नहीं मानना चाहिये ? परन्तु हमारा कथन है कि बिना जाँच किये श्रौर तफसील दिये ऐसे श्रंकको माननेके लिये कोई आधार नहीं है। वर्षों के हिसाव लगानेकी कोई दन्तकथा नहीं बतलाई जाती। इसका मूल आधार पीढ़ियाँ ही होनी चाहियें। ऊपर वतलायां जा चुका है कि फुटकर वंशोंका कुल जोड़ १६०० वर्ष होता है। हर एक मनुष्य कहेगा कि २२ बाहेंद्रथ, ५ प्रद्योत, १० शिशुनाग और ८ नन्द मिलाकर ४६ पीढ़ियोंके लिये १११५ श्रथवा १००६ वर्ष कुछ श्रधिक नहीं होते। परन्तु, सन् ईसर्वाके लगभग ५०० वर्षोंके बाद, भविष्य रूपसे यह बतलानेवाले पुराण-कारोंका कथन क्या सच मान लिया जाय, कि प्रद्योत वंशके पहले भारतीय युद्धतक एक ही बाईद्रथ वंश था? त्रथवा सन् ईसवीके लगभग ३०० वर्ष पहले यहाँ श्राकर, तत्कालीन प्रचलित वंशावलीको सावधानीसे देखकर लिखनेवाले निष्पत

मेगास्थिनीजका यह कथन अधिक विश्वसः नीय समका जाय, कि भारतीय-युद्धसे चन्द्रगुप्ततक १३८ पीढ़ियाँ हो गई? हमारा मत है कि कोई श्राधार-भूत बात या प्रमाण जितना अधिक प्राचीन या पूर्व कालीन हो, उतना ही अधिक विश्वसनीय वह माना जाना चाहिये। पूर्व पूर्व वातों की परंपरासे देखने पर पुराणोंका स्थान श्रन्तिम है। उनके पहले मेगास्थिनीजको श्रीर उसके भी पहले वेदांगोंको स्थान देना चाहिये। स्वयं दीनितने निश्चित किया है कि वेदांग ज्योतिषका समय सन् ईसवी-के लगभग १४०० वर्ष पहले है । उनकी यह बात पुराणोंके विरुद्ध होती है, क्यों-कि यह स्पष्ट है कि भारतीय युद्ध वेदांग-ज्योतिषके बहुत वर्ष पहले हुआ है। परन्त इससे भी पहलेका प्रमाण, अर्थात सामान्यतः समस्त भरतखग्डमें मान्य समभे जानेवाले भारतीय युद्धका सन् ईसवीके ३१०१ वर्ष पहलेका समय हमें उपलब्ध हुआ है : और इससे भी मेगालि-नीजकी बातोंकी विश्वसनीयता अधिक सिद्ध होती है। इसलिये अब उस प्रमाण-की श्रोर ध्यान देना चाहिये।

वैदिक साहित्यका प्रमाण।

हम यहाँ विस्तारपूर्वक वतलावेंगे कि मेगास्थिनीजकी वातोंके विशेष विश्वसनीय होनेके सम्बन्धमें वैदिक साहित्यसे एक श्रत्यन्त महत्वपूर्ण और सबल प्रमाणका साधन कैसे मिल सकता है। ऋग्वेदके मंत्रोंकी जाँच करने पर मालूम होता है कि ऋग्वेदमें भारतीय युद्धका कहीं उन्नेख नहीं है; परन्तु भाग्यवश उसमें भारतीय योद्धाशोंके पूर्वजोंका एक मह त्वपूर्ण उन्नेख पाया जाता है। भीष्म और विचित्रवीर्यके वाप शंतनुका देवापि नामक एक भाई था। यह देवापि शंतनुके बड़ा था। विरक्त होनेके कारण राज्यका अपना हक छोड़कर वह जङ्गलको निकल गया था। महाभारतके आदि पर्वके ७५ वे अध्यायमें भी यह वात स्पष्ट रीतिसे बतलाई गई है।

देवापिः खलु वाल एव अर्एयं विवेश।

शंतनुस्तु महीपालो वभूव॥ ऋग्वेदेके "वृहद्देवता" ग्रन्थमें यही बात बतलाई गई है। वह श्लोक इस

ग्रकार है:--

त्रार्धिषेणश्च देवापिः कौरव्यश्चैवशंतमुः। भ्रातरौ राजपुत्रौ च कौरवेषु वभूवतुः॥

"ब्रार्धिषेण देवापि, श्रीर कौरव्य शंतनु दोनों भाई, राजपुत्र थे। उनका जन्म कौरव वंशमें हुआ।" देवापिको "श्रार्धिषेण्" इसलिये कहा है कि वह ऋष्टिषेण ऋषिका शिष्य हो गया था। देवापि बड़ा तपस्वी था। ऐसी एक कथा है कि एक बार शंतनुके राज्यमें अनावृधि हो गई थी श्रौर उस समय शंतनुके लिये पर्जन्यकी स्तुति करके देवापिने वर्षा करवाई थी। इस अवसर पर आर्धिषेग देवापिने जो सूक्त बनाया वह ऋग्वेदके दसवें मंडलमें प्रधित किया गया है। ऐसी समभ है कि इस दसवें मंडलमें, श्रनेक ऋषियोंके छोटे छोटे श्रलग श्रलग स्क हैं। खैर, देवापिकी कथासे अनुमान होता है कि भारतीय युद्ध ऋग्वेदके अनन्तर १०० वर्षोंके भीतर हुआ। कारण यह है कि देवापिका भाई शंतन, शंतनुके पुत्र भोष्म श्रौर विचित्रवीर्य तथा विचित्र-वीर्यके पुत्र धृतराष्ट्र श्रीर पांडु थे; श्रीर युक्क समय भीष्म बुड्ढे हो गये थे, परन्तु जीवित थे। इस तरहसे पागिटर साहब-ने इस बातको सबसे पहले संसारके सन्मुख प्रकट किया है, कि भारतीय-युद्ध-का मेल ऋग्वेदके समयसे होता है। हमें भी पार्शिटर साहबका यह सिद्धान्त

मान्य है। यही नहीं, किन्तु इस वातका समर्थन करनेवाली एक दूसरी वात हमें मिली है। महाभारतमें पांचलोंको बार बार "सोमकाः" कहा है। द्रोणने अश्व-त्थामाको "पांचालों पर आक्रमण करो" कहते समय कहा है किः—

सोमका न प्रमोक्तव्या जीवितं परिरचता ।

"अपने प्राणोंकी रत्ना करके सोमकीं-को छोड मत देना।" एक स्थान पर द्रुपद राजाको भी सोमककी संज्ञा दी हुई है। बहुत दिनोतक इस वातका पता नहीं लगता था कि ये सोमक कौन थे। परन्तु वैदिक इन्डेक्सके आधार पर माल्म हुआ कि ऋग्वेदमें "सोमकः साहदेव्यः" कह कर सहदेव-पुत्र सोमकका उल्लेख एक सक्तमें किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मणमें भो वर्णन पाया जाता है कि सहदेव-पुत्र सोमकने एक राजसूय यज्ञ किया था; श्रीर पर्वत तथा नारद ऋषियोंके कथ-नानुसार, विशिष्ट रीतिसे, सोमरस निकालनेके कारण उसकी ऋत्यन्त कीर्ति हुई थी। यह सोमक दुपद्का पूर्वज था। हरिवंश (अ० ३२) में सहदेव, सोमक, जन्तु, पृषत् श्रौर द्रुपद्, इस प्रकार पीढ़ी वतलाई गई है।इससे इस बातका कारण मालूम होगा कि महाभारतमें धृष्टद्मको पार्षत और द्रोपदीको पार्षती क्यों कहा गयाहै। "साहदेव्यः सोमकः" ऐसा उन्नेख ॠग्वेदमें श्राया है। सोमक राजसूय करनेवाला बड़ा सम्राट्था, श्रतएव उसके वंशजोंको "सोमकाः" नाम मिला; श्रौर यह नाम भारतमें बार बार पाया जाता है। दुपद भारतीय युद्धमें था, इस बातसे भी यह मान लेनेमें कोई हर्ज नहीं कि, भारतीय युद्ध ऋग्वेदके श्रनन्तर चार पाँच पीढ़ियाँ-में अर्थात् १००—१५० वर्षीमें हुआ।

य अथात १०००-५ हैं इससे हमारे अनुमानका पहला साधक प्रमेय सिद्ध हो गया जो कि इस

तरह है। पार्गिटर साहवके कथनानुसार भारतीय युद्ध ऋग्वेदके बाद १०० वर्षोंमें हुआ। अब हम अपने अनुमानका दूसरा साधक भाग वतलावेंगे। प्रो० मैक्डानल अपने संस्कृत साहित्यके इतिहास-सम्बन्धी ग्रन्थमें कहते हैं:- "महाभारतकी मूलभूत ऐतिहासिक कथा, कुरु श्रीर पांचाल नामक पड़ोस पड़ोसमें रहनेवाले, दो राजाओं के बीचमें होनेवाला युद्ध है। इस यद्भके कारण और बाद वे लोग एक हो गये। यजुर्वेदमें इन दोनों जातियोंका सम्मिलित होना लिखा है। काठक-ब्राह्मण-में धृतराष्ट्र वैचित्रवीर्य राजाका वर्णन वैसा ही किया गया है जैसा सव लोगों-को मालूम है। इरासे कहना पड़ता है कि महाभारतमें बतलाया हुआ यह युद्ध श्रत्यन्त प्राचीन समयमें हुआ। यह समय ईसवी सन्के पहले, दसवीं सदीके इस पार नहीं हो सकता।" इस अवतरणसे विदित होगा कि भारतीय युद्ध-कालके सम्बन्धमें वैदिक साहित्यके प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वानोंका क्या मत है । इस विचार-प्रणालीका एक भाग हमें मान्य नहीं है, परन्तु दूसरा भाग मान्य है। प्रोफेसर मैक्डानलने यजुर्वेदका समय सन् ईसवीके १००० वर्ष पूर्व रखा है। इस भागको छोड़कर उनके शेष मतको मान्य समभना चाहिये। यज्ञवेंदमें कुरु-पांचालोका एकत्र उल्लेख है श्रीर काठक-ब्राह्मण्में वैचित्रवीर्य धृतराष्ट्रका उल्लेख है। इससे यह अनुमान निश्चयपूर्वक निकलता है कि, भारतीय युद्ध यजुर्वेदके पहले अथवा काठक-ब्राह्मणके पहले हुआ। इसी श्रनुमानको हमारेमतानुसार दूसरी सहायता इस बातसे मिलती है, कि गुक्क-यजुर्वेदके शतपथ-ब्राह्मण्में जनमेजय पारी-जितका उल्लेख है। इससे यह सिद्ध है कि भारतीय युद्ध यजुर्वेदके और उसके अन्त-

र्गत ब्राह्मणोंके पहले हुआ; श्रलवत्ता यह माल्म नहीं होता कि वह कितने वर्षोंके पहले हुआ।

इस प्रकार हमारे अनुमानका पहला प्रमेय सिद्ध हो गया । हमारा पहला प्रमेय यह है कि भारतीय युद्ध ऋ ग्वेट-रचना-कालके अनन्तर १०० वर्षोमें और यज्ञवेंद्र तथा शतपथ बाह्मएके कुछ वर्षोंके पहले हुआ। अव यदि ऋग्वेद श्रथवा यजुर्वेदका समय उहराया जा सके, तो भारतीय युद्धका समय सहजमें ही वतलाया जा सकता है। यही हमारा दूसरा प्रमेय है। इस प्रमेयके सम्बन्धमं पाश्चात्य विद्वानींका और हमारा तीव मतभेद है। पार्शिटर साहव कहते हैं कि. अरुवेदके अन्तिम सुक्तको देवापिका और पहले सुक्तको विश्वामित्रका मान लेनेपर, देवापि श्रौर विश्वामित्रमें पीढ़ियोंके श्राधार पर ७०० वर्षोंका अन्तर दिखाई पडता है: श्रौर भारतीय युद्धके समयको सन् ईसवीके १००० वर्ष पहले मान लेने पर ऋग्वेदका समय सन् ईसवीके पूर्व १०००-१७०० वर्गीतक पीछे चला जाता है। माल्म होता है कि इसमें प्रोफेसर मैक्डानलके मतका ही आधार लिया गया है: इसी लिये इन्होंने यज्जर्वेदकी रचनाका समय सन् ईसवीसे १००० वर्ष पूर्व माना है। पाश्चात्य परिडतोंने वेदों-का जो यह रचना-काल निश्चित किया है उसका श्राधार क्या है ? उनका श्रीर हमारा यहीं पर मतभेद होता है। पाश्चात्य परिडत वैदिक साहित्यको विलक्त श्रवाचीन कालकी श्रोर घसीटनेका प्रयत करते हैं और इस तरहसे वे भरतखएडके पाचीन इतिहासकी सभी बातोंको अर्वाः चीन कालकी श्रोर घसीटते रहनेकी भूल किया करते हैं। पार्गिटर श्रीर मैक्डानल-के एक मतको मान्य करके हमारा पहला

प्रमेय सिद्ध हुआ है। वह यह है कि भार-तीय-युद्ध ऋग्वेदके अनन्तर श्रोर यजुर्वेदके पहले, विशेषतः शतपथ-ब्राह्मणके पहले, हुआ। श्रव यदि हम निश्चयके साथ बतला सके कि ऋग्वेदका, यजुर्वेदका श्रथवा शतपथ-ब्राह्मणुका समय कौनसा है, तो भारतीय युद्धका समय निश्चय-पूर्वक बतलाया जा सकता है । ऋग्वेद ब्रीर यजुर्वेदका समय निश्चित करनेमें थोड़ीसी अड़चन है। यह एक प्रसिद्ध बात है कि ऋग्वेदके भिन्न भिन्न सक्त भिन्न भिन्न समयमें बनाये गये हैं। इसी प्रकार यज्ञर्वेदकी भी रचना कई शताब्दियोंतक होती रही है, क्योंकि ऋग्वेदके पुरुषसक-में यज्ञवेंदका उल्लेख है। खैर, यह बात निर्विवाद मालूम होती है कि शतपथ-ब्राह्मणके पहले ऋग्वेद स्कोंकी रचना पूरी हो गई थी और ऋग्वेदका एक निश्चित पूर्वापर-सम्बद्ध य्रन्थ तैयार हो गया था । प्रोफेसर मैक्डानल अपने पूर्वोक्त प्रन्थके ४६वे पृष्ठ में कहते हैं, कि ब्राह्मण प्रन्थोंकी ऋग्वेद-विषयक भिन्न भिन्न चर्चात्रोंसे ऐसा मालूम होता है कि, उस समय ऋग्वेदकी संहिता एक विशिष्ट रीतिसे श्विरतापूर्वक निश्चित हो चुकी थी; यजुर्वेदके गद्य वचनोंके समान उसमें अनिश्चित-पन नहीं था। शतपथ-ब्राह्मणमें एक स्थान पर स्पष्ट कहा गया है कि-"यजुर्वेदके गद्य वचनोंका पाठ वदलना सम्भव है, परन्तु ऋग्वेदकी ऋचाश्रोंका पाठ बदलना श्रसम्भव है।" यही नहीं, किन्तु ब्राह्मण-ब्रन्थोंमें यह भी उल्लेख पाया जाता है कि ऋग्वेदके अमुक सूक्तमें इतनी ऋचाएँ हैं श्रीर इस समय भी ऋग्वेदमें उतनी ही ऋचाएँ मिलती हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण-प्रन्थोंके समय समग्र ऋग्वेद ग्रन्थ सुबद्ध, निश्चित श्रीर सर्वमान्य अति-प्रन्थ समभा जाता था।

यह जो धारणा प्रचलित है कि अग्वेटकी व्यवस्था करनेका काम व्यासने किया और ये व्यास भारतीय युद्धके समय थे, वह उक्त विधानके श्रनुकृल है। श्रर्थात्, ऋग्वेदके वाद भारतीय युद्ध १०० वर्षोंके अन्दर हुआ और भारतीय युद्धके बाद ब्राह्मण ब्रन्थ विशेषतः शतपथ-ब्राह्मण-यन्थ तैयार हो गया । महाभारतसे भी ऐसा ही मालूम होता है कि शतपथ-ब्राह्मणकी रचना भारतीय युद्धके बाद हुई। श्रागे इस वातका उल्लेख किया ही जायगा कि शान्ति० अ० ३१ = में वतलाये अनुसार शतपथ ब्राह्मण श्रीर शुक्क यज्ञ-र्वेदकी रचना याज्ञवल्याने कब और कैसे की। उससे महाभारत कालमें भी यही विचार लोगों में प्रचलित होना पाया जाता है कि शतपथ-ब्राह्मण भारती युद्धके वाद तैयार हुआ। श्रतएव, अब यहाँ श्रत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित होता है कि, क्या शतपथ-ब्राह्मणका समय निश्चित किया जा सकता है ?

कृत्तिकाका ठीक पूर्वमें उदय होना।

प्रोफेसर मैक्डानलने ब्राह्मण-प्रन्थोंका समय सन् ईसवीके पहले =००-५०० तक बतलाया है। परन्तु यह समय अत्यन्त भीहतासे अर्वाचीन कालकी श्रोर घसीटा हुश्रा है। प्रोफेसर मैक्डानल श्रुग्वेदको सन् ईसवीके पूर्व १५००-१००० वर्ष तकका बतलाते हैं; परन्तु प्रोफेसर जेकोबी सन् ईसवीके पूर्व ४००० वर्षोतक पीछे जाते हैं। चाहे जो हो, शतपथ-ब्राह्मणके समयको अत्यन्त निश्चित रीतिसे स्थिर करनेके लिये एक प्रमाण मिल गया है। उसके श्राधारसे इस अन्थका समय ईसवी सन्से पूर्व ३००० वर्ष ठहरता है। यह सोज हमारी की हुई नहीं है। इस सोजका

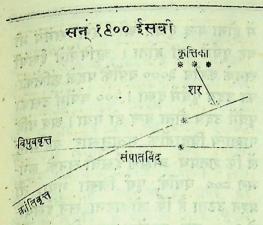
श्रेय शङ्कर बालकृष्ण दीन्नितको है जिसे उन्होंने भारतीय ज्योतिष-शास्त्र-सम्बन्धी श्रुपने इतिहास-ग्रन्थमें दिया है। उन्होंने श्रुपने इतिहास-ग्रन्थमें दिया है। उन्होंने श्रुपने दिया है। उन्होंने श्रुपने पाउकोंके सन्मुख भी श्रुपनी इस खोजको "इरिडयन एन्टिकरी" नामक मासिकपत्रके द्वारा उपिथत किया है, परन्तु उसका उत्तर श्राजतक किसीने नहीं दिया। श्रुपनी खोजके सम्बन्धमें दीन्तित कहते हैं:—"यह बात निश्चयके साथ सिद्ध की जा सकती है कि शतपथ-श्राह्मणके कमसे कम उस भागका समय जिसमेंसे नीचे लिखा हुआ वाक्य लिया गया है, सन् ईसवीके लगभग ३००० वर्ष पूर्व है। वह वाक्य इस प्रकार है:—

कृत्तिकास्वादधीत। एता ह वै प्राच्ये दिशो न च्यवन्ते सर्वाणि ह वा अन्यानि नत्तत्राणि प्राच्ये दिशश्चवन्ते।

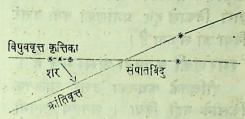
(ब्रर्थः - कृत्तिका नत्तत्र पर अग्निका श्राधान करना चाहिये। निश्चित वात है कि कृत्तिका पूर्व दिशासे च्युत नहीं होती। बाकी सब नत्तत्र च्युत हो जाते हैं।) इस वाक्यसे, उस समयमें, कृत्तिकाका ठीक पूर्वमें उदय होना पाया जाता है। साधारणतः लोगोंकी धारणाके अनुसार सभी नत्तत्र पूर्वमें उदय होते हैं; परन्तु उपरके वाक्यमें कृत्तिकाके उदय होनेमें श्रीर श्रन्य नत्त्रशंके उदय होनेमें अन्तर बतलाया गया है। इससे श्रीर च्यव धातु-से, इस वाक्यका यह अर्थ मालूम पड़ता है कि उदय होते समय कृत्तिका ठीक पूर्वके बिन्द्रमें श्रीर श्रन्य नत्तत्र इस बिन्दुके दाहिने अथवा बाएँ श्रोर दिखाई पड़ते थे। ज्योतिष शास्त्रके अनुसार इसका यह अर्थ है कि जिस समय यह वाक्य लिखा गया, उस समय कृत्तिका ठीक विष्ववृत्त परं थी। इस वाक्यसे यह भी दिखाई पड़ता है, कि वैदिक ऋषियोंने पूर्वबिद्दका निश्चय कर लिया था श्रीर

वे नत्तत्रोंका उदय देखा करते थे। सम्पातः बिन्दुके पीछे हट जानेके कारण, आजकल कृतिका पूर्वमें नहीं उद्य होती। कृत्तिका की त्राजकलकी स्थितिसे उस समयका काल निश्चित किया जा सकता है जब कि वह विष्ववृत्त पर थी। वह काल सन ईसवीके २८६० वर्ष पूर्व त्राता है। इसे स्यूल रीतिसे ३००० वर्ष पूर्व मान लिया जाय तो कोई हर्ज नहीं। "गणित करके मैंने (दीचितने) यह भी देखा है कि उस समय सत्ताइस नत्तत्रोंमेंसे दूसरा कोई नदात्र विष्ववृत्त पर नहीं था, ऋथीं पूर्वमें उदय नहीं होता था। यह वर्तमान कालका प्रयोग है-भूतकालका नहीं-कि कृत्तिका पूर्व दिशासे च्युत नहीं होती। अर्थात्, इस वाक्यमें पूर्व समयकी बात नहीं बतलाई गई है। मेरी रायमें इस विधानसे निश्चयपूर्वक सिद्ध होता है, कि यह वाक्य सन् ईसवीसे पूर्व ३००० वर्षोंके इस त्रोर नहीं लिखा गया।" (इरिडयन एन्टिकेरी, भाग २४, पृष्ठ २४५)

दीचितके उपर्युक्त कथनका खरडन श्राजतक किसीने नहीं किया। यह कथन इतने महत्त्वका है कि उसे पाठकोंको स्पष्ट समभा देना चाहिये। फ़त्तिका-नदात्र कान्तिवृत्तके उत्तरमें है और वह स्थिर है; यानी उसका शर कभी न्यूनाधिक नहीं होता। जैसे श्राजकल कृत्तिकाका उदय पूर्व विन्दुसे हटकर उत्तरमें होता है, वैसे पूर्व कालमें नहीं होता था जब कि सम्गत-बिन्दु किसी दूसरी जगह था। जितने तारे विषुववृत्त पर रहते हैं केवल उतने ही ठीक पूर्वमें उदय होते हैं; ब्रौर सम्पात-बिन्दुके पीछे हट जानेके कारण तारागण विध्ववृत्तसे छूट जाते हैं। नीवे की आकृतिसे पाठकोंके ध्यानमें यह बात ' या जायगी कि ऐसी स्थित क्यों हो जाती है:--



सन् ईसवीके २००० वर्ष पहले 🥕



इस समय कृत्तिका विषुववृत्तके अपर उत्तरमें है। पहले किसी समयमें वह विषुववृत्त पर थी। क्रान्तिवृत्त और विष्ववृत्तका कोण २३ श्रंशोंका है और क्रतिकाका शर भी निश्चित तथा स्थिर है। इससे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि संपातविन्दु उस समय कितने पीछे था। दीचितने सन् १६००की स्थितिके ६=° श्रंश पीछे होना निश्चित किया है। अर्थात्, १६००के पहले, ६= × ७२ (प्रति ७२ वर्षोंमें संपात एक श्रंश पीछे हट जाता है; इस हिसाबसे) = ४=१६ वर्ष श्राते हें । इनमें १६०० घटा देनेसे, सन् ईसवीके लगभग २६६६ वर्ष पहले. शतपथ-ब्राह्मणका उक्त वाक्य लिखा गया होगा। शतपथ-बाह्मण्से कई शताब्दियोंके पहले ऋग्वेद तैयार हो गया था। अर्थात् ऋग्वेदका श्रन्तिम काल सन् ईसवीके ३२०० वर्ष पूर्व मानना चाहिये। भारतीय ऋग्देवके अनन्तर १०० वर्षोमें हुआ, श्रतएव दीचित द्वारा बतलाये हुए काल पर हमने अपने अनुमानकी यह नीव डाली है, कि ई० स० पू० ३१०१ ही भारतीय युद्धका समय निश्चयपूर्वक सिद्ध होता है।

हम अपने कथनका सारांश पाठकोंके सामने संज्ञेपमें फिर रखते हैं। ऋग्देवमें, अंत अंतमें, देवापिका सूक्त है। देवापि,

भीष्मके पिता शंतनुके भाई थे। इसका श्रर्थ यह होता है कि ऋग्देवके बाद थोड़े वर्षोंके भीतर भारतीय युद्ध हुत्रा। शत-पथ ब्राह्मण्में पूरे ऋग्देवका उल्लेख है श्रौर जनमेजय पारी चित-पांडवींके पोते-का भी उल्लेख है। इसलिये युद्ध शतपथ-ब्राह्मणके पहले हुआ। दीचितने, शतपथ-ब्राह्मणके "कृत्तिकाका उदय ठीक पूर्वमें होता है" इस वाकाके ग्राधार पर, उस प्रन्थका समय सन् ईसवीके लगभग ३००० वर्ष पूर्व ठहराया है। अतएव भारतीय युद्ध-का जो समय सन् ईसवीके ३१०१ वर्ष पूर्व माना गया है वह उचित है; श्रौर भग्देवकी रचनाका श्रंतिम समय सन् ईसवीके ३२०० वर्ष पूर्व ठहरता है। बस, यही हमारी श्रनुमान-सरिए है। हम समभते हैं कि इस अनुमान-परम्परामें मीनमेख निकालनेके लिये खान नहीं है। यह वात मैक्डानल ग्रादि सब पाश्चात्य पंडितोंका मान्य है कि भारतीय युद्ध ऋग्देवके बाद और शतपथ-ब्राह्मण्के पहले हुआ। वे ऋग्देव और शतपथ-ब्राह्मण-के समय को ही इस श्रोर वहुत खींचते हैं। परन्तु यह उनकी भूल है। उसके लिये कोई दढ़ आधार नहीं है। दीन्नितने जो समय वतलाया है वह ज्यातिपविषयक उल्लेखके आधार पर गणित करके निश्चित किया गया है। वह कभी खंडित नहीं किया जा सकता। ऐसी दशामें हम थोड़ा इस बातका विचार करेंगे कि दीचित द्वारा निकाले हुए प्रमाणका क्या उत्तर दिया जा सकता है।

स्मरणकी कल्पना असम्भव है।

दीनितके कथनका उत्तर श्राजतक किसीने नहीं दिया । अतएव अपनी कल्पनाके द्वारा हम वतलावेंगे कि उसका क्या उत्तर दिया जा सकता है। कभी कभी इस तरहका उत्तर श्रप्रत्यन्त रीतिसे सन्मुख त्राता है, इसलिये हमें उसका भी विचार करना चाहिये । कुछ लोगोंका कथन है कि इस तरहके विधान स्मरणके श्राधार पर किये जाते हैं। कृत्तिकाका पूर्वमें उद्य होना प्राचीन कालमें ऋषियोंने देखा होगा और यह बात अद्भत होनेके कारण लोगोंके स्मरणमें सेंकड़ों वर्षीतक रह गई होगी। इस कारण, यद्यपि शतपथ-ब्राह्मण श्रवीचीन कालमें लिखा गया हो, तो भी उसमें इस बातका उल्लेख किया गया होगा। इस प्रकार, स्मर्ग-मूलक इस कल्पनाकी मानकर शतपथ-ब्राह्मणके वचनका प्रमाण खिएडत किया जा सकता है।

परन्तु हमारा मत है कि यह स्मरणसम्बन्धी कल्पना नहीं उहर सकती।
शतपथ-ब्राह्मणके वाक्यमें वर्तमान काल
का प्रयोग किया गया है, भूतकालका
नहीं। कोई मनुष्य यह कह सकेगा कि
उसे श्रमुक समयमें धूमकेतु दिखाई पड़ा;
परन्तु धूमकेतु न दिखने पर ऐसा कोई
नहीं कहेगा कि धूमकेतु दिखा रहा है।
कृत्तिकाका उदय ठीक पूर्व दिशामें होता
था श्रोर वह करीब करीब १००-१५० वर्ष
तक पूर्वमें ही होता रहा; परन्तु सम्पातः
विम्दुके पीछे हटते रहनेके कारण कुछ
समयके बाद कृत्तिकाका उदय पूर्व विदु-

में होना वत्द हुआ। श्रीर इस समय भी वह पूर्वमें नहीं होता। ऋषियोंने ईसवी सन्के करीव ३००० वर्षीके पहले कृत्तिका-का उदय पूर्वमें देखा। २०० वर्षोमें उसका पर्वमें उदय होना वन्द हो गया। श्रव यदि पाश्चात्य विद्वानींके मतानुसार यह मान लें कि शतपथ- ब्राह्मण ईसवी सन्के लग-भग ६०० वर्षोंके पूर्व लिखा गया, तो प्रश्न उठता है कि जो घटना सन् ईसवी-के २८०० वर्ष पहलेसे वन्द हो गई थी, श्रर्थात् जिस् कृत्तिकाका २००० वर्षोंसे ठीक पूर्वमें उदय होना बन्द हो गया था: उसके सम्बन्धमें शतपथमें यह वाका कैसे लिखा जा सकता था कि उसका उदय पूर्वमें होता है ? यह स्मरण भी लोगोंमें इतने समयतक कैसे रह सकता हे ? कृत्तिकाका ठीक पूर्व बिन्दुमें उदय होना ऋषियोंने सन् ईसवीके लगभग ३००० वर्ष पूर्व बारीकीसे देखा था। यदि उस समय उनका उतना ज्ञान था, तो सम्भव है कि श्रायोंका ज्ञान इसी तरहसे आगे भी कायम रहा होगा; और यज्ञयाग आदिके करनेवाले, भविष्यमें भी आकाशकी और देखते रहे होंगे। तब उनके ध्यानमें यह भी आ गया होगा कि कृत्तिकाका उदय पूर्वमें नहीं होता श्रतएव, सार्ण-सम्बन्धी कल्पना यहाँ ठीक नहीं मालूम होती।

लोग श्राचेप कर सकते हैं कि श्राज-कल हम लोग चैत्र-वैशासकों जो वसन्त ऋतु कहते हैं, वह स्मरणके श्राधार पर कहते हैं। यदि प्रत्यच्च स्थिति देखी जाय तो सम्पातके पीछे चले जानके कारण फाल्गुन-चैत्रको वसन्त कहना चाहिये। पहले किसी समयमें वसन्तका पहला महीना चैत्र था श्रीर उस समयसे चैत्र-वैशासको वसन्त ऋतु कहनेकी परिपाटी शुरू हो गयी। श्राजकल स्थिति बदल गई हैं, परन्तु हम पहलेकी तरह चैत्र-वैशाख-को ही वसन्त ऋतु कहते हैं श्रौर पुस्तकों-में भी लिखते हैं । धार्मिक वातोंमें भी इसी प्रकार पिछले नियम स्थिर रहते हैं और बदली हुई नई स्थिति पर दुर्लद्य कर दिया जाता है। यह श्रांचेप पहले तो सम्भवनीय श्रीर ठीक दिखलाई पड़ता है, परन्तु यहाँ वह प्रत्युक्त नहीं हो सकता; क्योंकि कृत्तिकाके ठीक पूर्वमें उदय होनेकी बात स्वाभाविक रीतिसे बतलाई गई है। यह बात रोज़के पाठकी श्रथवा धार्मिक विधिकी नहीं हो गई। इसरी बात यह है कि जब प्रत्यन्न स्थिति ब्रीर पिछले समयकी स्थितिमें अधिक श्रंतर पड़ता है, तो नित्यका पाठ भी कई बार बदल जाता है। चैत्र-वैशाखको वसन्त ऋतु कहनेका पाठ, ऋतुके एक महीने पीछे हट जानेके कारण, बदल भी दिया गया है। अर्थात् पहले जब १५ दिनोंका अन्तर ध्यानमें आया, तब महीने पौर्णिमासे गिने जाने लगे और १५ दिन पीछे हटा दिये गये। जब इससे भी श्रधिक श्रन्तर देख पड़ा, तब ज्योति-षियोंने "मीनमेषयोर्वसन्तः" का शुरू कर दिया । पहले चैदिक कालमें कृतिका-रोहिणी ऐसा नत्तत्र-पाठ प्रच-लित था; वह श्रव श्रविनी-भरणी हो गया है। सारांश, हमारी राय है कि जो घटना दो हज़ार वर्षोंसे बन्द हो गई थी श्रीर बहुत बदल भी गई थी, वह शत-पथमें इस तरहसे कभी लिखी नहीं जा सकती, कि मानी वह आजकी है। यह वात स्पष्ट है कि वर्तमान समयका कोई कवि वैशाखका वर्णन वसन्तके समान नहीं करेगा—ग्रीष्मके ही समान करेगा।

इस प्रकार सारण-सम्बन्धी कल्पनाके इरि, शतपथ-ब्राह्मणके वाक्यका खरडन नहीं किया जा सकता । इस बाक्यसे सिद्ध होता है कि कृत्तिकाके ठीक पूर्वमें उदय होनेके सम्बन्धको, सन् ईसवीके २००० वर्षके पहलेकी घटनाको वैदिक ऋषियोंने उस समय देखा था । इससे मालूम होता है कि उस समय श्रायोंकी उन्नति बहुत हो चुकी थी। उन्होंने चारों दिशात्रोंके बिन्दुत्रोंका स्थान निश्चित कर लिया था और वे ताराओं के उदय-श्रस्तको हक्-प्रत्ययसे देखा करते थे। परन्त इसमें श्रार्थ्यय करने योग्य कोई वात नहीं है। सब लोग जानते हैं कि ईजिप्ट श्रौर वैविलोनके प्राचीन लोग वहुत उन्नत थे। उन्होंने सन् ईसवीके लगभग ४००० वर्षी-के पहले दिशास्रोंके बिन्दु खिर कर लिये थे। ईजिप्टमें पिरामिडोंके भुज श्रौर वैवि-लोनमें "जिग्रात" अथवा मन्दिरोंके कोण ठीक चारों दिशाश्रोंके बिन्दुश्रोंके त्रमुकूल हैं। ऐसी द्शामें, यह खाभाविक है कि हिन्दुस्थानमें सन् ईसवीके ३००० वर्ष पहले आर्य लोगोंको दिशाओंका ज्ञान था। हिन्दुस्थानमें आयोंने पिरामिड नहीं वनाये: तथापि वे यज्ञयाग किया करते थे। यज्ञोंमें प्राची-दिशाका साधन आवश्यक है श्रीर वर्षसत्र करते समय विषव दिवस का बड़ा महत्त्र माना गया है। उस दिन सूर्य ठीक पूर्वमें उदय होता है, श्रतएव प्राची-साधन करना बहुत कठिन नहीं था। श्रायोंकी यह ज्ञानोन्नति श्रागे भी स्थिर रही श्रीर यज्ञयागादि क्रिया जारी थी। यदि शतपथ-ब्राह्मणको सन् ईसवीके ५०० वर्षके पहलेका मान लें श्रीर कहें कि वीचके २००० वर्षतक तारागणका प्रत्यच देखा जाना बन्द नहीं हुआ था और कृत्तिकाका उदय पूर्वमें नहीं होता था, तो उसमें यह वाक्य कभी नहीं लिखा जा सकता था कि कृत्तिकाका उदय ठीक पूर्व-में होता है। यदि सन् ईसवीके ३००० वर्ष पहलेके जमानेमें आयोंकी प्रगति

इतनी वही चढ़ी थी कि वे दक्-प्रत्ययसे तारा-नद्यांकी जाँच कर सकते थे, तो यह भी माना जा सकता है कि उनमें शतपथ-ब्राह्मण लिख सकनेकी योग्यता भी उसी समय श्रवश्य थी। सारांश रूपमें इसी बातको सच समभना चाहिये कि जिस समयका यह दक-प्रत्यय है, उसी समय शतपथ-ब्राह्मण लिखा गया था।

पाश्चात्य विद्वानोंके द्वारा सभीत निश्चित किया हुआ वैदिक साहित्यका समय।

पाश्चात्य विद्वानोंने शतपथ-ब्राह्मणका समय सन ईसवीके =०० वर्ष पहलेका बतलाया है।यदि इस कालका निश्चय करते समय किसी श्रत्यन्त श्रचल प्रमाणसे काम लिया गया होगा, तो हमें थोड़ी बहुत कठिनाई मालम होती। उस दशामें इस बातका संशय हो जाता, कि दढ़ श्राधारों पर बने इए दो भिन्न भिन्न मतीं-मेंसे कीन मानने योग्य है। परन्त बात पेसी नहीं है। पाश्चात्य विद्वानोंने वैदिक-साहित्यके समयको केवल अन्दाजसे निश्चित किया है और यह अन्दाज भी भीरता और कंज़सीके साथ किया गया है। उदाहरणार्थ, उन्होंने ऋग्वेदके भिन्न भिन्न सुक्तोंकी रचनाके समयको लगभग ५०० वर्षीका मानकर, सन ईसवीके पहले १५०० से १००० वर्षों तकका बतलाया है: स्रोर ब्राह्मण ग्रन्थोंका ३०० वर्षोतक रचा जाना मानकर, उनके लिये सन ईसवीके पहले ६०० से ५०० तकका समय बतलाया है। प्रीक लोगोंकी उन्नतिके समयसे भारती श्रार्य लोगोंकी संस्कृतिको अधिक प्राचीन वतलानेकी पाश्चात्योमें होती ही नहीं। जब होमर सन् ईसवीके एक हजार वर्षोंके पहलेसे अधिक प्राचीन सिद्ध नहीं हो सकता. तब वे भारतवर्षके व्यासको भी उससे श्रागे नहीं ले जाना चाहते। परन्तु मेनिथोः के द्वारा मिली हुई ईजिप्ट देशकी राज वंशावली और बेरोससके द्वारा लिखी हुई वैविलोनकी राजवंशावली सन् ईसवी-के ४००० वर्ष पहलेतक जा पहुँचती है। पहले उन्हें भूठ श्रीर श्रविश्वसनीय मानते थे: प्रन्त अब ईजिप्ट देशमें मिलनेवाले शिलालेखों श्रीर खाल्डिया देशमें मिलने. वाले इँटके लेखोंसे ये वंशावलियाँ सञ्ची सिद्ध होती हैं श्रीर सन ईसवीके पूर्व ४००० वर्षोंसे भी पहलेकी मालम होती हैं। ईसाई लोगोंकी धार्मिक धारणा ऐसी है कि उसके अनुसार मनुष्यकी उत्पत्ति का ही समय सन् ईसवीके पूर्व ४००४ माना गया है। परन्तु श्राधुनिक पाश्चात्य विद्वान इस धारणाका त्याग करने लगे हैं श्रौर श्रव प्राचीन इतिहासके विभाग सौ वर्षकी गिनतीसे नहीं किये जाते, किन्तु हजारों वर्षकी गिनतीसे किये जाते हैं। एक इतिहासकारका कथन है कि-"मनुष्य और पृथ्वीके सम्बन्धका हमारा ज्ञान शीव्रतासे बढ़ रहा है। सन् ईसवीके पहले ४००४ वर्षको आदमकी उत्पत्तिका समय मानना किनारे रखकर ईजिप्टके इतिहासकार कुछ पिरामिडोंके समयको उससे भी पूर्वका मानने लगे हैं।"

इसी तरह अब हिन्दुस्थानके प्राचीन इतिहासको सेंकड़ेके हिसाबसे नहीं, किन्तु हजारके हिसाबसे विभाजित करना चाहिषे। यह इतिहास, वैविलोनक इतिहासकी तरह, सन् ईसवीके पूर्व ४००० के भी परे चला जाता है। प्रोफे सर जेकोबीन ज्योतिषके प्रमाणोंके आधार पर ऋग्देवके कुछ स्कोंका समय सन् ईसवी पूर्व ४००० तक सिद्ध किया है। यह सच है कि हिन्दुस्थानमें पिरामिड, शिलालेख अथवा इन्टिका (ईटके) लेख ऐसे नहीं मिलते जिनसे बुद्ध के पहलेका इतिहास जाना जाय । परन्तु, हमारे ऋग्वेद आदि वैदिक ग्रन्थ पिरामिडसे भी अधिक भव्य तथा अभेद्य हैं। इन प्रन्थोंमें ज्योतिषके विषयमें पाये जाने-वाले उल्लेख, समय निश्चित करनेके लिये. शिलालेखेंांसे भी श्रिधिक विश्वसनीय श्रीर निश्चयात्मक हैं। श्रतएव हिन्दुस्थान-का प्राचीन इतिहास सहस्रोंकी संख्यामें बतलाया जा सकता है। वह इस तौर पर:-ऋग्देवका समय, सन् ईसवीसे पूर्व चौथी सहस्री, श्रर्थात् ४०००से ३००० तकः आयुर्वेद श्रीर ब्राह्मण यन्थांका समय, तीसरी सहस्री, त्रर्थात् ३०००से २००० तकः वेदांगोंका समय, दूसरी सहस्री, श्रर्थात् २०००-१००० तकः श्रीर गृह्य तथा <mark>श्रन्य सूत्रोंका समय, पहर्तः हस्री, श्रर्थात्</mark> १००० से सन् ईसवीके शारम्भतक । शंकर बालकृष्ण दीचितने शतपथ बाह्मणका जो समय उसके श्रन्तर्गत ज्योतिष-विष-यक वचनके आधार पर निकाला है, वह किली तरहसे अमान्य समका जाने योग्य नहीं है।

बेदांग ज्योतिषका प्रमाण।

यह बात श्रन्य प्रमाणोंसे भी निश्चित माल्म होती है कि रातपथ-ब्राह्मणका, सन् ईसवीके पूर्व =०० वर्षका, पाश्चात्य विद्यानोंके द्वारा उहराया हुआ समय गलत है। वेदाङ्ग-ज्योतिषके समयको दीनितने, उसमेंके ज्योतिष-सम्बन्धी एक चबनके आधार पर, निश्चित किया है। उसमें कहा गया है कि उत्तरायण धनिष्ठा-में होता है। इससे दीन्तितने वेदाङ्गका समय गणितसे सन् ईसवीके १४०० वर्ष पहले कायम किया है। इस समयके सम्बन्धमें शङ्का होनेके कारण प्रोकेकर मैक्समृलरने श्रार्चडीकन प्रेटको इस बातका गणित करनेके लिये कहा कि उत्तरायण धनिष्ठा नत्तत्र पर कब होता होगा। ये भी श्रधिक खींचातानी करने पर इस समयको सन् ईसवीसे पूर्व ११=६ के बाद नहीं बतला सके। सारांश यह है कि जब वेदाङ ज्योतिषके समयको सन ईसवी के पहले १२०० श्रथवा १४०० वर्ष मानना चाहिये, तो शतपथ-ब्राह्मणुका समय उससे भी पहले होना चाहिये। श्रर्थात्, वह सन् ईसवीसे पूर्व =०० वर्ष हो ही नहीं सकता। यहाँ भी पाश्चात्य विद्वान यही तर्क करते हैं कि धनिष्टामें उदगयन का स्मरण रहा होगा श्रौर वेदाङ्ग ज्योतिष विलकुल अर्वाचीन कालमें सन् ईसवीके पूर्व ३०० के लगभग बना होगा। उनका कथन है कि जब धनिष्ठाके आरम्भमें उद्गयन था, उस समय वेदाङ्ग ज्योतिषकी गणितपद्धति स्थिरकी गई होगी, परन्तु जब वह प्रन्थ बना तब पिछली परिस्थिति का उल्लेख वर्तमानके तौर पर किया गया। परन्तु यदि यह सच है कि वेदाङ्गकी ज्योतिषपद्धति उस समय स्थिर हुई थी, तो उसी समय ग्रन्थका तैयार होना माननेमें क्या हर्ज है ? दूसरी बात यह है कि उस समय धनिष्ठामें जो उदगयन होता था, वह १००० वर्षोंमें, ग्रन्थके लिसे जानेके समय, श्रवश्य ही बदल गया होगा। अर्थात, धनिष्ठामें उदगयन सन ईसवीके १४०० श्रथवा १२०० वर्ष पहले था, श्रौर ग्रन्थ लिखा गया ३०० में। बीच-के १००० वर्षोंकी अवधिमें बह पीछे अवश्य हटा होगा श्रीर यह बात ग्रन्थ-कारको मालूम हुए विना न रही होगी। तव फिर वह कैसे वतलाता कि उद्गयन धनिष्ठामें था ? श्रौर वह उस गणित-पद्धतिका स्वीकार कैसे करता जो उसके आश्वार पर रची हुई हो ? .वराहमिहिरने भी श्रपने समयकी स्थितिको देखकर साफ कहा है कि धनिष्ठामें उदगयन नहीं होता। इसी प्रकार वेदाङ्ग ज्योतिषकार का भी कथन होगा। सारांश यह है कि ज्योतिष-विषयक वचनों श्रीर प्रन्थोंको भूठा बनाना न तो सम्भव होगा श्रीर न मान्य। तात्पर्य यह है कि वेदाङ्ग ज्योतिष-का समय सन् ईसवीके पहले १४०० से १२०० तक ही निश्चित माल्म होता है। शतपथ-बाह्मण इससे भी पहलेका होगा, बादका नहीं हो सकता।

शतपथ-ब्राह्मणका निश्चित समय, कमसे कम उस भागका समय जिसमेंसे उपरका वाका लिया गया है, सन् ईसवी-से पूर्व ३००० वर्ष है। यह बात निर्विवाद है कि ऋग्वेद-प्रनथ, समय शतपथ-ब्राह्मणके पहले, सम्पूर्ण हो गया था। अर्थात्, ऋग्वेद, शतपथ-ब्राह्मणके हर एक भागसे पहले पूरा तैयार हो गया था। इससे ऋग्वेदका समय सन् ईसवीसे पूर्व ३२०० वर्ष मान लेनेमें कोई हर्ज नहीं है। स्थूल मानसे भारतीय युद्ध ऋग्वेदके बाद १०० वर्षोमें हुआ। श्रतएव उस युद्धका, सन् ईसवीसे पूर्व ३१०१ का, सर्व-मान्य समय वैदिक साहित्यके श्राधारपर हद प्रमाणोंसे सिद्ध होता है।

जरासन्ध-पज्ञ।

इसके सिवा भिन्न भिन्न अन्तर्गत प्रमाणोंसे भारतीय युद्धका समय सन् ईसवीसे पूर्व ३१०१ ही निश्चित होता है। यह समय मेगास्थिनीज़के आधार पर, कलियुग-आरम्भके विषयमें ज्योतिषियोंके प्रमाण पर और वैदिक साहित्यके द्वारा, इन तीन दृढ़ प्रमाणोंसे निश्चित होता है। यहाँतक हमने इस बातको देख लिया है। भारतीय परिस्थितिके स्वरूपके आधार पर भी यही समय निश्चित होता है। इस-के मुख्य दो खरूप बतलाये जायँगे। महा भारतमें कथा है कि जरासन्ध एक यह करके चत्रियोंको बलि देनेवाला था। लोग समभते हैं कि वह कथा थोड़ी वहत श्रद्धत श्रीर काल्पनिक है। महाभारतमें श्रीकृष्णके मुखसे कहलाया गया है कि शिख को बलि देनेके लिये तूने चत्रियोंको कैदमें डाल रखा है। इस कथाका मल-स्वरूप क्या है ? क्या यह बिलकुल काल्प-निक है ? इस विषयमें विचार करनेपर मालूम होता है कि इसमें ऐतिहासिक सत्य है। देख पड़ता है कि इसके मृतमें पुरुषमेधकी बात है। शतपथ-ब्राह्मएके एक स्थानके वर्णनसे विदित होता है कि पुरुषमेध काल्पनिक नहीं है-भारत-वर्षमें किसी समय वह प्रत्यच किया जाता था। कदाचित् उसका प्रचार यहाँ थोडा ही रहा हो, परन्तु शतपथमें उसका जो सुद्म वर्णन किया गया है, उससे मालुम होता है कि वह किसी समय प्रत्यज्ञ किया जाता था। इसका दर्जा अध्वमेधसे भी बढ़कर था, और इसी लिये इसका फल यह बतलाया गया है कि इस यज्ञके करनेवालेको असीम राजसत्ता मिलेगी। इसकी भिन्न भिन्न विधियाँ श्रोर बलि दिये जानेवाले पुरुषोंके वर्णन तथा संख्या वर्तमान समयमें भय-इर मालूम होतो है; परन्तु जान पड़ता है कि शतपथ-ब्राह्मणके समयमें यह यह प्रचलित था। श्रागे चलकर वह शीघ्र ही बन्द हो गया होगा श्रीर अश्वमेधकी भी प्रवृत्ति कम हुई होगी। मालूम होता है कि भारतीय युद्धके समयमें जरासन्ध इस तरहका पुरुषमेध करनेवाला था श्रौर श्रीकृष्णने अपने उदात्त मतके अनुसार कहा था कि जरासन्धको इसी कारणसे मारना युक्त है। इस पुरुषमेधकी बातसे

यह श्रनुमान निकलता है कि भारतीय
युद्ध हिन्दुस्थानमें श्रत्यन्त प्राचीन कालमें
हुश्रा होगा। श्रर्थात्, वह शतपथ-ब्राह्मण्
के पूर्व हुश्रा होगा। श्राजकलके किसी
यन्थ श्रथवा कथामें पुरुषमेधकी प्रत्यच्च
बात नहीं पाई जाती। तात्पर्य यह है कि
हमने सन् ईसवीसे पूर्व जो ३१०१ वर्षका
समय स्थिर है, वह निश्चयात्मक माल्म
होता है।

चान्द्रवर्ष-गण्ना ।

दूसरी श्रत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस वातका प्रमाण भारतीय-युद्धकी कथामें ही मिलता है कि भारतीय-युद्ध बहुत प्राचीन समयमें हुआ था । कौरवों श्रीर पागडवीने दृत खेलकर अन्तमें यह करार किया था कि जो पराजित होंगे उन्हें बारह वर्षतक वनवास श्रौर एक वर्षतक स्रज्ञानवास भोगना पड़ेगा; श्रौर श्रज्ञातवासके समयके अन्दर प्रकट होने पर फिर भी उतना ही वनवास भोगना पड़ेगा । इस निश्चयके अनुसार चूतमें पराजित हो जानेके कारण पाएडवींने श्रपना सब राज्य दुर्योधनके श्रधीन कर दिया और वे वनवासको चले गये। वन-वास और श्रज्ञातवास पूरा करने पर जव वे प्रकट हुए, तब दुर्योधनसे अपना राज्य माँगने लगे। दुर्योधन कहने लगा कि-"पाएडवोंने वनवास श्रोर श्रज्ञातवास पूरा नहीं किया है" श्रीर पागडव कहने लगे कि—"पूरा किया है।" अतएव इस वादविवादके कारण भारतीय-युद्ध उप-स्थित हुआ। कुछ आन्तेपकोंने इस विषय-के सम्बन्धमें एक बहुत बड़ा आद्येप उप-स्थित किया है। वह यह है कि यद्यपि पाएडव लेरह वर्षोंके पूर्व ही प्रकट हुए, तथापि युद्ध ब्रास्म्मे करनेका पाप यहाँ व्यासजीने दुर्योधनके ही माथे मह दिया है। अतएव, यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि पाएडवोंने अपना करार पूरा किया श्रथवा नहीं ? यहां प्रश्न जब भीष्म पिता-महसे किया गया, तब उन्होंने जो उत्तर दिया वह मनन करने योग्य है। उनका जवाब है कि—"कालगतिसे सूर्य-चन्द्रका नाचत्रिक लङ्घन-कालके साथ भेद हो जाता है, इसलिये प्रत्येक पाँच वर्षोंमें दो महीने अधिक होते हैं। श्रीर इस हिसाब-से तेरह वर्षोमें पाँच महीने श्रोर बारह रात्रियाँ अधिक हो जाती हैं।" भीष्मके कथनका सारांश यह है कि सौर माससे तेरह वर्षोंके पूर्ण होनेके पहले ही पाएडव प्रकट हुए: परन्तु चान्द्र वर्षीके हिसाबसे तेरह वर्ष पूर्ण हो गये श्रीर पाएडवाने करार पूरा किया । श्रव इसपर कुछ लोगोंका इस विषयमें श्रीर यह कहना है कि—"भीष्मने यहाँ एकपत्तीय न्याय किया है। शब्दोंका अर्थ हमेशाकी समभ-के अनुसार ही किया जाना चाहिये। यह बात प्रकट है कि यदि चार रुपयेमें ईंधनकी गाडी वेची जाय, तो सत्रमुच गाड़ी पर रक्खी हुई जलाने योग्य लकड़ी ही बेची जाती है, न कि लकड़ी की खुद गाड़ी ही। क्या करारके समय सौर या चान्द्र वर्षोंकी बात तय कर ली गई थी ? तब कहना पड़ेगा कि श्रपने देशमें पूर्वकालसे महीने चान्द्र श्रीर वर्ष सौर समभे जाते हैं, इसलिये उक्त प्रश्न ही उपस्थित नहीं हो सकता। वर्ष तो सौर ही थे: परन्तु भीष्मने उन्हें चान्द्र मानकर पाएडवोंके पत्तमें न्याय किया 🗥 यह दलील सचमुच अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। क्या भीष्मने सचमुच एकपत्तीय न्याय किया है ? यदि वैदिक कालसे भरत-खराडमें सौर वर्ष प्रचलित था, तो प्रतिक्रा-पूर्तिके ही सम्बन्धमें चान्द्र वर्षोसे गणना

करना अन्यायपूर्ण होगा। ऐसा करना उपर्युक्त लकड़ीकी गाड़ीके उदाहर एके समान श्रन्यायपूर्ण होगाः श्रथवा ठीक वैसा ही होगा जैसा महमूदने किया था। महमूदगजनवीने फिरदौसी कवि-को प्रत्येक कविता-पंक्तिके लिये एक दिईम (सुवर्ण सुद्रा) देना कबूल करके, श्रपने करारको पूरा करनेके समय, जान बुभकर चाँदीके नये दिईम बनवाकर जो अन्याय किया था, उसी प्रकार भीष्म-का उक्त निर्णय भी श्रन्यायपूर्ण होगा। यदि द्यतंके समय चान्द्र वर्ष प्रचलित नहीं था, तो यही कहना पड़ेगा कि सत्यनिष्ठ पाएडवोंने भूठा बर्ताव किया, श्रीर जो सैंकड़ों राजा तथा लाखों चत्रिय पाएड-वोंकी श्रोरसे लड़े, उन्होंने श्राँख बन्दकरके श्रसत्पत्तका स्वीकार किया। श्रर्थात् यही मानना पडता है कि, इतके समय सौर श्रीर चान्द्र दोनों प्रकारके वर्ष प्रचलित थे। द्युतंके समय इस बातका करार होना रह गया था कि कौनसा वर्ष माना जायगा। अन्तमें यह वादविवाद उपश्वित हुआ कि करारवाले वर्षको सौर मानना चाहिये या चान्द्र। स्वीकार करना पडेगा कि दुर्योधन श्रादि कौरव सौर वर्षको मानते थे श्रीर पाएड चान्द्र वर्षको मानते थे: क्योंकि इसका स्वीकार किये विना भारती युद्धके भगड़ेका असल कारण ठीक ठीक नहीं बतलाया जा सकता। हमारी राय है कि दुर्योधन श्रीर कर्ण सौर मानानुसार जो यह विवाद करते थे कि तेरह वर्ष पूरे नहीं हुए, वह ठीक था: चान्द्र मानानुसार पाएडव लोग जो यह कहते थे कि तेरह वर्ष पूरे हो गये, वह भी ठीक था; श्रीर भीष्मने पाएडवाँके पक्तमें जो न्याय किया वह भी यथार्थ था। श्राजकल हिन्दुस्थानमें सरकार रोमन सिकिल वर्षको मानती है, मुसल-

मान चान्द्र वर्षको और हिन्दू सौर वर्षको मानते हैं। ऐसी दशामें मीयाद-सम्बन्धी कायदेमें स्पष्ट लिखा है कि मीयाद और मिती श्रॅरेगज़ी रीतिसे मानी जायगी। चतके समय चत खेलनेवालोंमें इस प्रकार वर्ष-सम्बन्धी कोई करार नहीं हुआ था। जब एक पत्त सीर वर्षको माननेवाला श्रीर दसरा चान्द्र वर्षको माननेवाला था. तो वर्ष-गणना किस प्रकार की जाती? भीष्मका यह न्याय एक दृष्टिसे योग्य ही है कि यदि कौरव पराजित होते तो उन्हें तेरह सौर वर्ष, वनवासमें रहना चाहिये था। परन्तु उसे दुर्योधनने नहीं माना श्रोर इसी कारण भारतीय युद्ध उपस्थित इत्रा । अस्तः बात यह है कि यतके समय यदि हिन्दुस्थानमें श्राजकलकी नाई चान्द्र वर्ष विलकुल ही प्रचलित न होता, तो भीष्मका न्याय श्रयोग्य श्रीर पत्तपात-पूर्ण श्रवश्य कहा जाता। सारांश, भार-तीय युद्धको उपपत्ति जाननेके लिये दो बातें अवश्य माननी पडती हैं। पहली बात यह है कि युद्धके समय हिन्दुस्थानमें चान्द्र वर्ष पचलित थाः और दूसरी बात यह है कि पाएडव चान्द्र वर्ष मानने-वाले थे। इन दो बातोंसे ही भारतीय युद्धकालके निर्णयका साधन होता है।

विराट पर्वकी कथासे भी प्रकट होता है कि यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न संशयप्रस्त था। श्रीर इसी लिये उसका निर्णय न्यायाधीश भीष्मसे पूछा गया। भीष्मका उत्तर मिलने के पहले ही द्रोणाचार्य पिछले श्रध्याय (विराट० श्र० ५१) में कहते हैं—"जब कि अर्ज्जन प्रकट हो खुका है, तब पाएडवींका श्रज्ञातवास श्रवश्य ही पूरा हो गया है। श्रतप्व, दुर्योधनने पाएडवींके श्रज्ञातवास वे पूर्ण होने श्रथवा न होनेके सम्बन्धमें जो प्रश्न किया है, उसका विचार

करके, हे भीष्म, यथोचित उत्तर दीजिये।"
यदि भारतीय युद्धकालके समय भारतवर्षमें सौर वर्ष ही प्रचलित होता, तो
द्रोणाचार्यके मनमें इस प्रकारकी शङ्का ही
उपस्थित न होती; क्योंकि यह बात गोप्रहणके समय हर एक वतला सकता था
कि श्रक्षातचास पूरा हुश्रा या नहीं।
श्र्यात् उस समय चान्द्र वर्ष भी प्रचलित
था श्रीर पाएडव उसीको मानते थे। श्रब
हम ऐतिहासिक दृष्टिसे इस वातका
विचार करेंगे कि ऐसी परिस्थिति हिन्दुस्थानमें कव थी।

हिन्दुस्थानमें चान्द्र वर्ष कब प्रच-

चान्द्र महीने पौर्णिमा तथा श्रमा-वस्याके कारण सहज ही ध्यानमें आते हैं, और ऋतुआंके फेरफारके कारण सौर पर्ष ध्यानमें श्राता है। यद्यपि बारह चान्द्र मास श्रीर एक सौर वर्षका स्थल रूपसे मेल हो जाता है, तथापि यह मेल पूर्ण रूपसे नहीं होता: श्रीर इसी कारण पूर्व कालमें कालगणनामें कई वखेड़े उत्पन्न हुए थे। इन बखेड़ोंके कारण ही ज्यू और अरव लोगोंने चान्द्र वर्षका स्वीकार करके सौर वर्षको छोड़ दिया। आजकल मुसलमान लोग भी इसीको मानते हैं। उनका वर्ष सब ऋतुश्रोमें चकर खाकर पूर्व स्थान पर श्रा जाता है। रोमन लोग भारमभमें मार्चसे १० चान्द्र मास मानते थे और कई दिन खाली छोड़कर, जब सूर्य सम्पात पर श्रा जाता था तब, फिर-से चान्द्र मास मानने लगते थे। कुछ समयके बाद राजा न्यूमाने प्रत्येक दो वर्षीमें तेईस दिन जोड़ देनेकी प्रथा जारी की। धर्मगुरु लोग इन अधिक दिनोंको किसी एक महीनेमें मिला देते थे। इस कारण बहुत कठिनाइयाँ उत्पन्न होती थीं। इस गड़बड़को मिटानेके लिये ज्य-लियस सीजरने चान्द्र मास श्रीर चान्द्र वर्षका त्यागकर ३६५ दे दिनोंका सौर वर्ष श्रीर न्यूनाधिक दिनोंके सौर मास शुक्र किये। युनानियोंमें भी पहलेपहल चान्द्र मास श्रीर चान्द्र वर्ष प्रचलित थे। एक महीना उनतीस दिनोंका तो दूसरा तीस दिनोंका मानकर वे लोग ३५४ दिनोंका चान्द्र वर्ष मानते थे। जब ऋतुचक्रमें गल-तियाँ होने लगीं, तब सोलनने अधिक मास-की पद्धति शुरू की। ईजिप्शियन लोगोंको यह बात मालूम हुई थी कि सौर वर्षमें ३६५ दिन होते हैं। वे ३० दिनोंका महीना मानकर ३६० दिनोंसे एक वर्ष परा करते थे श्रीर ५ दिन श्रधिक मिला देते थे। तिसपर भी है दिनकी भूल होने लगी। श्रतएव ३६५ x ४ = १४६० वर्षोमे उनका वर्ष सब ऋतुश्रोंमें घुमने लगा। पारसी लोगोंमें भी ३६० दिनोंके बाद ५ दिन श्रिधिक जोड़नेकी पद्धति है। सारांश, भिन्न भिन्न प्राचीन लोगोंके सामने चान्द्र वर्ष श्रीर सौर वर्षका मेल करते समय श्रनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हुई थीं, श्रीर भिन्न भिन्न शीतियाँ उपयोगमें लाई गई थीं। हिन्दुस्थानमें भी इसी प्रकार कठि-नाइयाँ उपस्थित होनेके कारण प्राचीन कालमें भिन्न भिन्न रीतियाँ उपयोगमें लाई गई थीं। आगे चलकर उनका भिन्न भिन्न परिणाम हुआ और अन्तमें वर्तमान पद्धतिका अवलम्बन किया गया। श्रब हम इसी विषयके इतिहासका विचार करेंगे। मालूम होता है कि ऋग्वेदके समयमें

मालूम होता है कि ऋग्वेदके समयमें स्थूल मानसे ३० दिनका महीना श्रोर १२ महीनोंका वर्ष मानते होंगे। ऋग्वेदमें कई स्थानोंमें ऐसे चक्रका वर्णन है जिसमें बारह श्रारे (डएडे) श्रीर ३६० कीलें कथित हैं। बारह चान्द्र मास ३६० दिनमें ६ दिनसे कम होते हैं श्रीर ऋतुचक ५६

दिनसे अधिक होता है। यह कठिनाई ऋग्वेदको लासयमें उपस्थित हुई होगी; परन्तु यह बात नहीं माल्म होती कि इसकी क्या व्यवस्था की गई थी। माल्म होता है कि तैत्तिरीय-संहिताके समय तथा ब्राह्मण्-कालमें यह बात पूर्ण रीतिसे माल्म थी। इस कारण वर्षके तीन भेद-सावन, चान्द्र श्लीर सीर-हो गये थे। सावन नामक स्थूल मान पहलेसे ही प्रचलित था। उसके विभाग ये हैं। छः दिनका एक षडह, पाँच षडहका एक महीना, त्रौर बारह महीनेका एक वर्ष। इस गणनाके कारण पौर्णिमा श्रीर श्रमा-वस्यामें गलतियाँ होती थीं। तब बीचमें एक दिन छोड़ दिया जाता था। इससे उत्सर्गी श्रीर श्रनुत्सर्गी नामक भेद उत्पन्न हो गये; क्योंकि कुछ लोग दिन छोड़ते थे श्रीर कुछ न छोड़ते थे। तैत्ति-रीय संहिताके "उत्सुज्या नोत्सुज्या इति मीमांसन्ते ब्रह्मवादिनः" इस श्रनुवाकमें इसी विषयकी चर्चा है। इस सुक्तसे मालूम होता है कि उस समय सावन श्रीर चान्द्र महीने तथा सावन वर्ष श्रीर चान्द्र वर्ष दोनों प्रचलित थे। इस तैति-रीय सुक्तका अवतरण यहाँ देने योग्य है:-

श्रमावास्यया हि मासान्संपाद्य श्रहरु-त्सृजन्ति । श्रमावास्यया हि मासान् संप-त्स्यन्ति ॥

यहां पर भाष्यकार कहते हैं—"यदिदं पत्तद्वयं सावनमासाभिप्रायम् । अथ चान्द्रमासाभिप्रायेण पत्तद्वयमाह।" ऊपर का अनुवाक 'गवामयनम्' के वार्षिक सत्रके सम्बन्धमें है । इससे यह स्पष्ट माल्म होता है कि वर्ष सावन-मासों के द्वारा और चान्द्र मासों के भी द्वारा पूरा किया जाता था। चान्द्रमास दो प्रकारके थे; एक पौर्णिमाकी समाप्त होनेवाले और दूसरे अमावस्थाकी समाप्त होने-

वाले। यह स्पष्ट मालूम होता है कि वारह चान्द्र मासोंमें वर्ष पूरा करनेवाले लोग तैत्तिरीय संहिता छोर ब्राह्मण प्रन्थके समय थे। शतपथ-ब्राह्मण (कांड ११,१—१०) में कहा गया है कि इस तरह के ३० चान्द्र वर्षोंके बीतने पर वर्ष सब ऋतु-चक्रोंमें घूम जाता है। तथापि, मालूम होता है कि अधिक मास रखनेकी प्रथा न थी। तात्पर्य यही दिखाई पड़ता है कि तैत्तिरीय-संहिता और ब्राह्मण-कालमें चान्द्र वर्ष माननेवाले बहुतसे लोग थे। हमने पहले बतला दिया है कि यही समय भारती युद्धका था। पहले यह भी बतलाया जा चुका है कि भारती युद्ध ऋग्वेद के बाद और ब्राह्मण-अन्थके पहले हुआ।

श्रव हम यह विचार करेंगे कि सौर वर्ष श्रीर चान्ड वर्षका मेल मिलाकर श्रायोंने सौर वर्षका ही प्रचार कवसे किया। वेदांग ज्योतिषमें यह व्यवस्था की गई है. कि पाँच वर्षौका एक युग मानकर प्रत्येक ढाई वर्षोमें एक महीना अधिक जोडना चाहिये। यह व्यवस्था स्थूल हिसावकी है, अतएव इसमें कुछ वर्षोंके बाद दिन बढ़ जाते हैं: इसलिये एक चय मास रखने-की प्रथा शुरू की गई। यही वेदांग ज्यो-तिषका समय सन् ईसवीसे पूर्व १४००के लगभग है। इसके बाद जब राशि, श्रंश श्रादि विभागातमक गणित स्थिर किया गया और सन् ईसवीके आरम्भके लग-भग नये सिद्धान्त प्रचलित हुए, समय पाँच सम्वत्सरोंके युगकी प्रथा छोड़कर यह नया सूच्म सिद्धान्त सिर किया गया कि जिस मासमें सूर्य-संक्रान्ति न हो, वह अधिक मास और जिसमें दो सूर्य-संक्रान्तियाँ हों वह ज्य मास समभा जाय। यही सिद्धान्त आजतक जारी है। इससे प्रकट होता है कि चान्द्र वर्ष, सन् ईसवीके इस श्रोर, श्रवश्य बिलकुल बन्द हो गये थे। यह तो निर्विवाद है ही; परन्तु यह भी माल्म होता है कि वेदांग ज्योतिषके बाद भी चान्द्र वर्षका प्रचार न रहा होगा, क्योंकि वेदांग ज्योतिषमें चान्द्र वर्षका उज्लेख बिलकुल नहीं है। ससे यह श्रनुमान निकलता है कि भारती युद्ध वेदांग ज्योतिषके बहुत पहले हुआ।

भारतीय युद्धके चेदांग ज्योतिषके बहुत पहले होनेका अनुमान निकालनेके लिये कुछ कारण है जिसके वारेमें हमें श्रीर भी विचार करना चाहिये। दीनित कहते हैं कि यह जाननेके लिये कोई साधन नहीं है कि वैदिक कालमें श्रधिक मास कितने महीनोंमें रखते थे। वेदांग ज्योतिष-में कहा है कि ३० महीनोंमें श्रश्चिक मास होना चाहिये। जब वेदांग कालमें यह नियम था, तब इसके सम्बन्धमें वेदकालमें भी कोई नियम श्रवश्य होगा।हमारा मत है कि भीष्मके उक्त वचनमें यह नियम दिखाई पड़ता है। हमारा मत है कि पाँच वर्षोंमें एक दम दो महीने अधिक एख देनेकी प्रथा, भारती युद्धके समय अर्थात तैत्तिरीय संहिता श्रौर ब्राह्मण ब्रन्थके समय रही होगी। इसका एक प्रमाण है। पाँच वर्षोंका युग बहुत प्राचीन कालसे प्रचलित है । तैतिरीय ब्राह्मणमें पाँच वर्षींके भिन्न भिन्न संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर श्रादि नाम पाये जाते हैं। ऋग्वेद संहिता-मंत्रमें भी दो नाम हैं। अर्थात् पाँच संवत्सर-युग वेदांग ज्योतिष-के पहलेका है। पाँच वर्षोमें दो महीने एक दम अधिक जोड़ देनेकी प्रथा संहिता कालमें जारी होगी। इस व्यवस्थासे ऋतुमें फिर कमी-वेशी होने लगी, इसलिये कुछ वर्षोंके बाद एक ज्ञयमास रखनेकी पदति शुक्त हुई। तात्पर्य, ब्राह्मण कालमें दो श्रधिक महीने श्रीर एक चय महीना रखनेकी प्रथा रही होगी । वाजसनेयि

संहितामें वारह महीनोंके वारह नामोंके सिवा तीन नाम सन्सर्प, मिल्रम्बच श्रीर श्रंहरपति भी दिये गये हैं।इनमेंसे संसर्प श्रीर मलिम्बुच श्रिविक मासंकि नाम हैं श्रीर श्रंहरपति चय मासका नाम है। श्रव प्रक्ष यह है कि श्रिधिक मासके नाम दो क्यों रखे गये ? श्रनुमानसे मालूम होता है कि तीस महीनोंके बाद एक अधिक मास होनेका वेदांग-कालीन नियम ब्राह्मण-कालमें नहीं था। उस समय यह नियम रहा होगा कि पाँच वर्षोंके बाद दो महीने जोड़े जायँ, श्रौर उन्हीं दोकी ये भिन्न भिन्न नाम होंगे। सारांश, भीष्म-के वचनसे पाँच पाँच वर्षीमें दो अधिक मासका होना पाया जाता है। सिद्ध है कि यह रीति वेदांगके पहलेकी है; अर्थात् उसका समय सन् ईसवीके पूर्व ३१०१ वर्ष माननेमें कोई हर्ज नहीं है।

यहाँ यह शंका होगी कि यदि पहले चान्द्र-वर्ष मानते थे, अर्थात् लौकिक और वैदिक व्यवहारमें चान्द्र-वर्षका उपयोग होता था, तो उन महीनोंके नाम च्या थे? यदि अधिक महीने जोड़े न जायँ, तो यह नियम भी नहीं रह सकता कि प्रत्येक महीनेकी पौर्णिमा अमुक नद्मत्र पर ही रहे; त्रर्थात् चेत्र, वैशाख श्रादि नाम भी नहीं हो सकते। कारण यह है कि ये नाम उन उन महीनोंकी पौर्णिमा पर रहनेवाले नत्तत्रोंके द्वारा प्राप्त हुए हैं। इसका उत्तर यह है कि पहले चैत्र, वैशाख त्रादि नामों-का प्रचार सचमुच ही न था। संहिता-ब्राह्मण-प्रनथींमें चैत्रादि महीनोंके नाम कहीं नहीं पाये जाते, जिससे उनका प्रचारमें न रहना सिद्ध होता है। फाल्गुनी पौर्णिमा इत्यादि संज्ञाका प्रचार हो जाने पर भी महीनोंके फाल्गुन श्रादि नामोंका प्रचार होनेमें बहुतसा समय लग गया। (दीचित, पृष्ट ३६) पहले महीनोंके दो प्रकारके नाम थे। मधु-माधव इत्यादि नामोंकी तरह श्रहण-श्रहणरजा श्रादि इसरे नाम थे। ये नाम तैत्तिरीय ब्राह्मणमें श्राये हैं। मधु श्रादि नाम तो ऋतुवाचक हैं, पर चान्द्र धर्ष ऋतुओं के अनुकृल महीं है। इसलिये, दूसरे नाम चान्द्र-वर्षके महीनोंके होंगे। जब शकला सौर वर्ष प्रच-लित हुआ, उसी समय चैत्र, वैशाख आदि नामोका प्रचार हुआ। चान्द्र वर्षके अप्रच-लित हो जाने पर चान्द्र मासोंके पहलेके नाम भी खभावतः लुप्त हो गये। यहाँतक कि श्रव उनका पता भी लोगोंको नहीं है। चान्द्र वर्षके अप्रचलित होने पर चैत्र आदि नामोंका प्रचार हुआ । दीदितने बतलाया है कि इन नामोंका प्रचार कबसे इया। इनका प्रचार सन् ईसवीके पूर्व लग-भग २००० के समय हुआ (दीवित: पृष्ट १०२), अर्थात् २०००को वाद् चान्द्र वर्ष अपः चिलित हो गया। भारती युद्ध चान्द्र वर्षके प्रचलित रहते समय हुआः अतएव उसका समय सन् ईसवीके पूर्व २००० के पहले होना चाहिये। वर्तमान भारतमें चैत्र बैशाख आदि महीनोंके नाम पाये जाते हैं: परन्तु महाभारतका समय सन् ईसवी-के लगभग ३०० वर्ष पहलेका है : अर्थात उस समय चैत्र वैशाखादि नामोंका ही प्रचार था और पहलेके सब नामोंके अपचलित हो जानेके कारण वे महा-भारतमें नहीं पाये जाते।

हमने यह मानकर ही भीष्मके वचन-का श्रादर किया है कि पाएडव भारतीय युद्धके समय लौकिक व्यवहारमें चान्द्र वर्षका उपयोग करते थे। परन्तु श्रव हमें यह देखना चाहिये कि चतुर्धर टीका-कारने दूसरी तरहसे उसका जो श्रर्थ सम-भानेका प्रयत्न किया है, वह कहाँतक ठीक है। वह कहता है:—

"षख्याधिकशतत्रयदिनातमा सावनः

स एव हादशवार्षिकादिषु गवामयनादिष उपयुज्यते, "त्रीणि शतानि पंचपष्टिदिनानि पञ्चदश घटिका इत्यादि सौरसंघत्मर मानं स्मार्ते । वर्धापनादौ तु चांद्रेगा। श्रर्थः-- "सावन वर्ष ३६० दिनोंका होता है। वह गवामयन इत्यादि सत्रोंमें उप-योगी होता है। सौर वर्षका मान ३६५ दिन शोर १५ घडी है। यह स्मार्त कमी श्रर्थात स्मृतिमें कहे हुए कमोंके सम्बन्ध-में काम आता है और वर्शापन (व्याज के हिसाब करने आदिमें) चांद्र वर्ष उप-योगी होती है।" चतुर्घरने यह बात श्रपने समयके सम्बन्धमें बतलाई है; वह कुछ भारती युद्धके समयकी नहीं है। तैत्तिरीयएं कहा है कि गवामयनादि सत्रोंमें भी चांद्र वर्ष मानना मना नहीं है। ३६५% दिनोंका सौर वर्ष वेदांग ज्योतिषको बिल-कुल माल्म ही नहीं। परन्त चतुर्घरके मतपर भुख्य आन्तेप यह है कि जब ऐसा निश्चित नियम था कि श्रोत-धर्ममें सावन वर्ष तथा व्याज, युत और व्यवहारीमें चान्द्र वर्षको मानना चाहिये, तो क्या वह नियम दुर्योधनको माल्म नहीं था ? श्रीर क्या द्रोणको भी मालम न था ? ऐसा नियम होता तो भगड़ा किस बातका था ? सारांश, चतुर्धरका किया हुआ अर्थ मान्य करने योग्य नहीं है: यही मानना पड़ता है कि पाएडव चान्द्र-वर्ष मानते थे ग्रीर दुर्योधनादि कौरव सौर-वर्ष मानते थे।

अपरके प्रमाणसे भी भारतीय युद्धका श्रत्यन्त प्राचीन कालमें होना सिद्ध होता है।

क्या पाण्डवोंने वनवासकी शर्त चान्द्र-मानसे पूरी की ?

इसी विषयसे सम्बन्ध रखनेवाला एक प्रश्न यह है, कि पागडव बनवासके लिये कब गये श्रीर कब प्रकर हुए? इस प्रथ्नको बहुतेरे आद्मियोंने उपस्थित किया है। कुछ पाठकोंकी इच्छा यह जाननेकी भी होगी, कि पाएडवोंने बनवास तथा ब्रज्ञातवासका समय चान्द्र वर्षसे भी पूरा किया या नहीं। अर्थात् यह देखना बाहिये कि पाएडवोंका प्रग्पालन चास्ट्र-मानसे सिद्ध होता है या नहीं। महा-भारतमें वतलाई हुई परिस्थिति थोड़ीसी संदिग्ध है। तथापि हम इस प्रश्नको हल करनेका प्रयत्न करेंगे। महाभारतमें इस बातका कहीं उच्लेख नहीं है कि पाएडव बनवासके लिये कब गये । महाभारतमें यतके महीने, मिति अथवा ऋतुका भी उन्नेख कहीं नहीं है। चतुर्घरने श्रपनी दीकामें यह मान लिया है कि पाएडवोंने श्राश्विन-कार्तिकके महीनोंमें जुत्रा खेला होगा। ऐसा मान लेना साधारण व्यव-हारके श्रमुकूल है, क्वोंकि दशहरेके बाद दिवालीतक सभी जगह लोग जुत्रा खेलते हैं। श्रस्तुः यह वर्णन पाया जाता है कि गो-प्रहणके समय पहले अर्जुन प्रकट हुआ श्रीर दुर्योधन श्रादिने उसे पहचाना। उसका रथ भी वहाँ ब्राकर उसे मिला। उसने अपने हाथकी चूड़ियाँ तोड़ डालीं श्रीर कानोंसे सुवर्ण कुराडलोंको निकाल दिया। महाभारतमें बतलाया गया है कि बह गोग्रहण किस मितिको परन्तु आश्चर्यकी बात है कि उसका महीना नहीं बतलाया गया है। विराट पर्वके ३१वें श्रध्यायमें कहा गया है कि सुरामां कृष्ण पत्तकी सप्तमीको गोत्रहणके लिये दित्तण गया: श्रीर घहीं यह भी कहा गया है कि उत्तर गोग्रहणके लिये कौरव रुप्स पसकी अप्रमीको (दूसरे ही दिन) गये; परन्तु यह नहीं बतलाया गया है कि रुष्ण पत्तकी यह सप्तमी या अध्मी किस महीनेकी है। हम बतला चुके हैं कि मार्गशीर्षादि महीनोंके नाम भारतीय

युद्धके बाद् प्रचलित हुए। चान्द्र-मासके नो श्रहण, श्रहणरजा श्रादि नाम उस समय प्रचलित थे, उनमेंसे एकाध नाम मुल भारतमें यदि रह गया तो कोई आश्चर्य नहीं। यह नाम पीछे लुप्त हो गया होगा। चाहे कुछ हो, कृष्ण पत्तकी यह सप्तमी श्रीष्म ऋतुकी मालुम होती है, क्योंकि उस समय ग्रीष्म ऋत होनेका वर्णन है (विराट० श्र० ४७)। इससे मालुम होता है कि यह श्रष्टमी, सौर ज्येष्ट कृष्ण पत्तकी श्रप्टमी होगी। यह नहीं कहा जा सकता कि ज्येष्ठ वदी अप्रमीको पूरे तेरह वर्ष नहीं हो चुके थे। उस दिन युधिष्ठिरने विराट राजाके हाथसे पासेकी मार सही थी: परन्तु इसका कारण यह नहीं था कि उस दिन वे प्रकट नहीं हो सकते थे-इसका कारण यही था कि उस समय प्रकट होना प्रशस्त नहीं माल्म होता था। आगे वर्णन किया ही गया है कि उचित समय देखकर पांगडव एकदम प्रकट हो गये। इसके सिवा, प्रारम्भमें ३१वें ऋध्या-यमें कहा गया है कि—"फिर उस तेरहमें वर्षके अन्तमें सुशर्माने विराट राजाकी गौत्रोंका हरण किया ।" इसमें साफ साफ कहा गया है कि बदी सप्तमीको तेरह वर्ष पूरे हो गये थे। श्रष्टमोको श्रर्जुन प्रकट हुआ था, परन्तु वह नियत समयके दो दिन पहले प्रकट नहीं हुआ था। यह भी स्पष्ट है कि यदि समय-सम्बन्धी दो ही दिनोंकी भूल हुई होती, तो दुर्योधनने भी इतना भगड़ा न किया होता । सौर वर्षके मानसे दुर्योधनका खयाल यह था कि आश्विन वदी अप्टमीको अथवा उसके लगभग जुन्ना हुन्ना था त्रौर त्राश्विनके पहले ही जेठ बदी अप्रमीको अर्जुन पह-चान लिवा गया, ऋर्थात् वह नियत समय-के चार महीने पहले ही प्रकट हो गया: इसलिये पाएडधोंको फिर बनवास भोगक

चाहिये। दुर्योधनके भाषणसे यह नहीं दिखलाया जा सकता कि पाएडव कितने विनोंके पहले प्रकट हुए थे। तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि केवल दो ही दिनोंकी अवधि बाकी थी। "बदी अप्टमी को दर्योधन आदि मित्रमगडली गोप्रहण के लिये गई" इस उल्लेखमें महीनेका नाम नहीं है। इससे, सम्भव है कि, केवल तिथिका महत्व समका जाय । परन्तु, दशमीको सब पाएडव प्रकट होकर विराटकी गही पर वैठे: इस कथनसे यह नहीं कहा जा सकता कि दशमीको अवधि समाप्त होती थी । अन्य प्रमाणोंसे भी सिद्ध किया जा सकता है कि केवल दो ही दिनोंका अन्तर नहीं था । जिस समय गोप्रहणका निश्चय किया गया. उस समयके बादविवादको ध्यानमें रखना चाहिये। २५वें ऋध्यायमें, पाएडवों-की खोजके लिये भेजे हुए दृतोंने वापस श्राकर कहा है कि—"पाएडवोंका कुछ भी पता नहीं मिलता। केवल यह वात माल्म हुई है कि विराट नगरमें गन्धर्वोंने कीचकको मार डाला।" उस समय दुर्यो-धन कहने लगा-"पाएडवोंका पता लगना अवश्य चाहिये। पाएडवोंके अज्ञात-वासका समय प्रायः समाप्त हो गया है: बिलकुल थोड़ा समय बाकी रह गया है। यदि वे अपना प्रण पूरा कर आवेंगे, तो वे हम लोगों पर चिद्रे हुए रहेंगे।" इस वाक्यसे सचमुच यह माल्म नहीं होता कि कितनी विशिष्ट अविध वाकी रह गई थी; परन्तु आगे चलकर कर्णके भाषण-से वह निश्चित हो जाती है। कर्ण कहने लगा-"राजा साहब, पाएडवोंकी खोज करनेके लिये दूसरे होशियार और निपुण जासूस शीघ्र भेजे जायँ।" इसे सुनकर दुर्योधनने दुःशासनको शीध ही दसरे गुप्तचर भेजनेकी आज्ञा दी। इससे प्रकट

होता है कि दूसरे जासूस भेजकर पाएड-वोंको ढँढ निकालनेके लिये अवधि वची थी। यदि दो दिनोंकी ही अवधि होती तो दसरे जासूस भेजनेसे कुछ लाभ न होता। यह सम्भव है कि आठ महीनेकी श्रवधि समाप्त हो चुकी हो श्रीर चार महीनेकी बच रही हो। इसी सभामें वह त्रिगर्त राजा भी बैठा था जिसका परा-भव कीचकने किया था। उसने विराट पर त्राक्रमण करनेकी सलाह दी और यह सलाह ठीक समभी जाकर आक्रमण किया गया। इस आक्रमणमें पाएडवोंको प्रकट करने-करानेका विचार विलक्त नहीं था। यह बात अचानक हो गई। सभाकी उक्त वातोंसे भी यही दिखाई पडता है कि उस समय चार महीनेकी अवधि वाकी थी। यह भी स्पष्ट है कि चान्द्र श्रीर सौर मासोमें चार महीनेका श्रन्तर पड़ा। यह समभकर कि पाएड<mark>व</mark> चार मासके पहले ही पहचान लिये गये, दुर्योधनने कहा-"श्रहातवासका तेरहवाँ वर्ष अभीतक समाप्त नहीं हुआ है। राज्य-लोभसे श्रन्धे हो जानेके कारण उन्हें इस बातका सारण न रहा होगा: अथवा काल-गणनाके विषयमें हमारी धारणा ही अमपूर्ण होगी। इसमें जो कुछ सत्यासत्य हो उसे भीष्म बतला दें।" इससे दुर्योधनके भी मनमें शङ्काका होना सिद्ध होता है। मालूम होता है कि उसके मनमें यह सन्देह था, कि पाएडव चान्द्र वर्षका पालन करनेवाले हैं: अतएव कदाचित् उनके तेरह वर्ष पूरे हो चुके हों। श्राश्विन, ज्येष्ठ श्रादि महीनोंके कम उस समय शुरू नहीं हुए थे। परन्तु यह स्पष्ट है कि दोनोंके नाम एकसे ही न रहे होंगे। पाँच वर्षोंमें स्थूल मानसे दो महीने अधिक जोड़ देनेके नियमसे, भीष्मके कथनानुसार, तेरह वर्षीमें दस वर्षीके चार

महीने अधिक तो हो ही चुके थे, परन्त श्रागे श्रोर भी १ महीना तथा १२ रात्रियाँ वढ़ गई। अर्थात्, भीष्मने यह निर्ण्य किया कि चान्द्र मानसे पागडवोंके तेरह वर्ष पूरे हो चुके। सबका सार यह है कि जुल्ला त्राश्विन वदी श्रष्टमीको सौर वर्षमें हुआ था। उसके बाद १३ वर्षोंमें चान्द्र मास पीछे हटकर चान्द्रमानके तेरह वर्ष ग्रीष्ममें ही पूरे हो गये । चान्द्रमानके तेरह वर्ष सौर ज्येष्ट बदी सप्तमीको पूरे हो गये। उसी दिन सुशर्माने दित्तणमें गोग्रहण किया; श्रीर श्रष्टमीको कौरवीं-ने उत्तरमें गोत्रहण किया । इससे यही मेल ठीक होता है कि ज्येष्ट वदी अप्रमी-को अर्जुन पहचाना गया और दशमीको पारडव योग्य रीतिसे विराट समामें प्रकट हुए। आजकल महाभारतमें केवल सप्तमी-श्रष्टमीका उल्लेख है, महीनेका उल्लेख नहीं है। इसी कारण यह भ्रम उत्पन्न होता है।

इसके आगेकी घटनाको मितिके साथ मिलाना चाहिये । इसके श्रागे विराट-नगरमें उत्तरा श्रीर श्रभिमन्युका जो विवाह हुआ, वह आषाढ़ सुदी ११ तक हुआ होगा। श्रीकृष्ण, अभिमन्यु आदिके द्वारकासे त्राने पर यह विवाह हुन्ना। इसके बाद सब लोग एकत्र होकर, उपप्रव्य नामक एक सीमा-स्थान पर रहकर, युद्ध-सामग्रीका संग्रह करने लगे। कार्तिक सुदीमें श्रीकृष्ण राजदूत वनकर सुलह (सन्धि) की शतें तय करने गये। उन्हें सफलता न हुई। मार्ग-शीर्ष सुदी तेरसको युद्ध आरम्भ हुआ श्रीर वह श्रठारह दिनोंतक चला। उसमें अभिमन्यु मारा गया। विवाहके समय उत्तरा सयानी थी, अतएव उसे गर्भ रह जाना सम्भव है। अपने पतिके युद्धमें मरनेके समय वह तीन चार महीनोंकी

गर्भवती होगी। आगे फाग्नमें उसका प्रसव हुआ। उस समय मरा हुआ लडका पैदा हुआ। गर्भधारणके समय पतिकी मृत्युके दुःखसे ऐसा हो जाना सम्भव है। उस मृत बालकको श्रीक्रणाने अपने विवय प्रभावसे जिला दिया। उस समय पाराडव हस्तिनापुरमें न थे: वे द्रव्य लानेके लिये हिमालय गये थे। उनके वापस आने पर कहा गया है कि चैत्रकी पौर्शिमाको युधिष्टिरने अश्वमेधकी दीचा ली।यह भी कहा गया है कि इसके लगभग एक महीनेके पहले परीचितका जन्म हो चुका था। श्रर्थात् उसका जन्म फागुनमें हुआ। यह वर्णन पाया जाता है कि वह कम दिनोंमें प्रथात उचित समयके पहले (छः महीनेमें) हुआः अतएव उसके माता-पिताका ब्याह कमसे कम आषाढ़में हुआ होगा। इस क्रमसे गोग्रहणका महीना जेठ ही निश्चित होता है। चतुर्घर टीका-कारने पाएडवोंके प्रकट होनेका जो समय चैत्र वदी १० वतलाया है, वह गलत है। पहली बात यह है कि ग्रीप्म ऋतु होनेका स्पष्ट वचन रहने पर गोत्रहणका चैत्रमें होना नहीं माना जा सकता। दूसरी बात यह है कि चतुर्घरने अन्दाजसे जो लिखा है कि जुत्रा श्राश्विनमें हुत्रा, वह ठीक है। तब चैत्रसे छः महीने ही होते हैं। दुर्यो-धनकी समभके अनुसार अज्ञातवासेका श्राधा ही समय बीता था-इससे कुछ श्रिधिक समय नहीं बीता था। ऐसी दशामें दुर्योधनके इस कथनसे विरोध होता है कि प्रायः श्रधिक समय बीत चुका। इसके सिवा, पाँच महोने भी श्रधिक मासके हो जाते हैं श्रौर भीष्मके वचनसे मिलान नहीं होता। सब बातोंका विचार करने पर जूएकी मिति आश्विन बदी अष्टमी और पाएडवोंके प्रकट होनेकी मिति ज्येष्ठ बदी श्रष्टमी ही ठीक मालूम होता है। स्त्रीपर्वके २०वें श्रध्यायमें, उत्तराके विलापमें, कहा गया है कि—"मेरा और त्रापका समागम छुः महीनांका था, सातवेंमें आपकी मृत्यु हो गई।" इससे व्याहका वैशाखमें होना ठीक जमता नहीं, ज्येष्ठ बदी न्रको ठीक माल्म होता है; अर्थात् मार्गशीर्ष बदी ११को छः महीने पूरे होते हैं। ये श्राश्विन ज्येष्ठ श्रादि महीने सौर वर्षके ही हैं। स्मरण रहे कि ये नाम भारती युद्धके बादकी पद्धतिके अनुसार बतलाये गये हैं। उक्त विवेचनसे माल्म होता है कि पाएडवोंने अपनी शर्त चान्द्रमानसे पूरी की। इसलिये यह सिद्धान्त इढ़ होता है कि पाएडव चान्द्र मानका वर्ष मानते थे। श्रौर इस इस रोतिसे हमने भारती युद्धका जो समय वैदिक कालीन शतपथ-ब्राह्मणुके पहले बतलाया है, उसका सम-र्थन हो जाता है।

ग्रहस्थितिके आधार पर युद्धका समय निकालनेका प्रयत ।

अब अंतमें हमारे लिये यह देखना बाकी रह गया है कि, युद्धकालकी ग्रहस्थितिका जो वर्णन महाभारतमें, विशेषतः उद्योगपर्वके अन्त और भीष्म-पर्वके आरम्भमं आया है, उसके आधार पर परलोकवासी मोडकने भारती युद्ध-काल वतलानेका जो प्रयत्न किया है, वह कहाँ तक सफल हुआ है। इसीके साथ भारतीय युद्धकी जन्त्री, श्रर्थात् मितिवार घटनात्रों श्रादि दूसरी बातोंका भी विचार कर लेना चाहिये। इसके लिये उन सब बचनोंको यहाँ एकत्र करना पडेगा जो इस विषयमें महाभारतमें भिन्न भिन्न स्थानों में कहे गये हैं, जिसमें इन बातींका विचार सभी इष्टियोंसे ठीक ठीक किया जा सके। पहली बात यह है कि जब श्री- कृष्ण दूतकर्म करमेके लिये कौरवोंके पास जानेको निकले, तब वे—

कौमुदे मासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे। श्रर्थात् कार्तिक महीनेमें रेवती नवन

पर चले थे। उस दिन रेवती नच्य था इससे यह दिन सुदी तेरस ही जान पडता है। कदाचित् एक दो दिन आगे पीछे भी हों। उपप्रव्यसे हस्तिनापुर जानेमें उन्हें दो दिन लगे । हस्तिनापुरमें उन्हें चार पाँच दिन रहना पड़ा। वहाँसे आते समय उन्होंने कर्णसे भेंट की। इस भेंटमें कर्णका भाषण हुआ। उसमें कर्णने इस प्रकार प्रहस्थितिका वर्णन किया है-"उप्र ग्रह शनैश्चर रोहिगी नचत्रमें मंगलको पीडा दे रहा है। ज्येष्ठा नचत्रमें मंगल वक होकर अनुराधा नामक नत्त्रसे मिलना चाहता है। महापात संज्ञक प्रह चित्रा नज्ञको पीड़ा दे रहा है। चन्द्रके चिह्न बदल गये हैं श्रीर राहु सूर्यको य्रसित करना चाहता है।" (उद्योग**०** श्र• १४३) इसके बाद श्रीकृष्ण वापस चले गये और दुर्योधनने अपनी सेना एकत्र कर पूष्य नज्ञके मुहर्तमें कुरुज्ञेत्रकी श्रोर प्रश्यान किया। उस दिन कार्तिक वदी पष्टी रही होगी। पाठकोंको ध्यान रखना चाहिये कि कार्तिकमें पुष्य नक्षत्र बहुधा बदी पष्टी या सप्तमीको ही श्राता है। इसके पहलेके १४२वें श्रध्यायके श्रन्त-में श्रीकृष्णने कर्णसे कहा है-"कीचड़ साफ हो गया है श्रीर जल बहुत रुचिर हो गया है। हवा भी न तो श्रति उष्ण है श्रीर न श्रति शीत है। यह महीना सभी तरहसे सुखदायक है। श्राजसे सात विनोंमें श्रमावस्या होगी। श्रमावस्याके देवता इन्द्र हैं। युद्ध आरम्भ करनेके लिये यह अनुकूल स्थिति है। अमावस्याको ही युद्धका आरम्भ होने दो।" इससे माल्म होता है कि जिस दिन श्रीकृष्ण गये, उसी दिन दुर्योधनने अपनी सेना इकट्टी की थी। इस भाषणका और आगे भीष्मके भाषसका मेल मिलाने पर माल्म होता है कि कार्तिक बदी अमावस्था १३ दिनोंमें हुई होगी। भीष्म पर्वके आरम्भमें धृतराष्ट्र से मुलाकात कर, व्यासने उसके द्वारा युद्ध बन्द करनेका प्रयत्न किया; परन्तु सफलता न हुई। इस समय व्यासने कुछ श्रानिष्टकारक ग्रहस्थितिका वर्णन किया है: इसे हम आगे घतलावेंगे। परन्तु उन्होंने श्रागे यह वर्णन किया है कि-"१४-१५-१६ दिनींका पखवाड़ा होते हुए मैंने सुना है, परन्तु १३ दिनोंका पाख इसी समय श्राया है। यह अधुतपूर्व योग है। इससे भी ग्रधिक विपरीत बात तो यह है कि एक महीनेमें चन्द्र और सूर्यको प्रहण लगे श्रीर वह भी त्रयोदशीको लगे।" इसका और श्रीकृष्णके पहले दिये हुए वचनका मेल मिलानेसे मालूम पड़ता है कि धृत-राष्ट्से भेंट करनेके लिये व्यास मार्गशीर्षमें किसी दिन गये होंगे । सम्भवतः वे शुक्र-पत्तमें ही गये होंगे। उसके पहलेका पत्त १३ विनोंका था श्रीर श्रमावस्याको सुय-प्रहण हुआ था। यह वर्णन है कि एक ही महीनेमें दो ब्रह्ण हुए थे, इससे माल्म होता है कि चन्द्र ग्रहण कार्तिक पौर्णिमा की हुआ होगा। यह प्रहण उस समय लंगा होगा, जब श्रीकृष्ण हस्तिनापुरमें थे। यदि वहाँ उल्लेख नहीं किया गया तो यह कोई महत्वकी बात नहीं है। कदा-चित् यहाँ यह भी कहना सम्भव है, कि वर्श पौर्णिमाको छोडकर जो ग्रहण पड़ता है, वह त्रतिशयोक्ति है। इसके त्रागे युद्ध-का श्रारम्भ हुआ : उस दिनके सम्बन्धमें यह याक्य कहा गया है—

मघाविषयगः सोमस्तदिनं प्रत्यपद्यत। इसका आपाततः यही अर्थ लिया जा सकता है कि उस दिन चन्द्रमा मधा

नत्त्रत्र पर श्रा गया था। श्रागे, शल्यपर्व-में जय लड़ाईके श्रन्तमें श्रर्थात श्रठारहवें दिन बलराम श्राये, तव उन्होंने कहा कि — पुष्येण संप्रयातोऽस्मिश्रवणे पुनरागतः।

"में पुष्य नत्त्रमें गया था श्रीर श्रवणमें वापस आया हूँ।" इससे युद्ध के अठारहवें दिन श्रवण नत्तत्रका होना सिद्ध होता है। इससे अन्दाज होता है कि युद्धके आर-म्भमें अवणके पूर्व श्रठारहवाँ नत्तत्र रहना चाहिये; अर्थात् इस वाक्यसे मालूम होता है कि युद्धके आरम्भमें चन्द्रमा मृग नत्त्रमें था। सम्भव है कि चन्द्रमा कुछ आगे पीछे भी रहा हो, यानी आर्दा पुनर्वसु हो, परन्तु मधा नहीं हो सकता। तात्पर्य, इनमेंसे भी एक वाका मुख्य समभ-कर दूसरेका अर्थ बदलना चाहिये। हम इसी दूसरे वाक्यको मुख्य मानकर चन्द्रमा-का मृगमें युद्धारम्भमें होना मानते हैं। श्रीकृष्णने कहा था कि कार्तिकी अमावस्या-से युद्ध होने दो, परन्तु वैसा नहीं हुआ। मालम होता है कि मार्गशीर्ष मासमें मृग-नक्तत्रमें युद्ध शुरू हुआ। अर्थात् उस दिन पौर्णिमा अथवा सुदी चतुर्दशी अथवा श्रधिकसे अधिक त्रयोदशी रही होगी। भीष्मका युद्ध दस दिन हुआ; यानी भीष्म मार्गशीर्व बदी दशमी, नवमी श्रथवा श्रष्ट्रमीकी गिरे। इसके बाद द्रोणका युद्ध पाँच दिनोतक हुआ : अर्थात् द्रोग मार्गशीर्ष बदी अमावस्याको अथवा दो एक दिन आगे गिरे होंगे। परन्तु यहाँ निश्चयपूर्वक माल्म होता है कि द्रोण बदी त्रयोदशीको गिरे: क्योंकि यह वर्णन है कि जयद्थ-वधके बाद रात्रिका भी युद्ध जारी रहा, और एक प्रहर रात्रि बाकी रहने पर चन्द्रोदय हुआ। इससे मालूम होता है कि वह रात्रि द्वादशीकी रही होगी। फिर कर्णका दो दिनों तक अर्थात् मार्गशीर्ष बदी श्रमाघस्थातक श्रीर दुर्यो-

धन तथा शल्यका एक दिन, पूस सुदी
१ को, युद्ध जारी रहा। इसके बाद महाभारतमें जो महत्वपूर्ण वचन हैं, वे भीष्मकी मृत्युके बारेमें हैं। उनकी मृत्यु माघ
महीनेमें हुई। उनके उस समयके वचनौंका श्रीर मृत्यु-तिथिका विचार हम
पीछे करेंगे। यहांतक हमने स्थूल मानसे
युद्धकी मिति सहित जन्त्री तैयार की है।

श्रव हम पहले उन मुख्य कठिनाइयों-का विचार करेंगे, जो महाभारतके वचनों द्वारा तथा उसमें बतलाये हुए नज्ञीं श्रीर ग्रहिशति द्वारा ऐतिहासिक अनु-मान निकालते समय, श्रा खड़ी होती हैं। हम पहले कह चुके हैं कि सौतिने मूल भारतको विस्तृत कर दिया है। यही पहली श्रड़चन है, क्योंकि प्रश्न उठता है कि मूल भारतके वचन कीनसे हैं और सौतिके द्वारा बढ़ाये हुए वचन कौनसे हैं ? इस बातकी श्रधिक सम्भावना है कि यदि मूल भारतका वचन हो तो उसमें बहुधा प्रत्यत्त स्थितिका वर्णन दिया गया होगा। पीछेके वचन काल्पनिक होनेके कारण उनसे ऐतिहासिक अनुमान नहीं निकाले जा सकते। यदि वैसा समय गणितसे निकाला जाय तो वह विश्वसनीय नहीं हो सकता। दूसरी कठिनाई यह है कि इसके सम्बन्धके बहुतेरे वचन-चाहे वे सौतिके हों अथवा पहलेके हों-आपस-में विरोधी श्रीर कृट श्रर्थके हैं, जिससे उनका कुछ भिन्न अर्थ लगाना पडता है। ऐसे कुट श्लोक बहुधा संख्या पर रचे गये हैं। हमारा अनुमान है कि वे सौति-के होंगे। ये संख्या-सम्बन्धी कृट श्लोक कैसे दोते हैं, इसके बारेमें विराट पर्वका उदाहरण देने योग्य है। उसमें कहा गया है कि गोग्रहणके समयतक श्रर्जुनने ६५ वर्षीसे गांडीव धनुष धारण किया था। परन्तु ये पैंसठ वर्ष ठीक नहीं बैटते होंगे।

इसका विवरण हम दूसरे खानमें हैंगे। यहाँ इतना ही कहना बस होगा कि '६५ वर्ष' शब्दका इस मसङ्गमें कुछ भिन्न अर्थ लगाना पड़ता है। उनकी संख्या आधी यानी ३२ई बरस लेली पडती है। इस तरहसे दो कठिनाइयाँ हैं। इनका विचार न करने पर परस्पर विरोध उत्पन्न होता है श्रीर सभी वाक्योंकी सङ्गति नहीं लगाई जा सकती। हमने मख्यतः यह नियम बना लिया है कि जहाँ कोई वचन साधारण श्रीर खामा-विक रीतिसे केवल नत्तत्र अथवा तिथि के उन्नेखके सम्बन्धमें श्रायां हो, उसे सरत समभाना चाहिये: अर्थात् वही उसका प्रधान अर्थ किया जाय और उसी अर्थके श्रनुरोधसे दूसरे वचनोंका श्रर्थ लगाना चाहिये, फिर चाहे वह मुलका वचन हो श्रथवा बादका हो। इसी तरहसे इस प्रश्नको हल करना चाहिये। तथापि हम सभी वचनोंको मूलके समभकर उनका विचार करेंगे श्रीर इसका भी दिख-र्शन करेंगे कि ऐसा करनेसे क्या परिणाम होता है और क्या श्रड्चन पड़ती है।

श्रव पहली वात यह है कि ऊपर दिये हुए श्रीकृष्ण, कर्ण श्रीर व्यासके वाक्योंसे कार्तिक वदी श्रमावस्याको युद्धके पहले स्यंग्रहणका होना हम निश्चित मानते हैं। कार्तिक सुदी पौर्णिमाको चन्द्रग्रहण हुश्रा होगा; परन्तु यह उतने निश्चयके साथ नहीं कह सकते, क्योंकि व्यासके वचनसे यह ध्वनि निकलती है कि दोनों ग्रहण एक ही दिन पड़े थे, किन्तु ऐसा होना सम्भव नहीं है। कुछ लोगोंने यह कल्पना की है कि श्रीकृष्णने जयद्रथवधके समय स्यं पर श्रावरण डाल दिया था, जिससे उस दिन स्यंग्रहण पड़ा होगा; परन्तु हम पहले ही देख चुके हैं कि उस दिन श्रमा वस्या न थी, ब्रावशी थी। उस दिन बड़े

तड़के चन्द्रोदय होनेका वर्णन है। यदि मान लिया जाय कि यह तिथि एक दो दिन आगे पोछेकी भी.होगी, और यह भी मान लें कि उस दिन (जयद्रथ-वधके दिन) अमावस्या थीं, तो एक ही वर्षमें लगातार दो महीनोमें अर्थात् कार्तिक अमा-वस्याको श्रौर मार्ग-शीर्ष श्रमावस्याको सूर्यप्रहण होना सम्भव नहीं है। तब प्रश्न होता है कार्तिक वदी श्रमावस्याके सूर्य-प्रहणको सच्चा मानना चाहिये, या मार्ग-शीर्षकी श्रमावस्याके ग्रह्णको सञ्चा सम-भना चाहिये ? कार्तिक महीनेका प्रहण इपष्ट शब्दोंमें वतलाया गया है, इसलिये उसीको सञ्चा मानना ठीक है। मार्गशीर्घ-का ग्रहण कल्पनाप्रसूत है। इसके सिवा यदि जयद्रथवध-प्रसङ्गमें प्रहण्से सूर्यका लोप हो गया हो, तो श्रीकृष्णकी मायाका महस्व ही क्या रह गया ? श्रहण खश्रास भी होना चाहिये: उसके विना अन्धकार नहीं हो सकता। तीसरे यह पहले ही मालूम रहना चाहिये कि ग्रहण होनेवाला है। कदाचित् यह कहा जाय कि पूर्वकालमें ऐसा ज्ञान न थाः परन्तु यह स्पष्ट है कि ऐसा होता तो दोनों पच घवरा जाते; श्रीर शर्जुन तथा श्रीकृष्णको भी भ्रान्ति होनी चाहिये थी कि अर्जुनकी प्रतिका व्यर्थ हो

गई। तात्पर्य यह है कि जयद्रथवधके समय
स्प्रंप्रहणका होना ठीक नहीं माल्म होता;
परन्तु यह कल्पना केतकर नामक प्रसिद्ध
ज्योतिषीके द्वारा की गई थी, श्रतपव उसका
उन्नेख यहाँ करना श्रावश्यक माल्म हुश्रा
(दीन्नितकृत भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ
१२४)। तात्पर्य, इस वातको निश्चयात्मक
श्रोर संशयरहित माननेमें कोई हर्ज नहीं,
कि भारतीय युद्धके वर्षमें कार्तिक बदी
श्रमावस्याको स्प्रंग्रहण हुश्रा था। श्रब
हम यह विचार करेंगे कि इस बातका उपयोग काल-निर्ण्यके काममें कैसे होता है।

हमारे सामने भारती युद्धके मुख्यतः तीन समय उपस्थित हैं:—(१) सन् ईसवी-के पहले ३१०१ वर्षः युद्धका यह समय लोकमतके अनुक्ल है। (२) गर्गः, वराह-मिहिर और तरंगिणीकारके द्वारा माना हुआ शक पूर्व २५२६ वर्षः (३) श्रीयुत अध्यरका वतलाया हुआ सन् ईसवीके पूर्घ ३१ अक्टूबर ११६४। हमने इसके सम्बन्ध-में गणित करके देख लिया है, कि इन तीनों समयोंके वर्षों में कार्तिक वदी अमा-वस्याको ग्रह-स्थित कैसी थी और सूर्य-ग्रहण हुआ था या नहीं। विक्टोरिया कालेज, ज्वालियरके प्रोफेसर आपटेने इसके अङ्क भी दिये हैं। वे इस प्रकार हैं:—

कार्तिक वदी ३० शुक्रवार शक ३१६०

ग्रह	FEFFER	श्रंश	TIPLE .	नचत्र
सूर्य	२३४°	पृद्	٦"	ज्येष्ठा
THE PERSON NAMED IN THE PERSON OF THE PERSON	૨૨૫°	32'	42	श्रनुराधा श्रथवा ज्येष्टा
双新	.:२१ = °	२६′	38"	श्रनुराधा
मङ्गल	રપ્ ⊏ °	38'	83"	पूर्वाषाढ़ा अथवा उत्तराषाढ़ा
	३५.0°	22'	२२"	रेवती
शनि	३१४°	44'	, E"	शततारका
राष्ट्र	२३५.°	१⊏'	58"	निक्तम ज्येष्टा महत्र गाँव

(सूर्यप्रहण अवश्य हुआ। पहलेकी पौर्णिमाको चन्द्रग्रहण नहीं था।)

कार्तिक वद	ी श्रमावस्या	कार्य कार्य	तेक बदी अमाव	स्या
ं शुक्रवार श		विधि प्रकार सा स्वयंदर	रविवार शक १	२७१
प्रह	श्रंश	नच्च नच्च		नम्त्र
मर्थ	२१२° ४′		१° १३′ ३७"	1000
ਰਬ	२१४ २७	५७" अनुराधा २४	£ 85, 88,	मूल
श्रुक	२५५ ५=	२६" पूर्वा श्र.उ.पाढा २३	રું ૧=′ પૂ૭″	ज्येष्ठा
मङ्गल	२६= ° २६'	६ "धनिष्ठा श्र.शतता.२५	18° 34' 38"	मूल ा
	१३° ४२′	१०" भरणी ३२	२° ५२′ १२″	र्वाभाइपवा
शनि	२४° १५′	३" भरणी २५	३° ५४' २७"	पूर्वाषादा
राष्टु	१६२° ४३′	पू⊏″ हस्त ⊏		
CONTRACTOR NAMED IN	200	THE THE LETT STREET		2.1

(इन दोनों वर्षोमें सूर्य-प्रहण अथवा चन्द्र-प्रहण होना सम्भव नहीं है।)

हम समभते हैं कि सूर्यप्रहणका यह प्रमाण श्रत्यन्त प्रवल है। भारतीय युद्धके पहले सूर्यप्रहण होनेकी बात मूल भारत-की है। वह कुछ सौतिके समयकी नहीं है। अतएव वह अत्यन्त प्राचीन भारत-कालीन है। खैर, उसे किसी समयकी मान लें, तो भी वह उस समयकी है जब कि भारतवासी ग्रहगिणत करना नहीं जानते थे। वह दन्तकथाकी परम्परासे मशहर चली श्राई होगी: अतएव वह विश्वसनीय है। इस दृष्टिसे गणित करके देखने पर यही कहना पड़ता है कि पहला सर्वमान्य समय सिद्ध है; श्रीर वराह. गर्ग अथवा बिल्हणका बतलाया हुआ समय तथा श्रीयुत श्रय्यरका निश्चित किया इश्रा समय सिद्ध नहीं होता। चौथा समय, जो पुराणोंके श्राधार पर यतलाया गया है, गिएत करनेके लिये उपयोगी नहीं है; क्योंकि वह स्थल है. और उसमें निश्चित वर्ष नहीं वतलाया ग्या है। हमने मान लिया है कि यह समय सन् ईसवीके लगभग पूर्व है; परन्तु यह मोटा हिसाब है. क्योंकि परीक्षितसे नन्दतक १०१५ वर्ष और १११५ वर्ष भी बतलाये गये हैं। नव-नन्दके १०० वर्ष भी स्थल मानके हैं-धे निश्चित संख्या बतलानेवाले नहीं हैं।
श्रीर, चन्द्रगुप्तका सन् ईसवीसे पूर्व ३११
का समय भी गणितके निश्चयका नहीं है।
इसलिये हमने इन वर्षोंका गणित नहीं
कराया श्रीर इस कारण हम निश्चय
पूर्वक नहीं बतला सकते कि इन वर्षों
सूर्यग्रहण हुश्चा या नहीं।

यह त्राचेप हो सकता है कि भारती युद्धके पहले जो सूर्यग्रहणकी घटना का लाई गई है. वह निश्चयात्मक नहीं है वह वैसी ही बात है जैसी कि सौतिर द्वारा अनेक प्रसंझें पर श्ररिष्ट सूचक श्रशुभ चिह्नांके तौर पर बतलाई गई है। इस श्राचेपका निरसन होना कठिन है, क्योंकि हमें यह स्वीकार करना पडेगा, कि उस समय कर्णने और विशेषतः व्यासने उद श्ररिष्ट-सृचक चिह्न कल्पनासे वतलाये हैं। इस प्रकारकी धारणा सभी समयमें प्रव लित रहती है। वह महाभारतके रचन कालमें भी प्रचलित रही होगी। ज्योति वियोंके प्रन्थोंमें इस वातका उल्लेख रहत था कि त्राग्रभ-सूचक भिन्न भिन्न ज्योति विषयक बातें कौन कौन हैं।यह सच हैं स्र्यंग्रह्ण भी उनमें से एक है। परन्तु यह भी स्पष्ट है कि इस तरहकी विचारशैली^त कहीं पैर रखनेके लिये भी जगह न मिलेगी

श्रव हम महाभारतमें वतलाई हुई प्रहिश्चितिका विचार करेंगे । ऊपरके गिर्मितमें हमने यहोंकी गणित द्वारा मालूम होनेवाली स्थितिका उल्लेख जान वूमकर किया है। महाभारतमें दी हुई स्थितिसे उसकी तुलना करते वनेगी। पहले कहा जा चुका है कि युद्धके आरम्भके समय चन्द्रमा मधा नज्ञमें था। परन्तु बल-रामके वाक्यसे माल्म होता है कि वह मृग नज्ञमें अथवा उसके आगे-पीछेके किसी नचत्रमें था। कर्णका कथन है कि इयेष्टासे वक होकर मङ्गल अनुराधाकी श्रोर जा रहा था। भीष्म पर्वके श्रारम्भमें व्यासके वचनसे माल्म होता है कि मङ्गल वक होकरं सघा नज्ञ सं श्रा गया है। गुरु अवणमें आ गया है और शनैश्चर पूर्वा-फाल्गुनीको पीड़ा दे रहा है। यहाँ व्यास-ने यह भी कहा है कि शुक्र पूर्वाभाद्रपदा-में आ गया है। परन्तु उद्योग पर्वमें कर्ण-ने कहा है कि उम्र मह शनैश्चर रोहिणी नचत्रको पीड़ा दे रहा है। इसी प्रकार भीष्म पर्वमें व्यासने फिर कहा है कि शनि श्रौर गुरु विशाखाके पास हैं। मङ्गल वकानुवक करके श्रवण पर खड़ा है। इसके सिवा और भी कई बातें राहु, केतु श्रीर श्वेत ग्रहके सम्बन्धमें बतलाई गई है। परन्त हम खासकर शनि, गुरु, मङ्गल श्रीर शुक्रका विचार करेंगे। इन महौंके भिन्न भिन्न नत्त्र इस तरह उत्पन्न हो गये हैं। शनि—पूर्वाफाल्गुनी (भीष्म पर्व) श्रीर रोहिणी (उद्योग पर्व): गुरु-अवण और विशाखा (भीष्म पर्व); मङ्गल-कर्णका ज्यासका

श्रव्याधा (उद्योग पर्व) श्रौर वकानुवक्रसे श्रवण (भीष्म पर्व) श्रौर मधा; शुक्र— पूर्वाभाद्रपदा (भीष्म पर्व), इत्यादि। पूर्व कथनके श्रव्यसार चन्द्रमा, मधा श्रौर मृग नच्नों पर बतलाया गया है। इनमेंसे सच बात कौनसी है? क्या दोनों सच हैं श्रथवा दोनों भूठ हें? श्रौर यदि हम उक्त ग्रहस्थितिका विचार करते हुए इनमें-से किसीको भूठ समभ लें, तो यह प्रश्न होता है कि सौतिने ऐसी भूठ बातें क्यों लिख डालीं?

सन ईसवीके ३१०१ वर्ष पूर्वकी श्रथवा शकपूर्व २५२६ की प्रत्यच ग्रहस्थिति हमने पहले दे दी है। वह उक्त समयके पहले वर्षके कार्तिक महीनेकी वदी श्रमा-वस्याकी ग्रहस्थिति है जो इस समय गिगत द्वारा निश्चित की गई है। उसकी श्रीर इस ग्रहस्थितिकी तुलना करनेसे इन ग्रहोंके स्थानका काल्पनिक होना स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। यदि इस बातको ध्यानमें रखें कि युद्ध मार्गशीर्ष बदीमें हुआ था, श्रोर यदि इस बात पर भी ध्यान दें कि भीष्म पर्वमें बतलाई हुई स्थिति युद्धके पहले अर्थात् मार्गशीर्षके प्रारंभकी है तथा कर्णके द्वारा बतलाई हुई स्थिति कार्तिक बदीकी है, तो भी यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि मंगल, गुरु श्रीर शनिकी स्थितिमें बहुत अन्तर न पड़ेगा; परन्तु यहाँ तो बहुत बड़ा अन्तर दिखाई पड़ता है। यह मामला साफ समसमें त्रानेके लिये नीचे एक कोएक दिया गया है।

शक ३१८० शक २५२७
में प्रत्यच्च स्थिति में प्रत्य स्थिति
(गिएतिसे) (गिएतिसे)
ग पूर्वाधाढ़ा धनिष्ठा
रेवती भरगी
शततारका भरगी-कृशिका

सारांश यह है कि एक भी प्रहकी स्थितिका मेल नहीं मिलता। मुख्यतः इस बातको ध्यानमें रखने पर दिखाई पडता कि ये बातें कल्पनासे ही बतलाई गई हैं। यदि भारती युद्धका ब्राह्मण-कालके आरंभमें होना सच है, तो कहना पड़ता है कि उस समय सातों ग्रहोंका ज्ञान होने पर भी उनकी श्रोर ऋषियोंका विशेष ध्यान न था श्रोर उनकी निश्चयात्मक गति भी उन्हें मालम न थी। श्रायोंको यह देखनेका ज्ञान कुछ समयके बाद धीरे धीरे हुआ, कि वे यह किस नज्ञमें हैं। वेदांग-ज्योतिष-कालमें भी यह ज्ञान न होगा । उसमें केवल सूर्य और चन्द्र-सम्बन्धी गणित है-यहोंके सम्बन्धमें गिरात नहीं है। तथापि यह सच है कि श्रागे गर्गके समयमें वहुत कुछ ज्ञान हो गया था। गर्गने भिन्न भिन्न प्रहोंके चार दिये हैं। गर्गके मूल प्रन्थमें क्या था, यह महाभारत के सरस्वती-श्राख्यानमें बत-लाया गया है। उसमें कहा गया है कि उसने कालकानगति, तारोंका (ग्रहोंका) सृष्टि-संहार, दारुण और शुभकारक उत्पात श्रीर योगका ज्ञान प्राप्त किया था। उसके नामसे श्राजकल जो "गर्ग संहिता" नामक यन्थं प्रचलित है, उसमें भी यही बात दी हुई है। इससे अनुमान होता है कि सौतिने गर्गके तत्कालीन प्रनथसे उन सब दारुण उत्पातोंको लेकर भारती युद्ध-प्रसंगके सम्बन्धमें लिख दिया है, जो भयङ्कर प्रसङ्गसूचक समभे जाते थे। उसने वर्णन किया है कि चत्रियों-के अभिमानी भिन्न भिन्न नत्त्रजों पर या तो दुष्ट ग्रह आ गये हैं, या उनपर उनकी दृष्टि पड़ी है। इसके साथ ही उसने कई उत्पातोंका भी वर्णन किया है। "बाँभ स्त्रियोंको भी भयङ्कर सन्तानें हो रही हैं। दो आँख, पाँच पैरवाले भयहर

पसी भी जनम ले रहे हैं। घोड़ीसे पह. वाका, कुत्तीसे गीदड़का श्रीर ऊँटीसे कत्तोंका जन्म हो रहा है। बार बार भक म्प हो रहा है। राहु श्रीर केतु एक ही जगह पर आ गये हैं। गौश्रोंसे रक्क तरह दध निकलता है। पानी अग्निके समान लाल हो गया है। चत्रियोंके प्रति. कल तीनों नत्तत्रोंके शीर्षस्थानमें पापग्रह वैठा है।" इस तरहके बहुतेरे वर्णन भीष्म पर्वके श्रारम्भमें व्यासके मुखसे हए हैं। वे प्रायः काल्पनिक होंगे और उत्पात-ग्रन्थोंसे लिये गये होंगे । उनम वतलाई हुई ग्रहस्थिति भी काल्पनिक है। अर्थात चत्रियोंके इप्ट-अनिष्ट नचत्रोंके श्राधार पर ग्रहोंकी स्थिति कहिएत की गर् है। तात्पर्य यह है कि उनके आधार पर ग्रितसे ऐतिहासिक अनुमान नहीं निकाला जा सकता। ऐसा मान लेने पर भी यह प्रश्न बाकी ही रह जाता है, कि सौतिने जो यह ग्रहस्थिति बतलाई है, उसको उसने दो दो नचत्रों पर कैसे वतलाया है ? यह एक स्पष्ट बात है कि यदि उसने काल्पनिक यहस्थितिका वर्णन किया होगा. तो उसे भी समभदारीके साथ ही किया होगा। व्यास और कर्णके भाषणोंमें तो विरोध है ही, परन्तु व्यासके श्रगले पिछले वचनोंमें भी विरोध पाया जाता है। पहले मङ्गल मधामें वक बत-लाया गया है: फिर श्रागे कहा गया है कि वह पुनः पुनः वक्र होकर श्रवणका-जिस पर बृहस्पतिका श्राक्रमण हो चुका है-पूर्ण वेध कर रहा है। श्रारम्भमें बृहस्पति श्रवणमें बतलाया गया है स्रोर स्रन्त-में विशाखाके पास बतलाया गया है। इस तरह दो दो नत्त्रों पर ग्रहोंकी स्थिति क्यों बतलाई गई है ? इस पर मोड़कने अनुमान किया है कि दोनों नचत्रोंकी ठीक मानकर एकको सायन और दूसरे को निर्यण समझना चाहिये। यहाँ यह बतला देना चाहिये कि सायन और निर-यण नद्मत्र कैसे होते हैं श्रीर उनकी कल्पना कैसे की जाती है। प्रत्यच श्राकाशमें जो नत्त्र दिखाई पड़ते हैं वे गतिरहित हैं; उन्हें निरयण कहते हैं। श्राजकल इनका श्रार-म्म-स्थान अश्विनी है। ये निरयण अश्विनी, भरणी आदि नज्ञ आकाशमें प्रत्यज्ञ देख ही पड़ते हैं: परन्तु सम्पात बिन्दुकी गति पीछेकी श्रोर है, श्रर्थात् यद्यपि नज्जीकी कोई चाल नहीं है तथापि आएम्म-स्थानकी चाल है। श्रारम्भ-स्थान जैसे जैसे पीछे हुटे, वैसे ही वैसे आरम्भके नज्जको सायन किएत पीछेकी श्रोर ले जाना वाहिये । उदाहरणार्थः - जब रेवतीमें सम्पात रहे तब रेवतीको सायन अश्विनी कहना चाहिये, और कहते भी हैं। राशियाँ सायन और निरयण दोनों तरहकी होती हैं। निरयंण राशियाँ श्राकाश-स्थितिसे मेल रखती हैं, परन्त सायन मेपके पीछे चले जानेके कारण आकाशके मेपसे मेल नहीं मिलेगा यह मान लेना चाहिये कि किएत सायन नद्मत्र श्रीर प्रत्यद्म निर्यण नज्ञ दोनों प्रचलित रहे होंगे, इसी लिये नज्ञोंके आधार पर यह दुहरी ग्रहस्थिति वतलाई गई है। इससे यह कर्पना की जा सकती है कि भारत-युद्धकालमें सम्पात पुनर्वसुमें रहा होगा । इसका दूसरा कल्पित सायन नाम श्रश्विनी हो सकता है। उस समय चन्द्रमा मृगमें, श्रीर मधामें भी, बतलाया गया है। इनमेंसे मघा सचा निरयण नज्ज और मृग कल्पित सायन होगा । सम्पातके पुनर्वसुमें रहनेसे, उसे यदि अध्वनी कहें, तो (पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा) मघा चौथा श्लौर (त्रिश्वनी, भरगी, कृत्तिका, रोहगी, मृग) मृग पाँचवाँ होता है। मङ्गल एक बार मधा-में श्रोर दूसरी बार ज्येष्ठामें बतलाया गया

है। ज्येष्ठाको सच्चा निरयण श्रीर मघाको सायन मानना चाहिये (इसमें भी दक नचत्रकी भूल होती है) क्योंकि पुनर्वसुको श्रश्यिनी कहने पर श्रनुराधाको मघा कहना पड़ता है। मङ्गल ज्येष्ठामें वङ्गी होकर श्रनुराधाकी श्रोर जाता था। श्रवण पर जो गुरु बतलाया गया है, वह निरयण है श्रीर विशाखाके पास जो बतलाया गया है, वह सायन है। सारांश यह है कि लगभग सात नच्योंको एक दम छोड़कर पीछेका दूसरा नाम बतलाया गया है। इससे मोड़कने सम्पातका पुनर्वसुमें होना मानकर गणित करके बतलाया है कि यह समय सन ईसवीके लगभग ५००० वर्ष पहले श्राता है।

परन्तु यह कल्पना सब नद्यत्रोंके सम्बन्धमें ठीक नहीं उतरती: यही नहीं. बरिक वह ऐतिहासिक दृष्टिसे भी गलत है। इसमें अनेक ऐतिहासिक गलतियाँ हैं। पहली गलती यह है कि पूर्वकालमें नचत्र श्रश्विनीसे शुरू नहीं होते थे - कृत्तिकासे शुरू होते थे। वेदीं श्रीर वेदाङ्ग ज्योतिषमें तो वे कृत्तिकासे ही शुरु होते हैं। सौतिके महाभारतकालमें भी नत्त्र कृत्तिकादि थे. श्रर्थात् कृत्तिका पहला नत्त्रथाः श्रश्विनी न था। दूसरी भूल-यह बात ही पहले ज्ञमानेमें माल्म न थी कि श्रयनबिन्द्की गति पोछेकी श्रोर है। महाभारतकालमें तो मालूम थी ही नहीं, प्रन्तु श्रागे लगभग ८०० वर्षोंके बीत जाने पर होनेवाले बराह-मिहिरको भी यह बात माल्म न थी। सायन और निरयणका भेद अर्वाचीन कालका है। सन् ईसवीके लगभग १५० वर्ष पहले हिपार्कस्ने श्रयनगतिका पता पहलेपहल लगाया। फिर यह बात हिन्दु-स्थानमें त्रार्य ज्योतिषियोंको माल्म हुई श्रीर उम्होंने उसे श्रपने ज्योतिष-गणितमें

समिलित कर लिया। तीसरी गलती— इस बातको हर एक श्रादमी मानेगा कि यदि एक ही समयमें सायन श्रौर निरयण दो नत्तत्र एक हो नामसे प्रचलित हों श्रीर उनके लिये कोई अलग चिह्न अथवा नाम न हों, तो बड़ी भारी गड़बड़ हो जायगी। जब कि केवल नत्तत्र ही बतलाया गया है, तब यह कैसे निश्चित किया जाय कि वह सायन है ऋथवा निरयण ? क्या प्रत्येक आदमी अपनी अपनी कल्पनासे निश्चित कर लिया करे ? ऐसी गडबड कभी समा करने योग्य न होगी। यह मामूली बात है कि व्यास और सौति सरीखे प्रन्थकार, नक्तत्र वतलाते हुए, पाठकोंको बार बार भ्रममें न डालेंगे। सारांश, जब कि महाभारतकालमें सायन श्रौर निरयण नचत्रोंका ही होना सम्भव नहीं है, श्रीर यदि सम्भव हो तो उस समय उनका आरम्भ अश्विनीसे नहीं होता था, तब यही स्पष्ट है कि ऊपर दी हुई सारी दलील ही गलत है। इसके सिवा, सब नक्तरोंकी स्थिति इस तरहसे ठीक नहीं जमती। विशेषतः शनिकी स्थिति रोहिणी, पूर्वाफाल्गुनी और विशाखा, इन तीन नचत्रों पर बतलाई गई है। इसमें सायन-निरयणका भेद बिलकुल बतलाया ही नहीं जा सकता। यदि रोहिणीको सायन मान भी लें, तो वह अश्विनीसे चौथा ही होता है। पुनर्वसुसे पूर्वाफल्युनी पाँचवाँ होता है। इसी प्रकार जो तीसरा नत्तत्र बतलाया गया है कि मङ्गल वकान-वक होकर अवण पर वक होगया, उसकी उपपत्ति मालूम नहीं होती। इस कल्पना पर अर्थात् सायन-निर्यण-नद्यत्र-कल्पना पर इस तरहके आदीप होते हैं, इसलिये कहना पडता है कि यह कल्पना मान्य नहीं हो सकती । ग्वालियरके श्रीयत विसाजी कृष्ण लेलेने भी इसी तरहका

प्रयत्न किया था, परन्तु वह सिम्ह न हुआ।
श्रीयुत शङ्कर वालकृष्ण दीचितका यह मत
उनके ग्रन्थसे माल्म होता है कि पाएडवॉके समयकी सभी ग्रहस्थिति कर्ण और
व्यासके भाषणोंमें हैं; परन्तु उन्होंने उन
भाषणोंके श्राधार पर समय निश्चित करने
का प्रयत्न नहीं किया है, क्योंकि उन्होंने
श्रपना स्पष्ट मत लिख दिया है कि उस
ग्रहस्थितिका मेल ठीक ठीक मिलाया नहीं
जा सकता (भारती ज्यों० पृष्ठ १२४)।

वेधोंके द्वारा भिन्न ग्रहस्थितिकी

यह प्रश्न फिर भी अवतक बाकी रह गया कि यदि महाभारतमें बतलाई हुई ग्रह-स्थितिको काल्पनिक मान लें. तो काल्पनिक ग्रहस्थिति बतलाते इए भी कोई समभदार आदमी दो दो तीन तीन नचत्रों पर ग्रहोंकी स्थिति कैसे बतला-वेगा? यह नहीं माना जा सकता कि इस प्रश्नका स्पष्टीकरण हो ही नहीं सकता। टीकाकारने इस स्थितिको वेध की कल्पनासे मिलाकर दिखानेका प्रयत किया है, श्रीर हमारा मत है कि यह प्रयत्न अनेक अंशोंमें सफल हुआ है। हम यहाँ उसका कुछ वर्णन करनेका साहस करते हैं। यह विषय मनोरंजक और पाठकोंके सन्मुख उपस्थित करने योग्य है। टीकाकारने इस विषयको समभाने-के लिये नरपतिविजय नामक ज्योतिष-प्रन्थसे "सर्वतोभद्रचक" लिया है। यह पुराना ग्रन्थ है और इसका उपयोग यह देखनेके लिये किया जाता है कि युद्धमें जीत होगी या हार। इस चक्रमें चार भुजाएँ हैं। प्रत्येक भुजामें कृत्तिकासे सात सात नक्तत्र रखे गये हैं च्रीर दो रेखाएँ अधिक कल्पितकर चारों कोनीमे ग्र, ग्रा, इ, ई श्रद्धार एख दिये गये हैं। हम यह देखेंगे कि इस "सर्वतोभद्ध चक्र" में, महाभारतके वर्णनानुसार, सात श्रह इन उन नद्धश्रोंमें एखने पर श्रन्य नद्धश्रोंके विषयमें बतलाया हुश्रा वेध कैसे टीक मिलता है। महाभारतमें वेध शब्द नहीं है; परन्तु आक्रम्य, आवृत्य, पीड़यन् इत्यादि शब्दोंसे वेधका अर्थ निकलना सम्भव है। चक्र और यह स्थिति नीचे लिखे अनुसार है।

सर्वतोभद्र चक्र।

(कार्तिक बदी ३० के दिन महाभारतमें बतलाई हुई प्रहस्थितिके सहित।)

अ	कु.	रोः	मृ.	आ.	पुनः	भू पुरे	आ	आ
भ.	ng 18.	9 PA		で、数	s there	WE T	TO S	∱स.
अ	I IFF	BIF			190		9 . Au	पूः
₹.	DIPIN	fs 181	95 - 91 100 - 1			is fai		3. ↑3J
उ.भा		F 113	HOLES HOLES		7		SHOP OF THE	हस्त
पूःभ्रा	18,13			9 - 1 T			FP S	चि.
श्रा.	1 52 fg	SIFE I	1 9 X	9 18	1	7 161		स्वाः
ध.	is fr				COATE OF THE PERSON OF THE PER	1		小红色
देक्श	श्र-	अभि	उ हो।	पूष	मू.	ज्ये र	अनु	म् इ

कोई ग्रह श्रमुक नक्षत्रको पीड़ा दे रहा है, इसका यही श्रर्थ होता है कि, वह उस नक्षत्र पर है श्रथवा उस नक्षत्रको सम्पूर्ण दृष्टिसे, त्रिपाद दृष्टिसे श्रथांत है दृष्टिसे श्रथवा श्रर्थदृष्टिसे देख रहा है। २८ नक्षत्र मानकर इन दृष्टियोंके नापनेमें

I

बड़ी सरलता होती है। पाठकोंको यह सहजमें ही मालूम हो सकता है, कि १४ नच्नत्रों पर पूर्ण दृष्टि रहती है, (-ेंड्र) ६६ नच्नत्रों पर त्रिपाद और (-ेंड्र) ७ नच्नत्रों पर १ दृष्टि रहती है। इस रीतिसे विचार किया जाय तो मालूम होगा कि सूर्य-चन्द्र

जिस समय ज्येष्टा नच्त्रमें थे, उस समय रोहिणी पर उनकी पूर्ण दृष्टि थी। अर्थात्, यह स्पष्ट है कि वे रोहिणीको पीड़ा देते थे।

"मघा स्वंगारको वकः श्रवणे च बृहरूपतिः" इस वाक्यका श्रर्थ ऐसा ही होता है। कर्ण कहता है कि अनुराधा पर मङ्गल

वक गतिसे है। श्रर्थात उसकी दृष्टि पीछे सातवें नचत्र—मघा—पर जाती है। मङ्गलकी यह दृष्टि पूर्ण समभी जाती है। बहस्पति विशाखामें है श्रीर उसकी दृष्टि श्रागे सातवें मत्तत्र—श्रवण—पर जाती है। सारांश, व्यासका उक्त वाक्य ठीक मालूम होता है। फिर श्रागे व्यासने मङ्गलको वकानुवक करके श्रवण पर वत-लाया है। श्रर्थात्, अनुराधासे विशाखा-तक वकगतिसे जाकर मङ्गल वहाँ सीधा हो गया, इसलिये उसकी चतुर्थ (मङ्गल-की पूर्ण) दृष्टि सातवें नक्त्र-श्रवण-पर गई। इस तरहसे मङ्गलके तीनों प्रहों-का स्पष्टीकरण हो जाता है। अब हम शनि-के विषयमें विचार करेंगे। व्यास शनिको विशाखाके पास बतलाते हैं। 'समीपस्थ है इन शद्धांसे समभाना चाहिये कि वह यहीं है। शनि रोहिशीको पीड़ा दे रहा है श्रीर वह विशाखासे १६ वाँ होता है। यह दृष्टि 👯 अर्थात् 🥉 की है। उसी तरह शनि भग नचत्रको पीड़ा दे रहा है और वह नत्तत्र २४ वाँ होता है। वहाँ दृष्टि इट अथवा है होती है। भग नज्ञको श्रुतिमतके श्रनुसार "उत्तरा" चाहिये। टीकाकार भी ऐसा ही कहता है। [भीष्म अ० ३१.१४] यह दृष्टि आधु-निक ज्योतिषमें नहीं मानी गई है, परन्तु गर्गके समयमें मानी जाती होगी। ज्यासके वाक्यमें जो बात कही गई है उसका अर्थ वेधके द्वारा ही लगाना चाहिये। "मङ्गल वक होकर मधामें आ गया है। बृहस्पति

अवरामें या गया है। और, शनैश्चर भग (उत्तरा) नक्तत्रको पीड़ा दे रहा है। अर्थात्, यही देख पड़ता है कि तीनों यह वेधसे तीन नत्तत्रोंको पीड़ा दे रहे हैं। श्रव हम शुक्रके सम्बन्धमें विचार करेंगे। यहाँ कहा गया है कि "शुक्र पूर्वाभाद्रपदामें श्राकर चमक रहा है।" शुक्र सूर्यके श्रागे-पीछे पासमें ही रहता है। जब सूर्य ज्येष्टा-में है तो शुक्र पूर्वाभाइपदामें नहीं रह सकता। वह उत्तरामें रहा होगा और वहाँसे उसका वेध पूर्ण दृष्टिसे पूर्वाभाद-पदा पर पहुँचता है। इन भिन्न भिन्न दप्रियोंसे वेध किये हुए नज्ञ प्राण श्रथवा जीवितके श्रभिमानी हैं: श्रौर उन नक्तत्रों पर दृष्ट दृष्टि हो जानेके कारण प्राणियांका नाश होगा। यह बात उस समयके ज्योतिष-ग्रन्थोंमें कही गई है श्रौर उसीको टीकाकारने उद्धत किया है। उदाहरणार्थ, रोहिणी नन्तत्र प्रजा-पतिका है और उस पर सूर्य, चन्द्र (श्रमा-वस्याका), राहु और शनिकी दृष्टि पड़ी है अर्थात् प्रजाका नाश होगा। टीका-कारने इस तरहके वचन कई ग्रन्थोंसे दिये हैं। हमारे मतसे यह प्रहिश्वित किएत है। साथ ही ध्यान देने योग्य दूसरी बात यह भी है कि वह गणित करनेके लिये उपयोगी नहीं है, क्यांकि उसमें निश्चित श्रंश नहीं हैं।

इस तरहसे (शनिके सिवा) सारी प्रहिष्यति भिन्न भिन्न नत्त्रज्ञों पर वेधकी दृष्टिसे ठीक समभाई जा सकती है। तथापि हम यह नहीं कहते कि युद्धकाल-में इस ग्रहस्थितिको प्रत्यच देखकर युद्ध-के समय ही वह महाभारतमें लिखी गई है। वह इतनी श्रनिश्चित है कि गणितकी रीतिसे उसके द्वारा समय ठहराना सम्भव ही नहीं है। इस बातको दीवितने भी स्वीकार किया है। सारांश यह है कि

मोड़कका बतलाया हुआ समय तो मान्य समका जाता है ही नहीं; परन्तु यह ग्रहिश्वित युद्धका समय ठहरानेके लिये ग्रन्थ रीतिसे निरुपयोगी है। हमने पहले ही बतला दिया है कि उसकी कल्पना कैसे की गई है।

इस प्रकार, भिन्न भिन्न मतोंके अनु-सार बतलाये हुए भारती युद्धके समयके सम्बन्धमें विचार करने पर हमारा मत है कि सामान्यतः सभी ज्योतिषियोंके द्वारा माना हुआ और आस्तिक मतसे ग्रहण किया हुआ सन् ईसवी के पूर्व ३१०१ वर्षका समय ही ग्राह्म उहरता है।

भारती-युद्धके सम्बन्धमें वर्णन करते समय ज्योतिष-विषयक अन्य अनेक उल्लेख आये हैं। इस प्रकरणमें उनका भी विचार हो सकता है, अतएव अब हम उनका विचार करेंगे। भारती युद्धके आरम्भ होनेके दिन—

मयाविषयगस्सामस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत । दीप्यमानाश्चसम्पेतुर्दिवि सप्त् महाप्रहाः ।

यह स्रोक कहा गया है। इसका विचार पहले होना चाहिये। कार्तिक वदी श्रमावस्थाको सूर्यग्रहण हुत्रा, श्रतएव सूर्य त्रोर चन्द्र ज्येष्ठा नत्त्र परथे। श्रागे यदि ऐसा मान लें कि मार्गशीर्ष सुदी त्रयोदशी अथवा पौर्णिमाको युद्ध शुरू हुआ, तो १३-१४ दिनोंमें चन्द्रमा मघा पर नहीं जा सकता। तेरह चौदह दिनोंमें रोहिणी-मृग नत्तत्र आता है। वहाँसे मघा पाँच नज्ञोंके आगे है। युद्धके श्रन्तिम दिन बलराम कहते हैं कि वे वहाँ अवगा नज्ञमें पहुँचे । श्रर्थात् अवगके पीछे अन्दाजसे १८ नत्तत्र लेने पर भी मृग नत्त्र ही आता है मघा नहीं आता। मघासे श्रवण १२ नज्ञत्रोंकी ही दृरी पर है। इसलिये अगले पिछले वाक्योंसे माल्म होता है कि युद्धारमभमें चन्द्रमा

मृग नज्ञमें था। फिर यह एक गृढ़ बात है कि ऊपरके वाक्यमें 'मघा' कैसे कहा गया। यह भी आश्चर्यकी बात है कि दिनको सूर्यके उदित होने पर सात प्रह दीप्यमान त्राकाशमें देख पड़ने लगे। सूर्यके तेजसे कोई त्रादमी यह नहीं देख सकता। तो फिर इस श्लोकको कट श्लोक मानना चाहिये अथवा कहना चाहिये कि इसमें श्राश्चर्यकारक वातें, श्रसम्भव होने पर भी, भर दी गई हैं। टीकाकारने इसे कट माना है। उन्होंने "मधाविषयगः" का श्रर्थ किया है कि मघाका देवता पितृ है: उनका विषय पितृलोक, यमलोक अथवा चन्द्रलोक है: श्रौर चन्द्र मृगका देवता है: इसलिये चन्द्रमा मृगमें था। परन्तु यह केवल दाँव पेच है। इस तरहसे श्लोकका ठीक अर्थ नहीं लगता। युद्धके आरम्भमें कृत्तिका नज्ञ हो सकता है। यदि ज्येष्ठा नक्तत्रके सूर्यग्रहणके श्रनन्तर १३ दिनोंमें युद्धका होना मान लिया जाय, तो ज्येष्ठासे कृत्तिका नच्चत्र १३ वाँ होता है। श्रवणसे कृत्तिकाका स्थान पीछेकी श्रोर २० वाँ होता है, इसलिये कह सकते हैं कि १८ दिनोंमें २० नत्त्रत्रोंका होना सम्भव है। श्रीर, तात्पर्य यह होगा कि कृत्तिकांसे मघा पर चन्द्रमाकी है दृष्टि सात नचत्रोंकी होती है, पितृदेवता मघा है, उस पर युद्धके त्रारम्भमें हैदष्टि होना बुरा है। हमारे मतानुसार यहाँ इस दृष्टिको ही मघा पर समभा चाहिये। यदि ऐसा मान लें कि सात दीप्त प्रहोंका निकलना सम्भव होनेके लिये सूर्य पर काला श्रावरण पड़ गया था, तो इन सातों प्रहोंको उदित भागमें होना चाहिये था। सातोंमेंसे पहले तो सूर्यकी ही कमी देख पड़ती है। सुदी त्रयोदशीको चन्द्रमाका सूर्योदयके समय ऊपर रहना सम्भव नहीं है। वह सन्ध्या समय थोड़ासा दिखने लगेगा, प्रातःकाल नहीं दिखेगा। बाकी पाँच ग्रह उदित भागमें हो सकते हैं। मङ्गल अनुराधामें, गुरु और शनि विशाखाके पास, शुक्र उत्तरामें और बुध बीचमें कहा गया था; परन्तु इतनेसे ही यह कहना ठीक नहीं हो सकता कि सात ग्रह दीप्तमान थे। घोड़ीसे कुत्ते पैदा होने लगे, राहु केतु एक स्थानमें ग्रा गये, इत्यादि बातोंका यही ग्रर्थ समभना चाहिये कि ग्रसम्भव बातोंका उत्पात हो गया। ग्रथवा श्रन्य कोई धूमकेतु श्रादि सात महाग्रह यहाँ श्रभिमेत मानने चाहिये।

कर्णका वध हो जाने पर एक ऐसा वचन है किः—

बृहस्पतिः संपरिवार्य रोहिणीं बभूव चन्द्रार्कसमो विशांपते।

वृहस्पति विशाखाके पास है। वह एक महीनेमें श्रिधिक से श्रिधिक दो ढ़ाई श्रंश जाता है, श्रर्थात् पूरा एक नज्ञत्र भी नहीं खलता। जब वह विशाखामें ही था तब रोहिणीको परिवार बनाकर कैसे रहेगा? सम्भव है कि वह चंद्रमा सहश होगा; पर वह सूर्य सहश कैसे होगा? यह भी एक खासी समस्या है। सम्भव है कि गुरुने दृष्टिके द्वारा विशाखासे रोहिणीका वेध किया; इसलिये कहनेका मतलब यह होगा कि वह भी चन्द्रमा-सूर्यंके समान श्रपकारी हो गया। शल्य पर्वके ग्यारहवें श्रध्यायमें एक वाक्य इस तरहका है:—

भृगुस्तुधराषुत्रौ शशिजेन समन्वितौ॥

इसमें कही हुई बात सम्भव है। शुक्र श्रीर बुध सूर्यके पास रहते हैं। सूर्य एक महीनेमें ज्येष्टाको छोड़कर पूर्वाषाढ़ा पर चला गया होगा। मंगल भी सरल होकर श्रनुराधासे ज्येष्टामें श्रा गया होगा श्रीर वहाँ तीनोंका मेल हो जाना सम्भव है। परन्तु यह मानना चाहिये कि मंगल ज्येष्ठा पर है। उसकी मुख्य स्थिति यही समभनी चाहिये कि वह अनुराधामें का था। यह योग अनिष्टकारक समभा जाता होगा।

श्रन्तिम महत्वका वाक्य भीष्मका है (श्रनुशासन० श्र० १६७)। जब भीष्म के शरीर त्याग करनेका समय श्राया श्रीर उत्तरायण श्रारम्भ हुत्रा, तब युधि छिरके उनके पास जाने पर भीष्मने कहा किः—

माघोऽयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यो युधिष्ठि। त्रिभागशेषः पत्तोऽयं शुक्को भवितुमहिति॥ श्रष्टपञ्चाशतं राज्यः शयानस्याद्य मे गताः॥

"मुभे वाणशय्या पर पड़े हुए श्राज ५६ रात्रियाँ व्यतित हो चुकीं। यह माघका महीना श्राया है श्रौर श्रव शुक्कपच् है। इस पत्तका चौथा भाग समाप्त हो गया है। इस कथनका सारांश टीकाकारने यह निकाला है कि आज माघ सुदी अष्टमी है। यदि मान लें कि भारती युद्ध मार्ग शीर्ष सुदी त्रयोदशीको आरम्भ हुआ, तो भीष्म मार्गशीर्ष बदी = को वाणविद्ध हो कर गिर पड़े श्रोर तबसे श्रद्वावन रात्रियाँ गिनने पर माघ बदी अप्रमी आती हैन कि माघ सुदी। आजकल माघ सुदी अष्टमीको ही भीष्माष्टमी मानते हैं। उस श्रष्टमीमें १५ दिन घटा देनेसे ४३ रात्रियाँ बचती हैं। १६ घटानेसे ४२ बचेंगी। टीकाकारने यहाँके पदको "अष्टपंच श्रशतं" बनाकर, सौमें श्रद्वावन कम-का अर्थ लगाकर, ४२ रात्रि होना बत लाया है। परन्तु अनुशासन पर्वमें उसी अध्यायमे इसके विरुद्ध एक स्पष्ट वसत इसीके पहले हैं। वह यह है कि भीष्मरी श्राज्ञा पाकर युधिष्ठिर हस्तिनापुर चली गया श्रीर वहाँ उसने पचास रात्रिया बिताई; सूर्यको उत्तरकी श्रोर पलटा हुआ देखकर अर्थात उत्तरायणका आरम

होना समभकर वह भीष्मके पास जानेके लिये रवाना हुआ। यहाँ यह कहा गया है कि भीष्मके पाससे वह युद्ध समाप्त होने पर वापस गया था। जब वह ५० रात्रियाँ व्यतीत कर चुका, तब वाणशय्यामें भीष्मकी प्रम रात्रियाँ ही व्यतीत होनी चाहियें, ४२ नहीं हो सकतीं। तो फिर यह कैसा विरोध है ? इसका परिहार होना बहुत करके श्रसम्भव ही है। यदि युद्धको मार्गशीर्षमें ही आरम्भ हुआ न मानकर, श्रीकृष्णके कथनानुसार कार्तिक श्रमावस्थाको मान लें, तो सभी गडवड हो जाती है। भीष्मके दिनोंका ठीक ठीक पता तो लगता ही नहीं, क्योंकि इस हिसावसे ६४ दिन त्राते हैं श्रीर जयद्रथवध-की रातको चन्द्रमा सवेरे उदय नहीं हो सकता। उस दिन बहुत करके सुदी त्रयोदशी त्रथवा पौर्शिमा पड़ती है त्रर्थात् सवेरे चन्द्रके श्रस्त होकर श्रंधेरा होनेका समय था ! मार्गशीर्ष सुदी श्रष्टमीको युद्धारम्भका दिन माननेसे ५ दिन तो श्रा जाते हैं, परन्तु उस दिनके नक्तत्रसे १८ वं दिनको बलरामके कथनानुसार <mark>श्रवण नत्त्रत्र नहीं होगा । सूर्यत्रहण ज्येष्टा</mark> नज्ञमें अमावस्थाको हुआ। उस कार्तिक बदी ३० से ब्राठवें दिन युद्धका श्रारम्भ होना माना जाय, तो पूर्वाभाद्रपदा नत्त्र श्राता है श्रौर वहाँसे युद्धके श्रन्तमें १८ वाँ नत्तत्र विशाखा होगा। यह सब गड़बड़ <mark>अनुशासन पर्वके, ५</mark>⊏रात्रि श्रौर ५० रात्रि-सम्बन्धी वचनोंने किया है। माघ बदीमें यक्रपच पश्चमी तक मान सकते हैं, परन्तु त्रिभागशेष पद्म नहीं कहा जा सकता। मोटे हिसाबसे अद्वावन रात्रिके दो महीने होते हैं। इसलिये माघ बदी श्रष्टमी ही आवेगी। किसी एकको भूठ मानना ही पड़ेगा। यही मानना पड़ेगा कि या तो युद्ध पर्वके वचन भूठ हैं, नहीं तो अनु-

शासन पर्वके ही भूठ हैं। यहाँका विरोध श्रपरिहार्य है।

महाभारतमें भिन्न भिन्न खानोंमें जो श्रंक-संख्या दी हुई मिलती हैं, उसके वारे-में वहुधा यही कहना पड़ता है कि उसमें कुछ न कुछ गूढ़ अथवा गृह्य अर्थ है। यहाँ जैसे ५० श्रौर ५= का श्रर्थ नहीं निकलता, उसी तरह हम पहले वतला चुके हैं कि श्रर्जुनके गांडीव धनुष्य धारण करनेके सम्बन्धमें कही हुई ६५ की संख्या-की उपपत्ति नहीं लगती । वर्षका श्रर्थ वरसात मानकर और एक सालमें दो वार वरसातका होना (एक वड़ी श्रीर दुसरी छोटी हेमन्तमें) मानकर, टीका-कारने यहाँ ६५ का आधा किया है। इसी तरह अधिक मासका हिसाव लगाते समय, प्रत्येक पाँच वर्षीमें दो महीने जोड़नेकी रीतिसे तेरह वर्षोंमें, भीष्मके वचनके अनुसार, पाँच महीने और १२ रात्रिकी संख्या ठीक नहीं जँचती। पाँच वर्षीमें दो महीने,तो १३ वर्षीमें १३ × २ =

परे—श्रथात् प्रमहीने श्रौर ६ दिन होते हैं। परन्तु यहाँ भीष्म कहते हैं कि— त्रयोदशानां वर्षाणां पञ्च च द्वादश स्पाः।

यह क्या बात है ? वारह रात्रिका श्रर्थ ६ दिन लगा लेना सम्भव है, परन्तु इसमें सार कुछ नहीं है।

श्रादि० श्र० ६१-४२ में श्रर्जुनके पहले वनवासके सम्बन्धमें यह श्लोक हैं:— स वै संवत्सरं पूर्ण मासं चैकं वने वसन्॥

श्रर्जुन द्वारकाको श्राया श्रीर सुभद्रा-से व्याह हुश्रा; परन्तु श्रागे कहा गया है कि यह वनवास बारह वर्षोंका था। तो फिर ऊपरके वाक्यमें एक वर्ष श्रीर एक मास कैसे कहा गया है? इस बातकी कठिनाई टीकाकारको भी हुई है। उन्होंने 'पूर्ण' शब्दसे १० का श्रर्थ लिया है श्रौर १० वर्ष ग्यारह महीनोंका समय वतलाने-का प्रयत्न किया है, परन्तु वह सिद्ध नहीं होगा।

त्रयस्त्रिंशत् समाहृय खांडवेऽग्निमतर्पयत्। (उद्योग० ५२.१०)

इस वाक्यसे टीकाकार कहते हैं कि उद्योगके समय खाएडव-दाह हुए ३३ वर्ष बीत चुके थे। पहले विराटपर्वमें अर्जुन उत्तरासे कहता है कि—'इस गाएडीव धनुषको मैंने ६५ वर्षीतक धारण किया है। गाएडीव धनुष खाएडवदाहके समय मिला था। यहाँ ३३ वर्ष वतलाये गये हैं। ६५ का श्राधा करनेसे ३२॥ त्राता है अर्थात् करीव करीव ३३ आता है। परन्तु वनवासके १३ वर्ष घटाने पर खाएडव-दाहके श्रानन्तर वह २० वर्षीतक इन्द्र-प्रश्ममें था। समद्राविवाह खाएडवदाहके पहले हुआ थाः परन्तु श्रमिमन्य युद्धके समय १६ वर्षीका था (त्रा० त्र० ६७) ग्रस्य षोडशवषस्य स संग्रामो भविष्यति । अर्थात्, यह मानना पडता है कि विवाहके १७ वर्षोंके बाद सुभद्रा-को पुत्र हुआ। श्रादिपर्वमें खाएडवदाहके पहले श्रभिमन्युकी उत्पत्ति वतलाई गई है। मयासुरने राजसभा बनाई: फिर राजस्य यज्ञ हुन्ना त्रीर त्रागे चलकर इस्तिनापुरमें जुन्ना खेला गया। मालम

the time time to the state of the first

किर उ.वरके बाहर है पूर्व अर्थ और यहा

from the training of the said

होता है कि ये बातें २० वर्षों में हुई। यह वर्णन है कि राजस्यके समय अभिमन्यु बड़ा हो गया था और वह राजा लोगी को पहुँचानेके लिये गया था। संतेषमें यहीं कहना पड़ता है कि ये भिन्न भिन्न समय ठीक ठीक नहीं मिलते।

श्रस्तु, सारांश यह है कि इन भिन्न भिन्न ज्योतिर्विषयक उल्लेखोंसे सौतिके मनमें यह दिखलानेकी इच्छा थी, कि प्रजापति अथवा सृष्टि उत्पन्नकर्त्ताके रोहिणी स्रोर श्रवण नचत्रों पर, तथा भगदैवत उत्तरा नत्तत्र पर श्रोर पितृदैवत मघा नचत्र पर ग्रहोंकी दुष्ट दृष्टि पड़ी थी, जिससे प्रजाकी अत्यन्त हानि और संहार होनेवाला था। इसलिये हमारा मत यह है कि सौतिने इन अरिष्टस्चक वचनोंको काल्पनिक रीतिसे दिया है। सन् ईसवीके पहले ३१०१ वें वर्षमें श्रथवा श्रन्य किसी वर्षमें ऐसी ग्रहस्थितिका होना नहीं पाया जाता। हमने प्रहोंकी जो स्थिति ऊपरके वचनोंसे दी है, उसके त्राधार पर गणितके द्वारा किसी निश्चित समयका निर्णय नहीं किया जा सकता। सभी प्रमाणोंका विचार करने पर भारती-युद्धका जो समय मेगास्थिनीज़के प्रमाणसे और शतपथ-ब्राह्मणके प्रमाणसे निश्चित होता है, उसीको अर्थात् सन ईसवीके पहले ३१०१ वर्षको ही मान्य समभना चाहिये।

अवसव पर्व है, पटवाबि सीट एक राधिर

क्रमण पञ्जयने समा मान समते हैं, परन्तु नेमालेप यदा गती कहा जा समागा। है हिसावसे अतानन पनिनो हो महोने

के हैं। इस्तिक भाग बन्ने छहरों हो सेकी 1 फिल्में स्केटो कर मानवा हो

में । बहा, धावना पहेला वि: वा लो

क्षेत्र के प्रकार प्रकार में का जान

वाँचवाँ मकरण।

इतिहास किन लोगोंका है।

हुमने श्रवतक यह देखा है कि महा-भारतकी रचना जिस मूल भारती युद्धके इतिहास पर हुई है, वह भारती युद्ध कव हुआ था। श्रव हमें इस वातका विचार करना है कि यह युद्ध किन किन लोगोंमें हुआ और यह इतिहास किन-का है। यह तो रूप ह ही है कि भारती युद्ध कीरवीं स्त्रीर पागडवींमें हुआ था। ग्रब हमें इस प्रकरणमें ऐसी ऐसी बातों-का पता लगाना है कि ये कौरव-पाएडव हैं कीन; ये लोग यहाँ आये कहाँसे; और इनका अन्य लोगोंके साथ कैसा और क्या सम्बन्ध था। तब यह स्पष्ट है कि यह विचार करनेमें हमें जिस प्रकार महा-भारतका प्रमाण देना पड़ेगा, उसी प्रकार वैदिक साहित्यका भी श्राधार लेना चाहिये। क्योंकि हम देख चुके हैं कि भारती युद्ध ब्राह्मण-कालमें हुआ था।

पहले लिखा ही जा चुका है कि पूर्व समयमें कौरवों श्रीर पागडवोंको 'भरत' कहते थे, श्रीर इसी कारण उनके युद्धकी संज्ञा भारतीय युद्ध है। दुष्यन्त श्रीर शकुन्तलाके बेटेका नाम भरत है। यह उनका पूर्वज था श्रीर सार्वभीम होनेके श्रितिक नामाङ्कित था। इस कारण उसके बंशजोंकी संज्ञा 'भारताः' है। महाभारतमें इस नामका प्रयोग दोनों दलवालोंके लिए किया गया है। भरत नामसे कुछ पाधात्य पिडतोंको भ्रम हो गया है। वे कहते हैं कि ऋग्वेदमें 'भरताः' नाम बार बार श्राता है, कहीं उन्हीं भरतों श्रीर कौरवोंका यो यह युद्ध नहीं हैं? पर हमें स्मरण रखना चाहिए कि

ऋग्वेदके भरत श्रौर ही हैं। हमारे यहाँ जो भरतखराड नाम प्रचलित है, उसके भरत शब्दके विषयमें भी ऐसा ही भ्रम है। श्रागेके विवेचनसे ये दोनों प्रकारके भ्रम दूर हो जायँगे। हिन्दुस्थानका भरतखराड नाम कुछ दुष्यन्त-पुत्र भरतके कारण नहीं पड़ा। भागवतमें ये वचन हैं:—

प्रियवतो नाम सुतो मनोः स्वायम्भु-वस्य ह । तस्याग्नीधस्ततो नाभिर्ऋषमस्य सुतस्ततः श्रवतीर्णं पुत्रशतं तस्यासीद् ब्रह्मपारगम् । तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारा-यणपरायणः । विख्यातं वर्षमेतद्यश्नाम्ना भारतम्त्रमम् ॥

इससे स्पष्ट होता है कि मनुके वंशमें भरत नामक राजा हुआ था, उसीके नाम-से इस देशका नाम 'भारतवर्ष' पड़ा । मत्स्य पुराणमें 'मनुर्भरत उच्यते' यह वचन है : श्रोर मनुकी ही भरत संज्ञा दी गई है। इसी कारण कहा है—'वर्ष तत् भारतं स्मृतम्' (श्रध्याय ११४) । श्रथात् मनुसे ही भारतवर्ष नाम निकला है। हिन्दुस्थानमें बाहरसे जो श्रार्य लोग श्राये, उनमें पहले सूर्यवंशी लोग आये श्रीर उनके भरत नामक राजाके कारण इस देशका काम 'भारतवर्ष' पड़ गंया। इस-से स्पष्ट है कि ऋग्वेदमें जो 'भरताः' नाम श्राया है, वह सूर्यवंशी चत्रियं श्रायौं-का है; उन लोगोंका नहीं है जिनमें कि भारती युद्ध हुआ।

ऋग्वेदके भरते यानी सूर्यवंशी चत्रिय।

ऋग्वेदकें उल्लेखोंसे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जिन भरतोंका उल्लेख वेदमें हैं, वे भरत सूर्यवंशी चित्रय हैं। मेक्डानल साहब कहते हैं—"एक महत्त्वके लोगोंका नाम ऋग्वेदमें भरत है। वह नाम विशेष करके तीसरे और सातवें 140 1814 P.W. 24 34 5

मण्डलांमें त्रित्सु एवं सुदासके नामके साथ बार बार श्राता है। माल्म नहीं, आगे इन भरतोंका क्या हुआ। बहुत करके ये कुरु लोगोंमें समिलित हो गये होंगे। भरत शब्दसे दौष्यन्ति भरतकी जो कल्पना होती है, उससे यह गड़बड़ हुई है। सातवें मण्डलमें वसिष्ठ ऋषिने जो सुक्त बनाये हैं, उनके उल्लेखोंसे ज्ञात होता है कि भरत लोगोंके पुरोहित वसिष्ठ ऋषि थे श्रौर उसके कुलमें उत्पन्न त्रित्सु थे। यह वर्णन है कि भरतोंके सुदास राजाको लड़ाईमें वसिष्ठने मद्द की थी। तीसरे मग्डलमें विश्वामित्रके स्क हैं। सूर्यवंशी च्त्रियोंके साथ विश्वामित्रका सम्बन्ध वसिष्टके समान ही है। विश्वामित्रके सुक्तोंमें भरतोंका बहुत उल्लेख है। एक स्कमें यह वर्णन है कि शतदु श्रीर विपाशा निदयोंके सङ्गम पर एक बार भरत आये, पर बाढ़के मारे उन्हें रास्ता न मिला। तब विश्वा-मित्रने भरतोंके लिए इन नदियोंकी स्तुति की। तब कहीं पानी घटा और भरत उस पार हुए। तीसरे सूक्तमें कहा गया है कि सुदास राजाको विश्वासित्रने भी मदद दी थी। इस सुक्तमेंकी 'विश्वा-मित्रस्य रचति ब्रह्मेदं भारतं जनम्' यह ऋचा बड़ी मनोरञ्जक है। 'विश्वामित्रका यह स्तोत्र भारत-जनोंकी रत्ता करता है' इस वाक्यमें 'भारत जन' शब्द महत्त्वका है। सूर्यवंशके साथ जैसा विश्वामित्रका सम्बन्ध है, वैसा ही भरद्वाजका भी है। छुठे मगडलमें भरद्वाजके सुक्त हैं। उनमें भी भरतका, भारत लोगोंका, भरतोंकी श्रिका श्रीर दिवोदासका उल्लेख है। ऋग्वेदमें यह वर्णन है कि दिवोदास सदासका पिता था। पाश्चात्य परिडत यह प्रश्न करते हैं कि भरतोंका वसिष्ट श्रीर विश्वामित्रके साथ सम्बन्ध तो श्राता है, पर भरद्वाजका क्या सम्बन्ध है ? किन्तु हम

लोग रामायणके आधार पर जानते हैं कि
भरद्वाजका सूर्यवंशसे सम्यन्ध है। ऊपरकी सब वातोंका रामायणमें वर्णित कथासे मेल मिलाने पर साफ़ देखा जाता है
कि ऋग्वेदके भरत ही सूर्यवंशी ज्ञिय
हैं। उनके पुरोहित वसिष्ठ थे और दूसरे
ऋषि थे विश्वामित्र तथा भरद्वाज।
उनकी वंशावलीमें भी मनुके बाद भरत
है और सुदास राजा भी है। इन सब
वातोंसे कहना पड़ता है कि ऊपर लिखा
हुआ अनुमान निश्चित है।

यह बात सिद्ध हो चुकी कि ऋग्वेदमें जिन भरतोंका उल्लेख है, वे भरत महा-भारतके भरत नहीं हैं; वे तो हिन्दुस्थानमें पहलेपहल आये हुए आर्य हैं। वे सूर्यवंशी थे: उन्हींके कारण हिन्दुस्थान भारतवर्ष कहलायाः श्रीर जितना देश उस समय ज्ञात था, उसमें वे लोग वस गये। हिन्दु-खानी लोगोंको सामान्य रूपसे भारत-जन संज्ञा प्राप्त हुई । ब्राह्मण-ब्रन्थोंमें भरत शब्दका साधारणतः चत्रिय बीर या साधारण ऋत्विज ब्राह्मण अर्थ होता था। निरुक्तकारने भारती शब्दका अर्थ किया है—'भरत त्रादित्यः तस्य इयं भाः भारती। इससे भी भारतोंका सम्बन्ध सूर्यवंशके साथ पाया जाता है। इन भारतोंका राज्य पञ्जाबसे लेकर ठेट पूर्वमें श्रयोध्या-मिथिलातक फैल गया था।

महाभारतके भारत और ऋग्वेदके भारत विलकुल अलग अलग हैं। यह वात हमें महाभारतके इस श्लोकसे मालूम पड़ती हैं;—"भारताद्वारती कीर्तियेंनेदं भारतं कुलम्। अप ये च पूर्वे वै भारता इति विश्वताः॥ (१३१ आ० अ० ७४) टीका कारने इस श्लोकके उत्तरार्धका अर्थ नहीं किया। इस उत्तरार्द्धमें यही बात कहीं गई है कि पुराने भारत प्रसिद्ध हैं, वे अपरे अर्थातु और हैं। हमारी समभमें

31 4612,000

यहाँ वैदिक भरतोंका उल्लेख है और उनका पार्थका दिखलाया गया है।

ऋग्वेदमें न तो सूर्यवंशका नाम है श्रौर न चन्द्रवंशका, पर चन्द्रवंशके मूल उत्पादकोंके नाम ऋग्वेदमें पाये जाते हैं। पुरुरवा, आयु, नहुष और ययाति ये नाम ऋग्वेदमें हैं। विशेषता यह है कि मृग्वेदमें एक जगह ययातिके पाँच पुत्रोंका उन्नेख है श्रीर उन पाँचोंके नाम भी दे दिये हैं, तथा उनसे उत्पन्न पाँच लोगोंके भी नाम हैं। इस उल्लेखसे स्पष्ट मालूम होता है कि वे पाँच आई थे। पुरालों श्रीर महाभारतमें वर्णिते चन्द्रवंशका पता लगानेके लिए ऋग्वेदमें अच्छा आधार मिलता है। ये चन्द्रवंशी जन्निय आर्य श्रक्ति उपासक थे। सूर्य-चन्द्रवंशी त्तियोंकी ही तरह ये इन्द्रादि देवताश्रोंके भक्त थे। पहले ये गङ्गाकी घाटियोंसे सरस्वतीके किनारे आये और वहीं **ब्राबाद हो गये । इस तरहकी बातें** ऋग्वेदकी ऋचात्रोंसे सिद्ध होती हैं। ऋग्वेद. (१. १०=) में कहा है-"यदिन्द्राग्नी यदुषु तुवॅशेषु यद्दुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थः। श्रतः परि वृषणा वा हि यातमथा सोमस्य पिवतं सुतस्य।" अर्थात् हे इन्द्र श्रौर श्रक्षि, यद्यपि तुम यदुश्रोंमें श्रीर तुर्वशोंमें, इसी तरह द्रह्युश्रोंमें, श्रन्श्रोंमें, श्रौर पुरुश्रोमें हो, तथापि यहाँ श्रास्रो स्रोर निकाले हुए इस सोमरसको पियो।" रससे अनेक अनुमान निकलते हैं। एक यह कि, ये पुराने आयोंकी भाँति इन्द्र श्रीर श्रक्तिके उपासक थे। दूसरे, ये पाँचीं एक ही वंशके होंगे; उसमें भी यदु श्रौर तुर्वसु सगे ही थे, और दुह्य, अनु एवं पूरु सगे थे । चन्द्रवंशी ययातिकी दो स्त्रियोंसे उत्पन्न पाँच पुत्रोंकी कथा यहाँ ब्यक्त होती है।

ऋग्वेदसं पता लगता है कि इन

पीछेसे आये हुए चन्द्रवंशी आयोंका पहलेके भारतींसे भगड़ा हुआ और उनके बीच कई लड़ाइयाँ हुई। कई जगह उन लोगोंके सम्बन्धमें ऋषियोंका कोध देखा जाता है, इससे ज्ञात होता है कि ये लोग पीछेसे श्राये। एक छान पर यह वर्णन है कि दिवोदासके लिए इन्द्रने युदु-तुर्वशोंको मारा।शरयू नदी पर भी भरत राजात्र्योंसे यदु-तुर्वशोंकी लड़ाइयाँ हुईं। ऋग्वेदके कुछ सुकोंमें एक बड़ा युद्ध वर्णित है। यहाँ उसका खुलासा करना त्रावश्यक है। इस युद्धको 'दाशराज्ञ' कहा है। यह युद्ध परुष्णी—आजकलकी रावी—नदीके किनारे हुआ था। एक पत्तमें भरत और उनका राजा सुदास तथा प्रोहित वसिष्ठ श्रीर त्रित्सु थे। दूसरे पत्तमें पाँच श्रार्य राजा-यदु, तुर्वश, दुह्य, श्रनु श्रीर पूरु तथा उनके मित्र पाँच अनार्य राजा थे। इस युद्धमें भरतोंका सत्यानास किया जानेवाला था और उनके धनको शत्रु लोग लूटनेवाले थे। परन्तु जब वसिष्ठने इन्द्रकी स्तुतिकी तव नदीसे नहर खोदकर जलका प्रवाह निकाला गया जिसके बहते समय, शत्रुकी सेना वह गई श्रोर उन्हींका सामान भरतोंके हाथ लगा। ऐसा वर्णन है कि ६००० दुह्यु श्रौर श्रनु, गाय-बैल हाँककर लाते समय, रणांगणमें मारे गये। उस लड़ाईके उदाहरण श्रौर भी कई सूत्रोंमें हैं। इससे ज्ञात होता है कि पञ्चावमें पहले श्राकर वसे हुए भारतोंको जीतनेका प्रयत्न बादको त्राये हुए यदु वगैरह चत्रियोंने अनार्य राजात्रोंकी सहायतासे किया । परन्तु ऋग्वेदके समय वह प्रयत सिद्ध नहीं हुआ। कुछ लोग कल्पना करेंगे कि इस युद्धमें भारती युद्धको जड़ होगी। परन्तु स्मरण रहे कि यह युद्ध बहुत प्राचीन कालमें हुआ था। इसमें एक ओर भरत यानी स्यवंशी चत्रिय, श्रीर उनके गुरु वसिष्ट थे; श्रीर दूसरी श्रोर समस्त चन्द्रवंशी राजा थे। इस युद्धका भारती युद्ध से सम्बन्ध नहीं है। ऋग्वेदका युद्ध भरत-पूरुके बीच था श्रीर भारती युद्ध कुरु-पाञ्चालके बीच। ये दोनों एक पूरके ही वंशज थे। ऋग्वेद-में पूरुका तो उल्लेख है, परन्तु कुरुका कहीं पता नहीं है। हम पहले लिख श्राये हैं कि भारती युद्ध ऋग्वेदके पश्चात हुश्रा। श्रव यह देखना चाहिये कि कुरु श्रीर पाञ्चाल-के विषयमें श्रीर उनके पूर्वजोंके सम्बन्धमें वेदमें क्या पता लगता है।

चन्द्रवंशी आर्थ।

चन्द्रवंशका मूल पुरुष महाभारत से पुरूरवा सिद्ध होता है। इससे पहलेके चन्द्र और वुधको हम छोड़ देते हैं। पुरू-रवाकी माता इला थी। हिमालयके उत्तर श्रोर जो वर्ष है, उसे इलावर्ष कहते हैं। इससे जात होता है कि पहले ये लोग हिमालयके उत्तरमें रहे होंगे। ऋग्वेदमें पुरुरवा श्रीर श्रप्सरा उर्वशीका वर्णन बहुत है। जान पड़ता है कि यह हिमा-लयमें ही था। पुरूरवाके वाद आयु श्रीर नहपका नाम है। ऋग्वेदमें इनका भी उल्लेख है। इसके बाद ययाति है। यह बडा राजा हो गया है। ऋग्वेदमें इसका वर्णन है। यह त्रपने वंशका मुखिया था। ऋग्वेदमें इसका नाम दनुके साथ श्राया है। इसने शुक्रकी वेटी देवयानी श्रीर श्रसुरकन्या शर्मिष्ठासे विवाह किया था। वृषपर्वा असुरके समीप ही ययातिका राज्य रहा होगा। ये दोनों स्त्रियाँ हिमा-लयके उस तरफ़की अर्थात् पारसियोंकी-श्रसरोंकी वेटियाँ थीं। यह कथा ऋग्वेदमें नहीं, महाभारतमें है। पहले कहा ही गया है कि इनके पाँच पुत्र थे और वे ऋग्वेदमें प्रसिद्ध हैं। यही पाँच पुत्र पहले हिन्द्स्तानमें आये। ज्ञात होता है कि वे घाटियोंसे आकर, सरस्वतीके किनारे पहलेसे आवाद सूर्यवंशी आयोंके राज्या घुस पडे । ऋग्वेद-कालमें उन्होंने पञ्जाब पर पश्चिमकी श्रोर श्रीर श्रयोध्याकी श्रोत पूर्वमें चढ़ाइयाँ कीं। परन्तु वे सफल न हुए। इस कारण वे लोग सरस्वतीके किनारेसे गङ्गा-यमुनाके किनारे किनारे द्विणकी तरफ़ फैल गये। संहिता और ब्राह्मण्के वर्णनसे उनके इतिहासका ऐसा ही क्रम देख पड़ता है; श्रौर वर्तमान हिन्दुस्थानियोंकी परिस्थितिसे भी यही सिद्ध होता है। प्राचीन इतिहास और वंशको सिद्ध करनेके लिए इन दिनों भाषा शास्त्र श्रोर शीर्षमापनशास्त्र, इन्हीं दो शास्त्रोंसे सहायता ली जाती है। इन दोनों शास्त्रोंके सिद्धान्त भी इन चम्द्रवंशियोंके उल्लिखित इतिहासके प्रमाणके लिए श्रुन कूल हैं। डाकुर ग्रियर्स नने वर्तमान हिन्ती भाषात्रोंका अभ्यास किया है। उनके सिद्धान्तके आधार पर, सन् १६११ की मर्दुमग्रमारीकी रिपोर्टमें, इस तौर पर लिखा गया है:- "हिन्दुस्थानकी हिन्दी श्रार्यभाषा (संस्कृतोत्पन्न) को श्रायोंकी दो टोलियाँ ले आई। पहली टोली जब उत्तरी हिन्द्रशानके मैदानमें फैल चुकी, तब दूसरी टोली बीचमें ही घुस पड़ी श्रीर श्रम्बालेसे लेकर दक्तिणमें जबलपुर काठियावाड़तक फैलती गई। आजकलके पञ्जाव-राजपूताना श्रोर श्रवधकी हिनी भाषाका वर्ग भिन्न हो जाता है श्रीर पश्चिमी हिन्दी अर्थात् अम्बाला-दिल्लीसे लेकर मथुरा वगैरह और जबलपुरत एक भिन्न वर्ग है; इसकी शाखा काठिया वाड़में गुजराती है।" इस दूसरे प्रान्तकी हिन्दुस्थानका मध्यदेश कहा जा सकेगा श्रीर इसी मध्यदेशमें चन्द्रवंशी स्त्रियों^{की} आवादी और वृद्धि हुई। ऋग्वेदसे ले^{हा}

महाभारतः तकके ग्रन्थोंके इतिहाससे यही बात पाई जाती है। अव इन चन्द्रवंशी शाखात्रोंका जरा विस्तारसे विचार कीजिये।

पुरु।

दूसरे आये हुए चन्द्रवंशी आयोंमें पुरुका कुल खूब बढ़ा और प्रसिद्ध हो गया। ययातिके पाँच पुत्रोंमें पुरु ही मुख्य राजा हुआ। उसे पिताने यह आशीर्वाद दिया था कि—"अपीरवातु मही न कदा-चित् भविष्यति ।" ये पुरु पहले सरस्वती-के किनारे आकर रहे और फिर दित्तगकी श्रोर फेल गये। ऋग्वेद्में सर्खतीके सक-में वशिष्टने वर्णन किया है कि सरस्वतीके दोनों किनारों पर पुरु हैं। ऋग्वेदसे यह भी ज्ञात होता है कि पुरुको दस्य अर्थात् भारतवर्षके मूल-निवासियासे अनेक लड़ाइयाँ करनी पड़ीं। यास्कने सुचित किया है कि पुरु शब्द का साधारण अर्थ मनुष्य करना चाहिए। इससे यह देख पड़ता है कि पुरु प्रवल हो कर सर्वत्र फैल गये थे। पुरुके वंशमें अजामीद हुआ है: उसका उल्लेख भी ऋग्वेदमें है। इन पुरुश्रों श्रीर श्रन्यान्य चन्द्रचंशियोंके ऋषि करव श्रीर श्रङ्गिरस थे। पुरुके कुलमें श्रागे चलकर दुष्यन्त श्रीर भरत हुए हैं। ऋग्वेद-में उनका नाम नहीं है। परन्तु दौष्यन्ति भरतका नाम ब्राह्मणमें है। ब्राह्मणमें अश्वमेध-कर्तात्रोंमें भरतका वर्णन है। अश्वमेधशतेनेष्ट्रा यमुनामनु वाव यः। त्रिशताश्वान्सर्सत्यां गङ्गामनु चतुशतान्॥

शतपथके अनुसार यह वर्णन महा-भारतमें है। इससे भी यही मालूम होता है कि पुरुश्रोंका राज्य यमुना, सरस्वती श्रीर गङ्गाके किनारों पर था। यह भरत

* महाभारतमें श्रीकृष्ण कहते हैं—''जरासन्थके हरसे हमें अपना प्यारा मध्यदेश छोड़ देना पड़ा ।'' ''स्मरन्तो वध्यमं देशं वृष्णिमध्ये स्यवरिथतः ।'' (समा० १४. ६०)

महापराक्रमी हुआः पर वह ऋग्वेदका भरत नहीं है, इस बातको दशनिके लिये ब्राह्मण-त्रन्थमें उसे 'दौष्यन्ति भरत' नाम दिया गया है। इस भरतके कुलमें कुर हुआ। सरस्वती और यमनाके बीच के भारी मैदानको 'कुरुद्धेत्र' कहते हैं। यहाँ कुर-परिवारकी खुद उन्नति हुई। आयोंकी संस्कृति यहाँ अत्यन्त उन्नत हुई । लोग यहाँकी भाषाको अत्यन्त संस्कृत मानने लगे। यहाँके व्यवहार और रीति-रवाज सबसे उत्तम समसे गये। ब्राह्मण-प्रनथोंमें इस विषयके वर्णन हैं। महाभारतसे सिद्ध होता है कि पुरुश्रोंकी राजधानी हस्तिनावुर थी जो कि गङ्गाके पश्चिमी किनारे पर आवाद था। इसी वंशमें कौरव हुए और पाएडवोंका सम्बन्ध भी इसी वंशसे है। भरत श्रीर कुरुका उल्लेख यद्यपि ऋग्वेदमें नहीं है, तथापि इस वातका प्रमाण है कि ऋग्वेद सुक्तोंके अन्तसे पहले वे थे, क्योंकि अन्तके एक सुक्तका कर्त्ता देवापि, शन्तनुका भाई कौरव वंशमें हुआ था। यह वात पहले ही लिखी जा चुकी है।

यदु।

भारती युद्धमें प्रायः सभी चन्द्रवंशी राजा शामिल थे, इसलिये हम अन्यान्य शाखाओं के इतिहास पर भी विचार करते हैं। ऋग्वेदमें यदु लोगों का उल्लेख सदा तुर्वशों के साथ पाया जाता है। उसमें कएव ऋषिका भी उल्लेख है। पहले यदु-तुर्वश एक ही जगह रहते होंगे। इनके विषयमें पहलेपहल वसिष्ठादि ऋषि प्रार्थना करते हैं कि—"हे इन्द्र! तू यदु-तुर्वशों को मार।" परन्तु फिर वे जब यहाँ के पक्क निवासी हो गये, तब उनका वर्णन अञ्छे ढंगसे होने लगा। यहाँ पर यह बात कहने लायक है कि अग्वेदका आठवाँ भएडल काएब अग्वेदका शाठवाँ भएडल काएब अग्वेदका शाठवाँ भएडल काएब अग्वेदका है। कएवक

1

भिन्न भिन्न वंशवाले ऋषियोंने जो स्क बनाये, वे इस मएडलमें समिलित हैं। इन अनेक स्कोंमें वर्णन है कि हमने यदु-तुर्वशोंसे गौएँ लीं, इत्यादि । इससे काएव ऋषि चन्द्रवंशियोंके हितचिन्तक दिखाई देते हैं। इससे यह बात भी समभमें आ जायगी कि दुष्यन्त और करवका सम्बन्ध क्यों है। ब्राह्मण्में भी भरतका पुरोहित कराव बतलाया गया है। यदु-तुर्वशोंका श्रच्छा उल्लेख करनेवाले श्राङ्गिरस ऋषि भी हैं। पहले मएडलके श्राङ्गिरसके श्रनेक सक्तोंमें यह बात मिलेगी। छान्दोग्य उप-निषद्में देवकीपुत्र कृष्णको घोर आङ्गि-रसने उपदेश किया है। इसका मेल उल्लि-खित वर्णनसे अच्छा मिलता है। मतलव यह कि ऋग्वेद-कालमें यदु वंशका वहुत कुछ बोलवाला हो गया था। यदुके वंशज यादव यमुना किनारे पर थे और उन्हींके वंशमें आगे चलकर श्रीकृष्ण हुए। ऐसा जान पड़ता है कि ये यदु-तुर्वश गौत्रोंका - ज्यंबसाय करते थे। उनकी यही परम्परा श्रागे महाभारतमें भी पाई जाती है। यादवोंको राज्य करनेका अधिकार न होनेकी धारणा इसी कारण फैली होगी। उनको ययातिके शाप देनेका वर्णन यह है-तसादराजभाकतात प्रजा तव भविष्यति। (आदि० = ४. ६)

श्रीकृष्ण वसुदेवके वेटे थे, वसुदेव गोकुलवासी थे, इत्यादि बातें भी प्रसिद्ध हैं। परन्तु यादव श्रारम्भसे ही गोपका व्यवसाय करते थे। इस बातका ख़ासा प्रमाण भारतके एक छोटेसे वाक्यसे मिलता है। जिस समय सुभद्रा श्रर्जुनके साथ इन्द्रप्रस्थको गई, उस समय सुभद्रा-को गोपी-वेशमें उसने द्रौपदीके पास भेजा। इससे दोनों बातें सध गई। एक तो उसका रूप श्रीर भी खिल उठा, दूसरे बह द्रौपदीके श्रागे बराबरीके नातेसे श्रथवा बराबरीकी पोशाक पहनकर नहीं
गई। ऐसा करनेमें श्रर्जुनका यह मतलब जान पड़ता है कि सुभद्राको इस वेशमें देखकर द्रौपदीको श्रचरज होगा श्रीर उसका क्रोध भी घट जायगा। तात्पर्य यह कि श्रीकृष्ण श्रादि यादव यद्याप द्रारकामें राज करते थे, तथापि गोपालन हो उनका पुराना रोज़गार था। पाठकोंके ध्यानमें यह बात श्रा जायगी कि यादवा सा दिग्दर्शन ऋग्वेदके उल्लेखमें भी मिलता है। श्रव श्रन्य चन्द्रवंशियोंके विषयमें विचार होगा।

पाश्चाल ।

हरिवंशसे पता चलता है कि पुरुक्षी एक दूसरी शाखाके वंशज पाश्चाल हैं। इनका मुख्य पुरुष सुञ्जय ऋग्वेदमें प्रसिद्ध है। उसके वंशमें सहदेव श्रौर सोमक हुए।ये दोनों भी ऋग्वेदमें प्रसिद हैं। सुञ्जयकी श्रग्निकी, ऋग्वेदमें एक जगह प्रशंसा है। इससे ज्ञात होता है कि वह वडा भारी यज्ञकर्ता था। ब्राह्मण्में यह वर्णन है कि सोमकने राजसूय यह करके, पर्वत श्रीर नारदके कहनेसे, एक श्रौर ही रीतिसे सोमपान किया, इसलिये उसकी कीर्ति हुई। श्रतएव उसके वंशजी को सोमक नाम भी प्राप्त हो गया। महा भारतमें पाञ्चालोंको सुञ्जय श्रौर सोमक भी कहा है। ब्राह्मणमें एक स्थान पर पाञ्चलि का अर्थ किवि किया है (मालूम नहीं, ये कौन हैं; पर इनका उल्लेख ऋग्वेदमें हैं) सम्भव है कि पाञ्चालोंमें पाँच जातियाँ मिल गई होंगी।

स सञ्जयाय तुर्वशं परादाहचीवती दैववाताय शिज्ञन्। (ऋ०६,३३)

इस ऋचासे जान पड़ता है कि तुर्वश् भी पाश्चालोंमें मिल गये होंगे। इससे यह शङ्का की जा सकती है कि पाश्चाल

लोग अनार्य-मिश्रित होंगे । किन्तु यह कहाँ सिद्ध होता है कि किवि और तुर्पश ब्रनार्य थे ? ब्राह्मण-प्रन्थोंमें कुरु-पाञ्चाली-की सदा बड़ाई मिलती है। कई स्थानों पर पाञ्चालोंका स्वतन्त्र नाम त्राता है। ब्राह्मण-प्रनथोंके वर्णनसे प्रकट होता है कि कुरुश्रोंकी तरह ये लोग भी यज्ञकर्ता, विद्वान् श्रोर तत्त्वज्ञानके श्रिभमानी थे। तात्पर्य यह कि पाञ्चालोंकी सत्कीर्ति कुछ कम दर्जेकी न थी। ये पाञ्चाल गङ्गा श्रीर यमुनाके बीच हस्तिनापुरसे दक्तिण तरफ थे। महाभारतसे ज्ञात होता है कि गङ्गाके उत्तरमें भी इनका आधा राज्य था।

अनु और दुह्य । अब अनु और दुह्य ये दो शाखाएँ रह गई; सो इनका भी हम विचार करते हैं। ऋ० मं० ६ स्क ४६ में दृह्य और पुरुका उल्लेख है। कदाचित् पुरुकी छोटी शाखामें अर्थात् पाञ्चालोंमें दुद्यु मिल गये होंगे। परन्तु हरिवंशके मतानुसार दुहा-के वंशघर तो गान्धार हैं। शकुनि उसी वंशका था। वह भारती युद्धमें मौजूद था। ऋग्वेदमें श्रनुकी बहुत प्रशंसा की गई है। उसकी श्रक्षिकी बहुत बड़ाई है। मालूम होता है, वह बड़ा भारी यझ-कर्ता था । पञ्जाबका शिवि स्रोशीनर इसी वंशका है। पुराणकार कहते हैं कि इसी वंशमें भारत-युद्ध-कालीन शैब्य राजा हुआ था। हरिवंशके बत्तीसवें ऋध्यायमें जो वर्णन है, वह कुछ े स्न है। तुर्वशका वंश नष्ट होकर पुरुके वंशमें मिल गया। उसके समाता नामकी एक बेटी थी; उसीसे दुष्यन्त हुआ। इस प्रकार तुर्वश-का वंश कौरवोंमें मिल गया । दुह्यका वंश गान्धार कहा गया है; पर अनुके भचेता, श्रौर सुचेता श्रादि पुत्र श्रौर पौत्र हुए। श्रागे फिर उसके वंशका वर्णन नहीं है। इस कथनके विपरीत मादि पर्वमें एक

वचन है। यहाँ उसका उल्लेख करना ठीक होगा:--

यदोस्तु यादवा जातास्तुर्वसोर्यवनाः स्मृताः । दृह्योः सुतास्तु वै भोजा अनोस्तु म्लेच्छजातयः।

यदुसे यादव, तुर्वसुसे यवन, दह्य से भोज श्रीर श्रवसे म्लेच्छ उत्पन्न इए। इस श्लोकमें वर्णित तुर्वसु, दृह्य और अनु-की सन्तति विलकुल भिन्न है। इससे सिद्ध होता है कि महाभारत कालमें इनकी सन्तानके विषयमें विलक्त ही निराली समभ थी। श्रौर इससे यह भी माल्म पडता है कि सौतिने न तो हरि-वंशको लिखा ही है श्रीर न उसकी जाँच की है। प्रतीत होता है कि उसकी सन्तति-सम्बन्धी जानकारी वहुत करके महा-भारतके समयमें लुप्त हो गई थी। प्राचीन ग्रन्थोंका ऐतिहासिक प्रमाण देखते समय पूर्व पूर्वको अधिक प्रमाण मानना चाहिये। श्रर्थात्, हरिवंशकी श्रपेचा महाभारत श्रिश्वक प्रामाणिक है, महाभारतकी श्रपेता वेदाङ्ग और वेदाङ्गोंकी अपेचा ब्राह्मण श्रिक प्रामाएय हैं। ब्राह्मण-प्रन्थोंसे भी वढ़कर संहिता श्रोर उसमें भी ऋग्वेद-संहिताको इस काममें श्रेष्ट मानना चाहिए। महाभारतकी यह बात मान लेने लायक है कि दुद्युसे भोजोंकी उत्पत्ति हुई होगी; क्योंकि इसके विपरीत हरिवंशका यह कथन कि—'उनसे गान्धार लोग उत्पन्न हुए' पीछेका है। इसके सिवा गान्धार देश पञ्जावके उस तरफ है, इसलिये वहाँ चन्द्रवंशी न गये होंगे। श्रीकृष्णने सभा पर्वमें जो यह कहा है कि ययातिके कुलमें भोज राजा उत्पन्न हुए, उससे भी यह मेल खाता है। गान्धार बहुत करके पहले श्राये हुए श्रायोंके वंशज यानी सूर्यवंशी होंगे । हमारी कल्पनाको रामायणके वर्णनसे अनुकूलता मिलती है। रामायण-

में लिखा है कि भरतके प्रतने सिन्धुके उस श्रोर पुष्कलावती बसाई। तो फिर दुह्यसे भोज उत्पन्न हुए। यही लोग मध्यदेशमें भारती युद्धके समय मगध और श्रूरसेन श्रादि देशोंमें प्रवल थे; श्रीर इन्हीं के कुल-में जरासन्ध, कंस आदि हुए थे। खैर, सौतिका यह कथन ठीक नहीं कि तुर्वसु-से यवन उत्पन्न हुए। कदाचित् यह वात हो कि अनु और आयोन (Ion) एक ही हों, श्रीर उनसे यवन हुए हों: श्रीर तुर्वसु-से तर्क अथवा तर (ईरानके शतु त्रान) वगैरह म्लेच्छ जातियाँ हुई हो । परन्तु यह बात भी ग़लत है। 'यवन और म्लेच्छ जातियाँ हमारे पूर्व जोसे ही निकली हैं इस कल्पनासे ही यह धारणा हो गई है। परन्त ययातिकी सन्तान आर्य ही होनी चाहिये और वह हिन्दुस्थानमें ही होनी चाहिये। इसके सिवा, अग्वेदका प्रमाण इसके विपरीत है। पहले लिखा ही जा चुका है कि ऋग्वेदके वर्णनसे त्वंस्त्रोंका स्अयोंमें शामिल होना पाया जाता है। अन खब यज्ञ किया करता था श्रीर उसकी शश्चिभी प्रसिद्ध थी। उसके यहाँ इन्द्र और श्रक्षिदेव नित्य श्राते थे। भ्राग्वेदमें ऐसे ऐसे जो उल्लेख हैं उनका वर्णन पहले ही किया जा जुका है। इस-से सिद्ध है कि अनु वैदिक धर्माभिमानी, श्रशिका उपासक श्रीर इन्द्रका भक्त था। म्लेच्छके श्रम्युपासक श्रौर इन्द्रभक्त होने-का दृष्टान्त कहीं नहीं मिलता। अर्थात्, श्रमुसे म्लेच्छोंका उत्पन्न होना सम्भव ही नहीं। मतलब यह है कि सौतिके समय माल्म ही न रहा होगा कि अनुका वंश कौनसा है। हरिवंशमें भी इसका ज़िक्र नहीं। यदु और पुरुके वंशमें श्रीकृष्ण श्रौर कौरव-पाएडवॉके होनेसे उन्हांके कुल श्रागे प्रसिद्ध हुए। ययातिने अपने वेटोंको शाप दिया था। उसका उल्लेख

यहाँ करने योग्य है । पहले लिखा जा चुका है कि यदुकी सन्तितको अराज-भाक् (राज-काज न करने योग्य) होनेका जो शाप ययातिने दिया, सो पूरा हुआ। तुर्वसुको शाप दिया था कि तेरी सन्ति का उच्छेद हो जायगा। सो वह भी ऐति-हासिक रीतिसे ठीक जँचता है। दृह्युको यह शाप दिया था कि हाथी, घोड़े, चैल, पालकी आदि जहाँ विलकुल नहीं, और जहाँ कि श्तियों में बैठकर आना जाना पड़ता है, वहीं तुके रहना पड़ेगा—

श्रिशाजा भोजशब्दस्त्वं विश्वास

तत्र प्राप्स्यसि सान्वयः।

माल्म नहीं होता कि ऐसा कौन देश है। समभमें नहीं त्राता कि हिन्दुस्तानका यह कौनसा प्रदेश है। भोजसंज्ञक राजा द्विणमें हैं, पर वहाँ यह वार्ते नहीं हैं, यह एक मुख्य अड़चन है। खैर; यहाँ कहा गया है कि दुद्युके वंशज भोज हैं। अनुको शाप था कि तेरी सन्तान कम-उम्र होगी और तृ अज़िकी सेवा छोड़-कर नास्तिक हो जायगा। इसे ऋग्वेदके वर्णनसे मिलाकर फिर यह कल्पना हो सकती है कि अनुके ही आगे यवन हो गये। हिन्दुस्तानके अनुके वंशकी स्पृति महाभारतके समय न रही होगी।

चन्द्रवंशियोंकी भिन्नता।

यद्यपि वेदिक साहित्यमें इस बातका उल्लेखनहीं है कि हिन्दुस्तानमें सूर्यवंशश्रीर चन्द्रवंश दो भिन्न निभन्न वंश थे, तथापि महाभारतमें इसका वर्णन स्पष्ट मिलता है। श्रीकृष्णने सभापवंमें कहा है—"इस समय हिन्दुस्तानमें ऐल श्रीर ऐच्वाकके वंशके १०० कुल हैं। उनमेंसे ययातिके कुलमें उपजे हुए भोजवंशी राजा लोग गुणवान हैं श्रीर चारों दिशाश्रोंमें फैले हैं।" यह स्पष्ट है कि ऐल श्रीर ऐच्वाक शब्दों। से चन्द्रवंश श्रीर सूर्यवंशका बोध होता

है। फिर भी चन्द्र और सूर्यका स्पष्ट नाम नहीं है। इस कारण ज़रासा सन्देहरह ही जाता है कि महाभारतके समयमें भी इन नामोंका प्रचार हुआ था कि नहीं। आगे पुराणा-कालमें ये नाम प्रसिद्ध हो गये। भूग्वेद-कालसे लेकर महाभारतकाल-तक सिर्फ़ यही बात पाई जाती है, कि हिन्दुस्तानमें दो चंशोंके श्रार्य श्राये थे। पहले भरत या सूर्यवंशी चत्रिय आये। फिर पिछेसे यदु, पूरु वगैरह वंशोंके स्त्रिय श्रा गये। ब्राह्मण्-कालमें इस दूसरे वंशवाले चत्रियोंका उत्कर्ष देख पड़ता है। वहीं भारती युद्धके समय रहा होगा। श्रीकृष्णके कथनसे माल्म पड़ता है कि भारतमें ययातिके वंशज भोज-कुलकी प्रवलता अधिक थी। ये सारे चन्द्रवंशी घराने गङ्गा, यमुना श्रीर सरस्वती नदीके किनारे आबाद थे। पहले आये हुए श्रार्य पञ्जाव श्रीर श्रयोध्या-मिथिला प्रान्त-में बसे हुए थे; ग्रौर चन्द्रवंशी श्रार्य उन्हींके बीचमें घुसे हुए थे। इन चन्द्रवंशी श्रायोंके मुख्य मुख्य कुल ये थेः—(१) कुरु-सेत्रमें कौरव, (२) गङ्गाके किनारे यदु श्रौर उसके द्विण्में पाञ्चाल, (३) मथुराः में श्रीर यमुना किनारे यदु श्रार श्रीरसेनी भोज, (४) दिच्चिणमें यमुना किनारे प्रयागतक चेदि श्रीर (५) गङ्गाके दिच्छा-में मगध । इनके सिवा (६) श्रवन्ति भीर विदर्भमें भी भोज-कुल थे। ये सभी यन्द्रवंशी चत्रिय थे। भोजोंके द्वद्वेके मारे याद्व लोग श्रीकृष्णके साथ मध्य-देश छोड़कर चले गये; श्रीर (७) सौराष्ट्र यानी काठियावाड्में जाकर द्वारकामें वस गये। ये सब चन्द्रवंशी चित्रय श्रार्य थे। इनका धर्म वैदिक ही था, अर्थात् ये इन्द्र श्रीर श्रमिकी उपसना करते थे। फिर भी रनमें, श्रीर पहले श्रायोंमें, कुछ थोड़ासा फ़कें था। इन दात्रियोंका चर्ण साँचला

रहा होगा । श्रीकृष्ण, श्रर्जुन, वेदव्यास और द्रौपदी आदिके वर्णसे ऐसा ही जान पडता है। मल्ल-विद्याका उन्हें अभिमान था। श्रीकृष्ण, वलराम, दुर्योधन, भीम श्रीर जरासन्य श्रादिके वर्णनसे ज्ञात होता है कि इन्हें मस्विद्याका खासा शौक था। इनकी भाषामें भी कुछ भिन्नता थी: श्रीर हम पहले दिखला ही चुके हैं कि यह भिन्नता आजकलकी संस्कृ-तोत्पन्न मध्यदेशीय हिन्दी भाषामें भी मौजूद है। उनके शिरके परिमाणमें भी कुछ अन्तर रहा होगा। इसका खुलासा श्रागे किया जायगा। श्रनुमानसे मालूम पंडता है कि इनमें चान्द्र वर्षसे चलने-वाले कुछ लोग थे। श्रापसके भगडेके कारण इन लोगें में भारतीय-युद्ध हुआ श्रीर दोनों श्रोर मुख्यतः चन्द्रवंशी चत्रिय थे। पाग्डव।

श्रव इस वातका विचार करना चाहिए कि पाएडव कौन थे। कौरवांका राजा था प्रतीपः उसका पुत्र हुआ शन्तनु । शन्तनु-के दो पुत्र भीष्म और विचित्रवीर्य हुए। भीष्मने अपना राज्यका हक छोड़ दिया: तव विचित्रवोर्य गदी पर वैठा। विचित्र-वीर्यके धृतराष्ट्र ग्रीर पार्रंडु हुए। धृतराष्ट्र थे अन्धे, इस कारण पागडु राजा हुआ। तबियत ख़राव हो जाने पर पाएडु वनमें चला गया। तब धृतराष्ट्रके वेटे दुर्योधनको राज्य मिला। जब पाएडु वनमें गया तब उसके सन्तान न थी। इस कारण कुन्ती श्रीर माद्रीने देवताश्रीकी प्रसन्न करके उनसे पाँच वेटे उत्पन्न करा लिये। यही पाग्डव कहलाये। ये पाग्डव हिमालयमें ही सयाने हुए श्रीर पाएडुके मर जाने पर हिमालयके ब्राह्मणोंने उन्हें हस्तिनापुरमें भृतराष्ट्रकी निगरानीमें कर दिया। यहाँ उनसे दुर्योधन आदिका विवाद शुरू हुआ। उस समय भी यह कल्पना रही होगी कि

ये लड़के पाग्डके नहीं हैं, श्रीर इसी कारण यह भगड़ा धीरे धीरे बढ़कर आगे बहुत भयङ्कर हो गया । महाभारतमे पागडवीं श्रौर भारती-युद्धकी पूर्वपीठिका पेसी ही दो है। श्रव यहाँ इस बातका विचार करना चाहिए कि इस कथाका पेतिहासिक खरूप क्या है। कुछ लोग समभते हैं कि यह सारी कथा काल्पनिक है; पर यह समभ ग़लत है। हमारी रायमें चन्द्रवंशकी श्रन्तिम शाखाके जो श्रार्य हिन्दस्थानमें बाहरसे श्राये थे, उन्हींमें पागडव लोग हैं। हम पहले लिख चुके हैं कि चन्द्रवंशी लोग हिमालयके उस श्रोर-से, गङ्गाकी घाटियोंमेंसे होते हए हिन्दु-स्थानमें श्राये । चन्द्रवंशका मृल पुरुष पुरु-रवा ऐल यानी इलाका वेटा था; श्रीर हिमालयके उत्तरमें जो भाग है, उसका नाम इलावर्ष है। अर्थात् , चन्द्रवंशकी मूल-भूमि इलावर्ष थाः और कुरुश्रोंका जो मूल-स्थान हिमालयके उत्तरमें था, उसका नाम उत्तर कुरु था। मतलव यह कि जिस प्रकार कोंकणस्थ ब्राह्मण घाटियों पर आये और फैलकर बस गये, परन्तु उनकी मूल-भूमि आजकल दक्षिणी कोंकण ही है, उसी प्रकार कुरुओंका मूल देश हिमालयके उत्तर भागमें था। महाभारत-का यह वर्णन ठीक जान पडता है कि तबीश्रत विगड़ जानेसे पाएडु राज्य छोड़-कर चला गया। पाएडु अपने कुरु लोगों-की मूलभूमिमें गयां और वहाँ पर कई वर्षतक रहा। वहाँ पर वह इतने अधिक समयतक रहा होगा कि उस देशके ब्राचार-विचार उसकी, श्रौर उसके परि-वारकी, नस नसमें भर गये। उस देशमें चन्द्रवंशी चत्रियोंमें जो रीतियाँ प्रचलित थीं, वे पुराने ढङ्गकी थीं, श्रौर हिन्दुस्थानमें बसें हुए चत्रियोंकी रीतियोंसे मिलती-जुलती न थीं। हम आगे चलकर विस्तारके

साथ यह बात बतलाचेंगे कि ब्राह्मण और त्तत्रिय दोनों एक ही अंशसे उत्पन्न हुए हैं। पागडुका देहान्त हो जाने पर कुन्ती अपने पाँचों वेटोंको लेकर, ब्राह्मण तथा चत्रिय परिवारके साथ, हिमालयके कङ्गाल प्रदेशको छोडकर अपने पुराने पहचाने हए स्थान पर हिन्दुस्थानमें आई। अब यहाँ प्रश्न होता है कि पाएडवींकी उत्पक्ति किस प्रकार हुई। परन्त उस समय प्राचीन श्रर्थात् हिमालय-वासियों नियोगकी रीति प्रचलित थी। यही चौ बल्कि महाभारतमें विचित्रवीर्यकी सन्तति के विषयमें जो वर्णन है, उससे सिद्ध होता है कि नियोगका प्रचार हिन्दुस्थानके करू-घरानेमें भी था। नियोग-चिपयक उत्तेष मन्सृतिमं भी है। मनुस्मृतिमें इस रीति-को निन्द्य मानागया है, इस कारण समाज-से उसका चलन उठ गया। इसमें सन्देह नहीं कि पाएडव लोग ऐतिहासिक हैं श्रीर वे हिमालयसे आये हुए अन्तिम चन्द्रवंशी चत्रिय हैं। बहुपतिकत्वकी रीतिसे यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है। श्रादिपर्वके १६५ वें अध्यायमें इस विवादका वर्णन है कि एक दौपदीके साथ पाँचों पाएडवोंका विवाह किस तरह हो। वह यहाँ उद्धत करने योग्य है। "एक स्त्रीके श्रनेक पति कहीं नहीं सुने गये। यह लोकाचार और वेदकी आज्ञाके विपरीति रीति तुम कैसे बताते हो ?" तब युधिष्ठिरने कहा—"पूर्व-कालीन लोग जिस मार्गसे गये हैं, मैं उसी पर तो चलता हूँ।" उसने स्पष्ट कह दिया कि—"यह हमारा कुलकमागत आचार है।" इससे प्रकट होता है कि पाएडवोंकी उत्पत्ति हिमालयमें हुई और वहाँ यह रीति थी । श्रत्यन्त प्राचीन कालमें यह रीति आयोंमें थी। पर वेदोंने इसको नहीं माना। जो हो, इससे सिद्ध हुत्रा कि पागडव श्रत्यन्त प्राचीन शाखाके हिमा

लयमें रहनेवाले लोग हैं जो हिन्दुस्थानमें विलकुल पीछेसे आये थे, और हस्तिना-पूरमें श्रानेके कारण कौरवोंसे उनका अगड़ा हुआ। यह ऐतिहासिक अनुभव है कि नये नये त्रानेवालोंकी शाखा सदैव श्रिधिक उत्साही श्रीर तेजस्वी रहती है। इसके श्रनुसार पाएडव भी खूव फुर्तीले ब्रीर तेज़ थे । धृतराष्ट्रसे उन लोगोंने राज्यका आधा हिस्सा ले लिया। अर्थात राज्यकी पड़ती ज़मीन-यमुनाके पश्चिम श्रोरका प्रदेश-उन्हें मिली। वहाँ पर उन लोगोंने इन्द्रप्रस्थ नामक राजधानी स्थापित की। इस प्रकार ऐतिहासिक रीतिसे कीरवों और पाएडवोंकी कथाका मेल मिलता है और यह अनुमान होता है कि वह बहुत पुराने ज़मानेकी है।

क्रिकार नाग लोग।

भारती युद्धका सम्बन्ध नाग लोगोंसे भी है। यह कहनेमें कोई हानि नहीं कि ये लोग भी ऐतिहासिक हैं। ऋग्वेद्में जिन्हें दस्य या दास कहते हैं, वे येही होंगे। ये हिन्दुस्थानके मूल निवासी हैं। इनकी सूरत शकल दन्तकथासे ही बदली गई; अर्थात् यह कल्पना पीछेसे की गई होगी कि ये लोग नाग यानी अत्यच सर्प हैं। जहाँ जहाँ त्रार्य लोग त्राकर वस गये, वहाँ वहाँ नाग लोग पहलेसे ही श्रावाद थे। पाएडवोंको यमुनाके पश्चिमी किनारे पर राज्यका जो हिस्सा मिला वहाँ पर, उस प्रदेशमें, नाग लोग रहते थे। ये लोग बहुत करके जङ्गलोंमें रहते थे श्रौर नागों की यानी सर्पोंकी पूजा किया करते थे। राज्य जमानेके लिए पाएडवांको ये जङ्गल साफ़ करना पड़ा और वहाँसे **महाभारतमें** नागोंको हटाना पड़ा । खाएउच बन जलानेका जो किस्सा है, वह इसी प्रकारका है। खाएडव बनको

जलाकर वहाँकी ज़मीनको खेतीके उपयुक्त बनानेके लिए यह उपाय किया गया होगा । खाएडव-वन-दाहकी घटनाको ऐतिहासिक खरूप इसी प्रकार दिया जा सकेगा । बड़े भारी खाएडव बनका विस्तार यमुना किनारे था। वहाँ खुब घने जङ्गलमें नाग लोग रहते थे। वे श्रायोंकी वस्तीको सताते भी थे। इस कारण उन्हें सज़ा देकर सारे जङ्गलको जला देने श्रीर वहाँकी उपजाऊ ज़मीनको वस्तीमें मिला लेनेकी आवश्यकता थी। इस कारण उन्हें नाग लोगोंसे युद्ध भी करना पडा। उस वनके नागोंका मुखिया तत्त्वक था। आदि पर्वके २२८ वें श्रध्यायसे ज्ञात होता है कि यह तत्त्वक अर्जुनके हाथ नहीं लगा। इन्द्र उसकी सहायता करता था। इस कारण त्राकाशवाणी द्वारा कहा गया कि—"हे इन्द्र ! तू जिसकी रज्ञाके लिए इतना उद्योग कर रहा है, वह तेरा मित्र नागराज तज्ञक तो यहाँ है ही नहीं। वह अब कुरुत्तेत्रको चला गया।" इससे प्रकट हुआ कि नागोंके राजा तत्त्वको दग्ड देनेका अर्जुनका इरादा था। परन्तु उस समय वह मिला ही नहीं। वह अपना देश छोड़कर कुरुत्तेत्रमें चला गया था। जान पड़ता है कि फिर वह पञ्जाबमें तज्ञशिलाके पास बस गया। इन नागोंसे पागडवोंका जो वैर शुरू हुत्रा, वह त्रागे दो तीन पीढ़ियोंतक रहा। इस श्रनुमानके लिए स्थान है कि नागोंने भारती युद्धमें पाएडवोंके विरुद्ध कौरवोंको सहायता दी थी। क्योंकि कर्णके तरकसमें, खाएडव वन-दाहसे भागा हुआ, अश्वसेन नामका नाग वाण वना वैठा था। ऋर्जुन पर इस बाणको कर्णने चलाया भी था। पर निशाना चूक जाने पर वह नृथा गया। तव उसने लौटकर कर्णके कानमें कहा कि हमें दुवारा चलाश्रोः पर कर्णने यह बात नहीं मानी । महाभारतकी इस कथाको ऐतिहासिक रूप इस तरह दिया जा सकेगा, कि नागोंने अर्जुनके विरुद्ध कर्णकी सहायता की थी: परन्तु उसका कुछ उपयोग नहीं हुआ। खाएडव बन जलाकर अर्जुनने हमारा देश छुड़ा दिया, इसका बदला तत्तकने श्रर्जुनके नातीसे लिया । तत्तकके काटनेसे परीचितका देहान्त होनेकी जो कथा है, उसका यही रहस्य है। मूल भारती युद्ध सन् ईसवीसे ३००० वर्ष पूर्व मान लिया जाय तो फिर महाभारत उसके २५००--२७०० वर्ष पश्चात् तैयार हुआ। इतने समयके बीचमें लोगों की कल्पना और दन्तकथामें नाग जाति प्रत्यत्त नाग अथवा सर्प हो गई, इसमें कुछ अचरज नहीं । महाभारतके समय यहीं कल्पना थीं कि नाग सर्प ही थे। उनमें यह विशेषता मानी जाती थी कि वे मामूली साँपोंकी तरह पशु नहीं थे, उनमें देवांश था। वे मनुष्योंकी तरह वात-चीत करते थे श्रीर उनमें तरह तरहकी दैवी शक्तियाँ भी थीं। असल बात कदाचित् यह हो कि तज्ञकने ग्रप्त रूपसे परीज्ञितके महलमें घुसकर उसका खून किया हो: परन्तु उसका रूपान्तर यह हुआ कि वेरमें बहुत ही छोटासा कीड़ा बनकर उसने प्रवेश किया और फिर एकदम खुव भारी होकर परीचितको उस लिया। इससे त्रागेका भाग श्रोर भी चमत्कारपूर्ण है। जनमेजयने अपने पिताकी मृत्युका बदला लेनेके लिए तत्तकसे और नाग लोगोंसे प्रायश्चित्तं कराना चाहा। सारे संसारको जीतनेवाले योद्धाञ्चोका अनुकरणकर उसने नागोंके तत्त्वकके देश तत्त्रशिलाको जीतकर नागोंका बिलकुल नाश करनेका काम जारी कर दिया। किन्तु फिर एक द्याल विद्वान् ब्राह्म एके श्रायह्से जनमे जयने उनका पिएड छोड़ दिया और

तज्ञको माफ भी कर दिया। श्रसत कथाभाग यह है। इसे महाभारत-काल तक सर्प-सत्रका रूपक दे दिया गया। त्रादि पर्वमें जनमेजयके सर्पका विस्तृत वर्णन इसी तरहका है। किन्तु सर्पसत्रका श्रर्थ क्या है ? सर्पसत्रके ढङ्गके किसी सत्रका वर्णन न तो किसी ब्राह्मण-प्रनथम श्रोर न किसी वैदिक प्रन्थमें पाया जाता है: किंवहना महाभारकके वचनसे प्रकृत होता है कि यह सर्पसत्र सिर्फ जनमेजयहे लिए ही उत्पन्न किया गया था और उस सत्रमें भिन्न भिन्न जीतियोंके श्राहतियां दी जानेवाली थीं। ऋषियोते सत्रका आरम्भ किया; ज्योही ज़ोर ज़ोरसे सपाँके नाम लेकर अग्निमें आहुति ही गई, त्योंही बड़े बड़े सर्प आगमें गिर कर भस्म होने लगे! अन्तमें तज्ञकी पुकार हुई। तत्त्वक इन्द्रके आश्रममें था, किन्तु उस समय आस्तीकने नागींका पन लेकर जनमेजयको मना लिया और सर्प-सत्र रुकवाकर तत्तकको अभय-वचन दिलवा दिया। इस कथासे ज्ञात होता है कि नाग भी मनुष्य ही थे श्रीर इन्द्रके त्राश्रममें रहते थे: यानी ऐसे जंगलोंमें रहते थे जहां कि विवुल वर्षा होती थी। इनके कई भेद थे। चत्रियोंके नागोंकी बहुतेरी स्त्रियाँ थीं। अर्जुन भी एक नाग-कन्या उल्पीको ब्याह लाया था। कल्पना यह है कि नागोंकी मुख्य बस्ती पातालमें है श्रीर पातालमें पहुँचनेका मार्ग पानीके भीतर है। इसी लिये वर्णन है कि नदीमें स्नान करते समय श्रर्जनका पैर घसीटकर उल्पी उसे पातालमें है गई थी। इसके सिवा, कई ऋषियोंकी नाग-कन्यात्रोंसे सन्तान होनेका वर्णन महाभारतमें है। नागोंका पत्त लेनेवाली शास्तीक, जरत्कारु ऋषिका नाग-कन्यास ही उत्पन्न पुत्र था। इन सारी बात

पर पेतिहासिक रिष्ट्से विचार करने पर पहीं कहना होगा, कि नाग मनुष्य थे जो जक्कलोंमें रहा करते थे; उनका राजा तक्क खाएडव-बन-वासी था; वहाँसे हराये जानेके कारण वह पाएडवोंका कहर वेरी हो गया श्रीर भारती युद्धमें पाएडवोंको मटियामेट कर देनेके लिए वह कर्णका सहायक था।

यहाँ जरा खुलासा करना ज़रूरी है। मालूम होता है कि पहले किसी समय ताग श्रोर सर्प दो भेद रहे होंगे। भग-वद्गीतामें यह भेद यों बताया गया है-"सर्पाणामास्मि वासुकिः" श्रौर "श्रनन्त-श्चासि नागानाम्।" अर्थात् भगवद्गीताके समय अथवा भारत-कालमें सर्प और नाग दोनों तरहके लोग हिन्दुस्थानमें थे। सर्प सविष थे अर्थात् आर्योको सताते थे; श्रीर नाग निर्विष थे, वे श्रायोंसे छेड़-छाड़ न करते थे, उनके अनुकृत थे। इसी कारण, नाग होने पर भी अनन्त, विष्णुके लेटनेके लिये पसन्द किया गया है। परन्तु जान पड़ता है कि सौतिके समय यह भेद न रहा। महाभारतके श्रास्तीक-श्राख्यान श्रौर पौष-श्राख्यानमें यह भेद बिलकुल नहीं मिलता। स्थान स्थान पर देख पड़ता है कि सर्प और नाग एक ही हैं। फिर भी यह माननेके लिये जगह है कि शेष अथवा अनन्त आदि नाग सपौंसे भिन्न होते हैं। जनमेजयकृत सत्रका नाम सर्पसत्र है श्रीर इस सर्पसत्र-में विषोल्वण सर्प जलाये गये हैं (श्रा० अ० ५७)। यहाँ पर उन सपौंके नाम भी दिये गये हैं जो जलाकर ख़ाक कर विये गये। वे लोग वासुकि, तज्ञक, ऐरा-वत और धृतराष्ट्रके कुलके थे, श्रनन्त अथवा शेषके कुलके न थे। इसी तरह यह भी अनुमान है कि ये दोनों सर्प श्रौर नाग लोग अलग अलग स्थानीमें रहते थे। श्रादि पर्वके तीसरे श्रध्यायमें उत्तक्कने नागलोकमें जाकर नागोंकी जो स्तृति की है, उससे महत्त्वकी वार्ते मालूम होती हैं। बहुनि नागवेश्मानि गङ्गायास्तीर उत्तरे। तत्रस्थानि संस्तौमि महतः पन्नगानिमान्॥

इससे ज्ञात होता है कि नाग लोग गंगाके उत्तरमें भी रहते थे। यह भी माल्म होता है कि कुरुत्तेत्रमें श्रीर खाएडव-वन-दाहके पूर्व उस वनमें तक्तक श्रीर श्रश्यसेन रहते थे। सौतिने यद्यपि इन्हें नाग कहा है, तथापि ऊपरके वर्णनसे ये सर्प माल्म पड़ते हैं। इनके सम्बन्धमें इस स्तृतिमें ये श्लोक हैं—

श्रहमैरावतज्येष्टं भ्रातृभ्योऽकरवं नमः। यस्य वासः कुरुत्तेत्रे खाएडवे चाभवत्पुरा॥ तत्त्तकश्चाश्वसेनश्च नित्यं सहचरावुभौ। कुरुत्तेत्रं च वसतां नदीमिचुमतीमनु॥

यहाँ पर तत्तक श्रीर श्रश्वमेधका सम्बन्ध व्यक्त है। तत्तकको नागराज कहा गया है। उसका वर्णन इस तरह भी है— श्रवसद्यो नागद्युम्नि प्रार्थयन्नागमुख्यताम्।

इन सब बातोंसे मानना पड़ता है कि तक्तक सर्प अर्थात् प्रतिकृत जातिका था। वह पहले खाएडव वनमें रहता था। उसे नाग लोगोंके राजत्वकी इच्छा और वड़ी महत्त्वाकाङ्गा थी। पाएडवोंने उसके प्रदेशको आग लगाकर खाली करा लिया: इस कारण उनके साथ तक्तक और अश्वसेनकी शत्रुता हो गई। एक बात पर ध्यान रखना चाहिये कि आरम्भमें नागों और सपोंका वंश तो एक ही था पर जातियाँ अलग थीं: यह वात भगवद्गीतासे प्रकट होती है। (इस कारण भी भग-वद्गीताका समय सौतिके महाभारतसे पहलेका देख पड़ता है।)

युद्धमें विरोधी दलके लोग। अब हमें यह देखना है कि दोनों दलोंमें कौन कौन आर्य थे और फिर

उससे जो श्रमुमान हो, उसपर विचार करें। दुर्योधनकी श्रोर ११ श्रज्ञीहिशियाँ थीं। उनमें जो राजा लोग थे, पहले उन्हीं-को देखना चाहिये। दुर्योधनके दलमें पहला शल्य था। यह मद्रोंका स्वामी था। इसका राज्य पञ्जाबमें था। दूसरा भगदत्त था। पूर्वकी ओर चीन-किरातीं-का यह एक राजा था। तीसरा भूरिश्रवा भी पञ्जाबका ही नरपति था। चौथा कृतवर्मा भोजींका भूपाल था। इसका राज्य काठियावाडके समीप था। पाँचवाँ जयद्रथ था जो सिन्धु देशका राजा था। ब्रुटा सुदत्तिण, काम्बोजके श्रफगानिस्तान-का अधिपति था। सातवाँ माहिष्मतीका नील थाः यह नर्मदाके महेश्वरका राजा था। श्राठवें श्रीर नवें श्रवन्तिके दो राजाः दसर्वे पञ्जाबके केकयः श्रीर ११ वीं अन्तोहिसीमें गान्धारके राजा शिवि श्रौर कोसलोंके राजा वृहद्वथ श्रादि थे। पाएडवोंकी श्रोर सात्यिक युय्धान द्वारकाका याद्व था। दूसरा चेदिका भृष्टकेतु था। यमुना किनारे कानपुरके समीप चेदि लोग रहते थे। तीसरा, मगधोंका जयत्सेन था। चौथा, समुद्र किनारेका पाएड्य था। पाँचवाँ दुपद पाञ्चालका था । गङ्गा-यमुनाके मध्यमें अलीगढ़के आसपासका प्रदेश पाञ्चालोका था। छठा, मत्स्योंका विराट था। जयपुर, धौलपुर श्रादिके भागोंमें मत्स्य देश था। सातवें, श्रन्यान्य राजा लोग-काशीका धृष्टकेतु, चेकितान, युधामन्यु श्रौर उत्तमौजा प्रभृति राजा लोग (उद्योग० अ० १६): इस प्रकार पाएड-बाँकी ओर सात असौहिणियाँ और दुर्यी-धनकी श्रोर ११ श्रजीहिणियाँ थीं। इस फेहरिस्तसे एक वड़ा अनुमान निकाला जा सकता है कि पहले आये हुए श्रीर पीछेसे श्राये हुए श्रायोंके बीच भारती युद्ध हुआ; अथवा उत्तरी औरके तथा दक्तिणी अरेके आयोंमें यह लड़ाई हुई; अथवा आसपासके आयों श्रीर मध्य देशके आयों में यह युद्ध हुआ। दुर्योधनकी श्रोर कुरुचेत्रसे लेकर पञ्जाबके गान्धार काम्बोजतकके अर्थात् अफ़गानिस्तानतक के सभी राजा, इसी प्रकार सिन्धके राजा लोग, काठियावाड़ श्रौर श्रवन्ति (उज्जैन) तकके राजा श्रोर पूर्वमें श्रयोध्या (कोसल). श्रङ्ग, प्राग्ज्योतिष पर्यन्त (कर्ण श्रीर भग-दत्त) राजा थे । इधर दूसरे दलमें पागडवांकी श्रोर दिल्ली, मथुरा, (शोर-सेनी), पाञ्चाल, चेदि, मगध श्रीर काशी वगुरह यमुना किनारेके श्रीर गङ्गाके किनारेके मध्य देशके राजा थे। इससे यह कहनेमें कोई हानि नहीं कि ये सब नये श्राये हुए चन्द्रवंशियोंके लोग थे। उत्तर श्रोरके लोगोंमें चन्द्रवंशके, सबसे पहले त्राये हुए, कुरु थे। इन दोनों दलोंमें बहुत मतभेद रहा होगा। दोनोंके रीति-रवाजी-में भी फर्क रहा होगा। श्रीर यह तो पहले ही लिखा जा खुका है कि इनका भाषा-भेद शाजकलकी भाषाश्रीमें भी मौजूद है। इसके सिवा यह मान लेनेमें भी कोई हानि नहीं कि मध्यदेशी लोग चान्द्र वर्ष मानते होंगे। वे लोग पाएडवोंमें इसी कारण आ मिले होंगे।

लोगोंमें ताज़ा दम था और उत्साह भी काफ़ी था। उनमें हिन्दुस्थानके मूल निवासियोंसे हिलमिलकर रहनेकी प्रवृत्ति श्रिधक थी। इन लोगोंके वर्णमें जो ज़रासा साँवलापन श्रा गया, वह मूल निवासियोंसे मिलनेके ही कारण श्राया फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे वैदिक धर्माभिमानी थे श्रोर श्रार्य जाति के तो निश्चित ही थे।

> हिन्दुस्थानमें आर्घ हैं। इन्नु लोग बड़े आग्रहके साथ कहते

हैं कि हिन्दुस्थानमें आर्य लोग विलकुल हैं ही नहीं। इसलिए श्रव यहाँ ज़रा विस्तार-के साथ इस बातका विचार करना है कि हिन्दुस्थानमें त्रार्य लोग हैं भी या नहीं: श्रीर ये चन्द्रवंशी लोग श्रार्य थे या कौन थे। अब हमें वेद और महाभारतसे इसका प्रमाण देखना चाहिये कि हिन्दुस्थानमें श्रार्य पहले भी थे श्रीर श्रव भी हैं। ऋग्वेदके श्रनेक उल्लेखोंसे स्पष्ट होता है कि हिन्दु-स्थानमें आर्य-जातिके लोग थे। किंवहुना श्रार्य शब्द पहले जातिवाचक ही था, फिर श्रागे चलकर वह स्वभाववाचक हो गया। ऋग्वेदमें वह जातिवाचक ही पाया जाता है। सृल-निवासी दास शब्दके विरोधमें यह शब्द व्यवहृत है। ऋग्वेद्के १० वें मराडलके ३८ वें सुक्तमें ३री ऋचा यह है-

"यो नो दास श्रायों वा पुरुष्टुता देव इन्द्र युधये चिकेतति ॥"

त्रर्थ-"हे इन्द्र ! जो हमसे युद्ध करना चाहता हो, वह चाहे दास हो, चाहे त्रार्य हो, चाहे श्रदेव हो" इस वाका-में तीन जातियोंका उत्तेख है। दास, श्रार्य श्रीर श्रदेव । श्रार्य यानी हिन्दुस्थानमें श्राये हुए श्रार्य; दास यहाँके (मूल) निवासी; श्रदेव श्रर्थात् श्रसुर; यानी 'ज़ेन्दावेस्ता' में वर्णित पारसी लोग, जिनसे विभक्त होकर हिन्दुस्थानी आर्य यहाँ आये थे। सायनाचार्यके समय श्रार्य शब्दके वंश-वाची होनेकी कल्पना नष्ट हो गई थी। फिर भी उन्होंने त्रार्यका अर्थ त्रैवर्णिक यानी ब्राह्मण, चत्रिय श्रीर वैश्य ऐसाही किया है। इसका तात्पर्य भी यही निक-लता है। वैदिक कालमें आयों श्रीर दासीका परस्पर विरोध था। ब्राह्मण-कालमें भी विरोध मौजूद था। फिर धीरे धीरे शद्रोमें दासोंका अन्तर्भाव हो गया: इस कारण इस तरहका विरोध न रहा

कि यह आर्य है और यह दास है। फिर तो आर्य और म्लेच्छका भेद उत्पन्न हो गया और लोग समभने लगे कि ये भिन्न भिन्न जातियाँ हैं। तथापि महाभारतमें भी आर्य शब्द विशेष जातिवाचक माना जाता था। हिन्दुस्थानके भिन्न भिन्न लोगोंकी गणना करते समय आर्य, म्लेच्छ और मिश्र इन तीन भेदोंका वर्णन महाभारतमें है।

श्रार्या म्लेच्छाश्च कौरव्य सौर्मिश्राः

पुरुषा विभो। (भीष्म ६-११३)
इसी प्रकार जिस समय अर्जुनने
अश्वमेधके अवसर पर दिग्विजय किया,
उस समय अनेक राजाओंने विरोध किया
था। उन विरोधियोंमें म्लेच्छ और आर्थ
दोनों श्रेणियोंके राजा थे (अश्व० अ० ७३)।

म्लेच्छाश्चान्ये वहुविधाः पूर्वे ये निक् तारणे । श्चार्याश्च पृथिवीपालाः प्रहृष्टा नरवाहनाः ॥ समीयुः पाएडुपुत्रेण बहवी यद्धदुर्मदाः ।

इससे स्पष्ट होता है कि सिकन्द्रके बाद्तक-महाभारत-काल पर्यन्त-हिन्दु-स्थानमें कुछ राजा लोग श्रपनेको आर्य कहते श्रौर कुछ म्लेच्छ माने जाते थे। हिन्दुस्थानी लोगोंकी फ़ेहरिस्त भीष्म पर्व-में है। उसमें भी कुछ म्लेच्छ राजाश्रोंका स्पप्ट उल्लेख है। इससे प्रकट होता है कि त्रार्य नाम त्रबतक जातिवाचक था। श्रार्यावर्त शब्दका उपयोग हिमालय श्रीर विनध्य पर्वतके बीचवाले प्रदेशके लिए किया जाता है। श्रार्य शब्दसे सिर्फ़ जाति-का ही भेद नहीं दिखाया जाता था, किन्तु भाषा-भेद भी प्रदर्शित किया जाता था। महाभारतमें एक स्थान पर नार्या म्ले-च्छन्ति भाषाभिः' कहा है। इस वाक्यका मतलव यह है कि भाषा बोलनेमें आर्य लोग गलतियाँ नहीं करते, जैसे कि म्लेच्छ लोग करते हैं। महाभारत-कालमें आर्य शब्द जातिबाचक था और स्लेच्छोके

विरुद्ध अर्थमें व्यवहृत होता था । मनु-स्मृतिमें यह भेद अभीतक है। इस स्मृति-में भी श्रार्य शब्द जातिवाचक है श्रौर उस समय लोग यह समभते थे कि हिन्दुस्थान-में जो लोग चातुर्वर्ग्यके बाहर हैं, वे आर्य नहीं हैं। भीष्म पर्वकी देश-गणनामें यह नहीं बतलाया गया कि हिन्दुस्थानमें श्रार्य देश कौन कौनसे हैं। तथापि उत्तरमें पञ्जाबसे लेकर श्रङ्ग-वङ्ग देश पर्यन्त श्रीर विज्ञामें अपरान्त देशतक आर्य लोग फैले रहे होंगे: उस सीमाके बाहर म्लेच्छों-की बस्तीका होना माल्म पडता है। म्लेच्छों श्रीर वेदवाह्य लोगोंमें श्रङ्ग, बङ्ग, कलिङ श्रीर श्रान्ध्र देशकी भी गणना की गई है। यवन, चीन, काम्बोज, हुए और पारसीक वहैरह तथा दरद, काश्मीर, खशीर श्रीर पह्नव वगैरह दूसरे म्लेच्छ उत्तरकी श्रोर वतलाये गये हैं। इस वर्णन-से भली भाँति मालूम होता है कि महा-भारत-कालमें कौन कौन लोग म्लेच्छ समभे जाते थे। श्रीर इसी कारण हिमालय तथा विनध्यके बीचका देश श्रायीवर्त समका जाता था। इसके वाहर भी श्रार्य थे श्रीर वे संस्कृत भाषा भी बोलते थे। फिर भी वेद-वर्ण-बाह्य होनेके कारण वे म्लेच्छ समभे जाते थे । मन-स्मृतिमें उनकी गणना दस्युश्रोंमें की गई है। यह अनुमान इस स्रोकसे निक-लता है-

मुख बाहरपज्जानां या लोके जातयो वहिः। म्लेच्छवाच त्रार्थवाचः सर्वे ते वस्यवः स्मृतः॥

यह मान लेनेमें कोई ह्नति नहीं कि
भारती युद्ध-कालमें हिन्दुस्थानके आयोंकी
वस्ती इसी प्रकार थी। ब्राह्मण-प्रत्थोंमें
कुरु, पाश्चाल, कोसल और विदेहवालोंके
सम्बन्धमें वरावर वर्णन मिलते हैं।
अर्थात पूर्व दिशामें गङ्गाके उत्तर और

श्रङ्ग देशतक श्रायोंकी बस्ती थी। शीर सेन, चेदी श्रीर मगधका नाम ब्राह्मणीम नहीं है। फिर भी यह बात मान ली जा सकती है कि शौरसेन, चेदी श्रौर मगध लोग उस समय यमुना किनारे फैले हुए थे। मत्स्योंका नाम ऋग्वेद्में भी है। यदि श्रीकृष्णकी कथाका युद्ध-कालीन होना निश्चित है तो काठियाबाड़-द्वारका-तक श्रायोंकी बस्तीका सिलसिला होना चाहिये। वेदमें समुद्रका वर्णन बहुत है। श्रर्थात् वैदिक ऋषियोंको सिन्ध और काठियावाड़ वगैरहका हाल अवश्य मालम रहा होगा। पञ्जाबमें तो आयोंकी खास वस्ती थी। पहलेपहल वे वहीं श्रावाद हुए। तब, पञ्जाबसे लेकर काठियावाड-तक और पूर्वमें चिदेहतक आर्य फैले हुए थे; श्रीर इन देशोंमें रहनेवालींका नाम वेद श्रौर महाभारतमें श्रार्थ है। इससे प्रकट होता है कि हिन्दुस्थानमें श्रार्य लोगोंकी वसती है।

शीर्षमापन शास्त्रका प्रमाण।

शीर्षमापन शास्त्र एक ऐसा नवीन शास्त्र उत्पन्न हुन्ना है जिससे इस बात-की जाँच कर ली जाती है कि श्रम क लोग अमुक जातिके हैं या नहीं। इस शास्त्रसे बहुत करके इस बातका निश्चय किया जा सकता है कि अमुक लोग आर्य जातिके हैं या नहीं। संसार भरमें जितने मनुष्य है, उनकी खासकर चार जातियाँ मानी गई हैं। श्रार्य, मङ्गोलियन, द्रविड श्रौर नीयो । इनमें साधारण रीतिसे श्राय लोग गोरे और ऊँचे होते हैं। मङ्गोलियनी की ऊँचाई मभोले दर्जेकी श्रोर रंग पीला होता है। द्वीडियन साँवले रङ्गके और ऊँचाईमें मध्यम होते हैं। नीश्रो (हबशी) बिलकुल काले होते हैं। रङ्ग और ऊँचाईके भित्र परिमाणको अपेला सिर और नाक के मापको शीर्षमापन शास्त्रने महत्त्व विया है। श्रीर, इसी मापके श्राधार पर भिन्न भिन्न जातियोंकी प्रायः निश्चित पहचान हो जाती है। श्रनेक श्रार्य जातियों-की तुलना करके निश्चय कर लिया गया है कि आयोंकी नाक बहुत करके ऊँची ब्रोर लम्बी होती है और चौडानकी श्रवेचा उनका सिर भी लम्बा होता है। सन् १६०१की मनुष्य-गणनाके समय सर हर्वर्ट रिस्लेकी सूचनासे हिन्द-स्तानके प्रायः सभी प्रान्तोंके कुछ लोगोंके परिमाण शीर्षमापनशास्त्रके अनुसार लिये गये थे। उन प्रमाणीं से रिस्ले साहब-ने यह सिद्धान्त निकाला कि हिन्दुस्थानके भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें श्रार्य जातिवालोंके जो भेद देख पडते हैं, उनकी कल्पना सात विभागों में की जा सकेगी—(१) पंजाब, काश्मीर श्रोर राजपूतानेमें बहुत करके सभी लोग आर्य-जातिके हैं। (२) संयुक्त-प्रदेश श्रीर विहारमें जो लोग हैं, वे श्रार्य श्रीर द्विड जातिकी मिश्रित सन्तान हैं। (३) बङ्गाल और उडीसाके लोग वहुत करके मुङ्गोलियन और द्वीडियन जातियों के हैं। पर उच्च वर्णमें कुछ श्रार्थ जाति भी पाई जाती है। (४) सीलोनसे लेकर समृचे मद्रास इलाकेके श्रीर हैदरा बाद, मध्यप्रदेश तथा छोटा नागपुरके निवासी द्विड़ जातिके हैं। (५) पश्चिम-की श्रोर हिन्दुस्थानके किनारे गुजरात, महाराष्ट्र, कोंकण श्रोर कुर्गतक द्रविड़ और शक जातिका मिश्रण है। शेष दों भाग पश्चिमकी स्रोर बल्चिस्तान स्रोर पूर्व-में श्रासाम तथा ब्रह्मदेश हैं। इनमें क्रमसे रानी श्रौर मङ्गोलियन जातिवाले हैं। पर ये हिन्दुस्तानके बाहर हैं; इसलिये उनसे हमें कुछ मतलब नहीं। ऊपर पाँच भागी-के लोगोंका जो वर्णन किया गया है, उसका मेल अनेक अंशोमें, (एक भागको

छोड़कर) उन अनुमानोंसे वखूबी मिलता-जलता है जो कि वैदिक साहित्य और महाभारतसे निकाले गये हैं। अब यहाँ इसी बातका विचार किया जायगा।

वेदके अनेक अवतरणोंसे पहले बत-लाया जा चुका है कि पञ्जाब श्रीर राज-प्तानेमें आर्य लोग पहलेपहल आबाद हुए थे। ऋग्वेद्में भरतींका नाम पाया जाता है। ये लोग पहलेपहल आये हुए आर्य हैं और आजकल सूर्यवंशी माने जाते हैं। इनके मुख्य ऋषि वसिष्ठ, विश्वामित्र श्रीर भरद्वाज श्रादि थे। इनके भारत-कालीन मुख्य लोग मद्र, केकय और गान्धार थे। ये लोग गोरे श्रीर खबसरत होते थें। ऐसा जान पड़ता है कि मध्य-देशके चित्रिय लोग बहुत करके इनकी वेटियोंसे ब्याह करते थे। इसी कारण पागड़की एक रानी माद्री भी थी। धृतराष्ट्रकी स्त्री भी गान्धार देशकी बेटी थी। रामायणके दशरथ राजाकी स्त्री कैकेयी इसी कारणसे की गई थी और वह सन्दरताके कारण पतिकी प्राणप्यारी थी। मतलब यह कि पञ्जाबके श्रायं पहले श्राये हए श्रार्य थे। वे गोरे श्रीर खुबसुरत थे। लोकमान्य तिलकने अपने यन्थ 'ऋार्टिक होस इन दि वेदाज् में श्रनेक प्रमाण टेकर सिद्ध किया है कि भारती आयोंका उत्तर श्रोरके ध्रुव प्रदेशको छोड़कर द्विणमें त्राते समय, ईरानी अथवा त्रसुरोंसे भगड़ा हुत्रा; फिर वे हिन्दु-स्थानके पञ्जाब प्रदेशमें आये; और यहाँ वे सन् ईसवीसे लगभग ४००० वर्ष पूर्व श्राबाद हो गये। लोकमान्य तिलकने संसारको बतला दिया है कि इस बातका वर्णन ईरानियोंके 'वेंदिदाद' नामक धर्म-ग्रन्थमें हैं। उस ग्रन्थमें कहा गया है कि-- "श्रायं लोगोंने सप्तसिन्धु श्रर्थात् पञ्जाबमें बस्ती बसाई: परन्तु इन्हें सताने-

के लिये शैतानने बड़ी कड़ाकेकी धूप श्रीर साँप पैदा कर दिये।" सप्तसिन्धु अर्थात् पञ्जाबकी पाँचों नदियाँ श्रीर सिन्धु तथा कुभा हैं। ऋग्वेदमें इन सातों नदियोंके नाम बराबर आते हैं। इन निदयोंके वर्णनसे श्रौर महाभारतके लोगोंके वर्णन-से सिद्ध होता है कि पआवमें श्रीर समीप-के ही काश्मीर तथा राजपूतानेमें गोरे तथा खुबसूरत आयोंकी अच्छी आबादी थी। यहाँ रहनेवाले मूल दस्यु लोग थोड़ेसे होंगे श्रीर श्रायींके श्रा जानेसे वे धीरे धीरे दित्तणमें हट गये होंगे। इन द्रविड जातिवालोंकी मुख्य बस्ती द्त्रिणमें ही थी, स्रोर उत्तरकी स्रोरसे स्रार्य लोग जैसे जैसे आते गये वैसे ही वैसे ये मूल निवासी दिच्चिणकी श्रोर हटते गये। ऊपर किये हुए विभागसे यह बात मालूम हो चुकी है कि उन लोगोंकी विशेष संख्या इस समय भी दिचणके भागमें ही है। शीर्षमापन शास्त्रके अनुसार इन द्विड लोगोंमें मुख्य विशेषता यह है कि उनकी नाक चपटी होती है। उनका सिर तो श्रार्य जातिवालोंकी तरह लम्बा ही होता है, परन्तु चपटी नाक उनकी खास पह-चान है जिस पर ध्यान रहना चाहिये। श्रचरजकी बात तो यह है कि द्राविडोंकी इस विशेषता पर श्रार्य ऋषियोंकी नज़र पड़ गई थी श्रीर उन्होंने वेदमें श्रनेक स्थानी पर 'निर्नासिक दस्यु' यह वर्णन किया है। पञ्जाबके दस्यु धीरे धीरे पीछे हटे श्रीर ऋग्वेद-कालसे लेकर अवतक पञ्जावके अधिकांश लोग आर्य जातिके हैं: रङ्ग उनका श्रब भी गोरा श्रोर नाक ऊँची है। पञ्जाबकी धरती खूब उपजाऊ थीं, इस कारण बाह्मण, चित्रय और वैश्य अथवा खेती करनेवाले किसान वगैरहकी संख्या खुब बढ़ी। इस कारण आजकल राष्ट्र मानी जानेवाली पञ्जानकी जाट वग़ैरह जातियाँ श्रसली श्रार्य हैं। श्रब हम

रिस्ले साहवने दूसरे भागमें संयुक्त प्रदेश श्रोर बिहारको माना है। वे कहते हैं कि इन दोनों प्रान्तोंमें मिश्र जातिक श्रार्य हैं। विहार प्रान्त वैदिक-कालीन विदेह है श्रीर कोसल है श्रयोध्या (श्रवध)। ब्राह्मण-प्रनथोंमें कोसल श्रौर विदेह मण हर हैं। कोसल-विदेह रामायणके कथा भागका मुख्य प्रदेश है । इन प्रदेशोंके निवासी सूर्यवंशी चत्रिय हैं। पञ्जाबसे उनका सम्बन्ध है। वहाँकी संस्कृतीलक वर्तमान देशी भाषात्रोंसे भी यह बात प्रकट होती है। इन दोनों सुबोंके आदमी यदि मिश्रित जातिके हों तो कोई अचरत नहीं। फिर भी अवध पहलेसे ही स्वतन्त्र है। अब शेष संयुक्त प्रदेशका विचार किया जाता है। इस प्रदेशमें विशेष करके चन्द्रवंशी चत्रियों और ब्राह्मणोंकी बस्तीहै। ऋग्वेदके वर्णनसे भी सिद्ध होता है कि चन्द्रवंशी लोग पहले सरस्वती और गङ्गा के किनारे पर बसे थे। कुरु-पाञ्चाल ब्राह्मण-प्रनथके मुख्य देश थे । ब्राह्मण ग्रन्थोंसे ज्ञात होता है कि इन लोगोंक श्राचार-विचार कुछ भिन्न थे श्रीर वैदिक धर्मका पूर्ण उत्कर्ष सरस्वतीके किनारे कुरुनेत्रमें हुआ। सरस्तती और दपद्वती नदीके बीचका छोटासा प्रदेश ही मुख्य श्रार्यावर्त है। इसीको लोग वैदिक धर्म का मुख्य स्थान मानते थे । इस भागक लोग पञ्जाब-निवासी आयोंकी अपेता श्रिधिक सुधरे हुए श्रीर वहुत शुद्धाचरणी समभे जाते थे । जिस तरह श्राजकल महाराष्ट्र (दक्किन) में पूना प्रान्त भाषा सभ्यता, त्राचार श्रौर धर्मशास्त्र श्रादि सम्बन्धमें मुख्य माना जाता है, उसी प्रकार प्राचीन समयमें मोर वेदिक सभ्यताका केन्द्र कुर्ग

माना जाता था । ब्राह्मण-कालसे लेकर महाभारत काल पर्यन्त अर्थात् सौतिके समयतक यह कल्पना थी, कि कुरुत्तेत्र प्रान्तके श्रार्य लोगोंसे पञ्जावके श्रार्य कम सभ्य थे और उनका आचरण भी कुछ ब्रग्रद्ध था। इस वातका बढ़िया उदाहरण श्रात्य श्रीर कर्णके सम्भाषणमें मिलता है। यह महाभारतके कर्ण पर्वमें है। कर्ण कहता है-"मद्र देशके लोग अधम होते हैं श्रीर कुत्सित भाषण करते हैं। मद देशमें पिता-पुत्र प्रभृति, सभी साथी, मेहमान, दास और दासी वगैरह एक जगह मिलकर उठते-वैठते हैं । वहाँकी क्रियाँ पुरुषींके साथ श्रपनी इच्छासे सह-वास करती हैं। उस देशमें धर्म बुद्धि विलक्कल नहीं है। मद्र देशमें श्राचरण-का विधि-निषेध नहीं है: वहाँ इस वात-का विचार नहीं कि कौन काम करना चाहिए और कौन न करना चाहिये। स्त्रियाँ शरावके नशेमें मस्त रहती हैं।" इस प्रकार कर्णने शल्यकी बहुत निन्दा की है। यद्यपि इसमें अतिशयोक्ति है, फिर भी यह तो स्पष्ट है कि पञ्जाब-निवा-सियोंका श्राचार-विचार कुरुत्तेत्रके निवा-सियोंसे कम दर्जेका था। सन् ईसवीसे लगभग साढ़े तीन हज़ार (३५००) वर्ष पूर्व चन्द्रवंशी लोग करू चेत्रमें उतरे श्रौर विज्ञा श्रोर बहुत करके वर्तमान अवधको छोड़कर सारे संयुक्त प्रदेशमें फैल गये; श्रर्थात् रुहेलखराड, श्रागरे, मथुरा, कानपुर और प्रयाग श्रादिमें उनकी बित्तयाँ हो गई। भारती युद्धके समय ये लूब उन्नति दर्शाते थे और वैदिक धर्मकी रन्होंने पूर्ण उन्नति की। ये लोग पूर्ण भार्य जातिको होंगे। श्रव यह प्रश्न होता है कि यहाँ आजकल मिश्र जातिके जो लोग है, वे कैसे उत्पन्न हुए। स्रतः अब इसपर विचार करते हैं। किन्तु स्मरण रखना

चाहिये कि ये चन्द्रवंशी लोग सूर्यवंशी चत्रियोंसे कुछ भिन्न रहे होंगे। इनका रक्न कुछ कुछ साँवला था। अगर यह कहा जाय कि यहाँकी वहुत गरम हवाके कारण इनकी रंगत बदल गई होगी, तो पञ्जाब-की हवा भी तो गरम ही है। पहले लिखा गया है कि मल्लविद्यासे इन्हें बहुत प्रेम थाः सो यह विशेषता इनके वंशजों में आजकल भी पाई जाती है। इन लोगोंमें द्विड जातिका मिश्रण कैसे हो गया ? इस सम्बन्धमें कहा गया है कि ये लोग हिमालयसे गङ्गाकी तङ्ग घाटियोंमें होकर कठिन रास्तेसे आये थे, इस कारण इनमें स्त्रियाँ बहुत थोड़ी थीं। परन्त हिन्द-स्थानमें श्राने पर इन लोगोंने द्विड़ जाति-की बेटियाँ ब्याह लेनेमें कुछ सङ्कोच नहीं किया। यही कारण है कि गङ्गा-यमुनाके प्रान्तोंमें श्राजकल जो वस्ती है, उसमें द्रविड जातिका मिश्रण है। इस कल्पना-का उद्गम महाभारतकी कई कथाश्रोमें मिलता है।

युक्तप्रदेशके वर्तमान मिश्र आर्थ।

जिस प्रदेशमें गङ्गा श्रौर यमुना वहती है, उसमें पहले द्रविड़ जातिकी श्राबादी थी। वे द्रविड़ नागवंशी होंगे। यह लिखा जा चुका है कि यमुना किनारे तक्तक नाग रहता था; उसे श्रर्जुनने भगा दिया था। ऐसा हो एक नाग यमुना किनारे मथुराके पास रहता था। उसे श्रीकृष्णने जीतकर निकाल दिया। कालियाकी प्रसिद्ध कथाका ऐतिहासिक सक्प ऐतिहासिक रीतिसे ऐसा ही मानना पड़ता है। इससे भी दिल्लामें वसुराजा उपरिचरने चेदी राज्य स्थापित किया था। उसकी कथा भी इसी प्रकारकी मालूम पड़ती है। श्रस्तु: इससे प्रकार है कि गङ्गा-यमुनाके प्रदेशमें नाग जातिके लोग बहुत थे। नागकन्या उल्पी

गङ्गा किनारेकी थीं: वह अर्जुनको व्याही गई थो। श्रीकृष्णकी कई रानियाँ शीं जिनमेंसे कुछ नाग-कन्याएँ भी थीं। शन्तन राजाने निषाद-कन्या मत्स्यगन्धाके साथ विवाह किया था। इसी मत्स्यगन्धाके गर्भ-से पराशर ऋषिसे व्यासजी उत्पन्न हुए थे। एक नागकत्याके गर्भसे जरत्कारु ऋषि-से श्रास्तिक हुआ था। मतलब यह कि नागकन्यात्रोंके साथ विवाह किये जानेके महाभारतमें अनेक उदाहरण हैं। इससे प्रकट है कि भारती युद्ध-कालमें चन्द्रवंशी श्रार्य श्रीर नाग लोगोंके मिलाप हो जाने-की-खिचडी हो जानेकी-कल्पना उत्पन्न हुई। इस मिश्रणके कारण रङ्गमें फर्क पड गया श्रीर श्रार्य लोगोंका साँवला रक हो गया होगा । कृष्ण हैपायन, श्रीकृष्ण श्रर्जुन और द्रौपदीके कृष्ण वर्ण-का उल्लेख है। कुछ लोगोंके सिर नाप-कर यह अनुमान किया गया है। रिस्ले साहबकी दलील यही है कि मध्यस शीर्ष-परिमाण होनेके कारण सिद्ध है कि यहाँ द्रविड जातिके जो लोग खासकर मदास इलाकेमें हैं, उनके सिरका परिमाण चौडा नहीं, लम्बा है। शीर्षमापन शास्त्रके शाता-श्रोंने स्थिर किया है कि कुल द्वाविडोंका सिर लम्बा होता है और इस वातको रिस्ले साहबने भी मान लिया है। फिर दूसरी टोलीके जो आर्य हिन्दुस्थानमें आये, उनका सिर लम्बा था श्रीर जिनके साथ उनका मिश्रित होना माना गया है, उन द्रविड जातिवालोंका सिर भी लम्या था। ऐसी दशामें द्रविड़ जातियोंके मिश्रणसे उपजे इप लोगोंके सिरका परिमाण मसोला कैसे हो सकेगा? रिस्ले साहबके ऊपर-वाले सिद्धान्त पर यह एक महत्त्वका आद्येप होता है। श्रव इस श्राचेपका निराकरण करना चाहिये।

भारतीय युद्ध कालमें चन्द्रवंशी श्रायौं-

के जितने राज्य स्थापित हुए थे, उनमें काठियावाङ्का द्वारकावाला श्रीकृष्णका स्थान मुख्य है। यहाँ यादवींकी बस्ती हो गई थी: श्रीर इसी स्थानमें नामक लोगोंके आबाद रहनेका भी उल्लेख है। श्रवन्ती देशमें भी चन्द्रवंशी श्रायोंकी बस्ती हो गई थी श्रीर वहाँकी उज्जियित नगरीकी स्थापना भी हुई थी। यह शहर प्राना है श्रीर सप्तप्रियोंमें द्वारकाक समान ही पवित्र माना गया है। यह श्चाख्यायिका है कि उज्जैनमें श्रीक्रण विद्या पढनेके लिए गये थे। विदर्भ यानी वरारमें भोजींका राज्य कायम हो गया था श्रीर रुक्मिणी विदर्भके भोजकी बेटी थी। सारांश यह है कि विदर्भ, मालवा श्रोर काठियावाड तथा गुजरात प्रदेश में चन्द्रवंशी श्रायोंकी वस्ती थी श्रीर भार तीय युद्धके समय ये प्रदेश प्रसिद्ध थे। इन देशवालोंके मस्तकींका परिमाण मध्यम नहीं, चौड़ा है। यह क्यों ? रिस्ले साहब के उक्त सिद्धान्त पर महत्वका यह दूसरा श्राचेप है। श्रव इन दोनों श्राचेपोंका निरसन करना चाहिये। दक्तिएके महा राष्ट्र प्रसृति देशों में भी श्रार्थ लोग फैले इप हैं। हरिवंशमें कहा गया है कि सहादिकी समधरातल भूमि पर श्रायी के कई राज्य थे श्रीर इन राज्योंकी स्थापना चार नागकन्यात्रींके गर्भसे उत्पन्न यदुके चार बेटोंने की थी। यदि महाराष्ट्रको श्रलग रख लें तो भी गुजरात श्रीर बरार श्रादि प्रदेशोंमें चन्द्रवंशी श्रायोंकी जी बस्ती हो गई थी, वह उन प्रदेशोंमें श्रवः तक है। यहाँवालोंके मस्तकके मापका परिमाण मध्यम नहीं, चौड़ा है। इस बातका निर्णय हो जाना चाहिये कि ऐसा क्यों है।

शीर्षमापन शास्त्रके शाता लोग जिस दङ्गसे मस्तकका परिमाण लेते हैं, उसकी

भी थोड़ा सा खुलासा किया जाता है। वे माथेसे लेकर चोटीतक सिरकी लम्बाई नेते हैं श्रीर एक कानके ऊपरके हिस्से (कनपटी) से दूसरे हिस्सेतक चौड़ाई। लम्बाईको अपेचा यदि चौड़ाईका परिमाण बहुत कम निकले तो सिर लम्बा समभा जाता है। श्रीर, ये दोनों परिमाण यदि पास पास हों तो मसोले दरजेका समसा जायगा और लम्बाईकी अपेचा अगर चौड़ाई बिलकुल पास हो या बरावर हो तो फिर सिर चौड़ा समभा जायगा। इस रीतिसे किसी जातिके कुछ लोगींके सिर नापने पर सरसरी तौर पर जो श्रवमान होता है, उसीसे यह परिमाण उस जातिका मान लिया जाता है। ऊपर-की ही बातोंसे यह सिद्ध होता है कि हिन्दुस्थानमें जो दूसरी जातिके चन्द्रचंशी श्रार्य श्राये, उनके मस्तक चौड़े थे। द्रविड जातिवालोंके सस्तकोंका परिमाणलम्बाहै। इससे प्रकट ही है कि इन लम्बे खोपडी-वालोंका संमिश्रण जब चौडी खोपड़ी-वालोंसे होगा तभी युक्त प्रदेशके मध्यम परिमाणकी खोपडीवाले लोग उत्पन्न होंगे। इसी तरह गुजरात, काठियावाड़ श्रीर विदर्भ श्रादि देशोंमें जो लोग हैं, उनके सिर चौड़े हैं; श्रीर महाभारतसे पकट होता है कि इन प्रान्तोंमें चन्द्रवंशी चित्रिय श्रावाद थे। तब यह मान लेना चाहिये कि इन प्रान्तोंके लोगोंके अर्थात् चन्द्रवंशी चत्रियोंके मस्तकोंका परिमाण चौड़ा रहा होगा। श्रीर, यह श्रनुमान अपरके युक्त प्रदेशके निवासियोंके सम्बन्ध-के श्रनुमानसे मिलता है।

शीर्षमापन शास्त्रके सभी पिएडतोंने यह बात मानी है कि खोपड़ीका परि-माण वंशका कोई निश्चित लद्मण नहीं है। नाकका परिमाण ही वंशका विशेष लक्षण है। पश्चिमी श्रायोंमें भी ऐसे लोग हैं जिनकी खोपड़ी चौड़ी है। फेञ्च, केल्ट और आयरिश आदि जातियाँ चौड़ी खोपडीवाली ही हैं। अर्थात्, आर्योपं ऐसी कई जातियाँ हैं जिनको खोपडी चौडी होती है। इसी प्रकार सिरका लम्बा होना भी आर्य वंश-का मुख्य लक्त्रण नहीं है, क्योंकि द्रविड जातिका भी सिर लम्बा होता है। अत-एव नाकके परिमाणको ही मुख्य मानना चाहिये। श्रार्य जातिकी नाक ऊँची होती है, द्विड जातिकी बैठी हुई होती है श्रौर मङ्गोलियन जातिकी नाक इतनी चपटी होती है कि आँखोंकी सीधमें विशेष ऊँचाई नहीं होती अर्थात जडमें खूब फैली हुई होती है। चीनी श्रीर जापानी लोगोंके चपटे चेहरेको सभीने देखा होगा। नाकके परिमाणका विचार करते समय यह बात निश्चित हो जाती है कि चन्द्रवंशी चत्रियोंकी खोपड़ी चौड़ी भी हो, तो भी ऊँची नाक होनेके कारण वे आर्यवंशी ही हैं: उनका रङ्ग साँवला भले ही हो, पर वे आर्य वंशके ही हैं। श्रौर उनकी सभ्यता भी उसी वंशके जैसी है। तवर राजपूत श्रोर गुजर इसी प्रकारके लोग हैं। इनकी वस्ती गङ्गा-यमुनाके प्रदेशमें है और ये ही लोग जो पाएडवों और श्रायों-के वर्तमान वंशज समभे जाते हैं, सो हमारी रायमें भी यही वात है। ये लोग शरीरसे खूब मज़बूत श्रीर कदमें पूरे ऊँचे होते हैं। इनकी नाक भी ऊँची होती है। इस कारण इनके आर्यवंशी होनेमें किसी-को सन्देह नहीं। हमारी राय है कि खास-कर चन्द्रवंशी श्रायोंमें भारतीय हुआ था; श्रोर इन्हें श्रार्य सिद्ध करनेके लिए ही हमने ख़ास तौर पर यहाँ विवे-चन किया है। क्योंकि दुछ लोगोंकी समभमें हिन्दुस्थानके पश्चिममें त्रार्थ हैं ही नहीं: वहाँवालोंमें शक जातिका श्रीर द्रविड़ जातिका ही संमिश्रण है। यह राय विशेषकर महाराष्ट्र-वासियोंके सम्बन्धमें है। महाराष्ट्रके ब्राह्मण श्रीर मराठा चत्रिय श्रार्य नहीं हैं। इस बातको सिद्ध करने-के लिये यह कटाच है; अर्थात् रिस्ले साहबने यह माना है कि इन लोगोंमें शक श्रीर द्रविड जातियोंका ही मिश्रण है। परन्तु उनके खोपड़ी-सम्बन्धी परिमाणके श्राधार पर की हुई यह धारणा गलत है। क्योंकि, सिद्धान्त यही निश्चित होता है कि चन्द्रवंशी श्रायोंका सिर चौड़ा होना चाहिये। महाराष्ट्र देशवालीके सिरका प्रमाण चौडा भले ही हो, पर उनकी नाक चपटी नहीं,बहुत कुछ ऊँची होती है। इसके सिवा हरिवंशसे सिद्ध होता है कि महा-राष्ट्रमें यादवोंके राज्य स्थापित इए थे। उसमें नाग-कन्यात्रोंकी सन्तति रहनेका वर्णन है, इससे सम्भव है कि श्रार्य जाति-में द्रविड जातिका थोडा सा मिश्रण हो: परन्तु शीर्षमापन शास्त्र श्रौर इतिहाससे यही निर्णय होता है कि पश्चिम तरफ के श्रौर महाराष्ट्रके श्रार्य लोग विशेष करके चन्द्रवंशी श्रार्थ हैं। विदर्भ श्रीर गुजरातके भोज तो निःसन्देह श्रार्य हैं। श्रव इस बातका विचार करना है कि युक्त प्रदेशा-न्तर्गत मध्य देशके लोग मिश्र श्रार्य हैं: यानी उनकी नाकका परिमाण ऊँचा नहीं, मध्यम है। यह पहले लिखा जा चुका है कि यहाँ के लोगोंमें, पहलेपहल, विशेषतः भारती युद्धकालमें नाग जातिके लोगोंका बहुत कुछ मिश्रण रहा होगा। श्रीर, इसी कारण युक्त प्रदेशके लोगोंमें द्विड जातिका बहुत कुछ मिश्रण शुक्र शुक्रमें हो गया होगा। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह मिश्रण होना श्रागे बन्द हो गया। क्योंकि, जातिका महत्त्व हिन्दुस्थानके सभी लोगों-में बहुत माना गया है; इस कारण जितना मिश्रण पहले हो गया हो, उतना ही रहा.

फिर श्रागे नहीं हुआ। ख़ैर, अपके विवरणसे यह निश्चय किया गया है कि भारती-युद्ध श्रार्य जातिके चन्द्रवंशी चित्रयों में हुआ था। श्रव देखना चाहिये कि इनके सिवा श्रीर कीन कीन लोग इस समरमें शामिल हुए थे।

राच्स।

पाएडवोंकी श्रोरसे हिडिम्बापुत्र घटो त्कच और दुर्योधनकी ओरसे अलम्बूप ये दो राज्ञस थे। अच्छा, अब ये थे कौन? इस प्रश्नको हल करना आवश्यक है। महाभारत और रामायण त्रादिमें राजसी का भुख्य लच्च यह बतलाया गया है कि वे नरमांस-भोजी थे। ऐसा जान पडता है कि हिन्दुस्थानमें जो कुछ जातियाँ प्राचीन समयमें नरमांस भन्नण करनेवाली थी. उन्होंका नाम राज्ञस था। इन राज्ञसों श्रर्थात् यातुधानोका उल्लेख ऋग्वेदतकां है। उनके लिये ऋषियोंका यह शापयुक वचन है—"श्रित्रिणः सन्त्वपृत्रिणः" । मनुष्योंको विशेषतः परकीय (बाहरी) मनुष्यांको खानेवाले इन मृल-निवासियों की जातियाँ राज्ञस नामसे प्रसिद्ध हो गई। श्राप्सरा, नाग इत्यादि श्रनार्य जातियाँ जिस तरह भली † होती थीं, वैसे ही ये श्रनार्य जातियाँ भयद्भर होती थीं। परन्तु फिर श्रागे चलकर कल्पनासे यह माना जाने लगा कि अप्सरा, नाग और गन्धर्व श्रादि की तरह इन दुष्ट जातियोंको भी, दैवी शक्ति प्राप्त थी। वे मनमाना रूप धारण कर सकते हैं, श्रदश्य हो सकते हैं श्रीर उनमें विलक्त् शक्ति है:-इस प्रकार

* ये खानेवाले लोग निपुत्रिक हों।

† कर्णा जुंन-युद्धके समय इस बातका वर्णन किया गया है कि कौन कौन जातियाँ किस किसकी तरफ थीं ''असुर, यातुथान (राज्ञस) और गुह्मक कर्णकी और हो गये। सिद्ध, चारण और वैनतेय प्रभृति अर्जुनकी और हुए।'' (क० अ० =७)

की कल्पनाएँ पीछेसे कर ली गई होंगी। यह भी माना गया है कि राज्ञस लोग श्राकाश-मार्गसे भी श्रा जा सकते हैं। भारती युद्धके समय बहुत करके ये जातियाँ बहुत ही थोड़ी रह गई होंगी। ब्रब तो वे सिर्फ़ अगडमन टाप्में ही हैं। जान पड़ता है कि दोनों ही श्रोर एक एक राज्ञसके होनेकी बात काल्पनिक होगी। किर भी यदि यह मान लिया जाय कि भारती-युद्ध ऋग्वेद कालके श्रनन्तर ही लगे हाथ हो गया, तो उस समय हिन्दू-शानमें कुछ राज्ञस जातियोंका थोडा बहुत श्रस्तित्व मान लेनेमें कोई हानि नहीं। महाभारतमें अर्थात् सौतिके समय ये जातियाँ काल्पनिक हो गई थीं: श्रीर तब उनमें विलच्चण शक्तिका मान लिया जाना सहज ही है।

पारख्य।

पागडवांकी श्रोरसे पागड्य राजाके युद्ध करनेका वर्णन है। किन्तु पाएड्य विलकुल द्विणमें है श्रीर इसमें सन्देह ही है कि भारतीय युद्धके समय उनका श्रस्तित्व था भी या नहीं । दक्तिणमें विदर्भ पर्यन्त आर्योकी बस्ती भारती युद्ध के समय हो गई थी। किन्त इससे भी यही सिद्ध होता है कि द्विणमें उनकी आबादी न हुई थी अथवा वहाँ-वाले ऐसे न थे कि श्रार्य लोगोंके युद्ध-में शामिल हो सकते। रामने यदि लङ्का पर भी चढ़ाई की थी तो भारती युद्धके समय हिन्दु स्तानके दत्तिणी किनारे-तकका पूरा पूरा पता मिल जानेमें कोई श्राश्चर्यकी बात नहीं। तथापि इस श्रोरके श्रायोंके राज्य अभीतक दक्तिणमें न थे। युद्धमें श्रान्ध्र श्रीर द्विड वगैरहके सम्मिलित होनेका जो वर्णन है, वह सोतिके समयका है। क्योंकि रामके युद्धके

समय श्रान्ध्र, द्विड् पाएडय श्रादि नाम-धारी लोग न थे। यदि वे उस समय होते तो रामकी सहायता करते। जान पड़ता है कि उस समय वानर श्रौर ऋच प्रभृति लोग ही मदासकी तरफ थे। कुछ लोगोंका तो यह अनुमान है कि पाणिनिके समयतक दक्तिणके लोगोंके नाम विशेष रीतिसे मालूम नथे। पर इसमें सन्देह नहीं कि महाभारत-कालमें अर्थात् सन् ईसवीसे पूर्व ३०० वर्षके लगभग हिन्दुस्थानके बिलकुल दित्ताणी कोनेतकका पता श्रायोंको लग चुका था। यह बात भी निर्विवाद है कि बौद्धों और जैनोंसे भी पहले सनातन-धर्मी आर्थ दिचाणकी श्रोर फैल गये थे। इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं कि द्विणमें शिव और विष्णुकी पूजा, बुद्धके पहले ही स्थापित हो गई थी: क्योंकि इस देशके जो बद्ध-कालीन वर्णन हैं, उनसे यही वात निष्पन होती है। इसके सिवा पञ्जाबमें सिकन्दर वादशाहको दक्तिए प्रान्तकी जो जो बातें बतलाई गई, उन्हें सिकन्दरके साथ आये इए भगोलवेत्ता इराटास्थेनिसने लिख रखा है। उसमें यह बात भी लिखी है कि सिन्धुमुखसे लेकर कन्याकुमारीतक किनारा कितने कोस लम्बा है। कनिङ्गहम साहबने अपनी "हिन्दुस्थानका प्राचीन भगोल" नामक पुस्तकमें लिखा है कि इराटास्थेनिसने मद्रासके तरफका जो कचा हाल लिखा है, वह इतना सही है कि श्रसल लम्बाईमें उससे दस-पाँच कोसका ही फर्क पड़ता है। अर्थात् सौतिको अपने समयका समूचे हिन्दुस्थानका रत्ती रत्ती हाल मालूम था; श्रीर इसी श्राधार पर उसने देशवर्णन तथा अन्य दिग्वि-जयके वर्णन किये हैं एवं देशों श्रीर नदियोंके नाम लिखे हैं। सौतिके समय दक्षिणी किनारेके पास पाएड्य लोग

बड़े प्रवल राजा थे। मेगास्थिनीज़ने भी इनका वर्णन किया है। उसने यह भी दर्शाया है कि पाएड्योंका पाएड्योंसे कुछ सम्बन्ध है। हरिवंशमें भी पाएड्यका सम्बन्ध यदुके वंशसे जोड़ा गया है। श्रतएव हमें प्रतीत होता है कि जब पाएड्य राजा लोग महाभारतकालमें प्रसिद्ध थे, तब जिन लोगोंमें भारती युद्ध हुश्रा था उनकी फ़ेहरिस्तमें पाएड्योंका नाम भी श्रा गया होगा। बहुत करके प्रत्यत्त भारती युद्ध ऋग्वेद-कालके श्रनन्तर हुश्रा है; श्रीर ऐसा श्रनुमान है कि उस समय इन लोगोंका श्रस्तित्व ही न था।

संसप्तक।

अगरती युद्धमें यवन अर्थात् यूनानी न थे, उस समय वे पैदा ही न हुए थे। कहीं कहीं भारती युद्धमें उनके होनेका भी वर्णन है। कदाचित् इनका वर्णन श्रा जानेसे यह प्रकट ही है कि महा-भारतके समय इनका नाम प्रसिद्ध होनेके कारण पाएड्योंकी तरह पीछेसे ये भी घसीट लिये गये होंगे। अच्छा संसप्तक कौन थे ? यह प्रश्न बड़ा मजे-दार है। महाभारतमें कहीं इस बातका वर्णन नहीं है कि ये लोग अमुक देशके थे। ये बड़े शूर-वीर थे। इनका बाना यह था कि युद्धमें मर भले ही जायँगे, पर पीछे न हटेंगे। श्रतएव ऐसी ही शपथ करके ये लोग युद्ध करने जाते थे, इस कारण ये 'संसप्तक' कहे जाते थे। यह बात द्रोण पर्वके १७ वें ऋध्यायमें है। किन्तु इसका 'संसप्तक' रूप भी मिलता है। ये सात जातियाँ एक ही जगहकी रहनेवाली होंगी और सैन्यमें सङ्गठित थीं, इस कारण संसप्तक नाम हो गया होगा । जिनको आजकल फाएटयर द्राई व्सः कहा जाता है, उन्हीं में के अर्थात्

हिन्दुस्तानकी पश्चिमी सीमापर पहाडोमें रहनेवाली अफ़रीदी ग्रर जातियोंके ग्रे लोग होंगे। यह पहले लिखा जा चुका है कि पञ्जाबसे अफ़ग़ानिस्तानतकके सभी लोग दुर्योधनकी श्रोर थे। संसप्तक भी द्योंधनके ही दलमें थे । उस समयका मुख्य आर्य देश पश्चनद देश ही था, इसी कारण कौरवों-पाएवोंका भगड़ा तत्कालीन हिन्दुस्तानके साम्राज्यके लिए था। जो हो, यह श्रनुमान करनेके लिए स्थान है कि संसप्तक श्रोर कोई नहीं नहीं सरहदके पहाडी लोग होंगे। त्रिगर्ताधिपति वगैरहः को तो पञ्जाबी ही कहा गया है। इन संसप्तकोंको संसप्तकगण कहा गया है श्रीर इनके साथ नारायण श्रीर गोपाल गण श्रीर भी बताये गये हैं (भा० द्रो०)। इससे भी यह अनुमान निकल सकता है कि ये लोग गए थे, अर्थात ऐसे पहाडी लोग थे जिनका कोई राजा न था। महा भारतकालमें गण शब्दसे कुछ ऐसे विशेष लोगोंका बोध होता था जो खतन्त्र प्रजा सत्तात्मक या श्रत्पसत्तात्मक थे। हमारा श्रनुमान है कि संसप्तकगण उत्सव-सङ्केत-गण

गणानुत्सवसङ्केतानजयत् पुरुषर्षभः। ग्रद्राभीरगणांश्चेव ये चाश्चित्य सरस्वतीम्। वर्त्तयन्ति च ये मत्सयैयेंच पर्वतवासिनः। (सभा० श्र० ३२.१०)

प्रभृतिका जो उल्लेख मिलता है वह ऐसे ही लोगों के लिये है। शिलालेख में "मालव गण् स्थित्या" शब्द में आने वाला मालव गण् भी ऐसे ही लोगों का था। ये लोग प्रायः एक ही वंशके और शूर होते थे और इसी कारण हमने संसप्तकीं तादातम्य सरहदके अफ़रीदी वगैरह साथ किया है। ये वहुधा स्वतन्त्र रही हैं और नाम मात्रके लिए किसी सप्रार्थ की अधीनता मान लेते हैं। इसी कारण

गुधिष्ठिरने इस सम्बन्धमें शान्ति पर्वके १०० वें ऋध्यायमें स्वतन्त्र प्रश्न किया है। उसने पूछा है "इन गणोंका उत्कर्ष कैसे होता है ऋौर इनमें फूट किस तरह होती है ?" इनके जो वर्णन पाये जाते हैं उनसे जान पड़ता है कि इन लोगोंमें कुछ मुखिया होते हैं। उनके उत्कर्षका श्राधार ऐक्य ही है।

न गणः कृत्स्त्रशो मन्त्रं श्रीतुमहन्ति भारत। गणमुख्येस्तु संभूय कार्यं गणहितं मिथः॥

इस क्षोकसे जान पड़ता है कि इन गणोंके सामान्यतः सर्व साधारणकी सभा होती थीं: परन्तु गुप्त परामर्श गणोंके मुखियोंसे ही करनेका उपदेश दिया गया है।कहा गया है किः—

जात्या च सदशाः सर्वे कुलेन सदशास्तथा। न चोद्योगेन बुद्धया रूपदृत्येण वा पुनः॥ भेदाचैव प्रदानाच भिद्यन्ते रिपुभिर्गणाः।

इससे प्रतीत होता है कि ये गए एक ही जातिके और एक ही कुलके होते थे और केवल भेदसे ही जीते जाते थे। टीकाकार गीलकएठको उनकी ठीक ठीक कल्पना न थी, इसलिये उसने उन्हें सिर्फ़ वीर-समुदाय माना है। परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि वे सदा एक जातिके होते थे।

भारती आयोंका शारीरिक स्वरूप।

खैर, भारती युद्ध मुख्यतः चन्द्रवंशी श्रायोंमें हुश्रा । हिन्दुस्तानमें श्रार्य श्रव-तक हैं श्रौर महाभारतके समय तो निस्सन्देह थे। इसका प्रमाण शरीरके वर्णनसे भी मिलता है । सामान्यतः श्रायोंका कद ऊँचा,बदन गठीला श्रौर रङ्ग गोरा होता है; नाक श्रौर श्राँख खूबस्रत श्रौर चेहरा-मोहरा उनका सुन्दर होता है। हम इसी मकरणमें यह देखेंगे कि महाभारतमें

लोगोंके शरीर श्रादिका कैसा सक्रप पाया जाता है।

ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनसे मालूम होता है कि महाभारतके समय हिन्दुस्तानके मनुष्य ऊँचे श्रीर खूब मज़-वृत होते थे। मेगास्थिनीज़ने भी लिखा है कि—"समूचे एशियाखरडवालोंमें हिन्दु-स्तानी लोग खूब ऊँचे श्रौर मज़वूत होते हैं।" उसने इसका यह कारण वतलाया है कि-"यहाँ लाने-पीनेकी सुविधा होनेके कारण यहाँवाले मामूली ऊँचाईसे कुछ अधिक ऊँचे होते हैं और इनके चेहरों पर तेजस्वता भलकती है।" हमारी समभमें यही कारण काफ़ी नहीं है। यह भी कारण है कि ये लोग एक तो आर्यवंशी थे और उस समय इन लोगोंकी वैवाहिक स्थिति भी बहुत उत्तम थी। विवाहके समय पति-पत्नीकी पूर्ण श्रवस्था होती थी श्रीर विवाहसे प्रथम दोनोंकी ही ब्रह्मचर्य-रत्ता पर कडी निगाह रखनेकी श्राश्रम-व्यवस्था होनेके कारण सन्तान खुव सशक्त और तेजस्वा होती थी। तीसरा कारण यह है कि भारती श्रायोंको, खासकर च्रत्रियोंको, शारीरिक बल बढ़ानेका बहुत शौक होता था श्रीर इस विषयकी कला उन दिनों खब चढीवढी हुई थी। चन्द्रवंशी चत्रियों-को मल्लविद्याका वडा श्रभिमान था। भीम श्रीर जरासन्धके प्राणान्तक बाइ-युद्धका वर्णन सभापर्वमें है। उससे यह बात ध्यानमें आ जायगी कि भारत-कालमें मल्लविद्या कहाँतक पूर्ण हो गई थी (सभा० अ० २३)। इसके सिवा और भी श्रनेक महोंका वर्णन महाभारतमें है। कृष्ण-बलराम दोनों ही ख़ासे मल थे; इन्होंने कंसके श्राश्रयमें रहनेवाले चासूर श्रादि कई मह्नोंको पद्याड़ा था। जरा-सन्धके यहाँ हंस ग्रीर डिम्भक नामके दो मज्ज थे। ये दोनों श्रौर तीसरा जरा- सन्ध, इस तरह तीनों मल्ल तीनों लोकोंको जीतनेमें समर्थ हैं, यह बात श्रीकृष्णने कही है (स० प्र० १८)। विराट राजाके यहाँ भी कीचक और उसके अनुयायी महामल थे। मतलब यह कि उस समय प्रत्येक वीरके लिए शारीरिक शक्ति अत्यन्त त्रावश्यक होती थी। समग्र युद्धमें भी शारीरिक शक्तिका ही विशेष उपयोग हुन्ना करता था। गदायुद्ध स्नौर गजयुद्ध ऐसे थे कि इन्हें मल ही अच्छी तरह कर सकते थे। हाथीसे निरा बाहुयुद्ध करने-वाले श्रीरुष्ण श्रीर भीम जैसे मझ उस समय थे। इस जमानेमें तो ये बातें अन-होनी जँचती हैं: परन्तु सचमुच इसकी कोई मर्यादा नहीं कि मनुष्य अपना शारी-रिक बल कहाँतक बढ़ा सकता है और युद्धमें कितना प्रवीण हो सकता है। गदा-युद्ध करना भी मल्लका ही काम था; श्रीर दुर्योधन सदश सार्वभौम सम्राट् भी उसमें कुशल था। धनुर्विद्याके लिए भी शारीरिक शक्तिकी आवश्यकता थी। मज़बूत धनुष खींचनेमें बहुत ताकृत लगती थी। सारांश यह कि प्राचीन कालके सभी तरहके युद्धोंमें शारीरिक शक्तिकी आव-श्यकता होती थी। इसके लिए चत्रिय श्रौर ब्राह्मण शारीरिक शक्ति बढ़ानेकी कलाका अभ्यास किया करते थे। देशमें श्रन भी भरपूर था, इस कारण उनके ये प्रयत खूब सफल होते थे श्रीर मुलकी बीजशक्ति से भी उनको मदद मिलती रहती थी।

समस्त आश्रम-व्यवस्था श्रौर समाज-स्थिति इस प्रकार श्रनुकृत होनेके कारण शारीरिक शक्तिके श्रनेक व्यवसायोंमें भारती श्रार्थ वैसे ही श्रग्रणी थे जैसे कि स्पार्टन लोग। इसमें कुछ श्राश्चर्यकी बात नहीं। प्राचीन समयसे लेकर महाभारतके समयतक उनकी यह प्रसिद्धि स्थिर थी। पोरस राजाका खूब ऊँचा कद श्रीर श्रित-श्रय बलसम्पन्न शरीर देखकर तथा उसकी श्ररताका विचार करके सिकन्दर-को जो श्रत्यन्त कीतुक हुश्रा था, उसका कारण भी यही है। पञ्जाबके श्रीर गङ्गा-यमुनाके प्रदेशके श्रार्य श्रव भी ऊँचे श्रीर ताकृतवर होते हैं। इन लोगोंको श्रवतक मह्मविद्याका वेहद शौक है। यह कहा जा सकता है कि प्राचीन कालके लोगोंके स्वभावका यह परिणाम श्रवतक चला श्रा रहा है।

हिन्द्स्थानमें भारतीय आर्य जैसे सशक्त थे वैसे ही खूबस्रत भी थे। हमारे ब्रन्थों ब्रौर युनानी लोगोंके लेखोंमें यह वर्णन है कि भारतीय आयोंकी नाक ऊँची श्रौर श्राँखें वड़ी वड़ी थीं। चीनी परि-वाजक हुएनसांगने भी ऐसा ही वर्णन किया है। युनानी इतिहासकारीने वर्णन किया है कि पोरसका खरूप श्रच्छा था। किन्तु इन्होंने ऐसे सौन्दर्यकी बहुत ही प्रशंसा की है जो कि सोफिटीसको शोभा दे। यह प्रकट ही है कि सोफिटीस-से तात्पर्य अध्वपति का है। रामायण और महाभारतमें केकय अध्वपतिका वर्णन बहुत है, श्रौर मद लोग भी इसी जातिक थे। कैकेयी श्रीर माद्री परमा सुन्दरी थीं। महाभारतमें लिखा गया है कि माद्री-का वेटा नकुल बहुत सुन्दर था। इन उल्लेखोंसे प्रकट होता है कि पञ्जाबके चत्रिय बहुत ही सुन्दर होते थे। ऊपर यूनानियोंका जो प्रमाण दिया गया है, उससे सिद्ध होता है कि पञ्जाबके ज्ञियों-की यह विशेषता महाभारतके समयतक भी थी। अब भी पञ्जाबवाले—श्रौरत श्रोर मर्द सभी-श्रन्य प्रान्तवालोंकी अपेचा सशक और सुन्दर होते हैं।

> वणें। ऐसा जान पड़ता है कि आयोंका वर्ण

भारतके समय कुछ और रहा होगा और महाभारतके समय कुछ और। शुक्के सभी श्रायोंका रङ्ग गोरा रहा होगा श्रीर पञ्जाव-के लोग तो प्रायः श्रव भी गोरे होते हैं। दूसरे अर्थात् पीछेसे आये हुए चन्द्रवंशी श्रायोंका रङ्ग साँचला श्रीर काला होगा। यह बात पीछे कही जा चुकी है। श्रीकृष्ण, अर्जुन और द्रीपदी ये सब काले थे श्रीर रङ्गके ही कारण द्रौपदीका तो नातमक 'कृष्णा' पड़ गया था। परन्त इस श्याम वर्णसे चेहरा श्रौर श्राँखें भली मालम होती थीं। श्याम और गौर वर्णके मिश्रणसे पीला रङ्ग भी उत्पन्न हो गया था। उपनिषदोंतकमें श्रीर महाभारतमें श्रायोंके गोरे, साँवले श्रोर पीले ये तीन रङ्ग दिये हैं। ब्राह्मण, चत्रिय श्रौर वैश्य तीनोंमें ये तीन रङ्ग मौजृद थे। यूनानियोंके वर्णनसे जान पडता है कि महाभारतके समय इन तीनों रङ्गोंके श्रादमी हिन्दुस्थानमें थे। महाभारतके श्राश्रमवासि पर्वमें पाएडवों श्रोर उनकी स्त्रियोंका वर्णन है। वह यहाँ पर उद्भृत करने लायक है। वनमें धृतराष्ट्रें मिलनेके लिये अपनी स्त्रियों समेत पाएडव गये। उस समय सञ्जयने ऋषियोंको उनकी पहचान करा दी। वहाँ यह वर्णन है;—"यह चोखे सोनेकी तरह गोरा युधिष्ठिर है जिसका क्द खूब ऊँचा है, नाक बड़ी है, श्रीर श्राँखें विस्तीर्ण तथा लम्बी हैं। उसके उस तरफ़ तपाये हुए सोनेकी तरह गोरा वृकोदर है जिसके कन्धे भरे हुए श्रौर भुजाएँ लम्बी तथा खूव भरी हुई हैं। उसके पीछे साँवले रङ्ग-वाला वीर अर्जुन है जिसके कन्धे सिंहकी भाँति उठे हुए हैं श्रीर कमलके समान बड़ी बड़ी श्राँखें हैं। वे दोनों नकुल श्रीर सहदेव हैं जिनकी रूप, शील श्रीर बलमें बराबरी करनेवाला सारे पृथ्वीतल पर

कोई नहीं है। यह कमल-पत्राची द्रौपदी है जिसके श्रङ्गकी कान्ति नीलोत्पलके समान है। चोखे सोनेके सदश गोरी यह सुभद्रा है श्रीर यह गौर वर्णवाली नागकन्या उल्पी है। यह पाएड्य-राज-कन्या चित्राङ्गदा है जिसका रङ्ग मधुक पुष्पको तरह है। चम्पाकलोकी मालाकी तरह गोरी यह जरासन्यकी वेटी है जो सहदेवकी प्यारी पत्नी है और इन्दीवरकी भाँति साँवली यह नकुलकी दूसरी भार्या है। तपाये हुए सोनेके रङ्गवाली यह उत्तरा है जिसकी गोदमें वालक है" (भा० आश्र० अ० २५)। इस वर्णनसे देख पड़ता है कि सिर्फ़ अर्जुन ही साँवला था और सभी पाएडव गोरे थे। द्रौपदी, चित्राङ्गदा और नकुलकी स्त्री गोरी न थी, बाक़ी सब गोरी थीं। यह गौर वर्ण सदा सोनेकी रङ्गतका वतलाया गया है। हिन्दुस्थानके लोगोंका यह विशेष ही रङ्ग है। यह किसी देशके लोगोंमें नहीं देखा जाता। विशेषतः इन दिनों भी कुछ सुन्दरी स्त्रियोंका जैसा पीला रङ्ग देखा जाता है, वैसा अन्य देशोंकी स्त्रियोंमें और कहीं नहीं मिलता। श्रार्य लोगोंका साँवला रङ्गभी कुछ निराला है। वह द्रविड़ोंके काले रङ्गसे बिलकुल जुदा है। उसे महाभारतमें इन्दीवर अथवा मधूक पुष्पकी उपमा दी गई है। अस्तुः आर्य लोगोंका मूल रङ्ग शुभ्र अथवा सफ़ेद 'कर्पूर गौर' विशे-पणके द्वारा महाभारतमें कहीं कहीं मिलता है। परन्तु महाभारतके समय सोनेकी सी रङ्गत श्रधिक पाई जाती थी। युनानियोंने भी लिखा है कि हम लोगोंकी तरह असली गोरे रङ्गके आदमी हिन्दु स्थानमें बहुत हैं।

हिन्दुस्तानके भारती श्रायोंकी ऊँची नाक श्रीर बड़ी बड़ी श्राँखें, निरे किव-वर्णनकी सामग्री नहीं हैं। यह लक्त्रण श्रय भी हिन्दुस्तानकी उच्च जातिवाले लोगोंमें बहुत कुछ देख पड़ता है। इस विषयके, महाभारतके, वर्णन कवि-किंटिपत नहीं हैं। हुएनसांगने भी हिन्दु-स्तानी लोगोंका ऐसाही वर्णन किया है। महाभारतमें श्रनेक स्थलों पर इस बातका उल्लेख है कि भारती आयोंका कृद ऊँचा था। तालवृत्तकी तरह सीधा श्रीर ऊँचा उठा हुआ, यह वर्णन अक्सर श्राता है। वृषस्कन्ध अथवा कपाटवन्त-वर्णन भी बराबर मिलता है। इससे सिद्ध है कि उन्नत कन्धोंवाले और चौड़े सीनेवाले लोग भारती आयोंमें खास तौर पर माने जाते थे। महाभारतके समयमें भारती आयोंके शरीरका ढाँचा और स्रत इस तरहकी थी।

श्रायु । कि कि कि

श्रव भारती श्रायोंकी वड़ी श्रवस्था पर थोड़ासा विचार किया जाता है। शरीरकी स्थिति अच्छी रहती थी, देशमें चीजं सस्ती थीं और इसी प्रकार मध्य-देश तथा पञ्जाबकी हवा निरोगी तथा खुश्क थी। इस कारण यह ठीक ही है कि भारती श्रायोंकी खूब उम्र होती थी। महाभारतमें जिनका वर्णन है वे सभी दीर्घा-युषी थे। तपके बलसे हजारों वर्षको श्रायु-वाले ऋषियोंको यदि अपवादक मान लें, तो भी साफ्र देख पडता है कि साधारण श्रादमियोंकी श्रायु भी बहुत होती थी। युद्धके समय श्रीकृष्ण =३ वर्षके थे श्रीर श्रज्ञनकी श्रवस्था ६५ वर्ष या इससे भी श्रधिक थी । निजधामको जाते समय श्रीकृष्णकी श्राय १०१ या ११६ वर्षकी थी। उस समय श्रीकृष्णके पिता वसुदेव जीवित थे। वे कमसे कम १४० वर्षके तो होंगे ही। युद्धके समय दोणकी अवस्था म् वर्षकी थी और भीष्म तो १०० वर्ष-

के ऊपर रहे होंगे। सारांश यह कि भारत कालमें लोगोंकी उम्र खूब वडी होती थी। महाभारतके समयतक यही हाल था। युनानियोंके प्रमाणसे भी यह बात सिद्ध है। यूनानी इतिहासकार श्ररायनने लिखा है कि हिन्दुस्थानमें १४० वर्षतक लोग जिन्दा रहते हैं। सौ वर्षके उपरकी उम्रवाले बहुत लोग मिलते हैं श्रीर ऐसे लोगोंका एक श्रलग नाम होना भी युनानियोंने लिख रखा है। फिर भी समूची आयुकी मर्यादा १०० वर्ष रही होगी। महाभारतके अनेक उल्लेखें-से ऐसा ही मालूम पडता है। यह नहीं भाना जा सकता कि महाभारतके समय ३०० या ४०० वर्षकी उम्रवाले श्रादमी थे। शान्ति पर्वमें भीष्मने कहा है कि सत अथवा पौराणिक ५० वर्षका हो। इसका यह अर्थ जान पडता है कि ५० वर्षके बाद मनुष्यकी वृद्धि प्रगत्भ हो जाती है श्रीर उसका खभाव शान्त हो जाता है। इसी प्रकार शान्ति पर्वमें कहा है-

ये तु विशतिवर्षा वै त्रिंशहर्षाश्च मानवाः। श्रवागेव हि ते सर्वे मरिष्यन्ति शरञ्झतात्॥ (शान्ति० श्र० १०४.२०)

जो लोग बीस या तीसके भीतर हैं, वे सभी १०० वर्ष पूर्ण होनेके पहले ही मर जायंगे। इस बाक्यसे श्रायुक्ती मर्यादा श्रिधिक से श्रिधिक १२० या १३० वर्षकी समभी जाती थी। यदि इससे श्रिधिक श्रायुक्ती गणना कहीं की गई हो, तो या तो वह श्रितशयोक्ति है श्रीर या फिर श्रपवादक। महाभारत श्रोर यूनानियोंके प्रमाणसे यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि श्राजकलकी श्रपेक्ता महाभारत कालमें श्रीर भारती युद्धके समय भारतीयोंकी श्रायुर्मर्यादा बहुत कुछ श्रिधिक होती थी।

। गण्डम गडह

वर्ण-व्यवस्था, आश्रम-व्यवस्था और शिक्षा।

क्षित्रुले विवेचनसे, भारती-युद्धका समय सन् ईसवीसे ३००० वर्ष पूर्व निश्चित होता है और यह बात देख पड़ती है कि यह युद्ध हिन्दुस्थानके आर्य लोगोंमें, विशेषतः चन्द्रवंशी चत्रियोंमें, हुआ था। इसीके लगभग भारत-प्रत्थकी मल उत्पत्ति हुई और वह अन्थ धीरे धीरे बढ़ता गया; सन् ईसवीसे पूर्व २५० वर्षके श्रागे-पोछे सौतिने उसेही महाभारतका रूप दिया । अर्थात्, महाभारत-प्रन्थमें हिन्दुस्थानकी उस परिस्थितिका पूरा पूरा प्रतिविम्व है जो कि सन् ईसवीसे पूर्व ३०००-३०० वर्षतक थी। ब्राह्मण-कालसे लेकर युनानियोंकी चढ़ाईतककी हिन्दुस्थानकी जानकारी यदि किसी एक प्रनथमें हो, तो वह महाभारतमें ही है। श्रीर कहीं वह मिल न सकेगी। हिन्दु-स्थानका और कोई प्राचीन इतिहास इस समयका उपलंब्य नहीं है। कुछ बातोंका पता ब्राह्मण और सूत्र ब्रादि वैदिक प्रन्थों-से चलता है। पर उनमें जो वर्णन है वह संचिप्त श्रोर श्रधूरा है। महाभारतकी तरह विस्तृत वर्णन उनमें न मिलेगा। इस दृष्टि-से महाभारतका बहुत श्रिधिक महत्व है। इस महत्वका उपयोग प्रस्तृत समालोचना-में कर लेनेकी बात पहले ही लिख दी गई है। इस समालोचनामें ऐसी ऐसी अनेक बातोंका विवेचन करना है कि प्राचीन कालमें हिन्दुस्थानके लोगोंकी सामाजिक स्थिति कैसी थी, यहाँ रीति-रवाज कैसे श्रौर क्या थे श्रोर ज्ञानकी कितनी प्रगति हो गई थी। इसमें यह भी देखना

है कि तस्यक्षानका मार्ग कैसा था श्रीर कितना श्राकान्त किया जा चुका थाः लोगोंके धार्मिक श्राचार-विचार कैसे थे श्रीर नीतिकी क्या कल्पना थी। इन सब बातों पर इस ग्रन्थमें विचार किया जायगा। हिन्दुस्थानवालोंकी समाज-स्थितिका मुख्य श्रक्ष वर्ण-व्यवस्था है। श्रतः इसी वर्ण-व्यवस्थाका श्रक्षमें विचार किया जाना उचित है।

वर्णका लच्छा।

जिस प्रकारकी वर्णव्यवस्था हिन्द-स्थानमें प्रसृत हो गई है, वैसी व्यवस्था. और किसी देश या लोगोंसें, प्राचीन कालमें अथवा अर्वाचीन कालमें, स्थापित होनेकी बात इतिहास नहीं कहता। हिन्दु-स्थानी वर्ण-व्यवस्था हमारे यहाँके समाज-का एक विलक्तण खरूप है। इस व्यवस्था-के असली खरूपको पाश्चात्य लोग नहीं समभ सकते श्रीर उन्हें वड़ा श्रचरज होता है कि यह व्यवस्था इस देशमें क्योंकर उत्पन्न हो गई। हिन्दुस्थानकी वर्ण-ज्यवस्था-के सम्बन्धमें उन लोगोंने अनेक सिद्धान्त किये हैं, परन्तु वे सब गुलत हैं। इन सिद्धान्तोंको स्थिर करनेके लिये महाभारत श्रादि प्रन्थोंकी जितनी जानकारी श्राव-श्यक थी, उतनी पाश्चात्य लोगोंको न थी: इस कारण और भी गड़बड़ हो गई है। इसलिए उनके विचारोंकी श्रोर ध्यान न देकर अब हम यह देखेंगे कि महाभारत-से. श्रीर महाभारतके पूर्वके वैदिक साहित्य तथा बादके मनुस्मृति श्रादि साहित्यकी तुलनासे, क्या निष्पन्न होता है। पहले देखना चाहिए कि वर्ण-व्यवस्था-का अर्थ क्या है। ब्राह्मण, चत्रिय, वैश्य श्रौर शृद्र यही वर्णका सरसरी तौर पर श्रर्थ देख पड़ता है। परन्तु आजकल इतनेसे ही काम नहीं चलता। हिन्दुस्थानमें श्रव श्रनेक जातियाँ हैं श्रीर महाभारतके समय

भी थीं। द्वीपदीके खबम्बरमें जिस समय कर्ण धन्य बाण लेनेके लिए उठा, उस समय द्रौपदीने स्पष्ट कह दिया कि से स्रुतके साथ विवाह न कहँगी। यानी उस समय सूत एक अलग जाति थी और उसका दर्जा घटिया था। मतलव यह कि महाभारतके समय चार वर्णोंके सिवा और श्रधिक वर्ण तथा जातियाँ उत्पन्न हो गई थीं। ये जातियाँ उत्पन्न कैसे हुई ? यह महत्वका प्रश्न है। मेगास्थिनीजने चन्द्र-गुप्तके समय जो प्रन्थ लिख रखा था, उसमें उन दिनों हिन्द्रशानमें सात मुख्य जातियों-के रहनेका कथन है। इसलिए आरम्भमें हमें कोई ऐसा लक्षण थिर कर लेना चाहिए जिससे वर्ण या जातिका मुख्य खरूप माल्म हो। वारीकीसे समाज-व्यवस्थाका निरीक्तण करनेवालेके ध्वानसं यह लत्तण चटपट श्रा सकता है। मेगा-स्थिनीज़ने भी यह लच्चण लिखा है। वह कहता है- "कोई जाति अपनी जातिके बाहर दूसरी जातिके साथ विवाह नहीं कर सकती। अथवा अपनी जातिके रोज-गारके सिवा दूसरा पेशा भी नहीं कर सकती।" अर्थात्, जाति दो वातोंके घेरेमें है। एक बात शादी श्रथवा विवाहकी श्रौर दूसरी रोज़गारकी । इन दोनों बन्धनोंके बिना जातिका पूर्ण रूप ध्यानमें न आवेगा। ये बन्धन, कुछ वातोंमें, अप-वाद रूपसे हिन्दुस्थानमें पुराने ज़मानेमें शिथिल रहते थे। ये शिथिल क्यों श्रीर क्रैसे रहते थे, इसका विचार आगे होगा। जातिका अर्थ उक्त बन्धनोंके द्वारा किये हुए समाजके भाग हैं; अर्थात् न तो एक जातिवाले दूसरी जातिवालोंसे बेटी-व्यवहार न करें श्रौर न दूसरोंका पेशा करने लग जायँ, इसी कारण जातियोंका श्रलगाव स्थिर रहा । सबका धर्म एक था, सब एक ही देश हिन्दुस्थानमें रहते थे

श्रीर सबके नैसर्शिक श्रिप्तकार भी एकसे ही थे: फिर हिन्दुस्तानमें वर्ण-ज्यवस्था कैसे उठ खड़ी हुई श्रीर वह श्रन्यान्य देशोंमें क्यों नहीं हुई? हमें पहले इसी प्रश्नका विचार करना चाहिये।

वर्ण-व्यवस्था पुरानी है।

कुछ लोगोंका यह मत है कि ब्राह्मण लोगोंने, कुछ समय पूर्व, लुचपनसे हुरा-नियोंकी व्यवस्थाका अनुकरण करके हिन्द्रस्थानमें यह व्यवस्था प्रचलित कर दी: श्रौर मनुस्मृति श्रादि अन्थोंमें इस व्यवस्थासे सम्बन्ध रखनेवाले नियम घुसेड दिये: श्रीर मजा यह कि अग्वेदमें भी पीछेसे ऐसा नकली सक मिला दिया जिसमें चात्रवंर्ण्य-सम्बन्धी उल्लेख है। किन्त यह मत बिलकुल भूठा है। जिस पुरुष-सूक्तमें विराट पुरुषके चार श्रव-यवोंसे चार वर्णोंके उत्पन्न होनेकी बात कही गई है, उस स्कका ऋग्वेदमें पीछे से मिलाया जाना सम्भव नहीं । कारण यह है कि ऋग्वेदके प्रत्येक सक्त और सुक्तोंकी संख्या गिनी हुई है और शत-पथ त्रादि बाह्यग्-प्रन्थोंमें वह कह दी गई है। हम पहले सिद्ध कर चुके हैं कि इस अभेद्य रीतिसे ऋग्वेद-ग्रन्थ ब्राह्मण-ग्रन्थीं-के पहले यानी भारती युद्धके पहले ही-सन् ईसवीसे पूर्व ३००० वर्षके लगभग-कायम कर लिया गया था। सारांश यह कि वर्ण-भेदकी कल्पना ब्राह्मणोंने पीछेसे उत्पन्न नहीं कर दी है, वह तो भारतीय श्रायोंके श्रादि इतिहाससे ही चली श्रा रही है। यहीं बात माननी चाहिये। उक मतका खएडन करनेके लिये इतनी दूर जानेकी भी कोई ज़रूरत नहीं । 'वदती व्याघातः'—यानी जो कह रहे हैं वहीं ग़लत है—इस न्यायसे पहले ही यह प्रश होता है कि-"ब्राह्मणोंने वर्ण-व्यवस्था

उत्पन्न की है" इस वाक्यमें ब्राह्मण कहाँसे ब्राक्टे? आर्य लोगोंमें ब्राह्मण, ज्ञिय और वैश्य, ये तीन ही भेद पहले कैसे हो गये? ब्राह्मणोंको ये अधिकार कैसे मिल गये, उनका दबदबा कैसे बढ़ा ? यह प्रश्न ब्रलग ही है। अर्थात् उक्त मत ही गलत है। भारतीय आर्थोंके प्राचीन इति-हासमें ही वर्ण-ज्यवस्थाका उद्गम स्थान हूँ हुना चाहिये।

हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि प्रत्येक समाजमें वर्ण-व्यवस्थाका थोडा बहुत बीज रहता ही है। साधारण बात यह है कि बापका पेशा वेटा करता है : श्रीर श्रिकांश शादी-व्याह वरावरीके नाते-में और एकसा ही पेशा करनेवालोंके वीच हुआ करते हैं। अर्थात एक न एक तरहकी वर्ण-व्यवस्था प्रत्येक समाजमें रहती ही है। भेद यह है कि उसमें ऐसा करनेके लिये साली नहीं रहती। ऐसा सक्रप उत्पन्न होने - बन्धन पडने - के लिये कुछ न कुछ कारण हो जाते हैं। वह कारण समाजके धार्मिक कार्योंके लिए श्रावश्यक विशेष प्रकारकी योग्यता है। श्रनेक लोगोंके इतिहाससे यह बात सम-भमें आ जायगी । धार्मिक कामोंकी व्यवस्था जिनके सपूर्व होती है उनकी पहले एक अलग जाति बन जाती है। ईरानियोंमें भी पहले 'मोबेद' नामकी एक जाति श्रलग हो गई थीं । ज्यू लोगोंमें देवताके पुजारियोंकी जाति श्रलग हुई थी, श्रर्थात इस जातिके लोग लोगोंके साथ शादी-व्याह नहीं करते थे। रोमन लोगोंमें भी, जिन लोगोंको धार्मिक कृत्य करनेका श्रधिकार होता था, वे पेट्रिशियन लोग, अन्यान्य लोगोंके यहाँ वेटी-ज्यवहार नहीं करते थे। सारांश यह कि लोगोंमें धार्मिक व्यवस्थाके सम्बन्धका जाति-बन्धन पहलेपहल होता है, और फिर ग्रागे उसकी स्थिरताके लिए विशेष कारण न हो तो उसका मिट जाना स्पष्ट ही है।

ब्राह्मण और च्चिय।

यही मानना पड़ेगा कि हिन्दुस्तान-में जिस समय पहलेपहल भारतीय आर्य त्राये थे, उससे पहले ही उन लोगों-में इसी प्रकारकी साहजिक सामाजिक व्यवस्थाके कारण जातिवन्धनका बीज उत्पन्न हो गया था। पहले उनमें दो वर्ण उत्पन्न हुए होंगे-ब्राह्मण श्रीर च्त्रिय। आयोंके देवताओंकी स्तुति करना श्रौर देवताश्रोंका यज्ञ करना ब्राह्मणोंका काम थाः तथा युद्ध करना चत्रियोंका काम था। दोनों ही पेशोंके लिये रीतिके व्या-सङ्गकी आवश्यकता थी, इसलिये उनके प्रथम व्यवसायके कारण दो विभाग हो गये। अग्वेदके अनेक उल्लेखोंसे सिद्ध होता है कि ब्राह्मणोंने स्तृति-मनत्र श्रादि याद रखना स्वीकार किया था । युद्धके श्रवसर पर वसिष्ठ, इन्द्र प्रभृति देवताश्रीं-की स्तृति भरतोंके श्रवकल करता है, श्रीर सुदास राजा युद्ध करता है। ऋग्वेदमें यह वर्णन है। विश्वामित्र, भरद्वाज, करव ग्रीर ग्रुङ्गिरस ग्रादि भी इसी प्रकारका काम करके देवताश्रोंको भरतोंके श्रनुकूल सन्तुष्ट करते हैं। सारांश, यह देख पड़ता है कि हिन्दुस्तानमें ऋग्वेदके समय जब भारतीय श्रार्य श्राये, तब उनमें पेशेक कारण दो जातियाँ मौजूद थीं। परन्तु ये जातियाँ उस समय अन्य बन्धनोंसे जकडी न गई थीं, श्रर्थात् न तो उनके श्राचार-विचार विभिन्न थे श्रीर न उनमें बेटी-व्यवहारकी या पेशेकी कोई सख़ ककावट थी। चत्रियों श्रीर ब्राह्मणोंकी बेटियाँ पर-स्पर व्याही जाती थीं; श्रौर चन्द्रवंशी च्चियोंमेंसे कुछ च्चिय लोग अपना पेशा छोड़कर ब्राह्मण हो जाते थे।
महाभारतमें चन्द्रवंशका जो वर्णन है
उससे यह बात स्पष्ट होती है। प्रतीपका बड़ा लड़का देवापि चित्रियका व्यवसाय छोड़कर बनमें तपश्चर्या करने
लगा। उसने एक सूत्र भी बनाया है।
मतिनारके वंशमें करव उत्पन्न हुत्रा था।
वह ब्राह्मण हो गया श्रीर उसके सभी
वंशज ब्राह्मण ही हुए। ये करव लोग
ऋग्वेदके कोई स्कोंके कर्ता हैं।

श्रलवत्ता एक बात देख पड़ती है कि उस समय ब्राह्मण लोग स्वतन्त्र व्यवसाव-का आग्रह कर बैठे थे: अर्थात् उनका यह आग्रह था कि यज्ञ-याग श्रादिकी किया हम लोगोंको ही करनी चाहिये। वेद-विद्याके पढनेका कठिन काम ब्राह्मणीं-ने जारी कर रखा था । यज्ञ यागादिके लिये श्रावश्यक भिन्न भिन्न प्रकारकी जान-कारी श्रीर मन्त्र-तन्त्र उन्होंने सुरिचत रखे थे। ब्राह्मणोंका कर्म कठिन हो गया था और उन्हें अपनी बौद्धिक शक्ति बढ़ानी पड़ी थी। यह बात प्रसिद्ध ही है कि हर एक व्यवसायके लिए आनुवंशिक संस्कार बहुत उपयोगी होता है। अर्थात ब्राह्मणोंके वालक ही स्मरण-शक्तिसे वेद-विद्या ग्रहण करनेके योग्य होते थे। इस-लिये ऐसा आग्रह कोई बड़ी बात नहीं कि ब्राह्मणका वेटा ही ब्राह्मण हो । यह तो अपरिहार्य आग्रह है। किन्तु आरम्भ-में चत्रियोंने ब्राह्म गोंकी यह बात चलने न दी। वसिष्ठ श्रौर विश्वामित्रके वादसे स्पष्ट होता है कि चत्रियोंने इस विषयमें खूब भगड़ा किया । इसके बाद भिन्न भिन्न खरूप रामायण श्रौर महाभारतमें देख पड़ते हैं। परन्तु तात्पर्य सबका एक ही है। ब्राह्म गोंका यह आग्रह था कि बाह्मणुका वेटा बाह्मण हो और च्रियका बेटा जंत्रियः परन्तु विश्वासित्रका यह

श्राग्रह था कि चत्रियके बेटेने यहि श्रपनी बौद्धिक शक्ति वढ़ा ली हो तो उसके ब्राह्मण होनेमें क्या बाधा है? अन्तमें जीत विश्वामित्रकी ही हुई श्रीर वह स्वयं ब्राह्मण हो गया। यही क्यों, फिरतो वह अनेक ब्राह्मण-कुलोंका प्रवर्तक भी हो गया। श्रादिपर्वमें वसिष्ठ-विश्वामित्र-की जो कथा है, उससे यह कथा बहुत प्राचीन कालकी जान पड़ती है। यह कथा सूर्यवंशी चत्रियोंके समयकी और पञ्जाबकी है। वसिष्ठ ऋषिने विपाशा और शतद नदियोंमें प्राण छोड़नेका यल किया क्योंकि विश्वामित्रने उसके सौ वेटोंको मार डाला था । परन्त उन नदियोंने वसिष्ठको इयने नहीं दिया; इसी कारण उन नदियोंके विपाशा श्रौर शतद्र नाम हए (भा० श्रादि० श्र० १७७)। इसी प्रकार एक वर्णन यह भी है कि विश्वा-मित्रने सूर्यवंशी कल्माषपाद राजाका यज्ञ किया था। इस कथासे प्रकट होता है कि यह भगड़ा बहुत प्राचीन कालका है श्रोर यह पञ्जाबमें हुश्रा था। उस समय जो चत्रिय लोग ब्राह्मण कहलानेकी महत्वाकांचा करते थे, वे ब्राह्मण हो सकते थे; परन्तु यह प्रकट ही है कि ऐसे व्यक्ति बहुत ही थोड़े होंगे; श्रीर ब्राह्मणोंका व्यवसाय वेद पढना, एवं यह यागादि किया कराना अत्यन्त कठिन था: इस कारण वह अन्तमें ब्राह्मणीके ही हाथमें रहा।

वसिष्ठ-विश्वामित्रके भगड़ेमें वर्णके व्यवसाय-विषयक बन्धनके एकत्वकी जिस तरह जाँच हो गई, उसी तरह नहुष-श्रगस्तिकी कथामें जातिके एक दूसरे तत्वकी परीचा हो गई। 'ब्राह्मणके व्यवसायको श्रीर लोग क्यों न करें' इसी भगड़ेके जोड़का एक श्रीर प्रश्न यह होता है कि श्रीर जातिवालोंका पेशा

ब्राह्मणसे क्यों नहीं करवा सकते? नहुषने अपनी पालकी में कन्ध्रा लगानेकी सब ऋषियोंको श्राक्षा दी श्रोर जब ऋषिलोग पालकी उठाकर जल्दी जल्दी न चल सके, तब वह उनसे ज़ोर ज़ोरसे सर्प सर्प श्रथात "चलो चलो" कहने लगा । उस समय श्रगस्ति ऋषिने शाप दिया कि 'त् सर्प ही हो जा' श्रौर वह सर्प बनकर नीचे गिर पड़ा (भा० वन० श्र०१८१)। इस कथाका यही तात्पर्य है कि जो लोग बौद्धिक व्यवसाय करेंगे उन-पर शारीरिक मेहनत करनेकी सख्ती न हो सकेगी।

वैश्य और शूद्र।

इस प्रकार ऋग्वेदके समयमें जब प्राचीन आर्य हिन्दुस्थानमें आये तब उन लोगोंमें दो जातियाँ उत्पन्न हो गई थीं, परन्तु श्रभीतक उनमें कड़े बन्धन न बने थे। पञ्जाबमें आकर जब वे श्राबाद हुए, तब सहज ही तीसरा वर्ग उत्पन्न हुआ। देशमें खेतीका मुख्य रोज़गार था, श्रीर बहुत लोग यही पेशा करने लगे। ये लोग एक ही जगह बस गये या इन्होंने उपनिवेश वनाये, इसलिये ये लोग विश् अथवा वैश्य अर्थात् सामान्य कहलाने लगे । ऋग्वेद्में विश् शब्द वरावर श्राता है जिससे प्रकट होता है कि पञ्जाबमें तीन जातियाँ उत्पन्न हो गई थीं। रामायणमें यह वर्णन है कि पहले सिर्फ़ दो जातियाँ थीं: पीछेसे त्रेतायुगमें तीन हो गई। वह वर्णन यहाँ युक्तिसङ्गत जान पड़ता है। सारांश यह कि पञ्जाबमें जब सूर्यवंशी चत्रियोंकी बस्ती हुई, उस समय बाह्मण, चत्रिय श्रोर वैश्य ये तीन जातियाँ उत्पन्न हुई। इसके पश्चात् जल्दी ही दास अथवा मुलनिवासियोंका समा-वेश चौथी शृक्ष जातिमें होने लगा श्रीर

उपरकी तीनों आर्यवंशी जातियोंका नाम त्रैवर्णिक हो गया। फिर यहींसे जातिके कड़े नियमोंके खरूप उत्पन्न होने लगे।

हिन्दुस्थानमें जब आर्य लोग आये तब उनमें जातिबन्धनका थोड़ासा बीज थाः श्रीर ब्राह्मण तथा चत्रिय, ये दो जातियाँ श्रथवा ब्राह्मण्, चत्रिय, वैश्यके व्यवसाय-भेद्से उपजी हुई तीन जातियाँ थी। इसी प्रकारके भेद ईरानी लोगोंमें भी थे, रोमन लोगोंमें भी थे श्रौर जर्मन लोगोंमें भी थे। श्रव वड़े महत्वका प्रश्न यह है कि उन देशोंमें, जाति-भेदको विवाहके प्रतिवन्धका सहारा मिलकर, श्रभेद्य बन्धनीवाली जातियोका वृत्त क्यों नहीं उत्पन्न हो गया, जैसा कि हिन्दुस्थान-में हुआ है। आर्य लोगोंकी सभी शाखाओं-में जाति-पाँतिका थोडा बहुत बन्धन था। तव यह प्रकट ही है कि हिन्द्रस्थानमें ही जाति-बन्धनकी जो प्रबलता बढ़ गई थी उसका कारण यहाँकी विशेष परिस्थिति है। वह परिस्थितिबाहरसे आनेवाले आर्य श्रीर हिन्द्रशानमें रहनेवाले दास या श्रनार्य लोगोंके बीचका महान अन्तर हो है। त्रार्य गोरे थे त्रौर उनकी नाक सुन्दर थी: इसके खिलाफ अनार्योंकी रक्तत काली तथा नाक चपटी थी। उनकी बौद्धिक-शक्तिमें भी बड़ा अन्तर था। दूसरी आर्य शाखाएँ यूरोप वगैरहमें जहाँ जहाँ गई, वहाँ कहीं इस प्रकारकी परिस्थिति न थी। उन देशोंके पुराने निवासी बहुत कुछ श्रार्यवंशके ही थे। वहाँके लोग श्रगर श्रार्य वंशके न रहे हों तो भी रङ्गश्रौर बुद्धि-मत्तामें नवीन श्राये हुए श्रायोंसे ज्यादा भिन्न न थे। जर्मनीमें इस प्रकारकी भिन्नता बिलकुल ही नहीं देखी गई। रोममें अवश्य कुछ थोड़ी सी भिन्नता थी, श्रौर कुछ दिनोतक विवाहकी रोक टोक दोनों जातियोंमें रही, पर वह शीघ ही दूर कर दी गई। यूनान और ईरानका भी यही हाल था। सिर्फ़ हिन्दुस्तानमें ही यह फ़र्क़ इतना ज़बरदस्त था कि दोनों जातियोंका मिश्रण होना असम्भव हो गया श्रीर दोनोंके बीच वाद गुरू हो गया जो अभी-तक नहीं मिटा है। तलसीदासने अपने समयका यह वर्णन किया है-वादहिं शुद्र द्विजनसे, हम तुमसे कल्लु घाटि। जानहि ब्रह्म सो विप्रवर श्राँखि दिखा-वहिं डाँटि ॥" अर्थात् , ब्राह्मणोंसे गृह भगड़ते हैं कि हम तुमसे क्या कम हैं। वे आँखें तरेरकर कहते हैं कि ब्राह्मण तो वह है जो ब्रह्मको जाने। इस तरहका भगडा उसी समयसे चला आ रहा है श्रीर श्रार्य लोगोंमें जो जाति-बन्धन उत्पन्न हुआ, वह इन्हीं लोगोंके कारण और भी कडा हो गया और भिन्न भिन्न अनेक जातियाँ उत्पन्न हो गईं। इसके बादका इतिहास महाभारतसे अच्छी तरह मालम हो जाता है। हिन्द्रशानकी इस विचित्र परिस्थितिके जोडकी परिस्थिति इतिहासमें केवल दक्तिण अफ्रिकामें ही उपजी हुई नजर आती है। वहाँ गोरे रङ्गवाले आयों-का काले नीय्रो लोगों (हवशियों) से सम्बन्ध पड़नेके कारण हिन्दुस्थानकी सी कुछ परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। उससे हम थोड़ा अन्दाज कर सकते हैं।

श्द्रोंके कारण वणोंकी उत्पत्ति।

दिन्दुस्तानमें वर्ण और जाति शब्दोंका परस्पर जो निकट सम्बन्ध हुआ, उसका भी यही कारण है। पाश्चात्य देशोंमें जित और जेताका एक ही वर्ण होनेसे वर्णको कोई महत्त्व नहीं दिया जा सका। यहाँ हिन्दुस्तानमें उनकी रङ्गतमें जमीन-श्चासमानका अन्तर रहनेके कारण रङ्गको जातिका खरूप मिल गया। उनके सम्बन्ध-से आर्य-वंशी लोगोंमें भी रङ्गका थोडा- सा भेद हो गया। वैश्य कृषि-कर्म किया करते थे, इस कारण उनका गोरा रङ्ग बद्त कर पीला हो गया। हवा श्रीर व्यासक्क भेदसे चत्रियोंकी रङ्गतमें भी फ़र्क पड़ते लगा और लाल रङ्ग हो गया। ब्राह्मणोंकी रङ्गत मूलकी आर्य वनी रही, अर्थात है गोरे ही रहे। यह सच है कि इसके लिए कई कारणोंसे अनेक अपवाद उत्पन्न होते हैं. तथापि साधारण नियम यह है कि ब्राह्मण गोरा, चत्रिय लाल, वैश्य पीला श्रीर शृद्ध काला होता है। इसी कारत चार युगोंमें विष्णुके चार रङ्ग बदलनेकी कल्पना हो गई है। यदि काला ब्राह्मण ब्रोह गोरा शद हो तो इस सम्बन्धमें हम लोगे में जो भयद्वर कल्पना है, उसका भी यही कारण है। इस प्रकार चात्रवंगर्य अर्थात रङ्गसे निश्चित चार जातियाँ हिन्दुस्तानां उत्पन्न हो गई। श्रव यहाँ देखना चाहिए कि इनमें विरोध किस तरह बढता गया।

शुक्त शुक्रमें जब आर्य लोग हिन्द स्तानमें आये, तब उनमें तीन ही जातियाँ थीं श्रीर वेटी-व्यवहारमें थोडीसी रोक टोक थी: तथा ब्राह्मणोंको तीनों वर्णोंमेंसे किसीकी बेटी ब्याहनेमें कोई मनाही नहीं थी। फिर यह नियम था कि चुत्रिय लोग ब्राह्मणेतर दो वर्णोंकी वेटियाँ है सकते हैं और सिर्फ वैश्य एक वर्ण यानी वैश्योंमें ही व्यवहार करें। जब चौथा गृह वर्ण समाजमें शामिल हुआ तब समाजमे श्रुद्ध वर्णकी बेटियाँ लेने न लेनेके विषयी वड़े महत्त्वका भगड़ा उपिथत हो गया। अधिकांश लोगोंका साधारण रीतिस उनकी बेटियाँ ब्याह लेनेके विरुद्ध रहनी मामूली बात है। फिर भी वैश्योंका पेश खेती होनेके कारण उनका श्रीर गृहोंकी विशेष सम्पर्क रहता था, श्रीर वैश्यक एक ही वर्णमें विवाह करनेका अधिकार थाः इस कारण उन लोगोंमें

बेटी व्याह लेनेकी रीति यड़े ज़ोरसे चल वड़ी होगी। चत्रियोंमें इनसे कम और ब्राह्मणोंमें तो बहुत ही कम रही होगी। मालूम होता है कि ऐसी स्त्रियोंसे जो सन्तान हुई, उसकी रङ्गत मिश्रित श्रौर वुद्धि कम रही होगी। पुराना नियम यह था कि स्त्री चाहे जिस वर्णकी हो, पर उसकी सन्तानका वहीं वर्ण होता था जो कि पति-का हो, अर्थात् चत्रिय अथवा वैश्य स्त्रीके पेटसे उपजी हुई ब्राह्मणकी सन्तान ब्राह्मण ही मानी जाती थी। जिस समय श्रार्य लोग पहलेपहल श्राये, उस समय ब्राह्मण, चित्रय और वैश्योंके वीच रङ्ग या वृद्धिमत्तामें अधिक अन्तर न था और खान-पान आदिमें कुछ भी फर्क न था। इस कारण ऊपरवाला नियम ठीक ही था। अब प्रश्न हुआ कि श्ट्रोंकी देटियाँ च्याहने लगने पर भी वही नियम रक्खा जाय या क्या किया जाय ?

पूर्वकालमें सचमुच इस प्रकारका नियम था। महाभारतके एक अत्यन्त महत्त्वके श्लोकसे यह बात माल्म होती है। अनुशासन पर्वके ४४ वे अध्यायमें कहा गया है कि ब्राह्मण तीनों वर्णोंकी वेटी ले सकता है और उसको इनसे जो सन्तति होगी वह ब्राह्मण ही होगी।

त्रिपु वर्णेषु जातो हि ब्राह्मणाद् ब्राह्मणो भवेत्। स्पृताश्च वर्णाश्चत्वारः पञ्चमो नाधिगम्यते ॥

यहाँ पर यह नियम बतलाया गया है कि तीनों वणोंकी स्त्रियोंसे ब्राह्मणको ब्राह्मण ही होगा; पर श्रागे चलकर यह नियम बदल गया है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि महाभारतमें ही यह नियम बदला हुशा मिलता है। (भा० श्रनुशासन० श्र० ४८) में, सिर्फ़ दो ही स्त्रियों—ब्राह्मण श्रीर तित्रय-से ब्राह्मण-सन्तितका उत्पन्न होना कहा गया है। मनुस्मृतिमें जो नियम है, वह यही सङ्गुचित नियम है। इससे यह

प्रकट होता है कि पहले नियम कुछ ढीला था। फिर वह सङ्घचित हो गया और महाभारतके समय यानी सौतिके समय दो वर्णोंकी स्त्रियोंसे उपजी हुई सन्तति-का ही ब्राह्मणत्व माना गया। यह नियम चल निकला कि ब्राह्मण या चित्रय जाति-की स्त्रीके पेरुसे उत्पन्न ब्राह्मणकी सन्तति ब्राह्मण मानी जायगी। इसके वाद इसमें भी संशोधन हो गया और याज्ञवल्य स्नादि स्पृतियोमें कहा गया है कि जब ब्राह्मण-को ब्राह्मण छीसे सन्तान होगी, तभी वह वाह्म समभी जायगी। सारांश यह कि अनुशासन पर्वका पहला वचन बहुत करके उस नियमका दर्शक है जो कि उस समय प्रचलित था जब त्रार्य लोग हिन्द-स्तानमें ग्रायेथे। उस समयका तात्पर्य यह था, कि ब्राह्मणको तीनों वर्णोंकी वेटी लेनेका अधिकार है: और उनके गर्भसे उसको जो सन्तान हो वह ब्राह्मण ही है। इसी नियम-का उपयोग करके ब्राह्मण यदि शूद-कन्या-को व्याह ले, तो उसकी सन्तान ब्राह्मण मानी जाय या नहीं ? मत्स्यगन्धाके गर्भ-से पराशर ऋषिके पुत्र ध्यास महर्षि ऐसे उत्पन्न हुए जो ब्राह्मणोंमें श्रत्यन्त वृद्धिमान और श्रेष्ठ थे। क्या इसीका श्चनकरण किया जाय? श्रथवा 'न देव-चरितं चरेत' के न्यायसे व्यास ऋषिके उदाहरणको छोडकर, शूदा स्त्रीसे उत्पन्न सन्तति कम दर्जेकी मानी जाय ? यह प्रश्न बड़े भगड़ेका और वाद-विवादका हुआ होगा। यह सहज हो है कि इसका फैसला अन्तमें शदा स्त्रीके प्रतिकृत हुआ। इतनी भिन्न परिस्थितिके वर्णोंकी सन्तित कभी तेजस्वी नहीं हो सकती। श्रतएव यही तय हो गया कि बाह्मण शूद्र-कन्या-को ग्रह्ण न करें। यह तो महाभारतमें भी कहा गया है कि "कई लोगोंको यह नियम मान्य नहीं।" परन्तु वहाँ यह बात भी कह दी गई है कि बड़े लोग यद वर्णकी स्त्रीमें सन्तान उत्पन्न नहीं करते। जान पड़ता है कि यह विवाद बहुत ही श्रधिक हुश्रा था। शद्रा स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र-को सम्पत्तिका हिस्सा मिले या नहीं? यह प्रश्न भी सामने श्राया श्रीर महाभारत-कालमें ही उसका यह निर्णय कर दिया गया है कि उसे 🔓 श्रंश दिया जाय। परन्तु महाभारतके पश्चात् स्मृति आदि-के समयमें यह तय किया गया कि उसे कुछ भी हिस्सा न दिया जाय। श्रस्तुः शद्रा स्त्रीसे उत्पन्न बेटेकी जातिका अन्तमें ब्राह्मणसे भिन्न तय किया जाना सहज ही था। क्योंकि उन दोनें के वर्ण और वृद्धि-मत्तामें बहुत अधिक अन्तर था। फिर भी कुछ लोग इसके विरुद्ध थे ही। मनु-स्मृतिमें बीज श्रीर त्रेत्रके परस्पर महत्त्व-का बाद बहुत श्रिधिक वर्णित है। शुद्रा स्त्री सेत्र हो श्रीर ब्राह्मण पति बीज हो तो महत्त्व किसे दिया जाय श्रौर कितना दिया जाय ? यह वाद मनुस्मृतिमें बहुत अधिक विस्तृत है। श्रन्तमें ब्राह्मण्से उत्पन्न शृद्रा स्त्रीकी सन्तित न ब्राह्मण मानी गई श्रीर न शुद्रः एक खतन्त्र जाति बनाकर उसका दर्जा भी भिन्न ही रखा गया। श्रनुशासन पर्वके ४= वें श्रध्यायमें इस जातिका नाम पारशव रखा गया है और उस शब्दका अर्थ यह है-

परं शवाद् ब्राह्मणस्यैव पुत्रं। शद्भापुत्रं पारशवं विदुः। शुश्रूषकः स्वस्य कुलस्य स स्यात् स्वचारिज्यं नित्यमथो न जह्यात्॥

"ब्राह्मणके शदा स्त्रीसे उपजे हुए पुत्र-को शवके उस श्रीरका श्रर्थात्, पारशव समभना चाहिए। वह श्रपने कुलकी श्रुश्र्षा करे श्रीर श्रपने नित्य कर्म सेवा-को न छोड़े।" इस भेद-भावके कारण उच्च वर्णमें भी श्रन्य वर्णोंकी वेटी लेनेकी रोक-

टोक धीरे धीरे जगह पाने लगी। यह चत्रिय शुद्रासे विवाह कर ले तो उसके गर्भसे उत्पन्न सन्तान दूसरे वर्णकी सम्भी जाने लगी श्रीर ऐसी सन्ततिका नाम उप पड गया। किन्तु वैश्य वर्णको वेश्य और शद्र दो ही वर्गोंकी बेटी ब्याहनेका अधिकार थाः इसलिये कहा गया है कि दोनोंसे ही वैश्य सन्तान उत्पन्न होती है। परन्त श्रागे किसी स्मृतिकारने इस बातको नहीं माना । महाभारत-कालके पश्चात् यह बात भी न रही। इससे पर्व तो वह रिति थी ही, अतः वैश्य जाति शद्रोंका बहुत कुछ मिश्रण हो गया । इसीसे वैश्योंके श्रार्य होनेमें थोड़ासा सन्हे हुआ और यह तय कर दिया गया कि यदि ब्राह्मण वैश्यकी वेटी ब्याह लेते उसकी सन्तान ब्राह्मण न समभी जायगी वह या तो वैश्य समभी जायगी या श्रंक जातिकी। सारांश यह कि भिन्न भिन्न वर्णीकी वेटियाँ व्याहनेके सम्बन्धमें थोडा थोड़ा विचार श्रोर बन्धन उत्पन्न होते लगा। यह तो हुई अनुलोभ विवाहरे सम्बन्धकी बात । प्रतिलोम विवाहके सम्बन्धमें श्रारम्भसे ही विरुद्ध कटात देख पडता है। यद्यपि श्रारम्भमें उब वर्णकी बेटियाँ व्याह लेनेकी नीचेके वर्णी को मनाही न रही हो, फिर भी शीघ ही रकावट हो गई होगी: क्योंकि ऐसे निन्ध विवाह या सम्बन्धसे उपजी हुई सन्तानका दर्जा बहुत ही हलका माना गया है। चत्रियसे उत्पन्न ब्राह्मण स्त्रीका बेटा स्त जातिका माना गया है श्रीर ब्राह्मण स्त्रीका वैश्यसे उत्पन्न पुत्र वैदेहक माना गया है। ब्राह्मण स्त्रोसे शृदको सन्तान हो तो वह बहुत ही निन्द्य समभी गई है श्रीर वह चाराडाल मानी जाती थी। श्रार्य माती पितासे ही उत्पन होनेके कारण सूत और वैदेह भी वैदिक संस्कारोंके बाहर नहीं

माने गये। परन्तु चाएडाल तो श्रस्पृश्य माना गया है, यहाँतक कि वस्तीमें रहने लायक न समभकर यह बन्धन कर दिया गया कि वह बस्तीके बाहर ही रहे (श्रमु० श्र० ४८)। ब्राह्मण ग्रन्थोंमें भी यह नियम देख पड़ता है। इससे पता चलता है कि उसका प्रचार बहुत प्राचीन काल-से रहा होगा।

यह धारणा बहुत प्राचीन कालसे वली आ रही है कि उद्य वर्णकी वेटियोंके नीचेके वर्णोंकी विशेषतः शुद्रोंकी घर-वाली होनेसे भयद्भर हानि होती है। यह धारणा स्वाभाविक है। जहाँ दो वर्णी-में बहुत फर्क होता है अर्थात् एक तो होता है गोरा श्रीर दूसरा होता है काला, श्रीर जव उनकी सभ्यतामें भी बहुत ही अन्तर होता है अर्थात एक तो होता है अत्यस्त सुधरा हुआ और दूसरा विलकुल श्रज्ञानमें ह्वा तथा बहुत ही श्रमङ्गल • रीतिसे रहनेवाला, वहाँ ऐसे वर्णीका मिश्रण विशेषतः प्रतिलोम मिश्रण (श्रर्थात उच वर्णोंकी स्त्री श्रीर नीच वर्णके पुरुषका मिश्रण) निन्दा समभा जाय तो कोई आश्चर्य नहीं । ब्राह्मण-कालसे लेकर महाभारततक वर्णसङ्करकी जो अत्यन्त निन्दा की गई है उसका यही कारण है। यह समभा जाता था कि वर्ण-सङ्करसे चाएडाल सरीखी नीच सन्तान होती है। इसका कारण यह है कि दो वर्णी-में सभ्यताका स्वरूप श्रत्यन्त भिन्न था। भगवद्गीतामें भी वर्णसङ्करका बहुत भय दिखाया गया है। उसमें सङ्गर होनेका दुष्परिणाम यह बतलाया है कि "सङ्करो नरकायैव कुलघानां कुलस्य च।" यह भी समभा जाता था कि वर्णसङ्कर न होने देनेकी फिक राजाको भी रखनी चाहिये। वर्णसङ्गर न होने देनेके लिये राजा लोग जितना परिश्रम करते थे, प्रजा उनकी

उतनी ही सराहना करती थी। वर्णसङ्कर होना वड़ा पाप माना जाता था और लोग उससे बहुत घृणा करते थे।

वर्णसङ्करका हर।

पआवके कुछ लोगोंकी हालकी परि-स्थितिसे माल्म होता है कि वर्णसङ्करके भयङ्कर प्ररिणाम केवल कल्पना न थे किन्तु प्रत्यत्त थे। कुछ लोग समकते हैं कि—"ब्राह्मण स्त्रीसे उत्पन्न शुद्रके पत्रको चाएडाल माननेकी कल्पना केवल धर्म-शास्त्रकी है, वास्तवमें ऐसी सन्तान चाएडाल नहीं मानी गई है; चाएडाल तो यहाँ के मूलनिवासियों मेंसे बहुत ही नीच श्रीर बुरी स्थितिके लोग हैं।" परन्त शीर्ष-मापनशास्त्रसे श्रव यह बात निश्चित हो गई है कि पञ्जावकी श्रस्पृश्य जातियोंमें चहड जातिके जो लोग हैं उनमें दरश्रसल श्रार्य जातिका मिश्रण है। सम्भव है कि चाराडालोंकी यह जाति, ऊपर लिखी रीतिसे, उत्पन्न हो गई हो। चूहड़ोंके उदा-हरणसे व्यक्त होगा कि वर्णसंकरके डरसे भिन्न भिन्न जातियाँ किस प्रकार उत्पन्न हो गई । प्रतिलोम विवाहके सम्बन्धमें वर्णसङ्करका जो भय दिखाया गया है, उसके कारण श्रागे ऐसे विवाहोंका होना रुक गया होगा; यही नहीं बल्कि अनु-लोम विवाहतक धीरे धीरे घट गये. श्रीर श्रंजुलोम विवाहसे उत्पन्न नई जातियोंने श्रपनेमें ही विवाह करनेका नियम कायम कर लिया।

वर्णसङ्करकी आशङ्कासे उरकर चार वर्ण ब्राह्मण, चित्रय, वैश्य और श्रद्ध अपने श्रपने वर्णमें ही विवाह करने लगे। इस सिद्धान्त पर यह श्राचेप हो सकता है कि ऐसा करनेमें ब्राह्मणीने बड़ा श्रन्याय किया। ब्राह्मणीं श्रीर श्रद्धोंका विघाह-सम्बन्ध होने पर जो सन्तान हो, उसन

दर्जा हलका क्यों माना जाय? सहज ही यह श्राचेप होता है कि परमेश्वरने सुभी लोगोंको एकसी बुद्धि दी है: फिर यह बात भी नहीं है कि सभी ब्राह्मण बहुत बढिया नीतिवाले श्रीर शुद्धाचरणी होते हों; श्राखिर शद्रोंमें भी तो वुद्धिमान, सदाचरणी श्रीर नीतिमान लोग हैं। किसी एक ही जातिके लोगोंने बुद्धि श्रथवा सदाचारका कुछ ठेका नहीं ले लिया है। ब्राह्मणोंमें भी मूर्ख श्रीर दुरा-चारी लोग हैं। तब वर्णभेद वंश पर नहीं, सिर्फ खभावके ऊपर श्रवलम्बित रहना चाहिए। इस तरहके आन्तेप सदा होते रहते हैं श्रीर ये बौद्धों के समय भी होते रहे होंगे । महाभारतमें इस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाला एक महत्त्वपूर्ण श्रास्यान है। वह यहाँ समुचा देने लायक है। नहुष राजाको ब्राह्मणोंके शाप देनेका वर्णन पहले हो चुका है। नहुषके मन पर ब्राह्मणींके द्वद्वेकी खासी धाक जम गई होगी श्रौर सदा यह प्रश्न होता रहा होगा कि 'हमारे श्रागे ब्राह्मण श्रेष्ठ क्यों हैं ?' वन पर्वमें युधिष्ठिरका और सर्प-योनिमें गिरे हुए नहुषका सम्वाद है। यह सम्वाद श्रत्यन्त महत्वपूर्ण है। नहप कहता है—"हे धर्म, मेरे प्रश्नका समुचित उत्तर दो तो मैं तुम्हारे भाईको छोड़ दूँ।" उस समय नहुषने भीमसेनको फँसा रक्वा था। युधिष्ठिरने कहा—"हे सर्प, पूछो; में अपनी समभके श्रनुसार उत्तर दूँगा।" नहुषने पूछा—"ब्राह्मण किसे कहना चाहिये ?" इसका सीधा उत्तर युधिष्टिर-ने यह नहीं दिया कि ब्राह्मण स्त्री-पुरुष-से जो उत्पन्न हो, उसे ब्राह्मण समभी। उन्होंने विलक्षण उत्तर दिया है। उन्होंने कहा कि—"ब्राह्मण तो वही है जिसमें शान्ति, द्या, दान, सत्य, तप श्रीर धर्म हो।" युधिष्ठिरने ब्राह्मण्की पहचान उसके

उच्च स्वभावसे बतलाई, किन्तु यह वाद यहीं समाप्त नहीं हो गया। नहुपने इस पर फिर प्रश्न किया।

चातुर्वगर्यं प्रमाणं च सत्यं चेद् वस् चैविह । शहेष्विप च सत्यं साद् दानम कोध एव च ॥

श्रर्थात् चातुर्वर्ग्य-व्यवस्थाको प्रमाण मानना चाहिये शार सत्य ही यदि ब्रह्म श्रथवा बाह्यएय हो तो श्द्रमें भी तो सत्य, दान, शान्ति श्रादि गुरा देखे जाते हैं। (इसकी क्या गति है ?) युधिष्ठिरने इसका यह उत्तर दिया—"यदि शद्रमें वे लचण हों श्रीर बाह्यणमें न हों तो न तो वह शद्र, शद्र है और न वह बाह्मण, बाह्मण है। जिसमें यह वृत्त यानी आचरण देख पड़े, उसे तो ब्राह्मण समभना चाहिये श्रीर जहाँ न देख पड़े उसे श्रद्ध समिये।" इस पर नहुषने पूछा कि-"यदि वृत्त पर ही तुम ब्राह्मणत्वका फैसला करते हो तो फिर जातिका भगड़ा नाहक है, जब तक कि कृति न हो।" युधिष्ठिरने इसका श्रजव उत्तर दिया है (व० अ०१६०)। जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते। सङ्करात्सर्व-वर्णानां दुष्परीच्येति मे मतिः॥ सर्वे सर्वाखपत्यानि जनयन्ति सदा नराः। वाङ्गेथुनमधो जनम मरणं च समं नृणाम्॥ इदमार्ष प्रमाणं च ये यजामह इत्यपि। तस्माच्छीलं प्रधानेष्टं विदुर्ये तस्वदर्शिनः॥ कृतकृत्याः पुनर्वणां यदि वृत्तं न विद्यते। सङ्करस्तत्र राजेन्द्र बलवान् प्रसमीचितः॥

युधिष्टिरने कहा—"हे सर्प, मुख्य जाति तो श्राजकल मनुष्यत्व है। क्योंकि सब वर्णोंका सङ्कर हो जानेसे भिन्न भिन्न जातियोंकी परीचा ही नहीं की जा सकती में तो यही समभता हूँ। सब वर्णोंके लोग सभी जातियोंमें सन्तान उत्पन्न करते हैं, इस कारस वाणी श्रीर जन्म मरण सभीका एकसा है। इसके सिवा

धियजामहे यह वेदका श्रार्प प्रमाण्हे। इससे सिद्ध है कि तत्वदर्शी लोग शीलको प्रधान मानते हैं।यदि वृत्त अञ्छा न हुआ तो वर्ण वेफायदे हैं, क्योंकि आजकल तो सङ्कर बलवान् देख पड़ता है।" इस उत्तर-का बारीकीसे विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि इसमें वर्णका श्रस्तित्व श्रस्वीकृत नहीं है। वर्णोंका सङ्गर हो जानेके कारण तरह तरहके लोगोंमें भिन्न भिन्न श्राचरण देख पड़ता है। इससे, पहले यदि वर्णसे वृत्त परखा जाता था तो अब वृत्तसे वर्णको पहचान लेना चाहिये। पुरानी धारणा यह थी कि ब्राह्मण वर्णका मनुष्य शीलवान अवश्य होना चाहिये: परन्त वर्णसङ्करके कारण यह भयद्वर गड़वड़ हो गई है कि ब्राह्मणोंमें भी बरे लोग उपजने लगे हैं: तब शीलको प्रधानता देनी चाहिये और जिनका शील उत्तम हैं उन्हें समभ लेना चाहिये।" इस तरहकी युधिष्टिरकी दलील है। इससे वर्णका श्रस्तित्व वेवुनियाद नहीं होता। युधिष्ठिरके भाषणका मतलब यही है कि यह सारी गड़बड़ वर्ण-सङ्करके कारण हो गई है। यू दों में श्रगर भले मनुष्य हों, यू दों में यदि ज्ञान, दान, दया, सत्य त्रादि गुण देख पड़ें तो यह न समभना चाहिये कि पेसे गुण शूद जातिमें भी हो सकते हैं, बल्कि शुद्रोंमें ब्राह्मणींका सङ्कर हो जानेके कारण कुछ श्रद्रोंमें ब्राह्मण जातिके गुण दीखने लगे हैं। ब्राह्मणमें यदि असत्य, करता और अधर्म आदि दुर्गुण देख पड़ें तो यह न समभ लो कि ब्राह्मणोंमें बुरे मनुष्य उत्पन्न हो सकते हैं, बल्कि यह समभो कि ब्राह्मणोंमें श्रद्धोंका सङ्गर हो जानेसे ऐसे दुर्गुण देख पड़ते हैं। सारांश यह कि युधिष्ठिरके जवाबमें माननेसे जातितः श्रस्तित्व इन्कार नहीं किया गया: बल्कि उसके

भाषणसे तो वर्णका श्रस्तित्व ही प्रकट

युधिष्ठिरके भाषणमें वर्ण-सङ्करकी श्राशङ्का पूरी तरहसे सिद्ध होती है। हिन्दुस्थानके आर्योंको वर्णसङ्करका हमेशा जो डर लगा रहता था उसका कारण यही है। वे समभते थे कि वर्ण या वंश ही मनुष्यके स्वभावका मुख्य स्तम्भ है। उनकी यह धारणा थी कि अ्रमुक वर्ण-वालोंका ऐसा ही स्वभाव होता है। वे वर्णके साथ स्वभावका नित्य-साहचर्य मानते थे। यह सिद्धान्त कहाँतक ठीक है, यह दूसरा विषय है। फिर भी यह बात नहीं कि ऐसी धारणा सिर्फ भारतीय श्रायोंकी ही रही हो । श्राजकल यूरोपके श्रार्यतक यही समभते हैं। उनकी दढ धारणा है कि यूरोपियन लोगोंकी जातिकी वरावरी अन्य खएडाँके लोग नहीं कर सकते। यह मान लेनेमें हानि नहीं कि दित्तग् श्रिफिकामें हिन्दुस्तानियों अथवा नीम्रो लोगोंके साथ यूरोपियनोंका जो बर्ताव है, वह इसी कारण है। जर्मन श्रीर फ्रेश्च वगैरह यह बात मानते हैं कि आर्य जातिकी बराबरी श्रीर जातिवाले मनुष्य नहीं कर सकेंगे। इनमें खासकर जर्मन लोगोंका यही श्राचेप है। उन्हें श्रमिमान है कि ग्रूरता श्रौर वुद्धिमानी श्रादिमें जर्मन श्रीर लोगोंसे बहुत चढ़े बढ़े हैं। श्रॅगरेज़ श्रादि जो पाश्चात्य लोग श्रपने श्रापको श्रार्य कहते-कहलवाते हैं, वे सम-भते हैं कि व्यवहारज्ञान, ग्रौर राज-काजके लिये त्रावृश्यक गुण स्रौर व्यापारमें मुका-बलाकर बाज़ी मार ले जानेकी सामर्थ्य श्रार्यवंशमें श्रधिक है; श्रन्य खएडोंके श्रीर श्रन्य जातियोंके लोग इसमें उनकी बराबरी न कर संकेंगे। तात्पर्य, पाश्चात्य देशोंमें अभीतक यही धारणा है कि आर्य-वंशवालोंमें कुछ विशेष सामर्थ्य होती है, श्रीर इस सामर्थ्यसे श्रार्यवंशका नित्य-

भारती आयोंकी नीतिमत्ता।

पाश्चात्य श्रायोंसे भी बढ़कर श्रधिक श्रोर उदार कल्पना भारती श्रायोंको थी । भारती श्रायोंने श्रार्य-छंशियोंको सिर्फ इसलिये उच नहीं माना था कि वे ग्रूर होते हैं, व्यवहार करनेमें चतुर होते हैं, बुद्धिमान होते हैं श्रीर उद्योगी होते हैं; उन्होंने श्रार्यवंशियोंको किसी और सामर्थ्यके कारण भी उचता नहीं दी थी-उचताका कारण उनकी यह कल्पना थी कि आर्य लोग नैतिक सामर्थ्यमें सबसे श्रेष्ठ होते हैं। यहाँतक कि, श्रार्य शब्दका अर्थ भी जो जाति-वाचक था वह बदलकर श्रेष्ट नीतिवाची श्रर्थ हो गया; श्रीर इस श्रर्थमें यह शब्द प्राने ग्रन्थोंमें वरावर त्राता है। वे श्रद्धे श्राचरणको श्रार्य-श्राचरण श्रीर बुरेको श्रनार्य-श्राचरण समभते थे। भग-वहीतामें अनार्यजुष्ट शब्द इसी अर्थमें "स्त्रीणामार्यस्वभावानाम्" श्राया है । (रामायण) कहते समय वे यह मानते थे कि श्रार्य स्त्रियाँ श्रार्य स्त्रभावकी अर्थात प्रतिदेवत होती हैं। सारांश, उनका यह इद निश्चय था कि आर्यवंशवाले जैसे शूरता और वुद्धिमानीमें श्रेष्ठ हैं, वैसे ही नीतिके कामोंमें भी बढ़कर हैं। युधिष्ठिर-ने ब्राह्मणका जैसा वर्णन किया है उसकी श्रपेता नीतिमत्ताका श्रधिक उदात्त चित्र नहीं खींचा जा सकेगा। भारती श्रायोंकी समभमें ब्राह्मण्में सत्य, दया, शान्ति, तप और दान आदि सहण होने ही चाहिएँ। "उक्तानृतऋषिर्यथा" (रामा०) इस उपमासे भी ब्राह्मणोंके सत्यवादित्व-की कल्पना हमारे सामने खड़ी हो जाती है। "जिस ऋषिके मुखसे अनृत भाषण

निकला हो, यह जैसा निस्तेज हो जाता है"-जब कि यह उपमा ली गई है, तब यही मानना चाहिये कि ब्राह्मणोंका सत्य-वादित्व भारती युद्धके समय अथवा रामायण-महाभारतके समय मान्य रहा होगा। ब्राह्मणमें जो गुण बतलाये गये हैं वे गुण ब्राह्मण-जातिके मनुष्यमें सदा रहने ही चाहिएँ। भारतीय श्रायोंकी पेसी ही धारणा थी। जातिके गुण सहज ही स्वभावसिद्ध हैं। श्रगर वे वदल जार तो उसकी जातिमें ही फ़र्क़ पड़ गया होगा। इसी धारणासे युधिष्ठिरने निश्चय कर दिया कि गुएसे जाति परखी जा सकेगी। इसी ढंगकी एक अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण कथा उपनिपद्में है। एक ऋषिके यहाँ सत्यकाम जावाल उपनयन (शिज्ञा प्राप्त करने) के लिये गया। उस समय गुरुने उसका नाम श्रीर जाति पूर्वी। उसने उत्तर दिया—मेरी माँने कहा है कि 'मुक्ते याद नहीं कि तेरा वाप कौन था। उस समय ऋषिने कहा—"(जहाँ हजाएँ श्रादमी भूठ बोलते हैं वहाँ) त सत्य बोलता है, इस कारण मुक्ते निश्चय है कि तू बाह्म एका ही वेटा है।" इस प्रश्नोत्तरसे इस बातका दिग्दर्शन होता है कि प्राचीन कालमें ब्राह्मणोंके सच बोलनेके सम्बन्धमें कितनी उदात्त कल्पना थी । यही नहीं, विक उस समय ब्राह्मण श्रोर सत्यका अत्यन्त साहचर्य समभा जाता था।

भारती आर्य यह समभते थे कि, वर्णका स्वभावके साथ नित्य-सम्बन्ध रहनेके कारण, यदि वर्णमें मिश्रण हो गया तो फिर स्वभावमें मिश्रण श्रवश्य हो जाना चाहिये। वर्णसङ्करका अर्थ वे स्वभाव सङ्कर मानते थे। श्रनेक वर्णनोंसे उनकी यह स्थिर मत माल्म होता है कि उनकी समभसे शद्र जातिका स्वभाव श्रनीय श्रर्थात् बुरा श्रवश्य रहना चाहिए। उन्हें विश्वास था कि म्लेच्छ श्रौर श्रन्य वर्ण-बाह्य जातियाँ दुए होती हैं। ऊपरके वर्णनसे यही देख पड़ेगा कि वर्ण शब्द-का अर्थ वंश करना चाहिये। भारतीय श्रायोंमें वर्णसङ्करके सम्बन्धमें श्रतिशय द्वेष था, इस कारण जातियोंके बन्धनके विषयमें उनका मत अनुकूल हो गया और भिन्न भिन्न जातियाँ विवाह-वन्धनसे वँध गई। यहाँतक कि जातिका बीज भारती समाजमें पूर्णतासे भर गया । ब्राह्मण, त्तत्रिय श्रोर वैश्यके भी खाभाविक धर्म त्रालग त्रालग स्थिर हो गये। भगवद्गीतामें जातियोंके स्वभाव-सिद्ध होनेकी कल्पना है। श्रीर, उसमें स्पष्ट कह दिया गया है कि यह भेद ईश्वरनिर्मित है। 'चातुर्वग्यें मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।' यह भग-वद्गीताका वचन है। इसमें भिन्न भिन्न जातियोंके स्वभाव-सिद्ध भिन्न भिन्न गुण होनेकी वात मान्य की गई है। इसी कारण वंशके भेद अर्थात जातिक भेद (वर्ण = जाति) का बन्धन स्थिर हुआ श्रीर हिन्दुस्तानमें भिन्न भिन्न जातियोंका वृत्त फैल गया।

श्रव यह निश्चय करनेकी इच्छा होती है कि उपर जो युधिष्ठिर-नहुष सम्वाद वर्णित है, वह है किस समयका। युधिष्ठिरने जो यह कहा कि—'इस समय सब वर्णोंके लोग सभी जातियोंमें सन्तान उत्पन्न करते हैं' सो यह किस समयकी बात हैं? महाभारतके पहले जाति-वन्धन बहुत करके सब समय था श्रोर युधिष्ठिरका कथन है कि सब लोगोंमें वर्ण-सङ्गर हो रहे हैं; यह बात किस समयको लच्च करके कही गई है? इसका निश्चय कर लेना बाहिये। यह कटाच बहुत करके बौद्धों पर होगा। बौद्धोंने जाति-पाँतिके भगड़े-को दूर हटाकर सब जातियोंको एक करनेका प्रचार श्रुक्त कर दिया था। यह

वर्णन उसी समयकी स्थितिका होगा।
अथवा, जिस समय चन्द्रवंशी श्रार्य पहलेपहल हिन्दुस्तानमें श्राये उस समय श्रुक्त
श्रुक्तमें वर्णके सम्बन्धमें विशेष परवा नहीं
की गई श्रोर भिन्न भिन्न वर्णवालोंने श्रुद्रों
की स्नियाँ कर लीं; उसीकी श्रोर इस
वर्णनका इशारा होगा। इन दोनों समयोंको
छोड़कर श्रोर कभी जातिक बन्धन ढीले
न पड़े थे। ऊपर जिस सत्यकाम जावालकी बात लिखी गई है, वह छान्दोग्य उपनिषद्में है। वह भी ऊपरवाले समयकी
ही होगी। हम दिखला चुके हैं कि वौद्धकालमें जातिबन्धनका अनादर होनेके
कारण महाभारतके श्रनन्तर बहुत शीध
जाति सम्बन्धके नियम खुब कड़े हो गये।

ब्राह्मणोंकी श्रेष्ठता।

यहाँतक वतलाया गया है कि ऋग्वेद-से लेकर अर्थात् सन् ईसवीके ३००० वर्ष पहलेसे लेकर महाभारत कालतक चातु-र्वएर्यकी संस्था जारी थी श्रीर चार वर्णों-के सिवा उनके मिश्रणसे श्रनेक वर्ण हो गये थे। इस विस्तारका मुख्य वीज यह था कि आर्य वर्णोंकी नैतिक उन्नतिका स्वरूप तो बहुत उच था श्रीर शूद्रों तथा म्लेच्छों-में यह बात न थी। इसमें भी इस विशेष परिश्वितिमें ब्राह्मणोंके श्रादरसे उसे स्थिर खरूप प्राप्त हो गया। महाभारतमें बार वार कहा गया है कि ब्राह्मणोंके सम्बन्ध-में सबके मनमें श्रत्यन्त श्रादर होना चाहिये। इसका यह कारण है कि ब्राह्मणों-की नीतिमत्ता महाभारतमें बहुत ही ऊँचे दर्जेकी वर्णित है। हमें यह देखनेकी कोई श्रावश्यकता नहीं कि सभी ब्राह्मणीने श्रपने श्राचरणको सचमुच उत्तम रीतिसे रचा की थी या नहीं: किन्तु महाभारतमें ब्राह्मणोंके तप, सत्यवादित्व और शान्ति-का जो वर्णन है, उससे तत्कालीन लोगों- की ब्राह्मणोंके विषयमें जैसी समभ थी, वह भली भाँति प्रकट हो जायगी। महा-भारतके स्रादि पर्वमें कएव ऋषिका जैसा वर्णन है, उससे प्रकट है कि ब्राह्मणोंने वेद-विद्या पढ़ने श्रीर इन्द्रिय-दमन कर तप करनेको संसारमें श्रपना कर्तव्य मान रक्बा था। वसिष्ठ श्रौर विश्वामित्रके भगड़ेके वर्णनसे भी वह भेद खुल जायगा जो ब्राह्मए श्रीर चत्रियके बीच मौजूद था। इन्द्रिय-दमन,शान्ति श्रौर तप करना, ब्राह्मणोंके मुख्य कर्तव्य माने जाते थे। विश्वामित्रने वसिष्ठकी कामधेन हर ली: तब भी वसिष्ठको कोध नहीं श्राया। विश्वामित्रने वसिष्ठके कल सौ वेटोंको मार डालाः फिर भी वसिष्ठने ब्रह्मदग्ड नहीं उठाया। विश्वांमित्रकी स्थिति इसके विपरीत दिखलाई गई है। उसकी शान्ति बातकी बातमें डिग जाती थी। सैंकड़ों बरसोंतक तो उसने तपस्या की, पर मेनकाको देखते ही वह कामके वशमें हो गया । यद्यपि इस प्रकार शान्ति श्रीर इन्द्रिय-दमन वार वार खरिडत हुआ, तथापि उसने ब्राह्मएय-प्राप्तिके लिये बार बार प्रयत्न किया। अन्तमें जब शान्ति और इन्द्रियजय पर उसका श्रिवकार हो गया तब वह तत्काल ब्राह्मण हो गया। महा-भारतमें ऐसी ऐसी श्रनेक कथाएँ हैं। जरत्कारु ऋषिने, केवल तप पर ध्यान देकर, विवाह करनेका विचार छोड दिया था। परन्त पितरोंकी श्राज्ञासे एक बेटा होनेतक गृहस्थाश्रममें रहकर, पुत्र हो जानेके पश्चात्, गृहस्थीसे त्रलग होकर उसने तपस्या की । इन सब कथाश्रोंसे प्रकट होता है कि, युधिष्ठिरने ब्राह्मणुके जो लच्चण बतलाये हैं वे शान्ति, दया, दान, सत्य, तप श्रौर धर्म श्रादि गुण ब्राह्मणमें सचमुच थे। उक्त गुणोंके कारण लोग ब्राह्मणोंको सिर्फ ब्रादरकी ही दृष्टिसे न

देखते थे, बल्कि तप-सामर्थ्यके कारण ब्राह्मणोंमें वे विलच्चण शक्ति भी मानते थे। स्वभावतः लोगोंकी यह धारणा हो गई थी कि, वसिष्ठकी तरह नाना प्रकार. के सुख-साधन केवल श्रपनी इच्छासे श्रपने लिये नहीं, किन्तु श्रीरोंके उपयोगके लिये, उत्पन्न करनेकी शक्ति ब्राह्मणोंमें है। इतिहासके जमानेमें भी कई बार देखा जाता है कि सदाचार श्रीर तपमें कुछ श्रद्भुत सामर्थ्य है। फिर प्राचीन कालमें उसके सम्बन्धमें उससे भी श्रधिक कल्पना रही हो तो कोई आश्चर्य नहीं। वसिष्ठका प्रभाव देखकर विश्वामित्रने श्राखिर यही कहा—"धिग्वलं चत्रियवलं ब्रह्मतेजीवलं वलम् ।" श्रस्तः इस प्रकार सदाचार, इन्द्रिय-दमन, शान्ति और संसारसे विराग श्रादि गुणोंसे ब्राह्मणोंका श्राध्यात्मिक तेज सहज ही बढ़ता गया श्रीर उनके विषयमें लोगोंका पूज्य भाष हो गयाः सब वर्णो पर ब्राह्मणोंकी श्रेष्ठताकी छाप लग गई: श्रीर इसी कारण वर्ण विभागके लिये एक प्रकारसे अधिक सहायता मिल गई।

चातुर्वर्ण्यकी ऐतहासिक उत्पति।

हिन्दुस्तानके प्राचीन कालसे पेतिहासिक रीति पर विचार करते समय अपर किये हुए विवेचनके सारांशसे पाठक इस बातकी कल्पना कर सकेंगे कि वर्ण-व्यवस्थाकी उत्पत्ति क्योंकर हुई जिस समय हिन्दुस्तानमें आर्य लोग पहले पहल आये, उस समय उनमें ब्राह्मण और ज्ञित्व, ये दो हो गये थे। वेद-विद्या पढ़ कर यञ्च-याग आदिके समय ऋत्विजकी काम करनेके कारण ब्राह्मणोंको बड़प्पत मिला और उनकी स्वतन्त्र जाति बन गई। ब्राह्मणोंके ये काम कठिन थे। विश्वामित्र वाली कथासे पकट होता है कि उस

समय यह जाति अभेद्य न थी; अर्थात्, श्रीर लोग चत्रिय जातिवाले, इच्छा ब्रीर सामर्थ्य होने पर, ब्राह्मण धन सकते थे। पञ्जाबमें आयोंकी वस्ती हो जाने पर जिन्होंने खेती करना शुरू कर दिया, उनकी श्रापही एक अलग जाति हो गई। वह विश या वैश्य है। पञ्जाबमें इस प्रकार भिन्न भिन्न रोजगारोंके कारण ब्राह्मण, जनिय श्रीर वैश्य तीन जातियाँ हो गई । किन्त अभीतक तीन वर्ण न थे। तीनों जातियों के लोग श्रार्य ही थे श्रीर उनका वर्ण भी एक ही था; अर्थात् वे गोरे थे। इनका तीनों भिन्न जातियोंमें परस्पर वेटी-व्यव-हार होता थाः अर्थात् बहुधा श्रजुलोम रीतिसे ब्राह्मण तीनी वर्णीकी बेटियाँ लेते थे श्रीर चत्रिय दो वर्णीकी। इसके श्रनन्तर धीरे धीरे हिन्दुस्तानमें श्रायोंकी बस्ती बढ़ने लगी और फिर चन्द्रवंशी आर्य भी श्रा गये; गङ्गा-यमुनाके प्रदेशमें उनके राज्य स्थापित हो गये। उस समय श्रायों-की समाज-व्यवस्थामें हिन्दुस्तानके मल-निवासियोंकी पैठ हो गई श्रीर उनका उपयोग साधारणतः सब प्रकारके दास-कर्ममें होने लगाः श्रौर शद्र यानी तीनीं जातियोंकी शुश्रुषा करनेवाली चौथी जाति यन गई। धीरे धीरे ऊपरकी जातिवाले श्रदा स्त्रियोंको प्रहण करने लगे। श्रव पहींसे वर्णकी उत्पत्ति हुई। आर्य जाति-वालीका रङ्ग गोरा श्रीर शुद्र जातिवालीका रङ्ग काला था। इस कारण वर्ण (रङ्ग) को जातिका स्वरूप प्राप्त हो गया। पाधात्य देशोंमें भी जिस समय श्रायं पाधात्योंका नीयो लोगोंसे सम्बन्ध हुया, उस समय कलर अथवा वर्णको जातिका सक्प प्राप्त हो गया। इसी प्रकार वैदिक-कालमें कृष्ण-वर्ण ग्रुद्रोंके सम्बन्धसे वर्ण अर्थात् जातिका भेद उपजा। फिर यह भगड़ा खड़ा हुआ कि शद्भा स्त्री प्रहण

की जाय या नहीं। इसके पश्चात् गृहा स्त्रोकी सन्तानका दुर्जा कम माना गया श्रीर इस कारणसे श्रीर भी भिन्न भिन्न जातियाँ उत्पन्न हो गईं। श्रायोंकी सभ्यता श्रोर बुद्धिमत्ता भी शृद्रोंकी बुद्धि श्रोर रहन-सहनसे उश्च थी, इस कारण शूद्रा स्त्री-से उत्पन्न सन्ततिको घटिया माननेका रवाज निकला; तथा उग्र, पारशव श्रादि जातियाँ वन गई। वैश्य यदि श्रदा स्त्रीको ग्रहण कर लेते थे तो उनकी सन्तति वैश्य ही मानी जाती थी, इस कारण वैश्योंके रङ्गमें वहुत फ़र्क़ पड़ गया श्रौर वैश्य-वर्ण पीला माना गया। चत्रियोंके रङ्गमें भी ऐसा ही फ़र्क पड़ता गया और उनकी रङ्गत लाल समभी गई । परन्त इन वर्णों-रङ्गों-का यह मोटा हिसाब है। यह बात नहीं कि इसके श्रपवाद न हो।

सबसे मुख्य बात यह है कि श्रार्य जातिवालोंके श्रीर शृद्ध जातिवालोंके वर्ण (रङ्ग) श्रीर संस्कारोंमें जैसा फुर्क था, वैसा ही फर्क नीतिमत्तामें भी था: श्रौर श्रायोंकी यह धारणा बहुत ही उदात्त थी। उन्होंने जेता (विजयी) होनेके कारण ही वडप्पनको न हथिया लियाः बल्कि इसका कारण उनकी यह कल्पना थी कि हम नीतिमें भी शुद्रोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। श्रीर, उनका श्राचरण भी सचमुच उसी प्रकार-का था। वे आयोंको सब अच्छे गुणोसे यक और अनायोंको बुरे गुणांसे युक्त पुरुष समभते थे। आर्य शब्दका बहुत कुछ अर्थ वदल गया और उसका सम्बन्ध नीतिमत्तासे जुड़ गया । इसी कारण श्रायोंसे श्रनायोंका सम्बन्ध श्रनिष्ट समभा गया। वे समभते थे कि इससे नीतिमें वर्ण-सङ्गरके भी बद्दा लग जायगा। सम्बन्धमें उन्हें जो त्राशङ्का थी, उसका कारण यही था कि आर्य वर्णके लोग नीति- में उच थे: श्रुद्र वर्णसे यदि उनका सङ्गर हो तो उनकी सन्तान श्राचरणमें भी नीच होगी। इसलिये यह नियम हो गया कि ब्राह्मण, चत्रिय श्रीर वैश्य, श्रुद्रा स्त्रीको ग्रहण न करें। इस नियमके वन्धनकी म्युनाधिकताके कारण ब्राह्मण, चत्रिय श्रीर वैश्योंमें भी दिन पर दिन श्रधिक भेद बढ़ता गया । ब्राह्मणोंका ब्राचरण श्रत्यन्त श्रेष्ठ था, इस कारण समाजमें उनके प्रति श्रादर वढ़ने लगा । ब्राह्मणोंकी शान्ति, उनका तप श्रीर संसारसे उनकी विरक्ति श्रादि गुणोंने उनके वर्णको श्रेष्ट कर दिया । इस प्रकार चातुर्वर्ग्यकी पेतिहासिक उत्पत्ति देख पड़ती है। ब्राह्मण, चत्रिय, वैश्य और शूद्र, चारी वर्ण, श्रानुवंशिक स्वभावके कारण उत्पन्न हुए श्रीर उनमें प्रतिलोम विवाह पर तो खास नजर रक्वी गई। ब्राह्मण स्त्रीकी शद्र पतिसे उत्पन्न सन्तान श्रत्यन्त निन्द्य समभी जाकर चाएडालोंमें मानी गई।इसी प्रकार चत्रिय स्त्रीको शद्ध प्रवसे उपजी हुई सन्तति धर्मवाह्य निषाद मानी गई। ऊपरके तीन वर्णोंमें प्रतिलोम विवाहसे उत्पन्न सन्तान भिन्न जातिकी तो मानी गई, परन्तु ऊपर बतलाई हुई शूद्र सन्ति-की तरह धर्मवाह्य नहीं समभी गई। इस प्रकार वर्णों श्रीर भिन्न भिन्न जातियोंकी उत्पत्तिका पता ऐतिहासिक रीतिसे मिलता है। श्रब यह देखना है कि सहा-भारतमें वर्णों की कैसी उपपत्ति बतलाई है: श्रीर फिर ऊपर लिखी हुई उपपत्तिके साथ उसका मेल मिलाया जायगा।

महाभारतका सिद्धान्त।

शान्ति पर्वके १८६ वें श्रध्यायमें वर्णन किया गया है कि—"ब्रह्माने पहले ब्राह्मण ही उपजाये, श्रीर फिर उनको खर्ग-प्राप्ति होनेके लिये उसने सत्य, धर्म, तप, वेद,

श्राचार श्रीर पवित्रताको सिरजा। इसके पश्चात् मनुष्योंके ब्राह्मण, चत्रिय, वैश्य श्रीर शद्भ वर्ण तथा सत्वादि गुणोंसे युक्त अन्य प्राणिवणोंके वर्ण उसीने उत्पन्न किये। ब्राह्मणोंका वर्ण (रङ्ग) शुभ्र है, चित्रयोका लाल. वैश्योंका पोला और शृद्रोंका काला होता है।" यह कहकर एक शङ्का खडी कर दी है कि—"ब्राह्मण त्रादि चार वर्णों में परस्पर जो भेद है, उसका कारण यदि श्वेतादि वर्ण (रङ्ग) हों तो फिर सभी वर्ण सङ्घीर्ण हैं; क्योंकि प्रत्येक वर्णमें भिन्न भिन्न रङ्गांवाले श्रादमी मिलते हैं। सिर्फ रङ्गसे ही वर्ण-भेद नहीं माना जा सकता और कारणोंसे भी वर्णमें भेर नहीं माना जा सकता: क्योंकि ब्राह्मण श्रादि सव वर्णों पर काम, कोघ, भय, लोभ, चोभ श्रौर चिन्ताका एकसा ही श्रसर है। फिर वर्ण-भेद रहनेका चा कारण है ? ब्राह्मण शादि सभी वर्णवालीं के शरीरसे पसीना, पेशाव, मल, कफ, पित्त श्रीर एक एक ही सी रीतिसे वाहर निकलते हैं: फिर चर्ण भेद माननेकी ज़रू रत?" भूगने इसका यह उत्तर दिया है—"सारा संसार पहले ब्राह्मण ही था किन्त कर्मके अनुरोधसे उसे धर्णका स्वरूप प्राप्त हुआ। ब्राह्मणोंमें जो लोग रजोगुणी थे, वे विषय भोगनेकी पीति, क्रोध करनेकी आदत और साहस-कर्मक प्रेमके कारण ज्ञिय हो गये। रज श्रौर तमके मिश्रणके कारण जो ब्राह्मण पशु पालन श्रीर खेतीका रोजगार करने लगे, वे वैश्य बन गये श्रीर जो तमोगुणी होते के कारण हिंसा तथा असत्य पर आसक हो गये तथा मनचीते कामों पर उप जीविका करने लगे, वे शुद्ध हुए । मत लब यह कि कर्मके योगसे एक ही जातिके भिन्न भिन्न वर्ण हो गये"। इस विवेचनमें वर्णकी उपपत्ति सत्व, रज और तमसे लगाई गई है। इसका भी तारपर्य ऊपरवाली ऐतिहासिक उपपत्ति-से मिलता-जुलता है। सत्त्वका रङ्ग सफ़ेद, रजका लाल और तमका काला होता है। रज श्रीर तमके मेलका रङ्ग पीला होता है। सत्त्व-रज-तमके काल्पनिक रङ्गोंके आधार पर वर्णोंकी कल्पना की गई. है: फिर भी उसमें स्वभाव-भेदकी श्रसल बात छूटने नहीं पाई। ब्राह्मण सत्त्वशील होते हैं, ग्रद्र तमोयुक्त होते हैं श्रीर ज्ञिय रजायुक्त रहते हैं, इत्यादि वर्णनोंमें वर्णो-के स्वभाव-भेदका अस्तित्व मान्य किया गया है। इसमें दो वंशोंकी विभिन्न नीति-मत्तासे ही उनके उच्च-नीच भाव निश्चित करनेका प्रयत्न किया गया है। इसमें यह बात मान्य की गई देख पड़ती है कि श्रसलमें एक ही जाति थी: श्रागे चलकर भिन्न भिन्न स्वभावोंके श्रनुसार वंश अर्थात वर्णका भेद पड गया। वर्णके लिये गुण स्वाभाविक हैं, यह सिद्धान्त विशेषतः ब्राह्मए और ग्रुट वर्णोंके लिये ही उपयुक्त होगा। एक सत्त्वप्रधान था तो दूसरा तमःप्रधान । युधिष्टिरके उत्तर-में ब्राह्मणमें जो सत्य श्रीर तप श्रादि गुण कहे गये हैं, वे ही यहाँ भी कहे गये हैं।

विवाह-बन्धन।

चातुर्वरार्यकी उत्पत्ति कैसी ही क्यों न हो, इसमें सन्देह नहीं कि सहा सारत-के पूर्वकाल से हिन्दुस्तानमें चातुर्वरार्य-व्यवस्था थी। श्रोर यह भी मान्य करना होगा कि इस व्यवस्थाका मूल बीज जो रक्षका फ़र्क़ या सभ्यताका भेद है, वह महाभारतकालीन स्थितिमें न था। क्योंकि ऊपर शान्ति पर्वका जो श्रवतरण दिया गया है, उसीमें यह बात मानी गई है कि सब वर्णोंमें सभी रक्ष पाये जाते हैं श्रोर काम-कोध श्रादिकी प्रवलता भी सब

जगह है। परन्तु इन दोनों वातोंका थोड़ा-बहुत खरूप महाभारत-कालमें भी स्थिर रहा होगा। विनां इसके ब्राह्मणोंके विषयमें पूज्य बुद्धि स्थिर न रही होती। खैर: इस वातको त्रलग रखकर यह मान्य करना चाहिए कि इन वर्णोंमें परस्पर वेटी-व्यवहार करनेका बन्धन महाभारत-के समय मौजूद था। ब्राह्मण, चत्रिय, वैश्य श्रोर गृद्रतक साधारण रीति पर, अपनी ही जातिमें विवाह करते थे। मेगा-स्थिनीज़ने इस समयका जो वर्णन किया है, उससे भी यही वात माल्म होती है। वह कहता है-"ये जातियाँ श्रापसमें ही विवाह करती हैं। सिर्फ़ ब्राह्मणोंको उच्च वर्ण होनेके कारण, सव जातिकी स्त्रियाँ ब्रहण करनेकी खतन्त्रता है।" सम्भव है, उसकी वह जानकारी अपूर्ण हो, और ज्ञत्रिय तथा वैश्य भी अपनेसे नीची जातियोंको स्त्रियाँ ग्रहण करते रहे हों। परनत समस्त प्रमाणों पर विचार करनेसे स्पष्ट होता है कि महाभारतके समय ब्राह्मण लोग ऐसे अनुलोम विवाह प्रत्यच किया करते थे श्रौर श्रनु० पर्वके ४४ वें श्रध्यायमें स्पष्ट वचन भी है। पूर्व समयमें ब्राह्मणकी तीनों वर्णोकी स्त्रियों-से उत्पन्न सन्तान ब्राह्मण मानी जाती थीं: किन्तु श्रागे फिर यह नियम सङ्कचित होता गया श्रोर महाभारतके समय ब्राह्मणी तथा चत्रिया स्त्रीसे सन्तान ब्राह्मण मानी जाती थी। विलोम श्रीर श्रनुलोम सम्बन्धोंके कारण कुछ तो धर्मबाह्य श्रीर कुछ शुद्धाचारयुक्त जातियाँ वन गई थीं। उनमें श्रपनी श्रपनी जातिमें ही विवाह होते थे। विश्वामित्र-के उदाहरणसे देख पड़ता है कि प्राचीन कालमें नीच वर्णसे उच्च वर्णोमें जानेका रवाज था । किन्तु महाभारतके समय यह बात न रही होगी: क्योंकि विश्वामित्र- के सम्बन्धमें अनुशासन पर्वके तीसरे और चौथे अध्यायमें एक नधीन कथा है। वह कथा खास इसी बातको दर्शाती है। युधि-ष्ठिरने श्रचानक यह प्रश्न किया-"हे भीष्म, यदि त्तत्रिय, वैश्य श्रोर शृद्को ब्राह्मस्य दुर्लभ है तो फिर विश्वामित्र ब्राह्मण कैसे वन गये ? विश्वामित्रका श्रद्धत प्रताप है। न्तत्रिय होकर भी वे ऐसे ऐसे काम क्योंकर कर सके ? अन्यान्य योनियों में प्रवेश किये बिना ही इसी देहसे उन्हें ब्राह्मएय-प्राप्ति कैसे हो गई ?" भीष्मने इसका जो उत्तर दिया है, उसमें यह कथा है कि भृगु ऋषिके पुत्र ऋचीकको गाधिकी वेटी ब्याही थी। गाधिके बेटा न था। तब गाधिकी स्त्री-ऋचीककी सास-ने ऋचीकसे माँगा। इधर ऋचीककी खीने भी पत्र माँगाः तब ऋचीकने दोनोंको मन्त्रित चर दिया। अपनी स्त्रीको तो ब्रह्म-तेजसे श्रमिमन्त्रित चरु दिया श्रौरसासको जात्र-तेजसे मन्त्रित करके चरु दिया। उन मा-बेटीने अपना श्रपना श्रदल बदलकर खा लिया । इस कारण अरचीककी स्त्रीसे चत्रियांशी ब्राह्मग परश्राम जनमे और गाधिकी ब्राह्मतेज-युक्त विश्वामित्र हुए। ब्राह्मण-वंशमें चत्रियोंका पराक्रम करनेवाले परशुराम कैसे उपजे और चत्रियके घर ब्राह्मणका पराक्रम करनेवाले विश्वामित्र क्योंकर हुए, इन दोनों बातोंका खुलासा यहाँ हो गया। यह खुलासा पीछेसे किया हुआ जान पड़ता है। पूर्वकालमें चत्रियसे ब्राह्मण बन जानेके कुछ उदाहरण हम श्रारम्भमें दे ही चुके हैं; परन्तु श्रागे चलकर यह चाल बन्द हो गई होगी। साफ देख पड़ता है कि महाभारतके समय अन्य जातिका मञ्जूष्य ब्राह्मण न हो सकता था। न सिर्फ़ यही, किन्तु न तो वैश्य इत्रिय हो सकता था और न शुद्र

वैश्य वर्णमें दाख़िल हो सकता था। को जाति अथवा वर्ण अपना वर्ण या जाति न छोड़ सकती थी। कमसे कम चार का तो अभेद्य हो ही गये थे और उनके सङ्गरसे उपजी हुई जातियोंका भी यही हाल था। इससे समाजमें एक तरहके भगड़का खरूप स्थिर हो गया था सही, तथापि ब्राह्मण वर्णको श्रपनेसे नीचेके तीनों वर्णीकी स्त्रियाँ ग्रहण करने का अधिकार था। इससे प्रकट है कि चत्रियोंको नीचेके दो वर्णोंकी स्त्रियाँ ग्रहण करनेका श्रिधिकार रहनेसे समाज्ये पूरी पूरी विभन्नता न थी। इसके सिवा शुरू शुरूमें ब्राह्मणोंकी, चित्रय और वैश्व कियोंसे उत्पन्न सन्तान भी बाह्मण मानी जाती थी। विरोधको घटानेके लिये यह वात अनुकूल थीः किन्तु महाभारतके समयमें ही थोड़ासा सङ्कोच करके तयका दिया गया कि ब्राह्मणकी, ब्राह्मणी और चात्रिया स्त्रीसे उत्पन्न सन्तान ब्राह्मण होगी। जो सन्तान वैश्य स्त्रीसे हुई उस की जाति भिन्न हो गई।

शान्ति पर्वके २४६ वें अध्यायमें वे सव जातियाँ गिनाई गई हैं जो महाभारत के समय श्रस्तित्वमें थीं। मुख्य वर्ण चार थे श्रोर उनके सङ्कर श्रथवा मिश्रणके कारण श्रधिरथ, श्रम्बष्ट, उग्र, पुल्कस, स्तेन, निषाद, स्त श्वपाक, मगध, त्रायोगव, करण, वात्य चाएडाल श्रादि प्रतिलोम श्रीर श्रनुलोम विवाहसे उत्पन्न जातियाँ वतलाई गई हैं। इसी श्रध्यायमें इस प्रश्नका भी निर्ण्य कर दिया गया है कि जातिकी हीनता कर्म पर श्रवलम्बित रहती है ग उत्पत्ति पर । साफ़ कहा गया है कि कर्म श्रोर उत्पत्ति दोनों कारण मुख्य हैं। "यदि किसीके हिस्सेमें हीन जाति श्रौर हीन कर्म दोनों श्रा गये हैं।, तो वह जातिकी परवा न करके हीन कर्मका त्याग कर दे। वेसा करनेसे उसकी गणना उत्तम पुरुषोमें होने लगेगी। इसके विपरीत, यदि जाति तो उच्च हो परन्तु कर्म हो हीन, तो उस मनुष्यको हीनता प्राप्त होती है।" तात्पर्य यह है कि यहाँ कर्मकी प्रशंसा योग्य रीतिसे की गई है, परन्तु साथ ही जाति की जन्मसिद्धता भी मान्य की गई है। यहाँ पर प्रश्न किया है कि—"अनेक ऋषि हीन जातिमें उत्पन्न होकर भी श्रेष्ठ वर्णमें कैसे पहुँच गये ? श्रपने ही जन्ममें उत्तम वर्ण कैसे पा गये ?" इसका उत्तर इसी अध्यायमें है कि-"मुनियोंने अपने तपके सामर्थ्यसे मनमाने चेत्रमें वीजारोपण करके श्रपनी सन्तानको अधित्व पर गर्इंचा दिया।" अर्थात् महाभारत-प्रशेता यह कहते हैं कि प्राने ऋषियोंका उदाह-रण देना न्याय्य नहीं है। सारांश यह है कि सौतिके समय वर्ण और जातियाँ श्रमेद्य हो गई थीं: श्रीर ब्राह्मण श्रादि वर्णीमें उत्पन्न होनेवाले ही अपने अपने उत्पादक बापके वर्णके माने जाते थे।

पेशेका बन्धन।

इस प्रकार यहाँतक वर्ण-व्यवस्थाके प्राचीन सकरण पर विचार किया गया। इस वातका भी विचार किया गया कि विवाहके कौन वन्ध्रन किस प्रकार उत्पन्न हुए; श्रारम्भमें, वैदिक कालमें, वर्ण-व्यवस्थाका कैसा सकरा रहा होगा; तथा सौतिके समय श्रर्थात् महाभारतके समय उसकी क्या दशा थी। श्रव इस वर्ण-व्यवस्थाका दूसरा पहलू देखना है श्रीर इस बातकी खोज करनी है कि किस वर्णको कौन कौन व्यवसाय करने का श्रधिकार श्रथवा स्वाधीनता थी। यह तो पहले ही लिखा जा चुका है कि जाति के मुख्य वन्ध्रन दो हैं। जिस श्रकार जाति

के बाहर विवाह करनेकी मनाही थी. उसी प्रकार यहं भी नियम था कि जातिका पेशा छोडकर दसरा पेशा न करना चाहिये। तब, प्रत्येक जातिको लिये कौन पेशे मुक्रिर थे श्रीर उनके लिये कोई अपवाद भी थे या नहीं,-इस सम्बन्धमं विचार करनेसे श्रच-रज होता है कि जो श्रपवाद विवाहके सम्बन्धमें था वही पेशेके सम्बन्धमें भी था। यह कड़ा नियम था कि कोई वर्ण, श्रापत्कालमें, श्रपनेसे नीचे वर्णका कोई व्यवसाय कर ले: यानी श्रमुलोम व्यवसाय कर ले। पर वह श्रपनेसे ऊपर-वाले वर्णका व्यवसाय न करे अर्थात् प्रतिलोम व्यवसाय न करे। चारों वर्णोंके व्यवसाय महाभारतमें भिन्न भिन्न खलोंमें कथित हैं। संचेपमें वे यों हैं; - ब्राह्मण्के छुः काम थे। पठन-पाठन, यजन-याजन, दान-प्रतिग्रह । इससे ब्राह्मण पर्कमौंका श्रिधिकारो कहा जाता था। चंत्रियके लिए यजन, श्रध्ययन श्रीर दान करनेकी स्वाधीनता थीः उसका विशेष कर्म प्रजा-पालन और युद्ध था। वैश्योंको भी उक्त तीन कर्म करनेका अधिकार था और उनके लिए तीन विशेष काम-फृषि, गोरचा श्रीर वाणिज्य थे। शृद्धीका काम सिर्फ़ एक हो—तीनों वर्णोंकी शुश्रुषा करना था। उनके लिए अध्ययन, यजन श्रीर प्रतिग्रह बन्द थे। यहाँतक कि शृद्ध-वर्ण त्रार्य-वर्णके बाहर था। वेदके श्राप्ययन करनेका श्रिधिकार त्रिवर्ण श्रर्थात् श्रायोंको ही था। वैदिक संस्कारों-का अधिकार भी इन्हींको था। इससे स्पष्ट देख पड़ता है कि आयोंका वंश जुदा था श्रौर उनकी नीति तथा सभ्यता एवं जेताकी हैसियतसे उनके श्रधिकार भिन्न थे। शुद्रोंको उन्होंने समाज-व्यवस्था-में ले लियाः पर यह काम उन्होंने सिर्फ़ शुश्रूषा कराने के लिये और इस प्रेमसें भी किया कि हम सब एक देशमें वसते हैं। हम ज़रा विस्तारसे देखेंगे कि भिन्न भिन्न मुख्य और सङ्कर वर्णों के कौन कौनसे व्यवसाय थे: और फिर हर एक के व्यवसायका अलग विचार करेंगे।

ब्राह्मणोंके व्यवसाय।

ब्राह्मणींका श्राद्य कर्त्तव्य था अध्य-यन करना। वेदोंका श्रध्ययन करके उनकी रचा करनेका कठिन काम उन्होंने खीकार किया था। यह काम उनकी पवित्रता श्रीर बडप्पनके लिये कारणीभूत हो गया था। महाभारतमें स्थान स्थान पर यह कहा गया है कि वेदाध्ययन श्रीर सदाचारमें ही उनका सारा कर्त्तव्य था। वेदोंका अध्ययन करनेकी खाधीनता यद्यपि तीनों वर्णोंको थी, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मणींने उस कामको उत्तम रीतिसे किया। वेटोंके साथ साथ श्रन्य विद्याश्रोंका भी श्रध्ययन ब्राह्मणोंको करना पडता था। क्योंकि अध्ययनका काम ब्राह्मणोंके विशेष कर्त्तव्य-में था। ब्राह्मण्-गुरु सभी वर्णोंके अध्यापक थे। इससे प्रकट है कि भिन्न भिन्न वर्णों के भिन्न भिन्न व्यवसायोंके लिये त्रावश्यक विद्याएँ ब्राह्मणोंको सीखनी पडती थीं। सारांश यह कि विद्यार्जन करने श्रीर विद्या सिखानेका सबसे बढ़कर कठिन काम ब्राह्मणोंने स्वीकार कर लिया था। अर्थात् ब्राह्मणांके भरण-पोषणका बोभ समाजके सव लोगों पर था। श्रध्ययन श्रीर श्रध्यापनका काम ले लेने पर श्रपनी गुज़र करनेकी श्रोर उनका ध्यान जा न सकताथा। इस कारण ब्राह्मणोंकी गृहस्थी-का ख़र्च चलानेका वोभ लोगों पर, विशे षतः समाज पर, था।

ब्राह्मणोंका दूसरा काम था यजन श्रौर याजन। यजन यानी यज्ञ।पूर्व कालमें यह

नियम था कि प्रत्येक गृहस्थाश्रमी ब्राह्मण श्रमि स्थापित करके रोज उसकी पूजा श्रीर होम करे। वैदिक कालमें प्रत्येक ब्राह्मण अपने अपने घर अग्नि स्थापित कर होमः हचन किया करता था। कैकेय उपाल्यान (शान्ति पर्व अ० ७६) में कैकेय राजाने कहा है कि-"मेरे राज्यमें ऐसा एक भी ब्राह्मण नहीं जो विद्वान न हो, जिसने श्रग्न्याधान न किया हो श्रथवा जो यज्ञशील न हो।" पूर्वकालमें श्रक्षि-स्थापन करके यज्ञ करना गृहस्थाश्रमी ब्राह्मणका मुख्य कर्तव्य माना जाता था। याजन श्रधीत जव चत्रिय श्रीर वैश्य यज्ञ करें तय ऋत्विजका कार्य ब्राह्मण करें। चत्रियांको ऋत्विज्य करनेको मनाही थी। विद्वान ब्राह्मगोंके निर्वाहके लिये यह समाज-व्यवस्था थी। इसी प्रकार ब्राह्मण्को दान श्रीर प्रतिग्रहका श्रिधकार था। प्रतिग्रह अर्थात् दान लेना ब्राह्मणींका विशेष कर्तव्य था, यानी दान लेनेका अधिकार ब्राह्मणोंके सिवा श्रीरोंको न था। ब्राह्मण लोग वैदाध्ययन करनेमें उलके रहते थे, इस कारण वे अपने निर्वाहकी श्रोर ध्यान न दे सकते थे। इसलिये उन्हें प्रतिप्रहका श्रिधिकार दिया गया था। समाजमें जो दान-धर्म होता रहता था, उससे ब्राह्मणी-को ही लाभ होता था। इस प्रकार ब्राह्मणोंके तीन कर्तव्य श्रीर तीन ही श्रिध-कार थे। येद पढ़ना, श्रम्नि-स्थापन करना श्रीर यथाशक्ति दान करना ब्राह्मणीका कर्तव्य था, और श्रध्यापन, याजन तथा प्रतिग्रह करना यह उनका विशेष श्रधि कार था। इन तोनों अधिकारोंके द्वारा उन्हें द्रव्य-प्राप्ति हो जाती जिससे गुज़र होती रहती थी। श्रव महत्त्वका प्रश्न यह है कि उक्त वर्णन निरा काल्पनिक है श्रथवा ऐतिहासिक । वर्ण-विभागक वर्णनमें सदा महाभारतमें यह वर्णन

श्राता है; परन्तु यह भी देखना चाहिये कि दर-श्रसल द्यात क्या थी। महाभारतमें कहीं ऐसा उदाहरण नहीं मिलता जिसमें भ्रन्य वर्णोंने ब्राह्मणोंके विशेष श्रिष्ठिकारोंसे काम लिया हो। विश्वामित्रने सुर्यवंशी त्रिशङ्क और कल्मापपाद आदि राजाश्रोंका याजन किया था श्रर्थात् उन्हें यह कराया था। परन्तु वह तो उस समय ब्राह्मण हो गया था । कहीं उदाहरण नहीं मिलते कि और लोगोंने प्रतिग्रह लिया हो। श्रध्यापन भी ब्राह्मण ही कराते धे। श्रीर ग्रीर वर्णोंको उस उस वर्णकी विद्या ब्राह्मण ही पढ़ाते थे। कौरवींको भनुर्विद्या सिखाने पर ब्राह्मण द्रोण नियुक्त हुए थे। उस कैकेयोपाख्यानमें यह भी कहा है कि—'मेरे राज्यमें चत्रिय न तो किसीसे याचना करते हैं श्रीर न श्रध्यापन कराते हैं। वे दूसरोंको यक्ष-याग भी नहीं करवाते। मतलव यह कि महाभारतके समयतक ब्राह्मणोंके विशेष अधिकारोंको न किसीने छीना था और न उनसे काम लिया था । अब देखना चाहिये कि ब्राह्मण अपने कर्तव्योंको कहाँ-तक करते थे। यह बात नहीं कि सभी ब्राह्मण वेदाध्ययन करते रहे हों श्रोर श्री सिद्ध रखते हों। ऐसे, कमोंका लाग करनेवाले, ब्राह्मण समाजमें थे। यह बात तो साफ़ कह दी गई है कि वेदाध्ययन श्रोर अग्न्याधान न करनेवाले महारा ग्रद्रतुल्य समभे जायँ श्रीर धर्मात्मा राजा उनसे कर वस्त करे!तथा षेगारके काम भी करावे। इससे ज्ञात होता है कि स्वकर्मनिरत ब्राह्मणोंसे कर नहीं लिया जाता था श्रीर बेगार भी माफ थी। नहुष राजाने ऋषियोंको अपनी पालकीमें लगा दिया था। भले ही उसने पह अपराध किया हो, किन्तु महाभारतके समयमें यह तत्त्व मान्य था कि केवल

बाह्म एके नाते जो सुबिधायें बाह्म एोंको दी गई हैं उनसे प्रत्येक ब्राह्मण लाभ नहीं उठा सकता। श्रपना कर्तव्य न करनेवाले ब्राह्मण प्रत्यच शद्र-तृल्य माने जाते थे। ब्राह्मण जो श्रीर श्रीर काम करते थे उनका उल्लेख भी इस अध्यायमें है (शान्ति० श्र० ७६)। मासिक लेकर पूजा करने, नक्तत्र-ज्ञान पर जीविका चलाने, समुद्रमें नौकाके द्वारा जाना श्रादि व्यव-साय करनेवाले, इसी तरह पुरोहित, मन्त्री, दूत, वार्ताहर, सेनामें श्रश्वारुढ़, गजारुढ़, रथारुढ़ अथवा पदाति प्रभृति नौकरी करनेवाले ब्राह्मण उस समय थे। राष्ट्रमें यदि ब्राह्मण चोरी करने लग जाय तो यह राजाका श्रवराध माना जाता था। "वेदवेता ब्राह्मण चौर्य-कर्म करने लगे तो राजा उसका निर्वाह करे। ऐसा करने पर भी यदि वह उस कामको न छोडे तो उसे राष्ट्रसे निकाल दे।" इस प्रकार ब्राह्मण लोग, श्राजकलकी भाँति, तरह तरहके व्यवसाय उन दिनों भी करते थे।

यह बात नहीं कि इस प्रकारके रोज़-गारोंको ब्राह्मण लोग सिर्फ श्रापत्तिके कारण ही करते थे; किन्तु इसका कारण तो स्वभाव-वैचित्र्य ही था। ब्राह्मणोंमें स्वभावसे ही जिस वैराग्य श्रौर शान्तिका प्रभाव रहना चाहिए, उसकी कमी हो गई थी श्रौर लोगोंके भिन्न भिन्न काम करके. श्रपनी व्यावहारिक स्थितिको उत्कर्ष पर पहुँचानेका साहजिक मोह ब्राह्मणोंको होता था । यह श्राज्ञा थी कि श्रापत्ति श्राने पर ब्राह्मण अपनेसे नीचे वर्णके धर्मका श्रवलम्य करके गुज़र कर ले। श्रथित, उसे चत्रियका काम करके सेनामें नौकरी कर लेनेकी इजाज़त थी। प्राचीन कालमें चत्रिय-वृत्तिके ब्राह्मण बद्दुत रहे होंगे। एक तो ब्राह्मण श्रौर चत्रियके बीच प्राचीन कालमें भेद ही थोड़ा थाः दूसरे ब्राह्मण लोग चत्रिय-स्त्रियोंको ग्रहण करते थे; इस कारण चत्रियोत्पन्न ब्राह्मण सहज ही दात्रिय-वृत्तिकी श्रोर भुक जाते थे। ब्राह्मण श्रापत्कालमें वैश्य-धर्मका श्रवलम्य करे या नहीं ? यह प्रश्न युधिष्ठिरने भीष्मसे किया है (शान्ति प० अ० ७८)। भीष्मने इसका यह उत्तर दिया है कि ऐसे समय पर ब्राह्मणको क्विच और गोरचा से जीविका कर लेनी चाहिए। लेकिन एक शर्त है। ब्राह्मण यदि ज्ञात्र-धर्म वर्तनेमें श्रसमर्थ हो तभी इस तरहसे गुज़र करे। खरीद-फरोख़्त कर लेनेकी भी आज्ञा थी. परन्तु शहद, नमक, पशु, मांस श्रीर पका-पकाया भोजन बेचनेकी मनाही थी। श्रर्थात् , महाभारतकालमें ब्राह्मण् लोग न सिर्फ सिपहगिरी करते थे बिहक खेती, गोरचा श्रीर दूकानदारी श्रादि, श्राजकल-की तरह, तब भी किया करते थे। किन्तु बहुधा ये काम वे श्रापत्तिके समय ही करते थे।

चत्रियोंका काम।

श्रब त्रत्रियोंके व्यवसायका विचार करना है। उनको श्रध्ययन, यजन और दानका अधिकार था। वेदाध्ययन करके श्रपने घर श्रक्षि स्थापित करके होम-हवन करने श्रीर यथा-शक्ति दान देनेका उनको श्रधिकार था। किन्तु यह उनका व्यवसाय न था। ब्राह्मणोंकी तरह, इन कामोंके द्वारा, वे श्रपनी गुज़र न कर सकते थे। यह मान लेनेमें कोई हानि नहीं कि चत्रिय लोग पुराने जमानेमें खासा वेदाध्ययन करते थे श्रौर होम-हवन भी खयं समभ वृक्षकर कर लेते थे। महाभारतमें वेद-पारङ्गत श्रीर यजनशील चित्रय राजाश्रीके श्रनेक वर्णन हैं। पीछे जिस कैकेय श्राख्यानका उल्लेख किया जा चुका है, उसमें स्पष्ट कहा गया है कि मेरे राज्यमें

न्नत्रिय अध्ययन करते हैं और अपने आत यज्ञ कर लेते हैं। ब्राह्मण-अन्यों भ्रीर उप. निषदोंके अनेक वर्णनींसे स्पष्ट देख पडता है कि प्राने जमानेमें ब्राह्मणों और चत्रियों-को वेदाध्ययनमें बहुत कुछ बराबरी थी। किन्त धोरे धीरे वेद-विद्या जैसे जैसे कठिन होती गई और यज्ञ-याग ज्यों ज्यों क्लिष्ट होते,गये, वैसे ही वैसे ये काम विशेष जातिके हो गये। चत्रियोंमें इन कामोंकी प्रवृत्ति घट गई । महाभारत-कालमें त्तत्रियं का वेद-प्रावीएय कम हो गया होगा। क्योंकि युधिष्ठिरके वेदमें प्रवीण श्रीर यज्ञ श्रादि कर्ममें कुशल होनेकी प्रशंसा करना तो एक छोर रहा, उलटे महाभा-रतमें दो एक स्थानों पर ये काम जाननेके कारण उसकी निन्दा की गई है। महा-भारत-कालमें सामान्य रूपसे सभी चत्रिय यदि वेदमें प्रवीण होते, तो इस तरह निन्दा करनेकी वात किसीके मनमें न उपजती। श्रर्थात् सोतिके समय वेद-विद्या पढ़नेकी रुचि चत्रियोंमें घट गई थी। त्तत्रियोंका विशेष व्यवसाय था-प्रजा-पालन श्रीर युद्ध। युद्धमें शूरता प्रकट करना चत्रियका ही काम था। इस काम-को वे बद्धत दिनोंसे, बहुत अच्छी तरह से करते आ रहे थे। चत्रियोंकी 'युद्धे चाष्यपलायनं वृत्ति साह जिक थी। हथियारोंका पेशा इन्होंने चलाया था। किन्तु इस पेशेको कुछ ब्राह्मण भी करते थे। इसके सिवा शास्त्रकी आज्ञा भी थी कि विशेष श्रापत्तिके समय सभी जातिके लोग शस्त्र प्रहण करें। फिर युद्धके काम-के लिए जितने मनुष्य तैयार हों, उनकी आवश्यकता थी ही। यह पेशा ही ऐसा है कि उसमें शूरोंकी ही गुज़र है। इस कारण, जिसमें शूरता हो उसे यह पेशा कर लेनेकी स्वाधीनता होनी चाहिये। महामारतके समय अधिकांश चत्रिय यही वेशा करते थे । आपत्तिके समय भी त्त्रियको याचना न करनी चाहिये— इस धारणाके कारण, श्रोर याचनाको ब्राह्मणोंने स्वयं अपना रोजगार मान लिया था इस कारण भी, प्रतिलोम-व्यव-सायकी दृष्टिसे वह ज्तियोंके लिये खुला न था। चत्रियोंके लिये, सिर्फ विपत्ति-कालमें, वैश्य-वृत्ति कर लेनेकी स्वाधी-नता थी। श्रर्थात् चत्रिय चाहे तो गोरचा करने लगे चाहे खेती। यह बात यद्यपि निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती कि महाभारत-कालमें खेती करनेवाले चत्रिय धे या नहीं, तथापि उनके श्रस्तित्वका अनुमान करनेके लिए स्थान है। युद्धके श्रुतिरिक्त चित्रयोंका काम प्रजा-पालन करना था। राज्य करना चत्रियोंका काम है। यही उनका विशेष श्रधिकार है। यह तो प्रसिद्ध ही है कि उस समय छोटे छोटे राज्य थे। इन छोटे छोटे राज्योंके श्रधीश्वर चत्रिय ही थे। महाभारतके समय श्रथवा उससे भी पूर्व, बहुत करके, सभी राजा चत्रिय थे। चत्रियोंके सिवा श्रन्य वर्णोंको राज्य करनेका अधिकार न था। आर्य देशमें अन्य वर्णके राज्य करने-का उदाहरणतक महाभारतमें कहीं नहीं है। लिखा है कि अध्वमेधके समय अर्जुनने श्रार्य राजाश्रों श्रीर म्लेच्छ राजाश्रोंको जीत लिया। नहीं कह सकते कि उस समय हिन्दुस्थानमें म्लेच्छ राजा कौन कौन थे। ये म्लेच्छ राजा बहुत करके हिन्दुस्थानके बाहरके थे। उस समय उत्तर श्रोरके शक-यवनोंकी संज्ञा मलेच्छ थी; यही नहीं, बिंक द्त्रिणके श्रान्ध्र, द्विड़, चोल श्रीर केरल वगैरहकी भी यही संज्ञा थी; अर्थात् उस समयतक इनका अन्तर्भाव श्रार्यावर्तमें न था श्रीर इन देशोमें आयों की बस्तियाँ भी न थीं। ऐसे रेशोमें प्रजा भी क्लेच्छ स्रोर राजा भी

म्लेच्छ रहे होंगे । इस प्रश्नका विचार स्थलान्तरमें किया जायगा । किन्तु यह वात कह देनी चाहिये कि आर्य प्रजाके देशमें चत्रिय ही राज्य करते थे। ब्राह्मण या वैश्यके राज्य करनेका उदाहरण महा-भारतमें नहीं है। एक उपनिषद्में ग्रूट राजाका वर्णन है और निपादोंके अधि-पति गुहका वर्णन महाभारतमें है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ये छोटे छोटे राज्य उन्हीं लोगोंके अर्थात ग्रुटोंके और निषादोंके हो होंगे। राज्य करनेका हक च्त्रियोंका ही था, उस पर महाभारतके समय ब्राह्मण या वैश्योंने दखल न किया था। पहलेपहल इस श्रधिकारको चन्द्र-गुप्त या नवनन्दने इथियाया। चन्द्रगुप्त-के समय अथवा उसके पश्चात् शीव ही महाभारत बना। यह साहजिक ही है कि उसमें 'नन्दान्तं चत्रियकुलं' इस वचन-का-अगले प्राणांकी तरह-कहीं उल्लेख नहीं है। महाभारततक परम्परा चत्रिय राजात्रींकी ही थी। यह परम्परा श्रामे चलकर जो विगड़ी तो फिर न सुधरी। चन्द्रगुप्तके राज्य हथिया लेनेपर श्रनेक गृद्ध श्रीर ब्राह्मण राजा हो गये। फिर शक-यवन हुए, इसके वाद आन्ध्र। सारांश यह कि, राज्य, निदान सार्व-भौमत्व, फिर च्त्रिय-कुलमें हिन्दुस्थानके इतिहासमें नहीं त्राया। फिर भी चत्रियों के छोटे छोटे राज्य हिन्दुस्थानमें सदासे थे ही। "दानमीश्वरभावश्च त्तात्रकर्म स्वभाव-जम्" इस गीता-वाक्यके अनुसार राज्य करनेकी वृत्ति चत्रियोंमें इतनी सहज श्रौर उनकी नस नसमें भरी हुई है कि स्राज-कल भी चत्रियोंका बिना राज्यके समा-श्रान नहीं होता । फिर चाहे वह राज्य बहुत ही छोटा—एक ही गाँवका—क्यों न हो। युधिष्ठिरकी माँग इसी सहज प्रवृत्तिके श्रतुसार थी । उसकी सबसे अस्तिम माँग यह थी कि—"हम पाँच भाईयोंको श्रोर नहीं तो पाँच गाँव तो दो।" इसमें उस सहज स्वभावका पूर्ण प्रतिबिम्ब श्रा गया है। राज्य करना चित्रयका सहज व्यवसाय श्रोर उद्योग था, क्योंकि उन्हें न भिन्ना माँगनी थी श्रोर न खेती करनी थी। दोनों बातोंमें उन्हें श्रोछापन जँचता था। तब, बिलकुल गरीबीमें रहनेवालोंके लिये सिपाहगिरी थी श्रोर जो लोग श्रच्छी स्थितिके थे, उनका कहीं न कहीं राज्य होना चाहिये। महाभारतके समयतक उन्होंने राज्य करनेके श्रपने हक़की भली भाँति रन्ना की थी। इसमें ब्राह्मण या वैश्य प्रविष्ट न हुए थे।

वैश्योंका काम।

अब वैश्योंके साहजिक व्यवसाय पर विचार किया जाता है। भगवद्गीतामें वैश्यका मुख्य पेशा कृषि, गोरचा श्रीर वाणिज्य कहा गया है। महाभारतके शान्तिपवंमें भी यही बात लिखी है। पूर्व समयमें वैश्योंका रोज़गार खेती था श्रीर गोरचा त्रर्थात् ग्वालका पेशा भी यही लोग करते थे। परिस्थिति बहुत पुराने समयकी है। श्राजकलके वैश्य तो इन दो व्यवसायोंमेंसे कोई रोजगार नहीं करते। गोर्ज्ञाका व्यवसाय कई शुद्र जातियाँ करती हैं श्रीर खेती भी शद, राजपूत श्रीर ब्राह्मण श्रादिके हाथमें है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन कालमें ये दोनों रोजगार श्रार्यवर्णी वैश्य करते थे। सौतिके समय वह परिस्थिति बदल गई होगी, क्योंकि अगले विवेचनसे **∓**पष्ट होगा कि उस समय शुद्रोंकी स्थिति बहुत कुछ सुधरी हुई थी। वैश्य तो सिर्फ वािणज्य करते हैं। यह पेशा वे प्राचीन काससे अवतक करते आ रहे हैं। इस पेशेमें श्रोर लोगोंका प्रवेश बहुत कम है। हजारों वर्षके आनुवंशिक संस्कारोंसे वैश्य लोग इस रोज़गारके काममें बहुत ही सिद्धहस्त हो गये हैं। व्यापारमें उनके साथ स्पर्धा करनेमें श्रीर वर्ण समर्थ नहीं। खैर: इस विचारको छोड दीजिये। वैश्व श्रपने मुख्य व्यवसाय वाणिज्यको प्राचीन कालसे लेकर महाभारतके समयतक करते थे । पहले बहुधा वैश्य जातिमें बहुत लोग शामिल थे, परन्तु श्रव यह जाति सङ्गचित हो गई है। खेती करने वाली अनेक वैश्य जातियाँ श्रद्धींमें गिनी जाने लगीं। इसका कारण यह है कि वेदाध्ययन और यजन, ये दो अधिकार ब्राह्मण-चत्रियकी तरह वैश्योंको भी प्राप्त थे: परन्तु उन लोगोंने इनकी रचा नहीं की। चत्रियोंमें वेदाध्ययन कुछ तो रहा होगा, किन्तु वैश्योंमें वह बहुत कुछ घर गया होगाः फिर भी वह बिलकुल ही लुप्त न हो गया था । वजके गोपीगोप वैश्य थे और भागवतमें भी गोपोंके यह करनेका वर्णन है। इसके सिवा खेतीके रोजगारमें रात-दिन शद्रोंका साथ रहने के कारण भी वेदाध्ययनकी प्रवृत्ति वैश्योमें घट गई होगी। ऐसे ऐसे कारणोंसे का वैश्य जातियाँ अव श्द्रोंमें गिनी जाने लगी हैं। पर महाभारतके समय वे शूद न मानी गई होंगी । उदाहरणार्थ मूलमें जाट होंगे खेती करनेवाले वैश्य, श्रीर गूजर होंगे गोरज्ञाका पेशा करनेवाले वैश्य क्योंकि ये लोग सूरत शकलमें विलक्त त्रार्य हैं। शीर्षमापनशास्त्रके परिडतीकी भी इसमें श्रापत्ति नहीं है। महाभारतके ये वर्णन प्रत्यत्त स्थिति-द्योतक हैं, किंवा परिगणित होते होते स्रागे स्राते गये हैं-यह कहना कठिन है। तथापि यह ती स्पष्ट है कि पूर्व कालमें कृषि श्रीर गोरही करना वैश्योंका पेशा था।

त च वैश्यस्यकामः स्यान्न रत्तेयं पशुनिति। वैश्येचेच्छिति मान्येनं रत्तितव्याः कथचन॥ (२७ शां० स्र० ६०)

सौतिके समय इसमें थोड़ा सा उलट-केर हो गया होगा और वैश्योंकी प्रवृत्ति केवल व्यापार श्रथवा वाणिज्यकी ही तरफ रह गई होगी।

श्द्रोंका काम।

श्रव श्रद्रोंके कामका विचार करना है। प्राचीन कालमें श्रद्भोंकी स्थिति सिर्फ दासोंकी थी। यह तय हो चुका था कि ये तीनों चर्णीकी सेवा किया करें श्रीर स्तीके अनुसार वे सेवा ही किया करते थे। उन्हें श्रध्ययन श्रथवा यजन करनेका श्रिधिकार न थाः न सिर्फ यही, किन्त उन्हें द्रव्य सञ्चय करनेकी भी मनाही थी। उन्हें भरपेट भोजन देना श्रौर पहनने-के लिए फटे पुराने कपड़े दे देना ही मालिकका कर्त्तव्य था। आगे यह स्थिति बदल ही गई होगी। उत्तरोत्तर जैसे जैसे श्रायोंको बस्ती दक्तिएकी श्रोर घटती गई, वैसे ही वैसे शद्रोंकी संख्या बढ़ती गई होगी। इसके सिवा ये लोग खेती श्रिध-कतासे करने लगे होंगे। दक्तिणकी श्रोर-के राष्ट्रमें वैश्य आर्य कम थे; इसलिये श्रद्वींको श्रधिकतासे खेतीका काम करना पड़ा। इस तरह उनकी परिस्थिति बदल गई। इसीसे शृद्रोंको धन प्राप्त करनेका अधिकार मिल गया। शान्ति पर्वके ६० वें श्रध्यायमें कहा गया है कि राजासे अनुमति प्राप्त करके ग्रुट धन-सञ्चय कर सकता है: किन्तु यह अनुमति बिना श्राज्ञाके भी सदाके लिये मिल गई। धीरे धीरे उन्हें द्रव्यके साथ ही यज्ञ-यागादि करनेका अधिकार मिला श्रीर वान देनेका भी अधिकार मिल गया। शर्त यह थी कि शद्भ यितय व्रतका श्राच-रण न करके अमन्त्रक यज्ञ करें।

स्वाहाकारवषट्कारौ मन्त्रः ग्रद्धे न विद्यते। तसाच्छूदःपाकयझैर्यजेताव्यतवान् स्वयम्॥ (३= शां० श्र० ६०)

शृद्को स्वाहाकार, वषट्कार श्रीर वेदमन्त्रका अधिकार नहीं है। इस श्रध्यायमें यह बात भी कह दी है कि शूद्रोंको ऋग्वेद, यजुर्वेद श्रौर सामवेदका श्रिधिकार नहीं है। 'यजन,दान श्रौर यज्ञका श्रिकार सब वर्गोंको है। श्रद्धायज्ञ सब वर्णोंके लिये विहित हैं, इत्यादि वचनोंसे देख पड़ता है कि आर्य धर्मकी अधिकांश कियात्रोंका-श्राद्ध ग्रादितकका-श्रधि-कार शृद्धोंको महाभारतके समयसे पहले ही मिल गया था। ग्रंड यानी निरेदास-की परिस्थितिसे निकलकर जब ग्रद्रोंको स्वाधीन व्यवसाय, खेती वगैरह करनेका श्रिधिकार मिला और वे द्रव्य-सम्पादन करने लगे, तब यह स्थिति प्राप्त हुई। किन्त त्रैवर्णिक श्रायोंने श्रपने वैदिक कर्मका अधिकार शद्भोंको नहीं दिया। सिर्फ तीन ही वर्गा अध्ययन करनेके अधिकारी थे: त्रर्थात् वैदिक समन्त्रक क्रियात्रोंका सम-भना उन्हींके लिये सम्भव था। वैदिक कालसे लेकर महाभारतके समयतक ग्रुद्रोंका पेशा ग्रौर कर्मका श्रधिकार बहुत कुछ उच्च कोटिका हो गया।

सङ्गर जातिके व्यवसाय।

भिन्न भिन्न वर्णों के सद्भरसे जो जातियाँ उपजी, उनके जो विशिष्ट कर्त्तव्य श्रथवा व्यवसाय थे उनका भी विचार करना चाहिये। प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न प्रथम जाति स्तकी थी। ब्राह्मणी स्त्रीसे चत्रिय पति द्वारा इसकी उत्पत्ति वतलाई गई है (अनुशासन पर्व श्रध्याय ४८)। यहाँ स्त्रोंका पेशा राजाओं को स्तृति करना वतलाया है। जान पड़ता है कि पुराणोंका श्रध्ययनकर कथा सुनाना भी

इनका पेशा था। जिसने महाभारतकी कथा सुनाई है, वह लोमहर्षण सुतका बेटा था। इसे पौराणिक भी कहा है। प्राणोंमें राजाश्रोंकी वंशावलियाँ होती हैं। राजाश्रों श्रोर ऋषियोंकी # वंशावली रिचत रखनेका काम सत-पौराणिकोंका था। श्राजकलके भाट भी इसी पेशेके हैं। ये भी यंशावलीको रट लेते हैं राजाश्रोंकी स्तृति करते हैं। भाटोंकी जाति बाह्मणोंकी ही तरह पूज्य मानी गई है। भागवतकी एक कथामें जिस प्रकार कहा है उस प्रकार लोमहर्षणको ब्राह्मण मानने-की श्रावश्यकता नहीं: क्योंकि सुतोंको भी तो वेदका अधिकार था। सुत अधिरथिका पुत्र होने पर भी कर्ण वेद पढ़ता था। पेसा महाभारतमें वर्णन है। जब कुन्ती उससे मिलने गई तब वह भगीरथी-किनारे अर्ध्वबाहु करके वेद्योप कर रहा था (उद्यो० अ० १४४)। ब्राह्मण और चित्रय, दोनों उच्च वर्णोंसे सृत जातिकी उत्पत्ति होनेके कारण वह ब्राह्मण जातिके समान मान ली गई होगी; और आजकल भी राजपूत राजाश्रोंके राज्यमें ब्राह्मण श्रीर भारका एकसा मान है।

स्तोंका एक पेशा और माल्म होता है । वे सारथ्य भी करते थे। रथकी हाँकना स्तका काम था। उसका नाम श्रिधरथी भी था। कर्ण श्रिधरथीका बेटा था; श्रर्थात् वह एक सारथीका पुत्र था; श्रीर इसी कारण द्रौपदीने उसे जय-माल नहीं पहनाई। स्तके पेशेका निर्णय करते समय उस ज़मानेकी परिक्षिति पर विचार करके, माँ-वाप दोनोंके पेशेके श्रनुसार, उसका व्यवसाय निश्चित किया गया होगा। ब्राह्मणका पेशा बुद्धिका था, इस दृष्टिसे वेदोंके नीचे जो पुराण उनके अध्ययन करनेका अधिकार स्तको दिया गया होगाः श्रोर चत्रियका पेशायुद्ध था: वह सृतको चत्रिय पिताके नातेसे मिल गया होगा। अर्थात् स्तको सारथी का पेशा सिखाया गया होगा। दित्ति॥ श्रिकामें नीयों ह्यियोंसे यूरोपियनोंको जो श्रौलाद हुई, उसके सम्बन्धमें भी इसी ढंगकी व्यवस्था की गई है और उन्हें यही पेशा कोचवानी करनेका श्रीर घोड़ेकी नीकरी करनेका सींपा गया है। इसी तरह हिन्दुस्तानमें भी यूरोपियन प्रुषोंसे पशियाई स्त्रियोंको जो युरेशियन सन्तान हुई, उसको यूरोपियनकी अपेता हलके दरजेका कलमका पेशा मिला है। तात्पर्य, श्राजकलके यूरोपियन लोग हिन्द्रस्तानके बाह्यण चत्रिय हैं। इनके शूद्र स्त्रीसे जो सन्तान हुई, उसे उन्होंने अपनी बराबरीका नहीं समका। किन्तु उन लोगोंने इस सन्तानकी एक श्रलग नई जाति बना दी, और उनको स्पष्ट रीतिसे तो नहीं पर अप्रत्यन रीतिसे एक अलग व्यवसायमें लगा दिया है। इस उदाहरण्से पाठक भली भाँति समभ जायँगे कि प्राचीन कालमें हिन्द्स्तानके श्रायाम मिश्र वर्णकी श्रलग जाति को हुई श्रीर उसका रोजगार श्रलग कैसे बना दिया गया।

जो हो; वैश्यके ब्राह्मण स्त्रीसे उपजी हुई सन्तितिका नाम वैदेह था। श्रन्तः पुरकी स्त्रियोंकी रचा करना इसका काम था। इसी प्रकार चत्रिय स्त्रीमें वैश्य पुरुषसे उश्पन्न सन्तितिका नाम मागध हुआ। इन मागधोंका काम था राजाकी स्तृति करना। इन तीनों उच्च वर्णके प्रतिलोम विवाहसे उपजी हुई सन्तानकी स्त्र, वैदेह श्रीर मागध जातियाँ मानी गई; श्रीर राजाश्रीके स्तृति-गान गायन करना इनका पेशा

मादि पर्वमें सृतसे शौनकने पहले यही कहा कि
 मृगुकुलकी वंशावली भुनाओ ।

हुन्ना। इन जातियोंका नाम "स्तवैदेह-मार्गधाः" इस प्रकार सदा एकत्र

मिलता है। उच वर्णकी स्त्रियों में शूद्रसे जो सन्तान उपजी उसके पेशेकी व्यवस्था अव देखनी चाहिए। वैश्य स्त्रीके शूद्र पुरुषसे उपजी हुई सन्ततिको श्रायोगच कहते थे। यह जाति बहुत निन्य नहीं समभी गई क्योंकि वैश्य श्रोर श्द्र वर्ण पास पास हैं। वढ़ई-गिरीइनका पेशा हुआ। चत्रिय स्त्रोके शृद्से उत्पन्न सन्तान श्रधिक निन्य निपाद जाति-की है। मछलियाँ मारनेका इनका पेशा थाः श्रीर ये बहेलियेका काम भी करते थे। सरोवरमें दुर्योधनके छिप जानेका समा-चार पाएडवोंको निषादोंसे मिलनेका वर्णन है। अन्तमं ब्राह्मण स्त्रीके शृद्धं जो सन्तान हुई, वह अत्यन्त निन्य चाएडाल है। इनको जल्लादका काम मिला। जिन श्रपराधियोंको प्राणान्त दगड दिया जाता था उनका सिर ये काट लेते थे। अनुलोम जातियोंमें श्रम्बष्ट, पारशव श्रीर उग्र जातियाँ कही गई हैं। उनके व्यवसायका वर्णन (अनु० प० अ० ४८में) नहीं हैं। तथापि द्विजोंकी सेवा करना उनका काम था। यह कहा गया है कि सङ्कर जातियोंमें भी सजातीय स्त्री-पुरुषसे उन्हींकी जातिकी सन्तान होती है। इस नियमका उल्लङ्घन होकर उत्तम पुरुष ग्रीर ग्रधम स्त्री ग्रथवा श्रथम पुरुष श्रौर उत्तम स्त्रीके समागमसे न्यूनाधिक प्रमाणमें निन्द्य सन्तति होती है। यहाँ एक बात यह कही गई है कि बासकर प्रतिलोम सन्तति बढ़ते बढ़ते श्रौर एककी अपेचा दूसरी हीन—ऐसी पन्द्रह मकारकी बाह्यान्तर सन्तित होती है। उनमेंसे कुछके नाम ये हैं। ब्राह्मण, चत्रिय और वैश्यका क्रिया-लोप हो जाय तो उन्हें दस्यु मानते हैं: ऐसे दस्युसे श्रायो-गष स्त्रीमें जो सन्तान होती है, उसका

नाम सैरन्ध्र है। इस जातिके पुरुषोंका पेशा राजात्रोंके ब्रलङ्कार ब्रौर पोशाककी व्यवस्था करना, उबटन लगाना श्रीर पैर दावना आदि था: और स्त्रियोंका काम इसी तरह रानियोंकी सेवा करना था। लिखा है कि यह सन्तान दर-श्रसल दास-कुलकी न थी, परन्त इसके लिए सेवा-वृत्ति करनेका ही नियम था । सैरन्ध्री जातिके सम्बन्धमें दो एक बातें श्रौर लिखो जाती हैं। श्रार्य वर्णके पति श्रीर श्रायोगव स्त्रीसे उसकी उत्पत्ति थी। इस कारण वह वाह्य अथवा बाह्यतर जातियों में न रही होगी । द्रौपदी जिस समय सैरन्ध्री वनी थी, उस समय उसने कहा था-"सैरन्ध्री नामक स्त्रियाँ लोगों-के घर कला-कोशलके काम करके अपनी गुज़र किया करती हैं।" यह भी वर्णन है कि ये स्त्रियाँ भुजिष्या हैं त्रर्थात् मालिक-की इन पर एक प्रकारकी विशेष सत्ता है। इस कारण, सैरन्ध्रीने पहले ही कह दिया था कि मेरे पति गन्धर्व हैं। अर्थात् दासीकी अपेचा सैरन्ध्रीकी स्थिति कुछ त्राच्छी होगी। इन सैरन्ध्रोंके कई भेद बत-लाये गये हैं; जैसे—मागध-सैरन्ध्र, बहे-लियेका काम करनेवाले, वैदेह-सैरन्घ्र, श्रौर शराव बनानेवाले आदि । सैरन्ध्र स्त्रीसे चाएडालके जो सन्तान होती थी, उसका नाम श्वपाक कहा है। ये जातियाँ बहुधा गाँवके बाहर रहनेवाली, बहुतही श्रोछा पेशा करनेवाली और मूलके नीच निवा-सियोंमेंसे होंगी। इन जातियोंके लोग कुत्ते श्रौर गदहे श्रादिका निषिद्ध मांस खाकर निर्वाह करते होंगे। श्रायोगव स्त्री श्रीर चाएडालसे पुकस जाति उपजती है। इस जातिवाले हाथी-घोड़ेका मांस खाते, कफ़न पहनते श्रौर खप्परमें स्नाते हैं। इनका ऐसा ही वर्णन है। श्वपाकोंका पेशा मरघटमें मुदें रखनेका था। ये अनेक अत्यन्त निन्द्य जातियाँ गाँवके बाहर रहें, यह नियम तब भी था और इस समय भी है। महाभारतमें वर्णसङ्कर-का जो भयद्भर निन्दात्व वर्णित है, उसकी कल्पना ऊपरके विवेचनसे हो सकेगी। वैसे तो सङ्कर जातिकी संख्या श्रनन्त कही गई है, तथापि मुख्य मुख्य १५ हैं। इम्हींमें सब भेदों-उपभेदोंका अन्तर्भाव है। उन पन्द्रहके नामका खुलासा नहीं है, तथापि त्रैवर्णिक प्रतिलोम जातिमें सूत, वैदेह श्रीर मगध, तथा श्रनुलोम जातिमें अम्बष्ठ और पारशव आयोंकी सन्तान समाजमें शामिल थीं । निषाद. चाराडाल और पुक्रस आदि बाह्य एवं बाह्यतर अनार्य जातियाँ थीं। इनमें भी आर्य जातिका थोडासा मिश्रण रहा होगा। इसीसे इनके सम्बन्धमें यह कल्पना थी कि ये म्लेच्छ जातिसे विभिन्न थीं। इनकी बस्ती श्रायांवर्तमें ही थी श्रोर वे श्रन्य वणोंके सिलसिलेमें थीं । उनका धर्म सनातन धर्मसे श्रलग न था श्रीर उन सब के लिये सनातन धर्मके मुख्य नियम लाग्र थे। यद्यपि वे चातुर्वएर्यके वाहर थे, फिर भी उससे बिलकुल अलग न थे। उनकी अनार्य तो कहा गया है पर वे म्लेच्छ न थे। श्रार्य शब्द जातिवाचक है श्रीर त्रैव-र्णिक अर्थमें है और उनका बोधक है कि जिनके आर्य संस्कार होते हैं; अर्थात् ये निन्द्य जातियाँ त्रिवर्णके बाहर थीं श्रीर इनका आचरण अशुद्ध था। फिर भी ये जातियाँ न तो त्रिवर्णसे कोसों दूर थीं श्रीर न उनके समाज या धर्मसे विलक्त ही ग्रलग थीं। श्रस्तुः हिन्दुस्थानकी समाज-व्यवस्थाका एक प्रधान श्रङ्ग चात्-र्वएर्य-व्यवस्था है। मनुस्पृतिमें स्पष्ट कहा गया है कि जहाँ चातुर्वर्ग्यकी व्यवस्था नहीं है वह म्लेच्छ देश है: फिर वहाँवाले अगर आर्य भाषा बोलते हों तो भी वह

कुछ आर्य देश नहीं हो सकता। यह देख पड़ता है कि महाभारत या सौतिके समय मध्यदेशमें वर्ण-व्यवस्थाका चलन जोरोंसे था। कर्णपर्वमें, कर्णने शल्यकी निन्दा करते समय जो भाषण किया उस भाषणसे अनुमान किया जा सकता है कि हिन्दुस्तानके किस भागमें वर्ण-व्यवस्था पूर्णत्या प्रचलित थी। उक्त पर्वके ४५ वें अध्यायमें कहा गया है कि मत्स्य, कुरु, पाञ्चाल, नैमिष श्रोर चेदि श्रादि देशोंके लोग निरन्तर धर्मका पालन करते हैं; परन मद्र देश श्रोर पाञ्चनद देशके लोग धर्मका लोप कर डालते हैं। इसीके पूर्व यह भी कहा गया है कि—"वाह्मीक देशमें पहले मनुष्य ब्राह्मण होता है, फिर चत्रिय, इसके बाद वैश्य, तब शद्र और इसके बाद नापित। इस तरह होते होते यद्यपि वह नाई हो गया तथापि फिर वह ब्राह्मण होता श्रोर ब्राह्मण हो चुकने पर उसीका गुलाम हो जाता है।" इस वर्णन से पञ्जाबमें वर्ण-व्यवस्थाके कुछ शिथिल हो जानेका अनुमान होता है। इसमें सन्देह नहीं कि इस भाषणमें श्रतिशयोक्ति है, तथापि कुरुश्रोंमें वर्ण-व्यवस्थाका खरूप जितना कड़ा था उतना पञ्जाबमें न रहा होगा। श्रौर मज़ा तो यह है कि खान-पानके मामलेमें पञ्जाबमें श्रब भी कोई विशेष वन्धन नहीं। इसके सिवा महा भारतमें यह भी कह दिया गया है कि कारस्कर, महिषक, कालिङ्ग, केरल और कर्कोटक आदि दुर्धमीं लोगोंसे भी सम्पक न करना चाहिये। इनमेंसे कई देश दिल्ण की श्रोरके हैं। प्रतीत होता है कि इन देशोंमें उस समयतक श्रायोंकी बस्ती कम थी, खूब न हो पाई थी। शायद, उस समय, ये देश जैन श्रीर बौद्ध धर्मकी छाया तल बहुत कुछ आ गये होंगे। यह बात ती

तिली ही जा चुकी है कि इन धर्मोंने जातिमेहको श्रापही तोड़ डाला था। किर भी हिन्दुस्तानमें चातुर्वएर्य-व्यवसाकी पूर्णत्या प्रवलता हो गई थी, उसकी लागा श्रामम् या। इस कारण, धीरे धीरे, हिन्दुस्तानके सभी भागोंमें चातुर्वएर्य-व्यवस्था प्रवल हो गई श्रीर तेज़ीसे श्रमलमें श्रा गई। प्रजावका सम्पर्क मलेच्छ देशोंके साथ विशेषतासे था, इस कारणवहाँ उस व्यवस्थामें थोड़ी शिथिलता थी। यह तो देख ही लिया गया है कि वह शिथिलता व्याह-शादी, खान-पान श्रथवा रोज़गारके सम्बन्धमें थी।

सारांश।

that fire Fi

हिन्दुस्तानकी वर्ण-व्यवस्थाका स्वरूप श्रीर उसका इतिहास इस प्रकारका है। सारांश यह है कि हिन्दुस्तानमें प्राचीन श्रार्य लोग श्राये तब उनमें ब्राह्मण श्रीर चत्रिय दो पेशेकी जातियाँ थीं। शादी-ब्याहका उस समय कोई वन्धन न था। पञ्जाबमें बस्ती होने पर वैश्य अर्थात् खेती श्रोर गो-पालन करनेवाली तीसरी जाति बनी। फिर शीघ्र ही यहाँके पूर्व निवासियोंमेंसे, शूद्र जाति आयोंके समाजमें शामिल हो गई। उसका रङ्ग काला त्रोर ज्ञानशक्ति तथा नीति कम होनेके कारण वर्ण शब्दको जातिवाचक महत्त्व प्राप्त हुआ। शूद्र स्त्री प्रहण करने लगनेसे (मध्यदेशमें श्द्रोंकी आबादी खुव रही होगी, श्रौर यहाँके नाग लोगोंकी स्त्रियोंका रूप भी अच्छा होगा) वर्णोंकी भिन्नता और भी कायम हो गई। वैश्य लोग खेती करते थे श्रीर शृद्दोंसे उनको हमेशा काम पड़ता थाः इस कारण उन्होंने ग्दा स्त्रियोंको अधिकतासे ग्रहण किया श्रीर इस जातिकी स्त्रियोंकी श्रीलाद भी

वैश्य ही मानी जाने लगी थी; इससे वैश्य वर्णमें थोडासा वहा लग गया। चत्रियोंका भी यही हाल हुआ। ब्राह्मणींने शुद्रा स्त्रीकी सन्तानकी श्रलग जाति कर दी। इस अनुकरणके आधार पर, धीरे धीरे, अन्य अनुलोम-वर्णकी जातियाँ हो गई । प्रतिलोम विवाहके सम्बन्धमें अधवा सन्तानके विषयमें बहुत ही घुणा थी; इस कारण उस जातिके विषयमें, खासकर शद्रसे उत्पन्न सन्तानके विषयमें, श्रयन्त निन्द्यत्व माना गया। परन्तु सूत, वैदेह और मागध ये श्रायीत्पन्न सङ्गर जातियाँ ऊँचे दरजेकी समभी गई। इन भिन्न भिन्न वर्णोंके पेशे भी श्रलग श्रलग निश्चित कर दिये गये। ब्राह्मणींका विशेष व्यवसाय श्रध्यापन, याजन श्रोर प्रतिग्रह माना गया; युद्ध श्रौर राज्य करना चत्रियों का पेशा हुआः, कृषि, गोरत्ता और वाणिज्य वैश्यका व्यवसाय, तथा शूद्रका व्यवसाय दास्य निश्चित हुआ। किन्तु आपत्तिके समय श्रपने श्रपने वर्णसे नीचेवाले वर्ण-का पेशा करके गुज़र कर लेनेकी खाधीनता थीं; इसलिये कुछ ब्राह्मण-त्तत्रिय किसान भी हो गये श्रीर कुछ इतिय वैश्य-व्यापारी—हो गये। वैश्योंने खेती और गो-पालन छोड़कर सिर्फ़ व्यापार हो किया। मिश्र जातियोंके भी भिन्न भिन्न व्यवसाय स्थिर हो गये। महाभारतके जमानेका यहीं संचिप्त निष्कर्ष है।

श्रव, संत्रेपमें, यह भी देखना ठीक होगा कि महाभारत-कालके पश्चात् वर्णा-व्यवस्थाका स्वरूप किस प्रकार बदला। इससे, महाभारतके समय जैसी व्यवस्था रही होगी, उसका श्रव्छा ज्ञान होगा। जाति-व्यवस्थाके विरुद्ध बौद्ध-धर्मका कटात्त था, इससे जाति-बन्धनमें बहुत गोलमाल हो गया; इस कारण जब हिन्दू-धर्मके दिन श्रव्छे हुए तब जाति-बन्धनके

नियम फिर संख्त हो गये, और पहलेकी तरह भिन्न भिन्न वर्णोंकी स्त्रियाँ ग्रहण करनेकी रीति रुक गई। महाभारतके बादकी स्मृतियोंमें निर्बन्ध हो गया कि हर एक वर्णको श्रपने ही वर्णमें शादी-ब्याह करना चाहिये, श्रीर सवर्ण स्त्रीसे उत्पन्न सन्तान ही उस वर्णकी समभी जायगी । ब्राह्मणका अन्य वर्णकी स्त्री प्रहण करना बन्द हो गया श्रीर चत्रियने भी श्रन्य वर्णकी स्त्री करना छोड़ दिया: इस कारण, भिन्न भिन्न वर्णोंके मिश्रणसे जो नित्य नई जातियाँ वनती जाती थीं वे बन्द हो गईं। इस वर्गा-व्यवस्थाके कारण उत्पन्न होनेवाला जातिका गर्व श्रन्य समाजों पर परिणाम डालने लगाः श्रर्थात् अनार्य जातियोंमें भी जाति-भेद उत्पन्न होने लगा। हिन्दुस्तानमें प्रत्येक जातिको ऐसा प्रतीत होता है कि हम और किसी न किसी जातिसे श्रेष्ठ हैं; और जहाँ कहीं द्रव्य अथवा शक्तिके कारण महत्त्व प्राप्त हुआ, वहाँ उक्त प्रकारका अभिमान बढ़कर भिन्न भिन्न जातियाँ उपजने लगीं। इस तरहसे प्रत्येक जातिमें भीतरी भेद उत्पन्न होने लगे श्रीर उसी छोटीसी सीमाके भीतर विवाहका बन्धन हो गया। इसके सिवा देशभेदसे भी जातिभेद माना जाने लगा। भिन्न भिन्न देशोंमें खान-पानके. श्राचारके श्रीर इतिहासके भेदके कारण एक दूसरे पर सन्देह होने लगा: इस कारण भी भीतरी भेदोंको हढ़ बन्धन-का स्वरूप मिल गया, जैसे कि आजकल ब्राह्मणोंमें अनेक भेद हो गये हैं। मुख्य भेद ब्राह्मणोंके दशविध, अर्थात् पश्चद्राविड श्रीर पञ्चगौड़ हैं; किन्तु महाभारतमें इन दस भेदोंका नाम भी नहीं है। महाभारतमें जहाँ कहीं ब्रीह्मण का नाम त्राता है कोई देश-भेव दिखलाया नहीं जाता। यह वर्णन कहीं नहीं मिलता कि

श्रमुक ब्राह्मण गौड़ है, कान्यकुब्ज है या दानिणात्य है। फिर अब महाराष्ट्र बाह्मणी में भी जो देशस्य, कोङ्कणस्य आदि भेद हो गये हैं उनका, या कान्यकुष्ज आदिके भीतरी भेदोंका, उल्लेख कहाँसे मिलेगा? चत्रियोंके भीतरी भेदोंका पता भी महा-भारतसे नहीं लगता। चन्द्रवंशी अथवा सूर्यवंशीका भेद-भाव भी व्यक्त किया हुआ नहीं देख पड़ता। यादव, कौरव, पाञ्चाल श्रादि देश-भेद तो मिलते हैं परन्तु वे ऐसे नहीं हैं कि जैसे वर्तमानकालीन च्रित्रयी के अभ्यन्तरीण भेद हैं। किंवहुना, उने सबका आचार-विचार श्रीर पेशातक एक ही था: सबमें परस्पर शादी-व्याह होता था। वैश्योंके अवान्तर भेद भी कही देख नहीं पडते। ये सब भीतरी भेद श्रीमच्छद्भराचार्यके अनन्तरके हैं; इस अनुमानके लिये स्थान भी है। बौद्ध धर्म-का उच्छेद हो चुकने पर जिस समय हिन्दू धर्मसमाजका पुनः सङ्गठन हुत्रा, उस समय प्रत्येक देश श्रीर प्रत्येक भाग-के निवासियोंको अन्य भागवालोंके खान-पान श्रोर वर्गाकी शुद्धताके सम्बन्धमें सन्देह होगया; इस कारण प्रत्येक जातिमें भीतरी भेद सन् ८०० ईसवीके लगभग हो गये, श्रौर ब्याह-शादीके बन्धनोंसे जकड़े रहनेके कारण वे भेद अवतक अस्तित्वमें । सारांश यह कि श्राजकल कनौ-जिया, महाराष्ट्र, गुजराती स्रादि ब्राह्मणें-के, अथवा राठौड़, चन्देल, मरहठा आदि त्तत्रियोंके या महेश्री, अगरवाल, मही-राष्ट्र त्रादि वैश्योंके जो भेद मौजूद हैं उनका निर्देश महाभारतमें नहीं है। महा-भारतमें तो बाह्मण, त्तत्रिय स्रोर वैश्य वर्ण-भेद-रहित थे। इसी तरह सङ्कर वर्ण भी सूत, मागध वग़ैरह एक ही थे: उनमें किसी तरहका भीतरी भेद नहीं देख पडता।

गोत्रोत्पत्ति।

जातियोंके इसी विषयसे सम्बद्ध एक श्रीर विषय है। शान्ति पर्वके २६वें श्रध्याय-में इसके सम्बन्धमें लिखा है कि—"शुरु ग्रुह्में चार ही गोत्र उत्पन्न हुए;— ब्रिङ्गरा, कश्यप, वसिष्ठ श्रोर भृगु । फिर उनके प्रवर्तकोंके कर्मभेदके कारण श्रीर श्रीर गोत्र उत्पन्न हुए, श्रीर तपः प्रभावके कारण वे गोत्र उन प्रवर्तकॉके नामसे प्रसिद्ध हो गये। समयकी गतिसे ज्ञाता लोग विवाह श्रादि श्रोत-सार्त विश्वियोंमें हत भिन्न गोत्रोंका अवलम्बन करने लगे।" इस अवतरणसे प्रकट होता है कि महा-भारतके पूर्वकालसे गोत्रोंकी प्रवृत्ति है श्रीर उनका उपयोग विवाह श्रादि श्रीत-स्मार्त कामोंमें होता था। किन्तु इस वर्णनमें जो बात कही गई है वह कुछ विचित्र सी है। आजकलकी धारणाके श्रनुसार ब्राह्मण, चित्रय श्रीर वैश्य तीनी वर्णों में प्रत्येक मनुष्यका एक न एक गोत्र होता है। चत्रिय और वैश्य परिवारोंके गोत्रोंकी परम्परा स्थिर है या नहीं, यह बात कदाचित सन्दिग्ध हो। किन्तु बाह्यणोंके अनेक भेदों में औत-स्मार्त आदि कर्म परम्परासे एकसे चले आ रहे हैं श्रीर उनमें गोत्रोचार सदैव होता है। अपरके श्रवतरणसे स्पष्ट होता है कि यह परमपरा महाभारतके समयसे भी पहले-तक जा पहुँचती है। किन्तु मूल गोत्र आजकल आठ समभे जाते हैं। पर उक्त वचनमें वे चार ही क्यों कहे गये हैं ? श्रीर, यह प्रश्न रह ही गया कि प्रवर्तकों के केवल कर्म-भेदसे गोत्र कैसे उत्पन्न होंगे। पाणिनिने गोत्रका शर्थ श्रपत्य किया है। त्व गोत्र-परम्परा भी वंश-परम्परा ही है। सप्तर्षि और अगस्ति यह श्राठ श्रार-म्मके गोत्र-प्रवर्तक हैं और इनके फुलमें श्रागे जो कोई विशेष प्रसिद्ध ऋषि हुए

उनके नाम गोत्रमें श्रीर जोड़ दिये गये। किन्तु यह बात कर्मभेदसे हुई नहीं जान पड़ती। हाँ, यह हो सकता है कि उनके तपके प्रभावसे उनके नाम भी चल निकले हो। श्रस्तः यह बात भी समक्षमें नहीं श्राती कि गोत्रका उचार और अवलम्ब काल-गतिसे चल पड़ा। इससे तो जान पड़ता है कि ऐसा भी एक समय था जब कि इसका अवलम्ब न था। यहाँ पर एक वात श्रोर कहने लायक है। सूर्यवंशी श्रोर चन्द्रवंशी चत्रियोंकी जो वंशावली दी गई है उसमें इन गोत्र-प्रवर्तकों के नाम नहीं हैं। फिर उन वंशोंके चत्रियोंको गोत्रोंके नाम कैसे प्राप्त हो गये ? इसके सिवा यह भी एक प्रश्न है कि कुछ ब्राह्मणांके कुल चन्द्र-वंशी चत्रियोंसे उपजे हैं : उनका सम्बन्ध उपरवाले गोत्रोंसे कैसे ज़डता है? विश्वा-मित्र चत्रिय है: ब्राह्मण वनकर उसने अपने पुत्रोंके द्वारा कुछ गोत्र प्रवृत्त किये हैं। उनका सम्बन्ध किस प्रकार जुड़ता है, यह भी देखने लायक है। खैर, ऊपरके श्रवतरणसे यह वात निर्विवाद सिद्ध होती है कि आजकल जो गोत्र-परम्परा है, वह श्रीर उसके उपयोगकी प्रवृत्ति महाभारत कालके पूर्वसे, अर्थोत् सन् ईसवीके प्रथम ३०० वर्ष पहलेसे हैं।

(२) आश्रम-व्यवस्था।

वर्ण-व्यवस्था जिस प्रकार हिन्दुस्तान-के समाजका एक विशेष अङ्ग है उसी प्रकार श्राश्रम-व्यवस्था भी एक महत्त्वका श्रङ्ग है। किन्तु दोनोंका इतिहास सर्वथा पृथक् है। यह तो देख ही लिया गया कि वर्ण-व्यवस्थाका प्रारम्भ होकर उसका विकास किस किस प्रकारसे हुआ; श्रीर यह भी देख लिया गया कि इस समय वर्ण-व्यवस्थाको श्रभेद्य श्रीर प्रचण्ड स्वरूप किस तरह प्राप्त हो गया है। श्राश्रम-व्यवस्थाका इतिहास इसके विप-रीत है। श्राश्रम-व्यवस्था। पहले श्रच्छी स्थितिमें थी, फिर धीरे धीरे उसका हास हो गया; श्रीर श्रब तो वह बहुत कुछ लुप्त-प्राय है। देखना चाहिए कि महाभारतके समय उसकी कैसी स्थिति थी।

जिस तरह वर्ण-व्यवस्थाका वीज प्रत्येक समाजमें होता है, उसी तरह बहुधा प्रत्येक श्राश्रम-व्यवस्थाका भी बीज समाजमें रहता है। हर एक समाजमें पेशेके श्रनुसार श्रलग श्रलग दर्जे होते हैं: श्रीर बहुत करके अपने अपने दर्जेमें ही शादी-व्याह होते हैं । किन्तु ऐसी वर्ण-व्यवस्थाको श्रभेद्य धार्मिक बन्धनका खरूप प्राप्त नहीं होता। इसी तरह प्रत्येक समाजमें यह कल्पना भी रहती है कि छोटी अवस्थामें मनुष्य विद्या पढ़े, तहण श्रवस्थामें गृहस्थी सँभाले और बुढ़ापेमें गृहस्थीके भगड़ोंसे निवृत्त होकर केवल ईश्वरका ,भजन श्रोर चिन्तन करे। किन्तु यह कल्पना धार्मिक बन्धनका चोला नहीं पहन सकती। श्रायौंने इस धारणाको भी अपने समाजमें स्थिरता प्रदान कर दी श्रीर वर्ण-व्यवस्थाकी तरह श्राश्रम-व्यवस्था धर्मकी बात मान ली गई। यह व्यवस्था तोन वर्णोंके ही लिए थी. श्रर्थात् श्रार्यं लोग ही इसके पावन्द थे। पहले यह निश्चय किया गया कि चारों श्राश्रमोंका पालन प्रत्येक श्रार्यवर्णीको करना चाहिये। आर्य लोगोंने अपने समाज-को अत्यन्त उक्त अवस्थामें पहुँचानेके लिए जो चतुराईके यल किये, उन्हींके फल ये आश्रम हैं। किन्तु इन आश्रमीका यथा-योग्य रीतिसे पालन करनेके लिये श्राध्यात्मिक नियह श्रीर सामर्थ्यकी श्राव-श्यकता है। इस कारण, श्रारम्भमें यद्यपि यह व्यवस्था अत्यन्त लाभदायक हुई, तथापि आधर्य नहीं कि धीरे धीरे इस श्राध्यात्मक सामर्थ्यके घटते रहनेसे

श्राश्रम-व्यवस्थामें श्रीरे धीरे न्यूनता श्रा गई हो। महाभारतमें श्राश्रम-व्यवस्थाका जो वर्णन है, पहले उसीका उल्लेख किया जाता है।

श्राश्रम चार हैं-व्रह्मचर्य, गाईस्थ वानप्रस श्रीर संन्यास। सात श्राठ साल-की अवस्थामें लड़केका, उपनयन संस्कार द्वारा, पहले श्राश्रममें प्रवेश होता है। इस श्राश्रममें रहकर विद्यार्जन करना होता है। इस सम्बन्धमें विस्तृत विवेचन आगे चलकर शिद्धा-विषयमें किया जायगा। यहाँ पर इतना कह देना काफी है कि गुरुके घर रहकर विद्यार्थी विद्याभ्यास करे श्रीर भिचासे निर्वाह करे। यस, यही नियम था। बारह अथवा और भी अधिक वर्षतक विद्याभ्यास किया जाता था। ब्राह्मण, ज्ञिय श्रीर वैश्य तीनों वेद-विद्या पढकर अपना अपना इनर सीखते थे। वारह * वर्षके श्रनन्तर ब्रह्मचर्य सम्पूर्ण कर, गुरुकी आज्ञासे गृहसाश्रम सीकार करनेका नियम था। इस गृहस्थाश्रमका मृष्य नियम यह था कि विवाह करके प्रत्येक मनुष्य अपनी अपनी गृहस्थीका काम करे, श्रीर श्रक्षिकी सेवा तथा श्रतिथि की पूजा करके कुट्म्बका पालन करे। गृहस्थाश्रमके कर्तव्य विस्तारसे कहे गये हैं: उनका उल्लेख श्रागे होगा। गृहस्थाश्रम सम्पूर्ण करके गृहस्थी बाल-वचोंको सींप दे और श्राप वनमें चला जाय। स्री जीवित हो तो उसे साथ लेता जाय श्रीर वनमें रहकर चौथे आश्रममें जानेके लिये धीरे धीरे तैयार होता रहे। यह वानप्रस अर्थात् वनमं प्रस्थित मनुष्यकी स्थितिका तीसरा आश्रम है। और, इस प्रकारसे जब कुछ वर्षोमें दैहिक क्लेश सहनेके लिये

* उपनिषदोंमें भी यहां मर्यादा देख पड़ती हैं, "स हैं द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विशतिवर्षः सर्वान् वेदानधीत्य मही-भना प्याये!" छां० ६ सं० प्रपा० ६ मन तैयार हो जाय तव, परमेश्वरका विन्तन करनेमें आयु वितानके लिये, जो बीधा आश्रम श्रहण किया जाय वहीं संन्यास है। चारों आश्रमोंका यही स्थूल सक्रप था।

श्रव देखना चाहिये कि श्राथमोंके वर्णनमें अपर जो बातें लिखी गई हैं उनका वास्तवमें उपयोग होता था या नहीं: श्रीर महाभारतके समय किन किन लोगों-को उनका पालन करनेकी श्रनुमित थी। महाभारत श्रीर उपनिषद्कि श्रनेक वर्गानींसे देख पड़ता है कि गुरुके घर रह-कर ब्रह्मचर्याश्रममें विद्या प्राप्त करनेका काम पूर्व समयमें बहुधा ब्राह्मण विद्यार्थी किया करते थे । ऋषियोंके यहाँ वड़ी बड़ी शालाएँ होती थीं। उनमें ब्राह्मण विद्यार्थी श्रपना उदर-निर्वाह भिज्ञा द्वारा श्रथवा श्रन्य रीतिसे करके, विद्याभ्यास करते थे। महाभारतसे ठीक ठीक पता नहीं लगता कि चत्रियों अथवा वैश्योंके बालक विद्या पढ़नेके लिये गुरुके घर जाते थे या नहीं। हरिवंश श्रीर भागवतमें वर्णन है कि उज्जैनमें गुरुके वर रहकर श्रीकृष्णने विद्या पढ़ी थी। पाएडवीं श्रीर दुर्योधन श्रादिने तो श्रपने घर पर ही विद्या पढ़ी। विद्या पढ़ानेके लिये दोणाचार्यजी इनके घर ही एख लिये गरे थे। ब्रह्मचर्याश्रमका एक मुख्य भाग, अर्थात् गुरुके घर रहना, घट गया थाः थौर उसके वदलेमें यह दूसरी रीति चल पड़ी थी। धीरे धीरे भिन्न भिन्न चित्रयों श्रीर वैश्योंमें ब्रह्मचर्याश्रमकी महत्ता घट गई श्रीर महाभारतके समय श्राजकलकी तरह सिर्फ़ उपनयन संस्कार वाक़ी रह गया होगा। अव गृहस्थाश्रमको देखना है। गृहस्थाश्रमकी मुख्य विधि विवाह है जिसका लुप्त होना कभी सम्भव नहीं। वह तो सब वर्णों में और सभी जातियों में

है ही । उसके विषयमें विशेष कुछ कहना नहीं है । किन्तु गृहस्याश्रमका दूसरा पुरुष भाग था श्रक्षिकी सेवा करना। अग्निका आधान करके नित्य यजन करना गृहस्थाश्रमका मुख्य कर्तव्य है। जान पड़ता है कि इस कामको ब्राह्मण लोग बहुधा किया करते थे। यह कहनेमें भी कोई हानि नहीं कि दात्रिय भी किया करते थे। महाभारतमें लिखा है कि श्रीकृष्ण जब समसौता करने के लिये गये तब, विदुरके घर,-सभामें जानेके पहले-सबेरे नहा धोकर उन्होंने जप-जाप्य किया और फिर ग्रिशमें श्राहुति दी। (उ० अ० ६४) लिखा है कि वसुदेव-का देहान्त होने पर उसका कियाकर्म करते समय एथके शागे श्रश्वमेध-सम्बन्धी छत्र श्रीर प्रदीप्त श्रप्ति पहुँचाये गये थे। इसी प्रकार पाएडव जब वनवासमें थे तव उनके गृह्याश्चिका सेवन नित्य होते रहनेका वर्णन है। जिस समय पाएडव महाप्रस्थानको गये, उस समय उनके गृह्याशिको जलमें विसर्जन कर देनेका वर्णन है। सारांश यह कि भारती युद्धके समयके सभी चित्रय गृहाग्नि रखते थे। यह बात विलकुल स्पष्ट है। यह बतलाने-के लिये कोई साधन नहीं कि महाभारत-कालमें अर्थात् सीतिके समय क्या व्यवस्था थी। तथापि यह मान लेनेमें कोई हानि नहीं कि जब श्रिशिकी सेवा बड़ी भज्भरः की हो गई थी तब श्रनेक चत्रिय श्रग्नि-विरहित हो गये होंगे। यह बात भी नहीं कि सभी ब्राह्मण श्रक्ति-सेवा किया करते थे; उनमेंसे कुछ लोगोंने इसे छोड़ दिया होगा। कहा गया है कि श्रग्निन रखने-वाले ब्राह्मणांके साथ ग्रद्रका सा बर्ताव किया जाय। श्रव रह गया गृहस्थाश्रमका तीसरा ग्रङ्ग ग्रतिथि-सेवा, सो इसे सभी करते थे। गृहस्थाश्रमका दरवाजा सबके लिये खुला था और कितने ही ब्राह्मण तथा त्तत्रिय उसका यथा-शास्त्र पालन किया करते थे। श्रब हम वानप्रश्वका विचार करते हैं। वनमें जाने श्रीर तपश्चर्या करनेका श्रिश्विकार तीनों वर्णोंको था श्रीर तीनों वर्णीवाले वानप्रस्थ हुआ करते थे। धृत-राष्ट्रके घनमें जानेका वर्णन है। कहा गया है कि भृतराष्ट्र अपनी पत्नी और कुन्तीके साथ वनमें तप करने गये थे। रामायणुमें एक वानप्रस्थ वैश्यका भी वर्णन है। वनमें जाकर ब्राह्मणोंके तप-श्चर्या करते रहनेके सेंकड़ों उदाहरण महा-भारतमें हैं। गृहस्थीका श्रनुभव हो चुकने पर और उससे छुटी पाकर वनमें जाने-की इच्छा होना साहजिक ही है; और ईश्वरने जिनको अच्छी उम्र दी है उनके लिये ही वनमें जाना सम्भव है। श्रर्थात् वानप्रसोंकी संख्या सदा थोड़ी रहेगी। तथापि तीनों वर्णोंको वानप्रस्थका श्रिध-कार था: श्रीर यह भी कह सकते हैं कि महाभारतके समयतक वानप्रस्थ लोग होते थे। महाभारतसे यह स्पष्ट नहीं होता कि शूद्रको वानप्रस्थकी मनाही थी: किन्त शान्तिपर्वके ६३वे श्रध्यायमें कह दिया गया है कि राजाकी श्राहासे शुद्रको सभी श्राश्रमोंका श्रधिकार है। रामायणमें. तपश्चर्या करनेवाले शहके रामके हारा दंडित होनेकी कथा है। इससे प्रतीत होता है कि श्ट्रोंको इस आश्रमका श्रिध-कार न था। सच तो यह है कि आश्रमधर्म तीन वर्णोंके लिये ही कहे गये हैं। अब धीथे आश्रमका विचार किया जाता है।

संन्यास किसके लिए विहित है।

भारती आयोंकी मानसिक प्रवृत्ति पहलेसे ही संसार-त्याग अर्थात् संन्यासकी ओर है। इस सम्यन्धमें, उनमें और पाधात्योंमें बड़ा फ़र्क़ है। विरक्त होकर, केवल परमेश्वर-चिन्तन करनेका काम श्रनेक भारती श्रायोंने करके, वेदालके सदश तत्वज्ञानका उपदेश संसारको किया है। बुढ़ापेमें संसारमें ही चिमटेरह कर-श्रनेक संसारी विषय-वासनाश्रीम देह दुर्वल हो जाने पर भी-मनको लोटने देनेकी श्रपेत्रा, उन्हें श्रायुका बचा हुआ श्रंश इन्द्रियद्मन करके वेदान्तविचारों विताना कहीं श्रधिक श्रच्छा जँचता था। इस मतलबसे श्रायाँने संन्यास श्राथमको प्रचलित किया था। प्राच्य और प्रतीच्य सभ्यतामें जो फर्क था और है, वह यही है। हिन्द्रस्थानमें जिस तरह केवल भिना माँगकर गुजर करनेवाले श्रीर वेदाला ज्ञानका विचार करनेवाले संन्यासी सैंकडाँ पाये जाते हैं वैसे और कहीं नहीं पाये जाते: न तो पारसियोंमें हैं श्रोर न यूरोपि यन लोगोंमें ही। प्राचीन कालसे ही संन्या-साश्रम भारती श्रार्य-समाजका विशेष श्रलङ्कार है। श्रारम्भमें इस श्राथमका अधिकार तीनों वर्णोंको था । गृहस्थीके दुःखसे भुलसे हुए ग्रद्धको भी, वेदाल-ज्ञानका आश्रय लेकर, श्रपना श्रवशिष्ट जीवन सार्थक कर लेनेकी इच्छा होना खाभाविक है। प्राचीन कालमें शुद्र भी वेदान्त-ज्ञानके अधिकारी थे, उन्हें चौथे श्राश्रमका अधिकार था। परन्त श्रागे चलकर संन्यास आश्रमके कठिन धर्मका पालन ब्राह्मणोंके सिवा श्रीरोंके लिये एक तरह श्रसम्भव होने लगाः इस कारण प्रश्न हुआ होगा कि अन्य वर्णोंको संन्यास लेनेका अधिकार है या नहीं। शान्तिपर्वके ६१ वे अध्यायमें कहा है कि संन्यास लेनेका श्रियकार ब्राह्मणोंको ही है। परन्तु ६३ वें अध्यायमें कहा गया है कि—"वह श्द्र भी तीन वर्णोंकी ही योग्यताका है श्रीर उसके लिये सब श्राश्रम विहित हैं, जो पुराण आदिके द्वारा वेदाल

सुतनेकी इच्छा करता हो, त्रिवर्ण-सेवा रूपी स्वर्म यथाशकि कर चुका हो, जिसके सन्तान हो चुकी हो श्रीर राजाने जिसको श्राह्म दे दी हो।" सारांश "जिस श्रुद्रने खर्धर्मका श्राचारण किया है उसके लिये, वैश्य श्रौर चत्रियके लिये संन्यासाश्रम विहित है।" यह अचरजकी बात है कि ग्रद श्रीर वैश्यको राजाकी श्राज्ञा प्राप्त करके संन्यासाश्रम लेनेको कहा गया है। "तत्रियको भी तब संन्यास लेनेमें कोई हानि नहीं जब कि वह सब कर्म करके पुत्रको अथवा स्रोर किसी अन्य गोत्री सत्रियको राज्य अर्पण कर दे।" वेदान्तको सुननेके लिये ही राजा भिचाबृत्तिका श्रवलम्ब करे, सिर्फ़ भोजन-प्राप्तिकी इस्हासे उसको इस वृत्तिका अवलम्ब न करना चाहिये। टीकाकारका कथन है कि "संन्यासाश्रम रूपी कर्म ब्राह्मणींको होड अन्य चत्रिय आदि तीनों वर्णीके लिये नित्य नहीं, प्रत्युत अन्तःकरणके लिये विद्येप करनेवाले कर्मका त्याग कर देना काम्य-संन्यास है और यही उनके लिये विहित है।"

यह विषय महत्त्वपूर्ण किन्तु वादयस्त है, इसलिये मूल वचनों समेत यहाँ उद्धृत करने लायक है। शान्तिपर्वके ६१ वें अध्यायमें प्रारम्भमें यह श्लोक है—"वान-प्रस्थं मेच्यचर्य गार्हस्थ्यं च महाश्रमम्। बह्मचर्याश्रमं प्राहुश्चतुर्थं बाह्मणैर्वतम्॥" इसमें मेच्यचर्यसे मतलब संन्यास है और वह चतुर्थं श्राश्रम बाह्मणोंके द्वारा वृत श्र्यात् श्रङ्गीकृत है। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वह श्रौरोंके लिये वर्ज्य है। इसका श्रौर श्रधिक खुलासा ६३ वें श्रध्यायमें कर दिया गया है। "यश्च त्रयाणां वर्णाना-मिच्छेदाश्रमसेवनम्। चातुराश्रम्ययुक्तांश्च धर्मोस्तान् श्रुणु पारड्य ॥११॥ यह कह-कर फिर कह दिया है कि शृद्धको राजाकी

श्राज्ञा मिल जाने पर श्रीर सब काम हो चुकने पर फिर श्रधिकार है। "श्राश्रमा विहिताः सर्वे वर्जयत्वा निराशिषम्। भैद्यचर्यां ततः प्राहुस्तस्य तद्धर्मचारिणः॥ तथा वैश्यस्य राजेन्द्र राजपुत्रस्य चैव हि" ॥१४॥ अर्थात् राजपुत्र अथवा जन्त्रिय-के लिये भैच्यचर्य संन्यासाश्रमकी कोई रोक टोक नहीं। वैश्यके लिये "कृतकृत्यो वयोतीतो राज्ञः कृतपरिश्रमः । वैश्यो यच्छेदनुशातो नृपेणाश्रमसंश्रयम् ।" इसके द्वारा राजाकी श्राज्ञा श्रावश्यक वतलाई गई है: परन्त ज्ञियको तो इसकी भी ज़रूरत नहीं। श्रागे बतला दिया गया है कि राजाको चतुर्थ आश्रम कव लेना चाहिये। "राजर्षित्वेन राजेन्द्र भैच्यचर्या न सेवया। अपेतगृहधर्मोऽपि चरेजीवित काम्यया ॥" इस स्रोकमें राजाके लिये भैच्यचर्या मक्त कर दी गई है। तथापि यह भी वर्णन है कि राजधर्म अर्थात प्रजापालनधर्म सबमें श्रेष्ठ है: इस धर्मको करनेवाले राजाको सब श्राश्रमोंका फल मिलता है। यह वर्णन वहुत ही ठीक है। "महाश्रयं बहुकल्याणुरूपं न्नात्रं धर्म नेतरं प्राहुरार्याः। सर्वे धर्मा राजधर्म-प्रधानाः सर्वे वर्णाः पाल्यमाना भवन्ति ॥" इत्यादि राजधर्मकी स्तुति ठीक ही है।

समग्र वचनोंसे माल्म होता है कि
महाभारतके समयतक यह नियम न हुआ
था कि संन्यासका अधिकारी ब्राह्मण वर्ण
ही है। तथापि जान पड़ता है कि उस
समय ऐसा आग्रह उत्पन्न हो गया था,
क्योंकि अनेक ब्राह्मण-संन्यासी शास्तमार्गविहित रीति द्वारा संन्यास-धर्म
खीकार करते और संन्यासके विशेष
धर्मका पालन करते थे; किन्तु अन्य वर्णोके लोग योग्य रीतिसे संन्यास-आश्रम
ग्रहण न करके संन्यासका निरा वेष बना
लेते थे। और कितने ही श्रद्र तो अपनी

गुज़र करनेके लिये ही भिज्ञावृत्तिका श्रयलम्ब कर लिया करते थे। ध्यान देने योग्य है कि भिन्ना माँगनेका श्रिधिकार सिर्फ़ संन्यासीको ही था, श्रीर किसोको नथा। कुछ श्रालसी ग्रुद्र भी भिन्नु या संन्यासी बन जाते थे; श्रौर इसीसे यह आग्रह उत्पन्न हो गया होगा कि अन्य वर्गके लोग संन्यास न लें। यह तो निर्विवाद है कि संसारसे पराङ्मुख रहनेकी श्रायोंकी प्रवृत्तिके कारण सभी वर्णोंके अनेक लोग संन्यासी हुआ करते थे। महाभारतके समयतक सैंकड़ों संन्यासी वनमें रहकर तस्व-विवेचन किया करते थे। सिकन्दर बादशाहको पञ्जाबमें श्रनेक निरीच्छ तत्त्ववैत्ता पुरुष मिले थे जो कि परमहंसकपसे जङ्गलमें रहते थे। इस बातसे सिद्ध होता है कि महाभारतके वर्णान काल्पनिक नहीं, बल्कि प्रत्यस स्थितिके हैं। बौद्ध धर्मने तो संन्यास-आश्रमको अपने पन्थमें अग्र स्थान दिया था और सभी वर्णोंके लिये यह आश्रम खोल दिया था। इस कारण हज़ारों शृद बौद्ध संन्यासी-भिचु-वन गये श्रीर उन्होंने बौद्धधर्मको अवनत दशामे पहुँचा विया। इसंका विचार आगे होगा।

संन्यास-धर्म।

संन्यास आश्रमके उद्दिष्टके सम्बन्धमें अर्थात् ब्रह्मनिष्टाका वत योग्य रितिसे जारी रहनेके लिये संन्यासाश्रमी मनुष्यको जिन जिन धर्मोंका पालन करना आव- श्यक था, उनके सम्बन्धमें ही स्ट्रम नियम पहलेसे मौजूद थे। "उसे सब अंशोंमें द्यापूर्वक वर्ताव करना चाहिये, सब इन्द्रियोंको काबूमें रखकर मननशील रहना चाहिये। किसीसे विना माँगे, और स्वयं रसोई बनानेके भगड़ेसे दुरु रहकर अगर कुछ भोजन मिल जाय

तो उसे ग्रहण कर ले। मध्याह कालतक यदि कुछ भी न मिले तो ऐसे घरोंमें भिना माँगे जहाँ सब मनुष्य भोजन कर चुके हों और जहाँ रसोईघरमें धृश्राँ भी न निकलता हो। मोच्चिद् मनुष्यको ऐसी जगह भिना न माँगनी चाहिये जहाँ श्रादरपूर्वक सब तरहसे रसीले खादिए भोजन मिलें। भिचा माँगनेको निकले तो किसी भिच्नकी भीखमेंसे न लें। एकाल स्थानमें सदा विचरे। सूने घर, जङ्गल वृत्तकी छाया या नदी किनारेका अवलस करे। गर्मियोंके मौसिममें एक स्थान पर एक ही दिन ठहरे। बरसातमें, यदि आवश्यकता हो तो, एक ही जगह ठहरा जा सकता है। सूर्य जो मार्ग बतलावे (जहाँ रास्ता समभ पड़े) वहाँ घूमे फिरे, संग्रह विलकुल न करे और मित्रोंके साथ न रहे। जलमें उतरकर स्नान न करे। शिल्पका काम करके गुज़र न करे। श्राप ही-विना पूछे ही-किसीको उपदेशन करे। साथमें सामान भी न रखे। प्राणिमात्रमें समभाव रखे। पिछ्ली वातोंके लिये शोक न करे। केवल प्रस्तुत वातकी भी उपेचा करे। इस प्रकारका जो निराशी, निर्गुण, निरासक्त, श्रातमसङ्गी श्रीर तत्त्वज्ञ है वह निःसन्देह मुक्त होता है।" इत्यादि वर्णन अनुगीतामें हैं (आश्व॰ त्र० ४६)। इस वर्गानमें संन्यास त्राश्रमः के जो कर्तव्य सनातन धर्मने निर्दिष्ट कर दिये हैं, उनमेंसे अधिकांशका बौद्ध संन्या सियोंने त्याग कर दिया श्रोर यह देख पड़ेगा कि कर्तव्य त्याग देनेके कारण वौद्ध भिचुत्रोंकी आगे चलकर अव नति हो गई।

पहली जबरदस्त भूल यह हुई कि बौब संन्यासी एकान्तमें रहना छोड़ सङ्घ बना कर रहने लगे। सङ्घमें तरह तरहकी दु^{ष्ट} कल्पनाएँ प्रचलित होती हैं। उच्च-नीचकी भाव उपजता है, और पमेश्वरका भजन तथा श्रात्माका चिन्तन करना तो जाता है हुट, सङ्घके श्रधिपति होनेकी महत्त्वाकांचा उत्पन्न हो जाती है। 'संन्यासीको सने घर या अरगयका आश्रय महण करना चाहिये' इस प्राचीन नियमको छोडकर बौद्ध लोग बड़े बड़े सङ्घारामों में रहने लगे। राजा लोग उस समय इनके लिये सङ्घा-राम बनवा देते थे। इन खानोंमें रहनेके कारण उन्हें ऐश-श्रारामकी श्रादत पड गई। प्राचीन नियम था कि संन्यासीको एक गाँवमें एक दिनसे अधिक न रहना चाहिये: इसके बदले बौद्ध संन्यासी लोग भिन्न भिन्न गाँवोंके समीप सङ्घारामोंके निवासी हो गये। संन्यासीको वहीं भिन्ना माँगने-के लिये जाना चाहिये जहाँ आब भगत-के साथ भिना न मिले। किन्तु बौद्ध भिन्न इसके बिलकुल विपरीत धनवान् उपा-सकोंके यहाँ दावतें उड़ाने लगे। संन्यासी-कोन तो द्रव्य-संग्रह करना चाहिये और न सामान जमा करना चाहिये। परन्तु सङ्घा-रामके बौद्ध भिन्नु लोग सङ्घारामकी व्यवस्थाके लिए जागीरमं बड़े वड़े गाँव श्रीर जमीन लेने लगे। मतलब यह कि सनातन-धर्मी संन्यासियोंके जो आवश्यक श्रीर कड़े नियम थे, उनको छोड़कर बौद्ध भिचुत्रोंका मानों पेट भरने श्रथवा जागीरके मालिक वननेका पेशा हो गया। इस कारण बौद्ध संन्यास बहुत जल्द हास्यास्पद् वन गया । इसी प्रकारकी श्रव-नित श्रागे चलकर सनातन धर्ममें भी हुई श्रीर पुराणींने कलियुगमें संन्यास लेनेकी मनाही कर दी।

यह इतिहास महाभारतके वादका है। यह माननेमें कोई ज्ञति नहीं कि संन्यासके लिए ब्रावश्यक कठोर नियम महाभारतके समय ब्रह्मज्ञ वर्ते जाते थे। इसमें सन्देह नहीं कि 'यब सायंग्रहों-

मुनिः - जहाँ सायङ्काल हो वहीं उहर जानेवाले मृति या संन्यासी प्राचीन समयसे लेकर महाभारत कालतक पाये जाते थे। सनातनी संन्यासियोंके कपड़े भगवे रङ्गके होते थे और वौद्धींने अपने संन्यासियोंको पीलेवस्त्र दिये। भगवे वस्त्र धारणकर ठगींका पेशा करनेवाले लोग भी महाभारतके समय थे। यह बात उस नियमसे सिद्ध होती है जिसमें कहा गया है कि राजा लोग भिन्न भिन्न स्थानी पर संन्यासीके वेषमें अपने गुप्तचरीको भेजें। महाभारतके समय स्त्रियोंके संन्यास लेनेके भी उदाहरण हैं। उपनिषदों में जिस तरह गार्गी श्रीर वाचकवी श्रादि तत्त्वशा ब्राह्मण स्त्रियाँ वर्णित हैं, उसी तरह महा-भारतमें सुलभा नामकी एक संन्यासिनी-का भी वर्गान है। जनकके साथ उसने जो वक्तृत्व-पूर्ण और तत्त्वज्ञान-पूर्ण संवाद किया, उसका वर्णन शान्ति पर्वके ३२०वें श्रध्यायमें है। संवादके श्रन्तमें उसने कहा है कि में चत्रिय-कन्या हूँ: मुक्ते योग्य पति नहीं मिला, इस कारण गुरुसे मैंने मोज्ञशास्त्रकी शिज्ञा ग्रहण करके नैष्टिक ब्रह्मचर्यका आश्रय लिया है: श्रोर में यति-धर्मसे रहती हूँ । सारांश यह कि प्राचीन कालमें चत्रिय-स्त्रियाँतक विवाह न करके एकदम संन्यास ले लिया करती थीं। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि महा-भारतके समय इसका चलन न रहा होगा, क्योंकि ब्रारम्भमें ही यह बात कह दी गई है कि सुलभा सत्ययुगकी है।

यह एक महत्त्वका प्रश्न है कि मोच-धर्मकी प्राप्त संन्यास श्राश्रममें हो है या श्रन्य श्राश्रमोंमें भी। इसी प्रश्न पर जनक-सुलभाका सम्बाद दिया गया है। उसका निर्णय निश्चयात्मक नहीं है। फिर भी उसका श्राश्य यह माल्म होता है कि मोचकी श्रोर ले जानेमें संन्यास ही समर्थ है। इस विषयका विवेचन अन्य स्थान पर होगा। इस संवादमें संन्यासके ऊपरी लच्चण ये बतलाये गये हैं:-भगवे कपड़े, घुटा हुआ सिर, त्रिद्गड धारण करना श्रीर कमराडलु लेना। इसके सिवा यह भी कहा गया है कि संन्यासी लोग अन्य श्राश्रमोंके धर्मका श्राचरण न करें। श्रीर यदि संन्यासी फिर गृहस्थाश्रमी हो जाय तो पतित होगा, श्रर्थात् श्रार्यं लोगों-के समाजसे भ्रष्ट हो जायगा। उस समय यही धारणा थी। इस सम्बन्धमें धर्मशास्त्र श्रोर वेदान्त सत्रमें भी ऐसे ही परिणाम कहे गये हैं। जिस प्रकार वर्णसङ्कर एक. श्रति निन्द्य श्रीर भयद्वर प्रसङ्ग माना जाता था, उसी प्रकार आश्रम-सङ्करको भी लोगं भयद्वर समभते थे। इस सुलभा-जनक संवादमें इसी श्राश्रम-सङ्करका भयङ्कर पातक वर्णित है। जिस तरह नीचेवाले वर्णोंका उच्च वर्णकी स्त्री ग्रहण करना निन्च समभा जाता था, उसी तरह उच्च श्राश्रमसे नीचेके उतर श्राना भी निन्दा माना जाता था। इस कारणसे भी सनातनधर्मके संन्यास-का पालन करना श्रत्यन्त कठिन था।

गृहस्थाश्रमका गौरव।

ब्रह्मचर्य, गाईस्थ्य, वानप्रस्थ और संत्यास चारों श्राश्रम यद्यपि एकसे एक श्रिष्ठक श्रेष्ठ माने गये हैं, तथापि गृहस्था-श्रमका गौरव सब श्राश्रमोंसे श्रिष्ठक है। शान्ति पर्वके २४३वें श्रध्यायमें इसका वर्णान है। गृहस्थाश्रमीको विवाह करके श्रम्याधान करना चाहिये और गृहस्था-श्रमके योग्य श्राचरण करना चाहिये। असके योग्य श्राचरण करना चाहिये। अहाँतक हो सके, गृहस्थाश्रमीको यजन, श्रध्ययन श्रीर दान इन तीन कर्मोंका ही श्राचरण करना चाहिये। गृहस्थाश्रमीको कभी सिर्फ श्रपने ही उपयोगके लिये न तो रसोई बनानी चाहिये और न पशुत्रोंकी व्यर्थ हिंसा करनी चाहिये। दिनको, रातक पहले श्रीर पिछले पहर वह सोवे नहीं। सवेरे श्रोर शामके सिवा वीचमें भोजन न करे। ऋतुकालके सिवा स्त्रीको शया पर न बुलावे । श्रतिथिका सदैव खुब सत्कार करे। दम्भसे जटा श्रीर ना वढाकर स्वधर्मका उपदेश करनेवाले और श्रविधिसे श्रग्निहोत्रका त्याग करनेवाले परुषका भी गृहस्थाश्रमीकी रसोईमें श्रंश रहता है। ब्रह्मचारी श्रीर संन्यासी श्रपने घर रसोई नहीं बनाते: उन लोगोंको गृहस्थाश्रमी भोजन दे। उसे सदैव 'विधस' श्रीर 'श्रमत' का भोजन करना चाहिये। यज्ञके बचे हुए होम-द्रव्यको 'श्रमृत' कहते हैं, श्रोर पोष्य वर्गके खा-पी चुकने पर जो रसोई वच जाती है, उसे 'विघस' कहते हैं। अर्थात, गृहस्थाश्रमीका धर्म है कि यह करके ब्रह्मचारी, संन्यासी, श्रतिथि, छोटे छोटे बच्चे, श्रोर नौकर-चाकर आदिको पहले थाली परोस दे, तब पीछेसे श्राप भोजन करे। इस प्रकार सब श्राश्रमों का श्रीर पोष्यजनोंका पोषणकर्ता होनेके कारण गृहस्थाश्रमकी योग्यता सबसे श्रेष्ठ है। गृहस्थाश्रमीको खतन्त्र व्यवसाय करके द्रव्योपार्जन द्वारा त्रथवा राजासे याचना करके जो दृष्य मिले, उससे यज्ञ यागादि किया और कुटुस्वका पालन करना चाहिये। कुछ लोगोंके मतसे गृहस्थाश्रममें ही रहकर श्रन्ततक कर्मयोग करते जाना चाहिये, अर्थात् इसी आश्रममें उन्हें मोत्त मिल जायगा । किंबहुना, प्रत्येक श्राश्रमका यथाविधि आचरण करते करते उसी श्राश्रममें सद्गति मिल सकती है। इसके लिये श्राश्रम-धर्मका यथायोग्य सेवन होना चाहिये। गृहस्थाश्रमका यथाविधि सेवन करना बहुत कठिन है। इस आश्रमके जी तियम उपर लिखे गये हैं उन पर ध्यान देनेसे यह बात सहज ही समभमें श्रा आयगी। गृहस्थाश्रमके द्वारा धर्म, श्रर्थ, काम श्रीर मोच चारों पुरुषार्थ सध सकते हैं। परन्तु उत्तम यही है कि पुत्र-की काम-काज सोंपकर बुढ़ापेमें वान-ग्रस्थ श्रीर संन्यासकी श्रोर बढ़ जाय। महाभारतकारका ऐसा ही मत देख गड़ता है।

(३) शिचा-पद्धति।

प्राचीन कालमें हिन्दुस्तानमें किस तरह-की शिजा-पद्धति थी ? गुरु-शिष्य-सम्बन्ध कैसा रहता था ? साधारण लोगोंको कैसी शिचा दी जाती थी? चत्रियोंको का सिखलाया जाता था ? स्त्रियोंको का सिंखलाया जाता था ? राजकुमारोंको किस तरह श्रीर क्या सिखलाते थे? लोगीं-को रोजगारकी शिचा कैसे मिलती थी? रत्यादि प्रश्नी पर इसी प्रकरणमें विचार करना है। यह तो प्रकट ही है कि इस सम्बन्धकी तमाम वातें-पूरी जानकारी-केवल महाभारतमें नहीं मिल सकती। तथापि भिन्न भिन्न स्थानीके उल्लेखींसे रस सम्बन्धमें बहुतसा ज्ञान प्राप्त हो सकता है श्रीर उसे एकत्र करके इसी (वर्णाश्रमके) प्रकरणमें इस विषयकी चर्चा करना है।

पहली बात यह है कि प्राचीन समयमें लोगोंको शिचा देनेका काम ब्राह्मणोंने अपने ज़िम्मे ले रखा था। वर्ण-व्यवस्थामें जो अनेक उत्तम नियम थे, उनमें एक यह भी नियम था कि—'सिखानेका काम बाह्मण करें'। ब्राह्मणके आद्य-कर्त्तव्यों और अधिकारों में अध्यापन और अध्ययन थे। सब प्रकारकी शिचा देनेकी योग्यता बाह्मण स्वयं अध्ययन करके, सम्पादित करें और फिर उसके अनुसार वे सबको

शिचा दें। प्राचीन कालमें यह बन्धन था। न सिर्फ़ धार्मिक शिचा ही बल्कि श्रन्यान्य व्यवसायोंकी शिचा भी ब्राह्मणोंको ही देनी चाहिये श्रीर यह निर्विवाद है कि वे देते रहते थे। यद्यपि उस समय शिचा-दान राजाका कर्म माना जाता था, तथापि उसका यह मतलव न था कि सर-कारी मदरसे खोलकर राजा इस कामको करे। इसका अर्थ यह था कि राजा ब्राह्मणोंकी जीविकाकी चिन्ता रखे। ब्राह्मणोंके निर्वाहकी फिक्र करना समाज-का कर्तव्य था और ऐसा कर्तव्य पूर्ण करनेकी दृष्टिसे दान लेनेका अधिकार केवल ब्राह्मणोंको दिया गया था सही: परन्त जहाँ इस प्रकारसे उनकी गुजर न होती हो, वहाँ यह नियम था कि उनकी श्रावश्यकताएँ राजाको पूर्ण करनी चाहिएँ।यह बात सिर्फ स्वकर्मनिष्ठ ब्राह्मणीं-के ही लिए थी, मामूली लोगोंके लिये नहीं। महाभारतमें लिखा है कि और ब्राह्मण तो 'ब्राह्मणक' हैं: राजाको उनके साथ शद्भवत्, व्यवहार करना चाहिये। प्राचीन कालमें इस प्रकार शिलाकी व्यवस्था श्रत्यन्त उत्तम थी श्रौर समाजमें स्वार्थ-त्यागकी पद्धति पर शिक्तकोंका एक स्वतन्त्र वर्ग ही तैयार रहता था। यह बात गुलत है कि ब्राह्मणोंने प्राचीन-कालमें लोगोंको श्रज्ञानमें रखाः बल्कि उनके सम्बन्धमें श्रादरपूर्वक यह कहना चाहिये कि सब लोगोंको शिक्ता देनेका काम उन्होंने श्रपने जिम्मे ले रखा था।

जैसा कि ऊपर लिखा गया है, प्राचीन कालमें शिचा-वानके लिये सरकारी मद-रसे न थे। प्रत्येक ब्राह्मणका घर ही विद्या पढ़नेके लिये स्कूल था। चाहे जिस गुरु-के घर जाकर विद्यार्थी लोग अध्ययन किया करते थे; श्रीर यह भी नियम था कि गुरु श्रापने घर पर विद्यार्थीको पढ़ावे। प्राचीन वर्गा-यवस्थामें जिस प्रकार शिलकोंकी सुबिधा कर दी गई थी, उसी प्रकार वर्ण-च्यवस्थामें यह भी नियम था कि त्रिवर्णके प्रत्येक बालकको विद्या श्रवश्य पढ़नी चाहिये । श्राजकल हम लोग श्रनिवार्य शिचा देनेके प्रश्न पर विचार कर रहे हैं: परन्तु प्राचीन कालमें वर्ण-व्यवस्थाने ही इसे हलकर दियाथा। यह प्राचीन नियम था कि प्रत्येक ब्राह्मण, ज्ञिथ श्रीर वैश्यको विद्या श्रवश्य सीखनी चाहिये। इस बातकी सक्ती थी कि गुरुके घर जाकर त्रिवर्ण-के प्रत्येक बालकको विद्याभ्यास करना चाहिये; श्रौर इस कामके तिये उस समय उपनयन संस्कार धर्ममें मिलाकर प्रचलित कर दिया गया था। विद्या पढ़नेके लिये प्रत्येक बालकको गुरुके घरमें कुछ समय-तक रहना पड़ता था। श्रव तो उपनयन संस्कारका निरा संस्कार-स्वरूप रह गया है और उसका जो मुख्य काम था वह लुप्तपाय है। किन्तु महाभारतके समय यह हाल नहीं जान पड़ता। कमसे कम भारती-कालके प्रारम्भमें तो नहीं था। गुरु-गृहमें रहकर विद्या-सम्पादन करनेकी प्रत्येक लडकेके लिये प्राचीन कालमें सखी थी। हाँ, यह बात सच है कि यह शिचा मुख्यतः धार्मिक होती थी। किन्तु यह भी निर्विवाद है कि वेद-विद्या सिखाई जाकर श्रन्य विद्याएँ भी पढ़ाई जाती थीं। श्रोर, साधारण रूपसे, सभी तरहकी शिला एक ही गुरुके घर मिल जानेका प्रवन्ध्र था। इस प्रकारकी शिलाके लिये कमसे कम बारह वर्ष लगते थे। परन्तु कुछ स्थानों पर इससे भी श्रधिक वर्ष लगते थे श्रीर कहीं कहीं इससे कम भी। फिर भी यह कड़ा नियम था कि जबतक शिष्य अथवा लड़का विद्या पढ़ता था, तब-तक उसका विवाह न होता था। गुरुके बर जाना जिस प्रकार एक धार्मिक विधि-

का काम था, उसी प्रकार विद्या समाप्त कर गुरु-गृहसे लौटना भी एक धर्म-विधि. का ही कृत्य था। इसका नाम समावर्तन या लौटना था। गुरुकी आज्ञा मिल जाने पर यह समावर्तन किया जाता था। अर्थात् गुरु जव लड्केके 'पास' हो जानेका सर्टीफिकेट देदे, तब उसे छुट्टी मिलती थी श्रीर अपने घर श्रानेका परवाना मिलता था। इस प्रकार समावर्तन हो जाने फ उसे विवाह करनेकी स्वाधीनता होती थी। इसके पश्चात् वैराग्य-युक्त ब्रह्मनिष्ठ कुछ ब्राह्मण विवाह करनेके भमेलेमें न पड कर गुरु-गृहमें ही विद्या पढ़ने तपश्चर्या करनेके लिये रह जाते थे। ये लोग संसारी अगड़ोंसे दूर ही रहते थे। इनको नैष्टिक ब्रह्मचारी कहते थे श्रीर यदि ये गुरुके घर न रहें, कहीं दूसरी जगह स्वतन्त्रतासे रहने लगें, तो भी हो सकता था। वे जन्मभर ब्रह्मवर्षका पालन और ब्रह्मचर्यके कठोर बताँका भी श्राचरण करते थे। इसीका नाम पहला श्राश्रम है। यह बात निर्विवाद है कि प्राचीन कालमें यह आश्रम प्रत्यत्त् था। श्राजकल उपनयन और समावर्तन दोनी 'फ़ार्स: -तमाशेकी चीज़ हो गये हैं। पुरागोंकी समअसे कलियुगमें दीर्घ काल तक ब्रह्मचर्य-पालन वर्ज्य है: सो एक दृष्टिसे यह ठीक भी है। क्यों कि स्मृतियों में श्रसली ब्रह्मचर्यके जो नियम है उनका ठीक ठीक पालन आजकल हो न सकेगा श्रौर होता भी नहीं है। तथापि यह मान लेनेमें कोई चति नहीं कि प्राचीन कालमे महाभारतके समयतक ऐसे ब्रह्मचर्यके पालन करनेकी रीति प्रचलित थी। महा भारतमें अनेक स्थानींपर इस ब्रह्मचर्यके नियमोंका वर्णन है। यहाँ, उनका संक्षि तात्पर्य दिया जाता है:-

"त्रायुका प्रथम चतुर्थांश ब्रह्मचर्यो

बितावे । धर्मतत्त्वके ज्ञानका सम्यादन करते हुए गुरुके घर अथवा गुरुके पुत्रके वास रहे। गुरुके सो जाने पर सोवे और उनके जागनेसे पहले ही उठ बैठे । शिष्य श्रथवा दासको जो काम करना चाहिये वह करे। काम कर चुकने पर गुरुके पास जाकर श्रध्ययन करे। खृव पाक-साफ श्रीर कार्य-दत्त रहे। गुरुके भोजन किये बिना स्वयं भोजन न करे। गुरुके दाहिने चरणको दाहिने हाथसे श्रीर वाये चरण-को वायें हाथसे छूए। ब्रह्मचारीके लिये जिन गन्धों श्रीर रसोंका सेवन करना मना है, उनका सेवन न करे। शास्त्रमें व्रह्मचर्यके जितने नियम बतलाये गये हैं उन सवका पालन करे। इस रीतिसे गुरको प्रसन्न करके श्रीर उसे दिल्ला देकर यथाविधि समावर्तन करे। फिर गुरुकी श्राज्ञासे विवाह करना चाहिये " (शां० २४३ अ०)।

इस वर्णनसे जान पड़ता है कि शिप्यके भोजन करनेकी व्यवस्था बहुधा गुरुके ही घर होगी। शिष्यको गुरुके घर कुछ काम करना पड़ता होगा। इसमें सन्देह नहीं कि श्राजकलकी तरह पढ़ाईकी फ़ीस न ली जाती थी और भोजनके लिये भी कुछ न देना पड़ता था; परन्तु उसका यह एवज़ बहुत ही कठोर था। माल्म होता है कि वहुतेरे बाह्मण-विद्यार्थी भिन्ना भी माँगते थे। स्मृतियोंमें चत्रिय श्रोर वैश्यके लिए भित्ताकी मनाही है। फिर भी गुरुके घर काम करना सभी विद्यार्थियोंके लिये श्रनिवार्य था; श्रीर इस तरह गुरुके यहाँ श्रीकृष्ण त्रादिके भी काम करनेका वर्णन हरिवंशमें है। इस प्रकार गुरुके घर कामकाज करनेवाले विद्यार्थीका शरीर खूव हट्टा कट्टा होना चाहिये। यह एक बड़ा भारी लाभ ही था। किन्तु कुछ गुरु

लोग शिष्योंको वहुत ही सताते रहे होंगे। आदि पर्वके तीसरे अध्यायमें यह वर्णन है कि धीस्य ऋषि, वेद नामक श्रपने शिष्यको, हलमें भी जोतता था। तथापि उसे जरा भी खेद न हुआ। गुरुके घर जो कप्ट हुए थे, उनका स्मरण करके वेदने "अपने शिष्योंको गुरु-सेवा जैसा दुर्घर काम कराकर, ज़रा भी कष्ट न दिया।" प्रत्येक शिष्यको न्यूनाधिक काम तो निस्सन्देह करना पड़ता था। फिर, गुरुके खभावके अनुसार, चाहे उसमें कष्ट अधिक हो या कम। गुरुको सन्तुष्ट रखकर विद्या सम्पादन करनी पड़ती थी। उस समय यह समभा जाता था कि गुरुकी कृपा विना विद्यान त्रावेगी। इस कारण, उस ज़मानेमें, गुरुका श्रत्यन्त श्रादर था। गुरुपुत्र या गुरुपत्नीका श्रादर भी खूब होता था। गुरुपत्नीके सम्बन्धमें शिष्य कभी कुव्यवहार न करे, इस नियम-का होना साहजिक था । गुरुपत्नी-गमन महापातकों में माना गया है। इस महा-पातकके लिये देहान्त-दगड ही प्रायश्चित्त था। स्मृतियोंकी त्राज्ञा है कि गुरुपत्नीको द्गडचत करना हो तो वह भी दूरसे ही करे—पैर छूकर नहीं। इस प्रकार मुफ़ शिक्ता देनेकी प्रथा प्राचीन कालमें थी: किन्तु सम्पूर्ण पढ़ाई हो जाने पर गुरुको द्विणा देनेकी भी रीति थी। यद्यपि त्राज-कलकी भाँति गुरुको या डाकृरको पेशगी फीस देनेका रवाज न था, तथापि काम हो चुकने पर गुरु-दित्तणा देना त्रावश्यक था। साधारण रूपसे दो गौएँ ही दित्तणा-में दी जाती थीं। यह भी कुछ श्रत्यन्त कठिन न था। कुछ गुरु तो विना दक्तिणा लिये ही 'चलो हो गई' कहकर शिष्यको घर जानेकी त्राज्ञा दे दिया करते थे। जान पड़ता है कि गुरुके घर विद्या पढ़ते समय साधारण रूपसे श्रपने घर जानेकी स्वाधीनता शिष्यको न थी । यह नियम न था कि—"गुरुसे कभी दूर न हो।" फिर भी गुरुसे आजा प्राप्त करके शिष्य अपने घर जा सकता होगा। श्रन्तिम श्राज्ञा-प्राप्तिके लिये द्तिणाकी श्रावश्यकता थी। इस दित्तिणाकी अनेक असम्भाव्य कथाएँ महाभारतमें हैं। परन्तु उन वर्शनीं-से जान पड़ता है कि वे बहुधा शिष्योंकी पेंठसे ही हुई हैं। गुरु तो दिल्णा लेनेकी अनिच्छा प्रकट करते जाते थे: परन्त शिष्य ज़िद करके कहते थे कि-'वतलाइए, श्रापको क्या दक्तिणा दी जाय। ऐसा श्रमिमानका आग्रह होने पर गुरु मन-मानी दिच्छा माँग वैठते थे और फिर उसके लिये शिष्यको चक्कर काटने पडते थे। श्रादि पर्वमें उत्तङ्ककी श्रीर उद्योग पर्वमें गालवकी ऐसी ही कथा है। खैर, ये कथाएँ श्रपवादक हैं।शिज्ञाकी समाप्ति पर यह गुरु-दक्तिणा भी निश्चित रहती थी श्रीर उतनी (दो गी) दक्तिणा देकर शिष्य समावर्तन-विधि करके अपने घर चला जाता और गुरुकी अनुज्ञासे विवाह कर नेता था।

• जान पड़ता है कि समग्र आर्य लोगों-की शिवाकी यही पद्धति पूर्व समयमें प्रचलित थी। प्राचीन कालमें, पाश्चात्य आर्य देशोंमें भी गुरुके घर रहकर वहीं विद्या पढ़नेकी पद्धति देख पड़ती हैं; और इसीका रूपान्तर होकर वहाँ आजकल बोर्डिक स्कूल हो गये हैं। विद्या पढ़ते समय शारीरिक श्रम करने पड़ते थे, गुरुके घर नियमपूर्वक रहना पड़ता था और सब प्रकारके कठोर वर्तोंका पालन श्रनिवार्य था; इस कारण खान-पान श्रादि सात्त्विक और नपा-नुला रहता था। इन शिष्योंकी बुद्धि तीव और शरीरको रोग-रहित मान लेनेमें कोई विद्य नहीं। प्राचीन कालमें एक ही गुरुके पास श्रनेक विद्यार्थी न रह सकते थे, इस कारण कहना चाहिये कि
उस समय वे दोष भी न थे जो वोर्डिक्समें
सैंकड़ों लड़कों के एक साथ रहनेसे होते
हैं। अनुमानसे जान पड़ता है कि एक
गुरुके घर बहुत करके चार-पाँच विद्यार्थी
रहा करते थे, इससे अधिक विद्यार्थी
रहते होंगे। क्यों कि साधारण रीतिसे,
गुरुके घर रहनेका सुभीता न होता होगा।
इसके सिवा यह भी सम्भव नहीं कि
गुरु-पित्तयाँ अनेक विद्यार्थियों के लिये
रसोई बनानेके भगड़ेमें पड़ें। प्रत्येक
विद्वान् ब्राह्मणको अध्यापनका अधिकार
था, अतपव पेसी शालाएँ अनेक होंगी
और इसी कारण सभीके लिये शिक्माका
सुभीता था।

प्राचीन कालमें विना गुरुके विद्या पढनेका रवाज न रहा होगा। कमसे कम लोगोंका खयाल था कि वेदविद्या तो गुरुके बिना न पढनी चाहिये। वन-पर्वके १३ = वें श्रध्यायमें लिखा है कि यवकीतने विना गुरुके ही वेदोंका अध्य-यन किया था, इस कारण उसे अनेक दुःख भोगने पड़े। इससे अनुमान होता है कि उस समय वेदोंकी पुस्तकें भी रही होंगी। क्योंकि गुरुके बिना वेदोंका अध्य-यन पुस्तकोंसे ही हो सकता है। प्राचीन कालमें यह धारणा थी कि सभी विद्याएँ गुरुसे पढ़ने पर ही सफल होती हैं श्रीर वेद्विद्याको तो गुरुसे ही पढ़नेका निश्चय था। यह प्रकट है कि बिना गुरुके वेद-विद्या पढ़ना सम्भव ही नहीं। क्योंकि निरी पुस्तकोंसे वेदोंका ठीक और शुद उचारण नहीं श्रा सकता: कुछ तो गुर-मख होना ही चाहिये।

शृद्रोंको वेदविद्याका श्रधिकार न थी, इस कारण उन्हें वेद न पढ़ाये जाते थे। किन्तु यह श्रनुमान है कि शृद्ध विद्यार्थी श्रम्य विद्याप सीखनेके लिये श्राते होंगे। यह साफ नहीं कहा गया कि शृद्रोंके लिये श्राश्रम-धर्म नहीं है। चारों वणौंके लिये संन्यासाध्रम विहित है या नहीं? यह प्रश्न महाभारतके समय जैसी श्रनिश्चित श्चितिमें था, वैसी ही अनिश्चित स्थितिमें एक यह प्रश्न भी देख पड़ता है कि श्रद्रोंको विद्या पढ़ाई जाय अथवा नहीं । यह तो निश्चित ही था कि उन्हें वेदविद्या न पढ़ाई जाय। किन्तु श्रीर विद्याश्रोंके पढ़ानेकी मनाही न होगी। इस सम्बन्धमें एकलव्य-का द्यान्त ध्यान देने योग्य है । द्रोणकी कीर्ति सुनकर अनेक राजपुत्र उनके पास धनुर्विद्या सीखने आये। उस समय ज्याधींके राजा हिरएयधनुका वटा एक-लब्य भी उन्हें गुरु बनाने श्राया। तब, अन्य शिष्योंके लाभके लिये, धर्मज्ञ द्रोणने उसको शिष्य बनाना स्वीकार नहीं किया। आदिपर्वके १३२ वें अध्यायमें मुख्य बात यही है जो अपर लिखी गई है। यह बात सब लोगोंमें अभीतक पाई जाती है। न तो जापानी लोग अपनी श्रस्त्रविद्या दूसरे देशवालोंको सिखाते हैं श्रीर न जर्मन लोग श्रॅगरेज़ोंको। चारी श्रोर तत्त्व एक ही है। किन्तु वह यदि ब्याघ न होता, किसी और शुद्र जातिका होता, तो श्राचार्य द्रोग उसे श्रवश्य सिखला देते। श्रस्तुः व्याध-पुत्रने द्रोणको मनसे गुरु मानकर मिट्टीकी उनकी मूर्ति बनाई श्रीर उसी मूर्तिकी वन्दनाकर उसने धनुर्विद्याका अभ्यास किया। इतने पर भी दोण गुरु-द्विणा माँगनेसे नहीं चूके। जहाँ इस प्रकारकी भीति या घरराज्यके अनार्य लोगोंका विचार आड़े न आता होगा, वहाँ श्रद्भोंको भी, वेदके सिवा, श्रन्य विद्यायें सिखलाई जाती होंगी। महा-भारतसे स्पष्ट देख पड़ता है कि त्रिवर्णके लोगोंको सारी विद्याये श्रवश्य सीखनी नाहिएँ। यह साली थी और वेदिषधा-

का भी उन्हें पूर्ण अधिकार था। महा-भारत-कालके पश्चात् वौद्ध और जैन-धर्मका प्रसार हुआ, इस कारण वर्णभेद उठ जानेसे जातियाँ गड़बड़ हो गई; और उन लोगोंने वेदविद्याका माहात्म्य भी घटा दिया। अत्रत्य परिस्थिति बदल गई। फिर तो अन्य वर्णोंने ही वेद पढ़नेका सिलसिला तोड़ दिया, इस कारण परि-स्थितिमें अन्तर पड़ गया।

श्रव एक महत्वका प्रश्न यह है कि भारती-कालमें, वर्तमान कालके विश्व-विद्यालयोंकी तरह, ऐसी बडी २ संस्थाएँ थीं या नहीं जिनमें वहुतसे विद्यार्थी एकत्र रहते हों। महाभारतके श्रादि पर्वमें करव कुलपतिके श्राश्रमका वर्णन है। उससे हमें इस दङ्गके विद्यालयकी कल्पना होती है। मालिनी नदीके किनारे, इस सुन्दर आश्रम श्रथवा ब्राह्मणींकी बस्तीमें, "श्रनेक ऋषि ऋग्वेदके मन्त्र पढ़ते थे। वतस्य ऋषि सामवेदका गान करते थे। साम श्रौर त्रथर्वके मन्त्रोंका पद-क्रम सहित उचारण सुनाई देरहा था । वहाँ पर एक ही शाखा-में अनेक शाखाओंका समाहार करनेवाले श्रोर श्रनेक शाखात्रोंकी गुण-विधियोंका समवाय एक ही शाखामें करनेवाले ऋषियोंकी धूम थी। वहाँ पर मोचशास्त्र-के ज्ञाता, प्रतिज्ञा, राङ्गा श्रीर सिद्धान्त श्रादि जाननेवाले, व्याकरण, छन्द, निरुक्त स्रोर ज्योतिषमें पारङ्गत, और द्रव्य-गुण-कर्मकी पूरी व्यवस्था जाननेवाले ऋषियोंका जमाव था। कार्य-कारण नियमौके ज्ञाता, पग्र-पत्तियोंके वाक्यों त्रीर मन्त्रोंके रहस्य-के जानकार, श्रनेक शास्त्रोंका श्रालोड़न करनेवाले और उन पर प्रामाणिक रूपसे भाषण करनेवाले हज़ारों ऋषियोंकी वहाँ भीड़ थी । इसीमें नास्तिक-पन्थोंके मुखियोंका वाद-विवाद मिल जानेसे षह श्रावाज बहुत ही मनोहर सुनाई पड़ती थी।" इस वर्णनसे पता लगता है कि आश्रममें कौन कौनसी विद्याएँ पढ़ाई जाती थीं श्रीर किन किन विषयों पर बहस होती थी। जान पड़ता है कि विद्या-पीठ कुछ लिखाने-पढ़ाने के स्थान न थे। ये स्थान तो पढ़े-पढ़ाये लोगोंको श्रपनी विद्याकों परीचा देने श्रथवा पढ़ी हुई श्रपनी विद्याकों सदा जायत रखने के लिए होंगे। श्रसली शिचा (पढ़ाई) तो भिन्न भिन्न गुरुश्रोंके ही घर दस-दस पाँच-पाँच विद्यार्थियों में होती थी।

जहाँ कौरव-पागडवोंके सहश अनेक विद्यार्थी एक ही जगह रहते होंगे वहाँ सबको गुरुके घर न भेजकर कोई न कोई स्वतन्त्र शिक्तक नियुक्त कर लेनेकी रीति रही होगी। इस कारण, गुरुके पद पर द्रोणकी योजना हस्तिनापुरमें कर लेनेका वर्णन है। इन सब लड़कोंने पहले क्रपा-चार्यसे वेद-विद्या श्रीर श्रख्न-विद्या सीखी थी। परन्तु इधर द्रोण थे भरद्वाजके पुत्र, श्रीर साज्ञात् परशुरामसे उन्होंने श्रस्न-विद्याकी शिचा पाई थी; द्रुपद्से नाराज होकर वे अपने साले कृपके पास आ रहे थे। इसलिए भीष्मने उनकी योग्यता श्रिधिक देखकर सब राजपुत्र उन्हींके श्रधीन कर दिये । अर्थात् द्रोणको उन्होंने राज्यमें नौकर रख लिया श्रीर गृह-धन-धान्य श्रादि सम्पत्ति उनको दे दी। स्पष्ट है कि यह घटना सदाकी परि-पाटीके विरुद्ध हुई। एक तो राजपूत्रोंके दुहरे गुरु हो गये: दूसरे जहाँ गुरुके घर शिष्य रहते थे, वहाँ गुरु ही शिष्योंके घर-निदान शिष्योंके सहारे राज्यमें-श्रा रहा। यह बात श्रत्यन्त धनवानी श्रीर राजपुत्रोंके ही लिए थी। यह तो प्रकट ही है कि इस अवस्थामें शिष्यको घर छोड़कर दूर नहीं रहना पड़ता। लिखा है कि द्रोणके पास अन्य देशोंके राज-

कुमार विद्या पढ़नेके लिए आकर रहें थे। धनुर्विद्यामें द्रोण बहुत ही निष्णात थे श्रीर कृपाचार्यका तरह उनकी भी श्राचार्य पदवी थी। परन्तु दरिद्र होनेसे अथवा दुपदसे बदला लेनेकी इच्छासे उन्होंने राजसेवा स्वीकार कर ली थी।

साधारण रीतिसे गुरुके ही घर शिष्य के रहनेका रवाज था श्रोर वहाँ रहते समय शिष्य जो भिचा माँग लावे वह गुरुको अर्पण करके फिर अपनी गुज़र करे। अर्थात् गुरु और शिष्य दोनोंको ही शान्त एवं समाधान वृत्तिके होना पडता था (शां० ऋ० १६१)। यह बहुधा ब्राह्मण विद्यार्थियोंका श्रीर वेदविद्या पढनेवाली का सम्प्रदाय रहा होगा । प्रत्येक विद्यार्थी-को श्रलग श्रित रखकर प्रातःकाल श्रीर सन्ध्या समय उसकी पूजा करनी पडती थी। शान्ति पर्वके १६१वें अध्यायमें यह भी कहा है कि 'उसे सन्ध्ये भारकः राग्निदेवतान्यपस्थाय'—सुवह-शाम सुर्य, अग्नि और अन्य देवताश्रोंकी स्तुति करे श्रीर तीन बार स्नान करके (त्रिषवणसुपस्पृश्य) गुरुके घर खाः ध्यायमें तत्पर रहे। ऋर्थात्, इतने कठोर वतका संघ जाना वाह्यणोंके ही लिए सम्भव था, श्रौर वह भी सव ब्राह्मणोंके लिए नहीं। चत्रिय और वैश्योंके लिए भी यही नियम थाः किन्त स्मृतियो से पता लगता है कि उनके लिए भिचा-का नियम न था। चत्रियोंको धनुर्विद्या श्रौर राजनीति श्रथवा द्राडनीति भी ब्राह्मण ही सिखाते थे; श्रीर वैश्योंको भी वार्ताशास्त्रका ज्ञान अथवा शिल्पका ज्ञान ब्राह्मण गुरुश्रोंसे ही मिलता था। फिर भी यह अनुमान होता है कि इन विद्या श्रोंकी शिचा देनेवाले लोग राज्यकी श्रोर-से भी नियुक्त रहते होंगे और उनका मुख्य उपयोग राजपुत्रों तथा योद्धात्रोंको धनु-विद्या सिखानेमें होता था। सभा पर्वके कचिदध्यायमें नारदने यह प्रश्न किया है—

कचित् कारिएका धर्मे सर्वशास्त्रेषु कोविदाः। कारयन्ति कुमारांश्च योध-

मुख्यांश्च सर्वशः॥

इसमें कारणिक शब्द विशेष श्रर्थमें श्राया है: यहाँ उसका उपयोग सरकारी शित्तकके अर्थमें किया गया है। टीका-कारने कार्यन्ति का अर्थ भी शित्त-पन्ति किया है। अर्थात्, योद्धाओं को भूली भाँति सिखलानेके लिये सरकारी शित्तक नियुक्त रहते होंगे। यहाँ पर ऐसे विद्वान श्राचार्योंकी वहुत हो श्रिधिक प्रशंसा की गई है।

कचित्सहस्त्रेर्मू र्खाणामेकं कीणासि परिडतम्। परिडतो द्यर्थकृष्ठेषु कुर्यान्निः-श्रेयसं परम्॥

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि त्त्रियोंकी मुख्य शिद्धा युद्धकला-सम्बन्धी थी। जब द्रोणने धृतराष्ट्रके दुर्योधन ऋदि सौ पुत्रोंकी और पाँच पाएडवोंकी परीचा दिलवाई, तब उन्हें क्या क्या सिखलाया गया था, इसका वर्णन आदि पर्वमें किया ही गया है । सबमें मुख्य धनुष्-वाण, उससे ज़रा ही नीचे गदा और उसके वाद ढाल-तलवारका नम्बर था। स्ती प्रकार घोड़े और हाथी पर तथा रथमें वैठकर भिन्न भिन्न शस्त्रोंसे युद्ध करना श्रादि कौशल उन राजकुमारोंने दिखलाया था । ये सब विद्याएँ गुरुने तो सिखलाई ही थीं, परन्तु यह भी दिखलाया है कि गुरुकी शिज्ञाके साथ ही साथ प्रत्येक शिष्यकी क्रिया श्रथवा योग्या यानी ज्यासङ्ग भी स्वतन्त्र है। अर्जुनका राततकमें धनुषकी योग्या करने-का वर्गान है। विद्या-व्यासङ्ग और गुरुकी कपाके साथ साथ तीसरी ईश्वरदत्त

योग्यता भी होनी ही चाहिये। यह शिला चित्रय कुमारोंको दी जाती थी श्रोर बाह्मण लोग शिल्लक थे। यद्यपि यह सही है कि मन्त्र श्रादिकी विधि श्रक्लोंमें होती है श्रोर इसके लिए यद्यपि यह मान लिया कि ब्राह्मण शिल्लक रहे होंगे, तथापि इन वातोंके श्रतिरिक्त ब्राह्मण लोग मानवीयुद्ध-विद्याकी शिला देनेमें भी ख्यं योग्य थे। श्रोर उसके श्रनुसार वे शिला देते भी थे, क्योंकि पढ़ाना सिख-लाना तो उनका काम ही था श्रोर शिला देनेकी जिस्मेदारी उन्होंने सिर-श्राँखों पर ले रखी थी।

व्यवसायकी शिक्षा।

साधारण लोगोंको रोजगारकी शिचा बहुधा उनके पेशेके-श्रांखों देखे-प्रत्यत्त श्रनुभवसे ही मिलती रही होगी।तथापि शिचाकी विशेष बातें सिखलानेके लिये ब्राह्मण हो तैयार होते होंगे। यह वर्णन है कि भिन्न भिन्न पेशावालोंको ब्राह्मण लोग जीविकाके उपाय सिखलावें, कृषि, गोरचा श्रीर वाणिज्यका शास्त्र 'वार्ता' नामसे प्रसिद्ध थाः सो इस शास्त्रके शिचक भी ब्राह्मण ही थे। ब्रौर नारदने युधिष्ठिरसे प्रश्न किया कि यह शास्त्र ठीक तौर पर सिखलाया जाता है या नहीं। भिन्न भिन्न विद्यायें, ज्योतिष श्रीर वैद्यक श्रादि बहुधा ब्राह्मण ही पढ़ते श्रीर ब्राह्मण ही पढ़ाते थे। सारी विद्यायें पढ़नेके लिये उत्तेजन देना राजाका काम है। प्राचीन-कालमें ऐसी ही धारणा थी। ग्रौर उत्ते-जन देनेकी रीति यह थी कि भिन्न भिन्न विषयोंमें परीचा लेकर जो लोग उन विद्याश्रोंमें प्रवीण निकलें, उन्हें राजा दिशा दे। वर्तमान कालकी तरह पाचीन कालमें भी यही परिपाटी थी। पहले पेशवाश्रोंके समयमें श्रीर श्राजकल कुछ रियासतोंमें विद्वान् ब्राह्मणोंको, सिर्फ विद्वत्ताके एवज़में, जो दक्षिणा देनेकी रीति थी और है, वह इस प्रकार प्राचीन-कालसे ही देख पड़ती है। विद्या पढ़नेके लिये उत्तेजन देनेकी यह एक प्राचीन युक्ति है। उस समयकी परिश्वितमें वह उचित थी, क्योंकि दक्तिणा लेना ब्राह्मण्का कर्तव्य था: श्रीर इसके लिये उसने विद्या पढ़ने-पढ़ानेका काम श्रङ्गीकार कर रखा था। यह एक प्रकारकी वर्तमान कालीन स्कालरशिप अथवा शिष्यवृत्ति-की चाल है। इसे दित्तणांन कहकर शिष्य-वृत्ति कहनेसे उसमें फ़र्क नहीं पड़ता। नारदका प्रश्न यहाँ उल्लेख करने योग्य है। कचित्ते सर्वविद्यासु गुणतोऽर्चा प्रवर्तते। ब्राह्मणानां च साधूनां तव नैःश्रेयसी शुभा॥ द्तिणास्त्वं द्दास्येषां नित्यं स्वर्गापवर्गदाः।

(हद स० ५ श्र०) में गुणतः शब्दसे जान पड़ता है कि यह परीचा लेनेकी
प्रधा होगी । यह निरी वेदविद्याकी
बाह्मणोंकी परीचा न थी, किन्तु सभी
विद्यात्रोंकी थी श्रीर न सिर्फ ब्राह्मणमें
ही बिल्क इसमें साधु भी शामिल होते थे।
साधु शब्दका श्रर्थ 'तत्वज्ञानमें प्रवीण
मनुष्य' करना चाहिये। क्योंकि जिनका
श्राचरण साधुश्रोंकासा निश्चित होगा वे
साधु दिच्णा क्यों लेने लगे। खर, इसमें
सन्देह नहीं कि दिच्णा श्रथवा स्कालरशिप देकर समस्त विद्याश्रोंकी शिचाके
लिये प्राचीन कालमें राजाकी श्रोरसे
प्रोत्साहन मिलता था।

वाल्यावस्थामें जो विद्या सीखी. जाती है उसके सिवा अनेक विषय ऐसे भी होते थे जिन्हें प्रौढ़ मनुष्य सीखते थे। उनकी शिचा सप्रयोग होती थी। ये विषय खासकर युद्ध-सम्बन्धी थे। नारदके प्रश्नमें यह पूछा गया है कि—"तुम ख्यं हस्तिसूत्र, रथसूत्र और अश्वसूत्र पढते हो

या नहीं।" टीकाकारने यहासिका अर्थ सीखना—श्राचार्योंसे पढ़ना—िकया है। इनमेंसे प्रत्येक विषयके भिन्न भिन्न प्रत्ये, श्रीर उन उन विद्याश्रोंमें पारकृत बाह्यल् श्रथवा श्रन्य लोग होंगे ही। उनको श्राचार्य कहते थे। इसका श्रभिप्राय यह जान पड़ता है कि इन श्राचार्योंसे राजा लोग प्रयोग समेत विद्या सीखें। निदान युधि छिरके युद्धमन्त्रियोंके लिये श्रथवा कुमार्थ के लिये सब विद्याश्रोंका पढ़ना श्राव श्यक था। लगे हाथ श्रागे यह प्रश्न है— किश्चद्रस्यस्यते सम्यग् श्रहे ते भरतर्षभ। धनुर्वेदस्य सूत्रं वै यन्त्रसूत्रं च नागरम्॥

इसमें यही सुक्ताया गया है कि युधिष्ठिर के घरमें अर्थात् उसके अधिकारियों और कुमारोंको धनुर्वेदका अभ्यास होना चाहिये। यह अभ्यास बड़े विद्यार्थियोंका है और उन उन विद्याओं के आचार्योंकी देखें रखमें वह होता है। "यन्त्रस्त्रं च नागरं" शब्द स्पष्टार्थ नहीं हैं; निदान ऐसे हैं जिनका अर्थ हमसे होने लायक नहीं; तथापि उसमें यन्त्रका—युद्धोपयोगी यन्त्रका आवश्यक कहा गया है। तब यह प्रकर ही है कि शास्त्रीय ज्ञानके साथ इस आनका मेल है और यह ज्ञान अभ्यासमें बढ़ाया जाता था।

महाभारतके समय पुरुषोंकी शिलाकी इस प्रकारकी व्यवस्था थी। ब्राह्मण, क्रिय श्रोर वैश्य तीनों वर्णोंके लिये ब्रह्मचर्य श्रथीत शिला श्रावश्यक थी श्रीर उसमें यह सही थी कि वह धार्मिक श्राचरणका ही एक विषय था। विद्यार्थियोंके श्राचरणके सम्बन्धमें कड़े नियम प्रचलित थे। स्पृति प्रन्थोंमें वे नियम मौजूद हैं। महाभारतमें वे विस्तृत रूपसे नहीं हैं परन्तु हैं वे बहुत मार्मिक; श्रोर उनमें ऐसी योग्यता थी जिससे विद्यार्थी सशक्त, सद्धर्मशील श्रोर विद्यान्त्रमा हो जाय। फिर यह श्रीर

थी कि ऐसी विद्या पूर्ण हुए विना विवाह त हो सकता था। सारांश यह कि त्राज-कल जिस तरह आश्रम-सङ्गर न होने वेनेका कोई खयालतक नहीं करता वैसी बात उन दिनों न थी। कुछ विद्याएँ ऐसी थीं जो प्रौढ़ श्रवस्थामें ही विशेष व्यासङ्गसे प्राप्त हो सकती थीं श्रीर खूव वढ़ाई जा सकती थीं। उन्हें सीखनेके लिये राजाकी श्रोरसे द्विणात्रोंके रूपमें उत्तेजन देनेका प्रबन्ध था श्रौर सिखलानेवाले श्राचार्यको वर रखनेकी पद्धति थी। इस तरह. प्रजाकी शिचाके लिये राजाकी श्रोरसे समुचित प्रवन्ध रहता था। निष्कर्ष यह है कि मुख्य रूपसे शिचाका भार ब्राह्मण-समूह पर था और राजाकी श्रोरसे उन्हें अप्रत्यत्त रूपसे सहायता मिलतीरहतीथी।

स्त्री-शिचा।

श्रव स्त्रियों की शिचाका विचार किया जाता है। महाभारतके समय उच्च वर्णकी स्त्रियों को शिचा देने की रीति तो निःस-देह देख पड़ती है। ये स्त्रियाँ लिख-पढ़ सकती होंगी। यह शिचा उच्च कोटिकी भी होती थी। द्रीपदीके वर्णनमें परिडता शब्दका प्रयोग पाया जाता है।

प्रिया च दर्शनीया च परिडता च पतिवता। (वन० ग्र० २७)

यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है कि यह शिला दी कहाँ जाती थी । यह तो निर्विवाद है कि स्त्रियों के लिये शालाएँ न थीं । ऐसी शालाओं का कहीं वर्णन नहीं है । द्रौपदीने युधिष्ठिरसे जो भाषण किया है वह सच-मुच ऐसाही है जैसा कि पिएडता स्त्रीका होना चाहिये। यह शिला प्राप्त करने के लिये वह कहीं मदरसे में गई हो, इसका वर्णन नहीं मिलता। उसने कहा है कि यह बात, "मैंने पिता के यहाँ रहते समय एक ऋषिसे सुनी थी।" श्रर्थात् स्त्रियों को

अपने घर पर ही शिका दी जाती थी। पितासे, भाईसे अथवा वृद्ध सन्मान्य श्रागत पुरुषोंसे उनको शिचा मिलती रही होगी। श्रनुमान यह है कि स्त्रियोंको वेदोंकी शिद्धा न दी जाती होगी, क्योंकि वेद पढ़ानेके लिये उनके उपनयन आदि संस्कार होनेका वर्णन कहीं पाया जाता । मनुका एक यह वचन प्रसिद्ध है—"पुराकल्पे तु नारीणां मौआवन्धनमिष्यते।" किन्तु कालमें इस रीतिके प्रचलित होनेका वर्णन महाभारतमें नहीं है। उनकी शिचा इतनी ही होगो कि उन्हें मामूली लिखना-पढ़ना श्रा जाय: वे धार्मिक कथाश्री श्रीर विचारोंको भली भाँति जानकर प्रकट कर सकें, श्रीर कुछ धार्मिक ग्रन्थोंका पठन कर ले।

स्त्रियाँ सहधर्मचारिणी श्रर्थात् पतिके साथ वैदिक क्रिया करनेकी श्रधिकारिणी थीं; परन्तु उन्हें वेदविद्या नहीं पढ़ाई जाती थी। महाभारतमें, उनके खतन्त्र रूपसे वैदिक क्रिया करनेका भी वर्णन नहीं है।

विराट पर्वमें जो वर्णन है उससे शात होता है कि मामूली लिखने-पढ़नेकी श्रीर श्रमंकी शिचा उन्हें दी जाती थी: श्रीर महाभारत-कालमें चत्राणियोंको लित कलात्रोंकी भी शिचा दी जाती थी। विराट-की कन्या उत्तराको गीत, नृत्य और वादित्र सिखलानेके लिये बृहम्रडाको नियुक्त किया गया था। इस वर्णनसे स्पष्ट है कि प्राचीन कालमें चत्राणियोंको गाना श्रौर नाचना भी सिखलाया जाता था। श्राजकल स्त्रियोंको गीत-नृत्य सिख-लाना निन्द्य माना जाता है, परन्तु महा-भारतके समय तो वह त्रत्रियोंकी बेटियों-को सिखलाया जाता था। इसकी शिज्ञा-के लिये विराटके महलोंमें अलग एक नृत्यशाला बनवाये जानेका वर्णान है। यह

तो सभी जानते हैं कि नृत्य सिखलानेके लिये अच्छा विस्तृत स्थान चाहिये, तब पेसी शिचा दिलवाना धनवानोंका ही काम था। यह शिक्ता कुमारियोंको ही दी जाती थी, श्रीर विवाहके समय उन कन्यात्रोंके जो खास खास गुण वतलाये जाते थे उनमें एक यह भी मान्य किया गया होगा। उत्तराके साथ साथ महलों-की श्रौर वाहरकी भी कुछ काँरी कन्याएँ सीखती थीं। 'सुताश्च में नर्तय याश्च तादशीः। कुमारीपुरमुत्ससर्ज तम् इस वाक्यसे ज्ञात होता है कि यह शिचा श्रविवाहित लड़िकयोंके ही लिये रही होगी। स्त्रियोंको कुमारी अवस्थामें शिक्षा देना ठीक है श्रीर उस ज़मानेमें काँरियों-को ही शिचा देनेकी रीति रही होगी। विवाह होते ही स्त्रियाँ तत्काल गृहस्थीके भमेलेमें पड़ जाती थीं, इसलिये शिद्याका समय कुमारी दशामें ही था। स्त्रियोंके लिये न ब्रह्मचर्याश्रम था श्रीर न गुरुगृहमे वास करनेकी भंभट। किन्तु ऊपर जो वर्णन किया गया है उससे देख पड़ता है कि लडकियोंको मैकेमें ही शिक्तक द्वारा शिक्ता दिला दी जाती थी; ग्रौर यह शिचा बहुत करके ललित कलाश्रोंकी ही होती थी। इनमें जृत्य-गीत-वादित्र विषय खासकर त्तत्रिय-कन्यात्रोंके थे। यह वर्णन है कि नृत्यशालामें शिद्या पाकर लड़कियाँ श्रपने श्रपने घर चली जाती हैं श्रीर रात-को नृत्यशाला सुनी रहती है। "दिवात्र कन्या गृत्यन्ति रात्रौ यान्ति यथागृहम्" (चि० श्र० २२)। तब यह स्पष्ट है कि बाहरकी लड़कियाँ भी शिचा-प्राप्त करने-को आया करती थीं, परन्त वहाँ रहती न थीं-लौट जाती थीं।

नृत्य-गीत सिखलानेके लिये विराटने बृहन्नडाको रक्खा था। इससे अनुमान होता है कि लड़कियोंको इन विषयोंकी शिहा देनेके लिये पुरुष न रखे जाते थे। बृहन्नडाको शिचा देनेके काम पर नियक्त कर लिया, यह भी आश्चर्य करने लायक बात है। क्योंकि यह राय तो हमेशासे है कि हिजड़े लोग व्यवहारमें सबसे बढ़कर त्याज्य हैं। यह भी वर्णन है कि विराटने परीचा करवाकर पता लगा लिया था कि बृहज्ञडा पुरुष नहीं हिजड़ा (क्लीब) है। इससे यह भी प्रकट है कि वह ख्वाजह न था। किंवहना जैसा' कि अन्यत्र वर्गान किया गया है. ख़्वाजह बनानेकी दुष्ट श्रीर निन्द्य री_{ति} भारती श्रायोंमें कभी न थी। कमसे का महाभारतके समयतक तो न थी। प्राचीन वैविलोनियन, असीरियन और पर्शियन श्रादि लोगोंमें यह रीति थी, पर भारती श्रायों में न थी श्रीर उनमें श्रव भी नहीं है। उनके लिये यह बात भूषणावह है। विराटने परीचाके द्वारा वृहन्नडाको क्लीव समभकर अन्तःप्रमें कुमारियोंको नृत्य सिखलानेके लिये भेता। इस वर्गानमे प्रथम यह देख पडता है कि महाभारत कालमें लडकियोंको नत्य सिखलानेके लिये क्लीव ही नियक होते थे: परनु कालिदासके मालविकाशिमित्र नाटकमे यह बात भी नहीं मिलती। मालविकाकी नृत्य सिखलानेवाले दोनों आचार्यो-गणदास और हरदास—के क्लीव होनेका वर्णन नहीं है। तब फिर यह पहेली ही रही। दूसरी पहेली यह है कि स्त्रियोंकी नाच-गान सिखलानेके लिये स्त्रियोंका उपयोग किया हुआ कहीं नहीं मिलता पाश्चात्य देशोंमें भी स्त्रियोंको नाच-गान सिखलाया जाता है; किन्तु इसकी शिला उन्हें पुरुषोंसे ही प्राप्त होती है। श्रर्जुन खूब हढ़, सुस्वरूप श्रीर हट्टा कट्टा जवान देख पड़ता था। इस कारण, विराहते परीचा करवाई कि यह दर-श्रसल क्रीव

है या स्त्रियों के गहने पहनकर नक़ली क्रीब बन श्राया है। हमारे मतसे यहाँ पर ऐसा ही गिर्मितार्थ लेना चाहिए। कुमारियोंको नृत्य-गान श्रादि कलाएँ सिखलानेके लिये उतरी हुई श्रवस्थाके पुरुष-शिक्तक ही, साधारण रीति पर, रखे जाते होंगे। यह तो स्पष्ट ही है कि ऐसी शिक्ता साधारण स्त्रियोंको नहीं मिल सकती। श्रीर यह भी कुछ ज़रूरी न था कि स्त्रियाँ पुरुषोंकी भाँति, शिक्तिता हों ही। पुरुषोंके लिये जिस तरह यह

the prison in the library

by perpendict make many is

TO WHAT THEY THEN THEFT

हाम जानवाका जाना यह व यह स्वया

भी विष्युक्त किला है। विश्व

उपकारकी प्रचला कर्या, एक ब्राह्म

म् कि शर्मात, उसरे तुरूके लिखित क

की मेहार है। रहक कहारा की

वि एस समारकी साम्बोबना पेतिसी।

विकास के क्षेत्र के क्षेत्र के कार्य के कार कार्य के कार्य के कार्य के कार्य के कार्य के कार्य के कार

जिल्ला के महिल्ला करता है। जिल्ला

wine the in them of them from

कींग्र आवश्वतंत्र हो है।

नियम था कि गुरुके घर जाकर उन्हें विद्या श्रवश्य पढ़नी चाहिये, वैसा स्त्रियोंके लिये न था। इस कारण साधारण स्थितिकी स्त्रियाँ, श्रशिचित रही होंगी। ब्राह्मणों श्रोर चित्रयोंकी लड़िकयाँ, सहज ही मिलनेवाली शिचाके कारण, श्रधिक सुशिचित रही होंगी। सिर्फ चित्रयोंकी बेटियोंको लिलत-कला सिखलानेके लिए उनके घर शिचक रखे जाते थे। महा-भारतके समय स्त्री-शिचाकी इस प्रकार-की परिस्थित देख पड़ती है।

nj Tudo 18 sid isa dalipa

endel, étal des leitens das 1

जीक हो। एक्स इसम् क्षेत्र जाता

ज़न कि ज़न्नाओं दिशासी प्रतान किया इन ही की मही । प्रशासक्ती किया कि आत

पूर पश्चित है फिर्न कर्ती समय आएतीय बांची समाजनी पारिविधिक हकी बहुतो

की । यह नहीं साथ 'जो साम है। यह कि पह विश्वी किये कार्यनिक है। यही प्रभी

राज्ये अध्यावने यह पाना है कि उत्तावने स्रोवने पुत्रे औत्तरेशों विकासको अस

भवातम दिल्ल । कि व्याप्त कृतिह

क्षेत्र एक प्राची क्षेत्र विशेष के प्राचित

ROT IND LAFT IN HOUSE INDU

THE PART OF THE PARTY OF THE

सातकाँ प्रकरण।

Se Contraction

विवाह-संस्था

महत्त्वपूर्ण श्रङ्ग विवाह-संस्था है।
इस भागमें देखना है कि भारत-कालीन
श्रायोंमें विवाहकी कैसी श्रोर क्या रीतियाँ
थीं; महाभारतके समयतक उनकी उत्क्रान्ति
कैसे हुई; श्रोर उस समय पित-पत्नीका
सम्बन्ध कैसा था। वर्ण-व्यवस्थाका पहले
जो विचार किया जा खुका है, उसमें इस
विषयका थोड़ासा दिग्दर्शन हुश्रा है।
किन्तु उस विवेचनकी श्रपेत्ता यहाँ विवेचन विस्तृत है श्रोर कई वातोंके सम्बन्धमें
मतभेदके लिये जगह है। श्रतएव इस
प्रकरणमें इस विषयका सम्पूर्ण विचार
किया गया है।

सभी समाजोंकी उत्क्रान्तिके इतिहास-में एक ऐसा समय अवश्य होना चाहिए जब कि समाजमें विवाहका बन्धन विल कल हो ही नहीं। महाभारतमें एक स्थान पर वर्णित है कि किसी समय भारतीय श्रार्य-समाजकी परिस्थिति इसी ढङ्गकी थी। यह नहीं माना जा सकता कि यह स्थिति निरी काल्पनिक है। स्रादि पर्वके १२२वें श्रध्यायमें यह कथा है कि उदालक ऋषिके पुत्र भ्वेतकेतुनें विवाहकी यह मर्यादा कायम की । उसकी माताका हाथ एक ऋषिने पकड़ लिया था, इससे उसको गुस्सा श्रा गया। तभी उसने यह मर्यादा खड़ी की। पशुत्रोंमें न देख पडनेवाली यह विवाह-मर्यादा मनुष्योंमें उसी समयसे प्रचलित है। उसने मर्यादा बाँध दी कि-"जो स्त्री पतिको छोड किसी अन्य प्रूषसे समागम करेगी, उसे

भ्रूण-हत्याका पातक लगेगा।" किन्तु इसके साथ ही उसने यह भी नियम कर दिया कि—"जो पुरुष श्रपनी स्त्रीको छोड़-कर श्रन्य स्त्रीसे समागम करेगा उसे भी यही पाप लगेगा।"

भार्यान्तथा व्युच्चरतः कौमारब्रह्मचारिणीम्। पतिव्रतामेतदेव भविता पातकं भुवि॥ (श्रादि पर्व १२२ श्र० २६ श्लोक)

परन्त आश्चर्यकी बात है कि हिन्द समाजमें इस दूसरे नियमका कुछ भी ध्यान नहीं रखा गया। बहुधा इस वातकी किसीको ख़बर ही नहीं कि पुरुषको भी, स्त्रीकी ही तरह, व्यभिचारका पातक लगता है। धर्मशास्त्रमें प्राचीन ऋषियोंने जो नियम बना दिया है वह दोनोंके लिये ही एकसा उपयुक्त श्रौर न्याय्य है। प्राचीन कालमें इस प्रकारकी अनियन्त्रित व्यवस्था रहनेका दूसरा उदाहरण उप-निषद्में सत्यकाम जावालका है। सत्य-काम जावालकी माता यह न कह सकती थी कि यह लड़का किसका है। पस्त उस लड़केने सच वात कह दी, इस कारण ऋषिने अर्थात् उसके गुरुने निश्चित कर दिया कि यह ब्राह्मणका वेटा है। इन दोनी उदाहरणोंसे यह नहीं माना जा सकता कि विवाहका बन्धन पूर्व कालमें बिल कुल था हो नहीं। श्रौर इसमें सन्देह ही है कि इस प्रकारकी स्वाधीनता ऐतिहासिक समयमें कभी थी भी या नहीं। तथा^{षि} विवाहकी रीतिकी काल्पनिक उत्पति कथासे पाठक समभ सकेंगे कि हिन्छ स्तानी श्रायोंमें विवाहको जो श्रति उदात श्रोर पवित्र खरूप प्राप्त हो गया है उसकी नींव प्रारम्भसे ही है।

नियोग।

ऊपरकी कथा चाहे काल्पनिक ही चाहे न हो, परन्तु यह तो निर्विधाद है कि हिन्दुस्तानमें भारती श्रायोंमें नियोगकी रीति प्राचीन-कालमें रही होगी। श्रपने पतिको छोड़कर स्त्री चाहे जिस पुरुष-से विवाह कर ले—यह वात किसो समाजमें खुल्लम-खुल्ला नहीं चल सकती: परन्तु प्राचीन कालमें कई समाजोंमें तियोगकी यह रीति थी कि पतिकी आज्ञा-से अथवा पतिके पश्चात् पुत्र-प्राप्तिके लिये, स्त्री अन्य पुरुषसे प्रसङ्ग कर ले। बाइविल-से प्रकट होता है कि ज्यू लोगोंमें भी ऐसी चाल थी। प्रत्येक समाजमें मृत व्यक्तिके लिये पुत्र उत्पन्न करनेकी आवश्यकता प्राचीन कालमें बहुत रहती थी। समाजका बल मनुष्य-संख्या पर अवलम्बित था, इस कारण प्राचीन कालमें पुत्रकी कृद्र भी बहुत थी। इस निमित्तसे भी नियोग-की प्रणाली जल पड़ी होगी। इसमें भी श्रपने ही घरके - कुटुम्बी पुरुषसे सन्तति उत्पन्न करानेकी इच्छा थिर रहना साह-जिक ही है। इस कारण, नियोगमें बहुधा श्रपने कुटुम्बी पुरुषके ही पास जानेकी स्त्रियोंको श्राज्ञा थी, श्रीर वह भी तभीतक जबतक पुत्र-प्राप्ति न हो जाय। इसके सिवा नियोगकी अनुमति उसी अवस्थामें मिलती थी जब कि पति किसी कारणसे श्रसमर्थ हो गया हो, श्रथवा मर गया हो श्रौर उसके पुत्र न हो। कुटुम्बी पुरुषसे, पतिके भाईसे अथवा समानित ऋषिसे सन्तति उत्पन्न करानेका नियम होनेके कारण सन्तानके हीनसत्त्व या हीनवर्ण होनेका अन्देशा न था। इसी नियोगके बारा धृतराष्ट्र और पागडुकी उत्पत्ति होनेकी कथा महाभारतमें है; श्रीर पाएडु-के भी ऐसे ही नियोगके द्वारा धर्म, भीम त्रादि पुत्र होनेका महाभारतमें वर्णन है। तत्कालीन इतिहास श्रीर श्रन्य प्राचीन लोगोंके इतिहास पर विचार करनेसे ये कथाएँ असम्भवनीय नहीं जान पड़तीं।

श्रौर यह माननेमें भी कोई चिति नहीं कि श्रित प्राचीन कालमें नियोगकी प्रथा श्रार्य लोगोंमें थी।

यह प्रथा शीव ही वन्द हो गई होगी। समाज जैसे जैसे वढते गये और भिन्न भिन्न देशोंमें मनुष्य-संख्या काफी होती गई, वैसे ही वैसे वैवाहिक उच कल्पनाश्रोंके लिये वाधा-खरूप इस नियोगकी प्रथा-का केवल पुत्र-प्राप्तिके लिये जारी रखना अनुचित समभा गया होगा।इस श्रयोग्य रीतिसे मनुष्य वल बढ़ानेकी इच्छा धीरे धीरे समाजसे तिरोहित हो गई होगी। भारतीय आयोंमें स्त्रियोंके पातिवतके सम्बन्धमें जो श्रत्यन्त गौरव उत्पन्न हो गया, उस गौरवके कारण यह प्राचीन नियोगकी रीति निन्य श्रीर गईणीय प्रतीत होने लगी होगी। इस कारण वह उत्तरोत्तर बन्द होती गई! महाभारतके समय उसका चलन विलकुल न था। मनुस्मृतिमें इसका ख्व वाद-विवाद है कि नियोग शास्त्र सिद्ध हैं त्रथवा नहीं। त्रन्त-में अनेक ऋषियोंके मतसे फैसला किया गया है कि नियोग दोषयुक्त श्रोर निन्दा है। अर्थात् मनुस्मृति और महाभारतके समयमें नियोगका चलन था ही नहीं। यहाँ पर एक बात श्रीर ध्यान देने योग्य है कि प्राचीन कालमें जिस समय नियोग प्रचलित था उस समय भी उसके लिये श्रनेक बन्धन थे। पुत्र न हो तभी नियोग-के लिये अनुमित मिलती, और वह भी सिर्फ़ पुत्रप्राप्ति-समयतकके लिये ही श्रीर या तो पतिकी या कुरुम्बियोंकी आज्ञासे। सारांश यह कि नियोगके लिये किसी समय भी श्रनियन्त्रित सम्बन्धका खरूप प्राप्त न था। यह बात ध्यान देने लायक है।

नियोगकी प्रथा वहुत प्राचीन कालमें ही रुक गई होगी। क्योंकि भारतीय ब्रायों श्रोर श्रार्य स्त्रियोंकी पातिवस्य- विषयक कल्पना, बहुत पहले, उच्च स्थितिमें पहुँच चुको थी । महाभारतके अनेक उदाहरणों श्रोर कथानकोंसे श्रार्य स्त्रियोंके पातिवत्यके सम्बन्धमें हमारे मन पर श्रादर-की अद्भुत छाप लग जाती है। इस प्रकारका भारती आर्य स्त्रियोंका उदार चरित्र और किसी जातिवालोंमें देखनेको न मिलेगा। "स्त्रीणामार्य-स्वभामानां पतिरेकोहि दैव-तम्"। उस समयकी आर्थ स्त्रियोंके वर्णनसे यह धारणा स्पष्ट देख पड़ती है कि 'श्रार्य स्त्रियोंका एक मात्र देवता पति ही हैं। इस सम्बन्धमें सावित्रीका श्राख्यान मानों हमारे श्रागे पातिवत-धर्मका अत्यन्त उदात्त, मृर्तिमान्, सुन्दर चित्र महाभारतमें खडा किया गया है। लगातार हजारों वर्षसे हिन्द् स्त्रियोंके श्चन्तः करण पर उसका पूर्ण परिणाम हो रहा है। द्रौपदी, सीता और दमयन्ती श्रादि श्रनेक पतिवताश्रोंके सन्दर चरित्र. हजारों वर्षसे हम हिन्दुश्रोंकी ललनाश्रोंकी नजरोंमें-महाभारतकी कृपासे घुम रहे हैं। इस कारण पातिवत हिन्द स्त्रियोंका अवर्णनीय अलङ्कारसा हो रहा है। हिन्द समाज पर महाभारतने जो श्रनेक उपकार किये हैं उनसे पातिवतका वर्णन बड़ा अनोखा है। स्त्रियोंके पातिवतका जो श्रतिशय उदात्त सक्तप-इस प्रन्थमें-वर्णित है वह एक बहुत बड़ा उपकार है और इसे हिन्दू-समाज कभी भूल नहीं सकता।

पुनर्विवाहकी रोक।

पातिवतकी उच्च कल्पनाके कारण् श्रार्य लोगोंमेंसे सिर्फ़ नियोगकी प्रधा नहीं उठ गई, बल्कि पुनर्विवाहकी रीति भी इसी कारणसे श्रार्य लोगोंमें—त्रैवर्णि-कॉर्मे—बन्द हो गई । भारतीय श्रायोंमें प्राचीन कालसे पुनर्विवाहका चलन

बन्द है। इतिहाससे माल्म होगा कि दुनियाके परदेपर श्रनेक जातियोंके बीच सिर्फ दो ही आर्य जातियोंमें पुनिंब वाहका रास्ता रुका पड़ा है—हिन्दुस्थानके भारतीय श्रायोंमें श्रीर पश्चिममें जर्मनीकी एक शाखामें। रोमन इतिहासकार देसि टस जर्मनोंका वर्णन करते हुए लिखता है—"कुछ जर्मनोंकी स्त्रियाँ जिन्दगी भरके लिये एक ही पतिको श्रपनाती है श्रोर उसे श्रपने जीवनके सुखका सर्वस निधान समभकर उससे श्रत्यन्त प्रेम करती हैं।" इससे जात होता है कि पातिवतको उदात्त कल्पनासे यह प्रणाली भारतीय श्रार्थोंकी तरह, प्राचीन जर्मनी की शाखामें भी प्रचलित हो गई थी। युनानी इतिहास-लेखकोंके वर्णनसे भी माल्म पडता है कि भारतीय श्रायाम पुनर्विवाहकी मनाही बहुत प्राचीन काल से महाभारतके समयतक रही होगी। सिकन्दरके साथके इतिहासकार लिखते हैं कि पञ्जाबके श्रायोंमें पुनर्विवाहकी रीति नहीं है, श्रीर वे यह भी कहते हैं कि इस रीतिको इन लोगोंने सिर्फ इसलिये चला दिया है जिसमें स्त्रियाँ ऋपने पतिको विष देकर दूसरेकी न हो जायँ । इसमें सन्देह नहीं कि इस श्रद्धत कारण पर ज़रा भी विश्वास नहीं, किया जा सकता। महाभारतकी एक कथामें इस मनाहीका उद्गम है। वह कथा यों है:-दीर्घतमा ऋषि अन्धा था। उसकी स्त्रीका नाम था प्रदेषी। वह, ऋषिके लिये और ऋषि कुमारोंके लिये काम करते करते, अबकर, उन्हें छोडकर जानेको उद्यत हुई। ऋषिने कहा कि श्राजसे में ऐसी मर्यादा बनाता हूँ कि जनम भरके लिये स्त्रीका एक ही पति रहे । पति जीवित हो या न हो, स्त्री दूसरा पति कर ही न सकेगी। यदि बह पति करेगी तो पतित हो जायगी।

एक एव पतिर्नार्या यावज्ञीवपरायगाम्।
मृतेर्जीवति वा तस्मिन्नापरं प्राप्नुयान्नरम्॥
(श्रादिपर्व श्र० १०४)

इस कथाका तात्पर्य थोड़ा-चहुत वही है जैसा कि उपर लिखा गया है। दीर्घतमा ऋषिका चनाया हुआ, पुन-विवाहका यह चन्धन भारतीय आयोंमें सहसा चल न सकता। क्योंकि दीर्घ-तमाको जिस कठिनाईका अनुमान हुआ बह सभी समाजोंके लिये एक ही सा उप-युक्त है। परन्तु अन्य हज़ारों समाजोंमें इस बन्धनका प्रचार नहीं हुआ। हमारी तो यह राय है कि भारतीय स्त्रियोंके अन्तः-करणमें पातिवतकी जो उदात्त कल्पना हढ़ हो गई थी, उसीके कारण दीर्घतमा-का बनाया हुआ नियम भारतीय आयोंमें चल निकला। दीर्घतमा वैदिक ऋषि हैं, तब यह बन्धन भी वहुत प्राचीन होगा।

श्रव यहाँ पर प्रश्न होता है कि यदि यह बन्धन प्राचीन कालसे था, तो पति-वताश्रोमें श्रेष्ट दमयन्ती दूसरा विवाह करनेके लिए क्योंकर तैयार हो गई थी? यदि श्रायों श्रर्थात् , ब्राह्मण्, चत्रिय, वैश्यों-में पुनर्विवाह प्राचीन कालमें निषिद्ध था, तो फिर दमयन्ती दुबारा खयम्बर करनेके लिए कैसे उद्यत हो गई: अथवा पिताने ही उसे किस तरह आज्ञा दे दी; और राजा लोग भी उसके दूसरे खय-म्वरके लिए क्योंकर एकत्र हुए? इस प्रथका उत्तर ज़रा कठिन है। ऐसा जान पड़ता है कि उस समय हिन्दुस्थानमें पुन-विवाह कुछ बिलकुल ही बन्द न था। त्रैवर्णको छोड़ अन्य वर्णोमं और खास-कर श्द्रोंमें उसका चलन रहा ही होगा। श्रदोंके तथा श्रीरोंके श्रनुकरणसे कुछ श्रार्य स्त्रियाँ खच्छन्द व्यवहार कर पुन-विवाहके लिए तैयार हो जाती होंगी। किन्तु आयोंमें जो ऐसे कचित् पुनर्विवाह होते होंगे वे लोक-प्रशस्त श्रथवा जाति-मान्य न होते होंगे । जिस समय नलसे दमयन्तीकी भेंट हुई उस समय नलने श्राँखोंमें श्राँस भरकर यही प्रश्न किया— कथं तु नारी भर्तारमनुरक्तमनुवतम्। उत्सुज्य वरयेदन्यं यथात्वं भीरु कर्हिचित्॥ दूताश्चरन्ति पृथिवीं कृत्स्नां नृपतिशासनात्। भेमी किल सा भर्तारं द्वितीयं वरिष्यिति॥ स्वैरवृत्ताः यथाकाम मनुरूपिमवातमनः॥ (वन० श्र० ७६)

"भर्ताके लिए श्रमुवत रही हुई कौन सी स्नी दूसरे पुरुषसे विवाह करेगी? श्रीर तेरे दूत तो पृथिवी पर कहते फिरते हैं कि खतन्त्र व्यवहार करनेवाली दमयन्ती अपने अनुरूप दूसरा भर्ता करेगी। इस वाक्यमें 'स्वतन्त्र व्यवहार करनेवाली' शब्द महत्त्वके हैं। इसमें स्पष्ट कह दिया गया है कि दूसरा पति करना खच्छन्द व्यवहार करना है। दमयन्तीने इसका जो उत्तर दिया उसमें भी यही भाव व्यक्त है। "तुम्हें यहाँ बुलानेके लिए मैंने इस युक्ति-से काम लिया। क्योंकि श्रीर कोई मनुष्य, एक दिनमें, सौ योजन नहीं जा सकता। में तुम्हारे चरणोंकी सौगन्द खाकर कहती हूँ कि मैंने मनमें श्रीर कोई वुरी बात नहीं सोची है । जो मैं पाप करती होऊँ तो यह वायु मेरे प्राणोंका नाश कर दे।" मतलब यह कि यदि दम-यन्ती पुनर्विवाह कर लेती तो वह पाप होता ग्रौर खच्छन्द व्यवहार भी। श्रर्थात् उस समय श्रार्य चत्रिय स्त्रियोंका पुन-र्विवाह न होता था। फिर दमयन्तीके तो लड़के बच्चे भी हो चुके थे। यदि वह पुनर्विवाह करती तो श्रपनी जातिसे नीचे दर्जेकी जातिकी हो जाती। यूतके समय जब द्रौपदीको दासी-भाव प्राप्त हो गया तब दुर्योधनने ऐसाही कहा—"हे द्रौपदी! श्रव तू दूसरे पति कर ले।" श्रर्थात् यह रीति निन्ध और दासियोंके लायक मानी जाती थी । सब भारती आयोंमें पुन-विवाह न होता था । यदि पति जीवित हो और उसने छोड़ दिया हो या पति मर गया हो तो भी आर्य स्त्रियाँ दूसरा पति नहीं करती थीं।

पुनर्विवाहकी मनाहीका श्रीर भी एक कारण है। भारती श्रायोंमें विवाहके सम्ब-न्ध्रमें एक शर्त यह थी कि विवाहके समय बधू कन्या यानी अनुपभुक्ता होनी चाहिये। वे उपभुक्ता स्त्रीको विवाहके योग्य नहीं समभते थे। महाभारतमें एक स्थान पर स्पष्ट कह दिया है कि भुक्तपूर्वा स्त्रीको व्याहना पातक है। श्रर्जुनके प्रतिशा करनेका वर्णन है कि जो मैं कल शामतक जयद्रथका वध न कहँ तो चिता-में जल महुँगा । उस प्रतिकाके समय उसने जो अनेक सौगन्दें खाई हैं, उनमें एक सौगन्द यह भी है कि-"भुक्तपूर्वां स्त्रयं येच विन्द्तामद्यशान्तिनाम्।" भुक-पूर्वा स्त्रीसे विवाह करनेवाले पुरुषोंकी जो लोक मिलते हैं, वे मुक्ते प्राप्त हों। श्रर्थात महाभारतके समय लोगोंकी यह श्रारम्भ थी कि जो स्त्री पुरुषसे सहवास कर चुकी हो वह विवाहके अयोग्य है: उसके साथ जो विवाह करे वह पापी बुरे लोकोंमें जाता है। उपभुक्त स्त्रियोंका पुन-विवाह उस समय निन्य समभा जाता था। महाभारत-कालके पश्चात् भी स्मृतिशास्त्रीं-में आजतक ऐसा ही नियम विद्यमान है (यहाँ एक प्रश्न यह होता है कि उस समय ऐसी लड़कीका पुनर्विवाह होता था या नहीं जिसका विवाह तो हो चका हो, परन्तु जो अनुपभुक्ता यानी काँरी हो? इसका विचार श्रागे किया जायगा।) साधारण रीतिसे सब चत्रियोंमें श्रीर अपने वर्णका श्रभिमान रखनेवाले लोगोंमें इस प्रकारकी कल्पना होना साहजिक है कि परपुरुषसे उपभुक्त स्त्री विवाहके योग्य नहीं होती।यह प्रकट है कि विवाह-की शुद्धताके सम्बन्धमें श्रधिकाधिक जाँच होगी। श्रतएव, इसमें श्राश्चर्य नहीं कि भारती श्रायोंमें उपभुक्ता स्त्री विवाह-सम्बन्धके लिए दृषित मानी जाती थी। इसी धारणाके कारण हमारे धर्मशास्त्रे एक प्रकारसे निश्चय कर दिया कि विवाहके योग्य कन्या ही है । गृहासुत्रमें कन्याके ही सम्बन्धमें वचन हैं महाभारतमें भी कहीं गतभर्तृका स्त्रीके पुनर्विवाह होनेका प्रत्यच वर्णन नही पाया जाता। अर्थात् महाभारतके समय श्रायोंमें पुनर्विवाहकी रीति प्रशस्त न थी श्रीर विवाहमें वधके अनुपमुक्त होने का नियम था।

प्रौढ़-विवाह ।

इस पर यह कहा जा सकता है कि महाभारतके समय लड़िकयोंका विवाह वचपनमें ही हो जाता होगा। किन्तु श्रसल बात इसके चिपरीत है। महा भारतमें विवाहके जितने वर्णन पाये जाते हैं, सभीमें विवाहके समय कन्याएँ उपवा अर्थात् भौढ़ दशामें आ गई हैं। स्वयंवरके समय द्रौपदीका जो वर्णन है उससे, उस समय, उसका बड़ा होना स्पष्ट है। कुन्तीको तो, विवाहसे पहले ही, लड़का ही चुका था। श्रर्जुनने जिस समय सुभद्रा का हरण किया, उस समय उसकी पूरी त्रवस्था हो चुकी थी। उत्तराका वर्णन भी ऐसा ही है। अधिक क्या कहा जाय विवाह होने पर महीने दो महीनेमें ही उसके गर्भ रह गया और छठे-सातव महीनेमें —भारती युद्ध समाप्त होतेके श्रनन्तर—उसके परीक्तित हुन्ना । यह श्रमिमन्युका पुत्र था। ऐसी श्रनेक स्त्रि^{योंक} वर्णनसे स्पष्ट देख पड़ता है कि प्राचीन समयमें, विवाहके श्रवसर पर, स्त्रियाँ बालिंग रहती थीं। यह सिद्धान्त एक बातसे श्रोर पका होता है। यह निर्विचाद है कि उस समय विवाहके ही दिन पति-पत्नीका समागम होनेकी परिपाटी थी। द्रौपदीके विवाह-वर्णनमें एक चमत्कार यह बतलाया है कि द्रौपदीका प्रत्येक पतिके साथ भिन्न भिन्न दिनोंमें विवाह हुआ। उस समय विचित्रता यह हुई कि भहानुभावा द्रीपदी प्रति दिन काँरी ही हो जाती थी। अर्थात् पहले दिन युधि-ष्ट्रिरके साथ द्रौपदीका विवाह हुआः तव उसी रातको उनका समागम हुआः तव भी वह दूसरे दिन काँरी थी। यह वात सदाकी रीतिके अनुसार हुई। अब दूसरे दिन दूसरे पाग्डवके साथ उसका विवाह हुआ। उस समय विवाहके धर्मशास्त्रके ग्रनुसार वधू कन्या यानी श्रनुपमुक्ता होनी चाहिए, और वह ऐसी ही थी भी। यही चमत्कार है। धर्मशास्त्रमें भी कई सलों पर आजा है कि विवाहके ही दिन पति-पत्नीका समागम हो। अन्य दो पत्त ये हैं कि उसी रातकों न हो तो तीसरी रातको या बारहवीं रातको हो। तात्पर्य यह कि विवाहके दिन समागम होनेकी रीति थी और इसके लिये धर्मशास्त्रकी श्राज्ञाभी है। तब यह प्रकट है कि विवाह-के समय वधूकी अवस्था प्रौढ़ होनी चाहिए। महाभारतके समय प्रौढ़ स्त्रियोंके ही विवाह होनेके विषयमें जैसे उपरि-लिखित प्रमाणसे श्रमुमान निकलता है, वैसे ही अन्य ऐतिहासिक प्रमाणींसे भी वहीं देख पड़ता है। यूनानियोंने सिक-न्दरके समयके हिन्दुस्तानके जो वर्णन लिख रखे हैं, उनसे भी यही बात सिद्ध होती है। महाभारत-कालके पश्चात् अर्थात् सन् ईसवीसे २५० वर्ष पूर्वके श्रनन्तरसे जो श्रनेक संस्कृत ग्रन्थ सन् ८०० ईसवी-

तकके आजकल मिलते हैं, उनमें भी प्रौढ अवस्थाकी काँरियोंके विवाहके ही वर्णन हैं। श्रोर पति-पत्नीके समागमका वर्णन भी विवाहके दिनका ही उनमें पाया जाता है। हर्षचरित्रमें बालने हर्षकी बहिनके विवाहका वर्णन विस्तारपूर्वक और हृद-यङ्गम किया है। उसमें दृल्हा शामको बड़े साजसे वधूके पिताके घर श्राया। वहाँ वड़े दरबारमें खागत होने पर मधुपर्कसे उसकी पूजा हुई: और विवाहकी ठीक घड़ी आतेही अन्तःपुरमें पति-पत्नीका विवाह हो गया। फिर अग्निके समज सप्तपदी हुई। फिर भोजन श्रादि हो चुकने पर, खास तौर पर सजाये हुए महलमें, पित-पत्नीका समागम हुआ। वाग्ने ऐसा ही वर्गन किया है। सारांश यह कि द्रौपदीके विवाहसे लेकर हर्पकी वहिन राज्यश्रीके विवाहतकके जो वर्णन प्रसिद्ध हैं, उनमें विवाहके समय वधू प्रोढ़ है और विवाहवाली रातको ही पति-पलीके समागम होनेका उल्लेख है। इससे उस समयका यह नियम देख पड़ता है कि ज्याही हुई स्त्री अनुपभुक्ता रह ही नहीं सकती।

त्रव प्रश्न होता है कि ये सव वर्णन चित्रय स्त्रियों के हैं श्रीर महाभारतके समय चित्रयों की लड़िक्यों विवाहकालमें जैसी श्रोढ़ रहती थीं, वैसी श्राजकल भी तो रहती हैं। इसमें कौन श्रचरज है। स्वयंवर श्रथवा गान्धर्च विवाह करनेकी स्वाधीनता जिन स्त्रियोंको थी, वे तो विवाहमें वड़ी होंगी ही। परन्तु ब्राह्म विवाहकी श्रीर ब्राह्मणोंकी बात भिन्न है। श्रव देखना चाहिये कि ब्राह्मण स्त्रियोंकी श्रवस्था विवाहके समय कितनी होती थी। इस सम्बन्धमें महाभारतकी क्या गवाही है। यदि इस दृष्टिसे विचार करें तो ब्राह्मणोंकी लड़िक्योंके लिये, चित्रयोंन

से, कुछ विभिन्न नियम नहीं देख पड़ता। श्रीर तो का, चत्रियोंकी वेटियाँ ब्राह्मणोंके घर ब्याही जाती थीं और कचित् ब्राह्मणों-की बेटियाँ चत्रियोंके घर। ऐसी परि-स्थितिमें दोनी वर्णोंकी वेटियाँ उम्रमें एक-सी ही होती थीं। यद्यपि महाभारतमें ब्राह्मण-कन्यात्रोंके विवाह-वर्गन स्वल्प हैं, तथापि जो हैं वे उल्लिखित अनुमानकी ही पुष्टि करते हैं। शुक्र-कन्या देवयानीका उदाहरण प्रसिद्ध है। यह कहनेकी श्राव-श्यकता नहीं कि विवाहके समय उसकी उम्र बड़ी थी। शल्यपर्वके ३३ वें अध्यायमें एक वृद्धा कन्याका वर्णन है। एक ब्राह्मणुकी बेटी काँरी ही रहकर तपश्चर्या करती थी। बुढ़ापा आ जानेतक उस बुद्ध कन्याने विवाह न किया था। श्रन्तमें नारदके उपदेशसे उसने बढ़ापेमें विवाह कर लिया। ब्राह्मण-कन्यात्रोंके विवाहके योग्य श्रवस्था हो जानेके श्रीर भी कुछ वर्णन मिलेंगे। श्रादिपर्वमें वकासूर राज्ञसकी कथा है। वहाँ पर, पाएडव लोग जिस ब्राह्मणके घर उतरे थे उसकी बारी श्राने पर उसकी बेटी राजसका श्राहार बननेके लिये तैयार हुई। उस समय ब्राह्मणने लड़कीसे कहा-

बालामप्राप्तवयस मजातव्यंजनाकृतिम्। भर्तुरर्याय निविष्तां न्यासं धात्रा महात्मना॥

इस तरह उसका वर्णन करके ब्राह्मण-ने अपनी बेटीको राचसका भच्य बननेके लिए न जाने दिया। छोटी, तरुणावस्थामें न पहुँची हुई, उसकी बेटी काँरी थी। पूरी उम्र होते ही उसे भर्ताके अधीन करना था और वह भी तब जब कि तारु-एयके लच्चण शरीरसे व्यक्त होने लगें। इस श्रोकसे यही मालूम पड़ता है। ब्राह्मणोंकी बेटियाँ भी, महाभारत-कालमें वर-योग्य होने पर ही व्याही जाती थीं। जब लड़कियाँ बड़ी अवस्थामें ब्याही जाती थीं। तब लड़कोंके विवाह बड़ी उम्रमें होने ही चाहिएँ। लड़कोंका उपनयन होकर उनकी शिचा समाप्त हो जाने पर ही विवाह करनेकी रीति थी। तब यह निर्वि वाद ही है कि लड़कोंका विवाह बड़ी श्रवस्थामें, कमसे कम इक्कीस वर्षके पश्चात, होता रहा होगा।

स्मृतिशास्त्रमं उम्रके सम्बन्धमें जो स्पष्ट उल्लेखयुक्त वचन हैं, उनसे अनु मान होता है कि वेटीके विवाहके सम्बन्ध में विभिन्न परिस्थिति महाभारतके समय लड़िक्योंका विवाह तभी होता था जब कि उनकी श्रवस्था मोढ़ हो जाती थी। फिर कुछ शताब्दियोंके वाद लड़िक्योंके विवाह की श्रवस्था कम हो गई। यदि इसका इतिहास श्रथवा उपपत्ति यहाँ दिया जाय तो विषयान्तर हो जायगा। तथापि स्मृतियोंमें विवाहके सम्बन्धमें जो वचन हैं उसी ढंगके वचन महाभारतमें क्योंकर हैं? इसका भेद लेना चाहिये।

त्रिंशहषों वहेत् कन्यां हदाँ द्वादशवार्षिकीम्। यह मनुस्मृतिका वचन प्रसिद्ध है। "तीस वर्षकी आयुका पुरुष बारह वर्षकी, ह्रद्यको आनन्द देनेवाली, लड़कीसे विवाह करें।" पूर्व कालमें इस श्लोकका महाभारतका पाठ "हृद्यां घोडशवार्षि कीम्" था। कुछ निबन्धग्रन्थोंमें महा भारतका यही वचन पाया जाता है। लड कियों श्रथात् महाभारतके समय श्रवस्था हो जाने का विवाह पूरी प्रौढ़ के पश्चात् होता था। परन्तु श्रनुशा हैं, उनमें बिलकुल ही भिन्न रूप देख पड़ता है; श्रोर इस रूपान्तरमें मनुकी निर्दिए की हुई आयु-मर्यादासे भी मर्यादा दिखलाई है। वह पाठ यह है "त्रिंशक्रषों वहेत् कन्यां नक्रिकां दशवारि कीम्", श्रोर श्रुज्वादकांने इसका मामृली ब्रर्थ किया है—दस वर्षकी लड़कीके साथ विवाह करे। यह पाठ मनुसे भी इस श्रीरका है श्रीर मूलके पाठको बदल-कर इस समयकी परिस्थितिमें उत्पन्न हो गया है। यह अनुमान निकलने लायक है। निबन्धकारोंने महाभारतका जो पाठ "हृद्यां षोडशवार्षिकाम्" ग्रहण किया है. वहीं मूल पाठ रहा होगा। क्योंकि मनु-स्मृतिमें जो यचन हैं उनकी श्रपेचा महा-भारतमें जो परिस्थिति है वह सब बातोंमें पूरानी है। इसकी जाँच पहले हो चुकी है। विवाहके भेदांके विषयमें भी यही नियम है। श्रागे चलकर यह वात देख पडेगी। इसके सिवा महाभारतका एक श्रीर वचन यहाँ विचारने लायक है। 'वयस्यां च महाप्राज्ञ कन्यामावोद्धमर्हसि।' वयस्क श्रर्थात् तरुण काँरीसे विवाह करना श्रायुष्यकर है। श्रनुशासन पर्वमें ही एक स्थान पर यह कहा गया है। इस वाक्यके वयः शब्द पर पाठकोंको खुब ध्यान देना चाहिए। संस्कृतमें वय शब्द-का श्रर्थ तारुएय है। सामान्य वयके अर्थ-में, संस्कृतमें वयका प्रयोग नहीं होता। संस्कृत श्रर्थ यह है कि बाल्य बीतने पर वय प्राप्त होता है। मतलब यह कि उल्लि-षित वचनमें 'वयस्थाम्' शब्दका अर्थ साधारण रीतिसे विवाहके योग्य अवस्था-वाली करना ठीक न होगा। श्रगर यही अर्थ किया जायगा तो उससे कुछ भी मतलब नहीं निकलेगा । उक्त वचनमें यह बात कहीं गई है कि वयस्था अर्थात् तस्ण श्रवस्था-प्राप्त कन्या विवाहके लिये उत्तम श्रोर श्रायुष्यकर है। क्योंकि इस अध्यायमें श्रायु वढ़ानेवाली बातोंका ही वर्णन है। इस वचनकी दृष्टिसे पूर्वीक वचन देखने पर 'नग्निकां दशवार्षिकीम्' पाड पीछेका जान पड़ता है: 'हचां षोड़-

शवार्षिकीम्' पाठ ही असलमें रहा होगा।
महाभारतके अनेक वर्णनोंसे हमारा यह
अनुमान है कि यही पाठ पूर्व समयका
होगा, और महाभारतके समय स्त्रियोंके
विवाह प्रोढ़ अवस्थामें ही होते रहे होंगे:
फिर वे स्त्रियाँ चाहे ब्राह्मण हों चाहे
चित्रिय अथवा और वर्णकी।

महाभारतके समय, पूर्व समयकी भाँति, स्त्री-पुरुषोंका विवाह प्रौढ श्रवस्था-में ही होता था। ब्रह्मचर्यकी मर्यादा वारह वर्ष मान ली जाय तो २१ वर्षके भीतर पुरुषका विवाह न होता था: श्रीर यदि २४ वर्षकी मान ली जाय तो तीस वर्षकी श्रवस्थातक विवाहकी मर्यादां बढती है। हिायोंकी अवस्थाकी मर्यादा यद्यपि साफ साफ नहीं बतलाई गई, तथापि विवाहके समय वे तरुण श्रीर उपभोगके योग्य होती थीं, क्योंकि विवाहके ही दिन श्रथवा तीसरे दिन पति-पत्नीका समागम होनेकी रीति उस समय प्रचलित थी क्षा इस प्रकार पति और पत्नी खासी अवस्थामें गृहस्थी सँभालने लगते थे और उनके जो सन्तान होती थी वह शक्तिमान और तेजस्वी होती थी। पति-पत्नीकी योग्य श्रर्थात् तरुण श्रवस्था होनेके पहले उनके समागम या विवाहको लोग अच्छी नजर-से न देखते थे और उससे बचते भी थे। महाभारतके वन पर्वमें उन भयङ्कर वातोंका वर्णन है जो कि कलियुगमें होनेको हैं। उनमें इसे भी भयङ्कर माना है। कलियुग-के सम्बन्धमें यह भविष्य किया गया है कि श्रसमयमें ही विवाह होकर स्त्री-पुरुषों के सन्तान होगी। अर्थात् ऐसे समागम श्रीर विवाहको लोग निन्दा मानते थे।

[#] महाभारतके जमानेमें गर्माधान स्वतन्त्र संस्कार धा ही नहीं; श्रीर वह श्राश्वलायन गृह्यसूत्रमें भी नहीं है। कई शताब्दियाँ गुजरने पर बालविवाहके जमानेमें उसका गृह्यपरिशिष्टमें वर्णन हैं।

विवाहके समय लड़की खूब बड़ी होती थी, इस वातका एक मज़ेदार श्रप्रत्यच प्रमास इस श्लोकमें देखिए—

प्रदानकां चिणीनां च कन्यानां वयसि स्थिते। भ्रुत्त्वा कथास्तथायुक्ताः साशा कृशतरी मया॥ (शान्तिपर्व अध्याय १२८)

ऋषभ द्विज अत्यन्त कृश हो गया था। वह कहता है कि उन कन्याश्रोंकी श्राशा तो मुभसे भी कहीं दुवली पतली है जो कि तरुण हो चुकी हैं श्रीर श्रपना विवाह करानेकी इच्छा, उस ढँगकी बातें सुन-कर, किया करती हैं। इससे प्रकट है कि बहुतेरी कुमारिकाएँ, तहरण अवस्था हो जाने पर भी, बहुत समयतक वापके कन्या-दान न करनेसे खिन्न हो जाया करती थीं। उनकी विवाहकी आशा बहुत कुछ करा हो जाती थी। श्राजकल इस प्रकारके उदाहरण राजपृतोंको छोड़ (कहीं कहीं युक्तप्रदेशके कनौजियोंमें भी) श्रन्य स्थानीमें न मिलेंगे। यह बात कुछ अनहोनी नहीं कि ऐसी परिस्थितिमें लड़िकयोंके कुमार्ग-गामी हो जानेकी आशङ्का सदा रहती थी। धर्मशास्त्रका और लोगोंका भी इस बात पर ध्यान था कि विवाहमें वधुकी अवश्वा कम न हो और साथ ही वह अनुपभुका भी होनी चाहिये। इस कारण कन्यात्वको भङ्ग करनेका पातक बडा जबर्दस्त माना जाता था। महाभारतमें लिखा है कि जो कन्या अपने काँरपनमें बद्दा लगावेगी उसे ब्रह्महत्याका तीन चतु-थींश पातक लगेगा, श्रीर शेष पातक उस पुरुषको लगेगा जिसने काँरपनको दृषित किया होगा।

त्रिभागं ब्रह्महत्यायाः कन्या प्राप्नोति दुष्यती । यस्तु दृषयिता तस्याः शेषं प्राप्नोति पाप्मनः॥ (त्रजु० प० त्र० १०६)

मनुस्मृतिमें कन्यात्व दृषितकरनेवाले-को राजदराङ भी कहा गया है, फिर चाहे वह कन्याकी अनुमतिसे ही दोषी क्याँ न हुश्रा हो। इससे सहज ही समभाज सकता है कि प्रौढ़ लड़िकयोंके काँरपनको स्थिर रखनेके सम्बन्धमं, प्राचीन-काला कितना ध्यान दिया जाता था। श्राजकल तो वचपनमें ही विवाह कर देनेकी रीति प्रायः सर्वत्र हो गई है; इस कारण उक्ति खित कन्यात्व-दूषण-सम्बन्धी नियम वहत करके माल्म ही नहीं, श्रौर वर्तमान परि स्थितिमें लोगोंको वे नियम देखने-सुनने से एक तरहका श्रचरज होता है। साधा रण रीति पर लड़कीके दान करनेका श्रधिकार बापको था, फिर लड़की कितनी ही प्रीढ क्यों न हो गई हो। यदि प्रीढ लडकीके विवाहमें बाप कुछ श्रापित करे तो उसका भी महाभारत-कालमें स्मृतियोंके कथनकी भाँति ही, प्रतीकार था। नियम था कि ऋतुकाल प्राप्त होने पर लडकी तीन सालतक प्रतीचा करे कि वाप मुभे प्रदान करता है या नहीं, श्रीर तवतक यदि वह प्रदान न करे ते कन्याको स्वयं अपना विवाह कर लेनेका श्रधिकार है। अनुशासन पर्चमें स्पष्ट कर दिया गया है कि—"जो लडकी तीन वर्ष तक प्रतीचा करके श्रपने विवाहमें स्वा प्रवृत्त हो जाती है उसकी सन्तानको ग उसके साथ विवाह करनेवालेको रती भर भी दोष नहीं लगता; किन्तु यदि वह इस नियमके विपरीत व्यवहार करेगी ते उसे प्रत्यच्र प्रजापति दोष देगा।" इस्रे जान पड़ता है कि धर्मशास्त्रका औ लोगोंका श्राग्रह यह था कि लड़कीकी श्रविवाहित न रहना चाहिये। भारती^य श्रार्य-समाजकी शुद्धताके सम्बन्धमें वह बात बड़े महत्त्वकी है। प्रौढ़ कन्याम्नीकी श्रविवाहित न रहने देनेका समा^{जुक} त्राग्रह होनेसे सम्चे समाजकी नीति^{मती} भली भाँति स्थिर रखनेमें यह निया कारणीभूत है। पाश्चात्य समाजमें ऐसा बन्धन कहीं हगोचर नहीं होता। महा-भारतके श्रन्य क्षोंकोंसे भी यह अनु-मान होता है कि भारतीय श्रायोंकी भावनाके श्रनुसार प्रत्येक स्त्रीका विवाह हो जाना ही श्रावश्यक था। उपर्युक्त बचनमें स्पष्ट कह दिया गया है कि जिस लड़कीका विवाह नहीं होता उसके लिये परलोक-प्राप्ति नहीं है।

श्रसंस्कृतायाः कन्यायाः कुतो लोकास्तवानघे ।

जिस स्त्रीने विवाह नहीं किया और केवल तप किया, उसे तपके द्वारा भी परलोक-प्राप्ति होनेकी नहीं। यह सिद्धान्त थिए था। इस वचनका सुलभाकी कथा-से जरासा विरोध देख पडता है। जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है, सुलभा नामक चित्रिय संन्यासिनीको जनककी राजसभामें हम देख चुके हैं। विवाहके लिये योग्य भर्ता न मिलनेके कारण वह नैष्टिक ब्रह्मचर्यका आश्रय करके यतिधर्म-से रहती थी। (शां० अ० ३२०) यह कथा पुराने जमानेकी होगी। बल्कि कहना चाहिये कि उन दिनों स्त्रियोंको संन्यास-वत व्रहण करनेकी आजा थी; अथवा यह निर्णय करना होगा कि बिना संन्यास-वत लिये ही सिर्फ़ तप करनेका उन्हें श्रधि-कार नहीं। यह माननेमें कोई चति नहीं कि महाभारतके समय सुलभा श्रोर गार्गी श्रादि सरीसी ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ थी ही नहीं। श्रोर उस समयमें, स्त्रियोंके लिये श्राश्रमोंका भगड़ा ही न था। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, संन्यास श्रीर वानप्रस्थ इन श्राभ्रमोंकी जगह स्त्रियोंका मुख्य संस्कार् विवाह हो है। उस ज़मानेमें सिद्धान्त प्रस्थावित हो गया था और इस कारण सौतिके समय प्रत्येक विवाह होता था।

यहाँतक जो विवेचन किया गया है उससे पाठक इस वातकी कल्पना कर सकेंगे कि प्राचीन कालसे लेकर महा-भारतके समयतक विवाहकी उत्तरोत्तर उत्क्रान्ति किस प्रकार हुई थी श्रौर किस तरहसे उसको उदात्त सक्रप प्राप्त हो गया। उस समय समाजमें गृहस्थीका वन्ध्रन उत्तम रीतिसे व्यवस्थित हो गया था। उसकी श्रृह्णला इन नियमोंसे बद्ध थी:-सभी स्त्रियोंका विवाह श्रवश्य होना चाहिये; विवाहके समय स्त्रियाँ भौढ होनी चाहिएँ; उनका कन्यात्व किसी तरह दृषित न हो गया हो; चिवाहवाली रातको ही पति-पत्नीका समागम हो जायः एक बार पतिसे समागम होने पर स्त्री उसीकी होकर रहे, उसे दूसरा पति करनेका अधिकार नहीं; अर्थात पतिकी जीवितावस्थामें या उसके मर जाने पर स्त्रियोंके लिये पुनर्विवाहकी मनाही रहे। समाजमें पति-पत्नीके बीच श्रत्यन्त प्रेम श्रीर संसारका सुख मजेमें निभता था। इसके सिवा उल्लिखित वर्णनसे यह भी निष्पन्न होता है कि वर्तमान समाजमें जो वडा भारी व्यङ्ग देख पड़ता है उसका तब श्रस्तित्व भी न था। श्रर्थात् महा-भारतके समय बालविधवात्रीका दःस समाजको माल्म न था। इस कारण तब यह प्रश्न उपस्थित त हजूर का कि बात्रप-भुक्त कन्या. विवाद होने पर, यदि विधवा हो ज्ञाय तो क्या किया जाय। यहाँ पर यहीं कह देना काफी है कि अनुपभुक्त बालविधवाश्रोका प्रश्न, उस समयके पश्चात् कई शताब्दियोंमें उपजा जब कि बालविवाह होने लगा।

श्रनेकपत्नी विवाह।

स्त्रियोंके विवाह-सम्बन्धमें जैसे अनेक प्रशस्त नियम बन गये वैसा, पुरुषोंके विवाह-सम्बन्धमं, एकपत्नीत्वका मुख्य उत्तम नियम भारती आयोंमें नहीं बना, यह बात हमें माननी पड़ेगी। वैदिक-कालसे लेकर महाभारतके समयतक पुरुषोंको स्रनेक स्त्रियाँ प्रहण करनेका अधिकार था श्रोर वे ऐसा करते भी थे। वेदमें स्पष्ट रीतिसे कहा गया है कि जिस प्रकार एक यूपसे अनेक रशनाएँ बाँधी जा सकती हैं, उसी प्रकार एक पुरुष श्रनेक स्त्रियाँ रख सकता है। इस प्रकार श्रनेक स्त्रियाँ ग्रहण करनेकी रीति भारती श्रायोंमें, सारी दुनियाँके श्रन्य प्राचीन समाजोंकी तरह, श्रमलमें थी। महाभारत-में अनेक राजाश्रोंके जो वर्णन हैं, उनसे यह बात स्पष्ट देख पडती है। पाँचों पाएडवोंके, द्रौपदीको छोड़ और भी कई स्त्रियाँ होनेका वर्णन है। श्रीकृष्णकी श्राठ पररानियोंके सिवा श्रौर भी श्रनेक भार्याएँ थीं। यह श्रनेक स्त्रियाँ करनेकी रीति विशेषतः चत्रियोंमें महाभारतके समयतक जारी रही होगी। यह तो पहले देखा ही जा चुका है कि सौतिने स्त्री पर्व बढा दिया है। विशेषतः युद्धकी समाप्ति पर रणाङ्गणमें पड़े हुए वीरोंकी स्त्रियाँ पतिकी लोथ लेकर शोक कर रही हैं-यह सौति-कृत वर्णन काल्पनिक है। इसमें भी उसने अपने जमानेकी परिस्थितिके प्रत्येक राजाकी श्रुनेक स्त्रियाँ होनेका वर्णन का एक ही स्रोक देना काँ उस वर्णन-श्यामानां वरवर्णानां गीर वाससाम् । दुर्योधनवरहाीणां ५-वृन्दानि केशव॥

चत्रियोंको ब्राह्मणेतर तीनों वर्णोंकी स्त्रियाँ ग्रहण करनेका श्रिष्ठकार था; श्रीर का साम्पत्तिक स्थिति और क्या राजकीय स्थिति दोनों ही तरहसे ऐसी श्रनेक स्थिय उन्हें प्राप्त हो सकती थीं। परन्तु सारे समाजकी स्थितिका निरीच्चण करने पर ज्ञात होगा कि प्रत्येक मनुष्यको अपने ही वर्णकी श्रनेक स्त्रियाँ मिल जाना सम्भव नहीं। समुची जनतामें पुरुषोंकी और स्त्रियोंकी भी संख्या बहुधा कुछ ही न्युना धिक परिमाणमें एकसी होती हैं। इस कारण, यद्यपि पुरुषको अनेक स्त्रियाँ करनेकी स्वाधीनता हो तो भी राजा लोगी के सिवा और लोगोंका अनेक सियाँ करना सम्भव नहीं। राजाश्रोमें भी जो श्रनेक रानियाँ रखनेकी प्रथा थी उसाँ भी थोड़ासा भेद देख पड़ता है। वरावरी वाले राजात्रोंकी वेटियाँ विशेष इजतकी रानियाँ मानी जाती थीं श्रीर उनका विवाह भिन्न रीतिसे होता रहा होगा। ये पटरानियाँ समभी जाती श्रीर संख्यामें वे इनी-गिनी ही होती थीं। श्रीकृष्णकी पर रानियाँ आठ ही थीं। वसुदेवकी भी इतनी ही थीं। विचित्रवीर्यके दो थीं। पार्डिक दो थीं। भीमके द्रौपदीके सिवा शिशुपालकी बहिन एक और स्त्री थी। श्राश्रमवासी पर्व (श्र० २५)में इसका उल्लेख है। अर्जुनके सुभद्रा श्रौर चित्राङ्गदा येवी स्त्रियाँ ग्रौर भी थीं। सहदेवकी एक श्रौर पत्नी थी जरासुन्धकी बेटी; श्रीर नकुत्र भी एक और स्त्री थी। धृतराष्ट्रके दुर्योक श्रादि पुत्रोंकी यहाँ सी स्त्रियाँ ही विणि

वृत्तान कराव । इस श्रोकमें दुर्योधनकी स्त्रियों के अने बहैं। तात्पर्य यह कि राजा लोगों के भी मुख्य वृन्द वर्णित हैं। प्राचीन कालमें राजा न्नेयाँ एक या दो, अथवा बहुत हुआ ते लोगों को सिर्फ अने क स्त्रियाँ रखने की ठतक, हो सकती थीं; शेष स्त्रियाँ अने के अनुज्ञा ही न थी विक वे ऐसा करते भी भी तो उनका दर्जा बहुत हलका होगा थे। क्यों कि, जैसा पहले कहा जा चुका है, में भी विशेष रूपसे कहने लायक बति है कि महाभारतमें युधिष्ठिरकी द्रौपदीको छोड़—दूसरी महिषी अथवा स्नीका वर्णन कहीं नहीं पाया जाता। (ब्रादि पर्वके ६५वें अध्यायमें युधिष्ठिरकी दूसरी स्त्री देविका कहीं गई है; उसका विचार आगे किया जायगा।) इससे कह सकते हैं कि एकपलीवतकी महत्ता महा-भारत-प्रणेताकों भी मान्य थी। महा-भारत और रामायण, दोनों आद्य राष्ट्रीय प्रन्थोंके आद्यवर्ण्य पुरुष युधिष्ठर और राम एकपलीवतके पुरुष्कर्ता हैं। इससे पाठक कल्पना कर सकते हैं कि भारतीय आर्यएकपलीवतको कितना गौरव देते थे।

श्रीकृष्णके सम्बन्धमें यहाँ थोडासा उल्लेख करना आवश्यक है। समभा जाता है कि उनके १६१० रानियाँ थीं। इनमेंसे श्राठ तो पटरानियाँ थीं श्रीर शेष स्त्रियाँ उनको एकदम मिल गई थीं। महाभारत-में श्रीकृष्णकी सोलह हज़ार खियोंका दो तीन जगह उल्लेख है, इसका निर्देश आगे किया जायगा। यह कहनेमें चति नहीं कि श्रीकृष्णकी स्त्रियोंकी यह संख्या अति-शयोक्तिकी होगी। हरिवंश वि० के ६०वें श्रध्यायमें श्रीकृष्णकी आठ स्त्रियाँ बतला-कर नवीं एक शैव्या कही गई है। इसीमें श्रीर सोलह हज़ार स्त्रियोंके विवाह किये जानेकी बात कही गई है। इसका विशेष उल्लेख आगे ६३वें अध्यायमें है। नरका-सुरने सोलह हज़ार एक सौ कन्याश्रोंको हरणकर क़ैद कर रखा था। ये सभी श्रुपभुक्ता थीं। नरकासुरको मारकर श्रीकृष्णने उन्हें जीत लिया; तव उन्होंने अपनी खुशीसे श्रीकृष्णको वर लिया। ऐसी यह कथा है। श्रर्थात् श्रीकृष्णको श्रीर भी सोलह हजार एक सौ स्त्रियाँ एकदम मिल गई। परन्त अन्यत्र सोलह हज़ार स्त्रियोंका ही उल्लेख वारवार श्राता है, श्रौर भी सी स्त्रियोंका नहीं। उद्योग पर्वके १५=वें श्रध्यायमें नरकासुरको मार-

कर शाईधनुष प्राप्त करनेका उल्लेख है। परन्तु वहाँ सोलह हजार ही स्त्रियोंके मिलनेका वर्णन किया गया है। तब कहना होगा कि हरिवंशने एक जगह सौ स्त्रियाँ श्रीर वढ़ा दीं। ये एकदम प्राप्त हुई सारी स्त्रियाँ मानवी न थीं, कमसे कम उनका श्रार्य न होना प्रकट है। श्रीर, यह संख्या श्रतिशयोक्तिकी है। जैन-ग्रन्थोंमें भी जो इस संख्याका बारबार उल्लेख किया गया है, सो वह भी इसीसे। किसी सुखी राजाके वैभवका वर्णन करनेके लिये जैन ग्रन्थ उसकी सोलह हजार स्त्रियाँ बतलाते है। सारांश, यह संख्या अतिशयोक्तिको है। बाइबिलमें वर्णन है कि सालोमनके हज़ार स्त्रियाँ थीं। हमारी रायमें श्रीकृष्ण-की आठ आर्य स्त्रियाँ थीं: इनके सिवा उनके अनेक (न कि सोलह हजार) और देव-राज्ञसोंकी काल्पनिक स्त्रियोंका होना मान लेना युक्तिसङ्गत होगा।

श्रादि पर्वके ६५वें श्रध्यायमें पहले युधिष्ठिरकी देविका नामक दूसरी स्त्रीका जो कथन किया गया है वह श्राश्चर्यकारक है। न वह छोड़ा जा सकता है श्रौर न प्रहण किया जा सकता है। उसका उस्स्व श्रौर कहीं नहीं है; वन श्रथवा श्राश्रम-वासी पर्वमें भी नहीं है। यह ब्याह कब हुआ, इसका भी कहीं उस्लेख नहीं है। हम तो यही कहेंगे एक इसे पीछेसे सौतिने बढ़ाया।

एक स्त्रीका अनेक पति करना।

श्रस्तुः श्रमेक स्त्रियोंसे एक पुरुषके विवाह करनेकी रीति वैदिक कालसे लेकर महाभारतके समयतक, न्यूनाधिक परिमाणोंमें, प्रचलित थीः परन्तु एक स्त्रीके श्रमेक पति करनेकी प्रथा शुरू शुरूमें उन चन्द्रवंशी श्रायोंमें थी जो हिमालयसे नये नये श्राये थे। द्रीपदीके उदाहरणसे यह

बात माननी पड़ती है। इसमें विशेष रूप-से ध्यान देने योग्य बात यह है कि ये श्रनेक पति विभिन्न कुटुम्बोंके नहीं, एक ही कुटुम्बके सगे भाई होते थे: श्रीर श्राज-कल भी हिमालयकी तरफ पहाड़ी लोगोंमें कुछ स्थानों पर जहाँ यह प्रथा जारी है, वहाँ भी यही बात है। श्रर्थात् इस रीतिमें किसी प्रकारकी दुष्टता नहीं उपजती श्रीर भिन्न भिन्न कुटुम्बोंमें वैमनस्य उपजने-की श्राशङ्का भी नहीं रहती । विवाहित स्रोको किसी तरहसे कष्ट होनेकी सम्भा-वना नहीं होती। भारती श्रायोंमें पहलेसे ही इस प्रथाके विषयमें प्रतिकृत मत था। उपर्युक्त वैदिक वचनके आधार पर यह बात पहले लिखी जा चुकी है। कुछ चन्द्रवंशी ऋायोंके द्वारा लाई हुई वह प्रथा भरतखरडमें प्रचलित नहीं हुई। महा-भारतके समय भारती आर्य लोगोंमें वह बिलकुल न थी। महाभारतकारके लिये एक द्रीपदीका पाँच पाएडवोंकी स्त्री होना एक पहेली ही था: श्रीर इसका निराकरण करनेके लिये सौतिने महामारत-में दो तीन कथाएँ मिला दी हैं। विशेषतः कुन्तीका बिना देखे भाले यह आज़ा दे डालना कि जो भिचा ले आये हो उसे बाँट लो: श्रीर तद्वसार पाँची भाइयोंका एक ही स्त्रोको अपनी अपनी स्त्री बना लेना बहुत ही विचित्र है। युधिष्टिरके पूर्वोह्मिखित कथनानुसार मानना चाहिये कि पूर्व समयमें यह प्रथा कुछ लोगोंमें थी। परन्तु ऊपर सौतिने जो प्रयत्न किया है उससे यह भली भाँति सिद्ध है कि महा-भारतके समय भरतखएडसे वह उठ गई थी।

विवाहके भेद।

अव विवाहके भिन्न भिन्न भेदोंका विचार कीजिए। इन दिनोंके सभी धर्म- शास्त्रके प्रन्थों, स्मृतियों श्रोर गृह्यस्त्रोंसे भी सिद्ध है कि विवाहके श्राठ भेद हैं। महाभारतमें भी (श्रा० श्र० ७४) विवाह के श्राठ भेद वर्णित हैं।

ब्राह्मो दैवस्तथाचार्षः प्रजापत्यस्तथासुरः। गान्धवीं राज्ञसश्चेव पैशाचश्चप्रमः स्मृतः॥

परन्त देव श्रीर श्रार्षका श्रन्तर्भाव ब्राह्ममें ही होता है। इनमें कन्यादान ही है। पैशाच यह एक नामका विवाह-भेट देख पडता है। इस कारण विवाहके मुख्य भेद पाँच ही समभने चाहिएँ। यही भेद बहुधा प्रचलित रहे होंगे। अनु पर्वके ४४वें श्रध्यायमें ब्राह्म, जान्त्र, गान्धर्व. श्रासुर श्रीर राज्स यही पाँच भेद बत-लाये हैं। ऊपर वतलाये हुए दैव, श्रार्ष श्रीर प्राजापत्यके बदले जात्र विवाह कहा गया है और इसमें विवाहका श्रन्तिम भेद 'पैशाच' विलक्कल ही निर्दिष्ट नहीं है। अनुशासन पर्वमें वतलाये हुए पाँच भेद ही ऐतिहासिक दृष्टिसे सर्वत्र प्रचलित थे श्रीर इनमेंसे तीन तो प्रशस्त तथा दो श्रप्रशस्त माने जाते थे।

पञ्चानां तु त्रयो धर्म्याः द्वावधर्म्यो युधिष्ठिर। दोनों जगह ऐसा उल्लेख है। इसमें सन्देह नहीं कि इनके भिन्न भिन्न प्रकारके नाम भिन्न भिन्न लोगोंके श्रनुसार पड़ गये हैं। इस विषयमें यहाँ पर विस्तार-से विचार किया जाता है। महाभारतके उदाहरणसे स्पष्ट देख पडता है कि यद्यपि पहलेपहल भिन्न भिन्न लोगोंके विवाहक ये भेद उत्पन्न हुए होंगे, तो भी भारत-कालमें वे श्रायोंमें प्रत्यच रूपसे श्राचरित थे। इसके सिवा विवाह-संस्थाका, उत्क्रान्ति-दृष्टिसे, जो उच्चसे उच्च भेद होता गया यदि इन्हें उसीकी पाँच श्रेणियाँ कहा जाय तो भी ठीक हो सकता है। सबसे कनिष्ट प्रकार राज्ञस विवाह है। राज्ञस विवाह का अर्थ जबर्दस्ती लड़कीको ले आना है।

इससे उच्च है श्रासुर, श्रधीत् लड़कीको गोल लेना। उससे भी श्रेष्टगान्धर्व श्रधीत् लड़कीकी इच्छासे विवाह करना है, इससे श्रेष्ट सात्र श्रधीत् वह विवाह है जिसमें प्रण जीतनेवालेको लड़कीका वाप लड़की दे। सबसे श्रेष्ट ब्राह्म है जिसे सत्कार-पूर्वक कन्याका दान कहना श्रयुक्त नहीं है। इसका विस्तृत विवेचन श्रागे होगा।

ब्राह्म, जात्र और गान्धर्व।

सब वर्णोमं श्रेष्ठ हैं ब्राह्मणः इस कारण ब्राह्मणोंके लिये पहला, ब्राह्म विवाह, योग्य कहा गया है। श्रनु० पर्वके ४४ वें श्रध्याय-में लिखा है कि कन्याका पिता, वरको बुलाकर, सत्कारपूर्वक धनदानादिसे श्रमुकूल करके उसे कन्या दे। श्राजकल भी श्रधिकांश ऊँची जातियोंमें यही रीति प्रचलित है। कन्याके पिताको इसमें वरकी प्रार्थना करनी होती है और धन-दान आदिके द्वारा उसे सन्तुष्ट करना पडता है। जान पडता है कि महाभारतके समय ब्राह्मण लोगोंमें यही विवाह प्रच-नित था: श्रीर इसी कारण इस भेदका नाम ब्राह्मविचाह पड़ गया होगा। विवाहका दूसरा भेद तात्र कहा गया है: किन्तु यहाँ पर इस वातका खुलासा नहीं किया गया कि यह होता किस तरह है। बहुत करके इस ढंगका विवाह चित्र-पोमें ही होता रहा होगा जिससे स्तका नाम चात्र रखा गया । हाँ, यह कह दिया है कि यह विवाह ब्राह्मण श्रीर वित्रिय दोनोंके लिये विहित है। धन आदिसे वरकी पूजा करनेकी रीति ब्राह्मण श्रीर चत्रिय दोनोंमें एकसी रही होगी। तव, ब्राह्म श्रीर चात्र विवाहोंके भेदको अलगाना कठिन है। हमारी रायसे इस विषाहमें वरकी श्रोरसे कन्याके बापकी प्रार्थना करनेको जानेकी प्रथा रही होगी।

महाभारतके श्रनेक उदाहरणोंसे कहा जा सकता है कि पूर्व समयमें इस प्रकारकी रीति थी। वर्तमान कालकी जो विवाह-विधि है उसके वाग्दानके आधार पर निश्चयसे कहा जा सकता है कि वर कन्यार्थी होकर लड़कीके पितासे उसकी कन्या माँगे । किन्तु महाभारतमें एक स्थान, पर स्पष्ट कह दिया गया है कि माँगनेके लिये चत्रिय कभी न जायगा। श्रागे इसका उल्लेख मिलेगा । श्रतएव यह बात निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती कि विवाहके इस भेदका नाम चात्र कैसे हो गया। चत्रियोमें प्रण लगा-कर विवाह करनेकी जो प्रथा थी, उसका अन्तर्भाव इन पाँच भेदोंमें कहीं नहीं होता । हमारी समभमें चात्र विवाह उसीको कहना चाहिये जिसमें लड़कीका पिता कहे कि जो चत्रिय श्रथवा ब्राह्मण श्रमुक बाज़ी जीत लेगा श्रथवा श्रमुक शक्ति या वीरताका काम करेगा, में उसे अपनी बेटी ब्याह दुँगा। इस प्रकार शर्त वदना श्रोर तदनुसार जीतनेवालेको वेटी व्याहना चात्र विवाह है। द्रीपदीके विवाहमें वाज़ी लगाई गई थी। इससे सिद्ध है कि भारत-कालमें ऐसे विवाह हुआ करते थे। सीताके विवाहमें भी धनुष तोड़नेकी शर्त प्रसिद्ध ही है । मित्रविन्दा नामक त्तत्रिय कन्याको, इसी ढँगकी, बाज़ीमें श्रीकृष्ण जीत लाये थे। इस प्रकारके विवाह कुछ पुराने जमानेमें ही न हुन्ना करते अपिकुन्तु महाभारतके समयतक भी इस के कारके प्रण-वाले विवाह होते थे। पञ्जाबके कुछ लोगोंके सम्बन्धमें यह बात सिकन्दरके समय श्राये हुए यूनानी इतिहास-कारोंने लिख रखी है। स्रर्थात् इसके कारण चत्रियों स्रौर ब्राह्मणोंमें शक्ति एवं धनुर्विद्याकी स्पर्धा उत्पन्न हो जाती होगी श्रोर भारतीय त्तत्रियोंको युद्ध-कर्समें निष्णात होनेके लिये यह प्रकार बहुत ही अनुकूल होता होगा। विवाहके पाँच भेदोंमें इसके चात्र नामसे लिये जानेका कारण भी यही है। इस स्पर्धाके काममें ब्राह्मण भी शामिल होते थे। द्रीपदीके खयंवर-वर्णनसे यह वात प्रकट है ; क्योंकि स्वयंवरके समय पाग्डव लोग ब्राह्मण-वेशमें श्राये थे श्रीर ब्राह्मणोंमें ही बैठे थे। मतलब यह कि चात्र विवाह ब्राह्मण श्रौर चत्रियोंके लिये विहित था। इस विवाह-भेदको यद्यपि खयंवर कहा गया है, तथापि वह दर-ग्रसल खयंवर न था। क्योंकि जो कोई बाज़ी जीत ले उसीको कन्या देनी पड़े श्रीर बहुत करके लड़कीका पिता ही बाज़ी लगाता था। सीता-खयंवरके समय जनकने ही धनुष तोड़नेका प्रण लगाया था और द्रौपदीके स्वयंवरके श्रवसर पर भी दृपद्ने शर्त लगाई थी । श्रर्थात् कन्याको श्रपने विवाहके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी खाधी-नता न थी। बाप जिसे दानमें दे दे उसीके साथ विवाह होनेका मार्ग उसके लिये खुला था; इस कारण विवाहके इस भेदको योग्य रीतिसे न तो स्वयंवर कहा जा सकता है श्रीर न गान्धर्व ही। श्रव विवाहके तीसरे भेद पर विचार करना है। यह गान्धर्व नामसे प्रसिद्ध है। इसमें लडकीको श्रपनी मर्जीसे दुलहको पसन्द करनेका श्रिधिकार मुख्य है। इस प्रकारके विवाह गन्ध्रवीमें होते थे, इस कारण इस रीतिका नाम गर् विवाह हो गया। हम पहले कह ही चुक हैं कि गान्धर्व श्रीर श्रप्सरा, हिमालयमें रहनेवाली, मानवी जातियाँ मानी जा सकती हैं। इनमें प्रच-लित गान्धर्व-विवाह, श्रार्य लोगोंमें विशे-पतः चत्रियोंमें होने लगा। दुष्यन्त और शकुन्तलाका विवाह उसका मुख्य उदा-हरण है। दुष्यन्त-शकुन्तलाके उपाख्यान- में उसकी इतनी ही विधि देख पडती है कि परस्पर प्रेम होकर एक दूसरेके गलेमें हार डाल दिया गया। इसमें यह भी श्रावश्यक नहीं कि इच्छित वरको बाप कन्या दे। गान्धर्वका यह एक भेट हुआ। परन्तु साधारण स्वयम्बरका भेद गान्धर्व विधिमें ही शामिल है । श्रनेक राजाश्रोंका जमाव है। उसमें जो पसन्द आ गया उसके गलेमें जयमाल डालने पर "पिता उसका श्रमिनन्दन करे श्रीर वेटीने जिसे पसन्द किया है, उस वरको कन्या अर्पण कर दे।" (अनु० पर्व) इसका उत्कृष्ट उदाहरण नल-दमयन्ती हैं। दुष्यन्त-शकुन्तलाके गान्धर्व विवाहमें श्रीर नल-इमयन्तीके खयम्बरमें इतना ही भेद है कि यह स्वयम्बर सबके आगे होता है: श्रीर बेटीका बाय-तदनुसार-कत्या-दान करता है । इस प्रकारका विवाह मुख्यतः चत्रियोंके लिए कहा गया है। यह स्वयम्बर-विवाह पहले भारती श्रायामें महाभारतके समयतक प्रचलित था। सिकन्द्रको साथी युनानी इतिहास-कृ ने यह बात भी लिखी है। उन्होंने िक है कि पञ्जाबके कठ जातिके चत्रियों स्त्रियाँ अपने लिए आपही वर करती है।

त्रासुर ।

श्रव श्रासुर पर विचार करेंगे। इने विचाहमें कन्या खरीदी जाती थील "कन्याके श्राप्त लोगोंको श्रीर खयं कन्या को खूब धन श्रादि देकर मोल ले ले श्रीह तब उसके साथ विचाह करे। ज्ञाता तुरु कहते हैं कि यह धर्म श्रासुरोंका है। श्राप्त स्पष्ट वचन महाभारतमें ही है। यह ऐतिहासिक रीतिसे विचार किया जिले श्रिसुर कीन हैं, तो से श्रसलमें पर्रिश

श्रुथवा पारसी हैं। पहले लिखा गया है कि शर्मिष्टा श्रसुर-कन्या थो। 'ज़ंद' श्रापों-में प्रचलित विवाहकी यह प्रथा भारती ब्रायोंमें भी थी। महाभारतके कई उदा-हरणोंसे यह बात स्पष्ट देख पड़ती है। प्आबकी कुछ जातियोंमें श्रासुर विवाह हुआ करते थे। इनमें, भारतके समय. मह श्रीर केकय जातियाँ विशेष थीं। इस वंशकी स्त्रियोंको खासकर मध्य देशके इत्रियाराजा प्रहण करतेथे। पाण्डुके वास्ते माद्रीन-शल्यकी बहिन-के लिये जानेका वर्णन महाभारतमें है। यहाँ पर वह उद्भुत करने लायक है। पागडु राजाका दूसरा विवाह करनेके लिए शत्यके नगर-में भीष्म गये। उन्होंने शल्यसे कहा कि माद्रीका विवाह पागडुके साथ कर दो। उस समय शल्यने उत्तर दिया—"हमारे कुलाचारको श्राप जानते ही हैं। हमें वह वन्दनीय है। उसे में श्रपने मुँहसे कहना नहीं चाहता।" तब भीष्मने उसकी शर्त े नकर सोनेके जेवर, रत्न श्रीर हाथी, समेडि, कपड़े, श्रलङ्कार, मिण श्रीर मोती लादि देकर उसे सन्तुष्ट किया । इसके न नन्तर शल्यने श्रपनी बहिन उनके श्रधीन कर दी। इसी प्रकारका वर्णन रामायण्में दशरथ-कैकेयीके विवाहका है। कैकेयीके पिताको सारा राज्य अर्पण कर दशरथने कैकेयीको प्राप्त किया था। तात्पर्य यह कि पूर्व समयमें त्रासुर विवाह चत्रियोमें प्रचलित था। खासकर जिन त्तियोंका सम्बन्ध श्रसुरोंसे था, उनमें यह प्रथा कुल-परम्परासे चली श्राई थी। यूनानी इतिहासकार साफ़ लिखते हैं कि पञ्जाबमें महाभारततक यह रीति प्रचलित थी। उन्होंने लिखा है—"तत्त्रशिला नगरी-में युवती कन्याएँ वाज़ारमें वेचनेके लिए मानाई जाती थीं श्रीर जो सबसे श्रिधिक ीमत देता था उसीके हाथ सौदा होता

था।" उपर शल्यका जो उत्तर उद्धृत है, उससे प्रकट है कि भारती श्रायों में विवाह-का यह भेद तभीसे निन्दा माना जाता था। श्राजकल भी यद्यपि कुछ जातियों में श्रासुर विवाह प्रचलित है तो भी उसे लोग श्रप्रशस्त ही मानते हैं।

राच्स।

विवाहका पाँचवाँ भेद राजस विवाह है। यह खासकर राचसोंमें होता था. इस कारण इसका नाम राचस पड़ा। इस विवाहमें कन्या पत्तवालींसे लडकर. प्रतिपित्तयोंको रोते-पीटते छोड़, विलाप करती हुई कन्याको ज़वर्दस्ती ले आते थे। पहले दिग्दर्शन किया जा चुका है कि राज्ञस कौन लोग थे। हिन्दुस्थानमें मूल निवासियोंकी नरमांस भन्नण करनेवाली जो कुछ जातियाँ लङ्कासे फैली हुई थीं, उनमें विवाहका यह भेद था। रावण-कृत सीताहरणसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। इस प्रकारका विवाह चित्रयोंको बहुत भाया होगा; क्येंकि इसमें वही लोग श्रपने सामर्थ्यका उपयोग कर सकते थे जो युद्ध-विद्यामें निपुण होते थे। महाभारतमें इसका प्रसिद्ध उदाहरण सुभद्रा-हरण है । अर्जुनने श्रीकृष्णकी सलाहसे सुभद्राका हरण किया । इसमें किसी तरह सुभद्राके श्रमुमोदनका श्रंश न था। उस समय श्रीकृणाने श्रर्जुन-से कहा—"त्तत्रिय स्वयम्बर-विधिसे विवाह करे, यह उत्तम है; परन्तु स्वय-म्बर किया जाय तो न जाने सुभद्रा किस-के गलेमें जयमाल डाल दे। त्रतएव शूर त्तत्रियोंके पत्तमें स्त्रीको बलात्कारसे हर ले जाना उत्तम मार्ग है।" सारांश, राज्ञस विवाहको ज्ञिय लोग खूब पसन्द करते थे। काशिराजकी वेटियाँ—श्रम्बा, श्रम्बिका, श्रम्बालिका—स्वयम्बर् कर रही

थीं; उस समय भीष्म उन्हें हरण कर लाये श्रीर दोका विवाह विचित्रवीर्यके साथ कर दिया। इसमें विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि जब श्रम्याने भीष्म-से कह दिया कि मैंने शाल्व राजाको मनसे वर लिया है, तब भीष्मने उसे लौट क्षाने दिया। इससे सिद्ध होता है कि जिस कन्याने मनसे किसी श्रीरको वर लिया हो उस कन्याका प्रतिग्रह करनेमें, भारतके समय, श्रार्य चत्रियोंको श्रडचन जान पड़ती थी। यद्यपि ऐसा है तथापि ^{२५० म}वियाहिता स्त्रीतक ज़बर्दस्ती हरण कर ले भागनेके उदाहरण पूर्व समयमें देख पड़ते हैं। इस सम्बन्धमें सीताका ही उदाहरण पर्याप्त है। इस रीतिसे विवा-हिता स्त्रीको जीत ले जाने पर राचसोंकी रीतिके अनुसार, बालेका श्रिधिकार है। या : और यदि वह राजी न होती तो उसे एक वर्षकी मियाद दी जाती थी। शान्ति पर्वके ६६वें अध्यायमें कहा गया है कि पराक्रमसे इरण कर लाई हुई कन्यासे एक वर्षतक विवाहके सम्बन्धमें पूछताछ न की जाय। माल्म पड़ता है कि वह मियाद गुज़र जाने पर उसके साथ ज़वर्दस्ता विवाह कर लिया जाता था। परन्तु धर्मके ज्ञाता वित्रिय उस स्त्रीका भी प्रतिग्रह करना स्वीकार न करते थे जिसने किसी श्रीरको वर लिया हो । भीष्मके उल्लिखित उदाहरणसे यह बात व्यक्त होती है। वन पर्वमें जयद्रथने द्रौपदीका हरण किया; उससे भी प्रकट है कि कुछ षत्रिय लोग विवाहित स्त्रीको भी ज़ब-र्दस्ती प्रकड़ ले जाते थे । परन्तु उसके श्रात-बन्धुश्रोंको जीतनेकी श्रावश्यकता थी। द्रौपदीने उस समय धौम्य ऋषिकी प्रार्थना की: तब धौम्यने जयद्रथसे जो वाक्य कहा वह ध्यान देने योग्य है।

नेयं शक्या त्वया नेतुं श्रविजित्य महारथान्। भर्म जन्मस्य पाराण्मवेत्तस्य जयद्रथ

भहारथियों (पाएडवों) को जीते विना तम द्रीपदीको नहीं ले जा सकते। पुरा तन कालसे चत्रियोंका जो धर्म चला श्रा रहा है, उस पर ध्यान दो 🖔 (वन गर्व श्र० २६=) इससे प्रतीत होता है हि चत्रियोंका प्रातन कालसे प्रचलिएत भा यह रहा होगा कि दूसरे चत्रियकोतिक कर उसकी विवाहिता स्त्रीतक हर श्री जा सकती है । श्रनेक प्रमाणों हैं रक आरणा दढ़ होती है कि प्राचीन कालमें इस तरहकी रीति रही होगी। महाभारतके श्रनन्तरके कुछ श्रन्थोंसे जान पड़त है कि राजाश्रोंकी स्त्रियाँ, जीतनेवाले राजाके घर, दासीकी भाँति काममें लाई जाती थीं । विशेषतः जो स्त्रियाँ पर रानियाँ न होती थीं, उन्हें जीतनेवाल राजाकी स्त्रियोंमें सम्मिलित करनेमें वहुध कोई बाधा न रही होगी। खैर: स्मृतियों में उल्लेख है कि राचस विवाह चत्रियों के लिए विशेष रूपसे योग्य है। श्राजन नीचेचा भी चत्रियोंमें और उनके जातियोंमें राचस विवाहका थोड़ा वहु श्रवशिष्ट श्रंश देख पड़ता है; यानी विचाह के अवसर पर दलहके हाथमें कंटार य बुरी रखनेकी रीति इन जातियों में श्रव तक है।

ये भिन्न भिन्न विवाह पहले भिन्न भिन्न जातियों में प्रचलित थे; श्रौर बाह्म, जान गान्धर्व, श्रासुर श्रौर राज्ञस उनके नार थे। तथापि ये सब भारती श्रायों में, पष्ट हो समयमें, जारी थे श्रौर उन सबक रूपान्तर धीरे धीरे ब्राह्म-विवाहमें होत गया। राज्ञस-विवाहके द्वारा यद्यापि कन्या हरण की गई हो, तथापि श्रन्तर पति-पत्नीका विवाह बहुधा ब्राह्मविधिर किया जाता था। महाभारतके श्रमें

उदाहरणोंसे यह बात ज्ञात होतीना है। सुभद्रा-हरण हो चुकने पर अर्जुन श्रीर कुमद्रा द्वारकामें लौटाहुचे गये। वहाँ ब्राह्म-विधिसे उनका क्रिन्चाह होनेका वर्णन है। सिका मुख्य य स्वरूप दान है। इसी गान्धर्व-विविद्भाह अथवा सात्र-विवाहसे प्रथित स्वयं वर होने या वाज़ी जीतने पर जब्स विवाह होना पका हो जाता था तब वी बहुधा ब्राह्मविधि द्वारा विवाह हुआ हिं सते थे। अर्जुनके द्रौपदीको जीत लेने र श्रीर उसे श्रपने घर ले जाने पर भी द्रुपद्ने दोनोंको श्रपने यहाँ बुलाकर उनका विधिपूर्वक विवाह किया, ऐसा महाभारतमें वर्णन है । प्रायः सभी विवाहोंमें ब्राह्म-विधि यानी दानका रवाज था । एक दुष्यन्त श्रोर शकुन्तलाके विवाहका उदाहरण ही उक्त रीतिके विरुद्ध है। उसमें गाम्धर्व विवाह होने-के पश्चात् दूसरी कोई विधि होनेका वर्णन नहीं: श्रोर शकुन्तलाके पितासे दुष्यन्तकी भेंटतक नहीं हुई। ऐसे श्रप-वादात्मक उदाहरणोंके सिवा प्रायः सभी प्रकारके विवाहोंमें ब्राह्म-विधि यानी दान-विधि सदैव रहती थी।

सभी विवाह-विधियोंका मुख्य अङ्ग सप्तपदी प्राचीन कालसे माना हुआ देख पड़ता है। विवाह-विधिमें श्रियके समन्न पति-पत्नी जो सात फेरे करते हैं, उस विधिका नाम सप्तपदी है और उस विधि-का एक मुख्य अङ्ग पाणिग्रहण संस्कार भी है। मन्त्र-होमसे सप्तपदी होना ही विवाहको पूर्ण करना है। इसके बिना विवाह अधूरा ही रहता है। धर्मशास्त्रका ऐसा निश्चय महाभारतके समय स्पष्ट देख पड़ता है (अनुशासन पर्व)। इसके अतिरिक्त कन्याके शुल्क-सम्बन्धी अर्थात् मोल-तोलके सम्बन्धमें अनेक प्रश्न होते थे। महाभारतमें इन प्रश्नोंके सम्बन्धमें

Ŧ

भी भिन्न भिन्न विचारोंका उल्लेख है।
येहें उनका विस्तार करनेकी श्रावश्यकता
नहीं। जवतक प्रत्यच्च पाणिप्रहण श्रोर
सप्तपदी ने हो गई हो तबतक लड़कीके
लिये दूसरे वर्षी तजवीज़ हो सकती है,
यह बात सोलहीं शनि सच है। सिर्फ़
शुल्क-दानसे वह कुछ वेस नहीं बन जाती।

विवाहके अन्य बन्धन।

महाभारत-कालमें विवाहके सम्बन्धमें जो श्रीर शर्तें थीं, उनका यहाँ संचिप्त उल्लेख किया जाता है। उनका विस्तृत वर्णन पूर्व भागमें हो ही गया है। प्रत्येक वर्णको अपने ही वर्णकी स्त्री करनेका अधिकार था। इसके अतिरिक्त उसे अपने वर्णसे शीचेवालेकी बेटी व्याह लेनेका भी अप्रिकार था। अर्थात् ब्राह्मणको त्तत्रिय. वैश्य श्रीर शह्के यहाँ, तथा सत्रियतो वैश्य श्रौर शूट्रके यहाँ ब्याह कर लेनेका श्रिधिकार रहा हो, तथापि महा-भारतमें अनेक स्थलों पर कहा गया है कि श्रह्मण ग्रंदा स्त्रीको ग्रहण न करे। ऐसा विवाह निन्द्य समभा जाता था। गृद्रास्त्री ग्रहण करनेवालेको वृषलीपति कहते थे। यह नियम था कि ब्राह्मकर्म श्रथत् श्राद्धादिके लिये श्रथवा दान देनेके लिंगे वृषलीयित योग्य नहीं है। स्रौर तो श्री, यह भी माना जाता था कि वह श्रधागतिको प्राप्त होगा। जयद्रथको मार्गेकी प्रतिज्ञा करते समय श्रर्जुनने जो जो रापथें की थीं, उनमें एक शपथ यह भी है कि "मुभे वे लोक प्राप्त हों जहाँ वृषली-पति जाते हैं।" श्रस्तु; उस समय लोग चाहते थे कि ब्राह्मण्या चित्रयं भी शद्रा-को न ब्याहें। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि महाभारतके समय ब्राह्मण लोग नीचे के तीनों वणोंकी बेटियाँ लेते थे। अभ्य ऐतिहासिक प्रमाणोंसे भी यह ग्राह

सिद्ध है। मेगास्थिनीज़ने चन्द्रगुप्तके समयका जो वर्णन किया है, उसमे स्पष्टतया लिख इस बातको उसने दिया है। महाभारतके समन्त्र पश्चात् भी, कई शताब्दियोंतक, मह नियम बना रहा। गुप्तकालीन शिलालेखों में भी, ब्राह्मणोंके चत्रिय श्रियोंको ब्याहनेके कई दृष्टान्त हैं। वाण कविने हर्षचरित्रमें अपने पारशव भाईके होनेकी बात लिखी है। तात्पर्य, ब्राह्मण कुछ महाभारतके समयमें ही अपनेसे नीचेवाले घर्णोंकी स्त्रियाँ ग्रहण न करते थे, किन्तु उसके पश्चात् कई सदियोतक यह सिलसिला जारी था । पहलेपहले ब्राह्मण, चत्रिय श्रौर वैश्य-तीनों जातिकी स्त्रियोंसे उत्पन्न सन्तान ब्राह्मण ही समभी जाती थी। परन्तु फिर श्रागे, महाभारतवे समय, बाह्मण श्रौर चत्रिय स्त्रियोंसे उपजी सन्तति ही बाह्मण मानी जाती थी। महाभारत-काल और उसके पश्चत्तक यह नियम था। गुप्त-कालमें, इस नियममें भी काट-छाँट हुई होगी और यह अरुमान होता है कि ब्राह्मण पति द्वारा चत्रेया स्रोसे उत्पन्न सन्तान ज्तिय ही रानी जाने लगी। धीरे धीरे गुप्त-कालके पद्मात् यह बात भी न रही। धर्मशास्त्रकी यह मर्यादा हो ग े चर्ण ग्रपने ही वर्णमें विवाह कर। प्रातलोम विवाहतो पहलेसे ही वन्द थे। वड़ा सख्त थिम था कि नीचेके वर्णका पुरुष श्रपनेसे उच र्गणकी स्त्री प्रहण न करे। ऐसे समाग्मसे उपजी हुई सन्तान वर्णवाहा निगद-श्राएडाल श्रादि जातियों में गिनी जात्थी।

सिंहावलोकन ।

महाभारतकालीन भारतीय आर्थिकी वेबाह-संस्थाका वर्णन यहाँतक हा। रत और तत्कालीन युनानी इति।स-

कारो अन्देप्रमाग्यके अधार पर किया गयाहै। श्रव उसका संचिप्त सिंहावलोकन कर वर्तमान परिस्थितिवारों साथ उसकी तुला करते हैं। (१) बहुत्स्त पुराने जमाने विवाहका बन्धन व श्वेतकेतुने इसे शुरू किया पर सने निया कर दिया कि यदि पत्नी व्यभिताचार करें। उसे भूण-हत्याका पाप लगेगा। विव श्रुह दढ़-बन्धनका पाया यही है। उसने क भी उच्चतम नियम बना दिया कि 🐠 पति व्यभिचार करे तो यही पाप उसे होगाः किन्तु वह आजकल बहुधा मान्य नहीं है। (२) बहुत प्राचीन समयमें नियोगकी प्रथा थी, किन्तु स्त्रियोंके पाति वतकी उच कल्पनाश्रीने उसे वन्द कर दिया। न वह महाभारतके समय थी श्रीर न इस समय है। (३) प्राचीन कालमें दीर्घतमाने त्रैवर्शिक स्त्रियोंके लिये पुनर्विः वाहकी मनाहो कर दी। यह आज्ञा, पाति-वतकी ही उच कल्पनाश्रोंके कारण, भारती श्रायोंमें मान्य हो गई। उच वर्णकी स्त्रियाँ, महाभारतके समय, पुनर्विवाह न करती थीं। यदि कोई कर लेती थी तो वह हीन, श्दतुल्य समभी जाती थी। हिन्दूसमाजमें यह धारणा अवतक वनी है। (४) एक स्त्रीके अनेक पति न हो सकते थे, परन्तु एक पतिको अनेक पत्नियाँ करनेका अधि-कार प्राचीन समयसे लेकर महाभारतके समयतक था। बहुपतीकत्वका चलन पूर्व समयमें वहुत श्रिधिक रहा होगा। किन्तु महाभारतके समय वह घट गया था और अब भी बहुत कम है। (५) बहुपतित्वकी प्रथा श्रति प्राचीन समयमें कचित् थीः श्रागे चलकर वह नष्ट हो गई श्रीर इस समय भी उसका चलन नहीं है। (६) प्राचीन कालसे लेकर महा-भारतके समयतक विवाहमें कन्याके अनुप-भुक्ता रहनेका आग्रह था आर वैसाही

क्रुव भी है। (७) परन्तु पति-पर्यस्त्रोका भ्रमागम विवाहके ही दि कर्तन अथवा विवाहके तीसरे दिन हो ता था, अर्थात् विवाहके समय का अन्या उपभोगके लायक या प्रोढ़ होत्या गा थी। (=) इससे प्रकट है कि पूर्व स्दीको मयमें विवाह बचपनमें विल-कुल ही न है वहोता था। बहुधा पुरुषोंका इक्स्वह वर्षकी अवस्थासे लेकर तीस तिपूर्वकी अवस्थातक और स्त्रियोंका पनदह-सोलह वर्षकी अवस्थाके लगभग अर्थात् चढ़ती उम्रमें ही विवाह होता था। इस समय राजास्त्रों स्रोर चत्रियोंके सिवा यह रीति श्रीर लोगोंमें नहीं है। (हर्षचरित्से <mark>त्र्रमान होता है कि यह रोति बा</mark>ण कविके अनन्तर वद्ल गई होगी।)(६) इस कारण, उस जमानेमें विवाहके समय स्त्रियाँ प्रौढ़ होती थीं ग्रौर इसीसे श्रप्रौढ तथा अनुपभुक्त विध्वाश्रोंका प्रश्न ही उपस्थित न हु,आ था । आजकलर्क श्रीर महाभारतकालीन स्थितिके यह बड़ा और महत्त्व-पूर्ण अन्तर है (१०) प्राचीन कालमें भिन्न मिन्न लोगोंमें तरह तरहके विवाह प्रचलित थे, और उन लोगोंके कारण ही ब्राह्म, ज्ञात्र, गान्धर्व, **ब्रासुर ब्रोर राज्ञस—ये विवाहके पाँच** भेद भारतीय श्रायोंमें, भारतीय-कालमें प्रचलित थे। उसमें ब्राह्म-विधि श्रर्थात् दान-विधि श्रेष्ठ मानी जाती थी। श्राज-कल भी बहुत कुछ वहीं बात है। चत्रियों-में राज्ञस विवाह अर्थात् ज़बर्दस्ती कन्या हरण करनेकी रस्म श्रीर ज्ञात्र विवाह यानी ग्ररताकी बाज़ी जीतकर कन्याको वरनेकी रीति तथा गान्धर्व विवाह श्रर्थात् केवल प्रेमसे ही वरण कर लेनेकी रीति बहुतथी।यूनानी इतिहासकारोंके प्रमाणीं-से सिद्ध है कि महाभारतके समय भी यही परिपार्टी थी। पर त्राजकल ये तीनों रीतियाँ लुप्त हैं। श्राजकल ब्राह्म श्रोर श्रासुर

दोही, श्रथवा दोनोंका मिश्रण प्रचलित है। (११) महाभारतके समयतक ब्राह्मण श्रीर चित्रय श्रपनेसे नीचके वर्णकी वेटी ले लिया करते थे। इस समय यह रीति सर्वथा वन्द है। यह दूसरा महत्त्व-पूर्ण श्रन्तर है। इस प्रकार महाभारत-कालीन श्रीर वर्तमान-कालीन विवाह संस्थाके सम्बन्धमें भारतीय श्रायोंके समाजकी परिस्थिति विभिन्न थी।

पति-पत्नीका सम्बन्ध।

≠श्रव देखना चाहिए कि भारती-समय-में पति-पत्नीका कैसा सम्बन्ध था। जिन दिनों स्त्रियाँ विवाहके समय तरुण होती थीं श्रौर जिन दिनों उन्हें पतिको वरण करनेका अधिकार था, श्रथवा स्त्रियोंके लिये गुल्कमें वड़ी वड़ी रकमें देनी पड़ती थीं, उस युगमें पत्नीका अधिकार रिवारमें वढ़ा रहा होगा। श्राजकल तो न्याःदान करनेके स्रतिरिक्त चिएा (दहेज़) भी खासी देनी पड़ती ु: तव पत्नीका वहुत कुछ स्राद्र स्रिधिकार घट जानेमें श्राश्चर्य ही कौनसा है। महा-भारतके समय गृहस्थीमें स्त्रियोंको विशेष स्वतन्त्रता प्राप्त थी स्रौर कुटुम्बमें उनका त्रादर भी ख़ासा था । द्रौपदीका ही उदा-हरण लीजिये। विवाहके समय वह बड़ी थी। खयम्वरके श्रवसर पर वह निर्भयता-से चली आई। कर्ण जब लच्य वेधनेको धनुष उठाने लगा तो उसने करारा उत्तर दिया कि — "में सूतसे विवाह न करूँगी।" ब्राह्मण्रूपी श्रर्जुनके साथ वह, प्रण जीते जाने पर, स्रानन्द्से चली गई। फिर वृत के अवसर पर उसने अपना धेर्य डिग॰ नहीं दिया । उसे धर्मशास्त्रका भी अञ्जा परिचय था श्रोर सभासे उसने ऐसा प्रश्न किया कि उसका उत्तर भोष्मसे भी देते न बना। व्यासजीने उसके लिये 'त्रझ- वादिनीं श्रीर 'पिएडतां विशेषणोंका प्रयोग किया है। वह श्रपने पितयोंके साथ वनवासमें बे-खटके चलीं गई। राज-कींय विषयों पर उसने श्रपने पितयोंके साथ श्रनेक बार वाद-विवाद किया। श्रपने तप श्रीर तेजसे उसने विराटके घरकी किठनाइयाँ, श्रपनी शुद्धता श्रीर पातिवतको बचाकर, भेल लीं श्रीर श्रन्तमें युद्धमें जीत होने पर उसने श्रपने पितयोंसे राज्य करनेके विषयमें श्राग्रह किया। इस प्रकार उसके बड़ण्पन, स्वातन्त्र्य श्रीर पातिवत्य श्रादि गुणोंका वर्णन किवने किया है।

पतिव्रता-धर्म।

द्रौपदीके ही मुखसे (वन प० २३३वाँ श्रध्याय) कविने वर्णन कराया है कि उत्तम पत्नीका आचारण कैसा चाहिये। यहाँ उसे द्वृत करना ठीक होगा। द्रौपदी सत्यभ । से कहती है:-भमेंने अपने पतियोंक जेस तरह प्रसन्न किया है, वह सुनो। श्रहङ्कार श्रौर क्रोधको त्यागकर स्त्री वह काम कम् न कर जो पतिको अप्रियहो। पतिका मन रखने-के लिये स्त्री निरिममान भावसे उसकी ग्रश्रुषा करे। बुरे शब्द कहना, या बुरी तरहसे खड़े रहना, बुरी रीतिसे देखना या वैठना ऋथवा चाहे जिस जगह चले जाना-इन वातोंसे में बहुत बचती रहती हूँ। मैं इस बातको जाँचनेकी फ़िक्र नहीं करती कि मेरे पतियोंके मनमें क्या है। में केसी दूसरे पुरुषको भूलकर भी नहीं रेखती, फिर चाहे वह देवता हो या ान्धर्व, तरुण हो या मालदार, छैला हो ग सुन्दर । मैं पतिके पहले न भोजन हरती हूँ, न स्नान करती हूँ श्रोर न लेटती । नौकरों-चाकरोंके सम्बन्धमें भी में ऐसा ही ज्यवहार करती हूँ । पतिके

र्भे अने पर स्त्रीको खड़े होकर उसका बाहररे जान पर स्थान बाहररे की करना श्रीर उसे जल तथ श्रमिनन्दन श्रीको घरके वासन बर्तन खुब साफ़ रखः करा चाहिए श्री श्रच्छी रसोई तैयार करनी र चाहिए पतिको यथोचित समय ार्भंपर भोज परोसना चाहिए। सामानको पहोर पावधानी रखे श्रोर मकानको बुहारकर साफ रे स्रोटी स्त्रियोंका साथ न करे श्रीर शालसे तजकर पतिको निरन्तर सन्तुष्ट रखे। न किसीसे दिल्लगी करे श्रोर न हँसी। घरके बाहरवाले दरवाज़ेमें खड़ी न हो। बागुमें ज्यादा देरतक न ठहरे। पति प्रवासमें हो तो नियमशील होकर पुष्पी श्रीर श्रनुलेपनको त्याग दे। पति जिस चीज़को खाता-पीता न हो उसे श्राप भी वर्जित कर दे। जो बातें पतिको हित-कारक हों वे ही करे। सासने मुभे जो कुछ कह रखा है उसका श्रवलम्बन में रात-दिन बड़ी मुस्तैदीसे करती हूँ। सब प्रकारसे धर्मनिष्ठ पतियोंकी सेवा में इस तरह डर-कर किया करती हूँ जैसे कोई कृद्ध सर्पसे डरे । पतिसे बढ़कर श्रच्छी होनेका प्रयत्न में नहीं करती। में सासकी निन्दा नहीं करती। किसी बातमें प्रमाद नहीं होने देती। मैं सदा कुछ न कुछ करती रहती हूँ : श्रौर बड़ोंकी शुश्रुषा करती हूँ । श्रनेक वेदवादी ब्राह्मणोंका में सत्कार करती हूँ। नौकर चाकर जो कुछ करते हैं उसपर सदा मेरी दृष्टि रहती है। गोपाल (ग्वाले) से लेकर मेषपाल (गड़रिये) तक सभी चाकरोंकी मुक्ते जानकारी है। गृहस्थीमें जो खर्च होता है और जमा होता है उस पर में बड़े गौरसे नज़र रखती हूँ। ऐसे वशीकरणके मन्त्रसे मैंने अपने पतियोंकी वशमें किया है। श्रोर कोई वशीकरण मुभे मालूम नहीं।" यह वर्णन इस वातका अच्छा उदाहरण है कि गृहस्थीमें पत्नीको

क्षा व्यवहार करना चाहिए। परन्तु वहार्थीमें पत्नीका जो उदात्त कर्तव्य है, ^{१8} प्रर्थात् पतिके सुख-दुःखकी हिस्ते । वननेका अच्छा चित्र इसमें वहीं गाया। किन्तु महाभारतमें वास पदीके प्रत्यच श्राचरणका जो क्लिकि है वह इससे कहीं श्रेष्ठ कोटि-कृष्णिवह सदा पागडवोंके सुख-दुःखकी तिमागिनी दिखलाई गई है। यह भी ला दिया है कि कुछ मौकों पर्वह तियोंके साथ वाद-विवाद तथा भगड़ा ार हठ भी करती है। प्राचीन कालसे क्षियोंके श्राचरणके सम्यन्धमें श्रत्यन्त ुत्त कल्पना भारती आर्य स्त्रियोंके ्यमें है, इसकी साची महाभारतके क वर्णन श्रौर कथाएँ देती हैं। इसमें द्विह नहीं कि महाभारतके समय श्रार्थ व्योका पति-प्रेम श्रवर्णनीय था श्रौर विवास विकास विकास विकास विकास विकास विवास ाति-पत्नीका अभेच सम्बन्ध।

भारतके एक प्रसङ्गसे यह बात भली भाति समभी जा सकेगी कि पति पत्निके रेश्तेके सम्बन्धमें भारती आर्थोमें कितनी उदात्त कल्पना थी। यहाँ पर उसका विवे-रन किया जाता है। जिस समय द्रौपदी-वस्त्र-हरण किया गया, उस प्रसंगसे सने पूर्वोक्त महत्त्वका प्रश्न किया। उसने पूछा—"धर्मने पहले श्रपने श्राप ्रिती लगाई, श्रीर हार जाने पर उन्होंने क दाँव पर रख दिया । फिर में दासी ई या नहीं ?" इसका उत्तर भीष्म न दे तके। वस्त्र खींचते खींचते दुःशासनके वक जाने पर भी द्रौपदीने वही प्रश्न किया। तब भीष्मने उत्तर दिया कि— "पश्न कठिन है, उत्तर नहीं दिया जा सकता।" यह भी एक पहेलीसी जँचती है। इस उत्तरके आधार पर कुछ लोग

यह भी दलील करते हैं कि वस्त्र-हरणकी घटना यहाँ हुई ही न होगी। "वस्त्र-हरस-के श्रवसर पर खयं धर्मने चमत्कार करके साची दी कि द्रौपदी दासी नहीं है, तब भीष्मको तो शङ्का न रहनी चाहिये।" -श्रर्थात् श्राचेपकर्ताका यह कथन हो जाता है कि द्रौपदी-चस्त्र-हरण काल्पनिक श्रौर प्रचिप्त है। ग्रीर तो ग्रीर, इस कथा-भागके सम्बन्धसे भीष्मके ऋत्यदात्त चरित्र पर साधारण लोगोंके मनमें भी शङ्का उत्पन्न होती है। महाभारतके सभी व्यक्तियोंमें भीष्मका चरित्र श्रेष्ट है, श्रीर उनके सम्बन्धमें सभीका श्रादर-भाव है। जिसने पिताक लिए श्रामरण ब्रह्म-चर्य श्रङ्गीकार किया, जो ज्ञान, श्रनुभव श्रीर तपोवलसे सवका नेता था, जो सम-स्त शस्त्रास्त्र-वेत्तात्रोंमें त्राप्रणी था श्रीर जो धृतराष्ट्रका भी चाचा था श्रर्थात् सारे कौरवोंका पितामह था, उसने यदि ठीक समय पर द्रौपदीके प्रश्नको योग्य रीति-से हल कर दिया होता, तो वह भयद्वर युद्ध होनेकी घड़ी ही न श्राती। बहुतोंको ऐसाही जँचता है। जिस भीष्मने श्रपने साज्ञात् गुरु महाराजकी धर्म-विरुद्ध श्राज्ञा नहीं मानी, उसने उस समय राज-सत्ताकी हाँमें हाँ मिला दी। कुछ लोगोंको यही मालूम होने लगता है। किन्तु उस समयके प्रसङ्ग पर यदि सूदम दृष्टिसे विचार किया जाय तो भीष्मने उस समय जो उत्तर दिया उससे उन पर होनेवाला श्राचेप दूर हो जाता है। न सिर्फ़ यही, बितक यह भी देख पड़ेगा कि पति-पत्नीके सम्बन्धमें उन्होंने एक श्चत्यन्त उदात्त नियम यहाँ बतला दिया। धर्मने श्रपनी वाजी हारकर, शकुनिके बढ़ावेसे द्यति-मदान्ध होकर, दाँव पर द्रौपदीको रख दिया। सारी सभाने इस बातसे घृणा कीः तब भी धर्मने दाँघ लगा रहने दिया—बदला नहीं। श्रतएव दाँव हार जाने पर द्रौपदी कौरवोंकी दासी हो गई। दुर्योधनने उन्मत्त भावसे उसे सभामें बुलवा भेजा। तब, उसने कौरवों-के फन्देसे छूटनेके लिए—न कि श्रपने पतियोंके श्रधिकारसे निकलनेके लिए— पतिवता होनेके कारण सभासे यह पेचीला सवाल किया। उस समय भीष्मने उत्तर दिया—"जिस पर श्रपनी सत्ता नहीं चलती, ऐसा द्रव्य दाँव पर नहीं लगाया जा सकता; श्रौर पति चाहे किसी स्थिति-में क्यों न हो, स्त्रीके ऊपरसे उसकी सत्ता इए तेरे प्रश्नका निर्णय करना मुशकिल काम है।"

न धर्मसौदम्यात्सुभगे विवक्तुं शक्तोमि ते प्रश्नमिमं विवेकुम्। श्रस्वाम्यशक्तः पणितुं परस्वं स्त्रियश्च मर्तुर्वशतां समीद्य॥

(स० ग्र० ६७)

इस उत्तरसे कौरवोंको स्फूर्ति प्राप्त हुई श्रौर दुःशासनने द्रौपदीका वस्त्र खींचा। परन्तु द्रौपदीके रत्तक श्रीकृष्ण जगन्नियंन्ता परमेश्वर—प्रत्यन उसकी लाज रखली श्रीर उसे सेंकडों वस्त्र पहना दिये । तथापि इतनेसे ही द्रौपदीका प्रश्न हल नहीं हुआ। वह दासी समभी जाकर दुर्योधनके हवाले की जाय श्रथवा श्रदासी समभी जाय श्रीर उसे चाहे जहाँ जानेका श्रिधिकार हो? भीष्मने तो वही पूर्वोक्त उत्तर दिया। इस दशामें धृतराष्ट्रने प्रसन्न होकर द्रौपद्री-को वरदान दिये श्रीर उन वरदानोंके द्वारा ऋपना श्रीर ऋपने पतियोंका छुट-कारा करा लिया। इसके श्रनन्तर वन-वासका दाँव लगाकर चूत हुन्ना । ऐसा यहाँका किस्सा है।

श्रय यहाँ प्रश्न होता है कि भीष्मने पहले

जो उत्तर दिया वह योग्य है या त्रयोग्य? श्रीर वस्त्र-हरणके चमत्कारसे उस प्रथका निर्णय हुआ या नहीं ? हमारी समभसे तो भीष्मने जो 'नहीं' उत्तर दिया, उसीमें भारतीय श्रार्य पति-पत्तियोंके लिए एक श्रत्यन्त उदात्त तत्त्व बतलाया गया है। क्योंकि भीष्मने पहले यह कहा है कि पतिकी पत्नी पर जो सत्ता है, उसका विचार करने पर पतिके स्वयं हार जाने पर भी, पत्नीके ऊपरके उसकी सत्ताका उठ जाना नहीं कहा जा सकता। पति चाहे किसी थितिमें हो, उसके सुख दुःख की विभागिनी पत्नी है ही। भारती श्रायोंने इस उदात्त तत्त्वको इतना पूर् किया कि पतिके दास (पराधीन) हो जाने पर भी पत्नी परकी उसकी सत्ताको हरण नहीं किया। उनकी यही भावना थी। श्रीर इसी भावनासे प्रेरित होकर श्राज हजारों वर्षसे हिन्दुस्थानके स्त्री पुरुष, विवाहित अवस्थामें, एकताके श्रानन्दका सुख भोग रहे हैं। श्रथत भीष्मने पहले जो उत्तर दिया वहीं योग श्रौर उदात्त तत्त्वके श्रनुसार था। हरणके समय जो चमत्कार हुन्ना उससे क्या इस तत्त्वका खएडन हो सकता है! यदि यह मान लिया जाय कि द्रौपदीं दासी न होनेका ही धर्मने निर्णय किया, ते कहना होगा कि धर्मने जो यह चमत्कार किया वह श्रपने हाथ-पेर तुड़वानेके ही लिए किया। उस समय युधिष्ठिरने जो चुणी साध ली थी उसका भी यही कार। है। कहना होगा कि राजधर्म, आपद्धर श्रीर मोत्तर्धम बतलानेवाले भीष्म, चम त्कार होनेके पहले, योग्य निर्णय नहीं कर सके। वस्त्र-हरणके समय जो चम-त्कार हुआ उसने द्रीपदीके प्रश्नको हल तो नहीं किया; परन्तु यह सूचना दे दी कि ज्एके अवसर पर दासीको भी न ती

सभामें बुलाना चाहिये श्रीर न उसकी फजीहत करनी चाहिये। चमत्कारका प्राहुर्माव भी इतनेके हो लिए हुआ करता है। चमत्कार होनेका यह मतलब नहीं माना जा सकता कि जो चाहे हो सकता है। यदि ऐसा मान लिया जाय तो द्रीपदी-ने अपने पातिवतकी पुगयाईसे दुश्शासन और दुर्योधन श्रादि सभी दुष्टोंको भस कर डाला होता और फिर भयद्वर युद्ध होनेकी नौवत ही न आती। परन्त चम-कारोंकी उत्पत्ति सृष्टि-क्रममें सिर्फ उतनी ही अनिवार्य दिक्कतसे वचनेके लिये होती है; पाठकोंको इस तत्त्व पर ध्यान रखना चाहिये । चमत्कारसे द्वीपदीकी शाबक वच गई श्रीर इसी कारण उसके विषयमें सभी के मनमें पूज्य बुद्धि उत्पन्न हो गई। श्रस्तु; इस चमत्कारके द्वारा धर्म-इंपी ईश्वर यह अधर्मकृषी उत्तर कभी नहीं देगा कि द्रौपदी दासी नहीं है। पति-पत्नीके नातेके सम्बन्धमें महाभारतने जो उदात्त कल्पनाएँ भारती स्त्री-पुरुषोंके मनोंमें प्रतिविस्वित कर दी हैं, उन्हें इसके विपरीत धारणासे, धका लगेगा। द्रौपदीके बुटकारेके सम्बन्धमें भीष्म निर्णय न कर सकते थे श्रीर यही ठीक था। श्रीर ऐसी अड्चनके मौके पर राजाको ही अपने राजाकी हैसियतके—श्रधिकारोंका प्रयोग करना चाहिए था। महाभारतमें वर्णित है कि धृतराष्ट्रने ऐसा ही किया। भीष्म-को यह अधिकार न था, भीष्म तो प्रधान भ्यवा न्यायाधीश थे। सारांश, द्रौपदीके वला हरणवाली घटना न तो प्रचिप्त है और न वह उस आन्तेपके ही योग्य है जो कि इस सम्बन्धमें कुछ लोग भीष्मके उदात्त बरित्र पर करते हैं। द्यूत-मद्से श्रन्ध दोकर युधिष्टिर अपने आप गहुमें गिरे और अन्य पाएडवोंने भी उन्हें ठीक समय पर मना नहीं किया; इस कारण उनकी

द्रौपदी परकी सत्ता छुट गई श्रौर उसका उज्ञ न किया जा सकता था। श्रौर जो काम नल राजाने भी नहीं किया वहीं युधिष्ठिर-ने किया, इसके लिए भीष्म क्या करें? भीष्मने उस समय भी श्रपना श्राचरण धर्म श्रौर न्यायकी तुलासे बहुत ही ठीक रखा। भीष्मने यहाँ भारती श्रायोंको दिखला दिया कि पित-पलिके सम्बन्धकी उदात्त कल्पना कहाँतक पहुँचती है श्रौर महाभारतके समयसे लेकर श्राज हज़ारों वर्षतक पित-पलिके नातेके सम्बन्धमें यही उदात्त भाव भारती श्रियोंके हदय श्रौर श्राचरणमें पूर्णतया जमकर बैठ गया है, सो ठीक है।

पेसा होते हुए यह आश्चर्य है कि सिकन्दरके साथ आये हुए यूनानी इति-हासकारीने भारती स्त्रियोंके सद्गुर्गीके सम्बन्धमें कुछ प्रतिकृत लेख अपने प्रन्थों-में लिख छोड़े हैं। एक खान पर लिखा है कि—"हिम्दुस्तानी लोग श्रनेक स्त्रियाँ रखते हैं। कुछ तो नौकरी-चाकरी करानेके लिये, कुछ ऐश-आरामके लिये और कुछ लड़कों-बचोंसे घरको भर देनेके लिये। परिणाम यह होता है कि यदि स्त्रियोंके सदाचारकी रद्या जबर्दस्ती न की जाय तो वे बुरी हो जाती हैं।" सारी दुनिया-का श्रमभव यही है कि जहाँ छोटेसे श्रन्तःपुरमं श्रनेक स्त्रियोंको बन्द करके रखनेकी प्रथा है, वहाँ इस ढंगका परि-णाम न्यूनाधिक श्रंशोंमें देख ही पड़ेगा। परन्तु प्राचीन समयमें चत्रिय स्त्रियोंको घरमें बन्द करके रखनेकी प्रथा न थी; स्त्रियोंको बहुत कुछ स्वाधीनतासे तथा वाहर निकलने श्रीर घूमने फिरनेका अवसर मिलता था। उल्लिखित यूनानी मतका कारण हमारी समक्रमें यह त्राता है कि हर देशवालों में दूसरे देशकी खियोंके सद्रणोंके सम्बन्धमें प्रति-

कृल प्रवाद सदैव रहता है: श्रीर इस तरहके प्रवाद बहुधा सच नहीं निकलते। यूनानी इतिहास-लेखकोंका लिखा हुआ यह प्रवाद भी इसी श्रेणीका होगा। कर्ण श्रीर शल्यके वीच जिस निन्दा-प्रचुर (पूर्वील्लिखत) भाषण होनेका वर्णन महा-भारतकारने कर्णपर्वमें किया है, उसमें भी कर्णने मद्र-स्त्रियोंकी श्रीर पञ्जाबकी श्रन्य वाहिक स्त्रियोंकी इसी तरह निन्दा की है। इसमें सन्देह नहीं कि इस निन्दामें श्रतिशयोक्ति है। तथापि मूलमें कुछ न कुछ सत्य होनेसे महाभारतके समय कदाचित् पञ्जाबमें यह हाल रहा हो: श्रीर इसी विरते पर युनानियोंको प्रति-कुल मतकी कुछ जड़-बुनियाद हो। किन्तु इमारी समभमें यह भी पहले ही सिद्धान्त-का एक नमूना है। श्रर्थात् कर्णके मनमें पक्षाबकी स्त्रियोंके विषयमें जो श्रोद्धा विचार था वह उसी नासमभीका परि-णाम था जो कि प्रत्येक समाजमें दूसरे समाजके सम्बन्धमें होती है। श्रर्थात कर्णपर्ववाले कर्णके भाषणसे अथवा यनानी इतिहासकारोंके वर्णनसे भारतीय श्रार्य स्त्रियोंके पांतिव्रतके उच्च स्वरूपमें. जो कि महाभारतमें देख पड़ता है, कोई कमी नहीं आती।

सतीकी प्रधा।

यदि इस उच्च स्वरूपकी कुछ और भिन्न साली आवश्यक हो, तो वह सती- की प्रथा है। सतीकी प्रथा भारती आयोंको छोड़ और किसी जातिमें प्रचलित नहीं देख पड़ती। कमसे कम उसके उदा- हरण और लोगोंमें बहुत हो थोड़े हैं। सतीके धेर्यके लिये पातिवत्यकी अत्यन्त उदान कल्पना ही आधार है। हिन्दु- सानमें सतीकी प्रथा प्राचीन कालसे लेकर महाभारतके समयतक प्रचलित

देख पड़ती है। किंबहुना यूनानी इतिहास-कारोंने भी इस सम्बन्धका प्रमाण लिख छोड़ा है। पञ्जाबके ही कुछ लोगोंके सम्बन्धमें उन्होंने लिखा है कि इनकी स्त्रियाँ पतिकी चितापर जलकर देह त्याग देती हैं। यूनानी इतिहासकारोंको इस बातका बड़ा श्राश्चर्य होता था कि इस तरह देह तजनेका मनोधिर्य इन स्त्रियोंको कैसे हो जाता है। किन्तु उन्होंने यह भी लिखा है कि ऐसा देह-त्याग वे अपनी खशीसे ही करती हैं। युनानी फौजा केटीयस नामक एक भारती चत्रिय सेनापति था। उसके मरने पर, सती होनेके लिये, उसकी दोनों स्त्रियोमें भगडा हुआ। अन्तमें बड़ी स्त्रीको, गर्भवती होनेके कारण, सती न होने दिया गया श्रीर छोटी स्त्री इस सम्मानको प्राप्त करके श्रानन्द्रसे सती हो गई। यह वर्णन युना-नियोंने ही किया है। इससे प्रकट है कि सिकन्दरसे पहले अर्थात् महाभारत-कालके पूर्वसे ही हिन्दुस्थानमें सतीकी प्रथा थी: श्रीर इसके विषयमें श्रत्यन्त पवित्रताकी कल्पना हुए बिना अपनी इच्छासे सती हो जाना सम्भव नहीं। महाभारतमें भी पाग्डुके साथ माद्रीके सती हो जानेका वर्णन है। यह माद्री भी मद्र देशकी पंजा-विन हीथी। इन्द्रप्रस्थमें श्रीकृष्णकी कितनी ही स्त्रियोंके सती हो जानेका वर्णन महा भारतमें है। भारतीय युद्ध हो चुकने पर दुर्योधनकी स्त्रियोंके सती होनेका अथवा दूसरे राजाश्रोंकी स्त्रियोंके सती होनेका वर्णन महाभारतमें नहीं है। किन्तु महा भारतमें तो दुर्योधनकी स्त्रीका नामतक नहीं, फिर उसके सती होनेकी बात ती दूर है। अन्याय राजाओं की स्त्रियों के भी नाम नहीं, श्रौर इस कारण उनके सम्ब^{न्ध} में कुछ भी उल्लेख नहीं है। तात्पर्य, यह उन्लेख न रहनेसे कुछ भी प्रतिकृत अर्ड

मान नहीं होता। श्रर्थात् सतीकी प्रथा बहुत पुरातन होगी। यूनानी इतिहास-कारोंके प्रमाणसे महाभारतके समय उसका प्रचलित होना निस्सन्देह है। हिन्दुस्थानमें सतीकी प्रथा श्रङ्गरेज़ी राज्य-के श्रारम्भतक थी, किन्तु श्रव वह सर-कारी कायदेसे निषद्ध हो गई है।

पर्देका रवाज।

इसी सिलसिलेमें अक्सर यह प्रश्न किया जाता है कि महाभारतके समय हिन्दस्तानमें पर्देकी रीति थी या नहीं। महाभारतके कई एक वर्णनींसे यह अन-मान होता है कि चत्रिय राजाश्रोंमें महा-भारतके समय पर्दा रहा होगा । शल्य-पर्वमें, युद्धका अन्त होने पर, दुर्योधनकी स्रियाँ जब हस्तिनापुरकी श्रोर भागीं, उस समयका वर्णन है कि जिन ललनाओंको कभी सूर्यतकने नहीं देखा, वे ललनाएँ श्रव वाहर निकलकर भागने लगीं। इससे जान पड़ता है कि राजात्रोंकी विवाहित स्त्रियाँ पर्देमें रहती थीं । इसी तरह जब हस्तिनापुरसे स्त्रियाँ जल-प्रदान करनेको गङ्गा जानेके लिये निकलीं, तब फिर भी यही वर्णन किया गया है कि जिन स्त्रियोंको सूर्यने भी न देखा था, वे अब खुले तौर पर सबको नज़रके श्रागे (वेपर्द) जा रही है। इससे भी पूर्वोक्त अनुमान होता है। किन्तु इसमें थोड़ासा विचार है। स्त्री पर्वके १०वें ब्रध्यायमें यह वर्णन है "प्रत्यच्च देवताश्रोंने भी कभी जिनके नाखुनोतकको नहीं देखा वे ही स्त्रियाँ, अनाथ होनेके कारण, लोगोंको दिखाई दे रही हैं।" इस बाक्यसे श्रनुमान होता है कि जिन स्त्रियोंके पति जीवित होते थे वे ही पर्वेमें रहा करती थीं। परन्तु अनाथ अर्थात् विधवां स्त्रियाँ बाहर जन-साधारणमे निकलती थीं। इसमें सन्देह नहीं कि

महाभारतके समय पर्देकी प्रथा प्रत्यज्ञ वर्तमान थी: क्योंकि युनानी इतिहास-कारोंने भी इसका वर्णन किया है। मेगा-श्विनीज़ने इसका उल्लेख किया है। कथा-सरित्सागरमें भी नन्दोंके श्रन्तःपुरका जो वर्णन है, उससे भी प्रकट होता है कि राजाश्रोंकी स्त्रियाँ पर्देमें इस तरह रखी जाती थीं कि उनके नाखनतक देवता भी न देख सकें। कथासरित्सागरमें वर्णित है कि एक राहगीरने अन्तःपुरकी और नज़र उठाकर देखा था, इसलिए उसे पाटलिपुत्रमें प्राण-दगड दिया गया। सारांश, महाभारतसे समय श्रर्थात् सन् ईसवीसे पूर्व ३०० वर्षके लगभग राजाश्रों-में पर्देकी यह रीति पूर्णतया प्रचलित थी। इस कारण सौतिने महाभारतमें उल्लिखित वर्णनको स्थान दिया है। परन्तु अनुमान होता है कि श्रारम्भसे भारती श्रार्य चत्रियोंमें यह रीति न रही होगी। भारती कथाके भिन्न भिन्न प्रसङ्गोंके चित्र यदि दृष्टिके सामने रखे जायँ तो ज्ञात होगा कि श्रति प्राचीन कालमें यह पर्दा न रहा होगा। सुभद्रा, रैवतक पर्वत पर, यादव स्त्रियोंके साथ ख़ले तौर पर उत्सवमें फिरती थी, इसी कारण वह अर्जुनकी दृष्टिमें आ गई। युतके समय द्रौपदी धृत-राष्ट्रकी स्त्रियोंमें बैठी थी। वहाँ पर यदि दुश्शासन या प्रातिकामी दूतके लिए पर्दा होता तो वह वहाँ पहुँच न सकता। श्रोर, इसी प्रकार द्रौपदी भी भरी सभामें न लाई जा सकती। वनवासमें द्रौपदी खुझम-खुह्मा पाएडवोंके साथ थी श्रीर जयद्रथने उसे दरवाज़ेमें खड़ी देखकर हरण करने-का प्रयत्न किया था। ऐसे ऐसे अनेक उदा-हरणोंसे हमारा मत है कि भारती युद्धकें समय चत्रिय स्त्रियोंके लिए पर्वेका बन्धन न था। साधारण रीतिसे वे बिलकुल बाहर घूमती फिरती नहीं थीं, फिन्तु बर्तमान समयकी सी पर्देकी प्रथा उस समय न थी। सीताकी शुद्धिके समय रामने कहा है कि-"विवाह, यज्ञ श्रथवा सङ्कटके समय यदि स्त्रियाँ लोगोंके सामने त्रावें तो कोई हानि नहीं।" प्रर्थात् ऐसे अव-सरों पर तो प्राचीन समयमें स्त्रियोंके लिए कोई पर्दा था ही नहीं। यह बात अवश्य माननी चाहिये। परन्तु ऊपर द्रौपदी-के सम्बन्धमें जिन प्रसङ्गोका वर्णन किया गया है, उनसे प्रतीत होता है कि श्रन्य श्रवसरों पर भी चत्रिय राजाश्रोंकी स्त्रियाँ, बिना पर्देके ही बेधड़क बाहर श्राती-जाती थीं श्रोर महाभारतके वर्णन से देख पड़ता है कि वे लोगोंकी नज़रोंसे छिपी भी न रहती थीं । बहुधा पर्देकी रीति पर्शियन लोगोंसे, पर्शियन बादशाहों-के अनुकरण पर, हिन्दुस्थानके नन्द प्रमुख सार्वभौम राजाश्रोंने सीख ली होगी। श्रर्थात् सन् ईसवीसे पूर्व ४००-५०० वर्षके लगभग इसका अनुकर्ण किया गया श्रीर महाभारतके समय यह रीति प्रचलित थी।

दूसरे बन्धन।

स्मृति-कालमें विवाह-सम्बन्धी जो श्रोर बन्धन देख पड़ते हैं वे महाभारतके समय थे या नहीं ? इस पर यहाँ विचार करना है। यह तो पहले ही देखा जा चुका है कि सगोत्र विवाहको सशास्त्र न माननेका नियम महाभारतके समय मौजूद था। गोत्रका श्रर्थ किसी विविद्यत पुरुष-से उत्पन्न पुरुष-सन्तित करना चाहिए। भारती श्रायोंके समाजमें यह बन्धन विशेष रूपसे देख पड़ता है कि विवाह एक ही जातिमें तो हो, परन्तु एक ही गोत्रमें न हो। महाभारतके समय गोत्रके साथ साथ प्रवरको भी मनाही थी। महाभारतके समय यह नियम था कि एक ही प्रवरमें

वेटी-व्यवहार नहीं किया जा सकता। महाभारतसे इस बातका पता नहीं लगता कि यह बन्धन कैसे शुरू हुआ। महा-भारतमें इतना ही लिखा है—'काल-गित-से प्रवर उत्पन्न हो गये।' किन्तु इससे कुछ बोध नहीं होता। प्रवर तीन या पाँच होते हैं अर्थात् तीन गोत्रोंमें और कुछ खास पाँच गोत्रोंमें विवाह-सम्बन्ध नहीं होता। प्राचीन समयमें ऐसे गोत्र कुछ कारणोंसे, प्रेमसे या द्वेषसे, अथवा अन्य कारणोंसे निश्चित हो गये होंगे। विभिन्न गोत्रोंके प्रवर सुत्रमें पठित हैं। किन्तु सब जगह, उदाहरणार्थ सब बाह्मणोंमें, फिर वे चाहे जिस शाखाके हों, गोत्रोंके प्रवर एक ही हैं: इससे यह प्रवर-भेद बहुत प्राचीन-कालमें अर्थात महाभारतसे भी प्राचीन समयमें उत्पन्न हुआ होगा।

सगोत्रके सिवा, मातृ-सम्बन्धसे पाँच पीढ़ियांतक विवाह वर्ज्य है। यह वर्त-मान स्मृतिशास्त्रका नियम है। अब देखना चाहिए कि भारती आयों में यह नियम कहाँतक प्रचलित था। यह साफ देख पडता है कि चन्द्रवंशी आयोंमें इस नियमकी पावन्दी न थी। मामाकी बेटी आजकल विवाहके लिये वर्ज्य है: परन्तु पाएडबॉके समय चन्द्रवंशी चत्रियोंमें इसकी मनाही न थी। इसके अनेक उदाहरण हैं। श्री-कृष्णके पुत्र प्रद्मका विवाह, उसके मामा रुक्मीकी बेटीके साथ हुआ था। प्रदुष-के पुत्र श्रनिरुद्धका विवाह भी उसकी ममेरी वहिनके साथ हुआ। इन विवाही के वर्णनसे ज्ञात होता है कि मामाकी बेटी व्याह लाना चन्द्रवंशी आर्य विशेष प्रशस मानते थे। सुभद्राके साथ अर्जुनका विवाह भी इसी प्रकारका था। सुभद्रा उसकी ममेरी बहिन थी। भीमका विवाह शिशुपालकी बहिनके साथ हुत्रा था। यह सखन्ध भी इसी श्रेगीका था। शिशुपाल

की माँ श्रोर कुन्ती दीनों यहने थीं। ऐसे श्रुनेक उदाहर गांसे सिद्ध है कि मामाकी बेटीके साथ ब्याह कर लेना उस समय साधारणसी बात थी। यहाँ पर कह देना चाहिए कि ऐसा विवाह पहले; दक्तिण श्रोरके महाराष्ट्रोमें प्रशस्त माना जाता था। ब्राह्मणों स्रौर चत्रियोंमें ऐसे विवाह उस तरफ पहले होते थे। दक्तिणमें ससुर-को मामा कहनेकी चाल अबतक है। जनेऊके अवसर पर जब लड़का काशी जानेकी रस्म अदा करने लगता है तब मामा ही उसे लड़की देनेका घादा करके रोक लेता है। लड़की देनेके वादेकी रीति युक्तप्रान्तकी तरफ़ नहीं है, सिर्फ़ फ़ुसला लेनेकी है। धर्मशास्त्र-निबन्धमें लिखा है कि-'मातुल-कन्या-परिखय' महाराष्ट्रीका श्रनाचार है। श्रतएव यह मान लेनेमें इति नहीं कि महाराष्ट्र लोग चन्द्रवंशी त्रत्रियोंके वंशज हैं। जो हो, यह कहा जा सकता है कि महाभारतके समय चन्द्रवंशी श्रायोंमें मातूल-कन्याका विवाह निषिद्ध न माना जाता था।

महाभारतके समय विवाहके सम्बन्ध-

वर भी मांसहाव खात से । इन प्राप्ता

द्वारे सन्तासका और जानसमित्रक परि

अया पहुंच महं थी। किए भी अपटा

वर्गात कोखन अंद्र माना जाता था

प्रकास वास्ता वर्ष वर्षा राज्यि एक्स स्वक स्वास था, इस पार व्या श्यास स्वीय सीच असम्ब

करके थे। इंशी प्रकार का वैक्रेस में लेग प्राथमय बंद बंदन थे। वहाश्वास्त्री बंदि हे कि प्राटक में में मूंच्या का किस्की

THE IEN BRIDE TO HEREIT

THE REPORT OF THE PROPERTY PROPERTY.

A STATE OF BRIDE STREET

में एक और नियम यह देख पड़ता है कि जेठे भाईका विवाह हुए विना छोटेका विवाह न हो । ऐसा विवाह करनेवालेको भारी पाप लगना माना गया था। हाँ, यदि वड़ा भाई पतित या संन्यासी हो गया हो तो परिवेदन करनेके पातकसे छोटा बरी किया गया है। (शां० म० ३४) कहा गया है कि परिवेत्ता अर्थात् विवाह कर लेनेवाले छोटे भाईको प्राय-श्चित्त करना चाहिए। बड़े भाईका विवाह होने पर, कुच्छु करनेसे, उसके मुक्त होने-का वर्णन है। किन्तु एक शर्त यह है कि उसे फिरसे अपना विवाह करना चाहिए। (शां० अ० ३५) इसके सिवा लिखने लायक बात यह है कि स्त्रियोंको यह परिवेदनका दोष नहीं लगताः श्रर्थात् वडी बहिनका विवाह होनेके पहले ही यदि छोटी ब्याह दी जाय तो वह दोषी या पातकी नहीं। शायद यह अभिप्राय रहा हो कि स्त्रियोंको जब उत्तम वर मिले तभी उनका विवाह कर दे--श्रविवाहित न रखे। स्त्रियोंका विवाह तो होना ही चाहिये, पुरुषोंका न हो तो हर्ज नहीं, यह श्रमिप्राय भी हो सकता है।

क मुस्तिएक किले केलिक केलिका

है। बहिर अधिकार श्रेष्टा बोचा

कार के किया है कि के किया कि किया है।

यापिक विचारते जीर निर्धा आध्यानिक

िसरी किल्हां लाइ किसेंस अने प्राप्त

和政治中共 四月五十万年 18 18年 23

ANT THE POP TO THE PRINCIPLE OF A

PARTICIPATE PROPERTY SEAR

अहिं इकरण

सामाजिक परिस्थिति।

(१) अन्।

क्रारती-कालके प्रारम्भमें अर्थात् भारती युद्धके समय, श्रीर भारती-काल-के अन्तमें यानी महाभारतके समय, भारती श्रायोंकी परिस्थितिमें, भिन्न भिन्न बातोंमें बहुत कुछ श्रन्तर देख पड़ता है: जैसा कि उनकी विवाह-पद्धतिमें या वर्ण-ज्यवस्थामें भी अन्तर पड गया। इन बातोंका यहाँतक विचार किया गया है। भोजनके सम्बन्धमें, इन समयोंमें उनकी परिस्थितिमें इससे भी बढ़कर फ़र्क पड़ गया था। श्रर्थात् भारती-कालमें (ई० स० पू० ३००० से ३०० तक) त्रायोंमें इस सम्बन्धमें बहुत बड़ा फर्क पड़ा। यह फर्क उपनिषदोंसे लेकर महाभारत-मन्-स्मृतितक भिन्न भिन्न प्रन्थोंमें पूर्णतया देख पढ़ता है। यह फ़र्क़, एक दृष्टिसे, श्रायोंकी उन्नंतिके लिये कारणीभृत हो गया तो दूसरी तरहसे उनकी अवनतिके लिये इसीको कारण भी मानना पड़ता है। यदि श्राध्यात्मिक श्रथवा नीतिकी दृष्टिसे देखें तो जिन लोगोंने केवल धार्मिक विचारसे श्रौर निरी श्राध्यात्मिक उन्नतिके निमित्त मांस-भोजन त्याग दिया, श्रीर श्राध्यात्मिक उनकी द्यावृत्ति कल्याण कर लेनेकी आकांचाकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। परन्तु व्याव-द्वारिक श्रथवा राजकीय दृष्टिसे देखते हुए कहा जा सकता है कि अपनी राज-कीय खाधीनताका भी त्याग मान्य करके भारतवर्षवालीन शाक-पातका भोजन श्रद्भीकार कर लिया। मैक्समूलरने एक स्थान पर यही बात कही हैं। श्रस्तुः भिन्न भिन्न कारणोंसे भारती-कालमें भारती श्रायोंका भोजन बदल गया। इस भागमें हमने इसी बातको विस्तारपूर्वक दिल लानेका विचार किया है।

प्राचीन वैदिक ऋषि लोग यक्षके एके पुरस्कर्ता थे, यह बात प्रसिद्ध है। वैदिक चित्रया लोग भी यक्षकी अनेक विधियाँ किया करते थे। ये सभी वैदिक यक्ष हिंसायुक्त होते थे। इन यक्षों में तरह तरहके पशु मारे जाते थे और उनका हवन होता था। अर्थात् साधारण रीतिसे बाचीन समयमें, जैसे कि सभी देशोंवाले मांसाक खाते थे वैसे ही भारती आर्य भी मांसाक मज्ञण करते थे। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं: और—

यद्त्रः पुरुषो भवति तद्त्रास्तस्य देवताः।

इस न्यायसे वैदिक-कालीन ब्राह्मण श्रीर चत्रिय लोग यज्ञमें पश्रश्रोंको मार-कर, भिन्न भिन्न देवतात्रोंको, उनके मांस-का हविर्भाग अर्पण किया करते थे; और खुद भी मांसहिव खाते थे। इन यहाँका दर्जा गवालम्भ और अश्वमेधतक पहुँच गया थाः श्रीर तो श्रीर, श्रश्वमेधसे ज्रा श्रीर श्रागे पुरुषमेध पर्यन्त श्रेणी पहुँच गई थी। फिर भी समल यशोंमें श्रश्वमेध श्रेष्ठ माना जाता था। श्रश्वमेध करनेमें एक तरहका राजकीव ऐश्वर्य व्यक्त होता था, इस कारण साम र्थ्यवान चत्रिय लोग श्रश्वमेध करते थे। इसी प्रकार सार्वभौम राजसूय यज्ञ करते थे। महाभारतमें वर्णित है कि पाएडवोंने ये दोनों यज्ञ किये थे। पाएडवोंने जो ऋश्वमेध किया उसकी वर्णन महाभारतमें है। उसमें सेंकड़ी प्राणियोंके मारनेका वर्तन है।

तं तं देवं समुद्दिश्य पशवः पश्चिग्धः ये।

स्वभाः शास्त्रपठितास्तथा जलचराश्चये॥

सर्वास्तानभ्ययुक्षंस्ते तत्राग्निचयकर्मणि।

(श्रश्व० श्र० ==-३४)

इस वर्णनसे स्पष्ट है कि युधिष्ठिरके यश्चमें हवनके लिये श्रनेक पशु-पत्ती मारे गये। श्रश्वमेधकी विधिमें ही, श्रीत स्त्रके श्रनुसार, श्रनेक पशुश्रोंको मारना पड़ता है। यश्चमें मारे हुए पशुश्रोंका मांस ब्राह्मण, त्त्रतिय श्रीर वैश्य निस्सन्देह बाते थे। महाभारतमें वर्णित है कि युधिष्टित श्रश्वमेधके उत्सवके श्रवसर पर भी श्रनेक पशुश्रोंकी हिंसा होती थी। महयखाराडवरागाणां कियतां भुज्यतां तथा। पश्चनां वध्यतां चैव नान्तं दहिरारे जनाः॥ (श्रश्व० श्र० ४१)

" अश्वमेध यज्ञमें 'खाएडवराग' पकान्न तैयार करनेमें इतने आदमी लगे थे और रतने पश्च मारे जाते थे कि उसका ठिकाना नहीं।" (अश्वमेश्र पर्व = ६ वाँ श्रध्याय) इसके सिवा श्रीर कई एक वर्णन इस सम्बन्धमें महाभारतसे दिये जा सकते हैं। समापर्वके ४ थे ऋष्यायमें मय-सभागृहमें प्रवेश करते समय दस हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया। उस समय धर्मराजने—"उत्तम उत्तम कल्पमूल और फल, वराहों श्रीर हिरनोंके भांस, घी, शहद, तिल-मिश्रित पदार्थ श्रीर तरह तरहके मांसोंसे उनको सन्तुष्ट किया।" इस वर्णनसे निर्विवाद सिद्ध है कि जिस तरह पाश्चिमात्य आर्य यूनानी श्रीर जर्मन श्रादि मांस-भन्नण करते थे, उसी तरह भारती-युद्धके समय भारती श्रार्थ ब्राह्मण, चत्रिय श्रीर वैश्य मांस बाते थे।

मांसका परित्याग।

परन्तु महाभारतके समय अर्थात् सौतिके समय भारती आर्थोकी परिस्थिति बहुत कुछ मिन्न हो गई थी श्रौर भारती त्रार्थ विशेषतः ब्राह्मणीने—उनमें भी अध्यातम मार्गमें संलग्न योगी प्रभृतिने— मांसाहार छोड़ दिया था। इसके सिवा बौद्ध, जैन श्रीर भागवत मतका चलन बहुत कुछ हो जानेसे सर्व साधारणमें श्राहिंसाका दुजी बढ़ गया श्रीर इन लोगोंमें मांस-निवृत्तिकी वहुत प्रगति हो गई थी। ऐसे समय, भारतके ऋश्वमेथोंके वर्णन ऋौर उनमें किये हुए ब्रह्मभोजके वर्णन लोंगोंको न जाने कैसे (अप्रिय) लगते होंगे। इसी कारण, यहाँ पर सौतिने खास तौर पर उस नेवलेकी कथा सन्नि-विष्ट कर दी है जिसका मस्तक सोनेका हो गया था। श्रीर पशु-वधसे संयुक्त यज्ञ एवं मांसाच-भन्नएकी निन्दा करके यह दिखलानेका प्रयत्न किया है कि श्रश्व-मेधका पूर्य उस पूर्यसे भी हलका है जो एक साधारण वानप्रसने भूखे-प्यासे श्रतिथिको मुद्दीभर सक्थु देकर प्राप्त किया था। इस नेवलेके आख्यानसे साफ देख पड़ता है कि भारती युद्धके समयसे लेकर महाभारत-कालतक लोगोंकी मांसा-हार-प्रवृत्तिमें कितना फ़र्क़ पड़ गया था।

परन्तु यह भगड़ा यहीं नहीं निपट गया। चित्रयोंकी पुरानी रीतियों और कल्पनाश्रांको बदल डालना बहुत कठिन था। श्रश्वमेश्र पर उनकी जो प्रीति श्रौर श्रद्धा थी, वह ज्यांकी त्यों कायम थी श्रौर मांसाहार करनेका उनका दस्त्र बदला न था। उच्च ब्राह्मण भी वैदिक कर्मानुष्ठान छोड़ देनेके लिये तैयार न थे; श्रौर इस काममें चित्रयोंके सहायक बनकर यह प्रतिपादन करते थे कि वेदोक्त पश्च-वधसे हिंसा नहीं होती। ऐसे लोगोंके समा-श्रानके लिये नकुलके श्राख्यानके पश्चात् श्रौर एक श्रध्याय बढ़ाया गया। इसमें जनमेजयने प्रश्न किया है कि महर्षि व्यास श्रीर श्रन्य ऋषियोंकी सहायतासे सम्राट् युधिष्टिरने जो यज्ञ किया था, उसकी निन्दा करनेकी हिम्मत नेवलेको किस तरह हुई? इस पर वैशंपायनने यह कथा सुनाई। एक बार इन्द्र यञ्च कर रहेथे। जव यञ्चमें प्रोच्चण किये दुए पशुश्रोंको मारनेका समय श्राया, तब वे पशु बड़ी करुणायुक्त दृष्टिसे ऋषियोंकी श्रोर देखने लगे। उस समय ऋषियोंके हृद्यमें द्या उपजी। वे इन्द्रसे बोले—"यह यञ्च धार्मिक नहीं है।

नायं धर्मकृतो यश्चो नाहिंसा धर्मउच्यते। यज बीजैः सहस्राज् त्रिचर्षपरमोषितैः॥

तीन वर्षतक रखे हुए धान्यसे, हे इन्द्र, तुम यह करो (अर्थात् पशुश्रोंको मार-कर यह मत करो)।" उस समय, अभि-मानसे प्रस्त इन्द्रको यह बात पसन्द न आई। तब इन्द्र और ऋषियोंके बीच इस बात पर भगड़ा हुआ कि निर्जीव पदार्थीके द्वारा यज्ञ किया जाय अथवा सजीव पदार्थोंके द्वारा। श्रव दोनों ही वस्र राजाके यहाँ इसका निर्णय कराने गये। (यह वसु राजा चन्द्रवंशी आयोंका वंश-जनक चेदि-पति था।) उन्होंने वसु राजासे पूछा; - यज्ञके सम्बन्धमें वेद-प्रमाण क्या है ? पशुत्रीं द्वारा यक्ष करना चाहिए अथवा बीज, दूध, घी इत्यादिके हारा ? वसु राजाने, प्रमाणोंके बलावलका विचार किये विना ही, एकदम कह दिया-'जो सिद्ध हो उसीके द्वारा यज्ञ करना ठीक है। यह उत्तर देनेके कारण ऋषियोंके शापसे चेविराज रसातलको चला गया। इसमें भी असल बातका स्पष्ट निर्णय नहीं हुआ। क्योंकि चत्रिय तो पशु-हिंसा-युक्त यह करेंगे ही श्रीर उसीको सशास्त्र बतलावेंगे। परन्तु राजाके रसातलको चले जानेसे पेसा यश निन्च उहरता है : श्रीर वह चत्रियोंको मान्य न था।

चत्रियोंके हिंसायुक्त यह प्रचलित थे ही। युधिष्ठिर और जनमेजयने ही जो रास्ता चलाया था, उसी पर चलकर बलवान चत्रिय लोग अश्वमेध यज्ञको छोड़ देनेक लिये तैयार न थे। तब, ऐसे लोगीं समाधनके लिये, एक श्रीर वात यहाँ कही गई है। श्रगस्त्य ऋषि बारह वर्षका सत्र कर रहे थे श्रीर उसमें बीजाइति देते थे। परन्त इन्द्रने असन्तुए होका पानी वरसाना बन्द कर दिया। तब अगस्त्य ऋषिने कहा कि हम दूसरा इन्द्र उत्पन्न करेंगे। तब कहीं इन्द्रने सन्तप्र होकर पानी बरसाना शुरू किया। तथापि अन्याय ऋषियोंने अगस्त्यसे बिनती की कि आइये, हम लोग निश्चित कर दें कि यञ्जकी हिंसा हिंसा नहीं है। इस प्रकार श्रगस्त्य मुनि राज़ी हो गये। परन्तु इस कथासे भी चत्रियोंका समाधान नहीं इआ: और सबके अन्तमें कह दिया गया कि वह नकुल स्वयं धर्म थाः उसने एक वार कोध रूपसे जमदक्षिको सताया था, इस कारण उनके शापसे वह नेवला हो गयाः श्रौर शापसे मुक्त होनेके लिये उसने युधिष्टिरकृत यज्ञकी निन्दा कर दी।

उक्त नकुलकी कथाके विस्तारपूर्वक उक्लेख करनेका तात्पर्य यह है कि भारती कालमें तरह तरहसे इस प्रश्नका निर्णय किया जाता था कि श्रिहिंसा-प्रयुक्त यह करना चाहिये या हिंसा-प्रयुक्त । उत्परवाली कथाओं से यही बात मालूम होती है लोक मतका प्रवाह यदि एक बार इस श्रोर हो जाता था तो फिर दूसरी श्रोर भी चला जाता था। हिंसाप्रयुक्त यह श्रोर मांसा हारका श्रपरिहार्य सम्बन्ध था। लोग जबतक धर्मश्रद्धायुक्त रहते हैं, तभीतक धर्मकी पगड़ी उतारनेके लिये तैयार नहीं होते। 'हम श्रपनी इच्छासे मांस खाते हैं, यहसे इसका कोई सरोकार नहीं, यह कहनेके लिये भारती आर्य तैयार न थे। उनकी यह दलील थी कि जब वेदोमें हिंसा-युक्त यज्ञ करनेकी विधि है, तब यज्ञशिष्ट मांस खानेमें क्या हानि हैं; श्रौर वे यह भी कहते थे कि यशमें की हुई चेद-चिहित हिसा हिंसा थोड़े ही है। इस मतके विषय-में, भारती कालमें बहुत कुछ विचार या विवाद हुए; श्रीर जान पड़ता है कि महा-भारतके समय यही मत स्थिर हो गया। महाभारतके समय सनातन-धर्मियांकी रायसे, यज्ञमें की हुई हिंसा हिंसा न थी श्रीर श्रवतक यही सिद्धान्त मान्य किया गया है। श्रव भी हिन्दुस्तानमें कहीं कहीं पशुहिंसा-युक्त यश होते हैं। यह सच है कि इस समय यज्ञ बहुत ही कम होते हैं, परन्तु पशुहिंसाका आग्रह अवतक नहीं छुटा। महाभारतके समय हिंसा-प्रयुक्त यज्ञ बहु-तायतसे हुआ करते थे, श्रीर समुचे जन-समाजकी स्थितिको देखते हुए चत्रिय लोग मांसहारी थे; अनेक ब्राह्मण भी वैदिक धर्माभिमानी होते हुए भीमांसाहारी थे; परन्तु अन्यान्य लोगोंमें मांसाहारका चलन कम था: विशेषतः भागवत श्रीर जैन श्रादि सम्प्रदायोंमें मांस खानेका रवाज बिलकुल बन्द था। कर्ण-पर्वभे जो हंस-काकीय कथानक है, उसके एक उल्लेखसे जान पडता है कि वैश्योंमें, कहीं कहीं, मांस खानेकी प्रथा थी। वह उल्लेख यों है—"समुद्रके किनारे पर एक वैश्य रहता था। उसके पास धन-धान्य खूब था । समृद्ध होनेके कारण वह यज्ञ-याग किया करता था। वह दानी श्रीर चमाशील था । वर्णाश्रम धर्मका पालन भली भाँति करता था। उसके पुत्र भी कई थे। उन भाग्यवान् कुमारीकी जूठन खाकर बढ़ा हुआ एक कीवा था। उसे वे वैश्य-पुत्र मांस, भात, दही और दूध आदि पदार्थ देते थे।"

(अ० ४१) इस वर्णनसे स्पष्ट देख पड़ता है कि श्रद्धायुक्त वैश्य भी मांसाहार करते थे। इस तरह महाभारतके समयतक मांसा-हारका प्रचार यज्ञ-याग करनेवाले ब्राह्मण-चत्रिय-वैश्योमें था, किन्तु निवृत्तिमार्गका सेवन करनेवालोमें न था।

गोहत्याका महापातक।

एक महत्त्वकी वात यहाँ पर यह कहनी है कि महाभारतके समय गवा-लम्भ विलक्त वन्द हो गया था। भारती युद्धके समय, अश्वमेध-विधिकी तरह. श्रीर श्रन्य वैदिक यज्ञोंकी तरह वैलोंके यज्ञ होते थे। यह बात निर्विवाद है। परन्तु महाभारतके समय गाय अथवा वैलकी हिंसा करना अत्यन्त सहान् पातक माना जाता था। यज्ञमें गायका प्रोचण किया जाना विलक्त वन्द हो गया श्रौर यह नियम हो गया कि कलियुगमें गवा-लम्भ अर्थात् गाय-वैलका यज्ञ वर्ष्य है। श्रन्य पशुश्रोंके यज्ञ — जैसे मेष (भेड़ा), वकरे और वराह श्रादिके-मान्य थे। इसी हिसाबसे मांस खानेका भी रवाज था और है। श्रीर श्राजकल त्रतिय श्रथवा ब्राह्मण और चाहे जो मांस खाते हों. किन्तु गोमांस भन्नण करना अत्यन्त निन्दा और सनातन धर्मसे भ्रष्ट करने-वाला माना जाता है। समस्त हिन्दू जनता-की ऐसी ही धारणा है। फिर चाहे वह मनुष्य चत्रिय, अथवा अत्यन्त नीच शद हो। यह हालत महाभारतके समयसे ही है। महाभारतके समय गोवध श्रथवा गोमांस श्रत्यन्त निन्द्य समका जाता था। उदाहरणार्थः;—द्रोणपर्वमं श्रर्जुनने जो कई कसमें खाई हैं उनमें कहा है। (द्रो० श्र०७३) ब्रह्मझानां चये लोका ये च गोघातिनामपि।

त्रधीत् "ब्रह्महत्या करनेवाले श्रीर गो-वध करनेवाले मनुष्य जिन निन्द्नीय

लोकोंको जाते हैं वे मुक्ते प्राप्त हीं।" ऐसे ऐसे श्रौर भी उदाहरण दिये जा सकेंगे। गायको लात मारनातक पाप माना जाने लगा था। किन्तु भारती युद्धके समय इसके विपरीत परिस्थिति थी। महा-भारतके कई श्रवतरणोंसे यह बात देख पड़ती है। रन्तिदेवने जो श्रनेक यञ्च किये थे उनमें मारे हुए बैलोंके चमड़े-की ढेरीके पाससे वहनेवाली का नाम चर्मग्वती पड गया। किन्तु इतनी दर जानेकी क्या श्रावश्यकता है? भवभूतिकृत उत्तर-रामचरितमें वसिष्ठ-विश्वामित्रके श्रागमनके समयमें जो मधु-पर्कका वर्णन है, उसका ध्यान संस्कृत नाटकोंका श्रभ्यास करनेवाले विद्यार्थियों-को होगा ही । भारती-युद्धके समय अथवा वैदिक कालमें गवालम्भका चलन था, पर महाभारतके समय वह बिलकल उठ गया था और गोवध ब्रह्महत्याकी जोडका भयद्वर पातक मान लिया गया था। यह फर्क क्योंकर श्रीर किस कारण हो गया ? इसकी जाँच बड़ी महत्त्वपूर्ण है। महाभारतके समय गवालम्भ विलकुल बन्द हो गया था। तत्कालीन अन्य प्रमाणींसे भी यह बात देख पड़ती है। यूनानियोंने लिखा है कि हिन्दुस्तानी लोग बहुत करके शाकाहारी हैं। श्ररायन नामक इतिहास-कार लिखता है—"यहाँवाले ज़मीन जोतते हैं, श्रौर श्रनाज पर गुज़र करते हैं। सिर्फ़ पहाड़ी प्रदेशके लोग जङ्गली जानवरीका शिकार करके उनका मांस खाते हैं।" इसमें 'वन्य, मृगयाके पशु' शब्द व्यव-इत हैं, जिससे मानना चाहिए कि गाय श्रथवा वैलका वध पहाड़ी लोगोंमें भी निषिद्ध था। यूनानियोंके वर्णनमें यद्यपि इस वातकां स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि गोवध करना पातक माना जाता था, तथापि उन्निष्तित वाक्यसे यह बात समभ लेनेमें

कोई हानि नहीं। यूनानियोंका आक्रमण पञ्जाबतक हुआ था। ऋौर, यह अनुमान करनेके लिये जगह है कि महाभारतक समय पञ्जाबमें यह श्रनाचार रह गया था। कर्ण पर्वमें शल्य श्रीर कर्णके वीच जो निन्दाप्रचुर संवाद वर्णित है, उसमें कर्णने पञ्जाबके वाहिक देशके श्रनाचारका वर्णन किया है। उसमें कहा गया है कि राजमहलोंके श्रागे गोमांसकी दकाने है श्रीर वहाँवाले गोमांस, लहसुन, मांस मिली हुई पीठीके बड़े तथा भात खरीइ-कर खाते हैं (क० श्र० ४४)। इस वर्णनसे यह माना जा सकता है कि जहाँ युनानी लोग रह गये थे वहाँ, महाभारतके समय. यह अनाचार जारी था । महाभारत श्रोर युनानियोंके प्रमाणसे यह बात निश्चित है कि महाभारत-कालमें भारत-वर्षमें गोवधको पाप बहुत ही निन्ध समसा जाता था।

इस महत्त्वपूर्ण निषेधकी उत्पत्ति किस कारण हुई ? महाभारतसे उस कारणका थोड़ा बहुत दिग्दर्शन होता है। सप्तर्षियों और नहुषके बीच, एक स्थान पर, भगड़ा होनेका वर्णन महाभारतमें है। ऋषियोंने पूछा—

य इमे ब्रह्मणा प्रोक्ता मंत्रा वै प्रोक्षे गवाम्। एते प्रमाणं भवत उताहो नेति वासव ॥ नहुषो नेति तानाह तमसा मूदः चेतनः। (उ० श्र० १७)

श्रथीत् ऋषियोंके मतसे गवालम्म, वेदमें वर्णित होनेके कारण, प्रमाण है। परन्तु नहुषने स्पष्ट उत्तर दिया कि वह प्रमाण नहीं है। नहुषने यह उत्तर किस श्राधार पर दिया, इसका यहाँ उत्तेष नहीं है। किन्तु टीकाकारने कहा है— ब्राह्मणाश्चेव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम्। एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति ॥

श्रर्थात् हवनके मनत्र तो ब्राह्मणोंमें है

ब्रीर यहका हिव यानी दूध, घी श्रीर कएडे गौश्रोमें हैं; इसी कारण ब्राह्मण श्रौर ती दोनों ही एकसे पवित्र और श्रवध्य हैं। इससे ऐतिहासिक अनुमान यह होता है कि गौ यझका साधन होनेके कारण उसका यज्ञ वर्ज्य है। पहले यह व्यवस्था नहुवने की । किन्तु उस समय वह मान्य न हो सकी थी। हमारा मत है कि, यह व्यवस्था श्रागे चलकर श्रीकृष्णकी भक्तिसे मान्य हो गई। श्रीकृष्ण यादव कुलके थे. ब्रीर यादव लोग गोपालक थे, गौब्रोंसे ही उनकी जीविका होती थी: यानी गोपालन उनका पेशा था । श्रीकृष्णका, वालपनमं, गोचारण प्रसिद्ध है: उन्हें गौएँ बहुत प्रिय थीं । जब श्रीकृष्णका मत प्रचलित हो गया श्रौर हिन्दुस्थानमें श्रीकृष्णकी भक्ति वढ़ गई उस समय गौत्रोंके सम्बन्धमें ऋत्यन्त पूज्य भाव उत्पन्न होकर हिन्दुस्थानमें सर्वत्र गवालम्भ बन्द हो गया। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि ईरानियोंने भी गौको पवित्र माना है। तब, गौस्रोंकी पवित्रता-सम्बन्धी कल्पना हिन्दुस्थानमें भारती श्रायोंके साथ, पारम्भसे ही, श्राई होगी। उक्त श्राख्यान-में पहले नहुषके भगड़नेका वर्णन है। इससे चन्द्रवंशी चत्रियोंमें इस निषेधका उद्गम देख पड़ता है। इसी वंशमें श्रीकृष्ण और यादवोंका जन्म हुआः और श्रीकृष्णकी भक्तिसे समूचे भारतीय श्रार्थ-समूहमें गवालम्भकी प्रवृत्ति बिलकुल बन्द हो गई। यह नहीं माना जा सकता कि जैन अथवा बौद्ध धर्मके उपदेशके परिणामसे यह निषेध उत्पन्न हुन्रा। क्योंकि एक तो बौद्ध श्रीर जैन धर्मके उदयके पहलेसे ही यह निषेध मीजूद देख पड़ता है और दूसरी बात यह है कि ये धर्म तो सभी प्राणियोंकी हिंसाको निन्ध मानते हैं। फिर सिर्फ गाय-वैलोंकी

हिंसा सनातनीय धर्म-समाजमें क्यों निन्दा मानी जाय १ इसका कारण न वतलाया जा सकेगा। विशेषतः चत्रियोंने तो और किसी हिंसाको निन्द्य नहीं माना, सिर्फ गौकी हिंसाको ही घोर पातक मान लिया है। वे भेड़, वकरे श्रौर वराह श्रादि-का मांस तब भी खाते थे श्रोर इस समय भी खाते हैं। श्रीर श्रवतक जो यज्ञ होते हैं उनमें मेष श्रादिका ही हवन होता है। इन कारणोंसे, इस चलनका, बौद्ध या जैन मतके प्रचारका परिणाम नहीं माना जा सकता। गाय, वैल सब तरहसे सना-तन धर्मके लिये पुज्य हो गये थे। गायका द्य लोगोंका पोषण करता था। उन्हींके द्वारा श्रन्न मँगाया श्रीर भेजा जा सकता था और उनके सम्बन्धमें पहलेसे ही पूज्य भाव था, तथा श्रीकृष्णकी भक्तिके कारण उन्हें त्रीर भी त्रधिक महत्त्व प्राप्त हो गया। गौश्रोंकी पवित्रताके विषयमें, महा-भारतमें अनेक खलों पर वर्णन हैं। प्रातः-काल गायका दर्शन करना एक पुराय माना जाता था। इन सब कारणोंसे, निर्विवाद-रूपेण कह सकते हैं कि महाभारत-कालके पूर्वसे ही गाय-वैलोंकी हिंसा बन्द हो गई थी।

यज्ञिय और मृगयाकी हिंसा।

इसमें सन्देह नहीं कि अन्य पशुश्रोंके यह पहलेकी तरह होते थे और उनका मांस ब्राह्मण-क्तिय खाते थे। वनवासमें तस उवोंकी गुज़र बहुत कुछ शिकारके ऊपर ही निर्भर थी। महाभारतमें कथा है कि जब पाएडच द्वेतवनमें थे, तब अनेक मृगोंका संहार हो जानेसे मृग बहुत ही व्याकुल हो गये। तब, मृगोंने स्वप्नमें युधि-छिरको अपना दुखड़ा सुनाया। इस पर गुधिछिरने द्वेसवन छोड़नेका निश्चय किया। दूसरे दिन पाएडषों और श्राह्मणों समेत वे काम्यक-त्रनकी स्रोर चले गये (व० स्र० २५८)। "हम वनैले मृगोंके भुएड बहुत थोड़े रह गये हैं। बीज रूपसे बचे हुए मुर्गो-की तुम्हारे श्रनुग्रहसे श्रभिवृद्धि हो ॥ मृगोंकी ऐसी प्रार्थना सुनकर युधिष्टिरने उस काम्यक वनमें जानेका निश्चय किया कि जो मरुभूमिके केवल मस्तक श्रीर तृणविन्दु सरोवरके पास है। इस प्रकार प्रकट है कि पाएडच लोग, बनवासमें, सिर्फ़ शिकारके द्वारा ही निर्वाह करते थे। द्रौपदीका हरण जिस समय जयद्रथ-ने किया, उस समय पाएडव शिकारकी टोहमें गये थे; श्रोर वर्णन है कि वे मृग-वराह मार लाये थे। अर्थात् आजकलकी तरह उस समय भी खासकर चत्रियोंको मृगों श्रीर वराहोंका मांस प्रिय था। इन्हीं-को मेध्यपश्च कहते हैं श्रीर इनका मांस पवित्र माना जाता था। शिकार किये हुए पशका मांस विशेष प्रशस्त माना जाता था।

परन्तु कुछ पशुत्रोंका मांस वर्जित भी देख पड़ता है। इसमें पृष्टमांस खानेका निषेध था। निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि यह पृष्ठ मांस क्या है। टीकाकारने इसका अर्थ किया है-उन पश्चश्रोंका मांस जिनकी पीठ पर सामान लादा जाता है। अर्थात् हाथी, घोड़े, वैल, ऊँटका मांस वर्ज्य है। हाथी-घोड़ेका मांस तो आजकल भी निषिद्ध माना जाता है। श्राजकलके समस्त नियमों में मांस-भन्त्एके सम्बन्धमें जो जो निषेध हैं, वे बहुधा इस दृष्टिसे हैं कि निषिद्ध मांर, हानिकारक हैं। इस फ़ेहरिस्तमें अनेक प्राणी हैं श्रीर पाचीन समयमें इनका मांस वर्ज्य था। कुत्ते-विल्ली वगौरह अनेक प्राणी इस वर्गमें हैं। मांस-भन्नणुक सम्बन्धमें महाभारतके समय आयोंमें जिन बहुतेरे मांसोंकी मनाही थी. उन सबका यहाँ पर विस्तारपूर्वक वर्णन

करना श्रावश्यक नहीं है। फिर भी मुख्य मुख्य वातें सुन लीजिये—

पञ्च पञ्चनखा भद्या ब्रह्मचत्रेण राघव। शल्यकः श्वाविधो गोधा शशः कूर्मश्च पञ्चमः

रामायणका यह स्लोक प्रसिद्ध है। इसी प्रकार महाभारतमें भी कहा है— पञ्च पञ्च-नखा भद्या ब्रह्मचत्रस्य वै विशः। (शां० श्र० १४१—७)

जिन जिन जानवरों के पाँच नाखून होते हैं, वे सभी ब्राह्मण-चित्रयों के लिये वर्ज्य हैं। इनमें सिर्फ़ पाँच साही, एक ख्रीर प्रकारकी साही, गोह, ख़रगोश और कछ्वा खाने की मनाही नहीं है। यह ख़ोक उस समयका है जब वालिने रामकी निन्दा की थी। इसमें दिखलाया गया है कि वन्दरों या लंगूरों को मारकर खाने की चित्रयों के लिये आहा नहीं है। इनके सिवा और भी अनेक वर्ज्यावर्ज्य हैं। शानि पर्वके ३६ वें अध्यायमें युधिष्ठिरने भीष्मसे स्पष्ट पूछा है कि ब्राह्मणको कौनसा मांस खाना मना नहीं और कौनसा मना है। इस पर भोष्मने कहा—

श्रनड्वान् मृत्तिका चैव तथा जुद्गः पिपीलिका। श्रेष्मातकस्तथा विप्रेरभद्यं विषमेव च ॥

इसमें विष शब्दका कुछ श्रौर ही श्रर्थं फरना चाहिए; क्योंकि विष खानेके लिये निषेधात्मक नियमकी श्रावश्यकता ही नहीं। श्रर्थात् विष शब्दसे ऐसे प्राणियोंको समक्षना चाहिए जिनका मांस विषेता हो। जलचर प्राणियोंमें जो वर्ज्य हैं उनका उल्लेख श्रुगले श्रोकमें हैं—

श्रभच्या ब्राह्मणैर्मत्स्या शहकैर्ये वै विवर्जिताः। चतुष्पात्कच्छपादन्ये मग्डूका जलजाश्चये॥

जिन मछिलियोंके शतक यानी पृष्ठ नहीं हैं, वे श्लोर कछुए तो। भच्य हैं; इनके सिवा समस्त जलचर चतुष्पद वर्ज्य हैं।
पित्र्योंमें इन्हें वर्ज्य बताया है—
प्रासा हंसाः सुपण्धि चक्रवाकः प्रवावकाः।
काको महुश्च गृध्रश्च श्येनोल्कास्त्रथेवच ॥
भास, हंस, गरुड़, चक्रवाक, कारंडव,

बक, काक, गुम्न, श्येन श्रौर उल्क पत्ती विक्त हैं। इसी तरह—

क्रव्यादा दंष्ट्रिणः सर्वे चतुष्पात् पित्तणश्च ये। जिनके दंष्ट्रा हैं ऐसे सभी मांस-भत्तक नौपाये जानवर श्रौर वे पत्ती जिनके नीचे-ऊपर डाढ़ें हैं, तथा ऐसे सभी प्राणी वर्ज्य हैं जिनके चार दंष्ट्राएँ हैं। इससे प्रकट होता है कि महाभारतके समय प्राह्मणोंके लिये कीन कीन मांस वर्ज्य थे।

यद्यपि ऐसी स्थिति है तथापि महाभारतके समय मांसके सम्बन्धमें समस्त लोगोंकी प्रवृत्ति--विशेषतः ब्राह्मणीं-की-मांसाहारको वर्जित करनेकी श्रोर थी। भिन्न भिन्न रीतियोंसे यह बात सिद्ध होती है। साधारण तौर पर यह तत्त्व निश्चित था कि आध्यात्मिक विचार करने-वाले मन्द्रप्यके लिये मांसाहार वर्ज्य है। वेदान्ती, योगी, ज्ञानी श्रथवा तपश्चर्या करनेवाले पुरुषको मांसाहारसे नुकसान होता है। श्रपने कामोंमें उन्हें सिद्धि पाप्त नहीं होती। भारती श्रायोंने यह सिद्धान्त स्थिर कर दिया था। साधारण रीतिसे मनुने जो तत्त्व वतलाया है वह सब लोगोंकी समसमें आ गया था। वह तत्त्व यह है—

न मांस-भन्नणे दोषो न मद्ये न च मैथुने। मवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला॥

यह नियम था कि गृहस्य ब्राह्मणतक-को वृथा मांस-भक्तण न करना चाहिये। अर्थात् बिना कुछ न कुछ कारणके मांस-भक्तण करनेका निषेध था। गृहस्थाश्रमी ब्राह्मणको श्रोंदाया हुश्रा दूध, खीर, स्विच्छी, मांस, बड़ा श्रादि बिना शास्त्रोक्त कारएके न तो खाना चाहिए और न पीना चाहिए। इससे सिद्ध है कि किसी शास्त्रोक्त अवसर पर ही—जैसे यज्ञ, या श्रन्य देवता-सम्बन्धी श्रवसर, श्रथवा श्राद्धके श्रवसर पर—शास्त्रोक्त कारणसे ही मांसान्न खानेकी ब्राह्मणोंको ब्राङ्मा थीः हर समयके लिये नहीं। परन्तु श्राद्धके श्रवसर पर तो मांस खानेकी श्राह्मा थी। अर्थात् 'हिंसा होगी ही'। तव अहिंसा-तत्त्वको माननेवाले मनुष्यके श्रागे यह प्रश्न खड़ा होगा ही। इसके सिवा ज्ञिय लोग सिर्फ यज्ञ अथवा आदमें ही मांस खाकर थोड़े ही श्रघा जायँगे: वे शिकार करके भी मांस खायँगे। तब, उनकी इस प्रवृत्तिका श्रौर श्रहिंसा-धर्म-का मिलान किस तरह हो ? यह महत्त्वका प्रश्न है। महाभारतमें एक स्थान पर (श्रुन्० ११५ वें श्रध्यायमें) इसका विचार भी किया गया है। १४४ वें अध्यायमें कहा है कि ऋहिंसा चारों प्रकारसे वर्जित करनी चाहिए: अर्थात् मन, वाणी, कर्म श्रीर भन्नण द्वारा। "तपश्चर्या करनेवाले लोग मांस-भचणसे श्रलिप्त रहते हैं। मांस खानेवाला मनुष्य पापी है, उसको स्वर्ग-प्राप्ति कभी न होगी। उदार पुरुषों-को, अपने प्राण देकर, दूसरों के मांसकी रज्ञा करनी चाहिए।"इस प्रकार श्रहिंसा-धर्मका वर्णन हो चुकने पर युधिष्ठिरने प्रश्न किया—"इधर श्राप श्रहिंसा-धर्मको श्रेष्ठ बतलाते हैं श्रौर उधर श्राद्धमें पितर मांसाशनकी इच्छा करते हैं । तब, हिंसाके विना मांस मिलना सम्भव नहीं। फिर मांस-वर्जनरूपी यह विरोध कैसे टलेगा। जो स्वयं हिंसा करके मांसका सेवन करता है, उसे कौनसा पाप लगता है, श्रीर जो दूसरेसे हनन करवाकर उसका सेवन करता है, वह किस पापका भागी होता है, और जो मोल लेकर मांस खाता

है उसे कौन पाप लगता है ?" भीष्मने उत्तर दिया—"जिसे श्रायु, बुद्धि, विवेक, बल श्रीर स्मृतिकी इच्छा है, उसे हिंसा वर्ज्य करनी चाहिए। जो मनुष्य पराये मांससे अपने मांसकी वृद्धि करता है उसका नाश अवश्यम्भावी है। मांस न खानेवाला मनुष्य नित्य दान करता है। मरनेका डर विद्वान् मनुष्यके लिये भी रहता है। फिर जो पापी पुरुष, मांस खानेके लिये, प्राणियोंकी हत्या करते हैं, उनकी इस करनीके सम्बन्धमें मरनेवाले प्राणीको कैसा मालूम होता होगा ? मांस खानेवाले पुरुषको जो जनम प्राप्त होते हैं, उनमेंसे हर एकमें उसकी खब दुर्गति होती है-उसे तकलीफें भोगनी पड़ती हैं। जीनेकी इच्छा करनेवाले प्राणीकी जो मनुष्य हिंसा करता या करवाता है उसे प्रत्यन हत्या करनेका पातक लगता है। मोल मांस लेनेवाला द्रव्य द्वारा हिंसा करता है श्रोर मांस खानेवाला, उसके उपयोग द्वारा हिंसा करता है। ये सब प्रत्यच वध करनेवालेकी ही तरह पापी हैं। किन्तु साधारण जगतके लिये ऋषियोंने यह नियम कर दिया है कि यशमें मारे इए पशुको छोडकर अन्य पशुका मांस न खाना चाहिए।यज्ञके सिवा श्रीर कभी पश्रहत्या न करनी चाहिए। जो करेगा उसे निःसन्देह नरक-प्राप्ति होगी। परन्तु मोच मार्गवालोंके लिए यह नियम भी उपयुक्त नहीं। यज्ञ श्रथवा श्राद्ध श्रादि-में ब्राह्मणोंकी तृप्तिके लिए मारे हुए पशुका मांस खानेमें थोड़ा दोष होता है । मांस खानेकी गरज़से यदि कोई यज्ञका ढोंग रचे श्रीर उसमें मांस खानेके लिए उद्यत हो, तो वह काम निन्छ ही होगा। प्रकृति-धर्म माननेवालोंको पितृकर्ममें श्रीर यहा-यागमें, वैदिक मन्त्रोंसे संस्कृत किया हुत्रा श्रम खाना चाहिए, उन्हें नृथा मांस-

भज्ण न करना चाहिए। प्राचीन कालके यज्ञ करनेवालोंने धान्य (अन्न) का पश वनाकर यज्ञ-पुरुषकी आराधना की। वस राजाने, भच्लीय न होने पर भी, मांस-को भन्नणीय बतलाया, इस कारण पृथ्वी-पर उसका पतन हुआ। अगस्त्य ऋषिते प्रजाके हितके लिए अपनी तपश्चयि प्रभावसे जङ्गली मृगोंको, समस्त देव तात्रोंके उद्देशसे, प्रोत्तरण करके पवित्र कर दिया है। अतएव देव-कार्य अथवा पित-कार्यमें यदि मृग-मांस अर्पण किया जाय तो वह कर्महीन नहीं होता । हे राजा, मांस न खानेमें सारे सुख हैं। जो परुष कार्तिक महीनेके शुक्क पत्तमें मध-मांस वर्ज्य करता है, उसे बहुत पुण्य होता है। बरसातके चार महीनोंमें जो मांस नहीं खाता उसको कीर्ति, श्राय श्रीर वल प्राप्त होता है। कमसे कम इन महीनोंमेंसे जो एक महीने भरतक मांस छोडे रहेगा उसे कभी बीमारी न होगी। श्रनेक प्रसिद्ध राजाश्रोंने कार्तिक महीने भर या शुक्क पत्तमें मांसको वर्जित रखा। जो लोग जन्मसे ही मधु-मांस अथवा मद्यको त्यागे रहते हैं उन्हें मुनि ही कहते हैं। इस प्रकार ऋषियोंने मांस भन्नण की प्रवृत्ति श्रीर निवृत्तिके नियम बना दिये हैं।" । क्षेत्राधी कर कारी का

इस वर्णनसे इस वातका दिग्दर्शन होता है कि ज्ञियों श्रोर ब्राह्मणोंकी पुरानी प्रवृत्ति श्रोर द्यायुक्त श्रहिंसा तत्त्वका भगड़ा भारती समयमें किस प्रकार था। ज्ञियोंको जो श्राद्वें सेंकड़ी वर्षोंसे—पुरत दरपुरतसे—पड़ गई थी, उनका छूट जाना श्रसम्भव था; श्रथवा ब्राह्मणोंकी वेदाजाके श्रमुक्त प्रचलित यह श्राद्ध श्राद्ध विधियोंसे फर्क पड़ना भी मुश्किल था। श्रतप्रव कह सकते हैं कि यह एक प्रकारका परस्परका भगड़ी

होतांके मेलसे मिट गया । यह निश्चय सहजमें ही हो गया कि हिंसायुक्त वेदोक्त यह करना श्रनुचित नहीं । इसी तरह समाजको चत्रियोंका, शिकार खेलनेका हुक भी मंजूर करना पड़ा। शिकार खेलने की अनुमित रहनेके कारण चत्रियोंकी हात्रवृत्तिके लिए अच्छा अवसर मिल गया। अगस्त्य ऋषिने निश्चय कर दिया कि शिकारमें मारे हुए पशु प्रोत्तित ही है। पिछले कथानकमें मांस-प्रयुक्त यज्ञके प्रतिवादी श्रगस्त्य ही हैं श्रीर उन्होंने तिनी सुविधा कर दी ! यह श्राश्चर्य ही है। इसी प्रकार नकुलके कथानकमें भी हिंसायुक्त यज्ञ करनेके विषयमें अगस्त्य भृषिका, अन्य महर्षियोंकी ही तरह, श्राप्रह देख पड़ता है। भिन्न भिन्न मतों-के लिए एक ही पूज्य व्यक्तिके मतका श्राधार माननेकी प्रवृत्ति मनुष्यमें खाभा-विक है। ब्राह्मणों के यज्ञ श्रीर चत्रियों की मृगया इस तरह शास्त्रोक्त हो गई है: श्रीर इनमें मांस खानेकी स्वाधीनता हो गई। फिर भी समूचे समाजके मतको मान देकर यह नियम हो गया कि सभी लोग चौमासे भर, या कमसे कम कार्तिक महीने भर, मांस न खायँ । यह नियम श्रयं भी प्रचलित है। श्राजकल बहुधा धावण महीनेमें कोई ज्ञिय मांसाहार नहीं करता।

मद्य-पान-निषेध।

जिस तरह भारती कालमें श्राध्यात्मिक भावनासे श्रिहिंसा-धर्मकी जीत हुई
श्रीर मांस-भदाणके सम्बन्धमें भारती
श्रायोंकी चाल ढालमें फ़र्क़ पड़ गया श्रीर
निवृत्ति-मार्गमें मांसाहार बिलकुल बन्द
हो गया: श्रीर प्रवृत्ति-मार्गमें वह यज्ञयाग श्रीर श्राद्धमें ही बाक़ी रह गया:
इसी तरह भारती कालमें मद्यके बारेमें भी

वड़ा स्थित्यन्तर हो गया। भारती युद्धके समय अर्थात् शुरू शुरूमें, भारती आर्य मद्य त्रथवा सुराका सेवन करना त्रशास्त्र नहीं मानते थे। चत्रियोंके लिए मद्यपान-की मनाही तो थी ही नहीं, वल्कि यह कहा जा सकता है कि इस मामलेमें वे लोग पाश्चात्य शार्य-जर्मन लोगों-की तरह प्रसिद्ध थे। इस काममें यादव लोग अगुत्रा थे और द्वारकामें मद्यपानका खासा जमघट रहता था । महाभारतमें यह वर्णन है कि वृष्णि और यादव मद्य-पान करके ही परस्पर भिड़ गये श्रौर ऐसे भिड़े कि वहीं ढेर हो गये। यह प्रसिद्ध ही है कि बलराम तो खुब डटकर पीते थे। श्रीकृष्ण यद्यपि मद्य पीनेमें मर्यादित थे: तथापि समस्त चत्रियोंकी रीतिके श्रवसार वे भी, मर्यादासे, मद्य पीते थे। श्रीकृष्ण श्रीर श्रर्जुनके मद्यपान करनेका वर्णन महा-भारतमें दो तीन खलों पर है। रामायणमें लिखा है कि जब समुद्रमेंसे सुरा निकली तो देवताश्रोंने उसे ग्रहण कर लिया, इस कारण देवतात्रींका नाम 'सुर' हो गया। महाभारतमें भी एक स्थान पर इसी प्रकारका उल्लेख है। वहण-लोकमें सुरा-भवन कनक-मय है श्रीर सुरा हाथ लग जानेसे ही देवता सुर कहलाने लगे (उद्यो० ग्र० ६=)। युधिष्ठिरके अध्वमेधके उत्सव-वर्णनमें यज्ञको "सुरामैरेय सागरः। कहा है। अर्थात् यज्ञोत्सवकी धूम-धाममें सुरा श्रौर मैरेयकी रेल-पेल थी। ज्ञात होता है कि भारती-युद्धके समय चत्रिय— विशेषकर यादव वीर, युद्ध पर जाते समय सुरापान किया करते थे। जयद्रथ-वध पर्वमें धर्मकी श्राज्ञासे सात्यकी जब श्चर्जुनको मद्द देनेके लिये कौरवी सेनामें घुसनेको तैयार हुन्ना, तब उसके सुरा-पान करनेका वर्णन है। यहाँ पर विशेष नाम घतलाया है 'पीत्वा कैलातकं मधु'

(द्रो० अ० ११२)। यदुके वंशमें मराठे हैं। वे भी युद्धके समय खयं सुरा पीकर श्रीर हाथियोंको पिलाकर लड़ने जाते थे; फिर कभी पैर पीछे न रखते थे। ऐसा वर्णन चीनी परिवाजक हुएनसांगने किया है। भारतके अनेक वर्णनोंसे स्पष्ट देख पड़ता है कि भारती-युद्धके समय चत्रिय लोग सुरा पीनेवाले थे श्रीर उनमेंसे कुछ तो ज़बर्दस्त पियकड़ थे। उस समय, ब्राह्मणोंमें भी सुरा-सेवी होंगे। शुक्रकी कथा महाभारतमें त्राई ही है। शुक्राचार्य शराव पीते थे और उससे अत्यन्त हानि होनेके कारण उन्होंने शराब पीना छोड़ दिया था। कच-देवयानीके श्राख्यानमें भी पेसी ही कथा है। परन्तु ब्राह्मणोंमेंसे इस व्यसन अथवा रवाजको शुक्राचार्यने वहुत प्राचीन कालमें बन्द कर दिया होगा। भारती-युद्धके समय जिस तरह इतिय सुरा पीते थे, उसी तरह ब्राह्मण भी पीते थे या नहीं - यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। फिर भी ब्राह्मण-काल श्रीर उपनिषद्-कालमें शुक्राचार्यके बनाये हुए नियमका पालन ऐसी सख्तीसे किया जाता था कि सुरापानकी गिनती पब्रचमहा-पातकोमें थी। धमेशास्त्रमें इस प्रकारका बन्धन कर दिया गया था। यह निषेध सभी श्रायोंके लिये था; श्रथीत ब्राह्मण, त्तत्रिय और वैश्य तीनोंके लिये एकसा था । परन्तु यह नियम ब्राह्मणोंके लिए विशेषताके साथ उपयुक्त गया। ये पञ्चमहापातक उपनिषदोंमें भी कथित हैं। इससे प्रकट है कि सुरापानका दोष बहुत प्राचीन कालसे माना गया है। भारती-युद्धके समय भी इसे ब्राह्मणोंने मान्य कर लिया होगा; श्रौर यदि ऐसा न भी हो तो भी भारती कालमें यह बन्धन पके तौर पर कायम होकर महाभारतके समय ब्राह्मणोंके लिये सुरा इतनी वर्ज-

नीय थी कि मद्य-प्राशनसे ब्राह्मणत्व ही नष्ट हो जानेका नियम हो गया था। सुरापान करनेसे बाह्मणींके लिये ब्रह्महत्याके समान ही पातित्य होने. का निश्चय हो गया। शान्ति पर्वके १४० व श्रध्यायमें विश्वामित्र श्रीर चाराडालकी एक मनोरञ्जक कथा है। उस कथासे उक्त बात भली भाँति प्रमाणित होती है। एक वार बारह वर्षतक पानी न वरसनेसे बडा भयङ्गर अकाल पड़ा। तब, विश्वा मित्र भूखसे ज्याकुल होकर इधर उधर श्राहारकी खोजमें भटकने लगे। उस समय उन्हें एक चाएडालका घरदेख पडा श्रीर उसमें देख पड़ी एक मरे हुए कुत्ते की टाँग। लुक छिपकर विश्वामित्र घरमें घुसकर वह टाँग चुराकर ले जाने लगे। उस समय चाएडालने उनको रोका। तब, चाएडाल श्रीर विश्वामित्रके वीच इस विषय पर बड़ा मज़ेदार सम्बाद हुआ कि यह जो चौर-कार्य किया गया सो ठीक है या नहीं। उस सम्वादमें विश्वा-मित्रने सवके अन्तमें चाएडालको यह कहकर चुप कर दिया कि आई! मैं धर्म-को खूब समस्ता वृसता हूँ। चौरी करना या कुत्तेका मांस खाना पातक है; किन्तु इसके लिये प्रायश्चित्त है। 'पतित' शब केवल सुरापानके सम्बन्धमें धर्मशास्त्रमे कथित है। 'नैवातिपापं भन्नमाण्स्य इप्र सुरां तु पीत्वा पततीतिशब्दः। इस प्रकार सुरापानका पातक अत्यन्त भयं इर माना जाता था श्रौर इससे जान पड़ता है कि महाभारतके समय भी उस पातकके लिये कुछ मी प्रायश्चित्त न था, जिससे कि पातकी शुद्ध हो सकता। जिस ब्राह्मण जातिका ब्राह्मएय मद्यकी एक वूँदसे भी नष्ट हो जाना लोग मानते थे, उस ब्राह्मण जातिके सम्बन्धमें लोगोंमें पूज्य बुद्धि बढ़े तो इसमें श्राश्चर्य नहीं । 'यस्य काय

गतं ब्रह्म मद्येनाप्ताव्यते सकृत्', इत्यादि मनुस्मृतिमें भी कथित है। महाभारतके समय भी यह बात मान्य थी कि मद्य-वानके लिये, किसी स्थितिमें, भी प्राय-श्चित्त नहीं है ; यही क्यों, कलियुगमें भी सिसोदिया वंशी राजपूतोंको इसके मान्य होनेकी वात इतिहास प्रसिद्ध है। इस वंशके एकं राजाको वैद्यने दवाके रूपमें मद्य पिला दिया । उसे जब यह वात माल्म हुई तो उसने पुरोहितसे पृञ्चा-"जो मद्य पी ले उसके लिए क्या प्राय-श्चित है ?" उत्तर मिला— "पिघला हुआ शीशा गलेमें ढालना चाहिए।" राजाने वेसा ही करके प्राण छोड़ दिया; तभीसे इस वंशका नाम सिसोदिया पड़ गया। महाभारतके समय ब्राह्मणोंने सुराको पूर्णतया वर्ज्य कर दिया था। शान्तिपर्व, मोत्त्रधर्म, १६० वें अध्यायके एक मजेदार श्लोकसे यह बात निश्चयपूर्वक देख पड़ती है। एक ग्रीव ब्राह्मण, एक धनवान मत्त वैश्यके रथके श्रकेसे गिर पड़ा। तब वह श्रत्यन्त खिन्न होकर अपनी हीन स्थितिके विषयमें शोक करने लगा। वह विलाप कर रहा था कि ऐसे गरीव ब्राह्मणका जन्म बहुत ही दुःखदायी और दुईंचका है। उसी समय इन्द्र एक गीदड़का रूप धर-कर उसके पास आया और उस ब्राह्मण-की प्रशंसा करके उसका समाधान करता हुआ बोला—"तू ब्राह्मण हुआ, इसमें ही त् बहुत भाग्यवान है। तुभे जो यह लाभ हुआ है, इसमें ही तुभे सन्तुष्ट रहना चाहिए। में श्रगाल-थोनिमें उपजा हूँ। तब मेरे सिर कितना पाप है ?" इत्यादि बातें करते करते इन्द्रने कहा-"तुभे कभी न तो मद्यका समरण होता है श्रीर न लट्वाक पत्तीके मांसकाः और सच पूछी तो इस इनियामें उनसे बढ़कर मोहक और श्रधिक मधुर पदार्थ कहीं नहीं है।" "न

त्वं सारिस वाहएया लट्टाकानां च पित-णाम्। ताभ्यां चाभ्यधिको भच्यो न कश्चि-द्विद्यते कचित् ॥" (शां० अ० ३१) तात्पर्य ब्राह्मणींने निवृत्ति धर्मको प्रधान मानकर मद्य जैसा मोहक और लट्वाक पत्तीके मांससा मधुर पदार्थ अपनी ही खुशीसे छोड़ दिया था। इस कारण समाज पर ऐसे बाह्यणोंकी धाक बैठ गई श्रीर वे भारती श्रायोंके समाजके श्रयणी तथा धर्मगुरु हो गये तो इसमें श्राश्चर्यकी वात नहीं। महाभारतकालके पहलेसे ही ब्राह्मणोंने सुराका जो सर्वथैव त्याग किया, उसकी महिमा अवतक स्थिर है और कितने ही चत्रियोंने भी उसीको अपना श्रादर्श बना लिया है। ब्राह्मणींके इस व्यवहारका परिणाम समय भारतीय जन-समाज पर हुए विना नहीं रहा । समग्र भारतीयोंका मद्य पीनेका व्यसन महा-भारत-कालमें बहुत ही कम था। इस वातकी साची युनानी इतिहासकार भी देते हैं। मेगास्थिनीज़के ग्रन्थके श्राधार पर स्ट्रेयो नामक इतिहास-प्रणेताने लिखा है—"हिन्दू लोग, यज्ञके विना, ऋौर किसी अवसर पर शराव नहीं पीते।" मेक्क्रिंडलने इस पर टीका की है कि यह उत्तेख वहुश्रा सोमरसके पानका होगा। किन्तु सिर्फ ऐसा ही नहीं कहा जा सकता । सोज्यामण्यां सुरापानम् यह धर्मशास्त्रका वचन प्रसिद्ध ही है। सौत्रामणि नामक यज्ञमें सुरा पीनी ही पड़ती थी। श्रीर श्रीर श्रन्यान्य यज्ञोंमें भी श्रत्यन्त प्राचीन कालमें उत्सवके निमित्तसे सुरापान किया जाता था। युधिष्ठिरके अध्यमधन्वर्णनमें सुराके पीनेका वर्णत है। इसी तरह द्रोण पर्वके षोड़शराजीय श्राख्यानमें, ६४ वें श्रध्याय-में, सुरापान करनेका वर्णन है। फिर भी ये सारे वर्णन भारतीय कालसे पुराने हैं। महाभारतके समय ब्राह्मणांने नित्यं सुरा ब्राह्मणानाम् यही नियम मान्य किया था श्रीर श्रन्य लोगोंमें भी केवल उत्सवके ही श्रवसर पर शराव पीनेका •यसन देख पड़ता था। परन्तु श्रन्य श्रवसरों पर लोग मदिरा न पीते थे।

इस प्रकार भारती-कालमें भारती आयोंके भोजन-व्यवहारमें वहत ही बड़े महत्त्वका श्रन्तर पड़ गया। भारती श्रायौं-के लिये यह बात बहुत ही भूषणावह है। भारती श्रायोंने विशेषतः ब्राह्मणींने मद्य-मांस खाना-पीना छोड दिया। पञ्जाब-को छोड़कर हिन्दुस्तानके श्रन्य प्रान्तोंके सभी लोगोंमें, जैसा कि कहा गया है, इस नियमका भली भाँति पालन होता था। जिसे श्रायार्वत कहते हैं उस देशका श्रेष्ठ है-यह श्राचार सबसे प्राचीन कालमें इसी कारण कही जाती थी। जैसा कि कहा जा चुका है, श्रार्था-वर्त्तके विशेषतः ब्रह्मार्षे देशके रीति-रवाज, विवाहके दस्तूर, वर्ण-ज्यवस्था श्रीर खान-पानके व्यवहार-सम्बन्धी कठोर नियम देश भरमें प्रमाणिक माने जाते थे और श्रन्यान्य प्रान्तोंमें इनसे कुछ भिन्न श्राचार रहता था। पञ्जाबके वाहिक लोगोंसें, पूर्व कथनके श्रनुसार, मांस-भन्तणके सम्बन्धमें अनाचार थाः श्रीर पञ्जाबके वाहिक लोगोंमें सुरापानके सम्बन्धमें भी श्रानाचार था । प्रत्येक चौरास्ते पर श्रीर राजद्वारमें सुराकी दृकानें श्रथवा कलारी हौली होती थीं। कलारियोंका गौड़ नाम सुभद्र था। कर्ण पर्वके शल्य-कर्णके भाषणसे ये वातें प्रकट होती हैं। पेसा होने पर भी पञ्जाबतकमें इस बातके सम्बन्धमें महाभारतके सम्ब हो गया होगा। क्योंकि शल्यने अपने उत्तरमें यही मत प्रकट किया है कि बुरे भारमी सभी जगह होते हैं।

सारस्वतोंका भतस्य-भन्तण।

पञ्जाववालों की तरह श्रौर भी एक तरहके लोगोंका उल्लेख महाभारतमें है श्राचार साधारण ब्राह्मगोंके श्राचारसे भिन्न था। यह उत्तेख सारस्वतोंका है। पहले कहा गया है कि ब्राह्मणोंको मञ्जली न खानी चाहिए। परन्त इसके अपवादमें सारस्वतीका नाम महाभारतमें कथित है। सारस्वत हैं सर-स्वती किनारेके ब्राह्मणः ये अव भी मत्स्य-भोजी हैं। सारखत आख्यानसे शत होता है कि ये लोग महाभारतके समयसे ही मछलियाँ खाते हैं। बारह वर्षतक पानी न वरसने पर सारस्वत ऋषिने सरस्वती नदीकी मञ्जलियाँ खा खाकर पेट पाला और वेदांकी रचा की। देश-विदेशमें जो ब्राह्मण चले गये थे उन्होंने लौटकर सारस्वतसे वेद पढ़ा । इन्हीं लोगोंका नाम सारस्वत पड़ गया। सरस्वतीके प्रदेशके एक भागका नाम प्राचीन कालमें गुड था। इस कारण वहाँके ब्राह्मण गौड़ भी कहलाने लगे। ये गौड़ ब्राह्मण बङ्गालमें जाकर वस गये, श्रीर कुछ सारस्वत ब्राह्मण कॉकणमें श्राबाद हो गये। इन दोनों स्थानों पर गौडों श्रीर सारखतोंमें श्रवतक मत्स्या-हार प्रचलित है।

चावल प्रभृति घान्य।

साधारण रीति पर महाभारतके लोग मुख्य मुख्य श्रनाज खाते थे। श्रनाज चावल, गेहूँ, ज्वार श्रोर सन् श्रादि मुख्य थे। देख पड़ता है कि धन-वानों श्रोर चित्रयोंमें भातमें मांस मिला कर—जिसे श्राजकल पुलाव कहते हैं— खानेका खास रवाज था। धृतराष्ट्रने सभापर्वमें दुर्योधनसे पूछा है—"श्राच्छाद-पसि श्रावराज श्रभासि पिशितौदनम्" त् अञ्छे अञ्छे कपड़े पहनता है और मांसोदन यानी पुलाव खाता है; फिर दुबला क्यों हो गया है? इससे भी बढ़-कर मज़ेदार एक क्योंक उद्योग पर्वकी विदुरनीतिमें हैं।

ब्राह्यानां मांस परमं मध्यानां गोरसोत्तरम्। तेलोत्तरं दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ॥

धनवान् लोग बहुधा ऐसा भोजन करते हैं जिसमें मांस विशेष होता है: मध्यम स्थितिवालोंकी खुराकमें दूध, घी ब्रादि गोरसकी विशेषता रहती हैं: श्रीर गरीब श्रादमी ऐसा भोजन करते हैं जिसमें तेल अधिक रहता है। भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके अन्नकी विशेषता रहती है। हिन्दुस्तानकी वर्त-मान कालीन परिस्थितिमें यह बात स्पष्ट देख पड़ती है। इसी तरहका फ़र्क प्राचीन काल अर्थात् महाभारतके समय रहा होगा। पहलेपहल आर्योंकी वस्ती हिमा-लयकी तराईमें थी स्रौर फिर पञ्जावसे लेकर ठेठ मिथिला देशतक हो गई। इस देशमें मुख्य पैदावार धानकी थी और इस प्रदेशमें श्रब भी बढ़िया चावल होते है। प्राचीन काल अर्थात् भारती-युद्धके समय आर्योंके भोजनमें मुख्यतः चावली-को विशेषता होना साहजिक ही है। इन प्रदेशोंसे धीरे धीरे आर्य लोग दित्तण श्रोरके गरम प्रदेशमें फैल गये। यहाँकी मुख्य उपज चावलकी नहीं, यव या जी और गेहूँकी थी तथा श्रव भी है। वन-पर्वमें (अ० १६०) कलियुगके वर्णनमें कहा है-

ये यवान्ना जनपदा गोधूमान्नास्तथैव च। तान्देशान्संश्रयिष्यन्ति युगान्ते पर्युपस्थिते॥

जिस देशमें मुख्य करके यव और गेहूँ उपजते हैं तथा इन्हींको लोग खाते हैं उन देशोंका आश्रय, कलियुग ग्राप्त होने पर, लोग करेंगे। ये देश हैं गङ्गाके

दिल्णी तटके मध्य हिन्द्रस्थान श्रीर गुज-रात श्रादि। इन दोनोंमें श्रायोंकी बस्ती पीछेसे हुई थी। उल्लिखित वाक्यसे यह वात भली भाँति देख पडती है। इन देशीं-में धानकी उपज बहुत कम होती हैं: गरीव और मध्यम श्रेणीके लोग बहुत करके चावल खाते ही नहीं; तब, गङ्गाके उत्तरी प्रदेशके श्रार्य निवासियोंको भात न मिलनेके कारण इस देशमें रहना एक तरहका श्रभाग्य ही जँचता होगा। इसी-से वर्णित है कि कलियुगमें इन देशोंमें लोग भर जायँगे। श्राजकल गेहँका भोजन चावलांकी श्रपेचा श्रेष्ठ माना जाता है; परन्तु महाभारतके समय इससे विपरीत स्थिति देख पडती है। गेहूँ श्रीर चावल दोनों ही श्रेष्ट श्रनाज हैं। सत्तको प्रशंसा महाभारतमें अनेक खलीं पर है। सक्थ यद्यपि उत्तम धान्य नहीं है फिर भी न माल्म उसकी इतनी प्रशंसा महाभारतमें क्यों है। भुने हुए सक्थु खानेकी रीति महाभारतके समय थी । सक्थुओंमें शकर मिलाकर कुछ पदार्थ लड्डू वगैरह बनाये जाते होंगे। महाभारतमें स्त्रियोंको यह उपदेश किया गया है कि अपने लिए सक्थु न बनाना चहिए अौर रात-को अकेले श्राप ही न खाना चाहिए। खैर; जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, बहुत करके ये सक्थु मीठे होते होंगे। सक्थु त्राजकलका सत्त् है।

गोरसकी महत्ता।

जनतामें गोरस विशेषतासे खानेका चलन था। दूध-घी बहुधा गौत्रोंका ही खाया जाता था। भैंसका दूध बर्तनेका वर्गन कहीं नहीं भिलता। इससे यह न समक्षना चाहिए कि उस समय भैंस थी हो नहीं। परन्तु भैंस श्रीर भैंसे निन्ध माने जाते थे। इसके सिवा देशमें गोवंशकी ख़ासी वृद्धि होनेसे गौके दूधको कमीन थी। (वन पर्व १६० श्रध्याय में) वर्णन है कि कलियुगमें गौएँ नष्ट हो जानेसे भेड़, बकरियाँ दुही जायँगी। "दुहन्ताश्चाप्यजैडकं गोषु नष्टासु पुरुषाः"। कुछ जानवरोका दूध शास्त्रकी दृष्टिसे निषिद्ध माना जाता था । कहा गया है कि ब्राह्मणको अजा (भेड़), अध्व, गर्दभ, उष्ट्र, मनुष्य (स्त्री) श्रौर हरिणीका दूध न पीना चाहिये। इसी तरह गौके बचा देने पर दस दिनतक उसका दूध न पीना चाहिए। वासी भोजन श्रोर पुराना श्राटा तथा गन्ना, शाक, दूध श्रीर भुने हुए सत्त्से तैयार किये हुए पदार्थ, बहुत दिनोंतक रखे रहें तो, उन्हें न खाना चाहिए (शान्ति पर्व अध्याय ३६)। शाक-भाजीमें लहसुन-प्याज़को भी वर्ज्य कहा है। पञ्जाबियोंका जो श्रनाचार वर्णित है उसमें उनके लहसुन-प्याज़ खानेका भी वर्णन है।

भोजन करते समय मीन।

समस्त भारती श्रायोंका भोजन साधा-रण रीतिसे परिभित और सादा था। युनानियोंने उनके भोजनके सम्बन्धमें कुछ श्रालोचनायुक्त उल्लेख किया है। "हिन्दु-स्तानियोंमें भोजनका नियत समय नहीं है श्रोर सारे समाजमें प्रसिद्ध भोजन भी नहीं हैं।" महाभारतके कुछ वचनोंसे यह श्राचेप सचा जान पड़ता है। सबेरे श्रीर सन्ध्या समय भोजन न करना चाहिए, यही नियम है; श्रीर कहा गया है कि श्रहो-रात्रके बीच सिर्फ़ दो बार भोजन करना चाहिए-कई मर्तवा नहीं। किन्तु भोजन करनेका कोई निश्चित समय नहीं देख पड़ता। इसके अतिरिक्त यह भी नियम वना दिया गया कि-"प्राङ्मुखो नित्यसक्षी-यात् वाग्यतोन्नमकुत्सयन्।" (श्रनुशासन पर्व १०) भोजन करते समय न तो

बोलना चाहिए श्रीर न रसोईकी निन्दा करनी चाहिए। इस कारण सामाजिक प्रसिद्ध भोज जिनमें कि भोजन करनेवाले लोग छोटे छोटे ब्याख्यान देते या भाषण करते हैं श्रीर जो प्राचीन कालमें तथा इस समय भी पाश्चात्य देशोंमें होते हैं— महाभारतके समय यहाँ प्रचलित नहीं देख पडते। यह बात सच है कि जैसे घरके लोग एक ही चौकेमें अलग अलग थाली श्रादिमें श्राजकल भोजन करते हैं वैसे पूर्व समयमें भी किया करते थे। परन्तु युधिष्टिर-कृत अश्वमेधके अवसर पर हजारों बाह्यगों, चत्रियों श्रोर वैश्योंके भोजन करनेका वर्णन है। इससे यह भी नहीं कहा जा सकता कि सामाजिक भोज थे ही नहीं। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे ऐसे भोजों श्रीर ज्योनारोंके श्रवसर पर भी भोजन करनेवाले लोग मौनवतसे ही भोजन करते थे।

भोजनके भिन्न भिन्न पदार्थ।

एसे श्रवसरों पर भोजनमें वहीं मामूली चीज़ें नहीं रह सकतीं। तब, तरह तरहके स्वादिए पदार्थ वनते रहे होंगे। इसके सिवा श्रीमानोंके भोजनोंमें भी भिन्न भिन्न स्वादिए पदार्थ तैयार होते होंगे। श्राश्रमवासी-पर्वमें यह वर्णन है कि—

श्रारालिकाः सूपकारा रागखाएड-विकास्तथा। उपातिष्ठन्त राजानं धृतराष्ट्रं पुरा यथा॥

धृतराष्ट्र राजाको, पहलेकी ही भाँति,
युधिष्टिरके यहाँ भी आरालिक, स्रपकार
और रागखाएडविक लोग पकान्न बना
बनाकर परोसते थे (आश्रमवासी पर्व
अ०१)। इसमें तीन तरहके रसोइये बतः
लाये गये हैं। आरालिक और स्रपकार
मीठे मीठे पदार्थ न बनाते होंगे। मीठे
पदार्थ या तो साएडवराग या रागखाएडव

नामसे ही महाभारतमें वर्णित हैं। टीका-कारने वर्णन किया है कि शकर, मूँग श्रीर सीठ द्वारा ये पदार्थ प्रस्तुत किये जाते थे। गुजराती भाषामें खाएडव = शकर (श्रीर हिन्दीमें भी खाँड़ [खाएडव] = शकर) शब्द प्रसिद्ध है। पर रागका अर्थ नहीं बतलाया जा सकता। मीठी चीजें वनानेवाले थे रागखागडविक श्रीर शाक-भाजी, कढ़ी, रायते आदि तैयार करते थे मुपकार । सूप शब्दसे दालका वोध होता है। श्रारालिक लोग मांस पकाते होंगे। प्रस्तु; भद्य पदार्थोंके त्र्रतिरिक्त तरह तरहके पेय-श्रर्थात् पीने योग्य पतले पकान खीर, रवड़ी आदि-वनाये जाते थे। किन्तु ये पेय कौन कौनसे थे, इसका वर्णन कहीं नहीं मिलता । यह तो निर्विवाद है कि ये पेय बहुधा मीठे होते थे। धृतराष्ट्रके भोजनमें वर्णन है— मैरेयमत्स्यमांसानि पातकानि मधूनि च।

(श्राश्रमवासी पर्व श्रध्याय १)
दान किये जानेवाले श्राहारमें श्रप्प
श्रौर मोदकोंका वर्णन पाया जाता है।
यह कहनेकी श्रावश्यकता नहीं कि भोजनकों समस्त चीज़ोंमें शृत श्रेष्ठ था। श्राजकलका वाक्य—"श्रायुरेव शृतम्" प्रसिद्ध ही है। परन्तु भारतमें 'शृतं श्रेयो उद्ध्याः' वचन श्राया है। श्रर्थात् यह उद्दा-हरण है कि झाँझ (उद्ध्वि) की श्रपेचा शृत श्रेयस्कर है। इस प्रकार महाभारतमें जो कुछ थोड़ासा उल्लेख प्रसङ्गके श्रनुसार श्राया है, उसके श्राधार पर विचार-किया गया कि महाभारतके समय भारती लोग क्या खाते थे। श्रव भोजनके कुछ विशेष नियमोंको देखना है।

चित्रान्भद्यविकारांश्च चक्रस्तस्ययथा पुरा ॥

भोजनके नियम।

लाने-पीनेके सम्बन्धमें जो कुछ विशेष

नियम बतलाये गये हैं उनको यहाँ उद्भुत करना ठीक होगा। "राजाका श्रव्न तेजको हरण करता है। शद्रका श्रन्न ब्रह्म-वर्चसको हरण करता है और सुनारका अन्न तथा ऐसी स्त्रीका जिसके कि पति स्रोर पुत्र न हो, श्रायु हरण करता है। ब्याजसे गुज़र करनेवालोंका अन्न विष्ठा है स्रौर वेश्या-का अन्न शुक्र है। जारके सहवासको सहन करनेवाले श्रौर स्त्रीजित् लोगोंका भी सव तरहका श्रन्न शुक्र ही है। जिस ब्राह्मण्ने यज्ञदीचा ब्रह्ण कर ली हो उसका, कृपणका, यज्ञ-कर्म विकय करने-वालेका, वढ़ईगीरी करनेवालेका, चमडा कारनेवालेका श्रोर धोवीका करनेवालेका अन्न न खाना चाहिए। व्यभिचारिणीका, वैद्यका, प्रजा-पालन पर नियुक्त अधिकारीका, जन-समृह का, ग्रामका श्रीर ऐसे लोगोंका जिन लोकापवाद हो, अन्न भन्नण न करना चाहिए। रँगरेज़का, स्त्रियोंकी कमाई खानेवालींका, वड़े भाईसे पहले विवाह करनेवालेका, स्तुतिपाठकका श्रौर यूत-वेत्ताका श्रव न खाना चाहिए। बाये हाथसे लिया हुत्रा, वुसा हुन्ना, वासी, मद्यसे छुत्राया हुत्रा, जुटा, श्रौर किसी-को न देकर विशेष व्यक्तिके लिये रखा हुआ श्रव न खाना चाहिए। गन्ना, शाक, सत्तु, श्राटा श्रीर द्धिमिश्रित सत्तूसे बने हुए पदार्थ, यदि वहुत दिनतक रखे रहें तो, न खाने चाहिएँ । दूध, खीर, खिचड़ी, मांस, वड़े अथवा अपूप (पूआ) यदि विना शास्त्रोक्त कारणके ही तैयार किये गये हों तो गृहस्थाश्रमी ब्राह्मणको भक्तण या प्राशन भी न करना चाहिए। मनुष्य श्रीर घरके देवताका पूजन करके गृस्थाश्रमीको भोजन करना चाहिए। दस दिनसे पूर्व उन लोगोंका भी पदार्थ न खाना चाहिए जिनके यहाँ किसीकी

मृत्यु त्रथवा वृद्धि (सौर) हुई हो ।" (शां० अ० ३६) इस वर्णनसे हमारे भारती श्रायोंके खाने-पीनेके सम्बन्धके खास नियमोंकी श्रटकल सकती है। महाभारतके समय ब्राह्मण लोग चत्रियों श्रोर वैश्योंके यहाँ भोजन किया करते थे; परन्तु शूट्रोंके यहाँ भोजन करने नहीं जाते थे। शद्रके यहाँ भोजन करनेसे ब्रह्मवर्चस् लुप्त होनेकी बात स्पष्ट कही गई है। इसके सिवा सुनारके यहाँ भोजन करनेको जानेकी मनाही थी। यह बतलाना कठिन है कि सुनारके सम्बन्धमें का दोष रहा होगा। धोवी, वैद्य, मोची श्रौर वढ़ईके पेशेके सम्बन्धमें इसी प्रकारका नियम है। किन्तु इस मनाहीका कारण उन पेशोंका कोई लास श्रवगुण रहा होगा। इन रोजगारोंमें जो प्राणिहिंसा होती है अथवा अमाङ्ग-लिकता है, कदाचित् उस पर ध्यान रहा हो। कहा गया है कि राजाधिकारी श्रीर व्याज-बहेका काम करनेवालेका भी श्रम्न न खाना चाहिए। यह ध्यान देने योग्य बात है। इसके सिवा श्रौर नियमोंके सम्बन्धमें हमें यह देख पड़ता है कि अन्न खा लेनेसे जुठा हो जानेका विचार, श्राज-कलकी भाँति, तब भी था। सखरे-निखरे श्रीर छूत या निर्लंपका भेदाभेद उस जमानेमें स्पष्ट नहीं देख पड़ता। कमसे कम इस सम्बन्धका उल्लेख कहीं पाया नहीं जाता। ऋर्थात् उच्छिष्ट दोष दोनोंमें ही एकसा मान्य देख पड़ता है।

भोजनके सम्बन्धमें जो बातें माल्म हो सकीं वे एकत्र करके पाठकोंके सम्मुख एख दी गई। अब भारती प्राचीन श्रायोंके एख-श्राभूषणोंके रवाजका वर्णन करना है।

वस्त्र श्रीर भूषण।

प्राचीन कालके लोगोंकी सिका भिक्र

रीतियों त्रादिके विषयमें जो अत्यन्त महत्वकी श्रीर मनोरञ्जक बात जाननेकी सब लोगोंको उत्कएठा होती है वह उनके कपडे-लत्तों श्रीर श्राभूषणोंके सम्बन्धां रहती है। प्राचीन कालके लोगोंका शारी रिक वर्णन श्रथवा उनकी रङ्गतका वर्णन इतना महत्त्वपूर्ण नहीं होता: क्योंकि अपनी श्रोर श्रपने पूर्वजोंकी शारीरिक परिश्वित के बीच विशेष अन्तर पड़नेकी सम्भा वना नहीं रहती । किन्तु कपड़े-लत्तांके सम्बन्धमें मनुष्यकी परिस्थितिमें भिष्न भिन्न कारगोंसे श्रीर मनुष्यकी कल्पनासे बहुत फर्क हो जानेकी विशेष सम्भावना रहती है। इसके सिवा प्राचीन लोगीकी वातें वतलाते हुए उनके वस्त्र पावरणीका वर्णन पुराने अन्योंमें बहुत ही श्रपूर्ण रहता है: क्योंकि उपन्यासी आदिके सिवा स्त्री-पुरुषोंके हुवह वर्णन अन्य प्रन्थोंमें नहीं होते। भिन्न भिन्न परिषि-तियोंमें. श्रोर सम्पन्नताकी भिन्नताके कारण, तरह तरहकी पोशाकों गहनोंकी उपज हम देखा करते हैं। इस कारण एक परिस्थितिवाले लोग दूसरी परिस्थितिवालोंकी पोशाककी नहीं कर सकते । उदाहरणार्थ, पेरिस नगरीके सुधारोंके शिखर पर बैठी हुई पाश्चात्य स्त्रियोंको, हिन्दुस्थानकी किसी जङ्गली जातिमें उत्पन्न स्त्रियोंकी पोशाककी कल्पना होना सम्भव नहीं । पहुँचेस लेकर कुहनीतक पीतलकी चूड़ियाँ पहने, गलेमें सफ़ेद पत्थरकी गुरिया—मणिकी तरह-पहने, फरे-पुराने कपड़ेको करिः प्रदेशमें लपेटे श्रीर सिर पर छोटासा काला कपड़ा बाँधे हुए किसीको देखका पेरिस नगरवासिनी ललनाको श्राश्चर्य होगा। इधर ऐसी स्त्रियोंको उन ग्रेमसाहबा की पोशाककी कल्पना न हो सकेगी कि जिनके फूले लहँगोंमें तरह तरहके चित्र विवित्र कपड़ों के टुकड़े लगे हों। वह उस टोपीको क्या समभेगी जिसमें परों- के जमावकी रचनाका श्रुकार हो। श्रस्तुः विद पाठकों के श्रागे, श्राचीन कालकी भारती श्रार्य खियों श्रीर पुरुषों की तस्वीर उस पोशाक श्रीर गहने से सजाका, ज्यों की त्यों खड़ी कर दी जाय कि जिसे पहनकर वे समाजमें चलते-फिरते थे तो बहुत ही मनोर अक हो। परन्तु यह काम सरल नहीं, क्यों कि महाभारतमें क्यों श्रीर भूषणों का उन्नेख बहुत कम है। जो है भी वह एक स्थान पर नहीं है—कुछ कहीं है, कुछ कहीं। इस कारण उनको एकत करके यह काम करना होगा। इससे फिर भी रहेगा वह श्रपूर्ण ही।

(२) पुरुषोंकी पोशाक, दो वस्त्र।

महाभारतके समय भारती आर्य पुरुषोंकी पोशाक विलकुल सादी थी। दो धोतियाँ ही उनकी पोशाक थी। एक धोती कमरके नीचे पहन ली जाती श्रौर रूसरी शरीर पर चाहे जैसे डाल ली जाती थी। भारती आयौंकी यह पुरानी पोशाक अवतक हिन्दुस्तानके पिछड़े हुए भागों श्रीर पुराग-प्रिय लोगोंमें मौजूद है। प्राचीन समयमें पाश्चात्य युनानी और रोमन लोगोंको पोशाक भी इसी ढंगकी र्थी। ये घोतियाँ अथवा वस्त्र वनाना वहुत सरल था, इसीसे इनका चलन उस समय हो गया होगा। क्या धनवान श्रोर क्या गरीब, सभीके लिये यही मार्ग था श्रीर धोती पहननेकी रीति एक ही ढंगकी थी। फ़र्क इतना ही होगा कि बड़े श्राद-मियोंकी धोतियोंका स्त-पोत महीन श्रीर निफ़ीस होता होगा और गरीबोंकी घोतियाँ मामुली मोटी-कोटी रहती होंगी। पाजामा पहननेकी रीति प्राचीन समय-में न थी। श्रीर जैसे कि श्राजकल रक्ष

है, वहुआ धोती पहननेकी रीति थी। बत-सभाके वर्णनसे यह बात प्रकट होती है। द्रौपदी राजसभामें पकड़ लाई गई और दासी कहकर उसकी फजीहत की गई। उस समय दुर्योधनने श्रवनी जाँघ खोल-कर दिखाई। यहि वह पाजामा पहने होता तो ऐसा किस तरह कर सकता था। ऐसा तो धोती पहनी हुई अवस्थामें ही हो सकता है । कुछ यह बात नहीं कि कमरसे ऊपरका श्रङ्ग सदा उत्तरीय वस्त्र-से ढँका ही रहता हो, अनेक अंशोंमें वह खुला ही रहता था। धनवानोंकी धोतियाँ बहुत ही महीन होती थीं श्रौर उनको प्रावार कहा जाता था। शरीरको ढँकने-वाले उत्तरीय बस्नका उल्लेख बहुत ही कम स्थानों पर है। फिर भी यह निर्वि-वाद है कि पुरुषोंके पास उत्तरीय वस्त्र होता था। मामूली काम-काजमें उत्तरीय वस्त्रसे कुछ दिकत न हो, एतदर्थ विद्यार्थियोंके लिए यह नियम पाया जाता है कि दहिना हाथ दुपट्टेसे बाहर निकाल-कर वार्ये कन्त्रे पर उत्तरीयमें गाँठ लगा लें। मनुस्मृतिमें यह नियम "नित्य-मुङ्गाणिः स्यात्" इस रूपमें है। टीका-कारने इसका श्रर्थ किया है कि उत्तरीयसे हाथ वाहर निकला हुन्रा रहे । यह नियम सिर्फ़ ब्रह्मचारियोंके लिए हैं, इससे जान पड़ता है कि श्रौरोंके लिए उत्तरीय श्रोढ़नेका रवाज श्रोर ही तरहका रहा होगा। नहीं कह सकते कि युद्धके समय योद्धा लोग उत्तरीयको किस प्रकार धारण किया करते थे। परन्तु वे ब्रह्मचारी-की ही तरह दहिना हाथ बाहर निकाल-कर वाँयें कन्धे पर गाँउ लगाते होंगे। रोमन लोंगोमें जैसी टोगा पहननेकी चाल थी वैसी ही रीतिका यहाँ होना भी सम्भव है। श्रौर तो क्या, पुराने चित्रोंमें जो उत्तरीयके दोनों छोर पीछेकी श्रोर उड़ते हुए दिखाये जाते हैं, वह भी ठीक हो सकता है।

उन्निखित दोनों बस्त्रोंके सिवा भारती आर्योकी पोशाकमें श्रीर कपड़े न थे। पाजामा, श्रथवा श्रँगरखा उस समय थे ही नहीं। हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि कपड़ा काटकर, तरह तरहके कपड़े सीनेको कला ही भारती कालमें न थी। उस समय दर्जीका पेशा अज्ञात था, यही मानना पड़ता है। यह पश्चिमी रोज़गार है श्रौर उसके उस तरफसे ही हिन्दुस्तानमें श्रानेका श्रनुमान किया जा सकता है। सम्भव है, सिकन्द्रके साथी यूनानी ही उसे लाये हों। अथवा इससे प्रथम कदा-चित् जब दाराउस बादशाहके समय पर्शियन लोगोंने सिन्धुके पश्चिमी श्रोरका भाग जीता था तब पश्चिमी लोगोंके सह-वाससे हिन्दुस्तानमें यह कला आई हो। क्योंकि महाभारतमें दर्जियोंका किसी कारीगरीके संस्वन्ध्रमें नहीं श्राया। संस्कृतमें दर्जीके लिये तन्नवाय शब्द है। किन्तु महाभारतमें यह शब्द ही नहीं श्राया। सुनार, लुहार, ठठेरे श्रीर मोची श्रादिका नाम तो महाभारतमें है, पर तुन्नवायका नहीं है। रामायणमें तुन्नवाय शब्द है । इससे जान पड़ता है कि महा-भारतके अनन्तर और रामायणसे पहले यह कला भारतमें श्राई होगी। सिकन्दर-के समय यूनानियोंका शासन पञ्जाबमें बहुत थोड़े दिनोंतक रहा। परन्त महा-भारत-कालके पश्चात् वैक्ट्रियन-यूनानियोंने सन् ईसवीसे पूर्व २०० वर्षके लगभग पञ्जाबको जीतकर वहाँ बहुत वर्षीतक राज्य किया। उस समय लोगोंने यह पेशा सीखा होगा। पूर्व कथनानुसार, वर्त्तमान रामायणका समय सन् ईसवीसे लगभग १०० वर्ष पहले है, श्रतएव तुसवाय श्रथवा दर्जी शब्द श्रा जाना साहजिक

ही है। तथापि यह कोई निश्चयात्मक प्रमाण नहीं है। जो हो, यह सच है कि भारती-युद्धके समय सिले-सिलाये कपड़े- वंडी, श्रॅगरखे श्रादि,—न थे; श्रोर यही दशा महाभारतके समय थी। भारती श्रार्य पुरुषोंको पोशाकमें सिर्फ दो वल थे—एक पहननेके लिये, दूसरा श्रोढ़नेके लिये। नाम इनका श्रन्तरीय श्रोर उत्तरीय था। इसके सिवा सिर पर उज्जीव (पगड़ी) था। इन तीनोंका उल्लेख एक स्थान पर श्रगले स्रोकमें हैं:—

उष्णीषाणि नियच्छन्तः पुगडरीकः निभैः करैः। श्रन्तरीयोत्तरीयाणि भूषणाः नि च सर्वशः॥ (उ० श्र० १५३—-२०)

स्त्रियोंका पहनावा।

अब देखना चाहिए कि स्त्रियाँ कैसे कपड़े पहनती थीं। प्राचीन कालमें जब हिन्दुस्तानमें सिलाईका हुनर न था तव यह प्रकट ही है कि शाजकल स्त्रियाँ जैसे लहँगे श्रादि वस्त्र पहनती हैं, वैसे उस समय न थे: पुरुषोंकी तरह, पर उनके वस्त्रोंसे लम्बे, स्त्रियोंके दो वस्त्र होते थे। पहननेके वस्त्रको पहनकर कन्धे पर रख लेनेकी रीति रही होगी। श्राज कल दिल्ली, बङ्गाली और मदरासी स्त्रियाँ जिस प्रकार साडी पहनती है, उसी ढङ्गसे प्राचीन समयमें भारती श्राय स्त्रियाँ साड़ी पहनती होंगी। इसके अति रिक्त उत्तरीय स्त्रियोंका दूसरा वस्त्र था। इसको सिरसे ब्रोढ़ लेनेकी रीति थी । संयुक्त प्रान्तमें अवतक स्त्रियोका उत्तरीय (दुपट्टा या चदरा) बना है: परन्तु द्विणकी श्रोर यह नष्ट्रशय ही गया है। इसके बदले, पहननेका वस्त्र ही इतना लम्बा कर दिया गया है कि उसीसे उत्तरीयका काम निकल जाता है श्रीर स्त्रियाँ उसीके छोरसे मस्तक देंक सकती हैं। प्राचीन कालमें स्त्रियाँ जव कहीं बाहर जातीं तव—आजकलकी तरह— उत्तरीयकी आवश्यकता होती थी।

धृतराष्ट्रके अन्तःपुरसे चतसभामें द्रौपदीके पकड़ बुलानेका जो वर्णन है उससे उल्लिखित श्रनुमान सवल होते हैं। उसने बार बार विनती करके कहा-"में एकवस्त्रा हूँ: मुक्ते सभामें मत ले चलो।" स समय वह रजस्वला भी थी। तव यह बात निर्विवाद देख पड़ती है कि वाहर जाते समय ही उत्तरीय लेनेकी चाल धी। यद्यपि वह एकवस्त्रा थी तथापि इसे खींचकर सभामें लाया गया और वहाँ कर्णने वह एक वस्त्र भी खींच लेने-के लिये दुःशासनसे कहाः श्रीर दुःशा-सनने ऐसा करनेकी चेष्टा की। इससे श्रनमान होता है कि पहननेका वस्त्र पेसा पहना जाता था कि खींचकर निकाला जा सके। श्राजकल उत्तरी हिन्द्स्तानमं स्त्रियोंका जैसा लहँगा होता है, वैसान था। यहाँ पर श्रब यह प्रश्न होता है कि भारती श्रार्थ स्त्रियाँ महा भारतके समय चोली (श्राँगिया) पहनती थीं या नहीं: क्योंकि विना सिये चोली वन ही नहीं सकती। हमारा अनुमान है कि महाभारतके समय चोली पहननेकी रीति स्त्रियोंमें न थी। यह रीति, इस समय, सिर्फ मदरासी हित्रयोंमें रह गई है। परन्तु इस अनुमानके भी विरुद्ध कंचुकी शब्द बहुत पुराना माना जा सकता है। तथापि कंचुकी तो राज-दर-बारका एक विशेष श्रधिकारी है श्रीर वह भी प्राचीन कालमें नहीं देख पड़ता। वह एक कंचुक अर्थात् सिला हुआ कोट (या अङ्गा) पहने रहता था, इसी कारण उसकी संज्ञा कंचुकी हो गई थी, श्रीर यह कंचुकी भी पारसीक बादशाहोंके रवाजके अनुकरणसे आया हुआ जान

पड़ता है। सारी वातों पर विचार करते हुए हमारा यह मत है कि महाभारतके समय भारती श्रार्य स्त्रियाँ चोली न पहनती थीं।

होमरने प्राचीन कालके यूनानी स्त्री-पुरुषोंकी जिस पोशाकका वर्णन किया है, वह अनेक श्रंशोंमें उल्लिखित भारती श्रायोंकी पोशाकके सामान ही है। होमर-वर्णित स्त्रियोंकी पोशाक है-"सिरसे श्रोढ़ा हुआ बुक़ी और कमरके आस पास लपेटा हुआ एक वस्त्र । यह कपड़ा हिन्दुस्तानी साड़ीकी तरह एक लम्बासा, घरमें बुना हुआ ऊनी वस्त्र था और वह न तो कहीं काटा जाता था श्रोर न सिया जाता था। यह कपडा कमरके श्रास-पास कमरपट्टेसे कसा रहता था श्रीर इस वस्त्रको कन्धे पर एक गाँठसे स्थिर कर दिया जाता था। दोनों हाथ श्रीर भूजाएँ बाहर निकली रहती थीं । पुरुषोंकी पोशाकमें भी दो ही वस्त्र थे। हाँ, उनकी कमरके आसपास पट्टा न था, किंतु रोमन लोगोंकी तरह शरीर पर पड़ा हुआ पह्नेदार लम्बा टोगा था।" इस वर्णनसे ज्ञात होता है कि प्राचीन श्रार्य स्त्री-पुरुषोंकी पोशाक बहुत कुछ एकसी ही थी। स्त्रियोंका वुर्का मानों हमारे यहाँका उत्तरीय है। इस उत्तरीय-से स्त्रियाँ श्रपना सिर, पीठ, भुजाएँ श्रथवा एड़ीतक सारा शरीर ढाँके रहती थीं। शोक करते समय अथवा कामके समय यूनानी स्त्रियाँ, होमरकृत वर्णनके श्रवसार, श्रपना उत्तरीय श्रलग रख देती थीं। इसी तरह रामायणमें वर्णन है कि सीताने भी श्रपना उत्तरीय सुग्रीव श्रादि वानरोंके बीच डाल दिया था। तात्पर्य यह कि भारती श्रायों श्रोर यूनानियोंमें भी स्त्रियोंका उत्तरीय जब चाहे तब उतारने श्रीर श्रोट्ने लायक था। इसके सिवा यह बात भी दोनों देशोंकी स्त्रियोंके लिए ठीक होती है कि दोनोंके ही वर्णनमें कञ्चुक या चोलीका ज़िक नहीं। होमरने जो वर्णन किया है श्रीर कारीगरोंने प्राचीन यूनानी स्त्रियोंकी जो पुतलियाँ वनाई हैं, उनसे ऐसा ही श्रनुमान होता है।

श्रव एक महत्त्वका प्रश्न यह है कि
श्राजकल दिन्ण देशकी स्त्रियाँ जिस तरह
लाँग (काँछ) लगाती हैं, उस तरह प्राचीन
कालमें साड़ी एहनी जाती थी या नहीं।
द्रीपदीके वस्त्र-हरणके समय यदि इस
तरहकी लाँग होती तो वह किसी
प्रकारसे साड़ी खिँच जानेकी शक्का न
होने देती। इस श्रनुमानसे जान पड़ता
है कि काँछ लगानेकी रीति न रही होगी।
काँछकी कल्पना "स्त्रियोंका विवाह मौजीवन्धनकी जगह है"—इसीसे निकली है।
दिन्तिणमें विवाहित स्त्रियाँ ही काँछ लगाती
हैं। वहाँ काँरियोंमें काँछ न लगानेकी
रीति श्रव भी देखी जाती है।

गरीव श्रीर काम करनेवाली स्त्रियोंमें उत्तरीय धारण करनेकी रीति महाभारतके समय न थी। द्रौपदीने जिस समय सैरन्ध्रीके वेशमें विराट नगरीमें जाकर रानी सुदेप्णाकी नौकरी कर ली. उस समय वह रानीके श्रागे एक-वस्त्रा खडी रही। 'वासश्च परिधायैकं कृष्णा सुम-लिनं महत्। काम करनेका पेशा होनेके कारण मैला-कुचैला एक ही लम्बासा कपड़ा काम करनेवाली स्त्रियाँ पहनती थीं। मासिक-धर्मकी श्रवस्थामें श्रथवा घर-का कामकाज करते समय श्रन्य स्त्रियाँ भी साधारण तौर पर उत्तरीय न लेती थीं। बाहर जाते समय उत्तरीय वस्त्र सिरसे श्रोढ़ लिया जाता था। दाचिणात्य स्त्रियाँ घरसे बाहर निकलते समय जो सिरको ज़रासा लुगड़ेसे ढँक लेती हैं, वह भी उत्तरीयकी अवशिष्ट प्रथा ही जान

पडती है। (संयुक्त-प्रान्त इत्यादिकी श्रोर तो सिर सदा ही ढँका रहता है।) यह उत्तरीय बहुधा रङ्गीन होता था श्रीर उस पर तरह तरहकी आकृतियाँ कड़ी रहनेसे कीमती होता था। विधवात्रोंके लिये सिर्फ सादा सफ़ेद उत्तरीय धारण करने. का नियम था। धृतराष्ट्रसे जब उसकी विश्रवा वहुएँ वनमें मिलने गई तो उनका वर्णन श्रीर स्त्रियोंसे भिन्न "श्रक्री-त्तरीया नरराजपत्नयः" शब्दों द्वारा किया गया है। दुर्योधनकी विधवा भागीएँ सफेद उत्तरीय श्रोढ़े हुए थीं; इससे श्रन मान होता है कि श्रन्य स्त्रियोंके उत्तरीय रङ्गीन रहे होंगे। इस सम्बन्धमें प्राचीन श्रीर वर्तमान पद्धतिमें बहुत कुछ फर्क पड गया है। महाभारतकालीन नियम यह देख पडता है कि विधवाश्रोंका वस्न सफ़ेंद् रङ्गका होना चाहिए श्रीर सौभाग-वतियोंको रङ्गीन वस्त्र पहनना चाहिए। इस समय कुछ प्रान्तोंमें विधवा स्त्रियोंके वस्त्रका विशेष रङ्ग लाल देख पडता है। यह रङ्ग बहुत करके संन्यासिनियोंके रक-पटका अनुकरण होगा। गुजरातियोंमें विधवाश्रोंके वस्त्रको रङ्गत काली होती है। यह वस्त्र वहुत ही सादा श्रीर मटियल काले रङ्गसे रँगा होता है। फिर भी निरा सफ़ेद कपड़ा (द्तिणमें) बहुधा व्यवहत नहीं होता। आजकल जो यह नियम है कि स्त्रियोंका वस्त्र किनारेदार होना चाहिए, सो यही बात प्राचीन समयमे भी रही होगी। कमसे कम इन वस्त्री पर तरह तरहके चित्र कढे होते थे। कालिदासकी उक्ति 'वधू दुकूलं कलहंस-लच्यम्' की यहाँ याद श्राती है।

स्त्रियोंकी केश-रचना।

स्त्रियोंके मस्तकके लिये किसी तरहका भिन्न श्राच्छादन न था जैसा कि श्रुँगरेज़-रमिणयोंका है। हाँ, स्त्रियोंके केश खुले हुए इधर उधर न पड़े रहते थे। वे या तो साड़ीके छोर या उत्तरीयके भीतर रहते थे। पारसी ललनाश्रोंकी तरह मस्तकके बाल सदा कपड़ेसे वँधे न रहते थे। तथापि समस्त लोगोंकी तरह यह नियम भारती आयोंमें भी था कि स्त्रियोंके सिरके खुले वालों पर समाज-में सवकी नज़र न पड़े; इस कारण मस्तकको वस्त्रके छोर या उत्तरीयसे इँकनेकी रीति भारती आयोंमें थी। स्त्रियों-के केशोंकी रचनाका नाम सीमन्त था। सीमन्त यानी केशोंकी माँग। सौभाग्य-वती स्त्रियाँ ही माँग निकालती थीं: विधवा स्त्रियाँ ऐसा न करती थीं। श्रनेक स्थानों पर इस तरहका वर्णन है। श्राश्रमवासी पर्वमें दुर्योधनकी विधवा स्त्रियोंका जो "एतास्त सीमान्तशिरो-रुहा याः" वर्णन है उसे टीकाकारने भी गलत कहा है: श्रीर यह कहा है कि इसके बदले 'एतास्त्वसीमन्तशिरोरुहा याः पाठ होना चाहिए। महाभारतके समय विधवाश्रोंको माँग काढनेका श्रधि-कार न था। कई लड़ाइयोंके समयका यह वर्णन मिलता है।

संहारे सर्वतो जाते पृथिव्यां शोकसम्भवे। वहीनामुत्तमस्त्रीणां सीमन्तोद्धरणे तथा॥ (शल्य पर्व २१)

"जहाँ पर भयङ्कर संहार हुआ वहीं अनेक उत्तम स्त्रियोंका सीमन्तोद्धरण हो गया।" इस वर्णनसे विधवात्रोंका मुख्य लवण सीमन्त या माँगका न होना देख पड़ता है। पानीपतकी लड़ाईके वर्णनमें लिखा है कि एक लाख चूड़ियाँ फूट गई, अर्थात आजकल विधवा होनेका मुख्य लवण चूड़ी फोड़ना समक्षा जाता है। इसी तरह महाभारतके समय विधवात्रोंकी मुख्य पहचान थी—सीमन्तका न होना।

इस लच्चासे यह नहीं माना जा सकता कि प्राचीन कालमें विधवात्रोंका सिर मुँड़ा दिया जाता था। यहाँ पर तो सिर्फ़ सीमन्तका उद्धरण विविच्चित है। सिर मुँड़ानेका अर्थ यहाँ विवित्तत माननेके लिए स्थान नहीं है। धृतराष्ट्रकी विधवा बहुश्रोंका जो वर्णन है उसमें उनके केश मौजूद हैं। इससे, कमसे कम चत्रिय विधवार्थीके तो सिर न मुँडाये जाते थे। ऐसा श्रनुमान होता है कि सिर मुँडानेकी चाल, संन्यासिनियोंके अनु-करणसे—उनके लॉल कपडेकी तरह— पड़ी होगी। श्रस्तु, विधवाश्रोंका सीमान्त न था-अर्थात उनके केश, विना कड्डी किये, वैसे ही बाँध लेनेकी रीति रही होगी। महाभारतके समय सौभाग्य-वती स्त्रियोंके वालोंको भली भाँति कङ्गी-से भाडकर, बीचमें माँगके ज़रिए दो भाग करके, जुडा वाँधनेकी रीति थी। वेणी या तो एक होती थी या तीन। रामा-यणमें सीताका वर्णन एक-वेणीधरा किया गया है। अर्थात् जिसका पति दूर हो उसके केशोंकी इस ढङ्गकी एक वेणीका वर्णन किया जाता था। श्रीर श्रीर स्त्रियों-की तीन वेणियाँ होतीं जो कि पीठ पर पड़ी रहती होंगी । मारवाड़ियोंमें यह चाल अवतक देख पड़ती है। जान पड़ता है कि गरीव मज़दूर स्त्रियोंमें वेशी बाँधने-की रीति प्राचीन समयमें न होगी। द्रौपदीने जिस समय सैरन्ध्रीका वेष धारण किया, उस समय केशोंको सिर्फ़ इकट्ठा करके एक श्रोर गाँठ लगाकर दाहिने श्रोर उसके छिपा लेनेका वर्णन है। ततः केशान्समुत्तिप्य वेह्नितायानि-

होता है कि उन केशों पर उसने रूमाल या कपड़ेका टुकड़ा लपेटकर बालोंको छिपा लिया । श्रपने सुन्दर केशोंको छिपानेके लिए उसने यह युक्ति की होगी। साधारण रीति पर स्त्रियोंके केश पीठ पर लटकते होंगे । सोभाग्यवती स्त्रियोंकी केश-रचनाके सम्बन्धमें यही मालूम होता है। इस सीमन्त या माँगके बीच केशर श्रथवा कुङ्कम भरनेकी चाल थी। इसके सिवा यद्यपि स्त्रियोंके ललाट पर कुङ्कम लगानेकी रीतिका वर्णन अथवा उल्लेख न हो तो भी महाभारतके समय सौभाग्य-वती स्त्रियोंमें कुङ्कम लगानेकी चाल श्रवश्य रही होगी। उँद्योग पर्वमें वर्णन है कि पागडव और श्रीकृष्णके भाषणके समय द्रौपदीने श्रपने भौरारे काले, सुवासित केश हाथमें लेकर श्रीकृष्णको दिखलाये। इससे प्रश्न होता कि इन बालोंकी वेणी बाँधी गई थी या नहीं: परन्तु बहुत करके उसके केश खुले हुए न होंगे । 'केशपच्च' शब्द से वँधे हुए केश लिये जा सकते हैं।

पुरुषोंकी पगड़ी।

पुरुषोंके मस्तकके केश शिखाबद्ध होते थे और बाहर आते-जाते समय मस्तक पर पगड़ी पहननेकी रीति देख पड़ती है। भारती आयोंकी पगडी उनका विशेष चिह्न था: श्रीर कल्पना होती है कि एक लम्बा श्रौर कम चौड़ा वस्त्र सिरसे लपेट लिया जाता होगा। यही पगड़ी होगी। युद्धके लिए प्रस्थित भीष्म श्रीर द्रोणका जो वर्णन किया गया है, उसमें सिर पर सफ़ेद पगड़ी पहननेका उल्लेख है। पगड़ी-के लिए उष्णीष शब्द व्यवहत है। उदा-हरणार्थ यह वर्णन देखिए—"द्रोणाचार्य-जी सफ़ेद कवच, वस्त्र ख्रीर शिरोवेष्ट्रण (उण्णीय) । धारंगकर धत्यका टंकार करते थे।"

("उष्णोषे परिगृहीतां,माद्रीपुत्रावुभी तथा। (श्रनु० श्र० १६६-१४)

इसमें भीष्मकी दो पगड़ियोंका उल्लेख है। इससे प्रकट होता है कि सफ़ेट पगड़ी बुड्ढे आदमी ख़ास तौर पर पहनते थे। यही नहीं, बिंक कवचके भी सफेड होनेका वर्णन है । अर्थात् तरुण लोग सफेट्से भिन्न कोई रङ्गीन पोशाक पह-नते थे। यनानियोंका ध्यान भारती आयों के विशेष शिरोभ्षण पगड़ी पर गया था। यह पगड़ी श्रन्य देशवालोंसे निराली होती थी। युनानी अन्थकार अरायनने लिखा है-"हिन्दुस्थानी लोग एक कपडा कमरके आसपास घटनोंके नीचे एँडी तक पहनते हैं श्रीर एक श्रीर कपड़ा लिये रहते हैं, इसीको सिरमें लपेट लेते हैं।" इस वर्णनमें पगड़ी श्रीर उत्तरीय एक ही मालूम पडता है। परन्तु यह कल्पना वहुतं करके गुलत है। कदाचित् गृरीब लोग इस तरह सिरको लपेट लेते होंगे। यह तो श्राजकल भी देखा जाता है कि धोती या दुपट्टा ही सिर पर लपेट लेते हैं। किन्तु साधारण तौर पर इसमें शरीर ख़ुला रहता है। सम्पन्न लोगोंमें पगड़ी श्रीर उत्तरीय श्रलग श्रलग रहे होंगे। एक श्रीर युनानी इतिहास-लेखक हिन्दुस्तानियोंका वर्णन करते हुए लिखता है—"हिन्दुस्तानी लोग एक सुदम वस श्रपने पैरोंतक पहनते हैं श्रीर श्रपने सिर में सूती कपड़ा लपेटते हैं तथा पैरोंमें जूता पहनते हैं।" सिरमें लपेटी हुई पगड़ी बहुत करके सादे आकारकी होगी और उसे हर एक मनुष्य अपने हाथसे यौ ही लपेट लेता होगा। आजकल पगड़ी वाँधना जैसा मुश्किल काम है, वैसा उस ज़मानेमें न होगा। मामूली रीति श्राज कल भी यही है कि गरीव लोग अपने ही हाथसे या तो पगड़ी लपेट लेते हैं वा

माफ़ा याँघ लेते हैं। हाँ, राजाश्रोंके मस्तक वर पगड़ी या साफ़ न थे। उनके मस्तक पर सदैव मुकुटका होना साहजिक है। जिस समय भीम और दुर्योधनका गदा-युद्ध हुआ, उस समय उन दोनोंके मस्तक वर मुकुट होनेका वर्णन है। श्रीर माल्म गड़ता है कि युद्धमें इस मुकुट पर भी प्रहार होते होंगे। दुर्योधन जब नीचे गिर ग्या तब उसका मुकुट हिलातक नहीं, यह श्राश्चर्यकी बात है। बहुत करके मुकुटको खूब जमाकर वैठानेकी कुछ न कुछ व्यवस्था होगी। या तो सिरके नीचे वह पट्टेसे बँधा रहता होगा या श्रीर कोई इलज़ाम होगा। नीचे पड़े हुए दुर्योधनके माथेके मुकुटमें भीमने लात मारी थी। इस वर्णनसे मुकुटके वँधे रहनेका ख़याल होता है। इसी तरह अर्जुन और कर्णके युद्ध-वर्णनमें भी लिखा है कि श्रर्जुनके माथेका मुकुट जब नीचे गिर पड़ा, तब उसने 'श्रपने सफ़द कपड़ेको लपेटकर केशोंको छिपा लिया। (कर्ण० अ० ६०) रससे महाभारतके समयका यह रवाज रेख पड़ता है कि प्रत्येक मनुष्यके सिरमें लपेटा हुआ वस्त्र—पगडी या साफा— अवश्य रहता होगा।

स्ती, रेशभी और ऊनी कपड़े।

साधारण रीतिसे श्रोढ़ने, पहनने श्रीर सिरमें लपेटनेके लिए ये कपड़े स्ती होंगे। उस समय हिन्दुस्तानमें कपासकी फसल होती थी श्रीर मिश्र श्रथवा पर्शिया रेशमें उसकी फसल न होती थी। यह बात खानान्तरमें लिखी जायगी। श्रथीत यूनानियोंको यह पोशाक देखकर बड़ा श्रवरज हुआ। ये कपड़े होते भी खूब महीन थे। परन्त धनिक लोग श्रीर खासकर सियाँ रेशमी कपड़े पहनती थीं। महाभारतमें सियोंका वर्णन पीतका शेंग-

वासिनी वार वार श्राता है। श्रीकृष्णके वर्णनमें भी पीताम्बर यानी रेशमी वस्त्र पहने रहनेका वर्णन कहीं कहीं मिलता है। जिस समय श्रर्जुन पहलेपहल सुभद्राको इन्द्रमध्यमें ले श्राये, उस समय उसे लाल रेशमी कपड़ा पहनाया गया था श्रीर इस पोशाकमें वह गोपकन्यासी जँचती थी।

सुभद्रां त्वरयामास रक्तकौशेयवासि-नीम्। पार्थः प्रस्थापयामास कृत्वागोपा-लिको वपुः॥

(आ० अ० २२१-१६)

इससे देख पडता है कि गोपोंके वस्त्र श्रीर लोगोंसे कुछ जुदा रहे होंगे श्रीर उनकी स्त्रियोंकी साडी पहननेकी रीति भी कुछ श्रीर ही तरहकी होगी। महाभारतसे जान पडता है कि लोग ऊनी कपडे भी पहनते थे। उत्तरमें पञ्जाव श्रीर काश्मीर-के उराढे प्रदेशमें श्रोढ़ने, पहनने या सिरसे लपेटनेके लिये ऊनी कपडे यदि व्यवहार-में लाये जाते थे तो इसमें श्राश्चर्य ही क्या है। उस समय भी सूद्म कंवल-वस्त्रोंके लिए पञ्जाब और काश्मीर प्रसिद्ध थे। यह निर्विवाद है कि सूती कपड़े इनसे भी महीन होते थे। "सानूनं बृहती गौरी सूच्मकंबलवासिनी" (क० श्र० ४४ श्लो० १६) इस वाकासे स्पष्ट देख पड़ता है कि पञ्जाबमें महीन ऊनी कपड़े पहने जाते थे। इस प्रकार भिन्न भिन्न प्रान्तोंकी श्राबहवा-के श्रनुसार हिन्दुस्थानमें सूती श्रीर ऊनी कपड़े पहने जाते थे। रेशमी वस्नोंका व्यवहार तो सभी स्थानोंमें रहा होगा।

वल्कल।

इसके सिवा वस्नोंके और भी कुछ भेद थे। ये वस्त्र वल्कल और अजिन थे। इनको वैस्नानस, योगी अथवा अरएय-में रहनेवाले मुनि और उनकी पित्रवाँ पहनती थीं। जब राम श्रौर सीता वन-वासके लिये तैयार हुए, तब उनको पह-ननेके लिये, कुश नामक घासके वने हुए वहकल दिये गये। यह वर्णन रामायणमें है। सीता कुश-चीर पहनना न जानती थी। जब वह इस कामकी उलक्षनमें पड़ी, तब रामचन्द्रने उसके कीशेय वस्त्रके ऊपरसे ही गलेमें कुश-चीर बाँध दिया। यह मनोवेधक वर्णन रामायणमें है। महा-भारतमें जब पाएडव वनवासके लिये निकले तब उनके श्रजिनोंके उत्तरीय धारण करनेका वर्णन है।

ततः परं जिताः पार्था वनवासाय दीचिताः। श्रजिनान्युत्तरीयाणि जगृहुश्च यथाक्रमम्॥

यहाँ पर पहननेके वस्त्र बदलनेका वर्णन नहीं है। श्रजिन वहुत करके मृगचर्म-से ही बनाये जाते होंगे। द्रौपदीका यस्त्र श्रच्छा ही था। उसने और कोई भिन्न वस्त्र नहीं पहना। मुनियोंकी स्त्रियाँ श्रोर मुनि भी कुश-चीर या वल्कल पहना करते थे। इसका वर्णन सैंकडों स्थानी पर है। यह बतलाना कठिन है कि बलकल बनाये किस चीजसे जाते थे। रामायणसे तो यही मालूम होता है कि वे कुश-तृणोंसे बनाये जाते थे। किन्तु श्रव यह प्रश्न सहज ही होता है कि घासके वस्त्र कैसे होंगे। पर इसमें सन्देह नहीं कि कुश-तृणोंके वस्त्र बनाये जाते थे। धृतराष्ट्र जब वानप्रस्थ होकर वनवासके लिए निकले तव वे श्रजिन श्रोर वल्कल वस्त्र धारण करके गये थे।

श्रिव्रहोत्रं पुरस्कृत्य वल्कलाजिनसंवृतः। वधूजनवृतो राजा निर्ययो भवनात्ततः॥ (श्राश्रम० श्र० २५)

इस वर्णनमें श्रजित श्रीर वल्कल दोनोंका उल्लेख हैं। जान पड़ता है कि बल्कल पहनने श्रीर श्रजिन श्रोढ़नेके काम श्राता था। पूर्व समयमें केवल कुछ ऋषि, वानप्रस्थ श्रीर वैसानस ही श्रजिन को श्रोढ़ते थे, बिंक ब्रह्मचारी भी उसे ही श्रोढ़ते होंगे। क्योंकि श्रभीतक यहा पवीत-संस्कारमें लड़केको अजिनके बदले मगचर्मका एक छोटासा दुकड़ा जनेउके साथ पहनना पड़ता है। श्रजिन मृगचर्मके होते हैं श्रीर हो सकते हैं। परन्तु यह नहीं कह सकते कि चल्कल किस चीजुसे तैयार किये जाते थे। रामायणमें कुश-चीरका वर्णन है। किन्तु कुश-तृणका धोतीकी तरह वस्त्र क्योंकर तैयार किया जा सकेगा ? इस दिकतके कारण कुछ लोगोंने कहा है कि हिमालयमें उत्पन्न होनेवाले इक प्रकारके पेड़की छालसे वल्कल वनाये जाते हैं। इस छालका चौडासा पट्टा निकाला जाता था और उसमें जोड़ भी लग सकता था । किल छालके वस्त्रका उल्लेख न तो रामायणमें है श्रोर न महाभारतमें। फिर भी महा-भारतमें श्रोर संस्कृतके सेकड़ों प्राचीन वल्कलोका उल्लेख बराबर मिलता है श्रीर इस प्रकारके वस्त्रीका उपयोग प्राचीन कालमें निःसन्देह होता था। श्राजकल तो कहीं वल्कलीका उपयोग होता नहीं देखा जाता श्रीर न ऐसे वस्त्रोंको किसीने देखा ही है। इतन होने पर भी श्रन्य प्रमाणोंसे यह निश्चित है कि प्राचीन कालमें चल्कलोंका उपयोग होता था श्रीर यह भी निश्चित है कि वे कुश-तृणोंसे ही बनाये जाते थे। श्राध युनानी इतिहास-लेखक हिरोडोटसन लिखा है कि—"वनमें रहनेवाले हिन्डें स्थानी लोग एक प्रकारकी घास (जैसे मूँज) से तैयार किये हुए वस्त्र पहनते है। इस घासको नदीसे काट लाने पर क्टा जाता है और तंब दरीकी तरह वह बु^{ती} जाती है। इस तरह मोटी दरीकी तरह बनाय हुए कपड़ेको वे बएडी (क्रासैट)

की तरह पहनते हैं।" इस वर्णनसे प्रकट है कि ये वस्त्र निरी धोतियोंकी तरह न होते थे; तथापि यह निःसन्देह हैं कि वे वे शरीरमें चारों थ्रोर लपेटे जा सकते थे। इसी कारण वनमें रहनेवाले मुनि श्रौर उनकी पिलयाँ भी इन वस्त्रोंका उपयोग करती थीं। यह ठीक है कि उनका उप-योग समाजमें जाने लायक न था श्रौर न उनका उपयोग शोभाके लिए होता था।

शान्ति पर्वके २==चं श्रध्यायमं भिन्न भिन्न वस्त्रोंके नाम एक श्रोकमं श्राये हैं। वह श्रोक यह है—

ह्योमं च कुशचीरं च कोशेयं वल्कलानि च। ब्राविकं चर्म च समं यस्य स्यान्मुक्त एव सः॥

इनमें चौम, कौशेय और श्राविक
गृहस्थोंके वस्त्र हैं श्रोर कुशचीर, वल्कल
तथा चर्म वानप्रस्थों या तपस्वियोंके हैं।
ग्रीकाकारने चौमका अर्थ श्रतसी स्त्रमय
किया है। परन्तु चौम तो कपासका
महीन वस्त्र देख पड़ता है। कौशेय =
रेशमी श्रोर श्राविक = ऊनी प्रसिद्ध है।
कुश-चीर कुश-तृणका होता है, पर वल्कल
काहेका है? चर्म केवल हिरन श्रादिका
चमड़ा है। ऊपरवाले श्रोकसे सन्देह
होता है कि कुश-चीरका उल्लेख रामायणकी तरह महाभारतमें भी है। श्रोर
बल्कल कदाचित् भूर्जकी हालसे भी
बनाये जाते हों।

पादत्राण।

हिन्दुस्थानी लोग बहुत करके यूनानियांकी तरह वैसा जूता पहनते थे जैसा
दिल्ण श्रोर मद्रास श्रादिमें इस समय
भी पहना जाता है। इसमें सिर्फ़ तला
ही तला है, ऊपर श्रॅंग्ठा श्रादि फँसानेके
लिए कुछ फन्देसे हैं श्रीर वहाँ इसका
नाम 'वहाणा' है। वे लकड़ीके भी होते
थे। रामने भरतको जो पाढुकाएँ (खड़ाऊँ)

दी थीं वे कुश-तृगाकी थीं। इससे जान पड़ता है कि वनवासी मुनियोंकी प्रायः सभी चीज़ें बहुत करके कुश-तृणकी होती थीं। श्रासन, वस्त्र श्रौर खड़ाऊँ श्रादि कुश-तृण्की बन सकती हैं। ये सारी वस्तुएँ सहज ही श्रौर विना खर्चके तैयार हो जाती हैं। श्ररायन नामक यूनानी इतिहासकारने 'वाहरों' (जूते) का वर्णन खुब किया है। "हिन्दु-स्थानी लोग सफ़ोद चमड़ेके बने हुए वाहरों (जूते) पहनते हैं। उन पर तरह तरहका काम किया होता है और उनके तले खूब मोटे होते हैं।" अब यह सम-भनेके लिए कोई उपाय नहीं है कि इन जुताका आकार या वनावट कैसी होती थी । बहुत करके पैर ऊपरसे खुला रहता होगा और पाचीन युनानी तथा रोमन लोग जिस तरहका जूता पहनते थे (यह पुतलियोंमें देखा जाता है) उसी तरहका यहाँ भी रहा होगा।

पुरुषकी चोटी।

श्रव यह देखना है कि जनतामें सिर पर वाल, श्रोर डाढ़ी-मूँछ, रखनेकी कैसी श्रोर क्या परिपाटी थी । ब्राह्मण लोग बहुत करके डाढ़ी-मूँछ रखकर मुँड़ा डालते होंगे श्रोर सिरके भी वाल साफ़ करा-कर सिर्फ़ थोड़ीसी शिखा रखते होंगे। इस सम्बन्धमें साफ़ साफ़ वर्णन ध्यानमें नहीं श्राते । ऋषियोंके सम्बन्धमें सदा उनके मस्तक पर जटा होनेका वर्णन पाया जाता है। किन्तु डाढ़ीके सम्बन्धमें कुछ पता नहीं लगता। परन्तु जब कि ये ऋषि श्रथवा तपश्चर्या करनेवाले लोग सिरके बाल न मुँड़वाते थे, तब वे डाढ़ी-मूँछ भी रखते ही होंगे। किसी तरह डाढ़ी-मूँछ बनानेके लिए नाईका उनसे

^{*} जोरपाई।

स्वर्शतक न होता होगा। महाभारतमें नापितोंका उल्लेख है । नख-निकृत्तन अथवा नहरनीका उल्लेख उपनिषदोंमें भी मिलता है। तब यह निर्विचाद है कि बाल बनानेका पेशा करनेवाले नाई लोग प्राचीन कालमें भी थे। नापितका उल्लेख कर्ण-शल्यके भाषणमें है । श्रुनुमानसे जान पड़ता है कि राजा लोग सिरके बाल न मुँड़ाते थे। सिरके बाल न बनवानेकी रीति चत्रियोंमें श्रब भी देखी जाती है। कारण यह बतलाया जाता है कि सिरके वाल बनवाते समय राजाकी चोटी नाईके हाथमें आ जाती है। यह कारण हो चाहे न हो: पर राजाश्रोंमें सिरके बाल न बनवानेकी रीति अब भी-या कमसे कम इस समय तक थी श्रीर वह प्राचीन समयमें भी रही होगी: क्योंकि रामचन्द्रने वनवासको जाते समय गङ्गाके तट पर अपने और लदमणके केशोंको जटा चटपट, सिर्फ वरगदका द्ध लगाकर, बना ली। यदि मस्तक पर बाल खब लम्बे लम्बे बढ़े हुए न होते तो त्रस्त उसी समय जटाएँ कैसे वन सकती थी। किन्तु राजाश्रोंके डाढ़ी रखनेके सम्बन्धमें सन्देह ही है। शिवाजोकी डाढ़ी तो प्रसिद्ध ही है। मालूम होता है कि मस्तकके बालोंकी भाँति बहुत करके भारती आर्य चित्रय डाढ़ी भी रखते होंगे। मुँडानेकी रीति तो संन्या-सियोंकी थी। सारी खोपडी श्रौर डाढ़ी-मूँछ घुटानेका वत संन्यासियोंको पालना पड़ता था। किन्तु मालूम नहीं, वे ऐसा फिस लिए करते थे। संन्या-सियोंका यही लच्चण बौद्ध संन्यासियों या भिच्नु श्रोंने भी श्रङ्गीकार कर लिया श्रोर जैन संन्यासी लोग सारा सिर मुँड़ाते थे: श्रौर प्राचीन समयके ऋषि तथा ब्राह्मण कोपड़ी श्रीर डाढ़ी-मूँछके सभी

रखे रहते थे। गृहस्थाश्रमी लोग डाढी मुँडाकर शिखा रखते थे। चत्रिय लोग मस्तक श्रीर डाढ़ी-मूँछके बाल रखते थे। निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वैश्यों और श्रद्रोंमें कौन रीति थी। सुन्दोपसुन्द राज्ञसोंके विषयमें वर्णन है-"ततस्तु तौ जटा भित्वा मौलिने संवभवतः" (श्रा० श्र० २०६; २६) इसमे प्रतीत होता है कि तप करते समय जराएँ बढ़ा ली जाती थीं और तप पूर्ण हो चुकने पर गृह्थाश्रममें सिर पर चोटी रखनेका साधारण रीतिके सब वर्णी रवाज था। इस पूरे वर्णनको कल सहारा यनानी प्रनथकारोंके वर्णनसे भी मिलता है। महासारतके वर्णन उपन्या-सोंकी भाँति विस्तृत श्रीर बारीकीसे नहीं लिखे गये हैं, श्रतएव इस सम्बन्धमें निश्चयात्मक पूर्ण तथ्य वतलाना कठिन है सही: फिर भी समकालीन युनानी प्रनथकारोंके लेखोंसे बहुत कुड़ खुलासा हो जाता है। यूनानी इतिहास-कार अरायन स्पष्ट कहता है कि हिन्दु स्तानियोंके डाढ़ी होती है और उसे वे रँगते भी हैं। वह कहता है- "कुख लोग डाढ़ीको सफ़ेद रँगते हैं, इससे वे सफ़ेद ही सफ़ेद दिखाई देते हैं। अथीत पैरोंसे लेकर सिरतक विलक्त सफ़ेर (सफ़ेद धोतियाँ पहनने श्रीर श्रोढ़नेकी रीतिका वर्णन हुआ ही है और सफ़र पगड़ीका उल्लेख भी हो चुका है।) कुछ लोग नीली डाढी रँगते हैं। कुछ लोग लाल डाढ़ी रँगते हैं श्रीर कुछ लोग हरी।" डाढ़ीको तरह तरहके रँगनेकी रीति श्रब भी देखी जाती है। संयुक्त-प्रदेश और पञ्जाबकी स्रोर कुई लोगींकी, खासकर मुसल्मानोंकी, डाडी रँगी हुई होती है। समस्त वर्णनसे यह अनुमान किया जा सकता है कि चित्रियों ब्रोर ब्राह्मणांके भी, गृहस्थाश्रमतकमें, महाभारतके समय डाढ़ी रही होगी। सिरके बालींके सम्यन्धमें श्ररायनने तो उल्लेख नहीं किया, किन्तु कर्टिश्रस रूफस नामक इतिहासकारने किया है। वह लिखता है—"हिन्दुस्तानी लोग श्रपने सिरके बाल कड्वीसे भाड़ते हैं, परन्त इह थोड़ेसे लोग उन्हें मुँड़ाते भी हैं। डाढ़ीके बाल वे कभी नहीं बनवाते। किन्तु मुँह परके वाल बनवाते हैं जिससे बेहरा मुलायम रहता है।" (मेकिडल-फृत सिकन्दरकी चढ़ाईका वर्णन)। इस वर्णन-से देख पडता है कि बहुधा सिरके बाल बनवानेका रवाज न था। श्रीर यह इति-हासकार यद्यपि डाढ़ीके सम्बन्धमें उस रवाजको नहीं बतलाताः तथापि वह भी रहा होगा। जो लोग सिरके वाल बनवाते थे वे डाढी भी न रखते होंगे। मुँछें तो सभी रखते होंगे।

श्राजकल श्रश्निहों जो लोग डाढ़ी-मूंछ साफ़ मुँड़ाये रहते हैं। इसी तरह प्राचीन समयमें यह नियम रहा होगा कि गृह-श्राश्रमीको डाढ़ी-मूँछ बनवा देना चाहिए। सिर पर चोटी, चतुर्थ श्राश्रमको छोड़-कर श्रन्य श्राश्रमवाले सब लोग रखते होंगे। शिखाका उल्लेख महाभारतमें श्रनेक श्रलों पर है। मुसलमानी धर्मने डाढ़ी रखना ज़रूरी माना है श्रीर उसने जो सिर पर चोटीका नाम-निशानतक न रखनेका रवाज चलाया है श्रीर जो श्राज-कल हिन्दूधर्मकी कल्पनाके विलकुल विरुद्ध है, वह हज़रत मुहम्मदका ही खलाया नहीं माल्म होता। द्रोण पर्व (श्र०१२०) में यह श्रीक है—

रस्यूनां स शिरस्त्रागाः शिरोभिर्ल्नमूर्धजेः। रोर्धकुर्चैर्मही कीर्णा विवहेरग्डजैरिव॥

इससे मालूम होता है कि काम्बोज भादि उत्तर श्रोरके स्लेच्छ सिर मुँडाकर डाढ़ी रखते थे। अर्थात् म्लेच्छ्रींकी यह बहुत पुरानी चाल है। महाभारतके समय तित्रय लोग बहुधा सिरके बाल और श्मश्रु रखते थे और अन्य लोग साधारण रीतिसे चोटी रखकर सिरके शेष बाल तथा श्मश्रु मुँड़ा देते थे। सनातनधर्मी और बौद्ध संन्यासी सभी मुँड़ मुँड़ाये सफाचट रहते थे; और तपस्वी वैखानस आदि चनमें रहनेवाले लोग सब बाल बढ़ाये रहते थे। इसीसे यूनानियांका लिखा हुआ विवरण स्तियों और तप् स्वियोंके लिये विशेषतासे उपयुक्त मानना पड़ता है।

पोशाक्की सादगी।

उपर्युक्त वर्णनसे सिद्ध है कि महा-भारतके समय हिन्दुस्तानी आर्य लोग पोशाकके सम्बन्धमें विलकुल सादे थे; श्रीर उनके वर्तमान वंशधर जिस प्रकार-से घरके भीतर या देहातमें कपड़े पहने श्राजकल देखे जाते हैं, वही हाल उस ज्ञमानेमें पोशाकका था। आजकल हिन्दु-स्तानमें उच श्रेणिके लोग जो पोशाक पहनते हैं वह हिन्दुस्तानके बाहरकी है। यह यूनानी, पर्शियन, मुसलमान श्रीर इश्वर श्रॅगरेज़ लोगोंसे ली गई है। खास-कर मुसलमानोंकी श्लीर उससे भी श्रिधिक श्रॅगरेज़ोंकी नकल है। सातवीं शताब्दीमें चीनी यात्री हुएनसांग हिन्दुस्तानमें श्राया था। उस समय यहाँवालोंके जो श्राचार श्रौर रीति-रवाज थे, उनको उसने वड़ी बारीकीसे लिखा है। उसने पोशाक-के सम्बन्धमें लिखा है—"यहाँके लोगोंके, घरमें पहने जाने और समाजमें पहने जानेके कपड़ोंमें सिलाईका काम ज़रा भी नहीं है। रङ्गोंके सम्बन्धमें देखों तो खुब साफ़ सफ़ेद रङ्गका विशेष आदर है; और श्रत्यधिक भिन्न रहींमें रँगना इन लोगों-

को बिलकुल पसन्द नहीं। मई कमरके श्रासपास एक लम्बा वस्त्र लपेटते हैं श्रीर कन्धे पर दूसरा वस्त्र रख-कर दाहिने कन्धेको खुला रखते हैं। स्त्रियाँ एक लम्बी साड़ी इस तरह पह-नती हैं कि कन्धोंसे लेकर पैरोंतक सारा शरीर छिपा रहता है और वह कुशादा लिपटी रहती है। सिरके वालोंकी चोटी बाँधकर बाकी केश लटकाये रहते हैं। कुछ लोग मूँछे या तो विलकुल मुँडवा लेते हैं या भिन्न भिन्न रीतियोंसे रखते हैं।" रस वर्णनसे जान पड़ता है कि ग्रँगरखे, कुरते, सल्के, पेजामे श्रादि कपड़े मुसल-मानी जमानेमें इस देशमें श्राये होंगे। इसमें सन्देह नहीं कि गरीव और श्रमीर, राजा श्रौर रङ्क सभी धोतियोंका उपयोग करते थे: परन्तु उनमें श्रन्तर बढ़िया बारीक सूत-पोत श्रीर मोटे-भोटे कपड़े-का था। अथवा धनवानोंके वस्त्र रेशमी या ऊनी होते थे श्रोर गरीवोंके मामुली सूती। भिन्न भिन्न जातियों और पेशों-वाले लोग तरह तरहसे वही पोशाक पहनते थे, या फिर उनकी कुछ खास पहचान पोशाक या अलङ्कारमें रहती थी। जिस समय विरादके घर पाएडव लोग तरह तरहकी पोशाक पहनकर भिन्न भिन्न कामों पर नौकर हुए, उस समयका प्रत्येकका वर्णन ऐसा है। युधिष्ठिर, ब्राह्मण्की पोशाक श्रर्थात् खूब साफ् सफेद घोती श्रोढ़े श्रीर वगलमें गोटें अगैर पासे लिये हुए दुपद्के आगे आये। भीम रसोइया बनकर, काली रँगी हुई धोती पहने और चमचा, पलटा, तथा बुरी लिये हाज़िर हुआ; द्रौपदी एक ही मैला वस्त्र पहने श्रपने केशोंमें गाँठ लगा-कर श्रीर एक कपड़ेके नीचे दाहिनी श्रीर छिपाये सैरन्ध्रीकी हैसियतसे सुदेष्णाके आगे आई। अर्जुनने बृहस्रलाकी पोशाक

पहनी थी । यानी स्त्रियों के गहने पहन कर उसने कानोंमें कुगडल पहने थे। कलाइयों तथा भुजाश्रीमें शंखके गहने पहने थे श्रीर सिरके वालोंको कन्धे पर खोल दिया था । सहदेवने ग्वालेका वेष धारण किया था । किन्तु उसका विशेष वर्णन नहीं है; श्रोर चावुक-सवार वने हुए नकुलकी पोशाकका भी वर्णन नहीं है। उसके हाथमें सिर्फ़ चावुक होने-का उल्लेख है। विचाहके समय सुभद्राने गोप-कन्याका वेश धारण किया था, यह पहले लिखा जा चुका है। इन भिन्न भिन्न वर्णनोंसे जात होता है कि वस्त्रोंके रह श्रोर पहननेकी श्रलग श्रलग रीतियाँ ही पेशे या जातिकी सूचक रही होंगी। इसके श्रतिरिक्त उनके श्रलङ्कार श्रीर हाथोंके उपकरण भी पेशेके सचक होंगे।

अलङ्कार।

भारती आयौंकी पोशाक जितनी सादी थी, उनके श्रलङ्कार उतने ही भिन्न भिन्न रूपके और कीमती थे। उनकी पोशाककी सादगीका जैसा वर्णन युनानी लोगोंने किया है वैसे ही उनके श्रलद्वारा के शौकका भी वर्णन युनानी इतिहास-कारोंने किया है। महाभारतके समय पुरुष श्रौर स्त्री दोनोंको ही गहने पहनने का वेढ़व शौक था। और उस समय हिन्दुस्तानमें सोने, मोती श्रोर रत्नोंकी जैसी समृद्धि थी, उसका विचार करने पर हिन्दुस्तानियोंके गहने पहननेके शौक पर कुछ आश्चर्य नहीं होता सामान्य श्रेणीके लोग सोने-चाँदीके गहने पहनते थे । यही नहीं, बिंक सुनहले गहनोंसे गाय, हाथी स्रोर घोड़ेको भी सिङ्गारते थे। परन्तु धनवान लोग खास कर राजा और ताल्लुकदार तथा उनकी श्रङ्गनाएँ मोतियों, रत्नों श्रीर हीरे श्रादिके जड़ाऊ गहने पहनती थीं । हिन्दुस्तानमें विपुलतासे उपजनेवाले मोतियोंको मिल्टनने जङ्गली मोती कहा है; श्रीर यूनानी इतिहासकारने कहा है कि हिन्दु स्तानियोंने सारी दुनियाकी श्रमिरुचि विगाड़ दी है—लोगोंको मोतियोंके लिए बेहद कीमत देना सिखलाया है। श्रस्तु; श्रब देखना है कि महाभारतके समय किस किस प्रकारके गहनोंका उपयोग स्त्री-पुरुष करते थे।

राजा लोग, रत्नोंसे जड़े हुए सोने-के मुकुट मस्तक पर धारण करते थे। निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि ये मुकुट किस तरहके होते थे। फिर भी यह अन्दाज है कि वे पाश्चात्य मुकुटोंकी तरह न होंगे, बल्कि वैसे होंगे जैसे कि इस समय भी मुकुटोंके चित्र बनाये जाते हैं। मुकुट मस्तक भरके लिये होगा श्रीर ऊपर गावदुम होता होंगा। कर्ण पर्वमें अर्जुनके किरीटका वर्णन है। उससे प्रकट है कि वह सोनेका, मोतियों श्रीर हीरोंसे जड़ा हुआ, कामदार तथा बहुत बढ़िया बनावटका था। धारण करने-वालेको वह सुखदायी था। इससे जान पड़ता है कि उसके भीतर मुलायम तह होगी। इसके सिवा राजा लोग कानों-में हीरेके क्राडल पहनते थे। इन क्राडली-का श्राकार गोल होगा। गलेमें पहननेके लिए मोतियों और रत्नोंके हार थे। भुजाश्रोंमें पहननेके लिए केयूर या श्रज़द थे। मालूम होता है कि ये श्रङ्गद सारी बाँहको छिपा लेते थे। धनी लोग पहुँचेमें कड़े और पहुँची पहनते थे। स्त्रियोंके गहने भी इसी प्रकारके होते थे, पर होते थे खूब कीमती। स्त्रियोंके लिये किरीट या मुकुट न था। राजाश्रोंकी स्त्रियोंके पुकुट तो नहीं परन्तु माथे पर बाँधनेके लिए एक पष्ट अथवा सोनेकी तक्न जड़ाऊ, पट्टी होती थी। श्रीर इसी कारण राजाकी प्रधान स्त्रीको पटरानी कहनेका
रवाज था। इसके श्रितिरिक्त स्त्रियोंके
मुख्य भूषण कमरमें पहननेके लिये काश्ची
या रशना श्रीर पैरोंके लिये नूपुर थे।
कानोंके लिये कुएडल श्रीर वाहुश्रोंके
लिये केयूर थे ही। यह तो प्रकट है कि
स्त्रियोंके कुएडल श्रीर केयूरोंकी बनावट
पुरुषोंके केयूर-कुएडलोंसे भिन्न होती थी;
किन्तु स्त्रियोंके इन श्राभूषणोंका नाम
केयूर श्रीर कुएडल ही था। रामायणका
यह स्थोक प्रसिद्ध है—

केयूरे नाभिजानामि नाभिजानामि कुरुडले। नृपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादा-भिवन्दनात्॥

कानोंके कुएडलों श्रीर "सीताके वाहुश्रोंके केयूरोंको में नहीं पहचानताः हाँ, पैरोंके नृपुरोंको सली भाँति पह-चानता हूँ। क्योंकि में नित्य चरणोंकी ही वन्दना किया करता था।" इस श्लोकमें यह लदमणकी उक्ति है। इस उदाहरणसे निश्चित है कि कानों श्रौर बाहुश्रोंके स्त्रियोंके त्राभूषणोंका नाम केयूर-कुएडल ही था। स्त्रियोंके गलेमें तरह तरहके हार कड़े रहते थे श्रीर ये हार नाभितक लम्बे होते थे। कमरमें पहननेका पट्टा (कर-धनी) कड़ा नहीं, डोरीकी तरह लचीला होगा। क्योंकि इस रशनाके लिये 'दाम' श्रथवा 'स्त्र' शब्द प्रयुक्त देख पड़ते हैं। युनानियोंकी स्त्रियोंके कमर-पट्टेका जैसा वर्णन है, वैसी श्रथवा वर्तमानकालीन महाराष्ट्रीय महिलाश्रोंके तरह, यह रशना न थी। प्राचीन रशना तो वैसी होगी जैसी कि मारवाड़ी स्त्रियाँ तागड़ी पहनती हैं; ऋथवा वैसी होगी जैसी कि भिन्न भिन्न प्राचीन मन्दिरोंमें पाई जानेवाली खियोंकी मूर्तियोंकी कमर-में देख पड़ती है। रशनादामका उपयोग कपड़े सँभालनेके लिए नहीं, निर्रा शोभा-के लिए होता होगा । श्रव, नहीं कह सकते कि पैरोंके नृपुर किस प्रकारके थे। उनकी बनावट दित्तणी स्त्रियोंके तोड़ोंकी सी तो मानी नहीं जा सकती ; क्योंकि नूपुरोंकी रुमभुम ध्वनिका वर्णन अनेक कान्योंमें है। तब वे लच्छोंकी तरह होंगे। इसके अतिरिक्त पैरोंके ऊपरका भाग बहुत कुछ उनसे छिप जाता होगा। फिर लदमणके लिये उनकी पहचान बनी रहना सम्भव नहीं। उल्लिखित वर्णनके साथ, प्राचीन कालकी युनानी स्त्रियोंके होमर-लिखित-वर्णनमें भी बहुत समता देख पड़ती है। क्योंकि कमरपट्टा, गलेका हार, कान छेदकर उनमें पहने हुए भूषण श्रीर बाहुश्रोंके भूषण बहुत कुछ एकहीसे हैं। हाँ, पैरोंसे नूपुर पहनने-का वर्णन होमरने नहीं किया । पश्चिमी देशोंमें ठएढकी विशेषता होनेके कारण सारे पैर ढूँके रहनेको रीति रही होगी श्रीर इससे पैरोंके भूषणोंका उल्लेख न होगा।

यहाँपर यह भी कह देना चाहिए कि आजकल हिन्दुस्तानमें समस्त सीभा-ग्यवती स्त्रियाँ नाकमें जो भूषण-नथ पहनती हैं, उसका भारत या रामायणमें उल्लेख होनेका स्मरण नहीं । नहीं कह सकते, कदाचित् कहीं उल्लेख हो। किन्तु उल्लेख न होनेसे ही यह नहीं कहा जा सकता कि महाभारतके समय नथ थी ही नहीं; क्योंकि जहाँ उल्लेख होनेकी ही शर्त हों वहाँ उल्लेखके न होनेका महत्त्व है। यह बात हम कई जगह लिख चुके हैं। दूसरे, महाभारतमें, स्त्रियोंके समग्र त्राभूपणों-का वर्णन कहीं नहीं है। उपन्यासोंकी तरह स्त्री-पुरुषोंका रत्ती रत्ती वर्णन महाभारत-में नहीं पाया जाता । अतएव, यह नहीं माना जा सकता कि प्राचीन समयमें नथ नामक आभूषण था ही नहीं।

नथ पहननेकी रीति प्रायः हिन्दुक्रोंमें ही है और यह शब्द भी 'नव-मौक्तिक' से निकला हुआ जान पड़ता है। अर्थात् यह शब्द यहींका है; तब यह भूषण भी भारती आर्योका ही होना चाहिए। यही बात अर्वाचीन समयके अन्य भूषणोंकी भी समभनी चाहिए।

महाभारतमें श्राभूषणोंका जो वर्णन है, उसकी पृष्टिके लिए युनानियोंके लेखांका बहुत कुछ आधार मिलता है। इतिहास-कार करिश्रस रूफसने लिखा है कि "कानों-में रत्नोंके लटकते हुए गहने पहननेकी रीति हिन्दुस्तानियोंमें है; श्रौर उच्च श्रेणी-के अथवा धनवान लोग अपने बाहुओं श्रीर कलाइयोंमें सोनेके कङ्कण पहनते हैं।" इतिहास-कार स्ट्रेवो लिखता है कि "हिन्दुस्तानियोंकी वस्त्र-प्रावरण बातोंमें यद्यपि बहुत ही सादगी है, तथापि उन्हें गहने पहननेका बेढ़ब शौक है। वे सुनहले कलाबत्तके कामके कपड़े श्रीर रलोंके गहने पहनते हैं। ऐसे महीन कपड़े (चिकन) पहनते हैं जिन पर फूल कढ़े होते हैं।"

श्रासन।

श्रव श्रन्तमं यह देखना है कि महा भारतके समय नाना प्रकारके श्रासनोंका कैसा उपयोग होता था। यह तो स्पष्ट बात है कि उस समय श्राजकलकी कुर्सियाँ न थीं। किन्तु प्राचीन कालमें मनुष्य सदा धरती पर न बैठते थे। महा भारतमें श्रासनोंका बहुत कुछ वर्णन है। ये श्रासन (पीठ) चौकोर चौकियोंकी तरह होते थे जिन पर हाथीदाँत और सोनेकी नकाशी की होती थी। राजा और उनकी रानियाँ मञ्जक या पलंग पर बैठती थीं श्रीर ये पर्यञ्क, पीढ़ोंकी श्रपेही लाम्बे होते थे। श्रीकृष्ण जब कौरबांकी

स्मामें गये तब "तत्र जाम्बूनदमयं पर्यङ्क सुपरिष्कृतम् । विविधास्तरणास्तीर्णम-भ्युपाविशद्च्युतः ॥" यह वर्गान है (उद्योग० श्र० १०६)। इन पर्यङ्गी पर गहें पड़ें रहते थे श्रौर उन पर सफ़ेद बाँदिनियाँ बिछी रहती थीं। टिकनेके लिये तिकये भी रहते थे। द्रौपदीके स्वयम्बरके समय भिन्न भिन्न मञ्जको पर राजात्र्रोंके वैठनेका वर्णन है। इन मञ्चकों पर भी बेशकीमती, बड़े बड़े विछीने विछे थे। ग्राजकल इस ढङ्गके पर्यङ्क वैठनेके काममें नहीं स्राते; इस कारण उनकी ठीक ठीक कल्पना भी नहीं की जा सकती। तथापि ब्हाल श्रीर युक्तप्रदेशकी श्रीर बड़े बड़े त्र्तो पर गद्दे विद्याकर वैठनेकी रीति श्रव भी है। इसके सिवा रियासतों में जिस जगह सरकारी गदी होती है, वहाँ इस प्रकारके पर्यङ्क विद्याये जाते हैं। राजाश्रोंके बैठनेके लिये सिंहासन रहने-का भी वर्णन है। यह सिंहासन एक चौकी ही है। परन्तु यह सोने या रत्नोंसे भूषित होता था। चारों पायोंमें सिंहके नकली चेहरे लगे होते थे और उन पर गही होती थी। चीनी यात्री इएनसांगने वर्णन किया है कि-"राजाश्रोंके सिंहासन बहुत ऊँचे, पर तङ्ग होते हैं: श्रीर उनमें छोटे मोतियोंकी भालर लगी होती है। सिहासनके पास, रत्नोंसे भूषित पादपीठ होता है, अर्थात् पैर रखनेके लिए छोटी-सी चौकी होती है।" राजा लोग सोनेकी पालकीमें बैठकर इधर उधर विचरते श्रीर इन पालकियोंको मनुष्य कन्धे पर रखकर ले चलते थे: इसीसे इनको नरवाहन कहा गया है। सप्तर्षियों श्रौर नडुषकी कथामें ऐसा ही नरवाहन है। इससे ज्ञात होता है कि बहुधा राजा लोग ही इस वाहन-से काम लेते थे। इस कारण ये पाल-कियाँ सोनेसे मढ़ी और रक्कोंसे सुशोभित-

की जाती थीं। शेष वाहनोंका विचार श्रन्य स्थानमें किया जायगा।

इस प्रकार महाभारतसे और तत्का-लीन यूनानी लेखकोंके लिखित वर्णनोंसे हमें भारती आयोंके वस्त्रों और आभूषणोंके सम्बन्धमें कुछ कुछ बातें मालूम होती हैं।

(३) रीति-रवाज।

भारती श्रायोंके सम्बन्धमें श्रवतक जो बातें लिखी गई हैं, उनसे मालूम होगा कि भारती-युद्धके समय हिन्दुस्थानमें बाहरसे आये हुए आयोंके साथ यहाँके रहनेवाले नाग श्रादि श्रनार्योका पृरा पूरा मेल न होने पाया था। भारती-समयमें यह मेल हुआ। श्रीर, महाभारतके समय भारती ऋार्यों तथा श्रनायोंका एक समाज वन गया था: तथा भिन्न भिन्न जातियाँ प्रेमसे एक स्थान पर रहने लगी थीं। उनके शादी-ज्याहमें ऋार्य और अनार्य दोनों रीतियोंका मिश्रण हो गया था। इसी प्रमाणसे उनके शील और रीतियोंमें दोनों जातिवालींका मिश्रण होकर महा-भारतके समय दोनों जातियोंका ध्कजीव हो गया था। पाश्चात्य त्रार्य यूनानियोंके साथ जिस समय हिन्दुस्तानमें श्राये, उस समय उन्हें यहाँ किसी रीतिसे भिन्न भाव नहीं देख पड़ा। श्रीर, उन्होंने भारती आर्योंका जो वर्णन किया है, उसमें आर्य-अनार्यका भेद-भाव ज़रा भी नहीं दिख-लाया। महाभारतमें भी आर्य-अनार्यका भेद खासकर जातिका नहीं, भले-बुरेका है। फिर भी ध्यान देनेकी वात यह है कि वह शब्द श्रब भी जातिवाचक था। तथापि लोगोंके शोल श्रीर रीतियोंका विचार करते समय ऐसा भेद करनेकी हमें भाव-श्यकता नहीं।

वेशस्त्रियाँ। पहली बात यह है कि भारती समाज- में स्त्री-पुरुषोंका त्राचरण एक दूसरेके सम्बन्धमें वहुत ही अञ्छा था। स्त्रियोंको पातिव्रत धर्मका उत्तम रीतिसे पालन करनेको आदत पड़ गई थी और पुरुष भी स्त्रियोंके सम्बन्धमें श्रपना वत पूर्ण-तया पालनेके लिए तत्पर और उद्यत रहते थे। स्त्रियाँ श्रथवा पुरुष, इस व्रतका उज्ल-ङ्घन करें तो दोनोंके ही लिए एकसा पातक माना जाता था।यह सारे भारती-समाज-की रीति थी। इसके लिए एक ही अप-वाद यह था कि राजा श्रौर धनी लोगों-की अनेक स्त्रियाँ तो होती ही थीं; परन्तु इनके श्रतिरिक्त, इन लोगोंमें वेशस्त्रियोंको रखनेकी भी रीति थी। इस सम्बन्धमें कहा जा सकेगा कि वेशस्त्रियाँ कुछ वेश्या न थीं. ऐसी रखेली थीं जो कि एक ही पुरुषकी होकर रहतीथीं: श्रोर इस कारण, परिवारमें उनका मान विवाहित स्त्रियोंसे कुछ ही उतरकर था । अज्ञातवाससे प्रकट होने पर युधिष्ठिरने हस्तिनापुरके खंजनोंको, सन्धिकी चर्चा करनेके लिए श्राए हुए सञ्जयके हाथ, भिन्न भिन्न लोगोंके लिए कुशल-प्रश्नके सँदेसे भेजे। उनमें अपने कर्तव्यके अनुसार, अपने बड़े-बूढ़ों श्रौर वन्धुश्रोंकी वेशस्त्रियोंको भी कुशल-मङ्गलका सन्देश भेजकर, उनके सम्बन्धमें, युधिष्टिरने अपना आदर व्यक्त किया है। युधिष्ठिरने उनका बहुत ही मार्मिक वर्णन इन शब्दोंमें किया है:-

श्रलङ्कता वस्त्रवत्यः सुगन्धा श्रवी-भत्साः सुखिता भोगवत्यः। लघु यासां दर्शनं वाक् चलाघ्वी वेशस्त्रियः कुशलं तात पृच्छेः॥ (उद्योग० श्र० ३०)

"श्रलङ्कार पहने, श्रच्छे श्रच्छे वस्त्र पहने श्रौर नाना प्रकारके सुवास लगाये, सुखमें बढ़ी हुई परन्तु मर्यादाशील रहने-वाली, सब प्रकारके उपभोग भोगनेवाली उन वंशस्त्रियोंसे, मेरी श्रोरसे, कुशल

पूछना कि जिनका रूप श्रोर भाषण सुन्दर है।" इस वर्णनसे प्रकट होता है कि वे स्त्रियाँ मर्यादाशील थीं श्रीर युधिष्ठिरके लिये ब्रादरणीय भी थीं। प्राचीन समय में राजात्रोंके दरबारमें, प्रत्येक शुभ श्रव सर पर, वेशस्त्रियोंका गान आदि होता था। इसके लिये राज-द्रवारमें इस दंग-की स्त्रियोंकी ज़रूरत रहती थी। हिन्द स्तानके राजाओंका यह आचरण, जनता के सरल व्यवहारके मुकाबलेमें, यूना नियोंको आश्चर्यकारक जँचा । उन्होंने लिखा है-"राजाओंका ऐश-आराम या वैभव (उनके कहनेके अनुसार) इतना बढ गया है कि पृथ्वी भरमें उसका जोड नहीं। श्रौर यह ऐश-श्राराम बिल-कल खुले-खजाने होता है: क्योंकि राजा जहाँ जाता है वहाँ उसके साथ सोनेकी पालकीमें बैठी हुई वेशस्त्रियोंकी कतारकी कतार रहती है। अन्तर यह होता है कि जलसमें इनकी श्रेणी, रानीके समुदायसे, कुछ हटकर चलती है।" इसमें सन्देह नहीं कि द्रवारमें रहनेवाली वेशस्त्रियोंका राजाश्रोंके वर्ताव पर कुछ न कुछ बुरा परिणाम होना ही चाहिए। च्योंकि दर बारके अनेक शुभ प्रसङ्गों पर उनका दर्शन होना प्रकट ही है। तथापि, यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकेगी कि कुड्म की स्त्रियोंकी प्रभुता सदैव रहती होगी। श्रीर ये वेशस्त्रियाँ केवल दरवारी ठाठक ही काम आती होंगी।

चूत ।

हिन्दुस्तानी च्रियोंका दूसरा दोष था उनका यूतसे प्रेम। प्राचीन कालके जर्मन लोग जिस तरह मद्य पीने और यूत खेलनेमें आसक्त रहा करते थे, उसी तरह भारती आर्य च्रिय यूत खेलनेके बेढब शौकीन थे। उनमें यह शौक रतनी बहा-चढ़ा हुआ था कि यदि कोई चृत क्षेत्रतेके लिये चत्रियोंको बुलावे और वह हकार कर दे तो यह काम चत्रियोंको ग्रुपमानकारक जँचता था। इसी कल्पना-के कारण युधिष्टिरको चूत खेलनेके लिये विवश होना पड़ा; और फिर आगे चल-कर उन्होंने उसमें प्रवीणता प्राप्त करनेका भी यत किया। मद्य और द्युत दोनों व्यसनोंसे बचनेके लिये नारदने युधिष्टिर-को सचेत किया है। श्रीकृष्णने भी युधि-ष्ट्रिको समभाया है कि यूतसे दुहरा श्रनर्थ होता है-एक तो कलह होता है, इसरे मुफ्तमें द्रव्य स्वाहा हो जाता है। भारती युद्धके समय यह दोष अधिकतासे था श्रीर युधिष्ठिरकी तरह बलराम भी बासे ज्रश्रारी थे । महाभारत-कालमें यह व्यसन चित्रयोंमें वच रहा होगा और उसकी दुम तो अवतक देखी जाती है। श्रीर तो श्रीर, प्राचीन कालमें, चत्रियोंकी सङ्गतिसे यत खेलनेवाले बाह्यण भी थे। योंकि वेदमें भी एक दातकारका एक है। श्रौर युधिष्टिर ब्राह्मण होकर ही विराट राजाका युतकार रहा था।

शुद्ध आचरण।

दन दो श्रपवादोंको छोड़कर, सारे भारती श्रार्यसमाजका श्राचरण शुद्ध श्रोर सरल था। यूनानियोंने भी यह बात लिख रखी है। उन्होंने लिखा है कि हिन्दुस्तान-कं लोग समस्त व्यवहारमें श्रत्यन्त सचे श्रीर सत्यवका होते हैं। हुएनसांगने लिखा है कि हिन्दुस्तानी लोगोंका श्राच-रण स्वभावसे ही शुद्ध श्रीर सादा है। इसके लिये उन पर कोई ज़ोर-ज़बर्दस्ती नहीं करता। समग्र हिन्दुस्तानकी सत्य-भियताके सम्बन्धमें यूनानियोंतकने साची लिख रखी है। श्रथांत् महाभारतके समय भी हिन्दुस्तानियोंमें प्राचीन भारती श्रार्यों- की ही तरह सत्यप्रियता स्थिर थी। भारती त्रार्य त्राचरणसे भी साफ थे श्रीर उनका प्रातः स्नान त्रादि त्राचार भी शुद्ध था। रोज़ हाथ-पैर श्रोकर भोजन करनेके लिये जानेकी उनमें रीति थी। भोजनमें वचा हुआ अन्न फिर किसीको परोसनेके काम न त्राता था। रसोईके वर्तन सदा माँज थोकर साफ रखे जाते थे। श्रीर यदि मिट्टीके वर्तन होते तो फेंक दिये जाते थे। नहा चुकने पर कोई किसीको छूता न था: श्रीर पेशाव-पाखानेको जाने पर स्नान करनेकी रोति थी। रोज़ घोया हुआ कपड़ा पहना जाता था " इत्यादि वाते हुएनसांगने लिखी हैं। सारांश, खच्छ रहनेकी भारती आर्थोंकी रीति बहुत प्राचीन कालकी है।

स्पष्टोक्ति।

भारती श्रायोंमें सत्यवादिताकी तरह एक प्रशंसनीय गुण साफ़ बात कह देना भी है। महाभारतके समग्र स्त्री-पुरुष जिस तरह सत्य बोलते हैं, उसी तरह खुलकर स्पष्ट भाषण करनेमें भी वे श्रागा-पीछा नहीं करते। भिन्न भिन्न भाषणोंके श्रवसरों पर यह स्पष्टवादिता देख पड़ती है। सारांश यह कि दूसरेकी व्यर्थ भूठी स्तुति करके, हाँजी हाँजी करनेका दुर्गुण भारती श्रायोंमें न था।

बड़ोंका आद्र।

भारती श्रायों में, समस्त जन-समाजमें, बड़ोंका श्रादर करना महत्त्वका लच्चण था। प्राचीन कालमें यह रीति थी कि रोज़ तड़के उठकर छोटे, बड़ोंको नमस्कार-प्रणाम करते थे। बड़ोंकी श्राद्याको शिरसावन्य करना छोटोंका कर्तव्य था। युधिष्ठिर बड़े भाई थे, इस कारण उनकी श्राह्याका पालन छोटे भाई जिस तरह करते थे, उसका वर्णन सभापवेमें यतके

अवसर पर बहुत ही साफ है। द्रौपदीकी दुर्दशा देखकर भीमसेन इतने श्रिधिक कुद हुए जितने कि युधिष्ठिरके अपने आपको अथवा भाइयोंको दाँव पर लगा- कर चूतमें हार जानेसे भी न हुए थे। भीमसेन इतने नाराज़ हुए कि युधिष्ठिरका हाथ जला डालने पर उताक हो गये। तब अर्जुनने उन्हें यह कहकर शान्त किया कि ये साझात बड़े भाई श्रीर धर्मात्मार्शो- में श्रेष्ठ हैं: इनकी अमर्यादा करना ठीक नहीं (स० अ० ६=)। भीष्मने भी अपने पिता पर भक्ति, जिन्दगी भर काँरे रहने- का प्रण करके, ज्यक्त की। भीष्मकी पित्- भिक्तके विषयमें यहाँ थोड़ासा कुछ श्रीर विवेचन कर देना ठीक होगा।

भीष्मकी पितृभक्ति।

भीष्मके चरित्रमें वह महाप्रतिशा ही बडी उदात्त बात है। यह प्रतिका उन्होंने पिताके सम्बन्धमें की थी। इस प्रतिज्ञासे हमारे श्रागे इस स्थितिका चित्र श्रा जाता है कि महाभारतके समय पिताके लिए पत्र क्या करनेको तैयार हो जाते थे। रामने भी पिताके लिए उनके वतकी श्रीर पूर्व-प्रदत्त वचनकी सत्यता-रत्ताके लिए राज्य त्यागकर वनवास स्वीकार कियाः किन्तु वह चौदह वर्षके ही लिये था। भीष्मने अपने पिताको सुख देनेके लिए, केवटके निकट यह प्रतिका की कि में जिन्दगी भर न तो विवाह करूँगा श्रीर न राज्य करूँगा। "ऐसी प्रतिज्ञा न तो पहले कभी किसीने की है श्रीर न श्रव श्रागे कोई करेगा।" (भ्रा० श्र० १००) सारांश यह कि सत्यवतीकी सन्तानको राज्यके सम्बन्धमें उससे जो आशङ्का हो सकती, उसे जड़ समेत नष्ट कर दिया। इतना ही नहीं, बल्कि अपनी भावी सन्तान-से भी उसकी सन्तानके निइर रहनेके

लिए उन्होंने विवाह न करके, श्राजनम ब्रह्म चर्यका पालन करनेकी भीषम-प्रातिज्ञा की: श्रीर उसे उन्होंने श्रन्ततक निवाहा। भीष्मके इस श्राचरणसे कुछ कल्पना हो सकेगी कि प्राचीन समयमें साधारण रीति पर पुत्रका पिताके प्रति क्या कर्तव्य समभा जाता था। भीष्मका आचरण श्रत्यन्त उदात्त है। उसकी छाया न केवल समस्त महाभारत पर ही, किन्तु हिन्द स्तानके भावी समाज पर भी पड़ी है देख पडती है। भीष्म श्रीर राम श्रादिका श्राचरण श्राज हजारों वर्षसे हिन्द्समाज के हत्परल पर श्रङ्कित है; श्रीर हिन्दुस्तानी पिता-पत्रका सम्बन्ध, हिन्दुस्तानके पति-पत्नीके सम्बन्धकी ही भाँति, उदात्त और पवित्र है। परन्तु इधर कुछ लोगोंकी कुत्सित कल्पनाश्रोंसे भोषाके इस त्यागको गौणता प्राप्त होना चाहती है। वास्तवमें यह बड़ी हानिकारक बात है। यह भी कह सकते हैं कि भीषाके चरित्रको श्रोछा दिखलानेका यह प्रयत पागलोंका सा है। कुछ आद्येपकारियों की यह दलील है कि भीष्मको खरं सन्तान उत्पन्न करके तेजस्वी प्रजा उत्पन्न करनी चाहिए थीं: उन्होंने वुड्ढे शन्तरु को विवाह कर लेने दिया, जिससे हीन सन्तान उपजी श्रीर इस कारण भारती युद्धसे हिन्दुस्तानको अत्यधिक पहुँचाई । परन्तु स्वदेश-प्रेमसे उपजी हुई यह दलील, दूसरी श्रोरसे स्वदेशकी हानि करके, पिता-पुत्रके बीच हमारी उदात्त कल्पनाका नाश कर रही है: यह बात उनके ध्यानमें नहीं श्राती। दलील ग़लत भी है, सही नहीं। क्या यह वात सच है कि भीष्मके तेजस्वी सन्तान ज़रूर ही होती? अभी इस प्रश्न पर अधिक विचार करनेकी नहीं। महाभारतमें ही कहा गया है-

"रणग्रर ग्रीर रण-प्रिय भीष्मको, सन्तान होतेके पहले ही, रणमें ही मृत्यु प्राप्त त हो जाती, इसका क्या भरोसा ?" और तो श्रीर, भीष्मकी सन्तान उत्पन्न होकर श्रल्प श्रवस्थामें ही न मर जाती. इसका भी क्या प्रमाण? होनहारकी वातोंके सम्बन्धमें कोई निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कह सकता। इसके सिवा, और भी एक जवाब है। शन्तनु यद्यपि वृद्ध था, तथापि वह कुछ ऐसा निकम्मा वुड्ढा न था। यह कैसे कहा जा सकता है कि उसकी सन्तान निर्वल होगी ? इसके सिवा, धृतराष्ट्र श्रौर पाराडु कुछ विचित्र-वीर्यके वेटे न थे। वे तो तपोवल-सम्पन्न महर्षि वेद्व्यासकी सन्तान थे श्रीर ज़रा भी निर्वल न थे। पाएडव श्रौर कौरव भी वीर्यवान् थे। उनका नाश तो सिर्फ एक-के हठसे हुआ । दुर्योधन, कैसरकी तरह, तेजसी श्रोर राजनीतिमें खूब निपुण था। किन्तु श्रपार महत्त्वाकांचा ही दोनोंके नाश करनेके लिये कारणीभूत हुई है। मनुष्यमें ऐसे दुर्गु गुका उपजना ईश्वरी इच्छाका एक खेल है। इसमें माता-पिताके श्रपराघों श्रथवा भूलोंका कोई कारण नहीं होता। भीष्मकी प्रतिशाकी सी एक बात भारती चत्रियोंके भावी इतिहासमें हो गई है। उदयपुरके अत्युच चत्रिय घरानेमें लखमराणा नामका एक राणा हो गया है। इसके भीष्मकी तरह तेजस्वी श्रीर पितृभक्त एक पुत्र था। नाम उसका चन्द् था। एक बार इसके लिए एक राजकुमारीका फलदान श्राया। उस समय चन्द शिकारके लिए गया था। त्रियोंकी रीतिके अनुसार कन्या-पद्मका पुरोहित जो नारियल लाया था उसे भूलसे उसने राजाके श्रागे रख दिया। तव, राजाने कहा—"वुड्ढेके श्रागे यह नारियल क्यों रखते हो ?" इस बातसे,

राजपुत्र चन्द्रको उस कुमारीका नारियल श्रहण कर लेना ठीक न जँचा । उसने कहा-जो लडकी पिताके लिए मनो-नीनतसी हो गई, उसे मैं ग्रहण नहीं कर सकता। तब, पुरोहितने कहा कि यदि इसके पेटसे उत्पन्न सन्तानको राज्याधि-कार दिया जाय तो इसी शर्त पर राजाको यह वेटी व्याही जा सकती है। इस पर चन्दने श्रपना श्रीर श्रपनी सन्तानका राज्यका हक छोड़कर अपने पिताके ही साथ उरमक विवाह करा दिया। उस राजकुमारीके जो लड़का पैदा हुन्ना, वही श्रागे उद्यपुरकी राजगद्दीपर बैठा। यही नहीं, किन्तु वह श्रत्यन्त पराक्रमी निकला श्रीर उसका वंश भी श्रवतक मौजूद है। सारांश, लखमराणाके बुढ़ापेमें विवाह कर लेनेसे कुछ भी नकसान नहीं हुआ। चन्दके वंशका नाम श्राजकल चन्दावत है श्रीर उदयपुरके दरवारमें इस घरानेका प्रथम श्रेणीका सम्मान प्राप्त है; पहले जव इन्हें तिलक लगा दिया जाता है, तब पीछेसे महाराणाको। श्रस्तुः चन्दके इस कार्य पर ध्यान देनेसे विदितं होगा कि भीष्मके श्रत्यन्त उदात्त चरित्रका लोगोंके श्राचरण पर कितना विलवण श्रोर उत्तम प्रभाव पड़ता है। न केवल महाभारतके ही समय, किन्तु महाभारतके पश्चात् भी हिन्दू समाजमें पिता-पुत्रका सम्बन्ध श्रत्यन्त उदारतापूर्ण रहा है। पिताकी श्राज्ञाका पालन करना श्रोर उसका परम सम्मान करना भारती लोग उत्तम पुत्र-का लद्मण मानते थे; श्रीर इसी प्रकारका श्राचरण जेठे भाईके साथ छोटे भाई करते थे; श्रीर बड़े भाईको पिताके समान मान-कर उसकी श्राज्ञाके श्रनुसार चलते थे। केवल वयसे वृद्ध श्रीर ज्ञानसे वृद्ध मनु-प्यको उठकर नमस्कार करना छोटोंका कर्तव्य पूर्णतया माना जाता था। विद्वान ब्राह्मणको राजा लोग भी मान देते थे। यह
भी नियम था कि रास्तेमें ब्राह्मण-त्त्रियकी भेंट हो जाय तो ब्राह्मणके लिए त्त्रिय
रास्ता दे दे। महाभारतमें श्रनेक स्थलों पर
मार्मिक उन्नेख हैं कि किसके लिए किसे
रास्ता देना चाहिए—श्रर्थात् रास्तेसे हट
जाना चाहिए। इस प्रकार, महाभारतके
समय, बड़े-वृढ़ोंका श्रादर करनेके सम्यन्यमें समाजका बहुत ही ध्यान था।

भारतीय श्रार्य श्रपने मन्होस्त भावोंको व्यक्त करनेमें कुछ भी श्रागा-धीछान करते थे। मनमें कुछ श्रौर, मुँहमें कुछ श्रौर, यह उनकी स्थितिन थी। मनोभावको व्यक्त करनेकी रीति कई प्रकारकी थीं। श्रौर तद्गुसार भारती लोग श्रपने विचारोंको प्रकट किया करते थे। कोधके श्रावेशमें दाँत पीसने, होंट चवाने या हाथ मलने श्रादिका महाभारतमें वर्णन है। इसी प्रकार श्रानन्दसे एक दूसरेकी हथेली पर हथेली बजाना, सिंहनाद करना या वस्त्र उड़ाना श्रादि वातें महाभारतमें वर्णित हैं।

ततः प्रहसिताः सर्वे तेऽन्योन्यांश्च तलान्ददुः । सिंहनाद्श्चं चक्रुः वासांस्या-दुधुबुश्च ह ॥

(क० प० अ० २३)

दुःखमें रोने या क्रोधमें कुसम खाने आदिका वर्णन महाभारतमें वरावर है। सारांश यह कि आजकलकी परिश्वितमें जो काम कम दर्जेंके लोगोंके माने जाते हैं, वे साहजिक रीतिसे छोटे-बड़े सभी लोगोंके वर्णित हैं। अर्थात् स्वतन्त्र और दढ़ लोगोंके विचार तथा राग-द्वेष जिस प्रकार तीव होते हैं और वे उन्हें स्पष्ट तथा निडर भावसे व्यक्त करते हैं, उसी प्रकार महाभारतके समय भारती लोग भी करते थे।

उद्योगशीलता।

महासारतके समय समूची जनता-का, किसी प्रकारसे, जगत्को निराशा-पूर्णि दृष्टिसे देखनेका स्वभाव न था। श्राजकलके हिन्दुस्तानी लोगोंमें जिस प्रकार निराशवादिताका तत्त्व फैल गया है, उस प्रकारका पुराने लोगोंका हाल न था। महाभारतमें अनेक स्थानों पर यह वाद है कि मनुष्यका दैव वलवत्तर है अथवा कर्तत्वः श्रीर इस वादका निर्णाण सदा कर्तत्व या उद्योगके ही पत्तमें किया हुआ मिलता है। यह प्रतिपादन किया गया है कि दैव पङ्ग है, मनुष्यको अपने उद्योग पर सदा भरोसा रखना चाहिए। महाभारतके पहले पर्वके पहले ऋध्यायके श्रन्तमें महाभारतके सार रूपसे यही उप-देश दिया गया है कि मन्ष्यको धर्म और उसके साथ ही उद्योग पर सदा दृष्टि रखनी चाहिए। 'धर्मे मतिभेवत वः सततोत्थि-तानाम् ।' में सदैव उद्योग करते हुए धर्म पर श्रद्धा रखनेको कहा गया है। इसी प्रकार ध्यान देने योग्य एक वाक्य यह भी है कि महत्त्वाकांचा ही सम्पत्तिकी जड़ है। 'श्रनिर्वेदः थ्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च' (उद्योग अ० ३६)। अनुशासन पर्वके ६ हे श्रध्यायमें भीष्मसे यही सरल प्रश्न किया गया है कि "उद्योग प्रधान है या दैव ?" इस पर भीष्मने उद्योगके पत्तमें निर्णय करते हुए कुछ महत्वकी बात कही हैं। "देवता भी अपने कर्मसे उच स्थितिमें पहुँचे हैं। जी पुरुष यह नहीं जानता कि देना किस प्रकार चाहिए, या भोगना किस प्रकार चाहिए, अथवा उद्योग किस तरह करना चाहिए, श्रीर जो समय पर पराक्रम करना या तपश्चयो करनेकी रीति नहीं जानता, उसे सम्पति कभी न मिलेगी। जो मनुष्य बिना उद्योग किये ही दैवके भरोसे बैठा रहता

है, वह हिजड़े श्रथवा स्त्रीकी भाँति दुखी होता है।" ११ वें श्रध्यायमें एक वहुतही मज़ेदार सम्वाद है। यह सम्वाद द्रव्यकी देवी लदमी श्रीर रुक्मिणीके वीच कराया गया है। रुक्मिणीने भाग्य-देवीसे पूछा है—"तुम कहाँ रहती हो?" देवीने उत्तर दिया—

वसामि नित्यं सुभगं प्रगत्में
दत्ते नरे कर्मणि वर्तमाने।
श्रक्तोधने देवपरे कृतंत्रे
जितेन्द्रिये नित्यमुदीर्णसत्त्वे।
नाकर्मशीले पुरुषे वसामि
न नास्तिके सांकरिके कृतद्वे॥
भी कर्तव्य-दत्त, नित्य-उद्योगी, कोध न करनेवाले, देवताश्रोकी श्राराधनामें
तत्पर, उपकारको माननेवाले, इन्द्रियनिग्रही श्रौर सदा कुछ न कुछ करनेवाले

पुरुषमें वास करती हूँ। जो निरुद्योगी हैं, देवताओं पर जिनकी श्रद्धा नहीं है, जो वर्ण-सङ्करकर्ता श्रोर कृतघ्न हैं—मैं उनमें नहीं रहती।

इस वर्णनसे प्रकट है कि भारती कालमें उद्योगी मनुष्यकी प्रशंसा होती थी। परन्तु धीरे धीरे लोगोंके इस स्वभाव-में फ़र्क पड़ता गया; श्रोर महाभारतके समय भारती लोगोंका स्वभाव बिलकुल बदल गया। साधारण रीति पर लोग श्रालसी श्रौर निरुद्योगी हो गये। समग्र देशकी आब-हवा गरम और ज़मीन उप-जाऊ होनेके कारण श्रन्न सस्ता था। इस कारण स्वभाव बदल गया होगा। इसके सिवा सब जगह जनसंख्या बहुत बढ़ गई थी; इससे समाजके कई एक भाग बहुत ही दरिद्र हो गये। इस कारण भी इस मकारका स्वभाव वन सका और मनुष्य दैव पर भरोसा रखकर निरुद्योगी बन गये। महाभारतमें सीतिके समय यन्-मक्षका जो श्राख्यान सौतिने मिलाया है,

उसके आरम्भमें इस स्थितिका उन्नेख देख पड़ता है। यक्तने पूछा है कि आनन्दी और सुखी कीन है। इस पर युधिष्ठिरका यह उक्तर है—

पश्चमेऽहिन षष्टे वा शाकं पचित स्वे गृहे। अनुणी चाप्रवासी च सवारिचर मोदते॥

"हे यत्त, जो मनुष्य पाँचवें या छुठे दिन निरा शाक खयं अपने घरमें राँधता है और जिस पर न तो कर्ज़ है और न जिसे कहीं वाहर विदेशमें जाना-श्राना है, वह मनुष्य सदा श्रानन्द करता है।" (ब० श्र० ३१३) यद्यपि इसमें वर्णित तस्व सचा है, तथापि दारिद्य भोगकर भी निरुद्योग द्वारा दिन काटनेकी महाभारत-कालकी प्रवृत्ति, इस संवादसे, खूब साफ़ हो जाती है।

किन्तु महाभारत कालके प्रथम भारती आर्य लोग बहुत श्राशाबादी, उत्साही श्रोर उद्योगी थे; वे सच श्रोर स्पष्ट बोलते थे—लल्लो-चण्पो उन्हें बिलकुल न सुहाती थी। उनकी वृत्ति केवल स्वाधीन ही न थी, बिलक श्रोर किसीसे भी वे श्रपनी सादी, सरल श्रोर कम ख़र्चसे रहनेकी पद्धतिमें हार माननेवाले न थे। ज्ञियों श्रथवा राजाशों में मद्य श्रोर द्यूतके व्यसनके सिवा श्रोर लोगों में व्यसन या दुर्गुण बहुधा न थे। यह बात निर्विवाद देख पड़ती है।

चोरीका अभाव।

चोरी करनेकी प्रवृत्ति भारती लोगों-में बहुत ही कम थी। मेगास्थिनीज़ने श्रचम्भेके साथ लिखा है—"चन्द्रगुप्तकी प्रचएड सेनाकी छावनीमें कोई चार लाख श्रादमी होंगे; परन्तु प्रतिदिन बहुत ही कम चोरियाँ होनेकी ख़बर श्राया करती थी। श्रीर चोरियोंका माल दो सौ द्राम (रुपये) से श्रिष्ठक मृल्यका न होता था।"

मतलब यह कि चोरी-चकारी बहुत कम होती थी और वह भी छोटी छोटी। "समस्त लोगोंमं कायदे-कानून बहुत ही कम हैं और लोग उनको पूरे तौर पर मानते हैं। यूनानियोंमें जिस तरह दस्ता-वेज़ पर गवाही श्रीर (सील) मोहर की जाती है, वैसी रीति इन लोगोंमें नहीं है। न्यायासनके श्रागे ये लोग बहुत कम श्रभि-योग ले जाते हैं। इसका कारण यह है कि हिन्दुस्थानी लोग जिस समय रेहन रखते या कर्ज़ देते हैं, उस समय दारमदार विश्वास पर ही रखते हैं।" समकालीन युनानियोंने हिन्दुस्थानमें आकर आँखों-देखी जो यह गवाही लिख छोड़ी है, उससे महाभारत-कालीन हिन्दुस्तानियौं-की सचाईके विषयमें और उनकी नीति-मत्ताके सम्बन्धमें हमारे मन पर वहुत ही श्रच्छा श्रसर पड़ता है। हिन्दुस्थानियोंकी वर्तमान परिस्थिति देखते हुए मानना पडेगा कि उनके उल्लिखित स्वभावमें बहुत कुछ अन्तर पड गया है। यहाँ पर श्रव यह ऐतिहासिक किन्त महत्त्व-पूर्ण प्रश्न होता है कि यह अन्तर कव और कैसे पड़ा। तथापि यहाँ इस प्रश्न पर विचार करना, हमारे कर्तव्यकी सीमासे बाहर है।

यहाँ पर कह देना चाहिए कि कुछ देशोंके लोगोंकी, भिन्न भिन्न गुण-दोषोंके विषयमें, महाभारतके समय भी विशेष प्रसिद्धि थी । श्रौर ऐसे भेद लोगोंके स्वभावमें भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें श्राजकल भी देखे जाते हैं। कर्ण पर्व (श्रध्याय ४५) में कर्णने शल्यकी निन्दा की है। उस भाषणमें यह रुशेक श्राया है—

ब्राह्मं पाञ्चालाः कौरवेयाश्च धर्म्यम् । सत्यं मत्स्याः शौरसेनाश्च यज्ञम् ।

प्राच्या दासा वृषला दात्तिणात्याः स्तेना वाह्वीकाः सङ्गरा वे सुराष्ट्राः॥

"पाञ्चाल-देशी लोग वेदाध्ययनके लिए प्रसिद्ध हैं। कुरु देशके लोग धर्मा-चरणके लिए प्रसिद्ध हैं। मत्स्यदेशवाले सत्यताके लिए और ग्रूरसेनी लोग यज्ञके लिए प्रसिद्ध हैं । परन्तु प्राच्य अर्थात मगधके लोग दास-सभावके होते हैं और दक्तिणवाले अधार्मिक होते हैं। पञ्जाबके यानी वाह्नीक देशके लोग चोर, श्रीर सुराष्ट्र (काठियावाड़) वालोंमें वर्णसङ्करता बहुत होती है।" इस वाक्यसे उन देश-वालोंके गुण-दोषका महाभारतके समय का परिचय मिलता है। पाञ्चाल देश-वैदिक वालीका वेदाध्ययन प्रसिद्ध है और महाभारतके पश्चात भी अहिच्छत्र (पाञ्चालोंकी राजधानी) के ब्राह्मणोंको भिन्न भिन्न देशोमें सिर्फ वेद पढ़ानेके लिये, ले जानेका प्रमाण इतिहास-में मिलता है। श्राश्चर्यकी बात है कि श्रधा-र्मिकताके लिए दाचिएात्य प्रसिद्ध थे। (कदाचित् मातुल-कन्या ब्याहने और पलाएडु-भच्चण करनेका दोष उनमें प्राचीन कालसे ही प्रसिद्ध होगा।)

शीलका महत्त्व।

यद्यपि यह बात है, तथापि महाभारत-कालमें भारती लोगोंका पूर्ण रीतिसे इस बात पर ध्यान रहता था कि हमारा शील उत्तम रहना चाहिए। उस समयका मत यह था कि ब्राह्मणमें यदि सच्छील न हो तो फिर वह ब्राह्मण ही नहीं; प्रधात उसके साथ ब्राह्मणकासा व्यवहार न करके शृद्धकासा व्यवहार किया जाय। यत्त-प्रथके निम्नलिखित श्रोक बहुत महत्त्वके हैं—

श्यण यत्त-कुलंतात न स्वाध्यायो न च श्रुतम्। कारणं हि ब्रिजत्वे च वृत्तमेव न संशयः॥ वृत्तं यत्नेन संरद्धं बाह्मणेन विशेषतः। श्रुत्तीणवृत्तो न ज्ञीणो वृत्ततस्त हतोहतः॥ बतुर्वेदोपि दुर्वृत्तः सश्द्रादितिरिच्यते । ब्रिग्निहोत्रपरोदान्तः स ब्राह्मण इति स्मृतः॥ (वन पर्व० श्र० ३१३)

इस वर्णनसे देख पड़ेगा कि महाभा-ातके समय शुद्ध व्यवहारका कितना मृल्य था। ब्राह्मणत्वके लिए कुल, वेदाध्ययन ब्रथवा विद्वत्ता भी कारण नहीं हैं; वृत्त ब्रुर्धात् आचरण अथवा शील ही कारण माना जाता था । चारों वेद पढ़ा हुआ ब्राह्मण भी यदि दुर्वृत्त हो तो वह शद्रसे भी अधिक निन्दा है। इसी प्रकार भारती **श्रायोंकी पूरी धारणा थी कि सम्पत्ति** ब्रोर ऐश्चर्यका मूल वृत्त अथवा शील ही है। शान्तिपर्वके १२४ वें ऋध्यायमें युधि-ष्टिरने पूछा है कि लद्मी किस तरह प्राप्त होती है। उस समय भीष्मने प्रह्लाद श्रौर इन्द्रके संवादका वर्णन किया है। उस संवादमें यही तत्त्व प्रतिपादित है। इस सुन्दर श्राख्यानमें श्रसुरोका पराभव करनेके लिए इन्द्रने ब्राह्मण् रूपसे प्रह्लाद-के समीप जाकर उनका शील माँगा। महादने जब इन्द्रको शील दिया, तब उसकी देहसे शील बाहर निकला और उसके साथ ही श्री अथवा लद्मी भी वाहर हो गई। प्रह्लादने अचरजके साथ पुछा कि तू कीन है, श्रीर कहाँ जाती है। उस समय लद्मीने उत्तर दिया कि "मैं भी हूँ; जहाँ शील रहता है वहीं मैं भी रहती हूँ, श्रीर वहीं धर्म, सत्य तथा बल भी वास करते हैं। जब तुमने श्रपना शील इन्द्रको दे डाला, तब ये सब मेरे साथ, तुमको छोड़कर, इन्द्रकी श्रोर जा रहे हैं। श्रच्छे चालचलनकी श्रीर उससे निश्चयपूर्वक प्राप्त होनेवाले धर्म, सत्य, बल श्रादि ऐश्वर्यकी प्रशंसा इससे अधिक सुन्दर रीतिसे होना सम्भव नहीं।

रणमें अथवा वनमें देह-त्याग। भारती आयोंका सारा प्रयत्न जिस तरह उम्रभर उदार श्राचरणसे रहनेका होता था, उसी तरह उनकी यह भी महत्त्वाकांचा रहती थी कि हमें उदात्त रीति-से मृत्यु भी प्राप्त हो। घरमें बीमार होकर किसी रोगसे विद्योंने पर मरनेको ब्राह्मण-चित्रिय श्रत्यन्त दुर्दैव मानते थे।

श्रधर्मः सुमहानेष यच्छय्यामरणं गृहे। श्ररणये वा विमुच्येत संग्रामे वा तनुं नरः॥

च्त्रियके लिए मरनेका उचित स्थान श्ररएय श्रथवा संग्राम है। गदा-युद्धके समय यही उत्तर दुर्योधनने पाएडघोंको दिया था जब कि वे उसे शरणमें आनेको कह रहे थे। लड़ाईमें मरना चत्रियोंको एक अत्यन्त आनन्द और पुरायका फल जँचता था । भगवद्गीतामें 'सुखिनः त्तत्रियाः पार्थ लभनते युद्धमीदशम्' कहा गया है। लडाईमें मरना जिनके लिए सम्भव नहीं, वे बुढ़ापेमें घरमें काँखते हुए न वैठे रहते थे। वे तप करनेके लिए ऋरएयमें चले जाते, श्रौर तपके द्वारा वहीं शरीर छोड़ देते थे। इस तरह श्ररएयमें जा-कर धृतराष्ट्रने देह त्याग दो और श्रन्तमें पाएडवोंने भी इसी मतलबसे महा-प्रस्थान किया। चित्रियोंकी भाँति, घरमें मर जानेको ब्राह्मण भी श्रभाग्य मानते थे: श्रीर जो लोग धैर्यवान होते थे वे महा-प्रस्थान द्वारा श्रथवा चितामें शरीरको जलाकर या पवित्र नदीमें जल-समाधि लेकर प्राण छोड़ देते थे। श्रीर लोग वन-में जाकर संन्यासी हो जाते थे श्रीर संन्यास-वृत्तिसे मरणकी प्रतीचा किया करते थे। ये वातें शायद हमें श्रसम्भव माल्म हों। परन्तु यूनानी इतिहासकारीं-ने ऐसे प्रत्यच वर्णन लिख रखे हैं। दो ब्राह्मण एथेंस शहरमें जब बीमार हुए, तब वे चिता प्रज्वलित करके उसमें श्रानन्द्के साथ वैठ गये। सिकन्दरके साथ जो कलनस (कल्याण) नामक योगी गया

था, उसके मरणका वर्णन स्ट्रेवो प्रन्थकार-ने किया है। "पसरगादी शहरमें जब वह बीमार हुन्ना तब उसकी उम्रमें वह पहली पहली बीमारी थी। श्रपनी श्रायके ७३ वे वर्षमें उसने, राजाकी प्रार्थना श्रस्वीकार करके, देहका अन्त कर दिया। एक चिता तैयार करके उस पर सोनेका पलङ्ग रखा श्रीर उस पर श्रारामसे लेटकर तथा श्रोढ़ना श्रोढ़कर उसने चितामें श्राग लगा दी। कोई कोई यह भी कहते हैं कि उसने एक कोठरी बनवाई श्रीर उसमें लता-पत्र भर दिये; फिर उसमें आग लगा दो। वह समारम्भसे, गाजे-बाजेके साथ, वहाँ श्राया श्रीर चितामें कृद् पड़ा। फिर वह लकड़ी-की तरह जलने लगा।" हिरोडोटसने यों वर्णन किया है-"हिन्दुस्तानी योगी किसी तरहकी हिंसा नहीं करते और न किसी प्रकारका बीज बोते हैं। वे निरी वनस्पति पर श्रपनी गुज़र करते हैं: श्रीर घरमें नहीं, वनमें रहते हैं। जब उनमें कोई किसी रोगसे यस्त होता है तव वह जङ्गलमें एकान्तमें जाकर चुपचाप पड़ रहता है। फिर कोई ख़बर नहीं लेता कि वह मर गया अथवा जीवित है।" महा-भारतमें इस प्रकार, देह-त्यागनेकी अनेक रीतियोंका वर्णन है। यही नहीं, उनकी विधि धर्मशास्त्रमं भी है। महाप्रस्थानकी विधि धर्मग्रन्थोंमें श्रौर वैदिक साहित्यमें वर्णित है। इसी प्रकार चिता-श्रारोहण करनेकी विधि श्रीर नदीमें जल-समाधि लेनेकी विधि भी वर्णित है। हिरोडोटसने जिस मरण-प्रकारका वर्णन किया है, वह प्रायोपवेशनकी रीति है। श्वासको रोक-कर प्राण छोड़ देना प्रायोपवेशन है। इस विधिसे प्राण त्यागने पर उस समय श्रातम-हत्या न समभी जाती थी।

श्व-संस्कार । महाभारतमें युद्धके प्रत्येक दिन,

लडाईमें मरे हुए वीरोंकी लोथोंकी व्यवसा उसी दिन हो जानेका वर्णन एक दिन भी किया हुआ नहीं पाया जाता। यूरोप-के महाभयक्कर युद्ध में भी इस सम्बन्धमें जहाँतक हो सका, प्रयत्न किया गया है। किन्त भारती युद्धमें ऐसा प्रयत्न किया हुआ नहीं देख पड़ता। उलटा यह देख पडता है कि लोशें खानेके लिये गीदही श्रीर जङ्गली हिंस्र पशुश्रोंको पूरा २ मौका दिया जाता था। दुर्योधन, कर्ण श्रीर दोग श्रादि महाराजों तथा महायोद्धात्रोंके मरने पर उनकी लोथोंको चटपट गाउ देने या जला देनेका प्रयत्न विलक्त नहीं किया गया। इसके लिए पूरा पूरा श्रव-सर था और दोनों श्रोरसे इस कामके लिए अनुमति मिलनेमें कोई हानि न थी: फिर भी यह अचरजकी वात है कि ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की गई। यद्ध समाप्त हो चुकने पर गान्धारीने रण-भूमिका जो वर्णन किया है, उसमें कहा है कि वडे वडे राजात्रोंकी लोथों श्रीर हड़ियोंको गिद्ध श्रीर गीदड खींच रहे हैं। विचित्र देख पड़नेवाली इस स्थितिका समुचित कारण शान्ति पर्वके २= वें ऋध्यायके एक महत्त्व-पूर्ग क्लोकमें देख पड़ेगा।

श्रशोच्यो हि हतः शरः स्वर्गलोके मही यते । नहान्नं नोदकं तस्य न स्नानंनाप्य शौचकम् । ४५

'रणमें मरे हुए ग्रस्के लिए विलाप न करना चाहिए, श्रीर न उसे श्रन्न या पानी ही देना चाहिए, उसके लिए स्नान न करना चाहिए श्रीर न स्तक मानना चाहिए।" इस विचित्र श्लोकसे इस वातकी कल्पना हो सकेगी कि श्रीर तरहकी मृत्युकी श्रपेत्ता युद्धकी मृत्यु कितनी पुरायकारक मानी जाती थी। श्रीर इस वातका भी कारण देख पड़ेगा कि मृतक सम्बन्धी समस्त विधि क्यों छोड़ा दी

जाती थी। अठारह दिनका युद्ध समाप्त हो जाने पर युधिष्टिर तथा अन्य नोगोंने गङ्गा पर जाकर जो तिलाअलि ही, इसका श्रचरज होता है। रणाङ्गग-में मरे हुए प्रसिद्ध प्रसिद्ध योद्धात्रोंकी लोधें खोजी जाकर जलाई गई, ऐसा श्रागे वर्णन है: यह भी श्राश्चर्यकी वात है। माल्म नहीं होता कि द्रोण, कर्ण श्रादिकी लोथें कई दिनोंके वाद भी सावृत मिल गई होंगी । खैर; यह आश्चर्यकी बात नहीं कि महाभारतके समय भी युद्धमें मारे हुए वीरोंकी किया हिंस्र पश-पित्रयों-के द्वारा लोथोंको खिला देना ही था। क्योंकि युनानी लोगोंने पञ्जावके तत्त्रशिला शहरके श्रासपासकी इस रीतिका वर्णन किया है कि वहाँ लोधें जङ्गलमें एख दी जाती थीं, जहाँ उन्हें गिद्ध खा जाते थे। इससे ऊपरवाली वीरोंकी लोथोंकी व्यवस्था ठीक जान पड़ती है। श्रीर यह वात भी देख पड़ती है कि पञ्जाबके कुछ लोगोंमें ईरानियोंकी चाल अवतक मौजूद थी। सिन्धु नदीके पारके आर्य और इस पारके श्रार्थ पहले किसी समय एक ही थे। पञ्जाबके आयों में सुधार नहीं हुए, श्रीर गङ्गा, यमुना तथा सरस्वती तीर पर श्रायोंकी सभ्यता बहुत श्रागे चली गई। यह पहले देखा ही जा चुका है। इन लोगोंमें मुद्रींको जलानेकी रीति पूर्णतया प्रचलित थी। इससे, श्रीर कुछ श्रीर पिछड़ी हुई रीतियोंके कारण, भारती श्रार्य पञ्जाबी लोगोंकी निन्दा कर उन्हें धर्म-बाह्य मानते थे। कुछ विशेष व्यक्ति जल-समाधि लिया करते थे, इसका उल्लेख अन्यत्र होगा।

युनानियोंने हिन्दुस्थानियोंके मृतकोंके सम्बन्धमें श्रौर भी कुछ रीतियोंका उल्लेख किया है। "हिन्दुस्थानी लोग मृतकोंके उद्देशसे किसी प्रकारके स्मारक नहीं

वनाते । उनके सतसे मृत व्यक्तियोंके सद्गुणोंको चर्चा ही उनका विद्या सारक है। श्रौर मृत व्यक्तियोंकी स्मृति ऐसे सदुणोंकी स्थितिसे ही स्थिर रहती है।" यहीं कारण होगा जिससे प्राचीन कालकी सारककी इमारतें हिन्दुस्थानमें नहीं पाई जातीं। मिसर देशमें बड़े बड़े पराक्रमी राजात्रोंके-फिर चाहे वे सहुगी हों या दुर्गुणी—सारणार्थ वनाये हुएँ पिरामिड अवतक मौजूद हैं । किन्तु हिन्दुस्थानमें यह कल्पना ही न थी, इससे ऐसे मन्दिर नहीं बनाये गये । हुएनसांगने वर्णन किया गया है कि — "मृत व्यक्तिके अन्त्य-संस्कारके समय उसके रिश्तेदार ज़ोर ज़ोरसे रोते हैं, छाती पीटते हैं श्रीर श्रपने वाल नोचते हैं।" इस रीतिका अवशिष्टांश कुछ जातियोंमं विशेषतः गुजरातियोंमं देखा जाता है। माल्म होता है कि महा-भारतके समय भी इस प्रकारकी रीति रही होगी । "त्रशोच्यो हि हतः शूरः" श्लोकसे जान पड़ता है कि शूरके सिवा श्रन्य मृतकोंके सम्बन्धमें शोक करनेकी रीति महाभारतके समय भी रही होगी।

वाहन।

मुख्य मुख्य रीतियों के विषयमें श्रव-तक उस्लेख हो चुका। श्रय कुछ श्रौर बातों पर भी ध्यान देना है। धनवान लोगोंका सबसे श्रधिक प्रिय वाहन हाथी था। वाणने वर्णन किया है कि राजा लोग विशेषतः हथिनी पर सवार होते थे। यूनानी इतिहासकार श्ररायन लिखता है—"साधारण जन समाजमें ऊँट, घोड़े श्रौर गदहे सवारीके कामश्राते हैं। परन्तु धनवान लोग हाथी रखते हैं; क्योंकि हाथी राजाश्रोंका वाहन है। हाथींके बाद, बड़े लोगोंमें, चार घोड़ोंसे संयुक्त रथका मान है। ऊँटका दर्जा तीसरे नम्बर पर है श्रोर एक घोड़ेकी गाड़ीमें बैठना तो कोई चीज़ ही नहीं।" इस श्रन्तिम वाक्य-से जान पड़ता है कि संयुक्त प्रदेश श्रीर पञ्जाबकी श्रोरके (वर्तमान) इके बहुत प्राचीन होंगे। ये इक्के आकारमें तो छोटे परन्तु होते रथ सरीखे ही हैं। श्रर्जुन, भीष्म श्रादि श्रीर श्रन्य योद्धा जिन रथीं. में वैठते थे, वे चार घोड़ोंके रथ आजकल दग्गोचर नहीं होते । इस बातकी भी कल्पना नहीं होती कि ये चार घोड़े किस प्रकार जोते जाते थे—चारों एक ही पंक्ति-में श्रथवा दो श्रागे श्रीर दो उनके पीछे। प्राचीन कालमें रथ खिंचवानेका काम गदहोंसे लिया जाता था श्रौर उन पर सवारी भी होती थी। हाँ, श्राजकल उनका उपयोग निषिद्ध माना गया है। श्रादि पर्वमें प्रोचनसे वारणावतको जानेके लिए कहा गया है कि गदहोंके रथमें वैठकर जाश्रो।

स त्वं रासभयुक्तेन स्यन्दनेनाशुगामिना। वारणावतमयैव यथा यासि तथा कुरु॥ (श्रादि० श्र० १४३)

यहाँ टीकाकारने कहा है कि रासम खश्चर होंगे। किन्तु यह उनकी भूल है। खबरके लिये तो अध्वतरी स्वतन्त्र शब्द है श्रीर इस अर्थमें वह महाभारतमें भी प्रयुक्त है। 'स मृत्युमुपगृह्णाति गर्भमश्व-तरी यथा ।' (शां० ऋ० १४१--७०) प्राचीन कालमें पञ्जाव श्रीर ईरानमें श्रच्छे गदहे होते थे। टीकाकारको यह बात माल्म न थी और महाभारत तथा रामा-यणमें भी युधिष्ठिर और भरतको उत्तर श्रोरके राजाश्रों द्वारा गदहे भेंट किये जानेका वर्णन है। भारती युद्धके समय कदाचित् यह नियम न रहा होगा कि गद्होंको छूना न चाहिए; श्रीर पञ्जाबमें तो यह नियम श्रव भी नहीं है। द्विशा श्रीरके देशमें गदहे श्रच्छे नहीं होते, इस

कारण यह नियम जारी हो गया। क्योंकि एक खल पर महाभारतमें अस्पृश्य वतलाया है। इसमें सन्देह नहीं कि महाभारतके समय सामानकी गाडियाँ खींचनेमें वैलींका उपयोग होता था। यह वर्णन है कि अश्वत्थामाके रथके पीछे वाणोंसे भरी हुई श्राट श्राट गाड़ियाँ जा रही थीं। अन्यत्र कहा ही गया है कि चारण श्रीर बनजारे लोग वैलांसे लादनेका काम लेते थे। "गोवाँ-ढारं धावितारं तुरङ्गी"-यह श्लोक इसी बातका द्योतक है। लादनेक काममें वैल आते थे और गौएँ दुध देती थीं, इस कारण राजा लोग गौश्रोंके मंड पालते थे। वनपर्वमें दुर्योधन श्रपनी गौश्रोंके समुद्राय देखने गया था। उसका वर्णन बहुत मनोहर है। "उसने सब गाए-वैलोंको चिह्नित करा दिया श्रीर बडी वडी विद्यों और छोटे वद्धड़ोंको भी चिह्नित करा दिया। तीन वर्षकी अवशा के वैलोंको श्रलग कर दिया।" बोम लादनेके काममें इन वैलोंका उपयोग बहुधा किया जाता था। यहाँ पर ग्वाली ने गाकर श्रोर नाचकर तथा श्रपनी लड़-कियोंको अलङ्कार पहनाकर दुर्योधनके श्रागे खेल करवारे। इस वर्णनसे तत्का लीन श्रद्धोंका चित्र, आजकलकी भाँति, श्राँखोंके श्रागे खडा हो जाता है। फिर ल गोपालीने दुर्योधनको शिकार खिलाया।

शिकार।

शिकार खेलनेकी रीति वेसी ही वर्णित है जैसी कि श्राजकल हिन्दुस्तानों प्रचलित है। चारों श्रोरसे हाँका करके जानवरको मैदानकी श्रोर श्रानेके लिए लाचार करनेकी रीति उस समय भी श्राजकलको ही भाँति थी। किन्तु मेगा स्थिनीज़ने राजाश्रों (चन्द्रगुप्त) के शिकार

का वर्णन कुछ भिन्न किया है। वह यहाँ उद्भुत करने लायक है। "सेंकड़ों श्रियाँ राजाके श्रासपास खड़ी रहती हैं; श्रीर स चक्र (घेरे) के बाहर हाथमें भाला लिये सिपाही तैनात रहते हैं। रास्तेमें दोनी श्रोर डोर वाँधकर राजाका मार्ग पृथक् किया जाता है। फिर इन डोरियोंके भीतर यदि कोई स्त्री-पुरुष त्रा जाय तो उसे प्राणदगड दिया जाता है। राजाके श्रागे, जलसमें, नकारे श्रीर घएटे वजाते हुए सिपाही लोग चलते हैं। इस तरह ठाठके साथ राजा शिकारके लिये निक-लता है। चारों श्रोरसे घिरी हुई जगहमें वह शिकार खेलता है श्रीर एक ऊँचे बनाये हुए मग्डप (शायद मचान) से वाण छोड़ता है। उसके साथ हथियार-बन्द दो-तीन स्त्रियाँ पहरेदारिने रहती हैं। यदि खुले मैदानमें शिकारके लिये राजा चला ही गया तो हाथी पर सवार होकर शिकार खेलता है।" कुल चत्रियोंको शिकारका वेहद शोक था; और ऐश-श्राराममें डूवे हुए राजातक, बड़े बन्दो-वस्तके साथ, घेरी हुई जगहमें शिकार खेला करते थे।

गाना।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि महा-भारतके समय हिन्दुस्तानी लोग गानेके शौकीन थे। श्रीर, गानेका मुख्य वाद्य बीणा था। महाभारत-प्रणेताको गानेका श्रच्छा ज्ञान था। नीचेवाले श्रोकसे यह बात सिद्ध होती है।

वीरोव मधुरालापा गान्धारं साधु मूर्च्छती। अभ्यभाषत पाञ्चाली भीमसेनम्निन्दिता॥

(विराट पर्व अ०१७)

वीणाकी भाँति मधुर आलाप करती हुई द्रौपदी, गान्धार स्वरकी मुर्च्छना करती करती बोलने लगी। इसमें यह

बात दर्शाई गई है कि वीलाक पड्ज स्वरमें लगे हुए तारसे गान्धार स्वर, पीछेसे, मूर्च्छनाके द्वारा निकलता है। चित्रयोंकी बेटियोंको गाना श्रोर नाचना दोनों कलाएँ सिखाई जाती थीं; यह बात श्रन्यत्र लिखी जा चुकी है। श्रब ऐसी रीति प्रचलित नहीं है।

पद्री।

महाभारतके समय भारती लोगोंमें पर्देकी रीति थी या नहीं ? इस प्रश्न पर श्रन्य स्थानमें विचार किया जा चुका है। भारती युद्धके समय चत्रिय लोगोंकी श्रथवा ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंके वीच पर्देका चलन न रहा होगा। परन्त महाभारतके समय ऐसी स्थिति श्रवश्य थी। महा-भारत अथवा रामायणमें और किसी श्रवसर पर द्रौपदी या सीताके पर्देमें रहनेका वर्णन नहीं है। यदि पर्दा होता तो द्रौपदी पर जयद्रथकी श्रौर सीता पर रावणकी नज़र ही न पड़ी होती। तथापि, महाभारत-कालके वर्णनमें यह स्रोक है-श्रहष्टपूर्वा या नार्यः पूरा देवगणैरिप । पथकजनेन दृश्यन्ते तास्तदा निहतेश्वराः (स्त्री पर्व ग्र० १०) ॥

इस श्लोकसे माल्म होता है कि विधवा स्त्रियाँ बाहर निकल सकती थीं। श्रीर स्त्रियों श्रर्थात् सौभाग्यवती स्त्रियोंको उत्तरीय धारण करना पड़ता था। उसीमें वे श्रपना मुँह लिपा लेती थीं। किन्तु कालिदासके समय इससे भी बढ़कर पदेंका रवाज हो गया। उसने श्रपनी शकुन्तलाको उत्तरीयके श्रतिरिक्त एक तीसरा श्रवगुण्ठन श्रर्थात् मुसलमान स्त्रियोंकी तरह एक लम्बी चौड़ी चादर उढ़ा दी है। परन्तु महाभारतके समयका वेसा वर्णन नहीं किया गया। महाभारतकी शकुन्तला, ब्राह्मणीकी भाँति श्रवगुण्ठन- रहित थी। उसके मुख पर उस समय उत्तरीय भी न था। इस वर्णनकी देखिए न—

संरंभामर्थ-ताम्राज्ञी स्फुरमणौष्टसम्पुटा । कटाज्ञैर्निर्दहन्तीय तिर्यम्राज्ञानमैज्ञत ॥ (श्रादि० श्र० ७४)

"सन्तापसे होंठ फड़काते हुए उसने राजाकी श्रोर लाल लाल नेव करके, कटाक्तसे मानों जलाते हुए, कनखियोंसे देखा।" यदि उसके मुख पर धूँघट होता तो यह वर्णन तनिक भी उपयोगी न हुशा होता। चत्रिय स्त्रियोंके सिवा ब्राह्मण, वैश्य श्रोर शृद्ध स्त्रियोंके लिए पर्दा न रहा होगा। क्योंकि साधारण पर्देका काम उत्तरीयसे ही हो जाता था।

एक और महत्त्वका अन्तर श्रोरके समयमें - कालिदासके समयमें श्रीर महाभारतके समयमें - यह पडता है कि महाभारत कालीन स्त्रियाँ श्रपने पतिको, नाम लेकर, पुकारती थीं: श्रीर कालिदासके जमानेमें पतिकी शार्थ-पुत्र अर्थात् "ससुरका वेटा" कहनेका रवाज था। श्राजकल तो वह शब्द भी ज्यवहत नहीं होता। श्रीर तो क्या, श्राज-कल सभी लोगोंमें पति-पत्नी परस्पर न तो किसी नामसे सम्बोधन करते हैं श्रौर न अन्य विशेषणसे । परन्तु महाभारतमें द्रीपदी, सीता, दमयन्ती श्रोर सावित्री श्रादि वड़ी वड़ी पतित्रता स्त्रियोतकने पतिका नाम-श्रीर वह भी एकवचनान्त-लेकर पुकारा है 'हश्यसे दश्यसे राजन् एष दृष्टोसि नैषध। (वन पर्व अध्याय ६३) 'वरं वृणे जीवतु सत्ववानयं यथा मृता होव श्रहं पति विना। (वन पर्व २६०) 'उत्तिष्ठोत्तिष्ठ किं शेषे भीमसेन मृतो यथा। (विराट पर्व १७) इत्यादि अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। परन्तु महा-

मारतके समय भी श्राजकलकी रीतिका थोड़ासा उद्गम हो गया था, इस श्रनु-मानके लिए गुआइश है। क्योंकि नीचे-वाले श्लोकमें जो वर्णन है, वह श्रमशस्त व्यवहारका समभक्तर किया गया है। श्रवश्रश्वश्चरयोरमें चध्ः प्रेष्यानशासत। श्रन्वशासच्च भर्तारं समाह्वायाभिजलपति॥ (शांति० २२६)

"सास और ससुरके आगे वह नौकरी पर हुकुमत करती है और पतिको बुला-कर (आवाज़ देकर) उसके साथ भाषण करती है।" इस क्ष्रोंकमें वर्णित उद्गृहता का आचरण महाभारतके समय भी निन्ध माना जाने लगा था। पूर्व कालमें पुरुषे और स्त्रियों अर्थात् पति और पत्नीका सम्बन्ध, विवाहमें दोनों के वड़े रहने कारण, विशेष मित्रताका और आद्रसुक साधीनताका रहा होगा। परन्तु फिर धीरे धीरे दुजायगी अधिक उत्पन्न हुई और पति अथवा पत्नीका नाम लेगा सम्यताके व्यवहारको लाँचना मान लिया गया। तथापि इस औरके रवाजमें भी कुछ आद्र है।

वारा-धगीचे।

भारती श्रायोंको महाभारतके समय बाग-बगीचे लगानेका खासा शोक था। हिन्दुस्थानकी श्रत्यन्त उल्ए श्राबहवामें श्रीर निर्वृत्त मैदानोंमें बाग लगाना सचमुच पुरायका काम है; श्रीर इन बागोंमें घूमनेके लिए गाँववाले स्त्री-पुरुषतक जाते थे। भारती कालमें कुछ देशोंके बाग प्रसिद्ध थे। श्रङ्ग देशके चम्पारएय श्रीर उज्जैनके श्रियकारएयका उल्लेख है कि बागोंमें स्त्री गया है। मृच्छकटिक नाटकमें ही इस बातका कुछ उल्लेख है कि बागोंमें स्त्री पुरुष घूमने जाते थे; बल्कि रामायएक श्रयोध्या काएडमें भी यह वर्णन है—'नारां

तके जनपदे उद्यानानि समागताः।
सायाहे क्रीड़ितं यान्ति कुमार्यो हेममूविताः॥ सुत्रणां लङ्कारों से भूषित लड़िक्याँ
सन्ध्या समय एकत्र हो कर खेलने के लिए
वहाँ नहीं जातीं जहाँ कि राजा नहीं
होता। इस वर्णनसे स्पष्ट है कि पूर्व
कालमें स्त्रियाँ वागों में घूमने-फिरने के
लिए, श्राजकलकी ही तरह, जाती थीं।
प्रत्येक शहरके श्रासपास बड़े बड़े बाग़
होते थे श्रीर उनमें उत्सव करने के लिये
स्त्री-पुरुष जाते थे। द्वारका के पास, रैवतक पर्वत पर, यादत स्त्री-पुरुष उत्सव
करने के लिए जाया करते थे। इसका
वर्णन महाभारतमें है।

विशेष रीतियाँ।

महाभारतके समय कुछ लोगोंमें विशेष रीतियाँ थीं। महाभारतके कुछ उल्लेखींसे इस बातका पता लगता है। "श्रापीडिनो रक्तदन्ता मत्तमातङ्ग विक्रमाः । नाना-विराग-वसना गन्धचूर्णावचूर्णिताः ॥" (कर्ण पर्व अध्याय १२) द्त्तिण ओरके करल, पाएडच और आन्ध्र आदि देश-वालोका यह वर्णन है। सिरमें फुलोकी माला लपेटे हुए और दाँतोंको लाल रँगे हुए, इसी प्रकार तरह तरहकी रँगी हुई भोतियाँ पहने और शरीरमें सुगन्धित चूर्ण लगाये हुए-यह वर्णन आजकलके मद्रासियोंके लिए भी पूर्णतया उपयुक्त होता है। ये लोग सिर नङ्गा रखते हैं: सिर्फ़ फूलोंकी माला सिर पर डाल लेते है। शरीर पर भी कुछ नहीं रहता और देहमें चन्दन लगा रहता है। पहननेकी भोतियाँ लाल, हरी आदि रंगी हुई होती है। रङ्गीन धोती पहननेकी रीति श्रीर किसी भागमें नहीं है: श्रीर ये लोग हाथीकी तरह मोटे ताजे तथा मजबूत भी होते हैं। वह इस बातका एक उदाहरण है कि प्राचीन रीतियाँ किस तरह श्रिमटी चली श्राती हैं। पञ्जावियोंकी भी एक रीति वर्णित है। वह रीति यह है कि ये लोग हाथोंकी श्रॅंजुलीसे पानी पीते हैं। श्रॅंजुलीसे पानी पीना श्रीर प्रान्तोंमें, इस समय, निषिद्ध माना जाता है; श्रीर श्राजकल केवल गरीव श्रादमी श्रॅंजुलीसे पानी पीते हैं।

वन्दन और करस्पर्श।

श्रार्थ्य रीति यह है कि बड़ोंको छोटे नमस्कार करें। परन्तु बरावरीमें सिर्फ हस्तस्पर्श करनेका रवाज देख पड़ता है। उद्योग पर्वमें जब बलराम पाएडवीसे मिलने श्राये, तबका यह वर्णन है— ततस्तं पाएडवो राजा करे पस्पर्श पाणिना। (२२ उ० श्र० १५७)

युधिष्टिर जब बलरामका करस्पर्शकर खुके, तब श्रीकृष्ण श्रादिने उन्हें नमस्कार किया और उन्होंने विराट तथा दूपव दोनों राजाश्रोंको नमस्कार किया। इससे उपर्युक्त श्रमुमान होता है। (बल-रामको यहाँ पर "नीलकौशेयवासनः" कहा गया है। बलराम नीला रेशमी वस्त्र श्रोर श्रीकृष्ण पीला रेशमी वस्त्र पहना करते थे।) साधारण रीतिसे नमस्कार जरा अककर श्रीर दोनों हाथ जोड़कर किया जाता है; परन्तु द्रोण पर्वके वर्णन-से प्रकट होता है कि सूत श्रादि जब राजाको नमस्कार करें तो टेककर, धरतीमें माथा रखकर किया करें। (द्रो० अ० =२) गुरुके चरणोंको हाथोंसे ब्रुकर ब्रह्मचारी नमस्कार करे। इस विधिका वर्णन अन्यत्र हुआ ही है। साष्ट्राङ्ग नमस्कार बहुधा देवताश्रोंको अथवा ऋषि या गुरु आदिको किया जाता था।

उत्ताम आचरण। शान्ति पर्वके २२८म अध्यायमें वर्णन

किया गया है कि अच्छी रीतियाँ कीन हैं: श्रोर श्रवनित होने पर कौनसी वुरी रीतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। यहाँ उसका संचिप्त अवतरण दिया जाता है। "पहले दानवतक दान, अध्ययन और होम-हवन करके देवता, अतिथि तथा पितरों-का पूजन किया करते थे। घरोंको खुब साफ पाक रखते थे। इन्द्रियोंको वशमें रखते और सत्य भाषण करते थे। किसीसे मत्सर अथवा ईर्ष्या न करते थे। श्रपनी स्त्रियों, पुत्रों श्रोर परिवारका पोषण करते थे। कोधके अधीन न होते थे। पराये दुःखसे दुखी होते थे। सेवक श्रौर श्रमात्यको सन्तष्ट रखते थे। प्रिय भाषण करते थे । योग्यतानुसार सबका मान करते थे। उपवास श्रीर तपकी श्रीर स्वभावसे ही उनकी प्रवृत्ति थी । प्रातः-कालके समय कोई सोता न था । सबेरे मङ्गलकारक वस्तुत्रींको देखकर, ब्राह्मणीं-की पूजा करते थे। श्राधी रात नींदमें बीतती थी। दिनको कोई सोता न था। दीनों, वृद्धों, दुर्वलों, रोगियों श्रौर स्त्रियों पर सदैव दया की जाती और उन्हें श्राम-द्नीका हिस्सा दिया जाता था । बडे-बूढ़ोंकी सेवा की जाती थी।" इत्यादि अञ्छे आचरणोंका वर्णन कर चुकने पर कहा गया है कि दैत्योंमें विपरीत काल हो गया: ये गुण पहलेसे विपरीत हो गये। तब, उनमेंसे धर्म निकल गया। "उस समय सभ्य पुरुष श्रीर वृद्ध लोग पुरानी बातें बतलाने लगते: अर्थात् तब श्रीर लोग उनका उपहास करते तथा उनके श्रेष्ठ गुणों पर मत्सर करते थे। बड़े-बूढ़ोंके आने पर, पहलेकी तरह, प्रत्युत्थान देकर श्रीर नमस्कार करके उनका श्रादर-सत्कार न किया जाता था। जिन लोगोंको सेवक न होना चाहिए वे भी सेवकपनको प्राप्त करके,

निर्लज्जताके साथ, उसे प्राप्त करनेम श्रानन्द मानते थे। निन्दनीय काम करके जो लोग बहुत धन संग्रह करते थे वे उन्हें प्रिय जँचने लगे। रातको वे ज़ोर जोरसे बोलने लगे। पुत्र तो पिताकी श्रीर स्त्रियाँ पतिकी श्राज्ञाके वाहर वर्ताव करने लगीं। अनार्य लोग आयोंकी श्राज्ञाके बाहर व्यवहार करने लगे।माँ वाप, बृद्ध, अतिथि और गुरुका-पूज्य समभकर - श्रादर न किया जाता था। वालकोंका पोषण करना छोड़ दिया गया। बलि श्रीर भिचाका दान किये विना भोजन किया जाता था। देवताश्री-का यज्ञ न किया जाता थाः पितरों और श्रतिथियोंको श्रन्नमेंसे श्रवशेष न दिया जाता था। रसोई वनानेवाला पवित्रता न रखता था। तैयार किया हुआ भोजन भली भाँति ढाँक-मुँदकर न रखा जाता था। दुध विना ढँका ही रखा रहता था। विना हाथ धोये ही घी छू लिया जाता था। कांक श्रीर मुपक श्रादि प्राणी खाये जाने लगे। दीवार श्रीर घर विध्वस्त भले ही होने लगें, पर वे लीपे न जाते थे। वँधे हुए जानवरोंको दाना-चारा या पानी न दिया जाता था। इति छोटे बच्चे भले ही मुँह ताका करें, तथापि खानेके पदार्थोंको श्राप खयं खा जाते थे—नौकरोंको भी हिस्सा न देते थे। दिन-रात उनके बीच कलह होता रहता था। निरुष्ट लोगोंने श्रेष्टोंकी सेवा करना छोड़सा दिया। पवित्रता लुप्त हो गई। वेदवेत्तात्रोंका श्रोर एक भी ऋचान जाननेवाले ब्राह्मणोंका मानापमान एक हीसा होने लगा। दासियाँ दुराचारिणी वन गई और वे हार, श्रलङ्कार तथा वेष-को इस ढँगसे धारण करने लगीं जो कि उच्च दुराचारके लिए फबे। व्यापार-उद्योग करनेवाल

वहने लगे और शृद्ध तपोनिष्ठ हो गये।
शिष्य गुरुकी सेवा छोड़ बैठे और गुरु
बन गये शिष्योंके मित्र । माता-पिता,
श्रममर्थ होकर, पुत्रसे अन्नकी याचना
करने लगे । सास-ससुरके देखते वह
(पतोहः) लोगों पर हुकुमत करने लगी
श्रीर पतिको आवाज देकर उसके साथ
भाषण करने एवं उसे आजा देने लगी।
पिता पुत्रको खुश रखनेकी चेष्टा करने
लगा और उरके मारे पुत्रोंमें अपनी

के सार्था-कलके मार्गमधे हिन्दुबात् वीस्तासकीय परिजित्तिका राभिष्ठम पुर्व

गीति निर्मानिए करें, में हमें विका

हमा कि उप समय यहा, जोस देशवे ही

समान, कोरी कीरों भागमें में करे हुए सानस्थाधिय लोगोंने संबोदी गुरुष है।

इन राज्याके नाम ने शकी नामने नहीं को

असे थे, ने करत, अहर व असे हात्रों होत्रों पर

से बयना किसी सिशिष्ट एका परसे व

सम्बद्ध वर्षे वे । अध्यक्तिक राज्योक। यद्भित्रास्य वर, तो सासार होसी कि

लीगां परसे राज्यांक साम सही पड़े हैं। जिस्सू देख परसे लोगोंचे साम पड़ सर्व

है। महासा, महरासी, संबुक्ती आहि

आयुनिक साम देख परने लेखाँके हो **गु**रे हैं। फर्ना वहन आयीन कालम इसके

भाग महाकि को उस मार्थ

रोगोर समा प्रकार संप्रा माह सामा प्

अस थे। श्रीय देशकें बार्ट वार्थिय और वार्थि

के साम गावर परासे पडते थे, परम्तु िन्

जागरी बेला भी गर्दा यह । हिस्ट्यांना

राजा. विवासी और देशका दक्त ही मांब

रहता था। वहांके राज्य बहुत होते रहा

मार्थ है। इतारा निस्तार, गोर्च ऐस

महारामा क्रम जारीक क्रम केंग्रिया करा

in these who are traded to

सम्पत्ति बाँटकर कष्टसे समय विताने लगा। मित्र परस्पर एक दूसरेकी हँसी करने लगे और परस्पर शत्रु बनने लगे। सारांश यह कि दैत्य इस प्रकार नास्तिक, कृतझ, दुराचारी, श्रमर्थादशील और निस्तेज हो गये।" उल्लिखित वर्णनसे हमारे सामने इस सम्बन्धकी कल्पना खड़ी हो जाती है कि महाभारतके समय कौन कौन रीतियाँ वुरी समभी जाती थीं।

मारिक सम्मा किस प्रकार विधित हैए.

स्वताद बाने महामार्थन जैसे मुहन प्रस्थति समें विकासपूर्वक वानम हो स्वत्नी है।

राजारी पानेकी कार्योक्त विकास विकास विकास

जायका भारती खाल देश वासारा

चे एक्सांस्ट उसकी किया (जन्म आस्तार)

प्रकार है किए। है । विशेष कारी हुनी

direction in secret in a second

क्षेत्र की के शिक्ष मेर किए हैं कि श्रीस

होना अवस्था राजको स्थानामा अस्तान

महार में हा है के महार कि प्रोक्त

वार वात रेस पहली है कि होने। राजालं

उत्पन्न हुई की स्थार शनेज सम्मन्त्रों सं हानो

की परिविधित आहे चलकर बहुत जिल

हो बर । मेले लोई रेजको सङ्क एक हो।

के किएए केल उसकी से

शासानं, ते सार्व, एक उपारकी चोम कर्ता

अस संग्रह इसर्य इतिस्पत्ती और: तस

वानक हम के हैं। है के बहुत अनाम

महं यह कि विद्यातिक विद्यालिक

किया की प्राथम का वाद की है कि

and the state of the file from the

तकाँ प्रकरण।

राजकीय परिस्थिति

क्रारती श्रार्य हिमालयोत्तरसे हिन्दु-स्थानमें श्राये श्रीर यहाँ वस गये। उस समयसे महाभारतके समयतक राज-कीय संस्थाएँ कैसे उत्पन्न हुई, भिन्न भिन्न कालों में भिन्न भिन्न राज्यों में राजसंखा कैसे नियत हुई श्रीर राजा तथा प्रजाके पार-स्परिक सम्बन्ध किस प्रकार निश्चित हुए, इत्यादि बातें महाभारत जैसे बृहत ग्रन्थसे हमें विस्तारपूर्वक मालुम हो सकती है। इस प्रकरणमें इन्हीं वातोंका विचार किया जायगा । भारती ऋार्य श्रोर पाश्चात्य देशोंके आर्य किसी समय एक ही जगह थे। वहाँसे उनकी भिन्न भिन्न शाखाएँ भिन्न भिन्न देशोंको गई । वहाँ वे प्रारम्भमें श्रपनी एक ही तरहकी राजकीय संस्थाएँ लेगए। परन्तु हम देखते हैं कि श्रीस श्रोर रोमकी राजकीय संस्थाश्रोमें श्रोर हिन्द्स्थानकी राजकीय संस्थात्रोंमें, प्राचीन कालसे, बड़ा ही फर्क हो गया है। तथापि इस विचारमें हमें सबसे पहले यह बात देख पड़ती है कि दोनों संस्थाएँ मुलतः एक स्थानमें और एक ही तरहसे उत्पन्न हुई थीं श्रीर श्रनेक कारणोंसे दोनीं-की परिश्विति श्रागे चलकर बहुत भिन्न हो गई। जैसे कोई रेलकी सड़क एक ही स्थानसे निकलकर, श्राग उसकी दो शासाएँ हो जायँ, एक उत्तरकी श्रोर चली जाय श्रौर दूसरी दित्तणकी श्रोर: तव श्रन्तमें उन दोनोंके छोर जैसे बहुत अन्तर पर और भिन्न दिशाओं में गये हुए देख पड़ते हैं, वैसे ही पाधात्य श्रोर भारती आयोंके सुधार एक ही स्थानसे उत्पन्न स्रोकर आगे घीरे घीरे भिका स्थितियें बढे

हैं और अन्तमं अब अत्यन्त विसद्या स्थितिमें देख पड़ते हैं। प्रायः सभी बातोंमें यह फर्क देख पड़ता हैं: परन्तु राजकीय संस्था और तत्त्व-ज्ञानके सम्बन्धमें तो यह फर्क बहुत ही अधिक दिखाई देता है। इतिहासके प्रारम्भमं उनकी संस्थाएँ प्रायः एक ही सी मिलती हैं, परन्तु कहना पड़ेगा कि महाभारत-कालमें उनमें बहुत ही अन्तर दिखाई देता है।

बोटे बोटे राज्य।

भारती-कालके प्रारम्भकी हिन्द्रशान-की राजकीय परिस्थितिका यदि हम सुन्म रीतिसे निरीच्चण करें, तो हमें दिखाई देगा कि उस समय यहाँ, श्रीस देशके ही समान, छोटे छोटे भागोंमें बसे हुए स्वातन्त्रय-प्रिय लोगोंके सेंकड़ों राज्य थे। इन राज्योंके नाम देशके नामसे नहीं रखे जाते थे, किन्तु वहाँ बसनेवाले लोगों पर-से अथवा किसी विशिष्ट राजा परसे वे नाम पड़ गये थे। आधुनिक राज्योंका यदि विचार करें, तो माल्म होगा कि लोगों परसे राज्योंके नाम नहीं पड़े हैं, किन्तु देश परसे लोगोंके नाम पड़ गये है। मराठा, मद्रासी, बङ्गाली श्रादि श्राधुनिक नाम देश परसे लोगोंके हो गुरे हैं। परन्तु बहुत प्राचीन कालमें इसके विपरीत परिस्थिति थी। उस लोगोंके नाम परसे राज्योंके नाम पड़ जाते थे। श्रीस देशमें राज्योंके श्रीर लोगी के नाम शहर परसे पडते थे, परन्त हिन्छ स्थानमें वैसा भी नहीं था । हिन्दुस्थानमें राजा, निवासी और देशका एक ही नाम रहता था। यहाँके राज्य बहुत छोटे रही करते थे। इनका विस्तार, ग्रीस देशक नगर-राज्योंसे, कुछ श्रधिक रहता महाभारत-कालमें भी हिन्दुस्थानके प्रदेशी की फेहरिस्तमें २१२ लोग बतलावे गए

हैं। वे सब लोग एक वंशी, एक धर्मी ब्रीर एक ही भाषा-भाषी थे। सारांश ह है कि ग्रीस देशके लोगोंके समान ही हतकी परिस्थिति थी और इन भिन्न भिन्न राज्योंके लोगोंका श्रापसमें विवाह-सम्बन्ध होता था। राजकीय-सम्बन्धमें ये सब मतन्त्र थे श्रीर श्रीक लोगोंके समान ही तिके श्रापसमें नित्य संग्राम हुश्रा करते थे। परन्तु यहाँ ध्यान देने योग्य एक वात यह है कि इन्होंने एक दूसरेको तप्र करनेका कभी प्रयत्न नहीं किया। एक जाति दूसरी जातिको जीत लेती थी, परन्तु पराजित लोगोंकी स्वतन्त्रता-का नाश कभी नहीं किया जाता था। ऐसी परिस्थिति भारती कालसे जारी थी। पहले आयोंने अर्थात् सूर्यवंशी क्षत्रियोंने पञ्जावसे लेकर हिमालयके किनारे को सल-विदेहतक राज्य स्थापित किये। दुसरे चन्द्र वंशी आर्थ गङ्गाकी षाटियों में से होते हुए श्राये; पर उन्होंने पहले श्राये हुए लोगोंके स्वातन्त्रय-नाश-का प्रयत्न नहीं किया । उन्होंने दक्तिण-की श्रोर गङ्गा श्रोर जमनाके किनारे तथा मध्य हिन्दृस्थानमें मालवे श्रीर गुजराततक सैंकडों राज्य स्थापित किये। ये राज्य सिकन्दरके समयतक ऐसे ही शेरे होटे थे। पञ्जाब श्रोर सिन्धमें जिन भिन्न भिन्न लोगोंको सिकन्दरने जीता था, उनकी संख्या ५० के लगभग होगी। पदि पञ्जाब और सिन्धु यही दो राज्य हों, तो भी श्राधुनिक हिसावसे वे छोटे सममे जायँगे। कहनेका तात्पर्य यह है कि उस समयके राज्य छोटे छोटे हुआ करते थे। हर एक राज्यका विस्तार रतना ही रहा करता था कि उसकी मुख्य मध्यवतीं एक राजधानी रहती थी श्रीर उसके चारों श्रोर कुछ प्रदेश रहता था। अर्थात् इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं

कि युधिष्टिएने पाँच ही गाँव माँगे थे।
उस समय चित्रयोंकी महत्वाकांचा
इतनी ही थी श्रीर इस समय भी राजप्तोंकी महत्वाकांचा वैसी ही है। नीचे
दिये हुए श्रोंकमें उपर्युक्त चित्र उत्तम
रीतिसे प्रतिविभिन्नत देख पड़ेगा।

गृहे गृहे हि राजानः स्वस्य स्वस्य प्रियं-कराः । नच साम्राज्यमाप्तास्ते सम्राट् शब्दोहि कुच्छुभाक् ॥

(सभ० प० अ० १५)

"घर घर राजा हैं, परन्तु उनकी सम्राद्' पदवी नहीं है।" इस वाक्यसे अनुमान हो सकता है कि हर एक शहरमें राजा रहता था। कोई राजा विशेष बल्यान होकर सम्राट् भले ही हो जाय, पर वह इन राजाश्रोंका नाश नहीं करता था। पराजित राजा अपने प्रभुकों कुछ कर श्रोर नजराना दे दिया करते थे। बस, यही काफ़ी समक्षा जाता था। शान्ति पर्वमें स्पष्ट कहा है कि जित राजा कभी पद्च्युत न किया जाय। यदि वह ज़िन्दा हो तो फिर वही गदी पर वैठाया जाय। यदि वह मर जाय तो उसके लड़केको या किसी नातेदारको गदी पर वैठाना चाहिए%। युघिष्टिर श्रोर दुर्योन्

* भारत-कालमें पराजित राष्ट्रोंकी स्वतंत्रता नष्ट न करनेकी श्रोर बहुत ध्यान दिया जाता था। यह बात युधिष्ठिरको ध्यास द्वारा िकये हुए उपदेशसे ध्यक्त हो जाती हैं:—''जित भूपितयोंके राष्ट्र श्रोर नगरमें जाकर उनके बन्धु, पुत्र या पौत्रोंको उनके राज्यमें श्रभिषक्त करो, फिर वे चाहे बाल्यावस्थामें हो या गर्भावस्थामें। जिनके कोई पुत्र न हो उनकी कन्याशोंको श्रभिषक्त करो। ऐसा करनेसे, वैभवकी इच्छाके कारण, ख्रियाँ शोकका त्याग करेंगे।' इससे यह देख पड़ता है कि महाभारत-कालमें, पुरुष वारिसके श्रभावमें, कन्याएँ भी गई। पर बैठाई जाती थीं। यह श्रोक देखिये—

कुमारो नास्ति येषांच कन्यास्तत्राभिषेचय । कामाशयो हि स्त्रीवगों शोकमेवं प्रद्वास्थिति ॥ (शां० श्र० ३३—४६) धनने जब दिग्विजय किया, बब उन्होंने किसीके राज्यको अपने राज्यमें शामिल नहीं कर लिया: सिर्फ पराजित राजाओंने उनका साम्राज्य स्वीकार किया श्रीर यज्ञ-के समय उन्हें नजराने दिये। इससे कल्पना की जा सकती है कि भारती-कालके लोग कितने स्वातन्त्र-प्रिय थे। इससे त्राश्चर्य न होगा कि ब्राह्मण-कालसे महाभारत-कालतक लोगोंके एकसे ही नाम क्यों पाये जाते हैं। कोसल, विदेह, शूरसेन, कुरु, पाञ्चाल, मत्स्य, मद्र, केकय, गान्धार, वृष्णि, भोज, मालव, चुद्रक, सिन्ध, सौवीर, काम्बोज, त्रिगर्त, आनर्त श्रादि नाम ब्राह्मण-प्रन्थोंमें तथा महा-भारतमें भी पाये जाते हैं। कहना होगा कि सैकडों वर्षोंके परिवर्तनमें भी ये राज्य ज्योंके त्यों बने रहे, श्रीर उन लोगोंने श्रपनी खाधीनता स्थिर रखी। उनके नाम लोगी परसे पड़े थे, इससे भी उनकी स्वातन्त्रय-प्रियता व्यक्त होती है। केवल एक 'काशी' नाम लोगोंका तथा शहरका समान देख पडता है। शेष श्रन्य नाम कुरु-पाञ्चाल श्रादि नामोंके समान देश-वासी राजा और देशके भिन्न भिन्न थे। लोगोंका नाम दूसरा श्रीर नगरका या राज-धानीका नाम दूसरा हो, परन्तु लोगोंका श्रीर देशका नाम हमेशा एक रहता ही था।

राजसत्ता।

इन श्रनेक छोटे छोटे राज्यों में राज-कीय व्यवस्था प्रायः राजनिबद्ध रहती थी। यूनानियोंके इतिहासमें भी यही देख पड़ता है कि होमरने जिन श्रनेक लोगों-का वर्णन किया है, उनमें प्रभु राजा ही थे। इसी प्रकार, हिन्दुस्थानमें भी, इन छोटे छोटे राज्योंमें राजकीय सत्ता राजा लोगोंके ही हाथमें थी। परन्तु सर्व-साधारण प्रायः स्वतन्त्र थे। विशेषतः

ब्राह्मण लोगींकी दशा बहुत साधीन रहा करती थी। वे राजसत्तासे दवे नहीं रहते थे। इसके सिवा यह बात भी थी कि हर मौके पर, ग्रीस देशके समान यहाँ भी, राजा लोग जनताकी राय लिया करते थे। उदाहरणार्थ, युवराजके नातेसे राज्यका प्रवन्ध रामके अधीन कर देना उचित होगा या नहीं, इसका विचार करनेके लिए दशरथने लोगोंकी एक सभा की थी। रामायणमें इसका बहुत सुल्र वर्णन है। ऐसी सभात्रोंमें ब्राह्मण, ज्ञिय श्रीर वैश्य निमन्त्रित किथे जाते थे। श्रर्थात् इन सभात्रोंमें वैठनेका श्रायोंको श्रिधिकार था। राजसत्ता केवल श्रनिय नित्रत न थी, किन्तु जनताकी राय लेने राजा लोग सावधानी रखते थे। महा-भारतमें भी स्पष्ट देख पडता है कि लोगें की राय लेनेकी परिपाटी थी। युद्धके समय, हस्तिनापुरमें, राजा श्रीर ब्राह्मण लोगोंकी ऐसी ही सभा वैठी थी: और वहाँ युद्धके सम्बन्धमें सब लोगोंको एव लेनेकी आवश्यकता हुई थी। वहीं श्री कृष्णने भाषण किया। कभी कभी राजाके चनावका भी श्रिधिकार लोगोंको था। युद्ध पश्चात्, सव ब्राह्मणां और राजा लोगोंकी अनुमतिसे ही, युधिष्ठिरने अपने श्रापको श्रभिषिक्त कराया था। खैर; इस प्रकार राजात्रोंकी सत्ता सभी स्थानीमे स्थापित हो गई थी, यह बात नहीं है। अन्य प्रकारको सत्ताका क्या प्रमाण मिल सकता है, यह हमें यहाँ देखना चाहिए।

श्रीस देशमें जैसे प्रजासत्ताक या श्रव्यजनसत्ताक राज्य स्थापित हुए थे वैसे हिन्दुस्थानमें भी कहीं कहीं स्थापित हुए थे। यहाँ इस व्यवस्थाके होनेका इहं हाल श्रप्रत्यत्त रीतिसे महाभारतसे मात्म पड़ता है। यूनानी इतिहासकारोंने लिख रखा है कि हिन्दुस्थानमें प्रजासत्ता

राज्य थे। बौद्ध प्रन्थोंमें भी लिखा है कि कपिलवस्तुके शाक्य श्रौर लिच्छ्वी लोगों-में राजसत्ता कुछ थोड़ेसे प्रमुख लोगोंके-ब्रुधीन थी। महाभारतमें कुछ लोगोंको भाग कहा गया है। यह वर्णन उसी राजसत्ताके सम्बन्धमें है जो कुछ प्रमुख लोगोंके अधीन रहा करती थी। गणान्उत्सवसंकेतान् दस्युन्पर्वतवासिनः।

ग्रजयत् सप्त पाग्डवः॥

इसमें वर्णित है कि पर्वत-वासी सात ग्रांको-उत्सव-संकेत नामके लोगांको-वर्जनने जीत लिया था । सभापर्वमें वर्णित गण इसी प्रकारके लोग थे। यह बात प्रसिद्ध है कि पहाड़ी प्रदेशोंमें रहने-वाले लोग प्रायः स्वतन्त्र श्रौर प्रजासत्ताक-प्रवृत्तिके होते हैं। महाभारतमें कई स्थानों-में लिखा है कि गणों में प्रमुखता किस प्रकार प्राप्त करनी चाहिए। महाभारत-कालमें 'गणपति' एक विशिष्ट पदवी मानी जाती थी, जिसका श्रर्थ 'गणोंका मुखियां होता है। हा ाह विकास है

यही निश्चय होता है कि महाभारतमें उत्सव, संकेत, गोपाल, नारायण, संश-प्रक इत्यादि नामोंसे जो "गण" वर्णित हैं, वे प्रजासत्ताक लोग होंगे। जान पड़ता है कि ये लोग। पञ्जाबके चारों श्रोरके पहाड़ोंके निवासी होंगे। वर्तमान समय-में वायव्य सीमा-प्रान्तमें जो श्रफ़ीदी श्रादि जातिके लोग हैं, वे ही प्राचीन समयके गए। होंगे । गणींके सम्बन्धमें शान्ति पर्वके १०७ वें ऋध्यायमें युधिष्टिरने स्पष्ट प्रश्न किया है। उसमें यह कहा है कि रन लोगोंमें बहुत्वके कारण मंत्र नहीं हो सकता और इनका नाश भेदसे होता है: भेदम्लो विनाशो हि गणानामुपलच्ये। मंत्रसंवरणं दुःखं बहुनामिति मे मितः॥

ये लोग प्रायः एक ही जाति श्रीर वंश-के हुआ करते थे; इसलिए इनका नाश केवल भेदसे ही हो सकता था। यथा-जात्याच सहशाः सर्वे कुलेन सहशास्तथा। भेदाचीव प्रदानाच भिद्यन्ते रिपुभिर्गणाः॥

ये गरा धनवान और शर भी हुआ करते थे: जैसे

दृव्यवंतश्च शूराश्च शस्त्रज्ञाः शास्त्रपारगः।

परन्तु इन लोगोंमें मंत्र नहीं हो सकता था। भीष्मका कथन है—

न गणाः कृतस्नशो मन्त्रं श्रोतुमईन्ति भारत। इस वर्णनसे स्पष्ट देख पड़ता है कि

महाभारतमें कहे हुए गण प्रजासत्ताक लोग ही हैं।

यूनानियोंको भी पञ्जावमें कुछ प्रजा-सत्ताक लोगोंका परिचय हुआ था। सिकन्दरके इतिहासकारोंने मालव शदक-का वर्णन इस प्रकार किया है:-"मालव स्वतन्त्र इरिडयन जातिके लोग हैं। वे बडे शर हैं और उनकी संख्या भी अधिक है। मालव श्रोर श्राक्सिड़े (चुद्रक) के, भिन्न भिन्न शहरोंमें रहनेवाले अगुत्रात्रों और उनके प्रधान शासकों (गवर्नर) की श्रोरसे, वकील श्राये थे। उन्होंने कहा कि हमारा स्वातन्व्य श्राजतक कभी नष्ट नहीं हुआ, इसी लिए हम लोगोंने सिकन्दरसे लड़ाई की।" "उक्त दो जातियोंकी श्रोरसे सो दूत श्राये। उनके शरीर बहुत बड़े श्रौर मज़वृत थे। उनका स्वभाव भी बहुत मानी देख पड़ता था। उन्होंने कहा कि श्राजतक हमने श्रपनी जिस खाधीनताकी रत्ता की है, उसे श्रव हम सिकन्दरके श्रधीन करते हैं " (श्ररायन पृष्ठ १५४) ये लोग मुलतानके समीप-रावी श्रौर चन्द्रभागाके सङ्गमके पास रहा करते थे। यह भी लिखा है कि इनके उस श्रोर श्रंबष्ट जातिके लोग—"अनेक शहरोंमें रहते हैं श्रीर उनमें प्रजासत्ताक राज्य-व्यवस्था है।" (मैक्किंडल गृत सिकन्दर-की चढ़ाईका वर्णन)

युनानियोंके उक्त वर्णनसे भी यही निश्चय होता है कि गए प्रजासत्ताक व्यवस्थासे रहनेवाले लोग थे। शिला-लेखों-में इन मालवोंको 'मालवगण' कहा गया है। इसका भी अर्थ वही है। इस शब्दके सम्बन्धमें श्रनेक लोगोंने सन्देह प्रकट किया है: परन्त गणोंका जो वर्णन महा-भारतके श्राधार पर ऊपर किया गया है, उससे यह सन्देह नष्ट हो सकता है। युनानियोंकी चढ़ाईके श्रनन्तर पञ्जाब-निवासी यही मालव लोग स्वाधीनताकी रताके लिये मालवा प्रान्ततक नीचे उतर श्राये होंगे श्रीर वहाँ उज्जैनतक उनका राज्य स्थापित हो गया होगा। विक्रम इन्हीं लोगोंका श्रगुश्रा होगा। उसने पञ्जाब-के शकोंको पराजित किया। मन्दोसरके शिलालेखमें-"मालवगण स्थिति" नामसे जो वर्ष-गणना है, वह इन्हीं लोगोंके सम्बन्धमें है श्रीर यही विक्रम संवत् है। इन्हीं लोगोंके नामसे इस प्रान्तको मालवा कहते हैं।

अस्तुः इसके बाद भारती-श्रायोंकी राजकीय उत्क्रान्ति तथा युनानियोंकी उत्कान्तिकी दिशा भिन्न दिखाई देती है। उधर पश्चिमको श्रोर युनानियोंमें प्रजा-सत्ताक-प्रवृत्ति धीरे धीरे बढ़ती गई श्रौर प्रजासत्ताक राज्य-प्रवन्ध्रकी श्रच्छी श्रच्छी कल्पनाएँ प्रचलित हो गई; श्रीर इधर भरतखर्डमें राजसंस्था वलवान् होती गई तथा राजाकी सत्ता पूर्णतया प्रस्था-पित हो गई। इसका कारण हमें टूँढ़ना चाहिए। जैसे जैसे वर्ण-व्यवस्था दढ़ होती गई, वैसे वैसे राजाश्रोंके श्रधिकार मजवृत होते गये; श्रौर जैसे जैसे राज्यमें शृद् वर्णकी वृद्धि होती गई, वैसे वैसे प्रजाका श्रिधिकार घटता गया। जब यह बात निश्चित हो चुकी कि राज्य करना चत्रियों-का ही अधिकार है और यह उन्हींका

मुख्य धर्म है, तब ब्राह्मण और वैश्य (विशेषतः वैश्य) राज-काजसे अपना मन हटाने लगे। दूसरे, जब राज्य छोटे छोटे थे श्रीर श्रिधिकांश लोग श्रार्य ही थे उस समय राजकीय प्रश्नोंके सम्बन्धम लोगोंकी सभा करके उनकी राय लेना सम्भव और उचित भी जान पड़ता था। परन्तु जब राज्य विस्तृत हो गये, शुरु लोगों श्रीर मिश्र वर्णके श्रान्य लोगोंकी संख्या बहुत बढ़ गई, श्रीर इन लोगींकी राय लेना अनुचित मालूम होने लगा.तव पेसी सभाशांका निमंत्रण रक गया होगा। स्वभावतः शृद्धोंको पराजितके नाते राजकीय अधिकारोंका दिया जाना सम्भव नहीं था। यह बात भी ध्यान देने योग है कि वहुत वड़ी मनुष्य-संख्याकी श्रोरसे प्रतिनिधि द्वारा सम्मति लेनेकी आधुनिक पाश्चात्य पद्धति प्राचीन-कालमें नहीं थी। यह पद्धति श्रीक श्रीर रोमन लोगोंको भी मालम न थी। इसलिए श्रीक श्रीर रोमन लोगोंकी प्रजासत्ताक राजव्यवसा के अनुसार प्रत्येक श्रीक या रोमन मनुष् को लोक-सभामें उपस्थित होना पड़ता था। श्रवएव वहाँके प्रजासत्ताक राज्यों-का प्रवन्ध धीरे धीरे विगडता चला गया श्रीर श्रन्तमें वे राज्य नष्ट हो गये। इसी प्रकार, हिन्दुस्थानमें भी जबतक राज्य छोटे थे और राज्यके अधिकारी लोग आप थे, तबतक राजकीय बातोंमें इन थोड़ लोगोंकी राय लेनेकी रीति जारी थी। परन्तु श्रागे जब राज्यका विस्तार वह गया, लोगोंकी संख्या श्रिष्ठक हो गई, श्रीर शद्र लोग भी चात्र वंग्यमें समा विष्ट हो गये, तब सर्व साधारणकी राष लेनेकी रीति बन्द हो गई। इसका एक दढ़ प्रमाण हमें देख पडता है। वह इस प्रकार है:-

हिन्दुस्थानमें पश्चिमी प्रदेशके श्रीर

विशोषतः पहाड़ी मुल्कके लोग एक ही वंश-के, मुख्यतः श्रार्यं जातिके थे । इसलिए उनकी व्यवस्था निराली थी, यानी वह प्रमुख लोगोंके हाथमें स्वतंत्र प्रकारकी थी। इसके विरुद्ध, पूर्वकी श्रोर मगध ब्रादि देशोंके राज्य बड़े थे। वहाँकी प्रजा विशेषतः ग्रुद्ध वर्णको या मिश्र वर्णकी श्रिषक थी, इसलिए वहाँकी राज-व्यव-ह्या दूसरे ही ढंगकी थी, श्रर्थात् वह राज-सत्ताक थी। यह बात ऐतरेय ब्राह्मणके नीचे दिये हुए अवतर एसे माल्म हो जायगी। रमेशचन्द्र दत्तने इस अवतरण-को श्रपनी पुस्तकों में लिया है । इसका भाषार्थ यह है:—"पूर्व राजाकी 'सम्राद् पदवी है, दिचणके राजाको 'भोज' कहते हैं, पश्चिमी लोगोंमें 'विराट्' नाम है, श्रीर मध्यदेशमें राजाको केवल 'राजा' ही कहते हैं।" इससे प्रकट होता है कि पूर्वी लोगों-में सम्राट् त्रथवा वादशाह संज्ञा उत्पन्न हो गई थी। वहाँके राजाश्रोंके श्रधिकार पूरी तरहसे बदल गये थे श्रीर साधारण लोगोंके अधिकार प्रायः नष्ट हो गये होंगे। <mark>श्रिधक क्या कहें, एकतंत्र राज्य-पद्धति</mark> प्रथम पूर्वी देशों में ही जारी हुई होगी। म्लेच्छ श्रथवा मिश्र शार्य इसी देशमें अधिक थे। इतिहाससे मालूम होता है कि पूर्वकी श्रोर मगधका राज्य बलवान् हो गया श्रीर श्रागे वही हिन्दुस्तानका सार्वभौम राज्य हो गया। यह भी निर्वि-वाद है कि पूर्वी राजाश्रोंकी सम्राट् पदवी थी। उपनिषदोंमें भी देख पड़ता है कि जनकको वही पद्वी दी गई थी। अर्थात् मगधके सिवा विदेहके राजाश्रोंकी भी यही संज्ञा थी। महाभारतसे भी प्रकट होता है कि दिच्च एक राजाश्रोंको भोज कहते थे। दित्ति एके बलवान् राजा भीष्मक श्रोर हक्मीको यही 'भोज' संज्ञा दी गई है। रसी प्रकार देख एड़ता है कि मध्यप्रदेश-

के कुरु-पाञ्चाल ग्रादि लोगोंके राजाश्रोंके लिए, महाभारतमें भी केवल 'राजा' पद-का उपयोग किया गया है। मत्स्य देशके विरादके नाममें इस विचार-श्रेणीसे कुछ विशेष अर्थ प्रतीत होता है। श्रस्तुः उपरके श्रवतरणसे, श्रोर महाभारतसे भी, यही दढ़ श्रनुमान निकलता है कि सम्राद्की कल्पना पूर्वकी श्रोरके मिश्र लोगोंके बड़े विस्तीर्ण राज्योंके श्राधार पर उत्पन्न हुई होगी।

प्राचीन साम्राज्य-कल्पना।

सम्राट्की कल्पनाकी उत्पत्तिके विषयमें एक चमत्कारिक सिद्धांत महा-भारतके सभापर्वमें वतलाया ग्या है। जव युधिष्टिर राजसूय यज्ञका विचार करने लगे, तब उन्होंने श्रीकृष्णकी राय ली। उस समय श्रीकृष्णने जो उत्तर दिया वह यहाँ उद्धृत करने योग्य है। श्रोक्रणाने कहा-"पहले जब परश्ररामने चत्रियोंका संहार किया था, उस समय जो चत्रिय भागकर छिप रहे थे, उन्हींकी यह सन्तान है, इसी लिए उनमें उम्र सात्र-तेज नहीं है । उन हीनवीर्य चत्रियोंने यह निश्चय किया है कि जो राजा सब चित्रयोंको जीतेगा उसीको अन्य राजा भी सार्वभौम मानेंगे । यह तरीका अब-तक चला श्राता है। इस समय राजा जरा-संघ सबसे बलवान है। पृथ्वीके सभी राजा चाहे वे ऐल राजा हो श्रथवा ऐच्वाक राजा हों, उसको कर देते हैं श्रीर श्रपने-को जरासन्धके श्रङ्कित कहते हैं। ऐस श्रीर ऐच्याक राजाश्रोंके सौ कुल हैं। उनमें भोज-कुलके राजा इस समय बिलष्ट हैं, श्रौर उनमेंसे जरासन्ध राजाने सबको पादाक्रान्त किया है। सारांश, सब चत्रियों-ने जरासन्यका श्राधिपत्य मान लिया है और उस सार्वभोम पद पर वैठा दिया है। जरासन्ध्रके ही भयसे हम लोग मधुरा देश छोड़कर द्वारकामें जा बसे हैं।" (सभा० श्र० १४)

श्रीकृष्णके उपर्युक्त भाषणसे यह मालम होता है कि सम्राट्या बादशाह-को नियुक्त करनेकी जो पद्धति हिन्दुस्थान-में पोछेसे जारी हुई, वह ब्राह्मणोंके भयसे और ब्राह्मलोंके सामर्थ्यको गिराने-के लिए जारी की गई थी। अर्थात् अनु-मान यह निकलता है कि एक समय राजाश्रोंको ब्राह्मण श्रसह्य हो होंगे। परन्तु यह कल्पना गुलत होगी। इसका विचार आगे चलकर किया नायगा। यहाँ कहा गया है कि सम्राट या बादशाहको नियुक्त करनेकी जो नयी रीति चल पड़ी थी, वह सब राजा लोगों-की सम्मतिसे प्रचलित हुई थी। इस बात पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि सम्राट् राजाको सम्राट् होनेका चिह्न प्रकट करना पड़ता था; श्रर्थात् उसे राजस्य यज्ञ करना पड़ताथा; श्रीर ऐसे यज्ञके लिए उसे दिग्विजय करके भिन्न भिन्न राजा लोगोंको जीतना पड़ता था। परन्तु यह भी सिद्ध है कि सम्राट्को कई राजा लोग खयं श्रपनी ही इच्छासे मान्य करके कर देते और राजसूय यज्ञकी सम्मति भी देते थे। इसी नियमके अनु-सार पाएडघोंके दिग्विजयके समय श्रीकृष्ण श्रादि लोगोंने स्वतन्त्रतापूर्वक श्रपनी सम्मति दी श्रीर कर भी दिया। यहाँ हमें इस बात पर श्रवश्य ध्यान देना चाहिए कि भारत-कालमें साम्रा-ज्यकी जो यह कल्पना शुरू हुई, वह सिक-स्यरके समयकी मगधोंके साम्राज्यकी कल्पनासे भिन्न थी। बौद्ध लेखोंसे मालूम होता है कि मगधोंका साम्राज्य न केवल श्रन्य राजाश्रोंको जीतकर ही स्थापित हुआ था, किन्तु उस समय श्रन्य राजा-

श्रोंके राज्य भी उस साम्राज्यमें शामिल कर लिये गये थे और वहाँके राजवंश नष्ट कर दिये गये थे। बुद्धकी मृत्युके बाद मगधोंने प्रथम काशी श्रीर कोसलके राज्य श्रपने राज्यमें मिला लिये। इसके वाद उन्होंने धीरे धीरे पूर्वी तथा पश्चिमी राज्योंको भी जीतकर श्रपने राज्यमें मिला लिया। हमारा मत है कि इसी समयके लगभग कायरसने जो पर्शियन साम्राज्य स्थापित किया था, उसीके अनुकरण पर यह वात हुई। श्रन्य राज्योंको जीतकर श्रपने राज्यमें शामिल करके वहाँ श्रपने श्रिधकारियों, गवर्नरों या सॅट्रपोंको नियुक्त करनेकी रीति पर्शियन बादशाहोंने पहले जारी की। इसीके अनुकरण पर मगधके सम्राटोंने श्रन्य चत्रिय राज्योंको नष्ट करनेका क्रम आरम्भ कर दिया। हिन्दु-स्थानमें चत्रियोंका अन्त करनेवाला मगधा-धिपति महानन्दी था। इस बातका वर्णन, महाभारतके अनन्तर जो पुराण हुए, उनमें स्पष्ट पाया जाता है। मगधोंके इन सम्राटोंने, विशेषतः चन्द्रगुप्तने, पर्शियन वादशाह दारियसकी स्थापित की हुई सब रीतियाँ पाटलीपुत्रमें जारी कर दीं। महा-भारतमें ऐसे साम्राज्योंका कुछ भी पता नहीं है। यह स्वीकृत करना होगा कि महाभारत चन्द्रगुप्तके साम्राज्यके बाद बना है। इससे कुछ लोग अनुमान करते हैं कि महाभारतकी मगधोंके साम्राज्यकी कल्पना श्रौर जरासंधका चित्र चन्द्रगुप्तके साम्राज्यके श्राधार पर बना है। परनु यह श्रनुमान ठीक नहीं जँचता। जरा संधका साम्राज्य प्राचीन पद्धतिका है। त्रर्थात्, उसमें जीते दुए राष्ट्रीको नष्ट करनेका कुछ भी प्रयत्न नहीं किया गया था। साम्राज्यकी कल्पना बहुत पुरानी श्रर्थात् बाह्यण-कालीन है श्रीर उसकी सम्बन्ध राजसूय यज्ञसे है। उसमें बार

शाहतका मुल्क किसी रीतिसे वढ़ाया वहीं जाता था; श्रीर न सम्राट्के श्रिध-कार एकतन्त्र होते थे। हमारा यह मत है कि महाभारतमें वर्णित जरासंधका श्राचीन चित्र, प्राचीन समयके वर्णनों श्रीर प्राचीन काल्पनाश्रोंके श्रनुसार, रंगा गया है।

महाभारतकालीन साम्राज्य और राजसत्ता।

महाभारतके समय राजसत्ता पूर्ण रीतिसे अनियन्त्रित हो चुकी थी और सब जगह राज्य भी स्थापित हो चुके थे। प्रजासत्ताक राजव्यवस्था श्रोर सर्व-साधारणकी सभाके जो वर्णन कहीं कहीं पाये जाते हैं, उन्हें प्राचीन समभना चाहिए। महाभारतके शांति पर्वमें जो राजव्यवस्था वर्णित है, वह पूर्ण श्रनिय-न्त्रित खरूपकी है। उस समयके लोग यह मानते थे कि राजाकी इच्छा पर-मेश्वरकी इच्छाके समान बलवान है श्रोर राजाने अपने अधिकार देवताओंसे प्राप्त किये हैं। प्रजा, राजाकी आज्ञाको, देवताकी श्राज्ञाके समान माने। राजाके विरुद्ध कोई काम या बलवा न किया जाय। राजाके शरीरको किसी तरहकी हानि न पहुँचाई जाय। अनेक देवताओंके योगसे राजाकी देह बनी है श्रीर स्वयं भगवान विष्णु राजाकी देहमें प्रविष्ट है। उस समय यह एक बड़ा जटिल म्भ था कि राजाका अधिकार कहाँसे श्रीर कैसे उत्पन्न हुन्ना । तत्ववेत्ता-श्रोंको इसके सम्बन्धमें वड़ी कठिनाई हो रही थी। उन्होंने एक विशिष्ट रीतिसे रस प्रक्षको हल करनेका प्रयत्न किया है। शान्ति पर्वमें राजधर्म-भागके प्रारम्भमें ही युधिष्ठिरने भीष्मसं यह प्रश्न किया है— "राजन् शब्द केसे उत्पन्न हुआ श्रोर अन्य

लोगों पर राजाका श्रिधकार क्यों चलता है ? अन्य मनुष्योंके समान ही राजाके दो हाथ और दो नेत्र हैं श्रीर श्रन्य मनु-ष्योंकी श्रपेचा उसकी वुद्धिमें भी कुछ विशेषता नहीं।" इस पर भीष्मने उत्तर दिया कि पहले कृतयुगमें राजा थे ही नहीं; उस समय सव लोग खतन्त्र थे। वे श्रपनी स्वतन्त्र इच्छासे धर्मका प्रति-पालन करते थे । परन्तु श्रागे काम, कोघ, लोभ आदिके ज़ोरसे ज्ञानका लोप और धर्मका नाश हो गया। कर्तव्य-श्रकर्तव्यको जानना कठिन हो गया। वेद भी नष्ट हो गये। यज्ञादि द्वारा स्वर्गलोकसे वृष्टिका होना वन्द हो गया। तव सव देवताश्रोंने ब्रह्माको प्रार्थना को। ब्रह्माने श्रपनी बुद्धि-से एक लाख अध्यायोंके एक अन्धका निर्माण किया। उसमें धर्म, अर्थ और कामका वर्णन किया गया है। इसके श्रतिरिक्त उसमें प्रजापालनकी विद्या भी विस्तारपूर्वक वतलाई गई है। साम, दान, दएड, भेद श्रादिका भी वर्णन उसमें है, श्रीर लोगोंको दएड देनेकी रीति भी उसमें बतलाई गई है। यह अन्थ ब्रह्माने शङ्करको सिखलायाः शङ्करने इन्द्रको, श्रोर इन्द्रने बहस्पतिको सिखलाया । बहस्पति-ने ३००० श्रध्यायोंमें उसको संजिप्त करके जनतामें प्रसिद्ध किया। वही बृहस्पति-नीति है। ग्रुकने फिर उसका १००० श्रध्यायोंमें संचेष किया। प्रजापतिने यह ग्रन्थ पृथ्वीके पहले राजा श्रनङ्गको दिया श्रीर उससे कहा कि इस शास्त्रके अन-सार राज-काज करो। जब उसके नाती वेनने इन नियमोंका उल्लाइन किया और वह अपनी प्रजाको कष्ट देने लगा, तब ऋषियोंने उसे मार डाला श्रौर उसकी जाँघसे पृथु नामका राजा उत्पन्न किया। उसे ब्राह्मणों श्रोर देवताश्रोंने कहा— 'राग श्रोर द्वेष त्याग करके, सब लोगों-

के विषयमें सम-भाव रखकर, इस शास्त्र-के अनुसार पृथ्वीका राज्य कर। यह भी श्रमिवचन दे, कि ब्राह्मणोंको दएड नहीं दूँगा श्रोर वर्ण-सङ्कर न होने दूँगा।" तब पृथुने वैसा बचन दिया श्रीर पृथ्वी-का राज्य न्यायसे किया। उसने पृथ्वी पर-से पत्थर श्रलग कर दिये। इससे पृथ्वी पर सब प्रकारके शस्य श्रोर वनस्पतियाँ पैदा होने लगीं । उसने प्रजाका रञ्जन किया जिससे उसे 'राजा' संज्ञा प्राप्त हई। विष्णाने तपसे उसके शरीरमें प्रवेश किया और यह नियम बना दिया कि उसकी श्राज्ञाका कोई उल्लान न करे। श्रतएव सारा जगत् राजाको देवताके समान प्रणाम करता है। राजा विष्णुके श्रंशसे जन्म लेता है । उसे जन्मसे ही दराइनीतिका ज्ञान रहता है" (शान्ति पर्व अ०६)। इस प्रकार, महाभारत-कालके तत्त्ववेत्तात्रोंने, राजाकी सत्ताकी उत्पत्ति-के विषयमें विवेचन किया है । ब्रह्माने विष्णुके श्रंशसे राजाकी विभूति इसलिए उत्पन्न की है कि लोगोंमें श्रधर्मकी प्रवृत्ति न होने पावे। परन्तु उन्होंने यह सिद्धान्त बतलाया है कि राजाके साथ ही साथ ब्रह्माने द्राडनीतिका शास्त्र भी उत्पन्न किया है।

नीति-नियमोंसे राजसत्ताका नियन्त्रण ।

राजाकी श्रनियन्त्रित सत्ताको निय-मित करनेकी व्यवस्था इस तरह की, गई थी। श्रव उस पर कुछ श्रौर ध्यान देना चाहिए। यद्यपि हिन्दुस्थानके प्राचीन राजा लोग श्रनियन्त्रित राजसत्तावाले थे, तथापि वे एक रीतिसे सुव्यवस्थित श्रौर नियन्त्रित भी थे। लोगोंकी रचाके लिए जो नियम ब्रह्माने बना दिये थे, उनका उल्लाह्मन करनेका राजाको भी श्रिधि- कार न था। उन्हें घटाने या बढ़ानेका भी अधिकार राजाको न था। जिस प्रकार राजाके अधिकार परमेश्वरसे प्राप्त हुए थे, उसी प्रकार राज्यशासनके नियम भी परमेश्वरसे निर्मित होकर प्राप्त हुए थे। अतएव उनका अनादर करनेका, उन्हें बदलनेका या नये नियमोंको जारी करने-का अधिकार राजा लोगोंको न था। प्राचीन भारती आर्थ तत्त्ववेत्ताओंने राजाओंके अनियन्त्रित अधिकार या राजसत्ताको इस रीतिसे नियन्त्रित कर देनेकी व्यवस्था की थी।

प्राचीन तथा श्रद्धांचीन श्रथवा प्राध्य तथा पाश्चात्य राजसत्ता-सम्बन्धी कल्पना-में जो यह महत्वका भेद है, उस पर अवस्य ध्यान देना चाहिए। राजकीय सत्ताका स्थान चाहे राजा रहे या प्रजासत्ताक राज्यकी कोई लोक-नियक्त राज-समा रहे, पाश्चात्य तत्त्वज्ञानियोंकी यह मीमांसा है कि सब नियम या कानून उसी केन्द्र स्थानसे बनते हैं। पाश्चात्य राजनैतिक शास्त्रका कथन है कि कानूनमें जो कानूनका स्वरूप है, अथवा जो वन्ध्रन है, वह राजसत्ताकी श्राज्ञासे प्राप्त हुआ है। इस रीतिसे देखा जाय तो पाश्चात्य देशोंमें राजा या राजकीय संस्थात्रोंका मुख्य कर्त्तव्य यही होता है कि राजा, प्रजाके व्यवहारके लिए, समय समय पर कानून बनावे। राजाके अनेक श्रिधकारों में से बड़े महत्त्वका एक श्रिधकार यह है कि राजा नये कानून बना सकता है; श्रोर स्वेच्छाचारी राजागण समय समय पर जुल्मसे कानून बनाकर लोगी को कायदेकी रीतिसे सता सकते है। हिन्दुस्थानके भारती आयोंकी विचार पद्धति इससे भिन्न थी। उनकी रायमे कायदोंका उद्गमस्थान राजाकी नहीं है: इन कायदों या नियमोंके लिए

प्रत्यत्त ईश्वर या ब्रह्माकी आज्ञाका ही श्राधार है। ये आक्षाएँ वृहस्पतिके दग्ड-तीति शास्त्रमें वर्णित हैं और श्रुति स्मृति ब्रादि ग्रन्थोंमें प्रतिपादित हैं। इन श्राज्ञा-श्रोंको बदलनेका या नई आज्ञाश्रोंको प्रका-शित करनेका अधिकार राजा लोगोंको तहीं है। वर्तमान समयमें राजसत्ताका जो प्रधान श्रंग प्रसिद्ध है वह हिन्दुस्थानके प्राचीन राजाश्रोंका न था। उस समयके राज्योंमें, आजकलकी नाई, लेजिस्लेटिव कौन्सिलं न थीं। नये अपराध या नये दग्ड उत्पन्न करनेका राजसत्ताको अधि-कार न था। वारिसोंके सम्बन्धमें जो पद्धति धर्मशास्त्रमें वतलाई गई है उसे राजा बदल नहीं सकते थे। वे जमीनका महस्रल बढ़ा नहीं सकते थे। राजा लोगों-का यही काम था कि वे धर्मशास्त्र या नीतिशास्त्रमें बतलाये हुए नियमोंका परि-पालन समबुद्धिसे तथा निष्पन्न होकर करें। यदि धर्मशास्त्रकी श्राज्ञाके समभने-में कुछ सन्देह हो, तो ऐसी सभाकी राय ली जाय जिसमें धर्म-शास्त्रवेता ब्राह्मण, चित्रय और वैश्य सम्मिलित हों: श्रीर फिर कायदेका श्रर्थ समभकर उसका परिपालन किया जाय। हाँ, यह बात सच है कि राजकीय सत्ता-सम्बन्धी पेसे सिद्धान्तोंसे उन्नतिमें थोड़ासा प्रति-वन्ध होता होगा। परन्तु स्मरण रहे कि रस व्यवस्थाके कारण राजात्रोंके अनि-यन्त्रित स्रोर स्वेच्छाचारी व्यवहारको कायदेका स्वरूप कभी नहीं मिल सकता। श्रीर इस व्यवस्थासे समाजकी स्थितिको चिरस्थायी सक्तप प्राप्त हो जाता है। यह कहनेमें कोई हर्ज नहीं कि इस प्रकार समाजकी स्थिरता सिद्ध हो जानेके कारण, प्राचीन कालमें, हिन्दुस्थानके राज्य श्रनियन्त्रित राजसत्ताके श्रधीन होने पर भी बहुत सुखी थे।

उक्त कथासे यह भी श्रनुमान निक-लता है कि जो राजा धर्मशास्त्रके अनु-सार प्रजाका परिपालन न करे, उसे श्रलग कर देनेका श्रधिकार ऋषियोंको था। प्राचीन कथा है कि ऋषियोंने वेन राजाको मार डाला था। श्रव यह देखना चाहिए कि ऐसे कुछ श्रीर उदाहरण भी महाभारतमें हैं या नहीं। परन्तु उस समय यह कल्पना श्रवश्य थी कि राज्य करनेका अधिकार राजवंशको ही है, क्योंकि वेन राजाकी जाँघसे नया पुत्र उत्पन्न करके उसे राजा बनाया गया था। जहाँ यह कल्पना होती है कि राजसत्ता ईश्वरदत्त है, वहाँ राजवंशका ही श्रादर होता है। यह वात पाश्चात्य तथा प्राच्य देशांके अनेक उदाहरणोंसे सिद्ध हो सकती है। इसी कारण हिन्दुस्थानमें प्राचीन काल-से भारत-कालतक अनेक राजवंश बने रहे। जब बौद्ध धर्मके प्रचारसे धर्मशास्त्र-के सम्बन्धमें लोगोंका श्रादर-भाव घट गया, तव राजसत्ता पूरी श्रनियन्त्रित हो गई श्रीर साथ ही साथ राजवंशका श्रादर भी घट गया। परिणाम यह हुआ कि जो चाहे सो राजा वनने लगा श्रीर मनमाना राज्य करने लगा। यहाँ इतना श्रवश्य कह देना चाहिए कि यह परिस्थिति महाभारत-कालके लगभग उत्पन्न हुई थी जो उसके बाद विशेष रूपसे बढ़ती चली गई।

राजा श्रीर प्रजाके बीच इकरारकी कल्पना।

राजसत्ताकी मूल उत्पत्ति कैसे हुई ?
श्रीर, उस सत्ताके साथ ही साथ न्यायामुसार राज्य करनेकी जवाबदेही राजा
लोगों पर कैसे श्रा पड़ी ? इन प्रश्नोंके
सम्बन्धमें एक श्रीर सिद्धान्त महाभारतमें पाया जाता है। इस सिद्धान्तमें यह
कल्पना की गई है कि राजा श्रीर प्रजाके

वीच इकरार हुआ था। पाश्चात्य देशोंमें हॉब्स श्रादि राजकीय तत्ववेत्तात्रोंने यह सिद्धान्त प्रदिपादित किया है कि श्रारम्भ-में राजा श्रीर प्रजाके बीच इकरार होता है। इस बात पर ध्यान रहे कि हज़ारों वर्ष पहले भारती श्रायोंने यही सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। शान्ति पर्वके ६७ वें श्रध्यायमें यह वर्णन है कि पहले राजाके न रहनेसे वली निर्वलको, जलकी मछ-लियोंकी नाई खाने लगे। तब सब लोगों-ने मिलकर नियम किया कि "जो कोई किसीसे कट भाषण करेगा, उसे मारेगा, या किसीकी स्त्री या द्रव्यका हरण करेगा, उसे हम त्याग देंगे। यह नियम सब वर्णोंके लिये एकसा है"। परन्तु जब इसका परिपालन न हुआ तव सारी प्रजा ब्रह्माके पास गई श्रीर कहने लगी कि हमारा प्रतिपालन करनेवाला कोई श्रिध-पति हमें दो। तव ब्रह्माने मनुको श्राज्ञा दी। उस समय मनुने कहा- "में पापकर्म-से उरता हैं। श्रसन्मार्गसे चलनेवाले मनुष्यों पर राज्य करना पाप है।" तब लोगोंने कहा,—"राष्ट्रमें जो पाप होगा सो कत्ताको लगेगा। तू मत डर। तुभे हम पशुश्रोंका पचासवाँ हिस्सा श्रोर श्रनाज-का दशमांश देंगे। कन्यात्रोंके विवाहके समय हम तुसे एक कन्या देंगे। शस्त्र, श्रस्त्र श्रीर वाहन लेकर हमारे मुखिया लोग तेरी रचाके लिए तेरे साथ रहेंगे। त् सुख तथा श्रानन्दसे राज्य कर। हस श्रपने धर्माचरणका चौथा हिस्सा भी तुभे देंगे।" इसको स्वीकार कर मनु राज्य करने लगा। श्रधमी लोगों श्रीर शत्रुश्रोंको दगड देकर धर्मके समान उसने राज्य किया। इस कथामें इकरार-सम्बन्धी यह कल्पना की गई है कि राजा, धर्मके श्रनुसार प्रजा पर राज्य करे तथा श्रध-मियांको दएड दे: श्रीर प्रजा उसे कर

दे, मुख्यतः जमीनकी पैदावारीका दश-मांश, पश्च तथा व्यापार श्रादिका पचा-सवाँ हिस्सा दे । यह मान लेनेमें कोई हर्ज नहीं कि प्राचीन कालमें भरतखराडके राजा श्रीर प्रजा दोनों इस प्रतिज्ञाके श्रमु-सार चलते थे श्रीर राजा लोग इससे श्रिक कर नहीं लेते थे।

अराजकताके दुष्परिणाम।

प्राचीन कालमें इस प्रकार इकरार-सम्बन्धी श्रीर धर्मशास्त्र-सम्बन्धी दोनी कल्पनाश्चोंके प्रचलित होनेसे राजाश्चोंको मनमाना व्यवहार करनेका मौका नही मिलता था। यदि कोई राजा अत्याचार करे भी, तो उसके श्रत्याचारको कायदेका खरूप प्राप्त नहीं हो सकता था, इसलिए उसका जुल्म कुछ थोड़ेसे लोगोंको हानि पहुँचाता श्रीर सारे राष्ट्रके लिए हानिकर नहीं होता था। इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि राजा चाहे जितना श्रत्या चारी क्यों न हो, परनत जिस समाजमें श्रराजकता प्रवल है उसकी श्रपेचा, राज-सत्तासेशामिल राज्य सदा अधिक बलवार और सुखी रहता है। अराजकतासे उत्पन्न होनेवाले परिणाम महाभारतमें उत्तम रीतिसे वर्णित हैं। ऐसी अराजक परि स्थिति इतिहासमें वार वार उत्पन्न हुन्ना करती होगी, इसलिए इसके बुरे परि णामोंकी श्रोर लोगोंका ध्यान श्राकर्षित हुआ होगा। शांति पर्वके ६= वें अध्यायः में यह वर्णन है-"राजा धर्मका मूल है। श्रधर्मी लोगोंको दंड देकर वह उन्हें रास्ते पर लाता है। जैसे चन्द्र श्रोर सूर्य के न होनेसे जगत श्रॅंथेरेमें सुस्त हो जायगा, वैसे ही राजाके न होनेसे सब लोग नष्ट हो जायँगे । कोई यह न कह सकेगा कि यह वस्तु मेरी है। राजाके व होनेसे स्त्री, पुत्र, द्रव्य आदि सब नष्ट ही

जायँगे। सर्वत्र श्रन्याकार हो जायगा। दुष्ट लोग श्रन्य जनोंके वाहन, वस श्रीर ब्रलंकार जबरदस्ती छीन लेंगे। धनवान लोगोंको प्रति दिन हत्या श्रौर वन्धनका भय बना रहेगा। कोई किसीकी बात न मानेगा। लोग डाक् वन जायँगे। कृषि ब्रीरवाणिज्यका नाश हो जायगा। विवाह-का ब्रस्तित्व नष्ट हो जायगा। धर्म श्रीर यश नष्ट हो जायँगे। चारों तरफ हाय हाय मचेगी। विद्यावत-सम्पन्न वाह्मण वेदोंका ब्रध्ययन न करेंगे। सारांश, सव लोग भयसे व्याकुल होकर इधर उधर भागने नगंगे। जवतक राजा प्रजाकी रता करता है, तबतक लोग श्रपने घरोंके हरवाजे खुले एखकर निर्भय हैं।" इस प्रकार श्रराजकताका वर्णन महाभारतमें अधिकतासे पाया जाता है। श्रतएव भारती कालमें इस वात पर विशेष जोर दिया जाता था कि हर एक राज्यमें राजाका होना श्रावश्यक है। युधिष्टिरने जब प्रश्न किया कि प्रजाका मुख्य कर्तव्य क्या है, तब भीष्मने यही उत्तर दिया कि राजाका चुना जाना ही पहला उद्योग है। यह भी कहा गया है कि बाहरसे कोई वलवान राजा राज्यार्थी होकर आवे तो अराजक राष्ट्र उसका सहर्ष श्रादर करे, क्योंकि श्राराजकतासे बढ्कर दूसरी भयानक स्थिति नहीं है।

श्रथं चेत् श्रभिवर्तेतं राज्यार्थीं वलवत्तरः । श्रराजकानि राष्ट्राणि हतवीर्याणि वा पुनः ॥ श्रत्युद्रम्याभिपूज्यःस्यादेतदेव सुमंत्रितम् । नहिपापात् परतरमस्ति किचिद्राजकात्॥

जबिक श्रराजकतासे परकीय राजा भला है, तब तो कहनेकी श्रावश्यकता नहीं कि श्रपना स्वकीय श्रत्याचारी राजा श्रराजकतासे बहुत ही श्रच्छा है। मालूम होता है कि श्रराजकताके भयके कारण हिन्दुस्थानमें प्राचीन कालमें ही राजसत्ता अधिक बलवान हो गई।

राजाका देवता-स्वरूप।

महाभारत-कालमें श्रिनियंत्रित राज-सत्ता पूरी तरहसे प्रस्थापित हो गई थी। सब लोगोंमें यह मत प्रचलित हो गया था कि राजाके शरीरको किसी तरहकी हानि न पहुँचने पावे। यदि कोई मनुष्य राजाके सम्बन्धमें श्रिपने मनमें कुछ भी पाय-भाव रखेगा, तो वह इस लोकमें क्लेश पाकर परलोकमें नरकका भागी होगा; यथा—

यस्तस्य पुरुषः पापं मनसाप्यनुचितयेत्। श्रसंशयमिह क्लिष्टः प्रेत्यापि नरकं वजेत्॥

शांति पर्वका यह श्लोक भी प्रसिद्ध है-नहि जात्ववमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः। महती देवता होषा नरक्षणे तिष्ठति॥

"राजाको मनुष्य जानकर कोई कभी उसका अपमान न करे, क्योंकि मनुष्य-रूपसे वह एक देवता ही पृथ्वी पर स्थित है।" जब राजा लोगोंको दंड देता है, तव वह यमधर्मक्षप है। जब वह पापी लोगोंको सजा देता है, तब वह श्रक्षि-ख-रूप है। जब वह पृथ्वी पर भ्रमण करके राष्ट्रकी देख-भाल करता है, तव सूर्य-स्वरूप है। जब वह अपकार करनेवाले लोगोंकी संपत्ति श्रीर रत छीनकर दूसरोंको देता है, तव वह कुवेर-सरूप है। मनुष्य कभी राजद्रव्यका श्रपहार न करे। जो श्रपहार करेगा वह इस लोक-में ऋौर परलोकमें निदित होगा।" सारांश यह है कि राजाओंका देवता सक्रप महा-भारत-कालमें पूर्ण रीतिसे प्रशापित हो गया था। श्रीर, राजाके सम्बन्धमें लोगोंके मनमें पूज्य भाव इतना श्रधिक दढ़ हो गया था कि राजाके शरीरको स्पर्श कर्ना भी महापातक समभा जाता था।

द्गड-स्वरूप।

प्रजाका पालन करना और प्रजाका न्याय करना ही राजाका प्रधान कर्तव्य था। दुष्ट मनुष्यको दएड देनेका अधिकार राजाको था। राजाके इस अधिकारको 'दराड' संज्ञा प्राप्त हुई थी। महाभारत-कालमें इस दएडका एक विलद्मण खरूप प्रस्थापित हो गया था। शांति पर्वके १२१वें तथा १२२वें अध्यायोंमें इसका वर्णन है। वह दराड कैसा होता है ? उसका खरूप क्या है ? उसका आधार कोनसा है ? इत्यादि प्रश्न युधिष्ठिरने किये हैं श्रौर इनके उत्तर देते हुए भीष्मने दग्डका वर्णन किया है। यह एक चमत्कारिक रूपक है। "इस दएडको प्रजापतिने प्रजाके संर-स्एके लिए ही उत्पन्न किया है। उसीका नाम है व्यवहार, धर्म, वाक् श्रोर वचन। यदि इस दएडका सदैव तथा उचित उप-योग किया जाय तो धर्म, अर्थ और काम-की प्रवृत्ति होती है। इसका उपयोग सम-बुद्धिसे तथा रागद्वेषका त्याग कर किया जाना चाहिए। यह दएड श्यास वर्णका है। इसके दंष्ट्रा, चार बाहु, श्राठ पैर, श्रनेक नेत्र श्रीर शंकुतुल्य कर्ण हैं। यह जटा धारण किये और कृष्णाजिन पहने हैं । ब्रह्माने उसे चित्रयोंको ही दिया है, अन्य लोगोंको नहीं। राजाको उचित है कि वह उसका मनमाना उपयोग न करे, किन्तु ब्रह्माने जिस दगड-नीतिका निर्माण किया है, उसके श्रनुसार उसका उपयोग करे। राजाके समस्त कर्तव्य इस दएड-नीतिके प्रन्थमें बतलाये गये हैं। मनुष्य-की श्रायु बहुत छोटी होती है, इसलिए शृहस्पतिने उस ग्रन्थको संचिप्त कर दिया है।" ऐसा अनुमान करनेमें कोई हर्ज

 इस स्वरूपकी कल्पनाको समभा देनेका प्रयत्न टीकाकारने किया है। इस पर आगे विचार किया जायगा।

नहीं कि वृहस्पतिका यह ग्रन्थ शौर शुक् की नीतिका ग्रन्थ, दोनों महाभारत-कालमें प्रसिद्ध थे श्रीर उनके तत्व महाभारतांत र्गत शान्ति पर्वके राजधर्म-भागमें दिये गये हैं। माल्म होता है कि ये तत्व बहुत उदात्त स्वरूपके थे, श्रीर महाभारत-कालम राजकाज तथा राज्य-व्यवस्था सम्बन्धी कल्पना बहुत ही अच्छी थी। परन्तु इस वात पर भी ध्यान रहे कि महाभारत कालमें राजसत्ता चत्रियोंके ही श्रधीन थी और ब्रह्माने द्राइ उन्हींको सींप दिया था। समाजमें चत्रियोंकी राजसत्ताका श्रिधिकार प्राप्त था। परन्तु ब्राह्मण-वर्ग उनसे भी श्रेष्ठ माना जाता था। बहुधा राजा लोगोंकी श्रद्धा धर्ममें पूर्णतासे रहा करती थी, इस कारण धर्मकृत राज-व्यव-हारके नियमांकी तोड देनेके लिये वे सहसा उद्यक्त नहीं होते थे। यदिवे उद्युक्त हो भी जाँय, तो उन पर ब्राह्मणी की धाक रहा करती थी: इस कारण विद्या श्रीर वतसे सम्पन्न ब्राह्मण उन्हें उपदेश दिया करते थे। अतएव, प्राचीन-कालमें राजसत्ता चाहे कितनी ही श्रनियंत्रित कों न रही हो, परन्तु उससे अत्याचार या श्रंधाधुन्धी कभी उत्पन्न नहीं हुई। वृह-स्पतिकी कथासे यह भी देख पड़ता है कि विद्या-विनय-सम्पन्न ब्राह्मण राज-सत्ताके बाहर थे। श्रव हम विस्तारपूर्वक इस वातका विचार करेंगे कि राजकीय संस्थाएँ दगडनीतिके अनुसार किस तरह अपना काम करती थीं।

वृहस्पति-नीतिमं वर्णित विषय।

इसमें सन्देह नहीं कि बृहस्पति श्रीर युक्तके श्रन्थोंके श्राधार पर ही, शांति पर्वके ५६ वें श्रध्यायमें, दएड-नीतिका वर्णन संत्रेपमें किया गया है। श्रुक्तनीति श्रन्थ इस समय उपलब्ध है, परन्तु उसमें ब्राधुनिक परिस्थितिका वर्णन दिया गया है। महाभारत्में बतलाई हुई राजनीति बहुत प्राचीन है। बृहस्पतिका ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं। फिर भी शान्ति पर्वके उपर्युक्त अध्यायसे स्पष्ट माल्म हो जाता है कि वृहस्पतिके प्रन्थमें कौन कौन विषय थे। श्रीर इससे यह बात भली भाँति माल्म हो जाती है कि दगड-तीतिमें कौन कौन विषय थे, तथा भारती-कालमें प्रजा-शासन-शास्त्र कैसा था। इस ग्रन्थमं सबसे पहले यह बतलाया है कि मनुष्यका इतिकर्तव्य धर्म, अर्थ, काम श्रीर मोच है। द्राडनीतिमें बतलाया गया है कि धर्म या नीतिकी रचा कैसे करनी चाहिए । अर्थ-प्राप्तिकी रीति सिखाने-वाला शास्त्र 'वार्त्ता' नामसे प्रसिद्ध है। मोज्ञका वर्णन करनेवाले शास्त्रको श्रान्वी-निकी कहते हैं। इन विभागोंके अनन्तर राजाके छः श्रङ्गों—संत्रिवर्ग,जासूस, युव-राज श्रादि—के सम्बन्धमें विचार किया गया है। इसके बाद यह विषय है कि श्रुके साथ साम, दान, दगड, भेद और उपेचाकी रीतिसे कैसे व्यवहार किया जाना चाहिए। इसमें सब प्रकारके गुप्त विचार, शतुत्रोंमें भेद करनेके मंत्र, निरुष्ट, मध्यम श्रीर उत्तम संधि, दूसरे राज्य पर चढ़ाई, धर्म-विजय और श्रासुर-विजय, श्रादि वातोंका वर्गान किया गया है। श्रमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, बल श्रोर कोष नामक पाँच वगौंके लच्चण बतलाये गये हैं। सेनाके वर्णनमें रथ, गज, अश्व, पदाति, विधि, नीका, गुप्तद्त श्रीर उपदेशक श्राठ श्रङ्ग बताये गये हैं। जारण, मारणादि उपाय, शतु, मित्र श्रोर उदासीनका वर्गान, भूमिका वर्णान, श्रात्म-संरत्त्त्ए, मनुष्य, गज, रथ श्रीर अध्वकी दढ़ता तथा पुछताके अनेक उपाय, नाना प्रकारके ब्यूह, इत्यादि बाते बतलाई गई हैं। युद्धके समयकी भिन्न

भिन्न कार्रवाई, उत्पात, श्रागे बढ़ना, पीछे हटना, शस्त्र, शस्त्रोंको उत्तेजित करना, फौजको श्रानन्दित रखनेके सैनिकोंका धेर्य बढ़ानेके प्रकार, दुन्दुभी-की ध्वनिसे प्रयाणादि वातें सुचित करने-के नियम, युद्धके भिन्न भिन्न मन्त्र, उनके चलानेके नियम, श्रादि बातोंका वर्णन है। दुश्मनोंके मुल्कमें जङ्गली लोगोंक द्वारा किसी प्रान्तका विध्वंस कराना, श्राग लगा देना, या विष-प्रयोग करना, या भिन्न भिन्न वर्गोंके नेतात्रोंको वह-काना, या अनाज वगैरह काटकर ले जाना, हाथियोंको मस्त करा देना. या भय-प्रस्त करा देना, श्रीर दश्मनोंके नौकरोमें दुश्मनी पैदा करना आदि बातें दराइनीतिसें वर्णित हैं। यह भी वर्णन है कि राज्यकी उन्नति और अवनति किसे प्रकार होती है। यह भी बतलाया है कि मित्र-राष्ट्रोंका उत्कर्ष किस रीतिसे करना चाहिए, प्रजाका न्याय कैसे करना चाहिए, चोरोंको कैसे निर्मल करना चाहिए, बलहीनोंकी रज्ञा कैसे करनी चाहिए, श्रौर बलवानोंको ठीक समय पर पारितोषिक कैसे दिया जाय। राजाश्रों श्रीर सेनापतियोंके गुण तथा दुराचारका वर्णन करके कहा गया है कि वे अपने दुराचारोंको किस प्रकार छोड़ दें। नौकरोंके वेतनका भी वर्णन है। राजाके लिए कहा गया है कि वह प्रमाद और संशय-वृत्तिका त्याग करे, जो द्रव्य प्राप्त न हो उसे प्राप्त करे, प्राप्तधनकी वृद्धि करे और बढ़ाये हुए धनका सत्पात्रको दान करे, वह अपने आधे धनका उपयोग धर्मके लिए करे, एक चतुर्थांश अपनी इच्छाके अनुसार व्यय करे, श्रीर शेष चौथे हिस्सेको संकटके समय काममें लावे। यह भी कहा है कि राजा इन चार व्यसनीको छोड़ दे—मृगया, च्त, मध-

पान, श्रीर स्त्रियाँ, राजाके श्राचरण, पोशाक श्रोर श्राभूषणोंका वर्णन करते हुए शरीरको सुदृढ़ करनेके वहत्तर प्रकारोंका वर्णन किया गया है। उद्योग, धर्माचरए, सज्जनोंका श्रादर, बहुश्रुत लोगोंसे संभाषण, सत्य श्रीर मृदु वचन, उत्सव और सभा श्रादिका भी वर्णन है। यह भी कहा गया है कि राजा स्वयं अपने सेवकोंका काम जाँचे, दएडनीय पुरुषोंको सज़ा दे श्रोर राष्ट्रके विस्तार तथा उत्कर्षके सम्बन्धमें विचार करे। इसमें भिन्न भिन्न जातियोंकी श्ररता-क्ररता आदि गुण-दोषोंका तथा अनेक जातियों, देशों और लोगोंके रीति-रवाजोंका भी वर्णन है। तात्पर्य यह है कि दएडनीतिमें . इस वातका सव प्रकारसे विचार किया गया है कि राष्ट्रके लोग ब्रार्य-धर्मके ब्रनु-सार कैसे चलेंगे। उक्त वर्णनसे ज्ञात हो जायगा कि राजाके कर्तव्यों तथा राज-संस्थाके भिन्न भिन्न त्राङ्गोकी जान-कारो भारत-कालमें कैसी थी। शान्ति पर्वके राजधर्म-भागमें, सभापर्वके कचि-द्ध्यायमें श्रौर महाभारतके श्रन्य श्रनेक भागोंमें, राजधर्म-सम्बन्धी जो बातें पाई जाती हैं, उनका वर्णन यहाँ चार विभागोंमें किया जायगाः—पहला राज-दरबार, दूसरा जमीनका महस्रल, तीसरा न्याय श्रीर चौथा परराज्य-सम्बन्ध ।

ला 🚎 राज-द्रबार।

पहलेराज दरवारका विचार कीजिए। हर एक राजाकी मुख्यतः रहनेकी एक राजाधानी रहती थी। राजधानीसे लगा हुन्ना एक किला श्रवश्य रहता था। प्राचीन कालमें राजधानी श्रीर राजाकी रज्ञाके लिए किलेकी बड़ी श्रावश्यकता थी। भिन्न भिन्न राजा लोगीं-में सदा शत्रुता रहती थी, इसलिए न

जाने कब शत्रुका धावा हो जाय। यदि शत्रु एकाएक श्रा जाय तो उसका सामना करनेके लिए किलोंसे वहुत लाभ होता था। महाभारतमें छः प्रकारके किले बत लाये गये हैं। प्रथम, निर्जन रेतीले मैदान से घिरा हुआ किला; दूसरा पहाड़ी किला; तीसरा भूदुर्ग (जमीन परका) किला; चौथा मिट्टीका किला; पाँचवाँ नर-दुर्ग श्रोर छठा श्ररएय-दुर्ग। नर-दुर्ग केवल अलङ्कारिक नाम है। नर-दुर्ग यानी पलटनकी छावनीसे घिरा हुआ राजाके रहनेका स्थानः श्रर्थात् इस दुर्गमें सारा दार-मदार फ़ौज पर यानी मनुष्यों पर रहता है। भू-दुर्गके उदाहरण दिल्ली श्रागरा श्रादि स्थानोंमें श्रनेक हैं। मिट्टीके किले (सहादिके) उच्च प्रदेशोंमें बहुत हैं। कोंकण प्रान्तमें पहाड़ी किले अनेक हैं। रेतीले मैदानके किले राजस्थानमें हैं। वहाँ वचायका वड़ा साधन यही है कि शतुको खुले मैदानमें से आना पड़ता है। अरएय-दुर्गमें वचावका साधन यह है कि शतुको जङ्गल पार करके श्राना पड़ता है। नर-दुर्गका उदाहरण मराठींके इतिहासमें पूनेका ही है। जब बाजीराव किला बन-वाने लगा, तब शाहूने आज्ञा की थी कि तुम श्रपने बचावका दार-मदार किलेपरन रखकर फ़ौज पर रखी। श्रस्तुः महाभारत-कालमें हर एक राज्यमें राजधानीका बहुधा एक किला रहता था। उसके चारी श्रोर वड़ी खाई रहती थी, श्रोर खाईके ऊपर ऐसे पुल रहते थे जो चाहे जिस समय निकाल दिये जा सकते थे श्रीर रखे जा सकते थे। जब सिकन्दरने पञ्जाब-को जीता तब हर एक छोटे शहर और राज्यके ऐसे ही किलोंको उसे धावा करके लेना पड़ा। हर एक किलेमें अनाज तथा शस्त्र भरपूर रखे रहते थे। शान्ति पर्वके =६ वें अध्यायमें विशेष रीतिसे

कहा है कि किलेमें पानीका सञ्चय होना वाहिए। राजाको किलेमें शस्त्र रखनेके कोठे, श्रनाज रखनेके कोठे श्रीर धन खनेके कोठे आवश्यक हुआ करते थे। महाभारतमें कहा है कि किलेमें यन्त्र-सामग्री भी तैयार रखनी चाहिए। महा-भारतमें युद्धके यन्त्रोंका जो वर्णन है वह प्रायः ग्रीक लोगोंसे लिए हुए यन्त्रोंका मालूम पड़ता है। कारण यह है कि वड़े बड़े किलोंको जीत लेनेके जो यन्त्र थे, वे बड़े भारी चकों पर ऊँचे किये हुए केटा-पत्ट श्रर्थात् पत्थर फेंकनेके यन्त्र थे. जिन्हें श्रीक लोग श्रपने साथ लाये थे श्रीर जिनकी सहायतासे सिकन्दरने कई किले जीते थे। यदि इस समयके पहले भारती लोग इन यन्त्रोंको जानते होते. तो वे श्रीक लोगोंकी चढ़ाईमें श्रधिक रकावर डाल सकते। श्रतएव यह श्रनु-मान हो सकता है कि महाभारत-कालमें इत यन्त्रोंकी जानकारी यूनानियोंसे ही हुई होगी।

दो प्रधान साधनों—राजधानी और किले-का वर्णन हो चुका। श्रव राजाके लिये महत्त्वका तीसरा साधन मन्त्री श्रथवा 'प्रधान' है। जिनके साथ राज-नीति-सम्बन्धी मन्त्र या सलाह की जाती है, उन्हें मन्त्री कहते हैं। "श्रष्टानां मन्त्रिणां मध्ये मन्त्रं राजोपधारयेत्"। (शान्ति० अ० ६५) श्लोकेंस की कल्सन्तुष्ट उच्चति, १२ धनाधिपति, १३ गुप्त दूत, श्लोर है कि ये मन्त्री आठ होंगे। (सम्भव है कि ये न्याय-सभाके त्राठ मन्त्री हों) त्रत-एव, श्रष्ट-मन्त्री या श्रष्ट-प्रधानकी संस्था बहुत पुरानी जान पड़ती है। परनतु महाभारतमें यह कहीं नहीं वतलाया गया कि यह आठ मन्त्री कौन हैं। सभा पर्वके पाँचवें अध्यायमें सात प्रक-तियाँ बताई गई हैं; परन्तु वहाँ भी इन सात प्रकृतियोंका वर्णन नहीं है। बह

बात सच है कि राजाके पास इतने श्रधि-कारी श्रवश्य रहें - मुख्य सचिव, सेना-पुरोहित, गुप्तदूत, दुर्गाध्यज्ञ, ज्योतिषी त्रौर वैद्य। इनके सिवा श्रौर भी श्रिधिकारी वतलाये गये हैं। कश्चिद-ध्यायके एक स्रोकमें १८ अधिकारी वतलाये गये हैं। टीकाकारने उनके ये नाम दिये हैं:-१ मन्त्री या मुख्य 'प्रधान', २ पुरोहित, ३ युवराज, ४ सेनापति या चम्पति, ५ द्वारपाल या प्रति-हारी, ६ अन्तरवेशक या श्रन्तःपुरका श्रधिकारी, ७ कारागृहका श्रधिकारी, = कोषाध्यत्त, **६ व्ययाधिकारी, १० प्रदे**ष्टा, ११ राजधानीका अधिकारी, १२ काम नियत करनेवाला श्रधिकारी, १३ धर्माध्यज्ञ, १४ सभाष्यच् श्रथवा न्यायाधिकारी, १५ दंडाध्यत्, १६ दुर्गाध्यत्, १७ सीमा-ध्यत्त श्रौर १= श्ररएयाध्यत्त । ये सब श्रधि-कारी तीर्थ कहलाते थे। मालूम नहीं, यहानाम क्यों दिया गया। ये लोग पूज्य . समभे जाते थे, इसीसे उन्हें तीर्थ कहा गया होगा। किसी अन्य स्थानमें चौदह अधि-कारी बतलाये गये हैं जिनके नाम ये हैं:-१देशाधिकारी, २ दुर्गाधिकारी, ३ रथा-धिपति, ४ गजाधिपाति, ५ श्रश्वाधिपाति, ६ शूरसैनिक (पदाति मुख्य), ७ अंतः-पुराधिपति, = श्रन्नाधिपति, १ शस्त्राधि-पति, १० सेनानायक, ११ श्रायव्ययाधि-१४ मुख्य कार्यकर्ता। उक्त दोनों वर्णनों-से पाठकोंको ज्ञात हो जायगा कि वर्तमान राज-व्यवस्थामें जितने श्रधिकारी होते हैं, प्रायः उनमें से सभी श्रधिकारी श्रौर उनके महकमे प्राचीन कालमें थे।

शांतिपर्व श्रोर सभापर्वमें राजाके व्यवहारका बहुत अच्छा विवेचन किया गया है। "राजा लोग सुखका उपभोग करें, परन्तु उनमें निमग्न न हों। धर्मके

लिए तत्पर रहें, परन्तु अर्थकी ओर दुर्लच् न करें। अर्थके लोभसे धर्मको न त्यागें। अर्थात् धर्मकी प्रीति, अर्थके लोभ श्रौर सुखकी श्रभिलापाको मर्यादित रखें। धर्म, ऋर्थ और काम तीनों मर्यादा-के बाहर न जाने पावें, अतएव तीनोंके लिए विशिष्ट समय निश्चित कर देना चाहिए। पूर्वाह्में धर्मकृत्य करना चाहिए, मध्याह्रसे सायंकालतक द्रव्यार्जनके काम करना चाहिए, श्रीर रात्रिमें सुखोपभोग करना चाहिए। राजा इन चौदह दोषोंसे दूर रहे:- "नास्तिकता, श्रसत्य, क्रोध, प्रमाद, विलम्ब करना, ज्ञानी लोगोंसे न मिलना, त्रालस्य, इन्द्रियशक्ति, धनलोभ, द्रष्टजनोंकी सलाह, निश्चित कार्यके लिए उदासीनता, रहस्थको खोल देना, देव-ताश्रोंके उत्सव न करना और शत्रको कब्जेमें न रखना।" शान्ति पर्वमें राजाके व्यवहारके ३६ नियम बतलाये गये हैं। वे भी श्रति उदात्त तथा उपयुक्त हैं। राजा राग-द्वेषको छोड़कर धर्माचरण करे. स्नेहका त्याग करे, नास्तिकताका स्वीकार न करे, कार्यका अवलम्ब न कर द्रव्य प्राप्त करे, ऐश्वर्यको स्वीकार न कर विषयोप-भोग करे, दीनता न दिखावे, प्रिय भाषण करे, शूर रहे परन्तु आत्मस्तुति न करे, दान-श्रूर रहे, पर कुपात्रको दान न दे। राजा-में प्रगल्भता होनी चाहिए, पर निष्टुरता नहीं। वह नीच लोगोंकी सङ्गति न करे, भाई-बन्दोंसे वैर न करे, ऐसे मनुष्यको दूतका काम न दे जिसकी उस पर भक्ति न हो, श्रपना हेतु न वतलावे, श्रपने गुणोंको आप ही न बतावे, सज्जनोंसे कुछ न ले, पूरा पूरा विचार किये बिना दएड न दे, गुप्त कार्रवाई प्रकट न करे. श्रपकार करनेवाल पर तिश्वास न रखे, बिना ईप्यांके स्त्रियोंकी रचा करे, स्त्री-सेवन श्रतिशय न करे, सदा गुचि रहे,

मीठा भोजन करे, पर वह हानिकारक न होने पावे, सन्मानियोंका मान निष्कपट, भावसे गुरुजनोंकी सेवा करे दम्भको छोड़ देवतात्रोंका पूजन करे सम्पत्तिकी इच्छा करे, पर इष्ट सम्पत्ति निन्दनीय न हो, सम्पत्तिका उपभोग करे पर उस पर प्रेम न रखे, सावधान रहे किन्त कालज्ञान-ग्रान्य न हो, अभ्वासन दे, पर शत्रुको छोड़ देनेका आश्वासन न दे, शत्रु श्रीर उसके श्रपराधको विना जाने उस पर हथियार न चलावे, शत्रुको माले पर उसके लिये शोक नहीं करना चाहिए विना कारणके कोप न करे, अपराधी तथा अपकारी पर द्या न ये सब नियम महत्वपूर्ण हैं। ऐसा व्यवहार करनेवाला राजा <mark>सचमु</mark>च प्रजाके लिए सुखदायक ही होगा। इनके सिवा श्रीर कुछ नियम हैं: जैसे-राजा प्रातःकाल रात्रिमें किये हुए मन्त्रों पर विचार करे और प्रजाके कल्याणकारी उपायोंको सोचे। वह स्वयं श्रकेला कोई मन्त्र न करे, किसी दूसरेके साथ विचार करे, पर तीसरेके साथ नहीं । योग विचार करने पर जो निश्चय हो जाए उसके श्रनुसार शीघ्र ही कार्रवाई की जाय। वह मुर्ख लोगोंको अपने पास न रखे, किन्तु हजार मूर्खों के बदले एक चतुर श्रादमी रखे। विद्वानीको सदा पारितोषिक देकर क किल्प्ले। वह अपने नातेदारी श्रीर बुजुगींको मदद दे। समय पर व्यापारियों श्रीर कारीगरोंकी सहायता करे श्रीर जो नौकर दरिद्रावस्थामें हो उन्हें ठीक समय पर सहायता दे। जी श्रिधिकारी अपना काम ठीक ठीक करते हों, उन्हें विना अपराधके अलग न करे। मुख्यतः राजा ईश्वरका भय मानकर सत्यको कभी न छोड़े। सारी राज सत्ताका आधारसामम सत्य है। राजा

विशेषतः सत्य पर पृरा ध्यान दे, क्योंकि
कहा है—'यथा राजा तथा प्रजा'। यदि
राजा सत्यको छोड़ देगा तो प्रजा भी
तुरन्त सत्यको छोड़ देगी। राजा हमेशा
उद्योग श्रीर परिश्रमका श्रवलम्ब करे।
जो राजा श्रालसी श्रीर श्र-तत्पर रहता
है उसका सदेव नाश होता है। महा-

राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम्।
वृधिवीशप्यते राजन् सपों विलश्यानिव ॥

यह प्रसिद्ध श्लोक है। इसमें वर्णित तत्व श्रत्यन्त महत्वका है श्रीर वह सव देशींके लिए सब कालमें उपयोगी है। राजा हमेशा युद्ध करे और ब्राह्मण हमेशा प्रवास करे, तभी पहलेकी शूरता और दूसरेकी विद्वता जाग्रत रह संकती है। राजा हमेशा मृदुभाषी और हँस-मुख रहे, पर बीच बीचमें वह श्रपना रोप श्रीर तीवता भी प्रकट किया करे। वह अपने पास विद्वान लोगोंको एकत्र करे। वह जोरसे कभी न हँसे श्रीर न नौकरोंसे कभी उद्घा करे। यदि राजा नौकरोंके साथ परिहास करनेकी आदत डालेगा, तो नौकर उसका श्रपमान करने लगेंगे श्रीर उसकी श्राज्ञा न मानेंगे। वह प्रजाको सदा सन्तुष्ट रखे श्रीर उसके कल्याणके लिए प्रयत्न करता रहे। यहाँ गर्भिणीकी उपमा बहुत ही मार्मिक है। जैसे गर्भवती स्त्री श्रपने सुखकी कल्पनाको बीड़ श्रपने पेटके बचेके कल्याग्यकी सदा विन्ता करती है, वैसे ही राजा अपनी पजाके सुखकी चिन्ता करे। राजा किसी इसरेके धनका लोभ न करे, श्रीर जिसे जो कुछ देना हो वह पूरा पूरा श्रीर समय पर दे दिया जाय। जो पीड़ित या दुःखित हों उनका पालन-पोषण राजा करे। वह किसी श्र पुरुषका श्रपमान न करे। वृद्ध श्रीर श्रनुभवी लोगोंसे मेल-मिलाप रखे। किसी प्रसङ्गमें घेर्यको न छोड़े। श्रच्छे श्रामृषण श्रीर वस्त्र पहनकर वह प्रसन्तमुख हो सदा प्रजाको दर्शन दे। किसीके लिए मनाही न रहे। प्रजाकी शिकायतौं पर ध्यान दिया जाय। महा-भारतका उपर्युक्त उपदेश बहुत ही मार्मिक है। महाभारत-कालमें राजा लोगों-का व्यवहार ऐसा ही रहा करता था। मुख्यतः पूर्व कालमें राजा कैसा ही क्यों न हो, उसकी संत्यनिष्ठा, न्याय और उदा-रताके सम्बन्धमें कभी किसीको सन्देह नहीं रहता था। प्रजाके साथ उसका प्रेम अपने निजके वचेके समान रहता था। फलतः प्राचीन कालमें राजा पर प्रजाकी भक्ति भी श्रितिशय रहा करती थी। और, अपने राजाके प्रति, हिन्दु-स्थानकी प्रजाको भक्ति इस समय भी प्रसिद्ध है।

महाभारतके वन पर्वमें धौम्यके मुख-से इस वातका बहुत मार्मिक विवेचन . कराया गया है कि राज-दरवारमें सेवकोंका व्यवहार कैसा होना चाहिए। जब पाएडव श्रज्ञातवासके लिए नौकर वनकर विराट नगरीको जाने लगे, तब धौम्यने यह उप-देश दिया था:-"बिना द्वारपालकी सम्मति लिए राजाके पास नहीं जाना चाहिए। किसीके भरोसे मत रहो। ऐसे स्थानमें वैठो जहाँसे कोई न उठावे, जहाँ वैठनेसे किसीको कुछ सन्देह हो वहाँ न बैठना चाहिए: श्रीर जिसके साथ बातचीत करनेसे किसीको कुछ सन्देह हो, उससे नहीं वोलना चाहिए। विना पूछे राजासे कुछ भी न कहना चाहिए । राजस्त्रियोंसे या राजद्विष्ट लोगोंसे सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। यदि ऊँचे स्थानमें वैठना हो तो राजाकी श्राक्षासे वैठना चाहिए। श्रय्निके समान राजाकी सेवा करनी चाहिए। उसके बहुत समीप भी न जाना चाहिए

श्रीर न उससे बहुत दूर ही रहना चाहिए। राजाके श्राज्ञानुसार चलना चाहिए। राजाशाको श्रोर दुर्लच नहीं करना चाहिए। उसके साथ प्रिय और हितकारी भाषण करना चाहिए। ऐसा कभी न समभना चाहिए कि राजा मुभसे स-प्रसन्न है। राजाकी दाहिनी या बाई श्रोर वैठना चाहिए। राजाके पीछे रजकोंके वैठनेकी जगह होती है। सामनेका श्रासन सदा छोड दिया जाय। राजाके समत्त श्रपनी होशियारीका घमएड कभी न करे-यह घमएड न करे कि मैं होशियार हूँ या शूर हूँ। धमएडी पुरुषका राजाके यहाँ अपमान होता है। राजाके सामने किसीके साथ धीरे धीरे बातचीत करते रहने, हाथ पेर हिलाते रहने, या इधर उधर थूकनेकी मनाही है। बहुत जोरसे हँसना न चाहिए । राजाका श्रपराध न करना चाहिए। राजाके सन्मुख या उसके . पीछे उसकी स्तुति ही करनी चाहिए। उसके दोष नहीं हूँढ़ने चाहिएँ। उसकी मिथ्या प्रशंसा भी न करनी चाहिए।राजा-के हितकी श्रोर सदा ध्यान देना चाहिए। राजा बुलावे तो सेवक तुरन्त ही उसके सामने उपस्थित हो जाय श्रौर जो काम हो उसे कर दिखावे। राजकार्यमें पड़ने पर स्त्री, पुत्र, गृह आदिका स्मरण नहीं करना चाहिए। राजाकी पोशाककी नाई श्रपनी पोशाक न रखे। किसी अधिकार-के पद पर रहते हुए न तो राजाके धन-को छूए श्रौर न किसीसे रिशवत ले। वाहन, वस्त्र, श्रामृषण श्रादि जो कुछ राजासे मिला, उसका श्रानन्द सहित खोकार करे श्रौर उसे पहने।" हर एक स्वीकार करेगा कि राजदरवारके नौकरों-के लिए धौम्यके बतलाये हुए उपर्युक्त नियम सर्वकालमें सव श्रधिकारियोंके पालने योग्य हैं।

श्रस्तुः श्रीर दो तीन बातें राजाके सम्बन्धमें कहने योग्य हैं। प्रथम राजा गुणशताकीर्ण पष्टव्यस्तादशो भवेत्। (शान्ति० ११=-२२)

इत्यादि क्लोकोंमें राजाका देशज एक गुण वतलाया गया है। दूसरे भीष्मने कहा है कि एक हजार शर श्रोर चुने हुए घुड़सवार हों तो पृथ्वीका राज्य जीता जा सकता है।

शक्या चाश्वसहस्रोण वीरारोहेण भारत। संगृहीतमनुष्येण कृत्स्ना जेतुं वसुंधरा॥ (शान्ति०११८-२६)

तीसरे. द्रव्य-सञ्चयके सम्बन्धमें इतनी सावधानी होनी चाहिए कि राजा द्रव्य-प्राप्तिकी किसी छोटी मदको भी न छोड़े। "नार्थमत्यं परिभवेत्" (शानि १२०-३६)। चौथे, राजा राष्ट्रकी रत्ता करें श्रीर राष्ट्र राजाकी रत्ता करें।

राजाराष्ट्रं यथाऽऽपत्सु द्रव्योधैरपि रच्चिति। राष्ट्रेण राजा व्यसने रच्चितव्यस्तथाभवेत्॥ (शांति० १३०-३१)

धिक् तस्य जीवितं राष्ट्रं राज्ञो यस्यावसीदति। श्रवृत्यान्यमनुष्योऽपि यो वैदेशिक इत्यपि॥ (शांति० श्र० १३०-३४)

अधिकारी।

यह कहा गया है कि मंत्री, श्रमात्य श्रादि पदों पर जो श्रिधिकारी राजा के द्वारा नियत किये जाय वे होशियार, ईमानदार, सदाचार-सम्पन्न श्रीर वंशा परंपरागत हों। उनका सदा उचित सत्कार किया जाय। उन्हें उचित वेतन दिया जाय। यह बात विशेष कपसे कही गई है कि राजाका एक पुरोहित भी होना चाहिए। उस समयके लोगोंकी धर्म पर श्रद्धा, तथा यह यागादिसे निश्चयपूर्वक होनेवाले सांसारिक लागोंके सम्बन्धमें विचार करनेसे ठीक ठीक ध्यानमें श्रा जाता है

कि धार्मिक कृत्योंमें उनकी कितनी श्रद्धा थी। श्रतएव ऐसा समभा जाता था कि राजाके लिए पुरोहितकी श्रत्यन्त श्राव-श्यकता है। उसके विषयमें कहा गया है कि वह श्राचारवान, कुलीन श्रीर वह-श्रत हो; श्रौर राजा श्रपने पुरोहितका उचित श्रादर-सत्कार करे। पुरोहित बहुधा वंशवरंपरागत न हो। पाएडवाने धौम्य अविको अपना नया पुरोहित वनाया था श्रीर ऐसा वर्णन है कि उससे उनका बहुत उत्कर्ष भी हुआ। होमशालाके लिए श्रलग याजक रहता था। ज्योतिष पर पूरा भरोसा होनेसे यह श्राज्ञा है कि राज-हरबारमें ज्योतिर्विद नियत किया जाय। वह सामुद्रिक जाननेवाला, धूमकेतु, भूकम्प, नेत्रस्फरण श्रादि उत्पात जानने-वाला, तथा भावी श्रनथौंका श्रवमान करनेवाला हो। इसके सिवा राजाके पास एक न्यायाधीश भी श्रवश्य रहा करता था। इसका वर्णन आगे किया जायगा। इसी प्रकार सेनापति और सेना-के अन्य अधिकारियोंका भी वर्णन आगे किया जायगा । कोषाध्यत्त, दुर्गाध्यत्त श्रादि भिन्न भिन्न विभागोंके श्रध्यत्तोंको, वर्तमान प्रचलित भाषाके श्रनुसार, सुप-रिएटेएडेएट कह सकते हैं। इनका दर्जा सचिव या मंत्रीसे कुछ कम था; तथापि वे महत्वके अधिकारी थे और वंशपरंपरा-से ईमानदार समभे जाकर नियत किये जाते थे।

इन श्रिष्ठकारियों के श्रितिरिक एक महत्वका विभाग गुप्तदूतों या जास्सोंका था। जास्स या डिटेक्टिव सब देशों में तथा सब कालमें रहते ही हैं। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि महाभारत कालमें जास्सोंका महत्व बहुत था। माल्म होता है कि श्रोखा देकर पर-राज्योंको जीत लेनेका महत्व उस समय बहुत होगा, श्रोर

भिन्न भिन्न राजात्रोंको धोखेबाजीका डर भी हमेशा रहता होगा। श्रतएव यह श्रनुमान किया जा सकता है कि उस समय श्रिधकारी लोगोंकी नीतिमत्ता बहुत सन्देह-युक्त रहती होगी। खदेश और खराज्यकी मीति प्रायः कम रही होगी; क्योंकि राजा बहुधा चत्रिय और स्वधर्मी होते थे, इसलिए उनके वदलने पर प्रजाकी बहुत हानि नहीं होती थी। राजाके वदल जानेसे श्रपराधी-श्रिधिकारी लोगोंका हमेशा फायदा हुआ करता था। यह दशा भारत-कालमें न होगी, पर महाभारत-कालमें अवश्य होगी। इसके आगेके कालमें भी दुदेवसे हिन्दुस्थानकी यही दशा देख पड़ती है। दगड-नीतिमें विस्तारपूर्वक नियम बतलाये गये हैं कि राजा कैसे श्रीर कितने जासस रखे श्रीर किस किसके लिए रखे। श्रनेक देशोंके राज्योंके उपर्युक्त अठारह अधिका-रियों पर, हर एकके पीछे तीन तीन जासुस रखे जायँ। अपने देशके जो तीन अधि-कारी छोड़ दिये गये हैं वे मंत्री, युवराज श्रौर पुरोहित हैं। इनकी जाँच या परीचा चरोंके द्वारा नहीं की जाती थी। इसका कारण समक्तमें नहीं त्राता। त्राशय यह होगा कि इनकी जाँच बहुधा राजा खयं करे। अतएव ये तीनों अधिकारी ईमान-दार श्रौर कभी घोखा न देनेवाले माने जाते होंगे। जासूस एक दूसरेको पहचा-नते न हों। उनका भेष पाखगडीके समान रहना चाहिए। ऐसा वर्णन है कि वे सारा हाल प्रभुको श्रर्थात् राजाको ठीक ठीक बतावें। यह भी बतलाया गया है कि जास्सोंका प्रवन्ध रहते हुए भी राजाको चाहिए कि वह स्वयं हर एक काम पर द्त्ततापूर्वक निगाह रखे।

राजाके प्रतिहारी और शिरोरज्ञ (श्राधुनिक शब्दोंमें एडिक्यांप और वाडी- गार्ड) दोनों श्रधिकारी बहुत ईमानदार श्रौर कुल-परंपरागत रहते थे। वे विद्वान, स्वामिभक्त, मिष्टभाषी, सत्यवादी, चपल तथा दस्त होने चाहिएँ। यह विस्तारपूर्वक कहना श्रावश्यक नहीं कि इनदोनों श्रधि-कारियोंके लिए इन गुणोंकी कितनी श्राव-श्यकता है। इनका काम बहुत महत्त्व श्रौर जोखिमका रहता है। वाडीगाडोंको होड़ श्रौर दूसरे सशस्त्र संरक्तक भी राजाकी रक्ताके लिए उसके श्रास पास रहते थे। सभापर्वके कचित् श्रध्यायमें यह प्रश्न हैं:—

कश्चित् रक्तांवरधराः खड्गहस्ताः स्वलंकृताः। उपासते त्वामभितो रचणा-र्थमरिदम्॥

इस श्लोकसे मालम होता है कि संर-क्तकोंके वस्त्र भिन्न यानी लाल रंगके रहते थे श्रीर उनके शरीर पर सन्दर आभुषण और हाथमें नंगी तलवारें रहती थीं। इससे यह तुरन्त माल्म हो जाता था कि ये राजाके शरीर-संरत्नक हैं। ये संरक्तक राजाके समीप कुछ अन्तर पर खड़े रहते थे।इन संरत्तकोंके वर्णनसे यह जान पड़ता है कि, कालिदास श्रादि कवियों-ने जो यह लिखा है कि यावनी स्त्रियाँ शस्त्र लेकर हमेशा राजाके श्रासपास रहती थीं, वह रीति उस समयतक अर्थात् महा-भारतकालीन राजदरबारमें प्रचलित नहीं हुई थी। मेगास्थिनीज़ने लिखा है कि चन्द्रगुप्तके समयमें भी राजा लोगोंके श्रास-पास सुन्दर श्रीर वलवान स्त्रियोंका पहरा रखनेकी परिपाटी थी। मनुस्मृति-में भी "स्त्रीभिः परिवृता राजा" ऐसा वर्णन है। अतएव मनुस्मृतिके कालमें भी यह रीति थी। कालिदासने स्त्रियोंको यावनी कहा है। इससे प्रकट है कि ये स्त्रियाँ यचन जातिकी थीं और यह रीति पर्शियन और योक बादशाहोंके दरबारके

रवाज परसे चन्द्रगुप्तके समय हिन्दुः स्थानमें ली गई होगी। श्रर्थात् महासारतः में जो कुछ कहा है वह इसके पूर्वके समयके राजा लोगोंकी परिस्थितिका वर्णन है। यहाँ यह शंका होगी कि हमने तो महाभारत-कालको चन्द्रगुप्तके पश्चात-का उहराया है, इसलिए समयका वर्णन महभारतमें श्रवश्य श्राना चाहिए। परन्तु इसका उत्तर यह है कि यद्यपि हमने निश्चय किया है कि महा-भारत श्रशोकके लगभग चन्द्रगुप्तके बाद शोध ही बना है, तथापि हमने श्रपनी यह भी राय दी है कि वह महाभारत भी श्रशोककी बौद्धादि नृतन प्रवृत्तिका विरोध करनेके लिए लिखा गया है। इसलिए महाभारतकारने मगधौंकी नर्ध राजधानी पाटलीपुत्रका कहीं उल्लेख नहीं किया। वहाँ जो नृतन बौद्ध धर्म प्रचलित हो रहा था, उसका भी उल्लेख उसने नहीं किया: वहाँ जो नया साम्राज्य स्थापित हुआ था उसका भी उसने उन्ने ब नहीं किया; श्रोर उस नृतन साम्राज्यकी नई द्रवार-पद्धतिका, सम्राट्के श्रासः पास सशस्त्र स्त्रियोंके पहरेका, भी उसने वर्णन नहीं किया। भारती-कालसे छोटे छोटे राज्योंमें जो भिन्न भिन्न संखाएँ जारी थीं, उन्हींका उसने वर्णन किया है। मान सकते हैं कि महाभारत-कालमें भी ऐसे राज्य बहुतसे थे।

अन्तःपुर ।

श्रव हम राजा लोगोंके श्रन्तःपुरका वर्णन करेंगे। राजाका महल श्रकसर किले के श्रन्दर रहा करता था। उसमें कई श्रांगन या कलाएँ रहती थीं। बाहरकी कलामें सब लोगोंको श्रानेकी इजाज़त थी श्रोर दूसरी कलामें केवल श्रिशकारी श्रोर दरवारी लोग श्रा सकते थे। तीसणी कलामें

यह्रशाला, राजाके स्नान तथा भोजनगृह ब्रादिका प्रबन्ध रहता था । चौथीक क्हामें अन्तःपुर रहता था। यहाँका ह्यान विस्तीर्ण रहता था श्रीर बड़े बड़े बाग-बागीचे रहते थे। राजाके अन्तःपुर-में स्त्रियाँ रहती थीं। राजाकी एक या श्रुधिक पटरानियाँ होती थीं। परन्त इनके सिवा, जैसा कि हम पहले वतला वुके हैं, उसकी श्रीर भी कई स्त्रियाँ रहती थीं। सारण रहे कि ये स्त्रियाँ केवल जबर-दस्तीसे नहीं लाई जाती थीं। यह पहले कहा गया है कि ये अनेक स्त्रियाँ किस प्रकार एकत्र की जाती थीं। उससे मालम होता है कि हर वर्ष विवाहके समय राजाको सुन्दर सुन्दर कन्याएँ श्चर्यण करनेकी परिपाटी प्राचीन कालमें सचम्च होगी। इसीसे राजाके श्रंतःपुर-में श्रनेक स्त्रियाँ एकत्र हो जाया करती थीं। श्रनियंत्रित राजसत्ता तथा श्रपरि-मित वैभवके कारण राजाओंको अनेक स्त्रियोंकी इच्छा होना स्वाभाविक है और इस परिस्थितिमें जबरदस्ती स्त्रियोंको पकड ले जानेकी संभावना है। इसलिए इसके बदले, जो व्यवस्था उपर बतलाई गई है, वही अञ्जी थी। कुछ भी कहा जाय, पर यह निर्विवाद है कि महाभारत-कालमें राजा लोगोंके अन्तःपुरमें अनेक स्त्रियाँ रहती थीं। इसके सम्बन्धमें, सभा-पर्वमें, नारद्ने राजा लोगोंको उचित उपदेश दिया है कि—"ऐसी स्त्रियोंको राजा लोग संतुष्ट रखें, उन पर कड़ा पहरा रखें श्रौर उनका विश्वास न करें। उन्हें गुप्त बातें न बतावें।" ये चारों बातें महत्त्वकी हैं। परन्तु यह नहीं माना जा

जरामंधवध स० अ० २२-३०

सकता कि ये बातें युधिष्ठिरके लिए कहीं गई हों । नारदका प्रश्न युधिष्ठिरके सम्बन्धमें श्रप्रयुक्त देख पड़ता है।

कचित्स्त्रियः सान्त्वयसि कचित्ताश्च सुरित्तताः। कचित्र श्रद्धास्यासां

कचिद्रहां न भाषसे॥ इस प्रथका उपयोग युधिष्ठिरके लिए कुछ भी नहीं हो सकता। युधिष्टिरके एक ही स्त्री थी श्रीर उस पर पहरा रखनेकी कोई श्रावश्यकता भी न थी। उस पर उसका पूर्ण विश्वास था और उसे वह सव राजनैतिक गुद्य बतलाया करता था। श्रस्तु। इसमें सन्देह नहीं कि नारदका वह उपदेश सब राजा लोगोंके लिए बहुत उपयोगी है। समस्त राजा लोगोंके सम्बन्धमें पूरा विचार करनेसे यह प्रकट होता है कि अन्तःपुरकी स्त्रियोंसे कभी कभी हानि श्रवश्य होती थी। यनानियों-ने भी लिख रखा है कि कभी कभी अन्तः-प्रकी स्त्रियोंसे राजाका प्राण्घात विषसे या खुनी लोगोंके द्वारा किया जाता था। श्रतएव नारदको यह सुचना करनी पड़ी कि अन्तःपुरकी स्त्रियों पर कड़ा पहरा रखना चाहिए श्रीर उन पर विश्वास नहीं करना चाहिए। ऊपर दिये हुए युधि-ष्टिरके और अन्य राजाओं के भिन्न गृह-वर्णनसे यह बात समभमें आ जायगी कि भारत-कालके श्रारम्भमें राजा लोगों-का गृहस्वास्थ्य कितना अञ्छा था और वहीं महाभारत-कालतक कितना बिगड़ गया था।

हमें इस वातका सरण नहीं कि महा-भारतके कि चित् श्रध्यायमें या शान्ति पर्वके राजधर्म-भागमें या श्रीर कहीं, श्रन्तः-पुरमें पहरा देनेके लिए वर्षवरों वा खोजा लोगोंको नियत करनेकी पद्धति उक्लिखित है। भयद्वर रीतिसे पुरुषोंका

ते त्वतीय जनाकीर्णाः कचारितस्रो नर्पभाः ।
 श्रहंकारेण राजनामुपतस्थुर्गतव्ययाः ॥

पुरुषत्व नष्ट करके अन्तःपुरको स्त्रियोंके लिए उन्हें संरक्षक बनानेकी दुष्ट पद्धति भारती-कालमें हिन्दुस्थानके आर्य लोगोंमें प्रचलित न थी। पैरन्तु कथासरित्सागर-में लिखा है चन्द्रगुप्त या नन्दके समय हिन्दुस्थानमें पाटलिपुत्रमें वर्षवर थे। तव हमारा श्रनुमान है कि यह पद्धति, श्रन्य बादशाही रवाजोंके समान, पर्शियन लोगोंसे चन्द्रगुप्तके समयमें ली गई होगी। श्रीर, ऐसे लोग भी वहींसे लाये जाते होंगे। जवतक हिन्दुस्थानमें यवनं, शक श्रादि पाश्रात्य म्लेच्छोंका राज्य बना रहा तभीतक यह पद्धति हिन्दुस्थानमें प्रच-लित रही होगी। परन्तु उनकी सत्ताके नष्ट होने पर वह भी नष्ट हो गई। बाएने हर्षके अन्तःपुरका जो वर्णन दिया है उसमें वर्षवरोंका वर्णन सारण नहीं श्राता। दुईवसे जब मुसलमानौंका राज्य हिन्द्स्थानमें स्थापित हुआ, तब यह रवाज फिर मुसलमानी राज्यमें घुसा। परनत हिन्द्स्थानी राजा लोगोंमें उसका प्रवेश बिलकुल नहीं हुआ। हर्षके इस पारके इतिहासमें यह प्रमाण नहीं पाया जाता कि चत्रिय या अन्य हिन्दू राजा लोगोंके श्रन्तःपूरमें खोजा लोग रहते थे।

राजाकी दिनचर्या।

द्रोण पर्वके दर वें अध्यायमें युधिछिरकी दिनचर्याका जो कुछ वर्णन किया
गया है वह मनोरञ्जक है और यहाँ देने
योग्य है। "उँजेला होनेके समय गायन
करनेवाले मगध, हथेलियोंसे ताल देते
हुए, गीत गाने लगे। भाट तथा स्त
युधिष्टिरकी स्तुति करने लगे। नर्तक
नाचने लगे, और सुस्तर कंठवाले गायक
कुरवंशकी स्तुतिसे भरे गीत गाने लगे।
जो लोग वाजा वजानेके काममें शिचा
पाकर निपुण हो गये थे, वे सुदङ्ग, भाँक.

पण्य, त्रानक, शंख और प्रचएड ध्वनि करनेवाले दुन्दुभि आदि वाद्य बजाने लगे। तव युधिष्टिरकी नींद खुली। आव-श्यक कार्योंके लिए उसने स्नानगृहमें प्रवेश किया। वहाँ स्नान किये हुए और शुभ वस्त्र पहने हुए १०८ तरुण सेवक उदकसे परिपूर्ण सुवर्णके कुम्भ लेकर खड़े थे। फिर युधिष्टिर छोटासा वस्न परिधान कर चौकी पर वैठा। पहले बल-वान् श्रौर सुशिचित सेवकोंने श्रनेक वन स्पतियोंसे तैयार किया हुआ उवटन उसके शरीरमें रगड़ रगड़कर लगाया। श्रनन्तर सुगन्धयुक्त उदकसे उसे नह-लाया। माथेके बाल सुखानेके लिए युधि ष्टिरने राजहंसके समान खच्छ कपडा सिरपर लपेटा। फिर शरीर पर चन्दनका लेप कर, धोती पहन, हाथ जोड़कर पूर्वकी श्रोर मुँह करके वह कुछ समयतक वैठा रहा। जप करनेके बाद वह प्रदीप्त श्रक्षिगृहमें गया। वहाँ समिधा श्रौर श्राज्याहुतिका उसने समन्त्रक हवन किया। श्राकर उसने वेदवेत्ता ब्राह्मणोका दर्शन किया और मधुपर्कसे उनकी पूजा की।उन्हें एक एक निष्क दक्षिणा दी: श्रीर दृध देनेवाली ऐसी सवत्स गौएँ दीं जिनके सींगोंमें सोना श्रीर खुरोंमें चाँदी लगी थी। फिर पवित्र पदार्थोंको स्पर्श करके युधिष्टिर बाहरकी बैठकमें श्राया। वहाँ सर्वतोभद्रक नामका सुवर्णासन था। उस पर उत्तम श्रास्तरण विद्या हुआ था और उसके ऊपरका भाग बतसे शोभायुक्त हो गया था। वहाँ वैठकर सेवकोंके द्वारा दिये हुए मोतियों श्रौर रती के तेजस्वी आभूषण उसने पहने। तब उस पर चँवर हिलने लगी जिसकी डंडी सोनेकी थी और जो चन्द्रकिरणोंके समान खच्छ थी। बन्दोजन उसे वन्दन कर^क उसकी गुणावली गाने लगे। इतनेमें रथ

की प्रचएड ध्विन सुनाई देने लगी; कवच ग्रीर कुएडल पहनकर हाथमें तलवार लिये हुए एक तहण द्वारपाल श्रन्दर ग्राया। उसने जमीन पर घुटने टेककर उस वन्दनीय धर्मराजको शिरसे प्रणाम किया श्रीर कहा कि श्रीकृष्ण भेंट करने ग्रा रहे हैं।" उक्त वर्णनसे महाभारत-कालके समृद्ध श्रीर धार्मिक राजाश्रों-की प्रातःकालका दिनचर्या-भाग श्रीर दरवारका ठाठ पाठकोंकी दृष्टिके सामने ग्रा जाता है।

मुल्की काम-काज।

महाभारत-कालमें भारती राज्य छोटे होते थे, परन्तु उनकी मुल्की श्रवस्था श्रच्छी रहती थी। नीचे दिये हुए वर्णनसे इस वातका परिचय हो जायगा । महा-भारत-कालमें राज्यका कोई विभाग वर्णित नहीं दिखाई देता। कारण यह है कि श्राधुनिक समयके एक या दो ज़िलोंके वरावर महाभारत-कालके राज्य हुआ करते थे। उदाहरणार्थ, महाभारतके भीष्म पर्वमें भूवर्णन अध्यायमें द्विणमें पचास लोग या देश बतलाये गये हैं। श्राधुनिक हिन्दुस्थानमें, कृष्णा से दिच्लाकी श्रीर, ब्रिटिश राज्यमें इतने ज़िले भी नहीं है। तात्पर्य यह है कि महाभारत-कालके देशों अथवा लोगोंकी मर्यादा लगभग वर्तमान ज़िलेके बरावर रहती थी। महाभारत-कालके बाद जब राज्य बड़े हुए, तब देश, विषय आदि शब्द ही विभाग-वाचक हो गये। महाभारत-कालके देशीं-में याम अवश्य थे। ग्राम ही मुल्की काम-काजको पहली श्रौर श्रन्तिम संस्था थे। मुल्की कामकाजके लिए हर एक गाँवमें पक मुखिया रहता था। उसे त्रामाधिपति कहते थे। उससे वड़ा दस गाँवका, बीस गाँवका, सो गाँवका और हज़ार गाँवका

मुखिया होता था। एक गाँवका श्रिध-पति श्रपने गाँवकी भली-बुरी सव सबरें दस गाँवके अधिपतिको दियाकरता था; श्रौर वह श्रपनेसे श्रेष्ट श्रधिपतिको वत-लाया करता था । गाँवके श्रिधिपतिका वेतन यही था कि वह अपने गाँवके पासके जङ्गलकी पैदावार पर अपना निर्वाह करे श्रीर श्रपने ऊपरवाले दस गाँवके अधिकारीको तथा उसके भी ऊपरवाले श्रिधिकारीको जङ्गलकी पैदा-वारका हिस्सा दिया करे। सौ गाँवके श्रिधिपतिको एक खतन्त्र गाँव उसके निर्वाहके लिए दिया जाता था। एक हजार ग्रामोंके त्रिधिपतिको एक छोटासा नगर दिया जाता था । सम्पूर्ण राष्ट्रका मुल्की काम-काज एक स्वतन्त्र अधिकारी-को सौंप दिया जाता था। यह देशाधि-कारी मन्त्री राजाके पास रहता था। वह सब देशोंमें घूमकर ग्रामाधिपतियों-का राष्ट्र-सम्बन्धी व्यवहार देखता रहता था श्रौर जासूसोंके द्वारा भी उनकी जाँच किया करता था (भीष्म प० प्र० =५)। इनके सिवा, राज्यके सब बड़े बड़े नगरीं-में नगरोंके स्वतन्त्र अधिपति रहते थे। जिस प्रकार नक्त्रों पर राहु अपना अधि-कार जमाता है, उसी प्रकार यह अधि-कारी नगरमें मूर्तिमान भय ही रहता होगा। उपर्युक्त पद्धति कदाचित् काल्प-निक सी मालूम होगी। परन्त वैसा नहीं था। इसमें सन्देह नहीं कि हर एक गाँव-में श्रीर हर एक बड़े नगरमें श्रधिपति रहते थे: श्रीर देशकी परिस्थितिके श्रनु-सार, दस, वीस श्रौर सौ गाँवोंके श्रथवा न्युनाधिक गाँवोंके ऋधिपति भी रहते थे। साधारणतः श्राधुनिक जिलोंके श्रनुसार, उस समयके राष्ट्रमें पन्द्रह सौसे दों हजारतक या कुछ न्यूनाधिक गाँव रहते होंगे। अर्थात् एक मुख्याधिकारी रहता

था, उसके नीचे दो सहस्राधिकारी रहते थे, श्रौर उनके नीचे विशत्याधिकारी रहते थे। महाभारतमें कहा है कि इन लोगोंकी प्रवृत्ति हमेशा प्रजाको सतानेकी श्रोर रहती है। श्रतएव कहा गया है कि प्रधान मन्त्री, परधनका श्रपहार करनेवाले श्रौर शठ श्रधिकारी पर राहुके समान श्रपनी धाक रसे श्रौर उन लोगोंसे प्रजा-की रहा करे।

कर।

जमीन श्रोर व्यापारका कर मिलाकर राज्यकी मुख्य श्राय होती थी । श्रोर यह श्राय श्रनाज तथा हिरएयके स्वरूपमें रहा करती थी । जमीनका महसूल बहुत प्राचीन कालसे यानी प्रारम्भमें मनुके कालसे जो लगा दिया गया है, वह एक दशांश (१५) भाग है । परन्तु यह नियम श्रागे नहीं रहा श्रोर यह भाग एक पष्टांश हो गया । सम्पूर्ण भारती-कालमें श्रीर श्रागे स्मृति-कालमें भी यही कर निश्चित देख पड़ता है

श्राददीत वर्लि चापि प्रजाभ्यः कुरुनन्दन । स षड्भागमपि प्राज्ञस्तासामेवाभिगुप्तये॥ (शान्ति० श्र० ६८)

बुद्धिमान राजा प्रजासे उसकी रज्ञा-के लिए है कर ले। सभा पर्वमें नारदने पही भाग बतलाया है और पूछा है कि इससे अधिक तो नहीं लेते? खेतमें जितना अनाज पैदा होता था उसका है भाग लोगों-से लेकर प्रामाधिपति एकत्र करता था। अनाजके ऐसे कोठे जगह जगह भरे रहते थे। मालूम होता है कि जमीन पर लोगों-की सत्ता रहती थी, और पैदाबारका यह भाग करके तौर पर दिया जाता था। पशु पालनेवाले बहुतेरे मेषपाल और खाल भी राज्यमें रहते थे और वे भी पशुआंका है भाग राजाको देते थे। इस प्रकार राजाकी पशुशालाएँ स्वतन्त्र रीतिः से सम्पन्न रहा करती थीं। वाणिज्य पर केवल हुई ही कर था। किसी वस्तुः की विक्रीके दाम पर सेंकड़े २) के हिसाबसे सरकारको कर देना पड़ता था। श्रथवा पैदा की हुई चीज पर जो खर्च लगा हो उसे घटाकर, भिन्न भिन्न चीजों पर भिन्न भिन्न कर लिया जाता था। विक्रयंक्रयमध्वानं भक्तंच सपरिच्छुदम्। योगद्मेमं चसंप्रेच्य वाणिजां कारयेत्कराना

शान्ति पर्वमें यह नियम बतलाया गया है कि खरीदनेकी कीमत, वेचनेको कीमत, रास्तोंके किराये, कुल कारी गरोंके खर्च श्रोर स्वयं व्यापारियोंके निर्वाह इत्यादि बातोंका विचार करके बनियों पर कर लगाना चाहिए। कारी-गरों पर भी कर रहता था: अथवा उनसे सरकारी काम वेगारमें लिया जाता था। समस्त कर इतने ही थे। जिन करोंका भाग नहीं बतलाया गया है वे कर इस रीतिसे लिये जायँ कि प्रजाको किसी प्रकार कष्ट न पहुँचे श्लौर उनकी वृद्धिमें भी रुकावट न हो। इस विषयमें वत्सका उदाहरण दिया गया है। हमेशा यही वर्णन पाया जाता है कि प्रजाको वत्स श्रीर राष्ट्रको गाय समभकर राजा, प्रजा रूपी वत्सका योग्य प्रतिपालन करकेराष्ट्र रूपी गायका दोहन करे। जिस समय राष्ट्रमें कोई कठिन सङ्घट उपस्थित ही जाय उस समय लोगोंसे विशेष कर न लेकर सामोपचारसे ऋण लिया जाय श्रीर सङ्गटके नष्ट होने पर वह चुका दियां जाय । इसके सम्बन्धमें, शानि पर्वमें, वैसा ही करनेके लिए कहा गया है जैसा श्राधुनिक युद्ध-ऋणके प्रसङ्गी ब्रिटिश सरकारने किया है। ऐसे समग पर राजाको प्रजाकी जो प्रार्थना करनी चाहिए वह भी राज-धर्ममें दी है-

श्रह्यामापदि घोरायां संप्राप्ते दाहलें भये। परित्रालाय भवतां प्रार्थियप्ये धनानि वः॥ प्रतिदास्ये च भवतां सर्वं चाहं भयत्तये। (शान्ति० श्र० ६७)

राजा यह कहे कि—"इस आपत्तिके वसङ्में दारुण भय उत्पन्न हुन्ना है, त्रत-एव में तुम्हारी ही रैचाके लिए तुमसे धन माँगता हूँ: भयका नाश होने पर में इस सब धनको तुम्हें लौटा दूँगा।" लिये हए कर्जको चुका देनेका मामूली उपाय यह था कि शत्र्से धन लिया जाय। परन्तु यदि केवल स्वसंरचण ही हो, तो लिये हए धनको लौटा देनेका श्रन्य करोंके सिवा श्रीर कोई उपाय नहीं: श्रथवा मितव्य-वितासे खर्चका कम किया जाना भी एक उपाय है। परन्तु इसका यहाँ किसी प्रकार उल्लेख नहीं किया गया है। तथापि स्तना मानना पड़ेगा कि यहाँ ऐसी श्राज्ञा है कि युद्धके समयका ऋण मीठे शब्दोंसे श्रीर लोगोंकी राजी-खुश्रीसे ही लिया जाना चाहिए।

राजाकी आयके लिए और भी कुछ कर महाभारतमें वतलाये गये हैं; उनमेंसे गोमी लोगों श्रर्थात् बन्जारों पर लगाया हुआ कर एक मुख्य कर था। प्राचीन कालमें सड़कोंके न होनेके कारण एक राष्ट्र-से दूसरे राष्ट्रमें श्रनाज लाने श्रीर लेजाने-का काम यहीं गोमी अर्थात् वंजारे लोग किया करते थे। वैलोंके हज़ारों अंड रसकर उनपर गोने लादकर अनाज और रूसरा माल लाने-ले जानेका काम यही लोग करते थे। इनपर कर लगाना मानी श्रायात श्रोर निर्यात मालपर कर लगाना है। परन्तु कहा गया है कि इन लोगोंके साथ प्रेमका व्यवहार करके उनसे धीरे थीरे कर लेना चाहिए, क्योंकि इन लोगों-के द्वारा राष्ट्रमें लेन-देनके व्यवहार तथा

खेतीका उत्कर्ष होता है। शान्ति पर्वके

"प्रभावयन्ति राष्ट्रं च व्यवहारं कृषि तथा।"

यह भी कहा गया है कि राजा धीरे धीरे कर बढ़ावे। इसके लिए वंजारोंका ही उदाहरण दिया गया है। जिस प्रकार वैल पर लादे जानेवाला वोभ क्रमशः वढ़ाते चले जानेसे वैलकी शक्ति बढ़ाई जा सकती है, उसी प्रकार राष्ट्रकी भी कर देनेकी शक्ति वढ़ाई जा सकती है। हर जातिके मुख्य मुख्य लोगोंके साथ कुछ रिश्रायतें की जायँ, श्रीर समस्त जनसमूहके लिए करका हिस्सा साधारणतः श्रधिक रखा जाय। अथवा प्रमुख लोगोंमें भेद उत्पन्न करके समस्त लोगों पर कर बढ़ा दिया जाय। परन्तु साधारणतः सब श्रीमान् लोगोंके साथ खास रिश्रायत की जाय क्योंकि धनवान् लोग राजाके श्राधार-स्तंभ होते हैं। कहनेकी भ्रावश्यकता नहीं कि करोंके सम्बन्धमें ऐसे ही नियम सब समभदार राष्ट्रोंमें होते हैं।

इसके सिवा श्रामद्नीके श्रन्य विषय खान, नमक, श्रुट्क, तर श्रीर हाथी थे। शान्तिपर्वमें कहा है कि इन सब विषयोंके लिए भिन्न भिन्न ईमानदार श्रमात्य रखे जायँ।

श्राकरे लवणे शुल्के तरे नागवले तथा। न्यसेदमात्यनृपतिः स्वाप्तान्वा पुरुषान्हितान्॥

'श्राकर' का श्रर्थ है खान। हिन्दु-स्थानमें सोने, हीरे, नीलम श्रादिकी खानें प्राचीन कालमें बहुत थीं। श्राजकल वे कम हैं। इनसे जो श्रामदनी होती थी वह सब राजाकी ही होती होगी; परन्तु यहाँ तो केवल कर लेनेका नियम बतलाया गया है। यह स्पष्ट है कि इन कामोंकी पूरी देख रेख करनेके लिए श्रीर किसी प्रकारकी धोखेबाजी न होने देनेके लिए ईमानदार श्रोर दत्त श्रधिकारी नियत किये जानेकी श्रावश्यकता थी।

प्राचीन कालमें नमक बडी भारी श्राम-द्नीका विषय था। इस समय ब्रिटिश राज्यमें भी वह एक महत्त्वका विषय है। नमक समुद्रों या खदानोंमें पैदा होता है। सब स्थानोंमें नहीं होता । परन्तु उसकी श्रावश्यकता सभी लोगोंको हुश्रा करती है। श्रतएव नमक पैदा करनेवाले राष्ट्रमें श्रीर न पैदा करनेवाले राष्ट्रमें भी नमकका कर एक महत्त्वका कर होता है श्रौर उसके लिए किसी स्वतन्त्र ईमान-दार श्रिधकारीकी श्रावश्यकता होती है। निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि श्रुत्कसे किस वस्तुका बोध होता है। टीकाकारका कथन है कि जिस स्थानमें श्रनाज वेचा जाता है, उसे शुल्क कहते हैं। शुल्क वह कर होगा जो आजकल रजवाड़ोंके बाजारोंमें खरीद श्रीर विक्री पर सायरके नामसे लिया जाता है। कन्याके विवाहके समय जो धन कन्याके पिताको दिया जाता है, उसे भी शुल्क कहते हैं। क्योंकि यह भी एक खरीद ही है; अर्थात् शुल्क नामक कर खरीद और बिकी पर लगाया जाता होगा और पूर्व कथनानुसार वह फी सैंकड़े दो रुपया होगा। इस करके लिए भी एक स्वतन्त्र श्रीर ईमानदार अधिकारीकी श्रावश्यकता है। 'तर' उस करको कहते हैं जो नदी या समुद्र पार करनेके स्थान पर लिया जाता है। समभमें नहीं त्राता कि यह कर महत्त्वका क्यों होना चाहिए । प्रवा-सियोंको इधरसे उधर ले जानेका काम नाव चलानेवालोंका है। वे श्रपनी मज-दूरी अलग लेते ही हैं। फिर भी प्राचीन कालसे आधुनिक कालतक यही मान लिया गया है कि तरीपर राजा या सर-कारका इसलिए हक होता है कि उनके

प्रवन्धसे तरीके विषयमें कुछ भगड़ा नहीं होने पाता श्रौर काम ठीक हो जाता है। इस तरीके द्वारा वहुत वड़ी श्रामदनी होती है। अब अन्तमें नागबलके सम्बन्ध-में कुछ कहना चाहिए । प्राचीन कालमें श्रीर इस समय भी यही धारणा देख पडती है कि जंगलके सब हाथी राजाके हैं। हाथी विशेषतः राजाका धन माना जाता है। पूर्व कालमें हाथी फीजके काम-में लाये जाते थे। जिस जंगलमें हाथो पैदा होते थे उस पर राजाका स्वतंत्र हक रहता था। उसमें किसीको शिकार खेलनेकी स्वाधीनता नहीं रहती थी। अधिकारी नियत उसके लिए खतंत्र किये जाते थे। हाथियोंके फुँडोंकी वृद्धि करने तथा उनको पकडनेका सब प्रवस्थ इन्हीं श्रधिकारियोंके द्वारा दुश्रा करता था। जिन जंगलोंमें हाथी नहीं रहते थे वे लोगोंके लिए खुले रहते थे। उनमें लकडी काटने और ढोरोंको चरानेकी खतंत्रता सब लोगोंके लिए रहती होगी। दो राष्ट्रोंके वीचमें हमेशा वड़ा जंगल रहता थाः क्योंकि राष्ट्रोंकी सरहद इन्हीं जङ्गलींसे निश्चित होती थी और ये जङ्गल किसी राष्ट्रके स्वामित्वके नहीं समक्षे जाते थे। उनपर किसीका खामित्व नहीं रहता था। श्रटवी पर्वताश्चेव नद्यस्तीर्थानि यानि च सर्वाग्यस्वामिकान्याहुर्नास्ति तत्र परित्रहः॥

(अनुशासन पर्व अ० ६६ श्लो० ३४)
"जङ्गलों, नदियों, पहाड़ों श्रोर तीर्थों
पर किसीका खामित्व नहीं, श्रोर
किसीका कवजा भी नहीं रह सकता।"
इसी कारण प्राचीन कालमें चित्रय
श्रोर ब्राह्मण निर्भय होकर जङ्गलमें जा
कर रहते थे। उनसे कोई पूछ नहीं सकती
था कि यहाँ तुम क्यों बैठे हो। सैंकड़ों
गडिरये जङ्गलमें श्रपने जानवरोंकों ले
कर निर्भयताके साथ रहते थे। प्राचीन

कालमें इससे प्रजाको बड़ी भारी सुविधा थीं; क्योंकि प्रत्येक मनुष्य स्वयं श्रपनी मेह-ततसे मुक्तमें लकड़ी, पत्थर, मिट्टी, घास श्रादि ले सकता था।

ज्ञमीनका स्वामित्व और पैमाइश

जमीनका महस्ल श्रनाजके खरूपमें देनेका रवाज सव राज्योंमें जारी था। इसीसे पूर्वकालमें जमीनकी पैमाइश करनेकी आवश्यकता नहीं थी। गाँवकी हद निश्चित थी; श्रौर उस हदमें खेती-के लायक जितनी जमीन रहती थी उस पर गाँववालोंका स्वामित्व रहता था। निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि बामित्व एकत्र रहता था या विभाजित, क्योंकि दोनों प्रकारकी परिपाटी अब भी दिखाई पड़ती है । तथापि यह वात निश्चित है कि जमीनके श्रलग श्रलग खंड किये जाते थे और उन पर विशिष्ट लोगोंका स्वामित्व रहता था । जमीनके क्रय-विक्रयका उल्लेख महाभारतमें कई शानोंमें श्राया है। जमीनकी कीमत थी। भूमि-दान बहुत पुरायकारक समभा जाता था। कहा है कि चतुर मजुष्य कुछ न कुछ ज़मीन खरीदकर दान करे।

ंतस्मात्कीत्वा महीं द्यात्स्वरुपामपि विचन्नशः

(अनुशासन पर्व अ० ६० को ३४)।
यदि जमीनका कथ-विकय होताथा तो
उसकी पैमाइश भी होती होगी। निश्चयपूर्वक नहीं बताया जा सकता कि महाभारत-कालमें जमीनकी माप किस
हिसाबसे होती थी। बीघा तो मुसलमानी माप है और एकड़ अँग्रेजी माप
है। टीकासे मालूम होता है कि इसके
पहले निवर्तन-माप प्रचलित थी।

यो वै कनाशः शतनिवर्त्तनानि भूमेः कर्षति तेन विष्टिरूपेण राजकीयमपि निवर्तन दशकं कर्षणीयं स्वीयवद्र-चणीयं च।

'जो किसान निजकी सौ निवर्त्तन जमीन जोतेगा, उसे राजाकी दस निव-र्त्तन जमीन मुफ़में जोत देनी चाहिए और वो देनी चाहिए। इस टीकाके अवतरण-से माल्म होता है कि प्राचीन समयमें निवर्त्तन शब्द बीघेके ऋथेंमें प्रचलित था। परन्तु वह महाभारतमें नहीं पाया जाता। फिर भी निवर्तन शब्द चाणुकाके श्रर्थशास्त्रमें है। उसका श्रर्थ लम्बाईमें बीस हाथ है। अर्थात् चेत्र निवर्तनका अर्थ चार सौ वर्ग हाथ होता है। महाभारत-कालमें निवर्तन ही जमीनकी माप प्रसिद्ध रही होगी। इस अवतरणसे यह भी प्रकट होता है कि महाभारत-कालमें लोगों-की निजकी जमीनको छोड खास राजा-की भी श्रलग जमीन रहती थी। राज-धानीमें वाग-वगीचे श्रादि जमीनके खतंत्र भाग राजाके उपभोगके लिए रहते होंगे। परन्तु समस्त देशमें भिन्न भिन्न स्थानोंमें राजाकी जमीन न रहती होगी। हम पहले ही कह चुके हैं कि जमीन पर प्रायः सारा खामित्व लोगोंका ही था। राजा-की निजकी जमीनके सिया उसकी गौश्रोंके बड़े बड़े भुएड भी रहते थे। ये भुगड भिन्न भिन्न जङ्गलों में रहते थे। करके रूपमें लोगोंसे मिले हुए ढोर इसी-में रहते थे। इन भुएडोंका वर्णन महा-भारतमें दो तीन जगह पाया जाता है। पूर्व कालमें प्रत्येक राजाके पास हजारों गाय-वैलोंके मुगड रहते थे। वैलोंकी वृद्धि करने, उनके लच्चणोंको जानने श्रीर उनके रोगोंको दूर करनेका शास्त्र उस समय उन्नतावस्थामें पहुँच गया था। सहदेव पशु-परीत्तक बनकर विराट राजाकी नौकरीमें रहा था। वह कहता है—"में युशिष्ठिरके पशुत्रोंके मुंहों पर

नौकर था। एक अंडमें सौ पशु होते हैं; ऐसे आठ लाख मुंड युधिष्टिरके थे। में जहाँ रहूँ वहाँसे श्रास-पासके दस योजनतक इस बातको जान सकता हूँ कि गौश्रोंको पहले क्या हुआ था श्रीर श्रागे उन्हें क्या होगा। में श्रच्छी तरहसे जानता हूँ कि गौश्रोंकी वृद्धि किस उपायसे होती है श्रीर क्या करनेसे उन्हें बीमारी नहीं होने पाती। में जानता हूँ कि उत्तम वैलोंके लच्चण कौनसे हैं।" (विराट पर्व श्र० १०)। दुर्योधनके घोष-का, यानी गौत्रोंके मंडोंके रहनेका स्थान हैतवनमें था। वहाँ वह जानव्म-कर घोषको देखने गया था। उसने हजारों गीएँ देखीं। सबके चिह्नों श्रीर संख्याकी उसने जाँच की । वछडोंको चिह्न लगवाये। जिन गौश्रोंके वच्चे छोटे थे, उनके सम्बन्धमें उसने यह निश्चय किया कि उन्हें प्रसृत होकर कितना समय बीता होगा। गौत्रोंकी गिनती कराई श्रीर तीन सालके ऊपरके वैलोंकी गिनती श्रलग कराई । (वनपर्व अ० २४०) । उपर्युक्त वर्णनसे ज्ञात होगा कि राजाके स्वामित्वमें रहनेवाली गौत्रोंके मुंडका प्रबन्ध किस प्रकार होता था। इन गौत्रीं पर सरकारी ग्वाल रहते थे श्रीर उनपर एक अधिकारी भी रहता था।

वेगार।

राजात्रोंको वेगार लेनेका श्रिधिकार था। राजधर्ममें कहा गया है कि राजा भिन्न भिन्न शिल्पकारों तथा मज़दूरोंसे बेगार लिया करे। बहुधा ऐसा नियम रहा होगा कि ये लोग दस दिनोंमें राजा-के लिए एक दिन मुफ़्में काम किया करें। इसी तरह फौज श्रौर राजमहलके लिए लगनेवाली वस्तुएँ वेगारसे तैयार कराई आती थीं। यहाँ यह बतला देना चाहिए कि वेगार सब लोगोंसे ली जाती थी।
यह सच है कि ब्राह्मणोंके विशेष अधि
कार समस्त राज्योंमें मान्य किये जाते
थे। उनके लिए वेगार श्रोर महस्ल सब
माफ था। उन्हें दूसरोंकी नाई सजा भी
नहीं होती थी। यदि उनमेंसे कोई वारिसी
के विना मर जाता था तो उसकी जाय
दाद सरकारमें जन्त नहीं होती थी।
परन्तु ये सब सुविधाएँ केवल उन वेद
जाननेवाले ब्राह्मणोंके लिए थीं जो श्रिष्ठ
रखकर श्रध्ययन, श्रध्यापन, यजन, याजन
श्रादि ब्राह्मणोचित उद्योगमें लगे रहते
थे—दुसरोंके लिए ये सुविधाएँ न थीं।

श्रश्रोतियाः सर्व एव सर्वे चानाहिताग्नयः। तान् सर्वान् धार्मिकोराजा विलिधिष्टं च कारयेत्॥

(शान्ति पर्व श्र० ५६)

श्रामिक राजा उन सब ब्राह्मणीसे वेगार श्रीर महस्त ले जो वेद न जानते हों और श्रिव्य रखनेवाले न हों। श्रर्थात्, ऐसे ब्राह्मण नामसे तो ब्राह्मण पर रोज-गारसे शृद्ध होते हैं। इसलिए इन लोगीसे श्द्रोंका काम करानेमें राजाकी धार्मि कतामें किसी प्रकारका दोष उत्पन्न नहीं होता।

राजाकी आमदनीके मुख्य साधन ये थे:—१ जमीनका महस्रल, २ जानवरी पर लगाया हुआ कर, ३ सायर अर्थात खरीद-फरोख्त पर कर, ४ खानोंकी उपज, ५ नमकका कर, ६ नाव चलानेवालों पर 'तर' नामक कर, ७ जङ्गली हाथी। यहाँ यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि वर्त-मान भारत-सरकारकी आमदनीके भी ये ही साधन हैं। इनके सिवा न्याय-विभागकी आमदनी, स्टाम्प और लावारिस माल के साधनोंका विचार हम आगे चल कर करेंगे।

जङ्गल और आबकारी।

वर्तमान भारत-सरकारकी श्रामदनी-के तीन साधनों - श्रफीम, श्रावकारी श्रौर जङ्गल-का महाभारत-कालमें होना नहीं पाया जाता। बल्कि इसी वातकी शङ्का उत्पन्न होती है कि पूर्व कालमें भरतखगड़-में श्रफीम होती भी थी या नहीं। श्रफीम-के यहाँसे विदेश भेजे जानेका कहीं उल्लेख नहीं है। (श्रफीमके लिए संस्कृतमें शब्द भी नहीं है। श्रहिफेण एक वनाया हुआ शब्द है) श्रावकारी पर भी सरकारी करका होना दिखाई नहीं पड़ता। शान्ति पर्वमें तो यह लिखा है कि राजा लोग शरावकी हुकाने बन्द कर दें। शराव पर कर होने-का कहीं उज्जेख नहीं है। सद्य श्रादिके शानोंका सर्वथा निरोध करनेके सम्बन्ध-में (शान्ति० श्र० ६८) श्राज्ञा है। यह भी कहा गया है कि शरावकी दुकानों श्रीर वेश्यात्रों पर कड़ी निगरानी हो। इससे मालम होता है कि शरावकी बहुतेरी दुकानें वन्द कर दी जाती रही होंगी श्रीर जो थोडी बहुत कहीं कहीं बच जाती थीं उन पर जबरदस्त पहरा लगा दिया जाता था। अजङ्गलकी उपजसे प्रजा प्रकट रीतिसे लाभ उठा सकती थी। जङ्गलके केवल ऐसे भाग सरकारी जङ्गल माने जाकर सुरिचत रखे जाते थे जिनमें हाथी श्रीर उत्तम घास उत्पन्न होती थी। प्रत्येक गाँवके श्रौर सीमाप्रान्तके शेष जङ्गल सब लोगोंके स्वतन्त्र उपभोगके लिए मुक्त ही थे। यहाँतक निश्चित हो गया था कि जङ्गलों पर किसीका स्वामित्व नहीं है।

खर्चके मद।

यहाँतक राजात्रोंकी श्रामदनीका विचार किया गया है। अब हम नीति-शास्त्रके उन नियमोंका विचार करेंगे जिनके श्रनुसार निश्चय किया जाता है कि राजा लोग किन किन मदोंमें खर्च किया करें। खर्चका श्रसली मद फौज था जिसका विचार स्वतन्त्र रीतिसे किया जायगाः परन्तु खर्चके दूसरे मदोंकी कल्पना सभा पर्वके कचित् श्रध्यायके श्राधार पर की जा सकती है। महा-भारत-कालमें राजाश्रोंके क्या क्या कर्तव्य समभे जाते थे, इस विषयका उत्तम वर्णन इस श्रध्यायमें किया गया है। नारद पूछते हैं—"राष्ट्रको तुभसे, तेरी स्त्रियोंसे या राजपुत्रोंसे, चोरोंसे श्रथवा लोभी मन्प्योंसे पीड़ा तो नहीं होती ?" इस प्रश्नमें इस वातका उत्तम वर्णन है कि श्रन्धाधुन्ध चलनेवाले राष्ट्रमें लोगोंको प्रायः किनसे पीड़ा हुआ करती है। यह बात इतिहास-प्रसिद्ध है कि राष्ट्रको बहुधा श्रत्याचारी राजाश्रोंसे, उनके लड़कों या रानियोंसे, राजाके प्रीतिभाजन छोटे नीकरोंसे श्रथवा चोरोंसे नित्य पीडा होती रहती है। इन कारणोंसे हिन्दुस्तानके इतिहासमें प्रजाको कई बार कप्र होनेका उदाहरण हमें मिलता है। श्रन्तिम उदाहरण दूसरे बाजीराव पेशवाके समयका है। उस समय स्वयं बाजीराव लोगोंकी श्रामदनीको लूटकर सरकारी खजानेमें मिला लेता था। उसके प्रिय अधिकारी श्रीर श्रन्य नौकर प्रजाको श्रलग लूटते थे श्रीर सबसे श्रधिक लूट पिंडारोंके द्वारा होती थी । सारांश यह है कि उसके समयमें सभी तरहकी दुर्व्यवस्था लोगों-

सम्भव वे दूकानें बन्द कर दी जाती थीं। हमारा मत है कि आबकारीके सम्बन्धमें महाभारत-कालमें इंसी तरहकी वरिस्थिति थी।

^{*} पूर्वकालमें चित्रयोंके सिवा दूसरे लोग शराब नहीं पीते थे। चित्रयों और राजा लोगोंके लिए शराब बहुधा उनके घरोंमें ही बनाई जाती थी। इसे देखकर हमारा मत होता है कि शराब पर कर न रहा होगा। अनार्य लोगोंकी शराबकी कुछ दूकाने रही होंगी, परन्तु उन पर सरकारकी सफ्त निगाह रहती थी और यथा-

को त्रस्त कर रही थी जिससे लोगोंको विदेशी श्रॅंग्रेज़ोंका राज्य प्रिय हुआ श्रोर उन्होंने उसका स्वीकार भी कर लिया। श्रतएव सिद्ध है कि राजाका पहला कर्तव्य स्वयं श्रपना तथा दरवारी लोगोंका निग्रह करके द्रव्य लूटनेकी इच्छाको दवाना है। यह तभी हो सकता है जब राजा श्रपने श्रीर दरवारके खर्च-को संयमके अधीन रखे। दूसरा कर्तव्य यह है कि चोरोंके बारेमें श्रच्छा प्रवन्ध करना चाहिए । विशेषतः दिनदहाडे लूटनेवाले चोरोंका सत्यानाश वेना चाहिए। इसके लिए पुलिसका करनेकी उत्तम प्रवन्ध आवश्यकता होगी। प्रत्येक राष्ट्रके शहर, श्राम श्रौर प्रान्त यांनी सीमा ऐसे तीन भाग नित्य रहा करते थे और इन सीमाओं पर जंगल थे। इन प्रान्तों श्रथवा जंगलों-में रहकर डाकू प्रजा को लुटा करते थे। हमें इतिहाससे मालूम होता है कि पिंडारों का यही तरीका था। इसके लिए प्रत्येक नगरमें कोट श्रौर प्रत्येक गाँवमें गढ़की व्यवस्था थी। नारदने एक प्रश्न किया है जिसमें पूछा गया है कि क्या तेरे राष्ट्र-में प्रत्येक गाँव शहरके सरीखे हैं न? श्रीर प्रान्त या सीमा गाँवके सरीखे हैं न? इससे विदित होता है कि ऊपर कहे श्रनुसार ही व्यवस्था थी। इसके सिवा नारदने यह भी पूछा है कि डाकुश्रोंके छिपनेकी जगहतक घुड़सवारोंका भेजता है न ? तात्पर्य यह कि डाकुश्रोंका नाश करने श्रौर लोगोंके जानमालकी हिफ़ा-जत करनेके सम्बन्धमें त्राजकल अँग्रेज़ी राज्यमें जो प्रयत्न किये जाते हैं, वे सव प्राचीन कालमें बतलाये गये हैं श्रीर सुव्यवस्थित राज्योंमें उनके श्रनुसार कार्रवाई की जाती थी। इस तरहसे पुलिस-विभागका खर्च प्रधान था।

दूसरा खर्च नहर (इरीगेशन) विभाग का रहा होगा। नारदने पूछा है कि तेरे राज्यमें योग्य स्थानोंमें बनाये हुए श्रीर पानीसे भरे हुए तालाव हैं न ? तेरे राज्य में खेती आकाशसे वरसनेवाले पानी पर तो अवलम्बित नहीं है ? इन प्रश्नोसे मालुम होता है कि श्राजकलकी ही तरह प्राचीन कालमें भी सदा समय पर पानी बरसनेका भरोसा नहीं रहता था श्रोर सदैव श्रकालका डर लगा रहता था। इससे स्थान स्थान पर पानी इकट्टा कर रखनेकी जिम्मेदारी सरकार पर थी। इस सम्बन्धमें सब खर्च सरकारको करना पड़ता था। तीसरा खर्च तकावी-का था। इसे आजकल कहीं कहीं खाद श्रोर बीज-सम्बन्धी खर्च कहते हैं। यह देखकर श्राश्चर्य होता है कि खेती करने वाले लोग प्राचीन कालसे ही सरकारी साहकारी सहायताके विना खेती न कर सकते थे। खेतीका व्यवसाय बहुत करके महाभारतकालमें लोगोंके हाथोंसे निकल गया होगा। पूर्व-कालमें श्रौर भारतकालमें वैश्योंका मुख्य व्यवसाय कृषि था। भगवद्गीतामें वैश्योंका रोजगार कृषि, गोरचा श्रौर वाणिज्य बतलाया गया है। परन्तु मालूम होता है कि महाभारतकालमें वैश्योंने पहले दो रोजगारोंको शृद्रोंको दिया। इसलिए खेतीके लिए श्रावश्यक बीजकी श्रीर चार मासतक यानी फसल के तैयार होनेतक लगनेवाले श्रमकी कुछ न कुछ सुबिधा सरकार श्रथवा साह्कारकी श्रोरसे करा लेनी पड़ती थी। मुसलमानोंके राज्यमें ऐसी सहा यताका नाम तकावी था और श्राजकल यही शब्द प्रचलित है। इस तरह सरकारी सहायता देनेकी प्रथा महाभारतकालसे प्रचलित सिद्ध होती है। नारदके प्रश्रमे

इसे बीज श्रीरे भक्त कहा गया है। ये बीज श्रीर भक्त सरकारी कोठोंसे दिये जाते थे। यदि साहूकार देता तो सरकार वसूल करके वापस दिला देती रही होगी। श्राश्चर्यकी बात यह है कि तारदके इस प्रश्नमें ज्याजकी दर भी तिश्चित देख पड़ती है! प्रति मास सौ हपयों पर १ रुपयेकी दर निश्चित थी: श्रीर इस बातका निर्वन्ध कर दिया गया था कि साहुकार लोग इससे श्रधिक हरसे ब्याज न लें। खदेशी राज्योंमें यह नियम चन्द्रगुप्तके समयसे श्राज २२०० वर्षीतक प्रचलित है। यह देखकर इस बातकी कल्पना हो सकती है कि हिन्दु-श्वानकी प्राचीन संस्था कितनी स्थिर श्रीर टिकाऊ होती है। यह नियम था कि "कृषिका उत्कर्ष करनेके लिए राजा किसानोंकी दशा श्रच्छी रखनेकी श्रोर ध्यान दे। यह यह देखा करे कि उनके पास निर्वाहके लिए अनाज श्रीर वीज पूरा पूरा है या नहीं। श्रीर, प्रति मास फी सेंकडे एक रुपयेसे श्रधिक ब्याज न लेकर वह द्यापूर्वक उन्हें कर्ज दिया करे।"

ग्राम-संस्था।

सभापर्वमें वतलाया गया है कि
प्रत्येक गाँवमें पाँच पाँच श्रधिकारी रहते
थे। ये श्रधिकारी स्थायी श्रथवा वंशपरम्परागत होते थे। टीकाकारने उनके नाम
इस प्रकार वतलाये हैं—प्रशास्ता (सिरपंच), समाहर्ता(वस्र्ल करनेवाला),सिवधाता लेखक (पटवारी या मुन्शी) श्रौर
साल्ली। यह नहीं वतलाया जा सकता कि
साल्लीकी विशेष क्या श्रावश्यकता थी।
ये पाँचो श्रधिकारी शर, सज्जन श्रौर एक
मतसे काम करनेवाले होते थे। राष्ट्रमें
मनुष्योंकी बस्ती प्रान्त, श्राम, नगर श्रौर

पुरमें विभक्त रहती थी। त्राजकल प्रान्त शब्दका अर्थ देशका विभाग होता है। परन्तु प्राचीन कालमें प्रान्तका अर्थ अन्तके निकटका यानी राष्ट्रकी सीमाके पासका प्रदेश होता था। पुरका अर्थ राजधानी था। अकालके उरसे एकत्र किया हुआ अनाज बहुधा नगर या राजधानीमें जमा किया जाता था।

इसके सिवा कहा गया है कि कृषि,
गोरचा श्रोर वाणिज्यकी तरकीके लिए
राजा विशेष प्रयत्न करे। इसके सम्बन्धमें
एक स्वतन्त्र शास्त्र वार्ता ही बनाया गया
था। उसके श्रमुसार कृषि श्रोर वाणिज्यकी
उन्नति करके देशकी दशाको उत्तम
बनानेका प्रयत्न करना वैश्य लोगोंका
श्रोर व्यकी सहायता देना राजाश्रोंका
काम था। राजाश्रों पर चौथी जवाबदारी
श्रकालग्रस्त लोगोंको श्रक्ष देनेकी थी।
श्रन्थे, मूक, लङ्गड़े श्रादि लोगोंकी
जीविकाकी जिम्मेदारी भी राजा पर थी।

कचिद्रन्धांश्च मृकांश्च पंगृन् व्यंगान-बांधवान् । पितेव पासि धर्मक तथा प्रवाजितानपि॥

श्रयांत् जो श्रन्धे, मूक, लक्ष् के, व्यक्ष शरीरवाले हों, जिनकी रचा करनेवाला कोई न हो श्रीर जो विरक्त होकर संसारका त्याग करके संन्यासी हो गये हों उनका पालन-पोषण राजा पिताकी तरह करे। इसी तरह वह राष्ट्रको श्रान्न, सर्प श्रीर वाघ तथा रोगके भयसे बचानेका उपाय करे। श्राजकलके प्रत्येक उन्नत राष्ट्र श्रपने ऊपर इस तरहकी जिम्मेदारीका होना मानते हें श्रीर महाभारतकालके राज्योंमें भी पेसी ही जिम्मेदारी सम्भी जाती थी। इससे पाठक समभ सकेंगे कि पूर्वकालसे ही राजाश्रोंके कर्तव्यकी कल्पना कितनी दूरतक पहुँच गई थी। भारदने उपदेश किया है कि इनाम श्रीर श्रग्रहार-सम्बन्धी पूर्व राजाश्रोंके किये हुए सब दानोंका पालन राजाके द्वारा होना चाहिए।

ब्रह्मदेयाब्रहारांश्च परिवर्हांश्च पार्थिव।
पूर्वराजाभिपन्नांश्च पालयत्येव पाएडवः॥
(त्राश्रमवासि पर्व १०)

कोई राजा जब किसी दूसरेका राज्य जीत ले तब पूर्व राजाके द्वारा दिये हुए इनामों, श्रयहार (ब्राह्मणोंको दिये हुए पूरे गाँव) श्रीर परिवर्ह (श्रर्थात् दिये हुए श्रन्य श्रधिकार या हक) का उसे पालन करना चाहिए: इसके साथ यह भी कहा गया है कि इस तरहसे युधिष्ठिरने दुर्यों-धनके द्वारा दिये हुए सब हकोंका पालन किया। यह तत्त्व भी उन्नत राष्ट्रोंके मुल्की कार्योमें मान्य समभा जाता है। सारांश यह है कि आजकलके बिटिश राज्यके रेविन्यू या माल विभागके सभी उदार नियम प्राचीन कालमें प्रचलित थे। श्रधिक क्या, प्रत्येक गाँवमें लेखकोंका रखा जाना देखकर यह मान लेनेमें भी कोई हर्ज दिखाई नहीं पड़ता कि मुल्की कामोंके कागज-पत्र भी तैयार किये जाते थे। इससे निर्विवाद सिद्ध होता है कि महा-भारत-कालके राज्योंमें हिन्दुस्थानमें मुल्की शासन उत्तम प्रकारका होता था।

जमाखर्च-विभाग।

श्रव हम श्रायव्यय श्रर्थात् फाइनेन्स विभागका विचार करेंगे। हम पहले ही बतला चुके हैं कि राज्यमें व्ययाधिकारी स्वतन्त्र रहते थे। परन्तु यह भी कहा गया है कि राजा राज्यके जमास्वर्च पर स्वयं नित्य दृष्टि रस्वा करें। बहिक नियम ऐसा था कि राज्यके जमास्वर्चका दैनिक नकशा प्रतिदिन दोपहरके पहले तैयार हो जाया करें। मालूम होता है कि इसके लिए श्रायव्यय-सम्बन्धी बहुतसे कर्म- चारी रहा करते थे मिनारदका प्रश्न है किः— कचिदायव्यये युक्ताः सर्व गणकलेखकाः। श्रमुतिष्ठंति पूर्वाहे नित्यमायंव्ययं तव॥ (स० ५-७२)

राजाको तीन काम खुद रोज करने पड़ते थे। जास्सोंकी खबर रखना, खजानां श्रोर न्याय। इन तीनों कामोंको वह दूसरों पर नहीं सोंप सकता था। उसको जमासे खर्च कभी बढ़ने न देनेकी सावधानी रखनी पड़ती थी। कहा गया है कि राजाकी मुख्य सामर्थ भरा हुश्रा खजाना है क्योंकि उसकी सहायतासे फौज भी उत्पन्न हो सकती है। नारदने कहा है कि खर्च जमाका श्राधा श्रथवा है हो।

कचिदायस्य चार्झेन चतुर्भागेन वा पुनः। पावभागेस्त्रिभिर्वापि व्ययः संशुध्यते तव॥

इसका ठीक ठीक अर्थ मालूम नहीं होता । हमारे मतानुसार इसका यही अर्थ होगा कि आधा अथवा तीन चतुः र्थाश, अथवा 👬 जैसा पसन्द करे उसके अनुसार राजा खर्च किया करे। श्राजकलके प्रजासत्ताक राज्यों में श्रायव्ययः की नीति भिन्न है। यहाँ पर ध्यान रखना होगा कि प्राचीन कालमें राजात्रोंको बचत रखनेकी बड़ी जरूरत रहती थी क्योंकि श्राजकलकी तरह मनमाने नये कर नहीं लगाये जा सकते थे। पुराने कर भी बढाये नहीं जा सकते थे। इसी लिए दएडनीतिका यह कड़ा नियम था कि वची हुई रकमको राजा अपने कामक लिए यानी चैन करनेके लिए श्रीर धर्म करनेके लिए भी खर्च न करे।

सिक्के।

अब हम महाभारत-कालके सिक्कोंका विचार करगे। उस समय वर्तमान रुपयी

का, इस तरहेके सिक का, प्रचार न था। बौद्ध प्रन्थों से मालुग होता है कि उस समय ताँवे अञ्चलक चाँदीके "पण" प्रवित्त थे प्राप्ति महाभारतमे यह शब्द कहीं नहीं सिल्ता । महाभारतमें तिकका नाम- वार्वार श्राता है। यह मोनेका सिका था माल्म नहीं इसका क्या मूल्य था ी हिन श्रीर पुतलीकी ग्रोचा वह वड़ा होगा; क्योंकि निष्क इतिए। मिलके प्रकेशवाहाणीको आनन्द होता था और ऐसा श्रानन्द सूचक वर्णन पाया जाता है कि - "तुभे निष्क मिल गया, दुंभेर निष्क मिल गया।" श्रुतमान है कि निष्क सिक्के वर्तमान महरके वराष्ट्रिहे होंगे। यह भी वर्णन है कि श्रीमान लोगोंकी दासियोंके गलेमें पहननेके लिए इन्हिन्कोंकी माला तैयार की जाती थी: श्रीर एकाश्रोंकी दासियों-लिए निष्कक्षराठी विशेषराका वारवार रायेग किया गया है। महाभारत कालके जात। अतितक कहीं नहीं मिले हैं। पेश होता शहर विद्वानोंका तर्क है कि कलवे ति-कालमें यानी चन्द्रगुप्त कालमें संस्का प्रचार ही नहीं था। सोनेके जिंकण एक छोटीसी थेलीमें एखकर वेशिष्ट वजनके सिकोंके वदले काममें नाये जाते थे। उनका कथन है कि सिक जानेकी कला हिन्दुस्थानियोंने ग्रीक लोगों-सीखी। यह बात सच है कि प्राचीन ग्रालमें इस तरहसे सोनेके रजका उपयोग किया जाता था। सोनेके रज तिब्बत देशसे आते थे। उनका वर्णन आगे होगा। परन्तु पाश्चात्य इतिहासोंमें लिखा है कि हिन्दुस्थानके भागोंसे पर्शियन बादशाहों-को दिया जानेवाला राजकर रज सक्तपमें ही दिया जाता था। हम पहले बतला युके हैं कि हरिवंशके एक श्लोकमें दीनार रिष्द् आया है। पर यह क्ष्रोंक पीछ्नेका है।

परन्तु वह कहना कठिन नहीं है कि महा भारत-कालमें निष्क सिक्के थे श्रौर सोनेके रजकणकी थैलियाँ नहीं थीं। क्योंकि यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि उनका उपयोग पुतलोकी तरह माला वनानेमें किया जाता था। चाणुकाके अर्थ-शास्त्रमें चन्द्रगुप्तके खजानेका वर्णन करते समय खर्णशालाका उल्लेख हुत्रा है। उसमें विस्तारपूर्वक वतलाया गया है कि भिन्न भिन्न धातुओंको परीचा कैसे करनी चाहिए। श्रतएव यह नहीं कहा जा सकता कि हम लोगोंने धातुसंशोधन श्रीर सिक्के बनानेकी कला श्रीक लोगोंसे सीखी। इसके सिवा नीचेके श्लोकमें मदायक्त सिक्केका स्पष्ट वर्णन है। यद्यपि उसका अर्थ गृढ़ है तथापि उसमें मुद्रा शब्द स्पष्ट है। है। है। है।

माता पुत्रः पिता भ्राता भार्या मित्रजनस्तथा। श्रष्टापदपदस्थाने दत्त मुद्देव लद्यते॥

(शां० श्र० २०६—४०)

न्याय-विभाग।

श्राजकलके उन्नत ब्रिटिश राज्यकी मुल्की व्यवस्था प्राचीन कालके भारती श्रायोंके राज्योंकी मुल्की व्यवस्थासे बहुत भिन्न न थी। परन्तु प्राचीन कालकी न्याय-व्यवस्थामें श्रीर श्राजकलकी न्याय-व्यवस्थामें बड़ा अन्तर है। कारण यह है कि हिन्दुस्थानकी ब्रिटिश राज्यकी मुल्की व्यवस्था हिन्दुस्थानकी पुरानी व्यवस्थाके आधार पर ही रची गई है: परन्तु श्राजकलकी न्याय पद्धति बिलकुल विदेशी है। हिन्दुस्थानकी प्राचीन न्याय-पद्धतिसे उसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। वह इंग्लैएड देशकी न्याय-पद्धतिके श्राधार पर वनाई गई है। इस कारण हिन्दुस्थानके लोगोंका बड़ां नुकसान हुआ है। क्योंकि यह कहा जा सकता है कि हिन्दुस्थानके लोगोंमें भ्राजकल मुक- दमेबाजीकी रुचि उत्पन्न हो गई! है श्रोर उनकी सत्यवादितामें भी न्यूनता श्रा गई है। खैर: इस विषयमें श्रिधिक न कह-कर हम यहाँ पर भारतकालीन न्याय-पद्धतिका वर्णन करेंगे। उससे हमें यह मालूम हो जायगा कि ब्रिटिश राज्यके श्रारम्भ होनेतक थोड़े बहुत रूपान्तर-से भारत-कालीन न्यायपद्धति ही हिन्दु-स्थानमें प्रचलित थी।

महाभारतकालमें राज्य छोटे होते थे श्रतएव स्मृतिशास्त्रके इस नियमका बहुधा पालन हो जाया करता था कि न्याय-दरवारमें स्वयं राजा वैठे । यह नियम पहले बताया जा चुका है कि राजा विवादके न्याय करनेका काम किसीको न सौंपे। तद्वसार राजा प्रतिदिन राज-दरबारमें श्राकर न्याय किया करता था। न्यायकार्यमें राजाको सहायता देनेके लिए एक राजसभा रहती थी। इस राजसभाका वर्णन शांतिपर्वके =५वें ऋध्या-यमें किया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि यह अध्याय विवादोंके ही निर्णयके बारेमें है। युधिष्ठिरने उसी विषय पर प्रश्न किया था। तव भीमने जो अमात्य (मंत्री) बतलाये हैं वे न्यायसभाके ही हैं श्रौर इस श्रध्यायके सम्पूर्ण वर्णनसे यही सिद्ध होता है। यह नियम था कि सभामें चार वेदवित गृहस्थाश्रमी श्रीर शुद्ध श्राचरणके ब्राह्मण, शस्त्र चलाने-वाले श्राठ बलवान् चत्रिय, इक्कीस धन-वान वैश्य श्रीर पवित्र तथा विनयसंपन्न तीन ग्रद्र हों । सारांश, यहाँ श्राज्ञा दी गई है कि सभी वर्णोंके लोगोंसे भरी हुई ज्यूरी सरीखी न्याय-सभाकी सलाहसे विवादोंका निर्णय किया जाय। इसके सिवा यह भी कहा गया है कि राजा विद्यासम्पन्न, प्रौढ़, सूत जातिके, पचास वर्षकी अवस्थाके, तर्कशास्त्र-ज्ञान रखने-

वाले श्रोर ब्रह्मज्ञान संयुक्त मनुष्यको पौरा णिक बनावे और आठ मंत्रियोंके वीचमें वैठकर न्याय करे। न्याय करते समय किसी पत्तकी श्रोरसे राजा श्रन्तस्य द्रग्य न ले, क्योंकि इससे राजकार्यका विघात होता है श्रीर देने श्रीर लेनेवाले दोनोंको पाप लगता है। "यदि ऐसा करेगा तो राजाके पाससे प्रजा ऐसे जैसे श्येन अथवा गरुड़के पाससे पची भागते हैं अगर राष्ट्रका नाश हो जायगा। जो निर्वल मनुष्य वलवान्से पीडित होकर 'न्याय न्याय' चिल्लाता हुआ राजाकी श्रोर दौड़ता है, उसे राजासे न्याय मिलना चाहिए। यदि प्रतिवादी स्वीकार न करे तो साद्यीके प्रमाणसे इन्साफ करना चाहिए। यदि साज्ञी न हो तो बड़ी युक्तिसे निर्णय करना चाहिए। श्रपराधके मानसे सजा देनी चाहिए। धनवान आदमियोंको जुर्माना करना चाहिए, गरीबोंको कैदकी सज़ा और दुराचरणी लोगोंको छेनकी सुद्राचतुः चाहिए। राजाके खून करूनेवसन्द लेनेके पहले उसकी खूब दुदेशा करे। चाहिए। इसी तरह आग् लगाने प्र-श्रीर जातिभ्रष्ट करनेवालेका भी व करना चाहिए। न्याय श्रीर उचित दगड देनेमें राजाको पाप नहीं लगता। परन्तु जो राजा मनमानी सजा देता है, उसकी इस लोकमें अपकीर्ति होकर अन्तमें उस नरकवास करना पड़ता है। इस बात प पूरा ध्यान रखना चाहिए कि किसी एक के अपराधके बदले किसी दूसरेको सजा न मिल जाय" (शान्ति पर्व अ० ६५)। इस वर्णनमें समग्रन्याय-पद्धतिके तत्वका प्रतिपादन थोड़ेमें किया गया है। न्यायके कामोंमें राजाको चारों वर्णोंके मनुष्योंकी ज्यूरीकी सहायता मिलती थी। इस ज्यूरी में वैश्योंकी संख्या अधिक है । परन्तु वह

स्पष्ट है कि न्यासासनके सामने बहुधा त्तेनवेनके यानी वैश्योंके सम्बन्धके विवाद ही अधिक आते थे और इतने घैश्योंकी महायतासे लेनदेनके व्यवहारकी रीति-रसोंके श्रनुकूल निर्णय करनेमें सुभीता वड़ता था। हमें इतिहाससे माल्म होता है कि इस प्रकारकी चातुर्वएर्यकी न्याय-समा महाभारत-कालके वाद बन्द हो गई। # मृच्छकटिकमें राजाके वदले एक त्यायाधीश श्रीर राजसभाके वदले एक श्रेष्टी श्रथवा सेठ श्राता है। जिस समय त्यायसभामें स्वयं राजा वैटता था उस समय निर्णयके लिए बहुत थोड़े भगड़े गजसभामें श्राते रहे होंगे, क्योंकि साधा-रणतः लोग राजाके सामने भगडे पेश करनेमें हिचकते रहे होंगे। उन मंभटोंका निर्णय वे लोग श्रापसमें कर लेते थे श्रथवा न्यायसभाके बाहर वादी श्रीर प्रतिवादीकी मंजूरीसे पञ्चकी सहायतासे समभौता हो जाता था। जब कोई उपाय न रह जाता था तब मुकद्मा राजाके सामने पेश होता था। सारांश यह है कि आज-कलके हिसावसे उस समय मामलोंकी संख्या बहुत ही थोड़ी होती थी। पूर्व कालमें बहुत करके यह पद्धति थी कि वादी श्रीर प्रतिवादी श्रथवा श्रथी श्रीर पत्यर्थी राजाके सामने एक साथ ही जायँ श्रीर गवाह भी साथमें ही रहें। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि राजा-का किसी पद्मसे रिशवत लेना पाप समभा जाता था। यदि प्रतिवादी वादी-के दावेसे इन्कार करता था तो गवाहों-से शपथ लेकर निर्णय किया जाता था। शपथ लेनेकी किया बड़े समारम्भसे होती थी श्रीर गवाहके मन पर उसका बहुत ही श्रच्छा परिणाम होता था।

* काश्मीरके इतिहाससे मालूम होता है कि स्वयं राजा भी न्यायसभामें बैठता था। इसके वाद न्यायसभाके सभासदीकी
जानकारीके श्राधार पर राजा श्रपना
निर्णय वतलाता था श्रोर शीघ्र ही उसकी
तामील होती थी। तात्पर्य यह है कि
पूर्व कालमें न्याय चटपट हो जाता
था श्रोर खयं राजाके न्यायकर्ता होनेके
कारण कहीं श्रपील करनेकी कल्पनाका
४त्पन्नतक होना सम्भव न था। श्रपीलकी
कल्पना श्रॅगरेजी राज्यकी है श्रोर उसके
भिन्न भिन्न दर्ज होनेके कारण श्राजकल
लोग पागलसे हो जाते हैं।

पहले जमानेमें स्टाम्पकी व्यवस्था न थी। यह व्यवस्था ब्रिटिश-शासनके नये सुधारका द्योतक है। पर प्राचीन कालमें वादी श्रीर प्रतिवादीको सरकारमें दग्रह भरना पड़ता था। यदि वादी हार जाता था तो उसे दएडके स्वक्रपमें दावेकी रकमका दूना सरकारको देना पड़ता था: श्रीर यदि प्रतिवादी हारता था तो वह दएड-के स्वरूपमें उतनी ही रकम देताथा। इस दएडकी व्यवस्थाके कारण भी न्याय-दर-बारमें श्रानेवाले मुकदमे बहुत ही थोड़े रहते थे। परन्तु महाभारतमें इस द्रश्डकी व्यवस्थाका उल्लेख कहीं नहीं है । टीका-कारने यह उल्लेख वादकी स्मृतियोंके अनु-सार किया है। हमारा तर्क है कि बहुत करके महाभारत-कालमें द्राडकी व्यवस्था प्रचलित न थी। क्योंकि यह कहा जा चुका है कि प्रजाको न्याय-दान करने और दुष्टोंको सजा देनेके लिए ही राजाको कर देना पड़ता है। तथापि इस सम्बन्ध-में कोई बात निश्चयके साथ नहीं कही जा सकती। यह भी कहा गया है कि जब वादी श्रीर प्रतिवादी दोनोंके कोई गवाह न हों तब वड़ी युक्तिके साथ इन्साफ करना चाहिए। ऐसे प्रसङ्गोमें युक्तिकी योजना करनेके बारेमें अनेक कथाएँ प्रचलित हैं जिनका उल्लेख करनेकी यहाँ कोई आव-

श्यकता नहीं। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि जहाँ युक्तिसे भी निर्णय नहीं हो सकता था वहाँ क्या किया जाता था। स्मृति-ग्रन्थोंमें दिव्यकी प्रथाका वर्णन है। परन्तु महाभारतके उक्त श्रवतरणोंमें उसका उन्नेख नहीं है। तो भी यह प्रथा हिन्दु-स्थानमें श्रत्यन्त प्राचीन कालसे प्रचलित है। छान्दोग्य उपनिषद्में तप्त-परशु-दिव्य-का उल्लेख है। चोर पकड़कर लाया जाता था; फिर जब वह चोरी करनेसे इन्कार करता था तब उसके हाथमें तपा हुआ परशु दिया जाता था। यदि उसका हाथ जल जाता तो वह चोर समसा जाता था श्रीर यदि उसका हाथ न जलता तो वह मुक्त समभा जाता था। यह वर्णन छान्दोग्य उपनिषद्में है। श्रस्तुः जब किसी उपायसे न्याय होना सम्भव न रह जाता था तव महाभारत-कालमे भी इसी प्रकारके दिव्योंसे काम चलाया जाता रहा होगा । पूर्व कालमें विवादों में दीवानी श्रीर फौजदारीका भेद न था। दोनों विषयोंकी जाँच एक ही तरहसे होती थी और वह भी बहुधा चटपट हो जाती थी। वादी श्रीर प्रतिवादी दोनों अ ानी खुशीसे न्यायसभामें उपस्थित हो जाते थे। प्रतिवादीको सरकारी श्रिध-कारी भी पकड़कर न्यायासनके सामने ले श्राते थे। सजाके दगड, कैद, प्रहार और वध चार भेद थे। वध शब्दका अर्थ केवल प्राण लेना न था। उसमें हाथ-पैर तोड़नेकी सजा भी स्चित होती है। इस कथनमें कदाचित् श्राश्चर्य माल्म होता होगा कि धनवान लोगोंको (श्रार्थिक) दएड देना चाहिए; ऐसा नियम है। परन्तु हत्या, चोरी ऋदिके ऋपराश्रोंमें श्रमीर-गरीव सबको वधकी ही संजा मिलती थी। प्रहार श्रर्थात् वेंतकी सजा है। यह सजा आजकलके कायदोंके अनुसार

दुष्ट और कुवृत्तिवाले लोगोंके ही लिए है। ऐसा ही पूर्वकालीन न्याय-पद्मतिमें भी होता था। अन्य देशोंकी प्राचीन न्याय-पद्धतिकी अपेचा हिन्दुस्थानकी प्राचीन न्याय-पद्धतिमें यह एक वहा भारी विशेष गुग था कि अपराधका स्वीकार करानेके लिए किसी पति वादीकी कुछ भी दुईशा नहीं की जाती थी। चीन देशमें तथा पश्चिमके स्पेन देशमें ईसाई राज्यके अन्तर्गत अपराध लगना ही बड़ा भयद्वर था। इन देशोंकी यही घारणा थी कि श्रमियुक्तसे खीइति का उत्तर लेना त्रावश्यक है। वहाँ श्रमि यक्तकी दुर्दशा कई दिनोंतक भिन्न भिन्न रीतियोंसे कान्नके आधार पर प्रकट की जाती थी। यह बात भारती श्रायौंके लिए भूषराप्रद है कि हिन्दुस्थानकी प्राचीन न्याय-पद्धतिमें इस तरहकी व्यवस्था न थी। श्राजकलकी दृष्टिसे कुछ सजाएँ कडी मालम होती हैं। परन्त प्राचीन कालमें सभी देशोंमें कड़ी सजा दी जाती थी। चोरोंको बधकी अर्थात प्राण लेने की सजा अथवा हाथ तोड़नेकी सजा दी जाती थी । इस विषय पर महा भारतमें एक मनोरञ्जक कथा है। स्नानके लिए जाते समय एक ऋषिने रास्तेमे मकेका एक सुन्दर खेत देखा । उसकी इच्छा मका लेनेकी हुई श्रीर उसने एक भुद्दाः तोड़ लिया । परन्तु थोड़ी देखे वाद उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वह उसे लेकर राजाके पास गया श्रीर श्रपना श्रप राध खुद प्रकट करके अपने हाथके तोड़े जानेके लिए प्रार्थना करने लगा। राजा ने उसकी विनतीको नामंजूर किया। त^व वह कहने लगा कि—"जो राजा श्रपरा धियोंको सज़ा देता है वह खर्गको जाता है। परन्तु जो उन्हें सज़ा नहीं देता वह नरकको जाता है।" यह चचन सुनकर

श्रीर निरुपाय होकर राजाने उसे श्रमीए द्राड दिया और उसका हाथ ट्रटते ही देवताश्रोंकी कृपासे उस हाथकी जगह पर सुवर्णका दूसरा हाथ उत्पन्न हो गया। इससे सिद्ध है कि दगडनीय लोगोंको सजा देना प्राचीन न्याय-पद्धतिमें राजाका पवित्र कर्तव्य और अत्यन्त महत्वकी वात समभी जाती थी। परन्तु पूर्व कालमें यह तव भी मान्य समभा जाता था कि विना श्रपराधके किसीको सज़ा न हो और बिना कारण किसीकी जायदाद जब्त न की जाय। यदि इस तत्वके विरुद्ध प्राचीन कालके अथवा आजकलके ही राजा जल्म करें तो यह उस पद्धतिका दोष नहीं है। ऊपर बतलाई हुई न्याय-पद्धति हिन्दुस्थान-के लोगोंके स्वभावके अनुकुल उनके इति-हाससे उत्पन्न हुई थी जिससे वे सुखी रहते थे। वे उसे योग्य समभते थे। पूर्व कालमें अपराधोंकी संख्या बहुत थोडी रहती थी श्रोर लोगोंकी सत्यवादिता किसी तरहसे भक्त न होती थी। गवाहों-का इजहार बड़ी कड़ी शपथोंके द्वारा श्रीरप्रत्यच राजाके सन्मुख होता था, श्रत-एव बहुधा वे भूठ न बोलते थे। उस समय वादी श्रोर प्रतिवादीके वकील नहीं होते थे श्रीर मुख्य इजहार, जिरह, वहस श्रादि-का कोई बखेडा भी न रहता था। प्रत्येक मुकदमेमें राजाको जानकार लोगोंकी सलाहकी आवश्यकता रहती थी और न्यायसभाके सभासद चारों वर्णोंके होने-के कारण गवाहोंसे परिचित रहते थे। भिन्न भिन्न दर्जेको अपील-अदालते विल-कुल न थीं। प्रत्यत्त राजा ऋथवा जान-कार लोगोंके सन्मुख स्थिर न्याय होता था। इससे मनमाने गवाह देने श्रीर मन-माने भगड़े उत्पन्न करनेके सभी रास्ते पूर्व कालमें बन्द थे। बहुधा लोग अगड़ीं-का तिस्फया आपसमें ही कर लेते थे

श्रीर भूठ बोलनेको कभी तैयार न होते थे। यह बात ग्रीक लोगोंके वर्णनसे भी सिद्ध होती है कि महाभारतकालमें ऐसी स्थिति सचमुच थी। हिन्दुस्थानके लोगों-की सचाईके सम्बन्धमें उन्होंने प्रमाण लिख रखे हैं। उन्होंने यह भी लिखा है कि चन्द्रगुप्तकी प्रचएड सेनामें बहुत ही थोड़े अपराध होते थे। उनके लेखसे हिन्दुस्थानमें दोवानी दावोंका विलकुल न होना प्रकट होता है। उनके वर्णनसे मालूम होता है कि यदि किसीने किसी दूसरेको द्रव्य दिया और वह द्रव्य उसे वापस न मिला तो वह दसरे पर भरोसा करनेके कारण अपनेको ही दोष देता था।

चन्द्रगुप्त और महाभारतके समयके वाद राज्य बड़े हो गये। इससे यह नियम ढीला होता गया कि सब मुकदमोंका निर्णय स्वयं राजा करे। फिर न्यायाधीश अथवा अमात्य रखनेकी पद्धति शुरू हुई। इसका उल्लेख महाभारतमें ही है। हमारा मत है कि अदालतमें होनेवाले सभी इजहारोंका पूर्व कालमें लेख नहीं रखा जाता था। इजहार शब्दके सर्घ त्रर्थके अनुसार सभी बातोंका मुँहसे बत-लाया जाना प्रशस्त मालूम होता है। परन्तु मृच्छकटिकमें श्रदालतके वर्णनके सम्बन्धमें कहा गया है कि लेखक, वादी श्रीर उसके गवाहका इजहार लिख लेता था। यह तो पहले ही वतलाया जा चुका है कि मुल्की कामों के लिए लेखक रहते थे। इससे न्यायके काममें भी लेखकका रहना श्रसम्भव नहीं मालूम होता।

महाभारतमें दएडका जो वर्णन किया गया है उसका उल्लेख पहले हो चुका है। परन्तु यहाँ हमें इस वातका विचार करना चाहिए कि कूट श्लोक सरीखे दिखाई पडनेवाले इन श्लोकोंका सञ्चा सञ्चा श्रर्थ क्या है। टीकाकारोंने उनका श्रर्थ स्मृतिशास्त्रमें दी हुई न्याय-पद्धतिके श्रनु- रूप किया है। इस पद्धतिका जैसा विस्तारपूर्वक उन्नेख स्मृतियोंमें हुश्रा है, उस तरहका यद्यपि महाभारतमें नहीं है तो भी यह श्रनुमान निर्विवाद रूपसे निकालना पड़ता है कि उस तरहकी पद्धति महाभारत-कालमें भी रही होगी। दएडका वर्णन ऐसा किया गया है—

नीलोत्पलदलश्यामश्चतुर्द्रष्ट्रश्चतुर्भुजः । श्रष्टपानैकनयनः शंकुकर्णोध्वरोमवान् ॥ जटी द्विजिब्हस्ताम्राचो मृगराजतनुच्छदः। (श्रांति पर्व श्र० १२१ स्रोक १५)

श्रर्थात् दगड काला है; उसके चार दाँत, चार भुजाएँ, ब्राठ पैर, अनेक आँखें, शंककर्ण, खडे केश, जटा, दो जीमें, ताम्र रङ्की आँखें और सिंहकी खालका वस्त्र है। टीकाकारने इस वर्णनकी सङ्गति इस तरहसे लगाई है। चार दाँतोंका अर्थ चार प्रकारकी सजा है—दएड, कैद, मार श्रोर बध। चार भुजाएँ यानी द्रव्य लेनेके चार तरीके हैं-नगर-दगड लेना, वादीसे ली हुई रकमकी दूनी जमानत, प्रतिवादीसे ली हुई रकमके बराबर जमानत श्रीर जाय-दादकी प्राप्ति । (महाभारतमें इन भेदोंका वर्णन नहीं किया गया है।) दएडके आठ पैरोका अर्थ विवादकी जाँचकी आठ सीढ़ियां हैं-१ वादीकी फरियाद, २ वादीका इजहार, ३ प्रतिवादीका इन्कार करना अथवा ४ आधा कवूल करना, ५ अन्य भगड़े अथवा शिकायतें (यह स्पष्ट है कि जब प्रतिवादी वादीका दावा कबूल करता है तब दगड़के लिए स्थान नहीं रह बाता ।) ६ श्रसामियोंसे दएडके नाम पर ली हुई जमानत, ७ प्रमाण, म निर्णय। टीकाकारके द्वारा वतलाई हुई इन आठ सीढ़ियाँका वर्णन किसी दूसरे अन्थमें

नहीं है। तथापि वह वहुत कुछ युक्तिपूर्ण मालूम होता है। बहुत सी त्राँखोंका अर्थ राजाके आठ मन्त्री और ३६ संभासद भी ठीक जँचता है। शंकुकर्ण पूरी तौरसे ध्यान देनेका और ऊर्ध्वरोम आश्चर्यका चिह्न है। इसी तरह सिर पर जटा रहना मुकदमेके प्रश्नों श्रीर विचारोंकी उलमनका लच्चण है और दो जीमें वादी श्रीर प्रतिवादीके सम्बन्धमें हैं। रक्त वर्ण श्राँखोंका होना कोधका चिह्न है श्रीर सिंह-चर्म पहनना न्यायासनके सन्मुख होने-वाली जाँचकी अत्यन्त धार्मिकता और पवित्रता सुचित करता है। यद्यपि निश्चय-पूर्वक नहीं बतलाया जा सकता कि ऊपरके क्षोकका सचा अर्थ यही है, तथापि यह वात सच है कि इसमें सौतिके समयकी न्याय-पद्धतिके स्वरूपका वर्णन किया गया है; श्रौर उसका श्रसली चित्र इस खरूपसे हमारे सामने खड़ा हो जाता है। न्याया-धिकारियोंका उल्लेख महाभारतमें कचि दध्यायमें ही है। जो वादी श्रीर प्रतिवादी सन्मुख आवें उनके कथनको शान्तिचत्त होकर सुन लेना श्रीर उचित निर्णय करना राजाका पहला कर्तव्य है। श्रतएव तु इस काममें आलस तो नहीं करता है ? ऐसा स्पष्ट प्रश्न किया गया है। इसमें भारत कालको परिस्थिति वतलाई गई है। परनु श्रागे प्रश्न किया गया है कि-"यदि किसी निर्मल आचारणवाले साधु पुरुष पर चोरी, निन्दा श्रादि कर्मोका श्रपराध लगाया जाय ता उसे व्यर्थ दंड होना श्रनुचित है। ऐसे सदाचरणवाले मनुष्यो की धनदौलतका हरएकर उसे मृत्युकी सजा देनेवाले लोभी श्रमात्योंको मूख समभना चाहिए। तेरे राज्यमें तो श्रनाचार नहीं होने पाते ? इससे माल्म होता है कि महाभारतकालमें न्याय करते धाले श्रमात्य उत्पन्न हो चुके थे।

कचिदायों विशुद्धात्मा ज्ञारितश्चारैकर्मण्। श्रदृष्टशास्त्रकुशलैर्न लोभाद्वध्यते श्रुचिः॥ (सभा० श्र० ५—१०४)

माल्म होता है कि यह नियम सभी
समयों में था कि न्याय-श्रमात्य मृत्युकी
सजा न दे। मृच्छुकिटकमें भी चारुदत्तको
प्राणदगढ़ राजाकी श्राज्ञासे हुश्रा है।
मुसलमानों श्रोर पेशवाश्रोंकी श्रमलदारीमें
भी यही नियम था। पेरन्तु ऊपरके वाक्यसे दिखाई पड़ता है कि श्रमात्य मृत्युकी
सजा बाला-बाला देता था। (जब कि इसे
प्रधान रूपसे श्रनाचार कहा गया है तब
सम्भव है कि यह बात कान्नसे न
होती होगी।)

परराज्य-सम्बन्ध।

राजकीय संस्थात्रोंका विचार करते समय परराज्य-सम्बन्धका विचार करना श्रत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हिन्दुस्थानमें छोटे राज्य यद्यपि धर्म और वंशसे एक हो श्रर्थात् श्रार्य लोगोंके थे, तथापि उनमें श्रापसमें सदैव युद्ध हुत्रा करता था श्रीर परस्पर एक दूसरेको जीतनेकी महत्वा-कांचा रहती थी। इस वातसे आश्चर्य न करना चाहिए। शूर और लड़ाके लोगोंमें ऐसा हमेशा होता ही रहता था। यूना-नियोंके इतिहासमें भी यही दशा सदैव पाई जाती है। श्रीक देशके शहरोंके राज्य एक भाषा वोलते हुए और एक देवताकी पूजा करते हुए भी परस्पर वरावर लड़ते थे। हर्वर्ट स्पेन्सरने लिखा है कि राजकीय संस्थात्रोंकी उत्कान्ति और उन्नत दशा इन्हीं कारणोंसे हुई है। पर-स्पर एक दूसरेको जीतनेकी महत्वाकांचा हमें आजकलके यूरोपियन राष्ट्रोमें भी दिखाई पड़ती है। उनका भी धर्म एक है और वह भी शम-प्रधान ईसाई-धर्म है। इतना सब कुछ होने पर भी श्रीर इन लोगों-के एक ही आर्य वंशके होने पर भी गत

महायुद्धसे हमें मालूम होता है कि ये यूरोपियन राष्ट्र एक दूसरेको निगल जानेके लिए किस तरह तैयार वैठे रहते हैं। स्पेन्सरके सिद्धान्तके श्रनुसार राष्ट्रोंकी स्पर्धा (चढ़ा-अपरी) ही उनकी उन्नतिका कारण है, यह वात भी इस युद्धसे जान पड़ेगी। राष्ट्रींका एक दूसरेको हरानेका प्रयत्न करना युद्ध-शास्त्रकी उन्नतिका कारण हुत्रा है; यही नहीं, बल्कि इस तत्त्वका भी पूर्ण विकास हो गया है कि मनुष्यके क्या हक हैं, राष्ट्रोंका पारस्परिक सम्बन्ध क्या है श्रीर राष्ट्रीका शत्रुमित्र-सम्बन्ध कैसे होता है। महाभारत-कालमें भी इस सम्बन्धमें भारती श्रायोंकी उन्नति वहुत दूरतक हुई थी। उस समय इन सब वातोंका ज्ञान हो चुका था कि शत्रको कैसे जीतना चाहिए, श्रपनी खतन्त्रता कैसे श्थिर रखनी चाहिए, मित्रराष्ट्र कैसे वनाने चाहिएँ, माएडलिक राजाश्रोंको श्रपने श्रधीन कैसे रखना चाहिए, इत्यादि । श्रतएव हम इस परराज्य-सम्बन्धी तत्त्वका यहाँ विचार करेंगे।

महाभारत-कालमें जो भिन्न भिन्न श्रार्य राष्ट्र थे, उनमें श्रापसमें चाहे जितने भगड़े श्रीर युद्ध होते रहे हों, परन्तु उन राष्ट्रोंमें बड़ी तीवता श्रीर प्रज्वलित रूपसे यह भाव जाग्रत रहता था कि उनकी निजी स्वतन्त्रताका नाश न होने पावे। श्राजकलके यूरोपियन राष्ट्रोंकी उनका इस विषय पर बड़ा ध्यान रहता था। श्राजकलके पाश्चात्य राजशास्त्रवेत्तात्रोंका सिद्धान्त है कि स्वतन्त्र श्रीर एक मतके लोग चाहे कितने ही थोड़े क्यों न हों, परन्तु उनका स्वातन्त्र्य किसीसे नष्ट नहीं किया जा सकता। प्राचीन भारती ऋार्य राष्ट्रोंकी परिस्थिति इसी सिद्धान्तके अनु-कूल थी । उनका खतन्त्रता-सम्बन्धी अभिमान सदैव जात्रत रहता था। यदि कभी कोई राष्ट्र किसी दूसरेको जीत लेता था तो भी वह उस दूसरेको पादाकान्त अथवा नष्ट नहीं कर सकता था। इस कारण भारती-कालके प्रारम्भसे प्रायः श्रन्ततक हमें पहलेके ही लोग दिखाई पड़ते हैं। महाभारत-कालके लगभग श्रन्य राज्योंको नष्ट करके चन्द्रगुप्तके राज्यकी तरह बड़े बड़े राज्योंका उत्पन्न होना शुरू हो गया था। परन्तु भारती-कालमें आर्य लोगोंकी स्वातन्त्रय-प्रीति कायम थी जिसके कारण-श्राजकल यूरोपमें जैसे पुर्तगाल, वेलजियम श्रादि छोटे छोटे स्वतन्त्र राज्य कायम हैं उसी तरह-प्राचीन कालमें भारतीय श्रायोंने श्रपने छोटे छोटे राज्यों-को सैंकडों वर्षोतक कायम रखा था। आर्य राष्ट्रींके समुदायका लद्य ऐसा ही था। वर्तमान यूरोपीय राष्ट्र-समुदायोंकी जो यह नीति है कि किसी राष्ट्रको नष्ट नहीं होने देना चाहिए, उसी तरह प्राचीन कालमें भारती श्रायोंकी भी यही नीति

* जब कोई राजा पीछा करे तब अवरोधोंकी अर्थात् स्त्रियोंकी भी परवा न करनी चाहिए। (वया उन्हें मार डालना चाहिये ? क्या राजपूर्तोंकी नाई स्त्रियोंका नाश किया जाय ?)

अवरोधान् जुगुप्तेत का सपल्लथनेदया। न लैवात्मा प्रदातव्यः समे सित कथंचन॥

(शांo १३१—=)

श्रथवा-

हतो वा दिवमारोहेत् हत्वा वा चितिमावसेत् । युद्धेहि संत्यजन् प्राणान् राकस्येति सलोकताम् ॥ (अ० १३१—१२)

यह भी वर्णन है कि राजा मर जाय पर उद्योगका त्याग न करे अथवा किसीकी रारणमें न जाय।

ज्यच्छेदेव न नमेदुशमो ह्योव पीरुपम् । श्रप्यपर्विण भज्येत न नमेतेह कस्यचित् ॥ श्रप्यरण्यं समाश्रित्य चरेन्मृगगणैः सह । न त्वेवोविज्भतमर्यादैर्दस्युभिः सहितश्चरेत् ॥

इन वाक्योंसे पता चलता है कि सिकन्दरके समय भारतीय चित्रयोंने स्वाधीनताके लिए किस प्रकार प्राया-त्याग किया था। इस अध्यायके वर्णनसे मालूम होता है कि यह प्रसङ्घ यूनानियोंको लड़ाईका ही है।

थी। उस समय यह निश्चित हो चुकाथा कि यदि कोई राजा हरा दिया गया हो तो उसका राज्य उसके लड़के श्रथवा रिश्तेदारोंको ही दिया जाय। यह नियम था कि राष्ट्रके स्वातन्त्र्यका नाश न किया जाय। इस वातका उदाहरण भारती युद ही है कि राष्ट्रकी स्वतन्त्रताके लिए भार तीय श्रार्य कितने उत्साह श्रीर दढ़तासे लड़ते थे। एक छोटेसे पाएडव-राष्ट्रके लिए भरतखएडके सब राजा एक युद्रमें शामिल हुए श्रोर इतने उत्साहसे लडे कि युद्धके आरम्भमें जहाँ पूर लास मनुष्य थे, वहाँ श्रन्तमें केवल श्राठ श्रादमी जीते बचे। यह कदाचित् श्रतिशयोक्ति हो, परन्तु वर्तमान यूरोपीय युद्धमें लड़ने श्रौर मरनेवालोंकी संख्याका विचार करने पर हमें उत्साहके सम्बन्धमें वर्तमान यरो पीय युद्धका साम्य दिखाई पडता है।

इस प्रकार भारती राष्ट्रोंकी स्वातन्य-प्रोति वहुत दढ़ थी और इसीसे राष्ट्रीका नाश न होता था। तथापि इन सब ऋर्य राष्ट्रोमें सदैव शत्रुताका सम्बन्ध रहनेके कारण एक दुसरे पर श्राक्रमण करनेकी तैयारी हमेशा रहती थी। बल्कि महा भारतमें राजधर्ममें कहा गया है कि राजाको हाथ पर हाथ धरे कभी नहीं बैठना चाहिए। किसी दूसरे देश पर चढ़ाई अवश्य करनी चाहिए। * इस कारण प्रत्येक राष्ट्रमें फौजकी तैयारी हमेशा रहती थी, लोगोंकी शूरता कभी मन्द नहीं होती थी श्रोर उनकी खातन्य प्रीतिमें वाधा नहीं आती थी। फिर भी श्रायोंकी नीतिमत्ताके लिए यह बड़ी भारी भूषणप्रद बात है कि लड़ाईके नियम धर्मसे खूब जकड़े रहते थे श्रीर साथ ही वे दयायुक्त रहते थे। इस बातका वर्णन

* भूमिरेतो निगिरति सपोविलशयानिव । राजानं चाविरोद्धारं बाह्यणं चाप्रवासिनम् ॥

क्रांगे होगा। भारतीय त्रार्थ राजात्रोंकी यह कल्पना कभी नहीं होती थी कि इसरेको हरा देनेकी अपनी इच्छाको तुप्त करनेके लिए अधार्मिक युद्धका आश्रय लिया जाय-उनकी स्पर्धा भारतीय सेनाकी उत्कृष्ट परिस्थितिके वारेमें ही रहती थी। इस कारण भारतीय श्रार्थ लोग लड़ाईमें अजेय हो गये थे। यूना-नियोंने उनके युद्ध-सामर्थ्यकी बड़ी प्रशेंसा की है। उन्होंने यह भी लिख रखा है कि प्राचीन कालमें हिन्दुस्थान पर सिकन्दरके पहले किसीने चढ़ाई नहीं की थी। चन्द्रगुप्त श्रीर श्रशोकके समयसे राजकीय श्रीर धार्मिक दोनों परिस्थितियाँ बदल गई जिससे भारतीय आयोंका युद्ध-सामर्थ्य श्रीर स्थातन्त्रय-प्रेम घट चला। श्रतएव हिन्द्रसानके इतिहासकी दिशा भी इसी समयसे बदलती गई।

यद्यपि रात्रको जीतनेके लिए दगड श्रीर फ़ौज मुख्य उपाय थे, तथापि इस नामके लिए दूसरे उपाय भी उस समय माल्म थे। महाभारतमें नीतिशास्त्रके जो नियम कचित् अध्याय और शान्तिपर्व-के राजधर्ममें दिये गये हैं, उनमें शत्रका पराजय करनेके लिए साम, दान, भेद वएड, मन्त्र, श्रीषध श्रीर इन्द्रजालके सात उपायोंका वर्णन किया गया है। कहा गया है कि शत्रुके बलावलकी परीचा करके विजयेच्छु पुरुष उक्त उपायोंमेंसे किसी उपायकी योजना करे। इनमेंसे मन्त्र दैवी उपाय है। हमें इसका विचार नहीं करना है। हम इन्द्रजालका भी विचार नहीं करेंगे। सामका श्रर्थ सन्धि है। यह शत्रुसे सुलह करके श्रापसका वैमनस्य मिटानेका उपाय है। सम्बन्धमें एक बात श्राश्चर्यकारक माल्म होती है कि महाभारतमें लड़ाई श्रथवा सन्धि करनेका अधिकारी कोई

मन्त्री या श्रमात्य नहीं बतलाया गया है। तथापि ऐसा सन्धि-निग्रह करनेवाला श्रिधिकारी अवश्य रहता होगा । गुप्तकालीन शिलालेखोंमें इन श्रमात्योंका नाम महा-सान्धि-विग्रहिक वतलाया गया है। यह श्राजकलका "फारेन मिनिस्टर" है। ऐसे श्रमात्योंका परराष्ट्रींसे नित्य-सम्बन्ध रहता ही था। ये महाभारतकालकी राज-व्यवस्थामें श्रवश्य रहे होंगे। युद्धकी श्रपेचा सामका मूल्य श्रिधक है। यह वात सव उपायोंमें सामको श्रयसान देने-से सिद्ध होती है। भारती युद्धके समय श्रीकृष्ण युद्धके पहले सन्धि करनेके लिए भेजे गये थे। शत्रुको द्रव्य देकर उसके मन-को प्रसन्न करना दान है। इस तरह एक किस्मका कर देकर राष्ट्रोंको अपनी स्वत-न्त्रता रखनी चाहिए। दएड श्रोर लड़ाई-के उपायोंका शलग वर्णन किया जायगा।

प्राचीन कालमें भेदको बड़ा भारी महत्त्व दिया गया था। राजनीतिमें प्रकट रीतिसे कहा गया है कि प्रत्येक राजा दूसरे राज्यमें द्रोह उत्पन्न करनेका प्रयत्न करे। यद्यपि यह बात आजकल प्रकट रीतिसे नहीं वतलाई जाती, तथापि प्रत्येक उन्नत राष्ट्र इस समय भी इस उपायका स्वीकार करता है। पहले बत-लाया जा चुका है कि प्रत्येक राजा पर-राज्यमें गृप्तचर भेजे श्रीर वहाँके भिन्न भिन्न श्रिधिकारियोंके श्राचरण पर दृष्टि रखे। मानना पड़ता है कि पूर्व कालमें परराज्य-के श्रधिकारियोंको द्रव्यका लालच देकर वश कर लेनेका उपाय बहुधा सफल हो जाता था। यह बतला सकना कठिन है कि राष्ट्रकी स्वातन्त्रय-प्रीतिका मेल इस विरोधी गुण-दगाबाजीसे कैसे हो जाता था। तथापि यह बात प्रकट रीतिसे जारी थी। इसका प्रमाण नारदके प्रश्नसे मिलता है। नारदने युधिष्टिरसे पूछा कि शत्रसेनाके अगुश्रा पुरुषोंको वशमें कर लेनेके लिए तू रत्नादिककी गुप्त मेंट भेजता है न ? इससे उस जमानेमें प्रत्येक राजाको इस बातका डर लगा रहता होगा कि न जाने कव उसकी सेना श्रथवा श्रिथकारी धोखा दे दें। केवल भारत-कालमें ऐसे उदाहरण बहुत थोड़े मिलेंगे; पर श्रवाचीन कालके इतिहासमें ऐसे उदाहरण बराबर मिलते हैं।

कुटिल राजनीति।

महाभारतकालमें मुख्य नीति यह थी कि शत्रसे किसी तरहका कपट न करना चाहिए। परन्तु यदि शत्रु कपटका आचरण करे तो कहा गया है कि आप भी कपटका श्राचरण करे। इसके सिवा जिस समय राज्य पर श्रापत्ति श्रावे उस समय कपट श्राचरण करनेमें कोई हर्ज नहीं । समग्र राजनीतिके दो भेद बतलाये गये हैं। एक सरल राजनीति और दूसरी कृटिल राज-नीति। यदि सरल राजनीतिके श्राचरणसे काम चलता हो तो स्पष्ट रीतिसे कहा गया है कि राजा उसका त्याग न करे। "वह मायावीयन अथवा दांभिकतासे ऐश्वर्य पानेकी इच्छा न करे। दुष्टता करके शत्र-को कभी न फँसावे श्रीर किसी तरहसे उसका सत्यानाश न करे।" (शांतिपर्व अ० ६६) तथापि युधिष्टिरने शांतिपर्वके १४० वें अध्यायमें प्रश्न किया है कि अब दस्युत्रोंसे अतिशय पीड़ा होती है उस समय क्या करना चाहिए? पहले जमाने-की राजनीति भारतीय श्रार्य राजाश्रींके पारस्परिक सम्बन्धकी है। श्रीर इस समय भीष्मने जो आपत्तिप्रसंगकी नीति वत-लाई है वह म्लेच्छोंके श्राक्रमणके समयकी है। यल्कि यह कहना ठीक होगा कि यह प्रसङ्ग महाभारतके समय सिकन्दरकी चढ़ाईके अवसरको लच्यकर वतलाया गया है कि युगदाय हो जानेके कारण

धर्म चीण हो गया है और दस्युश्रोंसे पीड़ा हो रही है। यह बात यवनोंके आक्रमणके लिए ही ठीक हो सकती है। भीष्मने उत्तर दिया था कि-"ऐसे श्रापत्तिप्रसंग पर राजा प्रकट रीतिसे श्ररता दिखलावे। श्रपनेमें किसी तरहका छिद्र न रखे। शतुके छिद्र दिखाई पड़ते ही तत्काल आक्रमण करे। साम श्रादि चार उपायोंमें दाड श्रेष्ठ है। उसीके आधार पर शतुका नाग करे। त्रापत्तिकालमें योग्य प्रकारकी सलाह करे। योग्य रीतिसे पराक्रम दिखलावे श्रौर यदि मौका श्रा पड़े तो योग्य रीति से पलायन भी करे। इस विषयमें विचार न करे। शत्रका और अपना हित हो तो संघि कर ले। परन्तु शत्रु पर विश्वासन रखे। मधुर भाषणसे मित्रकी तरह शतुः की भी सान्त्वना करता रहे। परन्त जिस तरह सर्पयुक्त घरके निवाससे सदा डरना चाहिए उसी तरह ग्रत्से भी सदैव डरता रहे। कल्याण चाहते वाला प्रसङ्गके अनुसार, शतुके हाथ जोड़ ले और शपथ कर ले, परन्तु समर श्राने पर कन्धेके मटकेकी तरह उसे पत्थर पर पटककर चूर चूर कर डाले। मौका त्राने पर चण भरके ही लिए क्यों न हो, श्रामकी तरह बिलकल प्रज्य हो जायः परन्तु भूसेकी तरह बिलकुल **खालाहीन होकर चिरकालतक** कता न रहे। उद्योग करनेके लिए सदैव तत्पर रहे। श्रपनी श्राराधना करनेवाले लोगों श्रीर प्रजाजनोंके श्रभ्यद्यकी इच्छा रखे । त्रालसी, धेर्यशून्य, त्रभिमानी, लोगोंसे डरनेवाले श्रोर सदैव श्रुकृत समयकी प्रतीचा करनेवालेको वस्तुकी प्राप्ति नहीं होती *। राज्यके सभी

* यह वाक्य श्रत्यन्त मामिक है:— नालसाः प्राप्तुवन्त्यर्थात्र क्रीवा नाभिमानिनः। न च लोकरवाद्गीता न वे शश्वःप्रतीचिणः॥ (शां० श्र० १४०—२३)

ग्रहांको ग्रप्त रखे। वककी तरह अभीष्ट वस्तुकी चिन्ता करता रहे। सिंहकी तरह पराक्रम दिखलावे। तीरकी तरह शत्र पर हुट पड़े। मृगकी तरह सावधानीसे भोवे। श्रवसर श्राने पर बहरा श्रथवा ब्रत्धा भी बन जाय। योग्य देश श्रोर कालके आते ही पराक्रम करे। यदापि हद्योगका फल पूर्णताको न पहुँच चुका हो, तथापि पहुँचे हुएके समान श्राच-रण करे। समय प्राप्त होने पर शत्रको श्राशा दिलावे श्रीर उसे समयकी मर्यादा बतलावे । फिर उसके सफल होनेमें विघ्न डाल ेंदे। फिर विघ्नोंका कारण वतलावे और कारणोंके मुलमें कोई हेतु बतलावे । जबतक शत्रुका डर उत्पन्न न हुआ हो तवतक डरे हुएके समान व्यवहार करे। परन्तु डरके उत्पन्न होते ही निर्भय मनुष्यकी तरह उस पर प्रहार करे। सङ्कटमें पड़े विना मनुष्यकी दृष्टिमें कल्याण नहीं देख पड़ता; परन्तु सङ्कटमें पडने पर जीते रहनेके बाद, कल्याणका होना अवश्य दिखाई पड़ेगा। जो शत्रुसे सन्धि करके उस पर विश्वास रखकर सुखसे पड़ा रहता है, वह वृत्तकी चोटी पर सोनेवाले मनुष्यकी तरह नीचे गिरता है। चाहें सौम्य हो या भगद्भर, जैसा चाहिए वैसा कर्म करके दीन दशासे अपना उद्धार कर लेना चोहिए; और सामर्थ्य ह्याने पर धर्म करना चाहिए। शत्रुके जो शत्रु हो उनका सहवास करना चाहिए। उपवन, विहार-षाल, प्यांज, धर्मशाला, मद्यप्राशनगृह, वेश्यात्रोंके स्थल श्रीर तीर्थ-स्थानमें ऐसे लोग आया करते हैं जो धर्मविष्वंसक, चोर, लोककएटक और जासूस हैं। उनको हूँढ़ निकालना और नष्ट कर देना बाहिए। विश्वासके कारण भय उत्पन्न होता है। श्रतएव परीक्षा किये बिना

विश्वास नहीं करना चाहिए। जिस विषय पर शङ्का करनेका कोई कारण न हो उस पर भी शङ्का करनी चाहिए। शत्रुका विश्वास जम जाने पर काषाय वस्त्र, जटा श्रादि वैराग्य-चिह्नांका स्वीकार करके उसका नाशकरना चाहिए। दूसरे-का मर्मभेद किये विना श्रथवा हिंसा किये विना सम्पत्ति नहीं मिलती। जन्मसे कोई मित्र अथवा शत्रुं नहीं रहते। वे केवल सामर्थ्यके सम्वन्धसे शत्रु या मित्र होते हैं। शस्त्रपात करना हो तो भी प्रिय भाषण करे श्रीर प्रहार कर चुकने पर भी प्रिय भाषण करे। श्रक्ति और शत्रुका शेष न रखे। कभी श्रसावधान न रहे। लोभी श्रादमीको द्रव्य देकर घशमें करे। समानताके शत्रुसे संग्राम करे। अपनी मित्र-मएडली श्रीर श्रमात्योंमें भेद उत्पन्न न होने दे श्रौर उनमें एक-मत भी न होने दे। सदैव मृदु श्रथवा सदैव तीच्ए न वने । ज्ञान-सम्पन्न पुरुषोंसे विरोध न करे। इस तरहसे मैंने तुभे नीतिशास्त्रमें वतलाया है। इस नीतिका पातकसे सम्बन्ध है, इसलिए इस तरहका श्राचरण सदैव नहीं करना चाहिए। जब शत्र इस तरह-के श्राचरणका प्रयोग करे तब इस नीति-से काम लेनेका विचार करना चाहिए।" तात्पर्य, यह नीति राजाश्रोंके उस समयके श्राचरणके लिए बतलाई गई है जब घह दस्युत्रों त्रथवा म्लेच्छोंसे प्रस्त हो गया हो। इसमें यह स्पष्ट बतलाया गया है कि ऐसा श्राचरण सदैव नहीं करना चाहिए: सदैव करनेसे पाप होगा। पाठकोंको स्मरण होगा कि म्लेच्छोंसे लड़ते हुए श्रापत्ति-प्रसङ्गोमें शिवाजी महाराजने इसी नीतिका श्रवलम्बन किया था।

इस नीतिका नाम किएक नीति है। धृतराष्ट्रने पाँडवोंके बल, बीर्य ग्रीर परा-कमको देखकर श्रीर उनके तथा अपने

पुत्रोंके बीच वैर-भावका विचार करके किएक नामक मंत्रीसे सलाह की; तब उसने इस नोतिका उपदेश किया था। परन्तु उस समय धृतराष्ट्र पर किसी तरहकी श्रापत्ति न श्राई थी । इसलिए कहनेकी आवश्यकता नहीं कि धृतराष्ट्रने कणिककी नीति सुनकर उसी तरहका श्राचरण कर डालनेमें बहुत बुरा काम किया । श्रादिपर्वमें यह किएक नीति वर्णित है। उसका तात्पर्य यह है—"शत्र तीन प्रकारके होते हैं - दुर्वल, समान श्रीर बलिष्ठ। दुर्बल पर सदैव शस्त्र उठाये रहना चाहिए, जिसमें वह कभी अपना सिर ऊँचा न कर सके। समान शत्रुकी रिष्टमें सदैव अपने पराक्रमको जायत रखना चाहिए और श्रपने बलकी बृद्धि कर उस पर आक्रमण करना चाहिए। बलिष्ट शत्रके छिद्रको देखकर श्रोर भेद उत्पन्न करके उसका नाश करना चाहिए। एक बार शत्र पर श्रस्त उठाकर फिर उसका पूरा विनाश कर देना चाहिए- अध्रा नहीं छोडना चाहिए। शर्णमें श्राये हए शायुको मार डालना प्रशस्त है। प्रवल शत्रका विष आदि प्रयोगोंसे भी प्राण-घात करना चाहिए। शत्रके सेवकोंमें स्वामिद्रोह उत्पन्न कर देना चाहिए। शतु-पत्तके सहायकोंको भी इसी तरहसे मार डालना चाहिए। श्रपना विपरीत समय देखकर शत्रको सिर पर बैटा ले, परन्तु अनुकृत समय आते ही उसे सिरके मटकेकी तरह जमीन पर पटककर चूर चूर कर डाले। पुत्र, मित्र, माता, पिता आदि भी यदि वैर करें तो उनका बध करनेमें ही उत्कर्ष चाहने-वाले राजाका हित है। श्रपने हद्यकी बात किसीको मालुम न होने चाहिए। जिसको मारना हो उसके घरमें आग लगा देनी चाहिए और अपने

विषयमें कोई सन्देह न करने पावे, इसलिए नास्तिक, चोर श्रादि लोगोंको देशसे बाहर निकाल देना चाहिए। अपनी वाणीको मक्वनके समान मृदु श्रीर हृद्य को उस्तरेक समान तीच्ए रखना चाहिए। श्रपने कार्योंका हाल मित्रों श्रथवा शतुत्रोंको कुछ भी माल्म न होने दे ॥ उपर्युक्त नियम किएकने धृतराष्ट्र को वतलाये और उसे अपने भतीजों-पाएडवोंका नाश करनेके लिए उपदेश किया। इस प्रश्नका ठीक ठीक उत्तरहे सकना कठिन है कि इन तत्त्वोंको भारतीय श्रायोंने श्रीक लोगोंसे सीखा था श्रथवाउन लोगोंमें ही इस तरहकी कुटिल राजनीति के तत्त्व उत्पन्न हो गये थे। इसमें सन्देह नहीं कि भारती-कालके राजाश्रोकी शत-विषयक नीति अत्यन्त सरल और उदात थी। भारती-युद्धकालमें राजाश्चोंके श्रिष्ट कारी श्रोखा देने या विश्वासघात करनेसे अलिम रहते थे। भीष्म, द्रोण आदिका श्राचरण श्रत्यन्त श्रद्ध था । सौतिने अपने समयकी परिस्थितिके अनुसार उनके सम्बन्धमें, महाभारतमें कहीं कहीं वर्णन किया है कि वे विपद्मियों में मिल गये थे और उन्होंने पाएडवोंको अपने मरनेका उपाय भी बतला दिया था। परन्तु यथार्थमें भीष्म या द्वोराने ऐसा श्राच रण कभी नहीं किया, ऐसा हमारा निश्चय है। महाभारतमें जो यह वर्णन है कि श्रीकृष्णने कर्णको गप्त सलाह देकर श्रपते पत्तमें मिला लेनेका प्रयत्न किया था, वह प्रसङ्ग भी पीछेसे जोड़ा हुआ माल्म पड़ता है। कर्णने भी इस अवसर पर उदार श्राचरणके मनुष्यकासा ही व्यवहार किया है। सारांश, जब कि भीष्म, द्रीण कर्ण, अध्वत्थामा, कृप आदि भारती योद्धात्रोंने स्वासिनिष्ठ तथा राष्ट्रिनिष्ठ अधिकारियोंके योग्य ही आचरण किया

है, तब यह माननेमें कोई हर्ज नहीं कि कुटिल नीतिकी जो बातें कणिकनीतिके श्रध्यायमें दिखाई पड़ती हैं, वे महाभारत-कालमें नई उत्पन्न हुई होंगी। यह नीति मेकियावेली नामक यूरोपके प्रसिद्ध कृदिल राजनीति-प्रतिपादकके मतकी तरह ही कुटिल थी; और चाण्य तथा बन्द्रगुप्तके इतिहाससे माल्म होता है कि हस समय हिन्दुस्थान पर इस नीतिका बहुत कुछ प्रभाव भी जम चुका था। ग्राणकाके ग्रन्थसे मालूम होता है कि उसकी नीति भी इसी तरहकीथी। मुद्रा-गचसमें उस नीतिका अच्छा चित्र खींचा गया है। सारांश यह है कि चन्द्रगप्तके समयमें पहलेकी सरल राजनीति दब गई थी और कुटिल राजनीतिका अमल जारी हो चुका था।

प्राचीन स्वराज्य-प्रेम।

यदि इसका कारण सोचा जाय तो मालूम होगा कि महाभारतकालमें राजाश्री-की सत्ता अतिशय प्रवल हो गई थी श्रीर पजाके अन्तः करणमं जैसा चाहिए वैसा खराज्य-प्रेम नहीं था, जिससे यह भिन्न मकारकी राजकीय परिस्थिति उत्पन्न हो गई। जब यह मान लिया जाता है कि खानगी जायदादकी तरह राज्य राजाकी मिलिकयत है,तव प्रजामें इस भावका स्थिर रहना श्रस-म्भव है कि यह राज्य हमारा है। जबतक यह भाव जायत रहता है कि समय देश सभी लोगोंका है, तबतक प्रजाके अन्तः करणमें परराज्य द्वारा किये हुए भेद-प्रयत्न-की प्रवलता अधिक अंशोंमें सफल नहीं हो सकती। जहाँ राजात्रोंकी सत्ता श्रतिशय भवल होती है, वहाँ लोगोंकी यह धारणा रहती है कि राजा तो राज्यका स्वामी है-उसकी जगह पर यदि कोई दूसरा राजा हो तो वह भी पहले राजाकी तरह खामी ही रहेगा। खराज्यका प्रधान लच्छा यही है कि राज्य और राजा दोनोंको अपना समभनेकी हढ़ भावना प्रजामें जायत रहे। राज्यका प्रत्येक परिवर्तन लोगोंकी सम्मतिसे होना चाहिए। लोगोंकी यह कल्पना होनी चाहिए कि प्रत्येक परि-वर्तनसे हमारे सुख-दुःसका सम्बन्ध है। जिस समय सभी लोग एक ही वंशके, समान वुद्धिवाले श्रीर सदृश सभ्यतावाले रहते हैं, उस समय उनमें ऐसी राजकीय भावना जाग्रत रहती है। परन्तु जिस समय राज्यमें भिन्न भिन्न दर्जे और सभ्यताके लोग जित श्रीर जेताके नातेसे एक जगह श्रा रहते हैं, उस समय राष्ट्रीय भावना कम हो जाती है: लोग राजकीय परिवर्तनकी कुछ परवा नहीं करते और फिर राजा राज्यका पूरा स्वामी वन जाता है। ऐसी परिस्थितिमें महत्वाकांची लोगों-को, नाना प्रकारके उपायों श्रोर बैभवके लालचसे सहज ही, राजद्रोही बनाकर हर एक पडयन्त्रमें शामिल करना सम्भव हो जाता है। क्योंकि जब यह भाव नष्ट हो जाता है कि राज्य प्रजाका है श्रीर उसीके समान मेरा भी है, तब उक्त दृष्ट वासनाका विरोध किसी तरहकी उच मनोवृत्त नहीं करती। जहाँ स्वराज्यकी कल्पना जायत नहीं रहती वहाँ लोग भेदके बलि होनेको सदा तैयार रहते हैं: श्रीर एक राजाके नाश होने पर दूसरे राजांके श्रानेसे उन्हें यही मालूम होता है कि हमारी कुछ भी हानि नहीं हुई। बल्कि किसी विशेष श्रवसर पर उनका लाभ भी होता है।

भारती-कालके आरम्भमें हिन्दुस्थान-के राज्योंकी स्थिति पहले वर्णनके अनुसार थी। राज्यमें ब्राह्मण, चित्रय, वैश्य और शुद्ध प्रत्येक राजकीय मामलोंमें अपना मन लगाते थे। उनकी यह भावना पूरी क्री जायतरहती थी कि यह राज्य हमारा है। इस बातको प्रजाके सन्मुख समभा देना पड़ता था कि राजाने श्रमुक काम क्यों किया। इसका एक मनोरञ्जक उदा-हरण श्रीकृष्णके ही भाषणमें उद्योग पर्वमें पाया जाता है। लोगोंको इस वातको समभा देनेकी श्रावश्यकता थी कि कौरव-पाएडवका युद्ध क्यों हो रहा है श्रीर इसमें श्रपराध किसका है। "में चारों घणोंको समभाकर वतलाऊँगा। चारों घणोंको समभाकर वतलाऊँगा। चारों घणोंके इकट्ठे होने पर में उन्हें विश्वास दिला दूँगा कि युधिष्ठिरके कौनसे गुण हैं श्रीर दुर्योधनके क्या श्रपराध हैं।" श्रीकृष्णने कहा है कि:—

गर्हियिष्यामि चैवैनं पौरजानपदेष्वपि। वृद्धवालानुपादाय चातुर्वएर्ये समागते॥ (उ० श्र० ७३-३३)

श्रर्थात् राजकीय मामलोंमें चातुर्वगर्य-को समभा देना आवश्यक था। जहाँ राज्यके लोग इस तरहसे राज्यको श्रपना समभकर राजकीय कामोंमें मन लगाते हैं वहाँ राजद्रोहका उत्पन्न होना सम्भव नहीं है। महाभारतमें यह भी कहा गया है कि—"एक राजा दूसरेके राज्यको जीत लेने पर वहाँके लोगोंसे कहे कि में तुम्हारा राजा बनता हूँ नुम मुभे राज्य सोंपो।" अर्थात् लोक-सम्मतिके बिना राज्यके कामोंमें अथवा व्यवस्थामें परि-वर्तन नहीं होता था। परन्तु यह परि-स्थिति महाभारतकालमें बहुत कुछ बद्ल गई। विशेषतः पूर्वके राज्य विस्तृत हो गये श्रोर वहाँके बहुतेरे लोग शृद्ध जातिके श्रीर हीन सभ्यताके थे; ब्राह्मण, चत्रिय, वैश्यकी संस्या श्रतिशय थोड़ी होनेके कारण राज्यके भगड़ोंमें उनका बहुत कम हाथ था और वे ध्यान भी नहीं देते थे। पाटलिपुत्रके राज्य पर नन्द स्त्रिय बैठे अथवा बन्द्गुप्त शूद्र वैठे, जनसमूहको

इस सम्बन्धमें कुछ भी परवा न थी।
उनको वोलनेका श्रधिकार भी न था और
सामर्थ्य भी न था। श्रतप्व ऐसे राज्योंमें
पड्यन्त्रकारी श्रीर राजदोही लोगोंकी
वन पड़ी। इसलिए श्राश्चर्य नहीं करना
चाहिए कि राजा लोग साम, दान, दएड,
भेदके उपायोंमेंसे भेदका ही श्रधिक उपयोग करने लगे। भारती-कालके श्रारम्भमें
उच्च कोटिकी राजनीति थी; परन्तु महाभारत-कालमें कुटिल राजनीतिका वहुत
कुछ प्रभाव हो गया श्रीर राजकीय श्रिष्टकारियोंकी नीति बहुत कुछ भ्रष्ट हो गई।

भीष्मका राजकीय आचरण।

इस सम्बन्धमें भारती-युद्धके समय भीष्मका आचरण अत्यन्त उदात और अनुकरणीय हुआ है। बहुतेरे लोग प्रश्न करते हैं कि युद्धके समय भीष्मने दुर्यों-धनकी श्रोरसे जो युद्ध किया, वह योग्य है या नहीं। भीष्मने दुर्योधनसे स्पष्ट कहा था कि तेरा पत्त अन्यायपूर्ण है। उन्होंने उससे यह भी कहा था कि शर्तके अनुसार पागडवोंको राज्य अवश्य देना चाहिए। उसी तरह दूसरा प्रश्न यह किया जाता है कि जब श्रीकृष्ण पाएडवोंकी श्रोर थे श्रीर भीष्म श्रीकृष्णको ईश्वरका अवतार मानकर उनकी पूरी पूरी भक्ति करते थे, तव क्या भीष्मका दुर्योधनकी श्रोर होकर श्रीकृष्णसे विरोध करना ठीक कहा जा सकता है ? रामायणमें विभीषणका श्राच रण ऐसा नहीं है। वह रावणको छोड़कर रामसे मिल गया। रावणका कृत्य दुयो-धनकी तरह ही निन्दा था और विभीषण भीष्मकी तरह रामका भक्त था। श्रतप्व यह प्रश्न होता है कि ऐसी स्थितिमें भीषा ने जो त्राचरण किया वह ऋधिक न्यायः का है, या विभीषणने जो आचरण किया वह अधिक न्यायपूर्ण है। परन्तु इसमें

सन्देह नहीं कि राजनीतिकी दृष्टिसे भीष्मका ही श्राचरण श्रेष्ट है। जिसके ब्रुतःकरणमें खराज्यका सञ्चा तत्व जम गया है वह स्वराज्यके पत्तको कभी होड़ नहीं सकता । दुर्योधनका पत्त भून्यायका था; तथापि वह स्वराज्यका पत्त शा श्रीर भीष्मने श्रपने खराज्य-सम्बन्धी कर्तव्यका पालन योग्य रीतिसे किया। रामायणमें भी विभीषणको आश्रय दैते हुए रामने स्पष्ट कहा है कि यह अपने भाईसे लड़कर आया है, अतएव राज्यार्थी होनेके कारण यह भेद हमें उपयोगी होगा। उच्च सभ्यता और हीन सभ्यतामें यही अन्तर है। यह निर्विवाद है कि राज-कीय नीति-सम्बन्धमें भीष्मका आचरण ही श्रतिशय श्रेष्ठ है और रामभक्तके नाते-से विभीषणका महत्व कितना ही श्रधिक क्यों न हो, परन्तु राजनीतिकी दृष्टिसे उसका श्राचरण हीन ही है।

महाभारतमें वर्णन है कि युद्धके श्रारम्भमें जब युधिष्ठिर भीष्मको नमस्कार करने गये, तब भीष्मने कहा कि-"पुरुष श्रथंका दास होता है; इसलिये में दुर्यों-धनको श्रोरसे लड़ रहा हूँ, श्रर्थात् श्राज-तक मैंने इस राजाका नमक खाया है अतएव में इसीकी श्रोरसे लड्ँगा।" यह कथन भी एक दृष्टिसे श्रपूर्ण ही है। वे इससे भी अधिक उदात्त रीतिसे कह सकते थे। तथापि उनका उक्त वचन भी उदार मनुष्यका सा है। वनपर्वमें युधि-ष्टिरने भीमका इसी तरहसे समाधान किया है। जब भीम श्राग्रहके साथ कहने लगा कि बनघासकी शर्तको तोड़कर अपने बलसे हम कौरवोंको मारेंगे, श्रीर जब इस कामको अधर्म कहे जाने पर भी उसका समाधान न हुन्ना, तब युधि-ष्टिरने उससे कहा-"तू श्रपने ही बलकी मसंसा करता है; परन्तु कौरयोंकी श्रोर

प्रवल वीर भीष्म श्रीर द्रोण तो हैं न। इन लोंगोंने जो नमक खाया है उसको वे श्रवश्य श्रदा करेंगे।" (वनपर्व श्र० ३६) इसे सुनकर भीम चुप रह गया। सारांश यह है कि सब लोगोंका यही विश्वास था कि भीष्म श्रौर द्रोण श्रत्यन्त राजनिष्ठ हैं श्रोर वे श्रपने राजाका पत्त कभी न छोड़ेंगे। महाभारतमें श्रागे जो यह वर्णन है कि युद्ध-प्रसङ्गमें भीष्मने युधि-ष्ठिरसे अपनी मृत्युका उपाय वतला दिया, वह पीछेसे जोड़ा गया है। महाभारत-कालीन राजनीति विगड़ गई थी; इस-लिए सौतिके समयमें यह धारणा थी कि कैसा ही राज्याधिकारी क्यों न हो, नीतिसे भ्रष्ट किया जाकर अपने पत्तमें मिला लिया जा सकता है। श्रीर इसी धारणाके श्रव-सार सौतिने भीष्मके भ्रष्ट होनेका यह एक प्रसङ्ग जोड़ दिया है। परन्तु जब भीष्मकी नीतिमत्ता उच और उदात्त थी, तब यह सम्भव नहीं है कि वह इस नमकहरामी करे। भीषमने अपने मुँहसे युद्धके आरम्भमें कहा था कि मैंने दुर्योधनका नमक खाया है; श्रीर वन-पर्वमें युधिष्टिरने भी भीमसे इसी बातको दुहराया है। यह सम्भव नहीं है कि भीषा इन दोनों मतोंके विरुद्ध श्राचरण करे। यह प्रसङ्ग, "कर्णका मनोभङ्ग में करूंगा" इस विश्वासघातपूर्ण शल्यके वचनकी तरह, श्रसम्भव तथा पूर्वापर-विरोधी है; श्रोर वह महाभारतकालीन राजनीतिकी कल्पनाके अनुसार सौतिके द्वारा पीछेसे गढ़ा गया है । भीष्मपर्वके १०७ वें श्रध्यायमें दिये हुए वर्णनके श्रवसार यदि सचमुच युधिष्ठिर श्रीर श्रीकृणा कौरवोंकी फौजमें भीष्मके मारनेका उपाय पूछने गये हों, तो सम्भव नहीं कि यह बात दुर्योधनसे छिपी रहे। इसके सिवा यह भी नहीं माना जा सकता कि श्रीकृष्ण

खुद भीष्मके बधंका उपाय नहीं बतला सकते थे। सारांश यह है कि भीष्मके उज्यल शीलको कलङ्क लगानेवाला यह कथाभाग पीछेका है।

यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि श्रपना राजा श्रनीतिका श्राचरण करता है और उसका पत्त सरासर अन्याय-पूर्ण है, तो क्या उसकी श्रोरसे लडना भी श्रन्याय नहीं है ? ऐसे मौके पर नीति-मानको क्या करना चाहिए? इस प्रश्नके सम्बन्धमें महाभारतमें एक मनोरञ्जक सम्बाद पाया जाता है। यह सम्बाद भीष्म श्रीर श्रीकृष्णके दरमियान उस समय इश्रा जब भीष्मने श्रतिशय करके श्रर्जुनको मुर्च्छित कर दिया श्रीर जब श्रीकृष्णने श्रपनी प्रतिका छोडकर भीष्म पर चक्र उठाया। उस समय जब श्रीकृष्ण चक लेकर दौडे तब उन्होंने भीषासे कहा कि—"सब अनथोंकी जड तू ही है: तूने दुर्योधनका निग्रह क्यों नहीं किया ?" तब अपने आचरणका समर्थन करनेके लिए भीष्मने उत्तर दिया कि (राजापरं दैवतमित्युवाच—) "राजा सबका परम देवता है।" भीष्मने यह भी कहा है कि—"तू मुभ पर चक्र उठाता है, यही बात मेरे लिए त्रैलो-क्यमें सम्मानसूचक है; मैं तुभे नमस्कार करता हूँ।" यह कहकर भीष्म चुपचाप खड़े रहे। इतनेमें अर्जुनने होशमें आकर श्रीकृष्णको वापस लौटावा। यह कथा-भाग भीष्मपर्वके ५६ वें श्रध्यायमें है। परन्तु बहुतसी प्रतियोमें यहाँके मृत्युके श्रोक नहीं हैं। यहाँके श्रोक ये हैं:-

शुत्वा वचः शांतनवस्य कृष्णो । वेगेन धावंस्तमधाभ्युवाच ॥ त्वं मूलमस्येह भुवि सयस्य । दुर्योधनं चाद्य समुद्धरिष्यसि ॥ दुर्घूतदेवी नृपतिर्निवार्यः सन्मंत्रिणा धर्मपथि स्थितेन । त्याज्योथवा कालपरीतवुद्धि-र्धर्मातिगो यः कुलपांसनः स्यात् ॥ भीष्मस्तदाकगर्य कुरुप्रवीरं राजापरं दैवतिमत्युवाच ॥

ये श्लोक अत्यन्त महत्वके हैं। इनमें एक अत्यंन्त महत्वके प्रश्नके सम्बन्धमें पूर्व कालमें दो मतोंका होना दिखाई पड़ता है। जब यह प्रश्न उठे कि यह राजा दुराचारी हो तो क्या किया जाय तव इसके सम्बन्धमें भीष्मने इस तत्वका प्रतिपादन किया है कि उसकी श्रानाको सर्वथा मान्य समभकर उसका पन कभी नहीं छोड़ना चाहिए: और थी कृष्णने इस तत्वका प्रतिपादन किया है कि जो उत्तम मन्त्री हैं, उन्हें राजाका निग्रह करना चाहिए श्रीर यदि वह कुछ भी न माने तो उसका त्याग कर देना चाहिए। श्रर्थात्, उसे गद्दीसे उतारकर दुसरे राजाको वैठा देना चाहिए । ये दोनों पच उदात्त राजनीतिके हैं, पूज्य हैं श्रीर इन्हें भीष्म तथा श्रीकृष्णने श्रपने श्राचरणसे भी दिखा दिया है। परनु ऐसी परिस्थितिमें शत्रुसे मिल जानेके तीसरे मार्गका विभीषण्ने जो स्वीकार किया, वह हीन और निन्दा है। स्मरण रहे कि भारतमें वर्णित उदात्त श्राचरणके किसी व्यक्तिने उस हीन तत्वका खीकार नहीं किया है।

उद्धर्षण-विदुता-संवाद।

पराजित होनेवाले राजाको धीरज देनेवाला तथा उत्साहयुक्त बनानेवाला उद्धर्षण-विदुला-संवाद राजकीय धर्ममें एक श्रत्यन्त महत्त्वका भाग है; श्रत्यव वह श्रन्तमें उत्सेख करने योग्य है। भारतः में तत्वज्ञानका सर्वस्व जैसे गीता है, उसी

तरह यह संवाद राजधर्मका सर्वस्य है। हम इसे यहाँ पर सारांश रूपसे देते हैं। यह बात नहीं है कि यह संवाद केवल हैन्यावस्थामें पहुँचे हुए चत्रियोंको लक्य करके लिखा गया हो। विपत्तिके समय संसारमें प्रत्येक मनुष्यको इस उपदेश. का ध्यान रखना चाहिए। इसमें व्यव-हार तथा राजकीय परिस्थितिकी उदात्त तथा उत्साहयुक्त नीति भरी हुई है। इसमें किसी तरहकी कुटिलताकी अथवा कपट-युक्त नीति नहीं है—केवल उत्साह उत्पन्न करनेवाली नीति है। इसलिए हम यहाँ उसे थोड़ेमें लिखते हैं । सञ्जय नामक राजपुत्र पर सिन्धु राजाके श्राक्रमण करने पर सञ्जय रणसे भाग श्राया। तब उसकी राजनीतिनिपुण अोरं धेर्यवती माता विदला कहने लगी (उद्योग० अ०१३३-(३६) तेक्का क्रिका क्रिका क्रिका

वि:-मात्मानमवमन्यस्व मैनमल्पेन बीभर। उत्तिष्ठ हे कापुरुष मारोष्वैवं पराजितः॥१॥ श्रलातं तिंदुकस्येच मुहूर्तमपि हि ज्वल। मातुषाग्निरिवानर्चिर्धूमायस्व जिजीविषुः २ उद्गावयस्य वीर्यं चा तां वा गच्छ ध्रुवां गतिम्। धमं पुत्राप्रतः कृत्वा किनिमित्तं हि जीवसि ३ राने तपसि सत्ये च यस्य नोचरितं यशः। विद्यायामर्थलाभे वा मातुरुचार एव सः ४ नातः पापीयसीं कांचिद्वस्थां शंबरोव्रवीत्। यत्र नैवाद्य न प्रातभीजनं प्रतिदृश्यते ॥५॥ निर्विग्णात्मा हतमना मुञ्जैतां पापजीविकाम् पकरातुवधेनैव शूरो गच्छति विश्वतिम् ॥६॥ न त्वं परस्यानुचरस्तात जीवितुमहिस। भयाद्वृत्तिसमीचो वा न भवेदिह कस्यचित् उद्यच्छेदेव न नमेदुद्यमो होव पौरुषम्। अप्यपर्विण भज्येत न नमेतेह कस्यचित्॥ ॥॥ पु:-ई हशं घचनं ब्र्याद्भवती पुत्रमेकजम्। कि नु ते मामपश्यंत्याः पृथिव्या श्रपि सर्वया ४ विः-- खरीवात्सल्यमाहुस्त्-

न्निःसामर्थमहेतुकम्।

तव साद्यदि सद्वृत्तं तेन में त्यं प्रियो भवेः ॥१०॥ युद्धाय चत्रियः सृष्टः संजयेह जयाय च। जयन्वा वध्यमानी वा प्राप्नोतींद्रसलोकताम् ॥११॥ पुः—श्रशोकस्यासहायस्य कुतः सिद्धिर्जयो मम। तन्मे परिणतप्रज्ञे सम्यक् प्रवृहि पृच्छते ॥१२॥ विः—पुत्र नात्माऽवमन्तव्यः पूर्वाभिरसमृद्धिभिः। अभूत्वाहि भवंत्यर्था भूत्वा नश्यन्ति चापरे ॥१३॥ श्रथ ये नैव कुर्वन्ति 💮 🤭 नैव जातु भवन्ति ते। े ऐकगुर्यमनीहाया- 🔻 💆 🔭 मभावः कर्मणां फलम् ॥१४॥ श्रथ हैगुर्यमीहायां फलं भवति वा न वा। उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु॥ भविष्यंतीत्येव मनः कृत्वा सततमन्यथैः। मंगलानि पुरस्कृत्य ब्राह्मणांश्चेश्वरैः सह ॥ प्राज्ञस्य नृपतेराशु वृद्धिभवति पुत्रक। यदैव शत्रुजानीयात् सयतं त्यक्तजीवितम्॥ तदैवासादु द्विजते सर्पाद्वेश्मगतादिव। नैव राज्ञा दरः कार्यो जातु कस्यांचिदापदि ॥ श्रथ चेदपि दीर्णःस्या-न्नैव वर्तेत दीर्णवत्। दीसें हि हुपा राजानं सर्वमेवानदीर्यते॥

राष्ट्रं बलममात्याध्व पृथक्कर्वन्ति ते मतिः। य प्वात्यन्तसुद्द-स्तपनं पर्यपासते॥ शोचन्तमनुशोचन्ति पतितानिव बान्धवान् । ये राष्ट्रमभिमन्यन्ते राश्चो व्यसनमीयुषः॥ मादीदरस्त्वं सुहदो मा त्वां दीएँ प्रहासिषुः। यदेतत्संविजानासि 💮 यदि सम्यग् व्रवीम्यहम्॥ कृत्वाऽसौम्यमिवात्मानं जयायोत्तिष्ट संजय। इस तरहसे माताका उद्धर्षण उपदेश सनकर सञ्जय उठा और फिर पराक्रम करके उसने राज्य प्राप्त किया। सौतिने इस संवादकी प्रशंसा और फलश्रुति भी योग्य रोतिसे कही है। शत्रुपीड़ित राजा-

PROPERTY

PRINCHE TEST

a for forthings of a

H SPIRESTER DIE

कार्य सुरक्षिति ।। अस्त्रीयसम्बद्धाः

THE PENDING

PRETERENT PE

को यह उद्धर्षण श्रीर भीमतेजोवर्धन संवाद अवश्य सुनना चाहिए: परन्तु यह भी कहा है कि-इदं पुंसवनं चैव वीराजननमेवच। श्रभीद्णं गर्भिणी श्रुत्वा ध्रुवं वीरं प्रजायते॥ ध्रतिमन्तमनाधृष्यं जेतारमपराजितम्। ईंदशं चत्रिया स्ते वीरं सत्यपराकमम्॥ इस उपदेशमें पराक्रम, धेर्य, निश्चय परतन्त्र श्रीर हीन कभी न रहनेकी मानसिक वृत्ति, श्रौर उद्योग इन पर जोर दिया गया है। यदि इष्ट हेतु सिद्ध न हो तो मृत्युका भी स्वीकार कर लेना चाहिए। परन्तु उद्योग न करनेसे फल कभी नहीं मिलेगा। उद्योग करनेसे फल मिलनेकी सम्भावना तो रहती है। इस व्यवहार-शुद्ध सिद्धान्तके आधार पर दैन्यावस्था-में पहुँचे हुए राजा, राष्ट्र, कुटुम्ब श्रथवा मनुष्यके विश्वास रखनेके विषयमें यह श्रत्यन्त मार्मिक उपदेश किया गया है।

भारत्य गोरं वा गंचा ५ का भारति ।

हारीकार हो हमी भी हो 165इ कंपाहर है

विवास सम्बद्धा है वह सामुख्यार एवं साथ हर समाय न शासमां जस मिर्ट एवे ॥ पत विश्वपास स्वास सुद्धां या प्रतिसम्बद्धा विश्वपास स्वास सुद्धां या प्रतिसम्बद्धा विश्वपुत्र है मैं सुद्धां साम्बुति स्थितिया ॥ १॥

े में परशासुबरस्तात जीवितुमहोति । पण्डुब्री स्थानित वा ने भवेदित प्रशमित पण्डुब्रेग य नमें बच्चो सेव मी समस्

labordes sede e einceleur aventre fregnes dar ivi-t autorde partensispantés

1.304 行转区的夜角

इसका प्रकरण।

सेना और युद्ध।

इरतीय कालमें भिन्न भिन्न राज्योंमें स्पर्धाके कारण युद्ध-प्रसङ्ग वरा-गरउपस्थित हुन्त्रा करते थे; इसलिए भारती सेनाकी व्यवस्था बहुत ही उन्नतावस्थाको हुँच गई थी श्रीर उसके युद्धके प्रकार भी बहुत कुछ सुधर गये थे। परन्तु सव-में विशेष वात तो यह है कि युद्ध श्रापस-में आर्य लोगोंमें ही होते थे, अतएव युद्ध-के तत्त्व, धार्मिक रीतिसे चलनेवाले वर्तमान समयके उन्नतिशील राष्ट्रीकी युद्ध-पद्धतिके अनुसार ही, नियमोंसे वँधे हुए थे। धर्म-युद्धका उस समय बहुत ब्रादर था श्रीर धर्म-युद्धके नियम भी निश्चित थे। कोई योद्धा उन नियमोका उन्नंघन नहीं करता था। यह पद्धति महाभारतके समयमें कुछ विगड़ी हुई देख पड़ती है। इसका कारण युनानी लोगोंकी युद्ध-पद्धति है। पाश्चात्य देशों-में भी इस समय युरोपियन राष्ट्रोंके बीच जब युद्ध शुरु हो जाता है, तब दया और धर्मके अनुकूल जो नियम निश्चित किये गये हैं, उनका बहुधा श्रतिक्रमण गहीं होता। परन्तु वही युद्ध जब किसी यूरोपियन और एशियाटिक राष्ट्रके बीच शुरू होता है, तब दूसरे ही नियमों-से काम लिया जाता है। इसी प्रकार युनानियोंने पशियादिक राष्ट्रोंसे युद्ध करते समय क्रारताके नियमोका अवलम्य किया और परिणाम यह हुआ कि स्वभा-वतः महाभारतके समयमें क्रूरताके कई नियमोंका प्रवेश भारती-युद्ध-पद्धतिमें हो गया । महाभारतमें सेनाका जो वर्णन किया गया है श्रीर धर्म-युद्ध के जो नियम बतलाये गये हैं, उनसे पाठकोंको इस वातकी कल्पना हो जायगी कि प्राचीन कालकी युद्ध-पद्धति कितनी सुधरी हुई थी श्रीर वर्तमान पाश्चात्य सुधरे हुए राष्ट्रोंके युद्ध-नियमोंके समान ही उस पद्धतिके बारेमें भी श्रपने मनमें कैसा श्रादर-भाव उत्पन्न होता है।

प्रत्येक राष्ट्रमें प्राचीन समयमें कुछ न कुछ फ़ौज हमेशा लड़नेको तैयार रहा करती थी। समय पर श्रपनी खुशीसे सैनिक होने-के नियम उस समय भी प्रचलित न थे: क्योंकि उन दिनों युद्ध-शास्त्रकी इतनी उन्नति हो गई थी, कि प्रत्येक मन्ष्य श्रपनी इच्छाके श्रमुसार जब चाहे तब तलवार और भाला लेकर युद्धमें शामिल नहीं हो सकता था। प्रत्येक सिपाहीको कई वर्षतक युद्ध-शिक्षा प्राप्त करनेकी ज़रूरत थी। सेनाके चार मुख्य विभाग थे—पदाति, अश्व, गज और रथ। श्रर्थात् प्राचीन समयकी फौजको चतुरंग दल कहते थे। श्राजकल सेनाएँ झ्यंग हो गई हैं क्योंकि गज नामक अंग अब लुप्त हो गया है। इस कारण आजकल सेनात्रोंको 'थ्री ग्रार्स' कहनेकी रीति है। गजरूपी लड़नेका साधन प्राचीन समयमें वहुत भयदायक था। श्रन्य लोगोंको हिन्दु-स्थानी फीजोंसे, हाथियोंके कारण ही, बहुत भय माल्म होता था । केवल एक सिकन्दरकी बुद्धिमत्ताने इस भयको दूर कर दिया था। फिर भी कई सदियोतक, श्रर्थात् तोपोंके प्रचलित होनेके समयतक, गजींकी उपयुक्तता लड़ाईके काममें बहुत कम नहीं हुई थी। सेल्यूकसने चन्द्र-गुप्त राजाको अपनी लड़की देकर ५०० हाथी लिये। इसी प्रकार यह भी वर्णन है कि फारसके वादशाह, रोमन लोगोंके विरुद्ध लड़ते समय, हाथियोंका उप योग करते थे। तैमूरलंगने तुर्कोंके घमंडी श्रीर बलाढ्य सुलतान वजाजतको जो इराया वह हाथियोंकी सहायतासे प्राप्त की इहं अन्तिम विजय थी। इसके पश्चात् इतिहासमें हाथियोंका उपयोग नहीं देख पड़ता। हाथियोंके स्थान पर अब तोप-साना आ गया है।

फ़्रीजके प्रत्येक श्रादमीको समय पर वेतन देनेकी व्यवस्था प्राचीन समयमें थी। यह वेतन कुछ तो श्रनाजके रूपमें श्रीर कुछ नकद द्रव्यके रूपमें दिया जाता था। कचित् श्रध्यायमें नारदने युधिष्ठिरको उपदेश दिया है कि सिपा-हिमोंको समय पर वेतन दिया जाय श्रीर उसमेंसे कुछ काट न लिया जाय।

किश्रद्धलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम्। संप्राप्तकाले दातव्यं ददासि न विकर्षसि॥ (सभापर्व श्र० ५)

नारदने इस स्थान पर यह बतलाया है कि यदि सिपाहियोंको समय पर वेतन और अनाज न मिले तो सिपाहियों में श्रमबन्ध हो जाता है जिससे खामीकी भयानक हानि होती है। मरहठोंके राज्य-में शिवाजीके समयसे लेकर नानासाहव पेशवाके समयतक इस वातकी श्रोर अञ्जी तरह ध्यान दिया जाता था। परन्त इसके पश्चात् जब पतन-कालमें सेनाकी तनख्वाह ठीक समय पर न दी जाने लगी, तभीसे अनेक भयङ्कर कठिनाइयाँ उत्पन्न होने लगीं। ये बातें सिंधिया, भौसला, होलकर श्रादिके इतिहासमें प्रसिद्ध ही हैं। पतन-कालमें ऐसे प्रसंग सब राज्योंमें देखे जाते हैं। सेनाको समय पर वेतन देना सुव्यवस्थित राज्य-का पहिला श्रंग है। इस बातका श्रन्दाज करनेके लिए कोई साधन उपलब्ध नहीं है कि प्राचीन समयमें सेनाको क्या वेतन दिया जाता था; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह अनाज और नकदके इतमें दिया जाता था। यह बात स्पष्ट

है कि श्रनाज सरकारी कोठीसे दिया जाता था। पहले बतला दिया गया है कि किसानोंसे कर श्रनाजके रूपमें ही लिया जाता था। रणमें मारे हुए वीरोंके कुटुम्बों (स्त्रियों) का पालन-पोषण करना श्रद्धे राजाका कर्तव्य समभा जाता था। नारदने प्रश्न किया है कि:—

कचिद्दारान् मनुष्याणां तवार्थे मृत्युमीयुगम्। व्यसनं चाभ्युपतानां विभिर्वि भरतर्षभ॥

सेनाके चारों श्रंगोंमें प्रत्येक दस मनुष्यों पर, सौ पर श्रौर हजार पर एक एक श्रधिकारी रहा करता था— दशाधिपतयः कार्याः शताधिपतयस्तथा। ततः सहस्राधिपतिं कुर्यात् श्ररमतंद्रितम्॥ (शान्ति पर्वं श्र० १००)

इस प्रकारकी व्यवस्थाका होना अस-म्भव नहीं है। ऐसी ही व्यवस्था आजकत भी प्रचलित है। एक हजार योद्धाओंका सबसे मुख्य अधिकारी, कर्नलके दर्जेका समभा जाता था। वह राजाके द्वारा सम्मानित होनेके योग्य समभा जाता था।

कचिद्रलस्य ते मुख्याः

सर्वे युद्धविशारदाः । धृष्टावदाता विकान्ताः

त्वया सत्कृत्य मानिताः॥ (स० अ०५)

भिन्न भिन्न चारों श्रङ्गोंके भी एक एक श्रिथकारी, जैसे श्रश्वाधिपति श्रादि रहते थे। इसके सिवा सब फीजमें एक मुख्य कमाएडर-इन-चीफ श्रर्थात् सेनापति रहता था। उसका वर्णन इस प्रकार किया गया है। नारदने पूछा है कि तेरा सेनापित धृष्ट, श्रर, बुद्धिमान, श्रुचि, कुलीन, श्रुउ रक्त श्रीर दत्त है न? शान्ति पर्वमें यह भी बतलाया गया है कि वह व्यूह, यन श्रीर शायुधके शास्त्रको जाननेवाला हो। उसी प्रकार वर्षा, ठएढ श्रीर गर्मी सहने की ताकत उसमें होनी चाहिए श्रीर इसे

शतुष्रोंके छिद्रोंको पहचान सकना चाहिए (शां० श्र० =4-१३)।

चतुरङ्ग दलके सिवा फौजके और बार महत्वपूर्ण विभाग थे। उन्हें विष्टि (हान्स्पोर्ट), नौका, जासूस श्रौर देशिक कहा गया है। इनमेंसे 'विष्टि' सब प्रकार-के सामानको लादकर ले जानेकी व्यवस्था श्रीर साधनोंको कहते हैं। इस वातका महत्व पूर्वकालीन युद्धोंमें भी बहुत बड़ा था। बाणों श्रोर श्रायुधोंसे हजारों गाड़ियाँ भरकर साथ ले जाना पड़ता था। 'नौका' में, समुद्र तथा निद्योंमें चलनेवाली नौकाश्रोंका समावेश होता है। प्राचीन समयमें नौकाश्रोंसे भी लड़नेका श्रवसर श्राता होगा। उत्तर हिन्द्रस्थानकी नदियाँ बडी बडी हैं और उन्हें पार करनेके लिए नौकाश्रोका साधन श्रावश्यक था। समुद्र किनारेके राष्ट्रोंमें वडी वडी नौकाश्रोंका लडाईके लिए और सामान लाने-ले जाने-के लिए उपयोग किया जाता होगा। 'जासूसों' का वर्णन पहले कर ही दिया गया है। लडाईमें उनका वडा उपयोग होता है। इस बातकी श्रच्छी तरह कल्पना नहीं हो सकती कि 'देशिक' कौन थे। उनका वर्णन भी ठीक ठीक नहीं किया गया है। तथापि कहा जा सकता है कि ये लोग स्काउट्स श्रधीत् भिन्न भिन्न मौकों पर श्रागे जाकर रास्ता दिख-लानेवाले और शत्रुश्रोंका हाल बतानेवाले होंगे। फौजके ये समस्त श्राठों श्रङ्ग निम्न लिखित स्ठोकमें बतलाये गये हैं।

रथा नागा हयाश्चेव पादाताश्चेव पाएडव । विधिनविश्वराश्चेव देशिका इति चाष्टमः॥ (शान्ति पर्व श्व० ५६)

पदेल श्रीर घुड़सवार ।
पदाति या पैदल सेनाके पास रहनेवाले श्रायुध ढाल श्रीर तलवार थे। इनके
सिवा श्रन्य श्रायुध भी बतलाये गये हैं,

जैसे प्रास (भाला), परशु (कुल्हाड़ी), भिंडीपाल, तोमर, ऋषी और शुक्त। यह नहीं वतलाया जा सकता कि भिडीपाल त्रादि हथियार कैसे थे। सङ्ग एक छोटी तलवार है। गदा नामक श्रायुध पदा-तियोंके पास न था, क्योंकि इस आयुध-का उपयोग करनेके लिए बहुत शक्तिकी श्रावश्यकता होती थी । इस श्रायुधका उपयोग द्रन्द्र-युद्धमें किया जाता था। इसी तरह हाथियोंसे लड़नेके समय भी गदाका उपयोग होता था। गदाका उप-योग विशेष वलवान चत्रिय लोग ही किया करते थे। घुड़सवारोंके पास तल-वारें श्रीर भाले रहते थे। भाला कुछ श्रिधिक लम्बा रहता था। इस बातका वर्णन है कि गान्धारके राजा शक्तनीके पास दस हजार अश्वसेनाविशाल नकीले भालोंसे लडनेवाली थी।

त्रानीकं दशसाहस्रमश्वानां भरतर्षभ। श्रासीद्रांधारराजस्य विशालप्रासयोधिनाम्॥ (शल्य पर्व श्र० २३)

घुड़सवारोंकी लड़ाईका वर्णन इस स्थान पर उत्तम प्रकारसे किया गया है। दोनों प्रतिपित्तयोंके घुड़सवार जब एक दूसरे पर हमला करते करते श्रापसमें भिड़ जाते हैं, तब भालोंको छोड़कर बाहुयुद्ध होने लगता है श्रीर एक घुड़-सवार दूसरेको घोड़े परसे नीचे गिराने-का प्रयत्न करता है। यह सम्भवनीय नहीं मालूम होता कि प्रत्येक आदमीके पास कवच रहता हो। कवचका अर्थ जिरह-बस्तर है। यह बहुधा भारी रहता है और यदि हलका हो तो उसकी कीमत यहत होती है। इस कारण पैदल और घुड़-सवारोंके पास कवच न रहता था। तथापि ऐसे पदातियोंका भी वर्षन है जिन्होंने कवच पहना हो । रथी श्रौर हाथी पर बैठनेवाले योद्धाके पास हमेशा

कवच रहता था। कवचका उपयोग रथी और सारथी बहुत करते थे। बालोंकी वृष्टि बहुधा रथियों और सार-थियों पर ही होती थी, इस कारण उनको कवचकी बहुत आवश्यकता थी। और ये योद्धा भी बड़े बड़े चित्रय होते थे; इसलिए वे मूल्यवान कवचका उप-योग कर सकते थे। हाथी परसे लड़ने-घालेकी भी यही स्थिति थी। वे ऊँचे स्थान पर रहते थे, अतएव उन पर बाणोंकी अधिक वृष्टि होती थी, और उन्हें कवच पहनना आवश्यक था। हाथी परसे लड़नेवाला योद्धा धन-सम्पन्न होनेके कारण कवच पा सकता था।

भिन्न भिन्न लोगोंकी भिन्न भिन्न युद्ध-के सम्बन्धमें ख्याति थी। पाश्चात्य देश गान्धार, सिन्धु और सौवीर श्रश्वसेनाके सम्बन्धमें प्रसिद्ध थे। इन देशोंमें प्राचीन समयमें उत्तम घोड़े पैदा होते थे श्रीर श्रव भी होते हैं। फारस तथा श्रफगा-निस्तानके घोडोंकी इस समय भी तारीफ होती है। इन देशोंके वीर घोडों पर बैठ-कर तीच्ण भालोंसे लडते थे। उशीनर लोग सव प्रकारके युद्धमें कुशल थे। प्राच्य लोग मातङ्ग-युद्धमें प्रसिद्ध थे। हिमालय श्रीर विनध्याद्वीके जङ्गलोंमें हाथी बहुतायतसे पाये जाते थे, इसलिए प्राच्य, मगध इत्यादि देशोंके लोगोंका हाथियोंके युद्धमें कुशल होना स्वाभाविक ही है। मथुराके लोग बाहुयुद्धमें कुशल थे। यह उनकी कुश्ती लड़नेकी कीर्त्त श्रवतक कायम है। दित्तणके योद्धा तल-वार चलानेमें कुशल होते थे। मरहठोंकी वर्तमान समयकी कीर्त्ति घोड़ों परसे हमला करनेके सम्बन्धमें है । यहाँ इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि उपर्युक्त दाचिएात्य विदर्भ देशके रहनेवाले हैं (शान्ति ग्र० ६६)।

ी हाथी।

श्रव हम हाथीके विषयमें विचार करेंगे। हाथीकी प्रचएड शक्ति और काम करनेकी महावतके श्राज्ञानुसार तैयारीके कारण हाथीको फौजमें महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ था। परन्तु उसकी सुँह नरम होनेके कारण, सहजही तोड़ी जा सकती है। इसलिए गएडस्थलसे सूँडकी छोरतक हाथीको लोहेका जिरह-वल्ला पहनाते थे; श्रीर उसके पैरोंमें भी जिरह बख्तर रहता था। इस कारण हाथी लड़ाईमें विपित्तयोंकी खूब खबर लेते थे। यद्यपि बात पेसी थी, तथापि मल लोग हाथोंमें कुछ भी हथियार न लेकर हाथी से लड़ा करते थे। हाथीके पेटके नीचे चपलतासे घुसकर, घूँसोंकी मारसे उसको व्याकुल कर देनेके पश्चात् उसे चकर खिलानेका वर्णन भीम और भगदत्तके युद्धमें किया गया है (द्रोणपर्व० अ० २६)। वर्तमान समयमें भी हिन्दुस्थानी रजवाड़ी में कभी कभी होनेवाले गजयद्वींसे लोगोंका विश्वास हो गया है, कि इस प्रकारके धेर्य श्रीर शक्तिके काम श्रसम्भव-नीय नहीं हैं। दतिया संस्थानमें अवतुक कभी कभी यह खेल हुआ करता था, कि हाथीके दाँतमें पाँच सी रुपयोंकी एक थैली बाँध दी जाती थी और खिलाड़ी उस हाथींसे लड़ाई करके थैलीकी छीन लिया करता था। श्रस्तुः प्राचीन समयमे हाथी पर महावत श्रोर युद्ध करनेवाली योद्धा दोनों बैठते थे। युद्ध करनेवाला धनुष्यवाण्का, विशेषतः शक्ति अथवा वरछीका, उपयोग किया करता था। गज-सेनाकी कभी कभी हार भी ही जाती थी। इस प्रकार गजसेनाका पहला हमला सहन करके जब वह सेना एक बार लौटा दी जाती थी तब वह श्रपनी ही फीजका नाश कर डालती थी या

म्यं उसका ही नाश हो जाता था। गजसेनासे लड़नेकी पहली युक्ति जो सिकन्दरने खोज निकाली वह यह है। बाण चलानेवालोंके कवच न पहने हुए पदातियोंको यह आज्ञा दी गई थी कि वे इरसे पहले हाथियोंके महावतों पर बाण चलावें श्रोर उन्हें मार गिरावें। किर कवच पहने हुए पदाति हाथियोंके केर काट डालें श्रथवा उन्हें घायल करें। सिकन्दरने खास तौर पर लंबी श्रीर बाँकरी तलवारें वनवाई थीं जो उस कीजको दी गई थीं। इन तलवारोंसे हाथियोंकी सुँडें काटनेकी आजा थी। इस रीतिसे सिकन्दर गजसेनाका परा-भव किया करता था। यह बात महा-भारतके अनेक युद्ध वर्णनींसे देख पड़ती है कि गजसेना जिस प्रकार शत्के लिए भयंकर थी उसी प्रकार स्वपत्तके लिए भी भयंकर अर्थात् हानिकारक थी।

रथी और धनुष्यवाण।

भारती-कालमें रथी सबसे अधिक श्रजेय योद्धा हुआ करता था। वर्तमान कालके लोग रथीके महत्वकी कल्पना नहीं कर सकते। इस विषयकी कुछ भी कल्पना नहीं की जा सकती कि वे किस मकार युद्ध करते थे और इतना प्राणनाश करनेका सामर्थ्य उनमें क्योंकर था। कारण यह है कि आजकल कहीं रथः का उपयोग नहीं होता श्रीर धनुष्यवाण-का भी श्रव नामनिशान मिट गया है। श्रव तो धनुष्यवाणके स्थान पर वंदूक श्रीर गोली श्रा गई है। प्राचीन कालमें धनुष्यवाण ही सब शस्त्रोंमें दूरसे शतुको घायल करने अथवा मार डालनेका श्रुल था । इस कारण उस समय रास्त्रास्त्रोमें धनुष्यवाणका नम्बर पहला था। श्रस्त्रों श्रथवा फेंककर मारनेके हथियारोंमें दो हथियार—'शक्ति' श्रथवा

बरछी श्रौर 'चक्र' बहुत तेजस्वी श्रौर नाश करनेवाले थे। दोनों हथियारीका भारती श्रार्य उपयोग करते थे। शक्ति-की अपेचा चक्र श्रियक दूरतक जाता था। चक्रका उपयोग इस समय भी पंजावके सिक्ख लोग करते हैं। परन्तु चक्रसे धनुष्यवाणकी शक्ति श्रधिक है। बाए, मनुष्वके जोर पर एक मील भी जा सकता है। प्राचीन समयमें धनुष्य-बाएकी विद्या श्रार्य लोगोंने बहुत उन्नति-को पहुँचाई थी। धनुष्यवाणके उपयोग-में विशेष सुविधा थी। वरछी या चक फिरसे लौटकर हाथमें नहीं आता और कोई श्रादमी बहुत सी वरिछयों या चक्रों-को अपने हाथमें ले भी नहीं सकता। परन्तु कोई योद्धा दस वीस वाणींको खयं अपने पास रख सकता था और श्रनेक वाणोंको गाडियोंमें भरकर श्रपने साथ ले जा सकता था। श्राजकल जिस प्रकार वारूद श्रीर गोलोंकी गाडियाँ फौजके साथ साथ रखनी पड़ती हैं, उसी प्रकार पूर्व समयमें भी बाणोंकी गाडियाँ रखी जाती थीं। इस कारण रथोंकी उप-योगिता धनुष्यवाणका उपयोग करनेवाले योद्धाश्रोंके लिए बहुत थी। इसके सिवा रथ अनेक स्थानों पर जोरसे चलाया जा सकता था श्रीर वहाँसे शत्र पर बाणी द्वारा हमला करनेमें योद्धात्रोंके लिए रथ-का वहत उपयोग होता था। प्राचीन समय-में सब लोगोंको धनुष्यवाणकी जानकारी थी श्रौर रथोंकी भी कल्पना सब लोगोंको थी। होमर द्वारा वर्णित युद्ध से मालूम होता है कि यूनानियोंमें रथी भी थे श्रीर रथ-युद्ध हुन्ना करते थे। परन्तु यूनानियोंके ऐतिहासिक कालके युद्धोंमें रथोंका वर्णन नहीं मिलता। इजिप्शियन लोगोंमें धहुत प्राचीन समयमें लड़ाईके रथके उपयोग करनेका वर्णन है: असी-

रियन श्रोर वेवीलोनियन लोगोंमें भी रथोंका वर्णन किया गया है। फ़ारस-निवासियोंकी फीजमें भिन्न रथ थे। उनके चक्कों में छुरियाँ वँधी रहती थीं जिनसे शत्रुकी सेनाके लोगों-को बहुत जल्म लगते थे। भारती-श्रायौं-की फौजमें रथ सिकन्दरके समयतक थे। यूनानियोंने लिख रखा है कि भारती श्रायोंकी धनुष्यवाण-सम्बन्धी कला श्रन्य लोगोंसे बहुत बढ़ी चढ़ी है श्रीर श्रनमान-से मालूम होता है कि श्रन्य लोगोंके रथों-की अपेत्ता भारती-श्रायोंके रथ बड़े होंगे। युनानियोंने इस वातका वर्णन किया है कि हिन्दुस्थानियोंके धनुष्य श्रादमीके सिरतक ऊँचे और उनके बाण तीन हाथ लम्बे होते थे। वाशोंका लोहा या फल बहुत तीव्ण श्रीर भारी रहता था। ऐसे धनुष्योंको खींचनेवाले मनुष्यकी भुजामें बहुत ताकतकी आवश्यकता होती थी। यद्यपि यूनानियोंके समयमें यहाँ धनुष्य-बाएकी कला कुछ घट गई थी, तथापि युनानियोंको यह देखकर आश्चर्य होता था कि उस समयके श्रार्य योद्धाश्रों द्वारा चलाए हुए बाग कितने जोरसे आते हैं। उन्होंने यह लिख रखा है कि ऐसे वाणोंसे लोहेकी मोटी पहियाँ भी छेदी जा सकती थीं। यह बात इतिहासमें लिखी गई है कि भारतीय चत्रियोंकी धनुर्विद्याकी कीर्ति और उनके विलक्षण सामर्थ्यके सम्बन्धमें संसारके लोगोंकी पृथ्वीराजके समयतक आश्चर्य मालूम होता था। इतिहासमें इस बातका उल्लेख है कि भारती श्रायोंमें इस श्रन्तिम धनुवीरने बाणसे लोहेके मोटे तवे छेदे थे।

लम्बा श्रमुष्य लेकर वज़नी बाण् चलानेकी हाथोंको आदत होनेके लिए स्वभावतः शारीरिक शक्तिकी आवश्यकता थी। परन्तु बाणोंका निशाना ठीक साधने- के लिए धनुष्यवाणका ज्वासङ्ग भी रात-दिन करना पड़ता था। जिस प्रकार वन्दूकका निशाना मारनेके लिए अंशतः ईश्वर-दत्त गुणकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार धनुष्यवाणका भी निशाना ठीक मारनेके लिए ईश्वरदत्त शक्तिकी आव-श्वकता होती है। परन्तु इस प्रकार गुण-का उपयोग होनेके लिए निरन्तर अभ्यास-की भी आवश्यकता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य धनुवीर नहीं हो सकता। स्वाभा-विक गुण, दीर्घ अभ्यास और उत्तम गुरु, इन तीनों वातोंका मेल हो जानेसे ही अर्जुन प्रख्यात धनुर्थर हुआ।

तद्भ्यासकृतंमत्वा रात्राविप स पाएडवः। योग्यां चक्रे महावाहुर्धनुषां पंडुनन्दनः। (श्रादि० श्र० १३२)

इस बातको जानकर ही अर्जुनने रात्रिके समय भी धनुष्यवाण चलानेकी मेहनत (योग्या) की थी कि अभ्याससे ही निपुणता प्राप्त होगी। इसमें दो बातों की और ध्यान रहता था। पहले तो निशाना ठीक लगे, और फिर बाण भी जल्दी चलाया जा सके। धनुर्धरको भिन्न वेग और रीतिसे धनुष्यवाणका उपयोग कर सकना चाहिए। धनुष्यका लगातार उपयोग करते रहनेके कारण अर्जुनके वाएँ हाथ पर घट्टे पड़ गयेथे। उन्हें उसने बाहुभूषणोंको धारण करके बहुन्नडाके वेशमें छिपा लिया था।

धनुवींरकी शक्ति रथकी सहायतासे दस गुनी बढ़ जाती है। पादचारी धर्म धर उतने ही वाणोंको ले जा सकते हैं। परन्तु रथमें जितने चाहें उतने बाए रहे जा सकते हैं। इसके सिवा, जहाँसे बाए चलाना हो उस स्थानको पादचारी वीर आसानीसे बढ़ल नहीं सकता; परन्तु रथकी सहायतासे यह लाभ होता है कि

धनुवीर निशाना मारनेके भिन्न भिन्न शानों पर जल्दीसे जा सकता है। फिर भी रथके वेगके कारण निशाना जमानेमें अन्तर पड़ जाता है। इस कारण रथ परसे निशाना मारनेका भी अभ्यास करना पड़ता है। रथके घोड़ों श्रीर सार-थियों पर भी हमला किया जा सकता है। इस कारण, रथ-योद्धाको शत्रुका नाश करनेकी शक्ति यद्यपि श्रधिक प्राप्त होती धीं, तथापि उसकी जवाबदेही भी श्रधिक वह जाती थीं। हालके युरोपियन युद्धसे वह अनुमान किया जाता है कि आजकल भी युद्धमें रथका उपयोग धीरे धीरे होने लगेगा। वर्तमान समयमें, मैक्सिम् गन-को मोटर गाड़ीमें रखकर भिन्न भिन्न शानोंमें शीघ्रतासे ले जाकर वहाँसे निशाना मारनेकी युक्ति चल पड़ी है। वह रथके समान ही है। इस मोटर पर गोला न लगे, इसलिए गत युद्धमें टैंककी जो कल्पना निकली है, यह भी रथके समान ही है। पूर्व समयके युद्धोंमें रथका उपयोग वर्तमान तोपखानेके समान विशे-पतः घोडोंकी तोपोंके समान, होता था। भिन्न भिन्न स्थानों से निशाना मारनेके लिए, रथोंको दौड़ाते हुए इधरसे उधर लेजाना पड़ता था। परन्तु वर्तमान तोप-बानोंके समान ही बारूद-गोलेके स्थान पर वाणींका संग्रह करना श्रावश्यक था। मरहटोंके युद्ध-वर्णनमें वाणोंकी कैंचियों-का बराबर उल्लेख किया गया है। कर्ण-पर्वमें अध्वत्थामाका कथन है कि-वाणोंसे भरी हुई सात गाड़ियाँ मेरे पीछे रहने दो। श्रन्य स्थानमें वर्णन है कि अध्वत्थामाने, तीन घएटोंकी श्रविधमें ही, पेसी आठ गाडियोंके सब शस्त्रास्त्रोंको चला दिया श्रीर गाड़ियाँ खाली कर दीं, जिनमें श्राठ श्राठ वैल जुते थे। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि वर्तमान तोप-

खानोंके समान ही रथी-योद्धार्श्रोंको वाणी-का संग्रह करनेकी वहुत श्रावश्यकता थी। इससे यह भी माल्म होता है कि आधु-निक समयके श्रनुसार ही प्राचीन समय-के युद्धोंमें वाहनक्ष्मी साधनोंका बहुत उपयोग होता था।

यस्त्र।

इस स्थान पर यह प्रश्न होता है कि रथी बहुधा जिन श्रस्नोंका उपयोग करते थे वे श्रस्त्र क्या थे। पाठकोंको यह जानने-की इच्छा सहज ही होगी कि अस्त्रोंके विषयमें विवेचक दृष्टिसे कौनसा मत दिया जा सकता है। यह वर्णन पाया जाता है कि श्रस्त्रोंका उपयोग बहुधा रथी ही करते थे। यह वर्णन भी है कि धनुष्य-को वाण लगाकर उस पर कुछ मन्त्रोंका प्रयोग करके बाण चलाये जाते थे; उस समय दैविक शक्ति द्वारा विलच्चण शस्त्र या पदार्थ, जैसे श्रग्नि, वायु, विद्युत्, वर्षा, श्रादि उत्पन्न होते थे जिनके कारण शत्र-सेनाका भयङ्कर नाश हो जाता था। इन अस्रोंके अग्न्यस्त्र, वाय्वस्त्र आदि नाम थे। ये दैविक मन्त्र बहुधा बाणों पर योजित रहते थे। इनमें विलक्षण दैविक शक्ति भरी रहती थी। यह न समभ लिया जाय कि केवल वाणीं पर ही श्रस्त्रोंका मन्त्र जपा जाता था। भगदत्तने श्रंकश पर वैष्णवास्त्रका मन्त्र जपा था और फिर उसे चलाया था। अश्वत्थामा युद्धके पश्चात भागीरथीके किनारे व्यासजीके पास बैठा था। उस समय जब पाएडव उसे मारनेके लिए श्राये तव उसने दर्भकी एक सींक पर ब्रह्मशिरः नामक अस्त्रका जप कर वह सींक पागडवीं पर फेंकी थी। सारांश, यह नहीं कहा जा सकता कि श्रस्त्रोंको धनुष्य या बाएकी ही श्राव-श्यकता थी । धनुर्वेदमें बतलाए हुए विशिष्ट अस्त्रोंके मन्त्रोंको कभी कभी हाथ-

में पानी लेकर शुद्ध श्रन्तः करणसे जपना पड़ता था। फिर उसके अनुसार भयङ्गर श्रस्त्र या ज्वाला, विजली श्रादिकी उत्पत्ति होती थी। श्रस्त्रोंकी योजनामें चार भाग थे। वे चार भाग, मन्त्र, उपचार, प्रयोग ब्रौर संहार हैं। उद्योग पर्व अ०३ में कहा है कि 'योऽस्त्रं चतुष्पात् पुनरेच चके।' संहार शब्दसे यह मालूम होता है कि जिस योद्धाने जिस श्रस्त्रका प्रयोग किया हो. उसमें उस श्रस्त्रको लौटा लेनेकी शक्ति थी। धनुर्वेदमें शस्त्रोंके वर्णनके साथ अस्त्रोंका भी विस्तृत वर्णन था। भारती कालमें यह नियम था कि प्रत्येक चत्रिय इस धनविद्याका अभ्यास करे। यह बात गुरुसे धनुर्वेदकी सहायतासे चत्रियोंको सीखनी पड़ती थी कि अस्त्रोंका प्रयोग श्रीर संहार किस प्रकार किया जाता है। वेदकी शिचा देनेका अधिकार ब्राह्मणोंको था इसलिए धनुवेंदके इन श्रस्त्रोंके मन्त्रों-को सिखाने और उनके प्रयोग तथा संहार प्रत्यत्त अनुभव द्वारा वतलानेका काम भी ब्राह्मणोंको ही करना पड़ता था। महाभारतमें दिये हुए अस्त्रीके वर्णनींसे ये सब बातें माल्म होती हैं। श्रब इस बातका निर्णय नहीं किया जा सकता कि ये अस्त्र वास्तविक हैं या काल्पनिक। मन्त्रोंमें अद्भुत दैविक शक्ति रह सकती होगी। परन्तु यहाँ दो तीन बातें श्रीर भी बतला देनी चाहिएँ। ब्रह्मविद्या धनु-विद्यासे बिलकुल भिन्न थी । ऋस्त्रविद्या एक मन्त्र-विद्या है, श्रौर धनुर्विद्या धनुष्य-सम्बन्धी मानवी विद्या है। श्रनुर्विद्यामें प्रवीखता प्राप्त करनेके लिए अर्जुनको रात-दिन धनुष्यवाणका अभ्यास करना पड़ा था, परन्तु श्रस्त्र-विद्या उसे गुरु-प्रसादसे बहुतही जल्द प्राप्त हो गई थी। शङ्करसे उसे जो पाशुपतास्त्र मिला था, यह शङ्करके प्रखादसे एक चएमें ही

प्राप्त हुन्त्रा था। सारांश, त्रस्त्र-विद्या देवी विद्या थी और धनुर्विद्या मानवी विद्या थी। दूसरी बात यह है कि उस समयके धर्मयुद्धका यह नियम था कि श्रुख जाननेवाला, श्रनस्त्रविद् पर श्रथीत श्रस्त्रके न जाननेवाले पर, श्रस्त्रोंका उप योग न करे। जिस प्रकार बन्दूक लिए इय लोगोंका निःशस्त्र लोगों पर वन्द्रक चलाना श्रन्याय श्रीर क्र्रता समभा जाता है, उसी प्रकार यह नियम था कि श्रस्तके समान भयङ्कर दैविक शक्ति जिसके पास हो वह श्रस्त्रके न जाननेवालों पर श्रर्थात दैविकशक्ति विहीन लोगों पर अस्त न चलावे। कहा गया है कि द्रोणने क्रोधमें श्राकर जो ऐसा भयहर काम किया था वह उचित्रन था।

ब्रह्मास्त्रेण त्वया दग्धा श्रनस्त्रज्ञा नरा भुवि। यदेतपीदृशं कर्म कृतं विप्र न साधु तत्॥ (द्रोणपर्व श्र० १००)

श्रथात्, यह वात निश्चित हो गई थी कि इस श्रस्नका सदा सर्वदा उपयोग न करना चाहिए। तीसरी वात यह है कि ये वैदिक मन्त्र प्रसङ्गवशात् याद भी न श्राते थे। कर्णको ऐन मौके पर ब्रह्मास्त्र याद न श्राया। श्रर्जुनको भी, श्रीकृष्णकी मृत्युके पश्चात्, दस्युश्चोंके युद्धके समय, श्रस्त याद न श्राये। इन सब बातोंका विचार करने पर यहाँ कहना पड़ता है, कि यद्यपि यह मान भी लिया जाय कि ये दैविक शिक्तके श्रस्त्र प्राचीन श्रर्थात् भारती-युद्धके समयमें थे, तथापि लड़ाईके श्रन्तिम परिष्णाममें उनका बहुत उपयोग नहीं हुआ।

सिकन्दरके समयका रथ-युद्ध।

यह बात सच है कि श्रस्त-युद्ध के सिवा भारती-युद्ध के रिथयों के युद्ध का वर्ण के भी महाभारतमें बहुत है। परन्तु श्राज कल हम लोग इस बातकी कल्पना नहीं

कर सकते कि रथियोंका युद्ध किस प्रकार होता था। कारण यह है कि वर्तमान समयके लोगोंकी वुद्धिमें तोपखानोंके युद्धों-के वर्णन ही खूब भरे हैं। फिर भी, इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन समयमें श्रस्त्रके सिवा रथी बहुत महत्वपूर्ण योदा रहा होगा। शांतिपर्वके १००वें श्रध्यायमें इस विषयमें नियम वतलाया गया है कि रथीका युद्ध किस समय श्रीर किस जमीन पर होना चाहिए। यह वतलाया गया है कि जिस फौजमें पदाति हों वह सबसे श्रधिक वलवान् है (वर्तमान कालका भी श्रतभव ऐसा ही है): श्रीर जिस स्थान पर, गड्ढे वगैरह न हों उस स्थान पर. जिस समय पानी न वरसता हो उस समय, अध्वसेना और रथका वहत उपयोग होता है। यह सूचना महाभारतके समयके प्रत्यच रथयुद्धोंसे दी गई है। यदि यहाँ इस वातका वर्णन किया जाय कि युनानियोंकी चढ़ाईके समय रथोंकी लड़ाइयाँ प्रत्यच किस प्रकार होती थीं. तो वह पाठकोंको मनोरञ्जक होगा। पञ्जाबकी वितस्ता (भेलम) नदीके किनारे सिकन्दरके साथ जिस पोरस राजाका कुछ युद्ध हुआ उस पोरसकी सेनामें रथ ही प्रधान श्रङ्ग था। इतिहास-कार कर्टियस रूफस्ने यह बात लिख रखों है कि उनकी लड़ाई किस प्रकार हुई श्रौर उनका पराभव किस प्रकार हुआ। "लड़ाईके प्रारम्भमें ही होने लगी, अतएव कहीं कुछ देख न पड़ता था। परन्तु कुछ समयके बाद श्राकाश निरम्र हुआ। उस समय परस्पर सेनाएँ दिखाई देने लगीं। राजा पोरसने युनानियोंको रोक रखनेके लिए एक सौ रथ श्रीर चार हजार घोड़े सामने भेजे। सि छोटीसी सेनाकी प्रधानशक्ति रथों पर ही निर्भर थी। ये रथ चार घोड़ोंसे खींचे

जाते थे। प्रत्येक रथमें छः आद्मी थे। उनमेंसे दो हाथमें ढाल लिये खड़े थे। दो, दोनों तरफ, धनुष्य लिए खड़े थे श्रीर दो सारथी थे। ये सारथी लड़नेवाले भी थे। जिस समय मुठमेड़की लड़ाई होने लगी, उस समय ये सार्थी वागडोरको नीचे रख हाथोंसे शतुत्रों पर भाले फेंकते थे। परन्तु उस दिन ये रथ विशेष उप-योगी न हुए, क्योंकि पानी खूब जोरसे वरसा था, जमीन बहुत चिकनी हो गई थी श्रीर घोड़े दौड़ न सकते थे। इतना ही नहां, वरन् वर्णाके कारण रथोंके पहिये की चड़में फँसने लगे और उनके श्रिक वजनके कारण रथ एक जगहसे दूसरी जगह ले जाने लायक न रहे। इधर सिकन्द्रने उन पर बहुत जोरसे हमला किया, क्योंकि उसकी फौजके पास शस्त्रोंका बहुत बोभ न था। पहले सीथियन लोगोंने भारती लोगों पर हमला किया। फिर राजाने अपने घुडसवारीं-को उनकी पूर्व दिशा पर हमला करनेकी श्राज्ञा दी। इस प्रकार मुठभेड लड़ाईका त्रारम्भ हुत्रा। इतनेमें ही रथके सारथी त्रपने रथोंको पूरे वेगसे दौड़ाते हुए लडाईके मध्य भागमें ले गये और सम-भने लगे कि उन्होंने अपने मित्रोंकी बहुत सहायता की है। परन्तु इस वातका निर्णय नहीं किया जा सकता कि इस कारण किस सेनाका अधिक नाश हुआ। सिकन्दरके जो पैदल सिपाही सामने थे श्रौर जिन्हें इस हमलेका प्रथम धका लगा वे जमीन पर गिर पड़े। कुछ रथोंके घोड़े बिगड़ गये। रथोंको गड्ढों या नदीमें गिराकर वे छूट गये। जो थोड़े वाकी बचे, उन पर शत्रुके बाणोंकी वर्षा होने लगी, इसलिए वे पोरसकी सेनाकी श्रोर वापस लौटे।"

उक्त वर्णनसे इस बातकी कल्पना

होगी कि महाभारतके समय, श्रर्थात् यूनानियोंकी चढ़ाईके समय, रथोंसे किस प्रकार युद्ध किया जाता था श्रीर लड़ाई-में उनका कितना उपयोग होता था। यह बात इक्त वर्णनसे भी देख पडती है कि भारती-युद्धके समयसे यूनानियोंके समय-तक रथोंकी युद्ध-पद्धतिमें बहुत श्रन्तर हो गया था। भारती-युद्धमें सैंकड़ों रथीं-के एक ही स्थान पर लड़नेका वर्णन प्रायः नहीं है। प्रत्येक रथी श्रलग श्रलग लड़ता था, श्रौर वह भी दूरसे। श्रश्वसेनाकी नाई एक ही समय दौड़कर किसी पर हमला करना रथोंका उद्देश न था। युद्ध-के भिन्न भिन्न स्थानों पर शीव्रतासे पहुँच-कर वाणोंकी वृष्टि करना ही रथका मुख्य काम था। भारती-युद्ध कालमें भी रथके चार घोड़े रहते थे, परन्तु रथमें एक ही धनुर्धर श्रीर एक ही सारथी रहता था। युनानियोंके वर्णनानुसार दो धनुर्धर या दो सारथी न रहते थे। धनुर्धरकी रचा-के लिए ढालवालोंकी आवश्यकता न थी। युद्धके वर्णनसे मालूम होता है कि रथके दो चक-रत्तक रहते थे। रथों पर दोनों तरफ़से हमला न होने पावे, इस-लिए रथोंके दोनों श्रोर पहियोंके पास श्रौर भी दो रथ चलते थे श्रौर उनमें जो धनुर्धर रहते थे उन्हें चक्ररचक कहते थे। रथोंका मुख्य काम एक स्थानसे दूसरे स्थान पर म्राने-जानेका था, म्रतएव उनके धूमने-फिरनेके लिए खुली जगहकी बहुत आवश्यकता होती थी। इस कारण जान पड़ता है कि रथोंका उपयोग भारती-युद्ध कालमें हमलोंके लिए नहीं होता था। श्रपंका गर्तरहिता रथभूमिः प्रशस्यते। रथाश्चवहुला सेना सुदिनेषु प्रशस्यते॥

रथ चलानेके लिए पङ्करहित, सूखी श्रीर गर्तरहित श्रर्थात् जिसमें गड्ढे न हीं, ऐसी भूमि ठीक हैं। जिसमें बहुतसे रथ श्रीर घुड़सवार हों, ऐसी सेना उस दिन प्रशस्त है जिस दिन पानी न वरसे। यह भी कहा गया है कि—

पदातिनागबहुला प्राचुट्काले प्रशस्ते। गुणानेतां प्रसंख्याय देशकाली प्रयोजयेत्॥ (शान्तिपर्व अ० १००)

श्राश्चर्यकी बात है कि जलकी वृष्टि होने पर भी पोरसने रथों श्रीर घुड़ सवारोंका उपयोग किया। महाभएता युद्ध-शास्त्रके अनुभवके आधार पर ही युद्ध-सम्बन्धी नियम वतलाये गये हैं। यहाँतक कि उस समयके नीतिशास्त्रमें भी यही नियम दिये गये हैं। आश्चर्यकी वात नहीं कि इन नियमोंका अतिक्रम हो जाते से पोरसके रथोंकी हार हुई। यह देख पड़ता है रथयुद्धकी पद्धति सहाभारतके समय वहुत कुछ बिगड गई थी: फिर भी महाभारतके उक्त वाक्यसे यह बात निर्विः वाद है कि जहाँ अस्त्र-युद्ध नहीं होता वहाँ एथ, अध्व या हाथीकी सहायतासे युद्ध करनेकी रीति, या श्रनुभवजन्य नियम, युद्ध-शास्त्रमें भली भाँति बतलाये गये थे।

रथ-वर्णन।

रथका कुछ श्रौर भी वर्णन किया जाना चाहिए। रथमें हमेशा चार घोड़े लगाये जाते थे; रथ श्रच्छी तरहसे सजाये जाते थे; इसी प्रकार घोड़े भी खूब सजाये जाते थे; इसी प्रकार घोड़े भी खूब सजाये जाते थे, श्रौर उनका सब साज सोना चाँदी महकर सुन्दर बनाया जाता थी रथ पर मन्दिरके शिखरकी नाई गोल शिखर रहता था श्रौर उस पर ध्वजा फहराया करती थी। प्रत्येक वीर्क ध्वजा-पताकाका रङ्ग श्रौर उसके बिंह भिन्न रहते थे। इन चिह्नोंसे, दूरसे ही पहचान हो जाती थी कि यह वीर की पहचान हो जाती थी कि यह वीर की है। द्रोण पर्वके २३ वें श्रध्यायमें भिन्न रथों श्रौर ध्वजाश्रोंका वर्णन किया

ग्या है। भीमके रथके घोड़े काले रङ्गके थे, श्रीर उनका साज सोनेका था। कुलके घोड़े कास्त्रोज देशके थे। उनका माथा, कन्धा, छाती और पिछला भाग विशाल होता है; गर्दन श्रोर देह लम्बी होती है, और वृषण सँकरा होता है। होएके रथकी ध्वजा कृष्णार्जुनयुक्त तथा सवर्णमय कमगडलु-युक्त थी। भीमसेन-की ध्वजा पर प्रचएड सिंह था। कर्णकी धजा पर हाथीकी श्रृङ्खलाका चिह्न था। युधिष्ठिरकी ध्वजा स्रहणान्वित चन्द्र-के समान सुशोभित थी। नकुलकी ध्वजा पर शरभका चिह्न था जिसकी पीठ सोने-की थी। यह भी वर्णित है कि रथमें एक ढोलक लगी रहती थी। कुछ रथीं पर दो मृदङ्ग रहते थे, जो रथके चलने लगने पर, त्राप ही श्राप किसी युक्तिसे वजने लगते थे।

मृदङ्गी चात्र विपुली दिव्यी नन्दोपनन्दनी। यन्त्रेणाहन्यमानीच सुखनी हर्षवर्धनी॥

यह बात श्रसम्भवनीय नहीं कि भिन्न भिन्न योद्धागण मृदङ्ग या ढोलककी श्रावाज़से मस्त होकर लड़ते होंगे। श्राज-कल पाश्चात्य युद्धोंमें भी यह बात देख पड़ती है। हाईलैंडर लोगोंकी फ़ौज हमला करनेके लिए जब आगे बढती है, तव उसके साथ 'पाइप' वाजा वजता रहता है। जब लड़ाई होने लगती है तब बाजा बजानेवाला खुब ज़ोरसे रणवाद्य बजाता रहता है, श्रीर उसकी वीरता रसो बातमें समभी जाती है कि खयं न लड़ते हुए यदि वह जखमी हो जाय तो भी वह अपना रणवाद्य बजाता ही रहे। लड़ाईके समय जब प्रत्यच युद्ध होने लगता है, तब सुरीले रणवाद्योंकी, मस्त कर देनेवाली ध्वनिकी, आवश्यकता होती है। यह बात उक्त उदाहर एसे स्पष्ट माल्म हो जायगी। रथ बहुत बड़े रहते

थे। स्थान स्थान पर उनके लिए 'नगरा-कार' विशेष एका उपयोग किया गया है। उनमें वाण, शक्ति, आदि मौके पर उप-योगी होनेवाले, अनेक शस्त्र भरे रहते थे। रथीके शरीर पर सदा जिरहवसर रहता था। हाथोंके लिए गोधांगुलि-त्राण-उंगलियोंकी रज्ञाके लिए गोहके चमड़ेका वना हुआ, दस्तानेकी नाई, एक स्रावरण—रहता था। 'बद्धगोधां-गुलित्राणः' वार वार कहा गया है। रथी-के समान सारथीके लिए भी कवच रहता था। रथोंके सम्बन्धमें श्रौर कुछ वातें बताने योग्य हैं। माल्म होता है कि भारती-युद्ध-कालमें रथके दो ही चक्क होंगे। उदाहरणार्थ, द्रोण० अ० १५४ के श्रारम्भमें यह प्रश्न किया गया है कि द्रोणके दाहिने चक्के (एकवचन) की रज्ञा कौन करता था श्रीर वायें (एकवचन) की रचा कौन करता था। प्राचीन समय-के अन्य देशोंके रथोंके जो वर्णन और चित्र उपलब्ध हैं, उनमें दो ही चक्के दिखाये जाते हैं। वाबिलोनिया, खाल्डिया, श्रसीरिया, इजिप्ट श्रीर श्रीस देशोंमें प्राचीन समयमें रथ थे। परन्तु वर्णन यही पाया जाता है कि उन सबके केवल दो ही चक्के थे। इसी प्रकार महाभारतमें भी दो ही चक्रोंके रथोंका वर्णन है। चार चके भी रहते होंगे। इस वातका भी वर्णन है कि घटोत्कचके रथके आठ चक्के थे। घटोत्कचके रथका वर्णन यहाँ देने योग्य है। "उसका रथ चार सौ हाथका था, उसमें घुँघरू लगे थे श्रीर उस पर लाल रङ्गको ध्वजा-पताका फहराती थी। चार सौ हाथ लम्बे-चौड़े रथ पर रीझके चमड़ेका स्रावरण लगा था। उसमें सनेक शस्त्रास्त्र भरे थे। उसमें ब्राट चक्के थे, श्रीर वेगवान् तथा बलवान् सौ घोड़े जुते थे। वड़ी बड़ी श्राँसीवाला उसका एक

सारथीथा। त्राकाशसे टकरानेवाली श्रति प्रचएड ध्वजा उस पर फहराती थी श्रीर लाल मस्तकवाला श्रत्यन्त भयानक गुध-पन्नी उस ध्वजा पर वैठा था। उसका धनुष्य बारह मुंडे हाथ लम्बा था और उसका पृष्ठभाग ठीक एक हाथ था।" इस धर्णनसे साधारण रथकी भी कल्पना की ना सकती है। अन्तर केवल यही है कि उक्त वर्णनमें रथका सव परिमाण राचसोंके लिए बढा दिया गया है। यह बात मालूम नहीं होती कि ध्वजा पर जो चिह्न रहता था वह लकड़ीकी खतन्त्र आकृतिके रूपमें था या ध्वजाकी पताका पर ही खींचा जाता था। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि दोनों रीतियाँ प्रचलित होंगी। यूना-वियोंके किये हुए वर्णनके अनुसार एक सारथीके सिवा कभी कभी रथमें दूसरा सारथी भी रहता था। उसे पार्ष्णि-सारथी कहा है। यह कल्पना होगी कि एकके मरने पर दूसरा उपयोगी हो । ध्वजा श्रौर पताका दोनों भिन्न भिन्न हों। रथसे ध्वजा श्रंलग कर दी जा सकती थी। वर्णन है कि उत्तर-गोग्रहणके समय उत्तरकी ध्वजामें सिंह था श्रीर उसे श्रर्जुन-ने निकालकर शमी वृत्तके नीचे रख दिया था। "ध्वजं सिंहं (सिंहाकार-दीका।) किए के विकास

श्रपनीय महारथः। विक्र किल्ल

प्रिधाय शमीमृलेप्रायादुत्तर-सारिथः॥" (वि० स्र० ४६)

यह वर्णन भी पाया जाता है कि
श्रर्जुनने श्रपने रथके वानर-चिह्नका ध्यान
किया श्रीर उसे रथ पर लगा दिया।
श्रमुक वीरके श्रमुक ध्वज-चिह्नको देख
कर बड़े योद्धाश्रोंका भय होता होगा।

सम्भव है कि साधारण रथ श्राज-कलकी दो चक्रेवाली मामुली गाड़ीके समान हों। परन्तु बड़े बड़े योद्धाओं-

के भी रथ दो चकवाले ही रहते थे। यह वात प्रसिद्ध है कि वैविलोनियन, असी रियन, यूनानी, इजिप्शियन श्रादि पाश्चाल लोगोंके लड़ाईके एथ दो चक्केवाले ही रहते थे। इसी प्रकार भारती लड़ाईके रथ भी दो चक्रेवाले थे। जब मुभे लोक मान्य तिलकका यह मत माल्म हुन्ना कि श्रर्जुनके रथमें दो ही चक्के थे, तब मेंने महाभारतके युद्ध-वर्णनोंको फिरसे ध्यान पूर्वक पढ़ देखा। मेरी राय है कि उन्हीं का मत ठीक है और आजकल अर्जुनके रथके जो चित्र देख पड़ते हैं वे सव गलत हैं। कर्ण पर्वके ५३वें अध्यायमें अर्जुन और संशप्तकके युद्ध-वर्णनमें यह श्लोक है-ते हयान रथचके च रथेषां चापि मारिषा निगृहीतुमुपाकामन् कोधाविष्टाःसमन्ततः १४

इसमें 'रथचके' कहा गया है। संस्कृतमें द्वियचन स्वतन्त्र है, इसिल् हिन्दी या मराठीके समान यहाँ सन्देह नहीं रह सकता। श्रर्जुनके रथको संश् सकोंने घेर लिया था, उसमें दो ही चक्के बताये गये हैं। मालूम होता है कि कर्णके रथमें भी दो ही चक्के थे। द्रोणपर्वके १८६ वें श्रध्यायमें यह स्टोक है—

रथचकं च कर्णस्य वभंज स महाबतः। एकचकं रथं तस्य तम् हुः सुचिरं हयाः एकचकमिवार्कस्य रथं सप्तह्या इव ॥५४

यहाँ इस वातका वर्णन है कि एक चक्रके ट्रट जाने पर भी कर्णके रथकों एक ही चक्के पर घोड़े बहुत समयतक खींच रहे थे; अस्तु; ऐसा मालूम होता है कि बड़े बड़े योद्धाओं के रथों में दो ही चक्के रहते थे; परन्तु प्रश्न यह है कि ऐसे रथों में बहुतसे आयुध और सामान किस प्रकार रह सकते होंगे और ऐसे रथों को नगराकार क्यों कहा है? खैर; लोक मान्य तिलककी समरणशक्ति यथार्थमें प्रशंसनीय है। अनेक वर्णनों से यही बार्व प्रारंसनीय है। अनेक वर्णनों से यही बार्व

तिर्विवाद सिद्ध है कि जहाँ जहाँ रथोंका द्रिप दिया गया है, वहाँ वहाँ चके तो दो ही दिखाई देते हैं, पर घोड़े रहते हैं वार । घोड़ोंके सम्बन्धमें द्विवचनका प्रयोग कहीं नहीं किया गया है । द्रिप में सदा चार वस्तुश्रोंका वर्णन बोड़ोंके स्थान पर किया जाता है। यह भी एक महत्त्वपूर्ण श्रोर कठिन प्रश्न है कि ये घोड़े, पाश्चात्य देशोंके पुराने चित्रोंके श्रवसार, एक ही कतारमें जोते जाते थे या नहीं; क्योंकि दो ही डिएडयोंका हमेशा वर्णन किया गया है । इसके सम्बन्धमें श्रवुमान करनेके लिए जो कुछ वर्णन पाये जाते हैं उनका श्रव विचार करना चाहिए।

विराट पर्वके ४५ वें श्रध्यायमें उत्तर-ने श्रपने रथके घोड़ोंका निम्नलिखित वर्णन किया है:—

द्तिणां यो धुरं युक्तः सुत्रीवसदशो हयः। योयं धुरं धुर्यवहो वामं वहति शोभनः॥ तंमन्ये मेघपुष्पस्य जवेन सदशं हयम्॥२१ योयं कांचनसन्नाहः पार्ष्णि वहति शोभनः। समं शैद्यस्य तं मन्ये जवेन वलवत्तरम्। योयं वहति मे पार्ष्णि द्त्तिणामभितः स्थितः। बलाहकादपि गतः स जवेदीर्घवत्तरः॥२३॥

टीकाकारका कथन है-

पुरः स्थितयोरश्वयोः पृष्ठभागं पाश्चात्यं युगं पार्षिणमिति ।

खैर; इन क्लोकोंसे और टीकासे भी
पूरा पूरा बोध नहीं होता। बहुधा दो
घोड़े सामने जोते जाते थे और उनके
पीछे दूसरे दो घोड़े रहते थे, श्रर्थात्
साधारणतः श्राजकलकी चारघोड़े जोतनेकी रीति ही देख पड़ती है। परन्तु चारों
घोड़े एक ही कतारमें श्रर्थात् दो वाई
और श्रीर दो दाहिनी श्रोर रह सकते
होंगे। पार्षण शब्द यहाँ भी संदिग्ध है।

सौप्तिक पर्वके १३ वें श्रध्यायमें श्रीकृष्णके रथका इस प्रकार वर्णन है— दित्तणामबहुच्छैच्यः सुग्रीवः सन्यतोऽभवत्। पार्षिणवाहौतुतस्यास्तं मेघपुष्पवलाहकौ॥

यहाँ भी वही शक्का शेष रह जाती
है। वनपर्वमें कहा गया है कि एक उदार
राजाने अपने रथके घोड़े एकके बाद एक
निकालकर ब्राह्मणको दान कर दिये
(वन० अ०१६८)। यह बात गृढ़ है कि
उसका रथ तीन घोड़ोंसे या एक घोड़ेसे
कैसे चल सका। यह प्रश्न अनिश्चित ही
रह जाता है। अस्तु; निश्चयपूर्वक मालुम
होता है कि रथके दो ही चक्के रहते थे।
वन० अ०१७२—६ में, इन्द्रके रथ पर
वैठकर अर्जुन निवातकवचसे युद्ध कर
रहा था, उस समय यह कहा गया है कि
व्यगुणहन्दानवा घोरा रथंचके च भारत॥

यहाँ उसके दो ही चक्रोंका वर्णन
है। इसी प्रकार जब श्रीकृष्ण दूतका काम
करनेके लिए गये थे, उस समयके उनके
रथका वर्णन उद्योग पर्वमें किया गया
है। वहाँ भी दो चक्रोंका उन्नेख किया
गया है (श्र० ६३)

सूर्यचन्द्रप्रकाशास्यां चकास्यां समलंकतम् ॥ सारांश, सब बड़े बड़े व्यक्तियोंके

रथोंमें दो ही चक्कों के रहने का वर्णन पाया जाता है। श्रर्थात् निश्चय हो जाता है कि उस समयके रथ दो चक्केवाले ही होते थे। यह साधारण समम कि रथ चार चक्कों के होते थे, ग़लत है। वन पर्वके एक संवादमें यह वाक्य है:—

द्वाविश्वनौद्धे रथस्यापि चके। इससे तो वही बात स्पष्ट होती है। रथ-सम्बन्धी साधारण धारणामें श्रीर भी कुछ भूल देख पड़ती है। रथके भिन्न भिन्न श्रवयवोंके जो नाम पाये जाते हैं उनकी ठीक ठोक कल्पना नहीं की जाती। वे नाम ये हैं— युगमीषां वरूथं च तथैव ध्वजसारथी। श्रश्वास्त्रिवेणुं तल्पंच तिलशोत्यधमच्छरैः॥

इसी प्रकार वनपर्वके २४२ वें श्रध्यायमें 'गिरिक् बरपादां श्रभवेशु त्रि वें सुभावेशु त्रि वें सुभावेशु त्रि वें सुभावेशु त्रि वें सुभावेशु माल्या सो तथा श्रीर कई उल्लेखों से माल्या होता है कि युग, ईषा, कूबर, श्रच, त्रिवेशु, ध्वज, छुत्र, वरूथ, बन्धुर श्रीर पताका रथके भिन्न भिन्न श्रङ्ग थे। इन श्रङ्गों की ठीक ठीक कल्पना नहीं होती। युद्धवर्शनमें 'ध्वज-यप्टिं समालंब्य' यह कथन बार बार देख पड़ता है। श्रथीत्, योद्धा बाण्यिद्ध हो जाने पर ध्वजयप्टिं को पकड़ लिया करता था, इससे वह नीचे न गिरने पाता था। इससे प्रकट है कि यह यप्टि ध्वजाके नीचे रथमें होगी। तब यह बात समक्तमें नहीं श्राती कि यह ध्वजयप्टिं किस तरहकी होगी।

रथियोंका इन्द्रयुद्ध ।

महाभारतमें रथियोंके युद्धका वर्णन अनेक बार किया गया है। ये युद्ध बहुधा इन्द्रयुद्ध होते थे। इन द्वन्द्रयुद्धोंका वर्णन केवल काल्पनिक नहीं है। प्राचीन कालमें यही रीति थी कि दोनों फौजोंके मुख्य सेनापति सामने आते और युद्ध करते थे। आजकलकी नाई पीछे रहनेका नियम नहीं था। सेनापति या विशिष्ट वीर प्रत्यच युद्धमें रणश्रर होते थे श्रीर श्रापसमें खूब लड़ते भी थे। ये सेनापति प्रायः रथी होते थे, इसलिए रथोंका द्वन्द्वयुद्ध प्रायः होता था। इस बातका भी वर्णन किया गया है कि ऐसे समय पर दूसरे सैनिक श्रपना युद्ध बन्द कर देते श्रीर उनकी श्रोर देखते रहते थे। इस प्रकारके ब्रन्द्रयुद्धोंका वर्णन होमरने भी किया है। जब मुठभेड़ लड़ाई ठन जाती, तब दोनी पचके योद्धागण कुछ देरतक ठहरकर प्रसिद्ध योरोंका इन्द्रयुद्ध देखनेके लिए

तैयार रहते थे। ऐसे समय पर, धर्मयुद्धः के नियमानुसार, द्वन्द्वयुद्ध करनेवाले वीरोंको दूसरे लोग मदद न करते थे। धर्मयुद्धके नियमानुसार प्रत्येक मनुष्य किसी दूसरे एक ही मनुष्य पर हमला कर सकता है। जब अन्य प्रकारके युद्ध होते थे तब इन्द्रयुद्ध नहीं होते थे। महा-भारतमें किये हुए इस द्रन्द्रयुद्धके वर्णन का सबसे वड़ा उदाहरण कर्णार्जुन-युद्ध ही है। रथोंके युद्धमें सारथियोंका भी बहुत महत्व था। सम और विषम भूमि देखकर रथका चलाना, ऐसे भिन्न भिन्न स्थानों पर रथको वेगसे ले जाना जहाँसे ठीक निशाना मारा जाय श्रीर रथीको बार बार प्रोत्साहन देना इत्यादि काम सारथीको करने पड़ते थे। दो रथियोमें जब युद्ध शुरू होता तव रथ एक ही स्थान पर खड़े नहीं रहते थे। रथोंका स्थानान्तर वाणोंकी मार टालनेके लिए भी किया जाता था, पर इस बातकी कल्पना ठीक ठीक नहीं की जा सकती। जब कर्णके रथका पहिया गड्ढेमें घुस गया था तब वह उस पहियेको ऊपर खींचने लगा। इस वर्णनसे यह बात माल्म होती है कि इन्द्रयुद्धमें रथ मएडलाकार घूमते थे। श्रव हम इस बातका वर्णन करेंगे कि भारतीयुद्ध-कालमें धर्मयुद्धके नियम कैसे थे श्रीर भिन्न भिन्न प्रकारके बाए कौनसे थे।

धर्मयुद्धके नियम।

कई वाण बहुत छोटे अर्थात् लम्बाईमें वित्ता भर ही होते थे। जब शतु बहुत निकट आ जाता तभी ये वाण उपयोगमें लाये जाते थे। कुछ बाण सीधे छोरवाले न होकर अर्धचन्द्रके समान छोरवाले रहते थे। ऐसे बाणोंका उपयोग, गर्दन काटकर सिरको धडसे अलग कर देनेमें,

कियां जाता था। कुछ वाणोंके छोरमें विष लगा रहता था। यह नियम था कि धर्मगुद्धमें विषद्ग्ध वाणीका उपयोग कभी न किया जाय। आजकलके युद्धोंमें भी सभ्य राष्ट्रोंका यह नियम है कि केलनेवाली गोलियाँ (एक्सपान्डिंग वले-रुस) उपयोगमें न लाई जायँ। अर्थात् ब्राजकल तथा प्राचीन कालके धर्मयुद्धोंमें इसी तत्त्वका अवलम्बन किया गया है कि धर्मका अर्थ दया है। कई वाण कर्णी रहते थे श्रर्थात् उनमें सीधे छोरके स्थान बर दो उलटे सिरे रहते थे। जब शरीरमें घुसा दुश्रा यह बाए बाहर निकाला जाता था तव ये उलटे सिरे जखमको श्रीर भी श्रिधिक बढ़ा देते थे। ये बाग भी धर्मयुद्धमें प्रशस्त नहीं माने जाते थे। महाभारतमें वाणोंकी भिन्न भिन्न प्रकार-की, विशेषतः दस प्रकारकी, गतियोंका वर्णन किया गया है। वाण सामने, तिरछे या गोल जाते थे। यद्यपि धनुष्य-वाणकी कला भारती युद्ध-कालमें बहुत उत्तम दशामें पहुँच गई थी, तथापि यह बात सम्भवनीय नहीं मालूम होती कि बाए गोल अर्थात् वर्तुलाकार चलता हो। वाणोंके सम्बन्धमें इस बातका भी वर्णन किया गया है कि वे अपना काम करके फिरसे चलानेवालेके हाथमें श्रा जाते थे। परन्तु यह भी अतिशयोक्ति है। सम्भव है कि बाण कवचको भेदकर किसीके शरीरमें घुस जाय। परन्तु यह भी देख पड़ता है कि यद्यपि बाग इस प्रकार जीरसे चलाये जाते थे, तथापि योद्धात्रों-की भिन्न भिन्न गतिके कारण वहुत ही नीचे गिरते होंगे श्रीर इसी लिए योदाश्री-को अनेक बाग छोड़ने पड़ते होंगे।

धर्मयुद्धमें यह नियम था कि रथी रथी पर, हाथी हाथी पर श्रीर घुड़-सवार घुड़सवार पर हमला करे। इस

नियमसे सङ्गल युद्धका होना सम्भव नहीं। परन्तु स्पष्ट मालूम होता है कि इन्द्रयुद्धका यह नियम होगा। जो लोग घोड़ों पर बैठे हों वे रथारूढ़ मनुष्यों पर हमला न करें श्रीर रथारूढ़ मनुष्योंको अश्वों पर हमला न करना चाहिए (शां० प० ऋ० ६५)। यह भी नियम था कि दोनों योद्धाश्रोंके शस्त्र एकसे ही हों। दुर्योधनने गदायुद्धके समय कहा था कि मुक्त पर रथसे हमला न करो, गदासे युद्ध करो। यदि प्रतिपत्ती दुःखाकुल स्थितिमें हो तो उस पर प्रहार नहीं करना चाहिए। भयभीत हो जानेवाले पर, परा-जित मनुष्य पर या भागनेवाले पर शस्त्र नहीं चलाना चाहिए। वाण विषतिप्त श्रथवा उलटे काँटेवाला न हो। भारती-युद्ध-कालमें धर्मयुद्धके ऐसे नियम थे। यह भी नियम था कि यदि किसी प्रति-पत्तीके शस्त्रका भङ्ग हो जाय, उसकी प्रत्यश्चा द्रुट जाय, उसका कवच निकल जाय या उसके वाहनका वध हो जाय, तो उस पर प्रहार नहीं करना चाहिए (शान्ति० पर्व श्र० ६५)। युद्धमे जखमी होनेवाले शत्रुको अपने राष्ट्रमें रखकर उसे श्रीषध देना चाहिए। श्रथवा, यह भी बतलाया गया है कि, उसे श्रपने घर पहुँचा देना चाहिए। जखमी शत्रुको, उसका जखम श्रच्छा कर देने पर, छोड़ देना सनातनधर्म है। इन वातोंसे अच्छी तरह देख पड़ता है कि धार्मिक युद्धकी कल्पना प्राचीन समयमें किस दर्जेतक पहुँच गई थी। त्राजकलके सभ्य पाश्चात्य राष्ट्रोंमें भी यही नियम पाला जाता है। गत यूरोपीय युद्धोंमें, इसी नियमके श्रवसार, दोनों पत्तोंके जखमी योद्धागण बड़े बड़े श्रस्पतालोंमें पहुँचा दिये जाते थे श्रीर वहाँ उनके तलमोंका श्रच्छा इलाज किया जाता था। यह देखकर श्राश्चर्य होता है कि भारती युद्ध-कालमें इस द्यायुक्त नियमके श्रमुसार ही कार्य किया जाता था।

राजा धर्म-युद्धके नियमोंका कभी त्याग न करे।शान्ति पर्वके ६५ वें श्रध्यायमें बतलाया गया है कि यदि इन नियमोंका पालन करनेमें राजाकी मृत्यु भी हो जाय तो उत्तम है। परन्तु यह देख पड़ता है कि महाभारत-कालपर्यन्त यह नियम बदल गया था। भीष्मने—

नित्तिप्तरास्त्रे पतिते विमुक्तकवचध्वजे। द्रवमाणे च भीते च तवचास्मीतिवादिनि॥ स्त्रियां स्त्रीनाम धेयेच विकले चैकपुत्रिणि। श्रप्रशस्ते नरे चैव न युद्धं रोचते मम॥

यह कहकर, धर्मयुद्धका जो श्रेष्ठ ध्येय वतलाया है, वह महाभारत-कालमें छूट गया था। कहा है कि उस मन्ध्य पर शस्त्र न चलाया जाय जो सीया हो. तृषित हो, थका हो, अपना कवच छोडने-की तैयारीमें हो, पानी पी रहा हो या खा रहा हो या घास-दाना ला रहा हो। प्राचीन कालमें धर्मयुद्धका यही नियम था। परन्तु महाभारत-कालमें ये नियम बदल दिये गये थे और कृटयुद्ध के नियमों-के अनुसार कार्य किया जाता था। यूना-नियोंने भयभीत आयोंके धर्मयुद्धके सम्बन्धमें यह लिख रखा है कि, युद्ध-के समय किसी जमीन जोतनेवालेका श्रथवा किसी फसलका नाश नहीं होता। युद्धके चलते रहने पर भी किसान लोग श्रपना श्रपना काम मजेमें करते रहते हैं। इससे यह देख पड़ता है कि प्राचीन कालके भारती श्रायोंके धर्मयुद्धसे प्रजा-को कुछ भी तकलीफ नहीं होती थी। परन्तु महाभारत-कालमें कुछ प्रसङ्गों पर इनके विरुद्ध नियम भी वतलाये गये हैं, श्रीर उनके श्रमुसार कार्य भी किया जाता

था। श्रव इसी विषयका विचार किया जायगा।

क्रयुद्ध ।

धर्म-युद्धमें कपट, प्रजाका नाश और श्रशक्त तथा पराजित लोगोंको कष्ट देना इत्यादि वातोंकी मनाही थी। परन्तु कुट युद्धमें इन सव वातोंका प्रवेश होने लगा। शान्ति पर्वके ६६ वें अध्यायमें निम्न लिखित नियम इस बातके दिये गये हैं कि लड़ाईके समय राजाको क्या करना चाहिए। राजाको पहले अपने मुख दुर्गका आश्रय करना चाहिए। अपनी सब गौश्रोंको जङ्गलसे निकालकर रास्ते पर ला रखना चाहिए श्रीर गाँवोंको उजाइ-कर देशको उध्यस्त कर देना चाहिए। गाँवोंमें रहनेवाले लोगोंको मुख्य मुख शहरोंमें ला रखना चाहिए। श्रीमान लोगोंको किलोंमें स्थान देना चाहिए श्रीर वहाँ फौजी पहरा रखना चाहिए। जो माल और सामान अपने साथ न लिया जा सके उसे जला डालना चाहिए। इसी प्रकार घास भी जला दी जाय। खेतोंका अनाज भी जला दिया जाए। नदीके पुल श्रीर रास्तींका विध्वंस कर डालना चाहिए। सव जलाशयोंको तोड़ देना चाहिए श्रोर जो तोडे न जा सके उन्हें विष आदिकी सहायतासे दूषित कर डालना चाहिए। किलेके चारों श्रोर के सब जङ्गलोंको काट डालना चाहिए, वड़े बड़े वृत्तोंकी शाखाश्चोंको तोड डालना चाहिए, परन्तु श्रश्वतथ वृत्तका एक पत्ती भी न तोड़ा जाय। मन्दिरके श्रासपासके वृत्तोंको भी न तोड़ना चाहिए। किले पर शत्र श्रोंको देखनेके लिए ऊँचे स्थान बनाय जायँ श्रीर शत्रश्रों पर निशाना मारने लिए संरचित स्थान तथा छेद बनाये जायै। खाईमें पानी भर देना चाहिए, उसके

अन्दर गुप्त कीलें लगा देनी चाहिएँ और उसमें मगरोंको छोड़ देना चाहिए। किले और शहरसे बाहर जानेके लिए गुप्त मार्ग बनाये जायँ, किलेके दरवाजे पर यम्त्र लगाये जायँ श्रीर शतझो रख दी जाय। यह नहीं बताया जा सकता कि शतभी क्या थी। वहुतेरोंका मत है कि तोप होगी। कई वर्णनोंसे मालूम होता है कि शतधीमें पहिये रहते थे, परन्त कहीं कहीं इस बातका भी वर्णन किया गया है कि शतझी हाथमें रहती थी। (पूर्व समयके वर्णन पर ध्यान देनेसे हमें वेसा माल्म होता है कि यह तोप न होगी।) यह नियम बतलाया गया है कि किलेमें इधन, लकड़ी आदि इकट्टा की जाय, नये कृएँ खोदे जायँ श्रीर पुराने कुश्रोंकी मरम्मत की जाय। जिन घरी पर घास हो, उनपर गीली मिट्टी लीप दी जाय । केवल रातकी ही भोजन पकाना चाहिए । दिनका अग्निहोत्रके सिवा और किसी तरहकी आग न सुलगाई जाय। यदि कोई आग जलावे तो उस-को दंड देना चाहिए। भिचा माँगनेवाले, गाड़ीवाले, नपुंसक, उन्मत्त श्रीर जड़ (पागल) लागोंका शहरके वाहर निकाल देना चाहिए। शस्त्रागार, यंत्रागार, अश्व-शाला,गजशाला, सेनाके निवासस्थानीं और बाइयों पर कड़ा पहरा रखना चाहिए। बराज्यकी रज्ञा करनेवाले नियमोंके साथ हीसाथ शत्रुश्रोंके राज्यका विध्वंस करनेके लिए जो रीतियाँ बतलाई गई हैं, वे भी इसी प्राकर भयंकर हैं। कहा गया है कि श्राग लगानेवाले, विष मिलानेवाले, चोर या डाकू श्रीर जंगली लोगोंको भेजकर पर-राष्ट्रका विध्वंस करना चाहिए। अर्थात्, परराष्ट्रके गाँवोंको जला देना चाहिए, लूट लेना चाहिए ऋथवा पीनेके पानीको विषद्वारा दृषित

चाहिए। खेतोंका श्रनाज काट डालना चाहिए। पेड़ोंको तोड़कर शत्रुकी फौजके हाथियोंको मस्त कर देना चाहिए। शत्रुकी फीजमें भेद या द्रोह उत्पन्न करना चाहिए। ये सव नियम निर्दयतापूर्ण हैं श्रोर पूर्व-कालीन धर्मयुद्धके नियमोंसे बिलकुल उलटे हैं। इन नवीन नियमोंका प्रचार बहुधा युनानियोंकी चढ़ाईके समयसे ही हुन्रा होगा। प्राचीन कालमें श्रार्य-राज्योंके जो युद्ध त्रापसमें होते थे, उनमें केवल चत्रियोंका ही युद्ध होता था; अन्य प्रजा-गणीं तथा कृषकोंको दुःख देनेका विचार राजाश्रोंके मनमें न रहता था। यदि किसी राजाका पराभव भी हो जाय तो उसके राज्यको श्रपने राज्यमें शामिल कर लेनेकी प्रधा न थी। ग्रतएव विजयी राजाको कर कर्म करने तथा परराष्ट्रको बलहीन या उध्यस्त करनेकी इच्छा न होती थी। फलतः भारती-कालमें धूर्मयुद्ध-के नियम बहुत ही श्रच्छे ए कहा गया सिकन्दरके समय यूनानिर ए कहा गया पद्धतिका स्वीकार किया वह श्रवश्य ही श्रपने शास्त्रका यह नियम ता है।" (शांतिपर्व) हो, शत्रुको पराजित नहीं है। महाभारत-युद्धमें सभी बातें न से सेनाका जमाव इसी हिन्दुस्थानियोंने ए सेनाका जमाव इसी हिन्दुस्थानियोंने ए हा होगा। परन्तु भारतीश्रोर तभीसे धर्म इस तरहके जमाव किये
हो गये। श्रा इस तरहके जमाव किये
युद्धोंमें तो श्रम संचालन किया जाता है
श्रोर हजारों में टैक्टिक्स कहते हैं; श्रोर
हत्या करके हायुद्ध की भिन्न भिन्न रणभूमियों श्रयुध्यमाना श्रलग सेनाश्रोंको जुटाने, युद्ध ब्रह्मवित्तररने श्रथवा रोकनेकी रीतियोंको स्त्रियामोषः पतिस्थान पारती युद्ध एक विशेष संश्लेषंच परस्रीभिदी केवल टैक्टिक्सका महभारतमें इस बातका कि रोज सबेरे सेनापतिने

यह बात

मालूम होती है कि इस प्रकारका श्राचरण वे स्वयं श्रपने लोगोंके साथ भी किया करते थे। फिर इसमें श्राश्चर्य ही क्या है कि वे हिन्दुस्थानियोंके साथ इस प्रकारका श्राचरण करते हों। परन्तु यह सब बातें निद्य हैं श्रोर वे भारती लोगोंके युद्ध-में नहीं देख पड़ती थीं। इस स्थानमें कहा गया है कि ऐसा व्यवहार दस्युश्रोंतकको भी न करना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि दस्यु यूनानी ही हैं। यूनानियोंने कूरता श्रोर श्रथमंकी युद्धपद्धति हिन्दुस्थानमें पहलेपहल प्रचलित की; क्योंकि दस्युश्रों-का गुण-वर्णन इस प्रकार किया गया है:— दस्यूनां सुलभा सेना रोद़कर्मसु भारत।

विमानोंके द्वारा आक्रमण।

महाभारतमें विमानोंसे श्राक्रमण करनेका भी वर्णन श्राया है। जब शाल्य राजाने द्वारका पर चढ़ाई की थी. उस ज्ञषत हो, थेर विमानोंसे द्वारकाके ऊपर की तैयारीमें हो, ऋौर वाणोंकी वर्षा की खा रहा हो या घाके पढ़ने पर सौतिकी प्राचीन कालमें अमी स्राता है कि 'ऐसा था। परन्तु महाभाषारतमें न हो। यह बदल दिये गये थे श्रीर है जैसा गत युद्ध-के अनुसार कार्य किया ा लंदन शहर पर नियोंने भयभीत आयंग्द्रहवें अध्यायमें सम्बन्धमें यह लिख रखार्णन इस तरह के समय किसी जमीन ने द्वारका पर श्रथवा किसी फसलका नारातगरीसे सभी युद्धके चलते रहने पर भी कि।ये कि कहीं श्रपना श्रपना काम मजेमें करणता था। इससे यह देख पड़ता है कि स्नौर यंत्र कालके भारती श्रायोंके श्रमीयुर्जी पर मोर्चे को कुछ भी तकली इसरा फेंके हुए तोप-परन्तु महाभारत-काल्हानेके लिए शक्ति-इनके विरुद्ध नियम भी गुँ श्रक्ति-उत्पादक श्रीर उनके श्रमुसार कार्यालोंको चलानेके

लिए श्रंगाकार यंत्र भी थे। शहरमें स्थान स्थान पर गुल्मसंज्ञक भाग पर चढ़े हुए सैनिक शत्रुश्रों पर प्रहार करनेके लिए तैयार थे। यह मुनादी कर दी गई थी कि कोई श्रसावधान न रहे श्रीर मद्यपान भी न करे। नगरीमें रहनेवाले आनर्त देशवासी नट, नर्तक, गवैये बाहर भिजवा दिये गये। नौकात्रोंका श्राना जाना वंद कर दिया गया। चारों श्रोर एक कोसतक सुरंग लगा दी गई। द्वारकाका किला स्वभावतः ही सुरिक्त है: परन्तु राजाके मुहरछाएका श्रनुमितपत्र (पासपोर्ट) लिए बिना न कोई नगरीमें श्रा सकता था और न कोई बाहर जा सकता था। सेनाको आयुध, द्रव्य और इनाम भी दिये गये थे। किसी सिपाहोको सोने श्रीर चाँदीके सिक्कोंके सिवा दूसरा वेतन नहीं मिलता था श्रीर किसीका वेतन वाकी न रह गया था। शाल्वने नगरीको घर लेनेके सिवा सौभनगर प्रर्थात् विमानोंमें वैठकर द्वारका पर चढाई की। उस सौभ नगरमें जो दैत्य वैठे थे वे शहर पर शह चलाने लगे। तव प्रद्युझने लोगोंको धैर्य दिया श्रीर उन सीभी पर वाणोंकी वर्ष की। फिर यथेष्ट संचार करनेवाले सौभ नगरसे नीचे उतरकर शाल्व प्रयुक्ससे युद करने लगा। शाल्व राजाका रथ मायासे वनाया गया था श्रीर सोनेसे मढा हुआ था। इसके श्रागे वर्णन है कि जिस तरह रथियोंमें हमेशा युद्ध होता है, उस तरह शाल्व और प्रयुक्तका इंद्रयुद्ध हुआ यह सौभ विमान ही होगा। उसे दैरवीन वनाया था, इससे माल्म होता है कि वह काल्पनिक होगा। परन्तु यह देखका श्राश्चर्य होता है कि पक्की दीवारों से विर हुए शहरों पर विमानोंसे चढ़ाई कर^{ने की} कल्पना श्राज नई नहीं उत्पन्न हुई है हजारों वर्षोंकी पुरानी है।

सेनाका ज्ञाव और व्युह। श्रभीतक सेनाके भिन्न भिन्न भागों श्रीर लड़ाईके दो भेदोंका अर्थात् धर्मयुद तथा कूटयुद्धका वर्णन हुन्ना है। परन्तु यह जान लेना बड़े महत्वका है कि प्रत्यन युद्धमें सैनिकोंका जमाव कैसे किया जाता था श्रीर युद्ध किस प्रकार होता था। पहले अन्तौहिणीके परिमाणको समभ लेना चाहिए। आजकलके डिवी-जिनसे अचौहिणीकी कल्पना हो सकेगी। जिस तरह जर्मन श्रथवा ब्रिटिश फौजकी संख्या श्राजकल डिवीजिनके परिमाणसे वतलाई जाती है, उसी तरह भारतीयुद्ध-कालमें अचौहिणी नाम प्रचलित था। भारतके प्रारम्भमें ही अन्तीहिणीकी संख्या दी हुई है। "एक गज, एक रथ, तीन बोडे श्रीर पाँच पैदल मिलाकर एक पत्ति होती है। ३ पत्तियोंका एक सेनामुखः ३ मुखोंका एक गुल्म; ३ गुल्मोंका एक गणः ३ गणोंकी एक वाहिनीः ३ वाहिनी-की एक पृतना; ३ पृतनाकी एक चमु; ३ चमुकी एक अनीकिनी और दस अनी-किनीकी एक श्रज्ञौहिणी।" इसमेंके वहु-तेरे शब्द केवल सेनावाचक हैं। हिसाब करने पर सब मिलाकर श्रद्गौहिणीमें २१६७० रथ, उतने ही हाथी ६५६१० घोड़े श्रीर १०६३५० पैदल होते हैं। इसमे रथों श्रीर हाथियोंकी संख्या बहुत ही बड़ी मालूम होती है। श्रारम्भमें पत्तिका जो लच्या बतलाया गया है, उससे यह नहीं माना जा सकता कि युद्धके समय एक रथ, एक गज, तीन अध्व और पाँच पैदलका एक स्वतन्त्र समृह बनाया जाता होगा। अर्थात्, यह नहीं माना जा सकता कि प्रत्येक रथके पास एक हाथी, तीन घुड़-सवार और पाँच पैदल खड़े रहते थे। हाथियोंकी सेना, रथोंकी सेना श्रीर पैदलोंकी सेन भिन्न भिन्न रही होगी।

क्योंकि पहले ऐसा वर्णन आ ही चुका है कि १०, १०० श्रौर १००० सैनिकों पर एक एक श्रधिकारी रहते थे। इससे प्रकट है कि पैदल सेना अलग और अध्व-सेना श्रवश्य श्रलग रही होगी। कुछ राजाश्रोंके पास केवल श्रश्वसेना ही थी। पहले वतलाया जा चुका है कि शकुनीके पास १२००० घुड़सवार थे। इसलिए माल्म होता है कि पत्तिसे लेकर श्रज्ञौहिगीतककी उक्त संख्या, कोष्टक (हिसाव) के लिये और साधारणतः भिन्न भिन्न अङ्गाँका एक दूसरेसे सम्बन्ध दिखलानेके लिए, प्रमाणके तौर पर दी गई है। लड़ाईके समय सेनाको किस तरहसे खड़ा करना चाहिए, यह बात शान्तिपर्वके ६६ वें ऋध्यावमें वतलाई गई है। सेनाके सामने वहुधा हाथी खड़े किये जाते थे। हाथियोंके मध्य भागमें रथ, रथोंके पीछे घुड़सवार और घुड़-सवारोंके मध्य भागमें कवच धारण किये हुए पैदलोंको रखनेके लिए कहा गया है। जो राजा श्रपनी सेनामें इस तरहकी व्यूह-रचना करता है, वह अवश्य ही अपने शत्रुका पराजय करता है।" (शांतिपर्व) यह वर्णन काल्पनिक नहीं है। महाभारत-कालमें रणभूमि पर सेनाका जमाव इसी रीतिसे होता रहा होगा। परन्तु भारती-युद्धके वर्णनमें इस तरहके जमाव किये जानेका उल्लेख नहीं है। लड़ाईके समय सेनाका जो संचालन किया जाता है उसे श्रॅंग्रेजीमें टैक्टिक्स कहते हैं, श्रीर समस्त महायुद्ध की भिन्न भिन्न स्पृण्म्मियों समस्त महायुक्ष का तिस्ति हैं। युद्ध पर श्रलग श्रलग सेनाश्चोंको इहुउटाने, युद्ध जारी करने श्रथवा रोकनेकी रीतियोंको केनी करने हैं। भारती युद्ध एक विशेष स्ट्रेटेजी कहते हैं। भारती युद्ध लड़ाई थी। उसमें केवल टैं किटक्सका ही उपयोग था। महभारतमें इसन बातका वहुत वर्णन है कि रोज सबेरे सेन्।पतिने

श्रपनी सेनाके भिन्न भिन्न विभागोंको कैसे चलाया और समग्र रणभूमि पर युद्ध कैसे शुरू हुआ। परन्तु एक वार व्यह-रचना हो जाने पर सेनाके भिन्न भिन्न विभागोंसे सेनापतिका कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता था। व्यूह-रचना वहुधा प्रातः-काल युद्धके आरम्भमें हुआ करती थी। यह नहीं कहा जा सकता कि फिर यह व्युह आगे कायम रहता था या नहीं। अचौहिणीके परिमाणको देखकर कहना पडता है कि सेनाका फैलाव कई कोसों-तक रहता होगा। यह वर्णन कहीं नहीं पाया जाता कि इतनीं दूर फैली हुई सेनाके श्रिधिपतियोंसे सेनापतितक खबर देने-वाले लोगोंकी श्रेणियाँ थीं। महाभारतमें वर्णित व्युहोंका आकार बहुधा पत्तीका सा देख पड़ता है। यह कल्पना सहजही सुभ सकती थी और सभी समयोंमें सव देशोंमें यही प्रचलित थी। क्योंकि सभी जगह "सेनाकी दोनों भुजात्रोंको पच्च" या "विंग्स" (पंख) कहते हैं । सेनाके ये भाग हमेशा रहते हैं-एक रहता है मध्य-भाग श्रौर दोनों श्रोर दो पच रहते हैं। उनमें थोड़ा थोड़ा श्रन्तर रहता है श्रीर उनको परस्पर एक दूसरेसे सहारा रहता है। भारती युद्धके समयके भिन्न भिन्न सव व्युहोंमें इसी तरहका सैन्यविभाग था। उदाहरणार्थ, पाएडवोंने पहलेही दिन जो कोंचव्यूह बनाया था उसका भी मुख्य भाग ऐसा ही था। पत्तीके शिरस्थानमें द्रुपदे था। नेत्रस्थानमें कुंतिभोज श्रौर चैद्य थे । श्रर्थात् ये तीनों मिलकर सेनाके श्रम्य भागमें थे। श्रन्य लोगोंके साथ युधि-ष्ठिर पृष्ठस्थानमें यानी मध्य भागमें था। धृष्युम्न और भीमसेन पह्नोंके स्थान पर श्रर्थात् दाहिनी श्रीर बाई श्रीर थे। द्रौपदीके पुत्र तथा अन्य राजा लोग दाहिने पत्तकी सहायतामें थे। बांई श्रोरकी सहायतामें

भी अन्य राजा थे। विराट, शैव्य और काशिराज पीछेकी श्रोर थे। इस तरहसे क्रींचारुण-महाव्यूहका जो वर्णन है उसका तात्पर्य यही है कि सेनाके वहीं विभाग किये गये थे जो हमेशा रहते हैं; जैसे अप मध्य दो पच, श्रौर पिछ्वाड़ा। कौरवींकी सेनाका भी विभाग, इसके सन्मुख, इसी तरहसे किया गया था। भीष्म श्रीर दोए श्रम्य भागमें थे । दुर्योधन श्रौर शकुनि मध्यमें थे। भगदत्त, विंद, अनुविंद, शल्य श्रौर भूरिश्रवा वाईं श्रोर थे। सोमदत्ती, सुशर्मा श्रौर कांबोज दाहिनी श्रोर थे। त्रश्वत्थामा, कृप श्रौर कृतवर्मा 'रीयर' में रखवालीमें थे। प्रत्येक दिनके युद्धके श्रारम्भमें ऐसा ही वर्णन मिलेगा। परन्त यह नहीं कहा जा सकता कि युद्ध के गुरू हो जाने पर भिन्न भिन्न पत्तोंमें सामने वालोंका सामनेवालोंसे श्रोर मध्यवालोंका मध्यवालोंसे ही युद्ध होता था। युद्ध के प्रायः रथियोंके इंद्रयुद्धका ही श्रिधिक वर्णन किया गया है। उनका व्यूह-रचनासे विशेष सम्बन्ध नहीं माल्म होता। इसी प्रकारके व्यूह प्रति दिन नये नये नामोंसे बनते थे। उदाहरणार्थ, दूसरे दिन कौरवींने गरुड़-व्युह बनाया था श्रीर पाराडवोंने उसके उत्तरमें श्रर्थचन्द्र व्यूह रचा था। अब यह बतला सकना कठिन है कि कोंचव्यृहमें श्रीर गरुड़व्यूहमें का फर्क था। इन भिन्न भिन्न व्यूहोंका वर्णन दगडनीतिशास्त्रमें है। परनेतु वर्तमान समयकी स्थितिकी भिन्नताके कारण उनका यथार्थ ज्ञान नहीं होता स्रोर उनके युद्धकी रीति भी समक्तमें नहीं आती।

चक्रव्यूहकी कल्पना तो श्रव विलक्ष्ण हो ही नहीं सकती। पहला प्रश्न यही होता है कि द्रोणने जो चक्रव्यूह बनाया था, वह स्वसंरत्त्रणके लिए था या शक्रका नाश करनेके लिए था। यदि वह शक्रके

तारा श्रथवा पराभवके लिए वनाया गया था, तो यह बात निर्विचाद है कि यह काम वकव्युहके द्वारा नहीं हो सकता। श्राज-कत चक्रव्यूहके सम्बन्धमें जो कल्पना प्रचितित है वह भी गलत माल्म होती है। ब्राजकल यह धारणा है कि भ्रममें डाल देनेवाली एक गोल आकृतिका नाम वकव्यूह है। श्रॅंश्रेजीमें इसे लेवरिथ कहते है जिसका अर्थ भूल-भुलैयां ' है। इस प्रकारके लेवरिथ वागीचोंमें बनाये जाते हैं। उनमें एक बार प्रवेश करने पर बाहर निकलना कठिन हो जाता है। यह नहीं माना जा सकता कि द्रोणने इस तरहकी यहरचना की होगी। चक्रका अर्थ रथका पहिया है श्रीर उसी तरहके व्यहके बनाये जानेका वर्णन है। "पहियेके आरोकी जगह पर तेजस्वी राजकुमार खड़े किये गये। खयं दुर्योधन व्यूहके मध्य भागमें थे श्रीर उनके चारों श्रोर कर्ण, दुःशा-सन, कृपाचार्य आदि महारथी वीर थे। सेनाके मुखके पास खुद द्रोणाचार्य थे श्रीर इनके पास सिन्धुपति जयद्रथ था। उनकी वगलमें अश्वत्थामा खड़ा था। दूसरी तरफ गांधारराज, शकुनी, शल्य श्राद् थे।" अर्थात् यह रचना नित्यके सदश थी। यह कहा जा सकता है कि इस चक्रव्यूहकी रचना दुर्योधनकी रचाके लिए की गई थी। मध्यमें द्रोण, बाई त्रोर दोणपुत्र और जयद्रथ तथा दाहिनी श्रोर शकुनी श्रीर शल्य थे। इस समूहके पीछे चक्रन्यूह था। परन्तु इस वातकी कल्पना नहीं हो सकती कि इस चक्रके परिघ पर भौज किस तरह और किसकी खड़ी थी। यहाँ यह भी नहीं वतलाया गया है कि ये मुख खुले थे। हम पहले कह चुके है कि चक्रव्यूहकी ठीक ठीक कल्पना करनेके लिए इससे श्रधिक साधन नहीं है। यह भी मालुम नहीं होता कि इस

ब्यूहमें अकेले अभिमन्युके ही जानेका क्या प्रयोजन था।

हाँ, महाभारतमें पाये जानेवाले संकुल-युद्धके वर्णनमें श्रीर श्राजकलके युद्ध-वर्णनोंमें बहुत कुछ मेल है। संकुल-युद्ध-का प्रायः यह कम था कि रथदलसे रथ-दलका, अध्वसे अध्वका, गजसे गजका और पैदलसे पैदलका युद्ध हो। इसके सिवा रथ भी हाथीवाले पर श्रौर हाथीवाले रथ पर ट्रश्कर उसको चूर कर देते थे। रथी गजारोहियों पर वाण चलाते थे श्रोर पैदलोंको भी तीदण शरोंसे मारते थे। पैदल लोग पैदलोंको गोफन श्रौर फरसे से मारते थे और रथ पर भी आक्रमण करते थे। हाथी पैदलोंको पीस देते थे श्रीर पैदल गजारोहियोंको गिरा देते थे। यह स्पष्ट है कि हाथी श्रीर घोड़े पैदलॉ-की हानि करते थे। तथापि पैदल भी उन पर आक्रमण करते थे। इस तरहके (भीष्म श्र० ५७) संकुल-युद्धोंके वर्णन महाभारतमें श्रनेक हैं । परन्तु श्रन्तिम दिनके युद्धका वर्णन बहुत ही उत्तम है। वह युद्ध वहुत कुछ पानीपतके आखिरी युद्धके समान है। वितक शल्यने आरम्भ-से ही सब लोगोंको द्वंद्रयुद्ध न कर संकुलयुद्ध करनेकी सूचना दे दी थी। अनन्तर भिन्न भिन्न पार्श्वोंका युद्ध मध्योंका युद्ध श्रीर पिछवाड़ोंका युद्ध हुआ। विश्वास रावकी तरह शल्य भी वारह बजेके लगभग गिरा, परन्तु लड़ाई वन्द नहीं हुई ! शक्तीने घुड़सरलेंदोंके साथ पांडवों जत पीछेकी श्रोर श्राक्रमण किया। पास यधिष्टिरने भी उसकी श्रोर सह बनकर घुड़सवारोंके साथ भेजा । दोतनका यह सवारोंके युस्का वर्णन श्रत है। श्रन्तमें कौर प्रक्वीत याद्ये विनयं चापि उनका दल दो छानां प्रतिपत्ति च कत्स्नं च वितर होने ल्यतम्॥

युद्धभूमिको छोडकर गायब हुआ। अस्तुः महाभारतमें संकुलयुद्धके जो वर्णन हैं वे कई श्रंशोंमें श्राजकलके युद्धों से मिलते हैं।

अन्य बातें।

सेनाके साथ साधारण लोगोंकी भी श्रावश्यकता रहती थी। उनका वर्णन उद्योगपर्वके अन्तमें इस तरह है। "सामानोंकी गाडियाँ, व्यपारियों श्रीर वेश्यात्रोंके वाहन, हाथी, घोड़े, स्त्रियाँ, पंग्र आदि निरुपयोगी लोग, द्रव्यकोप श्रीर धान्यकोष श्रादि सामानसे लदे हुए हाथी अपने साथ लेकर युधिष्ठिरकी सवारी चली।" पूर्व कालमें क्या, श्रीर श्रवाचीन कालमें क्या, सेनाके साथ वेश्याएँ रहती ही हैं। केवल इतना ही अन्तर है कि वे आजकलके कड़े नियमों-की अमलदारीमें नहीं रहतीं। इस तरहसे भिन्न भिन्न श्रवयवों श्रौर युद्धोंके भेदोंका वर्णन, महाभारतमें दिये हुए अनेक स्थलों-के वर्णनोंके आधार पर किया गया है। प्राचीन कालकी तथा आजकलकी युद्ध-पद्धति श्रोर शस्त्रास्त्रोंमें वड़ा श्रन्तर हो गया है। इसलिए हमें प्राचीन युद्ध-की कल्पना पूरे तौर पर नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ, युद्धोंके वीरोंका परस्पर भाषण हमें असम्भव मालूम होता है। श्राजकल एक दूसरेकी निन्दा करना श्रीर भ। अपनी शरताकी बड़ाई करना असम्भव द्रुपदे , परन्तु धर्म-युद्धक् नमें वीरोंके पास थे । 🦫 रहनेके कारण रेहि सम्भव था। त्रत्र भाग-गी वर्णन है कि योद्धा लोग एक ष्ठिर पृष्ठस्था अपने अपने नाम सुनाते थे। धृष्टयुम्न श्रीर से खयंवर भूि पर राजाश्री-श्रर्थात् दाहिनी श्र जाते थे सी तरह रस-पुत्र तथा अन्य राजा लोग दाि थे (स्ययंवर-सहायतामें थे। बांई श्रोरकी से यात नहीं।

महाभारत-कालमें श्राजकलकी कवायद न थी । तथापि यहाँसे वहाँ समाचार श्रथवा श्राज्ञा पहुँचानेके लिए घुड्सवार दृत थे। दूतैःशीघाश्वसंयुक्तैः समन्तात् पर्यवारयन्।

(भी० श्र० १२०-२६)

अचौहिणीकी संख्या।

भारती युद्ध-कालमें अज्ञौहिलीकी संख्या सचमुच कितनी थी, इसका विक कुल मेल नहीं जमता। श्रादि-पर्वके श्रार म्भमें उपर्युक्त वर्णनमेंसे कोष्टक रूपसे और श्रॅंकोंमें जो वात वतलाई गई है उससे भिन्न बात उद्योग पर्वके १५५ वें अध्यायाँ दी हुई है।

सेना पंचशतं नागा रथास्तावन्त एव च दशसेना च पृतना पृतना दश वाहिनी॥

इस तरहसे कोष्टक देकर फिर तुर न्त कहा गया है कि सेना, वाहिनी, पृतना, ध्वजिनी, चमू, श्रचौहिणी, वर थिनी सब पर्यायवाची शब्द हैं। परनु वात यहींतक नहीं रही । इसके श्रागे तुरन्त दूसरी गणना दी गई है।

नराणां पञ्चपञ्चाशदेषा पत्तिर्विधीयते।

इसमें, ऋादिपर्वकी तरह, कोएक का प्रारंभ पत्तिसे किया गया है। पर्लु पत्तिका और ही ऋर्थ ५५ मनुष्य बत लाया गया है। आगे ३ पत्तिका सेना मुख, ३ सेनामुखका गुलम श्रीर ३गुलम्ब गण बतलाकर कहा है कि गण वस हजारके होते हैं। यहाँ टीकाकार भी घबरा गया है। तात्पर्य, यही कहन पड़ेगा कि अन्तौहिगी, चमू, आदि प्राची शब्द पाश्चात्य फौजोंकी तरह श्रामी डिवीजन, कोर सरीखे ही ऋनिश्चित थे।

शल्यके लेनानायकत्वमें ऋर्थात् युद्ध अठारहवें दिन कौरवोंके पास ३ करोड़

वेदल श्रीर ३ लाख सवार तथा पांडवों-की श्रोर २ करोड़ पैदल श्रोर १० हजार सवार बाकी थे। (श० श्र० ८) इसी तरह स्त्रीपर्वके श्रन्तमें घर्णन है कि "इस संग्राममें सब मिलकर ६६ करोड़ १ लाख १० हजार मनुष्य मरे।" (स्त्री०

मा वाहरें यह यह श्रीकारण वाहरू

the of property of the first fines

की का हाथोंने स्टामार ने जिल्ला का भी

सम्बद्धिः स्वयुक्ताः हो सर दूर देवीति बयमा सोराह्यसम्बद्धेः सन्त केले. मार्डमारुव्ये अही

पर पाडाका मधान होना सकते हैं। संस्टें हम महासामकाजीय उसीम

a rish se indulty fairs

I ferring to the

the training and the first that the training

श्र० २६) स्पष्ट है कि यह संख्या १= श्रक्षाहिणीकी संख्यासे श्रिथिक है। हम समभते हैं कि सौतिने जानवूभकर श्रन्य स्थलोंके समान इन संख्यात्रोंको भी कूट रखा है। उनका स्पष्टीकरण करना बड़ा ही कठिन है।

हेना काहिए हो उस सर्वा हो राज्य ते कित्रुमान है। से राज्य हो, उस सर्वा हो राज्य ते क्रिक्ट्रमान है

सम्बारको हुए होए थी। यह नियम प्रस् सम्बन्ध राज्य विभावने समीय वह दिया

ALLAND STREET WAS IND

- नी है कि एक का छोत्र है

है। करा अने प्रतिपति अपनित्र करा है। इतकार तेरे राज्यों प्रतिपत्र वीष वा

में जीनवराक होगा। अजादि मी बड़ा प्रि भी लोग अच्छी तरह जीर्ज ब नकुल विराट राजाके पास त नामका "चावुक-सवार बनकर था, तब उसने अपने ज्ञानका यह म किया थाः— अश्वा प्रकृति विश्वि विनयं चापि शाः नां प्रतिपत्ति च कृतस्नं च

ग्यारहकाँ मकरण।

व्यवहार और उद्योग-धन्धे।

करंगे कि महाभारत-कालमें हिन्दुश्वानके व्यापार श्रीर उद्योग-धन्धोंकी
दशा कैसी थी। पहले इस बात पर ध्यान
देना चाहिए कि उस समय हिन्दुस्थानके
जो राज्य थे, उन सबकी राज्य-व्यवस्थाश्रोंमें व्यापार श्रीर उद्योगकी बुद्धिकी श्रीर
सरकारकी पूरी दृष्टि थी। यह विषय एक
स्वतन्त्र राज्य-विभागके श्रधीन कर दिया
गया था। यह देखकर श्राश्चर्य होता है
कि इस विषय पर, इतने प्राचीन कालमें
भी, राज्य-प्रवन्ध-कर्त्ताश्चोंका ध्यान था।
सभा पर्वमें राज्य-व्यवस्थाके सम्बन्धमें
नारदने युधिष्ठिरसे जो मार्मिक प्रश्न किये
हैं, उनमेंसे एक यह भी है कि—

कचित्स्वनुष्टिता तात वार्ता ते साधुभिर्जनैः। वार्तायां संश्रिते नृनं लोकोयं सुखमेधते॥

"वार्तामें सब लोगोंक श्रच्छी तरहसे लग जाने पर लोगोंका सुख बढ़ता है; श्रतपव तेरे राज्यमें वार्ताकी श्रोर श्रच्हें लोगोंकी योजना तो है न्द्रश्थका प्रश्लम वार्ताके सम्बन्धमें । मालूम होत्यका महत्व पूरा पूरा दिख निन्दा करना श्र सारांश श्रर है कि ह करना श्रस्य रान् परन्तु धर्म-युद्धकानमें वीन् उन्नत

पट परन्तु धर्म-युद्धक चमें वीट उनते या । के रहनेके कारण कि सम्प्रीर पूर्व अप्र माग नी वर्णन है कि योद्धा लोहीं है। छिर पृष्ठस्था अपने अपने नाम सुनाते का धृष्ट्यम और से स्वयंवर भूशि पर राजका, अर्थात् दाहिनी के जाते भे स्वर्यक का प्रकार का प्रमात तथा अन्य राजा लोग दार्थित का स्वयं ये सहायतामें थे। बांई ओरकी रत-क स्वयं ये सहायतामें थे। बांई ओरकी रत-क स्वयं ये

वाक्योंमें हुआ है; अर्थात् कृषि, और गौकी रत्ना करना श्रोर व्यापार ही उस समय मुख्य धन्धे थे। व्यापारमें ही 'कुसीह यानी ब्याज-बहुका धन्धा समितित है। हम पहले बतला चुके हैं कि महाभारत कालमें उद्योग-धन्योंके सम्बन्धमें, खेतीके सम्यन्थ्रमें, गोरचाके सम्बन्धमें, यानी समग्र वार्ताके सम्बन्धमें, भिन्न भिन्न प्रन्थ थे। पहले यह भी वतलाया जा चुका है कि धर्मशास्त्रको दगडनीति, अर्थ शास्त्रको वार्ता श्रीर मोचशास्त्रको श्रान्ती विकी कहते थे। दुर्भाग्यवश ये प्रम्थ श्राजकल उपलब्ध नहीं हैं जिसके कारण हमें यह नहीं माल्म होता कि महाभारत कालमें उद्योग-धन्धों और खेती आदिके सम्बन्धमें कहाँतक बढ़ा-चढ़ा ज्ञान था श्रीर इन कामोंमें सरकारसे किस तरह की सहायता मिलती थी । तथापि उन प्रन्थोंसे अवतर्ग लेकर दगडनीति अथवा मोज्ञशास्त्रके मत जैसे महाभारतमें कहीं कहीं दिये गये हैं, वैसे ही महाभारतमें वार्ताके सम्बन्धमें भी कहीं कहीं उत्लेख पाया जाता है जिससे हम इस विषय पर थोड़ासा प्रकाश डाल सकते हैं। इससे हमें महाभारत-कालीन उद्योग धन्धोंको परिस्थितिका कछ अन्दाज हो सकेगा।

खेती श्रीए वागीचे।

महाभारत-कालमें आजकलकी तरह लोगोंका मुख्य धन्धा खेती ही था और आजकल इस धन्धेका जितना उत्कर्ष ही चुका है, कमसे कम उतना तो महाभारत-कालमें भी हो चुका था। आजकल जितने प्रकारके अनाज उत्पन्न किये जाते हैं, वे सब उस समय भी उत्पन्न किये जाते थे। उपनिषदोंमें भी इन अनाजींका उत्लेख पाया जाता है। बृहदार्र्यमें

गगवद्गीताके**।**

बावल, तिल, गेहूँ, ज्वार श्रादिका उह्नेख इश्रा है।

दश ग्राम्यानि धान्यानि भवन्ति ब्रीहियवास्तिलमाषा । श्रणुप्रियंगवो गोधू-माश्च मस्राश्च खल्वाश्च खलकुलाश्च ॥

(तैत्तिरीय ब्राह्मण श्रध्याय =)—(इस केहरिस्तमें चनेका उल्लेख नहीं है।)

खेतीकी रीति श्राजकलकी तरह थी। वर्षाके स्रभावके समय वडे वडे तालाव वताकर लोगोंको पानी देना सरकारका श्रावश्यक कर्तव्य समका जाता था। नारदने य्धिष्टिरसे प्रश्न किया है कि— "तेरे राज्यमें खेती वर्षा पर तो श्रवलंबित नहीं है न ? तूने श्रपने राज्यमें योग्य थानीमें तालाच चनाये हैं न ?" यह चत-लानेकी श्रावश्यकता नहीं कि पानी दिये हुए खेतोंकी फसल विशेष महत्वकी होती थी। उस जमानेमें ऊख, नीलि (नील) श्रीर श्रन्य वनस्पतियोंके रंगेंकी पैदावार भी सींचे हुए खेतेंमें की जाती थी। (बाहरके इतिहासोंसे अनुमान होता है किउस समय श्रफीमकी उत्पत्ति श्रीर खेती नहीं होती रही होगी।) उस समय वड़े वड़े पेड़ोंके बागीचे लगानेकी श्रोर विशेष भवृत्ति थी श्रौर खासकर ऐसे बागीचोंमें श्रामके पेड़ लगाये जाते थे। जान पड़ता है कि उस समय थोड़े अर्थात पाँच वर्षों-के समयमें आम्र-वृत्तमें फल लगा लेनेकी कला माल्म थी।

चूतारामो यथामग्नः पंचवर्षः फलोपगः।
यह उदाहरण एक स्थान पर द्रोणपर्वमें दिया गया है। 'फल लगे हुए पाँच
वर्षके श्रामके वागीचेको जैसे भग्न करें'
इस उपमासे श्राजकलके छोटे छोटे कलमी
श्रामके वागीचेंकी कल्पना होती है।
यह स्वामाविक बात है कि महाभारतमें
खेतीके सम्बन्धमें थोड़ा ही उल्लेख हुश्रा
है। इसके श्राधार पर जो बातें माल्म

हो सकती हैं वे ऊपर दी गई हैं। हम पहले बतला चुके हैं कि किसानोंको सर-कारकी श्रोरसे बीज मिलता था; श्रोर चार महीनोंकी जीविकाके लिए श्रनाज उसे मिलता था, जिसे श्रावश्यकता होती थी। किसानोंको सरकार श्रथवा साह-कारसे जो ऋण दिया जाता था, उसका ब्याज फी सैंकड़े एक रुपयेसे श्रधिक नहीं होता था।

खेतीके वाद दूसरा महत्वका धंघा
गौरत्ताका था। जंगलोंमें गाय चरानेके
खुले साधन रहनेके कारण यह धंघा खूव
चलता था। चारण लोगोंको वेलोंकी
बड़ी आवश्यकता होती थी, क्योंकि उस
जमानेमें माल लाने-ले जानेका सब काम
वैलोंसे होता था। गायके दूध-दहीकी
भी वड़ी आवश्यकता रहती थी। इसके
सिवा, गायके सम्बन्धमें पूज्य बुद्धि रहनेके कारण सब लोग उन्हें अपने घरमें भी
अवश्य प्रालते थे। जब विराट राजाके
पास सहदेध तंतिपाल नामक ज्वाल
बनकर गया था, तब उसने अपने कानका
वर्णन इस तरहसे किया था:—

चिप्रं च गावो बहुला भवंति । न तासु रोगो भवतीह कश्चन ॥

इससे मालूम होता है कि महाभारत-कालमें जानवरों के वारेमें वहुत कुछ ज्ञान रहा होगा। श्रजाविक अर्थात् वकरों-मेड़ों-का भी वड़ा प्रतिपालन होता था। उस समय हाथी और घोड़ों के सम्बन्धकी विद्याको भी लोग श्रच्छी तरह जानते थे। जब नकुल विराट राजाके पास ग्रंथिक नामका "चावुक-सवार बनकर गया था, तब उसने श्रपने ज्ञानका यह वर्णन किया थाः—

श्रश्वानां प्रकृति वेद्यि विनयं चापि सर्वशः। दुष्टानां प्रतिपत्ति च कृतस्नं च विचिकित्सितम्॥ उसने कहाः—में घोड़ोंका लत्त्रण, उन्हें सिखलाना, बुरे घोड़ोंका दोप दूर करना श्रोर रोगी घोड़ोंकी दवा करना जानता हूँ। महाभारतमें श्रश्वशास्त्र श्रर्थात् शालिहोत्रका उल्लेख है। श्रश्व श्रीर गजके सम्बन्धमें महाभारत-कालमें श्रंथ श्रवश्य रहा होगा। नारदका प्रश्न है कि "तू गजस्त्र, श्रश्वस्त्र, रथस्त्र इत्यादिका श्रभ्यास करता है न ?" माल्म होता है कि प्राचीन कालमें वैल, घोड़े श्रोर हाथीके सम्बन्धमें बहुत श्रभ्यास हो चुका था श्रोर उनकी रोग-चिकित्साका भी झान बहुत बढ़ा-चढ़ा था।

तिः प्रस्तमदः शुष्मी षष्टिवर्षी मतंगराद्॥४॥ (अ०१५१)

साठवें वर्षमें हाथीका पूर्ण विकास
अर्थात् योवन होता है और उस समय
उसके तीन स्थानोंसे मद टपकता है।
कानोंके पीछे, गंडस्थलोंसे और गुहादेशमें।
महाभारतके जमानेकी यह जानकारी
महत्वपूर्ण है। इससे विदित होता है कि
उस समय हाथीके सम्बन्धका ज्ञान
कितना पूर्ण था।

रेशमी, सूती और ऊनी कपड़े।

श्रव हम वार्ताके तीसरे विषय श्रर्थात् व्यापारका विचार करेंगे। इसके साथ ही भिन्न भिन्न घन्धोंका भी विचार करेंगे। प्राचीन कालमें माल लाने-ले जानेके साधनोंकी श्राजकलकी तरह, विपुलता न होनेके कारण हिन्दुस्थानके भिन्न भिन्न राज्योंमें ही कम व्यापार रहा होगा। हिन्दुस्थानके वाहर भी कम व्यापार रहा होगा। उसमें भी श्रनाजका श्रायात श्रीर निर्गत व्यापार थोड़ा ही रहा होगा। हिन्दुस्थानमें विशेष क्रपसे होनेवाले पदार्थ ही बाहर जाते रहे होंगे श्रीर बाहरके देशोंसे यहाँ वे ही पदार्थ श्राते

रहे होंगे जो यहाँ उत्पन्न न होते होंगे। यह श्रनुमान करनेके लिए कारण पारे जाते हैं कि भारत-कालमें भी समुद्र द्वारा व्यापार होता था। बाहर जाने वाली वस्तुश्रोंमें सबसे पहला नाम कपाससे तैयार किये हुए सूर्म वस्त्रोंका है; श्राजकल यहाँसे वाहर जानेवाली वस्तुश्रोंमें मुख्य कपास ही है। प्राचीन कालमें कपास हिन्दुस्थानमें ही होती थी। युनानियोंने हिन्दुस्थानकी कपासका वर्णन करते हुए उसे पेड पर उत्पन्न होनेवाला ऊन कहा है। श्रर्थात उन लोगोंने कपासके पौधे हिन्दुस्थानमें ही देखे थे। श्राजकल भी कपास खास-कर हिन्दुस्थान, ईजिप्ट और अमेरिका-में ही होती हैं: ग्रोर ईजिप्ट तथा श्रमे रिकामें हिन्दुस्थानसे ही कपास गई थी। कुछ लोगोंका कथन है कि कपास संस्कृत शब्द नहीं है, वह पहलेपहल मनुस्मृतिमें पाया जाता है। परन्तु इसमें भूल है। यह शब्द महाभारतमें श्रनेक स्थानों पर आया है और हम देख चुके हैं कि महाभारत प्रनथ मन्स्मृतिके पहलेका है। द्राविड भाषामें कार्पासके सहश कोई शब्द नहीं है। यह स्वामाविक है कि जव भारतीय आर्य हिन्दुस्तानमें आये तव उन्हें कपासके पेड दिखलाई पड़े। कदाचित् इसी कारण, चेदान्त प्रन्थमें उनका उल्लेख नहीं है। परनत कार्पास नाम उन्होंने ही रखा है। इसके सिवा कपासका एक पर्यायवाची तुल शब्द है। वह उपनिषदों में भी मिलता है। यूना नियोंके श्रादि इतिहासकर्ता हिरोडोटस श्रीर डिसीश्रसने कपासके बने हुए कपड़ोंका वर्णन किया है। उन्होंने यह भी लिखा है कि हिन्दुस्तानके लोग अनके कपड़े पहनते थे। कपाससे सूत निकाल कर उनसे कपड़े बनानेकी कला हिन्दुः

शानमें अत्यन्त प्राचीन कालसे थी। हमारे 'तुरी' और 'वेम' (स्पिन्डल और लूम) इन पुराने यन्त्रोंके श्रमुकरण पर ब्राजकल विलायत ब्रादि देशोंमें सुधरे हुए यन्त्र बनाये गये हैं। भारतीय तत्त्व-क्वानमें आनेवाले तन्तु और पट शब्द बहुत पुराने हैं श्रीर कपड़े बुननेवाला कोशी या जुलाहा पुराना शिल्पी है। महाभारत-कालमें अतिशय सुदम वस्त्र वनानेकी कला पूर्णताको पहुँच गई थी। इसका प्रमाण यूनानी युन्धोंसे मिलता है। ये महीन कपड़े पर्शिया, श्रीस, रोम, श्रादि स्थानोंमें भेजे जाते थे। इतिहाससे मालम होता है कि रोमन स्त्रियोंको हिन्द-शानके बने हुए महीन कपड़ेंसे बड़ा प्रेम था। महाभारतमें भी कपासके सूचम वस्त्रोंका वर्णन है। राजसूय यहमें युधि-ष्टिरको जो श्रानेक प्रकारके कर दिये गये थे. उनके वर्णनमें कहा गया है कि-

शतंदासीसहस्राणां कार्पासकनिवासिनां। वर्ति चकृत्स्नमादाय भरुकच्छनिवासिनः॥ (सभा पर्व ५१)

भरकच्छ (भड़ोच) में रहनेवाले लोग सूच्म कार्पास-वस्त्र पहने हुई एक लाख दासियोंको कर-स्वरूपमें लेकर आये थे। भड़ोच शहर श्रव भी कपासके लिए प्रसिद्ध है। विटिक वहाँकी कपास हिन्दु-स्तानकी कपासोंमें सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। श्रतएव कपासके सम्बन्धमें भड़ौच-का प्राचीन कालमें वर्णन पाया जाना श्राश्चर्यकी बात नहीं है। भड़ौच नर्मदा नदीका प्राचीन बन्द्रगाह भी था। महा-भारत-कालमें भड़ौचकी तरहके कपासके सूच्म वस्त्रोंके सम्बन्धमें पाएड्य श्रीर चोल देशोंकी भी ख्याति थी श्रीर मद्रास-के पूर्वी किनारेका नाम सूच्म वस्त्रोंके सम्बन्धमें श्राज भी है।

मणिरतानि भाखन्ति कार्पासस्दमवस्त्रकं। चोलपाण्ड्याविषद्वारं न लेभाते ह्युपस्थितौ॥

इस तरहसे हमें महाभारतमें चोल और पाएड्य देशों के सूदम वस्त्रों की ख्याति-का वर्णन मिलता है। द्विणके वन्दर-गाह श्रीर देश (जैसे सूदम कार्पास-वस्त्रों-के लिए प्रसिद्ध थे, उसी तरह उत्तरके देश) ऊनी श्रीर रेशमके सूदम वस्त्र बनाने-के काममें विख्यात थे। ये वस्त्र कई रङ्गोंके, बड़े नरम श्रीर कलाबत्तू मिलाकर बनाये जाते थे। सभापर्वमें राजस्य यज्ञके समय ऐसे वस्त्रोंके नज़रानेके तौर पर श्रानेका वर्णन है।

प्रमाण्रागस्पर्शाख्यंबात्हीचीनसमुद्भवम्। श्रौणीचरांकवं चैव कीटजं पदजं तथा॥ कुटीकृतं तथैवात्र कमलामं सहस्रशः। स्रुच्णवस्त्रमकार्णासमाविकंमृदु चाजिनम्॥

इसमें श्रीर्ण श्रर्थात् उनसे बनाये हुए कपड़ोंका, राकवं श्रर्थात् रंकु मृगके रोएँ-से बनाये हुए कपड़ोंका स्रोर कीटजं श्रर्थात रेशमके कपड़ोंका स्पष्ट वर्णन है। परन्तु पद्जंका श्रर्थ समभ नहीं पड़ता। ये वस्त्र पञ्जाव श्रौर श्रफगानिस्तानकी श्रोर वनते रहे होंगे । चीनसे रेशमी कपडे आते रहे होंगे। शालके लिए पञ्जाब श्रीर काश्मीर श्राज भी प्रसिद्ध हैं। इसमें जो कुटीकृतका वर्णन है, उससे आजकलके पञ्जावमें ऊनसे तन्तु निकाले बिना बनाये जानेवाले वस्त्रोंका ध्यान होता है। कपास, रेशम श्रौर ऊनके मिश्रित धागोंसे वस्त्र बनानेकी कला महाभारत-कालमें प्रचलित थी। इस रीतिसे वस्रोंकी कीमत कम होती है; अतएव ऊपरके स्रोकमें श्रकार्पास विशेषण रखा गया है। भेड़ोंके ऊनके सिवा अन्य जानवरोंके मुलायम रोएँसे भी वस्त्र बनानेकी कला माल्म थी।

श्रीणान् वैलान्वार्षदन्तान् जातरूप-परिष्कृतान।प्रावाराजिनमुख्यांश्च कांबोजः प्रदद्गे बहुन्॥

"श्रीर्णान् श्रर्थात् बकरेके ऊनके, बैलान् यानी विलोमें रहनेवाले जन्तुत्रोंके ऊनके, बिल्लियोंके अनके श्रीर कलावत्त्रके द्वारा सुन्दर बने हुए कपड़े कांबोज राजाने दिये।" महाभारत-कालमें कलावत्त् वनाने-की कला जारी रही होगी स्रोर इसी कारण परदेश तथा खदेशके श्रीमान् लोग हिन्दु-स्थानमें बने हुए पतले, रेशमी, ऊनी श्रीर कपासके वस्त्र पहनते थे। ये कपड़े पर देशमें समुद्रसे श्रौर ख़श्कीकी राहसे जाते थे। विशेषतः स्त्रियोंको इन कपड़ोंकी श्रधिक चाह थी। धनवान स्त्रियोंके लिए महाभारतमे सुद्मकम्यलवासिनी विशेषण प्रायः रखा गया है। इसमें कम्बल शय्दका अर्थ मामूली कम्बल नहीं लेना चाहिए-उससे केवल ऊनी वस्त्र समभना चाहिए। इस विशेषणकी तरह सुद्मकौषेयवासिनी विशेषण भी प्रायः प्रयुक्त हुआ है। इससे मालुम होता है कि स्त्रियोंको बारीक रेशमके पीले कपड़े त्राति-शय प्रिय थे।

कारीगरोंकी सहायता।

इस तरहकें मृत्यवान कपड़े तैयार करनेका मुख्य साधन बहुत बड़ी पूंजी है। यह कारीगरोंको मिल नहीं सकती। उन्हें सरकार अथवा साहूकारके द्रव्यकी सहा-यताकी जरूरत रहा ही करती है। मालूम होता है कि प्राचीन कालमें सरकारसे ऐसी सहायता मिलनेकी पद्धति प्रचलित थी। नारदकी वतलाई हुई अतिशय महत्वपूर्ण और मनोरञ्जक राजनीतिमें इस बातका भी उल्लेख है।

द्रव्योपकरणं कचित्सर्वदा सर्वशिहिपनाम्। चातुर्मास्यवरं सम्यक् नियतं संप्रयच्छसि॥

'हे युधिष्ठिर, तू सब कारीगर लोगोंको ॰द्रव्य श्रीर उपकर्ण श्रर्थात् सामान चार महीनोतक चलनेके योग्य नित्य देता है न ? नारदके इस प्रश्नमें दिखलाया गया है कि सरकारको श्रपनी प्रजाकी उद्योग धन्धे-सम्बन्धी वृद्धिके लिए कितनी खबर-दारी रखनी पड़ती थी। श्रहिल्यावाई महाभारत श्रादि पुराणोंका जो श्रवण करती थी, वह कुछ व्यर्थ नहीं जाता था क्योंकि ऐसा माल्म होता है कि राजनीति का नारदका यह महत्वपूर्ण उपदेश उसके मनमें पूरा पूरा जम गया था। महेश्वरमें सरकारी दुकान खोलकर उसने चीनसे रेशम मँगाकर कारीगरोंको दिलानेकी व्यवस्था की थी। इससे महेश्वरकी कारी-गरीकी दशाका सुधर जाना और वहाँ साड़ियों श्रोर धोतियोंका बहुत बारीक श्रीर सफ़ाईके साथ वनना जगत्प्रसिद्ध इस सरकारी दुकानमें ही रेशमवाले श्रिप्रकारी थे। कचित् अध्यायमें कहा है। गया है कि लोगोंके उद्योगधन्थींक सम्बन्धमें निगरानी रखकर समय समय पर उन्हें सहायता देनेके लिए सरकार अधिकारी नियुक्त करे। सारांश यह है कि महाभारत-कालमें वार्ता अर्थात उद्योग-धन्धोंके उत्कर्षकी श्रोर राजाका पूरा ध्यान रहता था।

रंग।

यह स्पष्ट है कि कपासके, विशेषतः जन श्रीर रेशमके कपड़े बनाने के लिए रङ्गकी कलाका ज्ञान श्रत्यन्त श्रावश्यक था। महाभारत-कालमें हिन्दुस्थानमें रङ्ग की कला पूर्णताकी श्रवस्थाको पहुँच चुकी थी। ये रङ्ग बहुधा वनस्पतियोंसे बनाये जाते थे श्रीर उनके योगसे कपड़ोंमें दिया हुशा रङ्ग स्थिर तथा टिकाऊ होता था। प्राचीन कालमें रंगकी कला कितनी उन्हर्ष्ट

भ्रवस्थामें पहुँच गई थी, इसका पाठकोंको विश्वास दिलानेके लिए यह वतलाना काफी होगा कि एजेन्टाकी गुफाश्रोंमें वित्र बनानेके लिए जो रङ्ग काममें लाये गये हैं वे त्राज हजार वारह सौ वर्षोंके गद भी ज्यों के त्यों चमकते हुए श्रौर तेजस्वी हिखाई पड़ते हैं। माल्म होता है कि यह कला महाभारत-कालमें भी ज्ञात थी। क्योंकि यूनानियोंने भी हिन्दुस्थानकी रङ्ग-की कलाके सम्बन्धमें उल्लेख कर रखा है। उन्होंने यह भी लिख रखा है कि हिन्दु-शानके लोगोंको रँगे हुए कपड़े पहननेका बडा शोक है। इस रंगकी कलाका ज्ञान श्रीर उसकी क्रिया, जर्मन लोगोंके रासा-यनिक रंगोंके आ जानेके कारण, दुर्देव-वश प्रायः भूल गई श्लीर नष्ट्रपाय हो गई है।

सब धातुओं की जानकारी।

श्रव हम यह देखेंगे कि इस कपड़ेके धन्ध्रेके सिवा हिन्दुस्थानके लोगोंको दूसरे किन किन धन्धोंका ज्ञान था। भारतीय श्रायीको महाभारत-कालमे प्रायः धातुश्रोंका ज्ञान था श्रोर उन्हें उनके गुण भी मालूम थे। छान्दोग्य उपनिषद्के चौथे प्रपाठकमें एक महत्वपूर्ण वाक्य है जिससे माल्म होता है कि हिन्दुस्थानके लोगोंको रतने प्राचीन कालमें भिन्न भिन्न धातुत्रोंके सम्बन्धमें अञ्जी जानकारी थी। "जिस मकार सोना चारसे जोड़ा जाता है, चाँदी सोनेसे जोड़ी जाती है, जस्ता चाँदीसे, शीशा जस्तेसे, लोहा शीशेसे, लकड़ी लोहेसे श्रोरचमड़ा लकड़ीसे जोड़ा जाता है।" इस वाक्यसे प्राचीन कालमें भिन्न भिन्न धातुत्रोंके धन्धोंका ज्ञान होना सिद्ध होता है। (उस समय लोहेके काँटे बनाने-का ज्ञान था।) इसी वाक्यकी तरह महा-भारतमें उद्योगपर्वके ३६ वें श्रध्यायमें एक बाक्य है: सुवर्णस्य मलं रूप्यं रूप्यस्यापि मलं त्रपु । ज्ञेयं त्रपुमलंशीसंशीसस्यापि मलं मलम्॥

इसका श्रर्थ ठीक ठीक नहीं वतलाया जा सकता। तथापि महाभारत-कालमें इन सब धातुत्रोंकी प्रक्रिया कारीगरोंको माल्म रही होगी। उस ज़मानेमें हिन्दु-स्थानमें सुनारोंका धन्धा श्रच्छा चलता था। उस समय यहाँ सुवर्णकी उत्पत्ति वहुत होती थी। हिन्दुस्थानके प्रायः सब भागोंमें सोनेकी उत्पत्ति होती थी। हिमा-लयके उत्तरमें वहुत सोना मिलता था। उत्तर हिन्दुस्थानकी नदियोंमें सुवर्णके कण वहकर आते थे। द्विणके पहाड़ी प्रदेशोंमें सोनेको बहुतसी खानें थीं श्रीर श्रव भी हैं। सभापर्वके ५१ वें श्रध्यायमें युधिष्टिरको भिन्न भिन्न लोगोंसे जो नज-राने मिलनेका वर्णन है उसमें बहुधा सोनेका नाम त्राता है। विशेषतः चोल श्रीर पांड्य नामक दक्षिणी मुल्कोंके राजाश्रोंसे कांचनके दिये जानेका उल्लेख है। हिमालयकी श्रोरसे श्रानेवाले लोगोंने भी सोना दिया था। इनमेंसे एक वर्णन तो वडा ही मनोरअक है।

खसाः एकासनाः हार्हाः प्रदरादीर्घवेणवः। पारदाश्च कुलिदाश्च तंगणाः परतंगणाः॥ तहैपिपीलिकं नाम उद्धृतं यत्पिपीलिकैः। जातक्षपं द्रोणमेयमहार्षुः पुञ्जशोनृपाः॥ (सभापर्व ५२)

हिमालयके उस पार रहेनेवाले खस श्रादि तक्षण श्रीर परतक्षण लोग भी एक प्रकारका सोना लेकर युधिष्ठिरको नजर करनेके लिए श्राये थे। यह सोना कुछ भिन्न प्रकारका था। उसे जातरूप कहते थे। उसके मिलनेका वर्णन भी श्रत्यन्त भिन्न प्रकारका है। उस सोनेके कर्णोंको पिपीलिका श्रर्थात् च्यूँटियाँ श्रपने बिलोंसे वाहर निकालकर इकट्ठा किया करती

थीं । वे कण छोटी छोटी थैलियोंमें भरकर लाये जाते थे । यह सोना वे लोग युधिष्ठिरको नजर करनेके लिए एक द्रोण (एक पुरानी नाप) लाये थे। इसी कारणसे उस सोनेका पिपीलिक नाम था। यह बात भूठ नहीं मालूम होती, क्योंकि मेगास्थिनीज़ और सिकन्दरके साथ श्राये हुए ग्रीक इतिहासकारोंने इसी वातको कुछ श्रतिशयोक्तिके साथ लिख रखा है। "ये च्यूँटियाँ कुत्तोंके समान बड़ी होती हैं। वे सोनेके कणोंको श्रपने पैरोंसे घसीटकर बाहर ला रखती हैं। यदि कोई मनुष्य उस सुवर्ण-राशि-को लेनेके लिए जाय तो वेउस पर श्राक-मण करके उसके प्राण ले लेती हैं। अत-एव लोग सिर पर कम्बल श्रोहकर. रात्रिके समय, गुप्त रीतिसे जाकर, इस स्वर्णकणकी राशिको ले आया करते हैं।" यह वर्णन श्रतिशयोक्तिपूर्ण है। परन्त यह बात निर्विवाद है कि तिब्बतकी श्रोर हिमालयके समधरातल पर बिलकुल भु-पृष्ठके पास सुवर्णकण बहुतायतसे पाये जाते थे श्रीर इन कर्णोंको एक प्रकारके जन्त जमीनमेंसे खोदकर ऊपर ला रखते थे। यह बात तिब्बतमें श्राजकल भी कई स्थानोंमें दिखाई पडती है। इन सुवर्ण-कर्णोंको तङ्गग आदि तिब्बती लोग छोटी छोटी थैलियोंमें भरकर हिन्दुस्थानमें ले श्राया करते थे। पर्शियन लोगोंको हिन्दु-श्यानके एक हिस्सेसे जो कर दिया जाता था वह इन्हीं सुवर्णकणोंसे भरी थैलियों-में भेजा जाता था।

यह सच है कि हिमालयके आगे और नदीकी रेतमें सुवर्णरज मिलते थे और इस तरहसे निर्मल सोना अनायास मिल जाता था। तथापि यह बात भी नीचेके श्लोकसे स्पष्ट मालूम होती है कि महा-भारत-कालमें पत्थरकी खानोंसे सुवर्ण- मिश्रित पत्थरोंसे सोना निकालनेकी कला विदित थी।

श्राप्युनमत्तात्प्रलपतो वालाञ्च परिजल्पतः। सर्वतः सारमाद्द्याद्श्मभ्य इवकांचनम्॥ (उद्योगः ३४)

प्राचीन कालमें पत्थर तोड़कर और उसकी वुकनी बनाकर भट्टीमें गलाकर सोना निकालनेकी कला प्रसिद्ध रही होगी श्रर्थात् उस जमानेमें सुनारीकी कला श्रच्छी उन्नत दशामें पहुँच चुकी थी। सुवर्णके तो अनेक भूषणांका वर्णन है। परन्तु महाभारतमें तलवार, सिंहासन चौरङ्ग, ज़िरहवस्तर आदि भिन्न भिन्न शस्त्रों पर सुवर्णके काम किये जानेका वर्णन भी पाया जाता है। वरिक सुवर्णसे भूषित किये हुए रथ और घोड़ोंके सामान का भी वर्णन मिलता है। इससे सिंड होता है कि सुनारीका काम वड़ी कुए लताके साथ होता था। उसी तरह लुहाएँ का धन्धा भी पूर्णावस्थाको पहुँच चुका था। प्राचीन कालमें लोहेसे फौलाद बनाने की कला भी श्रवगत थी। किंवहुना, उप निषदों में भी फौलाद अथवा कार्गायस का उल्लेख पाया जाता है। इसका उप योग शस्त्रोंके लिए किया जाता था। नह काटनेकी छोटीसी नहरनीसे लेका तलवारतक धारवाले हथियार फौलादक ही बनाये जाते थे। लहार लोग तलवार भाले, बाग, चक, जिरहवस्तर, बाहु भूषण, गदा आदि लोहे और फौलाद के हथियार बनाते थे। यह लोहा पूर्वके देश में विशेष रीतिसे होता था, क्योंकि वहाँकी लोग जो कर या नज़राना दिया करते थे उसके वर्णनमें इन हथियारीका उन्ने किया गया है। इसके सिवा हाथीदाँत काम करनेवाले बहुत ही निपुण थे। लिखा है कि नाना प्रकारके कवच, हिंग यार, ब्याझास्त्ररसे त्राच्छादित एवं सु^{व्ही}

ति रथ, तथा नाराच, श्रधं नाराच श्रादि वाण श्रीर श्रन्य श्रायुध रखे हुए रथ, हाथीकी चित्र-विचित्र भूलें श्रादि रूव्य लेकर पौर्वात्य राजाश्रोंने युधिष्ठिरके रक्ष-मण्डपमें प्रवेश किया (सभापर्व श्र० ११)। यह विदित ही है कि पूर्वके देशोंमें श्रव भी लोहेकी खानें हैं। हाथीदाँतके काम पूर्व श्रीर दिल्लाकी श्रोर उत्तम होते थे श्रीर इस समय भी होते हैं।

रता।

श्रव हम हीरे श्रीर मोतीके सम्बन्ध-मं विचार करेंगे। प्राचीन कालमें हिन्द-शानसे वाहर जानेवाली मृत्यवान् वस्तश्रोंमें, सोनेकी तरह ही, रत श्रीर मोती भी मुख्य थे। रत्न श्रीर मोती द्विणी पहाडोंमें श्रोर सिंहलद्वीपके निकटवर्ती समुद्रमें पहले पाए जाते थे श्रीर श्रव भी मिलते हैं। दिच्याके गोलकुएडामें हीरे-की खान अवत कमशहर है। पहले दिए हुए श्लोकके अनुसार चोल और पाएडचं देशोंके राजा लोग— "मिरिदलानि भाखन्ति" चमकनेवाले हीरे नज़राना लेकर आये थे। इसी तरह हिमालयके पूर्वी भागमें भी भिन्न भिन्न रत पाये जाते थे। महाभारत-कालमें ऐसा माना जाता था कि हिमालयके शेष भागों में रत नहीं मिलते। ऐसा होनेका कारण भृगुका शाप कहा जाता है (शां० अ० ३४२) श्रीर यह धारणा श्राजभी ठीक पाई जाती है। लिखा है कि प्राक्ज्योतिषके राजा भगदत्तने युधिष्ठिरको रत्नोंके अलङ्कार श्रौर युद्ध हाथीदाँतकी मूठवाले खड्ग नज़र किये थे। वर्तमान श्रासाम ही प्राक्ज्यो तिष है। यहाँ लोहे, हाथीदाँत श्रीर रत्नी-की उपज होती थी। प्राचीन कालसे श्राज-तक पाएड्य और सिंहलद्वीपके किनारे पर मोतीकी उपज होती है।

समुद्रसारं वैदूर्यं मुक्तासंघास्तथेव च। शतशश्च कुथांस्तत्र सिंहलाः समुपाहरन्॥

सिंहल देशसे जो नज़राने आये थे उनका वर्णन इस स्थोकमें अन्तरशः सत्य है। समुद्रसे उत्पन्न होनेवाले मोती, मूँगे और वैदूर्य जितने विख्यात हैं, उतने ही 'कुथ' भी यानी एक विशिष्ट प्रकारकी घाससे बनी हुई चटाई आज-तक विख्यात है। प्राचीन कालमें हिन्दु-स्थानमें हीरे आदि भिन्न भिन्न रहीं और मोतियोंकी उपज होती थी और उनका विदेशोंमें व्यापार होता था । इस कारण उस जमानेमें हिन्दुस्थान सुवर्णभूमिके नामसे प्रसिद्ध हो गया था श्रीर प्रत्येक देशको इस देशके वारेमें आध्यर्य और लालसा होती थी। कई यूनानी इतिहास-कारोंने लिखा है कि परदेशोंके लोग हिन्द्रस्थानके मोतियोंके लिए केवल मूर्खतासे मनमाना मृल्य देते थे।

वास्तुविद्या (इमारतका काम)।

श्रव हम वास्त्विद्याका विचार करेंगे। इस वातका विचार करना चाहिए कि महाभारत-कालमें भिन्न भिन्न घरों और मन्दिरोंके बनानेकी कला किस स्थितिमें थी। भारती-कालमें पत्थरोंसे उत्कृष्ट काम करनेकी शिल्पकलाका उन्नत श्रवस्थामें होना नहीं पाया जाता । इस कलामें श्रीक लोग बहुत ही बढ़े-चढ़े थे। जिस समय प्रीक लोग हिन्दु शानमें आये उस समय उन्हें उत्तम इमारतोंका काम यहाँ दिखाई नहीं पड़ा। हिन्दुस्थानमें प्राचीन कालमें प्रायः लकड़ी श्रौर मिट्टीके मकान थे। दुर्योधनने पाएडवोंके रहनेके लिए जो लाचागृह बनवानेकी श्राज्ञा दी थीं, उसमें लकड़ी श्रौर मिट्टीकी दीवार बनानेको कहा गया था। इन दीवारोंके भीतर राल, लाख श्रादि ज्वालाग्राही

पदार्थ डाल दिये गये थे और अपरसे मिट्टी लीप दी गई थी। जब पाएडवीं सरीसे राजपुत्रोंके रहनेके लिए ऐसे घर बनानेकी श्राज्ञा दी गई थी तव यही बात हढ़ होती है कि महाभारतकालमें बड़े लोगोंके घर भी मिट्टीके होते थे। पांडवींके लिए मयासुरने जिस सभाका निर्माण किया थो, उसका वर्णन पढ़नेसे वह सभा प्रायः काल्प^{क्}निक दिखाई पड़ती है। परन्तु इस तर्इसे श्रनुमान करनेकी कोई श्रावश्यकता नहीं। मय श्रमुर था। इससे मालूम होता है कि महाभारतकालमें लोगोंकी यही धारणा थी कि तरहकी बड़ी बड़ी इमारतोंके बनवानेका काम ग्रसुर श्रथवा पारसी श्रीर पश्चिमके देवनीं द्वारा ही उत्तम रीतिसे हो सकता था। मयासुरके द्वारा चनाई हुई युधिष्ठिरकी सभाके सम्बन्धमें यह तर्क किया गया है कि, पाटलिपुत्रमें चन्द्र-ग्रमके लिए एक श्रोनेक स्तंभकी बनी हुई इमारतकी कल्पनासे सौतिने युधिष्टिरके लिए सहस्रों स्तंभवोली इस सभाकी कल्पना कर ली होगी। हालमें पाटलि-पुत्रमें खुदाईका काम करके प्राचीन इमा-रतों को दूँढ़ निकालनेका जो प्रयत्न किया गया था उसमें चन्द्रगुप्तकी अनेक स्तंभ-वाली सभाके अवशेषका पता लगा है। बुद्धिमानोंने श्रनुमान किया है कि दरा-यस नामक पर्शियन वादशाहने पर्सि-पुलिसमें जो स्तंभगृह वनवाया था, उसी नमूने और लम्बाई-चौड़ाईका सभागृह चन्द्रगुप्तने पाटलिपुत्रमें श्रपने लिए बनवाया था। पर्शियन बादशाहका पर्सि-पुलिसमें बनवाया हुआ सभागृह आजतक ज्योंका त्यों खड़ा है। वह एक अतिशय दर्शनीय इमारत है। हमने किसी स्थानमें कहा है कि चन्द्रगुप्तने श्रपने साम्राज्यमें बद्दतसी बातें पर्शियम साम्राज्यसे ली

थीं। उसी तरह वादशाहके लिए एक प्रचएड सभागृह बनानेकी कल्पनाभी उसे पर्शियन बाद्शाहके अनुकर्णसे स्मी थी। दिल्लीके दीवाने-आममें भी यहां कल्पना पाई जाती है। चन्द्रगुप्तकी स्म सभाके प्रत्यच उदाहर गुसे महाभारतकार ने कदाचित् युधिष्टिरकी सभाकी कल्ला की हो तो असम्भव नहीं। और, जब हम देखते हैं कि उस सभाका बनानेवाला मयासुर था, तब तो उस सभाका सम्बन्ध पर्शियन वादशाहकी सभासे जा पहुँचता है। इस समाका यहाँ संचित्र वर्णन के लायक है। "सभामें अनेक स्तंभ थे: उन्हें स्थान स्थान पर सुवर्णके वृत्त निर्मित कि गये थे। उसके चारों तरक एक वडा परकोटा था। द्वार पर हीरे, मोती श्राह रस्नोंके तोरण लगाये गये थे। समाजी दीवारमें अनेक चित्र बनाये गये थे और उनमें अनेक पुतले बैठाये गये थे। समार्थ भीतर एक ऐसा चसत्कार किया गया श कि समाके बीचमें एक सरावर वनका उसमें सवर्िके कमल लगाये गये थे और कमललताके पत्ते इन्द्रनील मिणिके बनाये गये थे तथा विकसित कमल पद्मरागमणि के बनाये गये थे। सरोवरमें भिन्न भिन्न प्रकारके मिण्योंकी सीढ़ियाँ बनाई गी थीं। उस जलके संचयमें जलके सानग जमीनका भास होताथा। वगलमें मणिमण शिलापद होनेके कारण पुष्करणीके किना खड़े होकर देखनेवालेको ऐसा माल होता था कि आगे भी ऐसी ही मिण्मण भूमि है; परन्तु त्रागे जाने पर वह देखें वाला पानीमें गिर पड़ता था (सभा^{प्री} अ०३)। इसके आगे यह भी वर्णन किंग गया है कि जहाँ दीवारमें दरवाजा दिखा देता था वहाँ वह नहीं था क्रोर जहाँ नहीं दिखाई देता था वहाँ द्रवाजा वना रही था। ऐसे स्थानमें दुर्योधनको भ्रम है

गया श्रोर वह घोला खा गया।" एक जगह स्फटिकका स्थल बनाकर उसमें यह बतुराई की गई थी कि वहाँ पानीके होने-का भास होता था। दूसरी जगह स्फटिक-के एक होज़में शंख सरीखा पानी भरा हुआ था। उसमें स्फटिकका प्रतिविम्य वड़नेके कारण ऐसा माल्म होता था कि वहाँ पानी बिलकुल नहीं है। एक स्थानमें दीवार पर ठीक ऐसा चित्र खींचा गया धा जिसमें एक सचा दरवाजा खुला हुआ देख पड़े । वहाँ मनुष्यका सिर रकरा जाता था। दूसरी जगह स्फटिक-का दरवाजा वंद दिखाई पड़ता था, परन्त यथार्थमें वह दरवाजा खुला था (सभापर्व अ० ४७)। यह वर्णन पर्शियन बादशाहकी पर्सिपुलिसवाली सभाके श्राधार पर नहीं किया गया है । इसकी कल्पना नहीं की जा सकती कि यह वर्णन कहाँसे लिया गया है। फिर भी निश्चय-पूर्वक माल्म होता है कि ये सब वातें सम्भव हैं। यह भी कहा गया है कि इस समाका सामान असुरोंकी संभासे लाया गमा था। हिमालयके आगे बिंदुसरोवर-के पास वृष्पर्वा दानवकी एक वड़ी भारी सभा गिर पड़ी थी। उसमें कई प्रकारके स्तंभ, नाना प्रकारके रत्न, मंदिर रँगनेके लिए चित्र-विचित्र रंग श्रीर भिन्न भिन्न प्रकारके चूर्ण थे। इस वृषपर्व-सभाका काम समाप्त होने पर बचे हुए सामानको मयासुर अपने साथ ले आया और उसीसे उसने सभा तैयार की। चूर्ण अर्थात् चूना कई तरहका बनाया जाता है। एक प्राचीन मराठी यंथमें पानी सरीखे दिखाई पड़ने-वाले चूनेके बनानेकी युक्ति लिखी है। हमें तो युधिष्ठिरकी सभाकी सब बाते सम्भव माल्म होती हैं। यह स्पष्ट कहा गया है कि उसके बनानेवाले कारीगर पर्शियन देशके, अर्थात् असुर, थे। इस बातका

प्रत्यच्च अनुमान करनेके लिए साधन नहीं है कि महाभारत-कालके पहलेकी इमारतें, पत्थरके पुतले आदि कैसे बनाये जाते थे और तत्कालीन शिल्पकला कहाँतक उन्नत दशाको पहुँच चुकी थी।

च्यापार।

उद्योग-धंधींका विचार हो जानेपर श्रव हमें व्यापारका विचार करना चाहिए। पूर्व कालसे वैश्य लोग व्यापारका काम करते थे और अब भी वे करते हैं। भगव-हीतामें कहा गया है कि वैश्योंका काम वाणिज्यभी है । भिन्न भिन्न देशोंसे भिन्न भिन्न वस्तुश्रोंको खरीदकर लाने श्रौर यहाँ-की वस्तुको परदेश ले जाने श्रादिके लाभ-दायक कामोंको बहुतेरे वैश्य करते थे श्रीर खेती तथा गौरत्ताके धंधोंको भी वे ही करते थे: परन्तु श्रव वैश्य लोगोंने इन्हें छोड़ दिया है। यह पहले बतलाया जा चुका है कि हिन्दुस्थानके ही किसी दूसरे भागमें माल लाने-ले जानेके साधन पूर्व कालमें वैलोंके टाँड़े थे। महाभारतमें एक दो स्थानी पर गोमी (वंजारे) लोगोंकी हजारों वैलोंके टाँड़ोंका वर्णन किया गया है। ये गोमी लोग किसी राजाकी श्रमल-दारीके अधीन नहीं रहते थे। जंगलोंमं रहनेकी श्रादत होनेके कारण वे मज़वृत श्रौर स्वतंत्र वृत्तिके होते थे। श्रौर इसी सबबसे वे कभी कभी राजा लोगोंको कष्ट भी दिया करते थे। महाभारतमें एक जगह कहा गया है कि राजा लोगोंको ध्यान रखना चाहिए क्योंकि इन गोमी लोगोंसे उन्हें भय है। वे कभी कभी लूटमार भी करते थे। उनके द्वारा माल भेजनेमें कभी कभी धोखा भी होता था। महाभारतमें कहा गया है कि राजात्रोंको राज्यके मार्गोंको सुरितत रखनेकी खबरदारी रखनी चाहिए। यह निर्विवाद है कि खुश्कीकी राहकी तरह मालका लाना-ले जाना नदी श्रीर समुद्रके द्वारा भी होता था। इसका बहुत वर्णन नहीं है, परन्तु महाभारतके श्रनन्तरकी मनस्मृतिमें समुद्रके द्वारा माल लाने-ले जानेके सम्बन्धमें विस्तारपूर्वक वर्णन है। समुद्रके द्वारा माल भेजनेमें वडा धोखा रहता है। ग्रतएव ऐसी श्रित-में समुद्रके पार-देशोंमें माल भेजते समय उसके सम्बन्धमें दिये हुए कर्जके व्याजके बारेमें मनुस्मृतिकी श्राज्ञा है कि सदैवकी श्रपेता श्रधिक व्याज लेना चाहिए क्योंकि पेसे व्यापारोंमें डर भी श्रधिक है श्रीर लाभ भी। यह पहले वतलाया जा चुका है कि सदैवके व्याजकी दर प्रतिमास फी सैंकडे एक रुपया थी। इस वर्णनसे सिद्ध होता है कि महाभारत-कालमें समद-पारके देशोंसे व्यापार होता था।

महाभारतकालीन देनलेनका विचार करनेसे अनुमान होता है कि इस सम्बन्धमें लिखापढ़ी भी की जाती थी। यूनानियोंने लिखा है कि हिन्दुस्थानके लोग दस्तावेजों पर साची श्रथवा महर नहीं कराते। श्रतएव लिखापढ़ी तो अवश्य होती रही होगी। ध्याज-बद्देका काम करना ब्राह्मणोंके लिए निन्च समभा जाता था। क्योंकि यह स्पष्ट है कि ऐसे मनुष्योंको निर्दय होना पड़ता है। व्यापारकी वस्तुश्रोंमें वारीक सुती श्रीर रेशमी कपड़े, रत्न, हीरे, पुखराज, माणिक और मोती थे। परन्तु इसका वर्णन नहीं है कि इनके सिवा सुगन्धित मसालोंके पदार्थ भी व्यापारमें आते थे श्रीर विदेशोंमें जाते थे श्रथवा नहीं। श्राजकल पाश्चात्य देशोंमें इन्हीं पदार्थींके बारेमें हिन्दुस्थानकी वड़ी ख्याति है, परन्तु महाभारतमें उनके उल्लेख होनेका प्रसङ्ग नहीं श्राया । इतिहाससे मालूम होता है कि महाभारत-कालमें भी पश्चिमी किनारेसे श्रीक श्रीर श्ररव लोगोंका

व्यापार होता था। इससे यह मान लेने. में कोई हर्ज नहीं कि प्राचीन कालमें भी इन वस्तुश्रोंका व्यापार होता था। श्रनाज विदेशोंको नहीं भेजा जाता होगा, क्योंकि पहले तो उसके सस्ते होनेके कारण उसको ले जानेके लायक प्राचीन कालमें वड़े वड़े जहाज न थे; श्रीर फिर अन्य देशोंमें उसकी श्रावश्यकता भी न थी। सभी जगहोंमें लोक-संख्या कम होनेके कारण प्रत्येक देशमें श्रावश्यकताके श्रा रूप श्रनाजकी उपज होती ही थी। इसके सिया हिन्दुस्थानमें भी जङ्गल वहुत थे: श्रतएव केवल श्रावश्यकताके श्रनुसार श्रनाज उत्पन्न होता होगा। यहाँसे श्राज कलकी तरह श्रनाज श्रथवा श्रन्य कवा माल नहीं भेजा जाता था। प्राचीन हिन्दुः स्थान कचे मालका निर्गत न कर पका माल ही बाहर भेजता रहा होगा। बल्कि यह स्थिति सभी देशोंकी थी।।

हिन्दुस्थानमें दास अथवा गुलाम नहीं थे।

अव खेतीके सम्बन्धमें कुछ और विचार किया जायगा। यह एक महतः का प्रश्न है कि पूर्व कालमें दास थे या नहीं। प्राचीन कालमें शारीरिक परिश्रम के काम बहुधा दासोंसे करानेकी प्रधा सभी देशोंमें थी। उसी तरह कदाचित् वैदिक कालमें हिन्दुस्थानमें भी थी। लड़ाईमें जीते हुए लोग ही दास होते थे। वैदिक कालमें यहाँके मूल निवासियों को दास कहा है; श्रौर ये लोग जीते ही गये थे। श्रन्तमें इसी वर्गका शृद्र वर्ण वना श्रौर शूद्रोंका विशिष्ट धन्धा जेता श्रायों श्रधांत् त्रिवर्णकी सेवा करना निश्चित हुश्रा। भगवद्गीतामें "परिचया त्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।" कही गया है। इसके सिवा, भारती-युद्ध कालम

मालूम होता है कि, जीते जाने पर आर्थ तोग भी दास होते थे। चाहे यह जीतना युद्धमें हो श्रथवा चृतमें। चूतमें जीतना इस प्रकार होता था कि जब कोई श्रादमी वयं श्रपनेको दाँच पर लगाकर हार जाता तो दास वन जाता था। जव पाएडव स्वयं श्रपनेको दाँच पर लगाकर हार गये तव वे ह्योंधनके दास हो गये। इस तरहके वाँव लगानेकी प्रथा महाभारत-कालमें भी रही होगी । क्योंकि मृच्छकटिकमें भी ऐसा होनेका वर्णन है। युद्धमें जीतकर शत्रको मार डालनेकी अपेचा उसे दास बना लेनेकी प्रथा बहुत कम रही होगी। वन पर्वमें कथा है कि भीम जयद्रथको जीतकर श्रीर वाँधकर लाया श्रीर यह संदेशा भेजा—"द्रौपदीको खबर दे दो कि इसे पाएडवोने दास बना लिया है" (वन पर्व अ० २७२) अर्थात् इस तरहसे दास बनानेका उदाहरण कभी कभी होता था। 'कभी कभी' कहनेका कारण यह है कि आर्य लोगोमें अपने ही भाई-बन्धुओं-को इस तरह दास बनानेकी चाह अथवा इच्छा न रही होगी। दास होने पर सब प्रकारके सेवा-कर्म तो करने ही पड़ते थे, परन्तु उसकी स्वतन्त्रता भी चली जाती थी। बल्कि उसका वर्ण श्रीर जाति भी भ्रष्ट हो जाती थी। द्रौपदीका दासी हो चुकना मान लेने पर यह समभा गया कि उसके साथ मनमाना, लौंडीकी तरह भी, व्यवहार करनेका हक प्राप्त हो गया है। अर्थात चत्रिय लोगोंको तथा समस्त श्रार्य लोगोंको दास वनानेकी मथा भारती-युद्ध-कालमें भी नहीं दिखाई देती। क्योंकि दोनों प्रसङ्गोमें ये परा-जित श्रार्य चत्रिय दासत्वसे मुक्त कर बोड़ दिये गये हैं। इससे माल्म होता है कि भारती युद्ध-कालमें, युद्धके कड़े नियमोंके कहीं कहीं प्रचलित रहने पर

भी, वे धीरे धीरे बन्द होते गये। तात्पर्य, पाश्चात्य देशोंकी तरह, परदेश श्रथवा स्वदेशके भी लोगोंको जीतकर, दास श्रथवा गुलाम बनानेकी प्रथा महाभारत-कालमें हिन्दुस्थानमें नहीं थी।

उस जमानेमें यह प्रथा श्रीस, रोम, ईजिप्ट आदि देशोंमें प्रचलित थी । उन देशोंके इतिहासको पढ़नेसे हमें खेदके साथ साथ श्राश्चर्य भी होता है कि ग्राज उत्तम दशामें रहनेवाले हजारों स्त्री-पुरुष, पराजित होनेके कारण, कल भयद्भर दासत्व अथवा गुलामीमें कैसे पड जाते थे। किसी शहर पर श्राक्रमण होने पर यह नियम था कि जब शहर पराजित श्रीर हस्तगत हो जाय तब वहाँके लडने-वाले पुरुष कत्ल कर दिये जायँ श्रीर उनकी सुन्दर स्त्रियाँ गुलामीमें रखी जायँ। होमरमें वार वार ऐसा ही वर्णन है श्रीर श्रीक लोग श्रपने बीरोंको यह कहकर प्रोत्साहन देते हैं कि तुम्हारे उप-भोग करनेके लिए ट्रायमें सुन्दर स्त्रियाँ मिलंगी । यह बात महाभारत कालमें हिन्द्स्थानमें विलकुल न थी । पाश्चात्य देशोंकी तरह, हिन्दुस्थानमें गुलामीकी प्रथा न पाकर यूनानियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ श्रौर उन्होंने इस बातको अपने ग्रन्थोंमें लिख भी डाला है। "हिन्दुस्थान-के लोग अपने देशके अथवा परदेशके लोगोंको दास या गुलाम नहीं बनाते।" यूनानी इतिहासकारोंने लिखा है कि हिन्द्स्थानी खयं खतन्त्र थे; अतएव दूसरों-की स्वतन्त्रताका हरण करनेकी इच्छा उनमें बिलकुल न थी। इस दुहरे प्रमाण-से भी सिद्ध होता है कि महाभारत काल-में दास ऋथवा गुलाम नहीं थे।

मीचेके श्लोकमें दास अथवा गुलामका उल्लेख
 मालूम होता है:—

महाभारत-कालमें दासका निश्चित-अर्थ शूद्र मालूम होता है। "गौर्वोढारं धावितारं तुरंगी शद्री दासं ब्राह्मणी याचकं च"-गायका बछुड़ा होगा तो उसे बोभ ही ढोना पड़ेगा, घोड़ीका बचा होगा तो उसे दौड़ना पड़ेगा, शद्र स्त्रीके पुत्र हो तो दास बनना पड़ेगा श्रोर ब्राह्मणीका पुत्र होगा तो उसे भीख ही माँगना पड़ेगा । इस स्रोकमें जिस मर्मका वर्णन है वह बड़ा ही मजेदार है। श्रस्तः इससे दासका श्रर्थ शद्र ही मालुम होता है और शद्भका निश्चित काम परि-चर्या करना ही माना गया था। परन्तु यह नहीं था कि सभी शद्ध सेवा करते थे। जैसे सभी ब्राह्मण भिन्ना नहीं माँगते थे वैसे ही सभी शद्र दास नहीं थे। बहुतेरे खतंत्र धंधोंमें लगकर श्रपना पेट भरते थे श्रीर उनके पास द्रव्यका संचय भी होता था। वे श्राद्धादि कर्म करनेके भी योग्य समभे जाते थे श्रौर दान भी करते थे। परन्त उन्हें तप करनेका अधिकार न था। सब शद्र दास नहीं थे, परन्त यह सच है कि सब दास शद्र थे। सभी ब्राह्मण् भीख नहीं माँगते थे, परन्तु सभी भीख माँगनेवाले ब्राह्मण् थे । ऋर्थात्, जैसे भीख माँगने का ऋधिकार ब्राह्मणीं-को ही था, वैसे ही सभी दास ग्रद्ध होते थे। मालूम होता है कि महाभारत कालमें श्द्रोंके सिवाद्सरोंसे नौकरीके काम नहीं लिये जाते थे। यह तो कलियुगकी भया-नक लीला है कि ब्राह्मण शूद्रोंका काम करने लग जायँ। ऐसे शुद्रोंकी भी हैसि-

मानुषा मानुषानेव दासभावेन भुंजते। वथवंधनिरोधेन कारयंति दिवानिशम्॥ (राम्ति० श्र० २६२–३६)

इस वर्णनसे ऐसा मालूम होता है कि भारती आर्यों को गुलामीसे घृणा थी और इसी कारण उनमें इस प्रथाका अन्त हो गया।

यत पाश्चात्य देशोंके दासोंकी अपेता श्रिष्ठिक श्रेष्ठ थी। खामीको उन्हें मारने पीटनेका हक न था। परन्तु पाश्चात्य देशोंमें तो उनके प्राण ले लेनेतकका भी हक था। बल्कि यह कहना भूठ न होगा कि यहाँ दास ही न थे। महाभारतमें यहाँ तक नियम बतलाया गया है कि घरके नौकरोंको श्रन्न देकर फिर खयं भोजन करना चाहिए । पुराने वस्त्र गुद्रको दे देनेका नियम था। इसी तरहसे पुराने जुते, छाते, परदे श्रादि दे दिये जाते थे। यह बात केवल दासके ही लिए उपयुक्त है कि शहको द्रव्य संचय करनेका अधिकार नहीं, अर्थात् उसका द्रव्य मालिकका ही है । ब्राह्मणोंके पास शद्रके श्राने पर उन्हें उसका पोषण करना ही पड़ता था। बल्कि यहाँतक कहा गया है कि यदि वह दास विना सन्तानके मर जाय तो उसे पिएड भी देना चाहिए (शां० अ० ६०)। यदि शृद्ध दास न हो तो ऐसा वर्णन है कि, वह अमंत्रक पाक्यह करे। अर्थात्, दास्यका सक्ष ग्रद्रकी परिस्थितिका बिलकुल न होता था तथापि दास्य दास्य ही है। सप्तर्षिकी कथा (श्रुत्० अ० ६३) में उनका शुद्र-सेवक शपथ लेते समय कहता है कि—"यदि मैंने चोरी की हो तो मुभे बारवार दासका ही जन्म मिले।" घरके शुद्र-सेवकों श्रीर दासीं को कुछ भी वेतन नहीं दिया जाता था-उन्हें श्रम्न-वस्त्र देना ही वेतन देना था।

ऐसे श्द्र दासों के सिवा अन्य मज़ दूर और भिन्न भिन्न धन्धेवाले शिल्पी भी श्रवश्य रहे होंगे। मलुए, जुलाहे, वहाँ श्रादि कारीगर भी रहे होंगे। इसका खुलासा नहीं मिलता कि इन्हें क्या वेतन दिया जाता था। बहुधा खेतों के कार्मों मजदूरों का उपयोग नहीं होता था। महा भारत-कालमें खेती करनेवाले स्वयं श्राय बेश्य ही थे। इन्हीं लोगोंमेंसे आजकलके जाट श्रीर दिल्लाके रूपक मराठे भी हैं। वे बेश्य, शूद्र दासोंकी मददसे, खेतोंके सब काम करते थे। आजकल वेश्य लोग खयं खेतीका काम नहीं करते, इसलिए यह धन्धा सबसे अधिक शूद्रोंके हाथोंमें बला गया है। तथापि खेती करनेवाले ब्राह्मण और चित्रय (अनुलोम वृत्तिके द्वारा) अब भी उत्तर तथा दिल्ला देशोंमें पाये जाते हैं।

संघ।

निश्चयपूर्वक मालूम होता है कि महा-भारत-कालमें व्यापारी वैश्यों तथा कारी-गरीका काम करनेवाले शद्रों अथवा मिश्र जातियोंमें कहीं कहीं संघकी व्यवस्था थी। इन लोगोंके संघोंका नाम गए। श्रथवा श्रेणी देख पड़ता है। इन गणोंके मुखिया होते थे। राजधर्ममें कहा गया है कि इन लोगों पर कर लगाते समय श्रेणीके मुखिया लोगोंको बुलाकर उनका सम्मान करना चाहिए। ऐसे संघोंको राजासे दृत्य द्वारा सहायता मिलनेका प्रबन्ध था। कहा गया है कि राजा राष्ट्रको व्याजपर द्रव्य दे और राष्ट्रकी वृद्धि करे। प्राचीन शिलालेखोंमें ऐसे संघोंका उल्लेख बहुत पाया जाता है। ये संघ बहुत बड़े नहीं होते थे—ये राष्ट्रके, शहरके श्रथवा गाँवके एक ही धन्धेवाले लोगोंके ही होते थे श्रौर उनके मुखिया नियत रहते थे।

तौल और माप।

श्रव हम तौल श्रोर मापका विचार करेंगे। श्रनाजकी मुख्य तौल—मुष्टि—का

of the appropriate the property

किल्यान के जन्म हैं।

वर्णन महाभारतमें कई स्थानों पर श्राया है। इसीका नाम प्रस्थ था। शां० ऋ० ६० में कहा गया है कि दो सौ छुप्पन मुष्टि-का एक पूर्णपात्र होता है। इस तरह धान्यकी बड़ी तौल द्रोण था। यह नहीं बतलाया जा सकता कि द्रोणका और श्राजकलके मनका कैसा सम्बन्ध है। कौटिल्यका श्रर्थशास्त्र हालमें ही प्रकाशित हुआ है। उसमें वजन और तौल दिये हुए हैं। यद्यपि इनका उल्लेख महाभारतमें नहीं है, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि ये उस ज़मानेमें नहीं थे। यह मामूली वात है कि प्रसङ्गके न श्रानेसे उल्लेख भी नहीं होता। जब कि सोना, चाँदी धात-का चलन था तब वजनकी छोटी तील अवश्य ही होंगी। रत्नोंकी विक्री होनेके कारण सुद्मतर वाटोंकी आवश्यकता भी श्रवश्य रही होगी। इसके सिवा बडे पदार्थोंकी भी तौल थी और द्रोण अन्नकी तौल था। युधिष्टिरके यज्ञमें वर्णम है कि उत्तरके लोगोंने द्रोणमेय सोना लाकर दिया था। कदाचित् यह सुवर्णकर्णीका हो श्रीर द्रोण मापसे नापा गया हो। लम्बाईके माप किष्क, धनुष्य, योजन श्रादि हैं। हाथकी उँगलियोंसे मालम होनेवाले ताल, वितस्ति श्रादि भिन्न भिन्न मापोंका भी उल्लेख महाभारतमें श्राया है (मासतालाभिः भेरीरकारयत्—सभाः वारह वित्तोंके परिमाण्से भेरी बनाई गई)।

HER THE ABORDED IN THE BY HE

^{*} श्रष्टमृष्टिभवेत् किथित् किथिदष्टौ च पुष्कलम् । पुष्कलानि च चत्वारि पूर्णपात्रं प्रचक्तते ॥ यह श्लोक टीकामें दिया हुआ है । (३८)

बारहकाँ ककरण।

- etters

भूगोलिक ज्ञान।

अद्भव इस प्रकरणमें हम इस विषयका वर्णन करेंगे कि, महाभारत-कालमें भारतवर्षके लोगोंका भूगोलिक ज्ञान कितना था। महाभारतके अनेक वर्णनोंसे हमें यह मालूम होता है कि, इस कालमें, अर्थात् ई० सन् पूर्व लगभग २५० वर्ष, भारतवर्षका सम्पूर्ण ज्ञान था। ग्रीक लोगोंके वृत्तान्तसे भी यही जान पडता है । पञ्जाबमें त्राये हुए सिकन्दरको कन्या-कुमारीतकके देशोंका, लम्बाई-चौड़ाई सहित, पका ज्ञान प्राप्त हो गया था; श्रीर किंगहमने स्वीकार किया है कि यह ज्ञान विलकुल ठीक यानी वास्तविक दशा-के अनुकूल था। इसके विरुद्ध अनेक लोग श्रनमान करते हैं; पर वह ग़लत है। महाभारतसे यह भी श्रद्धमान किया जा सकता है कि, इसके पहले, अर्थात् भार तीय युद्ध-कालमें, श्रायोंको भारतवर्षका कितना ज्ञान था। महाभारत-कालमें न केवल भारतवर्षका सम्पूर्णज्ञान था, बल्कि श्रासपासके देशोंकी, श्रर्थात् चीन, तिब्बत, ईरान इत्यादि देशोंकी भी बहुत कुछ जान-कारी थी। यह उनकी जानकारी प्रत्यच होगी। हाँ, सम्पूर्ण पृथ्वीके विषयमें उन्होंने जो कर्लना की थी, सो श्रवश्य ही प्रत्यन ज्ञानसे नहीं की थी, किन्तु केवल अपनी कल्पनाके तरङ्गोंसे निश्चित की थी। श्राज-कल जो वास्तविक दशा है, उसके वह अनुकूल नहीं है। प्राचीन कालके लोगों-को सम्पूर्ण पृथ्वीका ज्ञान होना सम्भव भी नहीं था। महाभारतके भीष्म पर्वमें श्रौर श्रन्य जगह, विशेषतः भिन्न भिन्न तीर्थ-यात्रात्रोंके वर्णनसे श्रीर दिग्विजयोंके

वर्णनसे जो भूगोलिक ज्ञान श्रथवा कल्पना श्रायोंकी जानी जाती है, उसका हम यहाँ पर विस्तारसे वर्णन करते हैं।

जम्बूद्धीपके वर्ष।

पहले हम इस बातका विचार करेंगे कि, उस समय पृथ्वीके सम्बन्धमें क्या कल्पना थी। यह वर्णन मुख्यतः भीषा पर्वके ऋध्याय ५-६-७- में है। प्राचीन कालमें यह कल्पना थी कि पृथ्वीके सात द्वीप हैं। सातों द्वीपोंके नाम महाभारतमें हैं: श्रीर यह स्पष्ट कहा गया है कि द्वीप सात हैं। इनमें मुख्य जम्त्र द्वीप श्रथवा सुदर्शन द्वीप है, जिसमें हम लोग रहते हैं। यह द्वीप गोल अथवा चकाकार है श्रौर चारों श्रोर लवण-समुद्रसे घिरा हुआ है। जैसा कि, अन्यत्र नकशेमें दिखलाया गया है, इसके सात वर्ष श्रथवा भाग किये हुए हैं। विलकुल नीचेका यानी द्रिल श्रोरका भाग भारतवर्ष है। इसके उत्तर्स हिमालय पर्वत है। हिमालय पर्वतके सिरे पूर्व-पश्चिम समुद्रमें हुवे हुए हैं। हिमा-लय पर्वतके उत्तरमें हैमवत-वर्ष है: श्रीर उसके उत्तरमें हेमकट पर्वतकी श्रेणी है। यह श्रेणी भी पूर्व-पश्चिम समुद्रतर फैली हुई है। इसके उत्तर श्रोर, कितने ही हजार योजनोंके वाद, निषध पर्वतकी श्रेणी पूर्व-पश्चिम समुद्रतक फैली हुर है। यहाँतकका ज्ञान प्रत्यच श्रथवा सुनकर महाभारतकालमें था । क्योंकि यह स्पष्ट है कि, इन तीन पर्वतींकी श्रेणियाँ हिमालय, केनलन् (काराकोरम) श्रलताई नामक पर्वतोंकी पूर्व-पश्चिम श्रेणियाँ हैं। महाप्रस्थानिक पर्वमें यह वर्णन है कि, जिस समय पांडव हिमा लयके उत्तरमें गये, उस समय उन्हें बाई कामय समुद्र मिला। यह समुद्र गोबीकी रेगिस्तान है। ये तीन श्रेणियाँ श्रवश्य ही

तानकारीसे लिखी गई हैं। हेमकूट श्रीर तिषध पर्वतके वीचके भागको हरिवर्ष कहते थे। हरिवर्षमें जापान, मङ्गोलिया, तुर्किस्तान, रूस, जर्मनी, इङ्गलेंड इत्यादि देशोंका समावेश होता है। हैमचत वर्षमें वीन, तिब्बत, ईरान, श्रीस, इटली, इत्यादि देश होंगे। महाभारतसे जान पड़ता है कि इनका ज्ञान भारतवासियोंको था।

हाँ, श्रव इसके शागे जो वर्णन दिया हुआ है, वह अवश्य ही काल्पनिक हो सकता है। निषधके उत्तर श्रोर मध्यमें के पर्वत है; श्रीर मेरके उत्तर श्रोर फिर तीन श्रेणियाँ नील, श्वेत श्रीर श्रङ्गवान गमक, दिच्चिणकी पंक्तियोंकी भाँति ही. पर्व-पश्चिम समुद्रीतक फैली हुई मानी गई हैं। इनका वास्तविक दशासे मेल नहीं मिलता। यह भी स्पष्ट है कि, मध सहस्र योजन ऊंचा सुवर्णका मेर पर्वत काल्पनिक है। उत्तर ध्रुवकी जगह यदि मेरकी कल्पना की जाय, तो मेरके उत्तर श्रोर, श्रर्थात् श्रमेरिका खर्डमें पूर्व-पश्चिम पर्वतोंकी श्रेणियाँ नहीं हैं। श्रतएव यह स्पष्ट है कि नील, श्वेत श्रीर श्रुङ्गवान पर्वतोंकी श्रेगियाँ काल्पनिक हैं। प्राचीन लोगोंने यह कल्पना की है कि द्विण श्रोरकी श्रेणियोंकी भाँति ही, उत्तर श्रोर् की श्रेणियाँ होंगी। इस मेरु पर्वतके रो तरफ माल्यवान् और गन्धमादन नामकी दो छोटी श्रेणियाँ, उत्तर-दित्तणकी श्रोर, किएत की गई हैं। नील पर्वत श्र्वेत-पर्वत और श्रंगवान् पर्वतके उत्तर श्रोरके पदेशको नीलवर्ष, एवेतवर्ष श्रीर हैरएयक अथवा ऐरावतवर्ष नाम दिये गये हैं। मेरपर्वतके चारों श्रोर चार श्रति पुरायवान् भदेश उत्तर कुरु, भद्राश्व, केतुमाल और जम्बूद्वीप नामक किएत किये गये हैं। रन पदेशोंके लोग श्रत्यन्त सुखी, सुन्दर शीर दस हजार वर्षकी आयुके होते हैं।

वे पुरयवान् श्रौर तपस्वी हैं। इसके सिवा उनके विषयमें यह भी कल्पना है कि, उत्तरोत्तर सात वर्षों या भागोंमें श्रधिका-धिक पुर्य, श्रायु, धर्म श्रीर काम है। यह कल्पना की गई है कि किमवान पर्वत पर राज्ञस, हेमकृट पर गुद्य, निषध पर सर्प, श्वेत पर देवता श्रीर नील पर ब्रह्मर्षि रहते हैं। जम्बू द्वीपमें एक बहुत बड़ा जम्बृबृच् अर्थात् जामुनका पेड है, जो सब काम पूर्ण करनेवाला है। इसकी ऊँचाई ११०१ योजन है। इसके बड़े बड़े फल जमीन पर गिरते हैं। उनसे शुभ्र रसकी एक नदी निकलती है, जो मेरु पर्वतकी प्रद्तिए। करती हुई उत्तर कुरुमें चली जाती है। इस मीठे जम्बु-रसको पीकर लोगोंका मन शान्त हो जाता है श्रीर वे भूख-प्याससे रहित हो जाते हैं। इस रससे इन्द्रगोपकी तरह चमकदार जाम्बू-नद् नामक सुवर्ण उत्पन्न होता है। देवता लोग इस सुवर्गके श्राभूषण पहनते हैं (भीष्मपर्व)। उपर्युक्त वर्णनसे पाठकोंको यह मालूम हो जायगा कि हमारे इस द्वीपको जम्बृद्वीप क्यों कहते हैं। इसके सिवा, यह भी पाठकोंके ध्यानमें जायगा कि जास्युनद शब्दका-लाल रङ्गका सोना-यह श्रर्थ क्योंकर हुआ है। मेरके श्रास-पासके प्रदेशमें, श्राजकलके हिसाब-से साइवेरिया श्रीर कनाडा प्रान्तींका समावेश होता है। इन प्रान्तोंमें श्राजकल भी सोना पृथ्वीके पृष्ट भाग पर फैला हुआ मिलता है। साइवेरियाकी नदियोंसे बहुत स्वर्णकण बहकर आते हैं। इससे जान पड़ता है कि, इस प्रदेशकी कल्पना केवल मस्तिष्कसे ही नहीं निकाली गई है, किन्तु उसके लिए प्रत्यच स्थितिका भी कुछ त्राधार है। इसके सिवा, लोकमान्य तिलकके मतानुसार श्रायोंका मूल निवास यदि उत्तर भ्रवके प्रदेशमें था, तो कहना पड़ता है कि उत्तर कुरु, भद्राश्व, केतुमाल श्रीर जाम्बुनद देशों के पुरायवान,
सुखी श्रीर दीघार्यु लोगों का जो श्रितिश्रुयोक्तियुक्त वर्णन है, उस वर्णन के लिए
कुछ न कुछ दन्तकथा श्रुथवा पूर्वस्मृतिका श्राधार श्रवश्य होगा। यह माना
जा सकता है कि 'श्रायों के पूर्वज उत्तर
ध्रुवके प्रदेशमें थे'-इस सिद्धान्तको पुष्ट
करनेवाला उत्तरकुर शब्द भी है। इससे
यह स्पष्ट मालूम होता है कि श्रायों के
मुस्य कुरु लोगों की, उत्तर श्रोरकी मूल
भूमि उत्तरकुर है; श्रीर उसका स्थान
महाभारतकालमें लोगों की कल्पनासे मेव
पर्वतके पास श्र्थात् उत्तर ध्रुवके पास था।

श्चन्य द्वीप।

हम लोग जिस द्वीपमें रहते हैं उस जम्बूद्वीपका, महाभारत-कालमें प्रचलित मतके अनुसार, यहाँतक वर्णन किया गया। शेष छः द्वीपोंका वर्णन महाभारत-के भिन्न भिन्न श्रध्यायों में किया गया है। तथापि "सप्तद्वीपा वसुन्धरा" यह वाक्य संस्कृत साहित्यमें प्रसिद्ध है। ये छः द्वीप जम्बूद्वीपके किस श्रीर श्रीर कैसे थे, इसका वर्णन महाभारतमें विस्तृत रीतिसे कहीं नहीं पाया जाता। इस विषयमें कुछ गूढार्थके स्रोक महाभारत, भीष्म पर्व, अध्याय ६ के अन्तमें हैं। उनका अनुवाद यह है:- "हे राजा, तूने मुभसे जिस दिव्य शशाकृति भागका वर्णन पूछा था वह मैंने तुभसे यहाँतक वतलांया। इस शशाकृतिके दित्तण श्रीर उत्तर श्रीर भारत श्रौर पेरावत, ये दो वर्ष मैंने तुसकी बतलाये ही हैं। श्रव यह समभ कि नाग श्रौर काश्यप, ये दो द्वीप, इस शशकके दोनों कर्णोंके स्थानमें हैं; और हे राजा, वह रमणीय मलय-पर्वत, जिसकी शिलाएँ ताम्रपत्रके समान हैं,

इस शशाकृति द्वीपके दूसरे श्राधे भागमें दिखाई पड़ता है।" इन स्लोकोंमें विर्णित शशास्त्रति कौनसी है, और शरास्त्रति कौन सी है, यह विलकुल ही समभमें नहीं श्राता। इसका भी उल्लेख नहीं कि, मलय पर्वत कौनसा है। शशाकृति-द्वीप कीन सा है, श्रीर उसका दूसरा श्रर्थभाग कौनसा है, इसका भी बोध नहीं होता। पिछले श्रध्यायके अन्तिम क्लोकमें लिखा है कि सुद्र्शनद्वीप चन्द्रमग्डलकी जगह सूदम-रूपसे प्रतिविम्यित दिखाई देता है; उसके एक भाग पर संसारक्षी पीपल दिखाई देता है; और इसरे श्राधे भाग पर शीव्रगामी—शशकत्र से परमातमा दिखाई देता है। ये श्लोब भी कूट ही हैं। जो हो, इन दोने श्रध्यायों से प्रकट होता है कि तीन ही गं के नाम ऐरावतद्वीप, नागद्वीप, श्रीर काश्यपद्वीप थे । उनमें नागद्वीप और काश्यपद्वीप शशकके कानोंकी जगह दिखलाये गये हैं। इससे हमने नागद्वीप श्रीर काश्यपद्वीपको गोल चक्राकार न मानते हुए शशकके कानोंके समान लगे श्राकारमें जम्बूद्धीपके दोनों श्रोर नक्शेमें दिखलाया है। इसके बाद हमने मलयहीप को, एक मलयपर्वतके नामसे मानकर पृथ्वीके दूसरे आधे भागमें अर्थात् जम् द्वीपके दिवाण दिखलाया है। पर गर कल्पना महाभारत-कालमें थी कि जैसे पृथ्वी पर सात झीप हैं वैसे ही सात समुद्र भी हैं। श्राजकल भी हम "सात समुद्र पार" कहा करते हैं। पीत समुद्र, लाल समुद्र, काला समुद्र, सफेद समुद्र-वे चार समुद्र आजकल नकरोमें हैं। सूर्वकी किरगों भी सात रङ्गोंकी हैं; परन्तु पूर्व कालमें समुद्रोंकी कल्पना रङ्गों पर न थी। किन्तु लवण समुद्र, चीर समुद्र, दि समुद्र इत्यादि प्रकारकी थी। श्रव मही

भारतमें इसकी कल्पना बहुत श्रह्मण है कि उक्त समुद्र कहा हैं। हाँ, एक जगह यह श्रवश्य लिखा है कि जम्बूद्धीपके चारों श्रोर समुद्र खारा है। रामायणमें ऐसी कल्पना है कि जम्बूद्धीपके दिल्ला श्रोर खारा समुद्र है श्रीर उत्तर श्रोर जीर समुद्र है। श्रच्छा, श्रव हम यह वतलाते हैं कि महाभारतमें श्रमले श्रध्यायों में इसकी कल्पना श्रीर द्वीप-सम्बन्धी कल्पना श्रीर द्वीप-सम्बन्धी कल्पना श्रीर द्वीप-सम्बन्धी कल्पना कैसी है।

सम्पूर्ण भूवर्णन हो जाने पर ग्यार-हवें श्रध्यायमें भीष्म पर्वमें द्वीपोंका वर्णन किर दिया हुआ है। उसमें पहले यह कहा है कि पृथ्वी पर अनेक डीप हैं। यह नहीं कि सात ही डीप हैं: परन्त सात द्वीप मुख्य हैं *। यहाँ पर यह नहीं बतलाया गया कि सात द्वीप कौनसे हैं तथापि प्रारम्भमें तीन द्वीप वतलाये हैं: श्रीर फिर यहाँ चार श्रीर बतला दिये हैं-शाक, कुश, शाल्वलि श्रोर क्रींच। पहले तीन द्वीप अर्थात् जम्बू, काश्यप, श्रीर नागको मिलाकर कुल सात द्वीप सम-भने चाहिएँ। शाकहीपका वर्णन यहत ही विस्तृत रीतिसे दिया हुआ है। शाक-बीप जम्बूद्वीपसे दुगुना है : और उसके श्रासपास चीरसमुद्र है। यहाँ पर यह नहीं बतलाया गया कि यह द्वीप जम्बू-बीपके किस च्रोर है। परन्तु यह शायद उत्तर श्रोर होगा। इसमें भी जम्बृद्धीपकी भाँति सात पर्वत हैं; श्रीर उतनी ही तथा वैसी ही नदियाँ हैं। मलय श्रीर रैवतक, ये दो नाम भारतवर्षके नामोंकी ही भाँति हैं। यहाँके लोग श्रत्यन्त पुग्य-वान् होते हैं। अन्य द्वीपोंमें गौर वर्ण और अर्घगौर वर्ण तथा स्याम वर्णके लोग होते हैं, पर यहाँ सभी लोग श्याम वर्णके हैं। यह बात यहाँ खास तौर पर बतलाई गई है। इस द्वीपके भी सात वर्ष, अर्थात् खएड, हुए हैं; श्रीर यहाँ भी जम्बू वृत्तके समान एक यड़ा शाक वृत्त है, जिसकी ऊँचाई श्रौर मोटाई जम्वू वृत्तके समान ही है। यहाँके लोग इस वृत्तकी सेवामें लगे रहते हैं। यहाँ निद्योंका जल बहुत पवित्र है-प्रत्यत्त गङ्गा श्रनेक रूपसे बहती है। इस द्वीपमें चार पवित्र श्रीर लोकमान्य देश हैं- मग, मशक, मानस श्रीर मंदग। इनमेंसे मग ब्राह्मण हैं जो ब्रह्मकर्ममें निमग्न रहते हैं। मशकमें धर्म-निष्ठ चत्रिय रहते हैं। मानसके सब निवासी वैश्य वृत्तिसे उपजीविका करते हैं; श्रौर मन्दगमें धर्मशील शृद रहते हैं। यहाँ कोई राजा नहीं है। सब ऋपने श्रपने धर्मसे चलकर एक दूसरेकी रहा करते हैं।

उपर्युक्त वर्णन प्रायः काल्पनिक है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। यह जम्बू-द्वीपके वर्णनसे श्रीर कुछ बातोंमें श्रतिश-योक्ति करके लिखा गया है। पर आश्चर्य-की बात है कि इस वर्णनमें लोगोंके जो नाम दिये हुए हैं, वे सचे श्रौर ऐति-हासिक हैं। द्वीपका नाम शाक वतलाया गया है। यदि यह नाम शंकसे निकला हो तो इतिहाससे यह माल्म होता है कि शक श्रोर पार्सी जिस देशमें रहते थे, उस देशमें उपर्युक्त नामके ब्राह्मण, वैश्य, त्तिय त्रीर शृद्ध रहते थे । मग-ब्राह्मण पासीं लोगोंके अग्निपूजक और सूर्यपूजक मागी धर्मगुरु हैं। इनके विषयमें कहा जाता है कि ये बड़े जादूगर होते हैं। ये लोग हिन्दुस्थानमें भी आये हैं; और श्राजकल "मग ब्राह्मण्" के नामसे प्रसिद्ध हैं। वे सूर्योपासक हैं, परन्तु यह मानना

^{*} त्रयोदश समुद्रस्य द्वीपानश्नन् पुरुरवाः । स्रादि० श्रु० ७४ में १३ द्वीप बतलाये हैं । सो टीकाकारने कहींके भहीं मिला दिये हैं । संख्यायुक्त कृट सौतिने जगह नगड भर दिये हैं ।

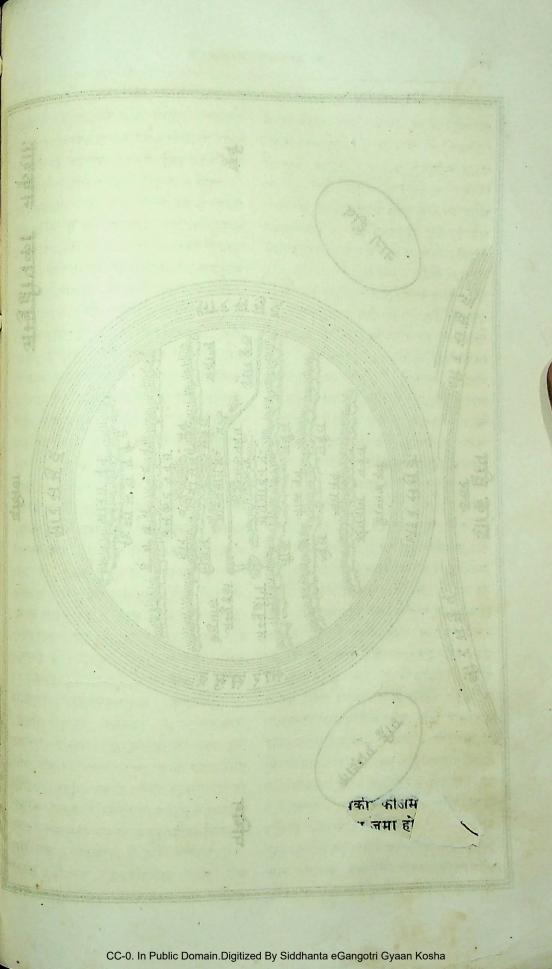
सम्भवनीय नहीं कि ये ब्राह्मण महा-भारतमें वर्णन किये हुए शाकद्वीपमें रहनेवाले हैं, श्रीर ज्ञार समुद्र तथा ज्ञीर-समुद्र लाँघकर श्राये हैं। तात्पर्य यह है कि इस काल्पनिक द्वीपमें जैसे नदियों श्रीर पर्वतींके नाम जम्बूद्वीपसे ले लिये गये हैं, वैसे ही लोगोंके नाम मग, मंदग इत्यादि श्रीर शक नाम भी, जम्बूद्वीपसे ही वहाँ ले लिये गये हैं।

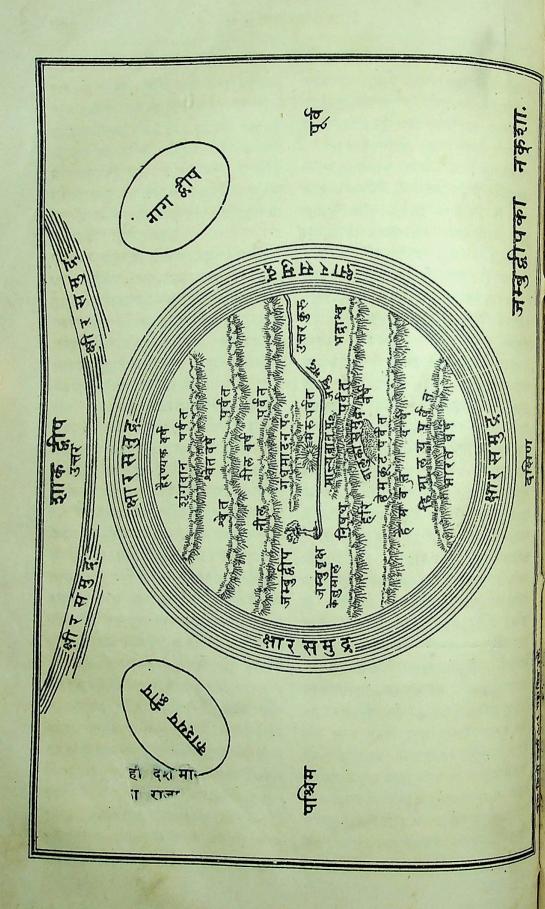
श्रव हम शेष द्वीपोंका वर्णन करते हैं। इन द्वीपोंको उत्तरद्वीप कहा है। इस-लिए वे उत्तरकी श्रोर होने चाहिएँ। इनके पास घृतसमुद्र, द्धिसमुद्र, सुरा-समुद्र, जलसमुद्र, (मीठे पानीका) ये चार समुद्र हैं। ये द्वीप दुगुने परिमाण-से हैं। पश्चिम द्वीपमें नारायणका कृष्ण संज्ञक पर्वत है, जिसंकी रचा खयं श्री-कृष्ण करते हैं। कुशद्वीपमें लोग कुशदर्भ-की पूजा करते हैं। शाल्मली द्वीपमें एक शाल्मली बृदा है । उसकी लोग पूजा करते हैं। क्रींच द्वीपमें क्रींच नामक पर्वत है। उसमें अनेक रत्न हैं। प्रत्येक द्वीपमें छः पर्वत हैं, जिनसे सात वर्ष अथवा खंड हो गये हैं। उन पर्वती श्रीर वर्षोंके भिन्न भिन्न नाम यहाँ देनेकी आवश्यकता नहीं। इनके निवासी गौर वर्णके हैं: इनमें म्लेच्छ कोई नहीं है। एक श्रौर पुष्कर द्वीपका भी वर्णन किया गंया है। उस पर स्वयं ब्रह्मा-जी रहते हैं, जिनकी देवता श्रौर महर्षि पुजा करते हैं। इन सब द्वीपोंके निवासियों-की आयुका परिमाण ब्रह्मचर्य, सत्य श्रीर दमके कारण दूना वढ़ गया है। सब लोगों-का धर्म एक ही है, अतएव सभी द्वीप मिलकर एक ही देश माना जाता है। यहाँकी प्रजाका राजा प्रजापति ही है। इस द्वीपके श्रागे सम नामको बस्ती है। वहाँ लोकमान्य, वामन, ऐरावत, इत्यादि चार दिगाज हैं, जिनकी ऊँचाई और आकार-

परिमाण कुछ नापा नहीं जा सकता।
ये दिग्गज श्रपने शुँडोंसे वायुका निग्रह
करके फिर उच्छास रूपसे उसे छोड़ते हैं।
वस, यही वायु सारी पृथ्वी पर वहती है।

जान पड़ता है, इन द्वीपोंकी कल्पना केवल पुगयवान् लोक या निवासस्थान किएत करनेके लिए की गई है; श्रीर वह जम्बृद्वीपकी कल्पना रची गई है। इस कल्पनाका उत्पन्न होना स्वामाविक है कि पृथ्वी पर भिन्न भिन्न सुखी लोक प्रथात निवासस्थान है; परन्तु चार दिग्गजांकी कल्पना सबसे श्रिधिक श्राश्चर्यकारक है। एक ही देशमें एक ही श्रोर ये चार दिग्गज बतलाये गये हैं; परन्तु हमारी समभमें ये चार दिग्गज चार दिशाश्रों श्रीर चार भिन्न भिन्न भूमियोंमें होते चाहिएँ। दिग्गजोंकी कल्पना शायद इस बातकी उपपत्ति लगानेके लिए की गई होगी कि, वाय कैसे बहती है। यहाँ चार ही दिग्गज बतलाये गये हैं। परन्तु इसके श्रागेके प्रन्थोंमें और जैन तथा बौद्ध प्रन्थी में श्राठ दिग्गजोंकी कल्पना पाई जाती है। उपर्युक्त सात द्विपोंके श्रतिरिक्त, एक श्रीर भी द्वीप, महाभारतके शान्तिपवेमे नारायणीय आख्यानमें श्वेतद्वीपके नाम से बतलाया गया है । वहाँ नारायण श्रपने भक्तों सहित रहते हैं। इसका श्रिविक उल्लेख श्रागे किया जा सकेगा।

पांडवोंके महाप्रस्थानके वर्णने जम्बूढ़ीपका जो वर्णन किया गया है। वह यहाँ देने योग्य है। पांडव पूर्वकी श्रोर जाते जाते उद्याचलके पास ले हित्य सागरके निकट जा पहुँचे। वहाँ श्रिश्चने उनका मार्ग रोका। उसके कहने से श्रर्जुनने गांडीव धनुष समुद्रमें डाल दिया। इसके बाद वे दित्तिणकी श्रोर पूर्म पड़े; श्रोर ज्ञाराब्धिके उत्तरी तटने नैर्श्चत्य दिशाकी श्रोर गये। इसके बार





कर पश्चिमकी श्रोर घूमकर पृथ्वी-प्रदक्षिणा करते हुए उत्तरकी श्रोर गये । तब उन्हें हिमालय नामक महागिरि मिला । उसके श्रागे उन्हें बाल्का समुद्र दिखाई दिया। उसके श्रागे पर्वतश्रेष्ठ मेरु दिखाई देने लगाः मेरुपर्वतके सिर पर स्वर्ग था। स्वर्गके किनारे श्राकाश-गङ्गा बह रही थी, जहाँ उन्हें इन्द्र मिला । उपर्युक्त वर्णनसे जान पड़ता है कि लौहित्यसागर श्रथीत रक्तका समुद्र श्रोर उदयागिरि पर्वत पूर्वकी श्रोर थे। श्रन्य समुद्रोंका वृत्तान्त ऊपर दिया गया है। यह निश्चयपूर्वक जान पड़ता है कि लवण समुद्र नैर्श्वत्य श्रोर पश्चिमसे मिला हुश्रा, दित्त एकी श्रोर था।

पृथ्वीके पूर्वमें उदयाचल श्रोर पश्चिम-में श्रस्ताचल है। यह कल्पना प्राचीन-कालसे है। ये पर्वत पश्चिम समुद्रके श्रागे माने गये हैं। महाभारतमें यह वर्णन है कि, मेरुपर्वत उत्तरकी श्रोर है, श्रीर उसके श्रासंपास सूर्य श्रीर नज्ञ पुमते हैं। आकाशकी ज्योतियोंका नायक श्रादित्य इस मेरुके ही श्रासपास चकर लगाया करता है। इसी प्रकार नचत्रों सहित चन्द्रमा और वायु भी इसीको भद्तिणा किया करते हैं (भीष्मपर्व अ०६)। उस समय यह गूढ़ बात थी कि, जब सूर्य पूर्वको श्रोर उदय होकर पश्चिमकी श्रोर अस्ताचलको जाता है, तब फिर वह उत्तर दिशामें स्थित मेरुपर्वतके त्रासपास कैसे भूमता है। कुछ लोगोंके मतानुसार सूर्य पश्चिमकी ओर अस्ताचलको जाने पर फिर रातको उत्तर श्रोर जाकर श्रीर मेरु-की पदिचाणा करके, फिर सुबह पूर्वकी श्रीर उद्याचलके सिर पर श्राता है। परन्तु यह कल्पना अन्य लोगोंको ठीक न जान पड़ी; अत्रत्व उन्होंने, श्रीर विशेषकर रामा-यणकारने, मेरुपर्वतको पश्चिमकी श्रोर वत-लाया है। परन्तु उनकी यह कल्पना बिल- कुल ही भ्रमपूर्ण है। जम्बूद्वीपका जो वर्णन महाभारतकारने दिया है, वही प्रायः सब प्राचीन प्रन्थोंमें देख पड़ता है।

जम्बूद्धीपके देश।

इस प्रकार यह स्पष्ट जान पड़ता है कि जम्बूद्धीपके सात वर्ष श्रर्थात् सात खंड माने गये हैं; उनमेंसे भारतवर्ष, हैंमवतवर्ष श्रौर हरिवर्ष वास्तविक दशाके श्रनुकृत हैं; श्रौर उनमेंसे कितने ही लोकोंका जान महाभारत-कालमें भारतीय श्रायोंको था। हैमवत श्रथवा इलावर्षमें विशेषतः चीन, तिब्बत, तुर्किस्तान, ईरान, श्रीस, इटली इत्यादि देश शामिल हैं। इन देशोंके लोगी-का बहुत कुछ ज्ञान महाभारतकालमें था। उत्तर श्रोरके लोग (म्लेच्छ) भोष्मपर्वमें इस प्रकार वतलाये गये हैं:—

यवनाश्चीनकाम्बोजादारुणा स्नेच्छजातयः। सक्तदुहाःपुलत्थाश्च हृ्णाःपारसिकैःसह ॥

इस क्लोकमें यवन (युनानी), चीन, काम्बोज (श्रफगान), सरुद्वह, पुलत्थ, हुण श्रीर पारसीक लोक बतलाये गये हैं। कितने ही इतिहासकारोंकी यह धारणा है कि ईसवी सन्के पूर्व लगभग २५० वर्षमें भारती लोगोंको शायद इन लोगोंका ज्ञान न होगा। परन्तु पूर्व श्रोर चीनतक श्रीर पश्चिम स्रोर ग्रीसतक भारतवर्षके लोगां-का हेलमेल बहुत प्राचीन कालसे था। कमसे कम पर्शियन लोगोंका बादशाह दारीयस भारतवर्षके कुछ भागमें श्राकर राज्य करता था । ग्रीक इतिहासकार हिरोडोटस ईसवी सन्के ४५० वर्ष पहले-के लगभग हुआ। उसने यह वर्णन किया है कि, दारीयसकी फौजमें उसके अठा-रहों सूबोंकी सेना जमा होती थी। उसमें यवन, शक, पारसीक, काम्बोज इत्यादि श्रीर भारतीय श्रायोंकी सेना रहती थी। इससे भी यही सिद्ध होता है कि भार- तीय श्रायोंको बहुत प्राचीन कालसे इन लोगोंकी अच्छी जानकारी थी। इनके सिवा हूण श्रोर चीन लोगोंका भी उनको बहुत कुछ ज्ञान श्रवश्य ही होना चाहिए। यह सच है कि हूण लोगोंका नाम पश्चिमी इतिहासमें ईसवी सन्के वाद , आता है, तथापि पूर्व त्रोरके यह स्नेच्छ, हूण त्रीर चीनी, बहुत प्राचीन हैं। चीनियोंका इति-हास ईसवी सन्के २००० वर्ष पहलेसे श्रवतकका वरावर मिलता है। श्रवश्य ही उन लोगोंके वड़े बड़े बादशाह, तिब्बत श्रीर नेपालके वीचसे, श्रपने वकीलों श्रीर व्यापारियोंको भारतवर्षमें भेजते होंगे। हण लोग चीन देशके पश्चिममें रहते थे: श्रीर उनका नाम भी वहुत पुराना है। यह नहीं कहा जा सकता कि, भारतवर्षमें आने पर ही भारतीय आयोंको हुए लोगों-का परिचय हुआ। सारांश यह है कि इन लोगोंका ज्ञान, प्रत्यच श्रीर परम्परा-से, भारतके लोगोंको प्राचीन कालमें श्रीर महाभारत-कालमें अवश्य ही था।

शान्तिपर्वके शुकाख्यानमें भूगोलिक उल्लेख बड़े महत्वका श्राया है। वह इस प्रकार है। शुकदेवजी मेरु पर्वतसे चलकर जनकको गुरु करनेके लिए विदेहको श्राये। उनके मार्गका वर्णन करते हुए कहा गया है:—

मेरोहरेश्च देवर्षे वर्षे हैमवतं तथा।
क्रमेणैव व्यतिक्रम्य भारतं वर्षमासदत्॥
स देशान् विविधान् पश्यन् चीनहृणनिषेवितान्। श्रार्थावर्तमिमं देशमाजगाम
महामुनिः॥ (शां० श्र० ३२५)

इन क्लोकोंमें उत्तर श्रोर मेरु, द्विण् श्रोर हरिवर्ष, उसके द्विण श्रोर हैमवत श्रोर श्रन्तमें भारतवर्ष बतलाया गया है। ऐसी दशामें मेरुको साइवेरियामें ही कल्पित करना चाहिए। इसके सिवा चीनो श्रोर हुण, इन दो जातियोंके लोग, श्रार्यावर्त श्रोर मेरुके बीचमें रहते थे। इसमें सन्देह नहीं कि ईसवी सन्के ३०० वर्ष पहलेके लगभग ये हुए श्रोर चीनी एक दूसरेके पड़ोसमें हरिवर्षमें रहते थे। चीनका पुराना इतिहास यह वतलाता है कि, हुए लोग चीनकी सरहद पर रहते थे। इससे यह श्रच्छी तरह मालूम हो जायगा कि, श्रार्य लोगोंको ईसवी सनके पहले ही इन हुए लोगोंका कैसा श्राम्य थे लोग चीनके उत्तर पश्चिम श्रोर थे।

महाभारत-कालमें भारतवर्षका पूर्ण ज्ञान ।

जब कि भारतवर्षके बाहरके देशोंका बहुत कुछ ज्ञान यहाँके लोगोंको महाभारतः कालमें था, तव फिर इसमें कोई श्राक्षर्य-की वात नहीं कि, स्वयं भारतवर्षका बात महाभारत-कालमें उनको सम्पूर्ण श्रीर विस्तृत रूपसे था। वेद-कालमें आयोंको पञ्जाब श्रीर मध्यदेशका ज्ञान था। किर आगो चलकर धीरे धीरे उन्हें सारे देशकी जानकारी हो गई; श्रोर महाभारतसे जात पडता है कि उस कालमें उनको इस देशका सम्पूर्ण ज्ञान हो गया था। कितने ही लोगोंने यह तर्क किया है कि, पाणिनिक कालमें दिच्छिणके देशोंका विशेष शान न था। यह सम्भवनीय जान पड़ता है। पाणिनिका काल ईसवी सन्के ६००-६०० वर्ष पूर्व माननेमें कोई हर्ज नहीं। इस कालके वाद वुद्धके समयतक दिल्ए श्रोर ठेठ कन्याकुमारीतक भारतीय श्रायी का फैलाव हो गया था श्रीर उनके राज्यभी स्थापित हो चुके थे। विशेषतः चन्द्रवंशी श्रार्य भोजों श्रौर यादवोंने दित्तणमें निवास किया था; श्रोर वहाँ वैदिक धर्म पूर्णत्या स्थापित हो गया था। यह बात निर्विवाद है कि, बौद्ध धर्मके पहले, बैदिक-धर्मक

द्विणमें पूर्ण साम्राज्य था। घो० रिस्ट-हेविड्सने लिखा है कि—"दिच्या देशमें सीलोनतक ईसवी सन्के २०० वर्ष पहले-तक आर्योका प्रसार न हुआ था; क्योंकि तिकाय नामक बौद्ध-प्रनथमें विन्ध्याचलके द्विण श्रोरके लोगोंमेंसे किसीका नाम नहीं है। सिर्फ एक गोदावरीके तीरका राज्य सोलह राज्योंकी स्चीमें पाया जाता है। दिच्या भारतका नाम इसमें है ही नहीं। उड़ीसा, वङ्गाल और द्विणका भी नाम नहीं है। निकाय-प्रत्थके समय. हित्त् एमें, श्रायोंका फैलाव हुआ। विनय-ग्रन्थमें भरकच्छ (भड़ीच) का नाम है: श्रीर उदानश्रन्थमें शूर्पारक (सोपारा) का नाम है।" परन्तु यह कथन बिलकुल भ्रमपूर्ण है। निकाय-प्रनथमें द्त्रिण श्रोर-के देशोंका नाम यदि नहीं आया, तो इतनेसे ही यह कहना कि, द्त्तिण श्रोरके देश मालूम नहीं थे, विलकुल भूलकी बात है। उल्लेखाभावका प्रमाण चाहे देखने-में सुन्दर जान पड़ता हो, परन्तु है वह बिलकुल लँगड़ा। जवतक यह निश्चय न हो कि, जिस अन्थमें उल्लेख नहीं है उसमें उसका उल्लेख होना श्रावश्यक ही था, तब-तक इस प्रमाणकी कुछ भी कीमत नहीं है। बौद्धोंके निकाय श्रथवा विनय प्रन्थ धार्मिक ग्रन्थ हैं। ये कुछ इतिहास अथवा भूगोलके प्रन्थ नहीं हैं; श्रतएव इन प्रन्थों-में उल्लेखका न होना किसी प्रकारका सिद्धान्त निकालनेके लिए प्रमाणभूत श्राधार नहीं हो सकता। इससे यह किसी मकार सिद्ध नहीं होता कि द्विण श्रोर-का ज्ञान उस समय था त्रथवा नहीं था। परन्तु हम पहले ही देख चुके हैं कि अलेक्ज़िएडरके पहलेसे भारतीय आर्योको

परन्तु हम पहले ही देख़ चुके हैं कि श्रलेक्ज़ेगडरके पहलेसे भारतीय श्रायोंको दिल्ला श्रोरका ज्ञान था;श्रोर इसके श्रस्ति-पत्तका सबल प्रमाण भी मौजूद है। स्निकन्दरके साथ श्राये हुए इरेटॉस्थनीस श्रादि भूगोल प्रन्थकारोंने लिख रखा है कि भारतवर्षकी पूरी जानकारी, लम्बाई-चौड़ाईके परिमाण सहित, अलेक्ज़ेरडर-को पञ्जावमें प्राप्त हुई थी। वही जान-कारी इरेटॉस्थनीसने अपने अन्थमें लिख रखी है। कन्याकुमारीसे सिन्धुनदके मुख-तककी जो लम्बाई उसने दी है, वह श्राजकलकी प्रत्यच स्थितिसे प्रायः विल-कुल मिलती है। यह देखकर जनरल कर्नि-गहमको वड़ा श्राश्चर्य हुआ: श्रीर उन्होंने लिख रखा है कि, सिकन्दरके समयमें भी भारतीय लोगोंको अपने देशके आकार श्रीर लम्बाई-चौडाईका सम्पूर्ण ज्ञान था। मतलव यह है कि ईसवी सन्के =०० वर्ष पहलेके बाद, अर्थात् पाणिनिके वाद परन्तु सिकन्दरके पहले, दित्तणमें आयों-का फैलाव हो गया: स्रोर पांड्य इत्यादि श्रार्य राज्य भी वहाँ स्थापित हो गये। महाभारतके भीष्मपर्वमें भारतवर्षका जो वर्णन दिया हुआ है, उसमें भारतवर्षके कन्याकुमारीतकके सब राज्य दिये हुए हैं। यह भाग भूगोल-वर्णनका ही है। इस भागमें यदि किसी देशका नाम न श्राया हो, तो श्रवश्य ही यह श्रनुमान करनेके लिए स्थान है कि वह देश महा-भारत-कालमें ईसवी सन्के २५० वर्ष पहलेके लगभग ऋस्तित्वमें नहीं था। महा-भारतके भोष्म-पर्वके ६ वें ऋष्यायमें भरत-खरडके वर्गानमें सम्पूर्ग देशकी नदियों, पर्वतों श्रोर देशोंकी सूची दी हुई है। इस सुचीका हमारे लिए यहाँ वड़ा उपयोग था। परन्तु दुर्भाग्यसे वह सूची सिल-सिलेवार दिशात्रोंके क्रमसे नहीं दी गई है; श्रतएव यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे देश कौनसे श्रौर कहाँ हैं, प्रथवा थे । तथापि महाभारतमें ग्रन्य सेंकड़ों जगह भूगोलिक उल्लेख हैं। उन सबका उल्लेख करके उपयोग

श्रसम्भव ही है। परन्तु जितना हो सका है, प्रयत्न करके, विशेषतः तीर्थयात्राके वर्णानकी सहायतासे हमने यह निश्चित किया है कि देशों, निद्यों श्रोर पर्वतोंकी स्थिति कैसी थी; श्रोर उसके श्रनुसार भारतवर्षका महाभारत-कालीन नकशा भी तैयार किया है। उन सबका वर्णान श्रागे किया जायगा।

सात कुलपर्वत अथवा

महाभारत (भीष्म पर्व, श्रध्याय ६) में हिमालय पर्वतके श्रितिरिक्त भारतवर्षके निम्नलिखित सात मुख्य पर्वत बतलाये गये हैं।

महेन्द्रो मलयः सहाः शुक्तिमान् ऋत्तेवानपि। विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तेते कुलपर्वताः॥

इसमें बतलाये हुए कुलपर्वतीं अर्थात बड़े बड़े पर्वतोंकी श्रेणियाँ इस प्रकार हैं:-(१) महेन्द्रपर्वत-यह पूर्व श्रोर है। इसीसे महानदी निकलती है। इसीसे मिले हुए पूर्व श्रोरके घाट हैं। कहते हैं कि इसी पर परशुराम तपस्या करते हैं। (२) मलयपर्वत-यह पूर्वघाट श्रौर पश्चिम-घाटको जोड़ता है। इस कुलपर्वतमें नील-गिरि बड़ा शिखर है। (३) सहापर्वत, श्रर्थात् सहाद्रि, प्रसिद्ध ही है। यह महा-राष्ट्रमें है। इसकी श्रेणी व्यम्बकेश्वरसे नीचे पश्चिम-समुद्रके किनारेकी समा-नान्तर रेखामें मलाबारतक चली गई है। (४) शुक्तिमान्—यह कौन कुलपर्वत है. सो ठहराना कठिन है। शायद काठिया-वाड़के पर्वतकी यह श्रेणी होगी, जिसमें गिरनारका बड़ा शिखर है। इस पर्वतके जङ्गलोंमें अवतक सिंह मिलते हैं। (५) इसके आगेकी पर्वतश्रेणी ऋचवान् शायद राजपूतानेकी अराली पर्वतकी श्रेणी होगी। इसका मुख्य शिखर आवृका पहाड़ है। इसको अर्बुद्पर्वत भी कहते हैं। इसका

उल्लेख वनपर्व के = २वें अध्यायमें हिमा-लयपुत्र अर्वुदके नामसे आया है। (६) विनध्यका पर्वत प्रसिद्ध ही है। यह नर्मत्। के उत्तर बड़ौदा प्रान्तसे पश्चिम पूर्व फैला है। उत्तर श्रोर गंगाके किनारेतक थोड़ी सी विन्ध्यादिकी श्रेणी गई है। मिर्ज़ीपुर के पास विनध्यवासिनी देवी इसी पहाड़. की एक टेकरी पर है। (७) श्रव यह निश्चित करना चाहिए कि पारियात्र पहाड़ कौन सा है। इसके विषयमें बहुत ही मतभेद दिखाई देता है। कितने ही अर्वाचीन प्रन्थे में लिखा है कि बिन्ध्यके पश्चिम भागको पारियात्र कहते हैं। परन्तु यदि ऐसा हो तो विनध्य और पारियात्र नामके दो भिष् भिन्न कुलपर्वत कैसे हो सकते थे? हमारे मतसे पारियात्र पर्वत सिन्धु नदीके श्रागे का पर्वत होना चाहिए। इस श्रेणीको श्राजकल सुलेमान पर्वत कहते हैं। यात्राकी परिसमाप्ति वहाँ होती है, इसी विचारसे उसका पारियात्र नाम पड़ा होगा। महा-भारत कालमें इस पर्वततक आयों की बसी थी। फिर कई शताब्दियोंके बाद उधर मुसलमानोंकी प्रबलता हुई, श्रतएव वहाँ-तक हिन्दू लोगोंकी यात्रा न होने लगी। तब इस विषयमें मतभेद उत्पन्न हुआ कि पारियात्र पर्वत कौनसा है; श्रीर शायर इसीसे विनध्य पर्वतको ही पश्चिम भागमे पारियात्र कहने लगे होंगे। रामायणमे किष्किन्धा कांडमें जो भूवर्णन दिया हुआ है, उसमें पारियात्र पर्वत सिन्धु नदीके श्रागे वतलाया गया है। जो हो, इस प्रकार ये मुख्य सात कुलपर्वत हैं। इनके अतिरिक्त इस भूवर्णनमें वतलाया गया है कि, श्रीरभी श्रानेक छोटे श्रथचा बड़े पर्वत हैं।इन श्रत्य पर्वतोंमें, महाभारतमें जिनका नाम श्राया है ऐसा एक रैवतक पर्वत है। यह द्वारका के पास है। गुक्तिमान् पर्घतकी यह शाबा होगी। इसके सिया नर्मदा और तारीके

बीचके वर्तमान सतपुड़ा पर्वतके विषयमें भी कहीं कहीं उन्नेख पाया जाता है। हिमालयके गन्ध्रमादन श्रीर कैलास पर्वतका भी महाभारतमें वहुत वर्णन है।

भारतके लोग अथवा राज्य।

भीष्मपर्वमें यह स्पष्ट कहा है कि, भारतवर्षमें महाभारत कालमें तीन प्रकार-के लोग थे। अर्थात् यह स्पष्ट कहा गया है कि आर्य लोग, म्लेच्छ लोग और दोनों-के मिश्रणसे पेदा हुई जातियाँ रहती थीं। परन्तु आगे देशोंके जो नाम दिये हैं, उनमें यह श्रलग नहीं वतलाया है कि शार्य कौनसे हैं, म्लेच्छ कौनसे हैं श्रीर मिश्र लोग कौनसे हैं। यह एक बड़ी न्यूनता है। सम्भव है कि उस समय यह वात पूर्णतया मालूम थी, श्रतएव उस समय उसका कुछ विशेष महत्व न समभा गया होगा। हाँ, यह उत्तर श्रोरके म्लेच्छ श्रवश्य श्रलग बतलाये गये हैं। परन्त वे भी भारतवर्षके बाहरके हैं। इससे यह निश्चित करना हमारे लिए कठिन है कि, भारतवर्षके भीतर म्लेच्छ देश कौनसे थे। फिर भी अन्य प्रमाणोंसे हम इस गतके निश्चित करनेका प्रयत्न करेंगे। इल १५६ देश भारतवर्षमें वतलाये गये है। दिच्या भारतमें ५० देश श्रीर उत्तर श्रीर म्लेच्छ देशके श्रातिरिक्त २६ देश बत-लाये गये हैं। उनके नाम बतलानेके पहले यर बात हमारे ध्यानमें श्रानी चाहिए कि, रन देशोंके नाम सिलसिलेवार अथवा पूर्व-पश्चिम इत्यादि दिशाश्चोंके श्रवरोधसे भी नहीं बतलाये गये हैं। इस कारण, अनेक विषयोंमें हम इस वातका निश्चय नहीं कर सकते कि, ये देश अथवा लोग कीन हैं। उनकी सूची हम आगे देते हैं। उनमें जितनेका हमको निश्चयपूर्वक बोध इया, उतनेका हम यहाँ निर्देश करते हैं। इस सूचीसे एक यह वात वतलाई जा सकेगी कि, साधारणतः जिस देशमें श्रार्योकी श्रिवक प्रवलता थी, उस भरत-खंडकी सीमा दित्तणकी श्रोर बहुत ही हूर, अर्थात् गोदावरीके आगेतक, फैली हुई थी। श्रर्थात् वर्तमान महाराष्ट्र देश उस समय भरतखंडमें शामिल माना जाता था। दिचण श्रोरके लोगोंकी जो सूची दी हुई है, उसके सम्बन्धमें एक बड़े महत्वकी वात ध्यानमें रखने लायक यह है कि, यदि साधारण तौर पर गोदावरीके मुख से पश्चिम श्रोर वस्वईतक एक रेखा खींची जाय, तो उसके नीचे दक्तिण श्रोर-के देश आते हैं। हम इन देशोंकी सुचीसे श्रोर दिग्विजयमें उल्लिखित देशोंको सूची-से तुलना करेंगे; श्रौर महाभारत कालमें अर्थात् चन्द्रगुप्तके समयमें जो देश अथवा लोग प्रसिद्ध थे, वे कौन थे, इसका विचार करेंगे।

पूर्व आरके देश।

पहले हम कुरुसे प्रारम्भ करेंगे। इस-को इस सूचीमें कुरु-पांचाल कहा है। कुरुपांचालोंकी राजधानी हस्तिनापुर थी। वह गंगाके पश्चिम किनारे पर थी। इनके पूर्व श्रोर पांचालोंका राज्य था। श्रादि पर्वमें यह वर्णन है कि, द्रोणने इस देश-का श्राधा भाग जीतकर कौरवोंके राज्यमें शामिल कर दिया था। पांचाल देश गंगा-के उत्तर श्रोर श्रीर दक्षिण श्रोर यमुना-तक था। गंगाके उत्तर श्रोरका भाग द्रोण-ने जीतकर कौरव-राज्यमें शामिल किया: श्रौर गंगाके द्विएका भाग दुपदके लिए रखा। शामिल किये हुए भागकी राज-धानी श्रहिच्छत्रपुरी थी। यह श्रहिच्छत्र नगर पूर्व कालमें प्रसिद्ध था; श्रौर वर्तमान रामपुरके पास था। ऐसी दंतकथाएँ प्रच-लित हैं, जिनसे जान पड़ता है कि, यहाँ- के हजारों ब्राह्मण दिल्ला श्रीर पूर्व श्रीर बङ्गाल श्रीर मैस्रतक गये हैं। द्वपदके लिए जो राज्य रह गया, उसमें गंगाके तीर पर माकन्दी श्रीर कांपिल्य नामक दो शहर थे।

राजासि द्विणे तीरे भागीरश्याहमुत्तरे। इत्यादि (श्रादिपर्व श्र० १३८) श्लोक देखिये। इसके बाद पूर्व ग्रोर दूसरा राज्य कोसल था। इसके भी दो भाग उत्तरकोसल श्रीर दित्तणकोसल थे। उत्तरकोसल गंगाके उत्तर श्रोर श्रीर दिवाण कोसल दक्तिण त्रोर, विन्ध्यपर्वततक था। श्रयोध्याके नष्ट होने पर उत्तरकोसल-की राजधानी विनध्यपर्वतमें कशावती थी। इसके पूर्व श्रोर मिथिलराज्य था। उसकी पश्चिमी सीमा सदानीरा नदीथी। मिथिल देश गंगातक न था। गंगाके किनारे पर काशीका भी राज्य था। काशीके दिवाण श्रोर मगधींका राज्य था। यह राज्य बहुत ही उपजाऊ श्रीर जनसंख्यामें भी वढ़ा इश्रा था। इन मगधौकी राजधानी उस वक्ततक पाटलिपुत्र नहीं थीं; किन्तु राजगृह अथवा गिरिवज थी। इसके श्रासपास पाँच टेकरियाँ हैं। उनपर जो पुरानी इमारतें हैं, उनसे श्रव भी उसका परिचय मिलता है। महाभारतके आदि पर्वमें यह बतलाया गया है कि मगधीं के राज्यको वसुके एक पुत्र वृहद्श्वने स्थापित किया था। हस्तिनापुरसे अर्जुन, भीम श्रीर कृप्ण जब जरासन्धको मारनेके लिए राजगृह अथवा गिरिवजकी श्रोर चले, तब उन्हें जो देश, निदयाँ इत्यादि पार करनी पड़ीं, उनका महाभारतमें बहुत सुदमतासे वर्णन किया गया है, जो यहाँ देने योग्य है। वे कुरु-जांगल देशसे रम-णीय पद्मसरोवर पर आये। इसके वाद उन्होंने कालकूट पर्वत पार किया। महा-शोण भ्रौर सदानीरा नदी उतरकर वे

सरयू नदी पर आये। वहाँसे उन्होंने पूर्वः कोसल देशमें प्रवेश किया। इसके वाद वे मिथिला श्रौर माला देशोंमें गये; श्रौर चर्मएवती, गंगा तथा शोणनद उत्तरकर उन्होंने पूर्व दिशाकी श्रोर पयान किया। तब वे मागध देशमें पहुँचे। इसके श्रामे उन्हें गोरखपर्वत मिला। वहाँ सब समय गौएँ चरा करती थीं; श्रौर विपुल जलके भरने थे। उस पर्वत पर चढ़कर उन्होंने मागधपुर गिरिवज देखा । (सभा पर्व अ० ११६) गिरिवजकी राजधानी वद्त कर पाटलिपुत्र राजधानी गंगा पर महा-भारत कालके पहले ही वसी थी; परन महाभारतमें उसका विलकुल ही वर्णन नहीं है। अवश्य ही यह आश्चर्यकी बात है। परन्तु वहाँ उस समय बौद्ध राजा थे इसलिए प्राचीन राजधानीका ही उन्नेस महाभारतमें किया गया है।

यहाँ आर्थ देशोंकी सीमा समाप्त हुई। यह स्पष्ट जान पड़ता है कि इसके पूर्व श्रोर, श्रर्थात् वर्तमान बङ्गाल प्रान्तम् मिश्र आर्य थे। ये देश अंग, वंग, कलिंग नामसे प्रसिद्ध हैं। ऐसा माना जाता था कि इन देशों में जाने से ब्राह्मण पतित होता है। श्रांदि पर्न श्रध्याय १०७ में यह वर्णन किया गया है कि दीर्वतमा ऋषिके अंग,वंग, कलिंग, प्राइ और सहा नामक पाँच पुत्र, वलिकी स्त्रियोंके पेटसे, उत्पन्न हुए। इस वृत्तान्तसे ही सिद्ध होता है कि यहाँके ऋार्य मिश्र ऋार्य हैं । श्रंग, वंग, कलिंगको श्राजकल चम्पारन, मुर्शिता बाद श्रोर कटक कह सकते हैं। पौरह श्रीर सुहा दोनों देश महाभारतकी स्वीमे नहीं मिलते। यह श्राश्चर्यकारक है। करी चित् महाभारत कालमें ये देश भारत खएडके बाहरके माने जाते होंगे । इनके सिवा पूर्व श्रोरके श्रोर भी देश बतलावे गये हैं। वे ताम्रलिप्तक और श्रोड़ हैं।

ताम्रलिप्ति शहर कलकत्तेके पास था। वह तामलक नामसे श्रीक लोगोंको मालूम था। श्रोड्र श्राजकलका उड़ीसा है। उत्कल लोग भी उड़ीसेके पास ही वसते थे; श्रीर श्रव भी पश्चगौड़ ब्राह्मणीं-में उत्कल ब्राह्मणींकी एक जाति है। इससे उत्कल लोगोंका श्रस्तित्व बङ्गालकी श्रोर श्रव भी दिखाई देता है। प्राग्ज्यो-तिष लोगोंका राजा भगदत्त भारती-युद्ध-में मौजूद था। प्राग्ज्योतिष देश श्राज-कलका श्रासाम है। श्राश्चर्यकी वात है कि भरतखराडकी सूचीमें इसका नाम भी नहीं है। कदाचित् सुद्धाकी तरह यह भी महाभारत-कालमें भरतखराडके वाहर समभा जाता हो । यही हाल मिणपूर श्रथवा मिएामन देशका है। श्रर्जुन इस रेशमें श्रपने पहले वनवासके समय गया था। वहाँ उसे चित्राङ्गदा नामक स्त्री मिली श्रीर वभ्रवाहन नामक लड़का हुआ। उस मिणपूर राज्यका इसमें नाम नहीं है। वह शायद म्लेच्छ देश था। यहाँ पर स्पष्ट वर्णन है कि द्रांग, वंग, कलिंगके श्रागे जब श्रर्जुन जाने लगा तब उसके साथके ब्राह्मण लीट श्राये।

श्रव हमें यह देखना चाहिए कि पूर्व दिशाकी श्रोर भीमके दिग्विजयमें कौनसे देश बतलाये गये हैं। सभा पर्वमें कहा गया है कि पुमाल, कोसल, श्रयोध्या, गोपालकच्च, मह्म, सुपार्थ्व, मलङ्ग, श्रन्य, श्रम्य, बत्स, मिणिमान, शर्मक, वर्मक, विदेह (मिथिला), शकवर्वर, सुह्म, मागध, देण्डधार, श्रंग, पुरुष्ट्र, वंग, ताम्रलिप्त, लौहित्य इत्यादि देश उसने जीते। इनमेंसे कितने ही देशोंका उल्लेख ऊपर किया ही गया है। परन्तु कुछके नाम महाभारतकी सुचीमें नहीं हैं।

दिचिए श्रोरके देश। अब हम दक्तिएकी श्रोर श्राते हैं। कुरुचेत्रसे दित्तण श्रोर चलने पर पहले-पहल हमें ग्रूरसेन देश मिलता है। इसकी राजधानी मथुरा यमुनाके किनारे प्रसिद्ध ही है। उसके पश्चिम स्रोर मत्स्य देश था। मत्स्य देश जयपुर श्रथवा श्रलवरके उत्तर श्रोर था। इसकी राजधानी क्या थी, सो नहीं बतलाया जा सकता। विराट पर्वमें यह वर्णन है कि जब पांडव श्रज्ञातवासके लिए निकले, तव वे गङ्गाके किनारेसे नैर्ऋत्यकी श्रोर गये। जान पड़ता है कि यह खास तौर पर लोगोंको वहकानेके लिए होगा। वे श्रागे यमुनाके द्विण तीरके पर्वत श्रीर श्ररण्यको लाँघ-कर, पाञ्चाल देशके दित्तण श्रोरसे श्रीर दशार्ण देशके उत्तर श्रोरसे, यकुलोम श्रीर श्र्रसेन देशोंसे मृगोंका शिकार करते हुए श्रीर यह कहते हुए कि हम वहेलिये हैं. विराट देशको गये । इससे यह जान पडता है कि दशार्ण देश श्रीर यक्तन्नोम देश यहीं कहीं पास ही होंगे। इसके बाद कुन्ति-भोजोंका देश चर्मण्यती नदी पर था। यह श्राजकलके ग्वालियर प्रान्तमें है *। इसके बाद निषध देश हमारे घ्यान-में श्राता है। यह निषध देश राजा नल-का है। यह देश आजकल नरवर प्रान्त, जो कि संधिया सरकारके अधिकारमें है. माना जाता है। नल-दमयन्ती आख्यानमें भी, निषधसे वनमें जाने पर, नलने दम-यन्तीसे यह कहते हुए कि तुम श्रपने बापके घर विदर्भको जात्रो, जो मार्ग

^{*} वनपर्वसे २०० वें श्रध्यायमें कर्णजन्मकी कथा है। उसमें यह वर्णन हैं िक, कर्णको पेटीमें रखकर वह पेटी श्रश्चनदीमें डाल दी गई थी। वह फिर वहाँसे चर्मणवती नदीमें गई। वहाँसे वह यमुनामें, यमुनासे गङ्गामें गई श्रीर गङ्गासे चम्पादेश (श्रङ्ग) में श्रीधरथको मिली। इस वर्णनसे यह जान पड़ता है िक, कुन्तिभोज देश चम्बल नदीसे मिला हुआ दिल्पकी श्रोर था। खालियर रियासतके कोतवाल स्थानको लोग कुन्तिभोजपुर मानते हैं। यह उपर्युक्त वर्णनसे सच जान पड़ता है।

दिखलाया है, यह भी इसी देशके लिए उपयुक्त होता है। निषधसे दक्षिणकी श्रोर जो मार्ग दिखलाया है, वह श्रवन्ती श्रीर भ्रम्वान पर्वतको पार करके विनध्य महाशैल और पयोष्णी नदीकी और दिखलाया है। ऋचवान् पर्वत राजपूताने-में है। परन्तु निषध देशके दिज्ञणकी श्रोर उसकी श्रनेक शाखाएँ गई हैं। उन शाखाश्रोंको पार करनेके बाद श्रवन्ती देश मिलता है। श्रवन्ती देश आजकलका मालवा है। श्रवन्ती देशको पार करने पर विन्ध्य पर्वत है। श्रीर विनध्यके श्रागे नर्भदा नदी है। पर यहाँ नर्भदा नदीका नाम नहीं दिया है; किन्तु पयोष्णीका बतलाया है: सो शायद इसलिए बत-लाया होगा कि वह विदर्भके पासकी है। अवन्ती तो मालवा और उज्जयिनी है. इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। परन्त विदर्भ देश कौनसा है, इस विषयमें शङ्का श्रथवा मतभेद है। कितने ही लोग मानते हैं कि वर्तमान बरार ही विदर्भ है। इस विदर्भकी राजधानी भोजकट कही गई है इसकी नदी पयोष्णी मानी गई है। भोज-कट, पयोष्णी और विदर्भ, तीनों वातें विन्ध्यके पश्चिम श्रोर नर्मदाके उत्तर भी मानी जाती हैं। यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि उन्हीं देशों श्रीर नदियोंके नाम दो दो बार श्रौर तीन तीन बार भी श्राये हैं। इससे यह भी श्रनुमान निकल सकता है कि आर्य लोग जहाँ जहाँ गये, वहाँ वहाँ वे अपने पहलेके कुछ कुछ नाम श्रपने साथ ले गये। विदर्भका सम्बन्ध जैसे दमयन्तीसे मिलता है, वैसे ही रुक्मिणीसे भी मिलता है। हरिवंशमें यह वर्णन है कि श्रीकृष्ण जब रुक्मिणोको हरण करके लिये जाते थे, तब नर्मदा नदी पर ही रुक्मीसे उनकी भेंट हुई थी। श्राजकलका वरार यदि विद्र्भ माना

जायगा, तो यह स्पष्ट है कि श्रीकृषाको नर्मदा नदी पार करके जाना पड़ेगा। परन्तु वैसा करनेका वर्णन नहीं है। जो हो, यह विषय संशयित है, क्योंक रुक्मिणीके विषयमें दोनों स्थानोंमें अवतक दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। वरार प्रान्तक श्रमरावती नगरमें देवीका वह मिन् दिखलाया जाता है, जहाँसे श्रीकृणाने रुक्मिणीको, जब वह देवीके दर्शनोंको शह थी, हरण किया था। इसी प्रकार अवली के पश्चिम श्रोर विन्ध्याचलसे मिला हुआ त्रंबभरा नामक एक प्रान्त है। वहाँ भी देवीका एक मन्दिर है, जहाँ यह प्रसिद्ध है कि श्रीकृत्णने यहींसे रुकिमणीका हरण किया था। इसके सिवा एक तीसरा भी विदर्भ गोदावरीके दित्तण श्रोर किसी समय प्रसिद्ध होगा। मुसलमानोंके समय यह विदर्भ प्रसिद्ध था। फरिश्ताने त्रपने इतिहासमें लिख रखा है कि वेदर नाम उसी शब्दसे निकला है। यही नहीं, किन्त उसने नल-दमयन्ती श्रीर रुक्मिणी की कथाका भी वहीं उल्लेख किया है। शङ्करदिग्विजयमें भी सायगाचार्यने इसी विदर्भका उल्लेख इसी ठिकानेका किया है। महाभारतके अस्पष्ट वचनोंका विचार करते हुए हमारे मतसे यही जात पड़ता है कि महाभारत-कालमें बरार-विदर्भ श्रदश्य प्रसिद्ध होगा। इस विदर्भ के पास पूर्व श्रोर प्राक्तोसल नामका देश महाभारत और हरिवंशमें भी बतलाया गया है। विदर्भ देश साधारणतः दानि णात्य देशोंमें गिना जाता था। यह वात महाभारतमें उस समय कही गई है, जब कि रुक्मी अपनी सेना लेकर पाएडध् पत्तमें मिलने गया। उद्योग पर्वके १५६व श्रध्यायके प्रारम्भमें ही यह कहा है ^{कि} भोज वंशोद्भव द्तिण देशाधिपति भीषाक का विश्रुत पुत्र रुक्मी पाग्डवींकी ^{ब्रीर}

श्राया। इससे यही सिद्ध होता है कि यह विदर्भ देश दित्तिण देशों में ही था। इस देशकी राजधानी कुरिडनपुर थी; श्रीर भोजकट नामक एक दूसरा नगर हम्मीने बसाया था।

विदर्भका विचार करनेके वाद स्वभा-वतः ही हमारे सामने महाराष्ट्रका विचार उत्पन्न होता है। परन्तु महाराष्ट्रका नाम सम्पूर्ण महाभारतमें कहीं नहीं है। इससे कुछ यह नहीं माना जा सकता कि महाराष्ट्रका जन्म उस समय न था। यदि विदर्भ अर्थात् बरारमें भोजोंकी वस्ती हुई थी, तो यह माननेमें भी कोई हुर्ज नहीं कि महाराष्ट्रमें याद्वोंकी वस्ती उसी समय हुई थी। परन्तु उस समय महाराष्ट्रको वड़ा खरूप प्राप्त नहीं हुआ था। उसके छोटे छोटे भाग उस समय थे। इन भागोंके नाम महाभारतमें देशों-की सूचीमें आये हैं। यह कहनेमें हमको विलकुल शङ्का नहीं मालूम होती कि वे नाम रूपवाहित, अश्मक, पागडुराष्ट्र, गोपराष्ट्र और महाराष्ट्र हैं। विदर्भके वाद ही इस सूचीमें इनके नाम श्राये हैं। पाएडुराष्ट्र, गोपराष्ट्र और मह्मराष्ट्रका 'राष्ट्र' शब्द महत्वपूर्ण है। यही राष्ट्रिक नामसे, उसी समय श्रीर श्रागे भी प्रसिद्धि-को प्राप्त हुआ। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि श्रागे चलकर इन्हीं तीन राष्ट्रोंके मिल जानेसे महाराष्ट्र बना है। भोजोंके जैसे महाभोज हुए, वैसे ही राष्ट्रोंके महाराष्ट्रिक हुए। श्रन्य प्रमाणोंसे यह भी मालूम होता है कि इन देशोंका स्थान भी इसी महाराष्ट्रमें था। अगले अनेक लेखोंसे यह सिद्ध हुआ है कि अश्मक देश देवगिरिके आसपासके प्रदेशसे ही मिला हुआ था । हरिवंशके पूर्वार्धमे कहा है कि जब रुक्मीने बलरामके साथ यूत सेला, तब दाक्षिणात्य राजाभोने

श्रापसमें वलरामको जीतनेका सङ्केत किया। लिखा है उन राजाश्रोंमें मुख्य अश्मकाधिप था। अर्थात्, दित्त्एके आर्थ राज्योंमें अश्मक देश मुख्य था । बौद्ध अन्थोंमें भी अस्सक रूपसे द्विणके इन अश्मक लोगोंका उल्लेख किया गया है। मतलव यह है कि महाराष्ट्रके लोगोंमेंसे श्रश्मक मुख्य थे। कितने ही ताम्रपदों श्रौर लेखोंसे यह सिद्ध हुत्रा है कि गोपराष्ट्र नामक देश नासिकके श्रास-पासका प्रदेश है। पाग्डराष्ट्र भी उसीके पास होना चाहिए। मल्लराष्ट्र भी महा-राष्ट्रका एक भाग होगा । इन चारी-पाँचों लोगोंके एक लोग बनकर वे महा-राष्ट्र नामसे प्रसिद्ध हुए; और उनकी भाषा महाराष्ट्रीय नामसे प्रसिद्ध हुई। यह वात महाभारत कालके वाद ईसवी सन्के पहले ही हुई होगी । इस स्वीमें महाराष्ट्रका नाम नहीं है, इसलिए यह भी माना नहीं जा सकता कि महाराष्ट्री प्राकृत भाषा इससे पहले श्रथवा इस समय उत्पन्न न हुई होगी। क्योंकि यह स्पष्ट है कि राष्ट्रका नाम लोगोंके विषयमें इस समयमें ही प्रसिद्ध था।

त्रव गुजराती लोगों श्रौर गुजरात देशके विषयमें विचार किया जायगा। इनका नाम स्वीमें विलकुल नहीं है। इससे यही मानना पड़ता है कि गुर्जर लोग गुजरातमें महाभारत कालतक नहीं श्राये थे। वर्तमान गुजरात प्रान्तके जो देश इस स्वीमें दिखाई देते हैं, वे सिर्फ श्रानर्त श्रौर खराष्ट्र हैं। यह बड़े श्राश्चर्यकी वात है कि सुराष्ट्र नाम भी इस स्वीमें नहीं है। इससे यह नहीं माना जा सकता कि सुराष्ट्र नाम महा-भारत कालके वाद उत्पन्न हुश्रा; क्योंकि सुराष्ट्र नाम महाभारतमें श्रनेक श्रन्य जगह पाया जाता है। यन पर्वमें श्रौम्यने

जो तीर्थयात्रा बतलाई है, उसमें प्रभास-तीर्थ सुराष्ट्र देशमें ही समुद्र किनारे पर बतलाया है। इससे जान पड़ता है कि सुराष्ट्र काठियावाड़ ही है। श्रव श्रानर्त देश कौनसा है ? इस विषयमें थोड़ासा मत-भेद होगा । परन्तु आनर्त आजकलका उत्तर गुजरात देश हैं: क्योंकि धौम्यके बतलाये हुए इसी तीर्थयात्राके वर्णनमें, पश्चिम श्रोरके श्रानर्त देशमें पश्चिमवाहिनी नर्मदा नदी बतलाई गई है। अतएव श्राजकलके गुजरातके मुख्य देश श्रानर्त श्रीर सुराष्ट्र उस समयके प्रसिद्ध देश हैं। इनमें आयोंकी वस्ती वहत प्राचीन कालमें हो गई थी। यह सम्भव नहीं कि ऐसा उपजाऊ देश वहुत समयतक श्रायीं-की बस्तीके विना बना रहे। अर्थात , यहाँ-की आर्य बस्ती बहुत पुरानी है। जिन गुर्जर लोगोंने इस देशको कालमें अपना नाम दिया है, वे लोग अवश्य ही उस समयतक इस देशमें नहीं श्राये थे, ऐसा अनुमान निकालनेके लिए स्थान है। इस प्रश्नका इस प्रन्थसे कोई सम्बन्ध नहीं, कि गुर्जर लोग आगे चल-कर कव आये; और वे आर्य थे अथवा श्रायेंतर थे। अतएव हम इस प्रश्नको यहीं छोड़े देते हैं। हाँ, इतना अवश्य ही अपना मत हम यहाँ लिख देते हैं कि वे श्रार्य हैं श्रीर ईसवी सन्के ४०० वर्ष पूर्व इस प्रान्तमे श्राये।

समुद्रके किनारे किनारे उत्तरसे नर्मदातक श्रायोंकी वस्ती हो गई थी। यही नहीं, किन्तु महाभारत कालमें नर्मदाके दिल्ला श्रोर वर्तमान थाना प्रान्ततक भी वस्ती हो गई थी। इस श्रोरके दो देश महाभारतने उत्तर देशोंकी गणनामें परिगणित किये हैं। वे दो देश परान्त श्रोर श्रपरान्तका महाभारतके वादके श्रनेक ग्रन्थोंमें

श्राता है। इन श्रनेक प्रन्थोंसे यह मालुम होता है कि अपरान्त हालका उत्तर कोंकण है। अपरान्तका प्राचीन कालमें सूर्पारक था। उसको श्राजकल सोपारा कहते हैं। ग्रूपीरकका नाम प्राचीन बौद्ध प्रन्थोंमें भी प्रसिद्ध है। पाएडवोंकी तीर्थयात्राके वर्णनमें शूर्पारकका नाम आया है। लिखा है कि उन्होंने यहाँ यात्रा की; श्रीर भीतर सहाद्रिकी श्रोर जाकर परशुरामकी वेदी के दर्शन किये । परशुरामकी बस्तीका स्थान पूर्व श्रोर महेन्द्र पर्वत पर था; श्रोर वहाँ वैतरणी नदी तथा भूमिकी वेदी थी। परन्तु उपर्युक्त वर्णानसे यह जान पड़ता है कि परशुरामको अन्य सान पश्चिम किनारे पर महाभारत समयके पहले दिया गया था। अब भी इस जगह, श्रर्थात् सोपाराके पूर्व श्रोर पहाडमें, वैतरणी नदी श्रोर परशुरामकी वेदी वज्रेश्वरीके पास लोग दिखलाते हैं। तात्पर्य यह है कि ग्रंपरिक दोत्र बहुत पुराना है; श्रीर वह श्रपरान्तमें मुख्य था। श्रप-रान्तका नाम महाभारतमें अन्यत्र दो जगह श्राया हुश्रा है। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि श्रपरान्तसे मतलब थाना जिलेसे है। श्रौर इसी दृष्टिसे, परान्तको वर्त-मान सुरतका जिला मानना चाहिए। श्रपरान्ततक महाभारत कालमें श्रायोंकी वस्ती हो गई थी। द्रोण पर्वमें एक जगह एक ऐसे हाथीका वर्णन किया गया है, जो अपरान्तमें उत्पन्न हुआ था और जिसे वहाँके हस्तिशिचकोंने सिखाया इससे जान पड़ता है कि थाना जिले जङ्गलमें उस समय हाथी बहुत थे; लड़ाईके काममें वे बहुत प्रसिद्ध थे। कानडा जिले श्रीर मैसूरके जङ्गलमें भी हाथी मिलते हैं। जो दूसरा उल्लेख महाभारतमें अपरान्तके विषयमें है, वह

शान्ति पर्वके ३६वें श्रध्यायमें परशुराम-मित्रके सम्बन्धसे श्राया है। परशुरामने जब सारी पृथ्वी काश्यपको दान दे दी, तब कश्यपने उसको पृथ्वीके वाहर जानेके लिए कहा। उस समय समुद्रने उनके लिए शूर्पारक देश उत्पन्न किया। ततः शूर्पारकं देशम् सागरस्तस्य निर्ममे। सहसा जामदशस्य सोपरान्तो महीतलम्॥

इसमें यह स्पष्ट कहा है कि, ग्रंपरिक देश ही अपरान्त महीतल है। इससे जान पड़ता है कि अपरान्त देशकी ही ग्रंपरिक राजधानी है। और, अपरान्त देश वर्त-मान थाना जिलेका प्रदेश है, इस विषय-में बिलकुल शङ्का नहीं रहती।

इस जगह एक महत्त्वकी बात यह वतलाने लायक है कि, परशुरामका चेत्र श्रीर परश्रामके लिए समुद्रकी दी हुई जगह श्राजकल शूर्पारक नहीं मानी जाती. किन्त द्विण श्रोर कोंकणमें चिपलनमें श्रीर चिपलूनके आसपास मानी जाती है; श्रोर परशुरामका चेत्र श्रोर मन्दिर भी इस समय चिपलूनमें ही है। इस कारण द्विण कोंकण ही परशुरामका चेत्र माना जाता है; परन्तु महाभारतमें शूर्पारक भूमिको परश्रराम-चेत्र माना है। इसके श्रतिरिक्त श्रपरान्त देशकी गणना भरत-खएडके देशोंमें की गई है श्रीर कोंकएका नाम दित्तगके देशोंकी सुचीमें दिया गया है। इससे यह अनुमान निकलता है कि, महाभारत-कालमें आयोंकी वस्ती कोंकण-में नहीं हुई थी। उत्तर श्रोरसे, जब शर्पा-रक देशसे द्विणकी श्रोर कोंकणमें श्रायों की बस्ती गई, तब आयोंने परशुरामका थान ग्रुपीरकसे हटाकर दक्षिण कींकणमें किया। यही कारण है कि, श्रव श्रपीरकमें परश्ररामका चेत्र नहीं रहा । वर्तमान सोपारा एक ज्ञेत्र है। यह वसईके पास है। अर्थात्, ईसवी सन्के पहले ३०० वर्षके वाद बाह्यणोंकी वस्ती वसईसे चिप-ल्नकी ओर गई। पेरिप्तसके ग्रन्थमें लिखा है कि, सन् १५० ईसवीके लगभग थानेके पासके प्रदेशको आर्य देश कहने लगे। विचित्रता यह है कि; इसके बाद मुस-ल्मानों और पोर्चगीज़ोंके कप्रके कारण, इस देशमें ब्राह्मण वस्ती विलकुल ही नहीं रही। श्रागे चलकर मराठोंके शासन-कालमें वह फिर दिल्ला कोंकणसे उत्तर कोंकणमें आई। इतिहासमें यह परिवर्तन ध्यानमें रखने लायक है। अस्तुः दक्तिण श्रोरके जो देश वतलाये गये हैं उनमें कोंकण और मालव देश हमारे परिचयके हैं। घाटमाथाके मावले लोग शायद मालव होंगे। ये भी त्राजकलके श्रार्य हैं। मालव शब्द घाटमाथाके प्रदेशके लिए उपयुक्त होता है। ऐसे तीन प्रदेश भारत-वर्षमें हैं। सहाद्रिके घाटमाथे पर, तथा विनध्याद्वीके घाटमाथे पर श्रोर पञ्जाबके पास भावलपुर रियासतके पहाडोंके घाटमाथे पर-इन तीनों जगह मालव लोगोंका नाम पाया जाता है। दक्तिणके मालव मावले लोग ही होंगे। उत्तर श्रोर-का श्रीर पञ्जाबका मालव चुद्रक नामसे महाभारतमें अनेक जगह आया है: श्रीर इसीको ग्रीक इतिहासकार श्रॉक्सिडें" कहते हैं।

दित्त श्रीर प्रसिद्ध लोग चोल, द्रिवड़, पांड्य, केरल और माहिषक हैं। इनके नाम कमशः पूर्व पश्चिम किनारे के अनुसार, जैसा कि ऊपर कहा गया है, श्रव भी प्रसिद्ध हैं। चोलसे मतलव मदराससे हैं। चोलमएडल वर्तमान कारोमएडल है। उसके दित्तण श्रोर तंजीर ही द्रिवड़ है। पाएड्य श्राजकलका तिनेवली है। केरल त्रावनकोर है। माहिष मैसूर है। इतने नाम हम निश्चयपूर्वक ठहरा सकते हैं। वनवासी नाम भी श्रवतक प्रसिद्ध

है। यह देश मैसुरके उत्तर श्रोर है। वन-वासी ब्राह्मण श्रवतक प्रसिद्ध हैं। कहाड़-के पासका कुन्तल देश होगा। इनके श्रति-रिक्त, महाभारतकी दृ ित्य श्रोरकी सूची-के अन्य देश हम निश्चयपूर्वक नहीं बतला सकते। यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि, इस देशमें महाभारत-कालमें श्रायीं-की बस्ती हो चुकी थी। परन्तु शायद वह इतनी बड़ी न होगी कि इस देशकी द्राविड़ी भाषा वन्द हो जाती: श्रीर कृष्णा-के उत्तर श्रोरके प्रदेशकी भाँति वहाँ भी श्चार्य भाषाश्चोंका प्रचार हो जाता। यही कारण है महाभारत-कालमें यहाँ द्रविड-भाषा प्रचलित थी: श्रौर इसी लिए यह प्रान्त देशोंकी सूचीके हिसावसे महा-भारतमें त्रलग गिना गया है।

श्रव हम दक्षिण श्रोरके उन देशोंका विचार करेंगे जिनको दिग्विजयमें सह-देवने जीता था। इनमें अनेक देश हैं, जो भीष्म पर्वके देशोंकी सुचीमें नहीं हैं। नर्मदाके उत्तर श्रोर सेक श्रीर श्रपरसेक नामक दो देश बतलाये गये हैं। इसके वाद श्रवन्तिका नाम बतलाकर भोजकट श्रीर कोसलदेश वतलाये गये हैं। किष्क-न्धामें मेंद् श्रौर द्विविद् बानरोंके साथ युद्ध होनेका वर्णन है। इसके बाद माहि-ध्मती नगरी बतलाई गई है। यह नर्मदा पर होगी। श्रर्थात् सहदेव फिर लौट श्राये; श्रौर लिखा है कि, पहले बतलाये हुए लोगोंके अतिरिक्त उन्होंने कोंकणमें ग्रुपरिक, तालाकट (कालीकट), दएडक, करहाटक, श्रान्ध्र, यवनपुर भी जीते। यहाँ यवनपुरका उल्लेख कैसे इसका हमें विचार करना चाहिए। इति-हासमें यह प्रमाण मिलता है कि, अलेक-जेंडरकी चढ़ाईके बाद यवनोंने पश्चिम समुद्र पर दो तीन जगह शहर स्थापित किये थे। "सस्टॅव श्रॉपर्ट" ने "दक्षिणका

प्राचीन व्यापार" विषय पर (सन् १८% के मदरास जर्नलमें) एक लेख लिखा था। उसमें लिखा है कि—"अलेक्ज़ेंडरके बाद कराचीके पास, गुजरातमें, और माला बार किनारे पर तीन शहर स्थापित किये गये थे। अन्तके शहरका नाम व्यजनशम् था।" इसी शहरका नाम महाभारत कालमें भरतखग्डमें 'यवनपुर' प्रसिद्ध होगा, जिसे सहदेवने जीता था।

दित्तिणके इन लोगोंकी सुचीमें कुलु विचित्र लोगोंके नाम श्राये हैं; परन्तु वे दिग्विजयके वर्णनमें हैं। ऊपर वतलाये हुए वानरोंके श्रितिरिक्त एकपाद और कर्णशावरण लोग तथा पुरुषाद भी वतलाये गये हैं। महाभारत-कालमें ये लोग काल्पनिक ही माने गये होंगे। एक पैरके, कानसे श्रपनेको ढक लेनेवाले, और मजुष्योंको खानेवाले लोग महाभारत-काल में प्रत्यन्त न होंगे। इस कारण उनके नाम भीष्म पर्वकी सुचीमें नहीं दिये गये हैं।

पश्चिम ऋोरके देश।

श्रव यह देखना चाहिए कि पश्चिम श्रोरके देश श्रीर लोग कीनसे थे। पश्चिम श्रोरके देशोंकी सूचीमें सिन्धु, सौवीर श्रीर कच्छ देश हैं। सिन्धु श्राजकलका सिन्ध प्रान्त है। इसके श्रोर काठियावाइ-के बीचका प्रान्त सौबीर है, जो समुद्र किनारेसे मिला हुआ है। इसीमें कलका कराँची बन्दर होगा। इसीका नाम बाइविलमें श्रॉफीर कहा गया है। पश्चिम श्रोर इन्हीं प्रान्तोंसे समुद्रके द्वारा ख्य हेलमेल था। बाइविलमें कहा है कि सोना, मोर श्रीर वानर इन प्रान्तीस श्राया करते थे। कच्छ देश श्राजकलका कच्छ प्रसिद्ध ही है। इसका नाम अन्य भी दिया गया है। सिन्धु, सौवीर श्रीर कच्छके उत्तर श्रोर गान्धार देश सिन्धुक श्रागे था, यह भी प्रसिद्ध है। इसकी

वर्तमान राजधानी पेशावर है। पेशावर श्रथवा पुरुषपुरका नाम महाभारतमें नहीं श्राया। परन्तु गान्धारका नाम वरावर श्राता है। गान्धारके उत्तर श्रोर श्रोर सिन्धुके श्रागे काश्मीर देश भी प्रसिद्ध है। इसीके बीचसे सिन्धु नदी श्रोर सतन्त्र नदी वहती है। ये चारी-पाँचों देश पिश्चम श्रोरके नक्शेमें श्रन्तके देश हैं। श्रीर इनके नाम महाभारतके देशोंकी स्वीमें एक ही जगह दिये हुए हैं।

इनके इस पार, कुरुचेत्रके पश्चिम श्रोर, मरु श्रर्थात् मारवाड श्रीर पञ्जाव, श्राजकलके वड़े बड़े दो प्रान्त हैं। इनमें महाभारत कालमें सैंकड़ों प्रकारके लोग होंगे; श्रीर उनके बहुतसे नाम भी महा-भारतमें उ.गह जगह पाये जाते हैं। परन्त सबका ठीक टीक पता लगाना अत्यन्त कठिन है। नकुलके पश्चिम दिग्विजयमें ऐसा वर्णन है:--"रोहितिक पर्वतको पार करके उसने मत्तमयूरको जीत लिया; मरुभूमि, शैरीषक, महत्थ, दशार्ण, शिवि, त्रिगर्त, श्रम्बष्ट, मालव, पश्चकर्पट, वाट-धान देश जीते: श्रीर मद्र देशमें शाकल नगरमें जाकर उसने अपने मामा शल्य-को वशकर लिया।" इससे जान पड़ता है कि महाभारत-कालमें शाकल नगर प्रसिद्ध था। इस नगरीका उल्लेख ग्रीक लोगोंने भी किया है। इतिहासमें लिखा है कि, रस नगरमें श्रागे चलकर बड़े बड़े यवन राजाश्रों श्रीर कनिष्कादिकोंने राज्य किया। पञ्जाबके शाल्व श्रौर केकय लोग भी महाभारतमें बराबर उल्लिखित हैं: श्रीर तत्त्रशिला नगरीका भी बराबर उल्लेख किया गया है। परन्तु इनका नाम भोष्मपर्वके देशोंकी सूचीमें नहीं दिखाई देता। बाव्हिकोंका नाम महाभारतमें बारम्बार त्राता है। इसी प्रकार जुद्रकों-का नाम भी बारम्बार श्राता है। श्रलेक्-

ज़ेंडरने जब पक्षाब श्रोर सिन्ध प्रान्तोंको जीता, तब यहाँके श्रनेक लोगोंके नाम उनके इतिहासमें श्राये हैं। परन्तु नामों-का परिवर्तन श्रीक भाषामें हो गया है, श्रतएव उन नामोंका महाभारतकी सूची-के नामोंसे मेल बैठाना बहुत सम्भव नहीं है।

उत्तर श्रोरके लोग।

श्रर्जनके दिग्विजयके वर्णनसे उत्तर श्रोरके लोगोंका कुछ वर्णन किया जा सकता है। कुविन्द, श्रानर्त, तालकूट इत्यादि देशोंका वर्णन हो चुकने पर लिखा है कि, शाकलद्वीप श्रादि सप्तद्वीपों-के राजाश्रोंसे उसका युद्ध हुआ। यहीं यह भी लिखा है कि, प्राग्ज्योतिष देशके राजा भगदत्तको उसने जीता। श्रन्तिंरि श्रीर वहिर्गिरि इत्यादि लोगोंको भी उसने जीता। इसके बाद त्रिगर्त्त, दार्व, कोक-नद, काम्बोज, दरद इत्यादि लोगोंको जीता। काम्बोज और दरद अफगानि-स्तानमें श्रीर पश्चिम तिब्बतमें रहनेवाले लोग हैं। इसके आगे किंपुरुष, गुहाक इत्यादि काल्पनिक लोगोंका उल्लेख है। वहाँसे, लिखा है कि, श्रर्जुन हरिवर्षमें गया । श्रस्तुः कुरुपाञ्चाल देश प्रायः उत्तर श्रोर हिमालयसे मिला हुश्रा है। इससे, उसके आगे तिब्बत इत्यादि देशोंके विषय-जो वर्गान में, श्रर्जुनके दिग्विजयका श्राया है, उसे प्रायः काल्पनिक माननेमें कोई हर्ज नहीं दिखलाई देता। (शान्ति० थ्र**० २०३ में) कहा है कि, हिमा**-लयके दूसरे श्रोर श्राजतक किसीने नहीं देखा। इससे यह तर्क होता है कि, महाभारत-कालमें भारती श्रार्य हिमालय-के श्रागे तिब्बत देशमें न जाते होंगे। जाम्बुद्धीपकी जो कल्पना उन्होंने की है, उसमें हिमालयके श्रागेका वृत्तान्त उन्होंने सुनकर दिया होगा। श्रर्जुनके

दिग्विजयमें लिखा है कि वह हिमालय पार करके हरिवर्षमें गया था। वहाँ उसे एक नगर मिला। वहाँ हृष्पुष्ट श्रौर तेजस्वी द्वारपालोंने उसे पीछे हटा दिया: श्रीर यह कहा कि "इस शहरको तुम नहीं जीत सकते । इसके श्रागे उत्तरकुर-में मनुष्य-देहसे किसीका प्रवेश नहीं हो सकता।" इसके बाद उन्होंने, श्रपनी खुशीसे, अर्जुनको दिव्य आभरण और दिव्य वस्त्र इत्यादि यज्ञके लिए दिये (सभा० २० २=)। इससे जान पड़ता है कि तिब्बत देशमें भारती आर्य न केवल नहीं जाते थे. विक उनको वहाँ जाने ही न दिया जाता था। यह बात तो प्रसिद्ध ही है कि तिब्बत देशके लोग श्रवतक श्रपने देशमें किसीको न श्राने देते थे। श्रवश्य ही इस बीसवीं शताब्दीमें तिब्बत प्रान्त पर-कीय लोगोंके लिए कुछ न कुछ खुल गया है। उत्तर श्रोर उत्तर-कुरु रहते हैं, इस कल्पनाके लिए यही आधार देख पडता है कि, चन्द्रवंशी कुर लोग उत्तरकी श्रोर-से गङ्गाकी घाटियों में से आये थे। और इस विषयकी प्राचीन दन्तकथात्रोंसे यह धारणा दढ़ हो गई कि हमारी जन्मभूमि उत्तर श्रोर है। तथापि ये लोग तिब्बती न थे। श्रायोंका मूलस्थान उत्तर ध्रुवकी श्रोर था, यही सिद्ध है: श्रौर यह हमने पहले ही कहा है कि भारती श्रायोंका मुलस्थान कहीं न कहीं साइवेरियामें होगा। तथापि इतनी वात यहाँ श्रवश्य वतला देनी चाहिए कि, त्रिगर्त श्रथवा श्रानर्त इत्यादि लोग यदि उत्तरकी श्रोर फिर बतलाये गये हों, तो इसमें श्राश्चर्य नहीं : क्योंकि श्रायोंकी वस्ती उत्तरकी श्रोरसे ही द्विएकी श्रोर श्राई है। श्रतएव उत्तर श्रीरके लोगोंके नाम यदि दक्तिए श्रीरके लोगोंको फिर प्राप्त हो गये हों, तो इसमें श्राश्चर्यकी कोई बात नहीं।

उपर्युक्त वर्णनमें हमने यह विचार किया है कि, दिग्विजयके आधार पर भीष्म पर्वके देशोंकी स्चीके लोग भारत वर्षके भिन्न भिन्न भागों में किस प्रकार दिखलाये जा सकते हैं। जान पड़ता है मेगास्थिनीज़ने भारतवर्षके रहनेवाले लोगोंकी सूची तैयार की थी। लिखा है कि उस स्चीमें ११८ नाम थे। स्ट्रेबोने वह सुची अपने प्रन्थमें उद्भृत की है। मेगास्थिनीज़का अन्थ अब नहीं मिलता। परन्तु दुर्भाग्यसे स्ट्रेवोके ग्रन्थमें हमको यह सूची नहीं मिली। भीषम पर्वकी सूचीका वैगुएय हमने पहले ही वतलाया है। उसमें जो देश दिये हैं, उनके नाम किसी विशिष्ट अनुक्रमसे नहीं बतलारे गये हैं। वितक कुछ जगह केवल वर्ण सादश्यसे नाम एक जगह दिये हुए पाये जाते हैं। तथापि देशोंका क्रम लगानेका, जहाँ तहाँ हो सका है, प्रयत्न किया गया है। तङ्गण और परतङ्गण नामक दो देश अथवा लोग जो दक्तिएके लोगोंके अन्तर्मे दिये हैं, सो शायद भूलसे दिये गये हैं। यहाँ यह बतला देना चाहिए कि ये लोग उत्तर श्रोरके श्रर्थात् तिच्वतके हैं। वन पर्वके २५४ वें श्रध्यायमें, कर्राने दुर्योधन के लिए जो दिग्विजय किया था, उसका वर्णन संचेपमें दिया गया है। उसमें जो देश आये हैं वे इस प्रकार हैं:-प्रथम द्रुपदको जीतकर वह उत्तर श्रोर गया। वहाँ उसने नेपाल देश जीता। पूर्व श्रोर श्रंग, वंग, कलिंग, शुंडिक, मिथिल, मागध श्रौर कर्कखराडको जीता। फिर वह वत्सभूमिकी श्रोर चला। वहाँ जी केवल मृत्तिकायुक्त भूमियाँ थीं उन्हें उसने जीत लिया। इसके बाद मोहन नगर, त्रिपुर श्रीर कोशलको उसने जीता। त्व वह दित्तणकी श्रोर चला। वहाँ पहले रक्मीको जीता। फिर पाएइच च्रोर शैल

प्रदेशकी श्रोर चला। इसके वाद कोरल श्रीर नील देशोंको जीता। श्रनन्तर शिश्र-पालको जीतकर श्रवन्ति देशको जीताः और फिर वह पश्चिमकी और गया, तथा यवन श्रीर वर्वर लोगोंको कर देनेके लिए उसने बाध्य किया। इस छोटेसे दिग्वि-जय-वर्णनमें नवीन देश बहुतसे श्राये हैं: श्रतएव यह शङ्का होती है कि, क्या यह वर्णन महाभारतकी श्रपेचा श्रवीचीन तो नहीं है। तथापि ऐसा न मानकर रेशोंकी सुचीमें निम्नलिखित नाम श्रीर बढाने चाहिए:- उत्तर १ नेपाल पूर्व, २ ग्रिंग्डिक, ३ कर्कखगडः सध्यदेश ४ वत्स, प्रमोहन, ६ त्रिपुर, दान्तिण ७ शैल, = नील और पश्चिम श्रोर ६ वर्वर।ये नाम देशोंकी स्वीमें ऋलग बढ़ा दिये गये हैं।

नाद्याँ।

श्रव हम भारतकी निद्योंके विषयमें विचार करेंगे। इन निद्योंकी जो सूची भीष्मपर्वमें दी है, वह भी दिशाश्रोंके श्रनुरोधसे नहीं दी गई है, इधर उधरसे मनमानी दे दी है। श्रतएव यह निश्चित करना बहुत मुशकिल है कि वे निद्या कौनसी हैं। तथापि महाभारतके श्रन्य स्थानोंके उल्लेखों परसे हम कुछ भयल कर सकेंगे। पहले हम उत्तर श्रोरकी श्र्यात् प्रजावकी निद्योंका विचार करेंगे। श्र्यात् प्रजावकी निद्योंका विचार करेंगे। श्रम्येदके दसवें मण्डलमें नदीस्क है। उसमें बतलाई हुई निद्याँ श्रुप्वेदकालमें भिष्क थीं। उनके विषयमें यह कम देख पड़ता है कि वे पूर्व श्रोरसे पश्चिमकी श्रोर बतलाई गई हैं।

इमंमे गंगे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्यया।

इस स्कसे यह कहा जा सकेगा कि पाचीन कालमें श्रार्य लोग कहाँतक फैले इप थे। पहले गङ्गा, उसके पश्चिममें यमुना, वादको सरस्वती, फिर शुतुद्री, इसके बाद परुष्णी, फिर ग्रसिक्री, तद्न-त्तर मरुत्वृधा और विस्तता आती है। शुतुद्री श्राजकलकी सतलज है। परुष्णी श्राजकलकी ऐरावती अथवा रावी है। श्रसिक्री विपाशा श्रर्थात् श्राजकलकी व्यासा है; श्रौर वितस्ता भेलम है। मरुत-वृधा कौनसी नदी है, यह श्रमीतक श्रच्छी तरह निश्चित नहीं हुश्रा। सिन्धु-नद प्रसिद्ध ही है। कुमा कावुल नदी है; श्रौर गोमती तथा सुवस्तु श्रथवा स्वात सिन्धुके उस पारसे मिलनेवाली नदियाँ हैं। सरयुनदी पञ्जाबके उस पारकी है परन्तु वह इस सूक्तमें नहीं कही गई है। जेन्द्र प्रन्थमें उसका नाम 'हरयू' पाया जाता है। इसी प्रकार सरखती (हरहवती) नाम भी जेंद प्रन्थमें है। इन प्राचीन ग्रार्य नदियोंके नाम सरस्वती श्रौर सरयू उत्तर भारतकी नदियोंको प्राप्त हुए, इसमें आश्चर्य नहीं। रामायणके वर्णनसे हम यह कह सकते हैं कि, श्रश्वपतिका केकय देश रावी श्रौर विपाशाके बोचमें था। ग्रीक लोगोंने इन नदियोंके नाम विलक्त ही भिन्न कर दिये हैं। महाभारतमें लिखा है कि सरखती, शतदु श्रीर यमुनाके बीच हिमालयमें उत्पन्न हुई; श्रौर कुरुचेत्रसे जाते जाते महदेशके रेगिस्तानमें गुप्त हो गई। परन्तु महाभारतकालमें भी एक ऐसी दन्तकथा प्रचलित होगी कि वह नदी किसी समय पश्चिमकी श्रोर वहती हुई कच्छके रणसे श्ररव समुद्रमें जा मिली। इसका श्राने सरस्वती-तीर्थ-यात्राके वर्णनमें हम विस्तार-पूर्वक विचार करेंगे। पञ्जाव देशकी श्रन्य कीन कीन सी नदियाँ महाभारतकी नदियोंकी सूचीमें वतलाई हैं, यह वात हम इससे अधिक निश्चयपूर्वक नहीं बतला सकते। चन्द्रभागा नदी पञ्जाबकी है। इस नदीका यही नाम इस समय भी प्रसिद्ध है। यह नदी, जिसका पहले जिक श्रा चुका है, वैदिक श्रिसक्ती है। इसके सिवा दशद्वती नदी कुरु चेत्रमें सरस्वती श्रोर यमुनाके वीच वतलाई गई है। इस पुण्य नदीका वर्णन सरस्वती की समान ही किया गया है। सरस्वती श्रीर दशद्वतीके वीचका पुण्य-देश सबसे श्रिष्ठिक पवित्र हैं। श्रीर इसीको ब्रह्मार्ष देश मानते हैं।

श्रव हम इस बातका विचार करते हैं कि कुरुपांचालोंके पूर्व श्रोर कौन कौन-सी नदियाँ हैं। जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है, श्रोकृष्ण, भीम और श्रर्जन जब यहाँसे मगधको जाने लगे, तब उन्हें गएडकी, महाशोण श्रौर सदा-नीरा नदियाँ मिली थीं। इसके बाद उन्हें सरयू मिली । श्रयोध्याकी सरयू नदी प्रसिद्ध है। परन्तु सरयू श्रीर गङ्गाके बीच गएडकी, महाशोए श्रीर सदानीरा नदियाँ नहीं हैं। ये तीनों नदियाँ सरयके पूर्व और हैं। सरय और गङ्गाके बीच जो गोमती नदी है, सो यहाँ विलकुल ही नहीं बतलाई गई है। इस प्रकारका भ्रम उत्पन्न करनेवाले अनेक खल महाभारतमें हैं। गएडकी * श्रीर सदानीरा विहार प्रान्तकी

* गङ्गा गत्वा समुद्रांभः सप्तथा समपद्यत ॥१६॥ (श्रा० श्र० १७०)

'गङ्गा सप्तथा गत्वा' यह श्रर्थ करके टीकाकारने हिमालय-में ही सात गङ्गाएँ बतलाई हैं। वे इस प्रकार हैं:—त्रस्वोक-सारा, निलनी, पावनी, सीता, सिन्धु, श्रलकनंदा श्रीर चल्लु। पर इमारे मतसे ऐसा श्राशय दिखाई देता है कि, श्रगले श्रीकर्में बतलाई हुई नदियाँ सात ही है।

गङ्गा च यमुना चैव प्लज्ञजातां सरस्वतीम् । रथस्थां सरय्ं चैव गोमतीं गण्डकी तथा॥ अपर्यु पितपापास्ते नदीः सप्त पिवन्ति ये॥

गङ्गा, यमुना, प्लजावतरण तीर्थसे निकली हुई सरस्वती, रथस्था, सरमू, गोमती श्रीर गण्डकी—ये बड़ी निद्याँ हिमालयसे निकलकर एकत्र होकर समुद्रमें जा मिलती हैं। श्रादिपर्वमें दी हुई जानकारी यहाँ लेने योग्य है।

नदियाँ हैं। इसलिए यह माने बिना काम नहीं चलेगा कि, सरयूके पश्चिम श्रोर इसी नामकी दूसरी छोटी निद्याँ हैं। यह वर्णन ठीक है कि गङ्गा श्रीर शोणनः उतरकर वे मगधमें गये। शोरानद मगधमें है; श्रीर द्त्रिण श्रोरसे वह गङ्गामें मिलता है। श्रव यह देखना चाहिए कि बङ्गाल प्रान्तकी कीन कौनसी नदियाँ महाभारतमें बतलाई गई हैं। लौहित्या नदी ब्रह्मपुत्रा है। परन्तु ब्रह्मपुत्राका नाम नदियाँकी स्चीमें नहीं है। कौशिकी नामक एक श्रीर नदी बङ्गालको जान पड़ती है। तीर्थ-वर्णनमें गयाके पासकी फल्गु नदी श्राई है, परन्तु नदियोंकी स्चीमें नहीं। कर-तोया बङ्गालको एक नदी जान पडती है। श्रव हम दक्तिएकी नदियोंकी श्रोर आते हैं।

प्रथम गङ्गामें मिलनेवाली यमुना नदी प्रसिद्ध ही है। उस यमनामें मिलनेवाली श्रीर मालवासे श्रानेवाली चर्मणवती श्रथवा चंवल नदी भी वैसीही प्रसिद्ध है। इस नदीके किनारे एक राजाने हजारी यज्ञ किये थे; वहाँ यज्ञमें मारे हुए पशुश्रोंके चमड़ोंकी राशियाँ एकत्र हो गई थीं इसलिए इसका नाम चर्मएवती पड़ा। वेत्रवती श्रथवा वेतवा नदी चम्बलकी भाँति ही मालवासे निकलकर यम्नामे मिलती है। सिन्धु अथवा काली सिन्धु भी मालवाकी नदी है। इसका नाम निद्योंकी सूचीमें नहीं दिखाई पड़ता। महानदी पूर्व श्रोर महेन्द्र पर्वतके पाससे जाती है। बाहुदा नदी भी इसी जगह है। विनध्यके दक्तिण श्रोर नर्मदा नदी प्रसिद्ध ही है। इसी भाँति पयोष्णी अर्थात् ताप्ती नदी भी प्रसिद्ध है। परन्तु ताप्तीका नाम महासारतमें कहीं पाया नहीं जाता वैतरणी नदी पूर्व श्रोर जाकर पूर्वसमुद्रमे गिरती है। इधर, महाराष्ट्रके सहादिसे

निकलकर पूर्व ओर जानेवाली नदियाँ गोदावरी, भीमरथी अर्थात् भीमा, वेणा श्रीर कृष्णा बतलाई गई हैं। कृष्ण-वेणा एक नदी श्रलग वतलाई गई है। कृष्णाके द्विण स्रोरकी कावेरी नदी भी इन तिवयोंकी सुचीमें लिखी गई है। इसके भी द्विणमें त्रावनकोरकी ताम्रपर्णी नदी है। परन्तु इसका नाम नदियोंकी सचीमें नहीं दिखाई देता; तथापि तीर्थ-वर्णनमें इसका नाम श्राया है। कोंकणकी निदयाँ विलकुल ही छोटी हैं। उनकेनाम इस सूचीमें श्राये हैं श्रथवा नहीं, सो नहीं बतलाया जा सकता। पश्चिम श्रोर वहनेवाली नदियोंमें नर्मदा श्रोर पयोप्णी-का उल्लेख पहले ही आ चुका है। मही नदी गुजरातमें है, उसका उल्लेख इस सुचीमें नहीं है। सिन्धुका उल्लेख प्रारम्भ-में ही है। यहाँ यह वतलाया गया है कि सबसे बड़ी नदी गङ्गा है श्रीर उसीके भगीरथी, मन्दाकिनी इत्यादि नाम हैं। इन नदियोंकी सची देशोंकी ही सुचीकी तरह हम यहाँ देते हैं: श्रौर जिन नदियों-का हम इसमें आजकलकी नदियोंसे मेल मिला सके हैं, उन पर तारका-चिह दिया है।

महाभारत कालके तीर्थ।

श्रव जिन भिन्न भिन्न तीथोंका वर्णन
महाभारतमें किया गया है, उनका वृत्तान्त
यहाँ दिया जाता है। पाएडवोंकी इस
तीर्थयात्राके वर्णनके पहले तीथोंकी दो
सचियाँ वनपर्वमें दी हुई हैं। श्रर्थात्, एक
बार नारदके मुखसे श्रीर दूसरी बार
धौम्य ऋषिके मुखसे। इन दोनों स्चियोंमें
थोड़ासा फर्क है। पाएडव प्रत्यन्न जिन
जिन तीथोंमें गये थे उन उन तीथोंका वर्णन
वनपर्वमें विस्तार सहित दिया हुश्रा है।
जहाँ जहाँ पाएडव गये थे, उन स्थानोंका

श्राजकलकी तोर्थयात्राके स्थानोंसे मेल मिलानेका मनोरञ्जक कार्य करने योग्य है। हम इसके लिए यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे। लिखा है कि,पहले पाएडव काम्यक वनमें थे। प्राचीन कालमें प्रत्येक देशके भिन्न भिन्न भागोंमें वन थे। उन वनोंमें हर किसीको रहनेकी परवानगी थी। वन पर किसी देशके राजाकी सत्ता न थी। वन-वासी ज्ञत्रिय ऐसे वनोंमें मृगया पर उदर-निर्वाह किया करते थे; श्रौर तपस्या करनेवाले ब्राह्मण कन्द्रमूलफल खाकर श्रपना निर्वाह करते थे। यह बात कुछ काल्पनिक नहीं है। इस प्रकारकी परि-स्थिति महाभारत-कालतक थी । श्रीक लोगोंने वनमें निर्भयताके साथ रहनेवाले तत्ववेत्ता मुनियोंका वर्णन किया है। वौद्धों-के प्रन्थों में भी ऐसे अनेक वर्णन हैं। लिखा है कि बुद्ध, राज्य त्याग करनेके बाद, ऐसे ही अनेक जङ्गलोंमें रहा। उनमेंसे प्रत्येक वनका भिन्न भिन्न नाम है। लुंदिनी वनका नाम बौद्ध प्रन्थोंमें बरा-वर त्राता है। त्रस्तु; महाभारतमें लिखा है कि पांडव वनवासके समय कितने ही वनोंमें रहे । उन्हीं वनोंका स्थल पहले हम यहाँ निश्चित करेंगे। लिखा है कि, पाएडव पहलेपहल काम्यक वनमें रहे । वे भागीरथीके तीर परसे पहले कुरुचेत्रकी श्रोर गये । सरस्तती, दशद्वती श्रोर यमुनाका दर्शन करके वे पश्चिमकी श्रोर चले। तव गुप्त रूपसे रहने-वाली सरस्वतीके तीरके निर्जल मैदानमें ऋषिप्रिय काम्यक वन उन्हें दिखाई दिया (वनपर्व श्रध्याय ५)। इससे यह ध्यानमें श्रा जायगा कि काम्यक वन मरु देशमें था। उस वनको छोड़कर फिर वे द्वैतवन-में गये। द्वैतवन उत्तर श्रोर हिमालयकी तराईमें होगा। उसमें पशु, पत्ती, मृग श्रौर हाथियोंके फुंड थे, श्रोर उसमें सरस्रती

नदी वहती थी। लिखा है कि इसी हैत वनसे वे तीर्थ-यात्राको निकले; श्रोर फिर क। स्यक वनमें आये। यहाँसे पहले पूर्व श्लोर नैमिषारएय है। यह पुराय-देश श्रयोध्याके पश्चिममें है । लिखा है कि इसके पूर्व श्रोर गोमती तीर्थ है। इसके बाद वर्णन किया है कि नैमिषार्यमें पहले आनेके बाद गोमतीका स्नान करके वे बाहुदा नदी पर गये। यह बाहुदा नदी यहाँ दूसरी आई है। इसके वाद पांडव प्रयागको श्राये। यह प्रयाग गङ्गा-यमना-का सङ्गम ही है। लिखा है कि, गङ्गा-सङ्गम पर उन्होंने ब्राह्मणोंको दान दिया। यहाँ यह कहा गया है कि प्रयाग-भूमि देवोंकी यज्ञभूमि है। फिर लिखा है कि, प्रयागसे पांडव गयाको गये । गयामें गयाशिर नामक एक पर्वत है, श्रोर रेत-से संशोभित महानदी नामकी अर्थात फल्ग नदी है। इसके अतिरिक्त यहाँ ब्रह्मवेदी भी पास है; श्रीर लिखा है कि, श्रव्यवट भी है। यही श्रव्यवट श्राद्ध करनेके लिए सर्वश्रेष्ठ स्थान कहा गया है। यहाँ श्रचयपद-फलकी प्राप्ति होती है। यहाँ गय राजाका वर्णन भी दिया है। इसके बाद लिखा है, कि पांडव लोग गयासे चल-कर मिण्मती नामक दुर्जया नगरीमें रहे : श्रीर फिर उन्होंने श्रगस्त्याश्रमका दर्शन किया। निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह तीर्थ कहाँ है; तथापि उस वर्णनसे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि भागीरथी पर वह आश्रम था। श्रगस्त्यने जो वातापी-को मारा था, सो भी वर्णन दिया हुआ है। . इसके बाद कौशिकी नदीका वर्णन दिया है। यह नदी भागीरथीमें उत्तर श्रोर-से मिलती है। लिखा है कि कौशिकी नदी पर विश्वामित्रने तपस्या करके ब्राह्मएय प्राप्त किया । इसके श्रुतिरिक्त भागीरथी पर भगीरथने जो यज्ञ किया.

उसका भी वर्ण्न दिया हुआ है। यहाँसे फिर, लिखा है कि, पांडव नन्दा और श्रपरनन्दा नामकदो निद्यों पर गये; श्रीर फिर हेमकूट पर्वत पर गये। इस पर्वत पर श्रदृश्य वेद्घोष सुनाई देता है। कोशिकी नदीके पास उक्त नदियाँ होंगी। यहीं विभांडकपुत्र ऋष्यश्रंगका आश्रम है। ऋष्यश्रंगकी कथा यहाँ दी हुई है कौशिकीसे चलकर पांडव समुद्र पर गये श्रौर जिस जगह गङ्गा समुद्रसे मिली है, उस जगह पाँच सौ नदियोंके मध्य भागमें उन्होंने समुद्रमें स्नान किया। यह वर्णन प्रसिद्ध है कि, गङ्गा नदी समुद्रमें सहस्रमुखसे मिलती है। उसीका उल्लेख इन ५०० नदियों के नामसे किया हुआ जान पड़ता है। यहाँ पूर्व श्रोरके तीर्थ समाप्त हुए । यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि, इस वर्णनमें काशी जानेका वर्णन नहीं है। तथापि धौम्यने जो तीर्थ वर्णन किया है, उसमें दो तीन श्रीर तीर्थ लिखे हैं। उनका यहाँ समावेश किया जा सकेगा। कालिजर पर्वत पर हिर्एयबिन्द नामक एक बड़ा स्थान है। इसके बाद भागवरामका महेन्द्र पर्वत वतलाया गया है। लिखा है कि उस पर्वत पर भागीयी नदी मिणकर्णिका सरोवरमेंसे ऋई है। ऐसा अनुमान करनेमें कुछ भी वाधा नहीं जान पड़ती कि महेन्द्र पर्वतका यह मिएकिर्णिका तीर्थ वास्तवमें काशीमें ही होगा। तथापि, यह आश्चर्यकी बात है कि, काशी अथवा वाराणसीका विस्तृत वर्णन इस तीर्थ-वर्णनमें नहीं है। जो ही श्रव हम दित्तणके तथोंकी श्रोर श्राते हैं। पाएडव गङ्गामुख पर स्नान करके

त्योवलके योगसे मृत्युलोकसे वहुत दूर बले गये। यहाँसे पास ही महेन्द्र पर्वत है। उस पर्वत पर परशुराम रहे हैं। पथ्वी जब कश्यपको दान दी गई, तब वह समुद्रमें डूबने लगी। उस समय क्र्यपके तपःप्रभावसे वह सागरसे बाहर वेदीके रूपसे यहाँ रह गई है। यह वेदी समुद्रमें एक छोटासा टापू है। पारंडवीने समुद्रमें स्नान करके उस वेदी पर श्रारोहण किया; श्रीर इसके बाद महेन्द्र पूर्वत पर ठहर गये। प्रत्येक चतुर्दशी-को वहाँ परशुरामका दर्शन होता है। तदनसार उस दिन दर्शन करके पाएडव समद्रके किनारे किनारे दक्तिण दिशाकी श्रोर चले। समुद्र-किनारेके तीर्थ यहाँ नामनिर्देशके विना वतलाये गये हैं। प्रश-स्ता नदी देखकर वे समुद्रभामिनी गोदा-वरी नदी पर आये। इसके बाद द्रविड देशमें समुद्र किनारे अगस्त्य तीर्थ पर श्राये। वहाँसे नारीतीर्थ पर श्राये। उसके गद अन्य पवित्र समुद्रतीर्थों पर क्रमशः जानेके बाद वे शर्पारकचेत्रमें आये। द्तिए श्रीर पूर्वके इन तीर्थोंके वर्णनमें दो तीन नाम हमको दिखाई नहीं देते। मुख्यतः पूर्व श्रोर जगन्नाथके स्थानका श्रथवा पुरीका वर्गान नहीं है। ऐसी दशामें हमारे सामने यह प्रश्न श्राता है कि, क्या इस चेत्रका माहातस्य पीछेसे उत्पन्न हुन्ना है ? धीम्यके बतलाये हुए तीर्थ-वर्गनमें भी पुरीका नाम नहीं है; श्रीर नारदके वर्णनमें भी पुरीका नाम नहीं श्राया। सी प्रकार रामेश्वरका नाम भी पाएडवी-की तीर्थ-यात्रामें नहीं त्राया। इससे यह संशय होता है कि, ये तीर्थ इस समयके बाद उत्पन्न हुए होंगे। परन्तु यह बात हमने अनेक जगह कहा है। कि, उल्लेखके अभायका प्रमाण लँगड़ा है। इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि, पाएडव

समुद्रके किनारे किनारे खलसे गये हैं, नौकामें वैठकर नहीं गये हैं। इस कारण यह सम्भव है कि, वे प्रायः श्रगस्त्य तीर्थसे द्विड़ देशमें होते हुए एकदम पश्चिम किनारे पर श्रा गये हों। पश्चिम किनारे पर जो गोकर्ण महावलेश्वर-का तीर्थ है, उसका भी वर्णन नहीं किया गया। इससे यह नहीं माना जा सकता कि, वह तीर्थ उस समय नहीं था। श्रच्छा, धौम्युने दान्तिण श्रोरके जो तीर्थ वतलाये हैं, उन्हें अब देखिये। पहले गोदावरी, वेणानदी, भीमरथी नदी और पयोष्णी, ये नदियाँ बतलाई हैं। लिखा है कि. पयोष्णीके किनारे राजा नुगने सेंकडों यज्ञ किये थे। पाएड्योंके देशके अगस्त्य तीर्थ श्रीर वरुण तीर्थका वर्णन है: श्रीर श्रन्तमें ताम्रपर्णी श्रीर गोकर्ण तीर्थका वर्णन है। नारदतीर्थयात्रामें जो और श्रधिक तीर्थ वतलाये गये हैं, वे कावेरी नदी और कमारी तीर्थ हैं। अर्थात् दिल्णी सिरेमें कन्या कुमारीका यहाँ उल्लेख है। कृष्णा, वेणा श्रीर दगडकारएयका भी उल्लेख है। सप्त गोदावरीका भी उल्लेख है; अर्थात गोदावरीके सात मुखोंका यहाँ निर्देश किया गया है। सबसे विशेष बात यह है कि, उज्जयिनीके महाकालका वर्णन किया गया है: श्रोर वहाँके दोनों स्थान, कोटि-तीर्थ श्रीर भद्रवट, जो श्रव भी प्रसिद्ध हैं, उल्लिखित हैं। उपर्युक्त वर्णनसे यह अनु-मान किया जा सकता है कि दक्तिण श्रोर-का अधिकाधिक ज्ञान कैसे होता गया। इससे यह स्पष्ट हो जायगा कि, पागडवीं-की तीर्थ-यात्राकी अपेचा धौम्यके तीर्थ-यात्रा-वर्णनमें श्रधिक तीर्थोंके नाम श्राये हैं; श्रीर उनसे भी श्रधिक नारदकी तीर्थ-यात्राके वर्णानमें तीथोंके नाम आये हैं। श्रव हम पश्चिम श्रोरके तीथौंका

उल्लेख करते हैं। पाएडव शूर्पारक तीर्थ-

में आये: वहाँ उन्होंने वनमें प्राचीन राजात्रोंके किये हुए यज्ञ देखे; त्रौर किनारेसे भीतर जाने पर तपस्वी ब्राह्मणों-से भरी हुई परशुरामकी वेदी देखी। वसु, श्रश्विनीकुमार, यम, सूर्य, कुवेर, इन्द्र, विष्णु, विभु, शङ्कर इत्यादिके सुन्दर मन्दिरोंका श्रवलोकन किया। इसके वाद वे फिर ग्रूपारक तीर्थ पर आये; और वहाँसे प्रभास तीर्थ पर गये । प्रभास तीर्थ काठियावाडमें द्तिए समुद्रके किनारे पर द्वारकासे दूर है। यहाँ उन्हें श्रीकृष्ण श्रीर यादव मिले । यहाँसे पाएडव विदर्भ देशके ऋधिपति द्वारा बढाई हुई पवित्र पयोष्णी नदी पर आये। इससे यह श्रनुमान निकलता है कि विदर्भ देशकी यह नदी गुजरातमें होगी। परन्त यह भी सम्भव है कि पाएडव पीछे फिर-कर पयोष्णी नदी श्रर्थात् ताप्ती पर श्राये हों। क्योंकि फिर लिखा है कि यहाँसे वे वैद्र्य पर्वत श्रीर नर्मदा नदी पर गये। श्रथवा, प्रभास तीर्थ काठियावाडका न होगा। जो हो: नर्मदा नदीमें स्नान करके वे राजा शर्यातिके यज्ञप्रदेश श्रीर च्यवन-के श्राधममें श्राये। ये दोनों स्थान नर्मदा-के तीर पर ही थे। यहाँ च्यवन मुनि श्रौर शर्यातिकी कन्या सुकन्याकी कथा है। यहाँसे फिर वे लोग सिन्धु नदके तीर्थ पर गये; श्रीर वहाँके श्ररएयमें जो सरोवर था उसे देखा। इसके वाद वे पुष्कर तीर्थ पर ब्राये और ब्रार्थिक पर्वत पर रहे। तद्नन्तर गङ्गा, यमुना और सरखतीके किनारेके तीर्थ उन्होंने देखे। पागडवोंकी इस पश्चिम-तीर्थयात्राका वर्णन बहुत विचित्र और वहुत ही थोड़ेमें किया गया है। विशेषतः पुष्करका वर्णन जो कि अन्य स्थानोंमें बहुत अधिक किया गया है, यहाँ वैसा नहीं पाया जाता। नारदकी तीर्थयात्रा श्रोर धोम्यकी तीर्थ-

यात्रामें पुष्करका बहुत वर्णन है। पुष्कर का चेत्र ब्रह्माजीका है। पुष्कर एक वडा तालाव है, नदी नहीं। वह राजपूताने मध्य भागमें हैं। इसके पासका अर्धुः अर्थात् आवृका पहाड़ वहाँ वतलायाग्या है। नारदकी तीर्थयात्राके वर्णनमें द्वारका का वर्णन है। वास्तवमें पाएडवाँके समयमें द्वारकाको तीर्थत्व नहीं प्राप्त हुआ था; श्रोर इसी कारण पाएडव दारका को नहीं गये। नारदकी वर्णन की हुई तीर्थयात्रा महाभारतके समयकी है उस समय द्वारका स्वभावतः एक वहे तीर्थका स्थान वन गई थी। इस सान का बहुत ही विस्तृत वर्णन किया गया है। (द्वारकामें) पिंडारक तीर्थ पर सात करनेसे सुवर्ण-प्राप्ति होती है। यह श्राश्चर्यकी वात है कि उस तीर्थमें श्रवभी पद्मरूपी चिहोंसे युक्त मुद्रा (सोनेके सिके) दृष्टिगोचर होते हैं। वहाँ ऐसे कमत दिखाई पडते हैं जिन पर त्रिशलके चि होते हैं। यहाँ सदैव शंकरका निवास है। इस वर्णनसे जान पड़ता है कि महाभारत कालमें द्वारका एक प्रसिद्ध तीर्थ वन गया था। परन्तु जब हम इन वातीं पर धान देते हैं कि द्वारकाकी स्थापना श्रीकृष्णे नवीन ही की, रैवतक पर्वत पर उन्होंने नवीन दुर्ग बनवाये, श्रीर उनके निज धाम जाने पर द्वारका पानीमें इब गर तब स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि श्रीकृष श्रथवा पाएडवोंके समयमें यह तीर्थं नहीं था। इससे स्वभावतः श्रनुमान होता है कि यह वर्गान और यह सम्पूर्ण नार तीर्थयात्रा महाभारत-कालकी श्रर्थात् ईसवी सन्के पहले २५० वर्ष लगभगकी है।

इसके बाद उत्तर श्रोरके तीर्थीके वर्णानमें युवन्धर, श्रच्युतस्थल श्रोर भूते लब्य नामक, युमुना पुरके तीर्थीका वर्णीन

है। प्रज्ञावतरण तीर्थका उल्लेख होकर आगे करत्तेत्रमें पागडवोंके जानेका वर्णन है। कृष्त्रेत्रसे सरस्वतीके विनशन तीर्थका वर्णन है। इसके वाद विपाशा श्रर्थात् व्यासा नदी आई है। विपाशासे फिर वे काश्मीरको गये । इसके आगे फिर वे मानस सरोवर पर गये। वहाँ उन्हें वितस्ता नदो दिखाई दी। वितस्ता नदीके वास जला श्रीर उपजला नामक दो तिद्याँ उन्हें मिलीं। श्रागे मैनाक तथा ब्रेतगिरि पर्वत ५रसे वे कैलाश पर्वत पर गये। वहीं उनको भागीरथीका दर्शन श्रा। इसके बाद वे गन्धमादन पर्वत पर श्रा पहुँचे; श्रीर जहाँ कि विशाला-संबक वदरी (वेरी) है श्रीर नरनारायण-का श्राश्रम है, तथा जहाँसे श्रलकनन्दा नदी निकलती है, वहाँ वे जा पहँचे। न्तारायणके आश्रममें पहुँचने पर घटो-कचकी सहायतासे श्रागे जाकर फिर उन्होंने भागीरथी नदीमें स्नान किया श्रौर श्रपनी तीर्थ-यात्रा समाप्त की।

पुष्कर और कुरुन्नेत्रका महत्त्व।

महाभारत-कालमें दो तीर्थ श्रथवा तीर्थों के स्थान बहुत ही प्रसिद्ध थे। एक श्रुवंद के पासका पुष्कर तीर्थ श्रोर दूसरा कर लेका। पुष्कर तीर्थ सब तीर्थों का राजा है। पुष्कर का जो सुबह-शाम स्मरण करेगा उसे भी सब तीर्थों के स्नान करने का फल मिलेगा। पुष्कर तीर्थ के विषयमें एक बात श्रीर यह है कि, ब्रह्माजी का एक मात्र यही चेत्र है। शेष सब तीर्थ शिव, विष्णु श्रथवा श्रन्य देवता श्रों के हैं। नारद-की बतलाई हुई तीर्थ-प्रशंसा में इस तीर्थ-की सब तीर्थों का श्रादिभूत कहा है। सुसरा तीर्थ कुरु चेत्र है। नारद-तीर्थ-वर्णन-में इस तीर्थ के लिए एक बहुत बड़ा स्वतन्त्र श्रथाय (वन पर्वका द वा श्रथाय)

दिया गया है। यह कहनेवाला मनुष्य भी कि में कुरुद्देत्रको जाऊँगा, कुरुद्देत्रमें रहूँगा, पापसे मुक्त हो जाता है। दशद्रती-के उत्तर श्रौर सरस्वतीके दक्षिण जितना त्तेत्र है, वह सब पुण्यभूमि है। इतने ही चेत्रमें, श्रनेक किंवहुना सेंकड़ों तीथोंका वर्णन इस श्रध्यायमें किया गया है, जिनमें तीन मुख्य हैं। पहला पृथ्दक है। लिखा है कि, सब द्वेत्रोंमें कुरुद्वेत्र पवित्र है। कुरुत्तेत्रमें सरस्ती श्रौर सरस्तीमें पृथु-दक सबसे श्रधिक उत्कृष्ट है। दूसरा तीर्थ स्पमन्तपञ्चक है। कहते हैं कि, ये पाँच तालाव परशुरामने चत्रियोंका नाश करके उनके रक्तसे भरे थे। तीसरा तीर्थ सन्निहती नामक है। लिखा है कि, सर्य-प्रहणके समय जो मनुष्य इस तीर्थमें स्नान करेगा वह सौ अध्वमेध करनेका पुर्य पावेगा। इस तीर्थमें सब तीर्थ श्राये हैं; श्रौर इसी लिए इसका नाम सन्निहती है। भागवतमें लिखा है कि, सूर्यग्रहणके समय कुरुचेत्रमें कौरव, पाएडव, यादव, गोपाल, सब एक जगह इकट्टे हुए थे। श्रीर, श्राज भी सूर्यत्रहण्के समय कुर-त्तेत्रमें ही जानेकी विशेष महिमा मानी जाती है। वहाँ लाखीं मनुष्य यात्रामें एकत्र होते हैं।

उस समय यह धारणा थी कि कुरु-त्तेत्रमें जो युद्धमें मरेगा, वह मुक्ति पावेगा। इसी कारण कौरव-पाग्डव इस त्तेत्रमें युद्धके लिए जमा हुए थे। परन्तु यह बात सम्भव नहीं कि, इतनी बड़ी सेना कुरत्तेत्रमें रह सकी हो। स्वयं महाभारतमें ही लिखा हुआ है कि, कुरु-त्तेत्रको बीचमें रखकर दोनों श्रोरकी फौजें बहुत विस्तीर्ण प्रदेशमें फैली हुई थीं। पञ्जाबका कुछ भाग, पूरा कुरुजाङ्गल, रोहितकारग्य श्रोर मरुभूमितक सेना फैली हुई थी। श्रहिच्छत्र, कालकुट, गङ्गा- पूल, वारण और वाटधान तथा यमुनाके दिल्लिण के पहाड़तक फीजें फैली हुई थीं। वहुत लोगोंकी ऐसी कल्पना रहती है कि, भारती-युद्ध किसी छोटेसे भागमें हुआ था। परन्तु महाभारतमें अन्यत्र वर्णन किया गया है कि कुरुलेत्र, श्रहिच्छत्र (श्राजकलका रामपुर) और वारण वाटधान नामक श्राम दिल्लिण श्रोर हस्तिनापुरसे बहुत अन्तर पर हैं। यहाँतक फीजें थीं। इससे जान पड़ता है कि, सी कोस लम्बे श्रीर पचाससे सो कोसतक चौड़े प्रदेश-में भारती-युद्ध हुआ होगा।

सरस्वतीके विषयमें महाभारतमें एक स्वतन्त्र श्राख्यान शत्य पर्वमें दिया हुश्रा है। उससे हमको सरखतीका बहुतसा वृत्तान्त मालूम हो जाता है। वलराम युद्धमें न जाकर सरस्वतीकी तीर्थयात्राको गये। लिखा है कि उस समय वे सर-खतीकी उलटी दिशासे, अर्थात् मुखकी श्रीरसे उद्गमकी श्रीर गये। वास्तवमें सरस्ती समुद्रमें नहीं मिलती । आज-कल भी वह घाघरा नदीमें जाकर मिलती है। परन्तु प्राचीन कालमें कभी न कभी यह नदी अरव समुद्रमें कच्छके रणके पास मिलती होगी । वलरामने अपनी यात्रा प्रभास तीर्थसे प्रारम्भ की । यह तीर्थ श्राजकल द्वारकाके दक्तिणमें पश्चिम किनारे पर है। इसके बाद वे चमसोद्धेद तीर्थ पर गये। वहाँसे फिर उद्यान तीर्थ पर गये। लिखा है कि यह तीर्थ केवल एक कृत्राँ था। परन्तु यह भी कहा है कि इस जगहके लतावृद्यांकी हरियालीसे श्रौर भूमिकी सिग्धतासे सिद्ध लोग सहजमें ही पहचान सकते हैं कि यहाँसे सरस्वती नष्ट हो गई है। श्रवश्य ही वह कुश्राँ मारवाड़केरेगिस्तानमें होगा। इसके बाद बलराम विनशन तीर्थ पर गये। इस जगह शुद्राभीरोंके द्वेषके कारग

सरस्वती नष्ट हुई, अर्थात् रेतमें गुप्त हो गई, इसी लिए इसका नाम विनशन है। इस जगह उन्होंने सरस्वती नदीमें न्नान किया। यहाँसे उत्तर जाते हुए उन्होंने सरस्वतीके किनारेके अनेक तीर्थ देखे श्रागे चलते चलते वे द्वेत वनमें पहुँचे इस वनका वर्णन हम पहले कर ही चुके हैं। यह वन हिमालयको तराईके श्रासपास था। इसके श्रागे सरस्वती दक्षिणकी श्रोर घूमी है। श्रागे चलकर यहाँ यह लिखा है कि हिमालयसे सात निया निकलीं; श्रीर वे सब मिलकर सरस्वती वन गई। इस कारण उसे सप्तसारस्वत नाम प्राप्त हुआ है। वहाँसे आगे अनेक तीर्थ देखते हुए वे हिमालयके भीतर प्रविष्ट हुए; और सरस्वतीके उद्गमतक उन्होंने यात्रा की। सरस्वतीके किनारे श्रनेक ब्राह्मण पाचीन कालसे रहते थे। एक वार वारह वर्षकी श्रनावृष्टि हुई, श्रत-एव ब्राह्मणोंको कुछ भी खानेको न मिलने लगा। तव सारस्वत मुनिने सरस्वतीकी श्राज्ञासे मत्स्यों पर श्रपना उदरिवाह किया और वेदोंको रत्ता की। जो ब्राह्मण भटककर अन्य स्थानों में चले गये थे उन्हें सारखत मुनिने, अवर्षण समाप्त होने हे बाद, वेदोका श्रध्याय बतलाया, इसलिए वे सब सारस्वत भुनिके शिष्य बन गरे। श्रीर तभीसे मत्स्य खानेकी चाल इन ब्राह्मणोंमें पड़ी। श्रस्तः इसके बाद यमुना के किनारे किनारे चलकर चलदेव कुरुतेन में स्यमन्तपञ्चकमें उतरे; श्रीर गदायुद्ध समय वे उपस्थित हुए। इस प्रकार सर स्वती त्राख्यानमें सरस्वतीके मुखसे उद्गम तकका वर्णन आग या है। इस आख्यानसे यह श्रनुमान करनेमें कुछ भी बाधा ^{नहीं} जान पड़ती कि प्राचीन कालमें सरसती नदी प्रत्यत्त मारवाड़से बहती हुई पश्चिम समुद्रमें जा मिलती थी।

नगर।

महाभारतमें किन किन नगरोंका नाम ब्राया है, इसका उल्लेख प्रायः उपर्युक्त वर्णनमें हो चुका है। कौरवोंकी मुख्य राजधानीका शहर हस्तिनापुर, जो गङ्गा-के किनारे था, इस समय नए हो गया है। परन्तु यह निश्चित है कि, वह दिल्ली-के उत्तर-पूर्व था। पांडवोंकी राजधानी-का ग्राम इन्द्रप्रस्थ यमुनाके पश्चिम किनारे पर प्रसिद्ध है। वह अब भी दिल्लीके द्विण श्रोर इसी नामसे प्रसिद्ध है। गांडवींने जो पाँच गाँव माँगे थे उनमेंसे चार तो यह हैं--इन्द्रप्रस्थ, वृक्रप्रस्थ, माकन्दी श्रीर वारणावत। श्रन्य कोई एक मिलाकर पाँच गाँव माँगे थे। उन्द्रप्रस्थके दक्षिण श्रोर यमुनाके किनारे पर वृक्रप्रस्थ था। गङ्गाके किनारे पर एक माकन्दी श्रौर यमुनाके किनारे पर दूसरी माकन्दी थी। चौथा गाँव वारणावत गङ्गाके किनारे पर था। यह हाल आदि-पर्वसे मालूम होता है (श्रादि० श्रध्याय १४६)। मत्स्योंकी राजधानी विराट नगर थी। इसके उत्तर श्रीर श्रीर इन्द्रप्रस्थके द्त्रिण श्रीर उपप्तव्य नामका शहर था। विराट नगर जयपुरके पास था। पेसी दशामें उपप्रवय जयपुर श्रीर दिल्लीके बीचमें होना चाहिए। पांडवोंने युद्धकी तैयारी उपप्रव्यमें की थी। शूर-सेनोंकी राजधानी मथुरा थी। वही श्राज-कलकी मथुरा नगरी है, जो यमुनाके किनारे है। दुपदोंकी राजधानी, गङ्गाके उत्तर स्रोर, श्रहिच्छत्र थी। श्रहिच्छ्त्र आजकल संयुक्त प्रान्तके रामपुरके पास है। दुपदकी दूसरी राजधानी कांपिल्य थी। यह गङ्गाके पश्चिम किनारे पर होगी। कान्य-कुन्ज गाधिकी राजधानी थी। यह गङ्गाके पश्चिम किनारे पर आजकलका कन्नीज शहर है। यमुनाके दक्षिण किनारे पर चेदीका राज्य था। उनकी राजधानी शुक्तिमती वनपर्वके २२ वें श्रध्यायमें वर्णित हैं। महाभारतमें देशोंकी सुचीमें वत्स देश-का नाम नहीं आया: श्रीर वत्सराजकी राजधानी कौशाम्बीका नाम भी यद्यपि महाभारतमें प्रत्यत्त नहीं आया, तथापि मालूम श्रवश्य था। श्रादि-पर्व (श्र० ६३) में लिखा है कि, राजा वसुके चार पुत्रोंने चार राज्य श्रौर नगर स्थापित किये थे। उनमें एक कुशाम्ब था। श्रतएव यह स्पष्ट है कि, उसने जो राजधानी स्थापित की, वह कौशाम्बी है। गङ्गा-यमुनाके सङ्गम पर प्रयागका नाम प्रसिद्ध है। वह वर्त-मान प्रयाग ही है। उत्तर श्रोर श्रयोध्या शहर श्राजकलका ही श्रयोध्या है। मिथिला विदेह देशका शहर प्रसिद्ध है। श्रङ्ग देश-की चम्पा राजधानीका नाम महासारतमें आया है। वह आजकलके विहार प्रान्तका चम्पारन है। भारती युद्धकालमें गङ्गा-यमुनाके प्रदेशमें भारती श्रायोंकी पूरी वस्ती हो गई थी; परन्तु यह श्राश्चर्यकी बात है कि, उस समयके बहुत थोड़े शहरोंका वर्णन महाभारतमें आया है; श्रीर उनमेंसे बहुत थोड़े शहर श्राजकल शेष हैं। भीष्म काशिराजकी लड़कियाँ हरण कर लाये थे, इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि, काशी शहर उस समय था। मग्योंकी राजधानी पाटलि-पुत्र नहीं थी, किन्तु राजगृह थी। इसका वर्णन ग्रन्थोंमें भी है। वुद्ध इसी शहरमें गये थे। यह शहर श्राजकल नष्ट हो गया है। मगधका पुरायत्तेत्र गया उस समय त्रवश्य प्रसिद्ध होगा। संयुक्तप्रान्तके एक श्रौर नगरका नाम एकचका पाया जाता है। वकासुर यहीं मारा गया था। यह शहर गङ्गाके उत्तर श्रोर होगा। इसके बाद पञ्जाव प्रान्तके दो ही शहरोंके नाम श्राये हैं। एक शाकल श्रीर दूसरा तत्तशिला। दोनों शहर आजकल नष्ट्रपाय हैं। शाकल स्यालकोटके पास था; श्रीर तच्चिता रावलपिएडीके पास थी। बम्बई प्रान्तके तीन शहरोंका उल्लेख हुश्रा है—द्वारका, भरुकच्छ (भड़ौच) श्रीर शूर्पारक (सोपारा, जो वसईके पास है)। ये तीनों शहर श्रव भी मौजूद हैं। इनके सिवा श्रन्य जिन शहरोंका उल्लेख हुश्रा है, वे विदर्भके कोंडिन्यपुर श्रीर भोजकट हैं। ये श्रमरावतीके पास होंगे।

भरतखरडके देशों के नाम,
भीष्म पर्व अध्याय दे। जो देश
नकशे पर दिखलाये गये हैं, उन पर ×
चिह्न कर दिया है। जिन पर कोष्ठक ()
लगाया है, उनका नाम दो बार श्राया है।

श्रार्यभागके श्रथवा उत्तर श्रोरके देश।

२१ दशार्ण × १ कुर × २२ मेकल २ पाञ्चाल × ३ शाल्व २३ उत्कल × ४ माद्रेय २४ पाञ्चाल ५ शर्सेन × २५ कोसल × ६ पुलिन्द × २६ नैकपृष्ठ ७ बोध २७ धुरन्धर द माल २= गोध ६ मतस्य × २६ मद्र % १० कुशल्य ३० कलिङ्ग () ११ सौशल्य ३१ काशि × १२ कुन्ति ३२ अपरकाशि १३ कान्तिकोशल ३३ जठर १४ चेदि × ३४ कुकुर १५ मत्स्य () ३५ दशार्ण () १६ करूप * ३६ कुन्ति () १७ भोज * -३७ श्रवन्ति × १= सिन्धु × ३= श्रपरकुन्ति १६ पुलिन्दक ३६ गोमन्त २० उत्तम ६० मन्दक

७६ मेरुभूत ४१ सराड ४२ विदर्भ × =० उपावृत्त ४३ रूपवाहिक **८१** श्रनुपावृत्त ८२ खराष्ट्र × ४४ अश्मक × =३ केकय × ४५ पांगड्राष्ट्र ४६ गोपराष्ट्र × =४ कुन्दापरान्त ४७ कारीति **८५ माहेय** ४= आधिराज्य इद कच ४६ कुशाद्य =७ समुद्रनिष्कर ५० महराष्ट्र ८८ आन्ध x = ६ श्रन्तिर्गिर्य पृश् वारवास्य प्र यवाह ६० बहिगिर्य 돈? 쬣索() पु ३ खक ५४ चकाति ६२ मलय प्प शक ६३ मगध पृ६ विदेह × ६४ मानवर्जक ५७ मगध × ६५ समन्तर ६६ प्रावृषेय प्र= खत ६७ भागंव ५.६ मलज ६० विजय ६= प्राइ × ६१ अङ्ग × हह भर्ग ६२ वङ्ग × १०० किरात ६३ कलिङ × १०१ सुदृष्ट १०२ यामुन ६४ यक् लोम × १०३ शक ६५ महां १०४ निषाद ६६ सुदेष्ण १०५ निषध × ६७ प्रह्लाद १०६ श्रानर्त × ६ माहिक १०७ नैर्ऋत ६६ शशिक १०= दुर्गाल ७० बाल्हिक × १०६ प्रतिमत्स्य ७१ वाटधान × ११० कुन्तल () ७२ श्राभीर × १११ कोसल () ७३ कालतोयक ११२ तीरप्रह ७४ श्रपरान्त × ११३ शूरसेन () ७५ परान्त × ११४ ईजिक ७६ पाञ्चाल () ११५ कन्यकागुण ७७ चर्ममग्डल ११६ तिलभार ७= श्रटवीशिखर

The second second	
११७ मसीर	१३७ करीषक
११ = मधुमन्त	१३= कुलिन्द ()
०१६ स्कन्दक	१३६ उपत्यक
१२० काश्मीर ×	१४० वनायु
१२१ सिन्धु ×	१४१ दश
१२२ सौबीर ×	१४२ पार्श्वरोम
१२३ गान्धार ×	१४३ कुशबिन्दु
१२४ दर्शक	१४४ कच्छ ×
१२५ श्रिभसार	१४५ गोपालकच
१२६ उल्त	१४६ जाङ्गल
१२७ शैवल	१४७ कुरुवर्णक
१२= वार्टिहक ()	१४⊏ किरात ×
१२६ दार्वीचव	१४६ वर्बर ×
१३० नवदर्व	१५० सिद्ध
१३१ वातजाम	१५१ वैदेह ()
१३२ रथोरग	१५२ ताम्रलिप्तक ×
१३३ बाहुवाद्य	१५३ श्रोड़ ×
१३४ सुदामान	१५४ स्रेच्छ
१३५ सुमल्लिक	१५५ शैशिरिध
१३६ वध	१५६ पार्वतीय
THE PILE PL	

दिच्ए श्रो	रके लोग
१ द्रविड़ ×	१७ मार
२ केरल ×	१८ सम
३ प्राच्य	१६ कर
४ भूषिक	२० कुबु
प वनवासिक ×	२१ आं
६ कर्णाटक ×	२२ मा
७ माहिषक ×	२३ ध्व
= विकल्प	संव
६ मूषक ×	२४ त्रि
१० भिह्निक	२५ शा
११ कुन्तल ×	२६ ब्यू
१२ सौद्द	२७ को
१३ नभकानन	२= प्रो
१४ कौकुट्ट	२६ स

१५ चोल ×

१६ कोंकण ×

	SOLIDAR WALL
१७३	मालव ×
१८	समङ्ग 📑
38	करक 📜 🐠
	कुक् र
	श्रांगार
	मारिष
	ध्वजिन्युत्सव-
	संकेत
२४	त्रिगर्त
२५	शाल्वसेनि
२६	ब्यूक
२७	कोकबक
२८	प्रोष्ट्
38	समवेगवश
30	विध्यचुलिक
38	पुलिन्द

३२	वल्कल	४२ सनीप
	मालव ()	४३ घटसृंजय
३४	वल्लव	४४ ऋठिद
	श्रपरवल्लव	४५ पाशिवाट
	कुलिन्द	४६ तनय
	कालद	४७ सुनय
३८	कुराडल	४= ऋषिक
	करट	४६ विद्भ
	मूषक	५० काक
धर	स्तनवाल	- territore.

उत्तर श्रोरके म्लेच्छ ।

१ तङ्गण) यह दक्तिणके लोगोंमें भूलसे २ परतङ्गण / वतलाये गये हैं।

र् यवन ×	्रंथ खाशार ×
२ चीनकांबोज ×	१५ श्रांतचार
३ सकृद्ग्रह	१६ पल्हव ×
४ कुलत्थ	१७ गिरिगह्वर
५ हुए ×	१= ऋात्रेय
६ पारसीक ×	१६ भरद्वाज
७ रमण	२० स्तनपोषिक
द चीन ×	२१ प्रोपक
६ दशमालिक	२२ कलिङ्ग
१० शृद्धाभीर	२३ किरात जाति
११ दरद ×	२४ तोमर
१२ काश्मीर	२५ हन्यमान
१३ पशु	२६ करभंजक
२० लंपाक। यह	नाम नीचेके स्होकमे

श्राया है। लंपाकाश्च पुलिन्दाश्च चित्तिपुः स्ताश्च सात्यिकः

(द्रो० त्र० १२०) इसके सिवा उत्तर

श्रोर (सभापर्व-वनपर्व) अर्जुनके दिग्व-जयमें श्रानेवाले लोग इस प्रकार हैं:-

ग्र अन्तर्गिरि () १ कुविन्द ६ बहिगिरि () २ ऋानर्त

७ त्रिगर्त ३ तालकृट ४ प्राग्डयोतिष × = दार्व

४१ दंडधार ६ कोकनद ४२ लौहित्य १० काम्बोज ४३ मिएपूर ११ परद श्रर्जुनकी पहली १२ किंपुरुष १३ गुहाक यात्रामें। नकुलके पश्चिम दित्तण श्रोर सह-दिग्वजयमें। देवके दिग्वजयमें ४४ मत्तमयूर १४ सेक ४५ शैरीषक १५ श्रपरसेक ४६ महत्थ १६ किष्किन्धा ४७ अम्बप्ट × १७ माहिष्मती ४८ मालव × १८ शूर्पारक ४६ पञ्चकर्पट १६ कालकृट ५० शाल्व २० दगडक पर केकय २१ करहारक प्रश्तच्छिला २२ श्रान्ध पूर् बाहीक २३ यवनपुर प्रथ चुद्रक २४ कर्णप्रावरण कर्णके दिग्विजय २५ एकपाद (वनपर्व) में जो २६ पुरुषाद अधिक हुए। भीमके दिग्वजयमें उत्तर श्रोर पूर्व श्रोर प्रम नेपाल × २७ पुमाल पूर्व श्रोर २८ अयोध्या ५६ शंडिक ः २६ गोपालक ५७ कर्कखंड ३० मस ३१ सुपार्श्व मध्य देश। ३२ मलग ५= वत्स ३३ स्रनघ **48 मोहननगर** ३४ अभय ६० त्रिपुर ३५ वत्स × दिच्ण श्रोर ३६ मिएमान् × ६१ शैल ३७ शर्मक ६२ नील ३⊏ वर्मक पश्चिम श्रोर ३८ शक्तवर्वर ४० सहा ६३ बर्बर

भीष्म पर्वके हवें ३३ रोहतारणा श्रध्यायकी नदियों-३४ रहस्या नाम । जो ३५ शतकुंभा नदियाँ नकशेमें ३६ शरयू × दिखलाई हैं, उन ३७ चर्मग्वती x पर × चिह्न किया है। ३८ वेत्रवती x १ गंगा × ३६ हस्तिसोमा x २ सिंधु 🗴 💛 ४० दिक् ३ सरखती × ४१ शरावती ४ गोदावरी × ४२ पयोष्णी x प नर्मदा × ४३ वेणा () ६ बाहुदा × ४४ भामरथी x ७ महानदी × ४५ कावेरी x = शतद् × ४६ चुलुका ६ चन्द्रभागा × ४७ वाणी १० यमुना × ४= शतवला ११ दपद्वतो × ४६ नीवारा १२ विपाशा × ५० ऋहिता १३ विपापा ५१ सुप्रयोगा १४ वेत्रवती × पूर पवित्रा १५ कृष्णा × ५३ कुंडली १६ बेएया × पृष्ठ राजनी १७ इरावती प्रप् प्रमालिनी १= वितस्ता × पृ६ पूर्वाभिरामा १६ देविका पूछ बीरा २० वेद्समृता पू= भीमा () २१ वेदवती पृष्ट मोघवती २२ त्रिविदा ६० पाशायनी २३ इचुला ६१ पापहरा २४ कृमि ६२ महेन्द्रा २५ करीषिणी ६३ पाटलावती २६ चित्रवाहा ६४ करीषिणी २७ चित्रसेना ६५ ग्रसिक्ती × २= गोमती × ६६ कुशचीरा × २६ धृतपापा ६७ मकरी ३० गएडकी × ६८ प्रवरा ४ ३१ कौशिकी × ६६ मेना ३२ निचिता ्७० हेमा

६६ कुवीरा
६७ श्रम्बुवाहिनी
६८ विनती <u>स्था</u>
८६ किंजला
१०० वेणा
१०१ तुङ्गवेणा
१०२ विदिशा
१०३ कृष्णवेगा ×
१०४ ताम्रा
१०५ कपिला
१०६ खलु
१०७ सुनामा
१०= वेदाश्वा
१०६ हरिश्रवा
११० शीघा
१११ पिच्छिला
११२ भारद्वाजी
११३ कौशिकी ()
११४ शोगा ×
११५ बाहुदा
११६ चंद्रमा
११७ दुर्गा
११= चित्रशिला
११६ ब्रह्मवेथ्या

१२० बृहद्धती

ध्य बहुला

१२१ यवद्या	१४१ चित्रोपला
१२२ रोही	१४२ चित्ररथा
१२३ जांबृनदी	१४३ मंजुला
१२४ सुनसा	- १४४ मंदाकिनी
१२५ तमसा	१४५ वैतरणी ×
१२६ यासी	१४६ कोषा
१२७ वसामन्या	१४७ शुक्तिमती
१२= वाराणसी	१४८ श्रनंगा
१२६ नीला	१४६ वृषसी
१३० धृतवती	१५० लौहित्या ×
१३१ पर्णाशा	१५१ करतोया ×
१३२ माधवी	१५२ वृषका
१३३ वृषभा	१५३ कुमारी
१३४ ब्रह्ममेध्वा	१५४ ऋषिकुब्जा
१३५ वृहध्वनि	१५५ मारिषा
१३६ कृष्णा	१५६ सरस्वती
१३७ मंदवाहिनी	१५७ मंदाकिनी
१३८ ब्राह्मणी	१५= सुपुराया
१३६ महागौरी	१५६ सर्वा
१४० दुर्गा "इनके सिवा	१६० गंगा अनेक अज्ञात औ
उनका सिदा	अंगक अज्ञात श्री

"इनके सिवा अनेक अज्ञात और जुद्र निद्याँ हैं; श्रोर महानिद्योंमेंसे जिनकी याद श्राई, वही यहाँ वतलाई गई हैं।" अर्थात् कुछ निद्याँ इनमें भी रह गई हैं। उदाहरणार्थ उज्जैनकी विप्रा।

SPECIFIC DER BEEF WIFE

THE PARTY OF ROOM PROPERTY

अभी कांगर कर गए अभाव है दिया

तेरहकाँ प्रकरण।

se Office on

ज्योतिर्विषयक ज्ञान ।

अद्भव देखना चाहिए कि महाभारतके समय भारती श्रायोंको ज्योतिष-शास्त्रका कितना ज्ञान था। महाभारतमें ज्योतिर्विषयक उल्लेख श्रनेक खलों पर हैं: श्रोर उन उल्लेखोंसे सिद्ध है कि महा-भारतके समयतक ज्योतिषशास्त्रकी बहुत कुछ जानकारी प्राप्त हो चुकी थी। इससे बहुत पूर्व वेदाङ्गज्योतिषका निर्माण हो चुका था और ज्योतिषशास्त्रमें गणितशास्त्र-का बहुत कुछ प्रवेश भी हो चुका था।सूर्य श्रीर चन्द्रका गणित कर लेनेकी पद्धति लोगोंको मालूम हो गई थी। तथापि समग्र रीतिसे ज्योतिषशास्त्रकी उन्नति महाभारत-कालके पश्चात् ही हुई-इससे इन्कार नहीं हो संकता। यूनानियोंका भी ज्योतिष-विषयक ज्ञान महाभारत-कालके पश्चात् ही बढ़ा श्रौर सन् ईसवीके प्रारम्भ-के लगभग उस ज्ञानका भारती ज्योतिष-शास्त्रके ज्ञानके साथ मेल हुआ: और फिर इसके पश्चात्, सिद्धान्त श्रादि बड़े बड़े उत्तम विस्तृत प्रन्थ भारतवर्षमें तैयार हुए। श्रव इस भागमें इस वातका विचार किया जायगा कि भारती-कालमें ज्योतिष-की जानकारी किस तरह बढ़ती गई।

भारती-कालके प्रारम्भ प्रर्थात् वैदिक-कालके अन्तमें भारतीय आर्योंको २७ नच्चत्रोंका, और उनके बीच चन्द्रकी गति-का, अच्छा ज्ञान हो गया था। यजुर्वेदमें सत्ताईस नच्चत्र पठन किये गये हैं। यही नाम महाभारतमें भी आते हैं। चन्द्र प्रति दिन सत्ताईस नच्चत्रोंमेंसे किसी न किसी एक नच्चत्रमें रहता है, यह भी इशारा

हुश्रा था। श्राजकल जिस तरह तारीलका उपयोग किया जाता है उसी तरह भारती कालमें नद्यत्रोंका उपयोग किया जाता था। जिस तरह श्राजकल यह कहा जाता है कि अमुक तारीखको अमुक बात हुई उसी तरह महाभारत-कालमें कहा जाता था कि श्रमुक वात श्रमुक नत्त्र पर हुई थी। समग्र 'सत्ताईस' नत्तत्रोंकी संस्था एक हिसाबसे कम पड़ती थी, शांकि चान्द्र मास श्रद्धाईस दिनोंकी श्रपेन कुछ जरासा बड़ा है। श्रतएव किसी समय सत्ताईस नचत्रोंके वदले श्रद्वांस नज्ञ माननेकी रीति पड़ गई थी। परल यह श्रद्वाईसवाँ नद्यत्र श्रसलमें काल्पनिक ही था। और उसके लिए काल्पनिक स्थान भी दिया गया था। इस अभिजित् नजनके विषयमें महाभारत (वनपर्व) में एक श्रद्धत कथा लिखी है। वनपर्वके २३०वें ऋध्याय-में ये रहोक आये हैं:-

श्रभिजित्सपर्धमाना तु रोहिएया कन्यसी स्वसा। इच्छन्ती ज्येष्ठतां देवी तपस्तजुं वनं गता॥ तत्र मृदोस्मि भवं ते नज्ञं गगनाच्युतम्। कालं त्विमं परं स्कद् वस्रणा सह चिन्तय ॥ धनिष्ठादिस्तराः कालो ब्रह्मणा परिकिट्पतः। रोहिणी त्वभवत्पूर्वं एवं संख्या समाभवत्॥ एवमुक्ते तु शकेण त्रिद्वं कृत्तिका गताः। नच्त्रं सप्तशीर्षामं भाति तद्विहिदैवतम्॥

इन श्लोकोंका ठीक ठीक अर्थ नहीं लगता। परन्तु स्पष्ट रूपसे कहा गया है कि अभिजित् नत्त्र आकाशसे गिर पड़ा क्योंकि वड़प्पनके लिए उस नत्त्रः का रोहिणींके साथ अगड़ा हो गया था। उस समय स्कन्दने, ब्रह्मदेवके साथ इस वातका विचार करके, धनिष्ठांसे काल-गणना शुरू कर दी। इससे पहले रोहिणी मुख्य थी। इस प्रकार व्यवस्था करने पर संख्या पूर्ण हो गई और कृतिकी

श्राकाशमें चली गई। वह सात मस्तकों-बाला नच्त्र श्रमिद्वत है श्रीर श्राजकल श्राकाशमें चमक रहा है। समभमें नहीं ब्राता कि इस कथाका सम्बन्ध प्रगली विछली कथाके साथ कैसा और का है।हाँ. श्राजकल उपलब्ध होनेवाली गर्गसंहिता-से भी देख पड़ता है कि, ज्योतिषशास्त्रके साथ स्कन्द देवताका सम्बन्ध था। इस ग्रन्थमें शिव श्रीर स्कन्दके सम्भाषण-हपसे समस्त ज्योतिषकी जानकारी दी गई है। तात्पर्य यह जान पड़ता है कि प्राचीन-कालमें नच्चत्रोंके श्रारम्भमें रोहिणी नतत्र थाः फिर वह संपातके पीछे हट जानेके कारण विरुद्ध होने लगा और काल-गणनामं गडवड होने लगी: अतएव एक नचत्रको पीछे हटाकर कृत्तिका नतत्रसे नत्तत्रोंकी गणना होने लगी। महाभारतमें "धनिष्टादिस्तदा कालः" यह भी उल्लेख है और कहा गया है कि यही कृत्तिकादि गराना है । पहले रोहिणी श्रादि गणना थी, श्रव श्रश्विनी श्रादि गणना है। इनके बीचके श्रवण नत्त्र पर उत्तरायण होनेका भी उल्लेख महाभारतमें है। अन्स्मृति (श्रश्वमेधपर्व) में कहा है—"श्रवणादीनि म्राणि ऋतवः शिविराद्यः।" दीचित-का कथन है कि यह वेदाङ्ग ज्योतिषके अनन्तरकी अर्थात (ईसवी सन्के पहले (४००के अनन्तरकी) और ईसवी सन्के पहले ४०० के लगभगकी स्थिति है। सिका उल्लेख किसी श्रन्य स्थानमें किया ही गया है। लोकमान्य तिलकने सिद्ध किया है कि चैदिक-कालके पहले मृग-शीर्षमें नद्मत्रका श्रारम्भ होता था। श्रस्तुः इसका मर्म श्रगले विवेचनसे समभमें श्रावेगा।

भारती कालके आरम्भसे लेकर महा-भारतकाल पर्यन्त नंदात्रोंके आरम्भमें हित्तकाएँ ही थीं। ब्राह्मण-प्रन्थोंमें भी कृतिका ही प्रारम्भमें हैं। महाभारतके अनुशासन पर्वके ६४ वें अध्यायमें समस्त नच्चत्रोंकी सूची देकर वतलाया है कि प्रत्येक नच्चत्र पर दान करनेसे भिन्न भिन्न प्रकारका क्या पुण्य मिलता है। इस सूचीमें भी प्रारम्भमें कृत्तिकाएँ ही हैं। सात नच्चत्रोंकी एक पंक्ति वनाकर सब नच्चत्रोंकी फेहरिस्त यहाँ दी जाती है:—

	The mersia A	हा दा जाता ह:—
. 3	कृत्तिका 💮	१५ अनुराधा
२	रोहिणी	१६ ज्येष्ठा
	मृगशिर :	१७ मूल
8	श्राद्धी करिय	१८ पूर्वाषाढ़ा
	पुनर्वसु	१६ उत्तराषाढ़ा
6	पुष्य	२० श्रभिजित्
G	श्राश्लेपा	२१ श्रवण
	मधा । गाम	२२ धनिष्ठा
3	पूर्वा 🔻 🦅 🦙	२३ शतभिषक्
	उत्तरा	२४ पूर्वाभाद्रपदा
88	हस्त ।	२५ उत्तराभाद्रपद्
१२	चित्रा 🦠 🏗 🥫	२६ रेवती
१३	स्वाती	२७ श्रश्विनी
१४	विशाखा	२= भरणी

विलकुल पूर्व कालमें प्रारम्भ मृगशीर्षसे होता था। फिर जब रोहिणीसे
शुरू हुआ तब अवश्य ही शतिभषक्
नत्तत्र पर कालारम्भ होता था। जब
कृत्तिकासे प्रारम्भ हुआ तब धनिष्ठादिकाल हो गया। यह बात पाठकोंके ध्यानमें आ जायगी। आजकल महाभारतकालकी यह गणना छूट गई है, अध्विनीसे नत्तत्रका आरम्भ होने लगा है और
कालारम्भ (वसन्तारम्भ) श्रमिजित्
नत्त्रको होता है। महाभारत-कालके अननत्त्रके इस समयमें अध्विन्यादि गणना
शुरू हुई और उसका मेल, वृष्भ इत्यादि
बारह राशियोंके चन्द्रके साथ मिलाया
गया। सन् ईसवीके आरम्भसे लेकर

श्रवतक यही नत्तत्र-गणना चली श्रा रही है। पिछले क्रमके श्रनुसार, सम्पातगति-के कारण, श्रागे कभी न कभी नत्त्रतारम्भ एक या दो नत्त्रतोंके पीछे हटकर रेवती श्रथवा उत्तरा भाद्रपदसे करना पड़ेगा।

पहले रोहिणी नत्तत्र किसी समय सब नत्त्रोंमें प्रमुख था, इस बातको दर्शानेवाली एक श्रीर कथा महाभारतमें है। ये सत्ताइसों नत्तत्र दत्त प्रजापतिकी कन्याएँ हैं; उसने इनका विवाह चन्द्रमा-के साथ कर दिया; किन्तु चन्द्रमाने सब पर एकसी प्रीति न करके रोहिणी पर श्रत्यधिक प्रेम करना श्रारम्भ कर दिया। तव, श्रौरोंने दत्तसे इस वातकी शिकायत की। किन्तु इधर चन्द्रमा दत्तकी एक न सुनता था। तब दत्तने चन्द्रमाको शाप दिया कि जातू चयो हो जायगा। इस कारण चन्द्रमाको चय होता है और प्रमास तीर्थमें स्नान करनेसे वह मुक्त हो जाता है (शल्य पर्व सरस्वती श्राख्यान)। इस कथाका तात्पर्य इतना ही है कि चन्द्रमा-की गति न्युनाधिक परिमाण्से शीध श्रथवा मन्द रहती है। इस कारण ऐसा देख पडता है कि रोहिणी नत्तत्रमें वह बहुत समयतक रहता है। प्रभास तीर्थ पश्चिमकी श्रोर है, श्रीर श्रमावस्थाके पश्चात् चन्द्रमाका उद्य पश्चिममें होता है। इससे यह कल्पना हुई है कि प्रभास तीर्थमें स्नान करनेसे चन्द्रमा तय रोगसे मुक्त हो जाता है।

भिन्न भिन्न नत्त्रत्रोंसे चन्द्रमाकी गति-का ज्ञान महाभारत-कालमें श्रच्छा हो गया था। इसी तरह नत्त्रत्रोंमें सूर्यके गमनका भी ज्ञान महाभारतके समय खासा हो गया था। इसमें सन्देह नहीं कि रातका समय होनेसे नत्त्रत्रोंमें चन्द्रमाकी गति देख लेना सहज है; परन्तु सूर्यकी गतिकी श्रोर सूर्य उगनेके पूर्व श्रौर डूबनेके पश्चात् ही यह देखकर ध्यान देना सम्भव है कि कौन कौन नज़ चितिज पर देख पड़ते हैं। इस तरह भारती श्रायोंको यह वात माल्म थी कि नचत्र-मण्डलमें सूर्य भी घूमता है। सूर्यके समग्र मगडलके चकरके लिए ३६५। दिन लगते हैं। इतने समयमें चन्द्रमा ३५४ दिनोंमें बारह परिक्रमाएँ करता है, और कुछ दिन बच रहते हैं। यह स्पष्ट है कि महीनोंकी कल्पना चन्द्रमाके घूमनेसे ही होती है श्रीर श्रमावस्या-पूर्णिमासे महीने का ज्ञान होता है। वर्षकी कल्पना सर्वकी गतिसे है। इस तरह एक वर्षमें बार महीने श्रीर ११। दिन होते हैं। इस रीतिसे यद्यपि चान्द्र महीनोंसे सौर वर्षका मेल नहीं मिलता, तथापि भारती श्रायोंने न तो चान्द्र महीनोंको ही छोडा श्रोर न सौर वर्षको ही। क्योंकि पूर्णिम श्रमावस्या पर उनका विशेष यह होता था और वे सौर वर्षको भी छोड़न सकते थे। कारण यह है कि ऋतुमान सौर वर्ष पर अवलम्बित है। इसके लिए उन्होंने चान्द्र मासके साथ सौर वर्ष का मेल मिलानेका प्रयत्न किया। महा भारत-कालमें उन्हें मालूम न था कि सौर वर्ष ठीक ३६५। दिनोंका है। नात्त सौर वर्ष लगभग ३६६ दिनोंका होता है। इस हिसाबसे उन्होंने पाँच वर्षके युगर्ब कल्पना की और इन पाँच वर्षोंमें वे महीने श्रिथिक मिलानेकी रीति चलाई स्पष्ट है कि पाँच वर्षमें लगभग दो मही श्रिथिक (१२ × ५ = ६० दिन) चान्द्र मास्त्री बढ़ जाते हैं। हमने पहले एक स्थान प दिखलाया ही है, कि श्रारमभमें ये होती महीने त्रर्थात् समूची एक ऋतु, एक ही समय, बढ़ा देनेकी रीति भारती यु कालमें रही होगी। भारती युद्ध के समा कुछ लोग तो ३५४ दिनका चाल

मानते रहे होंगे श्रोर कुछ लोग ३६६ दिनोंका सौर वर्ष।इसी कारण, पागडवों-ते तेरह वर्षोंके वनवास श्रोर श्रज्ञात-वासका, शर्तके श्रनुसार, पालन किया श्रथवा नहीं—इस विषयमें भगड़ा उप-श्रित होने पर भीष्मने इसका फैसला करते हुए कहा है कि—

पंचमे पंचमे वर्षे हो मासाबुपजायतः। एवमप्यधिका मासाः पंच च द्वादश चपाः॥ त्रयोदशानां वर्षाणां इति मे वर्तते मतिः।

हर पाँचवे साल दो महीने उत्पन्न होते हैं। इन दो महीनोंको वेदांगज्योतिष-में पाँच वर्षोंके युगमें दो वार अलग श्रलग मिलानेकी रीति कही गई है। पहला महीना तो पहले २३ वर्षोंमें आवण-के पहले और दूसरा महीना पाँच वर्षोंके युगके अन्तमें माघसे पहले; अर्थात् महा-भारत-कालमें आवण और माघ यही दो महीने अधिक (लोंद) हुआ करते थे। इन अधिक महीनोंका उल्लेख महाभारतमें श्रन्यत्र कहीं नहीं है।

सूर्य-चन्द्रकी गतिका ज्ञान हो जाने पर पाँच वर्षोंका युग महाभारत-कालमें प्रचलित था। इनकी सूद्रम गणनाके लिए समयके जो सूद्रम विभाग किये गये थे वे ये हैं:—कला, काष्टा, मुहूर्त, दिन, प्रच, महीना, ऋतु, वर्ष श्रोर युग। इनका कोष्टक भी महाभारतके शांति पर्वमें है।

काष्टा निमेषा दशपश्च चैव त्रिंश-त्काष्टा गणयेत्कलानाम्। त्रिंशत्कलश्चापि भवेन्मुहृतों भागः कलाया दशमश्चयः स्थात्॥

(शान्ति पर्व श्र० २३१)

यहाँ निर्मेष श्रर्थात् पलक मारनेसे ही गणना की है।

१५ निमेष = १ काष्टा

३० काष्टा = १ कला

३० है कला = १ महर्त

३० संहर्त = १ दिन

२० दिन = १ महीना १२ महीने = १ वर्ष १ वर्ष = १ ग्रुग

हर एक कला और काष्टाके लिए भिन्न भिन्न नाम नहीं है: परन्तु दिन भरके प्रत्येक मुहूर्तके लिए भिन्न भिन्न नाम हैं। महाभारतके समय इन मुहुर्तीका सम्बन्ध प्रत्येक धार्मिक कर्मके साथ भला या वुरा (शुभ-श्रशुभ) समभा जाता था। इसीके अनुसार प्राचीन कालसे लेकर श्रवतक यह धारणा है, कि श्रमुक मुहूर्त-में कौन काम करना चाहिए श्रौर श्रमुक मुहर्तमें कौन काम न करना चाहिए। परन्तु महाभारतके समय महर्त शब्दका जो अर्थ था वह तो गया भूल, और श्राजकल मुहूर्तका श्रर्थ कोई न कोई शुभ त्रथवा त्रशुभ समय हो गया है। त्राज-कल बहुधा किसीको यह मालूम नहीं रहता कि मुहूर्तसे मतलव कितने समयसे है। श्राजकल तो मुहुर्तका समय साधा-रग एक आध मिनट लिया जाता है; परन्तु उल्लिखित नक्शेके अनुसार मुहूर्त दो घड़ी या ४८ मिनिटोंका होता है। उल्लिखित नक्शेमें और श्रमरकोशमें दिये हुए नक्शेमें थोड़ासा फर्क है।

श्रष्टादश निमेषास्तु काष्टा त्रिंशत्तु ताःकला। त्रिंशत्कलो मुहूर्तस्तु त्रिंशत्राज्यहनी च ते॥

इसमें यह भेद स्पष्ट है। इससे देख पड़ताहै कि महाभारतके श्रनन्तर, पहलेकी ज्योतिषकालगणना-पद्धतिमें ज़रा श्रन्तर पड़ गया श्रोर भिन्नता श्रा गई। दोनों ही गणनाश्रोंमें दिन मात्र एक है। एक स्यॉदयसे लेकर दूसरे स्यॉदयतक दिन श्रथवा श्रहोरात्र दोनोंने एकसा माना है। दिनके श्रागेका परिमाण महाभारतके सभय श्रोर उसके श्रनन्तर बहुत कुछ भिन्न हो गया। महाभारतके समयके पश्रात् सात दिनोंका एक सप्ताह बन गया। भिन्न भिन्न ग्रहोंके नाम पर प्रत्येक दिनके भिन्न भिन्न नाम रखे गये श्रौर इस प्रकार वार उत्पन्न हो गये। महा-भारतमें ये वार हैं ही नहीं। जानना चाहिए कि इन वारोंकी उत्पत्ति श्रागे चलकर कैसे हो गई। ये वार (दिन-नाम) पहलेपहल खाल्डियन लोगोंमें उत्पन्न हुए श्रौर वहाँसे संसार भरमें फैल गये हैं। हिन्दुस्थानमें ये वार महाभारत-कालके श्रनन्तर वैक्ट्रियन यूनानियोंके साथ उनके ज्योतिषियोंको रीति समेत हमारे श्रवांचीन ज्योतिषशास्त्रमें प्रविष्ट हो गये।

वैदिक कालमें प्रचलित छः दिनोंके पृष्ट्य नामक दएडकका नाम महाभारतमें नहीं पाया जाता । यह छः दिनका दएडक, यहके उपयोगके लिए, वैदिक कालमें किएत किया गया था । ३५४ दिनोंका चान्द्र वर्ष, ३६० दिनोंका सामान्य वर्ष श्रोर ३६६ दिनोंका नाच्च सीर वर्ष होता है। ये तीनों वर्ष वैदिक कालमें माने गये थे श्रोर उनमें छः छः दिनोंका श्राम यहके होते हैं। छः दिनका यह विभाग यहके काममें बहुत कुछ उपयोगी होता था। यह छः दिनका पृष्ट्य श्रर्थात् सप्ताह, महाभारतके समय, यहकी प्रवलता घट जानेसे पीछे रह गया होगा।

तिथि श्रीर नत्त्रके कारण चान्द्र मास-की गणनामें, दिनका महत्त्व भिन्न भिन्न होता था। जिस दिन जिस नत्त्रत्र पर चन्द्र हो, यही उस दिनका नत्त्रत्र है। महा-भारत-कालमें तिथिकी श्रपेत्ता नत्त्रत्रका महत्त्व श्रधिक था। २७ नत्त्र्रोंके २७ भिन्न भिन्न देवता माने गये थे। श्रीर उन देवताश्रोंके स्वभावके श्रनुसार, उस उस नत्त्रतसे गुण श्रथवा श्रवगुण होनेकी बात मानी जाती थी। इस प्रकार, महाभारत- के समय फल-ज्योतिषकी दृष्टिसे नत्त्रों का उपयोग श्रधिकतासे होता था। कहा यात्राके लिए जाना, विवाह करना या युद्ध करना हो, तो नक्त्रत्र देखकर उचित नक्त्रत्र पर करना पड़ता था। जिस नक्त्रक में मनुष्यका जन्म हुश्रा हो उस नक्त्रक श्रनुसार उस मनुष्यकी श्रायुमें सुख-दुःख होनेकी कल्पना महाभारतके समय पूर्ण रूपसे चल चुकी थी। इसी कारण, जन्म कालका नक्त्रत्र देनेकी रीति महाभारतसे दुग्गोचर होती है। युधिष्टिरका जन्म जिस श्रच्छे नक्त्रादि गुणों पर श्रीर समय पर हुश्रा था उसका वर्णन यो किया है।

एन्द्रे चन्द्रसमारोहे मुहतेंऽभिजिद्धमे। दिवामध्यगते सुर्ये तिथौ पूर्णेति पूजिते॥

इसमें कहा गया है कि चन्द्र-समारोह अर्थात् नत्तत्र ऐन्द्र है अर्थात् इन्द्र देवता-का है। इससे यह स्वित होता है कि जिस प्रकार इन्द्र सब देवताओंका राजा है, उसी प्रकार युधिष्ठिर भी सबका राजा होगा। यह ज्येष्ठा नत्तत्र है। यद्यपि महा-भारतके समय नत्त्रत्रोंका महत्त्व सबसे श्रेष्ठ माना जाता था, और यह समभा जाता था कि जन्म-नत्तत्रके अनुसार ही मनुष्यकी सारी आयु बीतती है, तथापि फल-ज्योतिषकी निन्दा करनेवाले और उस पर अविश्वास करनेवाले लोग तब भी थे।

बहवः संप्रदृश्यन्ते तुल्यनचत्रमंगलाः। महत्तु फलवैषम्यं दृश्यते कर्मसंगिषु॥ (वनपर्व)

फल-ज्योतिष पर श्रव भी यह श्राहें।
किया जाता है कि यद्यपि बहुतसे लोग
पक ही नज्ञ पर होते हैं; परन्तु उनके
कर्मके श्रनुसार श्रायुष्यके फलमें श्रयत विषमता दिखाई देती है। यही श्राहेंप महाभारत-कालमें भी किया जाता थी

श्रस्तुः नचत्रोंके देवता श्रलग श्रलग माने गये थे। यह विश्वास था कि उन देव-ताब्रोंके श्रनुसार फल होता है। ज्योतिष-के इसी सिद्धान्तके श्रनुसार, महाभारतके युद्धके समय, सौतिने अनेक अशुभ चिह्न वर्णन किये हैं। सौतिने यह दिखलानेका प्रयत किया है कि प्राण और चत्रियके श्रमिमानी नक्तत्रों पर कर प्रहोंकी दृष्टि ब्राई हुई है। इसका विवेचन पहले हुआ ही है। अस्तु; स्पष्ट है कि महा-भारतके समय समस्त भारती-ज्योतिष नतन-घटित था । महाभारतके बाद तथे वैक्ट्यन श्रीक लोगोंकी सहायतासे जो सिद्धान्त-ज्योतिष बना, उसमें नचत्र पीछे पडे श्रीर राशि तथा लग्नकी ही प्रधानता हुई। वही रवाज अवतक चल रहा है। नज्ञांका भी कुछ उपयोग इस समय होता है: परन्तु इस बातकी जाँच नहीं की जाती कि नद्यत्रोंके देवता कौन हैं। श्रीर कहाँतक कहा जाय, श्राजकल ज्योतिषियोतकको भी वहधा इसका ज्ञान नहीं रहता।

महाभारत-कालमें नज्जोंके श्रनन्तर दिनका महत्त्व तिथिके नाते बहुत कुछ था। तिथिका अर्थ है पत्त भरके दिनोंकी संख्या। समग्र तिथियोंमें पञ्चमी, दशमी श्रौर पौर्णिमा शुभ मानी गई हैं श्रीर इन्हें पूर्णा कहा गया है। युधिष्ठिरके जन्म-विषयमें 'तिथौ पूर्णेंऽतिपूजिते' का उल्लेख हो ही चुका है। महाभारतमें समाचार कद्दते समय जितना उपयोग नज्ञोंका किया गया है, उतना तिथियोंका नहीं पाया जाता। फिर भी कुछ स्थली पर तिथियोंका उल्लेख मिलता है। यह वर्णित है कि विराट नगरमें गो-प्रहणके लिए सुशर्मा तो सप्तमीको गया श्रोर कौरव ग्ये अष्टमीको । स्कन्दको देव-सेनाका श्राधिपत्य पञ्चमीके दिन दिया गया श्रीर

पष्टीको उसने तारकासरका पराभव किया। परन्तु यह नहीं वतलाया गया कि ये घटनाएँ किस महीने श्रौर पत्तमं हुई। यह वड़े आश्चर्यकी वात है। आगे इस विषयका उल्लेख होगा । यह कहनेकी श्रवश्यकता नहीं कि पत्त दो थे। एक शुक्क अथवा सुदी और दूसरा कृष्ण श्रथवा वदी। शुक्क पत्तको पहला श्रौर कृप्ण पद्मको दूसरा माननेकी प्रथा महा-भारत-कालमें रही होगी। यह प्रथा युनान श्रोर श्रन्य देशोंकी रीतिके विरुद्ध थी, इस कारण यूनानी इतिहास-प्रणे-ताश्रोंका ध्यान इस श्रोर सहज ही पहुँच गया । सिकन्दरके समय हिन्दु-स्थानमें जो काल-गणना प्रचलित थी, उसका वर्णन करते हुए इतिहास-लेखक कर्टियस रूफसने कहा है कि-"यहाँके लोग प्रत्येक महीनेके, पन्द्रह पन्द्रह दिनके, दो पच मानते हैं। तथापि समग्र वर्षकी गणनामं फर्क नहीं होता। (श्रधीत एक वर्ष ३६६ दिनोंका माना जाता है)। परन्तु श्रीर बहुतेरे लोग जिस तरह चन्द्रके पूर्ण होनेकी तिथिसे गणना श्रारम्भ करते हैं, उस तरह भिन्न भिन्न महीनोंको नहीं जोडते । जिस समय चन्द्र तुरन्त ही उगने लगता है, उसी समयसे यहाँवाले गणनाका आरम्भ करते हैं।" इससे सिद्ध है कि सिकन्दरके समय- महाभारत-कालमं- श्रन्य देशां-की तरह महीने पौर्णिमान्त न थे, किन्तु श्राजकलको भाँति श्रमान्त थे।

किन्तु यह नहीं माना जा सकता कि
सर्वत्र ऐसी ही स्थिति थी। पौर्णिमान्त
महीनेकी रोति भारती-कालमें, वैदिक
कालकी ही भाँति, कहीं कहीं प्रचलित
थी। वनपर्वके १६२ वें श्रध्यायमें कुबेर,
युधिष्टिरसे कहते हैं—"यहाँ पर तुम कृष्ण-

लम्बी चौड़ी टीका की है। "इस पर कुछ लोगोंका यह कहना है कि उस जमानेमें कृष्णपत्त प्रथम रहताथा। किन्तु यह कथन भ्रान्त है : क्योंकि पद्मके लिए पूर्व श्रीर श्रपर, सुदी श्रीर बड़ी, ये संज्ञाएँ हैं। इसी तरह पौर्णिमाका नाम पृणिमासी है। इससे कुछ यह अर्थ नहीं लेना है कि यहाँ महीना पूरा हो जाता है; किन्तु मास शब्दका श्रर्थ चन्द्र भी है श्रीर इसीसे पौर्णिमाको पूर्णमासी कहते हैं।" यहाँ पर सिर्फ इतना ही कहना है कि समस्त भाषाश्रोंमें चन्द्र श्रौर महीनेका निकट सम्बन्ध है। श्रॅंग्रेजीमें भी 'मन्ध' शब्दका 'मून' (चन्द्र) शब्दसे सम्बन्ध है। इसी तरह संस्कृतमें 'मास' शब्द मूलमें चन्द्र-वाचक है, फिर महीनेका बोधक हो गया है। फारसीमें भी माह शब्द चन्द्रवाची है. उसका अर्थ भी महीना हो गया है। इस सम्बन्धमें कोई आश्चर्य नहीं: क्योंकि सभी लोगोंमें पहले महीने चन्द्रसे निश्चित किये गये थे। हाँ, बहुतेरे स्थलों पर चन्द्र पूर्ण होने पर महीना गिननेकी रीति थी। इसी प्रकार भारती लोगोंमें भी पूर्ण चन्द्रसे महीना गिननेकी रोति रही होगी श्रीर महाभारतमें उसका उल्लेख आदि कचित् पाया जाता है। वैदिक साहित्यमें तो वह है ही। परन्तु निश्चय है कि महाभारतके समय उत्तरी हिन्दुस्थानमें -- निदान पञ्जाबमें -- यूना-नियोंको श्रमान्त महीने प्रचलित मिले। महाभारत-कालके पश्चात् उत्तरी हिन्दु-स्थानमें पौर्णिमान्त महीनेकी रीति चल पड़ी और वह अब भी विक्रमी संवत्के साथ साथ प्रचलित है। विक्रमी संवत् पौर्णिमान्त महीनेका होता है-यह चाल कब निकली ? यह एक महत्त्वका प्रश्न है। परन्तु शक-वर्ष सदा श्रमान्त महीनोंका माना जाता है श्रीर सब ज्योतिष-ग्रन्थोंमें

यही गणना दी हुई है। इस समय हिन्दुः स्थानमें दोनों रीतियाँ प्रचलित हैं। नर्मदाके उत्तरमें संवत्के साथ पूर्णिमान्त महीना प्रचलित है, श्रीर दिच्चणमें शक-वर्षके साथ श्रमान्त महीना प्रचलित है।

साधारण रीतिसे महीना ३० दिनका माना जाता था और प्रत्येक पन्धरवाहे (पखवाड़े) में पन्द्रह तिथियाँ मानी जाती थीं। तिथियोंके नाम प्रतिपदा, द्वितीया श्रादि संख्या पर थे। परन्तु चंन्द्रका सूर्यसे सङ्गम उन्तीस दिनोंमें श्रीर कभी कभी श्रद्वाईस दिनोंमें ही हो जाता है; इस कारण एक श्राध पखवाड़ेमें एक या ते तिथियाँ घट जाती थीं अधवा कभी कभी एक तिथि ज्यादा भी हो जाती थी। चन्द्रका ब्रहगणित जिस समय माल्म न था, उस समय पहलेसे समभमें न त्राता था कि किस पखवाडेमें कितनी तिथियाँ होंगी। श्रीर यह बात श्रन्तमें प्रत्यच श्रनुभवके भरोसे ही छोड़नी पड़ती थी। महामा-रतसे प्रकट होता है कि भारती-कालमें एक ऐसा भी समय था। जिस तरह श्रख लोग इस समय भी प्रत्यच चन्द्रको देखका तदनुसार महीना मानते हैं, वहीं दशा पहले, एक समय भारती आयोंकी थी श्रौर पहलेसे ही तिथिकी वृद्धि श्रथवा चयको जान लेना उनके लिए किन था । भीष्मपर्वके श्रारम्भमें भृतराष्ट्रसे व्यास कहते हैं—

चतुर्दशीं पञ्चदशीं भूतपूर्वांच षोडशीम्। इमान्तु नाभिजानेहममावास्यां त्रयोदशीम्॥

"मैंने चतुर्द्शी, पश्चद्शी श्रीर षोड्शी श्रर्थात् सोलहवीं तिथिको भी श्रमावासा देखी है (श्रर्थात् एक दिनकी वृद्धि या चयको देखा है)। परन्तु में तेरहवें दिन श्रमावस्थाको नहीं जानता।" इस वाका से सिद्ध है कि भारती-युद्धके समय तिथियोंके निश्चित किये जानेका गणित

उत्पन्न न हुआ था। परन्तु इस समय यह गिणत माल्म हो गया है श्रीर समी जानते हैं कि तेरह दिनोंका पखवाड़ा कई बार होता है। इससे कुछ यह नहीं कहा जा सकता कि हम व्यासकी अपेजा चत्र हैं। वेदाङ्ग-ज्योतिषमें तिथियोंका गणित है। अर्थात् भारतीय युद्धका ममय-व्यासका समय-चेदाङ्ग-ज्योतिष-के पहले ही निश्चयपूर्वक निश्चित होता है। यानी यह निश्चित हुआ कि सन हसवीसे १४०० वर्ष पूर्व भारतीय यद हुत्रा था। अस्तुः यह पहले ही कहा जा वका है कि महाभारत, वर्तमान खरूपमें. वेटाइ-ज्योतिषके अनन्तर श्राया। महा-भारतके समय यह बात भालम होगी कि सूर्य श्रीर चन्द्रका योग २ दिनोंमें होता है श्रीर नीचेवाले श्रोकसे यही देख पडता है-

श्रष्टाविंशतिरात्रं च चंक्रम्य सह भानुना। निष्पतन्ति पुनः स्योत्सोमसंयोगयोगतः॥

स्र्यंके साथ नज्ञत्र २ दात्रियाँ घूम-कर, चन्द्रके संयोगके पश्चात्, फिर स्र्य-से बाहर होते हैं। इस श्लोकका ऐसा ही श्रर्थ जान पड़ता है। श्रस्तुः यह वात तो पदर्शित की गई है कि स्र्यं-चन्द्रका संयोग २ दात्रियोंके पश्चात् होता है (उ० श्र० ११०)।

कुल महीने बारह हैं श्रीर महाभारत-के समय उनके वही नाम थे जो श्राज-कल प्रचलित हैं। श्रर्थात् मार्गशीर्ष श्रादि नामोंका चलन था। इनके सिवा दूसरे नाम, जो कि श्राजकल भी प्रचलित हैं, युचि, शुक्र श्रादि वे भी प्रचलित थे। जिस नज्ज पर पूर्णिमाको चन्द्रमा श्राता है उस नज्जका नाम महीनेको देकर प्राचीन कालमें पहले नाम रखे गये थे; श्रर्थात् यह पकट ही है कि ये नाम पौर्णिमान्त महीनोंके समयके हैं। महीनोंके नाम इस

प्रकार हैं-मार्गशीर्घ, पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, त्राषाढ़, श्रावण, भाद्र-पद, श्राश्विन और कार्तिक । इनका श्रारम्भ मार्ग-शीर्षसे होता है। ध्यान देने-की वात यह है कि आजकलकी तरह चैत्रसे श्रारम्भ नहीं होता। मार्गशीर्ष महीनेको श्राग्रहायण कहा है। श्रनुशा-सन पर्वके १०६ठे श्रीर १०६वें श्रध्यायमें प्रत्येक महीनेमें उपवास करनेका फल लिखा है। उसमें भी प्रारम्भ मार्गशीर्थसे ही है। इसके श्रतिरिक्त गीतामें भी "मासानां मार्गशीषींहम्" कहा है। इससे जान पड़तां है कि भारतीकालमें महीनोंके श्रारम्भमें मार्गशीर्ष होना चाहिए। यह एक महत्वका प्रश्न है कि पहले महीनोंके श्रारम्भमें मार्गशीर्ष क्यों था। परन्तु यहाँ पर हमें इस कठिन प्रश्नका विचार नहीं करना है। समुचे भारती-कालमें महीनों-का क्रम मार्गशीर्षादि है श्रीर श्रव लगभग ईसवी सन्के प्रारम्भसे चैत्रादि हो गया है। इसी तरह नदाय-गणना भी महा-भारतमें कृत्तिकादि थी और लगभग ईसवी सन्के प्रारम्भसे ही वह अश्विन्यादि हो गई है।

ब्राह्मण अन्थोंमें श्रीर यजुःसंहितामें महीनोंके जो श्रन्य नाम हैं वे महाभारत-में कहीं देख नहीं पड़ते । परन्तु श्रगले श्रोकमें श्रीकृष्णका समभौतेके लिए जाने-का समय बतलाया गया है।

कौमुदे मासि रेवत्यां शरदंते किमागमे।
इसमें टीकाकारने कौमुद नाम कार्तिकका वतलाया है; परन्तु किसी फेहरिस्तमें यह नाम नहीं पाया जाता। श्रर्थात्
न तो मार्गशीर्पादि फेहरिस्तमें है, न श्रुचि,
श्रुक श्रादि फेहरिस्तमें है श्रीर न उस
तीसरी फेहरिस्तमें ही है जो कि यजुवेंदमें है। यह श्रचरजकी वात है। एक
बात श्रीर लिखने लायक यह है कि

पूर्व वर्णित गो-श्रहणकी तिथियांके साथ किसी महीनेका नाम नहीं बतलाया गया। बिना महीनेके तिथि बतलाना श्रसम्भव है, इसलिए यह माननेमें कोई त्तित नहीं कि भारती-युद्धके समय प्राचीन यजुर्वेदके महीनोंके नाम श्रहण श्रहणरजः श्रादि प्रचलित थे श्रोर भारती-कालमें मार्गशीर्ष श्रादि नामोंका प्रचार हो जानेके कारण लोगोंको वे पुराने नाम दुर्वोध हो गये। इस कारण यह माना जा सकता है कि महाभारत-कालमें वे नाम सीतिके ग्रन्थसे निकाल दिये गये हों। इस विषयका विचार श्रन्यत्र हुआ ही है। श्रव ऋतुश्रोंकी श्रोर चलें।

ऋतएँ वैदिक हैं और गिनतीमें छ थीं। महाभारतके समय वही प्रचलित थीं । ये झृतुएँ वसन्त, श्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त श्रीर शिशिर थीं। भगद्गीतामें कहा है 'मासानां' मार्गशीर्षोऽहमृत्नां कुसुमाकरः' श्रर्थात् ऋतुश्रोंके श्रारम्भमें वसन्त था श्रीर महीनोंके श्रारम्भमें मार्ग-शीर्ष। इन दोनोंका मेल नहीं मिलता। यह एक छोटीसी पहेली ही है। ये छहां ऋतुएँ हिन्दुस्थानसे वाहरकी और वेद-कालीन हैं। ऋतुश्रोंकी वही गणना महा-भारत-काल पर्यन्त रही और श्रव भी चैत्रादि गणनाके साथ चल रही है। मार्गशीर्ष श्रादि गणना श्रीर नाम भारती-कालमें उत्पन्न हुए: पर उनका मेल ऋतुद्रोंके साथ नहीं किया गया। श्रीकृष्ण-के उपर्युक्त वर्णनमें 'शरदन्ते हिमागमे' कहा है और महीना बतलाया है कार्तिक। इसके सिवा यह वर्णन है कि सर्वसस्य-सुखे काले—सव प्रकारका श्रन्न श्रौर घास तैयार हो जानेसे लोग सुखी हो गये हैं। इससे जान पड़ता है कि वर्त-मान समयमें श्रीर महाभारतके समयमें, ऋतुश्रोंके सम्बन्धमें, कुछ ज्यादा श्रन्तर

नहीं पड़ा। सूर्यको गति पर ऋतुएँ अव लिम्बत हैं श्रीर श्रयनिवन्द्रके पीछे जानेके कारण वसन्तारम्भ श्रीरे श्रीरे पीछे हस्ता जाता है: इससे ऋतुका पीछे हरना प्रसिद्ध ही है। यह ऊपरवाला वर्णन महाभारत-कालका श्रर्थात् सन् ईसवीसे लगभग २५० वर्ष पूर्वका है—यह मान लेने पर देख पड़ेगा कि एक महीनेके लगभग ऋतुचक्र पीछे घसिट गया है। क्योंकि श्राजकल बहुधा श्रन श्रीर घास कुआरमें पककर तैयार होती है; श्रोर उस ज्ञमानेमें कार्तिकमें तैयार होनेका वर्णन है। फिर भी हम लोग अवतक चैत्रा रम्भसे ही वसन्तका श्रारम्म मानते हैं। यह गणना महाभारतके पश्चात्की है श्रोर वह लगभग ईसवी सन्के पारमकी है। इसमें आश्विन और कार्तिक शरदके महीने हैं: ज्येष्ठ और श्राषाढ श्रीमके महीने हैं: और श्रावण, भाइपद बर सातके। श्राजकलके हिसावसे वरसात बहुधा श्राषादसे शारम्भ हो जाती है। सभापर्वमें कहा है 'शुचि शुक्रागमे काले शुष्येत्रोयमिवाल्पकम्।' यह उल्लेख ऐसी स्थितिका बोधक है कि ज्येष्ट श्रोर श्रापाइ महीने ही श्रीष्म ऋतुके हैं। शुचि श्रीर शुक्र, ज्येष्ठ और श्रापाढके नाम है। श्रर्थात् महाभारत-कालसे लेकर अवतक सरसरी तौर पर ऋतुएँ एक महीने पींहे हट गई हैं। हिन्दुस्थानमें वास्तविक वर सात चार महीनेकी है। विशेषतः ऋतुश्री का यह भेद द्तिएमें अधिक देख पड़ता है। प्राचीन ऋतु-चक्रमें वर्षा ऋतुके दी ही महीने माने गये हैं। रामायणकी किष्किन्धा काएडमें यह श्लोक है-

पूर्वीयं वार्षिको मासः श्रावणः सिलः लागमः। प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारो मासा वार्षिकसंक्षिताः॥

इससे रामायण-कालमें भी वर्षा

ऋतुका पहला महीना श्रावण ही माना
तया है श्रोर उसको सिललागम कहा
तया है। श्रथीत वरसातका प्रारम्भ ही
कहा है। इससे प्रकट है कि रामायणके
समयमें भी ऋतुएँ, वर्तमान समयसे,
एक महीने श्रागे थीं श्रोर वर्ष ऋतुके
बार महीने माने जाते थे। इससे रामावर्ष पहले निश्चित होता है।

सूर्यकी उत्तर और दिन्नण गितसे
अहुत्रांका चक उत्पन्न होता है। महाभातिक समय यह वात ज्ञात थी। वनपर्वके
१६३ वं श्रध्यायमें कहा है कि—"सूर्यके
दिन्नण श्रोर जानेसे शीत उत्पन्न होता
है श्रीर उत्तर श्रोर लौट श्राने पर वह
पानीको सोख लेता है। फिर वह पानी
छोड़ता है; श्रीर तब पृथ्वी पर शस्य
श्रादिकी उत्पत्ति करता हुश्रा दिन्णकी
श्रोर चला जाता है। इस प्रकार सुखोत्पत्तिके लिए कारणीमूत यह महातेजस्वी
सूर्य वृष्टि, वायु श्रीर उप्णताके योगसे
प्राणियोंकी श्रिभवृद्धि करता है।"

ऋत-चक्रके एक बार घुमनेसे एक वर्ष होता है श्रीर वर्षकी कल्पना ऋतुश्री-से ही उपजती है। सूर्यकी गतिसे ऋतुएँ उत्पन्न होती हैं। सूर्य दित्तग्रेमें या उत्तरमें जैसाहो वैसेही ऋतुएँ वदलती हैं। अर्थात, वर्षको सूर्य पर श्रवश्य श्रवलम्बित रहना चाहिए। इस सौर वर्षकी ठीक अवधि कितनी है, इसे निश्चित करना महत्त्वका काम है; परन्तु यह काम कुछ कठिन नहीं है। सूर्य जव विलकुल दक्षिणमें चला जाय, तब उस विन्दुसे श्रवधिकी गणना करते हुए, फिर उस बिन्दु पर दुबारा सूर्यके आनेका समय देखकर ठीक ठीक अविधि स्थिर की जा सकती है। इस मकारकी माप और गणना करनेकी आव-श्वकता, वार्षिक सत्रके कारण, भारती

श्रायोंको होती थी श्रीर इस कारण उन्हें वर्षकी ठीक ठीक जानकारी प्राप्त हो गई थी। वर्षके, उत्तरायण श्रौर दिन्तणायन दो भाग थे और इन दो भागोंका मध्य-विन्दु श्रर्थात् विषुवका दिन उन्हें मालूम था । महाभारतमें स्पष्टतापूर्वक कहा गया है कि उत्तरायण तो पुएयकारक श्रौर पवित्र है तथा दित्तणायन पितरीं श्रीर यमका है। प्राचीन कालमें यह माना जाता था कि उत्तरायणमें मृत्यु होने पर ब्रह्मवेत्ता लोग ब्रह्मको प्राप्त होते हैं, श्रीर दित्तणायनमें योगी मरे तो चन्द्रलोकमें जाकर वह फिर लौट आवेगा। भगव-द्रीतामें ऐसी धारणाका स्पष्ट उल्लेख है। श्रक्षिज्योतिरहः शुक्षः परमासा उत्तरायराम। तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः॥

यह श्लोक प्रसिद्ध है। महाभारतमें लिखा है कि शर-पञ्जर पर पड़े हुए देह त्यागनेके लिए, उत्तरा-यणकी बाद जोह रहे थे। महाभा-रतके समय उत्तरायण उस समयको कहते थे, जब सूर्य बिलकुल दक्षिण दिशामें जाकर वहाँसे लौटने लगता था। यह ध्यान देनेकी बात है; क्योंकि यह लिखा है कि सूर्यको उत्तर श्रोर श्राते देखकर युधिष्ठिर, भीष्मके यहाँ जानेके लिए चले (त्रजुशासन ग्र० १६७)। इससे प्रकट है कि विषुव वृत्त पर सूर्यके श्रानेसे लेकर उत्तरायण माननेकी प्रथा महा-भारत-कालमें न थी। दूसरी बात यह है कि महाभारत-कालमें, निदान भारती-युद्धके समय, उत्तरायण माघ महीनेमें हुस्रा करता था । भीष्मने मरण-समय पर कहा है-"माघोऽयं समनुपाप्तो मासः सौम्यो युधिष्ठिर ।" श्रव उत्त-रायग पौष महीनेमें होता है। महाभारत-कालमें इस बातकी कल्पना न थी कि सूर्य दिचाणको क्यों जाता है। महाभारत- कालमें भारती श्रायोंको इस वातका माल्म रहना सम्भव ही नहीं कि पृथ्वी-की कील, स्र्यंके श्रासपास धूमनेकी सतहकी श्रोर कुछ श्रंशोंमें भुकी हुई है। उन्हें यह कल्पना भी न थी कि पृथ्वी स्र्यंके इर्द गिर्द घूमती है। उन्हें यह भी माल्म न था कि पृथ्वी श्रपने ही चारों श्रोर घूमती है। सन्ध्या समय स्र्यं पश्चिममें श्रस्त होकर प्रातःकाल पूर्वकी श्रोर कैसे उदित होता है, इसकी उन्होंने श्रद्धत कल्पना की है। वे पृथ्वीको चौरस या चपटी समभते थे, इसलिए ऐसी ही कल्पना कर लेना सम्भव है।

श्चस्तं प्राप्यततः सन्ध्यामतिकम्य दिवाकरः उदीची भजते काष्टां दिवमेष विभावसुः॥ स मेरुं श्रजुवृत्तः सन् पुनर्गच्छति पागडव। प्राङ्मुखः सविता देवः सर्वभृतहितेरतः॥

वन पर्वके १६३वें ऋध्यायमें इस प्रकार वर्णन है। सूर्य उत्तर दिशामें जाकर मेरुकी प्रद्विणा कर फिर पूर्वमें उदित होता है। इसी प्रकार चन्द्र भी मेरुकी प्रद्विणा करके, नच्चोंमें होकर, पूर्वमें ऋाता है।

द्विणायन, उत्तरायण श्रीर इनके मध्यविन्दुका ज्ञान पूर्णतया हो गया था श्रोर वर्षकी श्रवधि भी भारती-कालमें ज्ञात हो चुकी थी। इस वर्षमें बारह चान्द्र महीने श्रौर कुछ ऊपर दिन होते थे। इसलिए पाँच वर्षोंका युग मानकर उसमें दो महीने श्रिधिक मिला देनेकी रीति महाभारतमें वर्णित है। यह पहले लिखा ही जा चुका है। इन युगोंके पाँच वर्ष भिन्न भिन्न नामोंसे वेदाङ्ग-ज्योतिष श्रौर वेदोंमें कथित हैं। महाभारतमें दो एक स्थानों पर वे नाम संवत्सर, परि-वत्सर श्रौर इदावंत्सर इत्यादि उल्लिखित हैं। एक स्थान पर पाँचों पाएडवोंको पञ्च संवत्सरोंकी उपमा दी गई है। इन पाँच वर्षोंके युगकी श्रपेचा बड़े युगकी कल्पना

महाभारत-कालमें पूर्ण हो गई थी, इसमें श्राश्चर्य नहीं। इन चार बड़े युगोंके नाम कत, जेता, द्वापर श्रीर किल निश्चित हुए थे। ब्राह्मण-कालमें भी इनका चलन था। तब, इसमें श्रचरज नहीं कि महाभारत कालमें यह कल्पना परिपूर्ण हो गई। भिन्न भिन्न युगोंकी कल्पना सभी प्राचीन लोगोंमें थी। इसी तरह वह भारती श्रायोंमें भी थी। यह कल्पना भी सार्व श्रिक है कि पहला युग श्रच्छा होता है, श्रीर फिर उत्तरोत्तर युगोंमें बुरा समय श्राता है। ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखा है— किलः श्रयानो भवित सिंहानस्तु द्वापर। उत्तिष्ठं स्रोता भवित कृतं संप्रयते चरन्॥

इन चारों युगोंका एक चतुर्युग अथवा महायुग मान लिया गया है । इन चतु-युगोंका उल्लेख भगवद्गीतामें भी है। चतुर्युगसहस्रान्तमहर्यत् ब्रह्मणोविदुः। रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जना॥

यह स्रोक प्रसिद्ध है श्रीर इससे कभी कभी चतुर्युगको ही सिर्फ युग कहा जाता था। महाभारतमें वन पर्वके १== घे श्रध्यायमें कलि, द्वापर, त्रेता श्रीर कृत चारों युगोंकी वर्ष-संख्या एक हजार, दो हजार, तीन हजार श्रोर चार हजार वर्ष दी है: श्रीर प्रत्येक युगके लिए सन्धा श्रीर सन्ध्यांश एक, दो, तीन श्रीर चार शतक दिये हैं। अर्थात् चतुर्युगोंकी वर्ष संख्या वारह हजार वर्ष होती है। इन वारह हजारोंका चतुर्युग श्रथवा महायुग या केवल युग होता था; उसके हजार युगकी ब्रह्मदेवका एक दिन होता था। महा भारत-कालमें ऐसी ही कल्पना थी। एषा द्वादशसाहस्त्री युगाच्या परिकीर्तिता ब्राह्मसुदाहृतम्। **एतत्सहस्रपर्यन्तमहो** (वन पर्व अ०१६६)

इन बारह सहस्त्रोंकी संज्ञा युग है। ऐसे ऐसे हजार युगोंमें ब्रह्माका एक हिन वूर्ण होता है। मनुस्मृतिमें यहां गण्ना है। श्रीर भारतीय ज्योतिःशास्त्रके श्राधुतिक ग्रन्थोंमें भी यहां गण्ना ग्रहण की गई है। उनमें इतना श्रीर कह दिया है कि वर्त्यांकों वर्ष हैं। मानवी पक वर्ष = देवताश्रींको वर्ष हैं। मानवी एक वर्ष = देवताश्रींका एक दिन; श्रीर मनुष्योंको १६० वर्ष = देवताश्रींका एक वर्ष। ज्योतिःशास्त्रके मतसे ऐसा ही हिसाब निश्चित है। इस हिसाबसे पहला चतुर्युग ४३ लाख ३२ हजार मानवी वर्षोंका होता है। यह ध्यान देने लायक वात है।

कुछ श्राधुनिक भारतीय विद्वानीकी राय है कि महाभारत और मनुस्मृतिमें जो कल्पना है, उससे भारतीय ज्योतिष-कारोंने वह कल्पना वढ़ा दी । अर्थात्, भारती श्रायोंकी समभसे महाभारत-कालमें चतुर्युग बारह हजार मानवी वर्षोंका ही था। परन्तु उल्लिखित विद्वानी-का यह मत हमें मान्य नहीं । कलियुग एक हजार मानवी वर्षीका ही है, यह कल्पना होना कदापि सम्भव नहीं। देव-ताश्रोंका एक दिन मनुष्योंका एक वर्ष है, यह कल्पना बहुत पुरानी है। उत्तरमें उत्तरध्रुव पर मेरु है; वहाँ छः महीनोंका दिन श्रीर इतने ही महीनोंकी रात होने-का श्रनुभव है। श्रीर, कल्पना यह है कि देवता लोग मेरु पर रहते हैं। मनुस्मृति-में कहा गया है कि उत्तरायण श्रीर दिन-णायन ही देवताश्रोंके दिन-रात हैं। यहाँ पर यह भी लिखा है कि हजार चतुर्युगीं-का ब्रह्माका एक दिन होता है; गीतामें स्पष्ट लिखा है कि ब्रह्माकी रात उतनी ही बड़ी है। इस गणनासे स्पष्ट देख पड़ता है कि महाभारत श्रीर मनु-स्मृतिमं जो बारह हजार वर्ष बतलाये गये हैं वे देवतात्रोंके ही वर्ष हैं। वे मनुष्योंके वर्ष नहीं हैं। यदि मनुष्योंके वर्ष

माने जायँ, तो युगींका परिमाण बहुत ही श्रोछा पडता है। हजार वर्षका ही कलि-युग माना जाना कदापि सम्भव नहीं। ब्राह्मण-कालमें यद्यपि यह निश्चित न था कि भिन्न भिन्न युगोंकी वर्ष-संख्या कितनी है, तथापि उस समय यह स्पष्ट माना जाता था कि कलियग दस हजार वर्षसे श्रधिक वड़ा है। श्रथवंवेदमें ही, जैसा कि प्रो० रङ्गाचार्यने दिखलाया है, (=-२-११) यह वाका है-"हम तुम्हारी श्रवधि सौ वर्ष, दस हजार वर्ष, एक, दो, तीन, चार युगके वरावर मानते हैं।" श्रर्थात् युगकी श्रवधि दस हजार वर्षसे श्रिकि है। वन पर्वमें चतुर्युगके बारह हजार वर्ष लिखे हैं। वहाँ पर दिव्य वर्ष ही श्रर्थ करना चाहिए । समयके श्रन-न्तत्वके सम्बन्धमें भारती श्रायोंकी कल्पना इतनी उदात्त थी कि कलियुगको एक हजार वर्षका समभनेकी सङ्कचित कल्पमा उन्होंने कदापि न की होगी। विशेषतः उनकी यह कल्पना होना सम्भव नहीं कि महाभारत-कालतक कलियुगके हजार वर्ष पूरे होते जा रहे थे। शान्ति पर्वके ३११वें श्रध्यायसे ज्ञात होता है कि महा-भारत-कालमें समय-गणनाकी कल्पना कितनी बड़ी हो गई थी। पहले ब्रह्मदेव-का एक दिन एक कल्पका ही माना जाता था; परन्तु इसमें साढ़े सात हजार वर्षोंका दिन होनेकी कल्पना की गई है। मतलव यह कि महाभारत-कालमें श्रीर मनुस्मृति-कालमें कलियुग एक हजार दो सौ दिव्य वर्षीका अर्थात् चार लाख वत्तीस हजार (४३२०००) वर्षोंका माना था।

माना था।

गहरूक्ट्रिन्तपर्व (२२१ श्र०) में युगोंके वर्ष

फिर्क्ष भाये गये हैं। यहाँ टीकामें कृत
गुगके ४००० वर्ष देवताश्रोंके ठीक बतलाये गये हैं: क्योंकि इससे प्रथम देव-

तास्रोंके दिन-रातका वर्णन है। "पहले जो मनुष्य-लोकके दिन श्रौर रात बतलाये गये हैं उनके अनुरोधसे इन वर्षोंकी गणना की गई है।" यहाँ दिव्य वर्षका उद्बोध होता है। यदि यहाँ कुछ सन्देह रह जाता हो तो वह पूर्वोक्त उपनिषद्-वचनोंसे मिटा दिया जा सकता है। तात्पर्य, महाभारतमें इस कल्पनाका होना कदापि सम्भव ही नहीं कि कलियुग एक हजार मानवी वर्षोंका था। चार लाख बयालीस हजार वर्षोंके युगकी कल्पना कुछ हिन्दुस्थानमें ही न थी; किन्तु पाश्चात्य देशोंमें जिन खाल्डियन लोगोंने ज्योतिष-शास्त्रका विशेष अभ्यास किया था उनमें भी यही कल्पना थी। युगका कुछ न कुछ वड़ा परिमाण माने विना ज्योतिषके लिए श्रीर कोई गति नहीं है; श्रीर ज्योतिषके लिए उपयोगी वडा श्रङ्क है (30 × १२ × १२ × १०० = ४३२००० 1) गिएतके लिए यह बहुत ही उपयोगी है। वर्षके ३६० दिनोंको फिरसे १२००० से गुणने पर यह श्रद्ध प्राप्त हुआ है। श्रीर यह युगकी कल्पना प्राचीन कालसे प्रचलित है।

१००० मानवी वर्षका किलयुग माननेकी कल्पना तो श्रोछी है ही; किन्तु इससे
भी श्रोछी कल्पना कुछ लोगोंने की है।
वे समसते हैं कि महाभारतमें एक युगका
श्रथ एक वर्ष श्रीर चतुर्युगका चार वर्ष
है; श्रीर भिन्न भिन्न चारों वर्षोंके नाम
कृत, त्रेता, द्वापर श्रीर किल हैं। किन्तु
यह कल्पना निर्मूल है। वनपर्वमें दो खलों
पर कुछ विरोधामासी वचन हैं; उन्हींके
श्राधार पर यह तर्क किया गया है।
"सन्धिरेष त्रेताया द्वापरस्य च," विकित्ते
के १२१वें श्रध्यायमें, एक तीर्थके सम्बन्धसे कहा गया है; फिर १४१वें श्रध्यायमें
हनुमान श्रीर भीमकी भेटके समय "एत-

त्कलियुगं नाम अचिराचत्प्रवर्तते" कहा है। तब, प्रश्न होता कि एक वर्षकी ही अवधिके भीतर त्रेता-द्वापरकी सन्धि और फिर आगे कलियुग किस प्रकार आ सकेगा ? किन्तु पहले वर्णनमें 'एष' राज् से समयका बोध नहीं होता, देशका ही बोध होता है । श्रगले-पिछले सन्दर्भसे यह बात जानी जा सकती है। यहाँ शर्यात राजा श्रोर च्यवन ऋषिकी कथा दी है। च्यवन ऋषि तप करनेवाले श्रर्थात् नेताः युगके दर्शक हैं और शर्याति राजा, यह कर्ता होनेसे, द्वापरका बोधक है। यह वर्णन किया है कि त्रेतामें तप प्रधान और द्वापरमें यज्ञ प्रधान है। यहाँ १२५वें ऋध्याय-तक यह कथा है कि च्यवन ऋषिको शर्याति राजाने अपनी वेटी सौंप दी। अर्थात ज्ञेत्र-प्रशंसाके सम्बन्धमें यहाँ कहा गया है कि यह देश और तीर्थ, त्रेता और द्वापरकी सन्धि हो है।

महाभारतमें स्थान स्थान पर वर्णन किया है कि भिन्न भिन्न युगोंमें भिन्न भिन्न श्रम प्रचलित रहते हैं। इस बातका यहाँ श्रिक विचार करनेकी श्रावश्यकता नहीं। कलियुगसे द्वापरके दूने, त्रेताके तिगुने श्रीर कृतके चौगुने होनेकी कल्पना प्राचीन है। उपनिषदोंसे देख पड़ता है कि प्राचीन कालमें इन शब्दोंका उपयोग चूतमें होता था। उस समय इनका श्रर्थ पाँसेके ऊपर वाले एक, दो, तीन, चार चिह्नोंका होता था। इस श्रर्थके प्राचीन उपयोग पर ध्यान देनेसे भी यह कल्पना ठीक नहीं जँचती कि 'कृतयुग एक ही वर्षका नाम हैं। एक और स्थान पर ऐसा जान पड़ता है कि युग शब्द वर्ष-वाचक है, परन्तु वह ऐसा है नहीं।

तस्मिन्युगसहस्रान्ते सम्प्राप्ते चाचुषायुगे। श्रनावृष्टिर्महाराज जायते बहुवार्षिकी॥ वनपर्वके १८८वें श्रध्यायमें यह श्रोक है। इसमें युग सहस्रान्तेका अर्थ वर्ष-सहस्रान्ते नहीं है; किन्तु 'चतुर्युगसह-स्नान्ते' है। अर्थात् कलपके अन्तमें जिस समय सृष्टिका लय होगा, उस समयका यह वर्णन है; और यहाँ युगका अर्थ चतु-र्युगहीस मसना चाहिए। क्योंकि युग-सहस्रान्तमें अर्थात् एक वर्षसहस्रके किल्युगके अन्तमें—ऐसा अर्थ करने पर मानना पड़ेगा कि पत्येक किल्युगके अन्तमें सृष्टिका नाश होता है। अस्तु; महाभारतमें कहीं युग शब्द एक वर्षके अर्थमें नहीं आया; फिर यह कल्पना ही गलत है कि कृत, जेता, द्वापर और किल वर्षोंके नाम हैं।

कल्पकी कल्पना बहुत पुरानी है। 'घाता यथापूर्वमकल्पयत्' इस वैदिक वचनसे कल्प शब्द निकला है श्रीर इसका त्रर्थ ब्रह्मदेवकी उत्पन्न की हुई सृष्टिका काल (समय) है। भगवद्गीता-कालमें भी मान लिया गया था कि यह काल एक हज़ार चतुर्युगोंका है। 'कल्पादो विस-जाम्यहम्' इस क्लोकमें जैसा वर्णन किया गया है, तद्जुसार कल्पके आरम्भमें पर-मेश्वर सृष्टि उत्पन्न करता है श्रीर कल्प समाप्त होने पर सृष्टिका लय होता है। इस कल्पकी समग्र मर्यादा ४३२००० (चतुर्युग) × १००० होती है, अर्थात् ४३२०००००० होती है। पाठकोंको ज्ञात हो जायगा कि यह कल्पना इस समयके भूगर्भशास्त्रकी वर्ष-संख्याकी कल्पनासे बहुत कुछ मिलती-जुलती है। इस कल्प-की बृहत् अवधिमें भिन्न भिन्न मन्वन्तर महाभारत-कालमें भी माने गये थे। मनु-की कल्पना भी बहुत पुरानी, वैदिक काल-से हैं; श्रीर यह माना गया था कि कल्प-की अवधिमें भिन्न भिन्न मनु होते हैं। भगवद्गीतामें चार मनुश्रोंका उल्लेख 'मह-पैयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथां इस श्लोकार्घमें श्राया है। श्राधुनिक ज्योतिष-शास्त्रके मतानुसार एक कल्पमें चौदह मनु रहते हैं। नहीं कह सकते कि इन चौद्हमनुत्रोंकी कल्पना महाभारत-कालमें थी या नहीं। इस श्रोरके ज्योतिषियोंकी कल्पना है कि प्रत्येक मन्वन्तरमें सन्धि-काल रहता है। भिन्न भिन्न युगोंके सन्धि-कालकी भाँति यह कल्पना की गई है। चार युगोंके समाप्त होते ही फिर दूसरे चार युग मन्वन्तरमें आते हैं। आजकल जो कलियुग वर्तमान है, इसके समाप्त होते ही फिर कृतयुग आवेगा । वर्तमानकालीन कलियुग भारती युद्ध-कालसे युक्त हुन्ना । महाभारत-कालमें यह कल्पना पूर्ण प्रचलित थी । हनुमानके पूर्वीक वचनके सिवा, गदा-युद्धके त्रनन्तर श्रोकृष्णने वलरामको समभाते हुए कहा है-"प्राप्तं कलियुगं विद्धि प्रतिज्ञा पाएड-वस्य च"। भारती-युद्धके अनंतरही आने-वाली चैत्र शुक्क प्रतिपदाको कलियुगका श्रारम्भ हुआ। अव, जब यह कलियुग समाप्त होगा श्रोर कृतयुग श्रारम्भ होगा तव चन्द्र, सूर्य, पुष्य नत्तत्र श्रौर वृहस्पति एक स्थान पर आवेंगे। यह कल्पना है। यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यगृहस्पती। एकराशौ समेष्यन्ति प्रवत्स्यंति तदाकृतम्॥ (वनपर्व श्रध्याय १८८)

गणितसे नहीं माल्म किया जा सकता कि यह योग कब श्रावेगा। क्यों कि इन सबका एक राशि पर श्राना श्रसम्भव है। राशि शब्दका श्रथ्यहाँ साधारण मेषादि राशि नहीं है, किन्तु यहाँ पर युति श्रथ्य है। हम देख चुके हैं कि महाभारत-कालमें मेषादि राशियाँ ज्ञात नहीं थीं। चन्द्र, स्र्यं, गृहस्पति श्रीर पुष्य नज्ञकी युति श्रस-म्भव देख पड़ती है। तथापि यह एक शुभ योग माना गया होगा।

हम विलकुल निमेष अर्थात् आँखोंकी

पलक हिलनेके समयसे लेकर चतुर्युग, मन्वन्तर श्रोर कल्प नामक श्रन्तिम काल-मर्यादातक अर्थात् ब्रह्माके दिनतक आ पहुँचे। कालकी यह कल्पना हिन्दुस्तान-में उपजी और यहीं बढ़ी। खाल्डियन लोगोंमें एक युग अथवा 'सृष्टिवर्ष' ४३२००० वर्षका थाः परम्तु यह देख लिया गया कि उससे हमारी कल्पना नहीं निकली है। क्योंकि सृष्टिकी आयुकी वर्ष-मर्यादा ४३ करोड़ वर्षतक पहुँची है। यह कल्पना भारती-कालमें ही उत्पन्न हुई थी। ब्राह्मण-कालमें युगकल्पना दस हज़ार वर्षसे ज्यादा किसी कालके समान थी। क्योंकि उपनिषदोंमें एक, दो, दस हज़ार वर्ष श्रीर श्रधिकका उल्लेख है। भारतीय ज्योतिषियोंने भारतकालमें युगकी मर्यादा निश्चित करके कल्पकी भी मर्यादा निर्णीत कर दी। यह काम बहुत करके गर्ग ज्योतिषीने किया होगा । महाभारतमें विख्यात ज्योतिषी गर्भ है। स्पष्ट कहा गया है कि गर्गने सरस्वती-तीर पर तपश्चर्या करके कालज्ञान प्राप्त किया। तत्र गर्गेण वृद्धेन तपसा भावितात्मना। कालकानगतिश्चैव ज्योतिषां च व्यतिक्रमः॥ उत्पाता दारुणाश्चैव शुभाश्च जनमेजय। सरस्वत्याः शुभे तीर्थे विदिता वै महात्मना॥

(शल्यपर्व)
इससे शात होता है कि सरस्वतीके तीर
पर गर्गने कुरु चेत्रमें यह युग-पद्धति दूँढ़
निकाली। जब कि शक-यूनानियोंमें यह
पद्धति नहीं देख पड़ती, तब कहना पड़ता
है कि यह भारती श्रायोंकी ही है; श्रीर
यह भी प्रकट है कि वह यूनानियोंसे
पहलेकी होगी। यद्यपि यह नहीं बतलाया
जा सकता कि गर्ग कब हुश्रा, तथापि
वह महाभारतसे पहलेका श्रर्थात् सन्
ईसवीसे ३०० वर्ष पूर्वका है। वर्तमान
कालमें प्रसिद्ध, गर्ग-संहिता ग्रन्थ उसीका

होगा; परन्तु उसका कदाचित् थोड़ासां रूपान्तर हो गया होगा। यह हम पहले ही लिख चुके हैं कि उसमें राशि नहीं है। इससे प्रकट है कि वह राशिका चलन होनेसे पहलेका श्रर्थात् ईसवी सन् पूर्व १०० वर्षके पहले का होगा।

उल्लिखित श्रवतरण्में 'ज्योतिषां च व्यतिक्रमः' कहा गया है । श्रर्थात् यह कहा गया है कि गर्गको श्रहोंकी तिर्ह्णी गतिका ज्ञान हो गया है । इससे प्रकट है कि भारती-युद्ध-कालके लगभग श्रहोंकी गतियोंका ज्ञान श्रधिक न था, पर महा-भारत-कालमें उसे बहुत कुछ पूर्णता प्राप्त दुई थी । सदा नच्चत्रोंकी देख-भाल करने-वाले भारती श्रायोंको यह बात पहले ही मालूम हो गई होगी कि नच्चत्रोंमें होकर श्रहोंकी भी गति है । सूर्य-चन्द्रके सिवा, नच्चत्रोंमें सञ्चार करनेवाले ये श्रह बुध, शुक्क, मङ्गल, गुरु श्रोर शनि थे । ते पीडयन्भीमसेनं कुद्धाः सप्त महारथाः। प्रजासंहरणे राजन्सोमं सप्तश्रहा इव ॥

(भीष्म पर्व अध्याय १३०) इस स्रोकमें चन्द्रके सिवा सात ग्रह कहे गये हैं; तब राहुको ब्रह मानना चाहिए, अथवा यहाँ सप्तप्रह श्रलग ही माने जायँ। 'राहुरर्कमुपैति च' इस वाकासे निश्चयपूर्वक देख पड़ता है कि महाभारत-कालमें यह रूपमें राहुका परिचय भली भाँति हो गया था। भारती कालमें गर्गके पहले ही इस बातकी कल्पना रही होगी कि नत्तत्र-चक्रमें होकर जानेके लिए प्रत्येक ग्रहको कितना समय लगता है। यहोंके व्यतिक्रम-सम्बन्धरी गर्गको विशेष जानकारी प्राप्त हो गर्र होगी। यह भी श्रनुमान हो सकता है कि गर्गके समयतक सूर्य-चन्द्रके सिवा श्रन्य ग्रहोंके चक्करकी ठीक कालमर्यावा मालूम न हुई होगी और गर्गको वह

माल्म था कि ब्रह वकी होते हैं तथा एक बान पर स्थिर होते हैं। महाभारतमें ब्रहों के बहुतेरे उन्नेख हैं। यहाँ उन सबको उद्धृत करनेकी श्रवश्यकता नहीं। महाभारतके समय यह करपना थी कि कुछ ब्रह, विशेष-तया शनि श्रीर मङ्गल, दुए होते हैं। मङ्गल लाल रङ्गका श्रीर रक्तपात करने-बाला समभा जाता था। श्रकेला गुरु ही श्रुम श्रीर सब प्राणियोंकी रचा करनेवाला माना जाता था। कई एक हो ब्रहों श्रीर नच्चोंके योग श्रश्भ समभे जाते थे।

यथा दिवि महाघोरो राजन बुधरानैश्चरो।
(भीष्मपर्च अ०१०४)

इस वचनमें बुध और शनैश्चरका योग भयद्वर माना गया है। भीष्मपर्वके श्रारम्भमें व्यासने धृतराष्ट्रको भयद्वर प्राणि-हानि-कारक जो दुश्चिह वतलाये हैं, उनमें और उद्योगपर्व अ० १४३ के अन्त-में इससे प्रथम श्रीकृष्ण श्रीर कर्णकी भेटमें जिन दुश्चिहोंके होनेका कर्णने वर्णन किया है, उनमें यहीं श्रीर नज्ञोंके अग्रुभ योगोंका विस्तारके साथ वर्णन किया गया है। गर्गके प्रन्थमें वर्णित योगीमेंसे लेकर बहुधा सौतिने इन योगीं-को महाभारतमें शामिल कर दिया होगा। योंकि गर्ग-सम्बन्धी उल्लिखित अवतरण-में 'उत्पाता दारुणाश्चेव शुभाश्च' कहा गया है। अर्थात् अशुभ अथवा भयङ्कर उत्पाती श्रीर शुभ शकुनोंका ज्ञान गर्गको था। यानी इनकी परिगणना गर्गने पहले कर ली थी। गर्ग संहितामें भी आजकल ये शुभाशुभ योग पाये जाते हैं । ये श्रशुभ योग मूल भारती युद्धके समयके लिखे हुए नहीं हैं, इस विषयमें पहले विवेचन हो ही चुका है । तब यहाँ उन योगोंके लिखनेकी आवश्यकता नहीं । हाँ, यहाँ पर यह कह देना चाहिए कि गर्भके

समय अथवा महाभारतके समय ग्रहोंकी गति बतलाई जाती थी श्रीर उनके फल नक्त्रों परसे कहे जाते थे: क्योंकि उस समय राशियोंका तो बोध ही न था। दूसरे, ग्रहोंकी वक श्रौर वकानुवक गति महा-भारतमें तथा गर्ग संहितामें भी बतलाई गई है। तीसरी वात यह है कि श्वेतग्रह अथवा धूमकेतु महाभारतके समय ज्ञात था श्रीर वह अत्यन्त अशुभ माना जाता थ। इस श्वेतग्रहसे श्रीर कितने ही काल्पनिक ग्रहों श्रथवा केतुश्रोंकी कल्पना महाभारत-कालमें हो गई थी: एवं उनका उल्लेख इन श्रयुभ चिह्नोंमें है। इसी लिए 'सप्त महा-प्रहाः सदश वचनोंको सन्दिग्ध मानना पड़ता है। चौथी वात यह है कि महा-भारत-कालमें राहको एक यह माननेकी कल्पना हो गई थी-श्रर्थात उस समय यह धारणा थी कि राहु क्रान्तिवृत्त पर घूमनेवाला, तमोमय, श्रौर न देख पड़नेवाला ग्रह है। बिना इसके यह कथन सम्भव न होता कि राहु सूर्यके पास त्राता है। महाभारतमें, कुछ स्थलों पर, राहुके लिए सिर्फ़ ग्रह शब्द ही प्रयुक्त हुआ है। राहुकी पुरानी कल्पना भी-यानी यह कल्पना कि वह सूर्य-चन्द्र पर श्राक्रमण करनेवाला एक राज्ञस है-महाभारतमें है। क्योंकि एक स्थान पर राहुका कबन्ध स्वरूप वर्णित है । सूर्यके खग्रास-ग्रहणके समय ऐसा प्रत्यत्त अनु-भव होने पर कि राहु केवल कालिखकी बाढ़ है, वह बिना सिरका राज्ञस मान लिया गया और उसके रहनेका स्थान समुद्र माना गया।

श्रत्र मध्ये समुद्रस्य कबन्धः प्रतिदृश्यते । स्वर्भानोः सूर्यकलपस्य सोमस्यौं जिघांसतः ॥ (उद्योगपर्व ११०)

इसमें राहुके धड़को पश्चिम समुद्रमें खड़ा वर्णन किया गया है । मालूम नहीं पश्चिम समुद्रमें राहुकी कल्पना क्यों की गई है। यह तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि चन्द्र-प्रहण श्रौर स्र्यं-प्रहणकी ठीक कल्पना महाभारतके समय हो गई थी। क्योंकि शान्ति पर्वमें श्रात्माके खरूपका वर्णन करते हुए वड़ी बढ़िया रीतिसे कहा है कि राहु राज्ञस नहीं, निरी छाया है; श्रौर वह छाया श्राकाशमें नहीं, सिर्फ़ स्र्यं-चन्द्र पर देख पड़ती है। श्रन्यत्र यह बात लिखी जा चुकी है; यानी तत्त्वज्ञानके विचारमें, शान्तिपर्वके २०३रे श्रध्यायमें, यह विषय श्राया है।

ऊपरी विवेचनसे पाठकोंको पता लग गया होगा कि भारती कालमें भारती श्रायोंका ज्योतिर्विषयक ज्ञान था और वह किस प्रकार बढ़ता गया होगा। यह ज्ञान, मुख्य करके यज्ञके सम्बन्धमें सूर्य-चन्द्रकी गति, महीने श्रीर वर्षका मेल मिलानेके लिए, उत्पन्न हुआ और उसमें फल-ज्योतियके शुभा-श्रभ योगोंकी दृष्टिसे उन्नति होती गई। केवल ज्योतिर्विषयक शोध करनेकी इच्छा भले ही न रही हो, तथापि इन कारणोंसे भारती श्रायोंने महाभारत-काल-तक ज्योतिष-ज्ञानमें बहुत कुछ उन्नति कर ली थी। शकयवन अथवा वैकिट्यन युनानियोंने श्रागे चलकर हिन्दुस्थान पर श्राक्रमण करके मुद्दततक इस देशमें राज्य किया। उस समय उनकी राजधानी उज्जैनमें थी। सन् ईसवीके श्रारम्भके लग-भग भारती ज्योतिष अथवा यवन ज्योतिष-की सहायता प्राप्त करके श्राजकलके सिद्धान्तादि ज्योतिषकी वृद्धि हुई । यह नहीं कि प्रत्यच ज्योतिष विषयक जिला-सासे आकाशके प्रहों और नज्ञोंकी चौकस दृष्टिसे छानबीन करनेकी उमक्र भारती आर्थोंको न थी।

यथा हिमवतः पार्श्वं पृष्ठं चन्द्रमसो यथा। न दृष्टपूर्वं मनुजैः न च तन्नास्ति तावता॥ (शांतिपूर्वं २०३)

इस श्लोकार्धमें कहा है कि चन्द्रका पृष्ठ नहीं देख पड़ता, इसलिए उसके श्रस्तित्वसे इन्कार नहीं किया जा सकता। ऐसा ही द्रष्टान्त आत्माके अस्तित्क सम्बन्धमें दिया गया है। इससे चन्द्रका एक ही श्रोर हमें देख पड़ता है यह वात, चन्द्रका वारंवार चिन्ताके साथ निरी चल करके भारती आर्थों द्वारा निश्चित की हुई देख पड़ती है। हालके पाश्चाल ज्योतिषशास्त्रने भी इस सिद्धान्तको मान्य कर लिया है। भिन्न भिन्न सत्ताईस नज्त्रोंके सिवा श्रीर नज्त्रोंको भी भारती श्रायोंने देखा था श्रोर उनके भिन्न भिन्न नाम रखे थे। सप्तर्षिका उल्लेख विशेष रूपसे करना चाहिए । आकाशकी और देखनेवाले किसी मनुष्यके मन पर, उत्तर ध्रवके इर्द गिर्द घूमनेवाले इन सात तारोंके समृहका परिणाम हुए विना नहीं रहता। तद्वसार, भारती श्रायोंने श्रपने प्राचीन सप्त ऋषियोंके साथ इन सात नत्त्रजोंका मेल मिला दिया तो इसमें श्राश्चर्य नहीं । परन्तु उन्होंने जो यह कल्पना की थी कि ये सप्तर्षि उत्तरमें हैं, श्रीर इसी प्रकार पूर्व, दित्तण श्रीर पश्चिममें भी भिन्न भिन्न सप्तर्षि हैं, सो यह बात कुछ अजीव देख पड़ती (शां० प॰ अ०२०=)।यह प्रकट है कि द्त्रिण श्रोरके काल्पनिक सप्तर्षियोंका दर्शन भारती त्रायोंको कभी नहीं हो सकता। तथापि दिचिएकी श्रोर जो एक तेजस्वी तारा देव पड़ता है श्रीर कुछ दिन दिखाई देकर इव जाता है, उस तारेको महाभारत-कालम श्रगस्ति ऋषिका नाम दिया गया था श्रस्तु; महाभारत-कालमें श्राकाशके ग्रही श्रथवा नत्तत्रोंका निरीत्त्रण करनेके लिए

कोई यन्त्र था या नहीं, इस बातका विचार करते हुए नीचे लिखे श्लोकसे यह कल्पना की जा सकती है कि ऐसा एक त एक यन्त्र श्रथवा चक्र महाभारत-काल-में रहा होगा। वन पर्वके १३३वें श्रध्याय-में कहा है

वतुर्विशतिपर्व त्वां परणाभिद्वादश प्रिध । तित्रपष्टिशतारं वै चक्रं पातु सदागति॥

हे राजन ! वह चक तुम्हारा सदा कल्याण करे जिसमें चौवीस पर्व हैं, छः नाभियाँ अथवा तूँवे हैं श्रीर वारह घेरे तथा ३६० आरे हैं। यह बात अष्टावकने कही है। यह रूपक संवत्सर-चक्रका है। संवतमें चौवीस पौर्णिमा-श्रमावस्याएँ तो पर्व हैं, छः ऋतुएँ नाभि श्रीर बारह घेरे यानी महीने, तथा ३६० दिन ही श्रारे हैं। यह चक्र बहुत पुराना है श्रीर वैदिक साहित्यमें भी पाया जाता है। इस चक्रसे ग्राकाशस्य ग्रहोंके वेध लेनेका चक्र उत्पन्न होना श्रसम्भव नहीं है। ऐसे एक श्राध वकके विना सूर्यकी दक्तिए और उत्तर-गतिका सूदम ज्ञान एवं दिशाश्रोंका भी सदम ज्ञान होना सम्भव नहीं। इतिहास-से सिद्ध है कि भारत-कालमें आयोंको हन दोनों बातोंका सुद्म ज्ञान हो गया था। ज्योतिष शास्त्रके दृसरे स्कन्ध अथवा

नार्या मत्रहान्य क्षाच्याच्या

A SEASE FIFTH

कि बाब होएं रहेक्ड अब्योका स्वतंत्र

क्रिके के प्रकार के जिल्ला कि कि कि कि

पह मो लेग हैं। तलावें अववा वर्षक । ताम संस्तृत कोत्रोतें मूर्ते वस्तुते के अवग यह में कामव है, कि शुक्ता बोग संस्तृते

The section of the section of

भाग, यानी संहिता श्रौर जातकके विषयमें दो शब्द लिखने चाहिएँ। ये भाग
श्रवतक श्रलग श्रलग नहीं हुए थे श्रौर
उनकी विशेष उन्नति भी न हुई थी।
तथापि ये वातें मान ली गई थीं कि नाना
प्रकारके उत्पात श्रौर दुर्भिन्न श्रादि श्रापतियाँ प्रहोंकी चाल पर श्रवलम्बित हैं:
किंवहुना मनुष्यका सुख-दुःख जन्म-नन्नत्र
पर श्रवलम्बित हैं: श्रौर इस दृष्टिसे गर्ग
श्रादि ज्योतिषियोंकी खोज श्रौर कल्पनाएँ
जारी थीं। उदाहरणके लिए श्रगले स्ठोकमें, श्रवर्षणके साथ शुकका सम्बन्ध देखिए।

भृगोः पुत्रः कविर्विद्वान् शुक्रः कवि-सुतो ग्रहः । त्रैलोक्यप्राणयात्रार्थं वर्षावर्षे भयाभये ॥ स्वयम्भुवा नियुक्तः सन् भुवनं परिधावति ॥४२॥ (त्रुनु० त्रु० ३६)

इस प्रकारके वाक्य भारती-युद्धके सम्बन्धमें वहुतेरे हैं। समस्त समाज अथवा प्रत्येक व्यक्तिके सुख-दुःख ब्रह्में पर श्रवलम्बित रहते हैं। इस सम्बन्धके संहिता श्रोर जातकशास्त्र, महाभारतके पश्चात् यूनानी श्रोर खाल्डियन ज्योति-वियोंके मतोंकी सहायता प्राप्त कर, श्रागे बहुत श्रिष्ठिक बढ़ गये। परन्तु यहाँ पर उसका विशेष उल्लेख करनेकी श्राव-श्यकता नहीं।

rapsiv Come divine 12 Junio 230

भाग बोली काठी को वजावनी जियां-के साराजों जारंप कापांचे कुछ जिल्हा केड से 1 जन मेहीने जो उन्हारण करीने कि

। हे म का निर्मा मारहार महिल्ल निर्मा है

त का शिर्व होता की व्यक्ति वहाँ हैं कि है

THE RESERVE THE PROPERTY OF THE PARTY OF THE

चीदहकाँ प्रकरण।

साहित्य और शास्त्र।

म्हंसारकी प्रत्येक भाषा, किसी समय, बोलचालकी भाषा रही होगी-इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता; श्रौर इस सिद्धान्तके श्रमुसार यह निर्वि-वाद है कि एक समय संस्कृत भाषा भी बोली जाती थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारती-कालके प्रारम्भमें, भारतीय आर्य लोग संस्कृत भाषा बोलते थे और यह भी ठीक है कि व्यासजीका मृल ग्रन्थ, प्रत्यच बोलचालमें श्रानेवाली भाषामें महाभारत-कालमें था । संस्कृत-भाषा बोलचालकी भाषा थी या नहीं, यह महत्त्वका प्रश्न है। भगवद्गीता-के सदश जो भाग निःसन्देह प्राने भारत-प्रतथके हैं, उनकी भाषा सरल और ज़ोर-दार है, उस भाषामें किसी प्रकारके बन्धन नहीं हैं, श्रीर वह लम्बे एवं दुर्वोध समासीसे भी रहित है। श्रतः हमारे मन पर परिणाम होता है कि वह प्रत्यच बोलनेवालोंकी भाषा है। समूचे महा-भारतकी भाषा भी बोलचालकी भाषाकी तरह जँचती है। भारती-कालमें संस्कृत भाषा बोली जाती थी। पञ्जाबकी स्त्रियों-के भाषणमें ब्राम्य भाषाके कुछ निन्दा भेद थे। उन भेदोंके जो उदाहरण कर्णने दिये हैं, उनसे उपर्युक्त श्रनुमान निकलता है। त्राहुरन्योन्यस्कानि प्रबुवाणा मदोत्कटाः। हे हते हे हते त्वेवं खामि-भर्तृ-हतेति च॥

(कर्णपर्व ४४) संस्कृत भाषामें 'हे हते, हे हते' ये गालियाँ हैं, इनका उपयोग स्त्रियोंके मुँह-से हुआ करता था। इससे देख पड़ता है कि संस्कृत भाषाका उपयोग स्त्रियाँ भी किया करती थीं।

संस्कृत भाषा। महाभारत-कालके पूर्व अर्थात् युनाः नियांके आक्रमणसे पहले, हिन्दुस्तानमें निम्न श्रेणीके लोगोंमें संस्कृत भाषा नबोली जाती थी; इस भाषाका प्रचार विद्वान ब्राह्मण श्रीर विद्वान चत्रिय श्रादि उद् जातिवालोंमें ही था। यदि ऐसा न होता तो बुद्धने अपने नवीन धर्मका उपदेश लोगोंको मागधी भाषाम न किया होता। श्रनार्य श्रसंस्कृत लोगोंके कारण संस्कृत भाषाका श्रपभंश हो जानेसे भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें तरह तरहकी प्राकृत भाषाएँ उत्पन्न हो गई थीं । अनार्य लोगोंको संस्कृत भाषाका कडिन उचारण श्राना सम्भव न था। इसी प्रकार संस्कृत भाषा के कठिन रूप और श्रपवाद वैश्यां श्रीर शद्रोंके भाषणमें नष्ट हो गये श्रीर सरत तथा सादे रूपोंका प्रचार होने लगा था। सारांश यह कि सरल उचारण श्रोर सारे रूपोंके कारण प्राकृत भाषाएँ उठ खड़ी हुई थीं। इसके सिवा, अनायोंकी म्लेख भाषाएँ भी इधर उधर बोली जाती थीं सो उनके शब्द भी संस्कृत भाषामें घुसते रहते थे।

> नार्या म्लेच्छन्ति भाषाभिः मायया न चरन्त्युत। (श्रादिपर्व)

इस वचनसे यह श्रर्थ निकलता है
कि श्रार्य लोग म्लेच्छ शब्दोंका व्यवहार
नहीं करते। परन्तु टीकाकारने म्लेच्छ
शब्दका श्रर्थ भूल करना लिखा है, सो
वह भी ठीक है। श्रनार्य श्रथवा म्लेच्छ
लोग संस्कृत बोलनेमें भूलें करतेथे; श्रथवा
यह भी सम्भव है कि श्रनार्य लोग संस्कृत
का कठिन उच्चारण मनमाना—कृङ्का
कुन्न—करते हों: श्रीर इससे यह प्रयोग

उपयोगमें श्रा गया हो कि श्रायोंको भाषा बेलिनेमें म्लेच्छोंकी तरह भूलें न करनी बाहिएँ। जो हो, धीरे धीरे महाभारत-काल पर्यन्त श्रनार्य लोग श्रोर उनके मिश्रणसे उत्पन्न हुए लोग, समाजमें वहुत बढ़ गये तथा उनकी प्राकृत भाषाएँ ही महत्त्वकी हो गई। संस्कृत केवल विद्या-पीठों श्रोर यश्रशालाश्रोंमें रह गई। महाभारतकी उच्च वर्णकी स्त्रियाँ संस्कृत बोलती हैं; परन्तु सुबन्धु श्रोर कालिदास श्राहिके नाटकोंमें उच्च वर्णकी भी स्त्रियाँ प्राकृत बोलती हैं। इससे यह श्रनुमान किया जा सकता है कि महाभारत-कालमें प्राकृत भाषा उच्च वर्णकी स्त्रियोंमें प्रविष्ट तथी।

पेसा मालम होता है कि वाहरी देशों-के म्लेच्छींके साथ व्यवहार करनेके लिए, भारती आयोंको, विलकुल भिन्न मेंच्छ भाषा बोलनेके लिए अभ्यास करना पडता होगा। पञ्जाब पर सिकन्दरका श्राक्रमण हो चुकनेके पश्चात् यह बात श्रीर भी श्रावश्यक हो गई होगी। श्रादि पर्वमें विदुरने युधिष्ठिरको एक स्नेच्छ भाषामें भाषण करके सावधान किया है कि वार-णावतमें "तुम जिस घरमें रहनेके लिए जा रहे हो, उस घरमें लाख श्रादि ज्वालाश्राही पदार्थ भरे हुए हैं।" उस भाषामें कही हुई वातको और लोग नहीं समभ सके। यह भाषा हमारी समभमें बहुत करके यूनानी रही होगी। इस बातका वर्णन पहले किया ही जा चुका है; श्रीर श्राज-कल भी एक श्राध भाषा समक्रमें न श्रावे, तो श्रॅगरेज़ीमें यह कहनेकी प्रथा है कि तुम तो युनानी बोलते हो। श्रस्तुः भारती श्रायों द्वारा बोली गई संस्कृत भाषामें बाहरी भाषात्रोंके शब्दोंका, कचित् प्रसङ्ग पड़ने पर, श्रा जाना सम्भव है। तद-नुसार महाभारतमें सुरङ्ग शब्द यूनानी

भाषासे श्राया है। तथापि ऐसे शब्दोंकी संख्या बहुत ही कम है। खास प्राइत भाषाके शब्द श्रर्थात् देशी भाषामें प्रचलित शब्द भी महाभारतमें थोड़े ही हैं। ऐसे शब्दोंमें ही एडूक शब्द है, यह बात श्रन्यत्र लिखी जा चुकी है। ऋग्वेदमें भी कचित् श्रनार्थ भाषाके शब्द श्राते हैं—इस बातको उस वेदका श्रभ्यास करनेवाले मानते हैं। परन्तु पूर्ण दृष्टिसे देखने पर कहना चाहिए कि महाभारतकी संस्कृतमें प्राकृत, देशी श्रथवा श्रनाय संच्छ एवं यूनानी भाषाके शब्द बहुत ही थोड़े—उँगलियों पर गिनने लायक हैं।

प्राकृतका उल्लेख नहीं।

महाभारत-कालमें प्राकृत भाषाएँ प्रचलित हो गई थीं, परन्तु श्रचरजकी बात यह है कि महाभारतमें कहीं उन भाषात्रींका उत्लेख नहीं है। वहधा ऐसा उल्लेख करनेका अवसर ही न आया होगा । महाभारतके चागडाल श्रथवा श्वपचतक संस्कृत बोलते हैं, इसमें कुछ श्राश्चर्य नहीं है। व्यासजीका मूल ग्रन्थ संस्कृतमें ही लिखा गया और यह प्रकट है कि उस समय प्राकृत भाषात्रोंका जन्म भी न हुआ था। सौतिने सन् ईसवीसे लगभग २५० वर्ष पहले जब महाभारत-को वर्तमान रूप प्रदान किया, तब प्राकृत भाषाएँ उत्पन्न हो गई थीं: किंबहुना यह भी सच है कि जनसाधारण उन्हीं भाषात्रीं-को बोलने लगे थे। परन्तु मूल प्रन्थ संस्कृतमें होनेके कारण, उसकी छाया इस बढ़े हुए ग्रन्थ पर पड़ी। इसके सिवा पहले यह दिखाया ही गया है कि बौद्ध धर्मके विरोधसे यह महाभारत ग्रन्थ तैयार हुआ। बौद्ध धर्मने प्राकृत मागधीको हथियाया था। त्रर्थात् उसके विरोधसे सौतिने, सनातन्धर्मियोंकी पुरानी संस्कृत भाषाको ही श्रपने श्रन्थमें स्थिर रखा। क्योंकि भारती श्रायोंके सनातन धर्म-श्रन्थ वेद, वेदाङ्ग श्रादि संस्कृतमें ही थे, श्रोर बौद्ध धर्मसे विरोध होनेके कारण सौतिने संस्कृतका श्रभमान किया। इस प्रकार, महाभारतके समय यद्यपि प्राकृत भाषाएँ उत्पन्न हो गई थीं, तथापि महाभारतमें संस्कृतका ही उपयोग किया गया है। यही नहीं, बल्कि उस समय विद्वानोंकी भाषा संस्कृत ही थी श्रोर बौद्ध साहित्य श्रमी श्रस्तित्वमें ही न श्राया था। श्रर्थात् महाभारत-कालमें मिन्न भिन्न शास्त्रों पर जो साहित्य था वह संस्कृतमें ही था। श्रव देखना है कि वह साहित्य क्या था।

वैदिक साहित्य।

पहले वैदिक साहित्यका ही विचार करना चाहिए । महाभारतके समय वैदिक साहित्य करीब करीब सम्पूर्ण तैयार हो गया था। सब वेदोंकी संहिताएँ तैयार हो गई थीं श्रोर उनके ब्राह्मण भी तैयार हो चुके थे। श्रनुशासन पर्वके इस वाक्यमें * स्पष्ट कहा है कि ऋग्वेदमें दस हजार ऋचाएँ हैं—

दशेदं ऋक्सहस्राणि निर्मध्यामृतमुद्धृतम्। (शान्तिपर्वे ऋ० २४६)

महाभारतमें लिखा है कि वेदों की रचना श्रपान्तरतमा ऋषिने की है; श्रीर यह बात तो महाभारतके श्रारम्भमें ही कह दी गई है कि वेदों के विभिन्न भाग स्वयं महाभारत कर्ता व्यासजीने किये हैं—

विद्यास वेदान्यस्मात्सः वेद्वयास रत्युच्यते।

श्रपान्तरतमा ऋषिका श्रन्य नाम

* टीकाकारने कहा है कि वास्तवमें ऋचाएँ कुछ श्रिषक हैं।

ऋचां दरासहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च । ऋचामशीतिः पादश्वीतत्पारायणमुच्यते ॥

प्राचीन गर्भ था और इन्हींके अवतार व्यासजी महाभारत (शां० अ० ३४६) में कहे गये हैं। यह प्रकट है कि वेदोंकी व्यवस्था करनेवाले श्रपान्तरतमा पुराने ऋषि रहे होंगे।शौनकने ऋग्वेदकी सर्वा नुक्रमणिका चनाई है। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि ये शौनकजी व्यासदेवसे पहलेके हैं या पीछेके। तथापि ऋग्वेद्के सम्बन्धमें शौनकका विशेषमहत्व है, क्योंकि उन्होंने नियम बना दिया है कि ऋग्वेदके मन्त्रोंका कहाँ पर और कैसा उपयोग करना चाहिए। श्रनुशासन पर्वः के ३० वें अध्यायमें शीनककी वंशावली है। इस अध्यायमें यह कथा है कि पहले वीतहब्य नामक एक चत्रिय था जो भग ऋषिके सिर्फ वचनसे हो ब्रह्मिष वन गया। इस राजाका गृत्समद नामक पुत्र था। ऋग्वेदके प्रथम मन्त्रका ऋषि यही है। इसका पुत्र सुचेता, और सुचेताका पुत्र वर्चस् हुआ जिसके वंशसे रुर उपजा। शुनक इसी रुरुके पुत्र हैं और शुनकके पुत्र हैं शौनक। परम्परा यह है कि सौति-ने इन्हीं शौनकजीको महाभारत सुनाया था। यदि ये शौनकजी महाभारत-कालके श्रर्थात सन ईसवीसे लगभग ३०० वर्ष पहलेके माने जायँ तो माना जा सकता है कि पूर्वोक्त शौनकके वंशमें ये दूसरे शौनक रहे होंगे। अथवा यह मेल मिलाया गया होगा कि, जिस तरह भारतके प्रणता व्यास ही वेदोंकी व्यवस्था करनेवाले हैं, वैसे ही महाभारतके प्रथम श्रोता शौनक भी वेदोंकी सर्वानुक्रमणिकाके रचियता है। वेद तीन हैं और कहीं कहीं चौथे अथर्व वेदका भी उल्लेख है। प्रत्येक वेदः का ब्राह्मण भाग श्रलग है। अनुशासन पर्वमें कहा गया है कि तरिड ऋषिते

यजुर्वेदका ताएड्य महाब्राह्मण शिवजीके

प्रसादसे बनाया है। यह भी तिखा है कि

इस तिराडने शिवका सहस्रनाम बनाया। यदि यह न माना जाय कि महाब्राह्म एके कर्ता तिएडने ही यह शिवसहस्रनाम बनाया है, तो सम्भव है कि उसे उप-मन्युने बनाया होगा। अनुशासन पर्वके १७ वें श्रध्यायमें यह कहा गया है। श्रनु-शासन पर्वके १६ वें अध्यायमें तिएडका वृत्तान्त है। शुक्त यजुर्वेद्में शतपथकी कथा महाभारतमें शान्ति पर्वके ३१= वें श्रध्यायमें है। इन दोनोंका कर्ता याज्ञ-वल्का है। उसने श्रपने मामा वैशंपायनसे युजुर्वेद पढ़ा थाः परन्तु मामाके साथ कुछ भगड़ा हो जानेसे उसने वह वेद कै (वमन) कर दिया और सूर्यकी ब्राराधना करके उसने नवीन यजुर्वेद उत्पन्न किया। श्राख्यायिकाके श्रनुसार यही शुक्क यजुर्वेद है। सूर्यने उसे यह वर-दान दिया था कि—"दूसरी शाखात्रोंसे <mark>ब्रह्ण किये हुए प्रकरणों एवं उपनिषदों</mark> समेत साङ्ग यजुर्वेद तुभमें स्थिर होगा श्रीर तेरे हाथसे शतपथकी रचना होगी।" इसके श्रनुसार याज्ञवल्क्यने घर श्राकर सरस्वतीका ध्यान किया । सरस्वतीके प्रकट होने पर उसकी श्रोर प्रकाशदाता सूर्यकी पूजा करके उसने ध्यान किया। तब, कथाके वर्णनासुर, याज्ञवल्का स्वयं अपने विषयमें जनकसे कहते हैं — "संपूर्ण शतपथ, रहस्य, परिशिष्ट श्रीर श्रन्य शाखात्रोंसे लिये हुए भागों समेत मैं श्राविभूत हो गया। इसके पश्चात् मेंने सौ शिष्य इसलिए किये कि जिसमें मामा-को बुरा लगे। फिर जब तेरे (श्रर्थात् जनकके) पिताने यज्ञ किया, तब यज्ञका सारा प्रबन्ध मैंने अपने हाथमें लिया और वेदपाठकी द्त्रिणाके लिए वैशम्पायनसे भगड़ा करके—देवतात्रोंके समन्—श्राधी द्विणा ले ली। सुमन्त, जैमिनि, पैल तेरे पिता और अन्य ऋषियोंको यह व्यवस्था

मान्य हो गई। सूर्यसे मुंभे १५ यजुर्मन्त्र प्राप्त हुए। रोमहर्षणके साथ मैंने पुराणीं-का भी श्रध्ययन किया।" इस वर्णनसे कई एक महत्वपूर्ण श्रनुमान निकलते हैं। पहला यह कि यजुर्वेदी वैशम्पायन और याज्ञवल्काके भगड़ेके कारण शुक्क यजु-वेंदकी उत्पत्ति हुई। याज्ञवल्काने उसे सुर्यसे प्राप्त किया। उसमें पन्द्रह मन्त्र सूर्यने अलग दिये हैं, और बाकी पूरानी शाखाओं के ही हैं। (सिर्फ इनके पढनेकी पद्धति ही कृष्ण यजुर्वेदसे भिन्न है)। इस वेदका प्रसिद्ध शतपथ-ब्राह्मण यात्र-वल्काने ही बनाया है। सिर्फ इसी ब्राह्मणः में खर हैं (श्रन्य वेदोंके ब्राह्मणोंमें खर नहीं हैं, उनमें खरहीन गद्य है) इससे जान पडता है कि यह ब्राह्मण सबसे पुराना होगा। इस कथासे इसका रचना-काल भी देख पड़ता है; श्रर्थात् यह ब्राह्मण भारती-युद्धके पश्चात्रचा गया है। क्योंकि व्यास-शिष्य सुमन्तु, जैमिनि, पैल और वैशम्पायनका समकालीन यह याश्ववल्या था : किम्बद्दना उसके शिष्य-वर्गमें था। श्रारम्भमें हम श्रन्तः प्रमाणोंसे निश्चित कर चुके हैं कि भारतीय-युद्धके पश्चात् शतपथ-ब्राह्मण बना है; श्रीर उससे भारती-युद्धका समय भी निश्चित किया गया है। उल्लिखित कथासे देख पड़ता है कि महाभारतके समय यही दन्तकथा परम्परासे मान्य थी। याज्ञवल्काने सिर्फ जुदा शुक्ल यजुर्वेद ही नहीं बनाया, बल्कि पुराने यजुर्वेदके साथ भगड़ा करके यज्ञमें उस वेदके लिए प्राप्त होनेवाली दक्तिणामें वैशम्पायनसे श्राधा हिस्सा भी ले लिया। इस प्रकार यह कथा बहुत ही मनोरञ्जक और ऐतिहासिकं दृष्टिसे महत्व-पूर्ण है।

इसके सिवा वनपर्वके १३८ वें अध्यायमें वर्णन है कि अर्वावसुने रहस्य सौरवेद बनाया है (प्रतिष्ठां चापि वेदस्य सौरस्य द्विजसत्तमः)। यह जान पड़ता है कि सौरवेद स्कवेदमें है। काठक ब्राह्मणमें नीलकएठ द्वारा वर्णित एक श्रादित्यका श्रष्टाचरी मन्त्र यहाँ उदिष्ट है। इस विषय पर वैदिक लोग श्रिष्ठिक लिख सकते हैं। हम तो यहाँ इसका उन्नेस ही कर सकते हैं।

बेद कहते हैं मन्त्र श्रोर ब्राह्मणको; श्राह्मणोमें ही उपनिषदोंका भी श्रन्तर्भाव होता है। तथापि कहीं कहीं उनका निर्देश श्रलग किया गया है। सभापर्वके ५ वें श्रध्यायके श्रारम्भमें नारदकी स्तुति इस प्रकार की गई है—

वेदोपनिषदां वेत्ता ऋषिः सुर्गणार्चितः।
नहीं कह सकते कि महाभारतके समय
कौन कौनसे उपनिषद् प्रसिद्ध थे। दशोपनिषद् बहुत करके महाभारतसे पहलेके
ही होंगे। वेदोंके दशोपनिषदोंके श्रितरिक्त श्राजकल श्रनेक उपनिषद् प्रसिद्ध
हैं। शान्तिपर्वके ३४२वें श्रध्यायमें, ऋग्वेदमें २१००० शाखाएँ होनेका वर्णन किया
गया है; श्रीर सामवेदमें १००० शाखाएँ
तथा यजुर्वेदकी ५६,६;३७ = १०१ शाखाएँ
होनेका वर्णन है। परन्तु श्राजकल वेदोंकी इतनी शाखाएँ उपलब्ध नहीं हैं। इस
कारण, भिन्न भिन्न उपनिषदोंको चाहे
जिस वेदका उपनिषद् कहा जाने लगा है।

नारदके वर्णनमें आगे 'इतिहास-पुराणकः पुरा कल्पविशेषवित्' कहा गया है। इन पुरा-कल्पोंका सम्बन्ध वेदोंसे ही है। ये पुरा-कल्प और कुछ नहीं, वेदोंमें बतलाई हुई भिन्न भिन्न बातें ही हैं। आज-कल हम लोगोंको इन पुरा-कल्पोंका कहीं पता भी नहीं लगताः तथापि प्राचीन कालमें पुरा-कल्प नामक भिन्न भिन्न छोटे अन्थ रहे होंगे। उपनिषदोंकी ही भाँति वे वेदोंके भाग समक्षे जाते रहे होंगे। परन्तु श्राजकल उनका श्रन्तर्भाव पुराणें में श्रथवा ब्राह्मणोंमें वर्णित कथाश्रोमें होता है।

(१) वेदाङ्ग व्याकरण।

वेदोंके जो श्रद्ध कहे गये हैं, उन पर
श्रव विचार किया जाता है। महाभारतमें
पडद्भका नाम बारम्बार श्राता है। नारद् को 'न्यायविद्धर्मतत्त्वद्धः षडद्भविद्युसम्। भी कहा गया है। महाभारतमें ये पड्स बतलाये गये हैं। श्रगले श्रोकमें रन पडद्भोंका वर्णन है।

ऋक् सामांगांश्च यजूषि चापि छन्दांसि नच्चत्रगतिं निरुक्तम्। श्रधीत्य च व्याकरणं सकल्पं शिचां च भूतप्रकृतिं न वेद्यि॥ (श्रादि-पर्व श्र० १७०)

इस श्लोकमें कहे हुए पड़क्न हुन्द, निरुक्त, शिचा, कल्प, व्याकर्ण और ज्योतिष हैं। इन सब शास्त्रोंका अभ्यास महाभारतके समय प्रायः पूर्ण रीतिसे हो गया था श्रोर उन विषयोंमें भारती श्रायों-की प्रगति हो गई थी। विशेषतया व्याक रणका अभ्यास पूर्ण रीतिसे होकर पाणिनिका महाव्याकरण भारत-कालमें ही बना था। पाणिनिका संसारके समस्त व्याकरणोंमें श्रेष्ठ है। पाणिनिने व्याकरणके जो नियम बनाये है वहीं नियम श्राजकल भिन्न भिन्न भाषाश्री के उस तुलनात्मक व्याकरणमें गृहीत हुए हैं जिसे कि पाश्चात्य परिडतींने तैयार किया है। यथार्थमें आजकलके तुलनात्मक व्याकरणकी नींच पाणिनिके व्याकरणने ही जमाई है। यह व्याकरण संसार भरके समस्त भाषा-परिडतोंके लिए श्रादरणीय हो गया है। यह स्पष्ट है कि पाणिति कुछ श्राद्य-व्याकरण-कार न थे।क्योंकि उ^{नकी} बनाया हुआ अद्वितीय ज्याकरण कुछ

उनके श्रकेलेके ही वुद्धि-वलका परिणाम नहीं माना जा सकता। उनसे पहले भी व्यक्रिंग-शास्त्रका अभ्यास बहुत कुछ होता थाः त्र्यौर उनसे प्रथम इस विषय पर कितने ही अन्थ भी वन गये होंगे और शास्त्रकार भी हो चुके होंगे। मतलब यह कि व्याकरण था वेदाङ्ग, इसलिए उसका श्रभ्यास भारती-युद्ध-कालसे लेकर महा-भारतकालतक अवश्य होता रहा होगा। वरन्तु महाभारतमें किसी व्याकरण-शास्त्र-कारका नाम नहीं आया । यहाँ-तक कि महाभारतमें पाणिनिका भी नाम नहीं है। परन्तु इससे यह न माना जा सकेगा कि पाणिनि महाभारत-कालके पश्चात् हुए हैं। इस वातको हम अनेक बार कह चुके हैं कि उल्लेखका अभाव लङ्गडा प्रमाण है। महाभारत-कालके पूर्व ही पाणिनिका अस्तित्व माननेके लिए कारण है। महाभारतमें भाष्यका नाम है। पाणिनिका व्याकरण वेदाङ्ग समभा जाता है श्रौर वैदिक लोग उसे पढ़ा करते हैं। इस व्याकरण पर कात्यायनके वार्तिक हैं श्रीर पतञ्जलिका महाभाष्य है। श्रनुशा-सन पर्वके ८० वें ऋध्यायमें यह श्लोक है-

ये च भाष्यविदः केचित् ये च व्या-करणे रताः । श्रधीयन्ते पुराणश्च धर्मशा-स्नाण्यथापि ते ॥

इसमें भाष्य शब्द व्याकर एके उद्देश से हैं श्रीर पहलेपहल ऐसा जान पड़ता है कि यह पत अलिक त भाष्य के लिए प्रयुक्त है। परन्तु हमारी रायमें ऐसा नहीं माना जा सकता। क्यों कि हम निश्चित कर चुके हैं कि पत अलि, महाभारत-काल के पश्चात् हुए हैं। तब, उनके महाभाष्यका महाभारतमें उल्लेख होना सम्भव नहीं। स्पष्ट मारतमें उल्लेख होना सम्भव नहीं। स्पष्ट देख पड़ता है कि यहाँ पर भाष्य शब्दका क्याकर एके साथ विरोध है, श्रीर इस कारण यह भाष्य या तो वेदका होगा या

किसी श्रोर ही शास्त्रका । निदान यह माननेमें कोई हानि नहीं कि पतअलिका महाभाष्य यहाँ उदिष्ट नहीं है क्योंकि यहाँ निरा भाष्य शब्द है। इसके सिवा, श्रमुशासन पर्वके १४ वें श्रध्यायमें दो प्रन्थकर्त्ताश्रोंका उल्लेख है।

शाकल्यः सङ्गितात्मा वै नववर्षे शतान्यपि । श्राराधयामास भवं मनो-यज्ञेन केशव ॥ भविष्यति द्विजश्रेष्ठः सूत्र-कर्त्ता सुतस्तव । सावर्णिश्चापि विख्यात ऋषिरासीत्कृते युगे ॥ प्रन्थकृत्तोक-विख्यातो भविता द्यजरामरः ॥

(श्रजु. १४, श्लोक. १००-१०४)
इन श्लोकों में एक शाकल्य सूत्रकार
श्रीर दूसरे सावर्णि, दो प्रन्थकारोंका
उल्लेख है। शाकल्यने किस शास्त्र पर
सूत्र बनाये, यह बात यहाँ पर नहीं बतलाई
गई, श्रीर न यही लिखा है कि सावर्णिने
श्रमुक शास्त्र पर प्रन्थ लिखा । परन्तु
शाकल्यका नाम पाणिनिके सूत्रों (लोपः
शाकलस्य श्रादि) में श्राता है: इससे
जान पड़ता है कि यह शाकल्य-सूत्रकार
पाणिनिसे पुराना सूत्रकर्ता होगा। यह
श्रजुमान करने लायक है।

(२) ज्योतिष ग्रन्थ।

व्याकरणके बाद ही ज्योतिषका
महत्त्व है। नहीं कहा जा सकता कि यह
ज्योतिष ग्रन्थ कौनसा था। श्राजकल
लगधका ग्रन्थ वेदाङ्ग-ज्योतिष प्रसिद्ध
है श्रीर वैदिक लोग इसीको पढ़ते हैं।
पाणिनिकी भाँति ही लगधका भी नाम
महाभारतमें उल्लिखित नहीं हैं; तथापि
इसमें सन्देह नहीं कि वे महाभारतसे
पुराने हैं। दूसरे ज्योतिष-ग्रन्थकार गर्ग
हैं। ज्योतिषमें गर्ग-पराशरका नाम प्रसिद्ध
है। ऐसा वर्णन है कि ये गर्गजी सरस्वतीतट पर तपश्चर्या करके ज्योतिष-शास्त्रक्ष

हुए थे। त्राजकल गर्गकी जो एक संहिता उपलब्ध है उसका श्रस्तित्व महाभारत-कालमें भी रहा होगा। यह पहले लिखा ही जा चुका है कि गर्गजी महाभारतसे पुराने हैं। ज्योतिषमें गर्गके मुहूर्त वारम्वार मिलते हैं श्रीर श्रीकृष्णके चरित्रमें गर्गा-चार्य ही ज्योतिषी वर्णित हैं।

* श्रनुशासन पर्वके १८वें श्रध्यायमें यह श्लोक हैं— चतुःषध्यंगमददत्कलाज्ञानं ममाद्रभुतम् । सरस्वत्यास्तटे तुष्टो मनोयशेन पाएडव ॥

इसमें ६४ श्रंगोंकी कलाश्रोंका ज्ञान वर्णित है । ६४ ग्रंगोंके उज्लेखसे निश्चय होता है कि यह यन्य वर्तमान समयमें प्रसिद्ध गर्ग-संहिता ही है । वृद्ध गर्ग संहिताकी प्रति पूनेके डेक्नन कालेजमें है । इसके प्रथम अध्यायमें ६४ श्रंगोंका होना बतलाकर फिर प्रत्येकका विषय भी बतलाया गया है। निश्चय होता है कि महाभारतमें पाये जानेवाले ज्योतिविषयक उल्लेख इसी संहितासे लिये गये हैं। महाभारतके बहुतेरे वचन इस अन्थके वाक्योंसे मिलते हैं। इसमें भी कहा गया है कि नचत्र 'सर्याद्विनिः सृताः।'' चन्द्रका समुद्रसे उत्पन्न होना और दचके शाप-से उसकी जयमुद्धिका होना भी इसमें बतलाया गया है। इसमें कहा गया है कि राहु तमोमय है श्रीर वह श्राकाश-में घुमता है। इसमें राहुचार, गुरुचार, शुक्रचार आदि भी वर्णित हैं। इनके श्राधार पर, युद्धमें होनेवाले जयाप-जय श्रीर राजाश्रोंके जीवन-सम्बन्धी अनेक शुभ-अशुभ फल बतलाये गये हैं। मङ्गलके वक्रका श्रीर वक्रानुवक्रका बहुत बुरा परिणाम बतलाया गया है। महाभारतके भीष्म पर्वके आरम्भमें दुश्चिह्रसचक मंगलके जो वक्र और बक्रानुबक्र बतलाये गये हैं वे इसीके श्राधार पर है । उनकी व्याख्या भी यहाँ दी गई है-

श्रागारराशिप्रतिमं कृत्वा वक्षं भयानकम् । नजत्रमेतियत्पश्चादनुवक्षं तदुच्यते । तथा वक्षानुवक्षेण भौमो हंति महीजिताम् ॥

इस संहितामें सारा विषय नज्ञां पर प्रतिपादित है। इसमें राशियोंका बिलकुल उल्लेख नहीं है, श्रतएव इस प्रत्यका राक-पूर्व होना निश्चित है। इसमें सप्तिषिचार नहीं विणित हैं, इससे जान पड़ता है कि यह कल्पना पीछेकी है। इसमें युग-पुराण नामक एक श्रध्याय है। परन्तु वह ६४ श्रंगोंकी मूचीमें नहीं है, इससे यद्यपि कहना पड़ता है कि वह पीछेसे शामिल किया गया है, तथापि वह है बहुत प्राचीन। उसमे पाटलीपुत्रकी रथापना, शालि, शुक राजा श्रादिका वर्णन है शोर 'सांकेते सप्तराजानो मिव-

(३) निरुक्त, (४) कल्प, (४) बन्द और (६) शिचा।

श्रव निरुक्त श्रथवा शब्द-प्रवचन पर विचार करना है। यास्कका निरुक्त ब्राज कल वेदाङ्गके नामसे प्रसिद्ध है श्रीर यह निर्विवाद है कि यास्क, महामारत काल से पूर्वके हैं। इनका नाम महाभारतमें श्राया है श्रीर इनके नैघरटुक श्रर्थात् शब् कोषका भी उल्लेख (शान्ति पर्वके ३४३व श्रध्यायमें) श्राया है। श्रव एक श्रङ्ग हुन बाकी रह गया। इस श्रङ्गके कर्त्ता पिक्रल हैं। वैदिक लोग इन्हींका छन्दःशास्त्र पत्ते हैं। परन्तु इस पिक्सलका उल्लेख महा-भारतमें नहीं है। उल्लेख नहीं है तो न सही, उससे कुछ अनुमान नहीं निकलताः श्रीर इन पिङ्गलको महाभारतसे पूर्वका मानना चाहिए। श्राजकल पाणिनिकी 'शिचा' प्रसिद्ध है। परन्तु प्रत्येक वेदकी शिचा भिन्न भिन्न है। महाभारतमें (शां॰ प० अ० ३४२) एक शिचांके प्रणेताका उल्लेख है। "बाभ्रव्य-कुलके गालवने क्रम-शास्त्रमें पारङ्गतता प्राप्त करके, 'शिला' श्रीर 'क्रम' दो विषयों पर ग्रन्थ लिखे।" श्रव रह गया कल्प। कल्पका श्रर्थ है, भिष्र भिन्न वेदोंकी यज्ञसम्बन्धी दर्शानेवाले सूत्र। इन कल्प-सूत्रोंके कर्ता श्रनेक हैं, पर उनका उल्लेख महाभारतमे

ध्यन्ति इस प्रकार राक राजाश्रोतक उल्लेख है। युग-पि माण नहीं दिया गया है तथापि कृतयुगके विषयमें "एति वर्षसहस्राणि श्रायुस्तेषां कृते युगे" कहा है। इस वाक्ष्मी यह नहीं कहा जा सकता कि चतुर्युग बारह हुआ वर्षका होता है।

रातंशतसहस्राणा मेप कालः सदा स्मृतः।
पूण युगसहसान्तो कल्पो निःशेष उच्यते॥
यह एक श्रीर श्लोक है। श्रस्तुः इन बातोंसे निश्च्य
होता है कि उक्त वृद्ध गर्ग-संहिता अन्यका ही उन्नेव
महाभारतमें है। इसमें ६४ अंग है और ४० उपांगे

तही पाया जाता। हाँ, निरे स्त्र शब्दका
उत्लेख महाभारतमें है। श्रमुमान होता
के कि इस स्त्र शब्दसे श्रीतस्त्रोंका उद्धेख
प्रहण करना चाहिए। शान्ति पर्वके २६६
व श्रध्यायमें यह रहोक है—
श्रमकुवन्तश्चरितुं किश्चिद्धमें पु स्त्रितम्।
पाणिनिमें श्रनेक स्त्रोंका उल्लेख है।
श्रह्म भिन्न भिन्न विषयों पर रहे होंगे।
श्रह्म यहाँतक वैदिक साहित्यका उद्धेख
श्रा। इसके श्रातिरिक्त, प्रथम भागमें भी
श्रिक उद्धेख किया जा चुका है। महा-

क्ष्मिक उल्लेख किया जा चुका है। महा
श्राप्तमें उपनिषद् शब्दके लिए रहस्य,

श्राह्मवेद श्रोर वेदान्त, ये भिन्न भिन्न

संशाएँ दी हुई मिलती हैं: श्रोर कचित्

सहोपनिषत् शब्द भी प्रयुक्त है। द्रोण

पर्वके १४३ वें श्रध्यायमें भूरिश्रवा श्रपनी

देह, प्रायोपवेशन करके, छोड़नेका विचार

कर रहा है। इस उपनिषद्में ॐ प्रणव

इतिहास-पुराण।

श्रव हमें इतिहास श्रीर पुराणों पर विचार करना है। वैदिक साहित्य समाप्त होने पर, दूसरा साहित्य इतिहास श्रीर पुराणोंका है। इतिहास और पुराणोंमें थोड़ासा अन्तर है। इतिहासमें प्रत्यच यदित बातें होती होंगी श्रीर पुराण होंगे पुरानी दन्तकथाएँ तथा राजवंश। उप-निषदोंसे ज्ञात होता है कि ये पुराण, महाभारतसे पहले, उपनिषत्कालमें भी थे। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि वे अनेक थे या एक। वेदों श्रीर उपनि-पदोंका श्रध्ययन करना जिस तरह बाह्मणोंका काम था, उसी तरह इतिहास और पुराणींको पढ़ना स्तोंका काम था। अन्यत्र लिखा जा चुका है कि स्तोंका यह व्यवसाय महाभारतमें भी कहा गया है। श्रनुशासन-पर्वके ४८ वे श्रध्यायमें लिखा है कि राजाश्रोंका स्तृति-पाठ करना स्तोंका पेशा है। महाभारत भी सौतिने ही शौनकको सुनाया है। इतिहास स्वतन्त्र त्रन्थ-समुदाय होगा। परन्तु महाभारतके श्रनन्तर, यह समस्त ग्रन्थ-समुदाय, महा-भारतमें ही मिल जानेके कारण, लुप्त हो गया। "परन्तु श्रव यह प्रश्न होता है कि उपनिषदोंमें जो इतिहास वर्णित है, वह कौनसा है। रामायण श्रीर महाभारत दोनों प्रनथ इतिहास हैं - यह वात उन प्रन्थोंमें स्पष्ट रूपसे कही गई है। इनके मुल प्रनथ उपनिषद्-कालमें भी रहे होंगे, यह मान लेनेमें कोई हानि नहीं; और इनके सिवा श्रन्य इतिहास छोटे छोटे रहे होंगे। महाभारतके लम्बे चौडे चकर-में उनके आ जानेसे, उनका अस्तित्व लुप्त हो गया श्रोर महाभारतके पश्चाद्वर्ती प्रनथोंमें यही समभा गया कि इतिहासके मानी 'भारत' है। परन्तु महाभारतमें ही कुछ स्थलों पर इतिहास शब्द मिलता है, वहाँ पर महाभारत कैसे ग्रहण किया जा सकता है ? उदाहरणार्थ, द्रोणके सम्बन्धमें यह वर्णन है-

अयोऽधीत्य चतुरो वेदा-

न्साङ्गानाख्यानपश्चमान्।

यहाँ पर टीकाकारने श्राख्यान शब्द-का श्रर्थ पुराण भारतादि किया है। किन्तु भारती-युद्धमें वर्तमान द्रोण उस भारतः का श्रध्ययन कैसे कर सकेंगे जो कि भारत युद्धके पश्चात् बना है। श्रर्थात् महाभारत-कालमें 'भारतः एक श्रलग ग्रन्थ था श्रीर वह बहुत पुराना था। वेदोंके साथ भारत पढ़नेकी रीति बहुत प्राचीन थी। इस कारण, वेदोंके साथ भारतका उल्लेख करनेकी परिपाटी पड़ गई है। श्रब पुराणोंके विषयमें कुछ श्रधिक लिखना है। हम श्रन्थत्र लिख ही चुके हैं कि वायुपुराणका उल्लेख महाभारतमें है। तब, श्रठारह पुराण भी महाभारत-कालमें रहे होंगे। वन पर्वके १८ वें श्रध्यायका यह श्रोक है—

प्वन्ते सर्वमाख्यातं श्रतीतानागतं तथा। वायुप्रोक्तमगुस्मृत्य पुराणमृषिसंस्तुतम्॥

श्रसलमें पुराणोंमें, पुराण श्रर्थात् जो अतीत होगा वही बतलानेका उद्देश रहा होगा। परन्तु श्रांगे श्रानेवाला श्रना-गत भी भविष्य रूपसे पुराणमें कहनेकी परिपाटी महाभारत-कालमें रही होगी। शान्ति पर्वके ३१८ वें अध्यायमें कहा गया है कि लोमहर्षण सुत ही समस्त पुराणों-के कथनकर्ता हैं। इन्हीं लोमहर्पणके पुत्र सौतिने महाभारतकी कथा कहीं है। श्रर्थात् श्रठारहीं पुराण महाभारतसे पहले-के हैं। महाभारतमें एक स्थान (स्वर्गारोहण पर्व अध्याय ५) में कहा गया है कि व्यासने पुराणोंका पाठ किया। इससे मालूम होता है व्यासजीका एक आदि प्राण् था। उनके श्रागे लोमहर्षण्ने भिन्न भिन्न अठारह ग्रन्थ बनाये। परन्त ये श्रारम्भिक पुराण श्रीर श्राजकलके पुराण एक नहीं हैं। क्योंकि वन पर्वमें वाय्योक्त कहकर कलियुगका जो वर्णन किया है, उसमें श्रीर श्राजकलके वायुप्राणमें श्रन्तर देख पड़ता है। वायुपुराणमें - जैसा कि हापिकन्स साहबने दिखाया है-वर्णन है कि कलियुगमें सोलह वर्षसे भी छोटी लड़िकयाँ बच्चे जनेंगी श्रीर महाभारतमें वर्णन है कि पाँच छः वर्षकी श्रवस्थावाली लड़कियोंके सन्तान होगी। इसमें श्राश्चर्य नहीं कि महाभारतवाला वर्णन वायु-पुराणसे भी दस कदम आगे है। परन्त महाभारतवाला वर्णन प्राचीन वायुपुराण से लेकर बढ़ाया गया है। महाभारतमें पुराण, श्राख्यान, उपाख्यान, गाथा श्रीर इतिहास भिन्न भिन्न शब्द त्राते हैं। उनके भिन्न भिन्न भेद यों देख पड़ते हैं कि श्राख्यान एक ही वृत्तके सम्बन्धमें रहता है श्रीर इतिहास शब्द, इति + ह + श्रास इस श्रथंसे, बहुत कुछ प्राचीन वृत्तके श्रथंमें देख पड़ता है।

न्यायशास्त्र।

सभा पर्ववाली नारदकी स्तृतिम यह

पेक्यसंयोग्यनानात्वसमवायविशारदः। पञ्चावयवयुक्तस्य वाक्यस्य गुणदोषवित्॥ उत्तरोत्तरवका च वदतोपि वृहस्पतेः॥

इसमें जो ऐका, संयोग्य, नानात श्रादिका वर्णन है, वह किस शास्त्रका है इसका उत्तर देना कठिन है। टीकाकारने लिखा है कि यह वर्णन सभी शास्त्रोंके लिए एकसा उपयोगी हो जाता है। परन्त हमारे मतसे यह वर्णन श्रौर विशे षतः 'समवाय' शब्द न्यायशास्त्रका दर्शक होगा। यह माननेमें कोई हानि नहीं कि गौतमका न्यायशास्त्र महाभारत-कालमे प्रचलित रहा होगा । 'पञ्चावयवयुक्त' वाका, गौतम-कृत न्यायशास्त्रके सिद्धान्ती के ही लिए उपयुक्त जान पड़ता है। महा भारतमें गौतमका उल्लेख नहीं है; श्रौर श्रवतक यह भी निश्चित नहीं देख पड़ता कि गौतमका न्यायशास्त्र कब उत्पन्न हुम्रा। श्राजकल जो न्यायस्त्र प्रसिद्ध हैं वे महा भारतके पश्चात्के हैं। परन्तु शान्ति पर्वके २१० वें अध्यायमें लिखा है कि न्यायशाल महाभारतसे पहलेका है। वह श्रीक यह है—

न्यायतन्त्राएयनेकानि-

तैस्तैरुक्तानि वादिभिः।
स्पष्ट देख पड़ता है कि इस न्यायका
उपयोग वाद-विवादमें हुन्ना करता थी।
क्योंकि इसमें वादी शब्द मुख्य कर्णते
प्रयुक्त है।

नारदको वृहस्पतिसे भी उत्तरोता

वका कहा है। इससे माल्म होता है कि वायशास्त्र (लाजिक) के साथ ही वक्तत्व-शास्त्र (र्हेटारिक) भी महाभारत-कालमें प्रविति रहा होगा। श्रोताके मन पर ब्रुपने भाषणसे पूर्ण परिणाम करनेकी ख्खा हो, तो वक्ताके लिए र्हेटारिक यानी वक्तत्वशास्त्र श्रवश्य सिद्ध रहेना चाहिए। ग्राचीन कालमें, भिन्न भिन्न धर्मोंके वाद-विवादमें, हेतुविद्या तथा वक्तृत्वशास्त्र होनोंका ही उपयोग होता था । यह कहनेकी जरूरत नहीं कि एकके बोल बुकने पर, दूसरेका और श्रिधिक प्रभाव-शाली भाषण करना, वाद-विवादमें बहुत ही उपयोगी हुआ करता है । श्रीर,भारती-कालमें प्राचीन राजाश्रोंको तत्त्वज्ञान विषय पर ऐसे वाद-विवाद प्रत्यच सुननेका खब शौक था। इस प्रकारकी रुचि यूना-नियोंमें भी थी। श्रौर इस ढङ्गके, प्रेटोके लिखे हुए, उसीके संवाद श्रस्तित्वमें हैं जोकि श्रवतक संसार भरके मनुष्योंको श्रानन्द दे रहे हैं। इस कारण वक्तृत्व-शास्त्रका उगम जिस प्रकार युनानम हुआ, उसी प्रकार हिन्दुस्थानमें भी महाभारत-कालमें हुआ था। परन्तु फिर यह शास्त्र पनपा नहीं। इसके एवज़में श्रलङ्कार-शास्त्र उत्पन्न हुआ जिसने संस्कृतकी गद्य-पद्य-रचनामें एक प्रकारकी कृत्रिमता उत्पन्न कर दी। वक्तृत्वशास्त्र महाभारत-कालमें श्रवश्य रहा होगा, इसका साची महा-भारतका जनक सुलभा-संवाद है। यह संवाद कुछ कुछ प्लेटोके संवादकी भाँति है, जिसमें यह देख पड़ता है कि एक वक्ता दूसरे वक्तासे बहुत ही बढ़िया भाषण कर रहा है। इस संवादमें सुलभाने अपने उत्तरके आरम्भमें वाका कैसा होना चाहिए स्रोर कौन कौनसे उसके गुण-दोष हैं, इस विषयमें विवरण किया है। यहाँ उसका अवतरण देनेकी

श्रावश्यकता नहीं। यह समृचेका समृचा जनक-सुलभा-संवाद पढ़ने लायक है। श्रस्तु; वक्तृत्वशास्त्रके एवजमें श्रलद्वार-शास्त्र उत्पन्न हो जानेसे महाभारतके वादवाले साहित्यमें ऐसे संवाद नहीं मिलते जैसा कि सुलभा-जनक-संवाद है, या श्रात्मा-सम्बन्धी जैसे प्रवचन उप-निषदोंमें भी हैं।

धर्मशास्त्र।

धर्मकामार्थमोत्तेषु यथावत्कृतनिश्चयः । तथा भुवनकोशस्य सर्वस्यास्य महामतिः॥

यह नारदका श्रीर भी वर्णन है। इससे जान पड़ता है कि धर्मशास्त्र, कामशास्त्र, श्रर्थशास्त्र श्रौर मोत्तशास्त्र, ये चार शास्त्र श्रवश्य ही रहे होंगे। स्वयं महाभारतको धर्मशास्त्र श्रीर कामशास्त्र संज्ञा दी गई है। महाभारतमें धर्मशास्त्रका उल्लेख कई वार हुआ है। हम अन्यत्र कहीं कह चुके हैं कि सौतिने महाभारतको मुख्यतः धर्म-शास्त्र वनाया है। महाभारतमें नीतिशास्त्र-का भी उल्लेख है। इस बातका निश्चय नहीं हो सकता कि यह नीतिशास्त्र किस प्रकारका था। तथापि वह राजनीति श्रीर व्यवहारनीति दोनोंके श्राधार पर रहा होगा। अर्थशास्त्रको वार्ताशास्त्र भी कहा गया है स्रोर मोक्तशास्त्रकी संज्ञा श्रान्वीचिकी है। (सभा श्रीर शान्तिपर्व त्रo ५६) एक स्थान पर मानव धर्मशास्त्र- **′** का उल्लेख है श्रीर एक स्थल पर राज-धर्मोंका भी उल्लेख हुआ है। महाभारतमें श्रनेक स्थलों पर यह बात कही गई है कि समग्र नीतिधर्म मुख्यतः शुक्र श्रीर वृह-स्पतिने कहे हैं। शान्तिपर्वके आरम्भमें ही कहा है कि वृहस्पतिने एक लक्ष श्लोकोंका नीतिशास्त्र बनाया श्रीर उश-नस्ने उसे लघु किया। इसके आने शास्तिपर्वके ५= वे श्रध्यायमे राजशास्त्र-

प्रणेता मनु, भरद्राज श्रोर गौरशिरस् बतलाये गये हैं। इन श्रन्थोंका श्रथवा बृहस्पति-प्रणीत नीतिशास्त्रका श्राजकल कहीं पता भी नहीं लगता। परन्तु शुक-नीति श्रन्थ श्रव भी श्रस्तित्वमें है। इस नीतिमें सन्धि, विश्रह श्रादि राजकीय विषयोंकी बहुत कुछ जानकारी है। तथा भुवनकोषस्य सर्वस्यास्य महामतिः।

इस वाकामें कथित शास्त्र भुवनशास्त्र होना चाहिए। इस शास्त्रमें कदाचित् ये बातें होंगी कि समग्र पृथ्वी कितनी वड़ी है, उसके कितने विभाग हैं, श्रोर सारा विश्व कैसा है। श्रॅंग्रेज़ीमें जिसे कॉस-मॉलोजी कहते हैं, वह शास्त्र महाभारत-कालमें श्रलग रहा होंगा। महाभारतमें-का भू-वर्णन श्रादि वहींसे लिया गया होगा। इस प्रकार, विद्वान् मनुष्यके श्रध्ययनके समस्त विषय नारद्के वर्णनमें श्रा गये। उन्हें भिन्न भिन्न मोच्नशास्त्रों-का भी ज्ञान था। ये शास्त्र सांख्य, योंग श्रोर वेदानत श्रादि हैं। नारद्का श्रोर भी वर्णन किया गया है कि—

सांख्ययोगविभागज्ञः निर्विवित्सुः सुरासुरान् ।

यह वात निर्विवाद है कि महाभारत-कालमें सांख्य, योग, वेदान्त आदि तत्त्व-श्रानके अनेक ग्रन्थ थे। परन्तु अब उनमें-से एक भी ग्रन्थ शेष नहीं। उनके बहुतसे तत्त्व महाभारतमें आ ही गये हैं। महा-भारतके अनन्तर इस तत्त्वज्ञान पर भिन्न भिन्न सूत्र बने और वहीं मान्य हो गये। इस कारण, कह सकते हैं कि महाभारत भी पीछे रह गया। तथापि, यदि इन तत्त्वज्ञानोंका ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करना हो तो वह महाभारतसे ही हो सकता है; और तदनुसार हम ग्रन्य स्थल पर इस ग्रन्थमें विचार करेंगे।

राजनीति।

सन्धिविश्रहतत्त्वहरूत्वनुमानविभागवित्।
ऐसा वर्णन नारद्का श्रौर भी है।
इसमें वर्णित सन्धि, विश्रह श्रौर पाड़
गुर्य-विधियुक्तशास्त्र, पूर्वोक्त नीतिशास्त्र,
का स्पष्टीकरण है। इसमें श्रन्य शास्त्र
उन्निखित नहीं हैं। यह वृहस्पतिकी नीति
का ही भाग है—"राजनीतिमें सन्धि,
यान, परिगृह्यासन, द्वैधीभाव, श्रन्यनुषाः
श्रय श्रौर विगृह्यासन, इन षड्गुणोंके
गुण-दोष वतलाये गये हैं।" इसी प्रकार
'श्रनुमानविभागवित्' वाक्य न्यायशास्त्रके
उद्देशसे है। श्रस्तु; नारद्का श्रन्तिम
वर्णन है कि—

युद्धगान्धर्वसेवीच सर्वत्राप्रतिघस्तथा।

इसमें कहा गया है कि नारदको युद्ध-शास्त्र श्रोर गान्धर्वशास्त्रका भी ज्ञान था। महाभारतमें श्रनेक स्थानों पर युद्धशास्त्र उल्लिखित है श्रोर इस युद्धशास्त्रके श्रनेक स्त्र भी थे। श्रश्वस्त्रत्र, गजस्त्रत्र, रथस्त्रश्रोर नागरस्त्र जिसमें इस वातका वर्णन था कि शहरों श्रोर किलोकी रचना कैसी की जानी चाहिए। पूरा युद्ध-शास्त्र धनुवेंदके नामसे प्रसिद्ध था। इस धनुवेंद श्रथवा स्त्रोंके प्रणेता भरद्वाज थे श्रोर, गान्ध्वं यानी गायनशास्त्रके कर्ता नारद ही थे।

गान्धर्वं नारदो वेद, भरहाजो धनुर्यः हम् । देवर्षिचरितं गार्यः कृष्णात्रेषः चिकित्सितम् ॥

(शान्तिपर्व २१०)
इससे सिद्ध है कि नारद ही गान्धर्व
श्रथवा गान इत्यादि शास्त्रों से मुख्य प्रवः
र्वक हैं। महाभारत-कालमें इस शास्त्रकी
उन्नति बहुत कुछ हो गई थी। देविं
चरित (ज्योतिष) के प्रवर्तक गार्ग्य श्रोर
वैद्यशास्त्रके प्रवर्तक कृष्णात्रेयके प्रत्य
श्राजकत प्रचलित नहीं हैं। तथापि उन

प्रत्योंका कुछ थोड़ासा ज्ञान कचित् प्रध्यायमें श्रा गया है।

स्मृतियाँ श्रीर श्रन्य विषय।

नारदकी उल्लिखित स्तुतिमें उन सव शास्त्रोंका उल्लेख है जो कि महाभारत-कालमें ज्ञात थे। अर्थात्, महाभारतका हेत नारदको सर्व-विद्या-पारङ्गत दिख-तानेका जान पड़ता है।इससे यह मानने-में कोई हानि नहीं कि यह सूची बहुत कुछ सम्पूर्ण हो गई है। इस सुचीमें स्मृतियोंका नाम बिलकुल ही न देखकर पहलेपहल कुछ श्रचरज होता है। परन्त हमारा तो यह मत है कि महाभारत-कालमें किसी स्मृतिका श्रस्तित्व न था। मनस्मृति भी पीछेकी है और श्रन्य-स्मृतियाँ तो पीछेकी देख ही पड़ती हैं। मनुका धर्मशास्त्र कदाचित्महाभारतसे पूर्वका हो, क्योंकि मनुके वचनोंका उल्लेख श्रथवा मनुकी श्राज्ञात्रोंका उल्लेख महा-भारतमें बार बार श्राता है।यहाँ स्मृतियीं-का उल्लेख नहीं है। कदाचित् यह प्रमाण स्मृतियोंके श्रस्तित्वके सम्बन्धमें मान्य होने योग्य नहीं है। क्योंकि यह माना जा सकता है कि केवल नारदके अधीत विषयों की ऊपर-वाली सूची सम्पूर्ण न हो। इसी जगह वान्दोग्य उपनिषद्का एक श्रवतरण देने योग्य है। क्योंकि उसमें नारदने श्रपने ही मुखसे सनत्कुमारको बतलाया है कि मैंने कौन कौन विषय पढ़े हैं। जब नारद शिष्य वनकर सनत्कमारके पास श्रध्यात्म-शान सीखनेके लिए गये, उस समय सन-

• महास्मृति पठेचस्तु तथैवानुस्मृतिं शुभाम् । तावप्येतेन विधिना गच्छेतात्मसलोकताम् ॥२०॥ यह श्लोक शान्तिपर्वके २०० वें अध्यायमें आया है। टीकाकारका कथन है कि यहाँ महास्मृतिसे मनुस्मृति अर्थ लेना चाहिए। परन्तु अनुस्मृति क्या है ? और, यहाँ जपका प्रश्न है। हमारी रायमें यहाँ पर भगवहगीता और अनुगीतासे अभिपाय रहा होगा।

त्कुमारने नारदसे पूछा कि तुमने अवतक क्या क्या अध्ययन किया है ? तब नारदने उत्तर दिया--"मैंने ऋग्वेद, यज्जवेद, साम-वेद, इतिहास-पुराण, व्याकरण, पित्र्य, राशि, दैवनिधी, वाको वाक्यमेकायनम्, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, विद्या, नत्तत्रविद्या श्रीर सर्पदेवजन-विद्या पढ़ी है।" नारदने यहाँ पर १६ विद्याएँ गिनाई ही हैं। इनमेंसे कुछ विषयोंके सम्बन्धमें निर्णय करना कठिन है कि ये कीनसी हैं। उदाहरणार्थ, यहाँ पर व्याकरणको 'वेदानां वेदम्' कहा है। टीकाकारने नत्तत्र-विद्याका अर्थ ज्योतिष श्रीर ब्रह्मविद्याका श्रर्थ छन्दःशास्त्र यत-लाया है: श्रीर पिज्य शब्दसे कल्पसूत्रको ब्रहण किया है।राशिका अर्थ गणितशास्त्र है पर निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि 'वाकोवाक्यमेकायनम्' क्या था। श्राचार्योंने देवविद्याका श्रर्थ शिक्ता किया है। सर्पदेवजन-विद्यासे सर्पीके विष पर देनेकी श्रोषधियाँ माल्म होती हैं; एवं नृत्य, गीत, शिल्पशास्त्र ग्रीर कला इत्यादि इसमें आ जाती हैं। आचायोंने ऐसा ही वर्णन किया है। उपनिषत्कालमें राशि श्रर्थात् गणितशास्त्र प्रसिद्ध था मानना चाहिए कि महाभारत-कालतक उसका श्रभ्यास बहुत कुछ हो चुका था। राशि शष्ट् त्रैराषिकमें श्राता है। इस गणितशास्त्रका उल्लेख यद्यपि महाभारत-में नहीं है तथापि श्रनेक प्रमाणोंसे यह बात श्रव मान्य हो गई है कि गणितशास्त्र श्रसलमें भरतखएंडमें ही उत्पन्न हुआ। विशेषतः दस ब्रङ्कोंका गणितयहींसे सर्वत्र फैला । उल्लिखित सूचीमें भिन्न भिन्न शास्त्रोंका उल्लेख है। उसमें महाभारतकी श्रपेत्ता गणित श्रौर वैद्यक दो विषय श्रिधिक हैं। नारदकी समय विद्याश्रोंमें यद्यपि स्मृतियोंका उल्लेख नहीं है, तथापि दक्त अनुमानसे यह वात निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती कि स्मृतियाँ थीं ही नहीं। वैदिक साहित्यके अतिरिक्त शेष प्रामाणिक अन्थ ही स्मृति हैं, यह अर्थ श्रुति शब्दके विरोधसे महाभारत-कालके अनन्तर उत्पन्न हुआ होगा। क्योंकि बाद-रायणके ब्रह्मस्त्रोंमें 'स्मृतेश्च', 'इति च स्मर्यते' इत्यादि प्रयोगोंमें महाभारतका ही आधार लिया गया है।

अन्य शास्त्र और उल्लेख।

जान पड़ता है कि नीतिशास्त्रका वर्णन करनेवाला एक शंवर था । दी तीन स्थानों पर उसका नाम श्राया है।

नातः पापीयसीकाञ्चिद्वस्यां शंबरो-ऽब्रवीत् । यत्र नैवाद्य न प्रातमीजनं प्रतिदृश्यते ॥ २२ ॥

(ব০ স্থ০ ৩২)

महामारतमें संख्यावाचक पद्म शब्द कई बार श्राया है।

तस्यौ पद्मानि षट्चैव पञ्चह्नेचैव मानद ॥ (शान्ति० श्र० २५, १६)

सभापर्वमें संख्याके वे सभी शब्द् श्राये हैं जिनका श्राजकल चलन है। यहाँ पर वे उद्धृत करने योग्य हैं।

श्रयुतं प्रयुतं चैव शंकुं पद्मं तथार्वुद्म् । सर्वे शंखं निखर्वं च महापद्मंच कोटयः॥ मध्मंचैव परार्धं च सपरं चात्र परायताम्॥

(स० अ० ६५-४)

इससे प्रकट है कि महाभारत-कालमें गिणितशास्त्रमें श्रद्धगिणितकी बहुत कुछ उन्नति हो गई थी। यह परम्परा सत्य देख पड़ती है कि श्रद्धगिणितशास्त्र भारती श्रायोंका है श्रीर वह यहीं से सर्वत्र फैला है। ऐसा वर्णन है कि गिणितशास्त्रमें पेड़ों-के पत्ते श्रीर फलतक गिणितके द्वारा गिन लेनेकी कला श्रितुपर्णको ज्ञात थी। शालिहोत्रमें घोड़ोंके बदन परकी श्रभ- श्रशुभ माँरियांका भी वर्णन था। जरासन्य की कथामें कुश्तीके दाँव-पंचोंके नाम श्राये हैं। इसी प्रकार थकावट न माल्म होनेकी श्रोषधि श्रोर उपाय वर्णित हैं। वैद्यशास्त्रमें कषाय श्रोर घृतोंका उन्नेख हैं।

ते पिवन्तः कषायांश्च सर्पीषि विवि-धानिच। दृश्यन्ते जरया भग्ना नगा नागैरिवोत्तमैः॥

(शान्ति० ३३२)

श्राकाशके भिन्न भिन्न वायुत्रोंका भी वर्णन है। श्रनुशासन पर्वमें वतलाया है कि भिन्न भिन्न प्रकारके गन्ध (धूप) किस भाँति तैयार किये जाते हैं। यह श्लोक ध्यान देने योग्य है—

तलवदृश्यते व्योम खद्योतो हृव्यवाडिव। न चैवास्ति तलोव्योम्नि खद्योतेव हुतावहः॥

महाभारतमें एक स्थान पर स्मृति-शास्त्रका भी उन्लेख देख पड़ता है। श्रमु-शासन पर्च (श्र० १४१-६५) के उमा-महेश्वर-संवादमें—

वेदोक्तः प्रथमो धर्मः स्मृतिशास्त्रगतोऽपरः। शिष्टाचीर्णोपरः प्रोक्तस्त्रयोधर्मः सनातनाः॥

जो स्यृतिशास्त्र कहा है वह धर्म-शास्त्र, मानवादि और बौद्धायन आदिके उद्देशसे है। श्रापस्तम्ब धर्मशास्त्र श्रादि धर्मः शास्त्रके छोटे प्रन्थ महाभारतके पहले थे। परन्तु महाभारतमें श्रीर किसीका नहीं, केवल मनुका नाम मिलता है। मनुके वचनके कुछ दृष्टान्त भी पाये जाते हैं। परन्तु मनुस्मृतिका अथवा अन्य स्मृति योंका नाम महाभारतमें नहीं आया, यह पहले लिखा ही गया है। यह बात सनिः ग्ध है कि इस वचनको लेकर ही स्मृतिमे धर्मकी व्याख्या की गई है, अथवा इसकी व्याख्या किसी श्रीर स्थानसे ली गई है यह संवाद बड़ा मजेदार है श्रीर इसमे समस्त धर्म संदोपमें वतलाया गया है। (अ० १३६-१८८)

विद्या जंभकवार्तिकैः ब्राह्मणैः।

यह उल्लेख उद्योग पर्वमें है और वीतक-मानिक (सुवर्णमानिक) का भी हल्लेख है। (६४ वें श्रध्यायमें) ऐसा जान पड़ता है कि जंभक यानी कुछ रसायन-क्रिया उस समय माल्म रही होगी। श्रन्यव कहा ही गया है कि धातुश्रोंकी जानकारी थी ही।

सभापर्वके ११ वें श्रध्यायमें यह

भाष्याणि तर्कथुक्तानि देहवन्ति विशाम्पते । नाटका विविधाः काव्यक-धाल्यायिककारिकाः॥

तर्कयुक्त भाष्य देह धारण किये प्रजा-पतिकी सभामें रहते हैं: इसी प्रकार नाटक, काव्य, कथाएँ श्राख्यायिकाएँ श्रीर कारिकाएँ भी रहती हैं। इस वर्णन-से प्रकट है कि आधुनिक साहित्यके वहतरे भेद महाभारतमें प्रसिद्ध थे। ये ग्रन्थ किसके थे, इसका उल्लेख नहीं है। इसका पता नहीं कि भाष्य किन विषयों पर थे। ये भाष्य छोटे होंगे। क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता कि उस समय पत-अलिका भाष्य था । पतअलि-कृत भाष्य-का नाम 'महाभाष्य' है। यहाँ भारत श्रौर महाभारत जैसा ही भेद देख पड़ता है। महाभाष्यका नाम कहीं नहीं श्राया। प्रजापतिकी सभामें सदेह ग्रन्थ तो रहते ही थे, परन्तु सभामें कहीं ग्रन्थकारोंके विद्या-मान होनेका वर्णन नहीं है। प्रन्थ पूज्य हो तो यह त्रावश्यक नहीं कि प्रन्थकार भी पूज्य हों, किंवहुना श्रनेक बार नहीं भी रहते । निदान महाभारत-कालमें भाष्य, नाटक, काव्य श्रीर श्राख्यायिका हत्यादिके पूज्य ग्रन्थकार उत्पन्न नहीं इए थे, यही मानना पड़ता है।

श्रध्ययनके जो विषय श्रथवा शास्त्र समुचे महाभारत-कालमें प्रसिद्ध थे, वे ऊपरकी भाँति हैं। ये विषय वेद, धर्म-शास्त्र, तत्त्वज्ञान, राजनीति. गायन, भाषाशास्त्र श्रथवा निरुक्त श्रौर युद्ध, कृषि, वैद्यकश, गणित, ज्योतिष श्रीर शिल्पशास्त्र थे। इनमेंसे कई एक विषय विलकुल पूर्ण हो चुके थे: अर्थात तत्त्वज्ञान, व्याकरण श्रोर राजनीति श्रादि विषय इतनी पूर्णता पर पहुँच गये थे कि उससे अधिक वृद्धि हिन्दुसानोंमें उस समयके पश्चात् नहीं हुई। काव्य अथवा ललित-वाङ्गमय उस वक्त निर्माण न हन्ना था। महाभारतमें नाटकोंका उल्लेख है। नाटक करनेवाले ब्राह्मणोंका, श्रीर नटके स्त्री-वेश धारण करनेका भी उल्लेख है । किन्तु किसी ग्रन्थ श्रथवा ग्रन्थ-कारका उल्लेख नहीं है। महाभारतके पश्चात इसका भी श्राप्त वाङ्गमय उत्पन्न हुआ श्रीर कुछ शतकोंमें उसे ऊर्जिता-वस्था प्राप्त हुई। महाभारत श्रीर रामा-इन श्रार्ष काव्योंसे ही उसका श्रारम्भ हुश्रा। भारती कालमें तत्त्वज्ञान-का जो पूर्ण विचार हुआ था, उसीका निष्कर्ष पड्दर्शनोंने अपने विशेष सुत्रोंके द्वारा किया । ये सूत्र श्रत्यन्त पूर्ण श्रौर सब श्रोरसे विचार करके संचेपमें कहे गये हैं: इस कारण सबको मान्य हो गये हैं। श्रतएव, तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे, भगव-द्गीताके सिवा, महाभारत कुछ पीछे रह गया है। तो भी महाभारतमें तत्त्वज्ञानकी चर्चा वहत है।

* अपने शोकसे ज्ञात होगा कि भारती आयोंकी कल्पना और तर्कशक्ति कितनी विशाल थी। 'सूच्मयो-नीनिभूतानि तर्कगम्यानिकानिचित्। पद्मयोपि निपा-तेन येपां स्यात्कंध पर्थयः॥ (शां० अ०१४-२६) यहाँ आजकलके 'वैसिला' यानी सूच्म जन्तुओंना उल्लेख है।

पन्द्रहर्वां प्रकरण।

con Hollan

धर्म।

गाह कहनेकी श्रावश्यकता नहीं कि भारती कालके प्रारम्भसे भारती श्रायोंका धर्म वैदिक था। वैदिक कालके अन्तमें भारती युद्ध हुआ। इस युद्ध में जो भिन्न भिन्न जनसमुदाय थे वे वैदिक धर्मके श्रभि-मानी थे, इसमें श्रचरजकी कोई वात नहीं। वैदिक धर्मके मुख्य दो श्रङ्ग थे, ईशस्तुति श्रथवा स्वाध्याय श्रीर यज्ञ। प्रत्येक मन्द्यको ये दोनों काम प्रति दिन करने पडते थे। वैदिक धर्ममें अनेक देवता हैं। श्रौर, ये देवता सृष्टिके भिन्न भिन्न भौतिक चमत्कार--मेघ, विद्युत्, श्रादिके श्रधिष्ठाता खरूप माने जाते हैं। इनमें इन्द्र, सूर्य, विष्णु और वरुण मुख्य हैं। भौतिक खरूपके साथ इन देवताओं-का तादात्म्य करनेकी यहाँ पर आवश्य-कता नहीं। यद्यपि भिन्न भिन्न देवता भिन्न भिन्न भौतिक शक्ति-खरूप कल्पित किये गये हों, तो भी समस्त देवताश्रींका एकीकरण करनेकी प्रवृत्ति भारती श्रायों-में प्राचीन कालसे ही थी।

उनके मतानुसार ईश्वर एक है श्रीर ये भिन्न भिन्न सक्ष उसीके हैं। यही नहीं, किन्तु समस्त जगत् श्रीर ईश्वर भी एक ही है। एक शब्दमें कहें तो सृष्टि श्रीर स्रष्टा एक ही है, श्रलग नहीं। जैसा कि मेक्समूलरने कहा है, इसी प्रवृत्तिसे एक देवताको अन्य समस्त देवताश्रोंका सक्ष देना श्रथवा उसमें सर्वेश्वरको किएत करना भारती श्रायोंके लिए बहुत ही सहज था। इन देवताश्रोंकी ऐसी एकत्व-प्रतिपादक कल्पनाश्रोंसे भरी हुई

रतुतियाँ जिस ऋग्वेदमें हैं, वह ऋग्वेद भारती युद्ध कालमें सम्पूर्ण हो गया था श्रीर उसके विषयमें लोगोंकी यह पृत्य वुद्धि प्रस्थापित हो चुकी थी कि यह श्रार्थ श्रम प्रतिपादक मूल देवी प्रन्थ है। इसी प्रकार यजुर्वेद और सामवेद भी सम्पूर्ण हो गये थे श्रीर उनके विषयमें धर्मश्रद्धा स्थिर हो गई थी। ऋषियोंने भिन्न भिन्न देवतात्रोंके जो स्तुति-प्रधान स्क वनाये हैं, उनकी रचना खयं ऋषियोंके द्वारा नहीं हुई, किन्तु परमेश्वरी प्रेरणासे त्रथवा उसकी इच्छासे ऋषियोंके मुखसे वे सहज ही निकल पड़े हैं। भारत-कालमें ऐसी दढ धारणा पूर्ण हो गई थी। प्रथात उस समय पक्की धारणा हो गई थी कि वेदोंके सुक्त अपौरुषेय हैं। ऋग्वेदमें देव-ताओंको स्तुतिके मन्त्र थे। श्रीर यजुर्वेदः में यज्ञ-यागकी किया बतलाई गई थी। ऋग्वेदके स्कांसे ही सामवेद बना था, श्रीर ये सुक्त सिर्फ पढ़नेके लिए नधे किन्तु गानेके लिए थे। अर्थात् सामवेद-का पठन गानेकी भाँति था। यह नियम था कि तीनों वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद श्रीर सामवेद, प्रत्येक आर्यको मुखाय कर लेने चाहिएँ। ब्राह्मण, चत्रिय और वैश्य तीनों वणौंके लोग वेदविद्या पढ़ते थे। वाल्यावस्थामें प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य वेद पढ़नेका था। कमसे कम एक न एक वेद प्रत्येकको याद रखना पड़ता था। यह उनका धार्मिक कर्तव्य था। श्रमुमान किया जा सकता है कि भारती युद्धकाल. में लोग इस कर्तव्यका पालन बहुत कुछ श्रद्धासे करते थे। कदाचिन् वैश्य लोग श्रपने व्यवसायकी श्रहचनके कारण महाभारत-कालमें, वेद-विद्या पढ़ना ^{भीरे} धीरे छोड़ने लगे होंगे।

किन्तु भारती युद्ध-कालमें चित्रिय श्रीर ब्राह्मण लोग वेद्विद्यामें एक हीसे तत्यर रहते थे। महाभारतके किसी
हित्रय योद्धाको देखिये, उसे वेद्विद्या
करहाम्रथी और वह विद्या श्रवसर पर उपस्थित भी रहा करती थी। वेद्विद्या पारङ्गतताके सम्बन्धमें राम और युधिष्ठिरका
वर्णन सदा श्राता है। परन्तु देख पड़ता
है कि भारती कालके श्रन्तमें महाभारतकालके लगभग, चित्रय लोगतक विद्याकी श्रोर दुर्लच्य करने लगे। श्रनेक
बाह्मण भी जब वेद-विहीन हो गये देख
पड़ते हैं, तब चित्रयोंकी बात ही क्या?
उस समय वेदिवद्यामें चित्रयोंका प्रवीण
होना उनकी एक न्यूनता समभी जाने
लगी। कर्णने युधिष्ठिरका उपहास करके

ब्राह्मे भवान्वले युक्तः स्वाध्याये यज्ञकर्मणि । मास्म युध्यस्व कीन्तेय मास्म वीरान्समासदः ॥

ब्राह्मणोंके कर्तव्य श्रर्थात् वेद-पाठ करनेमें श्रीर यज्ञ करनेमें तुम प्रवीण हो, परन्तु न तो तुम युद्ध करनेके लिए श्रागे बढ़ों श्रीर न वीरोंसे मुका-बिला करों। (कर्ण० श्र० ४६)। तात्पर्य यह कि, उस समय वीरको वेदविद्याका श्राना एक न्यूनताका लच्ण माना जाने लगा था। परन्तु इससे प्रथम श्रर्थात् रामके समय वह परिस्थिति न थी। राम जिस प्रकार धनुर्विद्यामें श्रय्रणों थे, उसी प्रकार वेदविद्यामें भी थे। रामायणमें ऐसा ही वर्णन है।

वैदिक आहिक, सन्ध्या और होम।

स्पष्ट देख पड़ता है कि प्रत्येक आर्य बाह्मण, ज्ञिय और वैश्य प्रति दिन सन्ध्या एवं यज्ञ किया करते थे। कमसे कम भारती योद्धाओं के वर्णनमें इस बात-की कहीं कमी नहीं है। जिस तरह यह नहीं

देख पडता कि कहीं समय पर सन्ध्या करना राम और लदमण भूल गये हों. इसी तरह समभौतेके लिए जाते हुए श्रीरुप्णका जो वर्णन महाभारतमें है, उसमें प्रातः-सायं सन्ध्या करनेका वर्णन करनेमें कविने भूल नहीं की। सन्ध्यामें मुख्य भाग था उपस्थान करना, जो वैदिक मन्त्रोंसे किया जाता है। लिखा है कि भारती युद्धके समय समस्त चत्रिय प्रातः स्नान करके सन्ध्यासे छुट्टी पाकर रणभूमि पर सन्नद्ध होते थे। रातको एक ही दिन युद्ध हुआ और समस्त सैनिकोंने युद्धभूमिमें ही श्राराम किया। उस समयका वर्णन है कि प्रातःकाल होनेसे पहले ही युद्ध छिड़ गया, तब सुर्य निकला। उस समय, समस्त सैन्यमें युद्ध रुक गया श्रीर सभी चत्रियोंने रणा-क्रुणमें ही सन्ध्या श्रर्थात् सूर्यका उपस्थान किया। इससे देख पड़ता है कि भारत-कालमें सन्ध्या श्रीर सूर्यके उपस्थानका कितना माहात्म्य था (द्रोणपर्व ऋ० १८६)। "पूर्वमें श्ररुणके द्वारा ताम्रवणींकृत रवि-मग्डल सोनेके चक्रकी भाँति दिखाई देने लगाः तव उस सन्ध्या समयमें कौरव श्रीर पाराडव दोनों श्रोरके योदा अपने श्रपने रथ, घोड़े श्रोर पालकी श्रादि सवारियाँ छोड़ छोड़कर सूर्यकी श्रोर मुँह करके, हाथ जोड़कर जप करने लने।" इससे यह भी देख पड़ता है कि प्रातः सन्ध्याके समयको श्रर्थात् सूर्यके उदय होनेके समयको निकलने देनेके सम्बन्धमें भारती-युद्ध-कालके समग्र भारती आर्य सावधान रहते थे। किंब-हुना, ऐसे श्रवसर पर स्नान करनेकी भी श्रावश्यकता न मानी जाती थी। क्योंकि यहाँ रणभूमिमें स्नान करके सूर्यो-पस्थान करनेका वर्णन नहीं है।

दूसरा कर्तव्य था अग्रिमें आहुति

देना। यह बात निश्चयपूर्वक सिद्ध है
कि प्रत्येक श्रार्य वर्णवाला मनुष्य अपने
घरमें श्रिप्त स्थापित रखता था। द्रोण पर्वके दश्वें श्रध्यायमें युधिष्ठिरका जो वर्णन
किया गया है, उसे हम पहले दिखला ही
चुके हैं। युधिष्ठिर तड़के उठकर स्नान
करके सन्ध्या कर श्रीर फिर यश्शालामें
जाकर श्रिप्तमें श्राज्याहुतिके साथ समिधा,
वैदिक मन्त्र पढ़कर, वश करनेको
नहीं भूले।

समिद्धिश्च पवित्राभिरग्निमाहुतिभिस्तदा। मन्त्रपूताभिरचित्वा निश्चकाम ततो गृहात्॥

इस वर्णसे देख पड़ता है कि स्वयं होम करनेकी आवश्यकता थी और यह होम सादी समिधा तथा आज्यादुतिका होता था। इस काममें बहुत समय न लगता होगा। इसी तरह उद्योग पर्वके देश अध्यायमें जब श्रीकृष्ण हस्तिना-पुरको जानेके लिए चले, तब वर्णन है। कृत्वा पौर्वािगहकं कृत्यं स्नातः शुचिरलंकृतः। उपतस्थे विवस्तन्तं पावकं च जनार्द्नः॥

त्रर्थात् सूर्य श्रोर श्रक्तिकी उपासना— यानी उपस्थान एवं श्राहति दोनों काम भारती युद्ध-कालमें प्रत्येक आर्यको करने पड़ते थे। सायंकालमें, सूर्यके श्रस्त होते समय, सन्ध्या-वन्दन श्रौर होम करना पड़ता था। वाल्मीकिने रामायणमें राम-के सम्बन्धमें ऐसा ही वर्णन किया है। विश्वामित्रके साथ जाते हुए श्रथवा वन-वासमें जाने पर जहाँ जहाँ प्रभात श्रीर सन्ध्या हुई, वहाँ वहाँ राम श्रीर लच्म एके सन्ध्या करनेका वर्णन छूटने नहीं पाया। ब्राह्मणों श्रीर चत्रियोंकी भाँति वैश्य भी प्रातः श्रौर सायंकाल सन्ध्या एवं होम किया करते थे। भारती धर्मका यही मुख्य पाया है। ऐसा देख पड़ता कि वह महाभारत कालमें ब्राह्मणोंके बीच श्राधा-तीहा रह गया होगा और श्रव तो यह

कहनेमें भी शङ्का ही है कि ब्राह्मणीमें उसका सोलहवाँ अंश कदाचित् रह गया होगा।

लिखा है कि श्रीमु ज्यार युधिष्ठिरने सन्ध्या एवं होम करके ब्राह्मणोंको दान दिया श्रीर कुछ मङ्गल पदार्थोंका श्रव लोकन करके उन्हें छूनेका भी वर्णन है। मङ्गल पदार्थोंमें गायकी पूँछ छूनेका उन्ने है। इससे देख पड़ता है कि यह सम्प्रदाय प्राचीन कालसे है। यह नहीं कहा जा सकता कि यह वर्णन महाभारत कालका ही होगा।

नित्यके होमके श्रातिरिक्त नैमित्तिक श्रथवा श्रधिक पुण्यप्रद समभकर ज्ञिय श्रोर ब्राह्मण लोग प्राचीन कालमें श्रनेक वैदिक यज्ञ करते थे। इन यज्ञोंमें खर्च श्रोर मंभटें वहुत श्रधिक रहती थीं श्रोर इनके करनेमें समय भी वहुत लगता था। महाभारतमें इनके श्रनेक नाम श्राये हैं। श्रथ्यमध्यके सिवा पुण्डरीक, गवामयन, श्रातिरात्र, वाजपेय, श्राग्निजित्, श्रोर वृह्र-स्पतिसव श्रादि नाम पाये जाते हैं। उनका वर्णन करनेकी श्रावश्यकता नहीं।

मृतिपूजा।

यह बात निर्विवाद है कि इस वर्णन-में कहीं मूर्तिपूजाका वर्णन नहीं है। युधिष्ठिरकी यद्यपि श्रीकृष्ण त्रथवा श्राहिक कियाश्रोंका वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है, तथापि उसमें किसी श्रथवा पाषास-देवताकी धातुमयी मयी मूर्तिके पूजे जानेका वर्णन नहीं है। उस समय यदि लोगोंकी श्राहिक क्रियामें देवताश्रोंकी पूजाका समावेश हुआ रहता, तो उस विषयका उन्नेस इस वर्णनमें अवश्य आया होता। इससे निश्चयपूर्वक अनुमान होता है कि भारती बुद्धकालमें और महाभारतकाल पर्वन

ब्रायोंके ब्राहिक-धर्ममें किसी प्रकारके द्वताकी पूजा समाविष्ट न हुई थी। किसी घरमें देवताकी मूर्ति रखकर उसकी पूजा शुरू न हुई थी। मिन्न मिन्न गृह्यस्त्रोंमें भी देवताश्रोंकी पूजाकी विधि तहीं बतलाई गई है। इससे यह बात तिर्विवाद है कि देवपूजाकी श्राहिक विधि महाभारतकालके पश्चात् अनेक वर्षीमें उत्पन्न हुई है। सूर्ति-पूजाका उद्गम भरत-खग्डमें कवसे हुआ, यह प्रश्न अत्यन्त महत्वका और गूढ़ है। कुछ लोगोंकी धारणा है कि बौद्ध धर्मका प्रचार होनेके पश्चात् मूर्तिपूजा चल पड़ी । देखना बाहिए कि बुद्धका मरण हो जाने पर उनकी मूर्तियाँ कितनी जल्दी बनने लगीं। बौद्ध धर्ममें अन्य देवता नष्ट हो गये थे श्रीर सभी देवताश्रोंका सफाया हो चुका था। श्रागे श्रज्ञानी लोगोंने बुद्धको ही देवता मानकर उनकी छोटी बड़ी प्रतिमाएँ गढ़ना शुरू कर दिया। इस कारण एक समय हिन्दुस्थानमें वुद्धकी इतनी श्रधिक मृर्तियाँ प्रचलित हुई कि जहाँ देखो, वहीं वुद्धकी मूर्तियाँ श्रोर मन्दिर देख पड़ते थे। रुद्ध धर्म बाहरी देशोंमें भी फैला था, इस कारण वहाँ भी बौद्धोंके अनेक मन्दिर श्रीर बुद्धकी हजारों प्रतिमाएँ हो गई थीं। जिस समय मुसलमानी मजहब फैला, उस समय मुसलमानोंने मूर्तियाँ तोड़ना युरू कर दिया। उनके इस हमलेमें पहले सहज ही हिन्दुस्थानके बाहरी देशोंमें बने इए हजारों बौद्ध मन्दिरोंकी मूर्तियाँ तहस-नहस की गई। इसी तरह मुसलमानी भाषा यानी अरबी-फारसीमें वुध (बुत) शब्द सूर्तिके अर्थमें प्रचलित हो गया। मुसलमानीने बुध (वुत) शिकन् और बुध (इत) परस्त, ये दो भेद कर दिये—अर्थात् मृति तोड़नेवाले और मृति पूजनेवाले। सि साहचर्यसे बोजधर्म और मृर्ति-

पूजाका श्रद्भट सम्बन्ध हो गया। परन्तु शुक्त शुक्तमें वौद्ध-धर्ममें मृर्ति न रही होगी; क्योंकि देवता तो सभी नष्टप्राय हो गये थे श्रौर श्रवतक बुद्धकी मृर्ति न थी। वुद्धकी देहके अवशिष्ट केश, नख, हिंडुयाँ श्रादि जो जिसे मिला, उसने वही लेकर उसपर पत्थरोंको ढेरी बनाई श्रोर उसकी पूजा प्रारम्भमें शुरू हुई। महाभारतमें ऐसे स्थानोंको 'एडूक' संज्ञा दी है। एडूक शब्द श्रस्थिके श्रपभ्रंशसे निकला हुश्रा मालूम पड़ता है। एडूकका अर्थ टीकाकारने अस्थि-गर्भ-रचना विशेष किया है। महाभारतके वनपर्वमें जो यह वर्णन है कि कलियुगमें लोग एड्रक पूजने लगेंगे वह इन बौद्धोंके ही पूजावर्णनके उद्देश्यसे है। सारांश, यह श्रनमान नहीं किया जा सकता कि महा-भारत-कालमें अर्थात् सौतिके समय हिन्द-स्थानमें बुद्धकी मूर्तियोंके मन्दिर बहुतसे हो गये होंगे। परन्तु महाभारतमें मन्दिरों-का श्रीर मन्दिरोंमें स्थित मूर्तियोंका वर्णन बहुत मिलता है। यह बात सच है कि मूल वैदिक धर्ममें मन्दिरों अथवा मूर्तियोंका माहात्म्य न था श्रौर न लोगोंके नित्यके धार्मिक कृत्यमें मूर्तिका समावेश था । महाभारतमें सौतिने जो नवीन अध्याय जोड़े हैं उनमें मूर्तियों और मन्दिरोंका वर्णन है। उदाहरणार्थ, भीषा पर्वके प्रारम्भमें दुश्चिह-कथनके अध्यायमें मन्दिरों श्रोर देव-प्रतिमाश्रोंका वर्णन है। देवताप्रतिमाश्चेव, कम्पन्तिच हसन्तिच। वमन्ति रुधिरंचास्यैः खिद्यन्ति प्रपतन्तिच॥ "देवतात्रोंकी प्रतिमाएँ काँपती हैं, हँसती हैं, मुखसे रुधिर वमन करती हैं, देहसे पसीना डाल रही हैं श्रथवा गिरती हैं।" पत्थरकी प्रतिमाका ऐसे ऐसे काम करना वुरा लच्ण समभा जाता था। द्वारकामें भी यादवोंके नाशके समय ऐसे दुश्चिह होनेका वर्णन है। अर्थात् यह बात निर्वि- वाद है कि सार्वजनिक मन्दिर थे जिनमें प्रतिमा पूजी जाती थी। यह कहना ठीक नहीं जँचता कि ये मृर्तियाँ वौद्धोंसे ली गई हैं। हिन्दूधर्ममें महाभारतके समय मृर्तियाँ प्रचलित थीं श्रीर वे शिव, विष्णु श्रीर स्कन्द श्रादि देवताश्रोंकी भक्तिसे शुरू हुई थीं। महाभारतसे ही देख पड़ता है कि शिव, विष्णु और स्कन्द आदिकी भक्ति महाभारतकालमें बहुत प्रचलित थी। इसी तरह पाणिनिके सूत्रसे भी निश्चयपूर्वक ज्ञात होता है कि इन देवता-श्रोंकी मृर्तियाँ महाभारतके पहलेसे ही प्रचलित रही होंगी। पाणिनिके सूत्रोंका समय युद्धके अनन्तरका अथवा पूर्वका माना जाय तो भी यह निर्विवाद है कि उस समय शिव, विष्णु श्रीर स्कन्दकी मृतियाँ होंगी। यद्यपि मन्दिर श्रोर मृतियाँ रही हो तथापि आयोंके आहिक धर्मकृत्यमें श्रवतक देवतात्रोंकी पूजा न थी-यह बात महाभारतसे श्रीर गृह्यसूत्रोंसे भी निश्चित देख पड़ती है। वैदिक देवता कुल ३३ माने गये थे। परन्तु तेंतीस देवताश्रोमेंसे बहुत थोड़ोंकी प्रतिमाएँ वनीं अथवा मन्दिर तैयार हुए।

३३ देवता।

तेतीस देवताश्रोंकी गणना महाभारत-में भिन्न भिन्न है। श्राठ वसु, ग्यारह रुद्र, द्वादश श्रादित्य, इन्द्र श्रीर प्रजापति-ये नाम वृहदारणय उपनिषद्में हैं, श्रीर उसी-में कहा है कि वैसे देवता तो श्रनन्त हैं, यह उनकी एक महिमा है।

महिमान एवैषां एते त्रयस्त्रिंशत्वेव देवाः इति । कतमेते त्रयस्त्रिंशत् इत्यष्टी धसव एकादश रुद्रा द्वादश श्रादित्यः ते एक त्रिंशत् इन्द्रश्चेव प्रजापतिश्च । त्रयस्त्रिशाइति ॥

ं इसके श्रागे वृहदारएयक उपनिषद्-में इस प्रकार वर्णन किया है कि देवता

तीन ही हैं, दो ही हैं और एक ही हैं। महाभारतमें, श्रुनुशासन पर्वे १५० वें श्रध्ययनमें तेंतीस देवताओं की गिनती इस प्रकार वतलाई है-आ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य और दो अध्वन्। ग्यारह रुद्र ये हैं- १ अजैक पाद, २ श्रहिर्वुध्न्य, ३ पिनाकी, ४ अप राजित, ५ ऋत, ६ पितृरूप, ७ त्र्यंवक, = महेश्वर, ६ वृषाकिप, १० शम्भु, और ११ हवन । बारह स्त्रादित्य ये हैं-१ श्रंश २ भग, ३ मित्र, ४ वरुण, ५ धाता, ६ श्रर्यमा, ७ जयन्त, = भास्कर, ६ लण् १० ऊशन, ११ इन्द्र और १२ विष्णु। श्राठ वसु इस प्रकार हैं—१ धरा, २ धुव, ३ सोम, उसवित ५ श्रानिल, ६ श्रनल, ७ प्रत्यूष, श्रीर म प्रभास । दोनों श्रिश्वन नासत्य और दस्र हैं। नहीं कह सकते कि इस प्रकारकी गणना कवसे शुरू हुई। परन्तु इसमें बहुत करके सभी वैदिक देवता श्रा जाते हैं। श्रचरजकी बात यह है कि वरुण, इन्द्र और विष्णु इन विशेष देवतात्रोंका समावेश त्रादित्योंमें किया गया है। अदितिके पुत्र ही आदित्य है। अर्थात् अधिकांश देवता आदित्य ही है। परन्तु इसमें प्रजापतिका अन्तर्भाव कहीं नहीं किया गया। वसु बहुत करकेपृथ्वी के देवता हैं। धरा, वायु श्रीर श्रग्नि तो स्पष्ट ही हैं। प्रत्यूषका अर्थ सवेरा है। इसीमें वैदिक देवता उषाका समावेश किया हुन्ना देख पड़ता है। परन्तु यह श्रचरजकी बात है कि सवित श्रथवी सूर्यकी गणना वसुत्रोंमें भी करके त्रादि त्योंमें भी किस तरह की जाती है। हर्द्रोंक बहुतेरे नाम श्राजकल महादेवके नाम है। सिर्फ वृषाकपि नाम विष्णुका हो गया देख पड़ता है। वसु, रुद्र और ब्रादिस्य वे वेयतास्रोंके भेद हैं। यह कल्पना वैदिक कालसे लेकर महाभारतकाल पर्यन्त बली

ब्राई है और श्राजकल भी वैदिक कियामें, विशेषतः श्राद्धके समय, प्रचलित है। शिव श्रीर विष्णु।

भारती-कालमें इन वैदिक देवताओं में-में शिव श्रीर विष्णुके ही सम्बन्धसे तत्त्व-बानके दो पन्थ भी उपस्थित हुए, जिनकी संज्ञा पाञ्चरात्र श्रोर पाशुपत है। इन्हीं हो देवताश्रोंके सहस्रनाम महाभारतमें हिये गये हैं। इससे देख पड़ता है कि महाभारतके समय इनका महत्त्व पूर्णतया प्रशापित हो गया था। ब्राह्मण-कालमें भी यह तत्व स्थापित हो गया था कि विष्णु देवताश्रोंमें श्रेष्ठ है। 'श्रश्निवें देवानामवमो विष्णुः प्रथमः ।' इस वाक्यसे स्पष्ट देख पडता है कि श्रक्षि सब देवताश्रोंमें छोटा ग्रीर विष्णु श्रेष्ठ है। वैदिक देवताश्रोंमें ाद सबसे श्रेष्ठ है; पर यह ब्राह्मण-काल-में और भारती-कालमें कैसे पीछे रह गया, सिका श्रचरज होता है। तथापि, बुद्धके समय भी इंद्रका बहुत कुछ महत्व थाः चौंकि बौद्ध ग्रन्थोंमें इन्द्रका उल्लेख बारं-गर किया गया है, वैसा शिव-बिष्णुका नहीं है। महाभारत-कालमें शिव श्रीर विष्णुका, देवताश्रोंके वीच श्रयणी होनेका जो पूज्य भाव उत्पन्न हो गया वह श्रवतक श्विर है। कुछ लोग समस्त देवताश्रीमें शिवको मुख्य मानते थे, कुछ लोग विष्णु-को मुख्य मानते थे। जिस ईश्वरकी बल्पना अग्वेद-कालसे स्थापित हुई थी, अथवा जिस एक परब्रह्मका वर्णन उप-निषदोंने श्रत्यन्त उदात्त किया है, उस ध्वर या परब्रह्ममें कुछ लोगोंने विष्णुकी षापना की, तो कुछने उसमें शिवकी थापना की। शिव श्रीर विष्णुके मतका विरोध महाभारत-कालमें खासा देख पड़ता है। पाठक देख ही चुके हैं कि इस विरोधका उद्गम उपनिषत्कालमें ही है। कटोपनिषद्में परब्रह्मके साथ विष्णुका

तादात्म्य करके 'तद्विष्णोः परमं पदम् कहा गया है। अर्थात् ब्राह्मण-कालकी ही भाँति दशोपनिषत्कालमें भी विष्णु समस्त देव-ताश्रोमें श्रेष्ठ माने जाते थे। इसके श्रनन्तर श्रीकृष्णकी भक्ति उत्पन्न हुई श्रौर यह भाव सहज ही उत्पन्न हो गया कि श्रीकृष्णजी, विष्णुके त्रवतार हैं। विष्णु-के चार हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म आयुध हैं । यह कल्पना महा-भारत-कालमें पूर्णतया प्रचलित थी और इसी तरह महाभारतमें वर्णन है। इस मतके अनुसार श्रीकृष्णके भी चार हाथ हैं श्रोर उनमें शंख, चक्र,गदा, पद्म श्रायुध दिये गये हैं। उस समय विष्णुकी मूर्तिका ऐसा ही खरूप वनाया गया। श्रव, इसके पश्चात्, श्वेताश्वतर उपनिषद्में शिवको प्राधान्य दिया हुआ पाया जाता है। इस उपनिषद्में वर्णन है कि परव्रह्म ही शिव है। तत्वज्ञानके विषयमें पहले यह विरोध उत्पन्न हुन्रा श्रौर यही शिव-विष्णुकी उपासनामें भगड़ेकी जड़ हो गया। महा-भारतसे यह बात देख पड़ती है। शिवके जिन खरूपोंकी कल्पना की गई है वे दो प्रकारके हैं। शिवका प्रधान खरूप योगी श्रथवा तपस्वी किएत है। उसका रङ्ग गोरा है, सिर पर जटाएँ हैं श्रीर व्याघा-म्बरको श्रोढ़े हुए दिगम्बर है। जो दूसरा स्वरूप वर्णित है श्रीर जो महाभारतमें भी पाया जाता है वह लिङ्ग-सरूप है। महा-भारतमें वतलाया गया है कि शिवके अन्य खरूपोंकी पूजाकी श्रपेचा लिङ्ग-खरूपसे शिवकी पूजा करना अधिक महत्वका श्रीर विशेष फलवान है । द्रोण-पर्वके २०२रे ऋध्यायमें यह लिखा है-प्जयेत्वित्रहं यस्तु लिङ्गंचापि महात्मनः। लिङ्गे पूजयिताचैव महतीं श्रियमश्रुते ॥ महाभारतमें, सौप्तिक पर्वके १७वें अध्यायमें, इस विषयका आख्यान है कि लिङ्ग-पूजाका श्रारम्भ किस तरह हुश्रा। एक बार ब्रह्मदेवने शङ्करका दर्शन करके उनसे कहा कि श्राप प्रजा उत्पन्न करें। परन्तु भूतमात्रको दोषोंसे परिपूर्ण देख शक्रर पानीमें डुवकी लगाकर तप करने लगे। उस समय ब्रह्मदेवने दसरे प्रजापति वत्त इत्यादिको उत्पन्न करके सृष्टिका उपजाना श्रारम्भ कर दिया। शङ्करने जब पानीके ऊपर श्राकर सृष्टि देखी, तो उन्होंने क्रोधसे अपना लिङ्ग काट डाला। वह धरतीमें जम गया। इस प्रकार शङ्करके पृथ्वीमें पड़े हुए लिङ्गकी पूजा सब लोग करने लगे। ऐसा माननेके लिए गुंजाइश है कि लिङ्ग-पूजा बहुधा अनार्य लोगोंमें बहुत दिनसे प्रचलित थी, श्रीर श्रायोंने उस पूजाका शङ्करके खरूपमें अपने धर्ममें समावेश कर लिया। तथापि, शङ्करका माहातस्य श्रीर उनका भयद्वर खरूप श्रादि समस्त कल्पनाएँ वैदिक हैं। दोनों कल्प-नाश्चोंका मेल एक स्थान पर उत्तम रीतिसे मिलाया गया है श्रीर श्रायों तथा अनायों-का एकत्र मेल किया गया है। शिवकी लिङ्गपूजा महाभारत-कालके पहलेसे ही प्रचलित है श्रीर वेदान्तिक तत्वज्ञानकी भाँति शिव एवं विष्णुका परब्रह्मके साथ मेल मिला दिया गया है। भारती आयों के धर्मका यह उदात्त तत्व बहुत प्राचीन समयसे है कि 'सभी देवता एक परमेश्वर-के सहत हैं'; श्रौर तदनुसार शिव एवं विष्णु दोनोंका मिलाप परब्रह्मके साथ किया गया है।

शिव-विष्णु-भक्ति-विरोध-परिहार।

फिर भी यह खीकार करना पड़ेगा कि शिव श्रौर विष्णुकी भक्तिका विरोध बहुत प्राचीन कालसे हैं; श्रौर महाभारत-ने, सान स्थान पर, इस विरोधके परिहार

करनेका स्तुत्य प्रयत्न किया है। यह बात पहले भी लिखी जा चुकी है। कहना चाहिए कि महाभारतका यह एक श्रत्यन प्रशस्त कार्य है श्रीर सब मतींके वीच श्रविरोध स्थापित करनेका श्रेय महाभारत को ही है। महाभारतमें शिव और विष्णु दोनोंकी स्तुति एकसी की गई है। सौति ने विशेषतया इस युक्तिसे काम लिया है कि शङ्करकी स्तुति विष्णु श्रथवा श्रीकृषा के मुखसे कराई है श्रीर विष्णुकी स्तुति शङ्करके मुखसे करा दी गई है। द्रोण-पर्वः में वर्णन है कि जब अश्वत्थामाने द्रोण वधके अनन्तर अग्न्यस्त्रका उपयोग किया तव पांडवोंकी एक अज्ञौहिणी सेना जल गई । परन्तु अर्जुन और श्रीकृषा दोनों ही श्रब्रुते श्रीर सुरिचत बाहर निकल श्राये । उस समय श्रश्वत्थामाको श्रतीव श्राश्चर्य हुश्रा। इस विषयमें व्यास-जीसे प्रश्न किया। तब, व्यासने शङ्करकी स्तृति करके कहा कि श्रीकृष्णने गङ्गरकी श्राराधना करके ऐसा वरदान प्राप्त कर लिया है कि, 'हमारी मृत्यु किसी श्रुखसे न हो। 'इसी तरह द्रोणपर्वमें यह भीवर्णन है कि जिस दिन श्रर्जनने जयद्रथका वध किया, उस दिन श्रर्जुनके श्रागे खयं शिव दौड़ते थे और श्रज्जनके रात्रुश्रोंका निपात कर रहे थे। यह बात व्यासजीने श्रर्जुनसे कही है। नारायणीय आख्यानमें तो नारा यणने स्पष्ट कह दिया है कि शिव और विष्णु एक ही हैं, उन्हें जो भिन्नतासे देखे वह दोनोंमेंसे किसीका नहीं है। इससे प्रकट है कि शिव विष्णुका भगड़ा बहुत पुराना है उसे हटा देनेका प्रशंसनीय प्रयत महा भारत-कारने किया है।

रत्ता करनेवाली परमेश्वरकी शिक्त श्रिव हैं श्रिधिष्ठाता देव विष्णु हैं श्रीर शिव हैं परमेश्वरकी संहार-शक्तिके श्रिधिष्ठाती देव। यह कल्पना स्पष्ट देख पड़ती है कि महाभारतमें जहाँ जहाँ मनुष्योंका भयद्भर संहार हुआ है, वहीं पर शिवका वर्णन आया है। उदाहरणार्थ;—अश्व-श्वामाने रातको हमला करके जव हजारों प्राणियोंका संहार किया, उस समय शिविरमें घुसनेके पूर्व उसने, आराध्या करके शङ्करको सन्तुष्ट कर लिया था। इसी प्रकार, जगत्की रचा करनेके लिए विष्णुकी पूजा होनेका उज्लेख पाया जाता है। महाभारतमें वर्णन है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों देवता जगत्की तीन कामों—उत्पत्ति, पालन और नाश—पर नियत हैं। इन तीनोंका एकीकरण परब्रह्ममें किया गया है।

यो सजद्विणाद्कात् ब्रह्माणं लोक-सम्भवम् । वामाङ्काच तथा विष्णुं लोक-रह्मार्थमीश्वरम् ॥ युगान्ते चैव सम्प्राप्ते रद्मार्थोऽस्जत्मभुः ॥

(अनुशासन अ० १४)

इस श्रध्यायमें श्रीकृष्णने उपमन्युका श्राख्यान कहते हुए उपमन्युके मुखसे श्रक्क जो स्तृति कराई है उसमें उल्लिखित वर्णन श्राया है। यहाँ पर शङ्करको मुख्य देवता मान लिया है। इसमें परब्रह्मके तीन स्वरूपोंका वर्णन है। श्रधीत इसमें त्रिमूर्तिकी कल्पना यों की गई है कि मध्यभागमें शङ्कर, उनके दाहने श्रोर ब्रह्मा श्रीर वाएँ श्रोर विष्णु हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि यह कल्पना सदैव ऐसी ही की हुई होती है श्रधवा नहीं; परन्तु त्रिमूर्ति बहुधा शङ्करकी मूर्ति मानी जाती है श्रीर बीचमें शङ्कर होना चाहिए।

द्तात्रेय।

इन तीनों देवताश्रोंका समावेश एक देवतामें श्रर्थात् दत्तात्रेयमें होता है। इस देवताका वर्णन महाभारतमें दो स्थानों पर है। वनपर्वके ११५वें श्रध्यायमें कहा गया है कि सहस्रार्जुनको दत्तात्रेयके प्रसादसे एक विमान प्राप्त हुन्ना था। दत्तात्रेय प्रसादेन विमानं काञ्चनं प्रथा। ऐश्वर्यं सर्वभूतेषु पृथिव्यां पृथिवीपते॥

शान्तिपर्वके ४६ वें श्रध्यायमें यही कथा दुवारा कही गई है। इसके श्रति-रिक्त श्रनुशासन पर्वके ६१ वें श्रध्यायमें वर्णन किया गया है कि दत्तात्रेय श्रतिके पुत्र हैं। परन्तु महाभारतमें दत्तात्रेयके जन्मकी कथा नहीं है। दत्तात्रेय देवता वैदिक न हो तो भी ब्रह्मा, विष्णु श्रीर महेश इन तीन वैदिक देवता मानने-में कोई त्ति नहीं।

स्कन्द् ।

महाभारतमें स्कन्द देवताका बहुत कुछ वर्णन है। स्कन्द देवता भी वैदिक नहीं है। यह देवता शिवकी संहार-शक्ति-का अधिष्ठाता है और देवताओं की समुची सेनाका सेनानायक है। स्कन्द, शिवका पुत्र है। श्राजकलकी श्रपेचा महाभारत-कालमें स्कन्दकी भक्ति दिशेष देख पडती है। स्कन्दका वर्णन श्रीर उसकी उत्पत्ति महाभारतमें दो स्थानों पर-वनपर्वके २३२ वें श्रध्यायमें श्रीर श्रनशासन पर्वके दथ-दपूर्वे श्रध्यायमें हैं। स्कन्दकी उत्पत्ति-के सम्बन्धमें कालिदासने 'कुमारसम्भव' महाकाव्य बनाया है। उसमें वैसा ही वर्णन है जैसा कि अनुशासन पर्वमें है। वनपर्वमें किया हुआ वर्णन वहुत कुछ भिन्न है। उसमें लिखा है कि स्कन्द शिव श्रीर पार्वतीका पुत्र नहीं, श्रश्निका पुत्र है। सप्त महर्षियोंकी पितयोंको देखकर श्रिशिको काम-वासना हुई। तब वह सब काम छोड़कर चिन्तामग्न हो गया। उस समय श्रक्तिकी पत्नी खाहाने प्रत्येक म्मविकी पत्नी—अर्थात् अरुन्धतीको छोड़-कर छः पित्तयों के-श्रतग श्रतग कप.

भिन्न भिन्न समयोंमें, धारण कर श्रक्तिकी काम-शान्ति कर दी। इस कारण खाहाके यह पुत्र हुआ श्रीर उसका नाम 'षाएमा-तुर'--छः माताश्रोवाला--हुशा। यह श्रप्ति-का पुत्र होने पर भी रुद्रका माना गया है, क्योंकि श्रमिका अर्थ रुद्र ही है। खाहाने यह पुत्र, पालनके लिए, कृत्तिकात्रोंको सौंप दिया। कृत्तिकाश्रोंने इसका पालन किया था, अतएव इसका नाम कार्त्तिकेय हो गया। इन्द्रने इसे अपनी सेनाका नायक बनाया श्रौर इसने इन्द्रके शत्रु तारका-सुरका नाश किया। स्कन्दकी इस उत्पत्ति-कथाका सक्रप वैदिक है श्रीर इसी कथा-का रूपान्तर श्रनुशासन पर्ववाली कथामें हुआ है। स्कन्दकी सेनामें हजारों रोग भी थे। विशेषतया मातृ नामक उन देवताश्रोंका श्रधिक महत्त्व है जो छोटे बर्धोको १६ वर्षकी अवस्था होनेके पहले ही खा लेती हैं। इस कारण, स्कन्द श्रीर मातृदेवताश्रोंकी पूजा करना प्रत्येक माताका साहजिक, महत्त्वपूर्ण चिन्ताका कर्तव्य हो गया । भारतमे स्कन्दके नामोंकी तालिका है, श्रीर इन नामोंसे उसकी स्तृति करनेकी फलश्रति भी बतलाई गई है। स्कन्दको प्रत्येक महीनेके शुक्क पत्तकी पश्चमी श्रीर षष्टी तिथि श्रधिक प्रिय श्रौर पवित्र है: क्योंकि शुक्र पत्तकी पञ्चमीको उसे देवताश्रोंके सेनापतिका अधिकार मिला था। श्रीर श्रुक्क पत्तकी षष्टीको उसने श्रसुरोका परा-भव किया था। स्कन्दकी भक्ति करना मानों भिन्न भिन्न भयपद देवतात्रोंकी भक्ति करना है। क्योंकि स्कन्द सभी मारक शक्तियोंका अधिपति माना गया है। माता, ब्रह, परिषद् आदि शङ्करके भूतगण ही स्कन्दकी सेनामें हैं। महा-भारतमें इन प्रहोंके भिन्न भिन्न भयद्वर रूप भी वर्णित हैं। विशेषतया यह समभा

जाता है कि ये गण छोटे वश्रोंका संहार करते हैं; इस कारण स्कन्दकी पूजा नीची श्रेणीके लोगोंमें और अज्ञ स्नी-पुरुपोंमें श्रिधिक होती होगी।

महाभारतमें स्कन्दके पश्चात् पूज्य दुर्गा देवी है। यह भी मारक शक्ति ही है। शक्ति श्रथवा दुर्गाकी भक्ति महा-भारतकालमें खूब की जाती थी। महा-भारतमें दुर्गाकी भक्तिका समावेश करने-के लिए सौतिने, भारती युद्ध शुरू होनेके पहले, दुर्गाकी भक्तिका उल्लेख किया है। हम लिख चुके हैं कि वह उल्लेख जुरा श्रप्रासङ्गिक है। यहाँ पर दुर्गाका सार्ग करके उसके स्तोत्रका पाठ करनेकी श्राज्ञा श्रीकृष्णने श्रर्जुनको दी है। तद्नुसार दुर्गाका स्तोत्र (भीष्म० अ०३३) दिया गया है। दुर्गाका सम्बन्ध शङ्करसे है तथापि दुर्गा संहारकी स्वतन्त्र देवी है। इस स्तोत्रमें दुर्गाके पराक्रमका दिग्दर्शन बहुत कुछ कराया है, जैसा कि स्कल-पुराणमें वर्णित है। इसी प्रकार यहाँ पर विनध्यवासिनी देवीका भी उल्लेख हैं: श्रीर श्री तथा सरस्वतीका दुर्गाके साथ एकताका भाव दिखलाया गया है।

विराटपर्वके आरम्भमं भी दुर्गाका स्तोत्र है। उसमें दुर्गाको विन्ध्यवासिनी और महिषासुर-मिर्दिनी भी कहा गया है। उसके लिए काली, महाकाली और सुरा-मांस-प्रिया भी सम्बोधन हैं। इसे यशोदाके पेटसे जन्म लेकर कंसकी मारनेवाली और पत्थर पर पछाड़ते हुए कंसके हाथसे निकली हुई श्रीकृष्णकी बहन भी कहा गया है। अर्थात् हरिवंश की कथा और अन्य पुराणोंमें विर्तित महिषासुर आदिकी कथाका यहाँ पर उन्नेख है। इससे स्पष्ट देख पड़ता है कि कथाएँ महाभारत कालीन हैं।

यहाँतक जो विवेचन किया गया है. उसका सारांश यह है कि भारती युद्ध-कालमें भारती आयोंका धर्म केवल वेद-विहित था, तो महाभारत-कालमें इस धर्ममें वैदिक देवतात्रोंके सिवा श्रोर भी कुछ देवता समाविष्ट हो गये; श्रौर वैदिक देवतात्रोंमें भी इन्द्र पीछे पड़ गये श्रीर शिव श्रोर विष्णुकी भक्ति पूर्णतया स्थापित हो गई। भारती-युद्धसे लेकर महाभारत-काल पर्यन्त जो ढाई तीन हजार वर्ष बीते, उतनी श्रविधमें भारती धर्मका रूपा-लर हो जाना श्रपरिहार्य था। वैदिक कालमें ईश-भक्तिकी विशेष किया सन्ध्या श्रीर यज्ञ थे। वेदाध्ययन श्रीर यजन तीनीं वर्णोंमें जीवित श्रोर जागृत थे, परन्त भारती-कालमें आर्थी और अनार्थीके समाजमें एवं धर्ममें पूर्णतया मिश्रण होकर जो धर्म स्थिर हुन्ना उसमें यद्यपि ब्राह्मणोंमें वेटाध्ययन श्रीर श्रमिहोत्र बने रहे थे तथापि श्रन्य वर्णोमें शिव, विष्णु, स्कन्द श्रीर दुर्गाकी पूजा एवं भक्ति विशेष रूपसे प्रचलित हो गई। इसके श्रतिरिक्त, इसी समय इन देवतात्रोंकी प्रतिमाएँ श्रीर इनके लिए मन्दिर वने। श्रज्ञ लोगोंमें निरे भूत-पिशाचोंकी ही भक्ति, स्कन्दके साथ अस्तित्वमें आ गई थी। और यह भी प्रकट है कि बौद्धोंके एडकोंकी पृजा-का निषेध किया गया है। श्रब हम सना-तन धर्मकी अन्य बातोंके सम्बन्धमें विचार करेंगे।

श्राद्ध।

THE BUILD

सनातन धर्मकी एक महत्वपूर्ण बात श्राद्ध है। समस्त श्रार्य शाखात्रोंके इति-हासमें पितरोंकी पूजा पाई जाती है। शाचीन कालमें यूनानियों श्रोर रोमन लोगोंमें भी पितरोंका श्राद्ध करनेकी रीति थी। भारती आर्योंकी श्राद्ध-विधिका उल्लेख महाभारतमें अनेक खलों पर हुआ है। विशेषतया अनुशासन पर्वमें श्राद्ध-विधिका वर्णन विस्तारके साथ है। इसमें वर्णन करनेकी मुख्य बात यह है कि श्राद्ध-में पितरोंके बदले जिन ब्राह्मणोंको भोजन कराया जाय वे वेदमें विद्वान् हों, इस बात पर वहुत ज़ोर दिया गया है। वेद-विद्या-को स्थिर रखनेके लिए भारती श्रायोंने जो नियम बनाये, उनमें यह नियम बहुत ही महत्व-पूर्ण है श्रीर इसका पालन लोग अबतक करते हैं। इससे वेद-विद्याकी उत्तेजन मिला और निदान कुछ ब्राह्मणीं-में वह अवतक स्थिर है। आदमें जो ब्राह्मण न्यौते जाते थे वे चाहे जैसे न होते थे। देवताश्रोंकी पूजाके सम्बन्धमें चाहे जैसा ब्राह्मण न्यौता जा सकता था। परन्तु श्राद्धमें विद्वान् ब्राह्मणको, श्रीर उसमें भी शुद्ध त्राचरणवाले ब्राह्मणको, जाँच करके, न्योता देनेका नियम था। इस नियमका तात्पर्य यह देख पडता है कि भारती आर्योंको अपने पूर्वजीका भली भाँति सारण था। भारती आयोंके पूर्वज श्रथवा पितर वेद-विद्याके ज्ञाता थे श्रौर उनका श्राचरण शुद्ध था; इसलिए उनके स्थान पर अज्ञान, दुर्वृत्त अथवा दुरा पेशा या कार्य करनेवाले ब्राह्मणोंको भोजन कराना निन्द्य समका जाता था।स्मृतियों-में एक सुची है कि श्राद्धमें ऐसे ऐसे ब्राह्मण वर्ज्य हैं। ऐसी ही सूची महाभारतमें भी है। वह सूची देखने लायक है। उसके दो-एक श्रोक ये हैं:-

राजपौरुषिके विप्रे घांटिके परिचारिके।
गोरक्तके वाणिजके तथा कारुकुशीलवे॥
मित्रदृद्धनधीयाने यश्च स्थात् वृषलीपतिः।
पतेषु दैवं पैत्र्यं वा न देयं स्थात्कदाचन॥
(श्रुनुशासन पर्व १२६)

जो बाह्यण सरकारी नौकरी करते हैं, सीर्थों के चाटों पर चैठते हैं, परि- चर्याका काम करते हैं, गौएँ पालते हैं, बनियेकी दूकान रखते हैं या शिल्पका काम (बढ़ईगीरी) करते हैं, अथवा जो नाटकोंका पेशा करते हैं ऐसे ब्राह्मणोंको, श्रथवा मित्रका द्रोह करनेवालों, वेदोंका श्रभ्यास न करनेवालों तथा ग्रद्धा स्त्रीको गृहिणी बनानेवालोंको दैव अथवा पैत्र्य दोनों कार्योमें ग्रहण न करना चाहिए। यहाँ पर ब्राह्मणोंके पेशोंका जैसा वर्णन किया गया है, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि बहुत कुछ आजकलकी भाँति ही महाभारत-कालमें भी ब्राह्मणोंने श्रपना मुख्य व्यवसाय छोड़कर दूसरे व्यवसाय कर लिये थे। महाभारत-कालमें श्राद्धकी श्रौर एक महत्त्वपूर्ण विश्रि थी वह इस जमानेमें बन्द हो गई। इस विषयमें तबकी श्रोर अबकी परिस्थितिमें जमीन-त्रासमानका श्रन्तर पड़ गया है। महाभारत-कालमें श्राद्धमें मांसात्रकी श्रावश्यकता थी। भिन्न भिन्न मांसोंके भिन्न भिन्न फल मिलनेका वर्णन महा-भारतमें है। अन्यत्र यह बात लिखी जा चुकी है कि प्राचीन समयमें भारती आर्य लोग मांस खाते थे। मांस खानेकी रीति जबसे भारती श्रायोंमें वन्द हुई, तभीसे श्राद्धमें मांसान्नकी श्रावश्यकता नहीं रही। फिर भी इस समय श्राइ-भोजनके लिए जो बड़े (उड़द्की दालके) बनाये जाते हैं, उनसे पता लगता है कि पहले जमानेमें श्राद्ध में मांसान्न परोसा जाता था। महाभारतकालमें मांस ही परोसा जाता था। उस समय श्राइमें, मांसके एवजमें बड़े नहीं बनाये जाते थे।

श्राद्धमें ब्राह्मणोंको भोजन देनेके सिवा, पितरोंके लिए पिएडदान करनेकी विधि भी होती है। महाभारतमें इसका भी उल्लेख विस्तारसे हैं। यहाँ पर लिखने योग्य एक बात यह है कि अनुशासन पर्वके १२५ वें श्रध्यायमें एक रहस्य-धर्म श्रथवा ग्रप्त विधि बतलाई गई है कि पिताको दिया हुआ पहला पिएड पानीमें छोड़ना चाहिए, दूसरे पिएडको श्राद्ध करनेवालेकी खो खाय, श्रोर तीसरे पिएडको श्रिग्नमें जला देना चाहिए। श्राजकल इस विधिको प्रायः कोई नहीं करता। श्रोर तो खा, लोगोंको यह विधि मालूम ही नहीं। इस विधिका रहस्य बहुधा यह होगा कि श्राद्ध करनेवालेकी स्त्री गर्भवती हो श्रोर उसके उदरसे दादा (प्रिपता) जन्म ग्रहण करे। यह तो प्रसिद्ध ही है कि दूसरा पिएड दादाके नामसे दिया जाता है। श्रमावस्या के दिन श्रोर भिन्न भिन्न तिथियों एवं नद्दिमों श्राद्ध करनेकी श्राहा है।

त्रालोकदान और वलिदान।

इस समय, लोगोंको श्राद्धके सम्बन्ध-में बहुतसी बातोंका ज्ञान है: श्रीर श्राज-कल भी-का श्रार्य, का श्रनार्य, का त्रैव-र्णिक श्रीर का शद्र-सभीके यहाँ श्राइ किया जाता है। परन्तु महाभारत कालमें श्रालोकदान श्रीर विलदानकी जो चाल थी, उसकी कल्पना वर्त्तमान समाजमे बहुत थोड़े लोगोंको होगी। श्राजकल ये दोनों विधियाँ प्रायः बन्दसी हो गई है। प्रत्येक गृहस्थको रोज विशेष स्थानी पर दीप रखने पड़ते थे, विशेष स्थान पर भातके पिएड रखने पड़ते थे स्रौर विशेष स्थल पर फूलोंके हार रखने पड़ते थे। यह विधि देव, यत्त श्रौर राज्ञसोंके समाधा^त के लिए करनी पड़ती थी। उदाहरणार्थ; पहाड़ श्रथवा जङ्गलमें धोखेके स्थान पर इसी तरह मन्दिरोंमें और चौराहों पर प्रति दिन आलोक या दीप जलाने पड़ते थे; श्रीर यत्त, रात्तस तथा देवताश्रॉके लिए बलि देने पड़ते थे। ये बलि भिष्न भिष् पदार्थीके होते थे। देवताओं के लिए दूध

और दहीका, यच-रास्मोंके लिए मांस और मद्यका, तथा भूतोंके लिए गुड और तिलका बलि देना पड़ता था। श्राजकल केश्वदेवमें ब्राह्मण लोग जो बलि-हरण करते हैं वह इसीकी एकत्र की हुई एक विधि हैं । परन्तु प्राचीन समयमें यह विधि विस्तृत थी श्रीर प्रत्येक घरमें अपने घरके भिन्न भिन्न भागोंमें एवं घरके ममीपवाले रास्तेमें जाकर विल देने पड़ते थे। महाभारतमें ऐसा ही वर्णन है। मच्छकटिकमें चारदत्त, घरके भिन्न भिन्न भागोंमें बलि देनेके लिए जाता है श्रीर रास्तेमें तथा श्रन्य स्थानोंमें जलते हए दीपक रखता है-इस बातकी उपपत्ति उपरवाले वर्णनसे पाठकोंकी समभभे श्रा जायगी। इस जमानेमें श्रालोक-दान श्रीर दीप-दान प्रायः बन्द हो गया है। परन्त चारुदत्तके समय श्रीर महाभारत-के समय यह विधि प्रत्येक गृहस्थके यहाँ प्रति दिन होती थी। किंवहुना, यह विधि किये विना भोजन करना अधर्म माना जाता था।

दान।

'इज्याध्ययनदानानि तपः' ये जो धार्मिक श्राचरणके चार भाग हैं, इनमें

* ऐसा प्रतीत होता है कि वैश्वदेवकी रीति महा-भारत कालमें बहुत कुछ वैसी ही थो जैसी कि श्राजकल है। श्रनुशासन पर्वके ६७ वें श्रध्यायमें उसका वर्णन वैश्वदेव नामसे ही है। उसी देवताके उदेशसे अग्रिमें श्राहुति देना, घरके भिन्न भिन्न भागोंमें विलहरण करना श्रीर दरवाजे पर

अभ्यक्ष श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद्मुवि ।

जुत्ते श्रादिको बिल देना बतलाया गया है। यह वैश्वदेव सायं प्रातः दोनों समय श्रीर नित्य गृहस्थोंके द्वारा किया जाय। इस समय श्रातिथिको भोजन देनेके लिए भी कहा गया है। सार यह कि उस समय भिन्न भिन्न भागों में विल देनेकी विधि ही श्रिधिक थी श्रीर शेष वैश्वदेव-विधि श्रीकका भागों में में कि हो श्री ही श्री हो श

श्रध्ययन श्रीर इज्याके सम्बन्धमें विस्तृत विचार हो चुका है। अब दान पर विचार करना है। महाभारतके समय धर्मशास्त्र-की इस बात पर कड़ी दृष्टि थी कि प्रत्येक दिन प्रत्येक मनुष्यको कुछ न कुछ दान श्रवश्य करना चाहिए। श्रनुशासन पर्वमें भिन्न भिन्न दानोंका पुराय-फल विस्तारके साथ वर्णित है। विशेषतया सुवर्ण, गाय, तिल श्रीर श्रन्न-दानोंकी स्तुतिसे श्रनु-शासन पर्वके अध्यायके अध्याय भरे पड़े हैं। प्रत्येक दानकी स्तुतिका श्रन्य दानों-की श्रपेचा श्रधिक किया जाना साहजिक हीं है। तथापि गोदानकी स्तुति बहुत ही अधिक की गई है। क्या महाभारतके समय श्रीर क्या इस समय, गाय सदा एकसी उपयोगी देख पडती है। परन्त श्राजकल गायको पालना बहुत कठिन हो जानेके कारण गायका देना श्रोर लेना भी बहुत कुछ कम हो गया है। श्रीर. गोप्रदानकी कीमत सिर्फ सवा रुपया मुकर्रर है: इसलिए, अब प्रत्यच गोदान करनेके अगड़ेमें लोग बहुत कम पडते हैं। परन्तु महाभारत-कालमें गाय रखना बहुत सरल काम था। इसके श्रतिरिक्त, गायें श्रत्यधिक पवित्र मानी जाती थीं। गायको मारना या उसको पैरसे छूना पातक समभा जाता था। गायके गोबर श्रीर मुत्रमें भी श्रधिक श्रारोग्य-शक्ति है. इससे वह पवित्र माना जाता था। यही महाभारत-कालीन धारणा थी।

शकृत्मूत्रे निवस त्वं पुरायमेति नः शुभे। (श्रनुशासन पर्व =२)

इससे गायका दान प्राचीन समयमें श्रत्यन्त प्रशस्त माना जाता था। राजाश्रों श्रीर यज्ञ-कर्ताश्रोंने जो हजारों गायोंके दान किये थे उसकी प्रशंसाका वर्णन उपनिषदोंमें भी है। दुर्भाग्यसे इस समय भरतखग्डमें गायोंके सम्बन्धमें हमारा कर्तव्य बहुत ही विगंड गया है । गाय रसना प्रायः बन्द होगया है। गायके दूधमें बुद्धिमत्ताके जो गुणहैं, उनकी श्रोर ध्यान ही नहीं दिया जाता; श्रौर गायके दूधके बदले भेंसके दूधका चलन बहुत श्रधिक हो गया है। श्रतएव बुद्धिमत्ताके सम्ब-न्धमें इस दूधके परिगाम बहुत ही बुरे श्रोर हानिकारक होते हैं। क्योंकि बुद्धि-मत्ताके सम्बन्धमें इस दूधमें गायके दूध-की श्रपेत्ता बहुत ही थोड़े गुग हैं। गाय-बैलांका पालना घट जानेसे, शुद्धताके सम्बन्धमें गोबर श्रीर गोमृत्रका बहुत कम उपयोग होने लगा है। इस विषयमें सुधार होनेकी आवश्यकता है । प्रत्यच गोदानका जो गौरव महाभारत-कालमें प्रसिद्ध था, वह जिस दिन फिर भारती श्रायोंके ध्यानमें श्रा जाय श्रीर भारतमें गायोंकी समृद्धि हो जाय, वही सुदिन है। महाभारत-कालमें तिल-दान भी बहुत प्रशस्त माना जाता था; क्योंकि तिल पौष्टिक श्रन्न है, श्रीर महाभारतके समय तिल खानेका चलन बहुत ही श्रिधिक था। श्रव तो इसका चलन बहुत ही घट गया है: परन्त महाभारतमें अनुशासन पर्वके कई अध्याय तिल श्रीर तिल-दानकी स्तुति-से भरेपडे हैं। तिल पितरोंको भी प्रिय हैं और श्राद्धकर्ममें पवित्र माने गये हैं। इस कारण भी इनके दानकी वडाई की जाती होगी। सुवर्ण-दान और श्रन्न-दान दोनोंकी जो प्रशंसा महाभारतमें है वह योग्य हो है । विस्तारके साथ उसको लिखनेकी आवश्यकता नहीं। इन दोनों दानोंकी श्रावश्यकता श्रौर महत्त्व इस समय भी कम नहीं। इसके श्रतिरिक्त जो भूमि-दान, कन्या-दान श्रीर वस्त्र-दान प्रभृति दानं वर्णित हैं, उनका पुराय अधिक है ही श्रीर वे सदा सर्वदा श्रवा-धित हैं।

तप और उपवास।

श्रव तपका विचार करना है। तपके भिन्न भिन्न भेद वर्णित हैं। इन भेदों में उपवास मुख्य श्रीर श्रेष्ठ कहा गया है । उपवास करना प्रायः सभी धर्मों में मान्य किया गया है। उपवास करने की प्रवृति उपनिषदकालसे है। बृहदारण्यमें परमें श्रवरको जाननेका मार्ग यों वर्णन किया गया है—

तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिः शन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन।

श्रनाशकका श्रर्थ उपवास है। भारती-कालमें उपवासका मार्ग वहुत कुछ प्रच लित था: उसको जैनोंने खूब स्वीकार किया । अनुशासन पर्वके १०५-१०६ श्रध्यायमें भिन्न भिन्न प्रकारके उपवासी-का वर्णन है, श्रीर इन उपवासोंके करनेसे जो जो फल मिलते हैं, उनका भी वर्णन है। परन्तु सबका इत्यर्थ बहुधा यह देख पडता है कि उपवास करनेवालेको स्वर्ग-प्राप्ति होती है श्रोर वहाँ अप्सराश्रो पवं देव-कन्याश्रोंके उपभोगका सुख मिलता है। स्वर्गमें इस प्रकारका निरा भौतिक सुख मिलनेका वर्गान महाभारतमें, श्रन्य स्थलों पर, कम पाया जाता है। उल्लिखित उपनिषद्वाक्यसे यह भी प्रकट होता है कि उपवास करनेसे परमेश्वरका ज्ञानतक प्राप्त होता है। तब, यह कहना कुछ श्रजीव सा जँचता है कि उपवास करनेसे केवल खर्गकी अप्सराश्रोंका सुख मिलता है। उपवासकी जो विधि लिखी है, उसमें वर्णन है कि उपवास एक दिनका, दो दिनका, लगातार तीन दिनका, इस तरह बढ़ाते बढ़ाते वर्ष भर करना चाहिए। कहा गया

^{*} नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्ति मातृसमीगुरूः। नास्ति धर्मात्परो लाभस्तपो नानशनात्परम्॥ (६२ श्रातु० श्रा० १०६)

है कि एक ही बार लगातार तीन दिनसे श्रिकका उपवास न करना चाहिए। बाह्मण श्रौर चत्रिय, तीन दिनका उपवास करें: श्रोर वैश्य तथा शृद एक दिनसे श्रिक उपवास न करें। यह एक महत्त्व-की श्राज्ञा है, जिस पर ध्यान देना चाहिए, कि 'वैश्य श्रोर शुद्र तीन दिनका उपवास कभी न करें। क्यों कि उनके पेरोके हिसाब-मे अधिक उपवास करना उनके लिए सम्भव नहीं। एक दिनमें दो बार भोजन होता है श्रीर तीन दिनोंमें छः वार: इनमें-से एक, दो या तीन बारका भोजन छोड दिया जाय । यही उपवास-विधि है। दिनमें एक ही बार भोजन करनेको एक-भक्त * कहते हैं और यह भी उपवासमें माना गया है। तीन दिनका उपवास करके प्रथात छः वारके भोजनोंको छोडकर. सातवाँ भोजन करे; यह मुख्य उपवास-विधि है। परन्त इसके आगे पन भर (पन्द्रह दिन) तक उपवास करनेका वर्गन किया गया है। जो पुरुष वर्ष भर, एक प्ततक तो उपास करता श्रौर दुसरे पत्त-में भोजन करता है, उसका परामास श्रन-शन हो जाता है। यह श्रङ्गिरा ऋषिका मत्बतलाया है। महीने भरका भी उपवास वतलाया है, इसका श्रचरज होता है। शुद्री श्रीर वैश्योंको जो एक दिनकी श्रपेचा अधिक उपवास करनेकी मनाही है, वह उन्हें पसन्द न हुई होगी। जैनोंने अनेक उपवास करनेकी आजा सभीके लिए दे दी; इस कारण, जैन धर्मका विस्तार निम्न श्रेणीके लोगोंमें होनेके लिए बहुत कुछ

श्रवकाश मिल गया होगा। जैनोंने उप-वासोंका इतना श्रधिक महत्त्व बढ़ा दिया कि श्रन्तिम उपास उन्होंने ४२ दिनतकका बतलाया है। उपवासमें हर प्रकारका श्रन्न वर्ज्य है। यहीं नहीं, पानी पीनेतककी मनाही है, यह ध्यान देनेकी बात है।

महाभारतमें उपवासकी निर्दिष्ट हैं। वे ये हैं-पञ्चमी, षष्टी, श्रौर कृष्ण पत्तकी अष्टमी तथा चतुर्दशी। इन तिथियोंमें जो उपवास करता है, उसे कोई द्ख-दर्द नहीं होता । भिन्न भिन्न महीनों में भी उपवास करनेका फल कहा गया है। उम्लिखित तिथियाँ श्राजकल बहुधा उप-वासकी नहीं हैं। किन्त श्रचरजकी बातयह है कि श्राजकल जो एकादशी, द्वादशी उप-वासकी तिथियाँ हैं, वे महाभारतमें इस कामके लिए निर्दिष्ट नहीं हैं। ये तिथियाँ विष्णु श्रौर शिवकी उपासनाकी हैं: इस-लिए उनकी उपासनात्रोंके प्रसङ्ग पर इन-का उल्लेख हो सकता था। श्रनुशासन पर्व-के इस श्रध्यायमें समग्र उपवास-विधि वर्णित है और इसीसे, इसमें बतलाये हुए समग्र तिथि-वर्णनमें, उन तिथियोंका नाम नहीं श्राया। यह बात भी विशेष रूपसे लिखने योग्य है कि अनुशासन पर्वके १०६वें श्रध्यायमें एक ऐसा वत बतलाया गया है कि प्रत्येक महीनेकी द्वादशी तिथिका यदि भिन्न भिन्न नामोंसे विष्णुकी पूजा की जाय तो विशेष पुराय मिलता है। वे नाम यहाँ लिखे जाते हैं। मार्गशीर्षसे प्रारम्भ कर प्रत्येक महीनेके लिए यों नाम लिखे हैं—१ केशव, २ नारा-यण, ३ माधव, ४ गोविन्द, ५ विष्णु, ६ मधुसूदन, ७ त्रिविक्रम, = वामन, ६ श्री-धर, १० हृषीकेश, ११ पद्मनाभ, १२ दामो-दर । श्रर्थात् सन्ध्योपासनके श्रारम्भमें विष्णुके जिन चौबीस नामोंका स्मरण किया जाता है, उनमेंसे पहले बारह नाम

^{*} मूल राव्द एक-भक्त है, लोगोंमें कहीं कहीं एक-भुक्त बोला जाता है। परन्तु मूलमें एकभक्त राब्द है। इसकी कल्पना यह है कि दिनमें जो दो बार भोजन किया जाता है प्रथात दो बार भक्त या भात खाया जाता है, सो उसके स्थानमें एक बार ही भोजन करे यानी एकभक्त हो। यह ध्यान देनेकी बात है।

बही हैं जो कि ऊपर लिखे गये हैं। इससे चौधीस नामों द्वारा विष्णुका स्मर्ण करनेकी पद्धति कमसे कम महाभारतके बराबर प्राचीन तो है। किंबहुना, इससे भी प्राचीन माननेमें कोई बाधा नहीं है। उपवासके जो भिन्न भिन्न भेद बतलाये गये हैं, वे ही स्मृतिशास्त्रोंमें वर्णित चान्द्रायण् श्रीर सान्तपन श्रादिके हैं। परन्तु चान्द्रा-यण्, कुच्छ, श्रीर सान्तपन श्रादि व्रतोंका नाम यद्यपि महाभारतमें प्रसङ्गानुसार श्रा गया है तथापि उनका वर्णन नहीं है। तपकी विधिमें व्रतोंके यही भेद पाये जाते हैं। श्रस्तुः उपवासके सिवा वायुःभन्नण् श्रादि तपके श्रीर भी कठिन भेद महा-भारतमें वर्णित हैं।

जप।

तपका एक प्रधान अङ्ग अथवा खरूप जप है। जपकी प्रशंसा भगवदीतामें की गई है। उसको यह वतलाया गया है। विभूति अध्यायमें भगवानने कहा है— "यहानां जपयहोऽसि"। जपके सम्बन्धमें दो तीन अध्याय शान्तिपर्वमें भी हैं। उनका तात्पर्य यह ध्वनित होता है कि जप है तो महा-फलका देनेवाला, परन्तु झानमार्गसे घट-कर है। अधिक क्या कहा जाय, वेदान्तमें जप मान्य नहीं हैं; अथवा उसके करनेका विधान भी नहीं किया गया है। जप करना योगका मार्ग है। इसमें भी, किसी फलकी इच्छा न करके जप करना सबमें श्रेष्ठ है। किसीकामनासे जप करना 'श्रवर' अर्थात् निकृष्ट है।

श्रभिध्यापूर्वकं जप्यं कुरुते यश्च मोहितः। यत्रास्य रागः पतित तत्र तत्रोपपद्यते॥ (शांति० श्र० १६७)

योगासन लगाकर और ध्यानमग्न दोकर जो प्रणवका जप करता है वह ब्रह्मदेवके शरीरमें प्रवेश करता है। निरिच्छस्त्यजित प्राणान

ब्राह्मी स विशते तनुम्।
इस अध्यायमें संहिता जपका भी
वर्णन है। किसी कामनासे जप करने
वाला उस लोक या कामनाको पात
होता है; परन्तु जो फलकी रत्ती भर भी
इच्छा न करके जप करता है, वह सब फलोंसे श्रेष्ठ ब्रह्मलोकको जाता है। अपके
भिन्न भिन्न भेद आजकलकी भाँति महा-भारत-कालमें रहे होंगे। और इसमें आश्चर्य नहीं कि कामनिक और निष्काम जपके
फल कामनिक तथा निष्काम यश्नीकी
भाँति—क्रमसे स्वर्ग और अपुनराविते
ब्रह्मलोक ही हैं।

अहिंसा।

भारती आर्य धर्मके अनेक उढाल तत्त्रोंमें महत्वका एक तत्व अहिंसा है। महाभारत-कालीन लोक-समाजमें यह मत पूर्णतया स्थापित हो चुका था कि 'किसी प्रकारकी हिंसा करना पाप है। प्रन्य स्थानमें इस पर विचार हो चुका है कि यह मत किस प्रकार उत्पन्न हुआ और क्योंकर बढ़ता गया। परन्तु यहाँ पर कहा जा सकेगा कि महाभारतके भिन्न भिन्त श्राख्यानीमें इस सम्बन्धमें मतभेद देख पड़ता हैं: श्रीर जिस तरह हिंसाका प्रचार तथा मांसका भन्नण, महाभारत-कालमे धीरे धीरे वन्द हुआ, उसका आन्दोलन सामने देख पड़ता है। वनपर्वके धर्म-च्याध-संवादमें यदि हिंसा श्रीर मांसान का समर्थन देख पड़ता है, तो शान्तिपर्वके २६४—६५वें श्रध्यायमें जो तुलाधार तथा जाजिलका सम्वाद है, उसमें हिंसा श्रीर मांसान्नकी निन्दा की गई देख पड़ती है। वनपर्वके २०६वें ऋध्यायमें कहा गया है कि पाणियोंका वध करनेवाला मनुष्य तो निमित्त मात्र है: श्रीर श्रितिथयीं तथा

वीध्यवर्गके भोजनमें और पितरोंकी पूजामें मांसका उपयोग होनेसे धर्म होता है।
यह भी कहा गया है कि यशमें ब्राह्मण लोग
पण्डश्नोंका वध करते हैं श्रीर मन्त्रके योगसे वे पण्ड संस्कृत होकर स्वर्गमें पहुँच
जाते हैं। ठीक इसके विपरीत, तुलाधारजाजिल-संवादमें यही काम निन्ध श्रीर
श्रधार्मिक कहे गये हैं। श्रीर यह कहा
गया है कि जिन वेद-चचनोंमें हिंसाप्रयुक्त यज्ञ श्रथवा मांसान्नकी विधि
है, वे वचन किसी खाऊ श्रादमीने वेदमें
मिला दिये हैं। इतिहासक्ष लोग यज्ञ-कर्ममें
श्रक्षांका यज्ञ पसन्द करते हैं। कर्णपर्वमें
पक स्थान पर श्रीकृष्णने श्रहिसाको परमधर्म कहा है।

प्राणिनामवधस्तात सर्वज्यायान्मतो मम । अनृतं वा वदेद्वाचं नच हिस्यात्कथञ्चन॥ (कर्णः श्र. २३-६८)

कुछ लोगोंका मत है कि अहिंसा-धर्मका उपदेश पहलेपहल बौद्धों श्रौर जैनोंने किया है। परन्त यह बात सच नहीं हैं। अहिंसा-मतभारतीय आर्य धर्मके मतों में ही है और वह वुद्ध से भी प्राचीन है। श्रहिंसा-तत्त्वका उपदेश उपनिषदींमें भी है। जो ज्ञानमार्गी विद्वान मनुष्य पर-मेश्वर-प्राप्तिके लिए भिन्न भिन्न मोच-साधनोंका श्रवलम्ब करता है, उसे श्रहिंसा तत्व श्रवश्य मान्य करना चाहिए-इस त्त्वका प्रतिपादन भारतीय त्रार्य तत्त्व-वेताश्रोंने वहुत प्राचीन कालमें किया है। अनुभवसे सिद्ध किया गया है कि वेदान्त-मतसे श्रीर योग-मतसे भी परमार्थी पुरुषके लिए हिंसा एक भारी श्रड़चन है। और इस कारण, वनमें जाकर रहने-याले निवृत्त ज्ञानमागीं न तो हिंसा करते थे, श्रीर न मांसाहार करते थे। श्राद्य युनानी इतिहासकार (सन् ईसवीसे ४५० वर्ष पूर्व) हिरोड़ोटस गवाही देता है कि हिन्दुस्थानके जङ्गलों में रहनेवाले योगी
श्रीर तपस्वी लोग श्रहिसा-धर्मको मानते
हैं; वे कभी मांसाहार नहीं करते। इससे
स्पष्ट देख पड़ता है कि वुद्धके पहलेसे
ही हिन्दुस्थानमें श्रहिसा-मतका चलन,
विशेषतया ज्ञानमार्ग पर चलनेवाले निवृत्त
लोगों में था। यह बात भारतीय श्रायोंके
द्यायुक्त धर्मके लिए सचमुच भूषणस्वरूप है कि उन्होंने श्रपनी द्याको पूर्ण
स्वरूप है कि उन्होंने श्रपनी द्याको हानिकी
कुछ भी परवा न करके, श्रहिसा मतको
स्वीकार किया। श्रीर वहुतोंने मांस भन्नण
करना त्याग दिया।

इसमें सन्देह नहीं कि वेद-विधिसे किये हुए यज्ञमें हिंसा होती थी। खास-कर भारती युद्धके समय च्त्रियोंमें विविध श्रश्वमेध श्रोर विश्वजित श्रादि भारी यज्ञ किये जाते थे। इन यज्ञोंमें हिंसा बहुत होती थी। वैदिक धर्ममें इन यज्ञोंकी बेहद प्रशंसा है, इस कारण पुराने मतके ब्राह्मण श्रीर चत्रिय इन यहांको छोडनेके लिए तैयार न थे। श्रतएव, यह बात निर्विवाद है कि महाभारत-कालमें हिंसा-प्रयुक्त यज्ञ हुआ करते थे। श्रौर, महाभा-रतके पश्चात् जव जब श्रार्य धर्मकी विजय होकर बौद्ध श्रीर जैनधर्मका हुश्रा करताथा, तब तब बड़े बड़े पराक्रमी त्तिय राजा खासकर श्रश्वमेघ यज्ञ किया करते थे। इस प्रकार इतिहासमें शुक्र वंशके अग्निमित्र राजा अथवा गुप्त वंशके चन्द्रगुप्त राजाके अश्वमेध करनेका वर्णन है। यद्यपि यह बात है, तथापि हिंसा-प्रयुक्त यशोंके सम्बन्धमें समस्त जन-समु-दायमें घृणा उत्पन्न हो गई थी। बहुतेरे वैदिकों श्रोर श्रन्य ब्राह्मणोंने यह /नियम कर दिया था कि यदि यज्ञ करना हो तो

धान्यकी आहुतियोंसे हो करना चाहिए। शान्तिपर्वके २६६ वें श्रध्यायमें विचक्तका आख्यान है। उसमें कहा गया है कि एक श्रवसर पर यज्ञमें छिन्न भिन्न किया हुआ वृषभका शरीर देखकर विचक्नुको बहुत बुरा मालूम हुआ। उसने कहा—"श्रवसे समस्त गायोंका कल्याण हो।" तभीसे गवालस्भ बन्द हो गया। धर्मात्मा मनु-ने कहा है कि किसी कर्ममें हिंसाका सम्पर्क न हो, श्रीर यज्ञमें श्रन्नकी ही आहतियाँ दी जायँ। यज्ञ-स्तम्भके लिए मनुष्य जो माँस खाते हैं, उसे कुछ लोग श्रशास्त्र नहीं मानते: परन्त यह धर्म प्रशस्त नहीं है। सुरा, मद, मत्स्य, श्रौर मांस भन्नण करनेको रीति धूर्त लोगोंने चलाई है। वेदोंमें ऐसा करनेकी श्राज्ञा नहीं है। श्रीविष्णु ही जब कि सब यज्ञोंके श्चन्तर्गत हैं, तब पायस, पुष्प श्रीर वेदोंमें जो यशीय बृत्त कहे गये हैं, उनकी समिधा-के द्वारा ही याग करना चाहिए।" सारांश यह कि समग्र जनसमूहमें, खासकर विष्णुकी भक्तिका श्रवलम्ब करनेवाले लोगोंमें, मांस भन्नण करनेका महाभारत-कालमें निवेध माना जाता था। यही नहीं, बल्कि यज्ञ-याग त्रादिमें भी हिंसाका त्याग करके केवल धान्य, समिधा श्रीर पायसकी श्राहुतियाँ दी जाती थीं।

आश्रम-धर्म।

भारती-धर्मके मुख्य श्रंगोंमें चार श्राश्रम श्रोर चार वर्ण प्राचीन कालसे चले श्राते हैं। इस विषयका विस्तृत वर्णन पहले हो चुका है। यहाँ श्राश्रमों-का ऊल्लेख कुछ श्रधिक किया जाता है। ब्रह्मचर्य, गाईस्थ्य, वानप्रश्च श्रीर संन्यास इन चार श्राश्रमोंका श्रवलम्बन प्रत्येक मनुष्यको, विशेषकर त्रैवर्णिकोंको अवश्य करना साहिए। भारती-कालमें

इसी प्रकारका नियम था। महामारतम भिन्न भिन्न आश्रमोंका कर्तव्य बतलाया गया है-श्रथात् वाल्यावस्थामे बहाचर्य युवावस्थामें गाईस्थ्य, बुढ़ापेमें वान प्रस्य श्रौर श्रन्तमं संन्यास । ब्रह्मचर्यका मुख्य लच्या यह था कि गुरु-गृहमें रहकर ब्रह्मचर्यका पालन श्रीर विद्याध्ययन किया जाय। गाईस्थ्यका लच्चण विवाह करना श्रतिथिकी पूजा श्रीर श्रिक्षिको सेवा करना तथा स्वयं उद्योगसे अपनी जीविका चलाना था। बुढ़ापा आने पर घरवार पुत्रको सौंपकर वन जानेके लिए वान प्रस्थ आश्रम था। इसमें जटा धारण कर उपवास, तप श्रीर चान्द्रायण वत श्राह करने पड़ते थे: श्रीर जङ्गलके कन्द-मूल-फल एकत्र कर अथवा उञ्छ-वृत्तिसे अर्थात खेतमें पड़े हुए अन्नके दाने चुनकर उदर निर्वाह करना पड़ता था। चौथे श्राक्षम श्रर्थात् संन्यासमें जटा श्रौर शिखाका लाग करके, स्त्रीका त्याग करके, भिचा माँगकर उदर-निर्वाह करके आत्म-चिन्तन करते हुए इधर उधर भ्रमण करना पडताथा। इस श्रवस्थामें देहावसानतक रहना होता था। इसका लच्चण त्रिदग्ड था। इसके सिवा, महाभारतके समयमे अत्याश्रमी श्रर्थात संन्यासके भी श्रागेके, सब नियमोंसे रहित, परमहंस रूपमें रहनेकी चाल थी । धर्मका ऐसा श्रमिप्राय है कि इन सब श्राश्रमींमें, सबका पोषक गृहसा श्रम ही प्रधान है।

अतिथि-पूजा।

श्रतिथिकी पूजा करने श्रौर श्रितिथि को भोजन देनेके सम्बन्धमें महाभारत कालके सनातन धर्ममें, वड़ा जोर दिया गया है। धर्मकी यह श्राज्ञा है कि जी कोई श्रतिथि श्रावे, उसका सत्कार कर उसे भोजन देना प्रत्येक गृहस्थ और वात प्रथका भी कर्त्तव्य हैं; श्रीर यदि इसमें शताको स्वयं उपवास भी करना पड़े तो कोई हानि नहीं है। चनपर्व श्रध्याय २६० ने जो मुद्रल ऋषिका आख्यान दिया गया है उसका यही तात्पर्य है। यह अबि पन्द्रह दिनमें द्रोण भर भात कपोत-वृत्तिसे प्राप्तकर श्रीर दस पौर्णमास समाप्त कर देवता और श्रतिथिकी पूजा करता था श्रीर उससे जितना श्रन्न बच जाता था, उतनेसे ही श्रपना उदर-तिर्वाह करताथा। ऐसा लिखा है कि उसने इस रोतिसे दुर्वासा ऋषिका सत्कार वारंवार किया और आप उपासा हा। इस कारण श्रन्तमें उसे खर्गमें ले जानेके लिए विमान श्राया। श्रतिथि-सत्कारके पीछे जो श्रन्न शेष रह जाता है, उसका नाम 'विघस' है: श्रौर यह नियम था कि यह विघस खाकर गृहस्थ धर्मवाले स्रो-पुरुषोंको उदर-निर्वाह करना चाहिए।

साधारण धर्म।

भारती सनातन धर्मके भिन्न भिन्न भाग बतानेके पश्चात् अब उन धर्मोंकी श्रोर चलना चाहिए जिनका पालन करना सभी मनुष्योंको सभी समय श्रावश्यक है। सत्य, सरलता, क्रोधका श्रभाव, श्रपने उपार्जित किये हुए द्रव्य-का श्रंश सबको देना, सुख-दुःखादि द्रन्द सहना, शान्ति, निर्मत्सरता, श्रहिंसा, श्रुचि श्रीर इन्द्रिय-निश्रह, ये सब धर्म सबके लिए एकसे कहे गये हैं, श्रौर ये श्रन्तमें मनुष्यको सद्गति देनेवाले हैं। तात्पर्य यह है कि सब धर्मों के समान भारतीय सनातन धर्मका सम्बन्ध नीति-के साथ मिलाया गया है। नीतिके श्राच-रणके विना धर्मकी पूर्त्ति कभी नहीं हो सकती । यह बात महाभारतके समयमें मान्य की जाती थी। स्पष्ट कहा गया है

कि यदि संन्यासियों श्रीर योगियोंको भी श्रपने मोच-मार्गमें सिद्धि प्राप्त करनी हो तो उन्हें भी इसी नीति-मार्गका श्रवलम्य करना चाहिए। महाभारतमें प्रारम्भसे ले-कर इति पर्यन्त नीतिके श्राचरणकी श्रत्य-न्त उदात्त स्तुति की गई है। इसके अति-रिक, आचारको धर्मका एक प्रधान श्रङ्ग माना गया है। सदा जो यह कथन पाया जाता है कि आचार प्रथम धर्म है, सो ठीक ही है; क्योंकि मनुष्यके मनमें नीति-का चाहे कितना ही आदर क्यों न हो. परन्तु जवतक वह श्राचरणके द्वारा व्यक्त नहीं किया जाता, तबतक उस श्रादरका कुछ मृत्य नहीं । केवल श्राच-रण शब्दसे नीतिमत्ताके श्राचरणके सिवा कल और विधि-निषेधात्मक अन्य श्राच-रणोंके नियमोंका भी बोध होता है जो सनातन भारती धर्मके श्राचारमें समा-विष्ट है। यह समभा जाता था कि इस श्राचारसे मनुष्यको दीर्घाय प्राप्त होती है। श्रुत्रशासन पर्वके १०४ थे श्रध्यायमें श्राचारका विस्तृत वर्णन है। वह यहाँ संचेपमें लिखने योग्य है। "श्राचार ही धर्मका लवण है। साधु-सन्तोंको जो श्रेष्ठता प्राप्त होती है, उसका कारण उनका सदाचार ही है। मनुष्यको न कभी भूठ बोलना चाहिए और न किसी प्राणीकी हिंसा करनी चाहिए ।" इस प्रकार नीतिके नियम वतलाकर आगे विशिष्ट श्राचारोंका जो वर्गान किया गया है, उसका सारांश नीचे दिया जाता है।

आचार।

"मनुष्यको ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर धर्मार्थका विचार करना चाहिए। प्रातः-कालीन मुख-मार्जन श्रादि करके, हाथ जोड़कर, पूर्वाभिमुख हो सन्ध्या-वन्दन करना चाहिए। प्रातःकाल श्रीर साय-

ङ्कालके समय, सूर्योदय श्रथवा सूर्यास्तके समय सूर्यका दर्शन करना चाहिए। यदि सूर्यमें ग्रहण लगा हो या वह मध्याहमें हो तो उस वक् उस श्रोर न देखे। सन्ध्या समय फिर सन्ध्या-वन्दन करे । सन्ध्या-वन्दन करना कभी नभूले। नित्य सन्ध्या-वन्दन करनेके कारण ही ऋषियोंको दीर्घायु प्राप्त हुई। किसी वर्शके मनुष्य-को पर-स्त्री-गमन न करना चाहिए। पर-स्त्री-गमन करनेसे जिस प्रकार घटती है वैसी श्रीर किसी कर्मसे नहीं घटती। पर-स्त्री-गमन करनेवाला हजारों-लाखों वर्षोतक नरकमें रहता है। मल-मुत्रकी श्रोर मनुष्य न देखें। विना जान-पहचानके श्रथवा नीच कलोत्पन्न मनुष्यके साथ कहीं श्रावे-जाय नहीं। ब्राह्मण, गाय, राजा, वृद्ध, सिर पर बोभ लादे हुए श्रादमी, गर्भिणी स्त्री श्रीर दुवले मनुष्य रास्तेमें मिलें, तो उन्हें पहले निकल जाने दे, अर्थात् रास्ता छोड़ दे। दूसरेके वर्ते इए कपड़ों श्रौर जुतोंका उपयोग न करे। पौर्णिमा, श्रमावस्या, चतुर्दशी श्रीर दोनों पत्तोंकी श्रष्टमीको ब्रह्मचर्यका नित्य पालन करे। पराई निन्दा न करे। किसी-को भी वाग्बाण न मारे। मनुष्यके मन पर दुष्ट शब्दोंका घाव कुल्हाडीके घावसे भी बढ़कर लगता है। कुरूपको, जिसमें कोई व्यङ्ग हो उसको, दरिद्रको, अथवा जो किसी प्रकारकी विद्या न जानते हों उनको धिकार न दे । नास्तिकपनको स्वीकार न करे। वेदोंकी निन्दा न करे। देवताश्रोंको धिकारे नहीं । मल-मूत्र त्यागने पर, रास्ता चलकर आने पर, विद्याका पाठ पढ़ते समय और भोजन करनेके पहले हाथ-पैर धो लेना चाहिए। श्रपने लिए मधुर पदार्थ न बनावे, देघ-तात्रोंके लिए बनावे। सोकर उठने पर दुवारा न सो जाय । जय सुवह सोकर

उठे, तब माता-पिता श्रीर श्राचार्यको नम् स्कार करे। श्राग्निकी सदैव पूजा करे। विना ऋतुमती हुए स्त्रीसे सम्भोग न करे। उत्तर श्रीर पश्चिमकी श्रार सिर करके न सोना चाहिए। नङ्गा होकर स्नान न करे। पैरसे श्रासन खींचकर उस पर न बैठे। पूर्वकी श्रोर मुँह करके भोजन न करे। भोजन करते समय बातचीत न करे। श्रव्नकी निन्दा न करे। भोजनका थोड़ासा श्रंश थालीमें पड़ा रहने दे। दूसरेका स्नानोदक या श्रोवन न ले। नीचे वैठका भोजन करे। चलता-फिरता हुआ भोजन न करे। खड़ा होकर, भस्म पर, या गोशाला-में लघुशङ्का न करे। जूठी अथवा अशुद्ध श्रवस्थामें सूर्य, चन्द्र श्रीर नत्त्रत्रोंकी श्रोर न देखे। ज्ञानसे अथवा अवस्थासे वृद्ध पुरुषं श्रावें, तो उठकर उनको नमस्कार करे। सिर्फ एक-वस्त्र होकर भोजन न करे। नङ्गा होकर सोवे नहीं। बिना हाथ-मुँह थोये, जुठा ही न बैठे। दोनों हाथांसे खोपड़ी न खुलजावे । सूर्य, श्रक्षि, गाय श्रथवा ब्राह्मणीको श्रोर मुँह करके, या रास्ते पर, लघुशङ्का न करे। गुरूके साथ कभी हठ न करे। भोजनकी चीजोंको यदि कोई और देख रहा हो, तो विना उसे श्रर्पण किये श्रन्न ग्रहण न करे। सुवहको श्रीर सन्ध्याको दो दफे भोजन करे, बीचमें न करे। दिनको मैथुन न करे। श्रविवाहित स्त्री, वेश्या श्रोर ऐसी स्री जिसे ऋतु प्राप्त न हुआ हो, इनके साथ भोग न करे। सन्ध्या-समय सोवे नहीं। रातको स्नान न करे। रातको भोजनमे श्राग्रह न करें । विना सिरसे नहा^{ये} पैतृक कर्म न करे । जिस तरह पर निन्दा निषिद्ध है उसी तरह श्रात्म-निन्दा भी है। स्त्रियों से स्पर्धान करे। बाल बनवाकर स्नान न करनेसे त्रायुका नार होता है। सन्ध्या-समय विद्या गढ़ना

भोजन, स्नान अथवा पठन करना वर्जित है: उस समय भगविश्वन्तनके सिवा और कल न करे। यथाशक्ति दान देकर यज्ञ-याग त्रादि करना चाहिए।" अस्तः मदाचारके अनेक नियम इस अध्यायमें है। महाभारतके समय भारती श्रार्य-धर्मका कैसा खरूप रहा होगा, इसकी पूरी कल्पना करा देनेमें ये नियम बहुत उप-गोगी होते हैं। इसके सिवा, महाभारतमें श्रनेक स्थलों पर जो सौगन्द खानेके वर्णन हैं, वे भी श्राचारों के नियम समभने-में बहुत उपयोगी हैं। इनमेंसे, श्रनुशासन पर्वके ६३ वें अध्यायमें जो सप्तऋषियोंकी कथा है, वह बड़ी ही मनोरञ्जक है। एक बार सप्तर्षि अपने नौकर शुद्ध और उसकी स्त्रीके साथ जङ्गलमें जा रहे थे: इतनेमें एक जगह खानेके लिए कमल श्रीर कमलोंके नाल एकत्र करके सरोवरमें उतर, स्नान करके तर्पण करने लगे। फिर किनारे पर श्राकर क्या देखा कि वे कमलोंके बोक्स न जाने क्या हो गये। वहाँ श्रीर कोई तो था नहीं, इसलिए उन्हें एक दूसरे पर सन्देह हुआ। तब यह स्थिर हुन्ना कि हर एक सौगन्द खाय। उस समय अत्रिने कहा-"जिसने चोरी की होगी उसे वह पातक लगेगा जो गाय-को लात मारनेमें, सूर्यकी श्रोर मुँह करके लघुराङ्का करनमें और अनध्यायके दिन वेद पढ़नेमें लगता है।" वसिष्ठने कहा-"जिसने चोरी की होगी उसे वह पातक लगेगा जो कुत्ता पालनेमें, संन्यासी होकर कामवासना धारण करनेमें अथवा शरणा-गतको मारनेमें या कन्या बेचकर पेट पालनेमं अथवा किसानोंसे द्वय प्राप्त करने-में लगता है।" कश्यप बोले—"जिसने चोरी की हो उसे वह पातक लगे जो, चाहे जहाँ और चाहे जो बोलनेमें, दूसरेकी धरो-हर 'नहीं है' कहनेमें और भूठी गयाही

देनेमें लगता है। उसे वह पातक लगे जो विना यज्ञ-यागके मांस भन्नण करनेमें, नट-नर्तकोंको दान देनेमें श्रथवा दिनको स्त्री-गमन करनेमें लगता है।" भारद्वाजने कहा—"जिसने चोरी की हो वह स्त्रियोंकी. गायोंकी और अपने नातेदारोंकी दुर्दशा करे; ब्राह्मणको युद्धमें जीतनेका पाप उसे लगे; श्राचार्यका अपमान करके ऋक् श्रीर यजुर्वेदके मन्त्र कहनेका पातक उसको लगे: श्रथवा घास जलाकर उस श्रिमें वह हवन करे।" जमदक्षिने कहा-"जिसने चोरी की हो उसको वह पाप लगे जो पानीमें पालाना फिरने या पेशाब करनेसे, गायका वध करनेसे श्रीर विना ऋत-कालके ही स्त्री-गमन करने-से लगता है; चोरी करनेवालेको वह पाप लगे जो स्त्रीकी कमाई खानेसे श्रथवा अदले-बदलेका श्रातिथ्य करनेसे लगता है।" गौतम बोले—"तीन श्रम्न छोड देनेमें, सोमरस वेचनेमें अथवा जिस गाँवमें एक ही कुत्राँ हो उसमें शह स्त्रीके पति होकर रहनेमें जो पातक लगता है वही पातक लगे।" विश्वामित्रने कहा-"वह पाप लगे जो खयं जीवित रहते हुए अपने माँ बाप और सेवकीं-की उपजीविका दूसरोंसे करानेमें लगता है: अथवा अगुद्ध ब्राह्मणुका, उन्मत्त धनिकका, या पर-द्रोही किसान-का पातक लगे; श्रथवा पेटके लिए दास्य करनेका यानी वार्षिक अन्न लेकर नौकरी करनेका, राजाकी पुरोहिताई करनेका या ऐसे श्रादमीके यज्ञ करनेका पातक लगे जिसे यज्ञ याग करनेका अधिकार नहीं है।" श्ररुन्धती बोली—"वह पातक लगे जो सासका अपमान करनेसे, पतिको दुःख देनेसे, श्रीर श्रकेले श्रपने श्राप स्वादिष्ट पदार्थ खा लेनेसे लगता है; वह पातक लगे जो श्राप्तींका श्रनादर करनेसे, व्यभिचार करनेसे या डरपोक पुत्र उत्पन्न करनेसे माताको लगता है।" यहाँ अनु-शासन पर्वके ६३वें श्रध्यायका ३२ वाँ श्लोक देखिए—"श्रमोग्याचीरसूरस्त विसस्तैन्यं करोति या।" इस श्लोकार्द्धमें सौति, क्टार्थक वीरस शब्दका प्रयोग करके, पाठकोंको चण भरके लिए स्तब्ध कर देता है: परन्तु यह प्रकट है कि श्रवीरस् पदच्छेद करना चाहिए। उनकी दासी बोली—"मुभे वह पातक लगे जो भूठ बोलनेमें, भाई-बन्दोंके साथ भगड़ा करनेमें, बेटी बेचनेमें, अथवा अकेले ही रसोई बनाकर खानेमें, या किसी भयड़र कामके द्वारा मृत्यु होनेमें लगता है।" चरवाहेने कहा—"चोर दासकुलमें वार बार पैदा हो, उसके सन्तान न हो, वह द्रिट हो अथवा देवताओंकी पूजा न करे।" इस प्रकारकी सीगन्दें महाभारत-में कई एक हैं, श्रीर उनसे देख पडता है कि श्राचारके मुख्य मुख्य नियम कौन कौन थे।

स्वर्ग और नरककी कल्पना।

श्रव यह देखना चाहिए कि महाभारतमें खर्ग श्रीर नरक या निरयके सम्बन्धमें क्या क्या कल्पनाएँ थीं। यह कहना
श्रावश्यक न होगा कि वेदमें खर्गका उल्लेख
बारवार श्राता है। परन्तु उसमें नरक या
निरय श्रथवा यमलोकके सम्बन्धमें विशेष
वर्णन नहीं है। प्रत्येक मनुष्य-जातिमें
स्वर्ग श्रीर निरयकी कल्पनाएँ हैं। स्वर्गका
श्रर्थ वह स्थान है जहाँ पुग्यवान लोग
मरनेके बाद जाते हैं श्रीर वह स्थान निरय
है जहाँ पापियोंकी श्रातमा, मरनेके पश्चात्
नाना प्रकारके दुःख भोगती है। स्वर्गारोहण पर्वमें व्यासजीने, समस्त महाकवियोंकी उत्कृष्ट पद्धतिकी ही भाँति,
दोनां स्थानोंमें सदेह पहुँचकर प्रस्यक्त

श्यिति देखनेवाले मनुष्यके मुँहसे कहलाया है कि भारती-कालमें स्वर्ग और निरम दोनोंकी कल्पना कैसी और क्या थी। युधिष्ठिरका आचरण अत्यन्त धार्मिक था, इस कारण उन्हें सदेह स्वर्ग जानेका समान भिला। देवदृतींके साथ जिस समय उन्होंने स्वर्गमें प्रवेश किया, उस समय उनकी दृष्टि पहले दुर्योधन पर ही पड़ी। अपने अत्यन्त तेजसे देवताओं के समान तेजस्वी दुर्योधन एक ऊँचे सिहासन पर वैठा था। उसे स्वर्गमें देखकर युधि ष्टिरको बड़ा श्राश्चर्य हुशा। जिसने श्रपनी महत्त्वाकांचाके लिए लाखों मनुष्योंका संहार कराया, जिसने पतियोंके आगे गुरुजनोंके देखते, भरी सभामें द्रीपदीकी दुईशा नीचताके साथ की, उसे खर्गमें सिंहासन कैसे मिल गया १ धर्मराजको जँचने लगा कि स्वर्गमें भी न्याय नहीं है। उन्हें अपने सदाचारी आई भी खर्गमें त देख पड़े। तब, उन्होंने देवदृतसे कहा-"मुक्ते वह स्वर्ग भी न चाहिए, जहाँ ऐसे लोभी और पापी मनुष्यके साथ रहना पड़े! सुभे वहीं ले चलो जहाँ मेरे भाई हैं।" तब, वे देवदृत उन्हें एक अन्धकार-यक्त मार्गसे ले गये। उसमें अपवित्र पदार्थोंकी दुर्गन्धि आ रही थी। जहाँ तहाँ मुद्दें, हड़ियाँ श्रीर बाल विखरे पड़े थे। श्रयोमुख कौवे श्रोर गीध श्रादि पत्ती वहाँ मीजूद थे और लोगोंको नोच रहेथे। ऐसे प्रदेशमें होकर जाने पर खौलते हुए पानीसे भरी हुई एक नदी उन्हें देख पड़ी और दूसरे पार एक ऐसा घना जङ्गल था जिसमें पेड़ोंके पत्ते तल-वारकी तरह पैने थे। स्थान स्थान पर लाल लोहशिलाएँ थीं श्रीर तेलसे भरे लोहेके कड़ाह खोल रहेथे। वहाँ पर पापियोंको जो अनेक यातनाएँ हो रही थीं, उन्हें देखकर धर्मराज दुःखसे लौट

वहें। उस समय कई एक दुःखी प्राणी बिह्ना उठे;—"हे पवित्र धर्मपुत्र, तुम बड़े रहो। तुम्हारे दर्शनसे हमारी वेद-ताएँ घट रही हैं।" तब युधिष्टिरने पूछा— "तुम कौन हो ?" उन्होंने कहा—"हम नकुल, सहदेव, अर्जुन, कर्ण, धृष्टद्यम ब्रादि हैं।" यह सुनकर युधिष्ठिरको बहुत ही कोध हुआ। उन्होंने कहा—"इन लोगोंने ऐसे कौनसे पातक किये हैं जिससे वे ऐसी ऐसी दारुण यन्त्रणाएँ भोग रहे है। देसे पुरयात्मा तो भोगें दुःख और दुर्योधन श्रानन्द्से स्वर्गमें देदीप्यमान हो ? यह बड़ा ही अन्याय है !" तब, "में यहीं रहता हूँ" ऐसा धर्म कहने लगा। इतनेमें स्वर्गके देव वहाँ श्राये। उनके साथ ही वह समूचा दश्य लुप्त हो गया। न वैतरणी नदी है, श्रीर न वे यम-यातनाएँ हैं। इतनेमें ही इन्द्रने कहा—"हे राजेन्द्र, पुर्य-पुरुष, तुम्हारे लिए अन्यय लोक हैं। यहाँ त्रास्रो; यह तो तुम्हें धोखा दिया गया था सो पूरा हो गया। श्रचरज मत करो। मनुष्यके दो सञ्चय होते हैं; एक पापका, दूसरा पुरुयका । पहलेका बदला नरक-प्राप्ति और दूसरेका बदला खर्ग-वास है। जिसके पाप बहुत हैं और पुग्य थोड़ा है उसे पहले स्वर्ग-सुख प्राप्त होता है श्रीर इसके पश्चात् उसको पातक भोगनेके लिए नरकमें जाना पड़ता है। जिसके पाप थोड़े श्रीर पुर्य श्रधिक हैं उसे पहले निरय-गति मिलती है; इससे तुम्हारी समभमें श्रा जायगा कि तुम्हारे भाइयोंको नरक-गति क्यों मिली। श्रीर, पत्येक राजाको नरक तो देखना ही पड़ता हैं। तुम्हें पहले नरकका कपटसे सिर्फ भूठा दर्शन कराया गया। द्रोणके वधके समय तुमने सन्दिग्ध भाषण किया था। उसी पातकके फल-खरूप तुम्हें कपटसे ही नरक दिखाया गया। श्रव तुम खर्गमें

चलोः वहाँ तुम्हारे भाई श्रोर भार्या देख पड़ेगी। वे उस स्वर्ग-सुखका श्रनुभव कर रहे हैं। इस श्राकाश-गङ्गामें स्नान करते ही तुम्हारी नर-देह नष्ट होकर दिव्य-देह प्राप्त हो जायगी। तुम्हारे शोक, दुःख श्रोर वैर भाव श्रादि नष्ट हो जायँगे।" श्रस्तुः उल्लिखित वर्णनसे मालूम होगा, कि भारती-कालमें स्वर्ग श्रोर नरककी कैसी, कल्पनाएँ थीं; यह भी मालूम होगा कि पाप-पुरायका सम्बन्ध स्वर्ग श्रोर नरकके साथ कैसा जोड़ा गया था; तथा पाप-पुरायका फल किस कमसे मिलता है। भारती-कालमें उल्लिखित बातोंके सम्बन्ध-में जैसी धारणा थी, उसका पता इससे लग जाता है।

अन्य लोक।

स्वर्ग-लोककी कल्पना बहुत प्राचीन है। वह वैदिक कालसे प्रचलित थी और इसी कारण धर्मराज श्रादिके खर्ग जाने-का वर्णन है। परन्तु वैदिक कालके अन-न्तर उपनिषद्-कालमें कर्म-मार्गका महत्व घट गया श्रीर ज्ञान-मार्गके विचार जैसे जैसे अधिक बढ़ते गये, तद्वुसार ही स्वर्गकी कल्पना भी पीछे रह गई; श्रीर यह सिद्धान्त सहज ही उत्पन्न हो गया कि, ज्ञानी लोगोंको कुछ न कुछ भिनन शाश्वत गति प्राप्त होनी चाहिए भिन्न भिन्न सिद्धान्त-वादियोंने नाना प्रकारसे निश्चित किया कि अमुक गति होनी चाहिए । ब्रह्मवादी लोग ब्रह्म-लोककी कल्पना करके यह मानते हैं कि वहाँ मुक्त हुए पुरुषोंकी आत्मा पर-ब्रह्मसे तादात्म्य प्राप्त करके शाश्वत गति-को पहुँचती है; फिर वहाँसे पुनरावृत्ति नहीं होती। जिस तरह यज्ञ-याग श्रादि कर्म हलके व्जेंके निश्चितं होकर इन्द्रका भी पद घट गया, उसी तरह उस कमेंसे प्राप्त होनेवाले इन्द्र-लोक प्रथवा स्वर्गका दर्जा कम हो गया। तव यह स्पष्ट है कि स्वर्गमें जो सुख मिलता है वह भी निम्न श्रेणीका यानी ऐहिक प्रकारका है; ब्रह्म-लोकमें प्राप्त होनेवाला सुख अवश्य उच कोटिका होना चाहिए। इस प्रकार उप-निषत्-कालमें ही स्वर्गका मूल्य घट गया था। भगवद्गीतामें भी स्वर्गकी इच्छाको हीन बतलाकर कहा गया है कि यह अलप फलदायी है, श्रोर कामनिक यज्ञ करने-वालोंको मिलता है। 'कामात्मानः खर्ग-परः इत्यादि क्षोकोंसे प्रकट है कि सर्ग-की इच्छा करना बिलकुल निम्न श्रेणीका माना गया था। इसी तरह 'ते तं भुत्वा स्वर्गलोकं विशालं चीए पुराये मर्त्यलोकं विशंति' इस क्लोकमं कहा गया है कि पुर्य चुक जाने पर प्राणी स्वर्गसे लौट श्राता है। सबसे श्रेष्ठ पद 'यद्गत्वा न निव-तैते तद्धाम परमं मम' इसमें कहा गया है। यह पद ही ब्रह्मलोक है श्रीर गीतामें इसीको ब्रह्म-निर्वाण कहा गया है। सारांश यह कि परमेश्वरके साथ तादातम्य होकर ब्रह्मरूप हो जाना ही सबसे उत्तम गति, तथा खर्ग-प्राप्ति कनिष्ट गति निश्चित हुई। भारती कालमें इन दोनोंके दरन मियान भिन्न भिन्न लोगोंकी कल्पना प्रचलित हो गई थी। महाभारत-कालमें इन दोनोंकी गतियोंके बीच कल्पित किये हुए वरुणलोक, विष्णुलोक श्रीर ब्रह्म-लोक इत्यादि अनेक भिन्न भिन्न लोक थे। इसी तरह पातालमें भी अर्थात पृथ्वीके नीचे श्रनेक लोकोंकी कल्पना की गई थी। सभापर्वमें वरुणसभा, कुवेर-सभा और ब्रह्मसभा इन तीन सभाश्रोंका भिन्न भिन्न वर्णन है: श्रीर उनमें भिन्न भिन्न ऋषियों तथा राजात्रोंके बैठे रहने-का भी वर्णन किया गया है। इसी तरह उद्योग पर्वमें वर्णन है कि पातालमें भी

श्रनेक लोक हैं; श्रोर पातालमें सबसे श्रन्तका रसातल है। रसातलके विषयमें श्राजकल दूषित कल्पना है; परन्तु वह ठीक नहीं है। महाभारत-कालमें रसातल श्रत्यन्त सुखी लोक समका जाता था। न नागलोके न खर्गे न विमाने त्रिविष्टपे। परिवासः सुखः ताहक रसातलतले यथा।

कल्पना यह है कि पृथ्वीके नीचे सात पाताल हैं और उनमें सबसे अन्तिम रसातल हैं। इसीसे आजकलकी रसातल सम्बन्धिनी दृषित धारणा उपजी होगी। रसातलमें सुरिम धेनु हैं; उसके मधुर दुग्धसे चीर सागर उत्पन्न हो गया है। और उसके ऊपर आनेवाला फेन पीकर रहनेवाले फेनप नामक ऋषि वहाँ रहते हैं। यह निश्चित है कि इन भिन्न भिन्न लोकों की गति शाश्वत नहीं है, और जो लोग जिन देवताओं की भक्ति करते हैं वे उन्हीं के लोकको जाते हैं।

वर्णन किया गया है कि पाप करनेवाले लोग यमलोकको जाते हैं श्रीर वहाँ नाना प्रकारकी यातनाएँ भोगकर फिर भिन भिन्न पाप-योनियों में जनमते हैं। यह यम लोक दिच्चिएमें माना गया है श्रीर खर्गके सम्बन्धमें यह कल्पना है कि वह उत्तरमें मेरके शिखर पर है। भारती आर्य धर्मका एक महत्त्वका सिद्धान्त यह है कि भिन भिन्न योनियोंमें पापी मनुष्यका श्रात्मा जन्म लेता है । इसका वर्णन अन्यत्र विस्तारके साथ किया गया है। पर्लु यहाँ पर यह कहना है कि स्मृतिशालमें ऐसी कल्पनाएँ हैं कि कौनसा पाप करते पर यमलोकमें कितने समयतक यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं, श्रौर कितने वर्ष पर्यन किस योनिमें जन्म लेकर रहना पड़ता है। वैसी ही बातें महाभारतके श्रवुशासन पर्वमें भी हैं। उनका विस्तार करनेकी गर्ही श्रावश्यकता नहीं । परन्तु जिस स^{मय ये}

कल्पनाएँ रूढ़ थीं, उस समय पाप-पुण्य-का, श्रात्माका, श्रीर भावी सुख-दुःखका, सम्बन्ध लोगोंके मन पर पूर्णतया प्रति-विम्वित था; इस कारण पापसे परावृत्त होनेके लिए लोगोंको श्रितशय उत्तेजन मिलता रहा होगा। धर्मका, कर्मका श्रीर जावके संसारित्वका भारती श्रायौंका सिद्धान्त, इस दृष्टिसे, विशेष श्राद्र-णीय है।

नीचेके श्रवतरणोंमें विस्तारके साथ देख पड़ेगा कि महाभारत-कालमें खर्गकी कैसी कल्पना थी और अन्य श्रेष्ठ लोकों-की कैसी थी। वनपर्वके २६१ वें श्रध्याय-में स्वर्गके गुण-दोघोंका वर्णन एक स्वर्गीय देव-दूतने ही किया है। "स्वर्ग ऊर्ध्व-भागों-में है श्रोर वह ब्रह्म-प्राप्तिका मार्ग है। वहाँ विमान उड़ा करते हैं। जिन्होंने तप अथवा महायज्ञ नहीं किये हैं, ऐसे श्रसत्यवादी नास्तिक वहाँ नहीं जा सकते। सत्यनिष्ठ, शान्त, जितेन्द्रिय श्रौर संशाममें काम श्राये हुए ग्रूर ही वहाँ पहुँचते हैं। वहाँ पर विश्वदेव, महर्षि, गन्धर्व और अप्स-राएँ रहती हैं। तेंतीस हज़ार योजन ऊँचे मेरु पर्वत पर नन्दन आदि पवित्र वन हैं। वहाँ चुधा, तृष्णा, ग्लानि, शीत, उष्ण श्रीर भीति नहीं हैं; वीभत्स श्रथवा श्रशुभ भी कुछ नहीं है। वहाँ सुगन्धित वायु श्रौर मनोहर शब्द हैं; शोक, जरा, श्रायास श्रथवा विलापका वहाँ भय नहीं है। लोगोंके शरीर वहाँ तेजोमय रहते हैं, माता-पिता-से निर्मित नहीं होते। वहाँ पर पसीना श्रथवा मल-मूत्र नहीं है, वहाँ तो दिव्य गुण-सम्पन्न लोक एक पर एक हैं। ऋभु-नामक दूसरे देवता वहाँ हैं। उनका लोक स्ययं-प्रकाश है। वहाँ स्त्रियोंका ताप ऋथवा मत्सर नहीं है। ब्राहुतियों पर उनकी उपजोविका अवलम्बित नहीं है, वे अमृत-पान भी नहीं करते (यह कल्पना है कि

मृत्युलोकमें किये हुए यज्ञोंमें जो आइ-तियाँ दी जाती हैं वे स्वर्गमें देवताश्रोंको प्राप्त होती हैं और पीनेके लिए उन्हें अमृत मिलता है)। परन्त यह ऋभूलोक उस खर्ग-से भी ऊपर है। जो आत्माएँ अथवा मनुष्य स्वर्गमें गये हैं, उन्हें खाने-पीनेक लिए कुछ भी नहीं मिलता। उन्हें भूख-प्यास नहीं लगती। परनत यह भी ध्यान देनेकी बात है कि यदि वे अमृत पी लॅंगे तो श्रमर हो जायँगे। फिर वे नीचे न गिरेंगे। कल्पान्तमें भी उनका परावर्तन नहीं होता।" (जान पड़ता है कि अन्य देव-तास्रोंका परावर्तन होता होगा।) देवता भी इन लोकोंकी श्रमिलापा करते हैं। परन्त वह अतिसिद्धिका फल है: विषय-सुखमें फँसे हुए लोगोंको वह मिलना श्रसम्भव है। ऐसे तेंतीस देवता हैं जिनके लोकोंकी प्राप्ति दान देनेसे होती है। श्रव, स्वर्गमें दोष भी हैं। पहला यह कि वहाँ कर्मके फलोंका उपभोग होता है, दूसरे कर्म नहीं किये जा सकते। अर्थात्, प्राय-की पूँजी चुकते ही पतन हो जाता है। दूसरा दोष यह है कि वहाँवालोंको अस-न्तोष-दूसरोंका उज्ज्वल ऐश्वर्य देखकर मत्सर—होता है। तीसरे जिस पुरुषका पतन होनेवाला होता है, उसका ज्ञान नष्ट होने लगता है, उससे मलका सम्पर्क होने लगता है श्रीर उसकी मालाएँ कुम्हलाने लगती हैं; उस समय उसे डर लगता है। ब्रह्मलोक तकके समग्र लोकोंमें ये दोष हैं। वहाँ पर केवल यही गुण है कि शुभ कर्मोंके संस्कारोंसे वहाँवालोंको पत्तन होने पर ्रितदेशक्रम प्राप्त होता है श्रीर उन्हें वहाँ पर छल मिलता है। यदि उन्हें फिर भी ज्ञान न हुआ तो फिर वे अवश्य अधो-गतिमें जाते हैं।"

जब पूछा गया कि खर्गसे भी श्रधिक श्रेष्ठ कौनसा लोक है, तो देवदूत बोला— "ब्रह्मलोकसे भी अर्ध्वभागमें सनातन, तेजोमय, विष्णुका उत्कृष्ट स्थान है। जिनके श्रन्तःकरण विषयोंमें जकड़ नहीं गये हैं वे ही वहाँ जाते हैं। जो लोग ममत्व-ग्रत्य, श्रहङ्कार-विरहित, द्वन्द्व-रहित, जितेन्द्रिय श्रीर ध्याननिष्ठ हैं वही वहाँ जाते हैं।" श्रर्थात्, यह लोक ज्ञानियों श्रीर योगियों-का है। प्रकट है कि इस लोककी कल्पना स्वर्गसे बढ़कर है। परन्तु इन लोकोंकी कल्पना किस तरह की गई है, यह बात यहाँ नहीं देख पड़ती।

प्रायश्चित्त।

पुर्य करनेवाले स्वर्गको जाते हैं श्रीर पापी लोग नरकको जाते हैं, इस कल्पना-के साथ ही पाप-कर्मके लिए प्रायश्चित्त-की कल्पनाका उद्गम होना सहज है। महाभारत-कालमें यह बात सर्वतोमान्य थी कि पापके लिए प्रायश्चित्त है। पाप दो प्रकारके माने जाते थे। एक तो वे पातक जो श्रज्ञानसे किये जाते हैं श्रीर दूसरे वे जो जान-वृभकर किये जाते हैं। स्रज्ञान-कृत पातकके लिए थोडा प्रायश्चित्त रहता है। स्मृतिशास्त्रमें, महाभारत-काल-के श्रनन्तर, जो प्रायश्चित्त-विधि वतलाई गई है, वैसी ही महाभारतमें थी। शान्ति पर्वके ३४ वें श्रध्यायमें विस्तारके साथ बतलाया गया है कि प्रायश्चित्तके योग्य कौन कौनसे कर्म हैं: श्रीर ३५ वें श्रध्याय-में भिन्न भिन्न पापोंके लिए भिन्न भिन्न प्रायश्चित्त लिखे गये हैं। कुछ कर्म कर नेसे पाप होता है; और कुछ कर्म न करनेसे भा पाप लगता है। इस श्रध्यादमी, कुके ३४ भेद गिनाये हैं। इनमें घर जला देने-वाला, वेद वेचनेवाला और मांस वेचने-वाला माना गया है। ऋत-कालमें स्त्री-गमन न करना भी पातक माना गया है। पहले लिखा जा चुका है कि महाभारत-

कालमें भी पश्चमहापातक माने जाते थे। वे पात्क ब्रह्म-हत्या, सुरा-पान, गुरु-तल्प गमन, हिरएय स्तेय और उनके करने वालोंके साथ व्यवहार रखना है। इनका वर्णन उपनिषदोंमें भी है। कुछ अवसर ऐसे श्रपवादक होते हैं कि उन पर किया हुन्ना कर्म पातक नहीं समभा जाता। इन श्रपवादक प्रसङ्गोंका वर्णन इसी श्रध्यायमें है। वेद-पारङ्गत ब्राह्मण भी यदि शख लेकर, वध करनेकी इच्छासे आवे, तो युद्धमें उसका वध करनेवालेको ब्रह्महत्या-का पातक नहीं लगता । मद्य-पानक सम्बन्धमें कहा गया है कि प्राणका ही नाश होता हो तो उसे बचानेके लिए श्रीर यदि श्रज्ञानसे मद्य-पान कर लिया हो तो अर्मनिष्ठ पुरुषोंकी आज्ञासे वह दुवारा संस्कार करने योग्य होता है। गुरकी ही आज्ञासे यदि गुरु-स्त्री-गमन किया हो तो वह पाप नहीं है। यहाँ पर यह अद्भत बात कही है कि उदालकने अपने शिष्यके द्वारा ही पुत्र उत्पन्न करा लिया था। परोपकारके लिए श्रम चुराने वाला, परन्तु उसे स्वयं न खानेवाला, मनुष्य पातकी नहीं होता। श्रपने श्रथवा दूसरेके प्राण बचानेके लिए, गुरुके काम-के लिए, श्रीर स्त्रियोंसे श्रथवा विवाहमे श्रसत्य भाषण किया हो तो भी पातक नहीं लगता। व्यक्षिचारिणी स्त्रीको अम्बन्बल वेकर दूर रखना दोषकारक नहीं है। इस तपसे वह पवित्र हो जाती है। जो सेवक काम करनेमें समर्थ न हो उसे श्रलग कर दिया जाय तो दोष नहीं लगता। धेरुके बचानेके लिए जङ्गल जलानेका दोष नहीं वतलाया गया। ये अपवादक-प्रसङ्ग ध्यान देने योग्य हैं।

महाभारत-कालमें प्रायश्चित्तके वहीं भेद थे जो कि इस समय स्मृतिशास्त्रमें विद्यमान् हैं। कुछ बातोंमें फ़र्क होगा, व्यन्तु मुख्य बातें वहीं थीं। (क्रच्छू, चान्द्रा-यण आदि) तप, यज्ञ और दान यही तीन रीतियाँ प्रायश्चित्तकी वर्णित हैं। वही रीतियाँ इस समय भी हैं। ब्रह्महत्या श्रादि महापातकों के लिए देहान्त प्रायश्चित्त बतलाया गया है, तथापि कुछ उनसे त्यन भी वर्णित हैं। ब्रह्महत्या करनेवाले-को हाथमें खप्पर लेकर भिन्ना माँगनी वाहिए, दिनमें एक वार खाना चाहिए. भूमि पर सोना चाहिए और अपना कर्म वक्ट करते रहना चाहिए। ऐसा करनेसे वह बारह वर्षमें ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होगा। ब्रह्महत्या करनेवाला ज्ञान-सम्पन्न शस्त्रधारी मनुष्यका निशाना वन जाय, या श्रमिमें देह त्याग दे, अथवा वेदका जप करता हुआ सौ योजनकी तीर्थयात्राको जाय, या ब्राह्मणको सर्वस्व दान कर दे श्रथवा गो-ब्राह्मणौंकी रत्ता करे, छः वर्षतक हुच्छ विधि करे अथवा अश्वमेध यज्ञ करे, तो वह पवित्र हो जायगा । दुर्योधनने हजारों, लाखों जीवोंकी हत्या कराई थी, रसलिए कहा गया है-"अश्वमेध-सहस्रेण-पावितुं न समुत्सहे ।" युधिष्ठिरसे व्यासने स्तीके लिए अश्वमेध करवाया था। कहा गयाहै कि विपुल दृध देनेवाली २५ हज़ार गौएँ देनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होता है। यदि एक बार भी मद्य-पान कर ले, तो गयश्चित्त-खरूप ख्व गरम किया हुआ मद्य पीनेके लिए कहा गया है। पर्वतकी गेटीसे कृद पड़ने अथवा अग्नि-प्रवेश करने या महा-प्रशान करनेसे, अथवा बेदार चेत्रमें हिमालय पर श्रारोहण करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। अगर ब्राह्मणुसे मद्य-पानका पातक हो जाय तो वृहस्पति-सव करनेके लिए कहा है। फिर वह सभामें जा सकता हैं। गुरु-पत्नीके साथ व्यभिचार करने-वालेको या तो तप्तलोहमय स्त्रीकी प्रतिमासे

श्रालिङ्गन करना चाहिए श्रथवा जननेन्द्रिय काटकर दौड़ते रहकर शरीर त्याग देना चाहिए। इस प्रकार, महापातकोंके लिए वहुधा देहान्त प्रायश्चित्त वतलाये गये हैं। एक वर्षतक श्राहार-विहारका त्याग कर देनेसे स्त्रियाँ पाप-मुक्त हो जाती हैं। महा-वतका श्राचरण करनेसे श्रर्थात एक महीने भर पानीतक न पीकर रहनेसे श्रथवा गुरुके कामके लिए युद्धमें मारे जानेसे भी पाप-मुक्ति हो जाती है। यह वात ध्यान देने योग्य है कि जिस प्रकार ब्राह्मण सबमें श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार उनका पातक भी अधिक अत्तम्य है, और उनकी प्रायश्चित भी विकट करना पड़ता है। यह नियम बताया गया है कि ब्राह्मणोंका है प्रायश्चित्त चत्रियोंके लिए, है वैश्योंके लिए श्रीर 🖁 श्रुटोंके लिए हैं। पवित्र देशमें रह-कर, मिताहार करके गायत्रीका जप करने-से भी पापका नाश होता है। प्रायश्चित्त-की एक विधि यह भी है कि दिन भर खडा रहे, रातको मैदानमें सोये, दिन-रातमें तीन बार स्नान करे श्रीर स्त्रियों, शृद्रों तथा पतितोंके साथ भाषण न करे। बौधायन श्रीर गौतम श्रादिके जो धर्मशास्त्र थे अथवा इसी प्रकारके अन्य प्रन्थ थे, उनसे उल्लिखित प्रायश्चित्त-विधियाँ ली गई हैं। इन विश्वियोंका मेल अनेक ऋंशोंमें स्मृतिशास्त्रवाले नियमोंसे मिलता है। श्रुणी-मांडव्यकी कथामें यह नियम श्राया है कि चौदह वर्षकी अवस्थातक अपराध या पातक नहीं होता।

मर्यादां स्थापयाम्यदा लोके धर्म फलोद्याम्। श्री तुर्दशकाद्वर्षात्र भविष्यति पातकम् ॥ इस पर टीकाकार की राय यह है—

इति पौराणं मतं वस्तुतस्कहेतोः पुग्यपापविभागज्ञान पर्यन्तमेव नुत्पत्तिः । तेन पञ्चवर्षाभ्यन्तर दोषोनास्ति।

इिएडयन पेनल कोडके अनुसार ७ वर्षको अवस्थातक कुछ भी अपराध नहीं है, फिर ७ से १४ तक बुद्धिकी पकता-के अनुसार, पाप-पुरायकी पहचानके मान-से, अपराध अनपराध निश्चित होता है। ब्रस्तुः प्रायश्चित्तकी कल्पनासे शरीरको क्रोश देनेकी बात क्यों कही गई? इसका थोड़ासा विचार करने पर श्रसल कारण शांत हो जायगा। प्रायश्चित्तका अर्थ केवल मनका प्रायश्चित्त नहीं है, किन्तु उसमें कुछ न कुछ देह-दएड रहना चाहिए। कई एक प्रायश्चित्तोंमें तो देहान्त पर्यन्त व्एड है; तब ऐसे प्रायश्चितोंकी क्या श्रावश्यकता है ? यह हेतु नहीं हो सकता कि दूसरों पर इसका श्रसर पड़े-वे इतने डर जायँ कि पाप-मार्गसे परावृत्त हो जायँ। फिर प्रश्न होता है कि प्राय-श्चित्त करनेवालेको इससे क्या लाभ होता है ? हमारी रायमें इसका कारण यह धारणा दिखाई देती है कि प्रायश्चित्तके द्वारा इसी देहसे श्रोर इसी लोकमें द्राड भोग-कर पापाँका चालन हो जानेसे मनुष्य फिर उन यातनाश्रोंसे बच जाता है जो कि पापोंके एवज़में यमलोकमें भोगनी पड़ती हैं। पापोंके लिए तो सज़ा होगी ही; वह स्वयं यदि इसी लोकमें भोग ली जाय तो मनुष्यको नरक नहीं भीगना पड़ेगा—बह श्रपने पुर्यसे खर्गको जायगा । यह कल्पना बहुत ठीक जँचती है। यमयात-नावाली श्रथवा प्रायश्चित्तवाली देहद्राड-की विधिसे धर्मशास्त्रका यह हेतु प्रकट होता है कि मनुष्यको पापाचरणकी श्रोर-से भय बना रहे।

पाप-कर्मका विचार करते हुए जो श्रपवादक स्थान बतलाये गये हैं, उनका मर्म क्या है ? यह श्रत्यन्त महत्त्वका प्रश्न है। बड़े बड़े तत्त्वज्ञानियोंतकको यह प्रश्न कठिन जँचता है। कई स्थलों पर यह श्राक्षा पाई जाती है कि मनुष्यको श्रपने कर्तव्य-धर्मकी रज्ञा प्राण देकर भी करनी चाहिए। भारत-सावित्रीमें कहा है—

न जातु मोहान्न भयान्न लोभात् धर्म त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।

फिर, श्रपने श्रथवा पराये प्राण् बचानेके लिए ऊपर जो भूट बोलनेको पातक नहीं माना है वह क्यों ? प्रश्न श्रत्यन्त महत्त्वका है; इसका विचार श्रम्य स्थान पर होगा।

संस्कार।

यह कहीं नहीं कहा गया कि महा-भारत-कालमें भिन्न भिन्न कितने संस्कार थे: तथापि कई एक संस्कारोंका वर्णन स्थान स्थान पर श्राया है। उससे प्रकट है कि गृहास्कोक धर्ममें गृह-संस्कार हुआ करते थे। पहले, जन्मते ही जात कर्म-संस्कारका नाम विशेषतासे त्राता है। विवाह प्रौढ़ावस्थामें ही होते थे: श्रीर विवाहमें ही पति-पत्नि-समागम हुआ करता थाः श्रौर उस जमानेमें उस विधिसे गर्भाधान संस्कारका होना ठीक ही है। जातकर्म संस्कारके पश्चात् चौल श्रीर उपनयन दोनों ही संस्कारीका उल्लेख महभारतमें है। परन्तु वहाँ इनका विशेष वर्णान नहीं है । उपनयन वास्तवमे गुरुके घर पहुँचा देनेकी विधि थी श्रीर स्पष्ट देख पड़ता है कि इस विधिका माहात्म्य उस समय केवल संस्कारके ही नाते न था। इसके बाद विवाह संस्कारका लाभ है। इसका उल्लेख श्रनेक स्थानों पर हुन्ना है न्त्रीर हम उसकी विवेचन भी श्रन्यत्र कर चुके हैं। विवाह के बाद दो संस्कार श्रीर हैं, वानप्रश श्रीर संन्यास । शान्तिपर्वमें इनका थोड़ी सा वर्णन है। श्रोध्वंदैहिक संस्कार श्रन्तिम

है। प्राचीन समयमें मन्त्रोंके द्वारा प्रेतको जलानेकी विधि इस संस्कारमें थी। मूल्यतः, प्रेतको समारंभके साथ ले जाने ब्रीर मृतककी श्रक्तिको श्रागे करके उसी श्रिसे उसको जलानेकी विधि थीं। महाभारतके स्त्रीपर्वमें युद्धके पश्चात् रण-में काम आये हुए अनेक मुद्दोंके अग्नि-संस्कार होनेका वर्णन है। परन्त यह सम्भव नहीं कि एसे रणाङ्गणमें कोसोंतक केले हुए श्रीर श्रद्वारह दिनकी लडाईमें मारे गये लोगोंकी लाशें पाई गई होंगी। महाभारतमें एक स्थान पर यह भी कहा गया है कि युद्धमें काम श्रानेवालेके लिए प्रेत-संस्कारकी श्रावश्यकता नहीं। श्रस्त : भीष्मके श्रम्नि-संस्कारका वर्णन करना यहाँ अनुचित न होगा-"युधि-ष्ट्रिर श्रीर विदुरने गाङ्गेयको चिता पर रखाः श्रोर रेशमी वस्त्रों तथा पूष्पमालाश्री-से दक दिया। फिर युयुत्सुने उत्पर छत्र लगाया। श्रर्जुन श्रोर भीम सफेद चौरी करने लगे। नकुल श्रीर सहदेवने मोरछल (उप्णीप) लिया। कौरव-स्त्रियाँ उन्हें ताड़के पंखे भलकर हवा करने लगीं। इसके पश्चात् यथाविधि पितृमेध हुआ। श्रिप्तमें हचन हुआ। सामगायकोंने साम-गान किया। इसके पश्चात् चन्दन काठ श्रीर कालागरसे देह छिपाकर युधिष्ठिर श्रादिने उसमें श्राप्ति लगा दी। फिर धृत-राष्ट्र आदि सव लोगोंने अपसव्य होकर उनकी प्रदक्षिणा की। तब, दहन हो चुकने पर, वे सब गङ्गा पर गये: वहाँ सबने उन्हें तिलाञ्जलियाँ दीं।" (श्रनुशासन पु॰ अ॰ १६=)। इस वर्णनसे देख पड़ता है कि श्राजकल प्रायः जैसी विधि है वैसी ही महाभारत-कालमें भी थी। सिर्फ स्त्रियों-का मुदेंके श्रास-पास खड़े होकर हवा करना कुछ विचित्र जान पड़ता है। श्रन्य वीरोंकी क्रिया कर चुकने पर जब पागड्य

तिलाञ्जलि देनेके लिए गङ्गा पर गये, तब तिलाञ्जलि देनेके लिए वहाँ समस्त स्त्रियों-के भी जानेका वर्णान है।

प्राचीन समयमें अशौच अर्थात मरने श्रीर उत्पन्न होनेके विषयमें सूतक मानने-की विधिभी थी। इसका प्रमाण यह वर्णन है कि जो लड़ाईमें मारे जायँ उनका सुतक न मानना चाहिए। यद्यपि ऋशौच-विष-यक विस्तृत विवेचन महाभारतमें नहीं है, तथापि एक स्थान पर दस दिनवाली मुख्य रीतिका उल्लेख है। शान्तिपर्वके ३५ वें अध्यायमें कहा है कि अशोच या वृद्धि-वालोंके अन्नको, और दस दिन परे होने-से पहले अशौच या वृद्धिवालोंके अन्य किसो पदार्थको भन्नण न करना चाहिए। इससे प्रकट है कि आजकलकी अशीच-विधि बहुत कुछ महाभारतके समय प्रच-लित थी। शान्तिपर्वके श्रारमभमें ही कहा है कि-"भारती-युद्धके पश्चात धत-राष्ट्रने श्रीर भरत-कुलकी सभी स्त्रियोंने अपने अपने इप्-मित्रोंकी उत्तरिक्रया की: श्रीर शनेक दोषोंसे मुक्त होनेके लिए पाएडु-पुत्र एक महीनेतक नगरके वाहर रहे।" आप्तों और इष्टोंकी किया कर चुकने पर धर्मराजसे मिलनेके लिए व्यास प्रभृति महर्षि श्राये थे। इससे कुछ दिन-तक श्रशौच माननेकी विधि देख पडती है। श्रीर्ध्वदेहिक-सम्बन्धसे भिन्न भिन्न दान श्रीर श्राद्ध करनेकी विधि थी, इसका भी उल्लेख महाभारतमें है।

जैसा कि पहले लिखा गया है कि
युद्धमें मारे गये वीरोंका न तो स्तक
मानना चाहिए श्रोर-न उनके लिए उत्तरक्रिया करनेकी श्रावश्यकता है, वैसा
वचन महाभारत (शान्ति० श्र० ६८-४५)
में है। हिंस्र पशु-पन्नी मुदोंको खा जायँ,

प्रेतान्नं स्तिकान्नं च यच किश्विदनिर्दशम् । २६ ।

यही उनकी गति श्रीर उत्तरिक्रया देख पड़ती है। इससे यह भी नहीं देख पड़ता कि तमाम मुदें जलाये ही जाते थे। युनानी इतिहासकारोंने लिखा है कि पञ्जाबमें कुछ लोगोंमें एक प्रकारकी यह अन्त्यविधि है कि गृध्न श्रादिके खानेके लिए मुदां जङ्गलमें एख दिया जाता है। पहले यह वतलाया ही गया है कि पञ्जाब-के कुछ लोगोंकी रीतियाँ आसुरों अर्थात् पारसी लोगोंकी ऐसी थीं। युद्धमें काम श्राये हुए वीरोंके मुदोंकी यही किया है। चीनी परिवाजक हुएनसांगने भी लिखा है कि हिन्दुस्थानियोंमें तीन प्रकारकी अन्त्य-विधि होती है। श्रय्नि-संस्कार, पानीमें डाल देना श्रीर मुदेंको जङ्गलमें रखकर हिस्र पश्च-पित्रयोंसे खिलवा देना। महाभारत-में इन तीनों भेदोंका उल्लेख है। योगी लोग जीवितावस्थामें ही नदीमें इवकर या पर्वतकी चोटीसे कदकर प्राण देते श्रथवा श्रमिमं देहको जला देते थे। पहले लिखा ही जा चुका है कि प्रायश्चित्तके लिए भी इस रीतिसे देह त्याग करना कहा गया है। इस प्रकार यथा-विधि की हुई श्रात्म-हत्या भी निन्दा नहीं, वह तो एक धार्मिक कर्म मानी जाती थी। योगी अथवा संन्यासी मर जायँ तो उनको समाधि देनेकी रीति श्राजकल है। नहीं कह कि महाभारत-कालमें ऐसा नहीं। इस या विषय का कुछ श्रधिक खुलासा कर देना श्राव-श्यक है। श्राधमवासि पूर्वमें वर्णन है

शवंबा बाहित बीवन्त उनके विष् इत :-

(19-73 OF OF THE) FORESTEEN POST

for water converted b.

कि जब युधिष्टिरके समज् विदुरका देहान हुआ तब उसकी अन्तिम गतिकी ब्यवसा युधिष्ठिर करने लगे; परन्तु श्राकाशवाणी ने उन्हें इस कामसे रोक दिया अर्थात् विदुरकी मृत देह जलाई नहीं गई; परन्त देख पड़ता है कि वह गाड़ी भी नहीं गई। तब कहना चाहिए कि मुद्दां वहीं पड़ा रहा श्रीर जङ्गलके हिंस्र पशुश्रीने उसे खा लिया। तात्पर्य यह है कि संन्या सियोंकी प्रतिविधिका ठीक ठीक पता नहीं लगता। इस सम्यन्धके नीचे लिखे हुए श्लोक ध्यान देने योग्य हैं:-धर्मराजश्च तत्रेनं संचस्कारियपुस्तदा॥ दण्युकामोऽभवद्विद्वानथ वागभ्यभाषत॥ भो भो राजन्न दग्ध्रव्यमेतद्विदुरसंज्ञकम्॥ कलेवरमिहेवं ते धर्म एव सनातनः। लोको वैकर्तनो नाम भविष्यत्यस्य भारत॥ यतिधर्ममवाप्तोसौ नैप शोच्यः परंतप॥

(श्राश्रमवासिकपर्व श्र. २८, ३१-३३)
श्रस्तः यहाँतक विस्तारके साथ इस
वातका विवेचन किया गया है कि भारतीकालके श्रारम्भसे लेकर महाभारत-काल
पर्यन्त भारती लोगोंकी धर्म-विषयक कल्पनाएँ क्या क्या थीं श्रोर श्राचार क्या क्या
थे श्रोर उनमें थोड़ा बहुत परिवर्तन किस
तरह हो गया। श्रव, धर्मसे संलग्न जो
तत्वज्ञानका विषय है उस पर ध्यान देना
चाहिए श्रोर सोचना चाहिए कि महाभारत-काल पर्यन्त भिन्न मिन्न मोनमार्ग भारतवर्षमें किस प्रकार स्थापित
हुए थे।

े जिलाबों क्यों हो। ए (अब्द्रशासम पे (रेट) 1 ईस वर्णन से स्व पेड़न

的一个时间 使给 中的 医三种

किनी केली ! कि कि का कर कार

कोलहकाँ फकरण।

तत्वज्ञान । वह ।

क्कान्य लोगोंकी अपेत्ता भारती आयोंकी यदि कोई विशेषता है, तो वह उनका तत्त्वज्ञान है। सब लोगोंमें भारती श्रार्य तत्वज्ञानके विषयमें श्रमणी थे: श्रीर भारती आयोंके सब तत्वज्ञानमें वेदान्त-ज्ञान श्रव्रणी था। महाभारतमें श्रायोंके सव तत्वज्ञानका समावेश और उल्लेख किया गया है। महाभारतका सबसे बडा गुण यही है कि, वह तत्वज्ञानकी भिन्न भिन्न चर्चासे पाठकोंका मनोरञ्जन और शानवृद्धि किया करता है। यह चर्चा इस सम्पूर्ण बृहत् प्रन्थ भरमें फैली हुई है। तत्वज्ञान विषयक अनेक प्रकरणोंमें भगवद्गीता सबकी शिरोमणि है, सो स्पष्ट् ही है। भगवद्गीताका प्रामाएय उपनिषदोंके समान माना जाता है। अनु-गीता, शान्तिपर्वका मोत्तधर्म, उद्योगपर्व-का सनत्सुजातीय, वन पर्वका युधिष्ठिर-व्याध-सम्बाद श्रोर इसी प्रकारके श्रन्य बोटे छोटे सम्बाद श्रीर श्राख्यान मिल-कर भारतीय तत्वज्ञानका, प्राचीन काल-का, बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण ग्रन्थ-समुदाय ही वन जाता है। रामायणमें तत्वज्ञान-विषयक चर्चा बहुत थोड़ी है। अर्थात्, उपनिषद्ोंके बाद् तत्वज्ञानका सबसे प्राचीन ग्रन्थ महाभारत ही है। षड्शास्त्रोंके भिन्न भिन्न सूत्र, जो कि इस समय पाये जाते हैं, महाभारतके वादके है। प्राचीन कालसे महाभारतके समय-तक इन भिन्न भिन्न तत्वज्ञानोंके विचार कैसे कैसे बढ़ते गये, इस बातको ऐति-हासिक रीतिसे देखनेका साधन महा-भारत ही है। जैन और बौद्ध शासनीका

विचार महाभारतमें प्रत्यक्त नहीं श्राया है, तथापि श्रप्रत्यक्त रोतिसे उनके भी मतोंका विचार उसमें पाया जाता है। श्रच्छा, श्रव हम महाभारतके तत्वज्ञान-विषयक भिन्न भिन्न श्राख्यानों परसे यहाँ यह विचार करते हैं कि, महाभारतकालतक तत्वज्ञानकी उन्नति भरतखण्डमें कैसी हुई थी।

यह बात सबको मालूम ही है कि, तत्वज्ञान-सम्बन्धी विचार भारतवर्षमें बहुत प्राचीन कालसे हो रहे हैं: और उनकी चर्चा ऋग्वेदमें भी है। जब मनुष्य प्राणि-जगतके रहस्यका विचार करने लगता है, उस समय उसका मन श्रायन्त वृद्धि-मत्ताकी जो छलाँगें भर सकता है, श्रीर श्रपने वृद्धिवलसे जो भिन्न भिन्न सिद्धान्त बाँध सकता है, वे सारेसिद्धान्त ऋग्वेद-के कितने ही सुक्तोंमें हमें दिखाई दे रहे हैं। वेदके श्रन्तिम भाग उपनिषद् हैं। उनमें मनुष्य श्रोर सृष्टिके सम्बन्धका जो अत्यन्त परिणत सिद्धान्त तत्वज्ञानके नामसे भारतवर्षमें प्रसापित हुआ, उसका विवेचन बहुत ही वक्तृत्वपूर्ण वाणीसे किया गया है। वेदमतसे मान्य होनेवाले इन तत्वज्ञान-सिद्धान्तोंके साथ ही दूसरे वेदवाद्य सिद्धान्त भी भारतवर्षमें अवश्य प्रचलित हुए होंगे। कारण यह है कि जब एक बार मनुष्यका मन, खोजके साथ, तत्वज्ञानका विचार करने लगता है, तब उसकी मर्यादा श्रन्ततक, श्रर्थात् यह भी कहनेतक कि ईश्वर नहीं है, पहुँच जाया करती है। इस प्रकारके विचार उपनिषत्कालमें प्रचलित थे अथवा नहीं, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। इन मतींके मुख्य प्रवर्तक कपिल श्रीर चार्वाक थे। उनका नाम उपनिषदीमें, श्रर्थात् प्राचीन दस उपनिषदोंमें, विल-कुल ही नहीं आया है। तथापि, ये वेद- बाह्य तत्वज्ञानके सिद्धान्त बहुत प्राचीन होंगे, क्योंकि महाभारतमें उनकी अत्यन्त प्राचीनताका उल्लेख किया गया है। महाभारतमें यह लिखा हुआ है कि, कपिल एक प्राचीन ऋषि थे: और चार्वाक नामक एक ब्राह्मण दुर्योधनका सखा था। उसने राज्यारोहणके अवसर पर युधि-छिरकी निन्दा की थी, इसलिए ब्राह्मणोंने उसे केवल हुंकारसे दग्ध कर डाला। इस वर्णानसे जान पड़ता है कि, चार्वाक का मत बहुत प्राचीन कालका है; और वह वेदबाह्य भी माना जाता था।

पंचमहाभूत।

इस प्रकार, भारती-कालके प्रारम्भमें तीन तत्वज्ञान, अर्थात भिन्न भिन्न रीति-से जगतके रहस्यका उदघादन करनेवाले सिंद्धान्त प्रचलित थे। वेदान्त मत श्रीर कपिल तथा चार्वाकके मत प्रारम्भके तत्वज्ञान थे। यह स्वाभाविक ही है कि, इन तत्वज्ञानीका कुछ भाग समान होना चाहिए। कुछ कल्पना श्रीर कुछ बातें सब तत्वज्ञानींके मूलमें एकही सी होनी चाहिएँ। पञ्चेन्द्रियों श्रौर पञ्चमहाभूतों-की कल्पना खाभाविक ही भारतवर्षमें उसी समय निश्चित हुई होगी जब कि यहाँ तत्वज्ञानका विचार होने लगा था। यह भी कहा जा सकता है कि पञ्चेन्द्रिय श्रौर पञ्चमहाभूत भारतीय तत्वज्ञानोंके मुलाचर हैं। यहाँ यह बात बतलानी चाहिए कि, भारती ब्रार्य पाँच महाभूत मानते हैं; परन्तु पश्चिमी तत्वज्ञानका विचार करनेवाले उन्हींके भाई श्रीक लोग चार ही महाभूत मानते हैं। एक जर्मन ग्रन्थकारने कहा है—"इस सृष्टिके सव पदार्थ जिन चार भूतोंसे उत्पन्न हुए हैं, उन महाभूतोंका इतिहास बहुत पुराना है। श्रारिस्टाटलने सृष्टिरचनाका विचार

करते हुए यहीं चार महाभूत माने हैं: श्रौर जब कि उसके नामका एक बार श्राधार मिल गया, तब उन चार महा-भूतोंके विषयमें किसीने सन्देह नहीं किया। श्राज कितनी ही शताब्दियांसे वे ज्योंके त्यों जारी हैं।" यहाँ पर यह बत लानेकी आवश्यकता नहीं कि, आधुनिक पाश्चात्य तत्वज्ञानसे चार मूलभूतोंका तो सिद्धान्त उड़ गया ; श्रीर इसीको ध्यानमें रखकर उपर्युक्त जर्मन परिडतने ऐसा कहा है। श्राजकलके समयमें श्रनेक तल स्थापित हुए हैं। परन्तु जान पड़ता है कि ये भी स्थिर न रहेंगे; आगे चलकर इनका समावेश एकमें ही हो जायगा। जो हो: जगत्का विचार करने पर, श्रवश्य ही, सूदम रीतिसे थोड़ा निरीच् करनेवाले को चार मूलभूत दिखाई देने चाहिएँ। संसारके तीन प्रकारके पदार्थ हमारी दृष्टि-में श्राते हैं। पृथ्वीके समान दढ़, पानीके समान द्व श्रौर वायुके समान श्रदृश्य। इनके सिवा चौथा पदार्थ ऋशि भी ऐसा है जो मनुष्यकी कल्पनामें शीघ्र श्रा सकता है। क्योंकि इस बातका खुलासा करनेके लिए, कि ज्वलनकी किया कैसे होती है, अग्निको एक भिन्न तत्व मानना पड़ता है। मतलब यह है कि, पृथ्वी, जल, वाय श्रीर श्रमि—ये दृश्य श्रथवा जड़ सृष्टिके चार मृलभूततत्व प्रत्येक विचार-शील मनुष्यको सुभने योग्य हैं; श्रीर तद-नुसार पाश्चात्य तत्ववेत्ताश्चोंने चार ही महातत्व माने भी हैं। परन्तु यह एक बड़ श्राश्चर्यकी बात है कि, भारती श्रायोंने पाँचवाँ महातत्व आकाश कहाँसे मान लिया। अधिक क्या कहा जाय, सचमुच यह एक वड़े आश्चर्यकी बात है कि, प्राचीन भारती-श्रायींने केवल श्रपनी बुद्धिमत्तासे श्राकाश-तत्व ढूँढ़ निकाला। बड़े बड़े त्राधुनिक रसायन-शास्त्रवेत्ता भी श्रव यही

मानने लगे हैं कि, पाश्चात्योंने जिन श्रनेक मूलतत्वोंकी खोज की है, उन सबका लय एक श्राकाश-तत्वमें ही, श्रथवा ईथर नामके तत्वमें ही, होता है।

यह प्रायः सम्भव है कि जिस रीति-मे श्रीर जिस कारण श्राजकल पाश्रा-त्य तत्ववेत्ता एक तत्व मानने लगे हैं. उसी रीतिसे श्रीर उसी कारणसे भारती-श्रायोंने भी विचार किया होगा, श्रीर इसी लिए उन्होंने यह पाँचवाँ आकाश-तत्व माना होगा। श्रवाचीन तत्ववेत्ताओं-का जो यह सिद्धान्त है कि, सारो सृष्टि एक ईश्वरसे उत्क्रांति या विकासवादकी रीतिसे उत्पन्न हुई है, सो यह सिद्धान्त वहत प्राचीन कालमें भारती श्रायोंने दुँढ निकाला था। यह बात प्रत्यच श्रवुभव-की भी है कि, दढ़ पढ़ार्थ उप्णतासे द्रव श्रर्थात पतले वन जाते हैं: और पतले पदार्थ अधिक उप्णतासे वायुरूप वन जाते हैं — अर्थात् पृथ्वी तत्व जलरूप था श्रीर जल वायुरूप था। ऐसी दशामें वायु भी किसी न किसी दूसरे मुलतत्वसे निकला हुआ होना चाहिए। भारतवर्षके वेदान्ततत्वज्ञानी केवल श्रपनी वृद्धिमत्ता-ने वैभवसे उस जगह पहले ही पहुँचे थे, जहाँ कि वर्तमान पाश्चात्य रसायनतत्व-वेता आज पहुँच रहे हैं। श्रोर, उन्होंने यह सिद्धान्त बाँधा कि, सारी सृष्टि एक ही मूल-तत्वसे, अर्थात् श्राकाशसे, उत्पन्न हुई है। अन्तमें उन्होंने यह भी प्रतिपादन किया कि, यह आकाश तत्व भी परब्रह्मसे निकला है। उपनिषदोंमें यह स्पष्ट बत-लाया गया है कि, परमात्मासे आकाश तिकलाः श्राकाशसे वायु, वायुसे श्रश्नि, अग्निसे जल श्रीर जलसे पृथ्वी उत्पन्न हुई। उनका यह भी मत है कि इन तत्वीका इसके विरुद्ध कमसे, लय होगा। मतलव यह है कि, भारती आर्योंने विकासवाद श्रीर प्रत्याहारवाद हज़ारों वर्ष पहले हूँढ़ निकाला था; श्रीर यही सिद्धान्त महा-भारतमें जगह जगह प्रतिपादित किया गया है।

पाँच इन्द्रियाँ प्रत्येक मनुष्यकी करपनामें श्रा सकती हैं। इन इन्द्रियोंसे भी पाँच महाभूतोंकी कल्पना-का उत्पन्न होना स्वामाविक बात है: क्योंकि प्रत्येक महाभूतमें एक एक गुण ऐसा है कि, प्रत्येक भिन्न भिन्न इन्द्रिय उस गुण पर प्रभाव करती है। इससे अवश्य ही यह अनुमान निकलता है कि. पाँच इन्द्रियोंके अनुसार पाँच तत्व होंगे। श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्ना श्रौर नासिका. ये पाँच इन्द्रियाँ मनुष्यकी देहमें है: श्रीर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, ये पाँच उनके गुण भी हैं। इन गुणोंके अनुसार ही प्रत्येक तत्वमें धर्म है। पृथ्वीका धर्मगन्धः जलका धर्म रस, जो जिह्वासे चखा जाता है: श्रमिका धर्म रूप, जो दृष्टिसे दिखाई देता हैं, श्रीर वायुका धर्म स्पर्श, जो त्वचासे ग्रहण होता है। त्रव, राज्य त्रथवा श्रोत्रसे ग्रहणा होनेवाला विशिष्ट धर्म जिसका है, वह पाँचवाँ तत्व भी चाहिए । इस-लिए उन्होंने निश्चित किया कि वह तत्व त्राकाश है। पाँच तत्व, पाँच इन्द्रियाँ श्रीर पाँच गुण-यह परम्परा तो ठीक लग गई। उसमें भी भारती आयोंने यह एक विशेषता देखी कि, भिन्न भिन्न तत्वोंमें एककी श्रपेचा श्रिष्ठक गुण बढते हुए परिमाण्से हैं । ऋर्थात् पृथ्वी-तत्व में पाँचों गुण हैं। यह अनुमानकी बात है कि पृथ्वीसे शब्द सुनाई देता है। पृथ्वी-में स्पर्श भी है, रूप भी है, त्रौर रस भी है; इससे उन्होंने यह सिद्धान्त बाँधा कि, जिस एक तत्वसे दूसरा तत्व निकला, उस तत्वके गुण दूसरे तत्वमें मौजूद हैं: श्रीर इसके सिवा उस तत्वका स्वतंत्र

गुण श्रधिक रहता है। श्राकाश, वायु, श्रम्भि, जल श्रीर पृथ्वी, इन क्रमशः चढ़ते इए तत्वों में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध-के विशिष्ट गुण हैं: श्रीर प्रत्येक तत्वमें पिछले तत्वके भी गुए रहते हैं। अर्थात् इससे यह सिद्धान्त निकलता है कि, पृथ्वीमें पाँच, जलमें चार, श्रग्निमें तीन, वायमें दो श्रीर श्राकाशमें एक गुण है। यह सिद्धान्त सब भारती तत्वज्ञानियों-को मान्य है। यह तो उनका आधार ही है। महाभारतमें जब किसी तत्व-ज्ञानका विचार शुरू होता है, तब पाँच महाभूतों, पंचेन्द्रियों श्रीर चढ़ते हुए परिमाणसे पाँच गुणोंका विवेचन अवश्य किया जाता है। हाँ, चार्वाकके नास्तिक मतमें अवश्य ही यह सिद्धान्तमान्य नहीं है। चार्वाक केवल प्रत्यच-प्रमाण-वादी थे, श्रतएव उन्होंने चार ही तत्व स्वीकार किये हैं। श्रीक लोगोंकी भाँति वे पृथ्वी, जल, श्रमि श्रीर वाय, इन्हीं चार तत्वोंको मानते हैं। वे इन तत्वोंको खतंत्र भी मानते हैं । वे यह भी मानते हैं कि, परमेश्वर नहीं है। श्रीर जब कि परमेश्वरने सृष्टि उत्पन्न ही नहीं की, तब उनको यह भी माननेकी श्रावश्यकता नहीं कि, चारों भूत एक दूसरेसे निकले। सच पूछा जाय तो यही समभमें नहीं श्राता कि चार्वाक श्रथवा मास्तिक मतको तत्वज्ञान च्यो कहा जायः क्योंकि इन लोगोंकी यह धारणा होती है कि, साधारणतः वुद्धि स्रोर इन्द्रियों-को जो ज्ञान होता है, अथवा उनके अनु-भवमें जो त्राता है. उसके त्रागे कुछ भी नहीं है। ऐसी दशामें यही समभमें नहीं श्राता कि, उसके मतको तत्वज्ञान, श्रथवा दर्शनशास्त्र क्यों कहा जाय। श्रवश्य ही वह सत बहुत पुराना है, श्रोर यही नहीं, बल्फि इसका अस्तित्व सदासे चला आता

है। इसी लिए भगवद्गीताने, "श्रपरस्परसं भूतं किमन्यत्कामहेतुकम्" इत्यादि वचनोंसे इसका निपंध किया है।

जीव-कल्पना।

सम्पूर्ण जड़ सृष्टिका पृथकरण निश्चित हो जाने पर पंचमहाभूतों श्रीर उनके भिन्न भिन्न पाँच गुणोंकी कल्पना करना खाभाविक श्रोर सहज है। तत्वज्ञानके विचारकी यही पहली सीढ़ी है। इस विषयमें पाश्चात्य श्रीर प्राच्य तत्वज्ञानां में - दर्शनोंमें - बहुत मत-भेद भी नहीं है। परनत इसके श्रागेकी सीढ़ी कठिन है। पंचमहाभूतों श्रीर पंचेन्द्रियोंके श्रति-रिक्त और भी इस संसारमें कुछ है या नहीं ? इच्छा, बुद्धि, ऋहंकार, इत्यादि बातें जड हैं, अथवा जड़से भिन्न हैं? यह प्रश्न बहुत कठिन है कि जड़से भिन कोई पदार्थ है अथवा नहीं। श्रीर, इस प्रश्नके विषयमें सब काल और सब लोगोंमें मतभेद रहा है। पहलेपहल यह कल्पना होना स्वाभाविक है कि, जीव श्रथवा श्रात्मा जडसे भिन्न है। श्रत्यन्त जङ्गली लोगोंमें भी यह कल्पना दिखाई देती है। परन्तु कितने ही लोगोंने यहाँतक कहनेका साहस किया है कि, जीव श्रथवा श्रातमा है ही नहीं। तत्वज्ञानके विषयमे दूसरा विचार यही है। नास्तिक लोगोंने ऐसा निश्चित किया है कि, जगत्का चेतन श्रनुभव किसी भिन्न जीवका परिणाम नहीं है; किन्तु जिस प्रणालीसे पंचमहाभूत शरीरमें एकत्र हुए हैं, उस प्रणालीका यह एक विशिष्ट गुण है। इस विषयो नास्तिकोंके जो तर्क हैं, उनका खरूप शांति पर्वके २१ वें ऋध्यायमें, पंचशिख श्रीर जनकके सम्वादमें, स्पष्टतया दिखलाया गया है। नास्तिकोंका कोई प्राचीन प्रन्थ आजकल उपलब्ध नहीं है। जैसा कि हम

वहते कह चुके हैं, नास्तिक श्रथवा सांख्य श्रथवा योग इत्यादि तत्वज्ञानोंका जो सबसे प्राचीन ग्रन्थ, इस समय उपलब्ध है, वह महाभारत ही है। इस कारण कहीं कहीं श्लोकोंका श्रथं समझनेमें कठिनाई वड़ती है। उपर्युक्त श्रध्यायमें ये श्लोक हैं:— नान्यो जीवः शरीरस्य

नास्तिकानां मते स्थितः।
रेतौ वटकणीकायां
ग्रृतपाकाश्रिवासनम्॥
जातिः स्मृतिर्यस्कान्तः
सर्यकान्तास्वभन्तणम्॥

स्यकान्ताम्बुमक्रणम्। प्रत्यभूतात्ययश्चेव देवताद्यपयाचनम् ॥ मृते कर्मनिवृत्तिश्च प्रमाणमिति निश्चयः। श्रमूर्तस्यहि मूर्तेन सामान्यं नोपपद्यते॥

इन श्लोकोंमें नास्तिकोंका मत-प्रदर्शन श्रौर उसका खएडन भी है। नास्तिक कहते हैं—"जैसे वटके छोटे बीचमें वड़ा वटवृत्त उत्पन्न करनेकी शक्ति है, उसी प्रकार रेतमें पुरुष निर्माण करनेकी शक्ति है। जैसे गौके द्वारा खाये जाने पर घास-से घी उत्पन्न होता है, अथवा भिन्न भिन्न परिमाणसे कुछ पदार्थ एकत्र करनेसे, उनसे श्रधिवासन श्रर्थात् सुवास श्रथवा मादकता उत्पन्न होती है, उसी प्रकार चार तत्व एक जगह होनेसे, उनसे मन, बुद्धि, श्रहङ्कार इत्यादि वार्ते दिखाई देती है। जैसे श्रयस्कान्त श्रर्थात् लोहचुम्बक लोहेको खींच लेता है, अथवा सूर्यकान्त मिण उष्णता उत्पन्न करता है, उसी प्रकार चार महाभूतोंके संयोगसे विशिष्ट शक्ति उत्पन्न होती है।" (यहाँ चार महाभूतों-का उत्तेख होनेसे जान पड़ता है कि, नास्तिकोंके मतमें पञ्चमहाभूत नहीं है, किन्तु चार ही हैं।) इस पर पञ्चशिखने ऐसा जवाव दिया है—"जव कि मनुष्यके मरने पर किस्ती प्रकारका भी कर्म नहीं होता, तव यह निश्चयपूर्वक सिद्ध होता है कि, महाभूतोंसे कोई न कोई एक भिन्न पदार्थ देहमें अवश्य है। क्योंकि प्राणीके मरने पर पञ्चमहाभूत पहलेकी भाँति ही शरीरमें शेष रहते हैं। फिर ध्वासोच्छ्वा-सादि वन्द कैसे हो जाते हैं? ऐच्छिक व्यापार बन्द क्यों हो जाते हैं? ऐसी दशामें चैतन्यका देहसे भिन्न होना श्रवश्य निश्चित है। इसके श्रतिरिक्त, यह चैतन्य श्रचेतन जड़से उत्पन्न नहीं हो सकता। क्योंकि जब कारगोंका स्वभाव जड़ है, तय कार्यमें भी वैसी ही जड़ता आनी चाहिए। अमूर्त और मूर्तका मेल हो नहीं सकता।" इसी वातको भिन्न शब्दों-में इस प्रकार कह सकते हैं कि, चाहे पचास अथवा हजार जड़ वस्तुएँ एकत्र की जायँ, परन्तु उनसे जो कुछ उत्पन्न होगा, वह जड़ ही वस्तु होगी। चेतन वस्तु उत्पन्न नहीं होगी, यह स्पष्ट है।

जो तत्यज्ञानी शरीरसे भिन्न चैतन्य-को मानते हैं, उनकी तर्कपरम्परा सदैव ऐसी ही होती है। ग्रीक देशका तत्ववेत्ता सोटीयस् नूतन-सेटो-मतवादी था। उसने इस बातको सिद्ध करते हुए कि श्रात्मा शरीरसे भिन्न है-वह शरीरका समवाय श्रथवा कार्य या व्यापार नहीं है - कहा है:- "चार महाभूतोंको एकत्र करनेसे जीव नहीं उत्पन्न हो सकता, क्योंकि किसी एक जड़ पदार्थमें जीव नहीं है। इसलिए ऐसे पदार्थों के चाहे जितने समूह एकत्र किये जायँ, तथापि उनसे. जीव नहीं उत्पन्न हो सकता। इसी भाँति, जो बुद्धिरहित हैं उनसे बुद्धि उत्पन्न नहीं हो सकती। ऐसी दशामें, जीवका उत्पन्न करनेवाला कोई न कोई, जड़ वस्तुसे भिन्न और श्रेष्ठ अवश्य होना चाहिए।

यही क्यों, यदि चैतन्यकी शक्ति न होगी, तो देह ही उत्पन्न नहीं हो सकती।" भारतीय श्रार्य तत्ववेत्ताश्रोंका यह मत, कि श्रात्मा शरीरसे भिन्न है, श्रीक लोगों-तक जा पहुँचा था। तथापि श्रीक लोगों-में भी यह कहनेवाले लोग थे कि श्रात्मा नहीं है। ऐसे लोग भारतवर्षमें ऋग्वेद-कालसे हैं; श्रीर भारतीय तत्ववेत्ताश्रांने उनको नास्तिक कहकर उनका निषेध किया है।

जीव अथवा आतमा अमर है।

भारती श्रायोंके तत्वज्ञानियोंने जब यह सिद्धान्त निश्चित कर लिया कि श्रात्मा भिन्न है, तब उन्हें एक श्रीर प्रश्न-का विचार करना पड़ा। वह प्रश्न इस प्रकार है-शरीरकी तरह श्रात्मा नश्वर है श्रथवा श्रमर है ? कितने ही तत्वज्ञानियों-का यह मत होना स्वाभाविक है कि. श्रातमा शरीरके साथ ही मर जाता है। परन्तु यह अत्यन्त उच सिद्धान्त, कि श्रातमा श्रमर है, भारती तत्वज्ञानियों में शीघ्र ही प्रस्थापित हो गया। भगवद्गीतामें, प्रारम्भमें ही, यह तत्व बड़ी वक्त त्वपूर्ण रीतिसे प्रतिपादित किया गया है कि, श्रातमा श्रमर है। इस प्रतिपादनमें भी श्रन्य मतोंका कुछ श्रनुवाद किया गया है। "श्रथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्य-से मृतम्।" इस श्लोकमें कहा गया है कि तेरा ऐसा मत होगा कि, श्रात्मा सदैव मरता और उत्पन्न होता है: परन्त यहाँ श्रन्तमें इसी सिद्धान्तका स्वीकार किया है कि आत्मा अमर है। जैसे "वासांसि जीर्णानि यथा विहाय' इत्यादि श्लोकमें अथवा 'न जायते म्रियते वा कदा-चित्र इस श्लोकमें बतलाया गया है। उपनिषदीमें आत्माके श्रमृतत्वके विषयमें जगह जगह बहुत ही उदान्त वर्णन दिये

हुए हैं। महाभारतमें भी ऐसे ही वर्णन प्रत्येक तत्वविषयक उपाख्यानमें पारे जाते हैं। सच पूछिये तो आत्माका अम रत्य सिद्ध करनेके लिए बहुत दूर जानेकी श्रावश्यकता नहीं है। जिस तर्कसे हमें यह माल्म होता है कि श्रात्मा शरीरसे भिन्न है, उसी तर्कसे यह बात भी सिद होती है कि आत्मा अमर है। मनुष्यके मरने पर देहमें कुछ भी गति नहीं रहती, इसीसे हम यह मानते हैं कि देह के अतिरिक्त चैतन्य है और अब वह शरीरसे बाहर चला गया, अर्थात्, यह बात निश्चयपूर्वक सिद्ध होती है कि मनुष के मरणके साथ आतमा नहीं मरता। इससे यही मानना पड़ता है कि, वह देह छोडकर कहीं अन्यत्र चला जाता है। इसके अतिरिक्त, जब कि हम यह मानते हैं कि, जड सृष्टिश्रौर जड़ पदार्थ, श्रर्थात पञ्चमहाभूतोंका आत्यन्तिक नाश नहीं होता, तब फिर चैतन्य अथवा आत्माका ही नाश क्यों होना चाहिए? जान पड़ता है कि उपनिषत्कालमें इस प्रश्नके विषयमें वादविवाद हुन्ना होगा। कठोपनिषद्मे यह वर्णन है कि नचिक्तेत जब यमके घर गया, तब उसने यमसे जो पहला प्रश्न किया, वह भी यही था। उसने पूछा कि 'येयं प्रेतं विचिकित्सा मनुष्येस्तीत्येके नायमस्तीति चान्ये'—श्रर्थात् कुछ लोग कहते हैं कि मनुष्यके मर जाने पर भी यह त्रात्मा बना रहता है; श्रीर कुछ लोग कहते हैं कि नहीं रहता, इसलिए श्राप वतलाचें कि इसमें सची बात कौनसी है। उस समय यमने कठोपनिषद्में श्रात्माकी श्रमरता प्रतिपादित की है। श्रस्तु नास्तिकोंके त्रातिरिक्त भारती त्रायोंके तत्वज्ञानियोंने यही स्वीकार किया है कि त्रात्मा है श्रौर वह श्रमर है। परस्तु त्रात्मा क्या पदार्थ है, इस विषयमें भिल

भिन्न तत्वज्ञानियों में मतभेद उत्पन्न हुआ श्रीर भिन्न भिन्न सिद्धान्त स्थापित हुए। यही कारण है कि सांख्य, योग, वौद्ध, जैन, वैदान्त इत्यादि श्रनेक मत उत्पन्न हुए, तथा भारती कालमें उनके वाद-विवाद, विरोध, भगड़े श्रीर परस्पर एक हुए। जैसा कि हमने पहले कहा है, महाभारतने प्राचीन कालमें यही सबसे बड़ा काम किया कि, यह विरोध निकाल डाला श्रीर ये भगड़े मिटा दिये।

त्रात्मा एक है या अनेक।

सबसे प्राचीन मत कपिल ऋषिका यह था कि पुरुष और प्रकृति, ये दो वस्त्एँ, श्रर्थात् चेतन श्रात्मा श्रीर जड़ पंच-महाभूत या देह, ये दो त्रलग वस्तुएँ हैं। पुरुष स्वतंत्र, श्रवर्णनीय श्रोर श्रक्रिय हैं: वह प्रकृतिकी श्रोर सिर्फ देखता रहता है: श्रौर उसके देखनेसे प्रकृतिमें सारी क्रियाएँ, विकार, तथा भावना श्रीर विचार उत्पन्न होते हैं। गौतम श्रीर कणाद भारतः वर्षके परमाखुवादके मुख्य स्थापनकर्ता है। इनके भी सिद्धान्त महाभारत-कालमें प्रचलित हो गये थे। इनके मतानुसार जीवात्मा देहसे भिन्न श्रीर श्रणुपरिमाण है। ये जीवातमा असंख्य और अमर हैं। पत्येक जीवात्मा भिन्न है, जो एक शरीरसे र्सरे शरीरमें चला जाता है। श्रर्थात्, जीवमें संसारित्व है। जिस प्रकार हमारे रेशमें गौतम श्रोर कणाद परमाणुवादी है, उसी प्रकार ग्रीस देशके तत्ववेत्ता ल्युसिपस् श्रोर डिमाकिटस् भी श्रणुवादी थे। उनका भी यही मत था कि, जिस मकार जड़-सृष्टिके असंख्य परमाणु है, उसी प्रकार श्रात्माके भी भिन्न भिन्न असंख्य परमाणु हैं, जो कि शरीरमें पैठते शीर बाहर निकलते हैं। बौद्धमतानुसार श्रात्मा कितनी ही वस्तुश्रोंका संघात है, जो एक देहसे दूसरी देहमें भ्रमण करता रहता है। ऐतिहासिक रीतिसे तत्व-ज्ञानियोंकी परम्परामें कपिल, गौतम, बुद्ध श्रौर कणाद प्रसिद्ध हैं। उन्होंने श्रपने श्रपने सिद्धान्त इसी क्रमसे प्रतिपादित किये हैं: परन्तु उनके मूल प्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। महाभारतमें कपिलके श्रतिरिक्त दूसरोंका नाम भी नहीं आया है। तथापि महा-भारतसे यह मालुम हो जाता है कि उनके मत क्या थे; श्रौर यह बात परस्पर तुलना-से बतलाई गई है कि सनातनधर्मके तत्व-ज्ञानके सिद्धान्त क्या थे। सम्पूर्ण आस्तिक-वादी तत्वज्ञानियोंका यह मत है कि, प्रत्येक शरीरमें जो श्रात्मा है वह कुछ भिन्न नहीं है, किन्तु सब जगह एक ही श्रात्मा व्यापक रूपसे भरा हुश्रा है। यही कारण है कि कणाद, गौतम अथवा वद्ध-के मत नास्तिक मतके समान त्याज्य माने गये हैं। उपर्युक्त जनक-पंचशिख-संवादमें बौद्ध मतका प्रत्यच तो नहीं, किन्तु श्रप्रत्यच रीतिसे खंडन किया हुआ जान पड़ता है। "कुछ लोग यह मानते हैं कि श्रात्मा इन श्रठारह पदार्थोंका संघात है, यथा-श्रविद्या, संस्कार, विज्ञान, नाम, रूप, षडायतन (देह), स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति, जरा, मरण, शोक, परिवेदना, दुःख श्रीर दौर्मनस्य। यही संघात बार बार जन्म लेता रहता है।" परनत यह कल्पना भूलसे भरी हुई है; क्योंकि अविद्या एक चेत्र है और पहलेके किये हुए कर्म फिर उसमें बोनेके बीज हैं, इत्यादि वुद्धके मतका यहाँ खंडन किया गया है। यह सब यहाँ वतलानेकी आव-श्यकता नहीं। बौद्धोंका मत उस समय भी पूर्णतया स्थापित नहीं हुआ था। श्रीर महाभारतके बाद तो बादरायणके वेदान्त-सूत्रोंमें बौद्ध मतका पूर्णतया खंडन किया गया है । श्रास्तिक मतवादियोंका मुख्य स्वरूप परमेश्वर श्रधवा परमात्माकी कल्पना है। श्रीर यह स्पष्ट है कि उसी कल्पनाके श्रनुसार उनके जीवात्माकी कल्पनाको भिन्न स्वरूप प्राप्त हुश्रा है। बौद्ध श्रीर सांख्यमें भी परमात्माके विषय-में, जान पड़ता है, विचार नहीं किया गया; श्रीर मुख्यतः इसी कारण उनको नास्तिकताका स्वरूप प्राप्त हुश्रा है।

प्रमाण्स्वरूप।

यहाँ इस विषयमें थोड़ासा विवेचन करना आवश्यक है कि, प्रमाण क्या वस्तु है। नास्तिक मतोंको चेदोंका धमाण स्वीकार नहीं है। यही उनका श्रास्तिक मत-से पहला बड़ा भेद है। वेदांका प्रामाएय न माननेके कारण ही विशेषतः इन मती-को निन्दात्व प्राप्त हुआ है। वेदोंका प्रामाएय भारतीय श्रायोंमें प्राचीन कालमें ही खीछत हो चुका था। तत्वज्ञानके विचारमें उपः निषदोंको प्रामाएय प्राप्त हो चुका था श्रोर कर्मके विषयमें संहिता श्रादिको प्रामाएय मिल चुका था । खतंत्र विचार करनेवाले बुद्धिमान् लोग इस विषयमें वाद उपस्थित कर रहे थे कि, वेदोंको प्रमाणं क्यों माना जाय । महाभारतमे इस विषयका भी विचार है श्रीर वेदोंको प्रमाणोंमें श्रयस्थान दिया है। श्रनुशासन पर्व अ० १२० में व्यास अन्तमें पूछते हैं कि चेद भूठ क्यों कहेगा।

तर्कोप्रतिष्ठः श्रुतयश्च भिन्नाः नैको-मुनिर्यस्यमतं प्रमाणम् । धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

यह ऋोक महाभारतमें है (वनपर्व श्रध्याय ३१३)। परन्तु सम्पूर्णत्या विचार करनेसे ज्ञान पड़ता है कि, महाभारत-कालमें वेदोंका श्रमाण पूर्ण माना गया था। ज्ञान पड़ता है, वेदोंके साथ साथ पुराण-इतिहास भी प्रमाण माने जाते थे। (शांति अ० ३४३) कई जगह चेदके अति रिक्त श्रागमोंकों भी प्रमाण माना गया है। तथापि जान पड़ता है कि, महाभारत-के लिए शब्दप्रमाण अर्थात् वेदप्रमाण मुख्य है। दूसरा प्रमाण, श्रनुमान वत-लाया गया है। श्रनुगीतामें कहा है कि "श्रमुमानाद्विजानीमः पुरुषम्" । वेदींका उल्लेख 'श्राम्नाय' शब्दसे किया गया है; श्रीर यह स्वीकार किया गया है कि, श्राम्नायका श्रर्थं श्रनुमानसे लगाना चाहिए। श्रर्थात प्रमाणके मुख्य दो संघ हैं - अनुमान और श्रास्त्राय (शां० प० अ० २०५)। इसके सिवा तीसरा प्रमाण प्रत्यत्त ही माना गया है। 'प्रत्यत्ततः साधगामः' ऐसा भी श्रन्सृतिमें कहा है। यह स्पष्ट है कि दोनों प्रमाण जिस समय नहीं हैं, उस समय प्रत्यचा प्रमाणका महत्व स्वामाविक ही माना जाना चाहिए।इन तीन प्रमाणी-के अतिरिक्त चौथे प्रमाण उपमानका भी उल्लेख महाभारतमें एक जगह श्राया है, वन-पर्व अध्याय ३१ में द्वीपदीके भाषणके बाद युधिष्टिएने कहा है कि, आर्ष प्रमाण और प्रत्यत्त प्रमाणके श्रातिरिक्त तेरा जनम एक उपमानका प्रमाण है। फिर भी वास्तवमें वेद, अनुमान और प्रत्यच, इन्हीं प्रमाणी पर विशेष जोर है। इसके अतिरिक्त यह भी वतलाना चाहिए कि. वेदोंके प्रामाएय पर यद्यपि महाभारतका जोर है, तथापि श्रनुमानके प्रमाणको द्वा डालनेका महा भारतका कदापि आशय नहीं है। मतलव यह है कि, भारती श्रायोंके तत्वज्ञानका स्रोत शब्दप्रमाण पर ही कदापि नहीं रुका। अर्थात् वादी श्रीर प्रतिवादी दोती के लिए अनुमान और प्रत्यत्त, यही ही प्रमाण मुख्य रहते थे।

> परमेश्वर । श्रनुमान श्रौर प्रत्यच प्रमाण्से जब

वह सिद्ध हो गया कि आत्मा शरीरसे भिन्न है, तब इसका विचार करते हुए कि यह श्रात्मा कैसा है, श्रात्माका श्रमरत्व दिखाई पड़ता है। श्रव, यहाँ यह प्रश्न स्त्राभाविक ही उठता है कि, जड़ श्रीर वेतनसे भिन्न तीसरा कोई न कोई इन दोनों-को उत्पन्न करनेवाला परमात्मा अथवा प्रमेश्वर है या नहीं। आत्मा-सम्बन्धी कल्पना जैसे सब कालमें सब देशोंमें उत्पन्न हो चुकी है, उसी प्रकार ईश्वर-सम्बन्धी कल्पना भी मनुष्यप्राणीके लिए स्वाभाविक ही है; श्रीर ईश्वरमें श्रनेक प्रकारके गुण, शक्ति श्रोर ऐश्वर्यकी कल्पना करना भी खाभाविक है। प्रारम्भमें ऐसी कल्पना होना स्वाभाविक है कि देवता अनेक हैं । पर्जन्य, विद्युत्, प्रभंजन, सूर्य, इत्यादि नैसर्गिक शक्तियोंमें देवताश्रोंकी कल्पना साधारण बुद्धिमत्ताके मनुष्यके लिए स्वाभावतः ही सुभनेके योग्य है। प्राचीन श्रायोंकी सब शाखाश्रोमें इस प्रकारके अनेक नैसर्गिक देवताश्रोकी कल्पना पाई जाती है। परन्तु आगे चल-कर ज्यों ज्यों मनुष्यकी बुद्धिमत्ताका विकास होता गया, त्यां त्यां अनेक देव-ताश्रोंमें सर्वशक्तिमान एक देव या ईश्वर-की कल्पना प्रस्थापित होना अपरिहार्य है। पर्शियन लोगोंने प्राचीन कालमें एक ईश्वरकी कल्पना की थी; परन्तु आश्चर्यकी वात है कि श्रीक लोगोंने वह कल्पना नहीं प्रहण की। हाँ, सब देवोंका राजा समभकर उन्होंने ज्योव्ह देवताको अवश्य ही अग्रस्थान दिया था । ज्यू लोगोंने भी प्राचीन कालमें एक हो ईश्वरकी कल्पना की थी। परन्तु उस देवताके नीचे भिन्न भिन्न देवदूत माने गये थे। यह सच है कि, प्राचीन कालमें भारती श्रायोंने इन्द्र, वरुण, सूर्य, सोम इत्यादि अनेक देवता माने थे। परन्त एक ईश्बर-

की कल्पना ऋग्वेदकालमें ही हो चुकी थी; श्रौर उन्होंने यह सिद्धान्त प्रदर्शित कर दिया था कि, अन्य सब देव उसीके स्वरूप हैं। उन्होंने यह कल्पना नहीं की कि, श्रन्य देवता उसके नीचे हैं। भारती श्रायोंकी तत्वविवेचक बुद्धिकी चरम सीमा उपनिषत्कालमें हुई । वे इस सिद्धान्तके भी श्रागे गये कि, श्रम्य देवता एक परमेश्वरके खरूप हैं। पर-मेश्वर-सम्बन्धी कल्पना मनुष्य-बुद्धिकी एक श्रत्यन्त उच्च श्रीर उदात्त कल्पना है: परन्त तत्वविवेचक दृष्टिके लिए ईश्वर सम्बन्धी कल्पना मानी एक बडा गुढ़ प्रश्न ही है। क्योंकि, परमेश्वरकी कल्पना सृष्टिके उत्पन्नकर्ता श्रीर पालन-कत्तांके ही नातेसे हो सकती है: श्रीर सब देशों तथा सब लोगोंमें वह ऐसी ही पाई जाती है। परन्तु इस कल्पनाका मेल तात्विक श्रमानसे नहीं किया जा सकता। इसी कठिनाईके कारण कितने ही भारतीय तत्वज्ञानियोंने परमेश्वरकी कल्पना छोड़ दी है--श्रर्थात् वेयह मानते हैं कि ईश्वर नहीं है; अथवा वे इस विषयमें विचार ही नहीं करते कि ईश्वर है या नहीं। बुद्ध से जब एक बार किसी शिष्यने इस पर प्रश्न किया, तब उन्होंने उत्तर दिया—"क्या मैंने मुभसे कभी कहा है कि ईश्वर है ? श्रथवा क्या कभी यही कहा है कि ईश्वर नहीं है ?" तात्पर्य यह है कि वुद्धने ईश्वरके विषयमें मुग्धत्व स्वीकार किया था। कपिल भी निरीश्वर-वादी थे, यही मानना पड़ता है। उनके सिद्धान्तमें पुरुष-सम्बन्धी कल्पना जगत्सृष्टिकर्त्ता परमेश्वरकी कल्पनासे भिन्न है। उनके मतसे प्रकृति जड़ जगत् है, जो पुरुषके सान्निध्यसे श्रपने स्वभाव-से ही सृष्टि उत्पन्न करती है। ईश्वर-विषयक तत्व-विचार शुरू होने पर पहले

जो शंका उपस्थित होती है, वह यही है कि परमेश्वर जड़-सृष्टि श्रौर चेतन-श्रात्माको कैसे उत्पन्न कर सकता है ? जड़-सृष्टि तो श्रविनाशी है: श्रोर चेतन श्रात्मा भी श्रवि-नाशी है, जो अविनाशी है वह अनुत्पन्न भी श्रवश्य होना चाहिए। जिसका नाश नहीं होता, उसकी उत्पत्ति भी नहीं हो सकती। ऐसी दशामें यह सम्भव नहीं कि परमेश्वर जड़ श्रौर चेतनको उत्पन्न कर सके। श्रौर, यदि यह भी मान लिया जाय कि उसने उत्पन्न किया है, तो फिर यह प्रश्न उपिथत होता है कि किससे उत्पन्न किया ? इस पर कई लोग उत्तर देते हैं कि ग्रन्यसे उत्पन्न किया। पर छान्दोग्य उपनिषद्में यह प्रश्न है कि "जो कुछ नहीं है उससे, जो कुछ है, वह कैसे उत्पन्न हो सकता है ?" इसलिए यही सिद्ध होता है कि, कुछ न कुछ श्रव्यक्त श्रथवा श्रव्याकृत साधन, जड-चेतनात्मक सृष्टिको उत्पन्न करनेके लिए होना चाहिए। इससे सृष्टिकी कल्पना नष्ट हो जाती है श्रीर केवल बनानेकी कल्पना शेष रह जाती है। यही मानना पडता है कि, जैसे कुम्हार मिट्टीका घट बनाता है, नवीन उत्पन्न नहीं करता, उसी प्रकार परमेश्वर, श्रनादि कालसे रहनेवाला कुछ नै कुछ अव्यक्त लेकर उसकी सृष्टि करता है। अर्थात् यह सिद्धान्त निश्चित होता है कि, ईश्वर श्रीर श्रव्यक्त, ये दो अमूर्त वस्तुएँ अनादिसे हैं; श्रीर उनमें समानताका सम्बन्ध है। परन्तु इससे परमेश्वर-सम्बन्धी कर्तुमन्यथाकर्तुं शक्ति-की फल्पनामें बाधा आ जाती है। सेटो-निजम् अथवा सेटोके तत्वज्ञानमें जो मूल कठिनाई उत्पन्न हुई, वह यही है; क्योंकि एक ही वस्तुका स्थापित करना सव तत्वज्ञानोंका उद्देश्य रहता है। सेटोके तस्वज्ञानसे यह एकत्व सिद्ध न हो सका।

सारी सृष्टिका विचार करते हुए और विवेक करते हुए दो वस्तुएँ शेष रहीं-मैटर अर्थात् अन्यक्त-जड़ और परमेश्वर। श्रव्यक्त चूँकि परमेश्वरसे भिन्न है, इस लिए परमेश्वर-सम्बन्धी कल्पनामें और शक्तिमें परिमाण (भौतिक) श्रीर बुद्धि (श्राध्यात्मिक) दोनों श्रोरसे न्युनता श्रा जाती है। यही दोष कपिलकी प्रकृति श्रीर पुरुष, इन दो वस्तुश्रोंके सिद्धान्तमें भी लगता है। ऊपर जो हमने यह विधान बतलाया है कि, सब तत्वज्ञानीका उद्देश्य एकत्व सिद्ध करनेकी श्रोर रहता है, सो पाश्चात्य तत्वज्ञानियोंको भी खीकार है। श्राजकल रसायन शास्त्र, यह मानते हुए कि जगत्में अनेक अर्थात् सत्तरसे अधिक मुल तत्व हैं, यह सिद्ध करना चाहता है कि सारे जगत्में एक ही मुलतत्व भरा है। श्रोपनिषदिक श्रार्थ ऋषियोंने इस विषयमें जो कल्पना की है, वह मनुष्य-कल्पनाके श्रति उद्य शिखर परजा पहुँची है: श्रोर जान पडता है कि यही कल्पना जगत्में श्रन्तमें स्वीकृत होगी। वेदाना कर्ता ऋषियोंने ऐसा माना है कि, परमेश्वर जो सृष्टि उत्पन्न करता है, वह श्रपनेसे ही उत्पन्न करता है। जैसे मकडी श्रपने शरीरसे जाला उत्पन करती है, उसी प्रकार परमेश्वर अपने शरीरसे ही जगत्को उत्पन्न करके, उसको प्रलयकालमें फिर श्रपनेमें ही विलीन करता है, उपनिषदोंमें श्रीर महाभारतमें भी बारम्बार यही लाया है कि यह जगत् परमेश्वरसे ही उत्पन्न होता है, परमेश्वरमें ही रहता है श्रीर उसीमें लयको प्राप्त होता है । इस सिद्धान्तको वेदान्तशास्त्रकर्त्ता ग्रभिष निमित्तोपादान सिद्धान्त कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जैसे घटका निमित्त कारण कुम्हार है श्रीर उपादान

काश्ण मिट्टी है, उस प्रकार जगत्का तिमित्त कारण और उपादान कारण भिन्न वहीं है, किन्तु एक ही हैं। सृष्टि और स्रष्टा, जगत् और ईश्वर, प्रकृति और पुरुष, भिन्न भिन्न नहीं हैं। किन्तु एक ही हैं—श्रर्थात् जगत्में द्वेत नहीं है, श्रद्धेत है। यही उपनिषदों का परम सिद्धान्त है। श्रीर, महाभारतमें भी यही प्रतिपादित किया गया है। यह पहले वतलाया ही जा चुका है कि जगत्का विकास किस कम-से होता है। शान्ति पर्व (श्रध्याय २०५) में, जैसा कि देवलने नारदसे वतलाया है, यह क्रमोटपत्ति वतलाई गई है, क

शान्ति पर्व (अध्याय १८३) में भृगु-भारद्वाज-संवादमें सृष्टि-उत्पत्तिका क्रम भिन्न वतलाया है । उसके विषयमें यहाँ कुछ लिखना आवश्यक है। यह क्रम यद्यपि श्रन्य स्थानोंसे भिन्न है, तथापि जिस प्रकार भिन्न भिन्न उपनिपदों के भिन्न भिन्न स्थानों के भिन्न भिन्न कम एक ही व्यवस्थासे वेदान्त-सूत्रोंमें लगाये गये हैं, उसी प्रकार यहाँ-का भी कम पूर्वोक्त कमानुसार ही सममना चाहिए। भुगु कहते हैं, कि ब्रह्माजीने पहले जल उत्पन्न किया। "श्राप एव ससर्जादी" ऐसा वचन भी श्रनेक जगह पाया जाता है। तुरन्त ही फिर आगे भृगु कहते हैं—"पहले श्राकाश उत्पन्न किया । उस समय सूर्य इत्यादि कुछ नहीं था। उस श्रन्य त्राकाशमें जैसे एक अन्धकारमें दूसरा अन्थकार उत्पन्न हो, उसी प्रकार जल उत्पन्न हुन्ना; श्रीर उस् जलकी बाढ़से वायु उत्पन्न हुआ। जब घड़ा पानीसे भरने लगता है, उस समय जैसा शब्द होता है, उसी प्रकार श्राकाश जब पानीसे भरने लगा, तब वायु शब्द करने लगा। यह सशान्द उत्पन्न होनेवाला वायु ही श्रव भी श्राकाशमें संचार करता रहता है। वायु श्रीर जलके वर्ष एसे अग्नि उत्पन्न हुआ; और आकारामें अन्धकार नष्ट हो गया । वायुकी सहायतासे यह श्रग्नि त्राकाशमें जलको उड़ा देता है। वायुसे धनत्व पाया हुआ अग्निका भाग फिर पृथ्वी वनकर नीचे गिरा।" यह उत्पत्ति कहाँसे ली गईहै, सो बतलाया नहीं जा सकता। तथापि यह कल्पना सृष्टिके भिन्न भिन्न प्रत्यच अनुभवको लेकर की गई है। श्रनेक सिद्धान्तोंमेंसे यह एक सिद्धान्त है। परन्तु अन्तमें यह एक श्रोर रह गया: श्रोर पूर्वोक्त तैत्तिरीय उपनिषद्का सृष्टि-उत्प ति-क्रम ही सर्वभान्य हो गया।

श्रचरसे श्राकाश उत्पन्न हुत्रा, श्राकाशसे वायु, वायुसे श्रिवि, श्रियसे जल, जलसे पृथ्वी, पृथ्वीसे श्रोषित्र, श्रोषित्रयोंसे श्रम श्रौर श्रमसे जीव। यहीं कम उपनिषदों-में भी वतलाया गया है। इसके विरुद्ध कमसे सारी सृष्टिका लय होनेवाला है। श्रथीत् वेदान्तका यह सिद्धान्त महा-भारतमें स्वीकार किया गया है कि सम्पूर्ण जगत्में एक ही तत्त्व भरा है, सारे जगत्-में एक परमेश्वर ही श्रन्दर-वाहर व्याप्त है; श्रौर जान पड़ता है कि यही सिद्धान्त प्रायः पाश्चात्य तत्त्वक्षानियोंको भी स्वीकार होगा।

सांख्योंके चीवीस तत्त्व।

कपिलका सांख्य मत इस प्रकार हैती था: श्रीर श्रास्तिक श्रथवा वैदिक मतके तत्त्वज्ञानको मान्य न था। तथापि इस विषयके सांख्य-विचार अन्योंको स्वीकार होने योग्य थे कि सम्पूर्ण सृष्टि किस क्रमसे उत्पन्न हुई । किंबहना. सृष्टिकी उत्पत्तिका क्रम पहले सांख्योंने ही निश्चित किया होगाः श्रौर उन पदार्थौ-की संख्या उन्होंने ही नियत की होगी। इसी कारण उन्हें 'सांख्य' नाम प्राप्त हुआ है। कपिलका सांख्य मत यद्यपि इस प्रकार निरीश्वरवादी था और हैती भी था, तथापि सांख्य मतका श्रादर भारत-कालमें बहुत ही श्रधिक था। भगवद्गीता श्रौर महाभारतमें उनके मतका उल्लेख बारम्बार प्रशंसापूर्वक श्राता है। यह हमने पहले बतलाया ही है कि उनके मूल तत्त्व सिद्धान्त-रूपसे उनकी कारिका-में महाभारत कालके बाद अधित इए। महाभारत-काल श्रीर भगवद्गीताके समय-में भी सांख्य और योगके मत अस्पष्ट श्रथवां श्रस्थिर दशामें थे। यही कारण है कि महाभारतकार सांख्य श्रीर योग. दोनों तत्त्वज्ञानोंको रूपान्तर देकर श्रास्तिक मतमें उनका समावेश कर सके। यह समावेश महाभारतकारने कैसे किया. इसका विचार करना बहुत मनोरञ्जक होगा। सांख्योंका मुख्य कार्य सृष्टिके पश्चीस तत्त्व नियत करना था। ये पञ्चीस तत्त्व कौनसे हैं, यह महाभारतमें जगह जगह बारम्बार बतलाया गया है। एक संवाद उदाहरणार्थं कराल संज्ञक जनक-का श्रोर वसिष्ठका इस विषय पर दिया हुआ है, उसीको हम यहाँ लेते हैं। जनक राजवंशका नाम था, किसी एकही राजाका नाम न था। इसी लिए महाभारतमें जनक-को कराल इत्यादि भिन्न भिन्न नाम दिये हैं। सुलभा-जनक-संवादमें जनकका नाम धर्मध्वज था। इस अध्यायमें यह स्पष्ट कहा है कि इसमें सांख्य-दर्शनका स्पष्टीकरण किया है। शान्ति पर्व श्रध्याय ३०६ से ३०= तक यह विषय दिया हुआ है। सांख्योंके २५ तत्त्व इस प्रकार हैं:-१ प्रकृति, २ महत्, ३ श्रहङ्कार, ४-८ पंच-सूचमभूत, ये श्राठ तत्त्व मृल प्रकृति हैं। इसके आगे पाँच स्थूलभूत, पाँच इन्द्रियाँ, पाँच कमेंन्द्रियाँ श्रीर मन, कुल मिलाकर श्रीबीस तत्त्व होते हैं; श्रीर सम्पूर्ण जगत्-के प्रत्येक पदार्थमें, श्रथवा प्राणीमें-फिर बाहे वह देवता हो, मनुष्य हो, अथवा पशु या कीट हो-ये चौबीस तत्त्व होते हैं। पचीसवाँ तत्त्व पुरुष श्रथवा श्रात्मा है। श्रव्यक्तमाद्वः प्रकृति परां प्रकृतिवादिनः। तसान्महत् समुत्पन्नं द्वितीयं राजसप्तम ॥ श्रहंकारस्तु महतस्तृतीयमिति नः श्रतम्। पंचभूतान्यहंकारादाहुः सांख्यात्मदर्शिनः ॥ एताः प्रकृतयश्चाष्टौ विकाराश्चापि पोडश। पंच चैव विशेषा वै तथापञ्चेन्द्रियाणि च॥ (शांति पर्व अ० ३०३)

श्रन्तिम क्लोकका श्रर्थ ठीक ठीक नहीं लगता। तथापि सम्पूर्ण क्लोकका तात्पर्य ऊपर दिया हुआ है। इन चौबीस तत्वी के प्रतिपादनको ज्ञाता लोगोंने सांख्य शास्त्र नाम दिया है । सांख्यशास्त्रमें वे चौवीस तत्व किस कारणसे श्रथवा किस श्रनुमान-परम्परासे नियत किये गये हैं सो बतलाना कठिन है। इस बातकी उप-पत्ति हमें महाभारतमें नहीं मिलती कि मूल अञ्यक्त प्रकृति श्रीर स्दम पंचमहा-भूतोंके मध्य दो तत्व, अर्थात् महत् और श्रहंकार किन कारणोंसे रखे गये हैं। श्रवमान परम्परासे कल्पना नहीं होती। तथापि उपनिषदोंसे यह भी मालूम होता है कि उपनिषद-कालमें भी एक महत् तत्व श्रात्मासे निकला हुआ माना गया है। इसी भाँति स्थूल पञ्चमहाभूत श्रीर सूच्म पंचमहा भतको भिन्न भिन्न माननेका प्रयोजन नहीं दिखाई देता, श्रथवा श्रनुमानसे ध्यानमें नहीं त्राता। जो सोलह विकृतियाँ नियत की गई हैं, वे स्पष्ट ही हैं। उनकी कल्पना करनेमें विशेष वद्भिमत्ताकी श्रावश्यकता नहीं। पंचमहाभूत, पंचशाने-निद्रय श्रोर पंचकर्मेन्द्रिय श्रोर मन, ये वातें परिगणित करनेमें विशेष तत्व-विवे-चनकी आवश्यकता नहीं । सांख्योंका बड़ा सिद्धान्त प्रकृति-पुरुष-विवेक है। सांख्योका मत महाभारत-कालमें इतना लोकमान्य हुआ था कि महाभारतने जगह जगह उसका श्रीर वेदान्त मत-का एकीभाव दिखलानेका प्रयत किया है। प्रकृतिको चेत्र कहा है श्रीर पुरुषको प्रकृतिका जाननेवाला चेत्रज्ञ कहा है। लिखा है कि प्रकृतिमें पुरुष रहता है, श्रतएव उसकी पुरुष संज्ञा है । पुरु कहते हैं तेत्रकों; ऐसी उसकी उपपत्ति लगाई है। जैसे चेत्र श्रव्यक्त है, वैसे ही ईश्वर भी अव्यक्त है। और, जिसका वस्तुत तत्वमें अन्तर्भाव नहीं होता, और जिससे

श्रेष्ठतर और कुछ नहीं है, उस परमात्मा-की प्रचीसवाँ तत्व, प्रतिपादनके सुभीतेके तिए, मानते हैं। इस प्रकार सांख्य-शास्त्र-के मत हैं। सांख्य-वेत्ता प्रकृतिको जगत्-का कारण मानकर स्थूल, स्ट्मके कमसे बीज करते हुए सब प्रपञ्चका चिदात्मा-में लय करके साचात्कारका श्रनुभव प्राप्त करते हैं (शांति प० श्र० २०६)। इस प्रकार सांख्य-शास्त्र और वेदान्त-शास्त्रकी परिणालिको एक करनेका प्रयत्न महा-भारतने किया है। यही नहीं, विक कई जगह सांख्योंके महत् और योगके महान्-का ब्रह्मा श्रथवा विरश्चि या हिरण्यगर्भसे मेल मिलाया गया है।

महानितिच योगेषु विरिचिरिति चाप्यजः। सांख्ये च पठ्यते योगे नामभिर्वहुधात्मकः॥ (शान्ति पर्व श्र० ३०३)

जैसे वेदान्तमं परमात्मासे पुरुषका मेल मिलाया गया है, वैसे ही पुराणोंने उसका मेल शिव और विष्णुसे मिलाने-का प्रयत्न किया है।

यह नहीं मालूम होता कि सांख्योंके पश्चीस तत्व एक दम नियत हुए । यह माननेके लिए स्थान है कि वे श्रीरे शीरे नियत हुए। शांति पर्वके भीष्मस्तवराजमें परमेश्वरकी भिन्न भिन्न रीतिसे स्तुति की गई है। उसमें सांख्य-खरूपसे ईश्वर-स्तुति करते हुए जो परमेश्वर सत्रहवें तत्व सक्रपमें है, उस परमेश्वरकी स्तुति की है। "जिस परमेश्वरके विषयमें ज्ञानी लोग यह समभते हैं कि वह स्वस्रूपसे सदोदित रहते हुए भी जागृति, स्वप्न श्रीर सुष्त, तीनों श्रवस्थाश्रोमें श्रात्मा, पश्चमहाभूत श्रीर ग्यारह इन्द्रियाँ, इन सोलहोंसे युक्त होनेके कारण सत्रहवाँ है, उस सांख्य स्वरूपी परमात्माको नम-स्कार है।"

यं विधातमानमात्मस्यं वृतं पोडशभिर्गुणैः। शाहुः सप्तदशं संख्यास्तस्मे सांख्यात्मने नमः॥ इस श्लोकमें यद्यपि यह स्पष्ट नहीं

वतलाया है कि परमात्मा सत्रहवाँ कैसे

है, तथापि सोलह गुण स्पष्टतया वतलाये गये हैं। श्रर्थात् जैसा कि टीकाकारने कहा है, ११ इन्द्रियाँ श्रीर ५ महाभूत लेने-से परमात्मा सत्रहवाँ होता है। ऐसा तर्क होता है कि, सांख्योंकी प्रकृतिमें सोलह गुण मूलके होंगे, श्रीर श्रागे उनमें = प्रकृति इत्यादि अविकृत और भी शामिल हो गये होंगे। परन्तु यह सांख्यां-की बाढ़ भारत-कालमें ही हुई थी, यह बात निर्विवाद है। भीष्मस्तवराज महा-भारतका पुराना भाग है। महाभारतमें सांख्योंके तत्व प्राचीन कालमें १७ थे, वे शागे चलकर २४ हुए। यह बात जैसे उपर्युक्त विवेचनसे मालूम होती है, उसी प्रकार यह भी मालूम होता है कि, इन चौबीस तत्वोंकी एक कल्पना भी प्राचीन कालमें निश्चित न थी। क्योंकि अन्यत्र ये चौबीस तत्व भिन्न भिन्न रीतिसे परि-गणित किये हुए हमारी दृष्टिमें आते हैं। वनपर्वके युधिष्ठिर-ज्याध श्राख्यानमें ये तत्व इस प्रकार वतलाये हैं:-महाभूतानि खं वायुरिनरापश्च ताश्च मृः। शब्दःस्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च तद्गुणाः॥ षष्ठश्च चेतना नाम मन इत्यभिधीमते। सप्तमी तु भवेद्बुद्धिरहंकारस्ततः परम्॥ इन्द्रियाणि च पञ्चातमा रजः सत्वं तमस्तथा। इत्येव सप्तदशको राशिरव्यक्तसंज्ञकः॥ सर्वेरिहेन्द्रियार्थेस्तु व्यक्ताव्यक्तैः सुसंवृतैः। चतुर्विशक इन्येष व्यक्ताव्यक्तमयोगुणः॥ (वन० श्र० २१०)

तत्वोंका ही उल्लेख श्राता है। यही नहीं, किन्तु पच्चीसयें तत्व पुरुषका जब उत्तम रीतिसे परमेश्वरसे मेल न खाने लगा, तब महाभारतकारने परमात्माको पुरुष-से श्रागे २६ वाँ तत्व भी मान लिया। इसका दिग्दर्शन हमको शांति० श्र० ३१६ में ही मिलता है।

यदा स केवलीभूतः षड्विंशमनुपश्यति। तदा ससर्वविद् विद्वान् न पुनर्जन्म विदते॥

इस स्रोकमें सांख्योंके पचीस तत्व पूर्णतया गृहीत किये गये हैं; श्रीर सांख्य तथा वेदान्तकी इस प्रकारकी एकवाक्यता करनेका प्रयत्न किया गया है कि, परमेश्वर इन पद्मीस तत्वोंके भी श्रागेका, श्रर्थात् २६ वाँ है। इस विषयमें भी कुछ गड़बड़ है कि. ये तत्व कौनसे हैं। पाँच गुण, छठवाँ मन् श्रथवा चेतना, सातवीं वुद्धि, श्राठवाँ श्रहंकार, पाँच इन्द्रियाँ श्रीर जीव मिल-कर १४ श्रीर सत्व, रज, तम मिलकर १७। इन सत्रह वस्तुत्रींके समुदायको श्रव्यक्त संज्ञा मिली है। इनमें पाँच महा-भूतोंका समावेश नहीं है। उनका समावेश करके श्रागेके श्लोकके श्रनुसार २२ होते हैं। श्रीर व्यक्त श्रव्यक्त मिलकर २४ होते हैं: तिस पर भी महाभारतमें कुछ भिन्न सम्बन्ध दर्शाया है। सांख्योंकी सत्रह श्रीर चौबीस संख्या यहाँ व्याधने ली है। परन्त पदार्थोंको तत्व नहीं कहा है. श्रथवा यह भी नहीं कहा है कि, यह सांख्योका मत है।

पुरुषोत्तम ।

जान पड़ता है कि सांख्योंकी सर्व-मान्यता भगवद्गगीताके कालमें भी पूर्ण-तया प्रस्थापित हो चुकी थी। भगवद्गीताने सांख्योंका पुरुष लेकर उसके भी मागे जानेकी श्रपनी इच्छा भिन्न रीतिसे स्यक्त की हैं। कहा है कि सांख्योंका पुरुष भी एक श्रव्यक्त है श्रीर प्रकृति भी एक श्रव्यक्त है; दोनों चराचर हैं; श्रीर दोनों के भी श्रागे रहनेवाला एक भिन्न तत्व है।

द्वाविमी पुरुषों लोके चरश्चाचर एवच। इस श्रोकमें दोनोंको पुरुष कहकर उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहतः।

इस श्रोकके श्रनुसार परमेश्वरको पुरुषोत्तमकी संज्ञा दी है। इस संज्ञाम सांख्योंका पुरुष श्राधारभूत लेकर उससे परमात्माकी एकवाच्यता करनेका प्रयत्न करते हुए, परमेश्वरको उससे भी श्रेष्ठ पदवी दी है। परब्रह्म श्रथवा परमात्मा की एकवाच्यता सांख्योंके पुरुषसे वास्ति विक रीतिसे नहीं हो सकती।

सृष्टि क्यों उत्पन्न हुई ?

यह देखते हुए कि, तत्वज्ञानका विचार भारतवर्षमें कैसा बढ़ता गया, हम यहाँ पर श्रा पहुँचे। श्रद्धेत चेदान्ती मानते हैं कि. निष्किय श्रनादि परब्रह्मसे जड चेतनात्मक सब सृष्टि उत्पन्न हुई, किन्तु कपिलके सांख्यानुसार पुरुषके सान्निध्य-से प्रकृतिसे जड-चेतनात्मक सृष्टि उत्पन्न हुई। श्रव, इसके श्रागे ऐसा प्रश्न उपसित होता है कि, जो परब्रह्म श्रक्रिय है, उसमें विकार उत्पन्न ही कैसे होते हैं ? श्रथवा जब कि प्रकृति और पुरुषका सानिध्य सदैव ही है, तब भी सृष्टि कैसे उत्पन्न होनी चाहिए ? तत्वज्ञानके इतिहासमे यह प्रश्न अत्यन्त कठिन है। एक प्रन्थ कारके कथनानुसार, इस प्रश्नने सब तत्वज्ञानियोंको—सम्पूर्ण दार्शनिकोंको-कठिनाईमें डाल रखा है। जो लोग झान सम्पन्न चेतन परमेश्वरको मानते हैं, श्रथवा जो लोग केवल जड़ खभाव प्रकृति को मानते हैं, उन दोनोंके लिए भी यह । नियोप्तेरो प्रश्न समान ही कठिन है

क्रिस्ट (नवीन प्रेटोमतवादी) यह उत्तर क्षे हैं कि—"यद्यपि परमेश्वर निष्क्रिय और निर्विकार है, तथापि उसके श्रास-वास एक कियामंडल इस भाँति घूमता हता है, जैसे प्रमामंडल सूर्यविम्बके श्रासपास घूमता रहता है। सूर्य यद्यपि थिर है, तो भी उसके श्रासपास प्रभाका वक्र बराबर फिरता ही रहता मभी पूर्ण वस्तुत्रोंसे इसी प्रभामग्डलका प्रवाह वरावर वाहर निक-नता रहता है।" इस प्रकार निष्क्रिय एमेश्वरसे सृष्टिका प्रवाह सदैव जारी रहेगा। श्रीस देशके श्रणुसिद्धान्तवादी ल्यसिपस् श्रौर डिमाकिटस्का कथन है कि, जगतका कारण परमास है। ये पर-माण कभी स्थिर नहीं रहते। गति उनका बाभाविक धर्म है; श्रोर वह श्रनादि तथा श्रनन्त हैं। उनके मतानुसार जगत् सदैव ऐसे ही उत्पन्न होता रहेगा श्रीर पेसे ही नाश होता रहेगा। परमाखुओं-की गति चुँकि कभी नष्ट नहीं होती, श्रतएव यह उत्पत्ति-विनाशका कम कभी थम नहीं सकता। श्रच्छा, श्रव इन निरी-धरवादियोंका मत छोड़कर हम इसका विचार करते हैं कि, ईश्वरका श्रस्तित्व माननेवाले भारतीय आर्य दार्शनिकोंने स विषयमें क्या कहा है। उपनिषदोंमें पेसा वर्णन आता है कि "आतमैव इद्मश्र श्रासीत् सोमन्यत बहुस्याम् प्रजायेति।" प्रथात् "पहले केवल परब्रह्म ही था। उसके मनमें आया कि में अनेक होऊँ— मे प्रजा उत्पन्न करूँ।" श्रर्थात् निष्क्रिय परमात्माको पहले इच्छा उत्पन्न हुई; और उस इच्छाके कारण उसने जगत् उत्पन्न किया। वेदान्त तत्वज्ञानमें यही सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। वेदान्त-पुत्रीमें बादरायणने "लोकवत्तु लीला-कैषल्यम्" यह एक सूत्र रखा है। जैसे

लोगोंम, कुछ काम न होने पर मनुष्य श्रपने मनोरञ्जनके लिए केवल खेल खेलता है, उसी प्रकार परमेश्वर लीलासे जगत्-का खेल खेलता है।

यह सिद्धान्त भी श्रन्य सिद्धान्तींकी भाँति ही सन्तोषजनक नहीं है। श्रर्थात् परमेश्वरकी इच्छाकी कल्पना सर्वथैव स्वीकार होने योग्य नहीं है। परमेश्वर यदि सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् श्रोर दयायुक्त है, तो लीला शब्द उसके लिए ठीक नहीं लगता। यह वात संयुक्तिक नहीं जान पड़ती कि, परमेश्वर साधारण मनुष्यकी तरह खेल खेलता है। इसके सिवा पर-मेश्वरकी करनीमें ऐसा क्रतायुक्त व्यव-हार न होना चाहिए कि, एक बार खेल फैलाकर फिर उसे विगाड डाले। महा-भारतमें भिन्न भिन्न जगह ऐसा सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि, प्रायः उत्पत्ति श्रोर संहारका कम किसी न किसी नियम श्रीर कालसे ही होता रहता है। भग-वद्गीतामें यही बात एक श्रयन्त सुन्दर दृशन्तसे वर्शित की गई है। उस रूपकर्म हमको आजकलका विकासवाद्सा प्रति-विम्यित हुआ दिखाई देता है। जगत्का उत्पत्ति-काल एक कल्पका माना गया है। वह ब्रह्माजीका एक दिन है; और जगन्का संहार-काल ब्रह्माजीकी एक रात है। ऐसा कहकर गीतामें कहा है कि,

श्रव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे । राज्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंश्रके ॥

जिस प्रकार, जब सुबह होनेका समय श्राता है उस समय, धीरे धीरे श्रन्थकारमें संसार प्रकाशमें श्राकर दिखाई देने लगता है, उसी प्रकार सृष्टिके श्रारम्भमें श्रव्यक्त से भिन्न भिन्न व्यक्तियाँ उत्पन्न होती हैं; श्रीर सन्ध्याकालके बाद जब रात श्राने

लगती है, तब जिस प्रकार संसार धीरे धीरे ब्रहश्यसा होता जाता है, उसी प्रकार सृष्टिके संहारकालमें भिन्न भिन्न व्यक्तियाँ एक श्रव्यक्तमें लयको प्राप्त होती हैं। यहाँ हमको कहना पडता है कि, यह नियमसे श्रौर नियतकालसे होनेवाला खेल नहीं है। खेल तो चाहे जब भंग किया जा सकता है। श्रस्तु। इस प्रश्नका सन्तोष-जनक उत्तर देना श्रसम्भव है: श्रीर इसी लिए श्रीमत् शङ्कराचार्यने वेदान्तसूत्रोंके भी श्रागे जाकर ऐसा कहा है कि, यह वचन इस कल्पनासे कहा गया है कि, संसार हमको दिखलाई देता है: परन्त जगतका उत्पन्न होना ही वास्तवमें श्राभास है। वास्तवमें जगत्का श्रस्तित्व ही नहीं है। संसार न उत्पन्न हुआ है और न लय-को ही प्राप्त हुआ है। निष्क्रिय परमेश्वर-का रूप जैसा है, वैसा ही है। परमेश्वरके तई जगत्का श्राभाससा मालूम होता है। श्रीमत् शङ्कराचार्यका यह मायावाद महा-कहाँतक है, इसका विचार श्रन्यत्र किया जा सकेगा। हाँ, शङ्करा-चार्यजीने इस कल्पनासे इस कठिन प्रश्न-को बहुत श्रच्छी तरह हल किया है। उद्योग पर्वके सनत्स्रजातीय श्राख्यानमें इस विषयमें सरल ही प्रश्न किया गया है-कोसौ नियुं के तमजं पुराणम्।

सचेदिदं सर्वमनुक्रमेण॥ कि वास्य कार्यमथवा सुखं च

तन्मे विद्वान्द्रहि सर्व यथावत् ॥
"उस पुराण श्रजन्मा परब्रह्मको, उत्पत्ति
करनेके लिए, कौन वाध्य करता है ? यदि
यह सब दृश्य क्रमशः वहीं हुश्रा है तो
उसका कार्य क्या है, श्रथवा उसमें उसको
क्या सुख होता है ? श्राप विद्वान् हैं इसलिए यह मुक्ते यथातथ्य बतलाइए।" यह
प्रश्न धृतराष्ट्रने सनत्सुजातसे किया है।
सनत्सुजातने इस पर जो उत्तर दिया,

वह श्रवश्य ही रहस्यमय है श्रौर ऐसा है, जो समभमें नहीं श्राता; क्योंकि यह प्रश्न ही ऐसा कठिन है। सनत्सुजातने कहा:—

दोषो महानत्र विभेदयोगे, श्रनादियोगेन भवन्ति नित्याः। तथास्य नाधिक्यमपैति किंचि-

दनादियोगेन भवन्ति पुंसः॥
इस श्लोकका अर्थ लगना कठिन है;
श्लीर टीकाकारने इस जगह श्लीमत् शङ्क राचार्थजीका मायावाद लेकर ऐसा तात्पर्य निकाला है कि, यह विश्वास वास्तवमें स्वप्नवत् है।

य ऐतद्वाभगवान्स नित्यो विकारयोगेन करोति विश्वम्। तथा च तच्छक्तिरिति सा मन्यते तथार्थवेदे च भवन्ति वेदाः॥

जो सत्य श्रीर नित्य है, वह परब्रह्म है। वही विकार योगसे विश्व उत्पन्न करता है: श्रीर यह माननेके लिए वेदोंका ही श्राधार है कि, उसकी वैसी शकि है।

इस प्रश्नका निपटारा सांख्योंने वहुत ही भिन्न प्रकारसे किया है। उनका कथन यह है कि, प्रकृतिमें सत्व, रज श्रौर तम, ये तीन गुण हैं। परन्तु ये तीनों गुण सदैव न्यूनाधिक परिमाणमें रहते हैं। जिस समय ये तीनों गुण साम्या वस्थामें रहते हैं, उस समय यह दश्य जगत् श्रथवा व्यास्त सृष्टि उत्पन्न नहीं होती। परन्तु जिस समय इन त्रिगुण के साम्यमें न्यूनाधिकता होकर गड़बड़ी पैदा होती है, उस समय सृष्टिकी उत्पति होती है। परन्तु इस कल्पनासे पूर्वीक प्रश्नका खुलासा नहीं होता। वह वैसा ही रह जाता है। पूछा जा सकता है कि त्रिगुणोंकी साम्यावस्था में ही अति क्योंकर पड़ता है ? यदि यह माना जाय कि, पुरुषके साम्निध्यके कारण यह अन्तर

होता है, तो कहना पड़ेगा कि पुरुषका मानिध्य तो सदैव ही रहता है। ऐसी दशामें त्रिगुणोंकी साम्यावस्था कदापि नहीं होगी; और सृष्टिका लय कभी नहीं होगा। यह सिद्धान्त हमको आगे विल-कुल ही नहीं ले जाता, श्रीर न हमारे सामने रहनेवाले कुटकका हल होता है। महाभारतके सांख्यदर्शनके विवेचनमें इस सिद्धान्तका कहीं समावेश नहीं किया गया है। परन्तु इतनी बात श्रवश्य सच है कि सांख्योंके माने हुए प्रकृतिके तीन गण श्रवश्य ही भारती श्रायोंके सब तत्व-**ज्ञानोंमें** स्वीकार हुए हैं श्रोर गृहीत किये गये हैं। उपनिषक्तालमें सत्व, रज, तम, इन गुणोंके विषयमें उल्लेख नहीं है: और प्राचीन दशोपनिषत्कालमें, जैसा हमने कहा है, सांख्य तत्वज्ञानका उदय नहीं हुआ थाः श्रतएव त्रिगुणोंका नाम दशो-पनिषद्में नहीं श्राता । परन्तु इसकेवादके सब तत्वज्ञानके विचारोंमें त्रिगुणोंका उह्नेख सद्देव आता है । उपनिषदोंके इधर तो, त्रिगुएका विषय, तात्विक विचारोंके लिए एक श्राधारस्तम्भ ही हो जाता है। श्वेताश्वतर उपनिषद्में सांख्य श्रौर योग, इन्हीं तत्वज्ञानींका उल्लेख नहीं है, किन्तु ब्रह्माके लिए त्रिगुणातीतका विशे-पण भी लगाया है। महाभारतके बाद तो मत्येक तत्वज्ञान-विषयक चर्चामें त्रिगुणों-का उल्लेख श्रावश्यक हो गया है। सारांश यह है कि, महाभारतकालके तत्वज्ञानके लिए त्रिगुण एक निश्चित भाग है।

त्रिगुण्

सांख्योंका प्रकृति-पुरुष विवेक जैसा एक महत्वपूर्ण श्राविष्कार है, उसी भाँति त्रिगुणोंकी करुपना भी श्रत्यन्त महत्वकी है। भौतिक श्रोर श्राध्यात्मिक दृष्टिसे इस जगस्का विचार करते हुए, उसमें जी उञ्च- नीच हजारों भाव देखनेमें आते हैं, उनका वर्गीकरण करना तत्वज्ञानका मुख्य कार्य है । यहाँ तत्वज्ञानका दूसरा श्रत्यन्त कठिन प्रश्न उपस्थित होता है। हम देखते ही हैं कि, जगत्में सुख-दुःख, सुरूप-कुरूप, सद्गुण-दुर्गुणके न्यूनाधिक परिमाणसे हजारी भाव भरे हुए हैं; तब फिर क्या जगत्की बुरी वस्तुएँ, घृणित पदार्थ, दुखी प्राणी परमेश्वरने ही पैदा किये हैं? ये परमेश्वर-ने क्यों उत्पन्न किये ? परमेश्वर यदि सर्व-शक्तिमान् श्रौर सब पर दया करनेवाला है, तो उसकी रची हुई सृष्टिमें अपूर्णता क्यों दिखलाई देती है ? इस बातके लिए तत्वज्ञानियोंको बहुत सोचना पडता है कि, जगत्की भौतिक सृष्टिके श्रसंख्य रोग श्रौर भिन्न भिन्न प्रकारके दुःख किन कारणोंसे उत्पन्न हुए। भिन्न भिन्न सिद्धान्ती इसका भिन्न ही भिन्न जवाब भी देते हैं। प्रेटोक नवीन मतवादियोंका सिद्धान्त विचित्र है। उनका मत है कि-"जड श्रव्यक्तमें एक प्रकारकी प्रतिरोधशक्ति होती है; अतएव ईश्वरकी आज्ञाके अनु-सार श्रथवा इच्छाके श्रनुसार उस श्रव्यक्त-का खरूप व्यक्त होनेमें विघ्न उत्पन्न होता है: श्रीर इस कारण सृष्टिमें दिखाई देने-वाले दोष अथवा अपूर्णता उत्पन्न होती है। अर्थात् प्रकृति, पुरुषकी आज्ञा पूर्ण-तया स्वीकार नहीं करती, भगड़ा करती है, इस कारण अधि-कांश सृष्टिमें न्यूनता दिखाई पड़ती है। इसी भाँति श्राध्यात्मिक सृष्टिमें भौतिक इन्द्रियाँ श्रात्माकी श्राज्ञा पूर्णतया नहीं मानतीं। श्रात्मा यद्यपि परमात्माका त्रंश है, वह स्वयं सद्गुणपूर्ण है, तथापि जड़के सान्निध्यसे उस पर श्रावरण पड़ता है; श्रीर इस कारण, कुछ कालके लिए उसका देहविषयक स्वामित्व नष्ट हो जाता है। अतएव जगत्में दुर्गुणोंका प्राद्रभीव

दिखाई पड़ता है।" पारसी लोगोंने इस विषयमें एक निराली ही कल्पना की है। उनके मतानुसार जगत्में दो तत्त्व सदैव ही प्रचलित रहते हैं। एक अच्छा श्रौर एक वुरा, एक सद्गुणी श्रीर एक दुर्गुणी। दोनों-के देवता भी खतन्त्र हैं; श्रौर सदैव उनका भगड़ा जारी रहता है। परमेश्वर श्रच्छेका अधिष्ठाता है; श्रीर उसे उन्होंने श्राहुर्मस्ट् (इसीका रूपान्तर होर्मज्) नाम दिया है। बरेका श्रिधिष्ठाता श्रहरिमन् है, उसका श्राद्वर्मस्द्से सदैव विवाद होता रहता है। श्रन्तमें श्राहुर्मस्ट्की ही विजय होनेवाली है; तथापि, कमसे कम वर्तमान समयमें संसारमें जो दुर्गण, दुःख, रोग, संकट, दुर्भिन्न, इत्यादि दिखाई देते हैं, उन्हें अहरिमन् ही उत्पन्न करता है। परन्त उनका नाश करके आहुर्मस्ट् लोगोंको सुख भी देता है। पर्शियन लोगोंकी यही कल्पना ज्यु श्रीर क्रिश्चियन मतमें ईश्वर श्रीर शैतानके स्वरूपमें दिखाई पड़ती है। कपिलने ऐसा सिद्धान्त किया कि, दो-की जगहतीन तत्व जगत्में भरे हैं; श्रच्छा, मध्यम श्रीर बुरा । इन्हींको उन्होंने सत्व. रज श्रौर तम नाम दिया। मेटर श्रथवा अव्यक्त अथवा प्रकृतिके ही ये गुरा हैं: और इन्हीं गुणोंके न्यूनाधिक मिश्रणसे देवता, दैत्य, मनुष्य, बृत्त, शिला, इत्यादि सब ऊँचे-नीचे स्थावर-जङ्गम पदार्थ वने हैं। इन तीन गुणोंके न्यूनाधिक प्रभावसे ही सुख,दुःख, ज्ञान, मोहं, नीति, श्रनीति, इत्यादि श्राध्यात्मिक भाव दिखाई देते हैं। किपलकी यह कल्पना इतनी सुन्दर श्रौर सयुक्तिक है कि, भारती श्रायोंके तत्वज्ञानमें यह पूर्णतया प्रस्थापित हो गई है। यह नहीं कि, त्रिगुणोंका श्रस्तित्व केवल सांख्यों-ने ही मान्य किया हो। किन्तु चेदान्त, योग, कर्म, इत्यादि सब सिद्धान्तवादियों-ने उसे माना है। भगवद्गीतामें त्रिग्रणीका

विवेचन बहुत ही उत्तम रीतिसे किया गया है। वह भौतिक श्रोर श्राध्यात्मिक सारी सृष्टिके लिए लगाकर दिखलाया गया है। यहाँ पर यह बात बतलानी चाहिए कि भारती श्रायोंके तत्वज्ञानमें यह सिद्धान्त कदापि स्वीकार नहीं हुशा है कि, बुरा परमेश्वरने उत्पन्न नहीं किया किनतु उसे परमेश्वरके मतके विरुद्ध, किसी न किसी दूसरेने जगत्में पैदा किया है। भगवद्गीतामें स्पष्टतया कहा है कि, तीनों गुण परमेश्वरने ही उत्पन्न किये हैं, श्रोर श्रच्छी वस्तुएँ तथा कियाएँ जैसे परमेश्वरसे उत्पन्न होती हैं, वैसे ही बुरी भी होती हैं। परन्तु परमेश्वर इन दोनोंमें नहीं रहता।

ये चैव सात्विका भावा राजसास्ता-मसाश्च ये। मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि॥

(भगवद्गीता)

हमारे मतसे भारतीय तत्वज्ञानकी यह विशेषता है कि, उन्होंने तत्वज्ञानमें श्रानेवाले दो कठिन प्रश्लोका बहुत ही मार्मिक रीतिसे विवेचन किया है। इस प्रथमा, कि जड श्रीर चेतन सृष्टि कहाँसे उत्पन्न हुई, उन्होंने यह जवाब दिया है कि, परमेश्वरसे परमेश्वरने ही उत्पन्न की। अर्थात् उसकी विशेषता यह है कि, जड़ चेतनका द्वैत उन्होंने निकाल डाला। श्रन्य तत्वज्ञानियोंकी भाँति-फिर चाहे वे प्राचीन हों, श्रथवा श्रवीचीन हों—यदि उन्होंने चेतन श्रर्थात् जीव या श्रात्माकी परमेश्वर माना, तो इसमें आश्चर्यकी कोर्र बात नहीं। परन्तु उन्होंने चेतनके साथ ही साथ जड़को भी परमेश्वरस्वरूप माना। उनकी यह कल्पना बहुत ही उद्य है। यही नहीं, श्राधुनिक वैज्ञानिक श्रावि कारोंकी भाँति, वह सच भी होती चाहती है। हमारे तत्वज्ञानियों के लिए जड़

ब्रीर चेतनमें श्रनुह्मंच्य भेद ही नहीं रहा।
सब तत्वज्ञानका मूलभूत हेतु जो एकत्व
सिद्ध करना है, उसे इन तत्वज्ञानियोंने
ब्रावनी बृहत् कल्पना-शिक्तकी सहायतासे
पूर्ण करके यह सिद्धान्त स्थापित किया कि,
जगत्में एक ही तत्व भरा हुश्रा है। तत्वब्रानीको दूसरी कठिनाई संसारके सुखहुःख, श्रच्छे-चुरे, नीति-श्रनीति इत्यादिके
विषयमें पड़ती है। इस कठिनाईको हल
करनेके लिए भी हैतको श्रलग कर उन्होंने
ऐसा माना है कि, सब उच्च-नीच भाव
परमेश्वरसे ही उत्पन्न हुए हैं; श्रीर परमेश्वरसे श्रलग कोई श्रहरिमन् या शैतान
नहीं है।

श्रस्तु: यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि, भारती आर्य तत्वज्ञानियोंकी भौतिक सृष्टिकी विचिकित्सा अपूर्ण है। यह ध्यानमें रखना चाहिए कि, अर्वाचीन तत्वज्ञानकी इस विषयमें वेकनके कालसे ही प्रगति हुई। जबसे वेकनके यह प्रति-पादित किया कि, प्रयोग और अनुभवका महत्व प्रत्येक शास्त्र श्रौर तत्वज्ञानमें है, तवसे पाश्चात्य भौतिक शास्त्रोंकी बहुत कुछ उन्नति हुई है। प्राचीन कालमें प्राच्य श्रथवा पाश्चात्य तत्वज्ञानमें केवल कल्पना श्रीर श्रनमानींका श्राधार लिया जाता था। इसके अतिरिक्त, आध्यात्मिक विचारोंमें प्रयोग अथवा अनुभवको स्थान ही नहीं है। ये विचार केवल तर्क अथवा अनुमान पर अवलम्बित है। मनुष्यकी बुद्धिमत्तासे जितना हो सकता है, उतना श्रध्यात्मिक विचार प्राचीन भारतीय आयोंने किया है; और इस विचारमें भारतीय श्रार्य सब लोगोंमें अप्रणी हैं। श्रीक लोग जिस प्रकार भौतिक विचार श्रथवा कला-कौशलमें अप्रणी थे, अथवा रोमन लोग जैसे कान्नके तत्वविचारमें अअणी थे, वैसे ही

भारती त्रार्य त्राध्यात्मिक विचारमें त्रप्रणी थे; श्रौर श्रव भी हैं। उनके श्राध्यात्मिक विचार श्रव भी सारे संसारके लोगोंको श्राश्चर्यमें डाल रहे हैं। श्रात्मा क्या पदार्थ है, उसका सक्रप क्या है, उसकी श्रागेकी गति क्या है, इत्यादि बातोंके विषयमें प्राचीन ऋषियोंने बहुत श्रधिक विचार किया है। उन्होंने श्रपने विचार वक्तत्वपूर्ण वाणी-से उपनिषदोंमें लिख रखे हैं; श्रीर उन्हींका विस्तार महाभारतमें किया गया है। श्रात्माही सारे जगत्का चेतन करनेवाला मूलभूत पदार्थ है। वह सम्पूर्ण जगत्के भौतिक श्रीर वौद्धिक तत्वके मृलमें है। यह बात श्ररिस्टाटलने भी स्वीकार की है। पंचशिखका कथन है—"जब कि मर्एको बाद चेतन क्रिया बन्द हो जाती है, तब श्रवश्य ही चेतन श्रात्मा जडके भीतर रहनेवाला एक भिन्न है।" पाश्चात्य भौतिक शास्त्रियोको-पाश्चात्य वैज्ञानिकोको-श्रभीतक यह रहस्य नहीं मालम हुआ कि जीव का पदार्थ है।

प्राण्।

जीवका मुख्य लज्ञण प्राण है; क्योंकि सम्पूर्ण जीवित वस्तुएँ श्वासोच्छ्रास करती हैं। श्रर्थात् प्राण कहते हैं जीवको, श्रौर जीव कहते हैं श्रात्माको। यह श्रात्मा ईश्वरस्वरूप है, परब्रह्मका श्रंश है। इस प्रकार प्राणका परब्रह्मसे सम्बन्ध है। प्राणका भारतीय तत्वज्ञानियोंने खूब श्रध्ययंन किया; श्रौर श्रध्ययन तथा तर्कसे उन्होंने उसके विषयमें कितने ही सिद्धान्त वाँधे हैं। प्राणकोमुख्य पाँच भाग उन्होंने किएत किये हैं; श्रौर पाँच इन्द्रियों तथा पाँच भूतोंकी भाँति ही उनके भिन्न भिन्न स्थान वतलाये हैं।

प्राणात्प्रणीयतेप्राणी व्यानात्व्यायच्छते तथा। गच्छत्यपानोऽधश्चैव समानोद्द्यवस्थितः॥ उदानादुच्छूसिति प्रतिभेदाश्च भाषते । इत्येवं वायवः पंच चेष्टयन्तीहः देहिनम् ॥

प्राणवायुसे मनुष्य जीवित रहता है। व्यानसे मनुष्य बोभ उठाता है। श्रपानसे मलमूत्रोत्सर्ग करना है। समानसे हृदय-की किया चलती है। उदानसे उच्छास अथवा भाषण होता है। इस प्रकार ये भेद बतलाये हैं; श्रीर इन सबके समूहका नाम प्राण है। प्राणींका निरोध करके करनेकी, सिद्ध दशा प्राप्त प्राणायाम करनेवाली युक्तिका भी विचार योगशास्त्र-ने खुब किया है। प्राणायामका मार्ग कहाँ-तक सफलतापूर्ण है, यह वतलानेकी आव-श्यकता नहीं है। परब्रह्मस्वरूपसे प्राण्की प्रशंसा उपनिषदोंमें अनेक जगह आई है: श्रीर महाभारतमें भी बहुत श्राई है। भग-वद्गीतामें प्राण और अपान, दोनोंका अर्थ "भीतर श्रीर बाहर जानेवाला श्वास" किया गया है: श्रौर योगसाधनमें यह बत-लाया है कि, "प्राणापानी समी कृत्वा नासा-भ्यन्तरचारिणौ।" श्रर्थात् नासिकाके दोनों प्टोंमें प्राण श्रोर श्रपानको समान ही चलाना चाहिए। इसी भाँति गीतामें यह भी कहा है:-

श्रपाने जुह्नति प्राणं प्राणोऽपानं तथाऽपरे। श्रपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्नति ॥ इससे जान पड़ता है प्राणका विचार

बहुत प्राचीन कालमें हुआ था।

प्राणकी ही भाँति जीवका दूसरा लचण उष्णता अथवा अग्नि है। इसकी आरे भी भारतीय दार्शनिकोंका ध्यान गया था। सम्पूर्ण शरीरकी उष्णता और शिरकी उष्णताका विचार करते हुए उन्होंने यह प्रतिपादन किया कि, देह और शिरमें अग्नि रहता है। वनपर्वके अध्याय २१३ में, धर्मव्याध-संवादमें इस बातका मनोरंजक वर्णन किया गया है कि, शरीरमें अग्नि और वायु कहाँ रहते हैं। वायुका केन्द्रस्थान नाभिमें बतलाया गया है; श्रीर श्रिक्तिका केन्द्रस्थान शिरमें बतलाया है। शरीरमें तीसरा केन्द्रस्थान हृदय है। उससे चारों श्रोर, इधर-उधर, नीचे-ऊपर, नाड़ियाँ निकली हैं, जो कि सारे शरीरको श्रन्न-रस पहुँचाया करती हैं। श्रीर, यह पोषण दस प्राणोंके जोरसे होता रहता है।

प्रवृत्ताः हृद्यात्सर्वात्तिर्यगृध्वमधस्तथा। वहन्त्यन्नरसान्नाड्यो दशप्राणप्रचोदिताः॥ (वनपर्व प्र० २१३)

जैसे पाँच इन्द्रियों में कर्मेन्द्रियों के योग-से दस इन्द्रियाँ हुई, उसी प्रकार मृत पाँच प्राणोंके दस प्राण हुए। ये नवीन पाँच प्राण टीकाकारने इस प्रकार वत-लाये हैं-नाग, कूर्म, कुकल, देवदत्त और धनञ्जय। परन्तु यह नहीं बतलाया कि. इनके स्थान कौनसे हैं, श्रौर कार्य कौनसे हैं। उपर्यक्त वर्णनसे यह कहा जा सकता है कि, नाडियाँ श्रीर प्राण श्राजकलके नर्वस् सिस्टिमके स्थानमें हैं। शरीरके मुख्य जीवकी क्रियाश्री श्रीर शक्तियोंके विषयमें, अर्थात् प्राण, अग्नि और हदयसे निकलनेवाले नाड़ी-विस्तारके विषयमें, योगशास्त्रमें खूब विचार किया गया है श्रीर प्राचीन काल तथा श्राजकलके योगी भी कितने ही चमत्कार करके दिखलाते हैं। हृद्यकी क्रिया बन्द करना, श्वासोच्छ्रास बन्दं करना, इत्यादि वाते महाभारतमे नहीं बतलाई गई हैं। परन्तु महाभारतके प्रत्येक तत्वज्ञानके विचारमें प्राण, नाड़ी श्रीर हृद्यका वर्णन ज़रूर श्राता है।

इन्द्रियज्ञान ।

जीवके विषयमें देहकी जो मुख्य कियाएँ हैं, उनमें उपर्युक्त वातोंके श्रितिरिक्त सुषुप्ति श्रीर स्वप्नकी कियाश्रों श्रुथवा श्रवस्थाश्रोंका विचार भी तत्वज्ञानमें उप श्वित होता है। उसे विस्तारके साथ यहाँ बतलानेकी स्रावश्यकता नहीं। इसी भाँति वृद्धिकी कियाका भी प्रश्न उपस्थित होता है। पहले, प्रारम्भमें ही तत्वज्ञानीको यह विश्चित करना आवश्यक होता है कि. तिहय-जन्य-ज्ञान कैसे होता है। तत्वज्ञा-तियोंको यह प्रश्न सदैव रहस्यमय दिखलाई रेता है कि इन्द्रियोंको ज्ञान होता कैसे है ? रस प्रश्न पर मनुष्य खाभाविक ही तरन्त यहउत्तर देता है कि, जो पदार्थ ज्ञात होता है, उसके संयोगसे । क्योंकि प्रत्यच पदार्थी सेत्वक श्रीर जिह्वाका संयोग होनेसे स्पर्श ब्रीर रसका बोध होता है; परन्तु उपर्युक्त रीतिसे जब इस प्रश्नको हल करने लगते हैं कि, गंध कैसे श्राता है, तब यही मानना पडता है कि, जिस पदार्थका गंध श्राता है, उस पदार्थके सूदम परमाणु नासिका-में प्रविष्ट होते हैं: श्रौर यह बात सच भी हो सकती है। परन्तु यह प्रश्न कठिन है कि, शब्द श्रीर रूपका कर्ण श्रीर नेत्रको कैसे बोध होता है। यह नहीं कहा जा सकता कि, इस प्रश्नके विषयमें भारती श्रार्य तत्ववेत्ताश्रोंका मत गलत है। कि-बहुना उन्होंने जो यह निश्चित किया कि, शब्द सारे महाभूतोंके साधनसे एक जगह-से दूसरी जगह जाता है, सो यह उनके एक बड़े अनुभव और भारी बुद्धिमत्ताका लक्षण है। शब्द पृथ्वीसे श्रीर पानीसे भी सुनाई देता है: श्रौर हवासे भी सुनाई देता है। परन्तु यह कल्पना कि, श्राकाश-से भी शब्द सुनाई देता है, श्राजकलके रसायन-शास्त्रके श्राविष्कारके श्रनुसार मिथ्या ठहरती है *। श्राजकल यह श्रनु-भवसे निश्चित हुन्ना है कि निर्वात प्रदेश-में शब्द नहीं जाता। परन्तु प्राचीन कालमें यह बात मालूम नहीं थीं। क्योंकि उस

*इसमें भी संदेह है; क्योंकि शब्द आजकत टेलीफोन-से भी जाता है। समय निर्वात प्रदेश उत्पन्न करनेका प्रयोग करना सम्भव ही न था। जो हो: यह निश्चित करना सबसे कठिन है कि, दृष्टि-की इन्द्रिय कैसे कार्य करती है: श्रीर इस विषयमें प्राचीन कालमें भिन्न भिन्न तर्क किये गये थे। कुछ लोगोंका मत यह था कि, दृष्टिकी इन्द्रिय नेत्रोंसे निकलकर देखे हुए पदार्थसे संलग्न होती है; श्रीर इसलिए उसके श्राकार श्रीर रंगका ज्ञान होता है। श्रीक लोगोंमें भी कितने ही दार्शनिकोंका यह मत था कि, प्रत्येक पदार्थसे जिस प्रकार परमाणु बाहर निक-लते हैं, उसी प्रकार उसके आकार और रंगके मंडल अथवा पटल वरावर वाहर निकलते रहते हैं; और जब देखनेवालोंकी श्राँखोंसे संयोग होता है, तब उनको पदार्थके रङ्ग-रूपका ज्ञान होता है। भार-तीय दार्शनिकोंके मतसे दिगन्द्रिय श्रीर दश्य पदार्थका संयोग, तेज अथवा प्रकाश-के योगसे होता है। सभी इन्द्रियोंके पदार्थ-संयोगसे होनेवाले ज्ञानके लिए मनकी श्रावश्यकता है। मन शरीरमें है: श्रीर नाडी द्वारा सव इन्द्रियोंमें व्याप्त रहता है। इसी मनके द्वारा इन्द्रियों पर पदार्थका जो सन्निकर्ष होता है, वही बुद्धिमें पहुँचता है: श्रीर वहाँ ज्ञान उत्पन्न होता है। मनुष्यका मन यदि श्रौर कहीं होगा. तो इन्द्रिय श्रीर पदार्थका संयोग होने पर भी ज्ञान नहीं होगा। भारतीय दार्श-निकोंने चित्तकी एक श्रोर भी सीढ़ी इस विषयमें मानी है।

चित्तमिन्द्रियसंघातात्परं तस्मात्परं मनः। मनसस्तु पराबुद्धिः त्रेत्रज्ञो बुद्धितः परः॥ (शांतिपर्व श्र० २७६)

त्रर्थात् देहमें इन्द्रियाँ, चित्त, मन, वुद्धि त्रौर त्रात्माकी परम्परा लगी है; त्रीर इसी परम्परासे ज्ञान होता है। त्राजकलके पाश्चात्य शारीर-शास्त्रानुसार

इन्द्रिय, नर्वस् सिस्टिम अथवा नाड़ीचक और बेन अथवा मस्तिष्कके मार्गसे पदार्थ-का झान होता है। परन्तु यह बात पाश्चात्य शारीरशास्त्र भी नहीं बतला सकता कि मन क्या है। हाँ, यह व्याख्या की जा सकती है कि, हद्य, मस्तिष्क अथवा नाड़ीचक-का विशेष धर्म मन है।

श्रात्माका स्वरूप।

भारतीय तत्वज्ञानियोंने भी यह बात स्वीकार की है कि, चित्त, मन श्रथवा बुद्धि श्रीर पञ्चेन्द्रियाँ तथा पश्चप्राण, ये सब बातें जड़ श्रथवा श्रव्यक्तके ही भाग हैं। इनमें श्रपनी निजकी किसी प्रकार-की चलनवलनात्मक शक्ति नहीं है। इनके पीछे यदि जीव हो, तभी इनमें चलनकी शक्ति होगी। जीव अथवा आत्मा यदि न हो, तो ये सब वस्तुएँ निरुप-योगी अथवा जड़ हैं। जबतक जीव है, तभीतक इनकी कियाएँ होती हैं; श्रीर जहाँ जीव चला गया कि फिर बस, श्राँखें रहते हुए भी दिखाई नहीं देता। ऐसी दशामें सबसे महत्वका प्रश्न यही है कि, यह जीव क्या वस्तु है ? इसी प्रश्नके श्रास-पास सब देशों श्रीर सब समयोंके दार्श-निक अथवा तत्ववेत्ता चक्कर काट रहे हैं। परन्तु अभीतक इसका पूरा पता नहीं लगा। इस विषयमें तत्वज्ञानकी श्रत्यन्त उच और उदात्त कल्पनाएँ हैं। प्रायः सभीके मतसे, श्रात्मा है; यही नहीं, किन्त वह ईश्वरीय श्रंश है। प्रत्येकका ब्रहं विषयक अनुभव अर्थात् यह भावना कि मैं देखता हूँ, में सुनता हूँ-यह बात निश्चित रूपसे सिद्ध करता है कि, पञ्चे-न्द्रिययुक्त देहका कोई न कोई श्रमिमानी देही अवश्य है। इन्द्रियोंको अपना निज-का ज्ञान कभी नहीं होता । परन्तु इन्द्रियों-के पीछे रहनेवाले जीवको इन्द्रियोंका ज्ञान

होता है। श्रात्मा यदि प्रत्यच दिखाई नहीं देता, तथापि उसका श्रस्तित्व श्रस्तीकार नहीं किया जा सकता। महाभारतमें एक जगह श्रात्माका श्रस्तित्व वहुत ही सुन्तर रीतिसे स्थापित किया गया है—"यह बात नहीं है कि जो इन्द्रियों के लिए अगोचर है, वह बिलकुल है ही नहीं; श्रीर यह भी नहीं कि जिसका ज्ञान नहीं होता, वह होता ही नहीं। श्राजतक हिमालयका दुसरा पहलू अथवा चन्द्रमग्डलका पृष्ठ भाग किसीने नहीं देखा: परन्तु इससे यह थोड़े ही कहा जा सकता है कि वे हैं ही नहीं। किंबहुना हम निश्चयपूर्वक यहीं कहते हैं कि वे हैं। आत्मा अत्यन सदम श्रीर ज्ञानस्वरूपी है। चन्द्रमण्डल पर हम कलङ्क देखते हैं, परन्तु यह हमारे ध्यानमें नहीं श्राता कि, वह पृथ्वीका प्रतिबिम्ब है। इसी प्रकार यह बात भी सहसा ध्यानमें नहीं श्राती कि, श्राता ईश्वरका प्रतिविम्य है। देखना अथवान देखना श्रस्तित्व श्रथवा श्रभावका लच्ण नहीं है। यह हम अपनी वुद्धिमत्तासे निश्चित कर सकते हैं, कि सूर्यमें गति है। इसी भाँति यह बात भी हम श्रपनी वुद्धि-से निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि सूर्य अस्तसे उद्यतक कहीं न कहीं रहता है। जिस प्रकार हिरनकी सहायतासे हिरन, त्रथवा हाथीकी सहायतासे हाथी श्रीर पित्रयोंकी सहायतासे पत्ती, पकड़ते हैं, उसी प्रकार ज्ञेयकी सहायतासे ज्ञेयकी जान सकते हैं। स्थूलदेह श्रथवा लिङ्ग शरीरमें रहनेवाला श्रमूर्त श्रात्मतत्व ज्ञान से ही जाना जा सकता है। शरीरसे जब त्रात्मा त्रलग हो जाता है, तब श्रमावस्या के चन्द्रमाके समान वह श्रदृश्य होता है श्रौर चन्द्र जिस प्रकार दूसरे स्थानमे जाकर फिर प्रकाशित होने लगता है। उसी प्रकार श्रात्मा दूसरे शरीरमें ^{जाने}

वर फिर भासमान होने लगता है। वन्द्रमाके जन्म, वृद्धि और सयके धर्म हेल पड़नेवाले चन्द्रविम्बसे सम्बन्ध खते हैं; परन्तु प्रत्यत्त चन्द्र इनसे श्रलग हु-उससे इन धर्मीका कोई सम्बन्ध तही। बस, इसी प्रकार जन्म, मृत्यु, वृद्धि, जरा इत्यादि देहके धर्म हैं, श्रात्माके नहीं। जिस प्रकार प्रहणके समय चन्द्रमा पर पडनेवाली छाया और अँधेरा चन्द्रमाके पास श्राता हुश्रा दिखाई नहीं पड़ता, प्रथवा चन्द्रमासे छूटा हुआ भी दिखाई नहीं पड़ता, उसी प्रकार जड़ शरीरमें त्राते हए अथवा इससे जाते हुए आतमा भी इमको दिखाई नहीं देता। श्रर्थात् राह श्रथवा छायाका ज्ञान स्वतन्त्र नहीं हो सकता। वह जब चन्द्र अथवा सूर्यके मण्डलसे सम्बन्ध पाता है, तभी उसका हान होता है। इसी प्रकार शरीरान्तर्गत श्रात्माकी उपलब्धि हमें होती है, शरीरसे वियक्त श्रात्माकी उपलब्धि नहीं होती।"

शान्तिपर्व श्रध्याय २०३में दिया हुश्रा उपर्युक्त वर्णन आत्माका श्रस्तित्व बहुत ही मुन्दर रीतिसे पाठकोंके मन पर जमा देता है। उसमें दिये हुए दृष्टान्त बहुत ही मार्मिक श्रीर कवित्वपूर्ण हैं। यह सम-भानेके लिए कि, शरीरमें ही रहते हुए श्रात्मा कैसा प्रतीत होता है श्रीर शरीरसे श्रलग होने पर प्रतीत नहीं होता, जो प्रहणका द्यान्त दिया हुआ है, वह बहुत ही प्रभावशाली और कवित्वपूर्ण है। पृथ्वी-की छाया जो आकाशमें घूमती रहती है, हमको कभी दिखाई नहीं देती। परन्तु स्पंकी विरुद्ध दिशासे पृथ्वीकी छाया जब चन्द्र पर आती है, तब वह दिखाई देने लगती है; श्रीर जबतक वह चन्द्र पर रहती है, तभीतक दिखाई देती है। परन्तु चन्द्रके पास आते हुए, अथवा चन्द्रसे ष्टते समय दिखाई नहीं देती। यह हछान्त

भारती त्रायोंके सूदम निरोत्तणका वहुत श्रच्छा प्रमाण है। इस दृष्टान्तसे हमें यह अच्छी तरह मालुम हो जाता है, कि अमूर्त श्रात्मा देहसे अलग क्यों दिखाई नहीं देता: श्रीर देहका सम्बन्ध होने पर कैसे दिखाई देने लगता है। इसी भाँति, जैसे पृथ्वी-की छाया चूँकि हमको दिखाई नहीं देती इसलिए हम यह नहीं कह सकते कि वह हैं ही नहीं, वैसेही श्रात्मा भी चूँकि देहसे श्रलग दिखाई नहीं देता, इससे यह नहीं कह सकते कि श्रात्मा नहीं है। तीसरे, इस दष्टान्तका सवसे बड़ा गुण यह है कि इससे आत्माका सक्ष पूर्णतया हमारी समभमें श्रा जाता है। श्रात्मा मूर्त पदार्थ नहीं है; किन्तु वह छायाके समान श्रमूर्त है; श्रोर पृथ्वीकी छाया जैसे सूर्यसे पड़ती है, वैसे ही श्रात्मा परमात्माकी छाया है, किंबहुना वह परमात्माका प्रतिविम्ब है: श्रौर इसलिए श्रात्मामें परमात्माका चित्-स्वरूप थ्रौर श्रानन्द-सरूप भी भरा हुआ है। तात्पर्य यह है कि, तत्ववेत्ताश्रोंका यह सिद्धान्त हमारे श्रनुभवमें श्राता है कि आतमा है। यही नहीं, बिलक वह ईश्वरका श्रंश है।

जीवका दुःखितव।

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि,
श्रातमा यदि परमेश्वरकी छाया है, श्रोर
यदि वह चित्सक्प श्रोर श्रानन्दसक्प है
तो मनुष्य श्रज्ञानी, दुःखी, कुमार्गगामी
क्यों होता है? श्रीक दार्शनिकोंने इसका
उत्तर यह दिया है, कि जैसे खच्छ पानीमें
पड़ा हुश्रा प्रतिविम्ब साफ दिखाई देता
है, वैसे ही जिस समय इन्द्रियाँ श्रोर श्रन्तः
करण सब शुद्ध होते हैं, उस समय उसमें
पड़ा हुश्रा प्रतिबिम्ब श्रथात् श्रातमा शुद्ध
श्रोर श्रानन्दयुक्त होता है; परन्तु जिस
समय इन्द्रियाँ गँदली होती हैं, उस समय

श्रात्माका खरूप भी मलिन होता है। मन पर अज्ञानका प्रभाव जम जाता है: श्रीर फिर दुष्ट मनका इन्द्रियों पर प्रभाव होता है, जिससे इन्द्रियाँ विषयमें त्रासक्त हो जाती हैं। पापसे हजारों इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं; श्रोर मन सदैव विषयवासनामें मय रहता है, तथा भीतर रहनेवाले ईशां-शस्वरूपी श्रात्माकी श्रोर श्रपनी पीठ कर लेता है। मतलब यह है कि, जब इन्द्रियाँ अन्य ही मार्गकी श्रोर चलकर विषयमें स्वच्छन्द संचार करने लगती हैं, उस समय मनुष्य दुःखी होता है। परन्तु वह जब उनको श्रपने वशमें रखता है, तब सुखी होता है। जो इन्द्रियोंके सारे व्यापार बन्द कर देता है, उसे श्रद्धय सुखकी प्राप्ति होती है।

वासनानिरोध और योगसाधन।

इस प्रकार दुःखका परिहार होनेकी एक ही युक्ति अर्थात् इच्छाओंका नाश करना है। जैसा कि एक ग्रॅंग्रेजी ग्रन्थ-कारने कहा है कि, इच्छाकी डोरी तोड डालने पर ऋत्माका विमान श्राकाशमें चढेगा। इच्छाकपी रज्जुश्रोंने श्रात्माको पृथ्वीसे जकड़ रखा है। उनको तोड़नेसे ब्रात्मा स्वामाविक ही अर्ध्व दिशाको जायगा । योग सिद्धान्तकी मुख्य वात यही है। मन सदैव इच्छाश्रोंके चकरमें श्रा जाता है: श्रोर श्रन्तरात्माको श्रीर ही मार्गमें ले जाता है, तथा मनुष्यको नाना प्रकारके कर्म करनेके लिए वाध्य करता हैं: और विषयोपभोगमें फँसाता है। अत-एव मन यदि अपनी इच्छात्रोंसे पूरा वृत्त होगा, अर्थात् वह यदि शान्तिसे वैठेगा. तो श्रात्मा श्रपने सम्पूर्ण तेजसे प्रकाशित होगा । पतञ्जलिके योगसूत्रोंका पहला सूत्र यही है कि, मनको शान्तिके साथ वैद्वाना ही योग है। मनको शान्तिके साथ

बैठाना अत्यन्त दुःसाध्य कर्म है; और योगतस्वज्ञानका प्रयत् यही है कि, भिन्न भिन्न यम, नियम और आसन इत्यादि बतलाकर मनको स्वस्थ बैठानेकी किया सिद्ध कराई जाय । ये सब बात विस्तारके साथ यहाँ नहीं वतलाई जा सकतीं। तथापि योग साधनेमें पञ्च प्राण, मन और इन्द्रियोंके निरोधकी और ध्यान रहता है। महाभारतमें अनेक सला पर इस योगका विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया है। एक स्थानका वर्णन संत्रेष-में यहाँ दिया जाता है:- "मनके सब विकल्पोंको वन्द करके श्रीर उसको स्वत्वमें स्थिर रखकर श्रीर शास्त्रोंमें वतः लाये हुए यमनियमोका पालन करके योगीको किसी बचके ठँठकी तरह निश्चल हो ऐसी जगह बैठना चाहिए कि जहाँ मन व्यय न हो : श्रीर फिर इन्द्रियों-को भीतर लेकर, अर्थात् उनको अल-र्मुख करके, मनकी स्थिरताको सिंद करना चाहिए। कानसे सुनना न चाहिए, श्राँखोंसे देखना न चाहिए, नाकसे सुँघना न चाहिए, और न त्वचासे स्पर्शका ज्ञान करना चाहिए। सब इन्द्रियोंका मनमें लय करके योगीको मन स्थिर करना चाहिए। यद्यपि मनका धर्म भ्रमण करके इन्द्रिय हारा बाहर भटकनेका है, अथवा किसी आधारके न रहते हुए यद्यपि मन नाच सकता है, तथापि उसको एक जगह वैटाना चाहिए। जिस समयपाँची इन्द्रियों श्रीर मनका निरोध हो जाता है उस समय भीतर एकदम ऐसा प्रकाश श्रा जाता है, जैसे मेघोंमें एक दम विजली का प्रकाश छा जाय । जिस प्रकार पत्ते^{पर} पानीका बिन्दु कुछ कालतक स्थिर रहता है, उसी प्रकार ध्यानमें पहले योगीका मन कुछ कालतक स्थिर रहता है। परन्तु वायुकी सहायतासे बहुत जल्द योगीकी भौका देकर मन बाहर निकलता है।
तथापि योगीको चाहिए कि वह निराश
न होते हुए, श्रश्रान्त परिश्रम करके,
तिद्रा श्रीर मत्सरका त्याग करके, मनको
किर पूर्व स्थानमें लाकर स्थिर करे। मन
भिन्न भिन्न विचार, विवेक, वितर्क उत्पन्न
करेगा। इस प्रकार मन चाहे बार वार
कष्ट दिया करे, तथापि मुनिको धेर्य न
होड़ना चाहिए; श्रीर श्रपना कल्याण
साधनेका मार्ग स्थिर रखना चाहिए।
इस मार्गसे योगीको धीरे धीरे ध्यानकी
हिच लगेगी, श्रीर उसे मोन्न प्राप्त
होगा।"

ईश्वरका ध्यान करनेके विषयमें भारती आर्य तत्वज्ञानियोंका पूर्ण आग्रह है: श्रौर ऐसा ही श्रीक देशके नृतन मेटो-मतवादियोंका भी है। श्रतमान है कि उन्होंने श्रपने ये मत शायद महा-भारतसे अथवा भारती तत्वज्ञाताओंसे ही ग्रहण किये हों, क्योंकि उनके ये मत सिकन्दरकी चढ़ाईके बादके हैं। वे कहते हैं:—"दृश्य जगत्को पीछे छोड़कर मनुष्यको अपना मन ऊँचे ले जाकर परमेश्वरसे तादातम्य करना चाहिए। यही उसका इति-कर्तव्य है। ईश्वरकी भूमि ध्यान है।" इस ध्यानके भीतर तो हम प्रवेश न कर सकें; और यह कहें कि ध्यान अथवा समाधिमें ईश्वरसे तादातम्य पाकर आनन्दकी परमावधि अर्थात् ब्रह्म-साचात्कारका अनुभव हो जाय, तो ये वातें कहनेकी नहीं हैं। सारे दार्शनिक-फिर चाहें वे योगी हों, वेदान्ती हों, सेरो-के अनुयायी हों, अथवा पायथागोरसके हो- साज्ञात्कारके विषयमें श्रीर वहाँके परम सुखके विषयमें खानुभवसे श्रीर विश्वाससे बतलाते हैं। मनकी इस मकारकी स्थितितक जा पहुँचनेका प्रत्येक-का मार्ग सिन्न होगा: परन्तु सब मार्ग

एक ही स्थानको जाते हैं। महाभारतमें भी कहा है कि, सारी निष्ठाएँ नारायणके प्रति हैं। इन भिन्न भिन्न मार्गोंसे मनुष्य जव श्रपने श्रन्तर्याममें जाता है, तब उसे वहाँ परमात्माका साचात् दर्शन हो सकता है। इसके विषयमें दो तीन वातें यहाँ वतला देना आवश्यक है। पहली बात यह है कि श्रन्य तत्वज्ञानोंकी भाँति योगमें भी यही कहा है कि जिस मनुष्यको मनका निरोध करके समाधिमें ईश्वर-साचात्कार करने-की इच्छा हो, उसको नीतिका श्राचरण खूव दढ़तासे और गुद्ध करना चाहिए। व्यवहारमें नीतिके जो नियम सर्वमान्य हैं. उन सबका उसे श्रच्छी तरह पालन करना चाहिए; अर्थात् परद्रव्य, परस्त्री, परनिन्ता इत्यादिसं उसे त्रालिप्त रहना चाहिए। इसके श्रतिरिक्त योगीको श्रहिंसाका नियम पूर्णतया पालन करना चाहिए। मांसका भोजन अवश्य ही योगीके लिए वर्ज्य है; यही नहीं, किन्तु योगीको कीटकादि जुड़ जन्त्रश्लोकी भी हिंसा नहीं करनी चाहिए। सेटोके नवीन मतवादी ग्रीक तत्वज्ञानियों-का भी यही मत था। उनके बडे तत्व-वेत्ता प्रोटिनस्ने मांस-भन्नण वर्ज्य किया था। इसके सिवा, योगीको निद्रा, जहाँ-तक हो सके, कम करनी चाहिए। लिखा है कि सोटिनस्ने भी अपनी निदा अत्यन्त कम कर दी थी। इस वर्णनसे यह उप-र्युक्त अनुमान दढ़ होता है कि, योगशास्त्र-के सिद्धान्त भारतवर्षसे ही पाश्चात्य ग्रीस देशमें गये। भारतीय श्रार्य लोगोंके योगी प्रायः सारा दिन श्रोर रात नींद्के बिना काटते हैं। योगके जो तत्व और लच्चण ऊपर दिये हैं, उनका एक छोटेसे सुन्दर श्होकमें, भीष्मस्तवराजमें, महा-भारतने समावेश किवा है:-्यं विनिद्रा जितथ्वासाः

यं विनिद्रा जितश्वासाः सत्वस्थाः संयतेन्द्रियाः। ज्योतिः पश्यन्ति युआनाः तस्मै योगात्मने नमः॥

निद्राका त्याग करनेवाले, प्राण्का जय करनेवाले, सत्व गुणका अवलम्बन करनेवाले, इन्द्रि गंको जीतकर वशमें रखनेवाले और योगमें युक्त रहनेवाले योगी ज्योतिस्वरूप जिस परमेश्वरको देखते हैं, उस योगस्वरूपी परमात्माको नमस्कार है। उपर्युक्त क्षोकमें योगके मृलभूत सिद्धान्त और कियाएँ संत्तेपमें सुन्दर रीतिसे दी हुई हैं।

कर्मसिद्धान्त।

योगके तत्व-ज्ञानने इसकी मीमांसा करके, कि इस जगत्में श्रात्माको दुःख क्यों होता है, यह निश्चित किया कि इन्द्रियाँ विषयोंकी श्रोर जीवको बार बार खींचती हैं, इसलिए दुःख होता है; श्रर्थात् दुःखके नाश करनेका साधन यह है कि इन्द्रियोंको मन सहित रोका जाय: श्रीर समाधिमें जीवातमाका परमातमासे एकीकरण किया जाय। परन्तु यह बात श्रत्यन्त कठिन है। साधारणतया मनुष्य प्राणी संसारमें मन्न रहता है: श्रीर इन्द्रियोंका निरोध करना श्रथवा मनको खक्ष बैठाना, ये दोनों बातें एक समान ही कठिन हैं। इस कारण जीवको जन्ममरणके चकरमें पड़कर कर्मानुरोधसे संसारकी श्रनेक योनियोंमें घूमना पड़ता है। जिस प्रकार यह महत्वका सिद्धान्त, कि जीवका संसरण कर्मानुसार होता है, भारती श्रार्य तत्वज्ञानमें प्रशापित हुत्रा, उसी प्रकार उपनिषदोंमें भी कर्म श्रीर जीवके संसारित्वका मेल मिलाया हुत्रा हमारी दृष्टिमें आता है। जीव भिन्न भिन्न योनियों-में कैसे जाता है, अथवा एक ही योनिक भिन्न भिन्न जीवोंको सुख दुःख न्यूनाधिक क्यों होता है-इस विचारका सम्बन्ध

कर्मसे है। यह एक अत्यन्त महत्वका सिद्धान्त भारती श्रार्थ तत्वज्ञानमें है श्रन्य किसी देशमें इस सिद्धान्तका उद्गम नहीं दिखाई पड़ता। पाश्चात्य तत्व ज्ञानमें इसका कारण कहीं नहीं वतलाया गया है कि मनुष्योंको जन्मतः भिन्न भिन्न परिस्थिति क्यों प्राप्त होती है । ईश्वरकी इच्छा अथवा दैच, अथवा यहच्छाके श्रतिरिक्त श्रन्य कोई कारण वे नहीं दिखला सकते। कर्मके सिद्धान्तसे, एक प्रकारसे नीतिका वन्धन उत्पन्न होता है। यही नहीं, किन्तु कर्म-सिद्धान्तसे यह बात निश्चित होती है कि इस जगत्की भौतिक क्रान्तियाँ जिस प्रकार नियमबद्ध हैं, उसी प्रकार व्यावहारिक क्रान्तियाँ भी एक अबाधित नियमसे वँधी हुई हैं वे यदच्छाधीन नहीं हैं । इसके सिवा, यह वतलानेकी आवश्यकता ही नहीं है कि कर्म-सिद्धान्तका मेल पुनर्जन्मके सिद्धान्तसे है। कर्म अनादि माना गया है: क्योंकि यह प्रश्न रह ही जाता है कि विलकुल पारम्भमें ही जीवने भिन्न भिन्न कर्म क्यों किये। इसलिए ऐसा सिद्धान्त है कि जैसे संसार अनादि है, और उसका श्रादि श्रोर श्रन्त कहीं नहीं हो सकता, उसी प्रकार कर्म अनादि हैं श्रीर ईश्वर प्रत्येक प्राणीको उसके कर्मा नुसार, भले वरे कार्यके लिए पारितो-षिक अथवा दएड देता है। कर्मका अन्त श्रीर संसारका श्रन्त एक ही युक्तिसे हो सकता है। वह यह कि योग अथवा भान से जब कि जीवात्माका परमात्मास तादातम्य हो जाता है, तब जीवातमाका श्रुजुपभुक्त कर्म सम्पूर्ण जल जाता है। श्रीर प्रारब्ध-कर्मका भीग होने पर श्रात्मा को पुनर्जन्मसे मुक्ति मिलती है। त्रर्थात उससे कर्म और संस्तिका एक दम नाश होता है। इस प्रकार कर्म और संस्त

ब्रनादि श्रोर सान्त वस्तुएँ हैं। यही मंत्रेपमें कर्म, पुनर्जन्म श्रोर मोज्ञका सिद्धान्त है। भारती श्रायों के श्रास्तिक श्रीर नास्तिक दोनों मतवादियोंको यह सिद्धान्त बीकार है। वेदान्त, सांख्य, योग, कर्मवाद इन श्रास्तिक मतोंको कर्म, पुनर्जन्म श्रोर मोज्ञका सिद्धान्त स्वीकार है; तथा नास्तिक, त्याय, बौद्ध, जैन, इनको भी वह मान्य है। ज्यपि वे इश्वरको नहीं मानते हैं, तथापि यह उनको स्वीकार है कि श्रात्माका संसरण कर्मानुरूप होता है: श्रीर प्न-र्जन्मसे छुटकारा पाना मनुष्यका परम धर्म है। अर्थात् यह सिद्धान्त सभीका है कि, मोत्त अथवा निर्वाण ही परम पुरुपार्थ है। हाँ, मोच-प्राप्तिका मार्ग अवश्य ही भिन्न भिन्न तत्वज्ञानोंमें भिन्न भिन्न बत-लाया है। कहीं श्रात्माका स्वरूप भी भिन्न माना है। परन्तु आत्माको मान लेने पर, फिर ये आगेकी सीढ़ियाँ उन सवको एक ही सी मान्य हैं - अर्थात श्रात्माको हजारों जन्म-मृत्य प्राप्त होते है, जीवन दुःखमय है; श्रीर इस जन्म-मरणके भवचकसे छुटना ही सारे तत्व-शनोंका परम उद्देश्य है । ये तीन वातें सब सिद्धान्तोंको समान ही खीकार है। (हाँ, चार्वाक मतवादी इन तीनोंके विरुद्ध हैं। उनके मतानुसार देह ही आत्मा है; श्रीर संसारमें जन्मना ही सुख है; तथा मृत्य ही मोच है।)

श्रात्माका श्रावागमन

श्रच्छा, श्रव हम इस वातका थोड़ा विचार करेंगे कि, भारतीय श्रायोंने श्रात्माकी संस्तृतिका सिद्धान्त कैसे स्थिर किया । यह सिद्धन्त पायथागोरस नामक श्रीक तत्ववेत्ताको स्वीकार हुश्रा थाः श्रीर प्रेटोके श्रमुयायियोंके भी पसन्द श्राया था। परन्त उसका विशेष प्रचार

पाश्चात्य देशोंमें नहीं हुआ । जो लोग यह मानते हैं कि, शरीरसे ब्रात्मा भिन्न है, उनको दो श्रीर प्रश्लोंका हल करना श्राव-श्यक होता है। श्रात्मा शरीरमें क्यों श्रीर कव प्रवेश करता है; तथा जब वह शरीर छोड़ता है, तब कहाँ जाता है ? जो लोग श्रात्माका अस्तित्व मानकर उसका संसारित्व नहीं मानते, उनको इन प्रश्लोका हल करना कठिन होता है। ग्रीक तत्ववेत्ता सोटिनस्, जान पड़ता है, पुनर्जन्मवादी न था। उसने इसका यह उत्तर दिया है कि, "सृष्टि (ब्रथवा स्वभाव) देह उत्पन्न करती है। और आत्माके रहनेके लिए उसे तैयार करती है। उस समय श्रात्मा उस देहमें रहनेके लिए श्राप ही श्राप श्राता है। उसे किसीकी ज़बरदस्तीकी श्राव-श्यकता नहीं रहती। उस पर किसीकी सत्ता नहीं रहती: श्रीर उसे कोई भेजता भी नहीं। किन्तु खाभाविक ही श्राकर्षण-से आत्मा देहमें आता है। क्योंकि देहको श्रात्माकी चिन्ताकी श्रावश्यकता रहती है। श्रात्मा चुँकि शरीरमें श्राता है, श्रत-एव दोनोंकी परिपूर्णता हो जाती है।" इस कथनमें कोई विशेष अर्थ नहीं, और यह संयुक्तिक भी नहीं जान पड़ता। क्योंकि पहले तो यही अच्छी तरह समभमें नहीं श्राता कि, श्रात्मा परमात्मामें रहना छोड-कर इस भौतिक शरीरमें आकर रहनेकी दुःखद स्थिति स्वीकार क्यों करेगा ? श्रात्मा-तो ईशांश है, यह उसे स्वीकार है; फिर यदि ईश्वरकी इच्छा उसे नीचे नहीं ढके लती, तो हम नहीं समभते कि, त्रात्मा पृथ्वी पर क्यों श्रावे। श्रीस देशके दूसरे तत्ववेत्ता, जो यह नहीं मानते कि श्रात्मा परमेश्वरका अंश है, वे इस विषयमें ऐसा मत देते हैं। ये लोग निरीश्वरवादी हैं, इसलिए उनके मार्गमें ईश्वरकी बाघा बिलकुल नहीं है। उनके मतसे, आत्मा परमाणुरूप हैं, श्रोर वह गोल चिकना
तथा श्रत्यन्त चंचल खरूपका है। वह
इस जड़सृष्टिमें चारों श्रोर भरा हुश्रा
है। श्रात्माके श्रसंख्य परमाणु इधरसे
उधर दौड़ते रहते हैं, श्रोर वे प्राण्वायुको
ध्वासोच्छ्रास-क्रियाके साथ ये बाहर भी
निकल सकेंगे। परन्तु श्वास भीतर लेनेकी क्रियासे वे सदैव भीतर श्राते हैं।
इस प्रकार जबतक श्वास भीतर लेनेकी क्रियासे वे सदैव भीतर श्राते हैं।
इस प्रकार जबतक श्वास भीतर लेनेकी क्रियासे वे सदैव भीतर श्राते हैं।
इस प्रकार जबतक श्वास भीतर लेनेकी क्रियासे वे सदैव भीतर श्राते हैं।
इस प्रकार जबतक श्वास भीतर लेनेकी
किया जारों है, तबतक मनुष्य जीवित
रहता है: श्रोर श्रात्मा शरीरमें वास करता
है। मनुष्य जब मरता है, तब खाभाविक
ही श्रन्तिम उच्छ्रासके साथ श्रात्मा निकल
जाता है।

इसी प्रकारके अनेक मत अनेक तत्व-शानोंमें माने गये हैं: परन्तु यह बात श्रापको माल्म हो जायगी कि भारती श्रायोंका कर्म-सिद्धान्त उन सबसे श्रधिक सयुक्तिक है। शरीरमें ईश-श्रंश श्रात्मा क्यों श्राता है—इसका कारण, जीवके कर्मकी उपपत्तिके अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता। ईश्वरकी इच्छा श्रथवा श्रात्माकी खाभाविक प्रवृत्तिकी श्रपेना कर्मके बन्धनका नियम श्रत्यन्त उच्च श्रीर इस तत्वके अनुकूल है कि, सारी सृष्टि नियमबद्ध है। प्रत्येकके कर्मानुसार श्रात्मा भिन्न भिन्न देहोंमें प्रवेश करता है; श्रीर उसका यह संसारित्व उसके कर्मानुसार जारी रहता है। जबतक परमेश्वरके उचित ज्ञानसे उसके कर्मका नाश नहीं होता, तबतक उसको संसारकी इन भिन्न भिन्न योनियोंमें फिरना पड़ता है। शान्ति पर्व श्रध्याय २२१ में भीष्मने युधि-ष्टिरको यह बतलाया है कि, कर्म और भोगके नियमानुसार आत्माको इस अनन्त भवचक्रमें एक देहसे दूसरे देहमें किस भाँति घुमना पड़ता है। इस पुनर्जन्मकी संस्तिमं श्रात्माको भिन्न भिन्न पशुपक्षी
श्रादिकांके शरीरमें जाना पड़ता है। यही
नहीं, किन्तु स्थावर, परन्तु सजीव, इक्षें
श्रोर तृणोंके शरीरमें भी प्रवेश करना
पड़ता है। जिस प्रकार एक ही सूत्र सुवर्ण,
मोती, मूँगे श्रथवा पत्थरके मनकेसे
जाता है, उसी प्रकार वैल, घोड़ा, मनुष्य,
हाथी, मृग, कीट, प्रतंग इत्यादि देहींमें,
स्कर्मसे विगड़ा हुआ श्रोर संसारमें
फँसा हुआ श्रात्मा जाता है।
तदेव च यथा स्त्रं सुवर्णे वर्तते पुनः।
मुकाख्य प्रवालेषु मृगमये राजते यथा॥
तद्वद्रोश्यमनुष्येषु तद्वद्वस्तिमृगादिषु।
तद्वत्कीटपतङ्गेषु प्रसक्तात्मा स्वकर्मभिः॥
(शान्ति पर्व श्र० २०६)

वासनाके योगसे कर्म होता है; और कर्मके योगसे वासनाकी उत्पत्ति होती है। इसी भाँति यह अनादि और अनत चक्र जारी रहता है: परन्तु बीज अग्निसे दग्ध हो जाने पर जैसे उसमें अद्भुर नहीं फूटता, उसी प्रकार अविद्यादि क्रेश आन्द्रिसी अग्निसे दग्ध हो जाने पर पुनर्जन्म की प्राप्ति नहीं होती। यह शान्ति पर अध्याय २११ में कहा है।

कितने ही पुनर्जन्मवादी लोगोंको यह बात स्वीकार नहीं है कि पुनर्जन्मके फेरेंमें ब्रात्माको वृत्तादिकोंका भी जन्म प्राप्त होता है। उनके मतानुसार जहाँ एक बार श्रात्माकी उन्नति होने लगी कि, फिर उसकी श्रधोगित कभी नहीं होती— श्रथात् मनुष्यकी श्रात्मा पश्रयोनिमें कभी नहीं जाती। इसी भाँति पश्रश्रोंकी श्रात्मा वृत्तयोनिमें नहीं जाती। परन्तु महाभारतः का मत ऐसा नहीं जान पड़ता। उपनि-पदोंके मतसे भी श्रात्माको वृत्तयोनिमें जाना पड़ता है। बल्कि महाभारत-कालमें यह बात मालूम थी श्रोर स्वीकार भीथी कि, वृत्तोंमें जीव श्रथवा चेतन्य है। सुखदुःखयोश्च प्रहणात् हिन्नस्य च विरोहणात्। जीवं पश्यामि चृत्ताणाम् श्रुचैतन्यं न विद्यते॥

यह शान्ति पर्व अध्याय = 4 में कहा है। वृद्गीको चूँकि सुख-दुःख होता है ब्रीर वे काटनेसे फिर बढ़ते भी हैं, इससे यह सिद्ध होता है कि वृत्तोंमें जीव है। यही नहीं, किन्तु प्राचीन तत्वज्ञानियोंने यह भी निश्चित किया है कि, वृद्धोंमें पंचेन्द्रिय भी हैं। शान्ति पर्व अध्याय १८४ में भूगने भरहाजको यह बात बतलाई है-"वृत्तीं-में शब्दज्ञान है, क्योंकि शब्दोंके योगसे वृज्ञोंके पुष्प श्रोर फल गिर पड़ते हैं। इत्तोंमें स्पर्श है, क्योंकि उष्णताके योगसे बुद्धीका वर्ण म्लान होता है। बुद्धोंमें दृष्टि है, क्योंकि वेलोंकी बाद श्रोर गमन इष्ट दिशासे होता रहता है। वृज्ञोंमें गन्ध है, क्योंकि भिन्न भिन्न ध्रुपोंके योगसे वृत्त निरोगी होते हैं" इत्यादि । बङ्गालके रसायन-शास्त्रज्ञ डाकृर वसुने यह सिद्ध किया है कि, उपर्युक्त कल्पनाएँ श्राजकल-के वैज्ञानिक प्रयोगसे भी सिद्ध होती हैं। इससे प्राचीन भारती आयौंकी विलद्गण बुद्धिमत्ताका हमको श्रच्छा परिचय मिलता है।

लिङ्गदेह ।

भारती श्रायोंने यह कल्पना की है कि, एक देहसे दूसरे देहमें संसरण करते हुए श्रात्माके श्रास्पास सूच्म पश्चमहा-भूतोंका एक कोश रहता है; श्रोर यह भी माना है कि, इन सूच्म भूतोंके साथ ही सूच्म पंचेन्द्रियाँ भी होती हैं। कहते हैं कि, इन सबका मिलकर एक लिइ-देह होता है। ऐसा ख़याल है कि लिंगदेह सहित श्रात्मा हद्यके भीतरके श्राकाश-में रहता है। यह हद्यका श्राकाश श्रंगुष्ट-

प्रमाण है। इसलिए ऐसी कल्पना की है कि, लिंगदेह भी अगुष्ठप्रमाण है। यह निर्विवाद है कि, यह श्रंगुष्टप्रमाण मनुष्य-के हृद्यकी कल्पनासे स्थिर किया हुआ श्रीर काल्पनिक है। उपनिषदों में भी कहा है कि "श्रंगुष्टमात्रो हद्यामिक्कप्तः"। श्रर्थात् इद्यसे वेष्ठित जीव श्रंगुष्टमात्र है। परन्तु यह केवल कल्पना है, सच नहीं। क्योंकि लिंगदेह-सहित श्रात्मा जब शरीरसे निक-लता है, उस समय वह दिखाई नहीं देता। महाभारतमें लिखा है कि, वह श्राकाशके समान सुदम (श्रर्थात परिमाण-रहित) है: श्रौर मनुष्यदृष्टिके लिए श्रदृश्य है। इसके श्रतिरिक्त यह भी लिखा है कि केवल योगियोंको, उनकी दिव्यशक्तिसे, शरीरसे बाहर निकला हुआ आतमा दिखाई दे सकता है। जिस समय धृष्ट-युम्नने तलवारसे, योगावस्थामें द्रोणा-चार्यका गला काटा, उस समय द्रोणका श्रात्मा ब्रह्मलोकको गया। संजयने कहा है कि, वह पाँच मनुष्योंको ही दिखाई दिया। "मुभको,तथा अर्जुन, अश्वत्थामा, श्रीकृष्ण श्रीर युधिष्टिरको ही वह महात्मा, योगबल-से देहसे मुक्त होकर परमगतिको जाते समय, प्रत्यत्त दिखाई दिया। (द्रोणपर्व श्रध्याय १२२) शांतिपर्व श्रध्याय २५४ में यह बात स्पष्ट बतलाई गई है कि, शरीर-से जाते समय श्रात्माको देखनेकी शक्ति सिर्फ योगियोंमें ही होती है।

शरीराद्विप्रमुक्तं हि सूद्मभूतं शरीरिणम्। कर्मभिः परिपश्यंतिशास्त्रोक्तेः शास्त्रवेदिनः॥

इसका तात्पर्य यह है कि, शास्त्र जाननेवाले श्रर्थात् योगशास्त्र जाननेवाले लोग, उस शास्त्रमें वतलाये हुए कर्मोंसे श्रर्थात् साधनोंसे, शरीरसे वाहर जाने-वाले सूदमभूत जीवको देख सकते हैं। श्रर्थात् प्राचीनोंका यह सिद्धान्त है कि, जीव, शरीरसे वाहर निकलते समय श्रदश्य रहता है; श्रीर उसके साथ रहने-वाला उसका लिंगशरीर, चूँकि सूचम होता है, श्रतः वह भी किसीको दिखाई नहीं पड़ता।

यहाँ एक बतलाने योग्य बात है। हमने पहले यह प्रश्न किया है कि, सांख्यों- के सूदम पंचमहाभूत श्रथवा तन्मात्राश्रों- की जो कल्पना की गई है, सो किस लिए? इसका थोड़ा बहुत उत्तर लिंगदेह- की कल्पनामें दिखाई देता है। यदि हम यह मान लें कि श्रात्माके साथ कुछ न कुछ जड़ कोश जाता है, तो यह स्पष्ट है कि वह सूदम भूतोंका ही होना चाहिए। जिस प्रकार मन श्रोर पंचेन्द्रियाँ जड़ होकर भी सूदम होती हैं, उसी प्रकार पंचमहाभृत भी सूदम कल्पित करके यहाँ यह माना गया है कि, वे श्रात्माके साथ जाते हैं।

जान पड़ता है कि, लिंगदेहकी कल्पना श्रीक दार्शनिकोंमें भी थी। यह बात उन्होंने भी मानी थी कि, श्रात्माके श्रासपास कोई न कोई भौतिक श्रावरण होना चाहिए। प्लेटिनसका मत यह था कि. श्रात्मा जिस समय पृथ्वीसे स्वर्गकी श्रोर जाता है, उस समय जब कि वह तारों के समीप पहुँचता है, तब वहाँ उसका भौतिक श्रावरण गिर पडता है: श्रीर उसको स्वर्गीय आवरण अथवा देह प्राप्त होता है। परन्तु मार्फिरी नामक ग्रीक तत्ववेत्ता-का मत प्लेटिनसके आगे गया था। वह कहता है-"तारोंके समीप भी श्रात्माका लिंगदेह नीचे नहीं गिरता। मानवी आतमा-के श्रस्तित्वके लिए एक भौतिक लिंगदेह श्रात्माके पास होना चाहिए: श्रीर ऐसे ही लिंगदेहसे युक्त आतमा मनुष्यके शरीर-में प्रवेश करता है; श्रीर इसी कारण वह श्रन्य शरीरमें प्रवेश नहीं कर सकता, श्रथवा उसे करनेकी इच्छा भी नहीं

होती"। जैसा कि पहले कहा है, माफिरी-का मत था कि, मनुष्यका आत्मा कभी पशुके शरीरमें प्रवेश नहीं करता। किन्त वह सदैव मनुष्यके ही शरीरमें जाता है। प्लेटोके अनुयायियोंका, नवीन और प्राचीन दोनोंका, मत इससे भिन्न था। उनके मतानुसार श्रात्मा भिन्न भिन्न योनियोंमें प्रवेश करता है । पुनर्जन्मके फेरेमें कोई ऐसा विषय नहीं रहता कि श्रमुक ही योनिमें जन्म लेना चाहिए। भारती श्रार्य तत्वज्ञानके मतसे मनुष्य देव, इत्यादि ऊँचे प्राणी श्रीर पशु, कीट, वृत्त इत्यादि नीच जीवित प्राणी-इन सभीमें आत्माको कर्मानुसार फिरना पडता है। उसका मत है कि पश्चें और वृत्तोंमें भी श्रात्मा है । इस मतसे पूर्वोक्त पहले प्रश्नका बहुत ही उत्तम रीतिसे खुलासा हो जाता है। इस विषयमें कि श्रातमा शरीरमें कैसे श्रीर कव प्रवेश करता है, थोड़ेमें और सरलतापूर्वक यह कहा जा सकता है कि आत्मा भोजनमें वनस्पतिके द्वारा जाता है: श्रीर उस भोजनके द्वारा जब उसे प्राणीके शरीरमें प्रवेश मिल जाता है, तब फिर वह वहाँसे रेतके द्वारा किसी न किसी योनिमें कर्मानुसार जाता है, श्रीर वहाँ उसे शरीर मिलता है। यह कल्पना विलक्षल श्रशास्त्रीय नहीं है। पाश्चात्य शारीर-शास्त्र-वेत्तात्रोंका यह मत है कि पुरुषके (मनुष्य अथवा पशुके) रेतमें असंख्य स्पर्म होते हैं; श्रीर स्त्रीके रजसे उनका संसर्ग होता है। परन्तु उनमेंसे प्रत्येकमें प्राण-धारण श्रथवा बीज्धारणकी शक्ति नहीं होती। हजारों स्पर्मोंमें किसी एक-श्राध स्पर्ममें वीज श्रथवा जीव धारण करनेकी शिक्त होती है; और स्त्रीके शुक्रसे उसका संयोग होकर गर्भधारण होता है। इस बातका उपर्युक्त सिद्धान्तसे बहुत श्रच्छा मेल

मिलता है। हम यह मान सकते हैं कि श्रन्न द्वारा श्रात्मा पुरुषके शरीरमें प्रवेश करता है; श्रीर वहाँसे रेतके किसी स्पर्म-में वह समाविष्ट होता है।

श्रच्छा, श्रब हम इस प्रक्षकी श्रीर श्राते हैं कि श्रात्मा जब शरीरसे निकल जाता है, तब वह कहाँ श्रीर कैसे जाता है। यह पहले ही बतलाया गया है कि वह दिखाई नहीं देता, श्रर्थात् वाहर निकलते समय उसे मानवी दृष्टिसे नहीं देख सकते। कहते हैं कि मरनेवाले प्राणीको चाहे काँचके सन्दूकमें ही क्यों न रखो, तथापि निकल जानेवाला श्रात्मा दिखाई नहीं देगा-इस प्रकार वह शरीरके भिन्न भिन्न अवयवींसे वाहर निकलता है। शान्ति पर्वके ३१७ वें श्रध्यायमें यह वत-लाया गया है, कि योगीका श्रात्मा भिन्न भिन्न श्रवयवोंसे निकलकर कहाँ कहाँ जाता है। वह पैरोंसे निकलकर विष्णुलोकको जाता है, जङ्घासे निकला दुश्रा वसुलोक-को जाता है, इत्यादि वर्णन है। श्रर्थात यह कहा है कि जिस अवयवसे वह निकलता है, उसी श्रवयवके देवताके लोकमें वह जाता है। सिरसे जब वह निकलता है, तब उसे ब्रह्मलोकका स्थान प्राप्त होता है। यह कल्पना उपनिषदों में भो पाई जाती है: श्रीर लोग ऐसा समभते है कि योगी श्रीर वेदान्तीका प्राणीत्क्रमण शहरद्भसे अर्थात सिरकी खोपड़ीसे होता है।

देवयान और पितृयाण।

परन्तु यह देवलोककी गति सभी
पाणियोंको नहीं मिलती। कहते हैं कि
साधारणतया ब्रात्मा शरीरसे निकलकर
बन्द्रलोकको जाता है। महाभारतमें इस
विषयका विस्तारपूर्वक वर्णन कहीं दिखाई
नहीं देता कि ब्रात्मा चन्द्रलोकको जाता

है, श्रीर वहाँसे लौटता है। तथापि जब कि उपनिषदोंमें यह गति वतलाई गई है, तब फिर वह महाभारतकारको श्रवश्य स्वीकार होनी चाहिए । भगवद्गीतामें "श्रिशिज्योंतिरहः शुक्कः ष्रमासा उत्तराय-एम्" इत्यादि श्रोकमें उत्तरगति वतलाई गई है। श्रिशि, ज्योतिः (प्रकाश), दिवस, श्रक्कपच, उत्तरायएके मार्गसे योगीका श्रात्मा स्र्यलोकको जाकर, वहाँसे फिर ब्रह्मलोकको जाता है। परन्तु श्रन्य पुरुय-वान् प्राणियोंका श्रात्मा,

ध्मोरात्रिस्तथा कृष्णः ष्रमासा दक्तिणायनम् तत्र चान्द्रमसे ज्योतियोंगी प्राप्त्यनिवर्तते॥

भूम रात्रि, ग्रन्ण पन्न, दन्तिणायनके मार्गसे चन्द्रतक जाकर, फिर वहाँसे पुनरावृत्ति पाता है—श्रधीत् मुक्त नहीं होता। इन सबको देवता माना है। उपनिषदोंमें यह भी कहा है कि चन्द्रलोकमें श्रात्मा कुछ दिनतक निवास करता है। तत्वज्ञानियोंका यह खयाल है कि चन्द्रलोक एतरोंका लोक है। पाश्चात्यभौतिक शास्त्र-चेत्ता भी कहते हैं कि चन्द्रलोक मृत है—श्रधीत् ज्योतिर्विद्रांका मत है कि चन्द्रलोक मृत है—श्रधीत् ज्योतिर्विद्रांका मत है कि चन्द्रलोक स्त है। चन्द्रलोक लोटते हुए श्राकाश, वहाँसे वायु, वायुसे पृथ्वी, वहाँसे श्रन्न श्रीर श्रन्न द्वारा पुरुषके पेटमें श्राहुतिरूप-से उसका प्रवेश होता है।

श्रभी ऊपर श्रात्माके जानेके जिस मार्गका वर्णन किया गया, उसे पितृयाण-पथ कहते हैं। जो पुर्यवान् प्राणी यज्ञादि सकाम कर्म करते हैं, श्रथवा क्श्राँ, तालाव इत्यादि वँधवाकर परोपकारके कार्य करते हैं, उनके श्रात्मा इस मार्गसे जाते हैं। इसके भी पहले जो मार्ग वत-लाया है, वह देवयान पथके नामसे प्रसिद्ध है। वह सूर्यलोकके द्वारा ब्रह्मलोकको जाता है, श्रीर वहाँसे फिर उसकी पुनरा- वृत्ति नहीं होती । इस मार्गसे योगी, वेदान्ती श्रौर जो श्रत्यन्त पुरस्वान् प्रासी उत्तरायण शुक्र पत्तमें मरते हैं, वे जाते हैं। सूर्यलोकमें जाने पर विद्युत्की सहा-यतासे वे भिन्न भिन्न स्थानोंमें भी जाते हैं: श्रीर वहाँसे, श्रथवा सीधे, ब्रह्मलोकको जाते हैं। कुछ कुछ इसी प्रकारकी कल्पना श्रीक तत्ववेत्ता सोटिनसकी भी है। वह कहता है—"जो लोग इस पृथ्वी पर उत्तम नीतिपूर्ण श्राचरण करते हैं, वे मरने पर सूर्यतक जाते हैं: पर वहाँसे फिर वे लौटते हैं, श्रीर पुरायाचररा करके फिर ऊपर जाते हैं: इस प्रकार श्रनेक जन्मोंके वाद उनको श्रन्तिम मोच, श्रर्थात् जड़देहसे मुक्ति मिलती है।" साधारण भारती श्रास्तिक मतवादियोंके मतानुसार ब्रह्मलोक ही श्रन्तिम गति है। वहाँसे फिर श्रात्मा नहीं लौटता, श्रीर श्रन्य लोक उससे कम दर्जें के हैं, जहाँ से श्रात्मा लौट श्राता है। विष्णुलोक श्रथवा वैकुएठ, शङ्करलोक अथवा कैलास इत्यादि श्रनेक लोक हैं। ऐसा खयाल है कि इन सब लोकोंमें पुराय भोगनेके बाद आतमा लौट श्राता है। यद्यपि कहा गया है कि-

तारारूपाणि सर्वाणि यत्रैतत् चन्द्रमंडलम् यत्र विभाजते लोके स्वभासा सूर्यमंडलम् ॥ स्थानान्येतानि जानीहि जनानां पुणयकर्मणाम् कर्मज्ञयाच्च ते सर्वे च्यवन्ते वे पुनः पुनः॥

तथापि शिव श्रथवा विष्णुके उपा-सक श्रपने श्रपने लोकोंको श्रन्तका ही लोक मानते हैं; परन्तु इन्द्रलोक श्रथवा स्वर्ग सबसे नीचेका लोक है; श्रौर यह सभीका मत है कि यहाँसे पुगय ज्ञय हो जाने पर प्राणी नीचे पृथ्वी पर उतर श्राता है। क्योंकि इन्द्रदेवता यद्यपि वैदिक-कालीन है, तथापि बादके कालमें नीचेके दर्जेकी मानी गई।

अधागति ।

देवयान श्रीर पितृयाएक श्रतिरिक्त एक और तीसरा मार्ग पापी लोगोंके श्चातमाका होता है। ये श्चातमा अर्ध्वाति को जाते ही नहीं, किन्तु देहसे निकलते ही किसी न किसी तिर्यक् योनिमें जाते हैं: मशक, कीटक इत्यादि चुद्र पाणियोंके जन्ममें जाकर वार वार मरणको प्राप्त होकर फिर फिर वहीं जन्म लेते हैं. त्रथवा कुत्ते, गीदड़ इत्यादिकी दु<u>ष्ट</u> पश्च-योनियोंमें जाते हैं । आत्माके संसरण श्रीर पुरायपापाचरणका इस प्रकार मेल मिलाकर भारती आर्य तत्ववेत्ताश्रोने नीतिके श्राचरणको श्रेष्ठ परिस्थितितक पहुँचा दिया। महाभारतमें श्रनेक जगह इस वातका खूब विस्तृत विवेचन किया गया है कि कौनसा पाप करनेसे कौनसी गति, श्रर्थात् पापयोनि मिलती है। उसे यहाँ वतलानेकी आवश्यकता नहीं। परनु श्रास्तिक श्रीर श्रद्धासे चलनेवाले साधारण जनसमृहको पापाचरणसे निवृत्तं करने की यह बहुत ही अच्छी व्यवस्था है।

संसृतिसे मुक्ति।

सभी भारती तत्वज्ञानी यह मानते हैं

कि संस्तिके इस सतत चलनेवाले जन्मसरणके फेरेसे मुक्त होना ही मानवी
जीवनके इति कर्तव्यका उच्चतम हेतु है।
क्योंकि जैसा हमने पहले वतलाया है,
पुनर्जन्मका फेरा सब मतवादियोंको
स्वीकार है। सब तत्वज्ञानोंका श्रन्तिम
साध्य मोत्त है। प्रत्येक तत्वज्ञानका कर्तव्यः
त्रेत्र श्रथवा उपदेश-कार्य यही है कि ऐसा
उपाय वह बतलावे, जिससे मनुष्यकी
इस भवचक्रसे मुक्ति मिले। सबका
श्रन्तिम साध्य एक ही है। हाँ, भिक्तभिक्त
मतांके मार्ग भिन्न भिन्न हैं। किषित
मतानुयायी सांख्य यह मानते हैं कि

मनुष्यको जब पञ्चीस तत्योंका ज्ञान हो जाता है, तब वह मोच पाता है। उनका सिर्फ संख्यान ही मोज्ञका कारण है। (ब्रमुगीता श्रमुशासन प० श्रध्याय ४६।) पुरुष-प्रकृति-विवेक भी सांख्योंने वत-लाया है। सब बातें प्रकृति करती है। जिस समय मनुष्यको यह पूर्ण अनुभव होता है कि मैं प्रकृतिसे भिन्न होकर श्रकत्तां हूँ, उस समय जन्म-मर्णके फेरे-से वह मुक्त होता है । योगियोंका मत यह है कि आत्माको मन इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंमें फँसाता है, श्रतएव इन्द्रियोंका श्रवरोध करके मनको खस्य बैठाकर श्रात्माको विषयोपसोगसे परावृत्त करने पर मोच मिलता है। श्रौर वेदान्तियोंका मत यह है कि आत्मा परब्रह्मका अंश है. परन्तु अज्ञानवश वह यह वातभूल जाता हैं: श्रीर इस जन्म-मृत्युके चक्रमें पड़ जाता है। श्रज्ञान नष्ट होने पर श्रात्माको यह यथार्थ ज्ञान हो जाता है कि मैं पर-ब्रह्म-स्वरूपी हूँ, तब मनुष्य मुक्त होता है। अन्य तत्वज्ञानियोंके क्या मत हैं. उनका श्रागे विचार करेंगे।

परब्रह्म-स्वरूप।

यहाँ वेदान्तके श्रास्तिक मतमें बतलाये हुए परब्रह्मका हमको विशेष विचार
करना चाहिए । परब्रह्मकी कल्पना
मारती श्रायोंकी ईश्वर-विषयक कल्पनाश्रोंका श्रत्युच सक्रप है । ईश्वरकी
कल्पना सब लोगोंमें बहुधा व्यक्त सक्रपकी, श्रर्थात् मनुष्यके समान ही रहती
है । परन्तु मनुष्यत्वको छोड़कर केवल
सर्वशक्तिमान् निर्गुण ईश्वरकी कल्पना
करना बहुत कठिन काम है । उपनिषदोंमें
परब्रह्मका बहुत ही वक्तृत्व-पूर्ण श्रोर उच
वर्णन है, जिसका मनुष्यसे श्रथवा सगुण
सक्रपसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । भारती

श्रायोंकी तत्व-विवेचक बुद्धिके श्रक्लिपत उच विकासका वह एक श्रप्रतिम फल है: श्रीर इस कारण वह श्रत्यन्त तेजस्वी तथा प्रभावशाली है। महाभारत-कालमें निर्गुण उपासना बहुत पीछे हट गई थी: श्रीर सगुण उपासना बढ़ गई थी । इसके श्रतिरिक्त भारती तत्वज्ञानका विकास कितनी ही शताब्दियोतक भिन्न भिन्न दिशाश्रोंसे हुश्राथा, श्रोर परस्पर विरोधी श्रनेक तत्वज्ञानोंके सिद्धान्त प्रचलित हो गये थे। इस भाँति अन्ध अद्धाके भिन्न भिन्न भोले-भाले सिद्धान्त भी उपस्थित हो गये थे। इस कारण महामारतमें तत्व-ज्ञानकी चर्चा करनेवाले जो भाग हैं, वे एक प्रकारसे क्लिप्ट श्रीर गुढ़ कल्पनाश्री श्रोर विरोधी वचनोंसे भरे हुए हैं. तथा भिन्न भिन्न मतोंके विरोधको हटा देनेके प्रयत्नसे वहुत ही मिश्रित हो गये हैं। इस कारण, उपनिषदोंकी तरह, एक ही मतसे श्रीर एक ही दिशासे बहती जानेवाली बुद्धिमत्ताकी भारी बाढ़से पाठकगण तल्लीन नहीं हो पाते । उप-निषदोंकी भाँति परब्रह्मके उच्च वर्णन भी महाभारतमें नहीं हैं। ब्रह्मैक्य होने पर जो श्रवर्णनीय ब्रह्मानन्द होता है, उसके वर्णन भी महाभारतमें नहीं हैं। श्रथवा मुक्ता-वस्थामें केवल ब्रह्मस्वरूपका ध्यान करके. सब वैषयिक वासनात्रोंका त्याग करके, ब्रह्मानन्दमें मग्न होनेवाले मुनियोंकी दशा-के वर्णन भी महाभारतमें नहीं हैं। फिर भी उपनिषदींका ही प्रकाश महाभारत पर पंड़ा है। भगवद्गीता भी उपनिषद्-तृल्य ही है; श्रीर उच्च कल्पनाश्रीसे भरी हुई है । सनत्सुजातीय श्राख्यानमें भी कोई कोई वर्णन वक्तत्वपूर्ण है । उससे ब्रह्मका वर्णन श्रीर ब्रह्मसे ऐका पानेवाली स्थितिके सुखका वर्णन हम यहाँ पर उदाहरणार्थ लेते हैं। "परब्रह्म जगतका परम श्रादि कारण है; श्रीर श्रत्यन्त तेजः-सक्प तथा प्रकाशक है। उसीको योगी श्रपने श्रन्तर्यामसे देखते हैं। उसीसे सूर्य-को तेज मिला है; श्रीर इन्द्रियोंको भी शक्ति उसी परब्रह्मसे मिली है। उस सनातन भग-वान्का दर्शन ज्ञान-योगियोंको ही होता है। उसो परब्रह्मसे यह सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है; श्रीर उसीकी सत्तासे यह जगत् चल रहा है। उसीके तेजसे ब्रह्माएडकी सारी ज्योतियाँ प्रकाशमान हैं। वह सना-तन ब्रह्मयोगियोंको ही दिखाई पड़ता है। जल, जलसे उत्पन्न होता है; सूदम महा-भूतोंसे स्थूल महाभूत उत्पन्न होते हैं: यह सारी जड़ और चेतन सृष्टि, देव, मनुष्य इत्यादि उत्पन्न होकर सम्पूर्ण पृथ्वी भर जाती है: श्रौर तीसरा श्रातमा श्रश्नान्त श्रौर तेजोयुक्त सारी सृष्टिको, पृथ्वीको श्रौर **स्वर्गको धारण कर रहा है। उस आत्मरूपी** परब्रह्मको श्रौर सनातन भगवान्को योगी लोग देखते हैं।इसी ऋदि कारणने ऊँची-नीची सब जीवसृष्टि श्रोर पृथ्वी, श्राकाश तथा श्रन्तरिचको धारण किया है। सारी दिशाएँ भी उसीसे निकली हैं, श्रौर सब नदी श्रौर श्रपरम्पार समुद्र भी उसीसे निकले हैं। उस भगवान्को योगी देखते हैं। उस सनातन परमात्माकी श्रोर जीवात्मा नश्वर देहरूपी रथमें इन्द्रिय-रूपी घोड़े जोतकर दौड़ता है। उस परब्रह्मकी कोई मृति श्रथवा प्रतिकृति नहीं हो सकती। अथवा आँखोंसे उसे देख भी नहीं सकते। परनत जो लोग उसका श्रस्तित्व श्रपने तर्क, बुद्धि श्रौर हृद्यसे ग्रहण करते हैं, वे श्रमर होते हैं। यह जीव-नदी बारह प्रवाहोंसे बनी है। इसका पानी पीकर और उस पानीके माधुर्यसे मोहित होकर श्रसंख्य जीवातमा इसी श्रादि कारएके भयद्भर चक्रमें फिरते रहते हैं: ऐसे उस सनातन भगवानको ज्ञानयोगी ही जानते हैं। यह सदेव संसरण करनेवाला जीव अपना आधा सकृत चन्द्रलोक पर भोगकर वाकी श्राधा पृथ्वी पर भोगता है। जीवात्मारूपी पनी पंखरहित है श्रीर सुवर्णमय पत्तींसे भरे हए अध्वत्थ वृत्त पर आकर वैठते हैं. फिर उनके पंख फूटते हैं, जिनसे वे श्रपनी इच्छाके श्रनुसार चारों श्रोर उडने लगते हैं। इस पूर्ण ब्रह्मसे ही पूर्ण उत्पन्न हुआ है; उसीसे दूसरे पूर्ण उत्पन्न हुए हैं, श्रीर उन पूर्णीसे चाहे इस पूर्णको निकाल डालें, तो भी पूर्ण ही शेष रहता है। इस प्रकारके उस सनातन भगवान-को योगी लोग ही देखते हैं। उसीसे वायु उत्पन्न होते हैं; श्रीर उसीकी श्रोर लौट जाते हैं। श्रक्षि, चन्द्र उसीसे उत्पन्न हुए हैं। जीव भी वहींसे उत्पन्न हुन्ना है। संसारकी सब वस्तुएँ उसीसे उत्पन्न हुई हैं। पानी पर तैरनेवाला यह हंस श्रपना एक पैर ऊँचा नहीं करता; परन्तु यदि वह करेगा, तो मृत्यु श्रौर श्रमरत्व दोनोंका सम्बन्ध टूट जायगा (परमात्मा हंसरूपी है। वह संसाररूपी उद्यसे एक पाद कभी ऊपर नहीं निका-लता; परन्तु यदि वह निकाले तो फिर संसार भी नहीं है; श्रीर मोच भी नहीं है।) मनुष्यको केवल हृद्यसे ही परमे-श्वरका ज्ञान होता है । जिसे उसकी इच्छा हो, उसको श्रपने मनका नियमन करके और दुःखका त्याग करके अरएयमें जाना चाहिए। श्रोर यह भावना रखकर कि मुभे किसीका भी मान न चाहिए, मुभे मृत्यु भी नहीं श्रीर जन्म भी नहीं, उसे सुख प्राप्तिसे त्रानन्दित न होना चाहिए, श्रौर दुःखप्राप्तिसे दुःखी भी न होना चाहिए, किन्तु परमेश्वरके प्रति िथर रहना चाहिए। इस प्रकार जो मनुष्य यल करता है, यह इस बातसे दुःखित तहीं होता कि श्रान्य प्राणी श्रान्य बातों में रत हैं। हृदयमें रहनेवाला श्रंगुष्टप्रमाण श्रात्मा यद्यपि श्रदृश्य है, तथापि वही श्रादि परमेश्वर है। ऐसे सनातन भग-वानको योगी श्रपनेमें ही देखते हैं।"

महाभारतका उपर्युक्त परब्रह्म-वर्णन बहुत ही वक्तृत्वपूर्ण है। परन्तु कुछ गृह भी है। उसमें अवर्णनीय परब्रह्मके वर्णनका प्रयत्न किया गया है। वह यद्यपि उपनि-वटोंके वर्णनकी भाँति हृद्यङ्गम नहीं है, तथापि सरस श्रोर मन पर छाप बैठानेवाला है। पाश्चात्य तत्त्ववेत्ताश्चीने भी परमेश्वरका स्वरूप परमात्मा कहकर ही वर्णन किया है। परमात्मा श्रौर जीवात्मा, ये दो आत्मा प्तेटोके तत्वज्ञान-को स्वीकार हैं। परन्तु उपर्युक्त वर्णनमें इससे भी आगे कद्म बढ़ाया गया है। परमेश्वर सृष्टिका आदि कारण है। वही सृष्टिका उपादान भी है। वह अविनाशी श्रीर सर्वशक्तिमान् है। वह इस संसार-का भी कारण है। उसीसे सब जीवातमा उत्पन्न हुए हैं। पन्नी कामरूपी पंखके सहारेसे सुवर्णके ही समान चमकनेवाले संसारमें फिरते हैं। मनुष्योंको इन कामों-का निरोध करके, वनमें जाकर, नियम-युक्त रहकर, अपनी वृद्धिसे जगतके उत्पन्नकत्तांका ध्यान करना चाहिए, इससे उनको अन्य सुख प्राप्त होगा। मनुष्यका श्रात्मा श्रोर परमात्मा एक हैं। इस एकत्वका जब मनुष्यको श्रनुभव होता है, तव वह नित्य सुखका श्रनुभव करता है। यही संचेपमें इसका तात्पर्य है। इसमें पर-मेश्वरकी तीन विभृतियोंका वर्णन किया गया है। जिस समय केवल परमात्मा श्रवि-हत होता है, उस समयका एक खरूप, जिस समय वह सृष्टिहर होता है, उस समयका दूसरा खरूप, श्रौर जिस समय वह मनुष्यके हद्यमें जीवात्माके रूपसे

रहता है, वह तीसरा खरूप है। इस प्रकार-के, परमात्माके, भिन्न भिन्न सम्बन्धसे उत्पन्न होनेवाले, तीन सक्षप श्रीक तत्व-वेत्तात्रोंने भी माने हैं। सेटो-मतवादियों-ने ईश्वरी त्रेमृतिंकी कल्पना की है; श्रीर प्तेटीके नवीन मताजुयायियोंका भी ऐसा ही मत था। उन्होंने उसके जो नाम दिये हैं, वे इस प्रकार हैं: - श्रद्धितीय, बुद्धि श्रीर जीवात्मा। उनका मत इस प्रकार है—"जिस समय परमात्मा श्रपनी ही श्रोर भुका, उस समय श्रपने ही प्रति विचार उत्पन्न हुश्रा। यही उसकी वुद्धि है। परमेश्वर कहते हैं सर्वशक्तिमत्वको। इस प्रकार उससे मानी वुद्धिका विभाग हुआ। उस वुद्धिने उस सर्वशक्तिमत्वका चिन्तन किया। इस रीतिसे बुद्धिमें श्रहं-भावना उत्पन्न हुई; वुद्धिमें हजारों कल्प-नाएँ उत्पन्न हुईं; जीवात्मामें हजारों रूपों-का प्रतिविम्य पड़ाः श्रव्यक्त पर उनका प्रभाव हुआ और सृष्टिका भारी प्रवाह प्रारम्भ हुआ।" सांख्योंके मतानुसार भी प्रकृति यानी जगत्के श्रादि कारण श्रीर स्थल सृष्टिके मध्य दो सीढ़ियाँ इसी प्रकार हैं। पहली सीढ़ी महत् हैं: अर्थात् प्रकृति अथवा अध्यक्त जो खस्य था, उसमें हलचल उत्पन हुई। श्रहङ्कार दुसरी सीढी है: अर्थात प्रकृतिमें खशकिकी अहं-भावना जागृत हुई। उसके होते ही पंच-महाभृत उत्पन्न हुए: श्रीर सृष्टिकम शुरू हुआ। वेदान्तियोंके मतसे भी इसी प्रकारकी, आत्माकी, सीढ़ियाँ लगी हुई हैं: श्रीर उन्होंने भी महान् श्रात्मा श्रथवा वृद्धि श्रीर श्रहङ्कारकी कल्पना की है। तात्पर्य यह है कि, इस ऊँची-नीची सृष्टि श्लीर श्रज, श्रनादि, पूर्ण, निष्किय, निरिच्छ, निर्विकार श्रात्माका सम्बन्ध जोड़ते हुए बीचमें ईश्वरी शक्तिकी दो तीन सीढ़ियाँ माननी पड़ती हैं, यह स्पष्ट है।

मोच्-प्राप्ति।

ईश्वरसे जीवात्माका पूर्ण तादात्म्य करना ही भारतीय त्रार्य तत्वज्ञानका श्रन्तिम ध्येय है: श्रीर इसीका नाम मोच है। इस मोत्तका साधन सनत्सुजातीय श्राख्यानमें यही निश्चित किया गया है कि, संसार छोड़कर, श्ररएयमें जाकर, निष्क्रिय बनकर, परमेश्वरका चिन्तन करना चाहिए। वेदान्त, सांख्य श्रीर योग-का मोत्तमार्ग प्रायः यही है। ऐसी दशा-में यह प्रश्न उपस्थित होता है कि, जो मनुष्य संसार छोड़कर श्ररएयमें नहीं जाता, किन्तु संसारमें रहकर धर्माचरण करके जीवन व्यतीत करता है, उस मनुष्यके लिए मोच है या नहीं ? जो मनुष्य मोच प्राप्त करना चाहता है, उसे क्या जंगलमें अवश्य जाना चाहिए? अथवा जगत्के सब कर्मोंका त्याग करके क्या जगत्का श्रीर श्रपना सम्बन्ध उसे श्रवश्य तोड़ना चाहिए ? महाभारतमें इस प्रश्नकी चर्चा श्रनेक स्थानोंमें की गई है, श्रीर इस प्रथका फैसला कभी इस तरफ तो कभी उस तरफ दिया गया है। शांतिपर्वमें उल्लेख है कि-

कस्येषा वाग्भवेत्सत्या नास्ति मोत्तो गृहादिति। (शां० श्र० २६६-१०)

"यह किसका कथन सत्य होगा कि, घरमें रहनेसे मोच नहीं मिलेगा ?" तात्पर्य इस विषयमें भिन्न मतोंका विचार करते हुए महाभारत-कालमें यही मत विशेष ग्राह्म किया गया है कि, घरमें रहनेसे मोच नहीं मिलता।

वैराग्य और संसार-त्याग।

यह सचमुच ही एक वड़ी विचित्र बात है कि, चार्वाकके श्रतिरिक्त, श्रीर सब भिन्न भिन्न गर्तोंके भारतीय शार्य तत्वक्रानी यही मानते हैं कि संसारमें

दःख भरा है; श्रोर इसी कारण वे संसार-को छोड देने या किसी न किसी प्रकारसे श्रिलिप्त रहनेका उपदेश करते हैं। सांख्य-सतवादी हों अथवा योगी हों, वेदान्ती हों श्रथव नैय्यायिक हों, बौद्ध हों श्रथवा जैन हों, उन सभीके मतमें यही विचार पाया जाता है कि, इस संसारके सुख मिथ्या है श्रीर इसका वैभव चिंगिक है। बुद्धकी तीव बुद्धिमें, एक रोगी मनुष्य, एक बुडढा मनुष्य, एक सरा हुआ मनुष्य देखते ही वैराग्य उत्पन्न हो गया। उनके मनमें भरे हुए संसारकी सम्पूर्ण वस्तुत्रोंके द्वेषको भडकानेके लिए,इतनी ही चिनगारी काफी हुई: श्रोर उनकी तीव भावना हो गई कि यह जगत्, जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि-के दुःखसे भरा हुआ है। वस, वे घर छोड़कर निकल गये । मोच्धर्मके शान्तिपर्वमें, पहले अध्यायमें, जगत्की नश्वरताका पूर्ण विवेचन किया गया है, श्रीर पाठकोंके मनमें जगत्के विषयमें विराग उत्पन्न करनेका श्रच्छा प्रयत किया गया है। हमारे सब तत्वज्ञानी-का यह मत है कि, जिसे मोज पानेकी इच्छा हो, उसे पहले वैराय ही चाहिए। हमने पहले इस बातका विचार किया ही है कि योगियोंका मत यहाँतक दूर पहुँच गया था कि, इन्द्रियों-के द्वारा आत्माका विषयोंसे संसर्ग होना ही वन्धका कारण है; श्रीर इस प्रकारका संसर्ग वन्द होकर जब मन स्थिर होगा, तभी इस वन्धनसे मोच मिलेगा। सांख्यी का मत तो ऐसा ही है कि, सुख श्रीर दुःख श्रात्माके धर्म नहीं हैं, किन्तु वे प्रकृतिके धर्म हैं; और मोत्तका अर्थ यही है कि, यह बात आत्माके निदर्शनमें श्रानी चाहिए; सुख-दुःखसे उसका बिलकुल सरबन्ध नहीं है । प्रकृति-पुरुष-विवेक यही है। यही एक प्रकारसे संसारका

त्याग है। बोद्धों श्रीर जैनोंका तो संसार-त्यागके लिए पूर्ण आग्रह था। इसी लिए उन्होंने भिचुसङ्घकी संस्था स्थापित की: तथा बौद्ध श्रोर जैन भिचुके नातेसे इसी कारण प्रसिद्ध हुए। इस वातका एक पकारसे श्राध्यर्य ही मालम होता है कि मारतीय श्रायोंके श्रधिकांश तत्वज्ञानींका माधारणतया संसारत्यागके लिए श्रायह है। क्योंकि जिस देशमें वे रहते थे, उसमें सब प्रकारके भौतिक सुखसाधन पूर्णतया भरे हुए थे। अर्थात् संसारसे उद्विश्वता श्रानेके लिए भारतवर्षमें कोई परिस्थिति श्रमुकूल न थी। कदाचित यह भी हो सकेंगा कि, भारती श्रायोंका स्वभाव प्रारम्भसे हो वैराग्ययुक्त हो: श्रीर सम्पूर्ण देशकी राज्यव्यवस्था भी श्रीरे श्रीरे उनके मनकी पूर्व-प्रवृत्तिमें दढ़ता लानेके लिए साधनीभत हो गई हो। जिस समाजग्रें भिन्न भिन्न व्यक्ति समाजके कल्याएको विषयमें, सबका सम्बन्ध न रहनेके कारण विचार नहीं करते, उस समाजमें समष्टि-रूपसे सजीवताका श्रहंभाव उत्पन्न नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति श्रपने श्रपने निजके सुख-दुःखके ही विचारसे यस जाती है। सम्पूर्ण समष्टि-रूपके समाजके सुख-दुःख उसके मनके सामने खंडे नहीं होते। अथवा उनकी चिन्ता यह नहीं करता। राज्यरूपी समाज चूँकि दीर्घायु होता है, श्रतएव राज्य-विषयक कल्पनाश्रांसे प्रत्येक मनुष्यके मनमें जागृति होती है, उसके चाणिक सुख-दुःखका उसे विस्मरण हो जाता है श्रोर उसके मनमें यह भावना उत्पन्न नहीं होती कि संसार केवल इःखमय है। इस बातका हमने पहले ही विचार किया है कि, भारतवर्षके राज्य धीरे धीरे भारत-कालमें एकतन्त्री राज-सत्तात्मक हो गये थे। अर्थात चत्रियोंके अतिरिक्त अन्य वर्णोका, अर्थात् ब्राह्मणीं,

वैश्यों श्रौर शृद्धांका, राजनैतिक विषयोंसे प्रायः सम्बन्ध नहीं रहा था। इस कारण राज्य-सम्बन्धी व्यवहारके विषयमें उनको चिन्ता नहीं रही। राष्ट्रीय जीवनकी श्रहं-भावना उनके श्रन्दरसे नष्ट हो गई: श्रीर जिसे देखिए, वही श्रपने सुख-दुःखोंसे व्याप्त हो गया, श्रीर शायद इसोसे साधा-रण लोगोंमें श्रीर ब्राह्मण वर्णमें भी ऐसी कल्पना फैल गई कि, वास्तवमें संसार दुःखमय है। ऋस्तुः इस वातका कारण कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि भार-तीय प्राचीन द्यार्थ तत्वज्ञानीका भुकाव यही माननेकी श्रोर है कि, संसार दुःख-मय है। ऐसी दशामें अवश्य ही उनका यह मत होना खाभाविक है कि, संसार-के पुनर्जन्मके फेरेसे छूटनेका सरल और एकमात्र उपाय संसार-त्याग ही है।

कमयोग ।

सभी तत्वज्ञानी इस प्रकार इरपोक श्रीर संसारसे डरकर भाग जानेवाले नहीं थे। कुछ ऐसे ढीठ, जोरदार और वुद्धिमान् लोगोंका उत्पन्न होना आयोंके इतिहासमें श्राश्चर्यकारक नहीं कि, जिन्होंने साधारण लोकमत-प्रवाहके विरुद्ध यह प्रतिपादन किया कि, संसारमें रहकर धर्म तथा नीतिका श्राचरण करना ही मोत्तका कारण है। ऐसे थोड़े तत्वज्ञानियां-में एक श्रीकृष्ण श्रयणी थे। उन्होंने श्रपना यह स्वतन्त्र मत भगवद्गीतामें प्रति-पादित किया है। श्रीकृष्णके मतका विस्तारपूर्वक विचार हम अन्य अव-सर पर करेंगे । परन्तु यहाँ उनके उपदेशका सारांश थोड़ेमें बतलाना आव-श्यक है। वह यह है कि, मोचप्राप्तिके लिए निष्क्रियत्व श्रथवा संन्यास जितना निश्चित श्रौर विश्वासपूर्ण मार्ग है, उतना ही संधर्मसे, न्यायसे, निष्काम बुद्धिसे, श्रर्थात् फलत्याग बुद्धिसे, कर्म करना भी मोत्तका निश्चित श्रोर विश्वासपूर्ण मार्ग है। धर्मयुक्त निष्काम कर्माचरणका मार्ग सिर्फ भगवद्गीतामें ही नहीं बतलाया गया है; किन्तु सम्पूर्ण महाभारतमें, श्रथसे लेकर इतितक, इसका उपदेश मौजूद है। महाभारत और रामायण यह दो श्रार्ष-काव्य इसी उपदेशके लिए श्रवतीर्ण हुए हैं। संन्यास अथवा योगकी भाँति धर्मा-चरण भी मुक्तिप्रद् है, यही बात मन पर जमा देनेके लिए इन राष्ट्रीय प्रन्थोंका जन्म है। किसी विपत्तिमें भी श्रथवा संसारके किसी प्रलोभनसे मनुष्यको धर्माचरणका मार्ग न छोड़ना चाहिए, यही उच तत्व सिखलानेके लिए वाल्मीकि श्रीर व्यासके सारे परिश्रम हैं। इन राष्ट्रीय महाकाव्योंने राम, युधिष्ठिर, दश-रथ, भीष्म, इत्यादिके चरित्र, कर्मयोगका श्रमर सिद्धान्त पाठकोंकेचित्त पर श्रंकित करनेके लिए, अपनी उच वाणीसे, अत्यन्त उत्तम चित्रोंसे रँगे हैं; श्रीर उन चरित्रों-के द्वारा उन्होंने यह उपदेश दिया है कि, इसी उच्च तत्यके श्रतुसार श्राचरण करने-से मनुष्यको परमपद प्राप्त होगा। हमारे मतसे, महाभारतका पोथा चाहे जितना बढ़ गया हो श्रीर उसमें भिन्न भिन्न श्रनेक विषयोंकी चर्चा चाहे जितनी की गई हो, तथापि उसका परमोच नीति धर्मतत्वोंका यह सिद्धान्त कहीं लुप्त नहीं हुआ है; और वह पाठकोंकी दृष्टिके सामने स्पष्ट श्रवारों-में सदैव लिखा हुआ दिखाई देता है।

यह बात निर्विवाद स्वीकार करनी चाहिए कि, नीतिकी कल्पना और सिद्धान्त भारतवर्षमें धर्मकी कल्पना और सिद्धान्त-से मिला हुआ है। पाश्चात्य तत्वज्ञानियों-की भाँति भारतीय आर्थ तत्वज्ञानियोंकी वुद्धिमें नीति और धर्मका भेद-आरूढ़ नहीं होता। तथापि किसी किसी जगह महा-भारतमें ऐसा भेद किया गया है। धर्म

शब्दमें वास्तवमें सम्पूर्ण श्राचरणुका समावेश होता है। परन्तु महाभारतमें यह बात बतलाई गई है कि, धर्मके दो भाग, एक श्रिधिक श्रेष्ठ और दूसरा कम श्रेष्ठ, हो सकते हैं। वनपर्वमें धर्म श्राठ प्रकारका बतलाया गया है। यज्ञ, वेदाध्ययन, दान श्रोर तपका एक वर्ग किया गया है। श्रीर सत्य, चमा, इन्द्रियदमन, श्रोर निलींभता इन चारका दूसरा भाग है।

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं त्तमा दमः। श्रलोभइति मार्गोयं श्रमस्याष्ट्रविश्वः स्मृतः॥

इनमेंसे पहले चार पितृयाण-संज्ञक मार्गकी प्राप्तिके कारण हैं; श्रीर दूसरे चार देवयान-संज्ञक मार्गकी प्राप्तिके कारण हैं। सज्जन निरन्तर उनका अवलम्बन करते हैं। (वनपर्व अध्याय २:-तत्रपूर्वश्चतु-र्वर्गः पितृयाणपथे रतः उत्तरो देवयानस्त सद्भिराचरितः सदा)। इन दो भेदोंसे धर्मके, कर्ममार्ग श्रौर नीतिमार्ग, ये दो भाग किये गये हैं, जिनमेंसे पहला भाग कम दर्जेका है श्रीर दूसरा श्रेष्ठ दर्जेका है। यज्ञ, अध्ययन, दान श्रीर तप, ये धर्मकार्योंके, श्राजकलके भी प्रसिद्ध खरूप हैं। परन्तु यहाँ पर यह सूचित किया गया है कि, धर्मकार्य करनेवाले लोग पितृयाण्से, जैसा कि पहले बतलाया है, चन्द्रलोकको जाकर श्रथवा खर्गको जाकर फिर वहाँसे पुनरावृत्ति पार्वेगे। सत्य, त्तमा, इन्द्रियनिग्रह श्रीर निर्लोभता, ये धर्मके दूसरे भाग श्राजकलकी दृष्टिसे नीतिके भाग हैं; श्रीर इनका श्राचरण करनेवाले लोग, जैसा कि हमने पहले बतलाया है, देवयानसे ब्रह्मलोकको जाकर फिर वहाँसे नहीं लोटेंगे। श्रर्थात् महा भारतकारका यह सिद्धान्त दिखाई पड़ता है कि, नीतिका श्राचरण करनेवाला पुरुष भी वेदान्तीकी भाँति

प्रथवा योगीकी भाँति मोचको प्राप्त होगा।

पहाँ पर जो यह वतलाया गया है कि,

स्म मार्गका श्राचरण सज्जन लोग करते

हैं, उसका मार्मिक खुलासा उद्योगपर्वमें

एक जगह किया गया है।

प्रश्नपूर्वश्चतुर्वगीं दंभार्थमिप सेव्यते।

उत्तरस्त चतुर्वगीं नामहात्मसु तिष्ठति॥

यह बात संसारके अनुभवकी है कि यह, वेद्पठन, दान, तप, इत्यादि वातें ब्रधार्मिक मनुष्य भी दम्भके लिए कर सकता है। परन्तु दूसरा मार्ग अर्थात् तीतिका मार्ग सत्य, चमा, दम श्रीर निर्लो-भता ढोंगसे नहीं श्रा सकते। जो सचमुच ही नीतिमान् महात्मा हैं, उन्हींसे इन सहणोंका श्राचरण होता है। यही चतु-विध धर्म मनुस्मृतिमें बढ़ाकर दशविध धर्मबतलाया गया है। उसे प्रत्येक मनुष्य-कों-फिर वह चाहे किसी वर्ण श्रथवा श्राश्रमका हो श्रवश्य पालना चाहिए। भगवदूगीतामें इस विषयका विचार श्रप्र-तिम रीतिसे किया गया है; श्रौर यह बत-लाया है कि, सज्जनोंके सद्गुण कौनसे होते हैं। इन सह गोंको देवी सम्पत्का नाम दिया गया है। वे सहण ये हैं:-निर्भयता, चित्तशुद्धि, ज्ञानयोगमें एकनिष्टता, दातृत्व, बाह्य इन्द्रियोंका संयम, यज्ञ श्रीर श्रध्याय, सरलता, श्रहिसा, सत्यभाषण, त्रकोध, त्याग, शांति, चुगली न करना, प्राणिमात्र पर द्या करना, विषय-लम्पट न होना, नम्रता, जनलज्जा, स्थिरता, तेज, त्तमा, धेर्य, पवित्रता, दूसरेसे डाह न करना और मानीपनका श्रभाव, ये देवी सम्पत्तिके गुण हैं; श्रीर दम्भ, दर्प (गर्व), मानीपन, कोध, मर्मवेधक भाषण, श्रज्ञान, ये श्रासुरी सम्पत्तिके लत्तण हैं—"दैवी सम्पद्धिमोत्ताय निबन्धायासुरी मता।" दैवी सम्पत्तिसे मोद्य प्राप्त होगाः श्रीर

श्रासुरी सम्पत्तिसे वन्ध्रन मिलेगा। इस वचनसे जान पड़ता है कि, गीताका यह स्पष्ट मत है कि, नीतिका श्राचरण मोच-का ही कारण है। समग्र महाभारतका भी मत देवयानपथके वर्णनसे वैसा ही है, सो ऊपर वतलाया ही है।

धर्माचरण मोचपद है।

यह माननेमें कोई श्रार्थ्य नहीं कि, वेदान्त-ज्ञान श्रीर योगसाधनसे जिस प्रकार मोत्तप्राप्ति है, उसी प्रकार संसार-के नैतिक श्राचरणसे भी मोत्तप्राप्ति है। क्योंकि कितने ही लोगोंकी यह धारणा होती है कि, नीतिका आचरण वेदान्तज्ञान-के समान कठिन नहीं है; परन्तु वास्तव-में ऐसी बात नहीं है। संसारमें नीतिसे चलनेका काम, जङ्गलमें जाकर योगसे मन निश्चल करनेके समान ही, किंबहुना उससे भी श्रिधिक कठिन है। ऐसा श्राच-रण करनेवाले लोग युधिष्ठिर श्रीर राम-के समान श्रथवा भीष्म श्रीर दशरथके समान, प्रत्येक समय, हाथकी उँगलियों पर गिनने योग्य ही मिलते हैं। इस संसारमें मनुष्य पर सदैव ऐसे अवसर त्राते हैं कि वड़ा धेर्यशाली स्रोर हद मनुष्य भी नीतिका मार्ग छोड़ देनेको उद्यत हो जाता है। ऐसा मनुष्य भी स्वार्थके चक्करमें पड़ जाता है। विद्वान भी ऐसे संशयमें पड़ जाते हैं कि, नीतिके त्राचरणसे वास्तवमें कुछ लाभ हे या नहीं; श्रोर फिर वे सत्य, त्तमा श्रीर दया-का मार्ग छोड़ देते हैं। साधारण मौकों पर भी बड़े बड़े प्रतिष्ठित मनुष्य, थोड़े स्वार्थके लिए, सत्यका सहारा छोड़ देने-के लिए तैयार हो जाते हैं; फिर साधा-रण जनोंका क्या कहना है ? यह बात हम संसारमें पग पग पर देखते ही रहते हैं। फिर इसमें क्या सन्देह है कि, नीतिका

श्राचरण योगके श्राचरणसे भी।कडिन है। इस विषयमें महाभारतकारने वन-पर्वमें युधिष्ठिर श्रीर द्रीपदीका सम्वाद बहुत ही सुन्दर दिया है। द्रौपदी कहती है-"तम 'धर्म ही धर्म 'लिए बैठे हो श्रीर यहाँ जङ्गलमें कष्ट भीग रहे हो : उधर श्रधमी कौरव श्रानन्दपूर्वक हस्तिनाप्रमें राज्य कर रहे हैं। तुम शक्तिमान हो, श्रतएव श्रपनी वनवासकी प्रतिज्ञा छोड-कर बलसे श्रपना राज्य प्राप्त करनेका यदि प्रयत्न करोगे, तो तुम्हें वह सहज ही मिल जायगा। जिस धर्मसे दुःख उत्पन्न होता है, उसे धर्म ही कैसे कहें ?" "दुर्योधनके समान दुएको ऐश्वर्य देना श्रौर तुम्हारे समान धर्मनिष्ठको विपत्तिमें डालना, इस दुष्कर्मसे सचमुच ही पर-मेश्वर निर्देय जान पड़ता है।" इस पर युधिष्ठिरने जो उत्तर दिया है, वह सुवर्णा-त्तरोंमें लिख रखने योग्य है।

धर्मं चरामि सुश्रोणि न धर्मफलकारणात्। धर्मवाणिज्यको हीनो जघन्यो धर्मवादिनाम्॥

"हे सुन्दरि, में जो धर्मका श्राचरण करता हूँ, सो धर्मफल पर श्रधांत् उससे होनेवाले सुखकी प्राप्ति पर ध्यान देकर नहीं करता; किन्तु इस दृढ़ निश्चयके साथ करता हूँ कि धर्म, चूँकि धर्म है, इस लिए वह सेवन करने योग्य है। जो मनुष्य धर्मको एक व्यापार सममता है, वह हीन है। धर्म माननेवाले लोगोंमें वह बिलकुल नीचे दर्जेंका है। मनुष्यकी जो भूल होती है, सो यही है। कुछ देरतक हमको ऐसा दिखाई देताहै कि, श्रधार्मिक मनुष्यको लाभ हो रहा है, श्रथवा वह उत्तम दशामें है; परन्तु नीतिके श्राच-रणका उत्तम फल तत्काल चाहे न दिखाई देता हो, परन्तु कभी न कभी वह

होता ही है; और अधर्मका फल भी श्रागे चलकर श्रवश्य ही मिलता है। इसी लिए, धर्म और नीतिका चाहे कुछ दिन श्रपकम होता रहे, श्रीर नीतिका श्राचरण करनेवाले पर दुःख श्राते रहें, तथापि धर्म-विषयक अपनी श्रद्धा कभी कम न होने देनी चाहिए। धर्माचरणमें यही करना कठिन है। मनुष्यकी चज्चल बुद्धि बार वार मोहमें पड़ जाती है और वह नीतिपथसे च्युत हो जाता है। उसको माल्म होता है कि, विना किसी कपूके थोड़ीसी चालाकीसे, बहुतसा लाम होता है। इसी प्रकारके दृश्य वारवार उसके सामने आकर उसको प्रलोभित किया करते हैं; श्रौर इसी कारण उसका मन अनीतिके वश हो जाता है। ऐसी दशामें अत्यन्त भारी सङ्घटों और भयङ्गर अवसरोंके समय यदि सेंकड़ों मनुप्योंके मन धर्मकी कसौटी पर ठीक न उतरें, तो इसमें आक्षर्य ही क्या है ? इस कारण संसारमें सचे धार्मिक मनुष्य बहुत थोड़े दिखाई देते हैं। जो मनोनियह संन्यासी अथवा योगीके लिए आवश्यक है, वही श्रौर उतना ही मनोनिग्रह संसारके ऐसे श्रवसरोंके प्रलोमनोंसे वचनेके लिए भी श्रावश्यक है। इस प्रकारके मनोनिग्रहसे जव धार्मिक मनुष्यका चित्त बलवान् हो जाता है, तब उसका श्रात्मा सचमुच ही अर्ध्वगतिको जानेके योग्य बन जाता है; श्रीर श्रजरामर परब्रह्ममें तादात्म्य पाने योग्य हो जाता है। इस विचारशैलीसे देखते हुए यही कहना पड़ता है कि, महाभारतमें जो यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है कि, संन्यास अथवा योगके मार्गकी भाँति ही संसारमें नीतिका श्राच रण करनेवाला मनुष्य मोत्तको जा पहुँ चता है, सो बिलकुल ठीक है।

वह निश्चित करना ऋत्यन्त कठिन होता है कि, धर्मका आचरण कौनसा है और ब्रधर्मका आचरण कौनसा है। और इस विषयमें शंका उपस्थित होती है कि, ऐसे श्रवसर पर मनुष्यको क्या करना चाहिए। महाभारतमें ऐसे खल कितने ही हैं; श्रौर इसरी जगह हम इस बातका विचार करेंगे कि, इस विषयमें महाभारतकारकी वतलाई हुई नीति कहाँतक ठीक है। वहाँ इतना ही बतलाना यथेए होगा कि. हमारे जीवनमें ऐसे श्रपवादक श्रवसर बहुत ही थोड़े उपस्थित होते हैं, जिस समय हम इस शंकामें पड़ जाते हैं कि, अब क्या करना चाहिए। परन्तु हजारों ग्रन्य श्रवसर ऐसे होते हैं कि, जिस समय हमें यह मालूम रहता है कि नीति-का श्राचरण कोनसा है; श्रीर तिस पर भी स्वार्थके प्रलोभनमें पड़कर, श्रथवा श्रन्य श्रनेक कारणींसे, हम न्यायका श्राचरण होड़ देते हैं। ऐसे अवसर पर हमें अपने उपर पूर्ण अधिकार रखना चाहिए; और भय श्रथवा लोभके वशीकरणसे हमें श्रपने श्रापको बचाना चाहिए । जैसा कि भगवद्गीतामें कहा है, सद्गुणोंकी दैवी सम्पत्ति प्रत्येक मनुष्यके भागमें श्राई हुई है। मनोनिग्रह श्रीर शुद्ध श्राच-रणसे उस सम्पत्तिकी वृद्धि ही करते रहना चाहिए। उसका नाश न होने देना चाहिए। एक लाख श्लोकींका वृहत् महा-भारत ग्रन्थ पग पग पर कह रहा है कि "धर्मका आचरण करो। धर्म कभी मत प्रारम्भमें भी यही कहा है छोडो ।" कि "धर्मेमतिर्भवतुवः सततोत्थितानाम्" "तुम सतत उद्योग करते हुए श्रपनी श्रद्धा धर्ममें रहने दो।" इसी भाँति अन्तमें भी भारतसावित्रीमें यही उपदेश किया है कि—

न जातुकामान्नं भयान्नलोभात् धर्म स्यजेज्जीवितस्यापिहेतोः । धर्मो नित्यः

सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यस्तस्य हेतुस्त्वनित्यः॥

श्रथीत् "भय श्रथवा काम श्रथवा लोभमें फँसकर धर्मको मत छोड़ो। जीवनकी भी परवा मत करो। धर्म नित्य है; श्रौर सुखदुःख श्रनित्य हैं। जीवातमा नित्य है; श्रौर उसका हेतु जो संसार हैं, सो श्रनित्य हैं।" व्यवहार-निपुण व्यास दोनों भुजाएँ उठाकर उच्च खरसे संसारको महाभारतमें यही उपदेश कर रहे हैं।

धर्मकी व्याख्या।

महाभारतमें धर्मकी व्याख्या तत्वश्वानके लिए उचित ही दी गई है। भारती
श्रायोंके विचार इस विषयमें भी श्रत्यन्त
उदात्त हैं। धर्मकी व्याख्या यों की गई है।
प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम्।
यः स्यात्प्रभवसंयुक्तः सधर्म इति निश्चयः॥
धारणाद्धमें इत्याहुः धर्मेण विधृताः प्रजाः।
यः स्याद्धारणसंयुक्तः सधर्म इति निश्चयः॥
श्रिहंसायहि भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम्।
यः स्याद्धिसासंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥
श्रुतिधर्म इतिहोके नेत्याहुरपरे जनाः।
न च तत्प्रत्यस्यामो नहि सर्वं विधीयते॥
न च तत्प्रत्यस्यामो नहि सर्वं विधीयते॥

उत्कर्ष लोगोंकी धारणा (स्थित)
श्रीर लोगोंकी श्रिहिंसा (श्रनाश) यही
धर्मके हेतु हैं। ये जहाँ सिद्ध नहीं होते,
वह धर्म नहीं है। श्रुत्युक्त धर्ममें भी इसका
विचार करना योग्य है, क्योंकि श्रुति भी
हर एक कर्मको करनेकी श्राह्मा नहीं देती।

धर्मके विषयमें केवल तर्कयुक्त कल्पना देनेका भी महाभारतने प्रयत्न किया है। वह यहाँ अन्तमें देने योग्य है। शान्ति पर्वके २५६वें अध्यायमें युधिष्ठिरने जब यह प्रश्न किया कि—"कोयं धर्मः कुतो धर्मः" तब भीष्मने पहले सदैवकी भाँति यह कहाः—

सदाचारः स्मृतिवेदास्त्रिविधं धर्म लच्यम् ।
चतुर्थमर्थमित्याद्यः कवयो धर्म लच्यम् ॥
परन्तु श्रागे चलकर यह कहा कि
धर्म लोगोंके ही कल्याएके लिए बतलाया
जाता है; श्रोर धर्मसे इहलोक तथा परलोक दोनोंमें सुख होता है । सामान्य
धर्मकी जो उपपत्ति तर्कसे इस श्रध्यायमें
दिखलाई है, वह माननीय हैः—
लोकयात्रार्थमें वेह धर्मस्य नियमः छतः ।
उभयत्र सुखोदकं इह चैव परत्र च ॥
यथा धर्म समाविष्टो धनं गृह्णाति तस्करः ।
यदास्य तद्धरन्त्यन्ये तदा राजानमिच्छिति ॥
सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद्विद्यतेपरम् ।
श्रिपपापकृतो रौद्राः सत्यंकृत्वा पृथक् पृथक् ।
ते चेन्मिथोऽधृतिकुर्युविनश्येयुरसंशयम् ।

न हर्त्तव्यं परधनमिति धर्मः सनातनः॥

मन्यन्ते बलवन्तंस्तं दुर्बलैः सम्प्रवर्तितम् ।

याः स्थारयभवन्त प्रयाः स्थाने इति विकास ॥ सारकृत्ये स्थानकुष्योषु विकृताः अत्राः । याः स्थानस्थानीयु सारायते इति विवासः ॥

वित्रकेती स्थापिक संस्थापति वित्रकेता । स स प्रत्यसम्बद्धां स्थापति सर्वे विश्लीपते ॥

किए (जिल्हा) वहाँकि किलित जार

िकार करना बाज्य है, जांकि श्रात औ

प्रमुक्त क्षात्र क्षात्र के क्षा

पह पर किया किया किया है। जाती प्रमे एकी प्रमेणकाल क्षेत्रकोत्र के प्रमेणकी मांकि

and him of these or the distriction

दातव्यमित्ययं धर्म उक्तो भूतहिते रतैः। तं मन्यन्ते धनयुताः कृप्णैः सम्प्रवर्तितम् ॥ यदा नियतिदौर्बल्यमथैषामेव रोचते। न हात्यन्तं बलवन्तो भवन्ति सुखिनोपिवा॥ यदन्यैर्विहितंनेच्छेदात्मनः कर्म पूरुषः। न तत्परेषु कुर्वीत जानन्नप्रियमात्मनः ॥२१ योऽन्यस्य स्यादुपपतिः स कं किं वक्तुमहिति। जीवितुंयः खयंचे च्छ्रेत्कथं सोन्यंप्रघातयेत्२२ सर्वं प्रियाभ्युपयुतं धर्ममाहुर्मनीिषणः। पश्येतं लच्नणोद्देशं धर्माधर्मे युधिष्ठिर ॥२५॥ धर्माधर्मका निश्चय केवल "बाबा-वाक्यं प्रमाणम्" के न्यायसे न करते हुए वृद्धिवादके स्वरूपसे, जैसा कि ऊपर दिखलाया है, बहुत ही मार्मिक रीतिसे तथा दृष्टान्तसे किया गया है । पाश्चात्य तत्वज्ञान अभीतक इससे अधिक आगे नहीं बढ़ा है।

वार्यके प्रकार पर कर, जार के प्रकार

विकार विकास प्रतिक स्वीतिक सामस

能。如此证证证明,但并后对

AP THURSDAY DESIGNED A

met feet single properties

सज्जहकाँ मकरण।

101299

भिन्न मतींका इतिहास।

क्रुमप्टि-रूपसे इस विषयका विवेचन हो गया, कि परमेश्वरकी प्राप्तिके भिन्न भिन्न मार्ग किस प्रकार उत्पन्न हुए। ब्रब प्रश्न यह है कि प्रत्येक मार्गकी उन्नति यावृद्धि किस प्रकार हुई। इसका जो विचार ऐतिहासिक रीतिसे महाभारतके आधार पर किया जा सकता है सो श्रव हम करेंगे। उपनिषद्-कालसे सूत्र-कालतकके हजार या दो हजार वर्षोंकी ऐतिहासिक बातें जिस ग्रन्थसे हमें माल्म हो सकती हैं, वह महाभारत ही है। इस समयके तत्व-ज्ञान-के छोटे छोटे प्रन्थ इस एक ही वृहत् प्रनथमें समाविष्ट श्रीर लुप्त हो गये हैं। इसलिए उक्त विचार करनेके लिए इस समय हमारे पास महाभारतका ही साधन उपलब्ध है। इसी साधनकी सहा-यतासे हम यह ऐतिहासिक विचार यहाँ करेंगे। शान्ति पर्वके ३४६वें ऋष्यायमें कहा है-

सांख्यं योगाः पांचरात्रं वेदाः पाग्रुपतं तथा। कानान्येतानि राजर्षे विद्धि नानामतानि वै॥

तात्पर्य यह है कि सांख्य, योग, पाञ्च-रात्र, वेदान्त और पाग्यपत, ये सनातन-धर्मके पाँच भिन्न मत महाभारतके समय-में प्रसिद्ध थे। श्रब यह देखना है कि इन भिन्न भिन्न मतोंका इतिहास महाभारत-से हमें किस प्रकार मिलता है। हम पहले देख चुके हैं कि महाभारतके कुछ भाग बहुत पुराने हैं श्रीर कुछ सौतिके कालतकके हैं। साधारणतः यह माननेमें कोई हर्ज नहीं कि भगवद्गीता पुरानी है। सनतसुजातीय श्रीर भीष्मस्तवराज

गीताके बादके हैं श्रोर श्रमुस्मृति तथा शान्ति पर्वका मुख्य भाग सौतिके समय-का है। इस श्रमुमानका उपयोग कर हम पहले सांख्य-मतका ऐतिहासिक विचार करेंगे।

(१) सांख्य मत।

सव मतोंमें सांख्य मत बहुत प्राचीन है। किसी मतका निर्देष करते समय सांख्यका नाम महाभारतमें पहले आता है: परन्त यह मान लेनेमें कोई आपत्ति नहीं कि सांख्यकी प्रसिद्धि दशोपनिषत्-कालके बाद हुई है। कारण यह है कि सांख्यका उल्लेख उसमें नहीं है। यह वात निर्घिवाद प्रतीत होती है कि सांख्य-मतका प्रघत्तंक कोई भिन्न ऋषि था। शान्ति पर्वके उपर्युक्त श्लोकके श्रागे चल-कर जो मत बतलाये गये हें उनमें कपिल-को सांख्यका प्रवर्त्तक कहा गया है श्रोर श्रन्य मतोंके प्रवर्त्तक भिन्न भिन्न देव, ब्रह्मा, विष्णु, महेश बतलाये गये हैं। अर्थात् यह मान लिया जा सकता है कि उन मतोंके प्रवर्त्तक कोई विशिष्ट पुरुष न थे; वे मत धीरे धीरे बढ़ते गये श्रीर वे बैदिक मतोंसे ही निकले हैं । महाभारतमें यही उल्लिखित है कि कपिलका मत सबसे पुराना है। कपिलका उल्लेख भगवद्गीतामें श्राया है। परन्तु यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि वहाँ उसे ऋषि नहीं माना है। वहाँ 'सिद्धानां कपिलो मुनिः", "गंधवीणाम् चित्ररथः" यह है। महाभारतमें सिद्ध, गन्धर्व श्रादि लोगोंका उत्लेख हमेशा त्राता है। सिद्धसे तात्पर्य उन्हीं लोगोंका है जिन्होंने केवल तत्व-ज्ञानके बल पर परमेश्वरकी प्राप्ति की हो। इससे सिद्ध होता है कि भग-वद्गीताके मतानुसार तत्व-ज्ञान सिद्ध-पद शाप्त करनेवाले पहले

कपिल मुनि थे। प्रथात सब मानवी तत्व ज्ञानोंमें कपिलका सत प्राचीन है। महाभारतका कदम इससे भी श्रागे है। उसमें (शान्ति पर्व अ० ३५० में) स्पष्ट ही कहा है कि कपिलका तत्व-ज्ञान सब-से प्राना है: इतना ही नहीं, किन्तु उसमें कपिलको विष्ण या ईश अथवा ब्रह्माका ही अवतार एवं विभृति माना है। इससे यह स्पष्ट है कि महाभारत-कालमें कपिल-के प्रति श्रत्यन्त पूज्य-वृद्धि थी । इसका कारण यह है, कि हर जगह सांख्य श्रीर योगका श्रास्तिक तत्व-ज्ञानके विचारमें समावेश किया गया है। कहीं कपिल-के विरुद्ध सत नहीं दिया गया । केवल एक स्थान पर उसका उल्लेख विरुद्ध मतकी दृष्टिसे किया गया है। शान्ति पर्वके २६= वें ऋध्यायमें गाय कपिलका संवाद किएत है। प्राचीन वेदविहित-यज्ञोंमें गवालम्भ होता था; उस समय उस ब्रह्मनिष्टा सम्पादित करने-वाले तथा सत्य-युक्त बुद्धिका लाभ प्राप्त करनेवाले किपलने रुष्ट होकर कहा-"बाहरे वेद !" श्रीर श्रपना स्पष्ट मत दिया कि हिंसायुक्त धर्मके लिए कहीं प्रमाण नहीं है। श्रर्थात् यह स्पष्ट दिखाई देता है कि पहलेसे ही किसी न किसी बातमें कपिलका मत वेदके विरुद्ध था। बास्तवमें यह बात श्राश्चर्यजनक है, कि कपिलका मत वेदके विरुद्ध होते हुए भी, महाभारत-कालमें उसके मतका इतना श्रादर था। इससे यह निर्विवाद है कि भारती-कालमें तत्व-ज्ञानके विषयमें सम-तोल दृष्टि थी।

यह कहना कठिन है कि कपिलका मूलतः सांख्य मत क्या था। महाभारतमें सैंकड़ों जगह उसके सांख्य-शास्त्रका उन्नेख हैं। इससे यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि कपिलके मतका 'सांख्य'

नाम था। इस समय सांख्यके जो प्रन्थ उपलब्ध हैं वे सब महाभारतके पीछेके हैं। सांख्यका पुराना ग्रन्थ महाभारत ही है। उसमें पुराना भाग भगवद्गीता है: श्रर्थात् भगवद्गीता ही सांख्योंका मृत सिद्धान्त देखनेके लिये साधन है। गीता-में सांख्य ही नाम है, श्रतः यह स्पष्ट है कि यह नाम प्राचीन कालसे चला श्राताहै। विदित होता है कि सांख्यका नाम संख्या शब्दसे पड़ा है। उपनिषद् सिद्धानोंमें एक तत्वका प्रतिपादन किया गया है: परन्तु कविलने दोका किया है। इस प्रकार सांख्य और वेदान्तका आरम्भसे ही विरोध पैदा हुआ। उसका पहला और मुख्य मत यह था कि जगत्में प्रकृति और पुरुष दो पदार्थ हैं। सांख्योंका स्पष्ट मत है कि प्रकृति और पुरुष एक नहीं हो सकते। शान्ति पर्वके ३१८वें ऋध्यायमें स्पष्ट कहा है कि जानकार लोग ऐसा कभी न समभें कि प्रकृति श्रीर श्रात्मा एक ही हैं। अर्थात्, सांख्योंकी द्वैतकी यह पहली सीढ़ी है। सांख्योंने यह वत-लाया कि पुरुष प्रकृतिसे भिन्न है, वह केवल द्रष्टा है, प्रकृतिकी प्रत्येक किया या गुण्से वह परे है। परन्तु उन्होंने यह निश्चित नहीं किया कि सांख्य-मतके श्रनुसार यह पुरुष ईश्वर है। सांख्य निरीश्वरवादी हैं; परन्तु प्रश्न उपस्थित होता है, कि क्या वे प्रारम्भसे ही निरी-श्वरवादी हैं ? महाभारतके कई वचनींसे यह विदित होता है कि सांख्य प्रारम्भसे ही निरीश्वरवादी होंगे । शान्ति पर्वके २००वें श्रध्यायके प्रारम्भमें योग श्रीर सांख्यका मतभेद बतलाते समय कहा है कि—"योग अमतवादी अपने पत्तके

* यहाँ मूलभूत श्लोक ये हैं:— सांख्याः सांख्यं प्रशंसन्ति योगा योगं द्विजातयः। श्रनीश्वरः कथंमुच्येदित्येवं रात्रुकर्शन ॥३॥ सम्बन्धमें यह कारण उपस्थित करते हैं, कि संसारमें ईश्वरका होना श्रावश्यक है. उसके विना जीवको मुक्ति कैसे मिलेगी? सांख्य-मतवादियोंमें से पूर्ण विचार करने-वाले ब्राह्मण श्रपने मतकी पुण्कि लिए कहते हैं कि यदि जीवमें विषयों के सम्बन्ध-से वैराग्य स्थिर हो जाय, तो देह-त्यागके ग्रनन्तर उसे मुक्ति श्राप ही मिलेगी: उसके लिए कोई दूसरा मार्ग नहीं है।" इस प्रकार यहाँ पर दोनों पत्तोंका मत-भेद बताया है। श्रर्थात् महाभारत-कालमें भी यह बात सिद्ध थी कि सांख्य निरी-श्वरवादी हैं। विदित होता है कि कपिल-ने पुरुषके सिवा दूसरा ईश्वर नहीं माना । भगवद्गीतासे विदित होता है कि श्रात्माका श्रमरत्व श्रीर निष्क्रियत्व कपिलके मतका तीसरा श्रङ्ग था।

गीताके प्रारम्भमें ही कहा है— "एषा ते विहिता सांख्ये" अर्थात् सांख्य मतकी तीसरी बात यह है कि श्रात्मा श्रमर श्रीर निष्त्रिय है। इसमें सांख्यों श्रोर वेदान्तियोंका एक ही मत है; परन्तु उसे सांख्य मत कहनेका कारण यह दिखाई देता है कि भगवद्गीतामें सांख्य श्रौर वेदान्तका प्रायः श्रधिकांशमें भेद नहीं माना गया है। गीतामें सांख्य-मत-की चौथी बात ज्ञान है। जब पुरुषको यह ज्ञान हो जायगा कि पुरुष प्रकृति-से भिन्न है, सब किया श्रीर सुख-दुःख प्रकृतिमें हैं, तब वह मुक्त हो जायगा। सांख्योंका यह सिद्धान्त भग-वहीतामें स्पष्ट बतलाया है। भगवहीतामें सांख्योंका "ज्ञान घोगेन सांख्यानां

वदंति कारणंश्रेष्ठयं योगाः सम्यङ्मनीषिणः। वदंति कारणं चेदं सांख्याः सम्यक् द्विजातयः॥४॥ विज्ञायेह गतीः सर्वाविरक्तो विषयेषुयः। कथ्वं स देहात्सुच्यक्तं विमुच्येदिति नान्यथा ॥४॥

कर्म योगेन योगिनाम् यह उल्लेख है। उसी तरह १३वं श्रध्यायमें 'श्रम्य सांख्येन योगेन" कहकर श्रात्मानुभव-की रीति भी वतलाई है। श्रथीत् यहाँ पुनः ज्ञानकी रीतिका वर्णन किया है। केवल ज्ञानका प्रकार भिन्न है, श्रथीत् एकमें हैत-ज्ञान है, तो दूसरेमें श्रहेत है। वहुत प्राचीन कालसे सांख्योंका पाँचवाँ मत त्रिगुण सम्बन्धी है। ये गुण प्रकृतिके हैं श्रोर पुरुष प्रकृतिमें रहकर प्रकृतिके इन गुणोंका उपभोग करता है। यह वात गीताके तेरहवें श्रध्यायमें कही है।

भगवद्गीताके समयका सांस्य-मत वर्तमान सांस्य-मतसे साधारणतः यदि भिन्न न होगा तो भी उस समयकी विचार-प्रणाली या उस समयके सांस्य-शास्त्रके विषय किसी और ही रीतिसे समभाये हुए होने चाहिएँ।

भगवद्गीतामें यह व्याख्या की गई हैं:— कार्य कारण कर्जा त्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते । पुरुषः सुखदुःखानाम् भोकृत्वे हेतुरुच्यते ॥

परन्तु इस प्रकारकी व्याख्या इस
श्रीरके सांख्य शास्त्रोंमें नहीं पाई जाती।
इससे यह मानना पड़ता है कि पहले
सांख्य ग्रन्थ कुछ भिन्न होंगे। भगवद्गीतामें सांख्योंका "सांख्ये कृतान्ते
प्रोक्तानि सिद्ध्ये सर्वकर्मणाम्"
यह एक श्रीर महत्वपूर्ण उल्लेख श्राया है।
इसमें सांख्यका बहुत वर्णन किया है,
क्योंकि यहाँ उसके लिए कृतान्त विशेषण
लगाया है। जिसमें सब बातोंका निश्चय
किया गया हो उसे कृतान्त कहते हैं।
इससे यह विदित होता है कि सांख्य
शास्त्रके बहुत व्यापक होनेके कारण
उसके सिद्धान्त निश्चित श्रीर मान्य थे।

परन्तु वहाँ कहे हुए "आधिष्ठानां तथा कत्ती" आदि श्लोकोंमें वर्णित सिद्धान्त वर्तमान सांख्यशास्त्रमें नहीं हैं। इससे भी यही निश्चय होता है कि भगवद्गीताके समयमें सांख्यशास्त्रका कोई भिन्न प्रन्थ होगा। गीता के 'प्रोच्यत गुण संख्याने' श्लोकमें यह वात स्पष्टतयाव्यक्त की गई है कि त्रिगुणोंके सम्बन्धमें सांख्यशास्त्रका मोटा और नया सिद्धास्त प्रारम्भसे ही है।

हम यह कह चुके हैं कि सांख्योंका चौबीस तत्वोंका सिद्धान्त पहलेसे ही नहीं है; मूलतः उनके सत्रह तत्व थे। पहले यह माना गया होगा कि प्रकृतिसे पहले वृद्धि निकली। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि सांख्य-सिद्धान्तों-में बुद्धिके स्थानमें महत्तत्व पीछेसे कायम किया गया होगा। भगवद्गीताके तेरहवें अध्यायमें जो वर्णन है वह श्रत्यन्त महत्व-का है। इस श्रध्यायमें सांख्य श्रौर वेदान्त मतका एक जगह मेल मिलाकर श्रथवा भिन्न भिन्न मतोंका मेल मिलाकर चेत्र श्रीर चेत्रज्ञ, प्रकृति श्रोर पुरुष तथा ज्ञान श्रौर जेत्रज्ञ, प्रकृति श्रोर पुरुष तथा ज्ञान

हम पहले बता चुके हैं कि "ब्रह्मसूत्र पर्देश्चेव हेतुमद्भिर्विनिश्चितै:"
इस वाक्यमें बादरायणके ब्रह्मसूत्रका
उन्नेख नहीं है। यहाँ हम इसका एक
श्चीर भी प्रमाण देते हैं। ब्रह्मसूत्र श्चर्थात्
बादरायणके ब्रह्मसूत्रमें चेत्र-चेत्रज्ञोंका
विचार बिलकुल नहीं किया गया है।
यहाँ उसका उन्नेख केवल गर्भित पाया
जाता है; इतना ही नहीं, परन्तु इसी
श्लोकमें श्चागे जो चेत्रका वर्णन किया
गया है, वह बादरायण स्त्रमें नहीं है।
यह एक महत्वका प्रश्न है कि, यह वर्णन
कहाँसे लिया गया है ? जैसा कि पाणिनिसे भी विदित होता है, कदाचित् प्राचीन

कालमें श्रनेक सूत्र थे; वे इस समय नष्ट हो गये हैं, उनमें एक श्राध ब्रह्मसूत्र होगा श्रोर उसमें भगवद्गीतामें वर्णित किया हुशा विषय होगा। इस स्टोकमें त्रेत्रका जो वर्णन है वह न तो केवल सांख्योंका ही है श्रीर न केवल वेदान्तियोंका ही।

महासूतान्यहंकारो वुद्धिरव्यक्तमेव च। इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्चेचेन्द्रियगोचराः॥

इसमें सन्देह नहीं कि उक्त स्रोकमें तत्वोंका जोड़ चौवीस है; परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं, क्योंकि इनमें 'इच्छा-देष: सुखं दुःखं संघातश्चेतनाघृतिः" यह सात तत्व श्रौर शामिल हैं, जिससे कुल जोड़ ३१ होता है। इसके श्रतिरिक्त यदि सुदम दृष्टिसे देखा जाय तो इनमें सूदम महाभूत सर्वथा बताये ही नहीं गये हैं। महत्के लिए बुद्धि श्रीर प्रकृतिके लिए श्रव्यक्त शब्दुका प्रयोग किया गया है। इसमें इन्द्रियगोचर श्रर्थात् शब्द, रूप, स्पर्श, रस श्रौर गन्ध्र विषयका वर्णन किया गया है। अर्थात् यह स्पष्ट है कि सांख्योंके २४ तत्योंकी ही यहाँ परिगणना नहीं है। कणादने इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, संघात, चेतना श्रीर धृतिको श्रात्माके धर्म माने हैं। वे यहाँ जेत्रके धर्म वतलाये गये हैं। यह बात श्रीमच्छ-इराचार्यने इस श्लोककी टीकामें कही है। परन्तु यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि कणादका मत भगवद्गीताके पहले प्रचलित था। महाभारतमें तो कणादका उल्लेख ही नहीं है। हाँ, हरि-वंशमें है। इससे सिद्ध है कि वह भग-वद्गीताके पूर्व न होगा। हमारा मत है कि भगवद्गीताने यह मत किसी पहलेके ऐसे ब्रह्मसूत्रमेंसे लिया है, जो श्रव नष्ट हो गया है। हमने यही कहा होता कि

स मतका प्रथम प्रतिपादन खयं भग-वहीताने किया; परन्तु जव इस स्रोकके वहले ही कहा गया है कि 'यह विचार वहले ऋषियोंने ब्रह्मस्त्रमें किया हैं तब देसा नहीं कह सकते। यदि ब्रह्मसूत्रका बर्ध उपनिषद् लिया जाय तो उसमें नेत्र-सेत्रक विचार गर्भित है। वर्णन स्पष्ट नहीं हैं श्रीर वहाँ इस स्रोकमें बताये हए तत्व भी नहीं हैं। इस स्होकमें न तो इन्हें तत्व ही कहा गया है, श्रीर न यही कहा गया है कि यह विचार सांख्योंका है। वह बात भी ध्यान देने योग्य है। यदि यह सांख्य मत होता, तो भगवद्गीतामें उसका वैसा ही उल्लेख किया गया होता। यह नहीं माना जा सकता कि संघात पदार्थ या तत्व मनका ही धर्म है। इच्छा, ह्रेम, सुख, दुःख तथा धृति मनमें अन्तर्भृत होंगी परन्तु संघात श्रीर चेतना बहुधा नहीं होंगी। तात्पर्य, यहाँ यह बात बतला देने योग्य है कि सांख्योंके मूल १७ तत्वीं-से भी श्रधिक विचार भगवद्गीतामें हुआ है: श्रोर, इस विचार-प्रणालीसे कदा-चित् सांख्योंके मृत १७ तत्वोंके पीछेसे चौवीस तत्व हुए होंगे।

सांख्योंके सत्रह तत्व कौनसे थे, पुनः बताना ठीक होगा। भीष्मस्तवमें—

यं त्रिधात्मानमात्मस्थं वृतं षोडशभिर्गुणैः। प्राद्धः सप्तदशं सांख्या-स्तस्मै सांख्यात्मने नमः॥

यह स्रोक है। इसमें पंचमहाभूत, रशेन्द्रिय और मन, यही स्पष्ट षोड़श गुण हैं। ये सब मिलकर प्रकृति होती है। प्रकृति हमें जड़ और चेतन दिखाई रेती हैं और इनका पुनः पृथकरण किया जाय तो जड़के पंचमहाभूत और चेतनकी ग्यारह इन्द्रियाँ यह सहज विभाग होता है। यही सांख्योंके तत्वज्ञानकी

पहली सीढ़ी होगी। प्रथम विवेक, प्रकृति श्रीर पुरुष होनेके कारण सांख्योंने जड. चेतन शादि समपूर्ण सुष्टि पृथ्वीमें शामिल की और पुरुषको सुख-दु:खसे भिन्न और श्रलिप्त माना। जब सांख्य पुरुषको भिन्न मानकर प्रकृतिका विशेष विचार करने लगे, तव उन्हें सृष्टिका कम ग्राधिकाधिक मानना पडा। ऐतिहासिक दृष्टिसे यह कहनेमें कोई हर्ज नहीं कि विचारकी यह बुद्धि भिन्न भिन्न सांख्य तत्वन्नानियों-ने थीरे थीरे की थ्रौर महाभारतके समय-में चौबीस तत्वोंमें पूर्ण हुई। परन्तु श्राध्यर्य यह है कि उन्होंने इस विभागमें प्रकृति-का अन्तर्भाव कैसा किया! क्यों कि प्रकृति कोई निराला तत्व नहीं रह जाता, वह उसीका आगेका एक विभाग है। यही बात महत् और श्रहंकारके विषयमें कही जा सकती है; इतना ही नहीं, पंच सुदम भूतोंकी भी कही जा सकती है। अन्तमें यही मानना होगा कि ये तत्व केवल सोढियाँ हैं।

सांख्यके सिद्धान्तकी वृद्धिके साथ ही, विदित होता है कि, तत्वोंके सम्बन्ध-में शारक्भमें वडा ही मतभेद होगा। शान्तिपर्वके ३१८ वें श्रध्यायमें सांख्य मतके श्राचार्य जैगीपव्य, श्रसित, देवल, पराशर, वार्षगएय, गार्ग्य, श्रासुरी, सन-त्कुमार श्रादिका वर्णन है। श्रन्यत्र ऐसा वर्णन है कि किएल इनमें सबसे प्राचीन है: श्रोर श्रासुरो उसका शिष्य तथा पंच-शिख प्रशिष्य अर्थात् आसुरीका शिष्य था। महाभारत-कालमें सांख्य तत्ववेत्ता-की दृष्टिसे पंचशिखका नाम बहुत प्रसिद्ध था। वर्त्तमानमें भी सांख्यज्ञानमें पंचिशिख को आचार्य मानते हैं। शान्तिपर्वके श्रध्याय २७५ में श्रसिद और देवलका संवाद दिया है, श्रीर उसमें बहुत थोड़े तत्व और वे भी भिन्न भिन्न बताये गये

हैं। उसमें कहा गया है कि, इस सृष्टिकें काल, धी, वासना तथा पाँच महाभूत ये श्राठ कारण हैं। यदि कोई कहे कि इनके श्रितिरक्त कोई चेतन ईश्वर या अचेतन प्रधान कारण है तो उसका कथन श्रसत्य है, फिर चाहे वह श्रुतिकें श्राधार पर बोलता हो या तर्ककें बल पर"। इसका मूल श्रोक यह है—

महाभूतानि पञ्चेते तान्याहुर्भूतचिन्तकाः।
तेभ्यः स्जतिभूतानि काल श्रात्मप्रचोदितः।
पतेभ्योयः परं ब्र्यादसद्ब्र्यादसंशयम्॥
(शां० ५- २७५)

उसके मतसे ये तत्व श्रनाद्यनन्त, शाश्वत तथा खयंभू हैं। इससे यह विदित होता है कि उसके मतमें प्रकृति या प्रधान भिन्न नहीं हैं। तथापि महाभारत-काल-में सांख्यके २४ तत्व श्रधिकांशमें सर्व-मान्य हुए थे और यह भी माना गया था कि पुरुष श्रतत्व है तो भी परिगण्ना-में वह पद्मीसवाँ है। ये चौबीस तत्व श्रीर पश्चीसवाँ पुरुष महाभारतके कई षानोंमें वर्णित है। प्रकृति, महत्, श्रह-क्वार, श्रीर पाँच सुचम महाभूत ये श्राठ मुलतत्व, तथा मन सहित दस इन्द्रियाँ, और पाँच स्थूल महाभूत ये सोलह विकार, कुल मिलाकर चौबीस होते हैं। इनका श्रीर पुरुषका श्रथवा पची-सर्वे तत्वका महाभारतमें बार बार उल्लेख किया गया है।

(शा० श्र० ३०३)

भगवद्गीतामें 'सियकारमुदाहतं' यह उन्नेख हैं। इससे यह स्पष्ट है कि इसमें विकारशब्द संख्याश्रोंकी परिभाषासे किया गया है। परन्तु यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इस शब्दका प्रयोग इच्छा, द्रेष श्रादिके लिए किया गया है, सथवा सौर शब्दोंके लिए हैं। तथापि भहाभारत-कालमें यह कल्पना पक्की हुद हो गई थी कि कुछ तत्व मुख्य है और कुछ विकार हैं; साथ ही यह सिद्धान्त भी पूर्णतया निश्चित हो गया था कि कुल तत्व पञ्चीस हैं । सांख्यका तथा ईश्वर-वादी वेदान्तका श्रथवा योगका मेल मिलानेके लिये महाभारतमें कहीं कहीं यह कहनेका प्रयत किया गया है कि छन्ती-सवाँ तत्व परमात्मा है। कुछ लोगोन पचीसके बदले इकतीस तत्व करनेका प्रयत्न किया है। परन्तु वह सांख्यका नहीं है। जनक श्रौर सुलभाके संवादमें सुलभाने यह प्रयत्न किया है और वह जनकके मतका खरडन करनेके हेत्से ही किया गया है। धर्मध्वज जनक पंचिशिख-का अर्थात् सांख्याचार्यका शिष्य था और उसीके सिद्धान्तको काटनेके लिए यह प्रयत्न किया गया है। इसमें ये तत्व बतारे हैं-पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, एक मन श्रीर एक बुद्धि कुल मिलाकर वारह गुणः फिर तेरहवाँ सत्व, १४ वाँ श्रहङ्कार, १५ वीं वासना (यही वासना श्रहङ्कारके बीच सोलह कलाश्रोंसे उत्पन्न हुए श्रौर श्रुतिमें वर्णित किये हुए जगत्-को पैदा करती है), १६वाँ अविद्यागुण, १७ वीं प्रकृति, १= वीं माया, १६ वाँ सुख-दुःख, प्रिय-श्रप्रिय श्रादि द्वन्द्रोंका गुण, २० वाँ काल, २१ से २५ तक पंचमहाभूत २६ वाँ सद्भाव, २७ वाँ श्रसद्भाव, २८ वीं विधि, २६ वाँ शुक्र ३० वाँ बल, श्रीर ३१ वाँ पुरुष श्रथवा श्रातमा।

भगवद्गीतामें प्रकृति और पुरुष दोनी शब्द यद्यपि सांख्य मतसे लिये गये हैं, तथापि यह बात ध्यान देने योग्य है कि (ग्रन्थकर्त्ताने) उनके अर्थ अपने भिष्ण मतके अनुसार कैसे बदल दिये हैं गीतामें शानका निकपण करते समय पहले यह कहा है कि—

भूमिरापो नलोवायुः खं मनोबुद्धिरेव च।
ब्रह्कार इतीयं में भिन्ना प्रकृतिरप्रधा॥

त्र्यां जीव जड़ प्रकृति मेरी ही है तथा जीव-स्कूपी अपरा प्रकृति भी मेरी ही है। इससे यह जान पड़ता है कि जड़ और जीव दोनोंको ही प्रकृतिके तामसे सम्बोधन किया गया है। अर्थात् सांख्यका प्रकृति राज्यका अर्थ यहाँ छोड़ दिया गया है। इसके विपरीत आगेके पन्द्रहवें अध्यायमें कहा गया है कि—
हाविमी पुरुषों लोके च्रस्थाचर एव च। हर: सर्वाणि भूतानि कुरुषोचर उच्यते॥

प्रथित जड़ श्रौर जीव दोनोंको पुरुषकी ही संज्ञा दी गई है श्रौर कहा गया है कि जड़ जीव पुरुषसे उत्तम, श्रीर उसके परे रहनेवाला परमात्मा पुरुषोत्तम है। प्रकृति श्रौर पुरुष दोनों संख्याएं सांख्यको हैं, तथापि भगव-द्गीतामें उन दोनोंका दो स्थानोंमें भिन्न श्रथंसे उपयोग किया गया है। इससे यह माना जा सकता है कि भगव-द्गीताके समयमें भिन्न सांख्य मतका श्रीधक प्रचार नहीं था, वरन वह नया ही निकला था। श्रथवा यह कह सकते हैं कि सांख्य मतका विरोध श्रधिकतर मान्य नहीं हुआ था श्रौर तत्वज्ञानमें उसके लिए बड़ा ही श्रादर था।

यहाँतक तो हमने यह देखा कि सांख्य मतकी वृद्धि कैसे हुई। उनका पहला मत यह है कि प्रकृति और पुरुष भिन्न हैं। दूसरा यह कि प्रकृति-पुरुषकी भिन्नताके ज्ञानसे मोत्त मिलता है। तीसरा यह कि प्रकृतिसे सब जड़ सृष्टि पैदा हुई। चौथा मत यह कि कुल तत्व चौंबीस हैं। पाँचवाँ मतयह कि सृष्टिमें जो अनेक प्रकारकी भिन्नता दिखाई देती है उसका कारण त्रिशुण हैं। इस प्रकार महाभारतके कालतक सांख्य मतका

विस्तार हुआ दिखाई देता है। प्रश्न यह है कि प्रत्येक शरीरकी आत्मा एक है अथवा भिन्न भिन्न ? इसका उत्तर सांख्य मतके अनुसार यही हो सकता था कि वास्तविक पुरुष जव एक है, तव श्रातमा भिन्न नहीं होना चाहिए। परन्तु महा-भारतके समय ऐसा निश्चय हुआ दिखाई नहीं देता । शान्ति पर्वके श्रध्याय ३५० में यह कहा गया है कि-सांख्य भीर योग-शास्त्रके मतानुसार श्रात्मा अनेक हैं, परन्त व्यासके मतमें पुरुष सब जगह एक भरा हुआ है। अर्थात् यहाँ यह रूपष्ट यताया गया है कि वेदान्तका मत सांख्य-से भिन्न था। सांख्य और योगके मतीमें प्रारम्भसे ही कुछ बातें समान थीं, उन्हीं में की एक यह भी है। इसके बाद सांख्योंके जो जो सिद्धान्त निकले उनका वेदान्तियोंने हमेशा खएडन ही किया है। महाभारतके पश्चात् सांख्योंको भार-तीय श्रायोंके श्रास्तिक तत्वज्ञानमें श्रान नहीं मिला। उनका मत निरीश्वरवादी था, इसी लिए यह स्त्राभाविक परिणाम हुआ। यह वात प्रसिद्ध है कि इस दोषको मिटानेके लिए श्रवीचीन समयमें सांख्य सूत्र बनाये गये श्रौर उनमें सांस्योंको ईश्वरवादी अर्थात् त्रास्तिक बनाया गया है। महाभारतके समय सांख्य मत श्रास्तिक मतोंमें गिना जाता था श्रौर उसकी वृद्धिका इतिहास उपर्युक्त प्रकार-का दिखाई देता है।

श्रागे चलनेके पूर्व यह देखना है कि सांख्य श्रीर संन्यासका कुछ सम्बन्ध है या नहीं? भगवद्गीतामें यह सम्बन्ध कुछ कुछ देख पड़ता है। 'यं संन्यास-भिति प्राहुयोंगं तं विद्धि पार्डव' इसमें सांख्य श्रीर संन्यासका भत बत-लावा गया है। परन्तु सांस्यका सर्थ चतुर्थाश्रम संन्यास नहीं होता। सांख्य तत्वज्ञानमें निष्क्रियत्व यानैष्कर्म्य श्रवश्य होना चाहिए, क्योंकि पुरुष श्रौर प्रकृतिका भेद जानने पर पुरुष निष्क्रिय ही होगा। परन्तु संन्यास-मार्गी लोग वेदान्ती रहते थे। सुलभा श्रौर जनकके संवादसे यह कल्पना होती है कि धर्मशास्त्रके श्रनुसार संन्यास लेनेवाले सांख्यवादी नहीं थे। धर्मध्वज जनक पंचशिखका चेला था। उसने संन्यास नहीं लिया था, वह राज्य करता था। उसने कहा है कि राज्य करते समय भी मेरा नैष्कर्म्य कायम है। उसके शब्द यह हैं:—

त्रिद्रखादिषु यद्यास्ति मोत्तो ज्ञानेन फस्यचित् । छत्रादिषु कथं न स्यात्तुल्य-हेतौ परिग्रहे ॥

(সাত স্থত ই২০—৪২)

परन्तु इसका खर्डन करते हुए सुलभाने कहा है कि संसारका त्याग किये बिना मोच नहीं मिल सकता और संन्यास लिये बिना मनकी व्ययताका बन्द होना सम्भव नहीं। वह स्वयं यति-धर्मसे चलती थी। इससे यदि यह मान लिया जाय कि भगवद्गीताके समयमें सांख्य वैदिकमार्गी संन्यासी थे, तो भी महाभारत कालमें सांख्य मत संन्यास अथवा वेदान्तसे भिन्न ही था। तात्पर्य यह कि आगे चलकर धीरे धीरे उनमें पूर्ण विरोध आ पहुँचा और बादरायणके वेदान्त स्त्रके समयमें वेदान्तियोंको सांख्योंका खरडन करना ही पड़ा।

(२) योग

श्रव हम योगका इतिहास देखेंगे। योग-तत्वज्ञान वहुत पुराना है। वह सांख्योंसे भी प्राचीन होगा। निदान, चित्तवृत्ति-निरोधका योग उपनिषद्के संमयसे है। इन्द्रियोंको श्रोर मनको

स्थिर करके शान्त बैठनेकी स्थितिका ग्रानन्द श्रार्य ऋषियोंको बहुत प्राचीन समयमें मालूम हुआ होगा । इस रोति-से ऋषियोंने संसारसे तप्त हुए मनको शान्त करनेका पता लगाते लगाते योग-की प्राणायामादि अनेक कियाएं दुँढ निकाली श्रीर उनका श्रनुभन्न किया। इनसे उन्हें मुख्यतः शान्ति, दीर्घायु और श्रारोग्यका लाभ हुआ होगा। यह भी उन्हें अनुभव हुआ कि योगसे ईश्वर-भजन अथवा चिन्तनमें भी लाभ होता है। इससे तत्वज्ञानमें योगकी श्रलग गिनती होने लगी। योग प्रारम्भमें न तो सांख्योंके सदश निरीश्वरवादी था. श्रीर न वेद-बाह्य था। अर्थात् प्राचीन कालसे सांख्य श्रीर योगका मेल भी था श्रीर विरोध भी था । महाभारतमें कहा गया है कि योग शास्त्रका कर्त्ता हिरएय-गर्भ है। अर्थात पहले किसी एक ही ऋषिने इस शास्त्रका प्रतिपादन नहीं किया है। लोगोंमें सांख्य श्रीर योग दोनों वेदविद्याके तुल्य ही माने जाते थे और भगवद्गीताके समयमें वे लोगोंमें प्रचलित भी थे और इसीसे वे भगवद्गीतामें समा-

* कठाविनयहमें कहा गया है कि— तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियथारणाम् । अप्रमत्तरतदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययो ॥

त्रर्थात् मनकी श्रीर इन्द्रियोंकी धारणाका यह योग उपनिषद्के कालसे प्रसिद्ध है। कठके कुछ शब्दोंसे चाहे कोई यह समम्क ले कि उपनिषद्कालसे सांख्य ज्ञान भी होगा, परन्तु हम यह नहीं कह सकते।

इन्द्रियेभ्यः परं मनः मनसः सत्वमुत्तमम् । सत्वादिष महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ॥ इसमें महान् और सत्व शब्द श्राये हैं, परन्तु यह स्पष्ट है कि वे सांख्य-मतके नहीं हैं। इसमें महान् श्रारमाके लिए है श्रीर सांख्योंका महत् पुरुष श्रथवा श्रारमाके भिन्न है। इसी प्रकार यह स्मरण रखना चाहिए कि यहाँ 'सत्व' श्रकेला श्राया है, गुणके श्रथमें नहीं। सारांश, यह सिद्धान्त स्थिर करना चाहिए कि दशोपनिषदोंमें सांख्योंकी उन्नेख नहीं है। विष्ट किये गये। लोकसतके अनुसार मांख्य और योगमें जो विरोध माना जाता था, वह वस्तुतः श्रीर तत्वतः विरोध नहीं है। इस बातको पहले गीता-हे प्रतिपादित किया है। यह जान नेना अत्यन्त आवश्यक हैं कि वह विरोध कीतना था ? गीताके "सांख्य योगी प्थावालाः प्रवद्नित न परिस्ताः ए वचनका उद्यार हमें सारे महाभारत-ने दिखाई देता है और हर जगह यह बतानेका प्रयत्न किया गया प्रतीत होता है कि वास्तविक विरोध यह नहीं है। समें गीताका ही भाव प्रकट होता है। हम पहले देखेंगे कि महाभारतके समय वोगका स्वरूप च्या था ? शान्तिपर्वके अध वें ब्रध्यायमें योगका विस्तृत वर्णन दिया है। "इन्द्रियाँ श्रोर पंचप्राण (रुद्र) योगके मुख्य साधन है। इनका दमन करके योगी दशों दिशाश्रोमें चाहे जहाँ जा सकता है। जड़ देहका नाश होने पर भी योगी अणिमादि अष्ट सिद्धियांसे युक्त एत्म देहसे सब प्रकारके सुखींका अनु-भव करता हुआ सारे जगत्में भूमता एता है। ज्ञानियोंने बेदमें कहा है कि योग अष्टगुणात्मक है । वैसे ही अप्ट-गुणात्मक सुचमयोग है। शास्त्रमें दिये हुए गतके अनुसार योग-कृत्य दो प्रकारके रताये हैं। प्रांगायाम-युक्त मनकी एका-रता एक मार्ग है; दूसरा मार्ग है भ्याता, षेय और ध्यानका भेद भूलकर इन्द्रिय-त्मनपूर्वक अनकी एकावता । पहला मनुग है दूसरा निर्शुण।" योगशास्त्रके ने नज्म पतंजितने बताये हैं, अधि-षंग्रमें वे ही लज्जण उपर्युक्त वर्णनमें भये हैं। परन्तु पतंजितियें समुण और निर्मुण एव्द नहीं हैं। इसमें यम, नियम मदि बाह साध्य तथा प्रात्मावासाहि धमाबितककी क्रियाका वर्णन है। यहाँ

यह भी सिद्धान्त आया है कि योगीको अष्ट-सिद्धिकी प्राप्ति होती है। योगीकी भिन्न भिन्न सिवित्रोंकी कल्पना जैसी महाभारत-कालमें पूर्णताको पहुँची थी: वैसी भगवद्गीतामें नहीं दिखाई देती। भगवद्गीतामें इतना ही वर्णन है कि योगी-को समाधिमें आनन्द मिलता है। शेष क्रियाएं भगवद्गीताके छुठे अध्यायमें मिलती हैं। भगवद्गीतामें योग स्थितिका मुख्य लच्चण यही बतलाया गया है कि मन अतिशय दुः ससे चञ्चल न होकर निर्वात प्रदेशके दीपके तुल्य स्थिर रहे। यह अध्याय बतलाता है कि महाभारत-कालमें योगमतको च्या स्थिति थी, श्रीर इसीसे वह महत्वका भी है। जो योग-सिद्धियाँ इसमें वताई गई हैं उनका वर्णन भगवद्गीतामें नहीं है, इससे यह नहीं माना जा सकता कि उस समय ये मानी ही नहीं जाती थीं। परन्तु हमारा अनु-मान यह है कि यह कल्पना पीछेसे बढ़ी होगी। सांख्य और योगका ध्येय एक ही है: परन्तु उनकी क्रियाएँ भिन्न हें। दोनों-का ध्येय मोच है: किन्तु सांख्यकी किया केवल ज्ञान है और योगकी क्रिया समाधि-की साधना है ! तथापि तत्वकानके विपयमें सांख्य और योग दोनोंका अधि-कांशमें मेल था। विशेषतः योग और सांख्यका इसमें मतेका था कि हर एक परुपका आत्मा भिन्न है और आत्मा श्रनेक हैं। ऊपर हम कह ही चुके हैं कि यह मत वेदान्तके मतसे भिन्न था।

शान्ति पर्वके भिन्न भिन्न ऋष्यायों से इति होता है कि महाभारतके समय योग शब्दका ऋषे ध्यानधारणात्मक योग था। जो योगशास्त्र आगे चलकर पत्वलिने वनाया, प्रायः वैसा हो योगशास्त्र सीति-के सामने था, यह बात दिस्ताई नहीं देनी। कुछ बातों में मेद विदित होता है चतुर्थाश्रम संन्यास नहीं होता। सांख्य तत्वज्ञानमें निष्क्रियत्व यानैष्कर्म्य श्रवश्य होना चाहिए; क्योंकि पुरुष श्रौर प्रकृतिका भेद जानने पर पुरुष निष्क्रिय ही होगा। परन्तु संन्यास-मार्गी लोग वेदान्ती रहते थे। सुलभा श्रौर जनकके संवादसे यह कल्पना होती है कि धर्मशास्त्रके श्रनुसार संन्यास लेनेवाले सांख्यवादी नहीं थे। धर्मध्वज जनक पंचशिखका चेला था। उसने संन्यास नहीं लिया था, वह राज्य करता था। उसने कहा है कि राज्य करते समय भी मेरा नैष्कर्म कायम है। उसके शब्द यह हैं:—

त्रिद्रण्डादिषु यद्यास्ति मोत्तो ज्ञानेन कस्यचित् । छत्रादिषु कथं न स्यात्तुल्य-हेतौ परिग्रहे ॥

(স্থাত স্থাত ই২০—৪২)

परनतु इसका खरडन करते हुए सुलभाने कहा है कि संसारका त्याग किये बिना मोच नहीं मिल सकता और संन्यास लिये बिना मनकी व्यथ्रताका बन्द होना सम्भव नहीं। वह खयं यति-धर्मसे चलती थी। इससे यदि यह मान लिया जाय कि भगवद्गीताके समयमें सांख्य वैदिकमार्गी संन्यासी थे, तो भी महाभारत-कालमें सांख्य मत संन्यास अथवा वेदान्तसे भिन्न ही था। तात्पर्य यह कि आगे चलकर धीरे धीरे उनमें पूर्ण विरोध आ पहुँचा और बादरायणके वेदान्त स्त्रके समयमें वेदान्तियोंको सांख्योंका खरडन करना ही पड़ा।

(२) योग

श्रव हम योगका इतिहास देखेंगे। योग-तत्वज्ञान बहुत पुराना है। वह सांख्योंसे भी प्राचीन होगा। निदान, चित्तवृत्ति-निरोधका योग उपनिषद्के समयसे है। इन्द्रियोंको श्रीर मनको

स्थिर करके शान्त बैठनेकी स्थितिका त्रानन्द आर्य ऋषियोंको बहुत प्राचीन समयमें मालूम हुआ होगा । इस रोति से ऋषियोंने संसारसे तप्त हुए मनको शान्त करनेका पता लगाते लगाते योग-की प्राणायामादि अनेक कियाएं दूँढ निकाली श्रौर उनका श्रनुभन्न किया। इनसे उन्हें मुख्यतः शान्ति, दीर्घायु श्रीर श्रारोग्यका लाभ हुआ होगा। यह भी उन्हें अनुभव हुआ कि योगसे ईश्वर-भजन अथवा चिन्तनमें भी लाभ होता है। इससे तत्वज्ञानमें योगकी अलग गिनती होने लगी। योग प्रारम्भमें न तो सांख्योंके सदश निरीश्वरवादी था, श्रीर न वेद-बाह्य था। अर्थात् प्राचीन कालसे सांख्य और योगका मेल भी था और विरोध भी था। महाभारतमें कहा गया है कि योग शास्त्रका कर्त्ता हिर्एय-गर्भ है। अर्थात् पहले किसी एक ही ऋषिने इस शास्त्रका प्रतिपादन नहीं किया है। लोगोंमें सांख्य श्रीर योग दोनों वेदविद्याके तुल्य ही माने जाते थे और भगवद्गीताके समयमें वे लोगोंमें प्रचलित भी थे श्रीर इसीसे वे भगवद्गीतामें समा-

* कठोपनिषद्में कहा गया है कि— तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् । अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययो ॥ अर्थात् मनकी श्रोर इन्द्रियोंकी धारणाका यह योग उपनिषद्के कालसे प्रसिद्ध है । कठके कुछ राव्दोंसे चाहे कोई यह समभ ले कि उपनिषद्कालसे सांख्य ज्ञान भी

होगा, परन्तु हम यह नहीं कह सकते।
इन्द्रियेभ्यः परं मनः मनसः सत्वमुत्तमम् ।
सत्वाद्धि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ॥

दसमें महान् और सत्व शब्द श्राये हैं, परन्तु यह
रपष्ट है कि वे सांख्य-मतके नहीं हैं। इसमें महान् श्रारमाके
लिए है श्रीर सांख्योंका महत् पुरुष श्रथवा श्रारमापे
भिन्न है। इसी प्रकार यह स्मरण रखना चाहिए कि यहाँ
'सत्व' श्रकेला श्राया है, गुराके श्रथमें नहीं। सारांश, यह
सिद्धान्त स्थिर करना चाहिए कि दशोपनिषदीं सांख्योंका
उन्नेख नहीं है।

विष्ट किये गये। लोकमतके अनुसार मांख्य श्रोर योगमें जो विरोध माना जाता था, वह वस्तुतः श्रौर तत्वतः विरोध नहीं है। इस बातको पहले गीता-हो प्रतिपादित किया है। यह जान नेता अत्यन्त आवश्यक है कि वह विरोध कीनसा था ? गीताके "सांख्य योगी प्रधावालाः प्रवद्नित न परिडताः" त्सं वचनका उचार हमें सारे महाभारत-में दिखाई देता है श्रीर हर जगह यह बतानेका प्रयत्न किया गया प्रतीत होता है कि वास्तविक विरोध यह नहीं है। इसमें गीताका ही भाव प्रकट होता है। हम पहले देखेंगे कि महाभारतके समय योगका स्वरूप च्या था ? शान्तिपर्वके ३१६ वें श्रध्यायमें योगका विस्तृत वर्णन दिया है। "इन्द्रियाँ श्रौर पंचपाए (रुद्र) योगके मुख्य साधन है। इनका दमन करके योगी दशों दिशाश्रोंमें चाहे जहाँ जा सकता है। जड़ देहका नाश होने पर भी योगी अणिमादि अप्ट सिद्धियोंसे युक्त पुरम देहसे सब प्रकारके सुखोंका अनु-भव करता हुआ सारे जगतमें घूमता रहता है। ज्ञानियोंने वेदमें कहा है कि योग श्रष्टगुणात्मक है। वैसे ही श्रष्ट-गुणात्मक सूचमयोग है। शास्त्रमें दिये हुए मतके अनुसार योग-कृत्य दो प्रकारके बताये हैं। प्राणायाम-युक्त मनकी एका-पता एक मार्ग है; दूसरा मार्ग है ध्याता, ष्येय श्रीर ध्यानका भेद भूलकर इन्द्रिय-रमनपूर्वक मनकी एकायता। पहला सगुणाहै दूसरा निर्गुण।" योगशास्त्रके जो लच्चण पतंजलिने बताये हैं, अधि-कांशमें वे ही लच्चण उपर्युक्त वर्णनमें श्राये हैं। परन्तु पतंजलिमं सगुण और निर्गुण शब्द नहीं हैं: उसमें यम, नियम आदि आठ साधन तथा प्राणायामादि समाधितककी कियाका वर्णन है। यहाँ

यह भी सिद्धान्त श्राया है कि योगीको श्रष्ट-सिद्धिकी प्राप्ति होती है। योगीकी भिन्न भिन्न सिद्धिश्रोंकी कल्पना जैसी महाभारत-कालमें पूर्णताको पहुँची थीं: वैसी भगवद्गीतामें नहीं दिखाई देती। भगवद्गीतामें इतना ही वर्णन है कि योगी-को समाधिमें श्रानन्द मिलता है। शेष कियाएं भगवद्गीताके छुठे श्रध्यायमें मिलती हैं। भगवद्गीतामें योग स्थितिका मुख्य लत्त्रण यही वतलाया गया है कि मन श्रतिशय दुःखसे चञ्चल न होकर निर्वात प्रदेशके दीपके तुल्य स्थिर रहे। यह श्रध्याय बतलाता है कि महाभारत-कालमें योगमतको च्या स्थिति थी, श्रीर इसीसे वह महत्वका भी है। जो योग-सिद्धियाँ इसमें वताई गई हैं उनका वर्णन भगवद्गीतामें नहीं है, इससे यह नहीं माना जा सकता कि उस समय ये मानी ही नहीं जाती थीं। परन्तु हमारा अनु-मान यह है कि यह कल्पना पीछेसे बढ़ी होगी। सांख्य और योगका ध्येय एक ही हैं: परन्तु उनकी क्रियाएँ भिन्न हैं। दोनों-का ध्येय मोच है: किन्तु सांख्यकी किया केवल ज्ञान है और योगकी किया समाधि-की साधना है ! तथापि तत्वकानके विषयमें सांख्य श्रीर योग दोनोंका श्रधि-कांशमें मेल था। विशेषतः योग और सांख्यका इसमें मतैका था कि हर एक पुरुषका श्रात्मा भिन्न है और श्रात्मा श्रनेक हैं। ऊपर हम कह ही चुके हैं कि यह मत वेदान्तके मतसे भिन्न था।

शान्ति पर्वके भिन्न भिन्न अध्यायांसे शात होता है कि महाभारतके समय योग शब्दका अर्थ ध्यानधारणात्मक योग था। जो योगशास्त्र आगे चलकर पतजलिने बनाया, प्रायः वैसा ही योगशास्त्र सौति-के सामने था, यह बात दिस्नाई नहीं देती; कुछ बातोंमें भेद विदित होता है ऊपर जो सगुण श्रीर निर्मुण योग शब्द श्राये हैं, उनके बदलेमें श्रागे हठयोग श्रीर राजयोग शब्द प्रचलित हुए दिखाई देते हैं। पतअलिमें न सगुण श्रीर न निर्गुण शब्द हैं और न हठयोग और राजयोग शब्द आये हैं। राजयोग शब्दका अर्थ राजविद्या या राजगुद्य शब्दके समान समभना चाहिए। अथवा यों कहिये कि योगानां राजा राजयोगः श्रर्थात् योगोंमें श्रेष्ठ योग, यह अर्थ करना चाहिए। इससे यह विदित होता है कि सगुण श्रौर निर्गुणके भेदके कारण योग भिन्न भिन्न प्रकारके थे। शारीरिक श्रीर मानसिक कियाके द्वारा परमेश्वरसे तादातम्य पाना, यही योग शब्दका अर्थ अभिष्रेत होगा। जिस योगमें शारीरिक कियाको ही प्रधा-नता दी जाती है वह सगुण योग है।

अपर हम कह आये हैं कि महाभारत-कालमें यह कल्पना प्रचलित थी कि योगसे श्रनेक प्रकारकी सिद्धियाँ मिलती हैं; श्रर्थात् अन्य सब मतवादियोंके मतके समान वह सारे जन-समृहमें प्रचलित थी। बौद्ध, जैन, संन्यासी आदि सब लोग मानते थे कि सिद्धोंको विलच्ण सामर्थ्य प्राप्त होती है, श्रीर कहा जा सकता है कि योगी भी यही मानते थे। परन्त हमारी रायमें यह कल्पना प्रथम योगमतसे ही निकली, तत्पश्चात् दूसरे मतमें घुसी । भगवद्गीतामें योगीकी सिद्धिकी कहीं सूचना नहीं है: अतएव यह कल्पना भगवद्गीताके बादकी श्रीर सौतिके महाभारतके कालके पूर्वकी होनी चाहिए। इस प्रकार हम देखते हैं कि योगकी कल्पना कैसे बढ़ती गई। महा-भारतमें यह बतलाया गया है कि सिद्धि-के ही पीछे लग जानेसे योगीको अन्तिम कैवल्य-प्राप्ति न होगी और गोरीश्वर्ध- भितिकान्तो यो निष्कामित सुरुयते (शां० प० अ० २३६-४०) के अनुसार यह माना गया है कि जो योगी नाना प्रकार की शक्तियोंको त्यागता हुआ आगे जाता है वह मुक्त होता है।

इस श्रध्याय (शां० प० श्र० २३६) में विस्तारपूर्वक वतलाया गया है कि योग कितने प्रकारका है, श्रोर पश्चभूतों पर जय प्राप्त करनेसे कैसी सिद्धियाँ मिलती हैं। पतञ्जलिके योगशास्त्रमें भी इनका कुछ निर्देश भिन्न रीतिसे किया गया है। इनमेंकी कुछ बातें वर्णन करने योग्य हैं। "जो स्त्रीके समागमसे मुक्त हुआ है वही योग करे। योगसाधन १२ हैं। देश, कर्म, श्रनुराग, श्रर्थ, उपाय, श्रपाय, निश्चय, चचु, श्राहार, मन श्रीर दर्शन ये योगके १२ उपकरण हैं।" ये पतञ्जलिसे कुछ भिन्न हैं। योगी कर्मकाएडका त्याग करता है, परन्तु वह कर्मत्यागका दोषी नहीं बनता (शब्द ब्रह्मातिवर्त्तते)। यहाँ उप-निषद्की नाई योगके विषयमें रथका एक सुन्दर रूपक बाँधा गया है। धर्मीपस्थे हीवरूथो उपायापायकुबरः।

त्र्यानाचः प्राण्युगः प्रज्ञायुर्जीववन्धनः॥
त्र्रथात् धर्म उपस्य है यानी रथीके
वैठनेकी जगह है; दुष्कर्मकी लजावक्थ्र
है यानी रथका श्राच्छादन है; उपाय श्रोर
श्रपाय दोनों कूबर श्रर्थात् डंडियाँ हैं;
श्रपान धुरा है; प्राण जूश्रा है; श्रोर बुद्धि,
श्रायु तथा जीव (जूपको) बाँधनेकी
रिस्सयाँ हैं—चेतना बन्धुरश्राक्श्रा
चारग्रहनेमिवान् । चेतना सार्थिक
वैठनेकी पिटया है; श्राचार पिहयेका
धेरा है; दर्शन, स्पर्श, घाण और श्रवण
थे चार घोड़े हैं। इस रथमें वैठकर जीवको चाहिए कि वह परमेश्वरकी श्रोर
होड़े। धारणा उसके रास्ते हैं।

सप्तया धारणाः कृतस्त्रा वाग्यताः प्रतिपद्यते। पृष्ठतः पार्श्वतश्चान्यास्तावत्यस्ताः प्रधारणाः॥

वृष्ठतः पार्ट्सिया प्राप्ता व्याप्ता व

क्रमशः पार्थिवं यञ्च वायव्यं खं तथा पयः। ज्योतिषो यत्तदैश्वर्यमहंकारस्य वुद्धितः। ब्रव्यक्तस्य तथेश्वर्यं क्रमशः प्रतिपद्यते॥

ृष्ट्यी, जल, तेज, वायु, आकार, अहं-कार तथा श्रव्यक्त ये सात श्रन्तर्धारणाएँ हैं। इनमें धारणा स्थिर करनेसे योगीको रनका सामर्थ्य प्राप्त होता है। "विक्रमा-आपि यस्यते" इसमेंका विक्रम शब्द पत्रअलिमें नहीं है। "निर्मुच्यमानः सुरुमत्वाद्रूपाणीमानि पश्यति" कहकर श्वेताश्वतरमें कहे हुए ''नीहार धूमार्कनलानिलानाम्" इत्यादि क्यों-का वर्णन दिया गया है; जैसे शिशिर मृतुकी श्रोसकी धारणा करनेसे श्रोस, उससे आगे जलकी धारणा करनेसे जल, अग्निकी धारणा करनेसे अग्नि, पीत शस्त्रकी धारणा करनेसे पीत शस्त्र, श्रीर श्राकाशकी धारणा करनेसे श्रशुक्र अथवा नीलवर्ण छिद्रक्षपी आकाश दिखाई देने लगता है। इससे यह विदित होता है कि योग-कल्पनाके भिन्न भिन्न अङ्ग किस तरह बढ़ते गये। भीष्मस्तवके "ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानाः" के श्रवु-सार यह समभा जाता था कि धारणामें योगियोंको ज्योति दिखाई देती है। उस ज्योतिमें दिखाई देनेवाले पदार्थीका अधिक सूचम वर्णन किया गया है और यह बताया गया है कि श्रन्तमें नील बिन्दु विसाई देता है। इसका उल्लेख पातजल-सूत्रमें नहीं मिलता। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि यह केवल कल्पना है।

जब योगीको सिद्धिकी प्राप्ति होती है तब उसमें सामर्थ्य त्राता है। "पृथ्वी-का ऐश्वर्य अर्थात् प्रभुत्व मिलने पर वह सृष्टि बना सकता है। वायुका सामर्थ्य श्राने पर वह केवल उँगलीसे पृथ्वीको हिला सकता है। श्राकाशकपी बननेसे वह श्रन्तर्धान पा सकता है। जलको जीत लेने पर अगस्त्यके समान कूप, तालाव श्रीर समुद्रको पी जा सकता है। श्रह-ङ्कारको जीत लेने पर पंचमहाभूत उसके श्रधीन होते हैं श्रोर वुद्धिका जय होने पर संशयरहित आन प्राप्त होता है।" ये सिद्धियाँ श्रिणियादि सिद्धियोंसे भी बढ़कर हैं। श्रनुशासन पर्वके चौदहवें अध्यायमें श्रिणमा, महिमा, प्राप्ति, सत्ता, तेज, श्रविनाशिता ये छः योगकी सिद्धियाँ वर्णित हैं। महाभारतमें योग-सामर्थका या तपः सामर्थ्यका जो वर्णन है वह कदा-चित् अत्युक्ति होगी; या वह वर्णन अधि-काधिक बढता गया होगाः तथापि इसमें सन्देह नहीं कि योगीमें कुछ विशेष सामर्थ्यके आनेकी कल्पना प्रारम्भसे ही है श्रौर इसीसे बौद्ध, जैन श्रादि मतोंने भी योगका अवलम्ब किया है।

महाभारतके ऋनुसार योग श्रीर सांख्य एक ही हैं इसी लिए उसमें कहा है कि योगमें सांख्यके ही पचीस तत्व हैं। पश्चित्रिशतितत्वानि तुल्यान्युभवतः समम्। (शां० २३६–२६)

परन्तु पातञ्जलि-सूत्रमें इसका उल्लेख नहीं है। यह सिद्धान्त होनेका कारण ऐसा जान पड़ता है, श्रीर पहले हमने इसका उल्लेख भी कर दिया है, कि सब तत्व-श्लानीं-का समन्वय करनेका प्रयक्त महाभारतमें किया गया है। यह ध्यानमें रखना चाहिए कि परमात्माको अलग माननेसे योगके छुब्बीस तत्व होते हैं। योगका निरूपण २४० वे अध्यायमें आया है। प्रथम काम, क्रोध, लोभ, भय और निद्रा ये योगके दोष वताये हैं श्रीर उन पर विजय प्राप्त करनेका मार्ग बताया है। (पतअलिने पाँच क्लेश बताये हैं और उन्हें हेय कहा है । ये दोष श्रविद्या, श्रसिता, राग, द्वेष और श्रभिनिवेश हैं।) निद्रा दोष योगके प्रारम्भसे माना गया होगा । भीष्मस्तवमें योगियोंका लच्चण विनिद्रः बताया गया है। हृद्य श्रीर वाणीका निरोध करनेके लिए उसमें यशादि कियाश्रोंका भी अनुष्ठान वताया गया है। उसमें कहा है—"दिव्य गन्धादि वस्तुश्रोंकी अथवा दिव्य खियोंकी प्राप्ति, श्रीर श्राकाशमें लुप्त हो वायुके वेगसे जानेकी या सब शास्त्रोंके आपसे आप ज्ञान होनेकी सिद्धियाँ योगीके मार्गमें वाधा डालती हैं। उनकी परवा न करके वुद्धिमें उनका लय करना चाहिए : यह बात बुद्धि-किएत है। नियमशील योगी प्रातःकालमें, पूर्व रात्रिमें श्रौर उत्तर रात्रि-में, तीन बार योगाभ्यास करे। गाली देनेवाले श्रीर श्रमिनन्दन करनेवाले दोनों पर वह समद्षि रखे और दृब्योपार्ज-नादि मार्गसे वह दूर रहे।" इसमें कहा है कि योगीको छः महीनेमें योग-सिद्धि होती थी। ये सब बातें पहलेकी अपेचा भी अधिक हैं।

इस अध्यायमें कहा है कि हीनवर्णके पुरुषोंको याधर्मकी अभिलाषा करनेवाली स्त्रियोंको भी इस मार्गसे सद्गति मिलता है। माल्म होता है कि ये लेख भगवद्गीता-से या उपनिषद्से लिये गये हैं। कर्म-मार्ग केवल आयों तथा पुरुषोंके लिए खुला था। अतएव नवीन मतके प्रत्येक प्रतिपादकने भगवद्गीताके समान व्यापक दृष्टिसे श्रपना नवीन मार्ग स्त्रियोवैश्या-स्तथा श्रद्रास्तेपि यांति परा गति। वैश्य, श्रद्र, स्त्रियों श्रादि सबके लिए खोल दिया है। इसी प्रकार कहा है कि योग-मार्ग भी सबको मोद्द देनेवाला है।

श्रिप वर्णावरुष्टस्तु नारी वा धर्मकां-चिर्णा । तावप्यनेन मार्गेण गच्छेताम् परमां गतिम् ॥ (शां० श्र० २४०, ३४)

"षणमासान्नित्ययुक्तस्य शब्द ब्रह्मातिवर्तते "

इस वाक्यमें शन्द-ब्रह्मका अर्थ टीका-कारने प्रण्य किया है। पतअलिसे भी जान पड़ता है कि इस योग-मार्गमें प्रण्यके जपका महत्त्व है। यद्यपि जप और योग-मार्गका नित्य सम्बन्ध न हो, तौभी योग-के ध्यानमें प्रण्यका जप एक अङ्ग है। महाभारतके शान्तिपर्ध (२०० वें अध्याय) में कहा है कि योगी और जप करनेवाले एक ही गतिको पहुँचते हैं।

तज्ज्योतिः स्त्यमानं स्म ब्रह्माणं प्राविशत् तदा ।

ततः खागमित्याह तत्तेजः प्रिपतामहः। श्रङ्गष्टमात्रपुरुषं प्रत्युद्गम्य विशापते॥

ब्रह्मदेवके मुखमें यह ज्योति प्रविष्ट हुई। यही गति जापकोंकी तथा योगियों-की है। टीकाकारका तर्क है कि ये पाठ्यबालमें ब्रह्माके साथ मुक्त होंगे। यह सीढ़ी वेदान्तकी दिष्टसे बनाई गई होगी। ऐसा ही तर्क श्रोर एक श्लोकके श्राधार पर टीकाकारने किया है। वह यहाँ देने योग्य है:—

इदं महर्षर्वचनं महात्मनो यथावदुकं मनसानुगृह्य । श्रवेद्य चेमां परमेष्ठि साम्यतां प्रयाति चाभूतगति मनीषिणः ॥ (शां० श्र० २४०)

इस श्लोकके 'श्रामृत-गति' पदसे

टीकाकारने उक्त अर्थ निकाला है। यह
स्पष्ट है कि इसका अर्थ कुछ गृद है।
हम पहले देख चुके हैं कि योगमतका
प्रथम उपदेशक ब्रह्मा था। इससे ब्रह्माके
साथ तादात्म्य या साम्य होनेके सिद्धान्तका निकलना सम्भव है। यह प्रकट है कि
योग और सांख्यके मतमें मोत्तके वदले
कैवल्य शब्दका उपयोग करते हैं। महाभारत-कालमें दिखाई पड़ता है कि कैवल्य
शब्द सांख्यमतमें भी लिया गया है।
सांख्यदर्शनमेतत्ते परिसंख्यानमुत्तमम्।
पवंहि परिसंख्याय सांख्यकेवलतां गतः॥
(शां० श्र० ३१५-१६)

ठीक यही वर्णन पाया जाता है कि
ब्रह्मगति ही सांख्यकी गति है। परन्तु
यह सांख्य श्रीर वेदान्तकी एकवाक्यता
करनेसे पाया जाता है। योगके वर्णनमें
केवल शब्द महाभारतमें भी श्राया है।
यदा स केवलीभूतः पड्डिशमगुपश्यति।
तदा स सर्वविद्विद्वान् न पुनर्जन्म विन्दते॥
(शां० प० ३१६)

इसमें जो केवली शब्दका उपयोग किया गया है, वह योगमतके २६ वें तत्वकी दृष्टिसे मोच पानेवालेके सम्बन्धमें लाया गया है।

पवं हि परिसंख्याय ततो ध्यायति केवलं। तस्थुषं पुरुषं नित्यमभेद्यमजरामरम्॥ (शां० श्र० ३१६—१७)

पतेन केवलं याति त्यक्त्वा देहमसाचिकम् कालेन महता राजन् श्रुतिरेषां सनातनी ॥ (शां० श्र० ३१६—२६)

इस श्लोकमें केवल यानी परम पुरुष या परमात्माके योगका भाव है। परन्तु सांख्यका भाव समक्तमें नहीं श्राता।

शान्तिपर्वके अनेक अध्यायों में सांख्य और योगको विस्तृत रूपसे बतलाया है। ३०७ वें अध्यायके अन्तमें कहा है कि पद्मीसवें पुरुषके आग्ने सांख्य कुछ भी

नहीं मानता। योगशास्त्रमें २५ तत्वांके परे २६ वाँ परमेश्वरको मानते हैं। इसके सिवा योगमें व्यक्तका भी एक लक्षण श्रिधिक वतलाया गया है: वह यहाँ देने योग्य है।

प्रोक्तं तद्व्यक्तमित्येव जायते वर्धते च यत् जीर्यते च्रियते चैव चतुर्भिर्लच्योर्युतम् ॥ विपरीतमतो यत्तु तद्व्यक्तमुदाहृदतम् ३०॥ (शां० श्र० २३३)

योगमें परमेश्वर वोधस्तरूप है, श्रीर वह श्रज्ञानका श्राश्रय लेकर जीवदशामें श्राता है। योगशास्त्रकी भाषामें दो पदार्थ होते हैं, बुद्ध श्रीर बुध्यमान या परमात्मा तथा जीवातमा।

बुद्धमप्रतिबुद्धत्वाद् बुध्यमानं च तत्वतः। बुध्यमानं च बुद्धं च प्राहुर्योगनिदर्शनम्॥ (शां० श्र० ३०६—४=)

पंचविशात्परं तत्वं प्रत्यते न नराधिप । सांख्यानां तु परं तत्वं यथावदनुवर्णितम् ॥

इस प्रकार सांख्य मत वताकर योग-का भेद बतलाया गया है। सांख्योंका श्रन्तिम पदार्थ पुरुष है। योगने जीव श्रीर जीवात्मा दो माने श्रीर यह भी माना कि वे बुद्ध ऋौर बुध्यमान हैं। जब बुध्यमान जीव कैवल्यको पहुँचता है तब वह बुद्ध होता है। ये बुध्यमान श्रीर बुद्ध शब्द पतअलिमें नहीं दिखाई देते। बुद्ध शब्द गौतमने योगशास्त्रसे ही लिया होगा। भगवद्गीताकी पद्गतिके अनुसार महाभारतमें योगकी भी परम्परा दी गई है। प्रथम यह योग हिरएयगर्भने वसिष्ठ-को सिखाया, वसिष्ठने नारदको श्रीर नारदने भीष्मको सिखाया। शां० ऋ० ३०८ में भगवद्गीताके समान कहा है कि यह ज्ञान श्रवंत तथा गुणहीनको नहीं देना चाहिए। मालूम होता है कि शां० श्र० २५४ के श्रन्तमें शांडिल्य भी योगका श्राचार्य माना गया है। ही कार्याला

शान्ति पर्वके ३०० वें ऋध्यायमें योगीके अन्नका वर्णन किया है। यह जुआरके क्णोंकी लप्सी या दलिया घी मिलाये बिना खाय। कुछ मास या सालतक यदि योगी पानी मिलाया हुआ दूध पीये तो उसे योगवलकी प्राप्ति होगी । सव विकारोंको जीतकर, स्त्रीसंगके अभावमें उत्पन्न होनेवाली तृष्णा, श्रालस्य श्रीर निद्राको लागकर "ध्यानाध्ययनस-म्पदां" (ध्यान श्रीर श्रध्ययन जिसकी सम्पत्ति है ऐसा) योगी आत्माको उदी-पित करता है। अर्थात उपर्यक्त अन्न मनोविकारों पर जय मिलनेके लिए ही बतलाया गया है। भगवद्गीताके "युक्ता-हारविहारस्य" वचनोंसे इसका कुछ विरोध है, तथापि वह योगीके तपकी आगेकी सोढी है।

योगग्रन्थोंमें (नाना शास्त्रोंमें) वताये हुए रास्तेसे जानेवाला ब्राह्मण इच्छा उसार ब्रह्मा, विष्णु, शंकर श्रादि देवोंके या पितर, उरग, यत्त, गन्धर्व, पुरुष या स्त्रियोंके रूपमें प्रवेश कर सकता है श्रीर उसके बाहर निकल सकता है श्रीर उसमें नारायणके समान संकल्पसे सृष्टि उत्पन्न करनेका सामर्थ्य श्राता है।

जान पड़ता है कि महाभारत कालमें योगके प्रन्थ थे। उनमेंसे सौतिने ज्ञान लेकर अपने महाभारतमें रख दिया है और सांख्य तथा वेदान्तके साथ योग-शासका समन्वय किया है। एक और उसने योगमें सांख्यके तत्व शामिल किये हैं और दूसरी और यह बतलाया है कि बांगियोंकी भी ध्येय वस्तु परब्रह्म ही है। सौतिने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि सांख्य और योग दोनोंके जानने-वाले वेदान्तीके उपदेशानुसार ब्रह्मगतिकों ही पहुँचते हैं। महाभारतके कालतक योगशासका इतिहास इस प्रकार दिसाई देता है। श्रब हम वेदान्तके इतिहासकी श्रोर भुकोंगे।

क्षित्र (३) वेदान्त । हिल्ला

उपनिषदीमें वेदान्तके तत्वज्ञानका प्रतिपादन विस्तृत रीतिसे किया है और यह स्पष्ट है कि उसके वैदिक होनेसे वह सारे सनातन जनसभाजको मान्य ही है। इस तत्वज्ञानके मुख्य मुख्य श्रंग उप-निषदींमें बतलाये गये हैं, इसीसे इसे वेदान्त नाम मिला है। यह नाम भगव-द्गीताके "वेदान्तकृत" वाक्यमें श्राया है। महाभारतमें वेदान्तका अर्थ उपनिषत् या श्रारएयक भी होता है। हमारी रायम वेदवाद शब्दसे कर्मवादका अर्थात संहिताके भागोंमें वर्णित यज्ञादि भागका बोध होता है, श्रीर वेदान्त शब्दका श्रर्थ उपनिषत्-तत्वज्ञान है। "जपविधि वेदान्त-विचारोंमेंसे है या योगमेंसे है या कर्म-काएडोंमेंसे हैं" इस वाक्यमें यह श्रर्थ स्पष्ट है। भीष्मके उत्तरमें वेदान्त शब्दका यही अर्थ है। भीष्मका उत्तर यह है कि वेदान्तमें जपके सम्बन्धका मुख्य विधान यह है कि 'त्याग करो' । जप कर्म है: वेदान्तकी दृष्टिमें वह त्याज्य है। सारे वेद-वचनोंका सार ब्रह्म है।" श्रीर विवेचनींमें भी वेदान्त शब्द इसी श्रर्थमें श्राया है। संन्यास एव वेदान्ते वर्त्तते जपनं प्रति। वेदवादाश्च निर्वृत्ताः शान्ताब्रह्मएयवस्थिताः॥

इसमें वेदवाद शब्द वेदवचनके अर्थमें आया है परन्तु वह मूलतः कर्मकाएडके सम्यन्धका ही है। भगवद्गीताके वेद-वादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वा-दिनः वाक्यमें वेदवादका अर्थ कर्म-वाद है। वेदमें अर्थात् संहिताओं में (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदमें) मुख्यतः कर्म-का ही प्रतिपादन है और कहीं कहीं ब्रह्मका भी है। परन्तु उपनिषद्में ब्रह्मका भी है। ब्रीट वैदिक कर्म भी ब्रह्मके लिए ही बत-लाया गया है। बृहदारएयके "विचि-दिवित यज्ञेन दानेन" श्रादि वचन ब्रह्मिद्ध हैं। यद्यपि वेदका श्रर्थ संहिता ब्रीट वेदान्तका उपनिषत् होता है, तथापि जान पड़ता है कि महाभारत-कालमें वेद-वादका श्रर्थ कर्मवाद श्रीर वेदान्तका श्रर्थ श्रीपनिषत् तत्वज्ञान निश्चित हो गया था। इस तत्वज्ञानका श्राचार्य श्रपान्तर-

तमा या प्राचीनगर्भ है, जैसा

प्रपान्तरतमाश्चैव वेदाचार्यः स उच्यते।
प्राचीनगर्भ तसृषि प्रवदन्तीह केचन ॥
इस वाक्यमें कहा है, जिसका उन्नेख
पहले हो चुका है (शां० श्र० ३४६)।
तत्वज्ञानके विषयमें इस ऋषिका उन्नेख
है इसलिए यहाँ वेद शब्दका श्रथं वेदानत
ही है। श्रीर,

सांख्य योगः पांचरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा। शानान्येतानि राजर्षे विद्धि नानामतानि वै॥ यह श्लोक उपर्युक्त श्लोकके बाद ही है। इसमें भी वेद शब्द वेदान्तवाचक है। तथापि आगोकी बात ध्यानमें रखनेसे शङ्का उपस्थित होती है। श्रपान्तरतमाकी कथा इसी ऋध्यायमें है। वह यह है:-"नारायणने भोः कहकर पुकारा। उसे सुनकर सरस्वतीसे पैदा हुआ अपान्तर नामका पुत्र सम्मुख आ खड़ा हुआ। नारायणने उसे वेदकी व्याख्या करनेको कहा। श्राज्ञाके श्रनुसार उसने स्वायंभुव मन्वन्तरमें वेदों के भाग किये। तब भग-वान् हरिने उसे वर प्रदान किया कि वैषखत मन्वन्तरमें भी वेदका प्रवर्तक तृही होगा। तेरे वंशमें कौरव पैदा होंगे, उनकी आपसमें फूट होगी और वे संहारके लिए उद्युक्त होंगे, तब तू अपने तपोबल-से वेदोंके विभाग करेगा। वशिष्ठके कुल-में पराशर ऋषिसे तेरा जन्म होगा।"

इससे यह भी दिखाई देता है कि मुख्यतः इस ऋषिने वेदों के खगड किये। तथापि यह मानने में कुछ हर्ज नहीं कि इस ऋपा-न्तरतमाने दोनों वातें कीं। और यह मानना चाहिए कि वेदान्तशास्त्रका ऋष-प्रवर्तक ऋषि यही है; फिर वह उप-निषदों का कर्त्ता या बक्ता माना जाय अथवा वेदान्तशास्त्र पर इसका पहले कोई सूत्र रहा हो। कदाचित् भगवद्गीता-में बताया हुआ ब्रह्मसूत्र इसीका होगा।

वेदान्तका मुख्य रहस्य ऊपर आ चुका है। वेदवादमें प्रधान माने गये कर्म-काएडको पीछे छोड़ तथा इन्द्रादि देव-तात्रों श्रोर खर्गको तुच्छ समभकर परा-विद्या अर्थात ब्रह्मज्ञान विद्या उपनिषदींमें श्रागे बढ़ी। उससे सारा जगत् पैदा होता है, उसीमें रहता है श्रीर उसीमें वह लीन हो जाता है। श्रर्थात् सब जगत् वहीं है। 'भवें खिलवं ब्रह्म" यह उपनिषद्वाक्य इसी सिद्धान्तका प्रसिद्ध प्रतिपादक है। हमें यह देखना है कि इस सिद्धान्तका प्रवाह उपनिषद्से गुरू होकर भारती कालतक कैसा बहुता गया। पहले उसका प्रवाह भगवद्गीतामें बहता हुआ दिखाई देता है। उपनिषत्-तत्वज्ञान भगवद्गीताको मान्य है श्रीर उसमें इसीके सिद्धान्तका प्रतिपादन विशेष रीतिसे किया गया है। तथापि कुछ बातोंमें भग-वद्गीता उपनिषदोंसे बढ़ गई है। ये बातें कौतसी हैं उन पर विचार करना है।

वेदान्तमें ब्रह्म, श्रध्यातम, श्रधिदेख, तथा श्रिधिमृत शब्द श्राते हैं। गीतामें इनकी व्याख्या दी गई है। वह बहुधा उपनिषद्के विवेचनके श्रनुसार है। परन्तु कुछ बातें ऐसी हैं जो उपनिषद्में नहीं हैं श्रीर कुछ ऐसी हैं जो श्रागे बढ़ गई हैं। गीताके = वें श्रध्यायमें यह विषय हैं जिसका हम सूक्ष्म विचार करेंगे।

पहले ब्रह्मकी व्याख्या श्रद्धर की है जो उपनिषद्की ही है। "एतस्यैवा च्रस्य प्रशासने गागि सूर्याचन्द्रमसौ तिष्ठतः श्रादि बृहदारएयकमें जो याझवल्काको उक्ति है सो हमारे सन्मुख उपस्थित होती है। केवल ''स्वभावी-ध्यात्ममुच्यते" का उद्गम दशोपनि-षर्में नहीं दिखाई देता तथा "भूत-भावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः" का भी सम्बन्ध नहीं दिखाई देता। कदा-चित् छान्दोग्यमें बताये हुए "पंचम्या-माहुता वापः पुरुषवचस्रो भवन्ति श्रादि प्रकरणोंसे कर्मकी व्याख्या की गई होगी। "अधिभूतं चरो भावः" ठीक है। परन्तु पुरुषश्चाधिदैवतम्" का भी उद्गम वेदान्तमें अर्थात् उपनिषदों-में नहीं दिखाई देता । श्रध्यातम तथा अधिदेवत शब्द उपनिषदोंमें वारम्बार आते हैं। पहला शब्द इन्द्रियों के सम्बन्धमें श्रौर दूसरा आदित्यादि देवताश्रोंके सम्बन्धमें आता है। ये व्याख्यायें सुत्रमय हैं श्रीर यह मानना चाहिए कि वे पहले गीतामें ही दी गई हैं क्योंकि भगवद्गीता ही उपनिषदोंके अनन्तरकी है। हम प्रहले ही कह चुके हैं कि सम्भावना है कि बीचमें एकाध सूत्र बना हो । परन्तु वह उपलब्ध नहीं है। अभियज्ञ शब्द उपनिषदों में नहीं है परन्तु यह उपनिषन्मान्य बात है कि देहमें जो परमेश्वर है वही श्रभियज्ञ है। इसके श्रनन्तर यह उपनि-पद्-सिद्धान्त यहाँ बतलाया गया है कि अन्तकालके समय मेरा ही स्मरण करके जो परब्रह्मका ध्यान करेगा वही परमगति-को पहुँचेगा। उपनिषद्ने—"यथा ऋतु-

रस्मिन् लोके अवति तथेतः प्रेत्य भवति" प्रतिपादित किया है। अर्थात् उपनिषदोंका मत है कि अन्तमें परमेश्वर-का स्मरण होनेसे ही परमेश्वरकी गति मिलती है। इसलिए "असकृदावृत्ति" करके ' अहं ब्रह्मास्मि" का भाव चित्त पर पका जमाना चाहिए; क्योंकि उपनि-षदोंका मत है कि अन्तकालमें उसीका स्मरण हो। वही सिद्धान्त इस श्रध्यायमें वतलाया गया है। "यं यं वापि स्मरनः भावं त्यजन्त्यन्ते कलेवरं शादि वचनोंसे यही बतलाया गया है। परनत भगवद्गीताने इस पर थोड़ी सी अपनी छाप रखी है। "कविं पुराएं, ऋणो-रणीयांसं, सर्वेध्य धातारं, अन्तरं" प्राप्त कर लेनेका मार्ग यह है कि उपनि-पद्के अनुसार अन्तकालके समय मनुष्य श्रोंकार शब्दकपी ब्रह्मका ध्यान करे। प्रायेणान्तमों कारमिष्ध्यायीतक-तमं वा वसतेन लोकं जयति-प्रश्नोपनिषत्) यह बताते हुए, 'ऑ इत्येकाच्तरं ब्रह्म व्याहरन् कहकर 'मामनुस्मरन्' भी कहा है। उपनिषद् श्रीर योगका मेल 'श्रास्थितो योग-धारणाम् । शब्दोंसे करके भगवानने श्रपने स्मरणका भी रहस्य बता दिया है। यह भी उपनिषदोंका मत है कि सब लोक पुनरावित हैं; परन्तु ब्रह्मका ध्यान करते करते देहको छोड़नेवाला ब्रह्मझानी ब्रह्म-गतिको जाने पर पुनः लौटकर नहीं श्राता। यह बात यहाँ विस्तारपूर्वक बताई गई है। भगवानने कहा है कि-'यं प्राप्य न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं सम्भ अञ्चल सत्तर ही मेरा धाम है।

पर्णकालके सम्बन्धमें भी ''अविनज्यों-तिरहः शुक्तः षरमासा उत्तराय-तम्" ब्राद् उपनिषदोंका मत यहाँ वत-नाया गया है। उत्तरायणमें देहको छोडने-बाला प्राणिमात्र ऐसी परमगतिको जायगा जहाँसे पुनरावर्त्तन नहीं है। यह मत गीताने स्वीकृत किया है; परन्तु उस पर श्रपनी मुहर-छाप लगा दी है। गीता-नं कहा है कि योगी यदि देवयान तथा वित्यानके भिन्न भिन्न मार्गोंको जानता हो, तो मोहमें नहीं फँसता। अर्थात् यह ब्रर्थ सम्भव है कि योगी उस गतिकी परवा नहीं करता। अथवा यह अर्थ भी सम्भव है कि इस ज्ञानके वल पर योगी दित्रणायनमें देह छोड़नेके मोहमें नहीं फँसता । इस अध्यायमें उपनिषद्के मत-के अनुसार ही वेदान्तकी रचना कर गीताने उस सिद्धान्तको थोडा वढाकर भगवद्गक्तिमें मिला लिया है।

चेत्रचेत्रज्ञ ज्ञान भी उपनिषद्का एक प्रतिपाद्य विषय है। परन्तु उपनिषद्में उसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। यह विषय भगवद्गीताके १३ वें ऋध्यायमें है और वहाँ स्पष्ट बतलाया गया है कि यह विषय उपनिषदों श्रौर वेदोंका है। ऐसा जान पड़ता है कि भगवद्गीताने श्रपनी चेत्रकी याख्यामें उपनिषद्के श्रागे कदम रखाहै: बिल्क यह माननेमें कोई हानि नहीं कि उस ज्ञानकी परिपूर्णता की है। इच्छा-वषः सुखं दुखं संघातः चेतना धृति: इतने विषय उसने चेत्रमें श्रीर बढ़ा दिये हैं। इसी प्रकार ज्ञान यानी शानका साधन जो यहाँ बताया गया है वह उपनिषद्में किसी एक स्थानमें नहीं है। "श्रमानित्वमदंभित्वं" श्रादि श्रोकसे "ऋध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तित्वज्ञानार्थद्शनम् अहोकतक भग-

वहीतामें उसकी जो व्याख्या की गई है श्रीर जो 'एतत्ज्ञानमितिप्रोक्तं' कहकर पूरी की गई है वह बहुत ही सुन्दर है। उससे भगवद्गीताकी विशिष्ट कार्य-चमता प्रकट होता है। यहाँ उपनिषदका भावार्थ भगवद्गीताने इतनी सुन्दरं रीति-से प्रथित किया है कि हर एक मुम्जूको चाहिए कि वह इसका श्रध्ययन करे। इसमें भी भगवानने "मिय चानन्य योगेन भक्तिरव्यभिचारिणी" भग-वद्गक्तिका वीज वो दिया है। इसके श्रागे जो ज्ञेयका वर्णन है वह उपनिषद्में दिये हुए ब्रह्मके वर्णनके समान ही है। जगह जगह पर (सर्वतः पाणिपादं तत् श्रादि स्थानोंमें) उपनिषद्के वाक्योंका स्मरण होगा। इसमें 'निर्मणं गुण भोक्त चः श्रंधिक रखा गया है। हम पहले ही दिखा चुके हैं कि उपनिषदोंमें गुणांकी विलकुल कल्पना नहीं है। सांख्यमतकी मुख्य वातोंमेंसे त्रिगुण भी एक है। भग-वानने उसे यहाँ मान्य कर वेदान्तके ज्ञान-में उसे शामिल किया है। वेदान्तमें निर्गुण परिभाषा भगवद्गीतासे शुरू हुई। यह तत्व, कि ब्रह्म ज्ञेय तथा निर्गुण है और वह जगत्सृष्टिके गुणोंका भी भोक है, उदात्त है श्रीर उपनिषत्तत्वोंमें उसका योग्य समावेश हुत्रा है। इसलिए इस श्रध्यायमें ब्रेयकी व्याख्या करते समय भगवानने सांख्यज्ञानके ग्राह्य भागकी श्रोर दृष्टि की है। गीतामें जो प्रकृति पुरुषकी व्याख्या दी है सो स्वतन्त्र रूपसे गीताकी है, सांख्यकी नहीं। यद्यपि ऐसा है तौभी पुरुषके हृदयमें निवास करनेवाला श्रात्मा श्रीर परमेश्वर या परमात्मा एक है श्रीर उसके सम्बन्धमें सांख्यमत भूलसे भरा श्रीर श्रश्राहा है, यह दिसलानेके लिए कहा है कि:-

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोका महेश्वरः।
परमात्मेतिचाप्युक्तो देहेस्मिन् पुरुषः परः॥
उपनिषदोंके अनुसार ज्ञेयका, जो
परमेश्वर, परब्रह्म, परमात्मा आदि शब्दोंसे ज्ञात हो सकता है, वर्णन कर और
उसमें गुणोंका समावेश कर इस अध्यायमें फिर क्तेत्रक्तेत्रज्ञके मुख्य विषयकी और
भगवान भुके हैं और उन्होंने यहाँ उपनिपदोंका परम मत बतलाया है कि सब
जगह ईश्वर एक सा भरा हुआ हैं:—
यदा भूतपृथग्मावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा॥

यह कहकर, उपनिषन्मतके अनुसार उन्होंने यह भी बतलाया है कि यह देही त्रेत्रज्ञ परमात्मा सर्वत्रावस्थित होकर अनुलिप है और सूर्यके समान चेत्रको प्रकाशित करता है।

सांख्यके त्रिगुणोंके तत्वको मान्य करके उसे वेदान्तके विज्ञानमें ले लिया, इससे उनके विस्तारपूर्वक विचार करनेकी **त्रावश्यकता हुई, श्रोर इसी कारण भग**-वङ्गीतामें इसके आगेके अध्यायमें प्रथम थोड़ेमें ही सांख्योंका महत् ब्रह्ममें मिला-कर आगे त्रिगुणोंका बड़ा ही मार्मिक विस्तार किया है। हमारी रायमें ऐसा विस्तार सांख्यमतमें भी नहीं मिलेगा। यह विस्तार प्रथम भगवद्गीताने ही किया है। जब मुमुचु इन गुर्णोंके परे होकर यह जानेगा कि गुण ही कर्त्ता है और मैं इनसे श्रलग हूँ, तब वह "जन्मसृत्युजरा-व्याधिविमुक्तोऽमृतमश्नुते" स्थिति-में पहुँचेगा । त्रिगुणोंके सिद्धान्तका वेदान्तके साथ मेल पहले गीताने ही मिलाया है। परमेश्वर अथवा परमात्मा निर्गुण है। गीताने प्रतिपादन किया है कि जब जीवात्मा भी त्रिगुणातीत हो जायगा तब वह परमात्मासे तादातम्य ब्राप्त करेगा। बहाँ त्रिगुणातीतकी व्याख्या

दी है, श्रोर वह मुनिके उपनिषदुक व्याख्याके श्रनुसार है। श्रन्तमें यह कहा है कि—

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते। स गुणान्समतीत्यैतान ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

इसका हम आगे कुछ श्रधिक विचार करेंगे।

पन्द्रहवें श्रध्यायमें भी उपनिषद्वाका से ही प्रारम्भ करके उपनिषद्में वतलाया हुआ संसारका पीपलके वृत्तका रूपक पहले रखा है, और "अधरचोध्व प्रसृतास्तस्य शाखाः' शोकसे उसका विस्तार भी किया है। यह कहा है कि सब भूतोंमें में ही व्याप्त हूँ तथा जीवकी भिन्न भिन्न चेतन किया भी में ही हैं। चरा-चर विभाग भगवानने फिर बतलाया है। इस श्रध्यायमें भगवानने इसके श्रीर श्रागे चलकर कहा है कि में श्रचरके भी परे हूं उससे में उत्तम हूँ, इससे में प्रत्योत्तम हूँ। श्रर्थात् विषय उपनिषदोंके कुछ आगे वढ़ गया है, परन्तु मूलभूत विषय उप निषद्का है श्रोर उसीका श्रागे विस्तार किया है।

यहाँतक हमने यह देखा कि गीतामें उपनिषद्के तत्वोंका कैसा श्रवलम्ब किया है श्रीर उनका विस्तार कैसे किया है। इससे माल्म हो जायगा कि उपनिषदों के तुल्य भगवद्गीताका श्रादर क्यों है। उपनिषद्में दिये हुए सिद्धान्तका गीताने जो विस्तार किया उसमें मुख्यतः निर्गुण परव्हाका श्रीर श्रीकृष्णकी भक्तिका एक जगह मेल करके सगुण ब्रह्मकी कल्पना भगवद्गीताने पहले स्थापित की। भगवद्गीतामें यह स्पष्ट प्रश्न किया है कि किसका ध्यान-निर्गुण ब्रह्मका या श्रव्यक का स्थापन कि भी कृष्णका सगुण ध्यान फलें गया है कि भीकृष्णका सगुण ध्यान फलें गया है कि भीकृष्णका सगुण ध्यान फलें

हायक है या भगवान्का। गीताके वार-हुई अध्यायमें यह कहा है कि अञ्यक्तकी उपासना अधिक क्लेशदायक है। इसमें श्रीकृष्णने जो सगुण उपासनाका वीज बतलाया है वह श्रागे कैसे वढ़ा, इसका विस्तारपूर्वक विचार हमें पांचरात्र मतमं करना है। परन्तु यहाँ यह वत-ताना श्रावश्यक है कि श्रीकृष्णने यहाँ कल विशिष्ट मत प्रस्थापित नहीं किया। उपनिषदींमें भी ब्रह्मके ध्यानके लिए श्रोंकार या सूर्य या गायत्री मनत्र श्रादि प्रतीक लेनेका नियम बतलाया है: उसीके समान या उससे कुछ श्रधिक यानी भिन्न भिन्न विभृतियाँ, विभृति अध्यायमें, वत-लाई गई हैं। उनमें यह कहा है कि **वृष्णीनाम् वास्त्रदेवोऽस्मि** एकविभूति है और इद्राणां शंकरश्चास्मि द्सरी विभूति है। अर्थात् यह मानना पड़ेगा कि भगवद्गीतामें 'में' शब्दसे सगुण ब्रह्म-की एक कल्पना की है। इसीसे भग-वहीता भी सर्व सामान्य उपासकोंके लिए समान पूजनीय हुई है।

क्षेत्रवेत्रज्ञज्ञान, त्रिगुणींका सिद्धान्त, सगुण ब्रह्मकी कल्पना और तदनुक्ष्य भक्तियोगका चौथा (सांख्य, योग और वेदान्तके अतिरिक्त) मोत्तमार्ग उपनिष्दोंकी अपेद्धा भगवद्गीतामें तो विशेष हैं ही, परन्तु उपनिषदोंकी अपेद्धा उसमें कर्मयोगके सिद्धान्तकी भी विशेषता है। ऐसा नहीं है कि यह मार्ग उपनिषदों में नहों। यह सच है कि उपनिषदों में नहों। यह सच है कि उपनिषदों का और संन्यास पर है; तथापि हम समक्षते हैं कि उसमें भी निष्काम कर्मप्रच है, और इसी लिए भगवद्गीताने उपनिषद्के मथमतः मुख्य दिखाई देनेवाले मार्गका विरोध किया है। ''पुत्रेषणायाश्च क्षेत्रेषणायाश्च क्षेत्रेष्ण क्षेत्रेषणायाश्च क्षेत्रेषणायाश्च क्षेत्रेषणायाश्च क्षेत्रेषणायाश्च क्षेत्रेषणायाश्च क्षेत्रेषणायाश्च क्षेत्रेषणायाश्च क्षेत्रेषणाया क्षेत्रेषणाया क्षेत्रेष्ण क्या क्षेत्रेषणाया क्षेत्रेषणाया क्षेत्रेष्ण क्षेत्रेष्ण क्षेत्रेषणाया क्षेत्रेष्ण क्षेत्रेष्ण क्षेत्रेषणाया क्षेत्रेष्ण क्षेत्रेष्

चर्य चरान्ति । पद्म यद्यपि विशेष कहा गया है, तथापि "कु वेन्नेवेह कमीणि जिजीविषेच्छतं समाः तेन त्यक्तेन मुञ्जीथा: अधि पत्त उपनिषदमें हैं। हमारी राय है कि भगवद्गीतामें इसी मार्गके अधिष्ठानको कर्मयोग द्वारा मज-वृत करनेके लिए मुख्यतः कहा गया है। यह कहते कहते इस अलौकिक तत्वज्ञान-के प्रनथमें सांख्य, योग श्रौर वेदान्तका भी समावेश किया गया है। इसमें पहले-पहल उपदेशित भक्तिमार्गका और अन्य विषयोंका भी समावेश है, परन्त वे मुख्य वर्ण्य विषय नहीं हैं। इस कर्मयोगके सम्बन्धमें यहाँ श्रधिक न लिखकर श्रागे भगवद्गीता-प्रकरणमें विस्तारपूर्वक लिखेंगे । लोकमान्य तिलकने उसका सम्पूर्ण विचार किया ही है। यद्यपि हमें उनके सभी मत मान्य नहीं हैं, तथापि यहाँ इतना कहना श्रलं होगा कि उनका यह मत सर्वधैव मान्य है कि भगवद्गीता-का मुख्य विषय कर्मयोग ही है। वही श्रीक्रणाका मुख्य उपदेश है श्रीर उसी-की परम्परा

इमं विवस्तते योगं प्रोक्तवानहमन्ययम्। विनस्तानमनवे प्राह मनुरिक्वाकवेऽब्रवीत्॥ श्रादि श्लोकोंमें बताई गई है। यह पर-म्परा उसी विषयकी है।

श्रव यह देखना श्रावश्यक है कि भीष्मस्तवमें वेदान्तकी स्तुति कौनसे शब्दोंमें
की है। जैसे भीष्मस्तवसे योग श्रौर सांख्यकी प्राचीन कल्पना हमारे सन्मुख उपस्थित होती है, वैसे ही उससे वेदान्त
तत्वकी प्राचीन कल्पना भी हमारे सन्मुख
निस्सन्देह उपस्थित हो जायगी। भीष्मस्तवमें वेदान्त या उपनिषत् शब्द नहीं
है। परन्तु मालूम होता है कि योगस्कर्णके पश्चात्के ही श्लोकमें वेदान्तक

तत्वश्रानका उल्लेख होगा। "पुराय तथा अपुराय दोनोंकी ही निवृत्ति होने पर जिन शान्तियुक्त संन्यासियोंका पुनर्जन्म-का भय नष्ट हो गया है, वे जिस स्थानमें प्रविष्ट होते हैं, उस मोज्ञस्वरूपी पर-मात्माको नमस्कार है।"

श्रपुरायपुरायोपरमें यं पुनर्भवनिर्भयाः। शान्ताः संन्यासिनो यान्ति तस्मै मोद्यात्मने नमः॥

इस वाकामें उपनिषनमतका ही उल्लेख है। यह उपनिषद्का तत्व हैं कि पाप श्रीर पुरायके नष्ट हुए बिना मोचा नहीं मिलता। वह भवद्गीतामें भी आया है: परन्तु मुख्य रूपसे नहीं। इस वाक्यमें मुख्य बातें तीन हैं। पुराय और अपुरायकी निवृत्ति, शान्ति श्रौर संन्यास। मालूम होता है कि यही वेदान्तका मुख्य आधार है। इससे संन्यास-मतका कुछ प्रभाव भगवद्गीतामेंसे भीष्मस्तवमें श्राया हुश्रा दिखाई देता है। इसके पहलेका भी एक श्लोक वेदान्त मतका दिखाई देता है। "श्रज्ञानरूपी घोर श्रन्धकारके उस पार रहनेवाले जगद्व्यापक जिस परमेश्वर-का ज्ञान होने पर मोच मिलता है, उस श्रेय-खरूपी परमेश्वरको नमस्कार है"। स्पष्ट है कि यही ज्ञेय ब्रह्म है। इसके सिवा ब्रह्मका तथा परब्रह्मका भी उल्लेख पूर्वके स्तुति-विषयक क्लोकोंमें वेदान्त-मतके अनुसार ही श्राया है। यह कंत्पना नई है कि उससे सारे जगत्का विस्तार होता है, इसीसे उसे ब्रह्म कहते हैं। पुराणे पुरुषं प्रोक्तं ब्रह्मप्रोक्तं युगादिषु। वये संकर्षणं त्रोक्तं तमुपास्यमुपास्पहे ॥

यह कल्पना उपनिषद्में नहीं है श्रौर इसमें कहा है कि पुरुष संज्ञा पूर्व कल्पोंके सम्बन्धकी है। इससे हम कह सकते हैं कि भीष्मस्तवराजमें भगवहीता- की श्रपेचा संन्यासपच पर कुछ श्रधिक जोर दिया हुश्रा दिखाई देता है। श्रव हम महाभारत-कालकी श्रोर भुकनेके पूर्व सनत्सुजातका, जो पुराना श्राख्यान है, विचार करेंगे।

इसमें वेदान्त तत्व प्रतिपादित है। यह सिद्धान्त, कि ज्ञानसे ही मोच मिलता है, उपनिषद्का ही है। यह भी सिद्धान वहींका है कि जीवात्मा श्रीर परमात्मा श्रभिन्न हैं। प्रमादके कारण मृत्यु होती है, यानी अपने परमात्म स्वरूपको भूलने से श्रात्माकी मृत्यु होती है; यह एक नवीन तत्व है। परमात्मा भिन्न भिन्न श्रात्माका क्यों निर्माण करता है ? श्रीर सृष्टि उत्पन्न करके दुःख क्यों भोगता है? इन प्रश्लोका यह उत्तर दिया गया है कि परमेश्वर श्रपनी मायासे जगत्का निर्माण करता है। इस मायाका उद्गम वेदमें ही है, जो "इन्ह्रो सायाभिः पुरुह्त हुं यते "इस वचनमें है। तथापि, उप-निषद्में उसका विशेष विस्तार नहीं है। भगवद्गीतामें यह कहा है कि माया पर-मेश्वरकी एक शक्ति है। संभवाभ्या-त्मभाषया" वाक्यका ही उत्लेख इस श्राख्यानमें है। कर्मके तीन प्रकार कहे हैं। श्रात्मनिष्ठ साचात्कारीको शुभाशुभ कर्मोंसे बाधा नहीं होती। निष्काम कर्म करनेवालेका पाप शुभ कर्मसे नष्ट होता है और काम्य कर्म करनेवालेको ग्रुभागुभ कमौंके शुभाशुभ फल भोगने पड़ते हैं। मौन यानी परमात्माकी एक कहपना विशेष्य है। पर वह उपनिषदींसे ही निकली है। उपनिषद्में "घतो वाची निवर्त्तन्ते" कहा है। "मौन संझा पर मात्माकी है; क्योंकि वेद भी मनसे वहाँ प्रवेश नहीं कर सकते।" ब्रह्मके चितनके लिए जो मौन धारण करता है उसे मुनि

कहते हैं श्रीर जिसे ब्रह्मका साजात्कार हो जाता है वही श्रेष्ठ मुनि श्रोर वही ब्राह्मण है। गुरुगृहमें रहकर ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए श्रीर गुरुके श्रन्तःकरण्में वुसकर ब्रह्मविद्या प्राप्त करनी चाहिए। विद्या चतुष्पदी है; उसका एक पाद गुरुसे मिलता है, दूसरा पाद शिष्य अपनी वृद्धिके बलसे प्राप्त करता है, तीसरा पाद बुद्धिके परिपक होने पर कालगतिसे मिलता है श्रीर चीथा पाद सहाध्यायीके साथ तत्वविचारींकी चर्चा करनेसे मिलता है। यह बात महत्वकी है और इसका विचार हमें श्रागे करना है। ब्रह्म-का जो वर्णन सनत्सुजातके श्रन्तमें विस्तारपूर्वक दिया है वह उपनिषद्के ब्रमुसार ही है। परन्तु यह कल्पना यहाँ नवीन दिखाई देती है कि ब्रह्मसे हिरएय-गर्भकी उत्पत्ति हुई श्रीर उसने सृष्टिका निर्माण किया । इस कल्पनाने साधारण पौराणिक धारणाके साथ वेदान्तका मेल मिलानेका प्रयत्न किया है।

महाभारतमें वेदान्त-मतका विस्तार किस प्रकार किया हुआ मिलता है, इसके बतलानेमें पहले इस वातका स्वीकार करना होगा कि, महाभारतके समयमें सांख्य तथा योगका इतना श्रादर था कि उनकी छाया महाभारतके शान्ति पर्व और अन्य पर्वोंके तत्वज्ञानके विवेचन पर पूर्णतया पड़ी हुई दिखाई देती है। किसी विषय या श्रध्यायको लीजिये, वहाँ सांख्य श्रीर योगका नाम श्रवश्य श्राता है। इसके सिवा सांख्य श्रीर वेदान्तमें ज्ञान-का ही महत्व होनेसे सौतिने कई जगह उनका श्रभेद माना है। पाठकींको जान पड़ता है कि सौतिके मनमें यह कभी न श्राया होगा कि वेदान्तके कुछ विशिष्ट मत हैं। महाभारत-कालके बादकी स्थिति इसके विरुद्ध है। बादरायणके वेदान्त-

सुत्रमें मुख्यतः सांख्योंके योगका भी खराइन है। यह स्पष्ट है कि ये सूत्र सना-तनधर्मकी जय होनेके पधात्के हैं। श्रर्थात् श्रनुमानतः वे पुष्पिमनके कालके श्रनन्तरके हैं। जब वेदोंका पूर्ण श्रमिमान खापित हुआ, तब स्वभावतः वेदोंके मुख्य भाग जो उपनिषद् थे उन्हींके मतका पूर्ण श्रादर हुश्रा श्रीर इसीसे उपनिषद्वाह्य सांख्यादि मत त्याज्य माने गये। महा-भारत-कालमें यह स्थिति न थी, और महाभारतसे मालूम होता है कि सांख्य श्रीर योग सनातन-मतके साथ ही साथ समान पूज्य माने जाते थे; तथापि यह स्पष्ट है कि महाभारत-कालमें वेदान्त-मत ही मुख्य था श्रौर उसीके साथ श्रन्य-मतोंका समन्वय किया जाता था। श्रर्थात् सबसे श्रधिक महत्व वेदान्तका था। हमें यह देखना है कि महाभारत-कालमें यह मत किस रीतिसे फैला या सङ्कचित हुआ।

शान्ति पर्वके कुछ श्राख्यानीमें इस तत्वज्ञानकी चर्चा है। परन्तु उसमें प्रायः गूढ़ अर्थके स्रोक अधिक हैं, इसलिए टीकाकारको श्रपने ज्ञानके बल उनका श्रर्थ करना पड़ता है। इससे निश्चयके साथ नहीं बतलाया जा सकता कि महा-भारतकारको सचमुच वह अर्थ अभीष्ट था या नहीं। भाषान्तरमें जो श्रर्थ दिया है सो टीकाके श्राधार पर है, इससे यह नहीं माल्म होता कि टीकाका विषय कीनसा है श्रीर मृलग्रन्थका शर्थ कीनसा है। इसलिए ऐतिहासिक विचार करते समय केवल भाषान्तरके भरोसे रहना टीक नहीं। इन श्रड़चनोंको दुर रखकर देखें कि हम क्या कह सकते हैं। शास्ति पर्वमें पहले वैराग्यका बहुत ही वर्णन हैं। वेदान्त ज्ञानको वैराग्यकी स्रावश्य-कता है। तदनन्तर भृगु श्रीर भारद्वाजके संवादमें जीवका श्रस्तित्व सिद्ध किया है, श्रीर मनु श्रीर गृहस्पतिके संवादमें मोत्तका वर्णन है। यहाँ पर सवका स्पष्ट सिद्धान्त यह बतलाया गया है कि— सुखाद्वहुतरं दुःखं जीविते नासि संशयः। परित्यजति यो दुःखं सुखं वाष्युभयं नरः। श्रभ्येति ब्रह्म सोत्यन्तन्न ते शोचन्ति पंडिताः॥ (श्र० २०५)

सुख-दुःख, पुण्य-श्रपुण्य दोनों जब
स्रूटेंगे तब मोच मिलेगा। मालूम होता है
कि वेदान्त-तत्वका यह मत महाभारतकालमें निश्चित हो गया था।

इसके सम्बन्धमें शुक श्रौर व्यासका संवाद महत्वका है। उसके श्रनेक विषय (विचारके लिये) लेने योग्य हैं। परन्तु इम विस्तारके भयसे नहीं ले सकते। हे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्द ब्रह्म परंच यत्। शब्दब्रह्मणि निष्णातः परंब्रह्माधिगच्छिति॥ (शां० श्र० २३२)

नीलकएठका कहना है कि इसमें शब्द-ब्रह्मके लिए प्रश्व श्रोंकार लेना चाहिए। उपनिषदोंमें भी कहा है कि प्रश्व ब्रह्म-सक्रप है। श्रीर, उपनिषोंका ही यह मत है कि प्रश्वकी उपासना करनेसे परब्रह्म-की प्राप्ति होती है। इस श्रोंकमें दिया इश्रा कर्म-सिद्धान्त भी गृहार्थी है (शां० श्रव २३=) । महाभारतके समयमें यह दिखाई देता है कि कर्म त्यागकर संन्या साश्रम लेनेसे श्रथवा कर्म करके गृहस्या श्रममें रहकर ही मोत्त मिलनेका प्रश्न वादग्रस्त श्रोर श्रनिश्चित था।

शुकने प्रश्न किया है:— यदिदं वेदवचनं लोकवादे विरुध्यते। प्रमाणे वाप्रमाणे च विरुद्धे शास्त्रतः कुतः॥ (शां० अ० २४३)

तब व्यासजीने उत्तर दिया है कि:-ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थोऽथ भिचुकः। यथोक्त चारिणः सर्वे गच्छन्ति परमां गतिम्॥ चतुष्पदी हि निःश्रेणी ब्रह्मएयेता प्रतिष्ठिता॥

इसमें यह दिखलाया गया है कि किसी श्राश्रमका विधिवत् पालन करनेसे परमगति मिलती है। ब्रह्मको पहुँचनेकी चार सीढ़ियोंकी यह निसेनी है। हर एक सीढ़ी पर चढ़कर जाना सरल है, परन्तु निष्कर्ष यह दिखाई देता है कि एक ही सीढ़ी पर मजबूत और पूरा पैर जमाकर वहाँसे उछलकर परब्रह्मको जाना सम्भव है। तदनन्तर यहाँ चारी श्राश्रमोंका सुन्दर वर्णन है। कहा है कि श्राश्रका चौथा हिस्सा जब शेष रह जाय, तब मनुष्य वानप्रस्थके द्वारा

सद्यस्कारां निरूप्येष्टिं
सर्ववेद्सद्विणाम् ।
श्रात्मन्यग्नीन् समारोप्य
त्यक्तवा सर्वपरिम्रहान् ॥
केशलोमनखान् वाप्य

वानप्रस्थो मुनिस्ततः ॥
(उक्तं प्रकारसे) चतुर्थाश्रमका प्रहण्
करे। संन्यासका आचार भी बतलाया
गया है। कहा है कि—
कपालं वृत्तमूलानि कुचैलमसहायता।
उपेत्ता सर्वभूतानामेतावद्धि सुलत्त्णम् ॥

श्रीर, श्रन्तमें ब्रह्म जाननेवाले ब्राह्मण का भिन्न भिन्न श्लोकोंमें वर्णन है।

श्राकाशस्य तदा घोषं तं विद्वान् कुरुते ऽऽत्मिन । तदव्यक्तं परं ब्रह्म तत् शाश्वतमनुक्तमम् ॥ श्रोर भी देखियेः—

पौरुषं कारणं केचिदाहुः कर्मसु मानवाः। दैवमेके प्रशंसन्ति स्वभावमपरे जनाः ॥ पौरुषं कर्म दैवन्तु कालवृत्ति-स्वभावतः। त्रयमेतत् पृथग्भृतमविवेकं तु केचन॥ पतदेव च नैवं च न चोमे नानुमे तथा। कर्मस्था विषयं बृद्धः सत्वस्थाः समदशिनः॥

यह महत्वका श्लोक यहाँ श्राया है:—
 श्रालंभयज्ञाः चत्राश्च हिवर्यज्ञा विशः स्मृताः ।
 परिचारयज्ञाः ग्रद्धास्तु तपोयज्ञा द्विजातयः ॥
 यह श्लोक गृद्धार्थी है:—

किपल श्रीर स्यूमरिमके संवादमें यही विषय फिर श्राया है, श्रीर उसका निर्णय भी ऐसा ही श्रनिश्चित हुश्चा है। स्यूमरिमने गृहस्थाश्रमका पन्न लेकर कहा है कि—

कस्यैषा वाग्भवेत्सत्या नास्ति मोन्नो गृहादिति। १० (शां० अ० २६६)

श्रोर भी कहा है कि— यद्येतदेवं कृत्वापि न विमोत्तोऽस्ति कस्यचित्। धिक्कर्तारं च कार्यं च

श्रमश्चायं निरर्थकः ॥६६ कपिलने पहले यह स्वीकार किया कि— वेदाः प्रमाणं लोकानां न वेदाः पृष्ठतः कृताः। द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् ॥ शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति॥

श्रीर फिर श्रन्तमें उसने यह भी मान्य किया है कि "चतुर्थे पिनिषद्ध में: साधारण इति स्मृतिः। असने यह बात भी खीरुत की कि स्मृतिमें यह कथन है कि उपनिषदों में बताये हुए चतुर्थ श्रथवा तुरीय पदवाच्य ब्रह्म-पदकी प्राप्ति कर लेनेकी स्वतन्त्रता चारों श्राश्रमों श्रीर चारों वणोंको है। हमारी रायमें यहाँ स्मृति शब्दसे भगवद्गीताके "स्त्रियो वैश्यास्तथा श्रद्धास्तिप यांति परां गितम्" वचनका ही उल्लेख किया हुशा दिखाई देता है। परन्तु श्रागे चलकर यह कहा है कि—

संसिद्धः साध्यते नित्यं ब्राह्मणैर्नियतात्मभिः। संतोषम् लस्त्यागात्मा ध्यानाधिष्ठानमुच्यते॥ मपनग्मतिर्नित्यो यतिधर्मः सनातनः॥

(शां० अ० २७०-३०, ३१) (चित्त-शुद्धि करके) संसिद्ध तथा नियतेन्द्रिय ब्राह्मणोंको ही इस खतन्त्रता-का उपयोग होता है, श्रीर वे ही तुरीय

ब्रह्मको पहुँचते हैं। सन्तोष जिसका मूल है श्रौर त्याग जिसका श्रात्मा है, ऐसा यतिधर्म सनातन है, श्रीर मोच ही उसका ध्येय होनेसे वही ध्यानका अधिष्ठान होने योग्य है। इससे महाभारत-कालमें यह मत प्रतिपादित होने लगा था कि वर्णी-मेंसे ब्राह्मण और ब्राह्मणोंमेंसे चतुर्थाश्रमी संन्यासी ही मोचकी प्राप्ति करते हैं। परन्तु यह बात श्रवश्य मानी जाती थी कि शास्त्रने सब वर्णों और आश्रमोंको स्वतन्त्रता दी है। उपनिषद्में जानश्रुति शृद्धको मोच-मार्गका उपदेश किया है और श्वेतकेत् ब्रह्मचारीको तत्य-प्राप्तिका उप-देश किया है। भगवद्गीताके "स्त्रियो वैश्याः" श्रादि वचनोंसे यही स्वतन्त्रता दी गई है। यद्यपि महाभारत-कालमें यह बात मानी जाती थी, तथापि यथार्थमें लोग समभने लगे कि ब्राह्मण श्रोर विशे-षतः चतुर्थाश्रमी ही मोच्त-मार्गका स्वीकार करते हैं और मोज्ञपदको पहुँचते हैं। बहुत क्या कहा जाय, शांति पर्वके २४६वें श्रध्यायमें वेदान्त-ज्ञानकी स्तुति करते समय इस प्रकार—

द्शेदं ऋक्सहस्राणि निर्मथ्यामृतमुद्भृतम्। स्नातकानामिदं वाच्यं शास्त्रं पुत्रानुशासनम्॥ इदं प्रियाय पुत्राय शिष्यायानुमताय च। रहस्यधर्मं वक्तव्यं नान्यस्मै तु कदाचन। यस्यप्यस्य महीं दद्याद्रत्तपूर्णामिमां नरः॥ वर्णन ही उपनिषन्मतका व्यासजीने सूचित किया है, कि यह रहस्य-धर्म स्नातकोंको ही देने योग्य है; श्रर्थात् स्त्रियाँ इसके लिए श्रधिकारी नहीं हैं। इस प्रकार वेदान्त झान और संन्यासका सम्बन्ध भगवद्गीताकी श्रपेता महाभारतके कालमें अधिक दढ़ हुआ। परन्तु वह ऋपरिहार्य नथा। इस कालके पश्चात् बादरायणके सूत्रमें यह सम्बन्ध पका श्रोर नित्यका हो गया। शूद्र शब्द- की भिन्न व्युत्पत्ति करनेवाले स्त्रोंसे दिखाई देता है कि यही प्रतिपादित हुन्ना था कि ब्राह्मणको ही त्रौर विशेषतः संन्याश्रमीको ही मोत्तकी प्राप्ति होती है।

शान्ति पर्वके २७८वें श्रध्यायमें हारी-तोक मोज्ञ-झान बतलाया गया है। उसमें संन्यास-धर्मका विस्तारपूर्वक वर्णन करके श्रम्तमें यह कहा है कि—

श्रमयं सर्वभूतेभ्यो दत्वायः प्रवजेद्गृहात्। लोकास्तेजोमयास्तस्य तथानंत्याय कल्पते॥

महाभारत-कालमें प्रवज्या ही मोत्त-की प्रणाली मान्य हुई दिखाई देता है। क्योंकि बौद्धों तथा जैनोंने भी अपने मोच-मार्गके लिए इसी प्रवज्याके मार्गको मान्य किया है। महाभारत-कालमें प्रवज्या-का महत्व बहुत बढ़ा हुआ दिखाई देता है। विस्तारपूर्वक अन्यत्र कहा ही गया है कि सनातनधर्मियोंकी प्रवज्या बहुत प्रसर थी। बौद्धों तथा जैनोंने प्रवज्या-को बहुत हीन कर डाला और वह पेट भरनेका धन्धा हो गया। एक समय यधिष्ठिरको संन्यासकी श्रत्यन्त लालसा हुई श्रौर उसने पूछा—"कदा वयं करि-ष्यामः संन्यासं दुःखसंज्ञकं। कदा वयं गमिष्यामो राज्यं हित्वा परंतप ॥" इस प्रश्न पर भीष्मने सनत्सुजात श्रीर वृत्रका संवाद सुनाया। यह कहते कहते, कि जीव संसारमें करोड़ों वर्षतक कैसे परि-भ्रमण करता है, उन्होंने यह भी बतलाया कि जीवके छः वर्ण होते हैं - कृप्ण, धुम्न, नील, रक्त, हारिव्र और शुक्क (शां० अ० २=०-३३)। वर्णकी यह कल्पना विचित्र है। हर एक वर्णकी चौदह लाख योनियाँ बतलाई गई हैं (शतं सहस्राणि चृतु-देशेह परागतिजीवगुणस्य दैत्य-३६)। भिन्न भिन्न रङ्गोमेंसे पुनः पुनः ऊपर नीचे भी संसरण होता है। नरक-

में पड़े रहनेतक कृष्ण-वर्ण होता है। वहाँ-से हरित (धूम्र)। इसके श्रनन्तर सत्व-गुणसे युक्त होने पर नीलमेंसे निकलकर लाल रङ्ग होता है श्रीर जीव मनुष्य-लोकको आता है। पीला रङ्ग मिलने पर देवत्वं मिलता है। फिर जब सत्वाधिका होता है तब उसे शुक्लवर्ण मिलता है (नहीं तो वह नीचे गिरता हुआ कृष्ण रङ्गतक जाता है)। शुक्र गतिमेंसे यदि वह पीछे न गिरा और योग्य मार्गसे चला गया तो गत स्रोकमें कहा है कि-"ततोऽव्ययं स्थानमनंतमिति देवस्य विष्णोरथ ब्रह्मण्य ।" "संहारकाले परिदग्ध काया ब्रह्माणमायान्ति सदा प्रजा हि " सर्व संहारके समय ऐसा दिखाई देता है, कि उसका ब्रह्मसे तादात्म्य होता है।

उपर्युक्त वर्णनसे यह भी देख पड़ता है कि महाभारत-कालमें परमगतिकी कल्पना कुछ भिन्न थी। उपनिषद्में भी

 यहाँ युधिष्ठिरने दो विचित्र प्रश्न किये हैं। उनके उत्तर भी विचित्र हैं। पहला प्रश्न-"जिस महादेवका सन-त्कुमारने वर्णन किया है, क्या यह वही हमारा श्रीकृष्ण है ?" उत्तर—यह वह नहीं है । "तुरीयार्ईन-तस्येमं विद्धि केशवमच्युतं" इसके विषयमें श्रागे उल्लेख करेंगे। दूसरा प्रश्न हम इस समय रक्त वर्णमें हैं; परन्तु श्रागे हमारी क्या गति होगी, नील या कृष्ण या श्रच्छी ? भीष्मने उत्तर दिया—तुम पाण्डव देवलोकको जाओगे श्रोर फिर "विहृत्य देवलोकेषु पुनर्मा नुपमेध्यथ । प्रजाविसर्गं च सुखेन काले प्रत्येत्य देवेषु सुखानि भुक्तवा । सुखेन संयास्यथ सिद्धसंख्यां मा वो भयं भृद्धिमलाःस्य सर्वे'' ॥७७ (शां० श्र० २८०) । स्रर्थात "तुम फिर मनुष्य लोकको आश्रोगे और मनुष्य लोकमें पूर्ण सुख भोगकर फिर देव योनिको जाश्रोगे श्रीर वहाँसे सिद्ध-मण्डलीमें जाश्रोगे।" इस वाक्यसे यह जाननेकी इच्छा होती है, कि महाभारत-कालके इतिहासमें पाएडबी-का फिर कौनसा अवतार माना जाता था ? नया वत्सराज उदयनसे तो तात्पर्य नहीं है ?

कहा है कि भिन्न भिन्न देवतात्रोंके लोक हैं। छान्दोग्यमें लिखा है कि— 'एतासा-भेव देवतानां सलाकतां सार्धिताम् सायुज्यं गच्छति।" परन्तु यह माना जाता था कि ब्रह्मलोक अपुनरावर्ति है। याझवल्क्यने कहा है कि-"गारिय ब्रह्म-लोकके आगेका हाल मत पूछ"—"अनात प्रश्न्यां वै देवतामतिपृच्छसि" (वृ० अ० ५ ब्रा० ६)। बृहदारगयकमें तो (अ० इ ब्रा० २) यह कहा है कि-'विद्युतान पुरुष मानस एत्य ब्रह्मलोकान् गमयति तेषु ब्रह्मलोकेषु पराः परा-वतो वसन्ति न तेषां पुनरावृत्तिः"। उपनिषद्में प्रजापति-लोक श्रौर ब्रह्म-लोक अलग अलग माने गये थे। भग-वद्गीता श्रीर महाभारतमें यह एक खरसे माना गया है कि ब्रह्मलोक पुनरावर्त्ति है। श्राव्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्त्त-नोर्जुन" इस मतके श्रनुसार यह निश्चय हुआ था कि ब्रह्मलोककी गति शाश्वत नहीं है। योगी स्रोर जापक वहीं जाते हैं। परन्तु ऊपरके श्लोकमें इतनी कल्पना श्रिधिक है कि ब्रह्मलोकके लोग संहारके समय मुक्त होते हैं। यह स्पष्ट है कि वेदान्तका श्रन्तिम ध्येय मोच है। परन्तु वेदान्त मतसे मोत्तका ऋर्थ है ब्रह्मभाव। मोत्त और विमोत्त शब्द गीतामें तथा उपनिषदोंमें भी हैं। परन्तु ब्रह्मनिर्वाण, ब्रह्मभूय स्रादि शब्द गीतामें अधिक हैं। "ब्रह्मेव सन् ब्रह्माप्येति" में ब्रह्म शब्द ब्रह्मलोक-वाच्य है। सभापर्वकी श्रह्मसभासे यह स्पष्ट है कि ब्रह्मसभा अन्तिम गति नहीं है। वनपर्वके २६१ वें अध्यायमें ब्रह्मलोकके उत्तर ऋभुलोक बतलाये हैं जो कल्पमें भी परिवर्तन नहीं

पाते। ऐसा वर्णन है कि "न कल्प-परिवर्तेषु परिवर्तन्ति ते तथा" देवानामाप मौद्गल्य कांचिता सा गतिः परा।" परन्तु कहा है कि इसके त्रागे विष्णुका स्थान है—"ब्रह्मणः सद्नाद्ध्वे तदिष्णोः परमं पदं। शुद्धं सनातनम् ज्योतिः परब्रह्मेति यद्भिदु: ।'' उपनिषद्में परब्रह्मवाची शब्द आत्मा है, और आत्मा और पर-मात्माका भेद उपनिषदोंको मालूम नहीं। "य त्रात्मापहतपाप्मा" त्रादि वर्णन देखिये। योगमें दो श्रात्मा माने गये, इसी लिए पहले यह भेद उत्पन्न हुआ। भगवद्गीता श्रौर महाभारतमें इसी लिए परमात्मा शब्द सदैव परब्रह्मके अर्थमें श्राया है। इस प्रकार ब्रह्म भी दो प्रकार-का (शब्दब्रह्म श्रीर परब्रह्म) हो जानेसे परब्रह्म शब्द बहुत बार उपयोगमें श्राया है। उपनिषद्में पुरुष शब्द परमात्मवाची है। वैसा ही महाभारतमें भी है। परन्तु कहीं कहीं परम पुरुष शब्द आता है। महद्भूत शब्द भी उपनिषदोंमें है। वह महाभारतमें भी कहीं कहीं श्राया है। भगवद्गीतामें पुरुषोत्तम श्रौर भूतात्मा शब्द आये हैं। 'शारीर आत्मा प्राज्ञेनात्मनान्वारूढ्ः" वृहदारएयकमे वर्णित है। परन्तु उसमें श्रौर परमात्मामें भेद नहीं है। भूतात्मा, महानात्मा ऋादि शब्द महाभारतमें पाये जाते हैं। पंचेन्द्रियाँ, बुद्धि, मन, पंचमहाभूत श्रीर उनके रूप रसादि गुण, तथा सत्वरजस्तम त्रिगुण, उनके भेद श्रादि श्रनेक विषय महाभा-रतमें, उद्योगपर्वके सनत्सुजातीयमें स्रौर श्रन्यत्र वर्णित हैं। इनमेंसे शान्तिपर्वके मोज्धर्म पर्वमें इनका बहुत ही विस्तार है। उसका विशेष उल्लेख करना प्रायः कठिन है। तथापि उपनिषदों में जिन वेदान्त तत्वोंका उपदेश किया गया है, उनका विस्तार भगवद्गीतामें ही किया है श्रौर महाभारतमें सुन्दर संवाद श्रौर श्राख्यान रखे गये हैं जिनमेंसे "देवा श्रिप मार्गे मुद्धांति श्रपदस्य पदैषिणः" श्रादि कुछ श्रोक वेदान्तमें बार बार श्राते हैं। श्रन्तका व्यास शुकाख्यान बहुत ही मनो-हर है श्रौर उसके श्रारम्भका "पावका-ध्ययन" नामका ३२१ वाँ श्रध्याय पढ़ने योग्य है।

(४) पांचरात्र।

श्रव हम पांचरात्रके मतकी श्रोर भुकेंगे। वेदान्तके बाद पांचरात्र ही एक महत्वका ज्ञान महाभारतके था। हम पहले ही बता चुके हैं कि जब इश्वरकी सगुण-उपासना करनेकी परि-पाटी ग्रुह हुई, तब शिव श्रौर विष्णुकी श्रधिक उपासना प्रचलित हुई। वैदिक कालमें ही यह बात मान्य हो गई थी कि सब वैदिक देवतात्रोंमें विष्णु श्रेष्ट है। उस वैष्णव धर्मका मार्ग धीरे धीरे बढता गया और महाभारतके कालमें उसे पांच-रात्र नाम मिला। इस मतकी असली नींव भगवद्गीताने ही डाली थी श्रीर यह बात सर्वमान्य हुई थी कि श्रीकृष्ण श्री-विष्णुका श्रवतार है। इससे पांचरात्र-मतकी मुख्य नीति श्रीकृष्णकी भक्ति ही है। हम पहले ही कह चुके हैं कि भक्ति-मार्गकी नींव भगवद्गीताने ही डाली है। परमेश्वरकी भावनासे श्रीकृष्णकी भक्ति करनेवाले लोग श्रीकृष्णके समयमें भी थे, जिनमें गोपियाँ मुख्य थीं । इनके अतिरिक्त और भी बहुत लोग थे। यह अनुभवसिंद्ध है कि सगुण कपकी भक्ति करनेवालेको भगवद्भजनसे कुछ श्रीर ही त्रानन्द होता है। इसका महत्व भगवद-

गीतामें बतलाया गया है। भक्ति-मार्ग बहुत पुराना तो है, परन्तु पांचरात्र-मार्ग-से कुछ भिन्न और प्राचीन है। पांचरात्र-तत्वज्ञानके मत कुछ भिन्न हैं श्रीर रहस्य-के समान हैं। महाभारतके नारायणीय उपाख्यानसे दिखाई पड़ता है कि महा-भारतके समय ये मत कौन से थे। भगवद्भक्ति करनेवाले भागवत कहलाते थे श्रीर उनका एक सामान्य वर्ग था। इस वर्गमें विष्णु श्रीर श्रीकृष्ण देवताश्री-को परमेश्वर-खरूप मानकर उनकी भक्ति होती थी। परन्तु पांचरात्र इससे थोडा भिन्न है: श्रीर हम नारायणीय श्राख्यानके श्राधार पर देखेंगे कि यह मत कैसा था। यह नारायणीय श्राख्यान शान्तिपर्वके ३३४ वें ऋध्यायसे ३५१ वें ऋध्यायके ऋत-तक है; इसके अनन्तर अन्तका उंच्छ-वृत्युपाख्यान शान्ति पर्वमें है । श्रर्थात नारायणीयाख्यान बहुधा श्रन्तिम श्राख्यान है और यह शान्ति पर्वका अन्तिम प्रति-पाद्य विषय है। वह वेदान्त श्रादि मतोंसे भिन्न और श्रन्तिम हो माना गया है। इस श्राख्यानका प्रारम्भ ऐसे हुन्ना है:-युधिष्ठिरने प्रश्न किया कि किसी श्राश्रमके मनुष्यको यदि मोत्त-सिद्धि प्राप्त करना हो तो किस देवताके पूजनसे वह उसे मिलेगी ? अर्थात् इसमें यह दिखाई देता है कि इसके द्वारा सगुण भक्तिका माहात्म्य वताया है।

इस मतके मूल श्राधार नारायण हैं।
स्वायंभुव मन्वन्तरमें "सनातन विश्वातमा
नारायणसे नर, नारायण, हरि श्रीर कृष्ण
चार मूर्तियाँ उत्पन्न हुई।" नरनारायण
श्रुषियोंने बद्रिकाश्रममें तप किया।
नारद्ने वहाँ जाकर उनसे प्रश्न किया।
उस पर उन्होंने उसे यह पांचरात्र धर्म
सनाया है। इस धर्मका पालनेवाला पहला
पुरुष उपरिचर राजा वसु था। पहले

स्तीने पांचरात्र विधिसे नारायणकी पूजा की। चित्रशिखरडी नामके सप्त ऋषियां-ने वेदोंका निष्कर्ष निकालकर पांचरात्र नामका शास्त्र तैयार किया। ये सप्तर्षि बायंभुव मन्वन्तरके मरीचि, श्रङ्गिरा, ब्रित्रि, पुलस्त्य, पुलह, कतु और वसिष्ट है। इस शास्त्रमें धर्म, अर्थ, काम और मोज चारोंका विवेचन है। यह ग्रन्थ एक लाख स्त्रोकोंका है। "भ्रम्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा श्रङ्गिरा ऋषिके अथर्ववेद-के स्राधार पर इस स्रन्थमें प्रवृत्ति श्रीर निवृत्तिके दोनों मार्ग हैं श्रीर उनका यह श्राधारस्तम्भ है।" नारायण्ने कहा कि हरि-भक्त वसु उपरिचर राजा इस ग्रन्थ-को बृहस्पतिसे सीखेगा श्रीर उसके श्रवु-सार चलेगा, परन्तु उसके पश्चात् यह प्रनथ नप्ट हो जायगा।" श्रर्थात् चित्र-शिखएडीका यह ग्रन्थ श्राज्ञकल उपलब्ध नहीं है। तथापि भगवद्गीता इस मतके तिए मुख्य श्राधार नहीं मानी गई; अत-एवं हमें यह स्वीकृत करना पड़ता है कि यह पांचरात्र-मत भगवद्गीताके पश्चात हुआ श्रीर उससे कुछ भिन्न है।

इस भागमें पहली कथा यह है कि श्रीरसमुद्रके उत्तरकी श्रोर श्वेत द्वीप हैं जहाँ नारायणकी पांचरात्र-धर्मसे पूजा करनेवाले श्वेतचन्द्रकान्तिके "श्रतीन्द्रिय, निराहारी श्रोर श्रनिमेष" लोग हैं। वे पक्तिष्ठासे भक्ति करते हैं श्रोर उन्हें नारायणका दर्शन होता है। इस श्वेत-ग्रीपके लोगोंकी श्रनन्य भक्तिसे नारायण मकट होते हैं श्रोर ये लोग पांचरात्र विधिसे उनका पूजन करते हैं। कहनेकी श्रावश्यकता नहीं कि यह मत गीतासे श्रधिक है। दूसरी बात यह है कि श्रहिसा मत भी इस तत्वज्ञानके द्वारा सांख्य-योगादि श्रन्य मतोंके समान ही श्रधान माना गया है। वसु राजाने जो

यत्र किया था उसमें पशु-वध नहीं हुआ। वसु राजाके शापकी जो वात आगे दी है, केवल वह इसके विरुद्ध है। ऋषियोंके और देवोंके भगडेमें छागहिंसाके यक्षके सम्बन्धमें जब वसुसे प्रश्न किया गया, तब उसने देवोंके मतके अनुकूल कहा कि छागवलि देना चाहिए। इससे ऋषियोंका उसे शाप हुआ श्रीर वह भृविवरमें घुसा । वहाँ उसने श्रनन्य भक्तिपूर्वक नारायणकी-सेवा की जिससे वह मुक्त हुआ और नारायणकी कृपासे "ब्रह्मलोकको पहुँचा" । वसु राजाके नामसे यज्ञमें घीकी धारा श्रग्निमें छोड़नी पडती है। कहा है कि देवोंने प्राशन करनेके लिए उसे वह दिलाई, और यह भी कहा है कि उसे "वसोर्घारा" कहते हैं। यही कथा अश्वमेध पर्वके नकुलाख्यानमें आई है और वहाँ उसका यही खरूप है। फिर आश्चर्य तो यही होता है कि पांच-रात्रमतका वसु राजा ही प्रथम कैसे होता है। वर्णन तो ऐसा है कि उसने स्ततः जो यज्ञ किया वह पशुका नहीं था। श्रस्त । हिंसाको यज्ञविहित बतलानेके विषयमें गीता श्रीर महाभारत दोनोंका स्पष्ट श्राशय नहीं है। श्रर्थात् यह भग-बद्गीताके आगेकी सीढ़ी है।

इसके श्रागेके श्रध्यायों यह वर्णन है कि नारद नारायण्का दर्शन करनेके लिए श्वेतद्वीपमें गये श्रोर वहाँ उन्होंने भगवानके गुद्य नामों उनकी स्तुति की। ये नाम विष्णु-सहस्र-नामों से भिन्न हैं। पांचरात्र-मतमें भी नारदक्त स्तुति विशेष महत्वकी होगी। नारायण प्रसन्न हुए श्रोर उन्होंने नारदको विश्वक्षप दिखाया। इस रूपका वर्णन यहाँ देने योग्य है। "प्रभुके खरूपमें भिन्न भिन्न रहींकी छटा थी। नेत्रहस्तपादादि सहस्र थे। वह विराट-सरूपका परमात्मा

श्रीकारयुक्त सावित्रिका जप करता था। उस जितेन्द्रिय हरिके श्रन्य मुखोंमेंसे चारों वेद, वेदाङ्ग श्रीर श्रारण्यकोंका घोष हो रहा था। उस यज्ञकृषी देवके हाथमें वेदि, कमएडलु, गुभ्रमणि, उपानह, कुश, श्रजिन, द्राडकाष्ट्र श्रीर ज्वलित श्रक्षि थे।" इस वर्णनसे यह स्पष्ट दिखाई देता है कि पांचरात्र-मत वेदों श्रौर यहाँको पूरा पूरा मानता था। श्रस्तु। भगवद्गीताका विश्वरूप श्रौर यह विश्वरूप दोनों भिनन हैं। कहनेकी श्रावश्यकता नहीं कि प्रसङ्ग भी भिन्न हैं। तथापि निष्कर्ष यह निक-लता है कि यह श्राख्यान भगवद्गीताके बादका है। यहाँ पर नारायणने नारदको जो तत्वज्ञानका उपदेश दिया है उसमें पांचरात्रके विशिष्ट मत श्राये हैं। वे ये हैं- "जो नित्य, अजन्मा और शाश्वत है, जिसे त्रिगुणोंका स्पर्श नहीं, जो श्रात्मा प्राणिमात्रमें सान्निरूपसे रहता है, जो चौबीस तत्वोंके परे पर्चीसवाँ पुरुष है, जो निष्क्रिय होकर ज्ञानसे ही जाना जा सकता है, उस सनातन परमेश्वरको वासुदेव कहते हैं। यही सर्वव्यापक है। प्रलय कालमें पृथ्वी जलमें लीन होती है, जल श्रमिमें, तेज वायुमें, वायु श्राकाशमें, श्रौर श्राकाश अब्यक्त प्रकृतिमें और अब्यक्त पुरुषमें लीन होती है। फिर उस वासु-देवके सिवा कुछ भी नहीं रहता। पञ्च-महाभूतोंका शरीर वनता है श्रीर उसमें श्रदश्य वासुदेव सूदम रूपसे तुरन्त प्रवेश करता है। यह देहवर्त्ति जीव महा-समर्थ है और शेष और संकर्षण उसके नाम हैं। इस संकर्षणसे जो मन उत्पन्न होकर "सनत्कुमारत्व" यानी जीवन-मुक्तता पा सकता है श्रौर प्रलय कालमें जिसमें सब भूतोंका लय होता है उस मनको प्रदास कहते हैं। इस मनसे कर्त्ता, कारण और

कार्यकी उत्पत्ति है तथा इससे चराचर जगत्का निर्माण होता है, इसीको श्रित-रुद्ध कहते हैं। इसीको ईशान भी कहते हैं। सर्व कमोंमें व्यक्त होनेवाला श्रहंकार यही है। निर्गुणात्मक क्षेत्रक्ष भगवान् वासुदेव जीवक्रपमें जो श्रवतार लेता है, वह संक र्षण है; संकर्षणसे जो मन रूपमें श्रवतार होता है वह प्रयुद्ध है श्रीर प्रयुद्ध से जो उत्पन्न होता है वह श्रनिरुद्ध है श्रीर वहीं श्रहंकार श्रीर ईश्वर है।"

पांचरात्र-मतका यही सबसे विशिष्ट सिद्धान्त है। वासुदेव, संकर्षण, प्रयुद्ध श्रीर श्रनिरुद्धका श्रीकृष्णके चरित्रसे श्रीत घनिष्ठ सम्बन्ध है इसलिए श्रीकृणाके भक्तोंमें उनके लिए पुज्य-भक्तिका होना खाभाविक है। इसी कारणसे पांचरात्र मतमें उन नामोंका समावेश हुआ होगा। जब श्रीकृष्णका वासुदेव नाम प्रमेश्वर-के सक्तपसे पूजनीय हुआ, तब आश्चर्य नहीं कि प्रयुम्न श्रीर श्रनिरुद्धके नाम पर-मेश्वरसे उत्पन्न होनेवाले मन और अहं-कारके तत्वोंमें सहज ही एकत्र हो गये। क्योंकि श्रीकृष्णका पुत्र प्रयुक्त है श्रीर उसका पुत्र श्रनिरुद्ध है। परन्तु संकर्षण नाम बलरामका यानी श्रीकृष्णके वड़े भाईका है। वलरामके लिए मान लिया कि, पूज्य भाव था: तथापि उसका नाम जीवको कैसे दिया गया ? उसका श्रीर श्रीकृपाका सम्बन्ध बड़े श्रीर छोटे भाईका था; वैसा सम्बन्ध जीव श्रीर परमेश्वरका नहीं है। श्रस्तु। इस सम्बन्धके विचारसे ये नाम नहीं रखे गये। श्रीकृष्णके सम्बन्धसे ये नाम प्रिय हुए थे, इसीसे इनका उपयोग किया गया ऐसा नहीं दिखाई देता कि थी छणाके पूर्व वासुदेव नाम परमेश्वरवाची था। भग-वद्गीतामें भी वह नाम श्रीकृष्णके सम्बन्ध-में परमेश्वरके अर्थमें आया है।

बहुनां जनमनामन्ते ज्ञानवानमां प्रपद्यते। वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥ यह श्लोक गीतामें आया है और श्रीकृष्णाने श्रपनेको लच्य कर कहा है। माना कि श्रीकृष्णका वासुदेव नाम ही प्रमेश्वरवाची हुआ, तोभी ऐसा दिखाई देता है कि भगवद्गीताके समयमें यह चतु-र्व्युह सिद्धान्त नहीं निकला था, क्योंकि गीतामें इसका वर्णन कहीं नहीं है। परन्तु महाभारतसे हम यह दिखा सकेंगे कि धीरे धीरे यह सिद्धान्त बढ़ता गया। यह सच है कि भीष्मस्तवमें इस मतका उन्नेख है, परन्तु उसमें संकर्षण नाम पर-मेश्वरके ही लिए आया है और उसका श्चर्य भिन्न ही किया है: - "में उस पर-मात्माकी उपासना करता हूँ जिसे संक-र्षण कहते हैं, क्योंकि संहार-कालमें वह जगत्को श्राकर्षित कर लेता है।" श्रर्थात् परमेश्बरका संकर्षण नाम यहाँ अन्य कारणोंसे दिया गर्या है। एक व्यृहसे दो व्यूह, दोसे तीन श्रीर तीनसे चार व्यूह-की कल्पना बढ़ती गई जिसका हाल महा-भारतमें दिया है। श्रर्थात् पूर्व कालमें यानी गीताके कालमें एक ही वासुदेवरूपी व्यूहका होना दिखाई देता है। वासुदेव-की सरल व्याख्या वसुदेवका पुत्र वासु-देव है; परन्तु पांचरात्र-मतमे उसकी व्याख्या श्रीर ही हुई, जो श्रागे वतलाई गई है। ऐसी ही व्याख्या संकर्षण, प्रयुम्न श्रीर श्रनिरुद्धकी भी निकल सकना संभव है। शान्तिपर्वके २८०वें श्र० में कहा है कि श्रीकृष्णने मूर्त सक्षप लिया; तथापि वह उपाधि वगौंसे निरुद्ध या बद्ध नहीं था, स्तीसे उसे अनिरुद्ध कहते हैं। सहज ही उसी अर्थमें यानी जीव, मन श्रौर श्रहंकार-के अर्थमें वे शब्द माने गये। चतुर्व्यूहकी यह कल्पना वेदान्त, सांख्य या योग मतोंसे मिल है श्रीर पांचरात्र मतकी खतंत्र है।

यह मान लेनेमें कोई हर्ज नहीं कि यह मत पहले सात्वत लोगोंमें उत्पन्न हुआ। सात्वत लोग श्रीकृष्णके वंशके लोग हैं। इसीसे इस मतको सात्वत कहते हैं। सात्वत वंशके लोगोंमें यह मत पहले निकला, श्रतएव यह खाभाविक है कि उस वंशकी पूज्य विभूतियाँ इस मतमें श्रिधिकतर श्राईं। श्रीकृष्णके साथ बलदेव-की भक्ति उत्पन्न हुई श्रौर वह श्रभीतक हिन्दुस्थानमें प्रचलित है। महाभारतमें तो एक जगह कहा है कि वलदेव और श्रीकृष्ण श्रीविष्णुके समान ही श्रवतार हैं (आदि प॰ अ० १६७)। वलदेवके मन्दिर श्रभीतक हिन्दुस्थानके कुछ स्थानों-में हैं। जैन तथा बौद्ध ग्रन्थोंमें वासुदेव श्रीर वलदेव दोनों नाम ईश-स्वरूपी धर्म-प्रवर्त्तकके श्रर्थमें आये हैं। अर्थात् उनके समय ये ही दो व्यक्ति सामान्यतः लोगोंमें मान्य थे। केवल प्रदास और अनिरुद्ध नाम सात्वत या पांचरात्र मतमें ही हैं श्रीर वंश-परम्परासे सात्वतींके उनकी भक्तिका रहना भी स्वाभाविक है। भीष्मस्तवमें इन सात्वत गुद्य नामोंका ऐसा उन्नेख किया है:-

चतुर्भिश्चतुरात्मानं सत्वस्थं सात्वतां पतिम् । यं दिव्येंदेवमचैति गुद्धाः परमनामभिः॥

शान्तिपर्वके ३३६ वें श्रध्यायमें नारा-यण नारद्से श्रागे कहते हैं—"जिसका ज्ञान निरुक्तसे होता है वह हिरएयगर्भ जगज्जनक चतुर्वक्र ब्रह्मदेव मेरी श्राक्षासे सब काम करता है श्रीर मेरे ही कोपसे रुद्र हुश्रा है। पहले जब मैंने ब्रह्मदेवको पैदा किया तब उसे ऐसा वर दिया कि— "जब तू सृष्टि उत्पन्न करेगा, तब तुभे पर्यायवाची श्रहंकार नाम मिलेगा, श्रीर जो कोई वर-प्राप्तिके लिए तपश्चर्या करेंगे उन्हें तुभसे ही वर-प्राप्ति होगी। देवकार्य-के लिए मैं हमेशा श्रवतार लुँगा, तब तू मुभे पिनाके तुल्य श्राज्ञा कर। में ही संकर्षण, प्रदास, श्रनिरुद्ध श्रवतार लेता हूँ, श्रीर श्रनिरुद्धके नाभिकमलसे ब्रह्म-देवका अवतार होता है।" यह कहकर इसके आगे इस अध्यायमें दशावतारोंके संचित्र चरित्रका जो कथन किया है वह बहुत ही महत्वका है। इन दस श्रवतारी-की कल्पना बहुत प्राचीन नहीं है। उसका श्रारम्भ नारायणीय श्राख्यानसे है। श्रव-तारकी कल्पनाका बीज भगवद्गीतामें ही है। भगवान्ने स्पष्ट कहा है कि-"मक्तों-का उद्धार करनेके लिए श्रीर धर्मकी उन्नतिके लिए में बार बार अवतार लेता हूँ।" परन्तु यहाँ यह नहीं बतलाया कि श्रीविष्णुके दस अवतार हैं। यह निर्वि-वाद है कि यह दशावतारकी कल्पना बौद्ध धर्मकी जय या पराजय होनेके पूर्व-की है: प्रर्थात् सचमुच महाभारतके काल-की है, क्योंकि इन दस श्रवतारोंमें वुद्धका श्रन्तर्भाव नहीं है।

हंसः कूर्मश्च मत्स्यश्च प्रादुर्भावाः हिजोत्तम । वराहो नारसिंहश्च वामनो राम एव च ॥ रामो दाशरथिश्चैव सात्वतो काल्किरेव च ॥

इस समय लोगों में जो श्रवतार प्रसिद्ध हैं वे बहुधा ये हो हैं; परन्तु प्रारम्भमें जो हंस है, केवल वह भिन्न है श्रीर उसके बदले नवाँ श्रवतार बुद्ध श्राया है। हंस श्रवतारकी कथा इसमें नहीं है परन्तु वाराहकी है श्रीर वहींसे वर्णन शुरू होता है,—"जो पृथ्वी समुद्रमें डूबकर नष्ट हो गई उसे मैं वाराह-रूप धारण कर उपर लाऊँगा। हिरएयाचका वध मैं करूँगा। नृसिंह रूप धारण कर में हिरएय-कश्रिपुको मारूँगा। विल राजा बलवान होगा, तो मैं वामन होकर उसे पातालमें

डालुँगा । त्रेतायुगमें संपत्ति श्रीर लामध्यसे चत्रिय मत्त होंगे, तो भृगुकल-में परशुराम होकर मैं उनका नाश कहूँगा। प्रजापतिके दो पुत्र-ऋषि, एकत द्वित, त्रित ऋषिका घात करेंगे जिसके प्रायश्चित्तके लिए उन्हें बन्दरकी योनिम जन्म लेना पड़ेगा। उनके वंशमें जो महा-बलिए बन्दर पैदा होंगे वे देवोंको छुडाने-के लिए मेरी सहायता करेंगे और है पुलस्त्यके कुलके भयंकर राज्ञस रावण श्रीर उसके श्रनुयायियोंका नाश करूँगा। (बानरोंकी यह उत्पत्ति बहुत ही भिन्न श्रीर विचित्र है जो रामायणमें भी नहीं है।) द्वापरके अन्तमें और कलियगा-रम्भके पूर्व में मथुरामें कंसको मासँगा। द्वारका स्थापित करके श्रदिति माताका श्रपमान करनेवाले नरकासुरको मासँगा। फिर प्राग्ज्योतिषाधिपतिको मारकर वहाँ-की सम्पत्ति द्वारकामें लाऊँगा। तद्नन्तर वली-पुत्र वाणासुरको मासँगा, फिर सौभनिवासियोंका नाश करूँगा । फिर काल-यवनका वध कहँगा, जरासन्धको मारूँगा और युधिष्ठिरके राजस्यके समय शिशुपालका वध कहँगा।" लोग मानते हैं कि भारती-युद्ध-कालमें नर-नारायण कृष्णार्जुनके रूपसे चत्रियोंका संहार करनेके लिए उद्युक्त हुए हैं। "श्रन्तमें द्वारकाका तथा यादवीका भी घोर प्रलय में ही कराऊँगा। इस प्रकार अपार कर्म करनेपर में उस प्रदेशको वापस जाऊँगा जो ब्राह्मणोंको पूज्य है श्रीर जिसे मैंने पहले निर्माण किया।"

ऊपरके विस्तृत श्रवतरणमें नाराय-णीय-श्राख्यानसे दशावतारकी प्रचलित कल्पना ली गई है श्रीर श्रीविष्णु या नारायणने भिन्न भिन्न श्रसुरोंको मारनेके लिए जो जो श्रवतार धारण किये हैं उनका वर्णन किया गया है। इस वर्णनमें

^{*} यह ध्यानमें रखने योग्य है कि महाभारतमें श्रव-तार शब्द नहीं श्राया है—-प्रादुर्माव श्राया है। (शा॰ श्र॰ ३३१)

यह बात गर्भित है कि ये श्रमुर ब्रह्मदेवके वरसे ही पैदा होते थे और अन्तमें उन्हें मरवानेके लिए ब्रह्मदेव नारायणके पास जाकर उनसे प्रार्थना करते थे। भ्वेत वीपमें नारदको भगवानके दर्शन होनेका ब्रीर दोनोंके भाषणका उपर्युक्त वर्णन जिसमें किया है उसका नाम है महोप-निषत्। श्रीर इस मतमें यह माना गया है कि वह नारद्का बनाया हुआ पांच-रात्र है। यह भी कहा है कि जो इस कथा-का श्रवण श्रीर पठन करेगा वह चन्द्रके समान कान्तिमान् होकर श्वेतद्वीपको जायगा। यहाँ यह भेद किया हुआ दिखाई देता है कि भगवद्गीता उपनिषत् है श्रौर यह आख्यान महोपनिषत् है। अर्थात् यह आख्यान भगवद्गीताके बादका है।

भगवद्गीताके ढङ्ग पर इस महोपनिषद्की उपदेश-परम्परा भी बतलाई
गई है। पहले नारदने इसे ब्रह्मदेवके
सदनमें ऋषियोंको सुनाया; उनसे इस
पांचरात्र उपनिषत्को सूर्यने सुना। सूर्यसे देवोंने इसे मेरु पर्वत पर सुना।
देवोंसे श्रसित ऋषिने, श्रसितसे शान्तनुने, शान्तनुसे भीष्मने श्रोर भीष्मसे धर्मने
सुना। भगवद्गीताके समान, यह भी
कहा गया है कि—"जो वासुदेवका भक्त
न हो, उसे तू इस मतका रहस्य मत
बतला।" इस प्रमाणसे श्रधिक विश्वास
होता है कि नारायणीय उपाख्यान भगवद्गीताके बाद बना है।

इसके श्रागेके ३४०वें श्रध्यायमें यह बतलाया गया है कि नारायण यज्ञका भोका श्रोर कर्चा कैसे है? सांख्य श्रीर वेदान्तके तत्व-ज्ञानोंका मेल करके सृष्टि-की उत्पत्तिका जो वर्णन किया गया है उससे मालूम होता है कि परमात्माको, उसके कर्मके कारण ही, महापुरुष कहते हैं। उसीसे प्रकृति उत्पन्न हुई जिसका

नाम प्रधान है। प्रकृतिसे व्यक्तका निर्माण हुआ जिसको अनिरुद्ध या श्रहङ्कार कहते हैं श्रीर वहीं लोगोंसें (वेदान्तमें) महान श्रात्माके नामसे प्रसिद्ध है। उससे ब्रह्म-देव पैदा हुआ श्रीर ब्रह्मदेवने मरीचादि सात ऋषि श्रौर खयंभु मनु उत्पन्न किये। इनके पूर्व ब्रह्मदेवने पंच-महाभूत तथा उनके पाँच शब्दादि गुण उत्पन्न किये। सात ऋषि श्रोर मनुको मिलाकर अष्ट-प्रकृति होती है, जिससे सारी सृष्टि हुई। यह सब पांचरात्र मत है। इन्होंने देव उत्पन्न किये श्रीर जब तपश्चर्या की तब यज्ञकी उत्पत्ति हुई और ब्रह्मदेवके इन मानस-पुत्र ऋषियोंने प्रवृत्ति-धर्मका श्राश्रय लिया। इनके मार्गको श्रनिरुद्ध कहते हैं। सन, सनत्सुजात, सनक, सनंद, सनत्कुमार, कपिल श्रोर सनातन ब्रह्म-देवके दूसरे मानस-पुत्र हैं। इन्होंने निवृत्ति मार्ग स्वीकृत किया। मोच धर्म-का मार्ग इन्होंने ही दिखाया। इस अध्याय-में वह वर्णन है कि प्रवृत्ति-मार्गियोंकी पुनरावृत्ति नहीं टलती । इससे पांच-रात्रका मत यह दिखाई देता है कि यज्ञ-मार्ग नारायणने ही दिखाया, यज्ञके हविर्भागका भोका वही है, वही निवृत्ति मार्गका दर्शक है स्रोर वही उसका पालन भी करता है। यह भी दिखाई देता है कि वे यह भी मानंते हैं कि प्रवृत्ति हीन है स्रोर निवृत्ति श्रेष्ठ है। श्रथवा सम्भव है कि सीतिने यह वर्णन सब मतोंके भेद मिटाने-के लिए किया हो।

३४१वें श्रीर ३४२वें श्रध्यायोंमें नारा-यणके नामोंकी उपपत्ति लिखी है जो बहुत ही महत्वकी है। यह संवाद प्रत्यक्त श्रर्जुन श्रीर श्रीकृष्णके बीच हुश्रा है श्रीर श्रीकृष्णने स्वयं श्रपने नामकी ब्युत्पत्ति बताई है। सौतिने श्रपनी हमेशाकी रीति-के श्रमुसार पहले श्रीकृष्णके मुखसे वर्णन कराया है कि शिव और विष्णुमें कोई भेद नहीं। "रुद्र नारायण सक्रपी है। श्रिखिल विश्वका आत्मा मैं हूँ श्रौर मेरा श्रात्मा रुद्र है। मैं पहले रुद्रकी पूजा करता हूँ।" इत्यादि विस्तृत विवेचन प्रारम्भमें किया गया है। "त्राप अर्थात शरीरको ही 'नारा' कहते हैं, सब प्राणियों-का शरीर मेरा अयन अर्थात् निवास-स्थान है इसलिये मुक्ते नारायण कहते हैं। सारे विश्वको में व्याप लेता हूँ श्रौर सारा विश्व मुक्तमें स्थित है इसीसे मुक्ते षासुदेव कहते हैं। मैंने सारा विश्व व्याप लिया है श्रतएव मुभे विष्णु कहते हैं। पृथ्वी श्रीर खर्ग भी में हूँ श्रीर श्रन्तरिच भी में हूँ इसीसे मुभे दामोदर कहते हैं। चंद्र, सूर्य, श्रक्षिकी किरणें मेरे बाल हैं इसलिए मुक्ते केशव कहते हैं। गो यानी पृथ्वीको में ऊपर ले श्राया, इसीसे मुक्ते गोविंद कहते हैं। यज्ञका हविर्भाग में हरण करता हूँ इसीसे मुक्ते हरि कहते हैं। सत्वगुणी लोगोंमें मेरी गणना होती है, इसीसे मुके सात्वत कहते हैं।" "लोहेका काला स्याह (कुसिया) हलका फार होकर मैं जमीन जोतता हूँ श्रौर मेरा वर्ण कृष्ण है इससे मुभे कृष्ण कहते हैं।" इससे मालूम हो जायगा कि कृष्णके चरित्रसे इन व्युत्पत्तियोंके द्वारा भिन्न भिन्न अर्थके नाम उत्पन्न हुए श्रौर वेदान्तिक या पांचरात्रिक मत-के अनुसार उन नामोंका कैसा भिन्न अर्थ किया गया है। हर एक मतके शब्दों-में कुछ गुहा अर्थ रहता है और यह स्पष्ट है कि उसीके अनुसार ये अर्थ हैं।

पांचरात्र-मतमें दशावतारोंको छोड़ हयशिरा नामका श्रोर एक विष्णुका श्रवतार माना गया है जिसका थोड़ा सा मृत्तान्त देना श्रावश्यक है। दशावतार बहुधा सर्वमान्य हुए हैं। परन्तु हयशीव या हयशिरा श्रवतार पांचरात्र मतमें ही है। इसका सम्बन्ध वेदसे है। ब्रह्मदेवने कमलमें बैठकर वेदोंका निर्माण किया। उन्हें मधु श्रीर कैटभ दैत्य ले गये। उस समय ब्रह्मदेवने शेषशायी नारायणकी प्रार्थना की । तब नारायणने ईशान्य समुद्रमें हयशिरा रूप धारण कर ऊँची श्रावाजसे वेदका उद्यारण करना प्रारम्भ किया। तब वे दानव दूसरी श्रोर चले गये श्रीर हयशिरने ब्रह्मदेवको वेद वापस ला दिये । श्रागे मधु-कैटभने नारायण पर चढाई की, तब नारायणने उनको मारा। इस प्रकार यह कथा है। इस रूपका तात्पर्य ध्यानमें नहीं श्राता। यदि इतना ध्यानमें रखा जाय कि पांचरात्र मत वैदिक है और वेदसे इस खरूपका निकट सम्बन्ध है, तो माल्म हो जायगा कि वैदिक मतके समान ही इस मतका श्रादर क्यों है ? पांचरात्रका मत है कि ब्रह्मदेव श्रनिरुद्धकी नाभिसे पैदा हुश्राः परन्तु यहाँ यह बतलाने योग्य है कि श्रन्यत्र महाभारतसे श्रीर पौराणिक कल्पनासे लोगोंकी यह धारणा भी है कि नारायणके ही नाभिकमलसे ब्रह्मदेव पैदा हुआ।

श्वेत द्वीपसे लौट श्राने पर नर-नारायण श्रीर नारदका जो संवाद हुश्रा है
वह ३४२वें तथा ३४३वें श्रध्यायमें दिया
है। उसकी दो बातें यहाँ श्रवश्य बतलानी चाहिएँ। नारायणने श्वेत द्वीपसे
श्रेष्ठ तेजसंज्ञक स्थान उत्पन्न किया है।
वह वहाँ हमेशा तपस्या करता है। उसके
तपका ऐसा वर्णन है कि—"वह एक पैर
पर खड़ा होकर हाथ ऊपर उठाकर श्रीर
पर खड़ा होकर हाथ उपर उठाकर श्रीर
पर खड़ा होकर हाथ उठाकर श्रीर

इसके अनन्तर वे सव गुणोंको छोड़ मन-के रूपसे प्रयुद्धमें प्रवेश करते हैं; वहाँसे निकलकर जीव या संकर्षण्में जाते हैं। तत्पश्चात् उन द्विजश्रेष्ठोंकी सत्व, रज ब्रीर तम तीन गुणोंसे मुक्ति होकर वे न्नेत्रज्ञ परमात्मा वासुदेवके स्वरूपमें मिल जाते हैं। पांचरात्रके मतके श्रनु-मार मोचको जानेवाले श्रात्माकी गतिका वर्णन ऊपर दिया है । वेदान्तके मतसे यह भिन्न है। परन्तु यह भी दिखाई देता है कि वह भगवद्गीताके वर्णित ब्रह्मपद्से भी भिन्न है। अस्तु । पूर्वाध्यायमें यह वतलाया गया है कि वैकुएठ वासुदेव या परमात्माका नाम है। श्राश्चर्य इस बातका होता है कि यहाँ नारायणके श्रलग लोक होनेका वर्णन नहीं है। यह सच है कि वैकुएठकी गति नारायणके लोककी ही गति है, परन्तु वह यहाँ वत-लाई नहीं गई । यहाँ इस वातका भी उल्लेख करना श्रावश्यक है कि वर्तमान वैष्णव-मतमें मोत्तकी कल्पना भी भिन्न है।

पांचरात्र-मतमें वेदंको पूरा पूरा महत्त्व तो दिया ही गया है परन्तु साथ ही वैदिक यज्ञ आदि क्रियाएँ भी उसी तरह मान्य की गई हैं। हाँ, हम पहले बतला चुके हैं कि यज्ञका अर्थ अहिंसा-युक्त वैष्णव यज्ञ है। श्रागेके ३४५ वें श्रध्यायमें यह वर्णन है कि श्राद्ध-किया भी यज्ञके समान ही नारायणसे निकली है, श्रौर श्राद्धमें जो तीन पिएड दिये जाते हैं वे ये ही हैं जो पहलेपहल नारा-यणने वराह श्रवतारमें श्रपने दाँतोंमें लगे हुए मिट्टीके पिएड निकालकर स्वतःको पितररूप समभकर दिये थे। इसका तात्पर्य यह है कि पिएड ही पितर हैं, और पितरोंको दिये हुए पिएड श्रीविष्णु-को ही मिलते हैं।

इस प्रकार नारायणीय धर्मका खरूप

है श्रौर स्पष्ट दिखाई देता है कि वह भगवद्गीताके धर्मके स्वरूपके अनुन्तरका है। इसमें भगवद्गीताका हरिगीताके नाम-से स्पष्ट उल्लेख है और उसमें यह धर्म पहले संचेपतः वतलाया गया है जिसका वर्णन ३४६ वें श्रध्यायमें है। पहले बताई हुई हयग्रीवकी कथा ३४७ वे श्रध्यायमें है और अन्तमें यह कहा है कि—"नारायण ही वेदोंका भएडार है, वही सांख्य, वही ब्रह्म और वहीं यज्ञ है; तप भी वहीं है श्रौर तपका फल भी नारायणकी प्राप्ति है। मोचरूपी निवृत्ति लच्चणका धर्मभी वहीं है श्रीर प्रवृत्ति लक्त एका धर्म भी वही है।" इसके बाद पांचरात्र-मतका एक विशिष्ट सिद्धान्त यह बताया हुआ दिखाई देता है कि सृष्टिकी सब वस्तुएँ पाँच कारणोंसे उत्पन्न होती हैं। पुरुष, प्रकृति, खभाव, कर्म श्रौर दैव ये पाँच कारण श्रन्यत्र कहीं नहीं वतलाये हैं। भगवद्गीतामें भी नहीं हैं। ३४८ वें श्रध्याय-में सात्वत धर्मका श्रीर हाल बतलाया है। कहा है कि यह निष्काम भक्तिका पन्थ है। इसीसे उसे एकान्तिक भी कहते हैं। ३४१ वें श्रध्यायमें भगवद्गीता-का जो क्लोक निराले ढंगसे लिया है वह यह है:-

चतुर्विधा मम जना भक्ता एव हि मे श्रुतम्। तेषामेकान्तिनः श्रेष्टा

ये चैवानन्यदेवताः ॥३३॥
'ज्ञानी मुक्ते श्रत्यन्त प्रिय हैं, इस भगवद्गीताके बदले इस श्लोकमें कहा गया
है कि श्रनन्यदेव एकान्ती मुक्ते श्रत्यन्त
प्रिय हैं। श्रर्थात् यह वाक्य बादका है।
इस बातका वर्णन विस्तारपूर्वक किया
गया है कि नारायणने यह धर्म ब्रह्मदेवको भिन्न भिन्न सात जन्मोंमें बतलाया
तथा श्रन्य कई लोगोंको बतलाया। सात

बार ब्रह्माकी उत्पत्तिकी कल्पना नई ही है। वास्तवमें ब्रह्मकी एक ही उत्पत्ति होनी चाहिए। यदि ऐसा मान लिया जाय कि कल्प ब्रह्माका एक दिन है और इसी हिसावसे ब्रह्माके सी वर्ष माने जायँ तो अनेक ब्रह्मा हुए! सारांश, अनादि कालमें अनेक या अनन्त ब्रह्मा होते हैं। इसलिए यह ध्यानमें नहीं आता कि ब्रह्माके वर्तमान सातवें जन्मकी कल्पना किस वात पर श्रिधिष्ठत है।

ब्रह्माके इस सातवें जन्ममें भगवान-के बतलाये हुए इस धर्मकी परम्परा भगवद्गीतासे भिन्न है। "नारायणने यह धर्म ब्रह्माको दिया। ब्रह्माने युगके श्रारम्भ-में दत्तको दिया । दत्तने आदित्यको, श्रादित्यने विवखानको, श्रौर विवखानने त्रेताके श्रारम्भमें मनुको दिया। मनुने इच्वाकुको दिया श्रीर इच्वाकुने उसे लोगोंमें फैलाया। युगका चय होने पर वह फिर नारायणके पास जायगा।" जैसे भगवद्गीतामें कहा है वैसे यह इच्वाकुके बाद नष्ट नहीं दुश्रा। यहाँ यह भी बतलाया है कि-"मैंने तुभे हरि-गीतामें पहले यतिका धर्म वतलाया है।" यहाँ वैशम्पायनने भगवद्गीताका स्पष्ट उल्लेख किया है श्रीर कहा है कि उसमें यतिका धर्म वतलाया है। अर्थात् महा-भारत-कालमें भगवद्गीताका श्रौर ही कुछ तात्पर्यार्थ लिया जाता होगा। इस पांच-रात्र-धर्मको नारद मुनिने भी नारायणसे रहस्य श्रीर संग्रह सहित प्राप्त किया है। इस अहिंसायक धर्मसे हरि सन्तप् होता है।

एकव्यृहविभागो वा कचिद्द्विव्यृहसंक्षितः। त्रिव्यृहश्चापि संख्यातश्चतुव्यृहश्च दश्यते॥

"यह धर्म नारदने व्यासको बतलाया श्रीर व्यासने उसे ऋषियोके सन्तिध तथा श्रीकृष्ण श्रीर सीमके समज्ञ धर्म- राजको बतलाया। यह एकान्त धर्म मैंने तुभे बतलाया है।"

देवं परमकं ब्रह्मश्वेतं चन्द्राभमच्युतम्। यत्र चैकान्तिनो यांति नारायणपरायणाः॥

एकान्ती इस प्रकार श्वेतगतिको जाते हैं। यह धर्म गृहस्थ तथा यति दोनोंके ही लिए है।

श्वेतानां यतिनां चाह एकान्तगतिमव्ययाम् ॥६५॥ (ऋ० ३४६)

एवमेकं सांख्ययोगं वेदारगयकमेव च। परस्परांगान्येतानि पांचरात्रं च कथ्यते॥

इस स्रोकमें सांख्य,योग और वेदाल तत्वज्ञानका और पांचरात्रका अभेद वत-लाया गया है, अर्थात् ये ज्ञान बहुत पुराने हैं और पांचरात्र इनके वादका है।

३४६ वे अध्यायमें अपान्तरतमाके पूर्व कालका बृत्तान्त बतलाया है। इसका नाम वैदिक साहित्यमें नहीं है। यह पूर्व कल्पमें व्यासके स्थानका अधिकारी है। कदाचित् इसका नाम पांचरात्र-मतमे उत्पन्न हुआ होगा। इस अध्यायके अन्त-में सांख्य, योग, वेद, पांचरात्र तथा पाशु-पत इन पाँच तत्वज्ञानोंका वर्णन कर यह कहा है कि श्रपान्तरतमा वेद या वेदान्तका श्राचार्य है। सबका इसमें ऐसा समन्वय किया गया है कि पाँची मतोंका अन्तिम ध्येय नारायण ही है। कहा है कि पांचरात्र मतसे चलनेवाले निष्काम भक्तिके बलसे श्रीहरिको ही पहुँचते हैं। इसमें पांचरात्रको श्रलग कहा है।

श्रन्तके ३५० वे तथा ३५१ वे श्रध्याय भी महत्वके हैं। सांख्य श्रीर योग इस बातको मानते हैं कि प्रति पुरुषमें श्रात्मा भिन्न है। इसके सम्बन्धमें पांचरात्र-मतः का जो सिद्धान्त है वह इस श्रध्यायमें बतलाया गया है, परन्तु वह निश्चयात्मक तहीं दिखाई देता। श्रारम्भमें ही हमने व्यासका यह मत वतला दिया है कि सब जगह श्रात्मा एक है श्रीर कपिल मतसे भिन्न है। बहुधा इसी मतके श्राधार पर पांचरात्र मत होगा, पर हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते । कहा गया है कि "जीवकी उत्क्रान्ति, गति और श्रगति भी किसीको नहीं मालूम होती" ब्रीर "व्यवहारतः पृथक् दिखाई देनेवाले श्रनेक पुरुष एक ही स्थानको जाते हैं।" प्तः चारों मतोंकी एकता करके कहा है कि—"जो जीव शान्त वृत्तिसे श्रनिरुद्ध, प्रयुम्न, संकर्षण श्रीर वासुदेवके श्रिधदैव चत्र्यका श्रथवा विराट्, स्त्रात्मा, श्रन्तर्यामी और शुद्धब्रह्मके श्रध्यात्म-चत्रष्टयका स्थवा विश्व, तैजस, प्राज् श्रीर त्रीयके श्रवस्था चतुष्टयका क्रमशः स्थलसे सुद्रममें लय करता है, वह कल्याण पुरुषको पहुँचता है। योगमार्गी उसे परमात्मा कहते हैं, सांख्यवाले उसे प्कात्मा कहते हैं और ज्ञानमार्गी उसे केवल आतमा कहते हैं।"

एवं हि परमात्मानं केचिदिच्छंति पंडिताः।
एकात्मानं तथात्मानमपरे ज्ञानचितकाः।
सहिनारायणो क्षेयः सर्वात्मा पुरुषो हि सः॥
(श्र० ३५१)

"यही निर्गुण है। यही नारायण सर्वात्मा है। एक ही कर्मात्मा या जीव कर्मके भेद्से अनेक पुरुष वनता है।"

नारायणीय श्राख्यानका सार हमने यहाँ जानव्भकर क्रमशः दिया है। यह महाभारतका श्रान्तम भाग है श्रीर इसमें तत्कालीन पांचरात्र-मतका उद्घाटन किया गया है। इससे पाठकोंको माल्म हो जायगा कि यह भाग श्रान्तम यानी महाभारतके कालका है श्रीर भगवद्गीता एंच-एात्र-मतके मान्य श्रन्थोंकी परम्परामें

नहीं है। भगवद्गीतामें वासुदेव परमेश्वर-के शर्थमें है श्रीर श्रवतार-कल्पना भी उसमें है: परन्त पांचरात्र-मतमें वह भिन्न रीतिसे वढाई गई है। महाभारतमें श्रन्यत्र इस पांचरात्र-मतका जो उल्लेख आया है वह भी महाभारत-कालीन है। भीष्म-पर्वके ६५ वें तथा ६६ वें श्राध्यायोंमें भीष्म-ने दुर्योधनको यह समभाया है कि पाएडवोंका पराजय नहीं होगा क्योंकि श्रीकृष्ण नारायणका अवतार है। उसमें पिछले ब्रह्माकी कथा दी गई है। ब्रह्माने देवाधिदेवकी स्तृति करके श्रन्तमें कहा है—"तेरे सम्बन्धका गृह्यसे गृह्य ज्ञान में जानता हूँ। हे कृष्ण, तुने पहले अपनेसे संकर्षण देव उत्पन्न किया। तद्नन्तर प्रदास और प्रदाससे अव्यय विष्णुरूपी श्रानिरुद्ध उत्पन्न किया। श्रानिरुद्धने मुभ लोक-धारण-कर्त्ता ब्रह्माको उत्पन्न किया। श्रव तू अपने विभाग करके मनुष्यरूप ले और मर्त्यलोकमें असुरोंका वध कर " इसमें और पूर्वोक्त मतमें थोड़ासा अन्तर है जिसका विचार हम श्रागे करेंगे। ६६ वें अध्यायके अन्तमें कहा है कि, द्वापरके अन्तमें और कलिके आरम्भमें जिसका नारद-पांचरात्रके श्रागमकी पद्धतिसे संकर्षणने गायन किया है, वह यही वासुदेव प्रति युगमें देवलोक श्रौर द्वारकापुरीका निर्माण करता है। इसमें भी पांचरात्रका मुख्य प्रन्थ नारदका ही माना गया है। इसके त्रागेके दो ऋध्यायों-में वासुदेव ही महद्भृत है। उसीने सारा जगत् बनाया है। सब भूतोंके श्रयज संकर्षणका भी इसीने निर्माण किया है। सब लोगोंकी उत्पत्तिका हेतुभूत कमल इसीकी नाभिसे उत्पन्न हुन्ना है। सब

मूलमें ये शब्द हैं— 'सात्वतं विधिमास्थाय गीताः संकर्ष ग्रेन वै।''

पृथ्वीको मस्तक पर धारण करनेवाला विश्वक्पी दिव्य शेष इसीने उत्पन्न किया है। इसके कानकी मैलसे मधु दैत्य पैदा हुआ। जब वह ब्रह्माको नष्ट करने लगा तब इसीने उसे मारा, श्रतपव इसको मधुसूदन नाम मिला। यह ध्यानमें रखना चाहिए कि यहाँ भी उपर्युक्त नारायणीय श्राख्यानसे थोड़ा सा श्रन्तर है। सारांश यह कि नारायणीय श्राख्यान श्रीर ये श्रध्याय बहुत कुछ मिलते हैं। श्रीर, हमारे मतमें वे भगवद्गीताके बादके हैं।

पांचरात्र-मत यद्यपि पीछेसे उत्पन्न हुआ तथापि पाणिनिसे भी यह दिखाई देता है कि श्रीकृष्ण श्रौर श्रर्जुनकी भक्ति बहुत प्राचीन है। इन दोनोंको नर-नारा-यण कहनेका सम्प्रदाय बहुत पुराना होगा । नारायण या वासुदेवार्जुनोंकी भक्ति पांचरात्र-मतके पूर्व भी होगी। नारायणके श्रादिदेव होनेकी कल्पना बहुत पुरानी होगी श्रौर इसी लिए वह श्रारम्भके नमनके क्रोकमें आई है। भारती-युद्धके बाद वह शीघ्र ही उत्पन्न हुई होगी, क्योंकि भारती-युद्धमें इन्हींका मुख्य पराक्रम श्रौर कर्त्तृत्व प्रकट होता है। श्रीविष्णुका या श्रादि देवका नारायण नाम बहुत पुराना है। यहाँ एक बात बत-लाने योग्य यह है कि प्रत्येक वैदिक कर्मके ब्रारम्भमें या संन्ध्याके श्रारम्भमें जो भग-वानके चौबीस नाम कहनेका नियम है, वह सम्भवतः नारायणीय मतके बाद्का है:क्योंकि उसमें संकर्षण, वासुदेव, प्रयुम्न श्रीर श्रनिरुद्ध नाम श्राये हैं। इसमें वासु-देवके पूर्व संकर्षणका नाम कैसे आया है, यह नहीं कहा जा सकता। इसमें भी नारायणका नाम विलकुल पहले यानी चार नामोंसे श्रलग श्राया है। श्रनशासन पर्वके श्रध्याय १०६ से दिखाई देता है कि केशव, नारायण कम महाभारतके

कालमं निश्चित हो गया था। इस श्रध्यायमें विष्णुके बारह भिन्न भिन्त नामोंसे हर एक महीनेकी द्वादशीको उपवास करनेका वर्णन किया गया है। श्रतएव हम मान सकते हैं कि नारायण नाम पांचरात्र मतके पूर्वका है। भीष्म पर्वके वर्णनमें जो लिखा है कि श्रीकृष्ण श्रपने विभाग करके यादव-कुलमें श्रव-तार ले, उसके सम्बन्धमें कुछ आश्चर्य मालूम होता है। भारती-युद्धकालमें जो श्रीकृष्ण श्रवतीर्ण हुआ, वह पूर्ण श्रव-तार है श्रीर वहीं नारायणीय श्राख्यानमें देंख पड़ता है। शान्तिपर्वके २८० वें श्रध्यायमें लिखा है कि—"मूलदेव निर्विकार चिदातमा है श्रीर उसे महादेव कहते हैं। जब वह मायासे संवितत होता है तब चिद्चिदातमा भगवान् कार-णात्मा होता है। तीसरी श्रणी तैजस त्रात्मा श्रौर चौथी वर्तमान श्रीकृष्ण है जो मूल महादेवका अप्रमांश है।"

मूलस्थायी महादेवी भगवान स्वेन तेजसा । तत्स्थः सृजति तान् भावान् नानारूपान् महामनाः। तुरीयार्धेन तस्येमं विद्धि केशवमच्युत्तम् ॥६२॥

(शां० २=०)

इसमें जो मत वर्णित है वह श्रद्धत दिखाई देता है। यह नारायणीय श्राख्यान के पांचरात्र-मतसे भिन्न श्रीर बहुधा प्राचीन होगा। केवल यह कल्पना पांचरात्रकी दिखाई देती है कि नर श्रीर नारायण ऋषि बदिरकाश्रममें तप करते हैं। परन्तु इस बातसे भी श्राश्चर्य मालम होता है कि श्रादि देव नारायण भी घोर तप कर रहे हैं, जैसा कि उपर्युक्त श्रध्यायमें एक जगह कहा गया है। इस कठिन तपके विषयमें कहा गया है। कि नारायण एक पैरसे खड़े होकर हाथ ऊपर उठाकर सांग वेद कहते हैं। भगवन्त्र

हीताके "देवद्रिजगुरुपाज्ञपूजनं शौच-मार्जवम्" इत्यादि श्लोकोंमें तपकी जो ब्रति उदात्त कल्पना वर्णित है, उससे यह विलकुल भिन्न है। नारायणका तप, उसके चार ब्युह अथवा मृतिं, भ्वेत वीपके लोग और शात्माकी चार सक्पों-में क्रममुक्ति आदि कल्पनाएँ पांचरात्रमें भिन्न हैं। उसकी एकान्तिक वासदेव-भक्ति भी भगवद्गीतामें वर्णित भक्तिसे विशेष है। यह (गीताका) सामान्य भक्ति मार्ग पांचरात्र मतसे भिन्न दिखाई वेता है। पांचरात्रकी गृह्य पूजाविधियों-का वर्णन सौतिने नारायणीय श्राख्यानमें नहीं किया है। इस मतको श्रागम भी कहा है। अर्थात आगमोक्त कुछ भिनन पंजा-प्रकार हैं जो सम्भवतः गृह्य होंगे। महाभारतके आधार पर पांचरात्र-मतका इससे अधिक वर्णन हम नहीं कर सकते।

मेगास्थिनीजके कथनसे भी यह वात दिखाई देती है कि महाभारत-कालमें श्रीकृष्णकी भक्ति मुख्यतः सात्वत लोगोंमें प्रचलित थी। यहाँ पर यह कह देना उचित होगा कि उसने लिख रखा है कि मथुरामें शौरसेनी लोग हिर या हिराँ-क्षीज (श्रीकरूप) की भक्ति करते हैं।

(५) पाशुपत मत।

श्रव हम पाँचवें तत्वज्ञानका कुछ विचार करेंगे। सगुण ईश्वरकी कल्पना पहले श्रीकृष्ण-भक्तिसे निकली। परन्तु हम पहले कह चुके हैं कि साथ ही साथ शंकरकी सगुण भक्ति भी मान्य हुई होगी। शंकरकी भक्तिका उद्गम दशोपनिषदोंसे नहीं है, कदाचित् बादका है। वेद श्रीर उपनिषदोंमें विष्णु श्रीर ठद्र दोनों देवता हैं। परन्तु उपनिषत्कालमें श्रर्थात् दशो-पनिषत्कालमें परब्रह्मसे विष्णुका तादात्म्य हुआ। था। श्रवेताश्वतरमें यह तादात्म्य

शंकरसे किया हुआ पाया जाता है। यह बात "एकोहि रुद्रों न दिनीयाय तस्थु:" "मायां तु प्रकृतिं विद्या-न्मायिनं तु महेरवरम्" इन वचनांसे स्पष्ट है। भगवद्गीतामें भी ''रुद्राणां शंकरश्चारिम् " वचन है। त्रर्थात् यह निर्विवाद है कि उपनिषत्कालके अनन्तर भारती-कालमें शंकरकी रूपसे उपासना शुरू हुई, श्रीर इस स्वरूपकी एकता विशेषतः वैदिक देवता रुद्रके साथ हो गई। यज्जर्वेदमें रुद्रकी विशेष स्तुति है। यजुर्वेद यज्ञ-सम्बन्धी वेद है और यह मान्य हुआ है कि वह त्तत्रियोंका विशेष वेद है। धनुवेंद भी यञ्जवेंदका उपांग है, श्रौर श्वेताश्वतर उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेदका है । अर्थात् यह खाभाविक है कि ज्ञत्रियोंमें श्रोर यज्ञर्वेदमें शंकरकी विशेष उपासना शुक हुई होगी। इसके सिवा यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि ज्ञिय युद्धादि कर कर्म किया करते थे जिससे सम्भव है कि उन्हें कर देवता ही अधिक प्रिय हुए हों। कुछ श्राश्चर्य नहीं कि इसी कारण शंकरकी भक्ति रूढ हो गई श्रौर महा-भारत-कालमें तत्वज्ञानमें भी पांचरात्रके समान पाशुपत-मत प्रचलित हो गया। श्रव हम महाभारतके श्राधार पर देखेंगे कि यह पाग्रपत मत कैसा था।

पाग्रुपत-तत्वज्ञान शान्तिपर्वके ३४६वं श्रध्यायकी स्चीमें है श्रीर कहा है कि उसका उत्पन्नकर्ता शंकर श्रथात् उमा-पित श्रीकृष्ण ब्रह्मदेव-पुत्र ही है। हमने पहले ही बतलाया है कि सौतिकी व्यवस्था यह है कि विष्णुकी स्तुतिक वाद शीघ्र ही बहुधा शंकरकी स्तुति उसने रखी है। इस नियमके श्रनुसार नारायणीय उपाख्यानके समान पाश्रुपत-

मतका सविस्तर वर्णन, महाभारतमें शान्तिपर्वके २८० वें श्रध्यायमें विष्णु-स्तुतिके बीचमें इन्द्र श्रीर वृत्रका प्रसङ्गो-पात हाल कहने पर, २८४ वें श्रध्यायमें दत्त द्वारा की हुई शंकरकी स्तुतिमें किया गया है। दत्तके यहमें शंकर-को हविर्माग न मिलनेसे पार्वती श्रौर शंकरको कोध आया । शंकरने अपने क्रोधसे वीरभद्र नामक गणको उत्पन्न किया श्रीर उसके हाथसे दत्त-यज्ञका विध्वंस कराया। तब श्रक्षिमेंसे शंकर प्रकट हुए श्रीर दत्तने उनकी १००८ नामीसे स्तुति की। ऐसी यहाँ कथा है। मागे अनुशासन पर्वमें उपमन्युने जो सहस्र नाम बतलाये हैं उनसे ये नाम भिन्न दिखलाई देते हैं। इस समय शंकरने दत्तको 'पाशुपत' व्रत वतलाया है। "वह गृद् और अपूर्व है। वह सव वर्णों के लिए और आश्रमों के लिए खुला है श्रीर तिस पर वह मोचदायी भी है। वर्णाश्रम विहित धर्मोंसे वह कुछ मिलता भी है और कुछ नहीं भी मिलता। जो न्याय स्रोर नियम करनेमं प्रवीण हैं, उन्हें यह मान्य होने योग्य है और जो लोग चारों श्राश्रमोंके परे हो गये हैं यह उनके भी लायक है।"

श्चपूर्वं सर्वतोभद्रं सर्वतोमुखमन्ययम्। श्रद्भद्दशाहसंयुक्तं गृद्मप्राज्ञनिदितम्॥६३॥ वर्णाश्चमकृतैर्धमैविपरीतं कचित्समम्। गतान्तैरध्यवसितमत्याश्चममिदं वतम्॥६४॥

ध्यानमें रखना चाहिए कि इसमें 'ग्रब्दैर्वशाहसंयुक्तम्' पद कठिन श्रीर क्टार्थ है। सब देवोंमें जैसे शिव श्रेष्ठ है वैसे ही स्तवोंमें यह दक्तस्तव वरिष्ठ है।

इस वर्णनसे पाशुपत-मतकी कुछ कल्पना होगी। यह मत शंकरने सिख-साया है। इस मतमें पशुपति सब देवोंमें मुख्य है। वहीं सारी सृष्टिका

उत्पन्नकर्ता है । इस मतमें पशुका श्रर्थ है, सारी सृष्टि। पशु यानी ब्रह्मासे स्थावरतक सब पदार्थ । इसकी सगुण भक्तिके लिये कार्तिक स्वामी, पार्वती श्रीर नंदि देव भी शामिल किये जाते हैं श्रीर उनकी पूजा करनेको कहा गया है। शंकर श्रष्टमृतिं हैं। वे ये हैं - पंचमहाभूत. सूर्य, चंद्र और पुरुष । परन्तु इन मूर्तियाँ-के नाम टीकाकारने दिये हैं। श्रनुशासन पर्वमें उपमन्युके आख्यानमें इस मतका श्रीर थोडासा विकास किया गया है। परन्त इसमें हमेशाकी महाभारतकी पद्धति, यानी सब मतोंको एकत्र करनेकी प्रक्रिया दिखाई देती है। उदाहरणार्थ,-"शंकरने ही पहले पांचभौतिक ब्रह्मांड पैदा करके जगदुत्पादक विधाताकी स्थापना की: पंचमहाभूत, बुद्धि, मन श्रौर महतत्त्व महादेवने ही पैदा किये: पाँच ज्ञानेंद्रियाँ श्रीर उनके शब्दादि विषय भी उसीने उत्पन्न किये। ब्रह्मा, विष्णु श्रौर रुटको उसी महादेवसे शक्ति मिली है। भूलोक, भुवलांक, खलांक, महा-लोक, लोकालोक, मेरपर्वत और अन्यत्र सव स्थानोंमें शंकर ही व्याप्त है। यह देव दिगंबर, ऊर्ध्वरेता, मदनको जीतने-वाला और साशानमें कीड़ा करनेवाला है। उसके श्रर्थांगमें उसकी कांता है। उसीसे विद्या श्रीर श्रविद्या निकलीं श्रीर धर्म तथा अधर्म भी निकले । शंकरके भग लिंगसे निर्गुण चैतन्य श्रीर माया कैसे होतो है और इनके संयोगसे सृष्टि कैसे उत्पन्न होती है इसका अनुमान भी हो सकता है। महादेव सारे जगतका श्रादि कारण है। सारा चराचर जगत उमा श्रीर शंकरके दोनों देहोंसे ज्यात है।" (প্রনৃত স্তাত १४) शंकरके स्वरूपका उपमन्युको ऐसा

दर्भन हुआः— "शुभ कैलासाकार नंदि-

हर शुभ्र देहके देदीप्यमान महादेव वैठे हैं उनके गलेमें जनेऊ हैं; उनकी अठारह भुजाएँ श्रीर तीन नेत्र हैं, हाथमें पिनाक अतुष्य श्रीर पाशुपत श्रस्त्र है तथा त्रिश्ल है: त्रिश्लमें लिपटा हुआ साँप है; एक हाथमें परशुरामका दिया हुआ परशु है। दाहिनी श्रोर हंस पर विराजमान ब्रह्माजी हें स्रोर बाई स्रोर गरुड़ पर शंखचक-गृताधारी नारायण विराजे हैं। सामने मयर पर हाथमें शक्ति और घंटी लिये स्कंद बैठे हैं।" इस प्रकार शंकरका सगुण क्रप-वर्णन यहाँ दिया है । ऐसा वर्णन है कि इन्द्रने शतरुद्रिय कहकर उसका स्तवन किया है। शंकरके अवतारोंका महा-भारतमें कहीं वर्णन नहीं है। शंकरने जो त्रिपुरदाह किया उसका वर्णन बारबार श्राता है। "हे महादेव, तेरे सात तत्व (महत्, अहंकार और पंचतन्मात्रा) और छः श्रंगोंको यथार्थ जानकर तथा यह जानकर कि परमात्माका श्रभिन्न खरूप सर्वत्र व्याप्त है, जो तेरा ध्यान करता है वह तुसमें प्रविष्ट होकर सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है।" पाशुपत-तत्वज्ञानका इससे श्रंधिक ज्ञान महाभारतमें नहीं मिलता। पही मानना पड़ता है कि बहुधा महा-भारतकार सौतिने नारायणीयके समान पाशुपत-मतके सम्बन्धमें, उस समय स्वतंत्र आख्यान या अन्थके उपलब्ध न होनेके कारण, महाभारतमें इससे श्रधिक वर्णन नहीं दिया।

कुछ लोगोंने शंकरका स्थान कैलास श्रीर विष्णुका वैकुठ कहा है; परन्तु ये नाम मूलमें नहीं हैं, टीकासे लिये गये हैं। मूल श्लोक यहाँ देनेके योग्य है। ततोऽज्ययं स्थानमनन्तमेति देवस्य विष्णो-रथ ब्रह्मणुस्य। शेषस्य चैवाथ नरस्य चैव देवस्य विष्णोः परमस्य चापि॥ ६०॥ शान्ति पर्वके २८० वे श्रध्यायमें ये स्थान

श्रव्यय श्रीर श्रनन्त बतलाये गये हैं। श्रर्थात् वे अन्तिम हैं। इसमें प्रथम देवस्यका शंकर श्रर्थ लेना ठीक होगा। श्रीर विष्णोः दो वार श्राया है ; इसलिये प्रथम पांचरात्र-मतका स्थान समभना चाहिए । ब्रह्म-एस्य यानी ब्रह्म देवका श्रीर शेष यानी नाग लोक समभना चाहिए। टीकाकार-का कहना है कि नरस्यका ऋर्थ जीवस्य है श्रीर उसका श्रमिप्राय है कि यह मत सांख्यका है। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि सांख्य मतके अनुसार कोई अलग लोक ही नहीं है। परमस्य विष्णोः पदसे ब्रह्म-स्वरूपी परमात्मा विष्णुका अर्थ लेना-चाहिए श्रीर यह स्थान गीता-वचन 'तद्धा-मपरमं मम' में बतलाया हुआ वेदान्तियों-का है। यह स्लोक कृटके सदश है। यदि उसे एक तरफ रखें तो भी पाशुपतके परमस्थानका उल्लेख यहाँ या अन्यत्र नहीं है। महाभारतमें इस बातका वर्णन नहीं पाया जाता कि पाशुपत-मतके श्रनुसार मुक्त जीव कौनसी गतिको कैसे जाता है। कुछ उल्लेखोंसे हम यह मान सकेंगे कि कदाचित् वह कैलासमें शंकरका गरा होता है श्रोर वहाँसे कल्पांतमें शंकरके साथ मुक्त होता है। पहले श्रवतरणसे देख पड़ेगा कि पाशुपत मतमें संन्याससे एक सीढ़ी बढ़कर श्रत्याश्रमी मान लिये गये हैं। श्राजकल सब मतोंमें श्रत्या-श्रमी माने जाते हैं; परन्तु दक्तके पाशुपत वतमें उनका जैसा उल्लेख हैं, वैसा पहले रुद्रप्रयान श्वेताश्वतर उपनिषद्में श्राता है। तपः प्रभावादेव प्रसादाच ब्रह्म ह श्वेता-श्वतरोऽथ विद्वान् । श्रत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं प्रोवाच सम्यगृषिसंघजुष्टम् ॥ पाशुपत-मत सब वर्णीको समान मोद देनेवाला है, इससे बहुधा नीचेके वर्णमें इस मतके ऋधिक अनुयायी होंगे। हमारा अनुमान है कि पाशुपत मत केवल जिजी- का ही मोत्त होना मानता है। उसका यह मत दिखाई देता है कि भिन्न भिन्न जन्मोंके अन्तमें द्विजका जन्म मिलता है और नारायणके प्रसादसे उसे मोत्त या परमंगति प्राप्त होती है।

पाश्चपत मतमें तपका विशेष महत्व है।इस मतका थोड़ासा तपस्या सम्बन्धी वर्णाम देना आवश्यक है:- "कुछ लोग वायु भज्ञण करते थे। कुछ लोग जलपर ही निर्वाह करते थे। कुछ लोग जपमें निमग्न रहते थे । कोई योगाभ्याससे भगविचतंन करते थे। कोई कोई केवल श्रुम्रपान करते थे। कोई उष्णुताका सेवन करते थे। कोई कोई दूध पीकर रहते थे। कोई कोई हाथोंका उपयोग न करके केवल गायोंके समान खाते पीते थे। कोई कोई पत्थर पर अनाज कटकर अपनी जीविका चलाते थे। कोई चन्द्रकी किरणों पर, कोई जलके फेन पर और कोई पीपलके फलों पर श्रपना निर्वाह करते थे। कोई पानीमें पड़े रहते थे।" एक पैर पर खडे होकर, हाथ ऊपर उठा-कर बेद कहना भी एक विकट तप था। कहा गया है कि श्रीकृष्णने ऐसा तप छः महीनेतक किया था। इस उपमन्य श्राख्यानमें लिखा है कि शंकर भी तप करते हैं।

शंकरकी दल्लकत स्तुतिमें दो नाम ध्यानमें रखने योग्य है। उन्हें यहाँ देना आवश्यक है। चराचर जीवोंसे तू गोटों-की नाई खेलता है इससे तुभे 'चर्रचेली' कहते हैं। तू कारणका भी कारण है इससे तुभे 'मिलीभिली' कहते हैं। मूल श्लोक यह है—

षंटोऽघंटोघटीघंटी चरुचेली मिलीमिली। ब्रह्मकायिकमग्नीनाम् दंडीमुंडस्त्रिदंडधृक्॥ (शा० श्र० २८४-४५)

चरचेली श्रीर मिलीमिली शब्द संस्कृत न होकर द्रविड भाषाके मालूम पडते हैं। इससे हमने जो कहा है कि महादेवके दो स्वरूप हैं, एक श्रार्थ और दूसरा श्रनार्य, उसे कितना श्राधार मिलता हैं, इस बातको पाठक श्रवश्य देखें। भगवद्गीताके ढंग पर हर एक मतकी पर-म्पराका होना आवश्यक है। तद्जुसार पाश्रपत मतकी परम्परा श्रागेके लेखसे दिखाई देती है। श्रनुशासन पर्व श्र०१७ के अन्तमें यह कहा है- "ब्रह्मदेवने यह गृह्य पहले शक्रको बतलाया, शक्रने मृत्य-को, मृत्युने रुद्रकों; रुद्रने तएडीको, तएडी-ने शुक्रको, शुक्रने गौतमको, गौतमने वैव-स्वत मनुको, मनुने यमको, यमने नाचि-केतको, नाचिकेतने मार्कएडेयको, श्रीर मार्कएडेयने मुक्त उपमन्युको बतलाया।" यह प्रम्परा सहस्र-नाम-स्तवनकी है. तथापि हम मान सकते हैं कि वह पाग्र-पत मतकी होगी।

नहीं कह सकते कि पाग्रपत संन्यास-मार्गी हैं। उसीमें कहा है कि यह सम्पूर्ण वैदिक-मार्गी मत नहीं है। महादेवके गण भत पिशाचादि हैं श्रौर इस मतमें उनकी भी पूजा कही गई है। तथापि महाभारत-कालमें उनकी भक्ति श्रधिक फैली हुई नहीं दिखाई देती। पाशुपत तत्वज्ञानमें जगत्-में पाँच पदार्थ माने गये हैं-कार्य, कारण, योग, विधि श्रोर दुःख, जिन्हें श्राचार्योंने सूत्रभाष्यमें बतलाया है। परन्तु महा-भारतमें उनका उल्लेख नहीं है। जब पायु-पत तत्वज्ञान माना गया है तब उसके कुछ विशिष्ट मत अवश्य होंगे। इन सब भिन्न भिन्न तत्वज्ञानोंमें तीन चार बाते समान दिखाई देती हैं जिनका अन्तमें उल्लेख करना आवश्यक है। पहली बात यह है कि हर एक तत्वज्ञानकी प्राप्तिक लिए गुरुकी आवश्यकता है।यह सिद्धान्त

ब्रान नहीं प्राप्त हो सकता । 'तिक्रि-जानार्थे स गुरुमेवा मिगच्छेत समि-वाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं" मुएडक-का यह वाक्य प्रसिद्ध ही है। तथा हान्दोग्यमें कहा है—"आचार्याद्वयव विद्या विदिता साधिष्टं प्रापयति"। यहीं सिद्धान्त भगवद्गीतामें है। "तिद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदे-ह्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः श्रर्थात वेदान्तके ज्ञानके लिए गुरुकी श्रावश्यकता है। केवल भगवद्गीताका यह मतनहीं है कि यह ज्ञानस्वयंसिद्ध नहीं हो सकता। उसमें यह भी बतलाया है कि-''तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनाः त्मनि विंद्ति।" योगज्ञानके सम्बन्ध-में महाभारतमें "गुरूपदिष्ट मार्गसे ज्ञान प्राप्त करके" ये वचन पाये जाते हैं। पांच-रात्रका भी यही स्पष्ट मत दिखाई देता है। सिर्फ सांख्य श्रीर पाश्रपत मतोंमें यह उल्लेख स्पष्ट रीतिसे आया हुआ नहीं मिलता। तथापि इसके सम्बन्धमें उनका भी यही मत होगा। उदाहरणार्थ २३६ वें श्रध्यायमें कहा है—"गुरुकी बताई हुई युक्तिसे योगी जीवको स्थूल देहसे मुक्त कर सकता है।" अर्थात् इससे स्पष्ट है कि योगमार्गमें भी गुरुके उपदेशकी श्राव-रयकता है। तत्वज्ञानके गुरु उपनयनके गुरुश्रोंसे भिन्न हैं। दिखाई देता है कि रनके पास भी ब्रह्मचर्यका पालन करना पड़ता है। ब्रह्मचर्य यानी ब्रह्म-प्राप्तिके लिए गुरुकी सेवा—फिर वह एक दिनके वर्षोंके लिए हो। लिए हो या कई छान्द्रोग्योपनिषद्में कहा है कि इन्द्रने मजापतिके पासे १०१ वर्ष ब्रह्मचर्यकी

वपनिषदोंमें भी है कि विना गुरुके तत्व-

सेवा की। "एकशतं हि वर्षाणि मघवान् प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास्" तव उसने श्रन्तिम उपदेश किया। प्रश्लो-पनिषद्में कहा है कि--"भूतएव तपसा श्रद्धया ब्रह्मचर्येण वत्स्यथ ।" यह स्पष्ट है कि वुद्धि शुद्ध श्रीर योग्य होनेके लिए ही ब्रह्मचर्यका उद्श है। दूसरी बात, इसमें ब्रह्मचर्यके सव नियम मानने पड़ते हैं। पहला नियम यह है कि स्त्री-सङ्ग त्याग देना चाहिए। इसका जो सामान्य अर्थ लिया गया है सो ठीक है। यह बात सब तत्वज्ञानोंमें मान्य की हुई दिखाई देती है कि मोजक लिए ऐसे ब्रह्मचर्यकी श्रावश्यकता है। स्पष्ट कहा है कि कमसे कम योगीके लिए वह त्रावश्यक है। तीसरी बात, ब्रह्मचर्य-के साथ श्रहिंसाका नियम सब तत्वज्ञानी-को मान्य इन्ना दिखाई देता है। यह निश्चित है कि मांसान्नके भन्नणसे योगी या वेदान्तीका काम कभी न होगा। यह पहले बतलाया गया है कि पांचरात्र मतमें श्रीर साधारणतः भागवत मतमें हिंसा श्रोर मांसान्न वर्ज्य है। श्रोर इसी लिए कहा है कि हिंसावर्ज्य यह ही वैष्णव यज्ञ है। (केवल पाशुपत मतमें यह नहीं दिखाई देता।)

यह स्पष्ट है कि आवश्यकता केवल ज्ञान या विशेष गुद्ध मार्ग बतला देनेके लिए ही है। इसी लिए सनत्सुजातमें कहा है कि विद्यामें गुरुका चौथा भाग होता है। अर्थात् शेष तीन पाद शिष्यको स्वयं ही प्राप्त करने पड़ते हैं। उपनयन द्वारा वेदाध्ययन करनेके समय जो गुरु होता है उसके श्रतिरिक्त और तत्वज्ञान बतानेवाले गुरुके श्रतिरिक्त किसी अन्य धर्मगुरुका उल्लेख महाभारतमें नहीं है। धर्मगुरुकी कल्पना तब निकली जब भिन्न भिन्न धर्म हुए। कह सकते हैं कि महा-भारतके कालमें एक ही धर्म था। तत्व-ज्ञानके लिए किसी ब्रह्मनिष्ठके पास जा सकते थे। किसी विशिष्ट गुरुके पास जानेकी आवश्यकताका होना नहीं दिखाई देता।

चौथी बात—ग्रन्तमें यह बतलाना ज़रूरी है कि सब तत्वज्ञानोंमें धार्मिक तथा नीतिके श्राचरणकी श्रावश्यकता है।

नाविरतो दुश्चचरितात् नाशान्तो नासमाहितः। नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञा-नेनैनमाप्तुयात्॥ (कठ)

कार क्या है (या कार्म का में क्या है। व्यक्त

the part of the same of

ार्का क किए साई माई वार्काका स

mark Akam amerakan m

ment of the mail that the mail

(we all are of the plants of the

PURATE OF PER FIRE PART TO WE

क्षा के प्राथम अवस्था समय के प्राथम के जाता है। किस्तार के स्वतिक के समय किस्ता के समय क

TO THE WEST PRESENTATION.

AND THE PARTY OF THE THE

(1 大海 美国教

THE STREET, SECTION

वेदान्त तत्वज्ञानके समान यह तत्व सबके लिए उपयुक्त है। कहा है कि सब तत्वज्ञानोंमें मोज्ञकी इच्छा करनेवाले पुरुषको सद्धर्तन, सदाचार, नीति और शान्तिकी श्रावश्यकता है और ये ही उसके मोज्ञके लिए सहायक होते हैं। श्रर्थात् यह स्पष्ट है कि नीति या दशविध धर्मोंका उपदेश सब मतोंमें श्रन्तर्भूत है, श्रीर इसीसे हम इस बातको स्वीकृत नहीं कर सकते कि तत्वज्ञानीके मनमाने वर्ताव करनेमें कोई हर्ज नहीं। बहुत क्या कहा जाय, निश्चय तो यही होता है कि सच्चा तत्वज्ञानी उत्तम श्राचरण ही करेगा।

TO THE THE PERSON OF THE STREET

them spirate cent

मान जिल्लाम है से सम्बन्ध

HIP IT BOD FOR THE FIRST STREET

तिक भी देश का अपने किए में किए किए

new thereis deep chan treat

medsucer was in course

arrows of the resident

100 F 100 F

ned on a reput

HERMAN PROPERTY THE SHIPS

अग्रहिक मकरण।

भगवद्गीता-विचार

मस्त प्राचीन संस्कृत साहित्यमें जिस प्रकार महाभारत श्रत्यन्त श्रेष्ठ है, इसी प्रकार महाभारतके सब श्राख्यानी श्रीर उपाख्यानीमें भगवद्गीता श्रेष्ठ है। महाभारतमें ही जगह जगह पर भग-बद्गीताकी प्रशंसा है। भगवद्गीता उपनिषद-तुल्य मानी जाती है श्रीर सब प्राचीन तथा श्रवाचीन, प्राच्य तथा पाश्चात्य तत्व-हानी उसका श्रादर करते हैं। इसलिए महाभारतकी मीमांसामें भगवद्गीताके विषयमें स्वतन्त्र और विस्तृत रीतिसे विचार किया जाना ग्रत्यन्त श्रावश्यक है। निस्सन्देह इस विचारके श्रभावमें यह प्रन्थ श्रध्रा रह जायगा । श्रतएव इस प्रकरणमें भिन्न भिन्न दिष्ट्से भगवद्गीता-सम्बन्धी विचार करनेका हमने निश्चय किया है। भगवद्गीताके सम्बन्धमें जो श्रनेक शंकाएँ श्राजतक लोगोंने की हैं उनका भी समाधान यथा-शक्ति यहाँ किया जायगा।

भगवद्गीता सौति-कृत नहीं है।

भगवद्गीताके सम्बन्धमं पहला प्रश्न यह है, कि क्या यह प्रन्थ एक हो कर्ता-का है या महाभारतके समान इसमें भी दो तीन कर्त्ताश्चोंकी रचना देख पड़ती है? हमारे मतसे भगवद्गीता प्रन्थ श्चारम्भसे अन्ततक, एक ही दिन्य-कल्पना-शक्तिसे निर्मित किया गया है श्चीर वह सब पकारसे सर्वांग सुन्दर तथा सुबद्ध है। हमने महाभारतके तीन कर्त्ता निश्चित किये हैं:—ज्यास, वैशम्पायन श्चीर सौति। हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि भग-

वद्गीता-ग्रन्थ सौतिका बनाया हुन्ना नहीं है। यहाँ यह बतानेकी आवश्यकता नहीं कि, सौतिने खयं श्रपने विस्तृत महा-भारतमें भगवद्गीताके कौनसे वचन बार बार उद्धृत किये हैं। ये वचन पाठकोंके ध्यानमें तुरन्त ही श्रा जायँगे। महाभारत-कारके मनमें भगवद्गीताके विषयमें जो श्राद्र था वह उन वचनोंसे देख पंडता है। यह स्पष्ट जान पड़ता है कि महा-भारतका निर्माण करते समय सौतिके सामने वर्तमान समयकी सम्पूर्ण भग-वद्गीता थी। इस बातके एक या दो अन्य प्रमाण भी दिये जा सकते हैं। हम पहले लिख चुके हैं, कि सौतिने मूल भारतके कई उत्तम भागोंका श्रमुकरण कर विस्तृत महाभारत बना डाला है। भगवद्गीताकां ही अनुकरण कर उसने अश्वमेध-पर्वमें एक गीताको स्थान दे दिया है श्रीर उसका नाम भी 'श्रनुगीता' रखा है। श्रर्थात् वह भगवद्गीताके अनुकरण पर पीछेसे बनाई गई है। सारांश, भगवद्गीता सौति-के सामने न केवल श्रति उत्तम नमूनेके सदश थी, किन्तु उसने भगवद्गीताकी स्तुतिश्रीकृष्णके मुखसे ही इस अनुगीताके प्रसङ्गमें कराई है। जब युद्धके बाद श्रर्जुनने श्रीकृष्णसे यह कहा कि—"युद्धके श्रार-रम्भमें जो दिव्य-ज्ञान मुभे स्नापने बत-लाया था सो फिर बताइये, क्योंकि वह (मेरा ज्ञान) नष्ट हो गया है," तब श्रीकृष्ण-ने यह उत्तर दिया कि:-

परं हि ब्रह्म कथितं योगयुक्तेन चेतसा।
न शक्यं तन्मया भूषस्तथा वकुमशेषतः॥
स हि धर्मः सुपर्याप्तो ब्रह्मणः परिवेदने।
न च साद्य पुनर्भूयः स्मृतिर्मे संभविष्यति॥
(श्रश्व० श्र० १६)

"में उस भगवद्गीताको फिरसे न कह सक्राँगा।" श्रीकृष्णके इस वाक्यमें न जाने भगवद्गीताकी कितनी स्तृति है !!! सौति स्थयं अपने ही कामकी वड़ाई कभी न करेगा। यह बात स्पष्ट देख पड़ती है कि दूसरेका रचा हुआ भगवद्गीता-अन्थ सौतिके सामने था और उसका उसके मनमें अत्यन्त आदर भी था। हम कह सकते हैं कि भगवद्गीताका अनुकरण कर उसने अनुगीता-उपाख्यानको महाभारत-में स्थान दिया है।

इसके सिवा अनुकरणका और भी एक प्रमाण हमें देख पड़ता है। महाकवि-के अत्युदात्त कौशल्यके अनुरूप व्यास श्रथवा वैशम्पायनने विश्वरूप-दर्शनका चमत्कार भगवद्गीताके मध्य भागमें ग्रथित किया है। यह चमत्कार इस स्थान पर बहुत ही मार्मिक रीतिसे आया है श्रीर उसका यहाँ उपयोग भी हुआ है। श्चर्जनके मन पर श्रीकृष्णके दिव्य-उपदेश-का तत्व पूर्णतया प्रस्थापित करनेका उसका उपयोग थाः श्रीर वह हुश्रा भी। धर्म-संस्थापकके लिए चमत्कारका अस्तित्व सब धर्मोंमें माना गया है। इसीके अनु-सार हमारे महाकविने इस चमत्कारकी योजना भगवद्गीतामें उचित स्थान पर श्रीर योग्य कारणसे की है। परन्त सौति-ने इसी चमत्कारका श्रवलम्बन श्रनुकरण-से अन्य स्थान पर किया है। वह अयोग्य स्थान पर हुआ है और उसका कुछ उप-योग भी नहीं हुआ। उद्योग पर्वके १३१वें श्रध्यायमें यह वर्णन है कि जब श्रीकृष्ण कौरवींकी सभामें दूत या मध्यस्थका काम करने गये थे, उस समय उन्होंने अपना विश्वरूप धृतराष्ट्रको दिखलाया था। वह सचमुच भगवद्गीतामें दिये हुए विश्वक्रप-दर्शनका अनुकरण है। इतना ही नहीं, किन्तु कहा गया है कि जिस प्रकार श्रर्जुनको श्रीकृष्णने विश्वरूप देखनेके लिए दिव्य-दृष्टि दी थी, उसी प्रकार यहाँ

धृतराष्ट्रको श्रीकृष्णने दिन्य-दृष्टि दी। सारांश, पढ़नेवालोंको यह माल्म हुए विना नहीं रहता, कि भगवद्गीतामें दिया हुश्रा विश्वरूप-दर्शन श्रसल है श्रीर उद्योग पर्वमें दिया हुश्रा सिर्फ नकल है श्रीर वह भी श्रयोग्य स्थानमें है। श्रर्थात् हमारा यही श्रनुमान दृढ़ होता है, कि इस समय भगवद्गीता जैसी है वैसी ही वह सौतिके सामने उपस्थित थी श्रीर उसके श्रादरके कारण श्रनुकरण द्वारा यह भाग उद्योग पर्वमें प्रविष्ट किया गया है।

यहाँ यह भी प्रश्न उपस्थित होता है कि सौतिके सन्मुख जैसी भगवद्गीता थी वैसी ही उसने महाभारतमें शामिल कर दी है या उसमें उसने कुछ श्रीर भी मिला दिया है। कई लोगोंका मत यह है, कि विश्वरूप-दर्शनके अनन्तरके कुछ अध्याय सौति द्वारा जोड दिये गये हैं। हापिकन्स-का मत भी यही देख पड़तां है कि भग-वद्गीताके वीचके श्रध्याय पीछेसे जोड़े गये हैं श्रीर श्रारम्म तथा श्रन्तके श्रध्याय मुलभूत हैं। राजाराम शास्त्री भागवतने भी यह प्रतिपादन किया था, कि आरम्भ-के दो श्रध्याय पीछेसे मिला दिये गये हैं। उन्होंने यह कारण दिखलाया था कि विभूति-श्रध्यायके श्रीर १५वें श्रध्यायके कुछ वचनोंका पूर्वापर संदर्भ या मेल नहीं मिलता। परन्तु हमारे मतमें यह तर्क गलत है। हम पिछले प्रकरणमें बता चुके हैं कि विश्वक्रप-दर्शनके श्रनन्तरके श्रध्यायोंमें जो सांख्य श्रीर वेदान्त-ज्ञान बतलाया गया है, वह महाभारत-कालके पूर्वका है। चेत्रकी व्याख्यामें भगवद्गीतामें 'इच्छादेषः सुखं दुःखं संघातश्रे-तना धृति:'' इन सब बातोंको शामिल किया है, परन्तु इनका उल्लेख महाभारत-में नहीं मिलता । सांख्य तत्व-ज्ञानका

उद्घाटन सौतिने वार बार शान्ति-पर्वमें किया है, परन्तु उसमें इसका पता नहीं। ब्रीर, वेदान्त-ज्ञानका जो विस्तृत वर्णन ग्रास्ति-पर्वमें वार बार किया गया है. उसमें भी कुछ उस्लेख नहीं है। पनद्रहवें ब्रध्यायका पुरुषोत्तम योग भी फिर वर्णित नहीं है। दैवासुर संपद्विभाग भी फिर कहीं देख नहीं पड़ता। सत्व, रज, तम आदि त्रिगुणोंका वर्णन वार वार ब्राया है, परन्तु इस दैवासुर संपद्यिभाग-का पुनः उल्लेख नहीं है। ये सव भाग (गीतामें) इतनी सुन्दर श्रीर श्रलौकिक रीतिसे श्रीर भाषामें वर्णित हैं:--उदा-हरणार्थ ज्ञानका वर्णन, त्रिगुणोंका वर्णन, या "ईश्वरोहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान सुखी" इत्यादि श्रासुर स्वभावका वर्णन इतना मनोहर है कि हम नहीं मान सकते कि वह सौतिके द्वारा किया गया होगा । श्रीयुत भगवतकी कल्पना तो विलकुल गलत है। भागवद्गीतामें कहीं विरोध नहीं है; इतना ही नहीं, वरन् विभूति-वर्णनका अध्याय भी अत्यन्त सुन्दर कल्पनाश्रोमेंसे एक भाग है श्रोर उसीका अनुकरण प्रत्येक आगामी भिन्न भिन्न गीतात्रोंने किया है। पन्द्रहवाँ अध्याय भी अतिशय मनोहर है और वही गीताके सब अध्यायोंमें श्रेष्ट माना जाता है। इन्हीं दो श्रध्यायोंमें श्रीयुत भागवतने विरोधी वचन वतलाये थे। परन्तु हमारी श्रालोचनासे ज्ञात होगा कि यह कल्पना सम्भवनीय नहीं कि बीचके श्रध्यायोंको सौतिने पछिसे मिला दिया होगा। उन अध्यायोंके सब विषय सौतिके समय-के ज्ञानसे भिन्न हैं। उनकी भाषा श्रीर विचार-शैली भी अत्यन्त रमगीय श्रौर दिव्य है। सारांश, उनकी रचना, विचार-शैली और भाषा गीताके अन्य भागोंके श्रसदश विलकुल नहीं है। इससे यही

श्रनुमान किया जा सकता है कि वे भाग भगवद्गीतामें मौलिक हैं श्रौर जिस विश्व-रूप-दर्शनके भागका सौतिने श्रनुकरण किया है वह भी उन्हींमें है। ऐसी दशामें यही मानना पड़ता है कि ये सब भाग सौतिके सामने थे, श्रौर उसने इन भागों। को गीतामें शामिल नहीं किया है।

भगवद्गीताका कर्ता एक है।

हमारा मतं है कि भगवद्गीतामें किसी प्रकारकी विसदश मिलावट नहीं है। भाषाको दृष्टिसे, कवित्वकी दृि से, विषयोंके दिव्य प्रतिपादनकी दृष्टिसे

 भगवद्गीतामें ७०० श्लोक हैं जिनमेंसे तेरहवें श्रध्याय-के आरम्भका एक श्लोक माना नहीं जाता। वह श्लोक इस प्रकार है:- "प्रकृति पुरुषं चैव त्रेत्रं त्रेत्रज्ञमेव च। एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव ॥'' गीताकी सब प्रतियोंमें यही सात सी श्लोक पाये जाते हैं। परन्तु यह एक बड़ा कठिन प्रश्न है कि महाभारतमें गीताके अनन्तर-के श्लोकोंमें जी संख्या गिनाई गई है वह गलत क्योंकर है ? वे श्लोक इस प्रकार हैं:—"पट्शतानि सर्विशानि श्लोकानां प्राह केशवः । ऋर्जनः सप्तपंचाशत् सप्त पष्टि तु संजयः । धृतराष्ट्रः श्लोकमेकं गीताया मानमुच्यते ॥" नीलक्षरठका यह कथन बहुत ठीक है कि गौड़ इन श्लोकोंको नहीं मानते । यद्यपि दाचि णात्योंकी पोथियोंमें ७०० श्लोकोंकी ही गीता है, तथापि आश्चर्यकी बात है कि धृतराष्ट्रका एक श्लोक, ऋर्जुनके ५७, सक्षयके ६७ श्रीर शीकृष्णके ६२० सव मिलाकर ७४५ श्लोकोंकी संख्या वत-लानेवाला श्लोक कहाँसे श्राया ? न केवल कुल श्लोकोंकी संख्या गलत है वरन् प्रत्येककी संख्यामें भी भूल है। गीताकी सब प्रतियोमें श्लोकोंकी गिनती इस प्रकार है:--धृतराष्ट्रका १ श्लोक, सअयके ४१, अर्जुनके ८५ और श्रीकृष्णके ५७३। इस प्रकार जान पड़ता है कि सब गड़वड़का कारण यह प्रचिप्त श्लोक है जिसे किसी विचिप्तने यहाँ शामिल कर दिया है। यदि यह श्लोक सौतिका ही हो, तो कहना पड़ता है कि उसके अत्यन्त गूड़ संख्या विषयक कृट श्लोकोंमेंसे यह भी एक है। वर्तमान ७०० श्लोकोंकी गीतामें कहीं भक्ष या विसदृशता नहीं देख पड़ती, इसलिए उक्त श्लोकको प्रचिप्त सममकार अलग ही कर देना चाहिए। हमारा मत है कि इस श्लोकके श्राधार पर कुछ भी श्रनुमान करना उनित न होगा।

या उत्तम छुन्द-रचनाकी दृष्टिसे यही अनुमान करना पड़ता है कि सगव-हीताको एक ही अत्यन्त उदात्त कथित्व-शक्तिके पुरुषने बनाया है। भगवद्गीताकी भाषा बहुत जोरदार, सरल श्रीर सादी है। हम पहले लिख चुके हैं कि जिस समय संस्कृत भाषा प्रत्यज्ञ व्यवहारमें बोली जाती थी उस समयकी श्रर्थात् वर्त-मान महाभारतर्के पहलेकी यह भगवद्गीता है। पाणिनिके व्याकरणके नियमोंके अनु-सार उस भाषाकी गलतियाँ बतलाना, मानो तुलसीकृत रामायणकी हिन्दीमें 'भाषाभास्कर' के नियमानुसार गलतियाँ बतलाना है। भाषाके मृत हो जाने पर उसके श्राप्त व्याकरणकी दृष्टिसे किसी ग्रन्थमें गलतियाँ बतलाई जा सकती हैं। परन्तु पाणिनीके पूर्वकी भगवद्गीताकी बोल-चालकी संस्कृत भाषाकी गलतियाँ बतलाना निरर्थक है। भगवद्गीताके अनु-ष्ट्रप् श्लोकोंका माधुर्य बहुत ही श्रेष्ठ दर्जेका है। यह बात हाप्किनने अनेक श्लोकोंके हस्व-दीर्घ-श्रनुक्रमका विचार कर महाभारतके अन्यान्य भागोंके अनु-ब्द्रभोंकी तुलनासे दिखा दी है। भगवद-गीतामें यह बात कहीं देख नहीं पडती कि उसके किसी एक अध्यायमें भाषाकी सुन्दरता अथवा छन्दोंकी मधुरता न्यूना-धिक हो। इसी प्रकार विषयके प्रति-पादनमें कहीं विरोध भी देख नहीं पडता। अधिक क्या कहा जाय, सभी विषय एकसी ही दिव्य कल्पना शक्तिसे वर्णित हैं श्रीर उसमें महातत्वज्ञानात्मक गम्भीर विचार प्रगल्भ श्रौर प्रसाद्युक्त वाणीसे किया गया है। श्रतएव सिद्ध है कि भगवद्गीताका सम्पूर्ण प्रन्थ एक ही बुद्धिमान कविके प्रतिभा-सम्पन्न मस्तिष्क-को सृष्टि है; श्रीर वह ताजमहलकी अनुपम इमारतके समान सुन्दर, सुबद्ध

तथा विशाल कल्पनासे परिपूर्ण हमारे सन्मुख उपस्थित है। उसमें न तो कहीं मिलावट है, न कहीं जोड़ है और न पीछेसे शामिल किया हुआ कोई भाग देख पड़ता है। उसकी सम्पूर्ण भन्य श्राकृति श्रथवा छोटे छोटे मनोहर भाग एक ही प्रतिभासे उत्पन्न हुए हैं। "न योतस्ये इति गोविन्द्मुक्त्वा तृष्णीं बभूव ह" यह उसकी नीव है; विश्वरूपदर्शन उसका मध्य भाग है और "करिष्ये वचनं तव" उसका शिखर है। सांख्य. योग, वेदान्त और भक्ति उसकी चार भुजाएँ हैं और चारों कोनोंके चार मीनार हैं। कर्मयोग उसके वीचका प्रधान मीनार है। भिन्न भिन्न चार तत्त्वज्ञानों के अत्तर संग-ममरकी चारों दीवारों पर रंगीन संगममरके पत्थरोंसे ही खुदे हुए हैं श्रीर इनके चारों दरवाज़ोंके अन्दर मध्य स्थानमें परब्रह्म स्थित है।" इस प्रकार इस दिव्यतत्वज्ञानात्मक ग्रन्थ-की श्रलौकिक सुन्द्रता हम सब लोगों-को चिकत कर देती है। सारांश, इस सर्वश्रेष्ट गीतामें कहीं भी विसदश मिला-वट नहीं देख पड़ती। उसमें एक भी ऐसा विचार नहीं है जो उसकी उदात कल्पनाको शोभा न दे अथवा उससे मेल न खाय। यह भी नहीं कहा जा सकता कि किसी एक स्थानमें भाषा या कल्पना कुछ कम रमणीय श्रथवा गम्भीर है। अन्तमें विना यह कहे नहीं रहा जाता कि यह श्रलौकिक ग्रन्थ एक ही महा बुद्धिमान् कर्त्ताकी कृति है।

भगवद्गीता मूल भारतकी ही है।

श्रव यहाँ यह शङ्का होती है कि भग-वद्गीताका सम्पूर्ण ग्रन्थ तत्वज्ञान-विष-यक है, इसलिए आरम्भमें महाभारतकी कथाके साथ उसका कुछ भी सम्बन्ध न होगा; श्रोर इसी लिए यह क्यों न मान लिया जाय कि उसको एक उत्तम ग्रन्थ समभकर सौतिन अपने महाभारतमें ब्रन्य श्राख्यानोंके समान शामिल कर दिया होगा। कुछ लोगोंकी तो यह कल्पना है कि भगवद्गीता मूल भारती इतिहाससे सम्बद्ध नहीं थीं श्रीर न उसको श्रीकृष्णने कहा ही है। उसको भगवान् नामक गुरुने कहा है श्रौर सौति-ने अपने महाभारतमें शामिल कर लिया है। तत्वज्ञानके सव ग्रन्थों श्राख्यानोंको एकत्र कर लेनेका सौतिका उद्देश था ही। तब इस उद्देशके अनुसार यह क्यों न कहा जाय कि सौतिने भग-वद्गीताको महाभारतमें शामिल कर लिया है ? सारांश, यह भी तो कैसे माना जा सकता है कि भगवद्गीता मूल भारतका एक भाग था? हमारे मतसे यह कल्पना चण भर भी स्थिर नहीं रह सकती। यथार्थमें भगवद्गीताकी कल्पना श्रीकृष्ण श्रौर श्रर्जुनके श्रतिरिक्त हो ही नहीं सकती। भगवद्गीताके उपदेशका श्रारम्भ जिस उत्तम श्लोकसे होता है वह श्लोक यदि भगवद्गीतामें न हो तो उसे गीता कहेगा ही कौन ?

त्रशोंच्यानन्वशोचस्त्वंप्रज्ञावादांश्चभाषसे। गतास्नगतास्ंश्चनानुशोचन्ति परिडताः॥

इस उदात श्लोकसे ही उपदेशका श्रारम्भ उचित रीतिसे हुश्रा है श्रीर इसका सम्बन्ध भारतीय युद्धके ही साथ है। भगवद्गीतामें बार बार यही चर्चा भी की गई है कि युद्ध किया जाय या नहीं।

''युद्धयस्य विगतज्वरः", 'मामनुस्मर युद्धय च" इत्यादि उप-देश भी बार बार दिया गया है। विश्वरूप-दर्शनमें भी समस्त भारतीय युद्धकी ही कल्पना पाई जाती है श्रीर वहाँ यह दश्य दिखाया गया है कि विश्वरूपके भयानक जवड़ेमें भीष्म,दोण श्रादि श्रसंख्य वीर कुचले जा रहे हैं। श्रर्थात् यह बात स्पष्ट है कि जिस भगवदीतामें विश्वरूप-दर्शन है उसका सम्बन्ध भारतीय युद्धके साथ श्रवश्य होना चाहिए । वह सौतिके महाभारतका भाग नहीं है; श्रर्थात् हमने निश्चित किया है कि सीतिने भगवद्गीता-को वर्तमान रूप नहीं दिया है, किन्तु यह रूप उसके सामने पहलेसे ही पूर्णतया उपस्थित था। तब ऐसी कल्पना करनेसे क्या लाभ है, कि भारतीय युद्ध-कथाके साथ सम्बद्ध रूप किसी दूसरे व्यक्तिने पहले ही दे दिया होगा ? संत्रेपमें यही कहा जा सकता है कि गीता व्यास अथवा वैशंपायनके मृल भारतका ही भाग है। इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं कि भग-वद्गीतामें श्रीकृष्णके ही मतोंका उद्घाटन है। यह आवश्यक और खाभाविक भी है कि जिस भारत-प्रन्थमें श्रीकृष्ण श्रीर श्रर्जुनका प्रधान रूपसे इतिहास दिया गया है, उसी भारत-ग्रन्थमें श्रीकृष्णके तत्वज्ञानकी भी कुछ चर्चा हो। इस दृष्टि-से देखने पर श्राश्चर्य नहीं होता कि श्रीकृष्णके तत्वोपदेशका विवेचन करने-वाली भगवद्गीताको भारतका ही एक भाग होना चाहिए। जिस ग्रन्थमें नर श्रीर नारायणको विजयका वर्णन है उस मूल भारत ग्रन्थमें ही नर-नारायण्के सम्वाद रूपसे श्रीकृष्णके तत्वशानका उद्घाटन होना चाहिए । श्रधिक क्या कहा जाय, यह बात तो महाकविकी अत्यन्त उदात्त काञ्ब-कलाके अनुरूप ही है। साधारण रीतिसे यही सम्भव है कि भारत-श्रार्थमहाकाव्यका ही एक भाग भगवद्गीता है; इतना नहीं, किन्तु भगव-द्गीताका किसी दूसरे रूपमें होना अस-म्भव है। यदि हम यह मान लें कि भगव-द्गीतामें वर्णित तत्व पहले किसी समय श्रन्य शब्दोंमें या अन्य रूपमें उपस्थित थे, और यदि यह भी मान लें कि उस तत्वज्ञानको व्यास अथवा वैशंपायनने अपने शब्दोंमें वर्तमान रूपसे भारत ग्रन्थमें ले लिया है. तो इस कथनमें कुछ भी खारस्य नहीं है। इसका कारण यह है कि भगवद्गीताका जो वर्तमान रूप है श्रीर उसके जो वर्तमान शब्द हैं वही अत्यन्त महत्वके हैं। इस बातको कोई श्रस्वीकार न करेगा। तय तो ऐसी कल्पनामें कुछ भी अर्थ नहीं देख पड़ता कि भगवद्गीता पहले किसी समय बिलकुल भिन्न मूल खरूपमें होगी।

रणभूमि पर गीताका कहा जाना असम्भव नहीं।

कभी कभी कुछ लोग यह प्रश्न भी किया करते हैं कि, क्या इस प्रकार लम्बा-चौड़ा संभाषण ठीक युद्धके समय कहीं हो सकता है ? हमारा मत है कि प्राचीन भारतीय श्रायोंकी परिस्थितिका विचार करनेसे इस प्रकारका सम्वाद श्रसम्भव नहीं जान पड़ता। श्रधिक क्या कहा जाय. प्रत्यत्त वस्तुस्थितिका इसी प्रकार होना सम्भव है। भारतीय युद्धमें दोनों श्रोरकी एकत्र श्रीर श्रामने-सामने खडी हुई सेनात्रोंके विषयमें यदि उचित कल्पना मनमें की जाय तो यह बात किसी प्रकार श्रसम्भव नहीं जान पड़ती कि दोनों सेनात्रोंके मध्य भागमें श्रीकृष्ण श्रर्जुन रथ पर बैठे हुए विचार कर रहे थे कि युद्ध करना उचित होगा या श्रनु-चित। यह बात बतला दी गई है कि

दोनों सेनाश्रोमें कमसे कम ५२ लाख मनु-ध्य थे। ये सेनाएँ लम्बाईमें युद्ध-भूमि पर कई कोसोंतक फैली हुई होगी। दोनों सेनाएँ एक दूसरेसे श्राध कोस या पाव कोसके अनन्तर पर खड़ी होंगी। उस समय धर्म-युद्धकी नीति प्रचितत थी, अतएव सम्भव नहीं कि कोई किसी पर असावधानीकी अवस्थामें शस्त्र चला सके । यदि श्रर्जुनका रथ कुछ श्रागे बढ़-कर मध्य भागमें ऐसे स्थान पर खड़ा हो गया कि जहाँसे दोनों सेनाएँ दिखाई दे सकें तो इस बातमें किसीके श्राश्चर्य करने योग्य कुछ नहीं था। श्रीकृष्ण श्रीर श्रर्जुन-का सम्भाषण एक घन्टे या सवा घन्टेसे श्रधिक समयतक नहीं हुआ होगा। यह वात इस श्रमुभवसे सिद्ध है कि जो लोग वर्तमान समयमें गीताका पूरा पाठ प्रति-दिन किया करते हैं उन्हें इससे अधिक समय नहीं लगता। यह भी माननेकी श्रावश्यकता नहीं कि दोनों दलोंके सेना-पति श्रर्जन श्रीर श्रीकृष्णके सम्भाषणकी समाप्तिकी बाट जोहते रहे होंगे: क्योंकि इतने बड़े दलकी रचना कर लेना कुछ एक दो मिनटका काम नहीं है। इसके सिवा, ऐतिहासिक लडाइयोंके वर्णनसे यह भी ज्ञात होता है कि दलोंके सेनापति श्रपने श्रपने दलकी रचना करते समय एक दूसरेके दलका बहुत ही सुदम निरी-च्रण करनेमें कई घराटे लगा दिया करते हैं । श्रीकृष्ण श्रोर श्रर्जुनकी बातचीत दूसरे योद्धात्रोंको नहीं सुनाई देती थी। श्रर्थात् कहना चाहिए कि उन लोगोंका ध्यान उनकी श्रोर न था। यह भी मान लिया जाना स्वाभाविक है कि वे अपने दलकी रचनाका निरीच्या कर रहे हों। सारांश, युद्ध-भूमिका विस्तार, श्रपने श्रपने दलोंकी रचना, उनका निरीषण श्रीर धर्म-युद्धके नियम इत्यादि बातोंका

विचार करने पर यही सिद्ध होता है कि भारती-युद्ध के पहले दिन, युद्ध के पहले ही, श्रीकृष्ण श्रीर श्रर्जुनने तत्वज्ञान-विषयक चर्चामें घराटा या सवा घराटा व्यतीत कर दिया, तो कोई श्रसम्भव बात नहीं।

भगवद्गीता अपासंगिक नहीं है।

श्रच्छा; मान लिया जाय कि इतने बड़े सम्भाषणका युद्ध मृमि पर होना सम्भव था; तथापि कुछ लोगोंका कथन है कि वह श्रप्रासंगिक है। कुछ लोगोंकी कल्पना-तरङ्गें तो यहाँतक पहुँची हैं कि, भगवद्गीता महाभारतमें प्रक्तिप्त है। परन्तु यह श्राक्षेप भी निरर्थक है। भगवद्गीताका प्रक्तिप्त होना किसी प्रकार दिखाई नहीं पड़ता। यह वात भी देख नहीं पड़ती कि इस ग्रन्थमें श्रागे या पीछे कहीं किसी प्रकारसे कोई सम्बन्ध खिएडत हो गया हो। भगवद्गीताके पूर्व महाभारतका श्रन्तिम श्लोक यह है:—

उभयोः सेनयो राजन् महान्ज्यतिकरो भवत्। श्रन्योन्यं चीत्तमाणानां योधानां भरतर्षभ॥ श्रीर गीताके बादके श्रध्यायका पहला

रलोक यह हैं:— ततो धनंजयं दृष्या बाणगांडीवधारिणम्।

पुनरेव महानादं व्यस्तांत महारथाः॥

भगवद्गीताके पहले ही श्रध्यायमें कहा
है कि, श्रीकृष्ण श्रोर श्रर्जुन रथमें वैठकर
सेनाश्रोंके बीचके मैदानके मध्य भागमें जा
खड़े हुए। इसके बाद, जब सम्भाषण पूरा
हो गया श्रोर वे पाएडवोंकी सेनामें
लौट श्राये, तब सारी फौजने सिंहनाद
किया, (यह वर्णन गीताके बादके श्रध्यायके उपर्युक्त श्लोंकसे पाया जाता है)।
ऐसी दशामें यहाँ तो कुछ भी श्रसम्बद्धता

नहीं देख पड़ती। कुछ लोगोंका कथन है कि भगवद्गीता यहाँसे श्रलग कर दी जाय तो भी कुछ हानि नहीं। परन्तु यह कथन तो प्रत्येक उपाख्यानके लिए भी चरितार्थ हो सकता है। सारांश, इस श्राचेपमें कुछ भी खारस्य नहीं है। हाँ, यह प्रश्न महत्व-का श्रौर विचारणीय है कि, भगवद्गीता श्रर्थात् उसमें प्रतिपादित वाद-विवाद प्रासङ्गिक है या नहीं ? हमारा मत है कि व्यासजीने इस तत्वज्ञानको वड़ी ही चतु-राईसे युद्धके प्रारम्भमें ही स्थान दिया है। जहाँ लाखों आदमी मरने श्रीर मारनेके लिए तैयार हुए हो, वहाँ सम्भव है कि धार्मिक हदयके मनुष्यको सचमुच एक प्रकारका मोह हो जाय। आश्चर्य नहीं कि उसे सन्देह हो जाय कि—'मैं जो कुछ कर रहा हूँ वह उचित है या अनुचित'। हमारी रायमें भगवद्गीताके प्रारम्भमें गीताको श्रर्जन-विषाद-योगका जो सिंहासन दिया गया है वह सचमुच वडा हो मार्मिक है। क्या इस छोटेसे राज्य-सम्बन्धी श्रापसके तुच्छ भगड़ेका फैसला करनेके लिए भीष्म श्रीर द्रोलके सदश श्रपने पूज्य पितामह श्रीर गुरुको तथा शल्य श्रादिके समान दसरे सन्मान्य वन्धुत्रोंको जानसे मार डालें-क्या श्रपने ही पुत्र-पौत्रोंको मरवा डालें ? यह प्रश्न जिस प्रकार बन्धु-प्रेमका है, उसी प्रकार राज्य-सम्बन्धी महत्त्वका भी है। यह बात निश्चित है कि अँग्रेजीमें जिसे 'सिब्बिल वॉर' कहते हैं वह श्रापस-में एक दूसरेका गला काटनेका ही युद्ध होता है। ऐसे युद्धमें खजनोंका ही नांश होता है। इसलिए, जिस अर्जुनको 'धर्म-शील' कहा गया है उसके मनमें इन विचारोंसे मोहका हो जाना श्रत्यन्त स्वाभाविक है कि, यदि लोभी श्रीर हठी दुर्योधनके ध्यानमें यह बात नहीं स्राती तो कोई हर्ज नहीं, परन्तु हमें चाहिए कि हम

इसे भली भाँति समभ लें क्योंकि हम धर्मशील हैं। यह प्रश्न श्रकेले श्रर्जुनका ही नहीं है; किन्तु समस्त भारती-युद्धकी ही धार्मिकताके सम्बन्धमें एक वाद्यस्त प्रश्न उपस्थित हो जाता है। श्रीर, यह निर्विवाद है कि, ऐसे ही श्रवसर पर तत्वज्ञान विषयकी चर्चाका महत्व भी है। इस वात-को सभी खीकार करेंगे कि मनुष्यके जीवनकी इति-कर्त्तव्यताके गृढ़ सिद्धान्त-का विवेचन करने योग्य स्थान यही है। इसमें सन्देह नहीं कि कर्तव्य श्रीर श्रक-र्तव्य, नीतियुक्त स्रीर स्रनीतियुक्त स्राच-रण, पाप श्रौर पुग्य इत्यादि विषयोंके सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करनेके लिए यही श्रवसर श्रौर यही स्थान उचित है। हम समभते हैं कि व्यासजीने जिस प्रसङ्गके लिए भगवद्गीताका वर्णन किया है वह उस उदात्त ग्रन्थके तत्वज्ञानके श्रमुक्रप उदात्त ही है।

सम्पूर्ण भारत प्रन्थमें जो कुछ प्रति-पादन किया गया है उसका समर्थन करने-का मुख्य स्थान इस भयङ्कर युद्धका श्रारम्भ ही है, श्रीर यही सोचकर व्यासजीने ठीक युद्धारम्भमें इस परमोच तत्वज्ञानको स्थान दिया है। उच्च ध्येयके सामने मनुष्य-के शरीरका महत्व ही क्या है ? शरीरके नष्ट हो जाने पर वह फिर भी बारम्बार मिलने वाला ही है; परन्तु आत्मा अमर है तथा धर्म नित्य है। जहाँ इस उच्च धर्म-तत्वका प्रश्न उपिथत होता है, वहाँ प्राण-हानिका प्रश्न तुच्छ है। 'धर्मो नित्य: सुखहु:खे त्वनित्ये जीवो नित्यस्तस्य हेतुस्त्वनित्यः' इस वाकामें व्यासजी-ने बतलाया है कि धर्मके तत्व स्थिर श्रीर नित्य हैं। इन धर्मत्त्वोंके लिए सुख-दुःख-का विचार करना ही उचित नहीं: क्योंकि जीव अथवा आत्मा नित्य तथा अमर है

श्रीर उसका हेतु जो कर्मकृत शरीर है. वह श्रनित्य तथा तुच्छ है। सारांश, मनुष्य-को चाहिए कि वह संसारमें परमोच धर्म श्रीर नीतितत्वोंकी श्रोर ध्यान दे—उसका ध्यान मनुष्य-हानि या प्राणहानिकी श्रोर न रहे। सब कर्म परमेश्वरको अर्पण कर धर्मतत्वोंकी रचा करनी चाहिए। इससे ''हत्वापि स इमान् लोकान् न हंति न निहन्यते' यह लाभ होगा कि मारना या मरना दोनों कियाएँ समान होगी। उच धर्म-तत्वोंके सामने जीते या मरोंका शोक व्यर्थ है। ऐसे महातत्वज्ञानका उपदेश करनेका प्रसङ्ग भारती युद्धारम्भ ही है। तब कौन कह सकेगा कि इस श्रलोकिक एवं श्रजरामर तत्वज्ञानोपदेशक ग्रन्थको व्यासने श्रयोग्य स्थान दिया है। व्यासजीने भगवद्गीताख्यानको जो यहीं स्थान दिया है, उससे महाकविकी योग्य उदात्त कलाका दिग्दर्शन होता है। इतना ही नहीं, किन्तु महाकविने इस श्राख्यान-को अपने भारत ग्रन्थका सर्वस्व समभ-कर इसमें तत्वज्ञानके सब विषय थोड़ेसे श्रोर गम्भीर शब्दोंमें एकत्र कर दिये हैं। श्रोर, उसमें यह भी सुभा दिया है कि यह ग्रन्थ श्रत्यन्त धार्मिक ग्रन्थोंमेंसे श्रध्ययन करने योग्य एक भाग है। मन्तः में श्रीकृष्णके ही मुखसे यह कहलाया गया है कि-

श्रध्येष्यते च य इमं ध्रम्यं संवादमावयोः। ज्ञान यज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः॥

सारांश, इस सम्वादक्षणी ग्रन्थका श्रध्ययन करना बहुत लाभदायक है। जिस प्रकार इसमें वर्णित विषय सांसारिक वुद्धिके परे है, उसी प्रकार इसके पठनका फल भी सांसारिक नहीं है, परन्तु कहना चाहिए कि वह पारमार्थिक ज्ञान-यज्ञका फल है। इस भागको ज्यास या वैश्वप्रा

यनने स्वतन्त्र तथा श्रत्यन्त पवित्र समभ-कर यहाँ रखा है।

ज्यामजी श्रीकष्णमतका प्रति-पादन करते हैं।

हम कह सकते हैं कि भगवद्गीता-पर्व एक अत्यन्त पूज्य तत्वज्ञान विषयक भाग है, उसे व्यास या वैशंपायनने श्रपने भारत-प्रनथमें स्थान दिया है श्रोर उसमें श्रीकृत्ण-के विशिष्ट मतोंका या व्यास मतोंका ब्राविष्कार किया गया है। स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ पूज्य है श्रीर श्रारम्भसे यही माना गया है कि मोचेच्छु या भगवद्भक्तोंके पठन करने योग्य है। यह भी निर्विवाद है कि इसमें श्रीकृष्णकी भक्ति पूर्णतया प्रतिपादित है श्रोर उनका ईश्वरांशत्व पूरा दिखलाया गया है। इसके वाका यदि प्रस्य ज्ञीकृष्णके मुखके न हों तथापि वे व्यासके मुखके हैं। यह कोई नहीं कह सकता कि रगा-चेत्रमें प्रत्यच श्रीकृष्णने किन शब्दोंका उपयोग किया था। महा-कविके सम्प्रदायके श्रमुक्षप व्यासजीने संजयको रण-भूमि पर अपना एक सम्वाद-दाता (वार करेस्पांडेंट) बना लिया है श्रीर उसीसे युद्धका सव हाल इस युक्तिसे कहलाया है कि मानो प्रत्यत्त देखा ही हो। यद्यपि वह काल्पनिक माना जाय, तोभी यह मान लेनेमें कोई श्रापत्ति नहीं कि श्रीकृष्णके मत भगवद्गीतामें वतलाये हुए मतोके सदश थे। यह निश्चय-पूर्वक मानने-के लिए क्या आधार है, कि बाइ विलमेंदिये हुए ईसाके वाक्य प्रत्यच उसीके मुखसे निकले थे ? उसके शिष्य भी इस बातका वर्णन नहीं करते; किन्तु उसके प्रशिष्य सेंट्जान, सेंट ल्यूक, सेंट मार्क त्रादि उसके वचनोंको कहते हैं। श्रीर जिस प्रकार यह माननेमें कोई श्रापत्ति नहीं होती कि उनके ये वचन ईसाके ही कहे हुए वचन

थे, उसी प्रकार यह भी माना जा सकता है कि श्रीकृष्ण श्रीर श्रर्जनके भाषण या सम्वादको जिस रूपमें व्यासने संजयके मुखसे प्रकट किया है, उसी रूपमें श्रीकृष्ण-का भाषण अर्थवा वाका था। हमारी राय-में यह प्रश्न श्रनुचित है कि भगवद्गीतामें प्रत्यच श्रीकृष्णके ही शब्द हैं या नहीं। ये शब्द श्रीकृष्णके न हों, तथापि निस्सन्देह ये व्यासके हैं। श्रीकृष्णंके मतका तात्पर्य यद्यपि व्यासके शब्दोंसे वर्णित हुन्ना है, तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्री-कृष्णके मतके अनुकूल ही यह सब विषय यहाँ प्रतिपादित किया गया है। यह विषय सब कालमें पठन और मनन योग्य हो, इसलिए यदि व्यासने उसे रम्य खरूप दे दिया, तो श्रापत्ति किस वातकी है ? सारांश, मानना होगा कि इस दृष्टिसे बाइविल और भगवद्गीताकी परिस्थिति समान है। दोनों प्रन्थ धार्मिक दृष्टिसे ही तैयार किये गये हैं। ईसाके ईश्वरत्वके सम्बन्धमें जिनका विश्वास है, ऐसे लोगों-के लिए उसके उपदेशका सार, भिनन भिन्न प्रसंगोंके उसके भाषणों सहित. उसके मतान्यायियोंने कई वर्षोंके वाद उसके पश्चात् ग्रथित किया है और अपने धर्म-ग्रन्थको तैयार किया है (सेंट ल्यूक्का प्रारम्भ देखिए)। इसी प्रकार, श्रीकृष्णके ईश्वरत्वके विषयमें उनके जिन भक्तोंको कुछ भी सन्देह न था उन्होंने, श्रर्थात् व्यास, वैशंपायन महर्षियोंने, श्रपनी दिव्य वाणी-से यह धार्मिक ग्रन्थ तैयार किया है; श्रौर श्रीकृष्णके पश्चात् कई वर्षोंके बाद जब भारत-ग्रन्थ तैयार हुआ तब उन्होंने उसके मध्य भागमें भगवद्गीताके रूपमें उसे स्थान दिया श्रोर उसमें कर्म-श्रकर्म सम्बन्धी श्रत्यन्त महत्वके प्रश्न पर, सब प्रचलित तत्वज्ञानोंका श्राश्रय लेकर, श्रीकृष्णके मुखसे ही विचार कराया है।

श्राजतक संसारमें धर्मके चार परम विख्यात उपदेशक हो गये हैं - श्रर्थात् श्रीकृष्ण, बुद्ध, ईसा श्रीर मुहम्मद । इन्होंने जो मत प्रतिपादित किये, उन्हें श्रवतक लाखों और करोड़ों लोग मानते हैं। इन प्रसिद्ध धर्म-संस्थापकोंमेंसे केवल मह-म्मद्ने ही अपने हाथसे अपना धर्मग्रन्थ श्रपने श्रुत्यायियोंको दिया था। यह प्रसिद्ध है कि शेष तीनोंके चरित्र श्रीर सम्भाषण-को उनके प्रत्यच शिष्योंने नहीं, वरन् शिष्योंके अनुयायियोंने कई वर्षोंके वाद एकत्र कर उनका धर्म-ग्रन्थ तैयार किया है। बुद्धके पश्चात् सौ वर्षके वाद वौद्ध ग्रन्थ तैयार हुए; श्रीर ईसाके पश्चात् वाइ-विलका 'नवीन करार' भी लगभग इतने ही वर्षोंके बाद तैयार हुआ। ऐसी दशामें निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उनमें दिये हुए बुद्ध या ईसाके उनके ही हैं; तथापि यह मान लेनेमें कोई श्रापत्ति नहीं कि उनके उपदेशका सार यही था। इसी प्रकार जिस भग-वद्गीताको श्रीकृत्णके उपदेशका सार समभकर व्यासने अपने अन्थके मध्य भागमें स्थान दिया है, उसे भी व्यास-भुख-से ही पूज्यत्व देनेमें कोई आपत्ति नहीं। किंबहुना, यह भी समभ लेना कुछ युक्ति-बाह्य न होगा कि इसमें दिये हुए विषय-का प्रतिपादन श्रीकृष्णके मुखसे ही किया गया है।

एक श्रीकृष्ण, तीन नहीं।

कुछ लोगोंने यह प्रश्न भी उपस्थित कर दिया है कि भगवद्गीतामें जिस श्रीकृष्ण-का मत प्रतिपादित है वह श्रीकृष्ण भिन्न है; श्रीर भारती-युद्धमें पाएडवोंके पद्ममें लड़नेवाला श्रीकृष्ण भिन्न है। कुछ लोग तो श्रीकृष्ण नामके तीन व्यक्ति मानते हैं; जैसे गोकुलमें वाललीला करनेवाला श्रीकृष्ण, भारतीय युद्धमें शामिल होने- वाला द्वारकाधीश श्रीकृष्ण, श्रौर भग-वद्गीताका दिव्य उपदेश देनेवाला भगवान् श्रीकृष्ण-ये तीनों भिन्न भिन्न हैं। गोकुलके श्रीकृष्णकी जो लीलाएँ वर्णित हैं वे ईसाकी वाललीलाके सहश हैं, स्रतः इन लोगोंका कथन है कि साभीर जातिके गोप और गोपियोंके द्वारा यह धर्म ईसवी सन्के वाद हिन्दुस्थानमें वाहरसे लाया गया था और आगे चलकर इनके लाये इप कृष्णका तथा भारतमें वर्णित कृष्णका एकीकरण हो गया। यह भी मत है कि भगवद्गीतामें जिस अत्यन्त उदात्त तत्वज्ञान श्रीर नीतिके श्राचरणका उप-देश किया गया है, वह भारती-युद्धके श्रीकृष्णके ग्राचरण्ले घिपरीत है; इतना ही नहीं, वरन् वह उपदेश कृष्णके उस श्रशील श्राचरणसे भी बहुत श्रसम्बद्ध है जो उसने गोपियोंके साथ किया था। श्रत एवं श्रीकृष्ण नामके तीन व्यक्ति माने जानेका जो सिद्धान्त कुछ लोगोंने किया है, उसका हम यहाँ संचेपमें विचार करेंगे। हमारी रायमें एक श्रीकृष्णके तीन

श्रीकृष्ण कर देनेकी कुछ भी श्रावश्यकता नहीं है। हम श्रागे विस्तारपूर्वक श्रोर खतन्त्र रीतिसे दिखा देंगे कि गोकुलमें तथा महाभारतमें श्रीकृष्णका जो चरित्र है वह यथार्थमें श्रित उदात्त है श्रोर वह भगवद्गीताके दिव्य उपदेशसे किसी प्रकार विपरीत नहीं है। यहाँ सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक दृष्टिसे उक्त कल्पना श्रसम्भव है। भगवद्गीतामें श्रीकृष्णको भगवान कहा है, इसका कारण यही है कि हर एक तत्वज्ञानके उपदेशकके लिए भगवान संज्ञाका उपयोग किया जाता है। श्रर्जुन ने जब यह कहा कि 'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्" तब सचमुच श्रीकृष्णके लिए तत्वज्ञानोपदेशकके नातेसे

भगवान् पदवी अत्यन्त योग्य है। स्थान स्थान पर श्रर्जुनने श्रीकृष्णको जनाईन, गोविन्द आदि नामोंसे ही सम्बोधित किया है। अर्थात् भगवद्गीतामें स्पष्ट विखलाया गया है कि भगवान और श्रीकृष्ण एक हैं। श्रधिक क्या कहा जाय, जिस समय श्रीकृष्णने श्रपने ऐश्वरी योग सामर्थ्यसे श्रर्जुनको विश्वरूप दिखाया था, उस समय भी श्रर्जुनने यही कहा है कि हे देव, भेंने आपको "हे कृष्ण, हे यादव, हे सखा" कहकर ब्रापका अपमान किया है, सो चमा कीजिए । अर्थात् भगवद्गीतामें यही दिखलाया गया है कि विश्वक्ष दिखाने-वाला भगवान् श्रीकृष्ण ही याद्व मर्जुन-संखा श्रीकृष्ण है। यद्यपि भगवद्-गीता सौति-कृत मान ली जाय, तथापि महाभारत-कालमें यानी ईसची सन्के ३०० वर्ष पूर्व यह किसीकी धारणा न थी कि भगवद्गीताका उपदेशक श्री-कृष्ण श्रौर भारती-युद्धमें श्रर्जुनका सार्थ्य करनेवाला श्रीकृष्ण दोनों भिन्न भिन्न हैं। भगवद्गीतामें 'भगवानुवाच' शब्दका प्रयोग है और इसका कारण भी ऊपर बताया जा चुका है। उपनिषदों में भी इसी प्रकार भगवान शब्दका उपयोग बार बार किया गया है। उदाहरणार्थ, प्रशोपनिषद्के प्रारम्भमें हो यह निर्देश है—"भगवन्तम् विष्पताद्मुपस-साद्" "भगवन्, कुतो वा इसाः प्रजाः प्रजायन्ते ।" छान्दोग्य उपनि-पद्में भी "श्रुतं होवं मे भगवह-शेभ्यः," "भगव इति ह प्रतिशु-श्राव"—इत्यादि प्रयोग हैं। श्रीर श्रश्व-पतिके आख्यानमें, जब ब्राह्मण शिष्य बन-कर वैश्वानर-विद्या सीखनेके लिए श्रश्व-

पतिके पास गये, तब श्रौपमन्यव श्रादिने "भगवो राजन्" शब्दोंसे श्रश्वपितको संबोधित किया है। इन सब उदाहरणों- से यही संप्रदाय देख पड़ता है कि मगवान शब्दका उपयोग केवल तत्वोपदेशक श्राचार्योंके लिए किया जाता है। इसी लिए उसका उपयोग श्रीकृष्णके लिए भी किया गया है। श्रतः यह कल्पना करना ही भूल है कि भगवान श्रीकृष्ण श्रलग है श्रीर यादव श्रीकृष्ण श्रलग है।

इसी प्रकार यह कल्पना भी अशुद्ध है कि गोकुलका श्रीकृष्ण महाभारतके श्री-कृष्णासे भिन्न है। गोकलके श्रीकृष्णने जो चयत्कार किये उनका वर्णन हरिवंशमें है। पेतिहासिक दृष्टिसे यह कल्पना गलत है कि श्रीकृत्णके चमत्कार ईसाके चमत्कारीं-से मिलते हैं, श्राभीर जातिकी गोपियों-का व्यवहार अच्छा नहीं था श्रीर उनके द्वारा यह वालदेव ईसाई सन्के पश्चात् हिन्द्स्थानमं लाया गया। हमारी ऐसी धारणा है कि गोवियोंके साथ श्रीकृष्णका व्यवहार यथार्थमें वुरा नहीं था। इसका विवेचन हम श्रागे चलकर करेंगे। परन्तु महाभारतसे यह दिखलाया जा सकता है कि, श्रीकृष्णने पहले मथुरामें जन्म लिया, फिर कंसके डरसे वह गोकुलमें पला, श्रौर गोकुलकी गोपियाँ उसको ईश-भावनासे श्रत्यन्त प्यार करती थीं, इत्यादि कथाएँ ईसाई सन्के पश्चात् पैदा नहीं हुई; किन्तु महाभारत-कालमें भी वे प्रच-लित थीं। हरिवंशके कालका यद्यपि हमें संदेह हो, तथापि यह निश्चयपूर्वक सिद्ध है कि महाभारत—सौतिका महाभारत— ईसाई सन्के २५० वर्ष पहलेके लगभग था। यह कथन गलत है कि इस महा-भारतमें गोपियोंका वर्णन या गोकुलके श्रीकृष्णने जो पराक्रम किये उनका वर्णन नहीं है। द्रौपदीने वस्त्रहरणके समय जो पुकार की थी उसमें "कृष्ण गोपी जनप्रिय" स्पष्ट संबोधन है। इसी प्रकार आगे सभापर्वमें भी शिशुपालने अपने बधके समय— गोपं संस्तोत्प्रिच्छिसि।

यद्यनेन हतो वाल्ये शकुनिश्चित्रमत्र किम्। तौ वाश्ववृषमौ भीष्म यौ न युद्धविशारदौ॥

इत्यादि स्ठोकोंमें (अ० ४१) श्रीकृष्ण-की गोपस्थितिकी उन बाललीलात्रोंका विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है जो उन्होंने गोकलमें की थीं। श्रर्थात यह निर्विवाद है कि महाभारत-कालमें, यानी ईसाई सन्के ३०० वर्ष पूर्वके लगभग, गोकुलके श्रीकृष्णचरित्रकी सब कथाएँ भरतखंडमें प्रचलित थीं । फिर कथन कैसे सत्य हो सकता है, कि ईसाके बाद ग्राभीर लोग ईसाके धर्ममेंसे इन कथाश्रोंको इधर लाये ? नारायणीय उपाख्यानमें भी यह बात स्पष्ट रीतिसे श्रा गई है कि, गोकुलसे मथुरामें श्राकर कंसको मारनेवाला श्रीकृष्ण श्रीर पांडवीं-करके जरासंघ तथा की सहायता द्यीधनको मरवानेवाला श्रीकृष्ण एक ही है। शान्ति पर्वके ३३६ वें श्रध्यायमें दशावतारोंका वर्णन है। वहाँ श्रीकृष्णा-वतारके विशिष्ट कृत्योंका विस्तारपूर्वक कथन किया गया है। श्रीर, पहले कहा गया है कि "मथुरामें मैं ही कंसको मारूँगा।" इसके बाद द्वारकाकी स्थापना. जरासंधका बध इत्यादि श्रवतार-कार्योंका वर्णन किया गया है।

द्वापरस्य कलेश्चेव संघौ पर्यावसानिके। प्रादुर्भावः कंसहेतोर्मथुरायां भविष्यति॥=६ तत्राहंदानवान् हत्वा सुबहून् देवकएटकान्। कुशस्थलीं करिष्यामि निवेशं द्वारकां पुरीम्॥ ६०॥

इससे यह निश्चयपूर्वक दिखाई देता है

कि महाभारत-कालमें यानी ईसवी सन्के ३०० वर्ष पूर्व भरतखरडमें लोग इस बातको श्रच्छी तरह जानते थे कि गोकुल श्रीर मथुराका श्रीकृष्ण तथा द्वारकाका श्रीकृष्ण एक ही है। सारांश ऐतिहासिक दृष्टिसे भी यह कल्पना गलत है कि मूलतः तीन श्रीकृष्ण थे श्रीर ईसवी सन्के पश्चात् उनका एकीकरण हो गया। हम श्रागे यह बतलानेवाले हैं कि कुल तत्व-ज्ञान या नीतिकी **दृष्टिसे** भी तीन श्रीकृष्ण माननेकी श्रावश्यकता नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि भगवद्गीतामें जिस श्रीकृष्णके मत प्रतिपादित हैं वही श्रीकृष्ण भारत श्रीर हरिवशंमें वर्णित है श्रीर वही मथरा तथा द्वारकाका श्रीकृष्ण है। श्रीर, इसी श्रीकृष्णके मत भगवद्गीतामें व्यासजीकी आर्ष दिव्य एवं बलवती बाणीसे प्रतिपादित किये गये हैं।

हमारे अवतकके विवेचनसे यह बात पाई गई कि भगवद्गीता अथसे इतितक एक सम्बद्ध प्रन्थ है, वह किसी श्रलीकिक वुद्धिमान् कविका अर्थात् व्यास वा वैशंपायनका बनाया है, वह प्रारंभसे ही भारत ग्रन्थका भाग जानकर तैयार किया गया था श्रीर जब सौतिने श्रपने महाभारतकी रचना की, उस समय वह ज्योंका त्यों उसके सामने उपस्थित था। इसी प्रकार उसमें, श्रीकृष्णके उदात्त तत्वज्ञानका प्रतिपादन प्रचलित तत्वज्ञान सहित किया गया है। श्रीकृष्णके पश्चात् उसके ईश्वरत्वको पूर्णतया माननेवालीने पूज्य धर्म ग्रन्थके नामसे इस ग्रन्थको तैयार किया है। इस ग्रन्थका पठन श्रौर श्रवण ज्ञानेच्छु पुरुषोंके लिए बहुत ही लाभदायक है और इसी दृष्टिसे उसकी रचना की गई है। ब्यासजीने इस प्रन्थको संसारके सन्मुख रखते हुए यह इंशारा भी दे दिया है कि—"इदं ते नातपरकाय

तामकाय कदाचन। न चागुश्रूषवे वाच्यं त च मां योभ्यस्यति ॥"

श्रर्थात्, यह श्रन्थ किस उद्देशसे

श्रीर किस प्रसंगसे तैयार किया गया है,
त्यादि बातोंका यहाँतक दिग्दर्शन हो

बुका। श्रव हमें इस प्रश्नकी श्रोर ध्यान
देना चाहिए कि भगवद्गीता-श्रन्थ किस
समयका है। श्रन्तः प्रमाणोंसे ज्ञात हो

बुका है कि यह श्रन्थ सोतिका नहीं है।
तथापि, यही निश्चय श्रन्य श्रन्तः प्रमाणोंसे होता है या नहीं, श्रोर इस श्रन्थका
किश्चित काल हम जान सकते हैं या नहीं,
श्रियादि बातोंका पता लगाना महत्वका
श्रीर मनोरक्षक काम है। स्पष्ट है कि

यह विषय केवल श्रन्तः प्रमाणोंसे ही सिद्ध
होने योग्य है; क्योंकि इसके सम्बन्धमें
बाह्य प्रमाणोंका मिलना प्रायः श्रसम्भव है।

भगवद्गीता दशोपनिषदों के अन-न्तर और वेदांगके पूर्वकी है।

यह बात निर्विवाद है कि भगवद्-गीता-प्रनथ महाभारतके प्रन्तिम संस्क-रणके पहलेका है। हाप्किन आदि पाश्चात्य विद्वानोंकी भी यही धारणा है कि वह महाभारतका सबसे पुराना भाग है। तब यह स्पष्ट है कि यदि वह ग्रन्थ महा-भारतके समयका ही मान लिया जाय, तो भी उसका काल ईसवी सन्के पूर्व तीन सौ वर्षके इस श्रीर नहीं श्रा सकता। यह उसके इस स्रोरके समयकी मर्यादा है। अब, पूर्व मर्यादाको सोचनेसे एक बात निश्चित दिखाई देती है। भगवद्-गीता प्रनथ दशोपनिषदोंके पश्चात् हुआ है श्रोर सांख्य तथा योग दोनों तत्वज्ञानी-के अनन्तरका है; क्योंकि इन तीनों तत्व-क्रानोंका उल्लेख प्रधान रीतिसे भगवद्-गीतामें किया गया है। यह प्रश्न अत्यन्त अनिश्चित है कि सांस्य, योग और वेदान्त

तत्वज्ञानोंकी उत्पत्ति कव हुई। श्रनेक उपनिषदोंके विषयमें तो यह भी कहा जा सकता है कि वे ग्रन्थ महाभारतके भी वादके हैं। इस दृष्टिसे हमें कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। हम कह सकते हैं कि भारतीय युद्धके पश्चात् भगवद्गीता तैयार हुई; परन्तु भारतीय युद्धका काल भी तो ठीक निश्चित नहीं है। हमारी रायमें वह काल ईसवी सन्-के पूर्व तीन हजार एक सौ एक (३१०१) वर्ष है, पर श्रौर लोगोंकी रायमें वह ईसवी सन्के पूर्व १४०० या १२०० वर्षके लग-भग है। अर्थात्, यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि भगवद्गीता ईसवी सन्के पूर्व १००० से ३०० वर्षके वीचके किसी समयकी है। परन्तु इससे पूर्व मर्यादाके सम्बन्धमें समाधान नहीं हो सकता। इससे भी अधिक निश्चित प्रमाण दुँढ़ना चाहिए। हम समभते हैं कि इस बातका सूदम रीतिसे विचार करने पर हमें यह श्रन्मान करनेके लिए कुछ प्रमाण मिलते हैं कि भगवद्गीता वेदाङ्गोंके पूर्वकी है। श्रव उन्हीं प्रमाणोंका यहाँ विचार करेंगे।

पहली बात यह है कि— सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्रह्मणो विदुः। रात्रियुगसहस्रान्ताम्तेऽहोरात्रविदोजनाः

यह श्लोक भगवद्गीतामें है। यह कल्पना श्रागे भारतीय ज्योतिषमें सर्वत्र फेली हुई है। यदि यह देखा जाय कि यह कहाँ कहाँ पाई जाती है तो श्रन्य ग्रन्थों के देखनेसे ज्ञात होता है कि यह कल्पना यास्कके निरुक्तमें है श्रीर ऐसा देख पड़ता है कि यह श्लोक वहाँ दूसरेका श्रवतरण मानकर रख लिया गया है। इससे यह श्रनुमान निकल सकता है कि यह कल्पना यास्कके निरुक्तमें भगवद्गीतासे ली गई होगी। भगवद्गीतामें यह श्लोक स्थतन्त्र रीतिसे श्राया

है श्रीर ऐसा नहीं दिखाई देता कि वह श्रीर कहींसे लिया गया हो। उपनिषदोंमें तो वह नहीं है। हाँ, यह भी कहा जा सकता है कि कल्पकी यह कल्पना, सम्पूर्ण वैदिक साहित्यमें नहीं है। संपूर्ण वैदिक साहित्यकी छान वीन करनेकी न तो आवश्यकता ही है श्रीर न शक्यता ही। "वैदिक इन्डेक्स" नामक अनमोल ग्रन्थमें वैदिक साहित्यकी चर्चा की गई है। उसमें कल्प शब्द ज्योतिपके अर्थमें प्रयुक्त नहीं किया गया। "धाता यथापूर्वमकलपयत्" वाक्यसे यह नहीं कहा जा सकता कि वैदिक कालमें सृष्टि-की पुनर्चनाकी कल्पना न होगी। परन्तु सृष्टिरचनाके कालकी, कल्पकी श्रथवा एक हजार युगकी कल्पना ज्योतिष-विषयक श्रभ्यासमें कुछ समयके पश्चात् निकली होगी। मुख्यतः युगकी ही कल्पना पूर्णतया वैदिक नहीं है। वैदिक कालमें चार युग थे; यह स्पष्ट है कि यह कल्पना पञ्चवर्षयुगसे बड़े युगकी थी; परन्तु ऐसा नहीं जान पड़ता कि वेदिक कालमें कलि आदि युगोंकी श्रवधिका ठीक निश्चय हुआ हो। यह कालगणना किसी समय उपनिषत्-काल-में निश्चित हुई है श्रीर ऐसा दिखाई देता है कि वहाँसे पहलेपहल भगवदगीता-में ज्योंकी त्यों रख ली गई है। हमारा अनुमान है कि जब इसका उल्लेख श्रीर कहीं नहीं पाया जाता, तव निरुक्तके अवतरणका श्लोक भगवद्गीतासे लिया गया है। हाँ, यह बात श्रवश्य है कि यह श्रवतरण निरुक्तके १२ वें श्रध्यायमें है श्रीर अन्तके १३ वें श्रीर १४ वें दोनों श्रध्याय निरुक्तके परिशिष्टके अन्तर्गत माने गये हैं। यह माननेमें कोई श्रापत्ति नहीं कि यह परिशिष्ट यास्कका ही है: क्योंकि वैदिक लोग निक्कके साथ इस

परिशिष्टका भी पठन करते हैं। यदि यह बात ध्यानमें रखी जाय कि वैदिक ब्राह्मण जो वेदाङ्ग पढ़ते हैं, उनमें निष्क के ये दोनें श्रध्याय भी पढ़ते हैं, तो यही श्रज्याम निकलता है कि ये दोनें श्रध्याय वेदाङ्गेंके कर्त्ता यास्क के ही हैं। इससे यह स्पष्ट है कि भगवद्गीता यास्क के पहलेकी है।

कालके सम्बन्धमें दूसरा एक और महत्वका श्लोक भगवद्गीतामें हैं। वह यह है:—

महर्षयः सप्त पूर्वे चित्रं चित्रं चित्रं चित्रं चित्रं चित्रं मनवस्तथा। विक्रिक्तं मनवस्तथा। विक्रिक्तं मन्द्रावा मानसा जाता चित्रं चित्रं लोक इमाः प्रजाः॥

इस श्लोकका पूर्वार्ध बहुत कुछ कठिन हो गया है; क्योंकि कुल मन चौदह माने गये हैं श्रीर ज्योतिष तथा सब प्राणोंका यह मत है कि भारती-युद्धतक सात मनु हुए। तब सहज ही प्रश्न उप-स्थित होता है कि यहाँ चार मनु कैसे कहे गये। या तो चौदह कहने चाहिए थे या सात। इस कठिन समस्याके कार्ण कई लोग इस पदके तीन खएड करते हैं:-'महर्षयः सप्तः', 'पूर्वे चत्वारः', श्रोर 'मन-वस्तथा'। इनका कहना ऐसा दिखाई देता है कि इससे वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम और अनिरुद्ध ये चार व्यृह लेने चाहिएँ, परन्तु स्वयं वासुदेव यह कैसे कहेगा कि ये चार व्यूह मुक्तसे पैदा हुए। पहिला व्यूह वासुदेव श्रज, श्रनादि पर-ब्रह्म-स्वरूप माना गया है; तो फिर वही वासुदेवसे कैसे पैदा हो सकता है ? यदि यहाँ ब्यूहोंके कहनेका अभिप्राय होता ती तीन ब्यूह बतलाने चाहिए थे। इसके सिवा यह भी हम आगे देखेंगे कि सप्त ऋषयः' पद भी ठीक नहीं है। अर्थात् इस श्होकका अर्थ ठीक नहीं जमता। परन्तु इस अर्थके न जमनेका कारण हमारी रायमें यह है कि हम आजकलकी धारणासे इसका अर्थ करना चाहते हैं। हम इस श्रोर ध्यान दिलाचेंगे कि श्राज-कलकी धारणा क्या है। यह हम देख चुके हैं कि पहले कल्प अर्थात् सहस्र युगकी कल्पना भगवद्गीता तथा यास्कके निरुक्त-में है। ऐसा मान लिया गया था कि सृष्टिकी उत्पत्तिसे लयतक ब्रह्माका एक दिन होता है और उसकी मर्यादा हजार चतुर्युगकी है। मनुस्मृतिमं यह कल्पना है कि इन हजार युगोंमें १४ मन्वन्तर होते हैं। चौदह मनुकी कल्पना महाभारतमें भी स्पष्ट रीतिसे नहीं दी गई है। परन्तु महाभारतके पश्चात् तुरन्त बनी हुई यनु-स्मृतिमें वह पाई जाती है। मनुस्मृतिमें होनेसे उसका धार्मिकत्व मान्य हो गया श्रीर भारतीय श्रार्य-ज्योतिषकारीने उसका स्वीकार कर लिया। सिर्फ आर्यभट्टने उसका स्वीकार नहीं किया। उसके युगों-की मनुकी श्रौर कल्पकी कल्पना मनु-स्मृतिसे भिन्न होनेके कारण अन्य सब आर्य ज्योतिषकारोंने उसे दोष दिया है, श्रीर एक मत हो यह ठहरा दिया है कि उसका ग्रन्थ धर्म-विरुद्ध है (शङ्करादि-भारती ज्यो० पृ० १६३)। श्रर्थात् यह चौदह मनु-की कल्पना धार्मिक है। इसलिए भार-तीय-ज्योतिषको उसका स्वीकार करना पड़ा वास्तविक कल्प या युगकी कल्पनाके सदश उसमें गणितकी सुग-मता नहीं है। क्योंकि चौदह मन्वन्तर माननेसे १००० युगोंमें बरावर भाग नहीं लगता और ६ युग (चतुर्युग) शेष रहते है। तथापि यह भी मान सकते हैं कि इस कल्पनाको गणितका ही आधार होगा, क्योंकि दो युगोंके वीचमें जैसे संधि श्रौर संध्यंश मान लिये हैं वैसे ही मन्वन्तरोंके बीचमें संध्यंश मानना उचित है। ऐसा मानकर यदि गणितके द्वारा संध्येश

लेकर मनुकी संख्या वैठावें तो चौदहके सिवा दूसरा श्रद्ध जमता ही नहीं। यह उदाहरण द्वारा प्रत्यच्च देख सकते हैं। हमें इस वातका निर्णय करनेकी कोई श्रावश्यकता नहीं कि चौदह मनुकी कल्पना गणितके कारण प्रकट हुई या वह धार्मिक कल्पनाका ही फल है। हाँ, इस सम्बन्धमें यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि चौदह मनुकी यह कल्पना मनुस्मृतिके पहले कहीं नहीं मिलती

परन्तु, यह कल्पना बहुत प्राचीन है कि एक कल्पमें या वर्तमान सृष्टिमें एक- से अधिक मनु हैं। उसकी प्राचीनता ऋग्वेद-कालीन है। ऋग्वेदमें तीन मनुके नाम आये हैं। ये नाम वैवस्तत, साव-रिण और सावर्ण हैं। पहले दो नाम ऋग्वेदके आठवें मण्डलके ५१, ५२ स्क-में लगातार आये हैं। वे वालिखल्यमें हैं और उनके कर्त्ता काण्व ऋषि श्रृष्टिगु और आयु थे दो हैं। पहले स्कर्का पहली ऋषा यह है—

यथा मनौ सावरणौ सोममिद्रापियः सुतम् । नीपातिथौ मघवन् मेध्यातिथौ पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ तथा ॥

इसमें जो कुछ कहा गया है वह सावरणि मनुके समयका है। श्रागामी सुक्तमें श्रारम्भमें ही पहली ऋचामें—

यथा मनौ विवस्ति सोमं शकापिषः सुतम्। यथा त्रितेछ्न् इन्द्रज्जोषस्यायौ मादयसं सचा॥

इस प्रकार घिवसानके पुत्र मनुका उल्लेख है। ऋग्वेदके दसवें मण्डलके ६२ वें स्क्रकी एक ऋचामें तीसरे मनु-का नाम सावर्ण श्राया है श्रीर दूसरी ऋचामें सावर्णि श्राया है। ये दोनों नाम एक ही के हैं। "वैदिक इन्डेक्स" में मनु शब्दके नीचे उपर्युक्त पादटीका दी गई है श्रीर इस पर मेकडानलका मत है कि सावर्णि तथा सावएर्य ऐतिहासिक दिखाई देते हैं पर वैवस्वत काल्पनिक दिखाई देता है। संवरण नामक राजाका उल्लेख, चान्द्वंशमें है । परन्तु उसका उल्लेख नहीं है। यह मनु काल्प-निक हो या न हो, परन्तु यह स्पष्ट है कि एकसे अधिक मनुको कल्पना ऋग्वेद-कालीन है। ऐसी कल्पना हर एक बुद्धि-मान जातिमें पैदा होनी ही चाहिए। यह कल्पना कि सृष्टिकी उत्पत्ति होने पर उसका नाश होगा, जितनी स्वाभाविक है, उससे कहीं स्वाभाविक यह कल्पना है कि एकसे अधिक मनु हैं; क्योंकि सांसारिक अनुभवसे हमें माल्म है कि कई वंश वृद्धि होनेके बाद मिट जाते हैं: उसी प्रकार हमें देख पड़ता है कि एक ही समयमें मनुष्यकी मुख्य मुख्य जातियाँ भिन्न भिन्न रहती है। अर्थात् भिनन भिन्न मनुकी कल्पनाका श्रति प्राचीन-कालीन होना श्रसम्भव नहीं है।

परन्तु यह नहीं कह सकते कि भ्राग्वेद कालमें कितने मनुकी कल्पना थी। यह निर्विवाद है कि महाभारतके पश्चात् बनी हुई मनुस्मृतिमें चौदह मनु-की कल्पना है श्रीर वही सब पुराणों तथा ज्योतिषयोंने ली है । इस कल्पनाके साथ श्रोर भी दो कल्पनाएँ की गई हैं। हर एक मनुके समयके सप्तर्षि भिन्न हैं और हर एक मनुके दस पुत्र वंश-कर्ता होते हैं श्रीर वे वंश-कर्ता सप्तर्षिसे भिन्न होते हैं। इस प्रकार चौदह मनके समय-के भिन्न भिन्न सप्तर्षि ६ इते हैं तथा चौदहके दस दस वंश-कत्ता मिलकर १४० वंश-कर्ता होते हैं । इन सबके श्रलग श्रलग नाम प्राणोंमें दिये हैं। विवखत वर्तमान मन है। वह सातवाँ है। इसके आगे और सात मन आवेंगे। इस प्रकार प्राणोंकी यह विस्तृत कल्पना

है श्रौर वहाँ भिन्न भिन्न ऋषि तथा वंश-कत्ती दिये गये हैं, जिनके नाम बतलाने-की यहाँ आवश्यकता नहीं। यहाँ केवल मतस्य-पुराणमें बतलाये हुए मनुके नाम दिये जाते हैं। १ स्वायं भुव, २ स्वारोचिष ३ श्रोत्तमि, ४ तामस, ५ रैवत, ६ चाजुष, ७ वैवस्वत । ये श्रभीतक हो चुके हैं श्रीर श्रव श्रागे श्रानेवाले मनु ये हैं:- इ साव-एर्य, ह रोच्य, १० भौत्य, ११ मेरुसाविश. १२ ऋत, १३ ऋतधाम और १४ विष्त-क्सेन। अन्य पुराणोंमें आगामी मनुके नाम भिन्न हैं श्रीर उनमें "सावर्शि" शब्द-से बने हुए जैसे "दत्तसावर्णि, रहसा-वर्णि" आदि बहुतसे नाम आये हैं। यहाँ यह बतलाना आवश्यक है कि ऋग्वेदमें जिस सावर्णि मनुका उल्लेख है वह इस सूचीमें विलकुल नहीं श्राया है। हाँ, यह स्पष्ट बतला दिया है कि सावएर्य मन आगे होगा । ऋग्वेदके उल्लेखसे यह ज्ञात होता है कि यह मनु पीछे कभी हो चुका है श्रीर इसका सम्बन्ध यदुतुर्वशसे दिखाई देता है। इस विवेचनसे यह स्पष्ट मालूम होता है कि ऋग्वेदमें की हुई अनेक मनुकी कल्पना श्रागे बराबर जारी रही; परन्तु वहाँ दिये हुए उनके नाम प्रायः पीछे रह गये।

हमारी रायमें भगवद्गीताका 'मह-ष्य: सस पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा' श्लोक वैदिक-कालकी कल्पनासे मिलता है श्लोर वह मन्वादि श्रन्थके चौदह मनु-की कल्पनाके पूर्वका है। ऋग्वेदमें तीन मनुका उल्लेख है तथा यास्कके निरुक्तके (३-१-५) 'मनुः स्वायम्भुवो ऽब्रवीत' वाक्यमें चौथे मनुका नाम श्लाया है। श्लावर्षा, सावर्ण्य श्लोर वैवस्वत चार मनुका उल्लेख भगवद्गीतामें श्लाया है, वह वैदिक साहित्यके श्लाधार पर ही श्रव- तिम्बत है। यह कल्पना कि विवस्तानका पुत्र ही वर्तमान मनु है, ऋग्वेद परसे श्रस्पष्ट दिखाई देता है श्रोर वही भग-बद्गीतामें है, जहाँ ऐसा वर्णन है कि भेंने यह कर्मयोग विवस्तानको वतलाया, उसने मनुको बतलाया श्रोर मनुने इद्वाकुको वतलाया। श्रर्थात् उस समय यह बात मान्य दिखाई देती है कि वर्त-मान मनु वैवस्त्रत् है।

चौदह मनुकी, हर एक मनुके भिन्न भिन्न सप्तर्षियोंकी और वंश-कत्तांश्रोंकी कल्पना भगवद्गीताके समयमें न थी। यह उपर्युक्त श्रनुमान केवल 'चार मनु शब्दोंसे ही नहीं निकलता । किन्तु 'सात महर्षि' शब्दोंसे भी निकलता है। क्योंकि यदि सप्त मनुकी श्रीर उनके भिन्न भिन्न सप्तर्षियोंकी कल्पना प्रचलित रहती, तो यहाँ सप्त-सप्त महर्षि कहा होता (श्लोकमें महर्षयः सप्त-सप्त ये शब्द चाहिए थे)। हमारा मत है कि भगवद्-गीताके श्रभिष्रेत महर्षि वैदिक-कालके हैं। ये सप्तर्षि वसिष्ठ, कश्यप, विश्वामित्र, जमद्गि, गौतम, भरद्वाज और श्रति हैं। रनका उल्लेख वृहदारएयकमें है। दूसरे ब्राह्मणमें ऋग्वेदकी ऋचा 'तस्यासत ऋषयः सप्त तीरे की व्याख्या करते समय 'प्राणावा ऋषयः। प्राणानेत-दाह । इमावेव गौतमभरद्वाजौ ॥ "इमावेव विश्वामित्रजमद्ग्री रमावेव वसिष्ठकश्यपौ वात्रि: ॥" कहा है। ऋग्वेदके स्कॉके कर्ता प्रायः ये ही हैं। ये ही वैदिक सप्तर्षि हैं श्रौर महाभारतमें भी यही वर्णन है कि उत्तरकी श्रोर ध्रवकी परिक्रमा करनेवाले सप्तर्षि ये ही हैं। पुराणोंमें वर्तमान मन्वं-तरके सप्तर्षि ये ही बतलाये गये हैं।

श्रर्थात् ऐतिहासिक सप्तर्षि ये ही हैं। जब भिन्न भिन्न मनुके भिन्न भिन्न सप्तर्षि माने गये, तव पहले स्वायम्भुव मनुके साथके सप्तर्षि महाभारतके शान्ति पर्वके ३३५वं श्रध्यायमें इस प्रकार वतलाये गये हैं:—

मरीचिरव्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। वसिष्ठश्च मेहातेजास्तेहि चित्रशिखण्डिनः॥

हम समभते हैं कि इस श्लोकमें उनका उल्लेख नहीं है, क्योंकि ये प्रायः काल्पनिक हैं। 'वैदिक इएडेक्स' पुस्तक देखनेसे मालुम होता है कि पुलस्त्य, पुलह श्रीर कतुका उल्लेख वैदिक साहित्यमें नहीं है । वसिष्ठ, कश्यप, भरद्वाज, गौतम, विश्वामित्र और श्रित्रका उल्लेख ऋग्वेद-स्कमें श्राया है श्रीर ये सब ऋग्वेद-सूक्तीं-के कत्ती हैं। वसिष्ठ, विश्वामित्र श्रीर भरद्वाजके पूर्ण मगडल हैं। श्रवि श्रीर श्रात्रेयका भी मण्डल है। सुक्तोंके कत्ता कश्यप श्रीर जमदग्न्य भी श्रन्य मग्डलमें हैं। करावका एक स्वतन्त्र मराडल है, पर उनका नाम महर्षियोंमें नहीं है। परन्तु महाभारत श्रीर हरिवंशसे दिखाई देता है कि कएव महर्षि मनुके वंशका चान्द्रवंशी है। सारांश, सबके उत्पत्ति-कत्तां "पूर्वे" महर्षि सात हैं । 'महर्षयः सप्त पूर्वें में पूर्वे शब्द इसी अर्थका है। श्रीर महर्षि भी होंगे, पर वे 'पूर्वे' यानी सबके पूर्व के उत्पत्तिःकर्त्ता नहीं हैं। श्रस्तु । भगवद्गीताके वाक्यमें दिये हुए सप्तर्षि ऐतिहासिक प्रसिद्ध सप्तर्षि ही हैं। 'येषां लोक इमाः प्रजाः' में सुचित किया है कि ये श्रीर चार मनु श्राजतक पैदा होनेवाली प्रजाके उत्पादक हैं।

उपर्युक्त विवेचनसे हमारा यह मत है कि भगवद्गीताके समयमें सात महर्षि और चार मनु हो गए थे, और वैदिक साहित्यसे मिलती जुलती यह कल्पना तब प्रचलित भी होगी। इस कालके अनन्तर कल्पमें चौदह मनु श्रौर हर एक मनुके साथ भिन्न भिन्न सप्तर्पिकी कल्पना प्रचलित हुई श्रौर यह माना गया कि श्राधुनिक कालतक सात मनु हुए। यह सिद्धान्त मनुस्मृति श्रौर पुराणोंमें स्पष्ट रीतिसे दिखाया गया है श्रीर वही ज्योति-षियोंने ले लिया है। महाभारतमें —यानी सौतिके महाभारतमें चौदह मनुकी कल्पनाका उल्लेख स्पष्ट रीतिसे नहीं है, तथापि ऐसा दिखाई देता है कि उस समय वह प्रचलित हुई होगी । शांति पर्वके ३४१ वें श्रध्यायमें भगवद्गीताकी यही कल्पना पहले स्वायम्भुव मनु पर लगाई गई श्रीर वहाँ ऐसा वर्णन किया गया है कि सप्तर्षि और मनुसे प्रजा उत्पन्न होती है।

मरीचिरगिराश्चात्रिः पुलस्त्यः पुलहः कतुः। वसिष्ठश्च महास्मा वै मनुः खायुं सुवस्तथा॥ श्रेयाः प्रकृतयोऽष्टोतायासु लोकाः प्रतिष्ठिताः श्रष्टाभ्यः प्रकृतिभ्यश्च जातं विश्वमिदं जगत्॥

इससे कदाचित् महाभारत-कालमें ही यह मान लिया गया होगा कि हर एक मन्वंतरमें प्रजा कैसे उत्पन्न होती है और भिन्न भिन्न महर्षि और वंश-कर्चा कैसे होते हैं। यहाँ यह अनुमान होता है कि भगवद्गीता-काल और महाभारत-काल-में बड़ा ही अन्तर होगा, और यह भी मालूम होता है कि भगवद्गीता-काल वैदिक कालके निकट ही कहीं होगा। इस अनुमान परसे यद्यपि निश्चयात्मक-काल-का अनुमान नहीं निकलता, तथापि यह दिखाई देता है कि वह बहुत प्राचीन अवश्य है।

श्रभीतक हम यह देख चुके हैं कि भगवद्गीता-कालके सम्बन्धमें 'महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा' श्लोकार्धः बहुत महत्वका है श्लौर उपर्युक्त कल्पनासे

उसका अर्थ भी ठीक जमता है। ऐसे ही महत्वका एक श्रीर तीसरा ज्योतिर्विषयक उल्लेख भमवद्गीतामें है। वह यह है 'भासानां मार्गशीषींऽहम्तनां कुसुमाकरः।" यह श्लोकार्ध देखनेम सरल है; पर उसमें बड़ा ऐतिहासिक ज्ञान श्रौर गृदः रहस्य भरा है। प्रश्न यह है कि श्रीकृष्णने महीनीमें मार्गशीर्षको श्रीर ऋत्थ्रोमं कुसुमाकरको अत्रसान क्यों दिया ? यदि यह कहा जाय कि श्रीक्रव्यको ये दोनों प्रिय थे, तो श्रागे बोलनेके लिए कोई गुंजाइश ही नहीं। पर बात ऐसी न होगी। यह स्पष्ट है कि महीनोंके श्रारम्भमें मार्गशीर्ष श्रीर ऋतश्रों-में वसन्तकी गणना की जाती थी, इससे उन्हें श्रम्रस्थान दिया गया है। इसके सिवा यह भी कह सकते हैं कि यदि मार्गशीर्ष मास अच्छा माल्म हुआ था तो हेमन्त ऋतु रुचनी चाहिए थी, पर ऐसा नहीं हुआ। इससे हम जो कहते हैं वही बात होगी । वर्तमान महीनौम चैत महीना पहला है श्रीर ऋतुश्रोंमें वसन्त है और लोगोंकी गिनतीमें दोनों-का ऐका भी है। यथार्थमें वसन्त-ऋतु श्राजकल फागुनके भी पहले श्राती है; तथापि जब चैत, वैसाखसे बसंन्त-ऋतुकी गिनती ग्रुक् हुई, तबसे दोनोंका ऐका निश्चित हुआ और वे अपने अपने वर्गमें श्रग्रश्यानमें हैं। यह प्रसिद्ध है कि यह गणना ईसवी सन्के प्रारम्भके लगभग भारती श्रर्वाचीन सिद्धान्तादि ज्योतिवने शुरू की। श्रव हमें यह देखना चाहिए कि महीनोंकी गणनामं मार्गशीर्षको श्रौर ऋतुश्रोंकी गणनामें बसन्तको पहले माननेकी बात भरतखएडमें कबसे ग्रुक हुई, श्रौर यदि यह निश्चयपूर्वक मालूम हो गया तो भगवद्कीताका काल हम शीघ्र जान सकेंगे।

इस प्रश्नका विचार दीचितके प्रसिद्ध प्रथकी सहायतासे, ऐतिहासिक रीतिसे क्रिया जायगा। वैदिक साहित्यमें ऋतुश्रों-का निर्देश सदा वसन्तसे होता है। ये ऋत्एँ ६थीं। कहीं कहीं पाँच ऋतुश्रोंका भी निर्देश है। शतपथ-ब्राह्मणमें इसका कारण स्पष्ट बताया है कि श्रन्तिम दो ऋतुएँ शिशिर श्रीर हेमन्त एक मान ली गई हैं। रोमन लोगोंके पूर्व इतिहाससे भी जात होता है कि जब आर्य लोग हिमालयके उत्तरमें रहते थे, तब वे वर्षके दस ही मास मानते थे; क्योंकि दो मासतक सूर्य-का पता विलकुल नहीं मिलता था। ऐसा दिखाई देता है कि प्राचीन वैदिक-कालमें उत्तरायण वसन्तके सम्पातसे ही माना जाता होगाः क्योंकि जब सूर्य चितिजके ऊपर आता था, तभी सृष्टिमें गति होती थी और मनुष्योंको आनन्द होता था। अर्थात्, दो मासतक सूर्यके बिलकुल श्रस्त हो जानेके अनन्तर और अत्यन्त शीतके समाप्त होने पर आयोंको प्रफल्लता तथा जीवनी-शक्ति प्राप्त होती थी। इससे स्वभावतः वैदिक कालमें यही मानते होंगे कि वर्षका प्रारम्भ वसन्त-ऋतुसे होता है। यह काल हिमालयके उस पारकी बहुत प्राचीन बस्तीका होगा । परन्तु जब श्रार्य लोग हिन्दुस्थानमें श्रा वसे श्रीर ज्योतिष शास्त्रका श्रभ्यास भी वढ़ा, तव यह परिस्थिति बदल गई। सूर्य वर्ष भर चितिज पर ही रहने लगा श्रीर उसका उदय स्थान उत्तरसे द्ति एकी स्रोर तथा दिच्चिएसे उत्तरकी त्रीर बदलने लगा। उस समय वसन्तके सम्पातसे उत्तरायण-का आरम्भ न मानकर ज्योतिषियोंने उत्तरायणकी गणना तव शुरू की जब सूर्य दिवाणसे उत्तरकी श्रोर घूमने लगता था। यह काल वेदाङ्ग ज्योतिषमें दिखाया गया है।

परन्त वैदिक-काल और वेदाक-काल-में एक श्रौर वड़ा फर्क यह है कि वैदिक-कालमें चैत्र, वैशाख त्रादि महीनोंके नामी-का श्रस्तित्व ही न था। ये नाम वेदाङ्ग-कालमें श्रस्तित्वमें श्राये दिखाई देते हैं। वैदिक कालमें मधु, माधव, शुक्र, शुचि नाम वसन्तके क्रमसे प्रचलित थे। मासी-के पर्याय-वाची ये नाम तो श्रभीतक संस्कृत प्रन्थोंमें हैं, पर वे नाम श्रधिकतर नहीं पाये जाते। चैत, वैसाख श्रादि नाम मुख्यतः वैदिक कालके इस श्रोरके साहित्य-में पाये जाते हैं। दी चितकी ज्योतिर्विष-यक गणनासे मालूम होता है कि ये नाम ईसवी सनके पूर्व २००० वर्षके लगभग प्रचलित हुए। वैदिक ग्रन्थोंके प्रमाणसे भी यही बात पाई जाती है। वेदाक्र-ज्योतिष, पाणिनि-कल्पसूत्र त्रादि प्रन्थीमें ये ही नाम दिये गये हैं। दीचितको गिनती-से वेदाङ्ग ज्योतिषका काल ई० स०से १४०० वर्ष पूर्व निश्चित होता है। श्रव शतपथ-ब्राह्मणुके उत्तर-काएडमें वैसाखका नाम एक बार आया है (दी० ज्योतिष-शास्त्रका इतिहास पृ०१३०) ११वें कागडसे श्रागेके ये उत्तरकाएड पीछे बने हैं। पहले दस काएडोंमें ये नाम विलकुल नहीं पाये जाते ; मधु, माधव नाम ही पाये जाते हैं; श्रोर शतपथके इस वचनसे कि 'कृत्तिका ठीक पूर्वमें निकलती है'दीजित-ने शतपथका काल ई० स० ३००० वर्ष पूर्व बेधड़क निश्चित कर दिया है। प्रर्थात् गिणतसे निकाला हुआ उनका सिद्धान्त ठीक है कि ई० स० ३००० वर्ष पूर्व शतपथ-काल श्रीर १४०० वर्ष पूर्व वेदाङ्ग ज्योतिष-कालके वीचमें मार्ग शीर्ष, पौष त्रादि नाम प्रचलित थे।

भासानां मार्गशीषींऽहं वाक्यसे यह सिद्धान्त निकालनेमें कोई आपित नहीं कि भगवद्गीता ब्राह्मण-ग्रन्थोंके पश्चात्की है। श्रर्थात् यह माननेमें कोई श्रापत्ति नहीं कि दशोपनिषद् ब्राह्मणोंके भाग हैं। यह मान सकते हैं कि भगवद्-गीता उनके पश्चात्की या लगभग उसी समयकी है। परन्तु इस वाक्यसे कि भागशीर्ष पहला महीना श्रौर वसन्त पहली ऋतुं यह दिखाई देता है कि भग-वद्गीता वेदाङ्ग ज्योतिषके पहलेकी है। पहले यह बतलाया जा चुकाहै कि वेदाङ्ग-में उत्तरायण वसन्तके सम्पातसे न मान-कर मकर-संक्रमण्से मानने लगे। वेदाङ्ग-कालमें यह उत्तरायण माघ महीनेमें होता था श्रीर इससे ज्योतिषियोंके मतके श्रनु-सार वर्षका प्रारम्भ माघसे होता था। पाँच वर्षका युग मानकर दो अधिक मास इस हिसाबसे समिलित किये गये कि एक मास माघके प्रारम्भमें श्रीर एक ढाई वर्षके बाद श्रावणके पहले माना जाय। अर्थात् यह स्पष्ट है कि यदि वर्षका आदि माघ माना जाय, तो ऋतुश्रोंका श्रादि शिशिर मानना होगा । इस प्रकारकी गणना भारती-कालमें किसी समय थी। यह बात महाभारतके अभ्वमेध पर्वके इस श्लोकसे दिखाई पडती है-

श्रहः पूर्वं ततो रात्रि-मासाः शुक्कादयः स्मृताः । श्रवणादीनि ऋचाणि ऋतवः शिशिरादयः॥

(২ প্স০ ৪৮)

इसमें कहा है कि ऋतुश्रोंका प्रारम्भ शिशिरसे होता है। यह श्लोक श्रनुगीता-का है श्रौर इसमें दिखाया है कि ऋतुश्रों तथा महीनोंका प्रारम्भ भिन्न रीतिसे होता है। यहाँ माना गया है कि नच्चत्रोंका प्रारम्भ श्रवणसे होता है। श्रस्तु। दीचितने बत-लाया है कि यह काल ईसासे लगभग ४५० वर्ष पूर्वका है। यहाँ यह बतलाता देना समयोचित है कि महाभारतमें श्रन्य स्थानों में महीनोंकी गणना मार्गशिर्वसे श्रारम्भ की गई है। श्रनुशासन-पर्वक १०६ वें श्रध्यायमें यह वर्णन है कि विष्ण-के बारह नामोंसे बारह मासतक उपवास करनेका फल क्या होता है। वहाँ भी महीने मार्गशिषंसे ही आरम्भ किये गये हैं। उसमें यह भी बताया है कि हर महीने-में एक-भुक्त उपवास करनेसे क्या फल मिलता है। इससे कहना पड़ता है कि सामान्यतः महाभारत-कालतक महीनी-का प्रारम्भ मार्गशिर्षसे होता था। पारा-शर गृह्यसुक्तमें कहा है कि मार्गशीर्षकी प्रिशामाके दिन वर्षकी इप्टि करनी चाहिए। पर वहाँ हेमन्त ऋतको ही प्रधानता ही गई है: क्योंकि वर्णन ऐसा है कि हेमन्त भ्रातको ही हविभाग देना चाहिए। अर्थात यह स्पष्ट है कि मार्गशीर्ष मासके साथ हेमन्तको आदि ऋतु मानना चाहिए। परन्तु यह एक वड़ा ही आश्चर्य है कि भगवद्गीतामें 'मासानां मार्गशीषौंऽहं' कहकर 'ऋतूनां कुसुमाकरः' क्यों कहा? इससे यह अनुमान निकल सकता है कि यह श्लोक ब्राह्मणोंके पश्चात् ही लिखा गया होगा। यह कहना होगा कि यह श्लोक नये महीनोंके प्रचलित होनेके पश्चात् श्रस्तित्वमें श्राया श्रीर उस समय वैदिक कालकी ऋतुएँ ही प्रचलित थीं। निश्चय यह होता है जब यह श्लोक लिखा गयातब या तो वेदाङ्ग ज्योतिषके माघादि महीने पचितत न थे या शिशिरादि ऋतुत्रोंकी गणना ही नहीं की जाती थी।

यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि वैदिक कालकी ऋतुगण्ना-प्रचारके समय जब महीनोंके नये नाम प्रचलित हुए, तब चैत्रादि ही प्रचलित क्यों नहीं किये गये ? यह सच है कि वैदिक कालमें ऋतुकी गण्ना वसन्तसे होती थी; परन्तु जिस समय श्रार्यलोग यमुनाको पारकर दिव्यामें सीराष्ट्र प्रान्तमें समुद्रतक वसने लगे, उस समय इस गरम मुल्कमें जाड़ेके दिन विशेष दुखदायी जान पड़े होंगे श्रीर मार्ग-शीर्षसे ही महीनोंका गिनना प्रारम्भ हुआ होगा। निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि यह परिपाटी बहुत पुरानी है। यह परिपाटी भगवद्गीता, महाभारत, पार-स्कर गृहासूत्र आदि सभी कहीं पाई जाती है; श्रीर तो श्रीर, देखने योग्य है, कि वह श्रमरकोशमें भी दी गई है। श्रमरकोशमें जो महीनोंके नाम हैं वे मार्गशीर्ष महीने-से दिये गये हैं। 'मार्गशीर्षः सहामार्ग' ब्रादि स्रोक प्रसिद्ध हैं। साथ ही साथ ऋतुश्रोंके नाम हेमन्तसे ही दिये गये हैं। उसमें 'बाहुलोर्जी कार्तिकिको' कहकर 'हेमन्तः शिशिरोऽस्त्रियाम्' कहा है, श्रीर श्रन्तमें 'पडमी ऋतवः पुंसि मार्गादीनां युगैः कमात्' लिखा है। 'श्रमर' प्रायः ईसवी सन्के पश्चात् हुआ है; पर वह भी चैत्रादि मास नहीं लिखता; इससे मालूम होगा कि जब कोई नई गणना शुरू हो जाती है तब वहीं बहुत दिनोंतक किस प्रकार जारी रहती है। श्रलवेक्तनीने लिखा है कि उसके समयमें सिन्ध त्रादि प्रान्तोंमें महीने मार्गशीर्पादि थे। तात्पर्ययह है कि महीनोंके नाम सबसे पहले मार्गशीर्ष श्रादि पड़े श्रीर वे शीरसेनी, सौराष्ट्र श्रादि प्रदेशोंमें शुरू हुए। यह श्रवश्य है कि आरम्भमें वैदिक-कालकी ही वसन्तादि ऋतुश्रोंका प्रचार रहा होगा। इस सम्यन्धका भगवद्गीताका वाक्य ई० सन्के २००० पूर्वसे ई० सन्के १४७० वर्ष पूर्वके बीचका है। इसके अनन्तर वेदाङ्ग ज्यो-तिषमें माघादि महीने निश्चित हुए श्रीर धनिष्ठादि नत्तत्र थे, क्योंकि धनिष्ठामें उद्गयन था। इस प्रकार गणितके श्राधार पर यह काल ई० सन्से १४०० वर्ष पूर्वके लगभग निश्चित होता है। अनन्तर एक

नक्तत्र पीछे हटकर उदगयन श्रवण पर होने लगा। वह काल गणितसे ई० सन्से लगभग ४५० वर्ष पूर्वका निकलता है। उस समयका श्रनुगीताका 'श्रवणादीनि नत्तत्राणि ऋतवः शिशिरादयः' वाक्य है। अर्थात् उस समय माघादि महीने और शिशिरादि ऋतुएँ थीं। उसके वाद महाभा-रतके श्रन्तिम संस्करणका समयहै, परन्तु इस समस्त कालमें, भगवद्गीताने जो मार्ग-शीर्पादि गणना प्रचलित कर दी थी वह भी जारी रही। श्रीर साथ ही साथ, ऋतएँ हेमन्तादि थीं, जैसा कि पारस्कर गृह्यसुत्र तथा श्रमरकोशमें बताया गया है। इन सब भिन्न भिन्न ग्रन्थोंकी प्रणाली-से यह अनुमान निकाला जा सकता है कि भगवद्गीताका काल ई० सन्से २००० वर्ष पूर्व श्रौर १४०० वर्ष पूर्वके मध्यका होगाः अर्थात् वह उपनिषत्-कालके अन-न्तर श्रोर वेदाङ्ग-ज्योतिषके पूर्वका होगा ।।

* "मधु श्रादि महीनोंके नाम ऋतुत्रोंसे सम्बद्ध हैं, पर नचत्रोंसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है," (भारती ज्योतिपशास्त्र पृ० ३७)—यह श्रंश ध्यानमें चाहिए। वैदिक कालमें यद्यपि 'मधुश्च माधवश्च वसन्तः' कहा जाता था, तथापि उस समय इसका मेल चैत्र, वैशाख आदि नाचत्र महीनोंसे नहीं था। यह मेल ईसवी सन्के प्रारम्भमें उस समयसे हुआ जब कि महीनोंकी गेगाना चैत्रादि और नचत्रोंकी अधिन्यादि की जाने लगी। उसी समयसे मधुका पर्यायवाची चैत्र निर्दिष्ट हुआ। वैदिक कालमें मधु आदि नाम कृत्तिकादि नचत्रोंके साथ प्रचलित थे। श्रव यह मालूम करना चाहिए कि उस समय वसन्तका नाचत्र महीना कौनसा था। यह स्पष्ट है कि वह चैत्रके आगेका होगा। आजकल वसन्त चैत्रके पहले आ गया है। मध्वादि नाम ई० सन्से लगभग ५००० वर्ष पूर्वके हैं। श्रीर चैत्रादि नाम ई० सन्से २००० वर्ष पूर्वके हैं (उपर्युक्त ग्रन्थ, पृष्ठ १४६)। स्पष्ट है कि उस समय मार्गशीर्षमें वसन्त नहीं था; किन्तु वसन्तारम्भ बहुधा वैशाखर्मे होता होगा। यह भी तर्क हो सकता है कि उस समय मार्गशीर्षादि मासगणना श्रायहायणी पूर्णिमाके मृगशीर्ष नजत्रसे हुई होगी; परन्तु इस विषयकी श्रिधिक चर्चा करनेकी श्रावश्यकता नहीं।

इस प्रकार भगवद्गीताका काल ई॰ सन्से २००० वर्ष श्रीर १५०० वर्ष पूर्वके बीचका निश्चित होता है। यह कदाचित् किसीको असम्भव प्रतीत होगा, पर ऐसा समभनेका कोई कारण नहीं है। यदि शतपथ-ब्राह्मणका काल ई० सन्से ३००० वर्ष श्रीर भारती-युद्धका काल ई० सन्से ३१०१ वर्ष पूर्वका है, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि भगवद्गीताका काल निश्चित है जो ऊपर दिखाया गया है। यदि यह मान लें कि भारती-युद्धके बाद ही व्यासने श्रपने भारत ग्रन्थकी रचना की श्रौर यह भी मान लें कि भग-वद्गीता मूल भारत ग्रन्थमें थी, तोभी उसका काल वहत प्राचीन होना चाहिए *। श्रव हम यह देखेंगे कि इस निश्चित काल-में श्रन्य वचनोंसे कौनसी बाधा होती है। भगवद्गीतामें कुछ व्याकरण-विषयक वचन हैं, जैसे "श्रवराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च" इस वाक्यमें व्याकरण-

• यहाँ कुछ श्रीर स्पष्ट करनेकी श्रावश्यकता है। ऐतिहासिक प्रमाणोंका विचार करनेसे भारती युद्धका काल इसवी सन् ३१०१ वर्ष पूर्व निश्चित होता है। 'मासानां मार्गर्षोऽहं ऋतूनां कुसुमाकरः वावयसे भगवद्गीता ईसासे २००० वर्ष पूर्वके समयसे लेकर ईसासे १४०० वर्ष पूर्वके मध्यकालकी निश्चित होता है । यहाँ प्रश्न यह उठता है—यह कैसे कहा जा सकता है कि भगवद्गीता भारती युद्ध-कालके व्यासकी ही है ? इसी लिए हम भगवद्गीताको व्यासकी अथवा वैशम्पायनकी कहते हैं। हमारी रायमें भारती-युद्धका काल बदला नहीं जा सकता। भारती-युद्ध-से श्रीर ऋग्वेद रचना या व्यवस्थासे व्यासको श्रलग भी नहीं कर सकते। तब तो यही मानना चाहिए कि वैशम्पा-यन व्यासका प्रत्यच शिष्य नहीं था, किन्तु व्यासके कई शतकोंके बाद . हुआ होगा । सौति कहता है कि मैंने वैशम्पायनको महाभारत पठन करते सुना; परनतु हम यह देख चुके हैं कि सौति वैशम्पायनके कई शतकोंके बाद हुआ है। इसी न्यायसे यह मानना पड़ेगा कि वैशम्पा-यन भी न्यासके कई शतकोंके पश्चात् हुआ होगा। यहाँ यह कहना भी ठीक है कि हमें व्यासका भारत या उनके प्रत्यस शब्द वैशम्पायनके मुखसे ही सुनाई देते हैं।

विषयक उल्लेख है। इसलिए यह कहनेकी त्रावश्यकता नहीं कि भगवद्गीता पाणिनि-के अनन्तरकी है। पाणिनि कुछ आध व्याकरण-कत्ती नहीं था। यथार्थमें व्या-करणका अभ्यास तो वेद-कालसे ही जारी था। छान्दोग्य-उपनिषद्में खरोंके भेद बतलाये हैं श्रीर यह बतलाया है कि उचारण कैसे करना चाहिए। "सर्वे खरा इन्दस्यातमानः सर्वे ऊष्माणः प्रजा-पतेरात्मानः सर्वे स्पर्शा मृत्योरात्मानः" श्रादि वर्णन छान्दोग्य प्रपा० २ ख० २२ में है। अर्थात् व्याकरणका अभ्यास और नाम वहत पुराने हैं। तब इसमें कुछ भी श्राश्चर्य नहीं कि भगवद्गीतामें व्याकर्णके पारिभाषिक कुछ शब्द जैसे श्रकार, द्वन्द्व श्रोर सामासिक पाये जाते हैं। यह मान्य है कि भगवद्गीता छान्दोग्य, वृहदारएयक आदि उपनिषदोंके बादकी है। पर यदि इन उपनिषदों श्रीर उनके ब्राह्मणोंका काल बहुत पीछे ठहरता है, तो इसमें कुछ श्राश्चर्य नहीं कि ऊपर कहे श्रनसार ही भगवद्गीताका काल निश्चित होता है। पहले हम कह चुके हैं कि वैदिक कालकी मर्यादाको ही बहुत पीछे हटना चाहिए। उसको पीछे न ले जाकर इस श्रोर खींचनेकी जो प्रवृत्ति पाश्चात्य लोगोंकी है, वह सर्वथा भ्रमपूर्ण है। यदि वेदाङ्ग-ज्योतिष श्रौर शतपथका काल सुनिश्चित ज्योतिर्विषयक उल्लेखों श्रीर प्रमाणोंसे ही ई० सन्से १४०० श्रीर ३००० वर्ष पूर्वके बीच निश्चित होता है, तो यह स्पष्ट है कि उसी प्रकार भगवद्गीताका काल भी पीछे मानना चाहिए। श्रस्तुः यदि भिन्न भिन्न ग्रन्थोंका काल वादग्रस्त भी मान लिया जाय, तो भी नीचे बतलाई हुई प्रन्थोंकी परम्परामें, न तो हमें ही रसी भर कोई संशय है और जहाँतक हम समभते हैं वहाँतक दूसरे किसीको भी संशय न

होगा। हमारा अनुमान है कि इसमें प्रायः सभी हमसे सहमत होंगे। वह परम्परा यह है:-सबसे पहले ऋग्वेद-संहिताकी रचना, तत्पश्चात् भारती-युद्ध, तदनन्तर शतपथ-ब्राह्मणके पहले दस खएड, इसके उपरान्त बृहदारएय आदि दशोपनिषद, किर भगवद्गीता, तदनन्तर वेदाङ्ग-ज्योतिष, व्यासका निरुक्त श्रीर पाणिनिका व्या-करणः इसके वाद वर्तमान महाभारत. फिर पतञ्जलिका योग-सूत्र तथा बाद-रायणका वेदान्त-सूत्र। इस प्रकार प्राचीन प्रन्थोंकी परम्परा स्थिर होती है। इन ग्रन्थोंके भिन्न भिन्न स्थलोंके विवेचनसे पाठकोंके ध्यानमें यह शीघ्र आ जायगा कि आधुनिक उपलब्ध साधनोंकी परि-स्थितिमें यह परम्परा ठीक जँचती है। पतञ्जलिके महाभाष्यसे पतञ्जलिका काल हुं सन्से लगभग १५० वर्ष पूर्वका निश्चित होता है, श्रीर इसी हिसावसे शेष अन्थोंका काल पूर्वातिपूर्व मानना चाहिए।

भगवद्गीताकी भाषा।

भगवद्गीताक सम्बन्धमं श्रभीतक हमने ग्रन्थ, कर्त्ता श्रीर कालके विषयमें विवेचन किया है। श्रव हम भगवद्गीताकी
भाषाके सम्बन्धमें कुछ श्रधिक विचार
करेंगे। हम श्रन्थत्र कह चुके हैं कि महाभारतकी भाषासे भगवद्गीताकी भाषा
श्रधिक सरल, जोरदार श्रीर गम्भीर है।
जिस प्रकार कालकी दृष्टिसे भगवद्गीता
उपनिषदोंके श्रनन्तरकी श्रीर समीपकी ही
है, उसी प्रकार भाषाकी दृष्टिसे यह भी
दिखाई देता है कि भगवद्गीता उपनिषदोंके पश्चात्की श्रीर उपनिषदोंके समीपकी
ही है। इस भाषामें कियाशोंके पूर्ण प्रयोग
हमेशा श्राते हैं श्रीर उसमें धातु-साधनका
उपयोग नहीं दिखाई देता। समासमें

पद बहुत ही थोड़े श्रीर छोटे हैं। समस्त विवेचन वोलनेकी भाषाके सदश सरल भाषामें तथा गृदार्थ रहित है। महा-भारतके अनेक खलोमें गृदार्थ स्त्रोक हैं, इतना ही नहीं किन्तु कई स्थानोंमें गुढ़ार्थ शब्द भी प्रयुक्त किये गये हैं। यह स्पष्ट है कि वोलनेकी भाषामें इस प्रकारक शब्दोंका उपयोग कभी नहीं किया जाता। महाभारतके श्रीर किसी तत्व-ज्ञान विषयक उपाख्यानमें ऐसी सरल श्रीर प्रसाद-गुण्युक्त भाषा नहीं है। शान्ति पर्वके श्रनेक तत्व-ज्ञान-विषयक सम्भाषणों, श्राख्यानों श्रौर सनत्सुजात श्रथवा धर्मव्याध-संवादको पढ़ते समय विषय और भाषा दोनोंकी क्रिष्टता अनु-भव होती है। परन्तु भगवद्गीतामें ऐसा विलकुल नहीं होता। भगवद्गीतामें यह भी प्रवृत्ति कहीं नहीं देख पडती कि विषयको सुद्मतया छानकर उसके भिन्न भिन्न त्रंश, भेद श्रीर बिलकुल कचे विभाग कर दिये गये हों। बुद्धिमान पाठकके ध्यानमें यह बात श्रवश्य श्रावेगी कि हर एक विषयका प्रतिपादन गीतामें उप-निषद्के तुल्य ही किया गया है; हर एक विषयका कथन व्यापक-दृष्टिसे मुख्य सिद्धान्त पर ध्यान देकर किया गया है. न कि निरर्थक लम्बा चौड़ा विस्तार करके या सूत्रमय रूपसे थोड़ेमें ही। सबसे श्रधिक ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि जिस प्रकार उपनिषदोंमें वक्तृता-पूर्ण भाषाकी छाया हमारे मन पर पड़ती है, उसी प्रकार भगवद्गीता-में भी भाषाकी वक्ता नजर आती है। यह ध्यानमें रखना चाहिए कि मृत भाषा-में वक्ता कभी नहीं रह सकती। यह बात श्रति स्वाभाविक है कि मस्तिष्कमें जब विषय भरा रहता है, तब सहज-स्फूर्तिका प्रवाह जीती भाषाके द्वारा ही

श्रच्छा दोड़ सकता है। श्रतपव हमारा यह मत है कि जिस समय संस्कृत भाषा जीती थी उसी समय भगवद्गीता वनी होगी। इसके सम्बन्धमें थोड़ासा विचार यहाँ श्रीर करना चाहिए।

यह निर्विवाद है कि जब महाभारत-व्रन्थ बना उस समय संस्कृत भाषा मृत थी। इतिहास पर दृष्टि-पात करनेसे इस कह सकते हैं कि बुद्धके कालमें यानी ई० सन्से लगभग ५०० वर्ष पूर्व श्रथवा इस समयके कुछ श्रौर पूर्व सामान्य जनसमूह-की बोल-चालकी भाषा संस्कृत न थी। निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह कितने वर्ष पूर्व 'मृत हो गई थी। पाणिनि ई० सन्से लगभग ८००-६०० वर्ष पूर्व हुआ। उस समय सभी लोग संस्कृत भाषा बोलते थे। पाणिनिके समय 'संस्कृत' तथा 'प्राकृत' शब्द ही न थे। उसने तो 'संस्कृत' के लिए 'भाषा' शब्द-का उपयोग किया है। श्रर्थात् हम यह कह सकते हैं कि पाणिनिके समयमें संस्कृत भाषा जिन्दा थी । हमने यह निश्चित किया है कि भगवद्गीता पाणिनिके हजार या श्राठ सौ वर्ष पूर्व लिखी गई है। श्रर्थात् ऐसा न मानना चाहिए कि पाणिनिके व्याकरणकी इष्टि-से भगवदगीतामें जो थोड़ेसे अप-प्रयोग हैं वे गलत हैं। उन्हें गलत कहना ठीक वैसा ही होगा जैसे कोई भाषा-भास्करके श्राधार पर पृथ्वीराज रासोकी गल-तियाँ निकालनेकी चेष्टा करे । वैसे तो पाणिनिके श्राधार पर दशोपनिषदोंमें भी गलतियाँ दिखाई जा सकती हैं। कठोप-निषद्का ही पहला अध्याय लीजिए। पाणिनिके अनुसार उसके 'प्रते व्रवीमि'. 'तदुमे निबोध' पदोंमें 'प्र' व्यर्थ कहा जायगा। ऐसे ही यह कहा जायगा कि 'प्रबृह्य धर्ममणुमेत माण्य' में 'त्राप्य' का प्रयोग, या 'नाचिकेतं शकेमहि' में 'शकेमहि' का प्रयोग, या 'गूढोत्मा न प्रकारित' में 'गूढोत्मा' सिन्ध गलत है। सारांश, भगवद्गीता पाणिनिके बहुत समय पूर्वकी है, इसलिए उसकी भाषाकों केवल पाणिनीय-व्याकरणकी दृष्टिसे देखना ठीक नहीं। हमारी समक्तमें जैसी दृशीपनिषदोंकी भाषा है, वैसी ही स्वतन्त्र तथा अधिक सरल भगवद्गीताकी भी भाषा है।

भाषा-शास्त्रके जाननेवालीका कथन है कि दो सौ या चार सौ वर्षके बाद भाषामें फर्क पड़ता ही है। श्रीर, यह बात मराठी तथा हिन्दी भाषात्रोंके इति-हाससे हमें दिखाई पडती है। यहाँ भाषा-शास्त्रज्ञ यह प्रश्न उपस्थित करेंगे कि जब ऐसा है तब महाभारत श्रीर भगवद्गीताकी भाषामें इतना फर्क क्यों नहीं दिखाई देता ? निस्सन्देह यह विचारणीय है। पाश्चात्य परिडत समस्त वैदिक साहित्य-को जिन कारणोंसे निकट भूतकालका बतलाते हैं उनमेंसे एक कारण यह भी है। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि उन लोगोंकी कल्पना विलक्कल गलत है, तथापि हमें दो तीन बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। एक तो यह कि जब भाषा मृत हो जाती है तब उसका खरूप विलकुल नहीं वदलता। वह भाषा कैवल पिउतोंके बोलने श्रीर लिखनेकी भाषा बन जाती है श्रौर उस भाषामें जो श्राप्त व्याकरण होता है उसी व्याकरणके श्रतु-सार सव वाग्व्यवहार होता है। यह स्पष्ट है कि यदि उस भाषाका कोई स्नाप्त व्याकरण न हो, तो वह भाषा मृत होने पर पुनः लिखी भी न जायगी। जो भाषाएँ संस्कृत होकर इतनी उन्नत श्रवस्थाको पहुँच जाती हैं कि जिनसे उनका व्याकरण बन सकता है, वेही मृत दशामें भी परिडतोंके लेखोंमें जिन्दा रहती हैं। परंत यह इपए है कि ऐसे पिएडतोंको लिखते लिखते हजारों वर्ष बीत जायँ, तोभी लेख-वणालीमें कोई अन्तर नहीं होता। उदा-हरणार्थ, लैटिन भाषामें प्रन्थ-रचना न केवल मिल्टन श्रीर वेकनके ही समयतक होती रही किन्तु अभीतक होती है। अर्थात् तैटिन भाषाके मर जाने पर भी १२००-१६०० वर्षतक वह लिखी जा रही है। इतना ही नहीं, उसमें ग्रन्थ-रचनाके कारण मिल्टनकी ऐसी तारीफ की जाती है कि वह लैटिन भाषाके प्रसिद्ध कवि वर्जिल-के सदश भाषा लिखता था। यही हाल संस्कृत भाषाका भी है। लोगोंकी बोल-चालसे संस्कृतका लोप हो जानेके बाद सोतिने महाभारत बनाया है, इसलिए इसकी भाषामें और भगवद्गीताकी भाषा-में बहुत श्रन्तर नहीं हो सकता। इसमें सन्देह नहीं कि ग्रन्थकार जितना विद्वान् होगा, उसकी भाषा भी उतनी ही पूर्व-कालीन ग्रन्थोंके सदश होगी। इसलिए यह निर्विवाद सिद्ध है कि पाणिनिके व्याकरणके अनन्तर तथा बुद्धके अन-न्तर जितनां संस्कृत-साहित्य बना है, श्रीर जो श्रच्छा होनेके कारण श्राजतक स्थित है, वह अधिकांशमें पाणिनिकी भाषाके अनुसार ही है। इसी कारण संस्कृत साहित्यकी भाषामें विशेष भेद हमें नहीं दिखाई देता, श्रौर उसमें भाषा-की वृद्धिका सिद्धान्त श्रधिकांशमें प्रयुक्त नहीं होता।

दूसरी बात यह है कि जिस भाषाका व्याकरण नहीं बना है, वह भाषा बहुत शीघ्र बदलती है; श्रीर जो भाषा शौढ़ हो जाती है तथा जिसका व्याकरण बन जाता है, विशेषतः जिसका कोश भी बन जाता है, उसमें शनैः शनैः श्रन्तर होता है, एक-दम नहीं। भाषाके बढ़ने श्रीर घटनेके

श्रीर भी श्रनेक कारण हैं जिनका उल्लेख, विस्तार-भयसे, यहाँ नहीं किया जा सकता। इन्हीं सब वार्तोको दृष्टिसे संस्कृत भाषाको देखना चाहिए। ऋग्वेद-कालकी भाषा ब्राह्मण-कालकी भाषासे भिन्न है और तभी अधिकांशमें वह दुवींध हो गई थी। यहाँतक कि ब्राह्मणोंमें जगह जगह पर ऋग्वेदकी ऋचात्रोंका अर्थ बतानेका प्रयत किया गया है। ब्राह्मणोंकी भाषामें और दशोपनिषदोंकी भाषामें श्रन्तर देख पडता है, परन्तु बहुत श्रधिक नहीं: क्योंकि ब्राह्मणकालमें द्याकरण श्रीर कोशका श्रभ्यास ग्रुह्त हो गया था। व्याकरणके बहुतेरे नियम ढूँढ़े गये थे श्रीर तैयार भी हो गये थे। उपनिषदोंकी श्रीर भगव-द्वीताकी भाषामें जो थोडा अन्तर है उसका कारण भी यही है: तथा भगव-द्वीता श्रीर पाणिनीय भाषामें भी थोडा फरक है। इस बातका कोई इतिहास नहीं पाया जाता कि इस श्रविधमें भरतखराड-पर किसी विदेशोकी चढाई हुई या किसी श्रन्य भाषाकी प्रभुता हुई। श्रश्रीत् भाषा-में प्रारम्भमें शीव्रतासे बहुत अधिक फरक नहीं हुआ। इस दृष्टिसे देखने पर मालूम होता है कि पाश्चात्य भाषा-शास्त्रकार भाषामें फरक पड़नेकी अवधि जो दो दो सौ वर्षकी बताते हैं वह कदापि ठीक नहीं। यह काल श्रौर भी श्रधिक होना चाहिए। वेदाङ्ग ज्योतिषमं श्रौर पाणि-नीय भाषामें यद्यपि बहुत अधिक फरक नहीं है, तथापि यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इनमें छः सौ वर्षका अन्तर है। इसी दृष्टिसे भगवद्गीताकी भाषामें श्रीर पाणिनीय भाषामें श्राठ सौ वर्षका श्रन्तर मानना श्रसम्भव नहीं। यथेह चुधिता बाला मातरं पर्युपासते। एवं सर्वाणि भूतान्यग्निहोत्रमुपासते॥ छान्दोग्य उपनिषद्के इस श्लोकको पढ़कर बहुतरे लोग समभते हैं कि यह तो संस्कृत भाषाका बिलकुल ठीक श्रोक है, फिर इतना पुराना कैसे हो सकता है? परन्तु उन्हें चाहिए कि वे उक्त सब बातोंकी श्रोर ध्यान दें। एक बात तो यह है कि ई० स०से ६०० वर्षके पूर्व संस्कृत भाषाका बोलनेमें प्रचार सामान्यतः बन्द हो गया, श्रीर पाणिनिक प्रसिद्ध तथा वैदिक मान्य व्याकरणसे उसे जो स्वरूप मिला है वह ढाई हजार वर्षसे आजतक स्थिर है। इसके पहले वेदांग-कालमें फरक नहीं हुआ; क्योंकि भाषामें श्रनेक व्याक-रण उत्पन्न हुए जिनसे उसका अधिकांश सक्प स्थायो हो गया था। तोभी ऐसा दिखाई पडता है कि दशोपनिषदोंकी भाषामें श्रीर वेदाङ्ग कालीन भाषामें थोड़ा फरक है, श्रीर यह फरक हजार या श्राठ सौ वर्षौका भी हो सकता है। भगवद्गीता इसी मध्य कालकी है और उसका खरूप पूर्णतया बोलनेकी भाषाका है। समस्त महाभारतकी भाषाके समान कृत्रिम स्वरूप नहीं दिखाई देता। भगवद्गीतामें विषयके प्रतिपादनकी रोति तथा भाषा-का वक्तृत्व बोलनेकी जिन्दा भाषाका है और वह विशेषतः छान्दोग्य और वृह-दारगयक उपनिषदोंके समान है। भाषा-की दृष्टिसे भी हमने भगवंद्गीताको उप-निषदीं के अनन्तर और वेदाङ्गों या यास्क श्रथवा पाणिनिके पूर्वकी माना है। यह कहनेमें कुछ हर्ज नहीं कि हमारा ऐसा मानना अनुचित नहीं है।

भगवद्गीताके समयकी परिस्थिति।

श्रव हम इस विचारके श्रन्तिम प्रश्न-की श्रोर ध्यान देंगे। हमें इन प्रश्नोंका विचार करना जरूरी है कि भगवद्गीतामें श्रीकृष्णके कौनसे विशिष्ट मत हमें दिखाई देते हैं। श्रीकृष्णके चरित्रमें श्रीर भग- वद्गीतामें दिये दुए उनके विचारोंमें मेल हैं या नहीं। तथा श्रीकृष्णका चरित्र श्रीर भगवद्गीताका परम तत्व दोनों कैसे उचतम और कैसे उदात्त हैं। भगवद्गीता-में मुख्यतः किस विषयका प्रतिपादन किया गया है। इसके लिए हमें श्रीकृष्ण-के समयकी श्रीर भगवद्गीताके समयकी परिस्थितिका थोड़ासा पूर्व स्वरूप ध्यानमें लाना चाहिए । श्रीकृष्णके श्रवतारके समय भारतीय श्रार्य हिन्दुस्थानके पञ्जाव मध्यदेश, श्रयोध्या, सौराष्ट्र श्रादि प्रान्तीं-में वस चुके थे; उनकी उत्तम धार्मिक व्यवस्थाके कारण सब प्रकारकी उन्नति हुई थी; देशमें चत्रियोंकी संख्या बहुत ही बढ़ गई थी। जहाँ-तहाँ सराज्य स्थापित हो गया था तथा रहन सहन सुज्यवस्थित हो गया था, जिससे सम्पूर्ण देश प्रजावृद्धिसे भरपूर था। दित्तण और पूर्वके द्विंड देशोंमें द्वाविड़ोंकी संख्या परी परी बढी थी। वहाँ अधिक बढ़नेके लिए स्थान नहीं था। लोगोंकी नीतिमत्ता उत्तम होनेके कारण आपसमें वैरभाव श्रथवा रोगोंकी उत्पत्ति कम थी। श्रर्थात् जिस प्रकार अभी महायुद्धके पहले यूरोप-के देशोंकी स्थिति हुई थी उसी प्रकार थोड़ी श्रियक स्थिति श्रीकृष्णके जन्मके समय हुई थी। जो यह वर्णन दिया है कि ब्रह्माको चिन्ता हुई कि पृथ्वीका भार कैसे कम होगा, वह कुछ श्रसत्य नहीं है। हम विस्तारपूर्वक बतावेंगे कि ऐसे समयमें श्रीकृष्णके श्रवतारकी तथा उनके दिव्य उपदेशको कितनी अधिक आवश्यकता थी।

राष्ट्रोंकी उच और नीच गति।

कोई देश कभी उन्नतिके प्रमोच पर पर सदैव नहीं रह सकता। उच्च शिलर पर पहुँचनेके बाद, घूमते हुए चक्रका नीचेकी स्रोर स्नाना जैसे स्नप्रहार्य है, वेसे ही उच-नीच गतिका प्रकार, इस जगत्में, हमेशाके लिए बना रहेगा। जिस वकार श्रभी हालमें सुधारके शिखर पर पहुँचे हुए यूरोप महाद्वीपमें एक मनुष्य-के दुराग्रहसे भयङ्कर रणसंग्राम मचा था, वेसे ही नीति, शौर्य, विद्या आदिमें सुसंस्कृत हो परमोच पदको पहुँचे हुए प्राचीन भारतवर्षमें, श्रीकृष्णके समयमें भी, एक मनुष्यके हठसे भयंद्वर युद्धका प्रसङ्ग श्रा पड़ा श्रीर उस युद्धसे भारत-वर्षकी अवनतिका आरम्भ हुआ। हमारी यह धारणा है कि भारती-युद्ध से कलियुग-का श्रारम्भ हुआ श्रीर युद्धमें ही कलि-युगका बीज है। हजारों नहीं, लाखों मनुष्य श्रपनी शूरता तथा विद्याके कारण उस युद्धमें मृत्युको प्राप्त हुए श्रीर देशकी मनुष्य-संख्या घट गई। यद्यपि एक दृष्टि-से यह बात कुछ लाभदायक हुई, तथापि श्रन्य इष्टिसे दुर्वलता तथा उसकी श्रनुगामिनी अनीतिका वर्चस्व देशमें श्रनः श्रनेः फेलने लगा। मारतीय आर्थ-गण जिस परमोच पद पर पहुँचे थे उसके लोपकी कुछ अधिक मीमांसा करती चाहिए; न्योंकि इसीमें श्रीकृष्णकें दिव्य चरित्र तथा उपदेशका रहस्य छिपा इस्रा है।

प्रवृत्ति और निवृत्तिका उचित

इस बातको अधिक बढ़ाकर कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं कि किसी देश-की सामाजिक, नैतिक तथा धार्मिक उन्नति सब प्रकारसे होनेके लिए उस देशके लोगोंमें प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों-का उपयोग योग्य रीतिसे होना चाहिए। यदि इन वृत्तियोंके यथायोग्य स्वीकार करनेमें कुछ अन्तर एड जाय तो समाज हीनावस्थाकी और भुक जाता है। जब

कोई समाज केवल प्रवृत्ति-परायण वन जाता है, या उसमें निवृत्तिका ही बडा श्राडस्वर होता है, या जो शुष्क निवृत्ति-के चकरमें पड़ जाता है तव वह समाज श्रधोगामी होने लगता है। जो समाज या व्यक्ति भौतिक सुखमें लिप्त हो जाता है उसकी श्रवनति श्रवश्यम्भावी होती है। इसके विपरीत इच्छारहित या श्राशा-रहित श्रवस्थामें रहना समाज या व्यक्ति-के लिए सम्भव नहीं। सारांश, मनुष्यको चाहिए कि वह अपनी उन्नतिके लिए श्राधिभौतिक श्रौर श्राध्यात्मिक गुणोंका उचित उपयोग करे। भारतीय श्रायोंमें उस समय उत्साह, तेज, उद्योग, साहस श्रादि श्राधिभौतिक श्रथवा प्रवृत्ति-के सद्रण तथा धर्म, नीति, तप, अना-सक्तताँ आदि आध्यात्मिक अथवा निवृत्ति-के सद्या एक समान थे। श्रीर, इसीसे वे उसं समय उन्नतिके परमोच शिखर पर पहुँचे थे। परन्तु भारती-युद्धके समय इन गुणोंकी लमानतामें कुछ फरक पड़ गया। एक ओर प्रवृत्तिकी प्रवलता हुई तो दूसरी श्रोर निवृत्तिका श्राडम्बर होने लगा। प्रवृत्तिको प्रवलताका पहला परि-णाम लोम है। ऐसे समय मनुष्यमें यह इच्छा पैदा होती है कि जगतकी हर एक वस्तु मुक्ते मिलनी चाहिए। वह मानने लगता है कि जगतमें जितना धन है, जितनी भूमि है और जितने रज हैं वे सव मेरे हो जायँ।

यत्पृथिन्यां वीहियवं हिरएयं पशवः स्त्रियः। नालमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमंत्रजेत्॥

इस प्रसिद्ध क्लोकमें मर्मज्ञ व्यासने जो उपदेश दिया है उसके अनुसार, यदि जगतके सब उपभोग्य पदार्थ एकको ही मिल जायँ तो भी वे पूरे न पड़ेंगे; इस-लिए यह बात जानकर मनुष्यको उचित है कि वह शमप्रधान वृत्तिसे रहे। परन्तु यह विचार लोगों के हृदयसे, विशेषतः राजा लोगों के हृदयसे, निकल जाता है श्रीर उन्हें यह लालसा लगी रहती है कि सब प्रकारकी उपभोग्य वस्तुश्रों की जननी भूमि हमारी हो जाय। इस लालसा के बाद धीरे धीरे श्रन्य दुष्ट विचारों का प्रचार समाजमें होने लगता है। महत्वा-कांचा, कपट, जुल्म श्रादि राचसी दुर्गुणों-का साम्राज्य शुरू हो जाता है श्रीर श्रन्त-में वैर पैदा होने पर समाज श्रथवा राष्ट्रका नाश हो जाता है।

भारती युद्धकालीन परिस्थिति।

पृथ्वीका भार कम करनेके लिए श्रीर तद्रमुसार भारती-श्रायोंका नाश करनेके लिए, विधाताने श्रार्यभूमिमें लोभका बीज बो दिया श्रीर तीन जगहोंमें नाशके केन्द्र-स्थान बना दिये। कंस, जरासन्ध श्रीर दुर्योधन ये तीन लोभी श्रीर महत्वा-कांची व्यक्ति उत्पन्न कर उसने अपना इष्ट्र कार्य सिद्ध किया। लोभ श्रीर महत्वा-कांचाके चकरमें आकर, कंसने, श्रीरङ्गजेव-के समान, वापको केंद्र किया श्रीर राज्य छीन लिया। इस दुष्ट कार्यके मग्डनके लिए उसने अपने पिताके पत्तके लोगों पर ऋत्याचार किये। सैंकडों चत्रियोंको कैदमें डालकर जरासन्धने परम ऐश्वर्य प्राप्त करनेके हेतु उनका पुरुषमेध करनेका विचार किया । दुर्योधनने पाएडवॉकी संपत्ति श्रौर राज्य द्युतमें बीन लिया, और प्रणके अनुसार जब लौटा देनेका समय श्राया तब साफ कह दिया कि सुईकी नोकसे जितनी मिट्टी निकले उतनी मिट्टी भी मैं देनेको तैयार नहीं हूँ। अर्थात् भयंकर रण-संग्राम मच गया और लाखों मनुष्योंकी हानि हुई। लोभको जब बल श्रौर संपत्तिकी सहा-पता मिलती है, तब रण बड़े ही भयानक हो जाते हैं। साथ ही साथ यदि दोनों पत्तोंकी तैयारी ऊँचे दर्जेकी हो, तथा शौर्यादि गुण समान् हों, तो ये युद्ध कितने हानिकर होते हैं, इसका अनुभव संसारको प्राचीन कालसे लेकर श्राधुनिक युरोपीय महा-युद्धतक हो रहा है। अँग्रेजी-में यह एक कहावत है कि, When greek fights greek, then the tug of war is terrible इसी कारण भारती-युद्धमें १८ श्रचौहिणी सेनाश्रोंमेंसे दस ही श्रादमी जिंदा बचे।तात्पर्य यह कि ब्रह्माने या निसर्गने लोभरूपी विषका बीज वो-कर, भारतीय आर्योंके नाशका प्रारंभ किया। सारण रखना चाहिए कि इस विल्ताण प्रसंगमें श्रीकृष्णका श्रवतार हुश्रा था। प्रवृत्तिके अधीन हो, लोभ और महत्वा-कांचाके पंजेमें फँस, श्रापसमें रणसंग्राम होनेके समय, निर्लोभताका उदात्त श्रादर्श दिखानेके लिए तथा बुद्धि, पराक्रम और चित्र-कारित्वसे सत्यका पन सँभालनेके लिए, श्रीकृष्ण उस समय संसारमें उपस्थित हुए थे। निर्लोभ-वृत्तिके ऐसे उदाहरण इतिहासमें बहुत थोड़े मिलंगे। निलाभताका जो काम वाशिगटनने श्रमेरिकामें स्वतंत्रताके युद्धके समय किया था, या आगे युनाइटेडस्टेट्सके दक्षिण श्रीर उत्तर भागमें दासत्व नष्ट करनेके लिए श्रापसमें जो संग्राम हुए श्रीर उस समय सत्पचनिष्ठ श्रोर निश्चयी श्रवहाम लिंकनने जो कार्य किया था, उसी प्रकारका, नहीं नहीं, उससे कहीं उदात कार्य श्रीकृष्णको राजनैतिक हलचलमें इसपर लच्य करनेसे करना पड़ा था। श्रीकृष्णके राजनैतिक कार्यका महत्व शीघ्र माल्म हो जायगा।

निवृत्तिका निरोध । एक श्रोर जिस प्रकार राजनैतिक विषयमें श्रीकृष्णको प्रवृत्ति-परायण लोगों- क्षमाजको निवृत्तिका पाठ सिखलाने-का महत्वपूर्ण कार्य करना पड़ा, उसी कार उन्हें दूसरी श्रोर उलटी दिशामें इती हुई निवृत्तिकी बाढ़को भी बाँधना हा। उस समय निवृत्तिमें कोरा श्राड-बर कैसा दिखाई देता था तथा समस्त ग्रार्मिक बातोंमें लोगोंकी कैसी कम-समभी थी, यह बात यहाँ विस्तारपूर्वक दिखाई जाती है। श्रीकृष्णका समय श्रीपनिषद-विचारोंका समय है। श्रतः श्रीकृष्ण द्वारा उपदेश की हुई दिव्य भग-वद्गीताका ठीक रहस्य समभनेके लिये, यह देखना चाहिए कि उस समय कौन-सी धार्मिक कल्पनाएँ प्रचलित थीं। उस समय मुख्यतः वेद, वेदान्त, सांख्य तथा योग मत प्रचलित थे: श्रीर हर एक मत सभी वातोंको श्रवनी श्रोर खींच रहा था। यद्यपि इन मतोंके वर्तमान सूत्र-यन्थं श्रभीतक निर्माण नहीं हुए थे तथापि ये मत उनके मुख्य सिद्धान्तोंके साथ प्रश्वापित हुए थे और वे एक दूसरेका निषेध करके श्रपनी बात सिद्ध करते थे। कुछ लोग कहते थे कि मन्ष्यको चाहिए, कि वह वेद-में बतलाये हुए यज्ञयागादि कर्म ही करे श्रीर स्वर्ग प्राप्त करे। कुछ लोग कहते थे कि कर्म बिलकुल नहीं करना चाहिए; परन्तु वृहदार्गयकके "पूत्रेषणायाश्च वित्तेषणा-याश्च लोकेषणायाश्च व्युत्थायाथ भिज्ञा-चर्यं चरन्ति" इन वचनोंके श्रनुसार संसार छोड़कर मनुष्य जङ्गलमें चला जाय। जब इस प्रकारका वाद पढ़े-लिखे लोगोंमें हो रहा था, तब बहुजन समाज-को विशेषतः मिश्र समाजको तथा शृद्रों-को किसीका श्राधार न रह गया। उनके लिए न तो वैदिक कर्म करना ही सम्भव था श्रौर न श्रौपनिषदिक संन्यास-मार्ग ही खुला था। ऐसी परिस्थितिमें श्रीकृष्णने भगवद्गीताका दिव्य उपदेश देकर एक

श्रोर कर्मका श्राडम्बर तोड़ा श्रौर दूसरी श्रोर निवृत्तिका, श्रर्थात् भ्रान्त निवृत्तिका श्राडम्बर तोड़ा श्रौर सब लोगोंके लिए सुगम नवीन भक्ति-मार्ग पतिपादित किया। समाजकी इस परिश्वितिका स्वरूप पाठकोंके ध्यानमें ठीक ठीक लानेके लिए इस सिद्धान्तका हम कुछ श्रौर ऐतिहासिक विवेचन करेंगे।

वैदिक श्रायोंका स्वभाव।

ऋग्वेदकी अनेक ऋचाओंसे स्पष्ट दिखाई देता है कि प्राचीन भारती आयों-की मानसिक श्विति उस समय कैसी थी जब कि वे पहलेपहल हिन्द्रस्थानमें आये थे। ऋग्वेद-कालीन आयोंमें नई शक्ति श्रीर नया जोश था। वे प्रसन्नमन, शर-वीर तथा संसारकी उपभोग्य वस्तश्रोंका उचित उपयोग करनेवाले थे। वे इन्द्र. वरुण आदि देवताओं से सुन्दर स्त्रियाँ, वीर पुत्र श्रीर ताकतवर घोड़े माँगते थे। वे खयं सोमरस पीते श्रीर श्रपने प्रिय देवताश्रोंकों भी सोमरस पीनेक लिए ब्राह्मन करते थे। वे खयं मांस खाते श्रीर यज्ञमें पशुको मारकर देवताश्री-को मांस अर्पण करते थे। उनका अन्तिम उद्देश खर्ग था। श्रीर, वह खर्ग भी सुख पवं ऐश्वर्य भोगनेका स्थान था। सारांश. पहलेपहलके आर्य प्रवृत्तिके भोका थे. तथापि उनमें निवृत्तिके बीजका बिलकुल ही श्रभाव न था। हमें यह इसलिए मालूम होता है कि कई एक वैदिक ऋचाश्रोंमें उनकी निवृत्ति-प्रधान प्रार्थनाएँ हमारे सामने उपस्थित हैं। हिन्दुस्थानमें भारतीय श्रायोंके श्राने पर गंगा श्रीर सरस्वतीके बीचकी ब्रह्म-भूमिमें इसी निवृत्तिके वीजसे विशाल वृत्त उत्पन्न हुआ, जिसमें श्रीपनिपदिक विचार-क्रपी अत्यन्त मनोहर श्रीर रसपूर्ण फल लगे। उन्हें यह देख पड़ा कि समस्त विश्व नश्वर है। अधिक तो क्या, स्वर्ग भी नश्वर है। इससे उनका प्रेम तप श्रौर श्रारएय-वाससे जा लगा। यज्ञका मार्ग उन्होंने त्यागा नहीं: पर यज्ञके साथ हो साथ तपको भी उन्होंने महत्व दिया। वे खर्गकी श्रपेत्ता मोत्तको ही परम पुरुषार्थका स्थान मानने लगे। पहले वे कहते थे कि सारी सृष्टि यज्ञ कर रही है तथा प्रजापति भी यज्ञ कर रहा है। श्रव उनकी भावना ऐसी हुई कि सारी सृष्टि, प्रजापति तथा इन्द्र सभी तप करते हैं। उन्हें दिखाई देने लगा कि समस्तउपभोग्य वस्तुश्रोंकात्याग श्रीर सब कर्मोंका संन्यास ही मोत्तका उपाय है। वे कहने लगे कि किसी वस्तुकी इच्छा करना दरिद्रता स्वीकृत करना है तथा किसीकी इच्छा न करना ऐश्वर्यकी परमावधि है। सारांश, वेदान्ती तत्ववेत्ता मानने लगे कि संसारको छोड जंगलमें जाकर शम-प्रधान वुद्धिसे श्रकाम-स्थितिमें रहना ही मनुष्यका परम कर्तव्य है। उनका निश्चय हो गया कि श्राशिष्ठ, द्रद्धि तथा बलिष्ठ सार्वभौम राजाको जो खुख मिलता है उससे हज़ार गुना श्रधिक श्रकामहत श्रोत्रियको मिलता है। यह कल्पना वेदान्तियोंकी ही न थी, वरन खतन्त्र रीतिसे जगत्की उत्पत्तिका विचार करनेवाले कपिलादि हैतमत-वादियोंकी भी यही कल्पना थी। संचेपमें कहना होगा कि मनत्र-कालमें कर्म-वादियों-की प्रवृत्ति-परायणता परमावधिको पहुँच चुकी थी, तो उपनिषद्-कालमें निवृत्ति-वादियोंको निवृत्ति-परायणताका शिखर ऊँचा होने लगा।

संसारमें प्रवृत्ति तथा निवृत्तिका आन्दोलन।

संसारके इतिहासकी श्रोर देखनेसे

ज्ञान हो जायगा कि मनुष्य-समाज इसी प्रकार प्रवृत्ति श्रौर निवृत्तिके वीचमें भकोरे खाता हुआ चला आता है। घड़ीके लंगर कन (पैगडुलम) के समान वह एक वार प्रवृत्तिके परम शिखर पर पहुँच जाता है श्रोर वहाँसे लौटकर श्रान्दोलित हो निकृति की श्रोर भुकता है; तब निवृत्तिके पर-मोच विन्दुको पहुँचकर वह फिर श्रान्दो-लित हो प्रवृत्तिकी ओर घूमता है। श्राजतक यही श्रनुभव इतिहासमें सब कहीं दिखाई देता है। श्रीक लोगोंमें होमरके समय प्रवृत्तिकी पूर्ण प्रवलता थी । वह धीरे धीरे घटती गई और पायथागोरसके समयमें लोग निवृत्ति-की श्रोर भुके। पायथागोरसके श्रव-यायिश्रोंने मद्यमांस ही नहीं छोड़ा, बल्कि वे विवाह करना भी श्रेयस्कर नहीं मानते थे। इस वृत्तिकी यहाँतक परमावधि हुई कि डायोजेनिसने सर्वसंग-परित्याग कर जन्म भर एकान्तवास किया। एपि-क्यूरसने मनुष्यकी स्वभावोचित रीतिसे उसकी उलटी दिशामें जानेका प्रारंभ किया। उसका मत थां कि निसर्गसे प्राप्त होनेवाले खुखोंको सदाचरणके साथ भोग-कर मनुष्यको चाहिए कि वह आनन्दसे अपने दिन व्यतीत करे। धीरे धीरे यह मत भी इतना प्रवल हो गया कि लोग प्रवृत्तिके दूसरे छोरको पहुँचे श्रीर सुखोप-भोगको ही जीवनका इतिकर्त्तव्य मानने लगे। इस प्रकार ग्रीक लोग श्रीर उनके अनुगामी रोमन लोग ऐशो-श्राराममें चूर हो गये। उनकी विषयलोलुपताके कारण हो ईसाके धर्मको फैलनेका मौका मिल गया। उस समय ईसाई-धर्ममें निवृत्तिका त्राडंवर घुस पड़ा था। ईसाई लोग विवाह न करना प्रशंसनीय मानने लगे थे। उनका यह प्रबन्ध था कि निदान मनुष्य मृत्यु पर्यन्त एक ही स्त्री करे और उसका त्याग न करे। इसी प्रकार उनमें श्राजन्म श्रविवाहित रहनेवाले श्रौर शारीरिक तप करके श्राध्यात्मिक सामर्थ्यको बढ़ानेवाले संन्यासी श्रथवा मांक (monk) होने लगे थे। इन्द्रियों पर जय प्राप्त करनेवाले तपस्वीका मनोनिश्रह हेंद्रियाधीनों पर हमेशा जय लाभ करता है। श्रर्थात् निवृत्ति-प्रधान ईसाई धर्मकी श्रभुता, सब प्रकारकी श्रनीतिसे विगड़े हुए श्रीक श्रौर रोमन लोगों पर, सहज ही प्रस्थापित हो गई श्रौर उनमें ईसाई धर्म बहत शीव्र फैल गया।

यह निवृत्ति-प्रधान वृत्ति मृलतः ईसाई धर्ममें नहीं थी। ईसाका मत ज्यू लोगोंके निवृत्तिपूर्ण ब्राचारोंके विरुद्ध था। ये लोग उपवास कर श्रपने देवताश्रोंको संतुष्ट करते थे। वे मानते थे कि मद्यमांसका त्याग कर श्रोर श्रविवाहित रहकर देवताकी भक्ति करना ही मुक्ति-मार्ग है। ईसा उनके विरुद्ध था।

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः । मां चैवान्तः शरीरस्थं

तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥
ईसाका मत गीताके उक्त वचनके
समान ही था, परन्तु धीरे धीरे ईसाई
धर्ममें भी निवृत्तिका श्राडम्बर बढ़ने लगा
श्रीर मठ-संखाएँ खापित होने लगीं। ईसाइयोंमें यह बन्धन तुरन्त ही कर दिया गया
कि ईसाई धर्मापदेशक विवाह न करे;
इतना ही नहीं, किन्तु सैंकड़ों श्रीर हजारों
पुरुष तथा स्त्रियाँ संसारको त्याग मांक्स
श्रीर नन्स (Monks and Nuns) यानी
जोगी श्रीर जोगिन होने लगीं! कुछ समयके बाद निवृत्तिका यह स्वरूप सत्वहीन
हो गया। सच्ची विषय-पराङमुखता नष्ट
हुई श्रीर केवल ढोंग रह गया। श्रनेक
पकारके श्रनाचार फैल गये। श्राखिर इस

कोरी निवृत्तिके स्वरूपकी परमाविष्ठ हो गई। फिर ल्यूथरके समयसे ईसाई धर्म प्रवृत्तिकी थ्रोर भुका। उस समय यह प्रस्थापित हुआ कि योग्य रीतिसे प्रवृत्तिका स्वीकार करना श्रधमें नहीं है। तब प्राटेस्टेंट मतफैलने लगा। यह कहने-में कोई हर्ज नहीं कि श्राजकल यह मत दूसरी श्रोर यानी प्रवृत्तिके परमोश्च बिंदु-की श्रोर जाना चाहता है। पाश्चात्य लोगोंकी श्राधुनिक भौतिक उन्नति श्रीर श्राधिभौतिक सुखोंकी लालसाका ध्यान करनेसे यह कहा जा सकता है कि पाश्चात्य समाजका लंगर (पैएडलम) प्रवृत्तिके पर-मोश्च विंदुकी श्रोर जा रहा है।

भरतखंडका वही इतिहास।

पाश्चात्य लोगोंके उपर्युक्त श्रति संचिप्त इतिहाससे पाठकगण कल्पना कर सकते हैं कि मनुष्य-समाज प्रवृत्ति श्रौर निवृत्ति-के बीच कैसा आन्दोलित होता है और दोनों वृत्तियोंको समतोल रखकर उनका उचित रीतिसे सदैव उपयोग करना मनुष्य-समाजके लिए कितना कठिन है। इतिहासकी समालोचनासे मालूम हो जायगा कि हमारे देशका जन-समाज भी पहले ऐसे ही भकोरे खाता रहा है। प्राचीन कालके आयोंके परम पूज्य ऋषियोंकी श्राश्रम-व्यवस्थासे स्पष्ट दिसाई देता है कि वे इन दोनों वृत्तियोंका योग्य श्राश्रय लेकर रहतेथे। दो श्राश्रम प्रवृत्ति-के थे श्रौर दो निवृत्तिके। उनका रहन-सहन "यौवने विषयैषी" तथा "वार्धके मुनिवृत्ति" था । परन्तु ऋग्वेदकालके श्चन्तमे प्रवृत्तिकी प्रबलता हुई। यज्ञयागादि क्रियाएँ त्राति परिश्रम-साध्य तथा श्रधिक ज्ययसाध्य हुईं। ब्राह्मणों श्रौर ज्ञियों-ने बड़े ठाठबाटसे यज्ञ करके स्वर्ग-सुख प्राप्त कर लेनेको ही श्रपनी इतिकर्तव्यता मानी। वाजपेय, राजस्य, श्रश्वमेध श्रौर पुरुषमेधकी धूम मची। ऐसे समयमें उप-निषदोंके उदात्त विचार शुरू हुए । वेदांती लोग संसार-सुखकी श्रपेत्ता श्राध्यात्मिक सुखका महत्व श्रधिक मानने लगे।विचार-वान् लोगोंने निश्चय किया कि निष्काम-वृत्तिसे जगत्में रहकर तप करने तथा ब्रह्मका निदिध्यास करनेमें ही मनुष्य-जन्मकी सफलता है। शनैः शनैः निवृत्ति-की यह वृत्ति भी शिखरको जा पहुँची। जिसके मनमें त्राया, वह उठा श्रौर चला जङ्गलमें तपस्या करनेके लिए। एक समय ऐसा श्राया कि जिसके दिलमें श्राया वही, चाहे वह जिस श्रवस्थामें क्यों न हो, संन्यास लेकर ब्रह्मज्ञानका मार्ग पकड़ने .लगा। उस समय श्रीकृष्णने श्रपनी दिव्य भगवद्गीताका उपदेश देकर जन-समाजको ठीक रास्ते पर यानी प्रवृत्ति तथा निवृत्ति-के मध्यवर्ती बिन्दु पर लानेका प्रयत्न किया। उनका यह मत न था कि तप न करना चाहिए या संन्यास न लेना चाहिए। तपकी योग्यता श्रीकृष्ण खूब जानते थे। तपशील मनुष्य ही सुखकी सची योग्यता जानता है। शारीरिक सामर्थ्य श्रीर श्राध्यात्मिक तेज तपसे ही बढ़ता है। परन्तु यह भी स्पष्ट है कि तपको ही अपना अन्तिम ध्येय वनाकर शरीरको व्यर्थ कष्ट देना कदापि उचित नहीं। चाणिक वैराग्यसे या मनकी दुर्व-सताके कारण ही संन्यास न लेना चाहिए, वरन् पूर्ण वैराग्य प्राप्त होने पर तथा जगतके नश्वरत्वका पूर्ण ज्ञान चित्तमें स्थिर हो जाने पर ही लेना उचित है। यदि ऐसा न हो तो हर कोई जािशक वैराग्यसे संन्यास लेकर श्ररएयवास करने लगेगा, शहरोंकी भीड़ जङ्गलमें जा बढ़ेगी। इतना ही नहीं, बल्कि समाजका नुकसान होगा और उसमें अनीति फैलेगी।

ऐसी स्थिति श्रागे बौद्धोंकी उन्नतिके काल-में सचमुच हुई। जङ्गलोंके विहार-स्थान शहरोंके समान वन गये श्रीर वे दुराचारी भिचुत्रों तथा संन्यासिनियोंसे भर गये। उपनिषदोंके निवृत्ति मार्गका आडम्बर जब बढ़ने लगा तब श्रीकृष्णने श्रपने दिव्य उपदेशसे उसे तोड़ा। वेदान्त, सांख्य श्रौर योगकी भ्रान्त कल्पनाश्रोंसे जो लोग मानने लगे थे कि संसार-त्याग ही जीवन-का इतिकर्तव्य है, उन्हें श्रीकृष्णने मर्यादित किया । घर-वार छोड़कर जङ्गलमें जा वसनेसे संसार नहीं छूटता। इसके विप-रीत संसारमें लोलुप होनेसे भी मनुष्य-को सचा सुख नहीं मिलता। एक बातका मध्यविन्दु रहता है, जिस पर स्थित होनेसे मनुष्यको परम गति मिल सकती है। एक श्रोर शारीरिक त्याग करना श्रसम्भव है, तो दूसरी श्रोर शारीरिक सुखमें श्रत्यन्त निमन्न होना भी बहुत हानिकर है। वही योगी परम गति-को प्राप्त होगा जो युक्ताहारी तथा युक्त-विहारी रहेगा या संन्यासी मनसे कर्म-फलका त्याग कर कर्म करता रहेगा। सारांश यह कि श्रीकृष्णने एकान्तिक एकान्तिक प्रवृत्तिका तथा निषेध किया श्रोर लोगोंको मध्यवर्ती विन्दु पर लानेका प्रयत्न किया। कहनेकी श्रावश्यकता नहीं कि श्रीकृष्णके दिव्य उपदेशका भी कालक्रमसे विपर्यास हो गया । सेंकड़ों वर्ष पश्चात् श्रीकृष्णके दिव्य उपदेशका भी कालकमसे विप-र्यास हो गया । सैकड़ों वर्षके पश्चात् श्रीकृष्णके उपदेशका श्रर्थ कुछ तो भी समभ लिया गया श्रीर प्रवृत्तिकी श्रीर भुका दुत्रा समाज, घड़ोके लंगरके समान, प्रवृत्तिके अन्तिम छोर पर जा पहुँचा। उसका इस प्रकार जाना श्रप-रिहार्य ही था।श्रीकृष्णके पश्चात् हज़ार या

दो हज़ार वर्षतक जनसमाजमें प्रवृत्तिकी प्रवलता इतनी वढी कि लोग यह मानने लगे कि कृष्ण-भक्ति श्रथवा भागवत-मत सखोपभोगका साधन है। लोग मानने तागे कि जगतमें भौतिक सुख-भोग ही मन्द्रपका सर्वोच्च ध्येय है । तव समाज निवृत्तिकी श्रोर फिर भुका श्रीर बुद्ध, महावीर श्रादि धर्मीपदेशक पैदा हए। उन लगोंने निवृत्ति-प्रधान मतका प्रचार किया: पर धीरे धीरे काल-गतिसे जन-समाज निवृतिके उच शिखर पर जा पहुँचा श्रीर हजारों बौद्ध तथा जैन भिच श्रीर भिन्निकिणियोंसे शहरके समान ठसाठस भरे हुए विहार कुनीतिके जन्म-स्थान बन वैठे। स्वभावतः समाज चकर खाकर फिर प्रवृत्तिकी श्रोर भुका। वह फिर इतना भुका कि जहाँ जैनों श्रीर बौद्धोंने वेदको फेंक श्ररएयवास श्रीर संन्यासको गद्दी पर वैठाया था, वहाँ मंडन मिश्र श्रादि नवीन लोगोंने वेदोंको फिर गद्दी पर बैठाया, मद्यमांसका सेवन जारी किया और संन्यासको पदच्युत करके उसे वहिष्कृत कर दिया। भूठे संन्यासियोंने उस समय संन्यासको इतनी नीच दशामें पहुँचाया था कि संन्यासका नाम लेते ही मंडन मिश्रकी कोधाग्निकी सीमा न रहती थी । इस प्रकार प्रवृत्तिकी श्रोर, कर्मकी श्रोर, सुखोपभोगकी श्रोर भुककर जब समाज दूसरी दिशामें जाने लगा, तव श्रीमत् शंकराचार्यने शीघ्र ही निवृत्तिको जागृत कर तथा संन्यासको योग्य स्थान पर वैठाकर समाजको मध्य विदुपर स्थिर किया। परन्तु निवृत्तिका जोर फिर बढ़ा। मध्व श्रादि प्रवृत्याभिमानी रामानुज, धर्मोपदेशक पैदा हुए, जिन्होंने फिर समाजको प्रवृत्तिकी श्रोर भुकाया। परिणाम यह हुआ कि कुछ समयके बाद

वल्लभाचार्यका मत उत्पन्न हुन्नाः पर श्रन्ध श्रोर मूढ़ लोगोंने उसका ध्येय कुछका कुछ बना डाला । इतिहासकी समा-लोचनासे इस बातका दिग्दर्शन हो जायगा कि हमारे देशमें श्राजतक प्रवृत्ति श्रोर निवृत्तिके बीचमें लोक-समाज कैसा श्रान्दोलित होता रहा है।

कमयोगका उपदेश।

श्रीकृष्णके दिव्य उपदेशका ऐतिहा-सिक महत्व श्रच्छी तरह समभनेके लिए उपर्युक्त समालोचनाको श्रावश्यकता थी। श्रीकृष्णके समयमें कुछ लोग वैदिक कर्म करना ही मनुष्यकी इतिकर्त्तव्यता सम-भते थे श्रीर समाजको एक श्रीर खींचते थे। दूसरे लोग यह मानते थे कि संसार-को छोड जङ्गलमें जाकर श्रीपनिषद-पुरुषका निदिध्यास करना ही परम पुरु-षार्थ है श्रौर ऐसे लोग समाजको दूसरी श्रोर खींचते थे। दुर्योधन या पुरुषमेधकी इच्छा करनेवाला जरासन्ध पहले मतका निदर्शक था, सामने आये हुए युद्धके श्रवसरपर कर्मको त्याग संन्यासकी इच्छा करनेवाला श्रर्जुन दूसरे मतका निदर्शक था। एकको श्रीकृष्णने वलसे रास्ते पर किया श्रौर दूसरेको भग-वद्गीताके दिव्य उपदेशसे । पूर्वाचार्योंके उपदेश किये हुए सिद्धान्त, सब धर्मोप-देशोंके समान, श्रीकृष्णने भी श्रमान्य नहीं किये । वैदिक कर्माभिमानियोंकी कर्मनिष्ठा, सांख्योंको ज्ञाननिष्ठा, योगाभि-मानियोंका चित्त-निरोध ग्रौर वेदान्तियां-के संन्यासका उन्होंने ब्रादर किया है। परन्तु हर एक मतने जो यह प्रतिपादित किया था कि हमारी इतनी ही इति-कर्त्तव्यता है, उसका उन्होंने निषेध किया है। हर एक मतको उचित महत्व देकर, उन सबोंका समन्वय करके, श्रीकृष्णने उनका उपयोग श्रपने नये कर्त्तव्य-सिद्धांत-के लिए अर्थात् निरपेत्तं और फलेच्छा रहित कर्मके लिए कहा है। उन्होंने भगवद्गीता-में मुख्यतः इस बातका प्रतिपादन किया है कि मनुष्य श्रपना कर्त्तव्य किस प्रकार करे। शास्त्रका काम है कि वह कर्तव्यका निश्चय करे; परन्तु यह निश्चय होनेके बाद वह क्यों किया जाय श्रीर कैसा किया जाय, इसका पूर्ण विवेचन बहुत उत्तम रीतिसे किया है। श्रीकृष्णने श्रर्जुन-को अञ्जी तरह समभाया है कि आप-त्तियोंसे डरकर या मोहपाशमें फँसकर कर्त्तव्य-पराङ्मुख होना श्रीर जङ्गलमें जाकर संन्यास लेना सचे मोच-मार्गपर चलना नहीं है। सारांश, यह है कि श्री-कृष्णाने भगवद्गीतामें अर्जुनको यह बत-लाया है कि वेद, वेदान्त, सांख्य श्रीर योगका सत्कार करना उचित है। साथ ही यह भी बताया है कि इन सबमें जो अपनी अपनी शेखी मारी गई है वह सव व्यर्थ है। उन्होंने यह भी समसा दिया कि प्रवृत्तिको निवृत्तिरूप श्रीर निवृत्तिको प्रवृत्ति रूप कैसे देना चाहिए तथा अपना कर्त्तव्य कैसे करना चाहिए। एक दृष्टिसे देखा जाय तो भगवद्गीता सबसे प्राना सांख्य-शास्त्र है, तथा वेदान्त-शास्त्र श्रीर योग-शास्त्र भी है। इन सव शास्त्रोंके मान्य सिद्धान्त यदि कहीं सङ्गलित किये गये हैं श्रीर श्रोजस्वी वाणीसे बतलाये गये हैं तो बस भगवद्गीतामें । इसीसे भग-वद्गीताके लिए उपनिषद्, ब्रह्म-विद्या श्रोर योग-शास्त्र श्रादि विशेषण यथार्थ ही होते हैं।

नवीन भक्ति-मार्ग।

प्राचीन श्राचार्योंके उपदेश किये हुए वेद श्रीर वेदान्त, सांख्य श्रीर योग सभी-के मान्य श्रीर उत्तम श्रंश श्रीकृष्णने

श्रपनी श्रमोघ श्रौर दिन्य वाणीसे श्रर्जुन-को भली भाँति समका दिये। इतना ही नहीं, किन्तु उन्होंने उस समय अपना नवीन उपदेशित भक्ति-मार्ग भी अर्जुनको समभा दिया। हमारा मत है कि भक्ति-मार्ग अथवा भागवत-धर्मके पहले उप-देशक श्रीकृष्णसे ही इस मतको भागवत संज्ञा मिली है। इसीका एक विशिष्ट स्वरूप पांचरात्र मत है। यह ज्ञान श्री-कृष्णाने राज-विद्या, राजगुद्य नामसे भग-वद्गीतामें वतलाया है श्रोर वहीं, फिरसे श्रन्तमें श्रठारहवें श्रध्यायके "सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शर्णं वज" श्लोकार्घमें श्रर्जुनको फिर बतलाया है। श्चनन्य भावसे एक परमेश्वरकी प्रेमपूर्वक भक्ति करके उसकी शरणमें लीन होनेका मोत्त-मार्ग सबके लिए खला श्रीर सुलभ है। संन्यास, योग या यज्ञादि साधन सबके लिए सुलभ और खुले नहीं । यज्ञयाग हजारों रुपयोंके खर्चकी विना नहीं हो सकते या शास्त्रोंके सदम ज्ञानके विना नहीं हो संकते। इसी प्रकार बुद्धिमानों श्रोर नित्रहवानोंके सिवा संन्यास और योग दसरे किसी-को प्राप्त नहीं हो सकते। तब मनुष्य-के सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है कि द्रव्यहीन, वुद्धिहीन श्रोर संसारमें फँसे हुए जीवोंके लिए कुछ तरणोपाय है या नहीं ? परन्तु उस समय तो यह प्रश्न विशेष रीतिसे उपस्थित था। भारती श्रार्य जब हिन्दुस्थानमें श्राये तब उनके तीन वर्ण थे। हिन्दुस्थानमें जब श्रायोंकी, विशेषतः चन्द्रवंशी चत्रियोंकी बस्ती सब जगह फैली, तब चौथा शुद्र वर्ण उनमें श्राकर मिला। उस समय श्रनेक मिश्र वर्ण उत्पन्न हुए । बहुतेरे चैश्य खेती करने लगे श्रीर धीरे धीरे वेद श्रीर शिज्ञासे पराङ्मुख हो गये।स्त्रियाँ सव वर्णोंकी होने

लगीं, इससे वेभी बहुतसी श्रपढ ही रहीं। वेसे बड़े जनसमृहके लिए यज्ञ, संन्यास या योग-मार्ग बन्द हो गये। उस समय यह प्रश्न बड़े जोरके साथ सामने श्राया कि इस हिथतिमें अज्ञानी लोगोंके लिए परम-पदकी प्राप्ति सम्भव है या नहीं ? ब्राह्मणीं तथा चित्रयोंका ता यह मत था कि ये लोग मोचके लायक नहीं हैं। सामान्य जनसमुद्द पर श्रीकृष्णका श्रत्यन्त प्रेम था। यह कहनेमें कोई हर्ज नहीं कि धर्म-दृष्टिसे उन्हींका उद्घार करनेके लिए श्री-कृष्णका ग्रवतार हुन्ना था। उनका बच-पन स्त्रियों, वैश्यें। श्रीर श्रद्रोंमें ही व्यतीत हुआ था। उन्होंने श्रपनी श्रांखोंसे देखा था कि ये लोग अपने इष्टदेव पर कैसा निःसीम और निष्काम प्रेम रखते हैं। इसमें कोई आर्चर्य नहीं कि ऐसी स्थितिमें उन्होंने इस उदात्त मतका प्रतिपादन किया कि परमेखरका या उसकी किसी दिव्य विभूतिका निरतिशय प्रेम करने-से और उसकी भक्ति करनेसे ये लोग करेंगे। भक्ति-मागका मोच प्राप्त रहस्य अजु नका समभाते हुए उन्होंने भगवदगीतामें रुपष्ट कहा है कि मिक्त-मार्गसे स्त्रियाँ, वैश्य, शूद्र बरिक चांडाल भी परमगतिका जायँगे। उस समय समाजमें देा केाटियाँ नजर श्राती थीं -पुर्यवान् ब्राह्मण् तथा भक्त राजिषे। एक संन्यास और तपके अभिमानी थे, तो दूसरे बड़े बड़े अश्वमेध आदि यज्ञोंके अभिमानी थे। उनकी यह धारणा थी कि हम ही मोच प्राप्त करेंगे, दूसरे नहीं। पहलेसे ही पुराय-मार्गमें लगे हुए ये लोग ईश्वरकी भक्ति कर परमगतिको प्राप्त होंगे ही, परन्तु श्रीकृष्णने छाती ठोंककर कहा कि स्त्री, वैश्य, शद्र, चांडाल श्रादि वे श्रज्ञानी लोग भी जी मोचके मार्गसे दूर किये गये थे, भक्तिसे परम-

गति प्राप्ति करेंगे। स्वभावतः श्रीकृष्णका यह भक्ति-मार्ग धीरे धीरे श्रीर मार्गोंको पीछे हराता हुआ भरतखएड में आगे वढा और उसको श्रेष्ठता ब्राज सारे भरत खएडमें दिखाई देती है। 'रामः श्रस्भृता-महं' श्रीर 'वृष्णीनां वासुदेवे।ऽस्मि' में बताई हुई दे। विभूतियोंकी भक्ति आज हिंदुस्थानमें सर्वत्र प्रचित है। यही नहीं, किन्तु उसने यज्ञ, तप, संन्यास श्रादि सागौंका भी पीछे हटा दिया है। इससे यह सहज ही ध्यानमें आ सकता है कि हिन्दुस्थानके लाग श्रीकृष्णका क्यां इतना पूज्य मानते हैं। वेदान्त सूत्र अब-तक यही कहता है कि केवल ब्राह्मण श्रीर वे भी संन्यास लेने पर-मोच प्राप्त कर सकेंगे। मुसलमानोंके धर्मीपदेशक कहते हैं कि मान प्राप्त करना मुसल-मानोंके ही भाग्यमें है श्रीरोंके नहीं, श्रीर ईसाई धर्मीपदेशक कहते हैं कि ईसा ईसाइयोंका ही उद्घार करेगा, दूसरोंका नहीं। परन्तु श्रीकृष्ण ने भगवद्गीतामें इस उदात्त तत्वका प्रतिपादन किया है कि मनुष्य चाहे किसी जाति अथवा मतका क्यों न हो, वह परमेश्वरकी किसी विभू-तिकी भक्ति करनेसे मोत्तपदका प्राप्त कर सकता है। यह कहनेमें कुछ भी श्रत्युक्तिनहीं कि भक्ति-मार्गका अथवा 'रिलिजन श्राफ डिवोशन' (Religion of Devotion) का उदात्त स्वरूप जैसा श्रीकृष्णके भक्ति-मार्गमें दिखाई देता है, वैसा श्रन्यत्र कहीं नहीं दिखाई देता। इस स्वरूपकी पराकाष्ठा तुकाराम, तुळसीदास श्रादि संतोंने की है। सततं कीर्रायन्ता मां नित्ययुक्ता उपासते' की मनेाहर साज्ञी श्रयोध्या, मथुरा, वृन्दावन या पंढरपुरको छे।ड़ अन्यत्र कहीं ,न मिलेगी । श्रीकृष्णने श्रपने उदात्त तत्त्वोंके इस भक्ति-मार्गका उपदेश जबसे श्रर्जुनका पहले पहल दिया है तबसे उसका उत्कर्ष 'यद्गत्वा न निवर्तते'
रीतिसे हिन्दुस्थान भरमें हो गया है। इसी
भक्ति-मार्गके कारण श्रीकृष्णके श्रवतारके
मुख्य धामिक कार्यों की छाप भारतभूमि
के लोगों के हृद्यपटल पर सदाके लिए
श्रंकित है।

कर्मयागका सिद्धान्त

श्रीकृष्णने इससे भी बढ़कर महत्वका एक काम तत्वज्ञानके सम्बन्धमें किया है। परन्तु उसकी छाप हिन्दुस्थानके हृद्यपटल पर सदाके लिए उठी हुई नहीं दिखाई देती। इसका कारण हम पहले बता चुके हैं। तत्ववेत्ताश्रोंके सन्मुख यह श्रित विकट श्रीर महत्वका प्रश्न सदा उपस्थित होता है कि इस जगत्में मनुष्यकी इति-कर्त्तव्यता क्या है। जैसा कि शेक्सपीयरने कहा है—'To be or not to be, that is the question.' इस जगत्में जिन्दा रहनेमें कोई सार्थकता है या मनुष्य-का जीवन निरर्थक है। मनुष्य अपनी परिस्थितिके अनुरूप कर्म करे या अकर्म **∓**वीकृत कर जीवनकी निरर्थकता व्यक्त कर दिखावे ? कर्म श्रीर श्रकर्मके सम्ब-न्धका वाद अनादि है। यह विचारवानों के सामने सदासे उपस्थित है। श्रीकृष्ण-ने गीताके समस्त विवेचनका उपसंहार करते समय श्रठारहवें अध्यायमें श्रपनी दिव्य श्रीर श्रमाघ वाणीसे इसी प्रश्नकी चर्चा की है श्रार श्रपना सिद्धान्त श्रर्जन-को समभाया है। मनुष्य मेा ज्ञार्य की प्राप्तिके लिए वेदका यश-याग, वेदान्तका संन्यास, श्रथवा सांख्य मार्गका ज्ञान. योगका चित्तवृत्ति-निरोध, भक्ति-मार्गका भजन जो चाहे सा स्वीकार करे, परन्तु उसे कर्म करना ही पड़ेगा। वह कभी टल नहीं सकता। सूर्य, चन्द्र, नज्ञत्र सदा यूमते हैं; समुद्र सदा लहराता है। फर्क

केवल इतना ही है कि कभी धीरे ते। कभी जोरसे। मनुष्यका सांस किसी दशामें बन्द नहीं होता; सरने पर ही बन्द होता है। गीली सिही एक ही स्थिति सदैव नहीं रहती। सारांश यह कि इस जगत्में किया सतत जारी है श्रीर सदा रहेगी। यह लोक कर्मसे बँघा है। नियत या प्राप्त कर्म छे।ड़ देना सस्भव नहीं। जा पागलपनसे उसका त्याग देते हैं वे तामसी त्यागी हैं। ऐसा जान पडता है कि ऐच्छिक कर्म करना यान करना श्रपने ही हाथमें है; परन्तु इसमें भी €वभावसे प्राप्त कमें नहीं छूटता। यहाँ सदोष सम्बन्धी विचार करना भी व्यर्थ है। जिस प्रकार श्रविन सदा धूमसे च्याप्त रहती है,उसी प्रकार कर्मका आरंभ दोषसे व्याप्त है। इसलिए यदि कर्म-स्वभाव सिद्ध या सहज है, पर सदोष है, तो करना श्रेयस्कर ही है। तात्पर्य यह कि श्रीकृष्णका यह सिद्धान्त है कि कर्मका छूटना या छोड़ना असम्भव है। यह सिद्धान्त पाश्चात्य तत्वज्ञानियोंका भी मान्य होना चाहिए। उनका भी यही मत है कि कर्म करनेमें ही मनुष्यत्वका गौरव है। परन्तु श्रीकृष्णके कर्मयोगमें एक श्रीर विशेषता यह है जे। कदाचित् पाश्चात्य परिडतोंको मान्य न हो। मनुष्य-को चाहिए कि वह कर्म करे। नियत या सहज कर्म तो टल ही नहीं सकता, श्रौर पेच्छिक कर्म यदि कर्तव्य है ते। करना ही चाहिए। मनुष्यका जो कुछ कर्तव्य हो उसे शास्त्रके ग्राधारसे निश्चित करना चाहिए या श्रपनी सद्सद्विवेक बुद्धिसे निश्चित करना चाहिए। मनुष्यकी शुद्ध श्रौर सात्विक बुद्धि उसे उसका कर्तव्य बताती है। "तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य-व्यवस्थितौ" कहकर श्रीकृष्णने यह भी बताया है कि मनुष्यकी सात्विक बुद्धि ''कार्याकार्य, भयाभय'' जानती तात्पर्य यह कि अपना कर्तव्य निश्चित करनेके लिए यदि शास्त्रकी आवश्यकता न हो ता उसे अपनी सदसदिवेक वृद्धिसे निश्चित करना चाहिए। इसके सम्बन्धमें पाश्चात्य परिडत कदाचित सहमत होंगे। श्रीकृष्णके कर्मयोगमें एक श्रार विशेषता यह है कि मनुष्यका चाहिए कि वह कर्तव्य कर्म करे; परन्त इस बातका घमंड न करे कि उसके कर्मकी सिद्धि होनी ही चाहिए। श्रीकृष्णका कर्म-सिद्धान्त है कि मनुष्य इस भावनासे कर्म करे कि मैं श्चवना कर्तव्य करता हूँ, वह सिद्ध हा या न हो। उसमें कर्मयोगकी श्रारम्भमें ही द्याख्या की गई है कि 'सिद्धचसिद्धचोः स्रमा भूत्वा समत्वं योग उच्यते।'' मनुष्यका चाहिए कि वह सिद्धि श्रीर श्रसिद्धि समान मानकर श्रर्थात् फल पर लच्य न देते हुए अपना कर्तव्य करे। श्रीकृष्णका उपदेश है कि—"तस्माद्सकः सततं कार्यं कर्म समाचर।" यहां कदा-चित् श्रोकृष्ण श्रीर पाश्चात्य परिडतेंका मतभेद होना सम्भव है।

फलकी लालसाका त्याग।

यहाँ सहज ही प्रश्न उठता है कि यदि बात ऐसी है, ते। कर्त्तव्याकत्तव्यका निश्चय करनेवाले धर्मका श्रिष्ठिष्ठान क्या है? यदि शुद्ध भावनासे विहित कर्म करने पर भी मनुष्यका उसकी सिद्धि न मिलेगी ते। विहित श्राचरणसे लाभ ही क्या १ श्रत- एव यह कहनेमें तिनक भी श्रसमंजस नहीं कियहाँ पर धर्मका मुख्य श्राधार ही नष्ट हो जाता है। यह प्रश्न भी श्रनादि है। जगतमें यह बड़ा भारी गृढ़ रहस्य है कि धार्मिक वृत्तिके लोग जगत्में दुखी रहते हैं श्रीर श्रधार्मिक श्रीर दुष्ट लोग बरावर उन्नतिको पहुँचे हुए दिखाई देते हैं। कोई

इसका इस प्रकार समाधान करते हैं कि इस लोकमें नहीं तो अन्य लोकमें, इस जन्ममें नहीं ते। अन्य जन्ममें, धर्मका फल सुख श्रीर श्रधमेका फल दुःख मिले बिना नहीं रहेगा; किन्तु यह समाधान अदष्टके श्राधार पर रवा गया है, इससे यह के।रा जान पड़ता है। विहित कर्म करने पर यदि वह सिद्ध नहीं होता ते। उसका विहितत्व ही कहाँ रहा ? यह सिद्धान्त सचा है कि मनुष्य धर्म पर निष्काम प्रेम करके कर्म करे। श्रागामी सुखरूपी श्राशा-के लिए न करे; पर यह सिद्धान्त युक्तिसे नहीं मिलता। एक प्रसङ्गमें द्रौपदीने यही प्रश्न किया था; तब धर्मराजने उत्तर दिया— "सुन्दरी * मैं जो धर्मका श्राचरण करता हुँ वह धर्मके फलकी श्रीर दृष्टि देकर नहीं करता। धर्मका व्यापार करनेकी इच्छा करनेवाला हीन मनुष्य धामिकोंके बीचमें श्राखिरी दर्जेका मनुष्य समस्रा जाना चाहिए।" यह उत्तर ठीक है। पर इस उत्तरसे तार्किकांका समाधान नहीं होता। श्रीकृष्णुने इस प्रश्नका बड़ा ही मार्मिक उत्तर दिया है। कर्मका फल त्रिविध है-इष्ट, त्र्रानिष्ट या मिश्र। परन्तु यह किसके लिए है ? जिसकी नजर फल पर है, यह उसीके लिए है। जिसने फलका त्याग किया, उसे चाहे जा फल मिले सब समान ही हैं। इसके सिवा मनुष्य जो कुछ कर्म करता है, उसके फलके लिए पाँच कारखों की आवश्यकता होती है। अधिष्ठान, कर्ता, कारण, विविध चेष्टा श्रीर दैव श्रथवा ईश्वर इच्छा। इससे जान पड़ता है कि कर्मके फलका देनेवाली कुछ ऐसी बाते हैं जे। श्रपने अधीन नहीं रहतीं। श्रथीत् कर्मका फल श्रपने ही कर्त्तत्व पर श्रव-

[#] धर्म चरामि मुंश्रीणि न धर्मफलकारणात्। धर्मवाणिज्यको हीनो जघन्यो धर्मवादिनाम्॥

लिस्वत नहीं है पर श्रन्य वातों पर भी श्रवलिस्वत है। इसलिए जो कर्म कर्त्तव्य समभकर किया जाता है वही ठीक है। उसका इच्छित फल हमेशा नहीं मिलता। मनुष्यका चाहिए कि वह कर्तापनका श्रहङ्कार कभी न रखे, क्योंकि फलकी सिद्धिके लिए पाँच बातोंकी श्रावश्यकता है, जिनमेंसे कर्त्ता श्रकेला एक है। सारांश यह है कि युक्तिकी दृष्टिसे भी शास्त्रका यही दृष्टान्त ठीक दिखाई देता है कि मनुष्यका चाहिए कि वह कर्त्तव्यका कर्त्तव्य समभकर ही करे, श्रीर उसके फलकी श्रोर दृष्टि न रखे।

ई्खराजा तथा ईश्वरापंग बुद्धि।

यहाँ एक श्रीर प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि ऐसा निश्चय नहीं है कि कर्त्तव्यकी सिद्धि हमेशा होगी ही, तो फिर कर्चव्य-का गैरव ही क्या रहा ? ऐसी दशामें ते। कर्ताव्यका महत्व कुछ भी नहीं रहता। कर्त्त-व्यमें श्रीर कर्त्तव्यतामें कुछ भी फर्क न होगा। परन्तु थोड़ा विचार करनेसे इस शङ्काका समाधान है। जायगा। शास्त्रका काम है कि वह कर्त्तव्यका निश्वय करे। शास्त्रसे यहाँ तात्पर्य है उन प्राचीन बुद्धि-मान लागोंसे जिन्होंने अपने श्रनुभवसे नियम बनाये हैं। अर्थात कर्चाव्यमें एक प्रकारका ज्ञानयुक्त हेतु है। शास्त्रकी सम्मतिके लिए भी यदि सात्विक बुद्धिसे कर्त्तां निश्चय किया जाय ते। भी उसमें एक प्रकारका महत्व श्रीर पवि-त्रता है। मनुष्यकी श्रकलुषित सात्विक बुद्धि जो कुछ उसे करनेका कहती है, वह युक्त श्रीर मान्य करने ये। य है। किन्तु यह ईखरी प्रेरणा ही है। ऐसा समभने-में कोई हर्ज नहीं कि वह ईश्वरकी स्नाचा ही है। सारांश यह है कि कर्ताव्यका कर्ता-व्यता इसीसे प्राप्त होती है। इसी दृष्टिसे मनुष्य फलकी श्रीर ध्यान देकर कर्नाव्य

कर सकेगा। अपने कर्मयोगकी यही तीसरी विशेषता श्रीकृष्णने वतलाई है। मनुष्यका चाहिए कि वह अपना कर्म परमेखरका अर्पण करते हुए करे। पर-मेश्वरके श्राज्ञानुसार जो अपना कर्त्त क करेगा, वही फलेच्छा रहित कर्त्त व्य कर सकेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस उच्च भावनासे कर्म करनेवाला मनुष्य उत्साह तथा प्रेमके साथ अपना कर्ता वय पूरा करेगा। यदि कर्चाके मनमें यह शङ्का हुई कि कर्त्तव्य सिद्ध होगा या नहीं, ते। उसमें भेर्य तथा उत्साह रहना असम्भव है। यह श्राचेप हो सकता है कि यदि कर्त्तव्यके फलकी श्रीर दृष्टि न रखी जाय. ते। मनष्य निरुत्साही है। जायगा। पर वही कर्तव्य जब अनुष्य इस आवनासे करेगा कि मैं ईश्वरकी आज्ञासे करता हूँ श्रीर उसीका अर्पण करता हूँ, ते। उसका उत्साह श्रीर धेर्य नहीं घटेगा। सारांश यह है कि, श्रीकृष्णके कर्म-यागकी यह तीसरी उद्यतम विशेषता है। उसका सिदान्त है कि 'चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः' रीतिसे मनुष्य अपना कर्त्वय कर्म करे।

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसम-न्वितः। सिद्धधसिद्धधोर्निवकारः कर्ता सात्विक उच्यते॥

इस छाटेसे लक्तणमें श्रीकृष्ण के कर्तव्य-सिद्धान्तका उच्च रहस्य सम्पूर्णतया भरा हुश्रा है। कदाचित् कोई यह शङ्का करे कि क्या इस प्रकारका कर्त्ता कहीं प्रत्यत्त होगा? पर यह निर्विचाद है कि ऐसे महात्मा कर्त्ता संसारमें बराबर देखनेमें श्राते हैं। इसका एक छाटा सा उदाहरण देखनेके लिए किसी शान्त श्रीर ज्ञानी स्त्रीका लीजिए जा श्रपने मरणासन्न पुत्र-के मरने या स्वस्थ हो जानेका फल प्रमे-श्वर पर छाड़कर धेर्य श्रीर उत्साहके साथ उसकी ग्रुश्रूषा करनेमें लगी रहती है। ऐसा उदाहरण देखकर हमें विश्वास होता है कि संसारमें कैसे कैसे सात्विक कर्त्ता रहते हैं।

श्रहिंसा मत।

इस प्रकार श्रीकृष्णने श्रर्जुनका श्रपना कर्मयोग श्रच्छी तरह समभाकर उसकी वह पराङ्मुखता दूर कर दी थी जो उसने धर्म तथा प्राप्त युद्धके समय दिखाई थी। इससे यह नहीं समभाना चाहिए कि श्रीकष्ण हिंसाके अनुकूल थे। वे अहिंसा-मतके श्रिमानी थे श्रीर उन्होंने उसी मतका जोरोंसे उपदेश दिया है। बहुत लोगोंकी धारणा है कि श्रहिं सा-मतके प्रथम उपदेशक बुद्ध श्रीर जैन हैं। परन्तु यह उनकी भूल है। ग्रहिंसा-मत उपनि-षद्में है। छान्दोग्यका ब्रादेश है कि-"ऋहिंसन् सर्वभूतानि अन्यत्र तीर्थेभ्यः।" भगवद्गीतामें भी श्रहिंसा ज्ञानके छत्तणों-में बतलाई गई है। इसके सिवा यह भी कहा है कि श्रहिंसा शारीरिक तप है। श्रान्य देशोंके इतिहाससे भी दिखाई देता है कि श्रहिंसातत्व हिन्दू धर्ममें पहले-से ही है। ऐसा माना गया है कि पाय-थागोरसका अहिंसा-मत था श्रीर उसे वह हिन्दुस्थानसे प्राप्त हुआ था। हिरा-डोटसके इतिहासमें स्पष्ट उल्लेख है कि उस समय भी श्रहिंसा मतवादी लोग हिन्दुस्थानमें थे। सारांश यह है कि त्रहिंसा मत बुद्धके पूर्वका है। ऐसा जान पड़ता है कि उसका उद्गम श्रीकृष्णके उपदेशसे ही हुम्रा। श्रीकृष्णका काल ऋग्वेदे।तर उपनिषत्काल है। उस समय यज्ञयागका पूर्ण प्रावल्य था। यदि कोई यह कहे कि उन्होंने ऐसे समय यज्ञमें होनेवाली हिंसा वन्द करनेका उपदेश कहीं नहीं दिया, ते ध्यानमें रखना चाहिए कि उनके ऐसा

न करनेमें छुछ भी आश्चर्य नहीं। यद्यपि उन्होंने पाएडवोंको राजस्य श्रीर श्रक्षमेध यक्ष करनेसे नहीं रोका, तथापि ध्यानमें रखना चाहिए कि उन्होंने वचपनमें ही गोपालोंको उपदेश दिया था कि इन्द्र-यक्षके वदले गिरि-यक्ष करो। भगवद्गीता-में भी स्वर्गकी इच्छासे श्रनेक प्रकारके कास्य यक्ष करनेके विरुद्ध श्रीकृष्णका पूरा-पूरा कटाच दिखाई देता है। श्रीकृष्ण-के कालके श्रनन्तर ऐसा दिखाई देता है कि हिंसायुक्त यक्षके विरुद्ध धीरे धीरे लेकिमत वढ़ने लगा। यह कहनेमें कोई श्रापत्ति नहीं कि हिन्दुस्थानके सव लोगों-ने तो गवालस्भ श्रीकृष्णकी ही भक्तिसे बन्द कर दिया था।

श्रीकृष्णका अपने उपदेशके अनुरूप आचरण।

भक्तिमार्ग, कर्त्तव्यनिष्ठा, श्रादि नवीन उच्च तत्व श्रीकृष्णके दिव्य उपदेशके कारण हिन्दूधर्ममें समाविष्ट हुए थे। इन बातोंसे पाठकोंके ध्यानमें यह त्रावेगा कि धर्मके सम्बन्धमें श्रीकृष्णने जो काम किया उसका महत्व कितना है। यह बात सबका मान्य होगी कि श्रीकृष्ण-का उदार चरित्र उनके उदात्त उपदेशके अनुकूल ही होना चाहिए। नुकारामके इन वचनोंके श्रनुसार ही — बोले तैसा चाले, त्याची वंदावी पाउल' श्रीकृष्ण वन्दनीय थे; उन्हें जो हम पुरायश्ठोक कहते हैं सो कोई विरोधी लक्तणसे नहीं। धर्म संस्थापनके लिए ही श्रीकृष्णका श्रवतार था। ये सव बाते बहुत स्पष्ट हैं, ते। भी उनके चरित्रमें दे। कलङ्क मढ़े जाते हैं। श्राश्चर्य ते। यह है कि वे छोगों-में मान्य भी हो गये हैं। यद्यपि ये कलङ्क चन्द्रमाके कलंकके सदश रम्य नहीं हैं, तथापि निःसन्देह वे भूठे श्रीर काल्प- लिम्बत नहीं है पर अन्य बातों पर भी अवलिम्बत है। इसलिए जो कर्म कर्त्वय समभकर किया जाता है वही ठीक है। उसका इच्छित फल हमेशा नहीं मिलता। मनुष्यका चाहिए कि वह कर्त्तापनका अहङ्कार कभी न रखे, क्यांकि फलकी सिद्धिके लिए पाँच बातों की आवश्यकता है, जिनमेंसे कर्त्ता अकेला एक है। सारांश यह है कि युक्तिकी दृष्टिसे भी शास्त्रका यही दृष्टान्त ठीक दिखाई देता है कि मनुष्यका चाहिए कि वह कर्त्तव्यका कर्त्तव्य समभकर ही करे, श्रीर उसके फलकी श्रोर दृष्टि न रखे।

ईखराजा तथा ईश्वरापंण बुद्धि।

यहाँ एक श्रीर प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि ऐसा निश्चय नहीं है कि कर्त्तव्यकी सिद्धि हमेशा होगी ही, तो फिर कर्राव्य-का गारव ही क्या रहा ? ऐसी दशामें ता कर्ताव्यका महत्व कुछ भी नहीं रहता। कर्त्त-व्यमें श्रीर कर्त्तव्यतामें कुछ भी फर्क न होगा। परन्तु थोडा विचार करनेसे इस शङ्काका समाधान हा जायगा। शास्त्रका काम है कि वह कर्त्तव्यका निश्वय करे। शास्त्रसे यहाँ तात्पर्य है उन प्राचीन बुद्धि-मान लोगोंसे जिन्होंने श्रपने श्रनुभवसे नियम बनाये हैं। श्रर्थात् कर्राव्यमें एक प्रकारका ज्ञानयुक्त हेतु है। शास्त्रकी सम्मतिके लिए भी यदि सात्विक बुद्धि से कर्त्तां निश्चय किया जाय ते। भी उसमें एक प्रकारका महत्व श्रीर पवि-त्रता है। मनुष्यकी श्रकलुषित सात्विक बुद्धि जो कुछ उसे करनेका कहती है, वह युक्त श्रीर मान्य करने योग्य है। किन्तु यह ईखरी पेरणा ही है। ऐसा समभने-में कोई हर्ज नहीं कि वह ईश्वरकी स्नाचा ही है। सारांश यह है कि कर्राव्यका कर्री-व्यता इसीसे प्राप्त होती है। इसी दृष्टिसे मनुष्य फलकी श्रीर ध्यान देकर कर्नाव्य

कर सकेगा। अपने कर्मयोगकी यही तीसरी विशेषता श्रीकृष्णने बतलाई है। मनुष्यका चाहिए कि वह अपना कर्म परमेश्वरको अर्पण करते हुए करे। पर-मेश्वरके ग्राज्ञानुसार जो अपना कर्त्त व्य करेगा, वही फलेच्छा रहित कर्त्त व्य कर सकेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस उच्च भावनासे कर्म करनेवाला मन्च्य उत्साह तथा प्रेमके साथ अपना कर्त्वय पूरा करेगा। यदि कर्त्ताके सनमें यह शङ्का हुई कि कर्ताव्य सिद्ध होगा या नहीं, ते उसमें धेर्य तथा उत्साह रहना असम्भव है। यह आचेप हो सकता है कि यरि कर्त्तव्यके फलकी और दृष्टि न रखी जाय. ते। मनुष्य निरुत्साही हो जायगा। पर वहीं कर्ताच्य जब अनुष्य इस आवनासे करेगा कि में ईश्वरकी ग्राज्ञासे करता हूँ श्रीर उसीका अर्पण करता हूँ, ते। उसका उत्साह त्रीर धेर्य नहीं घटेगा। सारांश यह है कि, श्रीकृष्णके कर्म-योगकी यह तीसरी उच्चतम विशेषता है। उसका सिद्धान्त है कि 'चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः' शितिसे मनुष्य अपना कर्नव्य कर्म करे।

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसम-न्वितः। सिद्धचसिद्धचोर्निवकारः कर्ता सात्विक उच्यते॥

इस छाटेसे ठचण में श्रीकृष्ण के कर्नव्य-सिद्धान्तका उच्च रहस्य सम्पूर्णतया भरा हुश्रा है। कदाचित् कोई यह शङ्का करे कि क्या इस प्रकारका कर्चा कहीं प्रत्यव होगा? पर यह निर्विचाद है कि ऐसे महात्मा कर्चा संसारमें बराबर देखनेमें श्राते हैं। इसका एक छाटा सा उदाहरण देखनेके ठिए किसी शान्त श्रीर ज्ञानी स्त्रीका ठीजिए जा अपने मरणासन्न पुत्र-के मरने या स्वस्थ हो जानेका फठ परमे-श्वर पर छाड़कर धेर्य श्रीर उत्साहके साथ उसकी ग्रुश्रूषा करनेमें छगी रहती है। ऐसा उदाहरण देखकर हमें विश्वास होता है कि संसारमें कैसे कैसे सात्विक कर्त्ता रहते हैं।

ऋहिंसा सत।

इस प्रकार श्रीकृष्णने श्रर्जुनकी श्रपना कर्मयोग अच्छी तरह समभाकर उसकी वह पराङ्मुखता दूर कर दी थी जो उसने धर्म तथा प्राप्त युद्धके समय दिखाई थी। इससे यह नहीं समभना चाहिए कि श्रीकण्ण हिं साके अनुकूल थे। वे श्रहिंसा-मतके अभिमानी थे श्रीर उन्होंने उसी मतका जीरोंसे उपदेश दिया है। बहुत लोगोंकी धारणा है कि श्रहिंसा-मतके प्रथम उपदेशक बुद्ध श्रीर जैन हैं। परन्तु यह उनकी भूल है। ग्रहिंसा-मत उपनि-षद्में है। छान्दोग्यका ब्रादेश है कि-"ऋहिंसन् सर्वभूतानि अन्यत्र तीर्थेभ्यः।" भगवद्गीतामें भी श्रहिंसा ज्ञानके छच्णों-में बतलाई गई है। इसके सिवा यह भी कहा है कि श्रहिंसा शारीरिक तप है। श्रन्य देशोंके इतिहाससे भी दिखाई देता है कि श्रहिंसातत्व हिन्दू धर्ममें पहले-से ही है। ऐसा माना गया है कि पाय-थागोरसका अहिं सा-मत था श्रीर उसे वह हिन्दुस्थानसे प्राप्त हुआ था। हिरा-डोटसके इतिहासमें स्पष्ट उल्लेख है कि उस समय भी श्रहिंसा मतवादी लोग हिन्दुस्थानमें थे। सारांश यह है कि अहिंसा मत बुद्धके पूर्वका है। ऐसा जान पड़ता है कि उसका उद्गम श्रीकृष्णके उपदेशसे ही हुम्रा। श्रीकृष्णका काल ऋग्वेदे।तर उपनिषत्काल है। उस समय यज्ञयागका पूर्ण प्रावल्य था। यदि कोई यह कहे कि उन्होंने ऐसे समय यज्ञमें होनेवाळी हिंसा बन्द करनेका उपदेश कहीं नहीं दिया, तो ध्यानमें रखना चाहिए कि उनके ऐसा

न करनेमें कुछ भी आश्चर्य नहीं। यद्यपि उन्होंने पाएडवोंको राजस्य और अखमेध यज्ञ करनेसे नहीं रोका, तथापि ध्यानमें रखना चाहिए कि उन्होंने वचपनमें ही गोपालोंको उपदेश दिया था कि इन्द्र-यज्ञके वदले गिरि-यज्ञ करो। भगवद्गीतामें भी स्वर्गकी इच्छासे अनेक प्रकारके कास्य यज्ञ करनेके विरुद्ध श्रीकृष्णका पूरा-पूरा कटाच दिखाई देता है। श्रीकृष्णके कालके अनन्तर ऐसा दिखाई देता है कि हिंसायुक्त यज्ञके विरुद्ध धीरे धीरे लेकिमत बढ़ने लगा। यह कहनेमें कोई आपत्ति नहीं कि हिन्दुस्थानके सव लोगोंने तो गवालम्भ श्रीकृष्णकी ही भक्तिसे बन्द कर दिया था।

श्रीकृष्णका अपने उपदेशके अनुरूप आचरण।

भक्तिमार्ग, कर्त्तव्यनिष्ठा, श्रादि नवीन उच्च तत्व श्रीकृष्णके दिव्य उपदेशके कारण हिन्दूधर्ममें समाविष्ट हुए थे। इन बातोंसे पाठकोंके ध्यानमें यह श्रावेगा कि धर्मके सम्बन्धमें श्रीकृष्णने जो काम किया उसका महत्व कितना है। यह बात सबका मान्य होगी कि श्रीकृष्ण-का उदार चरित्र उनके उदात्त उपदेशके अनुकूल ही होना चाहिए। नुकारामके इन वचनोंके अनुसार ही — बोले तैसा चाले, त्याची वंदावी पाउल' श्रीकृष्ण वन्दनीय थे; उन्हें जो हम पुग्यश्लोक कहते हैं सो कोई विरोधी छत्तणसे नहीं। धर्म संस्थापनके लिए ही श्रीकृष्णका श्रवतार था। ये सब बाते बहुत स्पष्ट हैं, ते। भी उनके चरित्रमें दे। कलङ्क मढ़े जाते हैं। श्राश्चर्य तेा यह है कि वे छोगों-में मान्य भी हो गये हैं। यद्यपि ये कलङ्क चन्द्रमाके कलंकके सदश रम्य नहीं हैं, तथापि निःसन्देह वे भूठे श्रीर काल्प- निक हैं। यह दुईंवकी बात है कि श्रंगार-प्रिय कवियों तथा हास्यप्रिय कथक्कड़ोंने उन्हें खूब बढ़ाया है श्रीर उन पर सत्यका श्राभास ला दिया। परन्तु यह कभी सम्भव नहीं कि,

त्रिविधं नरकस्येदं
द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

इस प्रकार उदात्त उपदेश देनेवाला श्रीकृष्ण, बचपनमें ही क्यों न हो, निन्द्य कामाचारमें फँसे श्रथवा युवा-वस्थामें लोभके श्रधीन हो। यद्यपि ये कलङ्क निर्मूल हैं तथापि लोगोंकी कल्पना-से श्रीकृष्णके चरित्रमें लगाये जाते हैं। ये दोनों दोष निराधार हैं, समक्की कमीके कारण पीछेसे गढ़े गये हैं। हम संत्रेपमें उनका दिग्दशन यहाँ करेंगे।

गापियांकी केवल-भक्ति।

श्रीकृष्णके समयमें यह देवि उन पर कभी नहीं लगाया गया था कि उन्होंने गोपियोंसे श्रश्लाघ्य व्यवहार किया हो: गोपियाँ श्रीकृष्णसे जो प्रेम करती थीं वह निर्व्याज, विषयातीत श्रीर ईशभावनासे युक्त था।यही कल्पना महाभारतमें दिखाई देती है। महाभारतका वर्तमान स्वरूप ई० सन्से लगभग २५० वर्ष पूर्व मिला। उस समयतक यही कल्पना थी। वस्त्र-हरणके समय द्रौपदीने श्रीकृष्णकी जो प्रकार की थी उसमें उसने उन्हें 'गापी-जनप्रिय' नामसे सम्बोधित किया था। स्पष्ट है कि इस नामका श्रमिप्राय यही है कि वह दीन श्रवलाश्रोंका दु:खहर्त्ता है। उस नाममें यदि निन्द्य अर्थ होता तो सती द्रौपदीका पातिबत्यकी परीचाके समय उसका स्मरण नहीं होता: यदि होता भी तो वह उसे मुखसे कदापि न

निकालती; श्रीर यदि निकालती भी तो वह उसके लिए उपयोगी ही न होता। श्रतपव यह निवि वाद है कि इस नाममें गापियां-का विषयातीत भगवत्रेम ही गर्भित है। दूसरे, राजसूय यज्ञमें श्रर्घ लेनेके पसङ्ग-में शिशुपालने श्रीकृष्णकी खूब ही निन्दा की; परन्तु वहाँ उसने यह आन्तेप कभी नहीं किया। तीसरे, यह प्रसिद्ध है कि श्रीकृष्ण वचपनसे ही महाविद्याके शौकीन थे। कुश्ती लड़नेके लिए कंसने उन्हें मथुरामें बुलाया था। यह अकाट्य सिद्धान्त है कि ऐसे बालमलको कामका व्यसन कभी नहीं हो सकता। ईश्वरकी कल्पना रखने पर चाहे जो सम्भावना हे। सकती है; परन्तु श्रीकृष्णने अपने अवतारमें मानवी कृत्य ही कर दिखाये हैं। उन्होंने ईश्वरी सामर्थ्यका उपयोग नहीं किया श्रीर यदि कहीं किया है। ते। निन्ध काममें ता निःसन्देह कहीं नहीं किया। सारांश यह है कि सभी दृष्टियोंसे विचार करने पर यही कहना होगा कि यह देाष सचा नहीं है। वर्तमान महाभारतके समयतक यही धारणा थो कि गावियाँ श्रीकृष्णका केवल निर्विषय प्रेम करने-वाली परम भक्ता थीं। परन्तु घीरे घीरे भक्तिमार्गमें जब भक्तिकी मीमांसा होती गई तब सम्भव है कि भक्तिका उस प्रेम-की उपमा दी गई हो जो असतीका जार-से रहता है; श्रीर जैसा कि भवभूतिने कहा है—''यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जना जन:"जैसी स्त्रियोंके सम्बन्धमें यह कल्पना प्रचलित हुई होगी, श्रीर जगत्मे भ्रमपूर्ण विचार उत्पन्न हानेसे हमेशा ऐसा हुआ ही करता है। श्रीकृष्णका मत प्रवृत्तिके अनुकूल है, इससे इस प्रवाद-के। पुष्टि मिली होगी श्रीर रासलीलाके वर्णनसे वह श्रीर भी बढ़ा होगा। इस प्रकार यह प्रवाद पीछेसे उत्पन्न होकर

कालगतिसे इतना बढ़ा कि ई० सन्की ९ वीं शताब्दीमें जे। भागवत ग्रन्थ प्रसिद्ध हुआ उससे यह प्रसङ्ग निकाल बाहर करना श्रसम्भव हो गया। इस श्रद्धितीय वेदान्त ग्रन्थने उसे एक तरहसे ग्रपने रम्य कवित्वसे ते। अजरामर कर दिया है; परन्तु दूसरी तरहसे उसे वेदान्तमें लपेटकर इतना पवित्र कर रखा है कि हम श्रीकृष्ण श्रीर गीपियों की लीलाके हजारों गीत सुनते हैं तो भी हमारे मनमें श्रीकृष्णके प्रति निन्द्य भावना लेशमात्र भी पैदा नहीं होती। जब भगवान्ने इस प्रवादकी आश्रय देकर उसे पवित्र कर छोड़ा तब नवीन श्रङ्गारिय कवियोंने विशेषतः जयदेवने अपने गीतगाविन्द्रमें तथा अन्य कियोंने व्रजभाषाके सहस्रों सुन्दर पद्यों में उसे चहुँ श्रोर फैलाकर लोकप्रिय किया। इस विषयमें अधिक क्या कहें, इससे पाकृत श्रुङ्गारमें एक प्रशस्त मर्यादा उत्पन्न हो गई सी दिखाई देती है। उसके कारण ऐसा प्रशस्त कवि-सम्प्रदाय दिखाई पड़ता है कि यदि श्रुङ्गार ही गाना है ते। गोपीकृष्णका गाया जाय। श्रस्तु। यद्यपि भागवतने इस श्राचेपका निन्दात्व निकाल डाला है, दृष्टिसे उसकी तथापि ऐतिहासिक सत्यासत्यताका विचार करना श्रावश्यक था श्रार, इस विचारसे यही कहना पड़ेगा कि यह प्रवाद निराधार है।

श्रीकृष्णका कपटपूर्ण स्नाचरण।

श्रव हम 'कपट' विषयक दूसरे श्रालेप-पर विचार करेंगे। यह सच है कि इस श्रालेपका उद्गम महाभारतमें है। परन्तु यह कल्पना 'भारत' में नहीं है। वह भारती कथाकी अमपूर्ण धारणाके कारण पीछेसे निकली है। भारतमें वर्णन है कि श्रीकृष्णने-भीषम,द्रोण श्रादि छोगोंका पांडवोंके हाथ

से कूट युद्धके द्वारा मरवाया। पाठकांके मनमें यह श्राज्ञेप इसलिए पैदा होता है कि, उनके ध्यानमें इस प्रसंगका अपवादक श्राता ही नहीं। साधारण कवियोंकी अत्यक्तिके कारण लोग श्रीकृष्णकी नीति-के। ऊपर ही ऊपर विचार करनेवाले पाश्चात्य देशके प्रसिद्ध मेकियावेलीकी ही नीति समभते हैं। परन्तु उनका ऐसा समभना विलक्षल गलत है। श्रीकृष्णको नीति श्रार धर्मका पूरा श्रमिमान था। उन्होंने श्रधर्म या कुनीतिका उपदेश कभी नहीं दिया श्रीर न कभी इनका श्राचरण स्वयं ही किया। हाँ, विशेष अपवादक प्रसंगोंमें धर्मकी भ्रांत कल्पना-से उत्पन्न हुई भूलका उन्होंने निषेध किया है। ऐसे मौके पर धर्माधर्मका निश्चय करना बुद्धिमानेंको भी कठिन जान पड़ता है। ऐसे अपवादक प्रसंग श्रीकृष्णके चरित्रमें कई हैं। उस समय उन्होंने श्रपने श्राचरण श्रार उपदेशसे दिखाया है कि पेसे प्रसंगोंमें मनुष्य कैसा श्रावरण करे। इस वातका श्रधिक स्पष्टोकरण हम आगे करेंगे।

सामान्य नीतिके अपवादक पसङ्ग।

श्रहिंसा,सत्य,श्रस्तेय श्रादि नीति तथा धर्मके परम तत्व सब लोगोंको एक समान मान्य हैं। क्या हिन्दू धर्ममें, क्या ईसाई धर्ममें, क्या बौद्ध धर्ममें, क्या मुसलमानी धर्ममें सब कहीं यही श्राह्माएँ प्रमाण हैं। ये ही श्रादेश जगतके सब विद्वानोंने नियत कर एखे हैं। परन्तु इन सर्वमान्य तत्वोंके कुल श्रपवादक प्रसंग हैं या नहीं? उदाहरणार्थ, यदि कोई श्राततायी श्रधमेंसे हमें मारने श्रावे तो क्या हम उसे मारें या उसके हाथसे हम मरें? श्रहिंसा-मतकी श्रत्युक्ति करनेवाला ते। यही कहेगा कि हमें ही मरना चाहिए; हम मरें या वह मारा जाय, हिंसा ता होगी ही। बेहतर है कि श्राततायीका ही मारे।; क्येंकि. श्रात-तायीके हाथसे मरनेमें हिंसा ते। होती ही है श्रीर श्रधमंकी उत्तोजन भी मिलता है। इसलिए धर्मशास्त्रने त्रहिंसा धर्मके लिए श्रपवाद रखा है कि 'श्राततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्'। इगिडयन पिनल कोड (हिन्दुस्थानके दएड संग्रह)में खुनके लिए जो अपवाद रखे हैं, वे सब धर्म-शास्त्रके अनुसार ही हैं। सारांश यह है कि श्रहिंसा, सत्यवचन, श्रस्तेय श्रादि धर्मोंके कुछ अपवाद-प्रसंग हैं श्रीर उन प्रसंगों में इन धर्मोंका त्यागना निंद्य नहीं। दोगाके वधके प्रसंगका ही उदाहरण लीजिए। जो श्रस्त्र नहीं जानते थे उन्हें द्रोण अधर्मसे श्रस्त द्वारा जानसे मारते थे। अधर्मके कारण पांचाल-सेनाकी सफाई हो रही थी। इस प्रसंगमें श्रीकृष्ण ने सलाह दी कि द्रोणको कपरसे मारना चाहिए श्रीर श्रश्वत्थामाके मरनेकी भठी गप्प फैलाकर बुडढेका हाथ बंद करवाया। इस मौके पर श्रीकृष्णने धर्मराजसे कहा कि पाँच प्रसंगोंमें भूठ बोलना न पाप है न पुराय। इसमें संदेह नहीं कि किसी नीति या धर्मका विचार करनेवाला उपर्युक्त बातका श्रवश्य मान्य करेगा।

एक ऐतिहासिक उदाहरण।

यहाँ तुलनाके लिए द्रोणचधके समान
एक श्रीरमनारंजक चृत्तान्त हम इतिहाससे लेते हैं। श्रठारहचीं सदीमें जब श्रॅंग्रेजों
श्रीर फ्रेंचोंका युद्ध शुक्क हुआ, तब
ब्रिटिश शूर सेनापित जनरल वुल्फने
क्वेबेककी लड़ाई जीतकर कनेडाका प्रान्त
श्रपने कब्जेमें कर लिया। इस युद्धके
समय क्वेबेक फ्रेंच लोगोंके श्रधीन था,
श्रीर उस शहरके बाहर उनकी सेना
लड़ती थी। जनके श्रीर ब्रिटिश सेनाके

बीच एक बड़ी नदी बहती थी इससे ब्रिटिश सेना फ्रेंचों पर धावा नहीं कर सकती थी। उस समय जनरल वुल्फने एक उपाय किया। उसने अपनी सेनाके दे। विभाग किये श्रीर एक विभाग फ्रेंचोंके सामने ही रखा श्रीर दूसरा विभाग रातका श्रॅंधेरेमें नावों द्वारा नदी पार करके दूसरी श्रोर भेज दिया। वहाँ नदीका किनारा कम चहानोंका था इसलिए फ्रेंचोंका इर था कि कदाचित् शत्र इस मार्गसे धावा करे, इसलिये उनकी एक पल्टन वहाँ गई भी थी। ज्येंही ब्रिटिश सिवाही चहानपर चढकर ऊपर आये,त्योंही आगेके सिपाही-से फरासीसी चौकीदारने पूछा कौन है ! वह सिपाही एक हे।शियार हाइलैंडर था। उसने तुरन्त ही जवाब दिया—'ला फ्रान्स' फ्रेंचोंका सिपाही। चौकीदारने फिर पूछा, 'किस रेजिमेंटके हो ?' हाइलैं-एडर श्रच्छा वाक् बतुर श्रार निडर श्रादमी था। उसने निधड़क जवाब दिया-''डीला-रीन"-'रीन रेजिमेन्ट'। उसका ऐसा बेधड़क जवाब सुनकर चौकीदार चुप रहा। फिर श्रॅंग्रेजोंके दस पाँच सिपाही विना श्रहचन श्रीर भयके ऊपर चढ श्राये। चढते ही उन्होंने पहले उस चौकीदारका श्रीर फिर उसके साथवाले सिपाहियोंका कत्ल किया। जनरल बुल्फकी सब फौज सहजमें ही कुशलपूर्वक ऊपर चढ़कर नदी के दूसरे पार आ गई और उसने क्वेबेकके पासकी फ्रांच सेनाके पिछले भाग पर चढ़ाई करके उसे हराया। इस लड़ाईमें जनरल बुल्फ मारा गया; परन्तु लड़ाईकी विजय वार्ता सुननेतक उसने प्राण नहीं छे। इ। यहाँ यह विचारणीय है कि उस हाइलैंडर ने भूठ बोलकर जो चौकीदार-की जान ली सो उसका कृत्य निंद्य है या प्रशंसनीय है ? Every thing is faier in war न्यायसे वह प्रशंसनीय ही है।

हनिवालने वैलोंके सींगोंमें यशालें वांध-कर रोमन लोगोंको धोखा दिया। यूरी-वीय महायुद्धके इतिहासमें भी ऐसे सैंकड़ों उदाहरण मिलेंगे जिनमें इस प्रकार शत्र-सेनाका धोखा देकर जय प्राप्त की गई है। परन्तु इससे भी विशिष्ट न्याय इस बात पर लागू होता है। यदि वह हाईलंडर सच बालता, ता जनरल वुल्फ-की समस्त सेना नष्ट हो जाती। दृष्टिसे उसका भूठ बालना त्तम्य है। जनरळ बुल्फके समान उस समय पांडव चढाई करने नहीं जा रहे थे; या फ्रेंच ब्रिटिशोंके साथ श्रधमेसे नहीं ठड़ते थे। इसके विरुद्ध, द्रोग पांडवों पर चढाई करके अधर्मसे उनका संपूर्ण नाश करता था। अतएव यहाँ नोतिशास्त्र-वेत्तात्रोंको यही इन्साफ करना पड़ेगा कि उस समय श्रीकृष्णने धर्मराजकी भूठ बेलिनेकी जो सम्मति दी, वह सर्वथा चम्य है।

सद्गुणोंका अतिरेक देषयुक्त है।

इस विषयका विचार एक श्रीर दृष्टि-से किया जा सकता है। किसी बात-का अतिरेक करना दे। षयुक्त होता है; फिर वह अतिरेक चाहे सद्गुणोंका ही क्यों न हो। पारचात्योंकी एक कहावत है— True virtue lies in the mean between two extremes बड़ा दानी-पन दिखाकर श्रपने वाल बचोंका भूखों मारना नीतिकी दृष्टिसे दुर्गुण ही है। इस प्रकारके अतिरेकका दुर्गुण महाभारतके कर्ताने तदन्तर्गत उदात्त व्यक्तियोंमें युक्ति-से दिखाया है। किसी राजाके बुळाने पर इनकार न करके द्युत खेलने जाना धर्मराजका दुर्गुंग ही हैं। यह उदात्त कल्पना है सही कि स्त्रीके ऊपर शस्त्र नहीं चलाना चाहिए;परन्तु त्राततायी त्रीर सब जगत्का संताप देनेवाली स्त्रीका मारनेके

सिवा यदि कोई गति नहीं,तो उस परशस्त्र चलाना ही चाहिए। इसी न्यायसे श्री रामचन्द्रने तारकाका मारा था। भीष्मकी प्रतिज्ञा थी कि मैं शिखएडी पर शस्त्र नहीं चलाऊँगा। यह अतिरेक ही है। पागलपनसे यदि प्रतिपत्तने कोई फायदा उठा लिया हो तो अनुचित नहीं। द्वन्द्व युद्धमें ही यह नियम चल सकता है कि एक मनुष्यके ऊपर श्रनेक लोग धावा न करें; परन्तु अन्य प्रसङ्गोमें यह नियम नहीं चलेगा। यदि ऐसा न होगा ता संख्याके वलके कारण शत्रका मारना कभी न्याय्य न होगा। कौरवोंकी श्रीर ग्यारह श्रज्ञौहिणी सेनाएँ थीं ते। पाएडवोंकी तरफ केवल सात अनौहिणी। क्या इसे अधर्म नहीं मानना होगा ?। सारांश यह है कि, भीष्मके वधके प्रसङ्गमें श्रधर्मका भास होता है: तथापि कहना पड़ेगा कि वस्तुतः वह त्रधर्म नहीं था। सव तरहके सुद्म विचार करनेसे ज्ञात हे।गा कि जहाँ जहाँ श्रीकृष्ण ने पारडवों से कूट युद्ध करवाया वहाँ वहाँ युद्धकी रीतिकी दृष्टिसे कुछ भी अनुचित न था। उच्च नीतिकी दृष्टिसे कहीं श्रधर्म-का केवल भास था ता कहीं ऐसा दिखाई देगा कि अपवादक प्रसङ्गमें सर्वस्व-घात त्रादि कारणेंकि लिए जो श्रधर्मका अव-लम्ब किया गया सो त्तम्य था। परन्तु यह ध्यानमें रखना चाहिए कि युद्ध तथा सर्वस्ववातादि कारणेंको छे।इ अन्य प्रसङ्गोमे श्रधमेका श्रवलम्बन करनाकभी न्याय्य न होगा। इस मर्यादाका खयाल न रहनेसे श्रीकृष्णके सम्बन्धमें भ्रम होता है श्रीर ऐसा जान पड़ता है कि श्रीकृष्ण एक कपटी व्यक्ति था । परन्तु वास्तविक रूपसे विचार करने पर मालूम हो जायगा कि त्रिहंसा,सत्य,त्रस्तेय त्रादि परम धर्म-के धर्मशास्त्रने तथा मन्वादि स्मृतियेांने भी श्रपवाद माने हैं, श्रीर ऐसे श्रपवादक प्रसङ्गमें ही श्रीकृष्णने कूट-युद्धका श्रवल-म्बन करनेकी सलाह दी। ध्यानमें रखना चाहिए कि उन्होंने ऐसी सम्मति श्रन्यत्र कहीं नहीं दी।

ग्रीकृष्णका दिव्य उपदेश।

सुदम विचारकी भट्टीमें समभकी भूलसे किये गये इन सब श्रात्तेपोंके भस्म होने पर श्रीकृष्णका रस्य चरित्र तप्त सुवर्गके समान तेजस्वी श्रीर उज्ज्वल दिखाई पड़ता है, परन्तु श्रत्युक्ति या भूलके कारण उनके चरित्रकी कुछ बातों का कितना ही विपर्यास है। जाय, तथापि उसके उदात्त विचारोंका निधान दिव्य भगवद्गीता जबतक संसारमें है, तबतक श्रीकृष्णका चरित्र चमके विना कभी न रहेगा। इस परम तत्वज्ञानके ग्रन्थमें श्रीकृष्ण ने जिस कर्मयागका उपदेश दिया है, वह सर्व कालमें तथा सब देशोंमें सब लोगों-के श्रादरकी वस्त रहेगा। कर्मकी सिद्धि हो या न हो, इस विचारसे मनको चंचल न होने देकर अपना कर्तव्य कर्म इस भावनासे करना चाहिए कि मैं परमेश्वर पर भरोसा रखकर परमेश्वर को इच्छासे उसे करता हूँ श्रीर उसे परमेश्वरका ही अर्पण करता हूँ। यह सिद्धान्त श्रत्यन्त उदात्त है श्रीर इतना उदात्त कर्तव्य-सिद्धान्त श्राजतक किसी तत्त्व-वेत्ताने नहीं सिखाया। यह सिद्धान्त जिसके चित्तमें पका ठन गया वह निःसं-शय दु:ख सांगरसे पार हुए विना न रहेगा। श्रीकृष्णने यह बात दुनियाकी दृष्टि में अच्छी तरह ला दी कि कर्मकी त्याग देना श्रशक्य है, उन्होंने श्रपना स्थष्ट मत दे दिया है कि धर्म श्रीर नीतिके श्रनुसार जगतके भौतिक सुखोंका नियम-युक्त उपयोग स्रर्थात् सदाचरण-युक्त गाई स्थ्य सःयासके समान ही पुर्यप्रद है। यही दैवी

संपत्ति है। श्रीर, दैवी संपत्ति मोजको ही प्राप्ति करा देनेवाली है। महाभारतमें व्यासने एक जगहकहा है कि — 'इन्द्रियों-की बिलकुल रोकना मृत्युसे भी अधिक दुखदायी है; पर दूसरे पन्नमें इन्द्रियों-को स्वतंत्र छे। इ देनेसे देवता श्रोंका भी श्रधःपात हो जायगा।" संचेपमें, श्रीकृष्ण ने उपदेश दिया है कि मदुष्यका चाहिए कि वह नीतिशास्त्रके अनुसार युक्त श्राहार तथा विहारसे रहकर, उत्साह श्रीर उत्थानका श्रवलम्बन कर, श्रपना कर्तव्य कमे करे। धर्मके सम्बन्धमें भी श्रीकृष्णने ऐसा उपदेश किया है कि मनुष्य श्रातिरेककी छे। ज्याय श्रीर उचित मध्य बिन्द्रमें रहे। संसारका छाडकर जंगलमें जा रहना संन्यास नहीं है, परन्त काम्य कर्मोंका न्यास ही सचा संन्यास है। कर्मका विलक्क छोड देना त्याग नहीं कहलाता; परन्तु कर्मके फलकी श्रासक्तिका त्यागना ही सचा त्याग है। श्रारीरके भूतश्रामोंका हरसे कर्षण कर आत्माकी सब प्रकारसे कष्ट देना ही तप नहीं होता; परन्तु उन्होंने यह प्रतिपादन किया है कि योग्य नियमें। से युक्त गुरु-शुश्रुषादि शारीरिक, सत्य भाषणादि वाचिक तथा प्रसाद, शान्ति श्रादि मानिसक तप ही तप है। ईश्वर-सिद्धान्तके यानी ब्रह्मज्ञानके सम्बन्धमे उन्होंने सनातन तथा श्रव्यक्त ब्रह्म के विरोधमें, छुष्टों के दुःखहत्त्रा श्रीर दुर्षोंके द्राता ईश्वरी श्रवतार सगुण ब्रह्मका प्रतिपादन किया है। परमेखर केवल भक्तिसे ही साध्य है। भक्ति-मार्गका द्वार सबके लिए खुला हुत्रा है श्रीर यह सुलभ है; यहाँतक कि चांडाल श्रीर ब्राह्मण, स्त्री श्रीर पुरुष मोज्को प्राप्त कर ईश-भक्तिसे समान सकेंगे। श्रीकृष्णने ऐसा उदार श्रीर

उदात्त मत बेधड़क जगत्के सामने रखा है। तत्त्व-ज्ञानके विषयमें उन्होंने सांख्य श्रीर योग, कर्म श्रीर वेदान्तका विरोध मिटाकर अपने नये भक्ति-मार्गसे उन मबोंका समन्वय किया सर्वोका अपने उच तत्त्वका अनुयायी बनाया है। राजनैतिक विषयमें उन्होंने निरपेन स्वार्थ-त्यागका उदाहरण जगत्-को दिखा दिया है। उन्होंने कंस और जराखन्धका नाश अपने स्वार्थके लिए नहीं किया; श्रीर न उन्होंने उससे अपना किंचित् भो लाभ उठाया । भारती-युद्धमें भी उन्होंने पाएडवोंका पच सत्य जान-कर ही उन्हें सहायता दी। दुर्योधन कारण राज्यपद पागडवांका अधर्मके नहीं देता था; इसीलिए उन्होंने हीनबल होनेपर भी पाएडबोंका पन्न श्रर्जुनका सारथी बनना स्वीकार किया। सबसे मुख्य बात ता यह है कि श्रीकृष्णने श्रार्य श्रीर श्रनार्य दोनेंका समान प्रेमसे रखकर सबका ईश्वर-भक्तिका खुला श्रीर यद्यपि आज सुलभ मार्ग दिखा दिया। हिन्दुस्थानमें भिन्न भिन्न वर्ण अपने अपने श्राचार-विचारके कारण विभक्त दिखाई देते हैं, तथापि श्रोकृष्णकी भक्ति करनेमें श्रीर उनके मधुर 'गाविन्द' नामसे उनका कीर्तन करनेमें सब जातिके श्रीर सब मतके त्राबाल-वृद्ध स्त्री-पुरुष हिन्दू ले।न श्रापसका भेद-भाव भूलकर एक सीढ़ी पर खड़े हो भगवद्भजनमें तस्त्रीन हो जाते हैं। श्रीर विश्वास करते हैं कि हम सब -जातिनिरपेच —मोचपद प्राप्त करेंगे। स्वभावतः हजारों वर्षोसे त्राजतक कनिष्ठ तथा उच, अज्ञ तथा सुज्ञ सभी हिन्दू लोग श्रीकृष्णकी समान भक्ति श्रीर प्रेमसे पूजन करते आये हैं श्रीर इसके अनन्तर भी भगवद्गीताके दिव्य उपदेशसे मोहित हो उसकी ऐसी ही पूजा करते रहेंगे।



विषय-सूचो ।

प्रचौहिणी संख्या	३३६	3
प्रमहार	३२६	वे
ब्रठवाड़े श्रीर पृष्ठ्यका प्रभाव	४१८	
म्रतिथिपूजन	४६२	
<mark>ग्रिधिकमास</mark>	४ १६	
ग्रिधिकारी, राज्यके	३१२	
अधिदैव, श्रध्यातम श्रादिकी भग	P	5
वद्गीताकी व्याख्या	४३२	5
त्रासुष्टुप् श्रीर त्रिष्टुप् वैदिक वृत्त	७२	
श्रवकरणर	9-30	5
21.1.1.11.1.	-230	5
श्रनेक-पत्नी-विवाह २२७	- 229	1
য়ন্ত্ৰ	२४६	
ग्रन्तःपुर	388	
ब्रधोगति	५०६	
अपान्तरतमा, वेदका आचार्य	५३१	
श्रराजकत्व के दुष्परिगाम	308	
श्रस्रङ्गार	२७४	
त्रशौच "	४७३	
श्रस्त्र ३४	१-३५२	
त्र्रहिंसा	हे ६ ट	2
श्रहिंसामत महाभारतके पहलेका	ह ४३०	
मानापाका निरीन्य	१–२ ९३	
श्राचरण, उत्तम	४६	
श्राचार ्	86	
त्रात्मा त्रमर्हे	. ৪৯	
त्रातमा एक है या त्रनेक	. 89	
त्रात्माका स्वरूप	. 48	
श्रात्माका वर्ण	. 40	
श्रात्माकी श्रायाति श्रीर निर्याति	. ३ २	
श्राबकारी	. 88	
श्रार्यावर्त्तके लोगोंकी सूची		-

1116214116	48
दि, महाभारत श्रीर मनुस्मृतिका	
प्रमाण १	
संयुक्त-प्रान्तके मिश्र श्रार्थ	४९
	ATT .
	६४
श्रार्यावृत्त जैन ग्रन्थोसे लिया गया ह	७२
	ATTER .
का है	No.
	899
श्रापिताच ।।।	२८१
	894
	200
MI CHILLIAN	
त्राहिक, सम्ध्या ग्रार हाम	ço
इतिहाल मारत हा ए	
\$161614 344	838
इन्द्रिय ज्ञान	४९६
इंखरापेगा बुद्धि	83
उच्चकल्प शिलालख सर् रूप रु	४२३
उत्तरावर	२८२
उद्यागशालतः	
उपनिषद् मुख्य महामारतल पदल	६१
	1345
उपवास	378
उपवास ।ताथ	६२
उपवद्-वदाक्ष लगात लगाडा है	८२
उल्लेखामावका प्रमास करण	867
उद्गयन श्रवण पर	
ऋग्वद्का दारारास उ	१४
युद्ध नहा ६	
	दि, महाभारत श्रीर मनुस्मृतिका प्रमाण १ संयुक्त-प्रान्तके मिश्र श्रार्थ भारती श्रायोंका शारीरिक स्वरूप श्रीर वर्ण श्रायांवृत्त जैन ग्रन्थोंसे लिया गया है श्राश्वलायन सूत्र महाभारतके वाद- का है श्राविभाव श्राविभाव श्राश्रमधर्म श्राश्रमधर्म श्राश्रमधर्म श्राश्रमधर्म श्राश्रमधर्म श्राश्रमकी उत्पत्ति, वर्णन श्रीर श्रास्तत्व १९९- श्राह्मक, सन्ध्या श्रीर होम इतिहास भारत ही है इतिहास-पुराण इतिहास-पुराण इत्वहत्व ज्ञान इत्वहत्व श्रीलंख सन् ५० ई०

ऋग्वेदमें कुरुकी बातें	१४३	दूसरे देशोंका देखते हुए इसका	
0 %	१४३	सम्भव होना	292
PICT	TEFF	कृत्तिकादि गणना	85%
,, पाञ्चाल, सामक आर् सहदेव	१४६	कैवल्य, यागका श्रीर सांख्यका	-14
,, श्रनु श्रौर दुह्यु	१४३	भोच	35%
	४२२	खर्चके मद, राज्यमें	323
ऋतु एक लाखकी संहिताके ईलियडका	Prop	खेती श्रीर वागीचे	३६६
हवाला	४३	गद्य महाभारतका उपनिषद्धिं भी	117
पडूकों की निन्दा	96	हीन है	98
कन्यात्वदूषण	२२६	गण, पहाड़ी जातियाँ	
कपड़े (रेशमी, स्ती श्रीर ऊनी)	३६६	,, प्रजासत्ताक लोग	
कर	386	गणितसे निकलनेवाली ग्रह स्थिति	a prince
कर्त्ता काल्पनिक नहीं हैं	3	नज्ञोंसे नहीं मिलती	१३२
कर्मयोग	488	गिणित त्रादि विषय	833
कर्मयोगका सिद्धान्त	298		४३७
कर्मसिद्धान्त	400		8३८
	anfer	गर्गने सप्तर्षिचारसे युधिष्ठिरका	
	03	समय निकाला, यह मत	
कलियुगारम्भका ज्यातिषियांका	PISTE.		
20 %		छनेके छिए साधन नहीं है।	PATRICE OF THE PARTY OF THE PAR
श्राधार पर है	९२	चंशावलीसे निकाले हुए अङ्क	
किंद्यगारम्भका गणितसे श्रार्थ-		गर्गसंहितासे काल्पनिक दुश्चिह	
भट्टका निश्चित काल भ्रमपूर्ण है		लिये गये हैं	१३२
कर्प कार्या		गाथा इतिहास ग्रादि महाभारतमें	
कारीगरोंको सहायता		समाविष्ट है	80
कालविभाग	८१७	गायनकी श्रभिरुचि	३८६
कूट स्रोकोंके उदाहरण (ये स्रोक	PPP .	गुजरात	३९४
सौतिके हैं)	२८	गुरु	४ ४७
क्रट क्षोकोंकी संख्या (संख्या-	100	गुलामोंका स्रभाव	30=
विषयक स्रोक बहुत हैं)	26	गापियांकी भक्ति	33%
क्ट	358	गोरना	३६६
करयुद्ध ३६०-	388	गोरसका महत्त्व २४९-	-240
कुरुदोत्र श्रोर पुष्कर	800	गोत्रीत्पत्ति	338
कृत्तिका ठीक पूर्वमें उदय होती	FFF	गाहत्याका पातक	489
है, इससे भारतमें युद्धका	TENE	नहुष संवाद	२४०
समय १०६	280	निषेध जैनोंसे पहलेका श्रीर	
यह उल्लेख प्रत्यन्न स्थिति देख-	SPERM	श्रीकृष्णकी भक्तिके कारण है	२४१
कर किया गया है	११२	ग्रन्थ ग्रीर कर्चा	×

ग्रन्थ संख्या ७	वेदांग ज्योतिषके समय वन्द
त्रह अ२८	हुए १२०
गृहरूथाश्रमका महत्त्व २०६	चान्द्रवषसे पाग्डवनि वनवास
ग्रहस्थितिसे युद्धका समय निश्चित	पूरा किया १२२-१२४
करनेका प्रयत्न व्यर्थ है १२६-१२७	चान्द्रवर्षं गणना, द्यूतके आधारपर
विरोध वचन श्रीर कूट वचन १२८	युद्धके समय प्रचिति थी ११७
हो हो नच्चत्रींपर स्थिति १३१	छन्द महाभारतकें अनुब्दुप् श्रीर
ब्रहस्थितिका महाभारतमें उत्तेख १३७	त्रिष्टुप् ७१
ग्रामसंस्था ३२४	जनमेजयका पापकत्या १०
ग्रीक शब्द सुरंग ४४	जनमजयका ब्रह्महत्यास सम्बन्ध ५8
ग्रीकेंका दूरका परिचय ई० स०	जमाखर्च विभाग ३२६
ण ६०० से ४१	इ जप ०५०
ग्रीक, वैक्ट्रियन ग्रादि लीगोंने	जमानका स्वामित्व श्रार पमाइरा २९९
भारतमें ई० स॰ पू॰ ३२० में	जम्मक
राज्य स्थापित किये ४	9 जय, भारत, महाभारत ६
घोड्सवारोंका दल ः ३४	
चतुर्युंग ४२१	अ जातक ४३१
चतुन्यू ह भगवद्गीताके बादका है ४४	
चतुरंगिणी सेना ३४	
चातुर्वगर्यकी ऐतिहासिक उत्पत्ति १	२ जंगल ३२३
महाभारतका सिद्धांत १८	8 जिन्हापम पर
चार भनु वैदिक ४०	च्ये जंबूद्वीपके वर्ष ३८२
चीर सञ्ज पायमा ३०	उ जंबू वृत्त श्रीर मेरु ३८३
चारीका ग्रभाव रा	=३ ज्यातिर्यत्र ४३१
चाराका असाप	द्र ज्यातिषका श्रीकोकी सहायतास
चन्द्रसूर्यका निर्मानित गर्म चन्द्रस्थिका आर्थ, दूसरी आर्थोकी	नाभगस्य ग्रार सिद्धान्तरचना ४८
दोली, सेन्ससरिपोर्ट श्रीर	ट्रान्सपोर्ट श्रीर स्काउट ३४६
भाषा भेद १	जागज कायसीस्ट्रांस इ० स० ५०
चन्द्रवंशियोंका ब्राह्मणकाल श्रीर	
चन्द्रवाश्याका ब्राह्मणकाल आर	
महाभारतकालमें उत्कर्ष १	४६ तत्त्वज्ञानके पाँच मार्ग ४१७
	वन्त्रज्ञातिविषयेक सार्वका निर्देश
चाह्यसाक्षाक विकास	ताम्रपटोका उल्लख नहा ह
चान्द्रवर्ष मार्गशीर्षादि नामोंके उप-	- Sic 8/c
71.00 8166 81 119	ों। नीर्श (महाभारतकालीन) ४०२
चान्द्रवर्षकी टीकाकारकी "वर्घाप-	जील श्रीर नाप
नादौ" त्रादिको की हुई व्यवस्था	१२२ त्रिग्ण ००९
भ्रमपूर्ण है	
भ्रमपूर्ण ह चान्द्रवर्ष भारतवर्षमें कब चलते थे	110

द्राडस्वरूप ३०६	नत्तत्र दोनों दी हुई दृष्टियोंसे ठीक
दर्शन—ग्राजकलके सूत्र महा	उतरते हैं १३०
भारतके बादके हैं ६४	सायन निरयण मानना भ्रमपूर्ण है १३२
दत्तस्तवाख्यान ४४३	भेद पहले नहीं मालूम था १३३
दिच्चिणके लोगोंकी सूची ४११	न्त्रत्र कृत्तिकादि हैं १३३
दशावतार, महाभारतके समयके ४४६	वेधसे भिन्न भिन्न नज्ञांका
दास (ग्रद्र) ३५०	समसना सर्वतीभद्रचक्रसे १३४
	नद्मत्र (२७) ४१४
दान ४६७ दीनारका उल्लेख हरिवंशमें ९६	नत्तत्र दिनोंके ४१८
दीर्घायुष्य, भारती श्रायोंका १६८	नगर (हिन्दुस्तानके) ४०६
दुर्गा ४४४	निद्याँ (हिन्दुस्थानकी) ४०१
देवयान श्रीर पितृयाण ४०४	नदियोंकी सूत्री ४१२
देवता ३३ ४४०	नाग लोग हिन्दुस्थानके मूल
देहत्याग, रणमें अथवा वनमें २८४	निवासी थे १५१
द्रविड अध्य	प्रत्यत्त नागस्वरूपकी कल्पना बाद्
द्वीप (श्रन्य) ३८४	को है १४२
द्यूत २७८	नाग श्रीर सर्प १४३
धनुष्यवाण ३४६	नाटकोंका उल्लेख है परन्तु नाटक-
धनुष्यका व्यासंग २४१	कारोंका नहीं है ४४
धन्धे (व्यवसाय) ब्राह्मणोंके १८८	नास्तिकोंका उल्लेख "त्रसत्यं त्रप्र-
,, चत्रियोंके १६०	तिष्ठं तें इस श्लोकमें है,
्र, वैश्योंके ··· ·· १६२	बौद्धोंका नहीं ६७
,, श्रद्धोंके १६३	नियोग २१८
,, संकर जातियोंके १६३-१६४	निरुक्त ४३८
धर्मशास्त्र ४४१	निवृत्तिका निरोध ५५६
धर्म श्रीर नीतिकी शिक्ता २४	नीतिका तर्कपर स्थापन ४१४
धर्मके दो मार्ग ४१३	नीतिके श्रपवादक प्रसंग ४६६
धर्माचरण मोत्तपद है ४१३	न्यायशास्त्र ४४०
धर्माधर्मनिर्णय ४१४	
धर्म के अपवाद ४१४	
धम युद्धके नियम ३४५-३४६	
धातुत्रोंका ज्ञान २,४५-२,४६	
धान्य, चावल, गेहूँ म्रादि २४८	
धामिक युद्ध ३४५	
ध्यान श्रीर साज्ञात्कार ४६६	
नकुळका श्राख्यान २४८ नज्ज चकसे प्रहोंकेा समभना १३४	पति-पत्नोका स्रभेद्य सम्बन्ध २३६
ग्यान जनात महाका सममाना १३४	पतंजिल महाभारतके बादका है उ

परब्रह्म स्वरूप ५०७	पुरुषोत्तम ४८८
परमेखर ४८२	पुराण (वर्त्तामान) महाभारतके
परिवेदन २४५	बादके हैं ४६
परराज्य सम्बन्ध ३३३	पुराणोंका मत युद्धकालके सम्बन्ध-
परशुराम चेत्र ३६७	में काल्पनिक है ६६
पर्वत (सात कुल पर्वत) ३६०	पुराणोंका ज्ञान ज्यातिषके
पहनावा (स्त्रियों श्रीर पुरुषों-	विरुद्ध है १००
्का) २६३-२६४	पुराणोंकी पीढ़ियाँ श्रसम्भव हैं १०४
पाणिनि श्रीर शाकल्य ४३७	महाभारतसे विरोध १०५
पाग्रडव काल्पनिक नहीं हैं पर	पुनर्विवाहकी मनाही २२०
पागडवोंकी कथाका पीछेसे	पुनर्विवाहका द्मयन्तीका प्रयत्न २२१
मिलाया जाना संभव नहीं है प्र	पैद्ल ३४७
पाएडवोंका इधर होना कहीं	प्रकृति श्रीर पुरुष, भगवद्गीतामें ५२३
् दिखाई नहीं देता। ८७	प्रमाण स्वरूप % ४८२
पांड्य १६३	प्रवर २४४
पगड़ी, पुरुषोंको २६८	प्रवृत्ति श्रीर निवृत्तिका उचित
पादत्राण २७१	उपयोग ५८४
पातिव्रत्यकी उदात्त कल्पना २१९	प्रवृत्ति ्निवृत्तिका संसारमें
ब्रीकेंका प्रतिकृत मत २४१	
पापके अपवाद ४७२ पाग्रुपत मत महाभारतके पहलेका है ७०	Midi Sout detries de
पांचरात्र भागवत धर्मसे भिन्न है ५४२	Mediales in Sine.
चित्रशिखंडीका ग्रन्थ लुप्त हो	ALEGUM 4464 141
गया ५४३	प्राण ४९३
सात्वतलोकमें उत्पन्न ५४%	
महोपनिषद् ५४८	त्रावार्य तमा नमार
त्रावार्यपरंपरा ५४	Adiala
श्रातमगति ५४	त्राव । ववार गर
योगका वेदान्तसे अभेद ५५	मिल्या मान्य मान
पाश्चपतमत ५५५	3 किलासाकाताचा
पशुका अर्थ सृष्टि प्र	S delini
उपदेश परम्परा	्राधा वर्गाच
वर्गाश्रमको छोडकर ४४	७ बादरायस ज्यास आर क
पांचरात्र मत महाभारतसे पहले-	ि ज्यास्त है। सिश ज्याता द
का है	ए बाह्माक दशका जातिकाका उ
पहलेका ग्रन्थ नहीं मिलता	१० बुद्ध और बुद्ध याति । १६
पनरुक्ति	355
पुनर्जन्म ४०	विगार ३२२
9	

बैद्ध श्रीर जैन धर्मोंका सनातन	भारतीय युद्ध मुख्य संविधानक,
धर्म पर ब्राक्रमण १४	महत्वका, राष्ट्रीय श्रीर विस्तृत है ३३
बैद्धि श्रीर जैन मतोंका उल्लेख ७५	भारतके व्यक्ति उदात्त है ३६
ब्रह्मचर्यका अर्थ शिचा २०८-२०६-५५७	भारतके देव श्रौर स्त्रियाँ उदार हैं 39
ब्रह्मदेवका सातवाँ जन्म ५५०	भारतका सर्वस्व र ३६
ब्रह्मलोक श्रीर ब्रह्मभाव ४४१	भारतके भाषण श्रीर वर्णन ३६
"ब्रह्मसूत्रपदैः" में बादरायणका	भारतका मुख्य जीवन धर्माचरण है ४०
उल्लेख नहीं हैं ५४	भारतीय युद्ध काल-पाँच मत ८६
ब्राह्मण श्रीर चत्रिय १७१	ं पंचाङ्गोवाला ई० सन् पूर्व
ब्राह्मणोंको श्रेष्ठता १८१	ः ३१०१ प्राह्य है ८६
भक्ति हार्स स्वर्थ	भारतीय युद्ध कलियुगके आरम्भ-
नवीन मोत्तमार्ग ५६२	ं में हुआ ६०
भगवद्गीता सौतिकी नहीं है ५५६	भारतीय युद्धमें विरोधी दलके लोग १५३
,, भारतमें प्रचिप्त नहीं है ५६०	भारतीय श्रायोंकी नीतिमत्ता १८०
,, मूल भारतकी है ५६३	भाषा बोलनेकी ४३२
,, श्रद्रासंगिक नहीं है ५६५	ः संस्कृत अच्छे लोगोंकी ः ४३२
,, उसमें श्रीकृष्णका मत	भाषा बद्ळना ५८२
प्रतिपादित है ५६७	भीष्मका निर्णय वनवासके सवन्ध-
2 0 22 -2	में ठीक था ११७
,, दशापानषदाक वादका श्रीर वेदाङ्गके पहलेकी है ५७१	भीष्मका द्रौपदी—चस्त्रहरएके
2 0	समय चुप रहना २३९
0	भीष्मकी पितृभक्ति । । । २५०
001 22 13	भीष्मका राजकीय आचरण ३४०
2 - 2 - 2 - 2 - 2 - 2	भीष्मस्तवमें वेदान्त् ५३५
	भोजन के समय मौन रहि
" श्रीर वेदान्तके सूत्र एक	पदार्थ निर्वन्ध २६०
ही कत्तांके नहीं हैं ५७	मत्स्यभन्तण, सारस्वतांका २५८
भरत, ऋग्वेदसे त्रलग हैं १४१	मद्यपाननिषेध रूपप
" दुष्यन्तपुत्र भरतका नाम	विश्वामित्र चाएडाळ संवाद २५६
"भारतवर्ष"में नहीं है १४१	त्याग २५७
" ऋग्वेदके सूर्यवंशी चत्रिय १४२	मनुस्मृति, वर्त्तमान, महाभारतके
ु,, महाभारतमें उल्लेख १४२	बादकी है ५८
भविष्यकथन ३०	मनवन्तर ४२७
भारतीय युद्धकाल ा ३	मराठे मिश्र ग्रार्थ हैं, शक नहीं १६१
भारतीय युद्ध-विवाद निष्कर्ष ई०	म्लेच्छ श्रीर चातुर्वर्ण्य १९६
सन् पूर्व ३१०१ ू १४०	उत्तर श्रोरके म्लेच्छोंकी सूची ४११
भारतीय युद्धकालीन समाज-स्थिति ५८६	महाभारत प्रशंसा १
भारतकी महाकाव्य कीदृष्टिसे श्रेष्ठता ३२	महाभारतका काल ३

महाभारतके विस्तारका केाष्ठक,	मैकडानलका भारतीय युद्ध
श्लोकसंख्या नीलकंठके मतसे ३	सम्बन्धी मत १०८
महाभारतके पाठ बम्बई, बङ्गाल	मैक्समूलर श्रीर श्रमलनेरकरका
त्र्योर मदास ३	मत भ्रमपूर्ण है ५५
महाभारतका काल ई० सन् पूर्व	"यदाश्रीषम्" वाला श्लोक सीति-
३२० से ४० तक ४४	ं का है १२
महाभारत राशियोंके पहलेका है	यदुतुर्वस् श्रादिका उल्लेख १४३
ई० सन् पूर्व २५०	ययातिके चार पुत्रोंका शाप १४८
महाभारतका निश्चित काल ई०	यवन श्रथवा श्रीकोका उत्तेख ई०
सन् पूर्व २५० लोकमान्य	सन् पूर्व ३२० २५
तिलकको भी प्राह्य हैं ५२	यज्ञ श्रीर तप ५६०
महाभारतमें दूसरे प्रन्थोंका उत्तेख ५४	यास्कका महाभारतमें उल्लेख ६३
महाराष्ट्र ३९५	युगमान हो ४२५
मामाकी कन्यासे विवाह २४४	313101 (1111 1111 1111 1111 1111
	युक्तनवयवक आदकर कात १११
मार्गशीर्ष श्रादि महीनेंके नाम	योग-मूलतच्य ५२४
वेदान्तमें नहीं हैं; उनका प्रचार	योगके मुख्य छत्तण ५२५
ई० सन् पूर्व ३००० में हुआ १२२ आलव-चडक श्रीक वर्णन २६९	वागमा । तास आर नार्या
481 (44 202 11 11 11 11 11	distant 14 at and 1 at an and 1
मास, ग्रमान्त ग्रीर पौर्णिमान्त ४१९-४२०	
"मासानां मार्गशीषीं ऽहम् ऋत्नां	Alleration of a
कुसुमाकरः'' का काळ ५७	1 (41
मासाना मागराजाउद्भ ऋषूता कुसुमाकरः'' का काल ५७ मांसाच भच्चण २४ मांसाच त्याग २४ मांस, वर्ज्यावर्ज्य २५	र (विश्वस्ताता । राजा
मांसान्न त्याग २४	(44)
मांस, वर्ज्यावर्ज्यं २५	रवशापा गर्
	र रावनामा व वज्
मुक्ति, संस्रतिसे " ५०	Ca.5
मुल्की कारबार २९	9
मृतिपूजा	राजकीय स्थिति, भारतीय श्रीर
मेगास्थिनी जकी दी हुई १३५ पीढ़ियाँ	200
विष्वस्तीय है	राज्य, छाटे छाटे २९४
मेगाम्थिनीज पर होनेवाला श्राच्य	208-308
निर्मल है ''	
मोल कार्याः व	राजा श्रीर प्रजामें करारकी कल्पना ३०३
मोहकते सायन निर्यण नत्त्र मान	राजा श्रार प्रजाम परिचा । ३०४
कर जो युद्धकाल निश्चित किया	राजाका द्वता रचकारा ३०८
है वह भ्रमपूर्ण है १	३२ राजदरबार ३०८

राजाका व्यवहार २०९	वाहन ् २८७
राजाश्रोंकी पीढ़ियाँ ५४	वासनानिरोध श्रौर योगसाधन ४९८
राजाकी दिनवर्या ३१६	वार्त्ताशास्त्र (खेती श्रीर व्यापार) ३६८
राजनीति अधर	वास्तुविद्या ३७५
राजनीति (कुटिल) ३३६	वायुपुराण ू ४४०
राशि. ग्रीकोंसे ली गई है ४६	विद्वानोंका अध्ययन श्रीर मत २
राशियां हिन्दुस्तानमें ई० सन	विदुला संवाद, उद्धर्ष ए (राजकीय) ३४२
पूर्व २०० में आई ४८	विमानें से आक्रमण ३६२
राशियोंके सम्बन्धमें दीवित-	विवाहमर्यादा स्थापन २१८
का मत भ्रमपूर्ण है ४९	विवाहकी स्त्रियोंके लिए आवश्य
राशियाँ गर्गके श्रीर बौद्ध	कता २२७
ग्रन्थोंमें नहीं हैं ५१	विवाहके ब्राठ प्रकार २३०
राष्ट्रकी उच नीच गति "५८४	ब्राह्म, चात्र, गान्धर्व २३१
	त्रासुर २३२
राहु ४२६ ४५३	८ राचस २२३३
रामक शब्दमें रामका उल्लेख	ब्राह्ममें परिचर्तनू २३४
नहीं है ७६	विवाहसम्बन्धी कुछ निर्वन्ध २३४
छेलित साहित्य ४४५	्र शद्भपत्नी ०० २३५
	विष्णुके नामकी उत्पत्ति ५४७
	वृत्तगाम्भीर्य श्रीर भाषामाधुर्य ३९
	वृत्तरचना, महाभारतकी ७३
वराहमिहिरका मत किंगुगारम्भ-	वृत्त दीर्घ, ई० सन्के बाद नहीं
के सम्बधमें शकपूर्व २५२६	उत्पन्न हुए ७२ वेशस्त्रियाँ २७७-२७८
का भ्रमपूर्ण है ९४	
वराइमिहिरने गर्गके वचनका	वेदांतके त्राख्यान शांतिपर्वमें ५३७
गलत अर्थ किया है ९५	वेदकी शाखाएँ ४३६
वेदांग ज्योतिषकाल, भारतीय	वेदान्तसूत्रका समय ५४
युद्ध-कालका प्रमाण ११५	वेदान्तका श्रर्थ ५३०
वकानुवक मंगल ४२९	वेबरका यह मत भ्रमपूर्ण है कि
वक्तत्वशास्त्र ४४१	पागडव हुए ही नहीं ८३
वर्गाकी व्याख्या १६९	वैदिक धर्म ४४६
वर्णव्यवस्था पुरानी है १७०	वैदिक साहित्यमें भारतीय युद्धके
वर्णकी उत्पत्ति, श्रद्भोंके कारण १७४	प्रमागा हेवापि सोमक.
वर्णसंकरका डर १५७	साहदेव्य १०७
वर्णके सम्बन्धमें युधिष्ठिर-	वैदिक साहित्यका पाश्चात्य विद्वानीं-
नहुष-संवाद १.८८	के द्वारा डरते दुए निश्चित
वर्णोंमें विवाहका निषेध १८५	किया हुन्रा काळ ११४
वर्णों में पेशेका निर्वन्ध १८७	वैदिक साहित्यके साथ पूर्व-
वल्कल २६९	सम्बन्ध श्रीर वैदिक साहित्य

रेराग्य श्रीर संसारत्याग ४१०	श्रीकृष्ण पीछेसे भारतमें नहीं
बन्दन श्रीर कररूपरी २६१	मिलाये गये ८४
यास, वैशम्पायन श्रीर सौति ६	श्रीकृष्ण श्रीर हिराक्कीज़ एक ही हैं ६०
व्यवसाय, ब्राह्मणोंके १८८	श्रीकृष्णका मेगास्थिनीज़की दी हुई
,, चत्रियोंके १६०	पीढ़ियोंके श्रनुसार निश्चित
,, वैश्योंके १६२	काल ६०
,, श्द्रोंके १६३	श्रीकृष्णकी महाभारतमें दी हुई
ं,, संकर जातियोंके १६३ १६४	वंशावली १०२
व्यवसाय शिचा २१३	श्रीकृष्ण की श्रनेक स्त्रियाँ २२८ श्रीकृष्ण एक थे. तीन नहीं ४६८
व्यापार ३७७	श्रीकृष्ण एक थे. तीन नहीं ४६८ श्रीकृष्णके कपटी श्राचरणके
शक यवनोंके राज्य माळवामें ४९	सम्बन्धमें भ्रमपूर्ण धारणा ४६६
शक यवनेांका कलियुगमें राज्य-	जैनरल बुल्फका उदाहरण ६००
भविष्य ७४	श्रीकृष्णका द्रोणवधके समय भूठ
शक यवनेंका ज्ञान ९०	बालना ६००
शतपथ ब्राह्मण भारतीय युद्धके	श्रीकृष्णका भीष्मवध प्रसङ्ग ६०१
बादका है १००	
शतपथमें महाभारतका उल्लेख १०	711 0
शतपथरचना-कथा ४३	
णनाशका समय दोचितने ई०	सतीकी प्रथा २४२
सन् पूर्व ३००० निश्चित किया है १०	१ सनत्सुजातीय मान ५३६ सनातनधर्मकी प्रतिपादक कथाश्री-
जान संस्कार २०	98-9.0
शिवभक्ति विरोध दूर कर दिया गया	का संग्रह १६-१७ संन्यास श्रीर कर्मयोग ४६४
शिचा ४	सन्यास श्रार कमयाग २०४
शिचापद्वति २०	संन्यास की त्रावश्यकता ४३६
शिचाका काम ब्राह्मणोंने श्रपने	संन्यास किसके छिए विहित है ००२
ऊपर लिया २	9 संन्यासोकी गति x8१
शिचा श्रीर ब्रह्मचर्य २०५-२	व्ह सप्तर्षि वैदिक हैं ४७४
शिचा, गुरुके घर " २	०८ सरस्वती ४०८
शिवाक्रम २	११ सर्व मतोंका सामान्य श्राचार ४४७
शिताके लिए बड़ी बड़ी पाठ-	सहस्रयुगकल्प ४७१
शालाक ।लप बड़ा पड़ा सड़ा सड़ा सड़ा सड़ा सड़ा सड़ा सड़ा स	११ सरकारी नौकरोंका व्यवहार ३११
शालाय गरा या	१२ सम्बदी पाणिग्रहण, होम २२६
शिहाका-अ।चाप	08 minerit 80°
ाशखा, पुरुषाका	क्ष्य संव व्यापारियों श्रीर कारीगरीं के ३८
शिकार	द्विष्ठ चंचप्रक १९१
शाल का सहरव	साम्राज्यकी कल्पना श्रशीकके
शीर्षमापनशास्त्रके श्रतुसार हिन्दु- स्थानमें श्रायोंके होनेका प्रमाण १५६	7 7 7 7 0
क्रान्य प्राचाक हानका अभाए १०५	

साम्राज्यकल्पना प्राचीन है	335
	308
	४६३
साधारण धर्में	8=1
सांख्यके २४ तत्व ४५९	
पानव वापन	४१७
लाच्य गत	232
सांख्यके मूलभूत मत	
सांख्यके स्राचार्य	ररऽ
सांख्य मतके तत्व	
भगवद्गीता में	४२०
सांख्यमतके ३१ गुण	४२२
सांख्ययागादि मतांका विरोध १	8-58
सांख्य श्रीर संन्यास	प२३
सिक्के	३२६
सिलाईके कामका श्रभाव	२६४
स्ती श्रीर रेशमी कपड़े	3,90
सूत्र शब्दका श्रर्थ बाद सुत्तके	
समान है	४६
सूर्यप्रहण युद्धसे पहले कार्तिकी	
श्रमावस्याको हुत्रा था	१२८
———— दे किन वर्षे नवार	१२६
fr 6.00 2 - 0 2	, ,-
,, इसवा सन् पूव ३१०१ का जनवरी में हुआ	१३०
	Production of the last of the
सूर्यवंश श्रीर चन्द्रवंश	१४८
सृष्टि	८८४
सृष्टि क्यों उत्पन्न हुई	8८८
सैनिकों का वेतन	३४६
सौतिके १८ पर्व	3
सौतिका बहुश्रुतत्व	१२
THE RESERVE OF THE PARTY OF THE	

सौति ने भारत क्यों बढ़ाया	१३
स्कन्द ्	873
स्त्रोपर्वका विलाप सौतिका है	२६
स्त्रियोंकी वेणी	२६६
स्पष्टोक्ति	305
ह्वर्ग-न्रक कर्पना	४६६
स्वर्गके गुलदेष	४६८
स्वराज्य-प्रेम	388
हर्याशरा अवतार	४४८
हरिवंश, वर्तमान, सातिका नहीं है	७७
हिस्तद्रल	३४८
हाप्किनका मत महाभारतके काल-	
के सम्बन्धमें भ्रमपूर्ण है	इश
,, के प्रतसे महाभारतकी चार	
सीढ़ियाँ	60
" का यह मत समपूर्ण है कि	
यह युद्ध भारत कै।रवीं-	
का है	ZX
हिंसा, यज्ञ द्यार सृगयाकी	२४१
हिंदुस्तानका संपूर्ण ज्ञान	३८८
हिंदुस्तानके ले।ग	१३६
,, पूर्व श्रोरके	388
" द्विण श्रोरके	इध्इ
" पश्चिम श्रोरके	338
" उत्तर श्रोरके	800
夏 亚…	३८७
च्चयतिथि श्रीर मास	४२०
च्रेत्र च्रेत्रज्ञ चिसाग	४३२
जानसंग्रह	२४

